॥ श्रीहरिः ॥

महर्षि-कृष्ण-द्वैपायन-वेदव्यास-रचित

महाभारत

उद्योग-पर्व

स्वर्गीय-

मुरादाबादनिवासि-सनातनधर्मपताका-सम्पादक

ऋ० कु० रामस्वरूपशर्मा-कृत

हिन्दी-भाषानुवाद-सहित

THE MAHABHARAT

UDYOG PARV

WITH HINDI TRANSLATION.

by

Rishikumar

Ramswarup Sharma

प्रिण्टर व पब्लिशर प० रामचन्द्रशर्मा

सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद

द्वितीयवार १०००] [१५ फर्वरी १९२८

॥ श्रीः ॥

महाभारत—

उद्योगपर्वकी विषयसूची

सेनोद्योगपर्व

सञ्जययान-पर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ

उद्योगपर्वकी विषयसूची समाप्त।

पुस्तक मिलने का पता–

सनातनधर्म यन्त्रालय

मुरादाबाद।

॥५ ८

॥ श्रीहरिः ॥

महाभारत

सेनोद्योगपर्व।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ ॥

वैशम्पायन उवाच। कृत्वा विवाहन्तु कुरुप्रवीरास्तदाऽभिमन्यो-
ाः स्वपक्षाः। विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः सभां विराटस्य
ऽभिजग्मुः ॥ १ ॥ सभा तु सा मत्स्यपतेः समृद्धा मणिप्रवेको-
ल्चित्रा। न्यस्तासना माल्यवती सुगन्धा तामभ्ययुस्ते नरराज-
: ॥२॥ अथासनान्याविशतां पुरस्तादुभौ विराटद्रुपदौ नरेन्द्रौ।
च मान्यौ पृथिवीपतीनां पित्रा समं रामजनार्दनौ च ॥ ३ ॥

नारायण, नरोंमें उत्तम नर तथा वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सर-
ीको प्रणाम करके इतिहास पुराणादिकी व्याख्याका आरंभ
॥॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे राजन् जनमेजय ! यादव तथा
व महाशूर पाण्डव अभिमन्युका विवाह करके प्रसन्न हुए तथा
को जनमासेमें जाकर सोगए, दूसरे दिन प्रातःकालके समय
न करके, नये २ वस्त्र और आभूषण पहिर कर राजा विराटकी
सभामें जानेको उद्यत हुए ॥ १ ॥ मत्स्य देशके राजा विराटकी
सभा महाऐश्वर्य वाली थी, जड़े हुए मणि तथा रत्नोंके समूह
वेचित्र दीख रही थी उस सभामें आसन बिछे हुए थे और पुष्पों
मालायें लटकाई गई थीं, इस कारण वह सभा सुगन्धिमय हो
थी, राजा विराटकी इस सभामें राजाओंमें मान्य और अवस्था
द्ध विराट तथा द्रुपदराज प्रथम आकर सिंहासनके ऊपर विराजे
नन्तर पिता वसुदेवके साथ बलदेव और श्रीकृष्ण भी सभामें आ

पांचालराजस्य समीपतस्तु शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः । मत्स्यस्य राज्ञस्तु सुसन्निकृष्टो जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च ॥ ४ ॥ सुताश्च सर्वे द्रुपदस्य राज्ञो भीमार्जुनौ माद्रवतीसुतौ च । प्रद्युम्नसाम्बौ च युधिप्रवीरौ विराटपुत्रश्च सहाभिमन्युः ॥ ५ ॥ सर्वे च शूराः पितृभिः समाना वीर्येण रूपेण बलेन चैव । उपाविशन् द्रौपदेयाः कुमाराः सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु ॥ ६ ॥ तथोपविष्टेषु महारथेषु विराजमानाभरणाम्बरेषु । रराज सा राजवती समृद्धा ग्रहैरिव द्यौर्विमलैरुपेता ॥७॥ ततः कथास्ते समवाययुक्ताः कृत्वा विचित्राः पुरुषप्रवीराः । तस्थुर्मुहूर्त्तं परिचिन्तयन्तः कृष्णं नृपास्ते समुदीक्षमाणाः ॥८॥ कथान्तमासाद्य च माधवेन संघट्टिताः पाण्डवकार्यहेतोः । ते राजसिंहाः सहिता ह्यशृण्वन्वाक्यं महार्थं सुमहोदयं च॥९॥श्रीकृष्ण उवाच। सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथाऽयं युधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम् । जितो निकृत्याऽपहृतं च राज्यं वनप्रवासे समयः कृतश्च॥१०॥ शक्तैर्विजेतुं तरसा महीं च सत्ये स्थितैः सत्यरथैर्यथावत् । पाण्डोः सुतैस्तद्व्रतमुग्ररूपं वर्षाणि षट्

कर अपने २ आसन पर बैठे ॥ २ ॥ ३ ॥ बलदेव तथा शिनिपुत्र सात्यकी राजा द्रुपदके पास बैठे तदनन्तर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर मत्स्यराजके समीपमें बैठे तदनन्तर द्रुपदके सब पुत्र, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव युद्धवीर प्रद्युम्न साम्ब विराटके पुत्र अभिमन्यु तथा पराक्रम रूप और बलमें अपने पिताओंकी समान शूरवीर द्रौपदी के सब कुमार सुवर्णकी पत्तरोंसे जडे हुए श्रेष्ठ सिंहासनों पर आकर बैठे ॥ ५-६ ॥ जिस समय सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहिर कर महारथी अपने २ आसनों पर बैठ गए उस समय निर्मल तारागणोंसे जैसे आकाश सुशोभित होता है तैसे ही उन आगंतुक राजाओंसे वह महासमृद्धि वाली राजसभा शोभाको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ सबके आजाने पर शूरवीर पुरुष सभामें अनेकों विषयोंके ऊपर बातें करने लगे और श्रीकृष्ण अपनी क्या सम्मति देते हैं इस विचारसे श्रीकृष्णकी ओरको देखते हुए दो घडीतक विचारमग्न हुए अपने २ आसनों पर ही बैठे रहे॥८॥जब सब राजाओंकी बातें पूरी होलीं तब श्रीकृष्णने पाण्डवोंके कार्यके लिये जिन राजसिंहोंको इकट्ठा किया था उनसे आग्रहपूर्वक सारयुक्त तथा महाफल देनेवाला वाक्य कहने लगे॥९॥ श्रीकृष्ण बोले कि-हे राजाओं ! सुबलपुत्र शकुनिने कपटसे जुआ खेल कर युधिष्ठिरका पराजय किया उनका राज्य हर लिया और उनको वनमें भेजने

सप्त च चीर्णमग्र्यैः ॥ ११ ॥ त्रयोदशश्चैव सुदुस्तरोऽयमज्ञायमानैर्भवतां समीपे । क्लेशानसह्यान् विविधान् सहद्भिर्महात्मभिश्चापि वने निविष्टम्॥१२॥ एतैः परप्रेष्यनियोगयुक्तैरिच्छद्भिराप्तं स्वकुलेन राज्यम्। एवं गते धर्मसुतस्य राज्ञो दुर्योधनस्यापि च यद्धितं स्यात् ॥ १३ ॥ तच्चिन्तयध्वं कुरुपुंगवानां धर्म्यं च युक्तञ्च यशस्करं च । अधर्मयुक्तं न च कामयेत राज्यं सुराणामपि धर्मराजः ॥ १४ ॥ धर्मार्थयुक्तन्तु महीपतित्वं ग्रामेऽपि कस्मिंश्चिदयं बुभूषेत् । पित्र्यं हि राज्यं विदितं नृपाणां यथाऽपकृष्टं धृतराष्ट्रपुत्रैः ॥ १५ ॥ मिथ्योपचारेण यथा ह्यनेन कृच्छ्रं महत् प्राप्तमसह्यरूपम् । न चापि पार्थो विजितो रणे तैः स्वतेजसा धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः ॥१६॥ तथाऽपि राजा सहितः सुहृद्भिरभीप्सते-

---

के लिये नियम ठहरा लिया यह सब तुम जानते ही हो॥१०॥ पाण्डव उस समय ही राज्यको अपने अधीन रख सकते थे तो भी वे सत्यवादी थे और उनके रथ पृथ्वी जल तेज और वायुमें विना रुके चलते थे पाण्डव ऐसी श्रेष्ठ शक्ति वाले थे तो भी इन्होंने तेरह वर्ष तक अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार महादुःखदायक वनवासको पूर्ण कर लिया है ॥ ११ ॥महात्मा पाण्डवोंने अनेकों असह्य कष्ट भोग कर वनमें वास किया तथा कोई जानने नहीं पावे इस प्रकार गुप्तवासके तेरहवें वर्षको भी बड़ी कठिनाईसे विता दिया और अब ही तुम्हारे सामने प्रकट हुए हैं, यह भी तुम जानते ही हो ॥१२॥ पांडवोंने आज तक सेवक बन कर दूसरेकी आज्ञा बजाई है, परन्तु अब अपनी कुलपरम्परासे प्राप्त हुए राज्यको पाना चाहते हैं, अतः अब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन इन दोनोंका तथा कौरवकुलके वृद्धोंका जिस प्रकार हित हो तथा जिस प्रकार उनको धर्म और यश देने वाला वर्ताव हो ऐसा कोई उपाय खोजो अधर्मसे यदि देवताओंका राज्य मिलता होगा तो उसको भी धर्मराज लेना नहीं चाहेंगे ॥ १३-१४ ॥ किन्तु धर्ममें तथा अर्थमें वाधा न पड़े इस दशामें यदि एक गांवका राज्य भी धर्मराजको भोगनेको मिले तो वे उसे ही भोगना चाहते हैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंसे उनके पिताका राज्य छीन लिया है यह बात सब राजाओंको विदित ही है॥१५॥ धृतराष्ट्रके पुत्रोंने कुछ अपने पराक्रमसे राजा युधिष्ठिरको नहीं जीता है किन्तु कपट रचनाओंसे उनको असह्य महादुःख दिया है और उस असह्य दुःखको युधिष्ठिरने भोगा भी है ॥ १६ ॥ इस प्रकार असह्य दुःख धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी ओर

ऽनामयमेव तेषाम् । यत्तु स्वयं पाण्डुसुतैर्विजित्य समाहृतं भूमिपतीन् प्रपीड्य ॥१७॥ तत् प्रार्थयन्ते पुरुषप्रवीराः कुन्तीसुता माद्रवतीसुतौ च । बालास्त्विमे तैर्विविधैरुपायैः संप्रार्थिता हन्तुममित्रसंघैः ॥ १८ ॥ राज्यं जिहीर्षद्भिरसद्भिरुग्रैः सर्वञ्च तद्वो विदितं यथावत् । तेषाञ्च लोभं प्रसमीक्ष्य वृद्धं धर्मज्ञतां चापि युधिष्ठिरस्य॥ १९ ॥ सम्बन्धितां चापि समीक्ष्य तेषां मतिं कुरुध्वं सहिताः पृथक् च । इमे च सत्येऽभिरताः सदैव तं पालयित्वा समयं यथावत् ॥ २० ॥ अतोऽन्यथा तैरुपचर्यमाणा हन्युः समेतान् धृतराष्ट्रपुत्रान् । तैर्विप्रकारञ्च निशम्य कार्यं सुहृज्जनास्तान् परिवारयेयुः ॥२१॥ युद्धेन बाधेयुरिमांस्तथैवं तैर्बाध्यमाना युधि तांश्च हन्युः । तथापि नेमेऽल्पतया समर्थास्तेषां जयायेति भवेन्मतं वः ।२२। समेत्य सर्वे सहिताः सुहृद्भिस्तेषां विना-

से भोगने पर भी राजा युधिष्ठिर अपने संबंधियोंके साथ रहते हुए कौरवोंका कल्याण ही चाहा करते हैं पाण्डवोंने अपने पराक्रमसे राजाओंको दबा उनके ऊपर विजय पाकर जो राज्य पाया था उस राज्यको अब शूरवीर माद्रीके पुत्र और कुन्तीके पुत्र मांगते हैं औ।।। जब ये पांडव बालक थे तब दुरात्मा उग्रस्वभाव और शत्रुरूप इन ही कौरवोंने इनका नाश करनेके लिये और इनका राज्य छीननेके लिये कैसे २ प्रयत्न किये थे, यह सब आप यथार्थरीतिसे जानते ही हैं अब कौरवोंके बढे हुए लोभको और युधिष्ठिरकी धर्मज्ञताको तथा उनका जो सम्बन्ध है उसको भी देखकर तुम सब इकट्ठे होकर तथा अलग अलग भी विचार करो यह पाण्डव सदा सत्य पर दृढ़ रहते हैं और इन्होंने अन्त तक अपनी प्रतिज्ञा यथार्थ रीतिसे पाली है तथा की हुई प्रतिज्ञासे जरा भी नहीं हटे हैं ॥ १७—२० ॥ अब यदि कौरव पांडवोंको राज्यका आधा भाग नहीं देंगे किंतु उनको दुःख ही दिया करेंगे तो पांडव भी सब कौरवोंका नाश करेंगे तथा पांडवोंके संबंधी भी कौरव राज्यके लिये पांडवोंको दुःख देते हैं यह जान कर इन पांडवोंके साथ रहते हुए इनकी सहायता करेंगे ॥ २१ ॥ और कदाचित् कौरव युद्ध करके पांडवोंको दुःख देंगे तो फिर पांडव भी युद्ध करके कौरवोंको युद्धमें नष्ट करेंगे कदाचित् आप यह विचारते होंगे कि—पांडव थोड़ेसे हैं;इस कारण युद्ध करने पर भी कौरवोंको नहीं जीत सकेंगे ॥ २२॥ परन्तु आप ऐसी आशंका न करें, पांडव अपने सम्बंधी और मित्रोंके साथ मिलकर कौरवोंका नाश करनेके लिये

शाय यतेगुरेव । दुर्योधनस्यापि मतं यथावन्न ज्ञायते किन्तु करिष्यतीति ॥२३॥ अज्ञायमाने च मते परस्य किं स्यात् समारम्यतमं मतं वः । तस्मादितो गच्छतु धर्मशीलः शुचिः कुलीनः पुरुषोऽप्रमत्तः२४ दूतः समर्थः प्रशमाय तेषां राज्यार्द्धदानाय युधिष्ठिरस्य । निशम्य वाक्यं तु जनार्द्दनस्य धर्मार्थयुक्तं मधुरं समञ्ज ॥ २५ ॥ समाददे वाक्यमथाग्रजोऽस्य सम्पूज्य वाक्यं तदतीव राजन् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
श्रीकृष्णवाक्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

बलदेव उवाच । श्रुतं भवद्भिर्गदपूर्वजस्य वाक्यं यथा धर्मवदर्थवच्च । अजातशत्रोश्च हितं हितञ्च दुर्योधनस्यापि तथैव राज्ञः । १ । अर्द्धं हि राज्यस्य विसृज्य वीराः कुन्तीसुतास्तस्य कृते यतन्ते । प्रदाय चार्द्धं धृतराष्ट्रपुत्रः सुखी सहास्माभिरतीव मोदेत् ॥ २ ॥ लब्ध्वा हि राज्यं पुरुषप्रवीराः सम्यक् प्रवृत्तेषु परेषु चैव ।

अवश्य ही प्रयत्न करेंगे, परन्तु अब तक दुर्योधनका क्या विचार है यह बात आपको ठीकरे ज्ञानही नहीं है, अतः अब वह क्या विचार रखता है यह जानना चाहिये ॥ २३ ॥ प्रतिपक्षी मनुष्यके विचारको विना जाने आपका विचार आरंभ कैसे होसकता है ? अतः धर्मात्मा पवित्र मनवाले, कुलीन, सावधान रहने वाले किसी शक्तिमान् पुरुष को कौरवोंके साथ बात चीत करनेके लिये तथा राजा युधिष्ठिरको आधा राज्य दिलानेके लिये यहांसे दुत बनाकर कौरवोंकी राजसभा में भेजो, हे राजन् जनमेजय ! इस धर्म तथा अर्थको देनेवाले मधुर और पक्षपातशून्य श्रीकृष्णके वचनकी अत्यन्त प्रशंसा करके उनके बड़े भाई बलदेवजी अपने विचार प्रकट करने लगे ॥ २४—२६ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

बलदेवजी बोले कि–हे राजाओं ! गदके बड़े भाई श्रीकृष्णने धर्म तथा अर्थ भरे जो वचन कहे वे तुमने सुने, वे धर्मराजके हितकारी हैं तथा दुर्योधनका भी हित करनेवाले हैं ॥ १ ॥ वीर कुन्तीपुत्र राज्यके आधे भागको त्यागकर आधा भाग पानेके लिये यत्न करते हैं, इससे यदि धृतराष्ट्रका पुत्र आधा राज्य पांडवोंको देदेगा तो सुखी होगा और हमारे साथ बड़े आनन्दमें अपने दिन बितावेगा२पुरुषोंमें वीर पांडव राज्य पाकर यदि उनके शत्रु सज्जनतासे वर्तेंगे तो ये भी शान्तिका वर्त्ताव करेंगे और सुख भोगेंगे तथा इससे कौरवोंको शान्ति मिलेगी

भ्रुवं प्रशान्ताः सुखमाविशेयुस्तेषां प्रशान्तिश्च हितं प्रजानाम् ॥ ३ ॥ दुर्योधनस्यापि मतञ्च वेत्तुं वक्तुं च वाक्यानि युधिष्ठिरस्य । प्रियं च मे स्याद्यदि तत्र कश्चिद् व्रजेच्छमार्थं कुरुपाण्डवानाम् ॥ ४ ॥ स भीष्ममामन्त्र्य कुरुप्रवीरं वैचित्रवीर्यञ्च महानुभावम् । द्रोणं सपुत्रं विदुरं कृपञ्च गान्धारराजञ्च ससूतपुत्रम् ॥ ५ ॥ सर्वे च येऽन्ये धृतराष्ट्रपुत्रा बलप्रधाना निगमप्रधानाः । स्थिताश्च धर्मेषु तथा स्वकेषु लोकप्रवीराः श्रुतकालवृद्धाः ॥ ६ ॥ एतेषु सर्वेषु समागतेषु पौरेषु वृद्धेषु च सङ्गतेषु । ब्रवीतु वाक्यं प्रणिपातयुक्तं कुन्तीसुतस्यार्थकरं यथा स्यात् ॥ ७ ॥ सर्वास्ववस्थासु च ते न कोप्या ग्रस्तो हि सोऽर्थो बलमाश्रितैस्तैः । प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य द्यूते प्रसक्तस्य हृतं च राज्यम् ॥८॥ निवार्यमाणश्च कुरुप्रवीरः सर्वैः सुहृद्भिर्ह्ययमप्यतज्ज्ञः।स दीव्यमानः प्रतिदीव्य चैनं गांधारराजस्य सुतं मताक्षम्९ हित्वा हि कर्णं च सुयोधनञ्च समाह्वयद्देवितुमाजमीढः । दुरोदरास्तत्र

और उनकी प्रजाका भी हित होगा३अतः दुर्योधनके विचारको जानने के लिये और उससे युधिष्ठिरका संदेशा कहनेके लिये किसी एकदूत को भेजो यदि कोई भी दूत पाण्डव कौरवोंके विषयमें निबटेरा करानेको जावेगा तो मैं प्रसन्न होऊँगा ॥४॥ जो दूत तहाँ जाय वह कुरुवंशमें महाशूरभीष्म, महाप्रतापी धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, कृपाचार्य, गांधारराज शकुनि, कर्ण, धृतराष्ट्रके अन्य पुत्र तथा चतुरंगिणी सेना वाले नीतशास्त्रमें निपुण, स्वधर्मप्रवीण, लोकव्यवहारकुशल शास्त्रवृद्ध वयोवृद्ध नगरनिवासी तथा देशनिवासी वृद्ध पुरुष जब सभामें बैठे हों तब उनके आगे प्रणाम करके कार्य जिस प्रकार सिद्ध हो तैसे धर्मराजके वचन कौरवोंको सुनावे ॥ ५-७ ॥ परन्तु जैसे भी हो तैसे किसी दशामें और किसी समय भी कौरवों को क्रुद्ध करना उचित नहीं है क्योंकि-राजा युधिष्ठिर जुएमें प्रेम रखते थे उस जुएमें आसक्त होनेके कारण कौरवोंने उनका राज्य हर लिया था और पांडवोंने सत्य पालनेकी शक्तिका आश्रय लेकर अपनी अपनी वनवास की प्रतिज्ञा भली प्रकार पूरी की है ॥ ८ ॥ कुरुवंशमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर जुआ खेलना नहीं जानते थे और जुआ खेलते समय उनके संबन्धियोंने उनको रोका था तो भी उन्होंने जुआ खेलने में कुशल अपने प्रतिपक्षी गांधारराजके पुत्र शकुनिसे जुआ खेला था युधिष्ठिरने दुर्योधनको कर्णको तथा तहाँ बैठेहुए दूसरे सैंकडों ज्वा-

सहस्रशोऽन्ये युधिष्ठिरो यान् विषहेत जेतुम् ॥ १० ॥ उत्सृज्य तान् सौबलमेव चायं समाह्वयत्तेन जितोऽक्षवत्याम् । स दीव्यमानः प्रतिदेवनेन अक्षेषु नित्यं तु पराङ्मुखेषु ॥ ११ ॥ संरम्भमाणो विजितः प्रसह्य तत्रापराधः शकुनेर्न कश्चित् । तस्मात् प्रणम्यैव वचो ब्रवीतु वैचित्रवीर्य्यं बहुसामयुक्तम् ॥ १२ ॥ तथा हि शक्यो धृतराष्ट्रपुत्रः स्वार्थे नियोक्तुं पुरुषेण तेन। अयुद्धमाकाङ्क्षत कौरवाणां साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम् ॥ १३ ॥ साम्ना जितोऽर्थोऽर्थकरो भवेत युद्धे न यो भविता नेह सोऽर्थः ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे शिनिप्रवीरः सहसोत्पपात । तच्चापि वाक्यं परिनिंद्य तस्य समाददे वाक्यमिदं समन्युः ॥ १५ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
बलदेववाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

रियोंको कि-जिनको युधिष्ठिर हरा सकते थे उनको खेलनेके लिये न बुलाकर सुबलके पुत्र शकुनिको ही जुआ खेलनेके लिये बुलाया था और प्रतिपक्षीके सामने जुआ खेलतेहुए युधिष्ठिर हारगये उनके फाँसे जब तले ऊपर उलटे ही पड़ने लगे तब राजा युधिष्ठिर क्रोधमें भर गए तब शकुनिने उनको हरा दिया, इसमें शकुनिका किसी प्रकारका भी दोष नहीं है, अतः यहाँसे एक दूतको विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्र के पास भेजो वह उनको प्रणाम करके जिसमें परस्पर मेल हो जाय ऐसी शान्तिकी बातें कहे ॥ ९-१२ ॥ शांतिके वचन कह कर दूत धृतराष्ट्रके पुत्रसे अपना प्रयोजन सिद्ध करसकेगा, अतः जिसमें तुम सब कौरवोंमें परस्पर युद्ध न हो ऐसी इच्छा करो और दुर्योधनके साथ सन्धि होजाय उसको ऐसा ही निमन्त्रण भेजो ॥ १३ ॥ जो कार्य मिलजुलकर किया जाता है वह अर्थदेने वाला हितकारी होता है और विना विचारे युद्ध करनेसे अन्याय खड़ा होजायगा परन्तु विचारपूर्वक काम करनेसे अन्याय न होगा ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! इसप्रकार मधुवंशमें महावीर बलदेवजीके अपना अभिप्राय जताने पर शिनिका पुत्र महावीर सात्यकी एकसाथ तड़क कर खड़ा होगया और क्रोधमें भरकर बलदेवजीके वचनोंकी बड़ी भारी निंदा करता हुआ अपना अभिप्राय प्रकट करने लगा १५

द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सात्यकिरुवाच । यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं सम्प्रभाषते । यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे॥१॥ सन्ति वै पुरुषाः शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा । उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान् प्रति ॥ २॥ एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ। फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन् वनस्पतौ ॥ ३ ॥ नाभ्यसूयामि ते वाक्यं ब्रुवतो लांगलध्वज । ये तु शृण्वन्ति ते वाक्यं तानसूयामि माधव ।४। कथं हि धर्मराजस्य दोषमल्पमपि ब्रुवन् । लभते परिषन्मध्ये व्याहर्त्तुमकुतोभयः ॥ ५ ॥ समाहूय महात्मानं जितवन्तोऽक्षकोविदः । अनक्षज्ञं यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः । यदि कुंतीसुतं गेहे क्रीडंतं भ्रातृभिः सह ॥ ६ ॥ अभिगम्य जयेयुस्ते तत्तेषां धर्मतो भवेत्। समाहूय तु राजानं क्षत्रधर्मरतं सदा७ निकृत्या जितवन्तस्ते किन्नु तेषां परं शुभम् । कथं प्रणिपतेच्चायमिह

सात्यकि बोला कि-हे बलदेवजी ! जिस मनुष्यका जैसा चित्त होता है वह तैसे ही वचन बोलता है तुम भी जैसा तुम्हारा अन्तःकरण है तैसी बातें करते हो ॥ १ ॥ जैसे शूरवीर पुरुष होते हैं तैसे ही कायर भी होते हैं । पुरुष बननेमें यह दोनों पक्ष दृढ़ देखे जाते हैं उनमें जो मनुष्य जैसा होता है वह पुरुष तैसे ही मनुष्योंका पक्ष लेता है ॥ २ ॥ एक ही कुलमें एक महाबलशाली पुरुष उत्पन्न होता है तो दूसरा पुरुष नपुंसक उत्पन्न होता है जैसे एक ही वृक्षमें एक शाखा फलवाली होती है तो दूसरी एक शाखा फलरहित होती है ॥ ३ ॥ हे ध्वजामें हलका चिन्ह वाले बलदेवजी ! मैं तुम्हारे वाक्योंकी निंदा नहीं करता; परन्तु हे माधव ! जो तुम्हारे कहनेको नहीं सुनते हैं उन से डाह करता हूं अर्थात् मेरी समझमें वे निर्गुण हैं ॥ ४ ॥ सभासदों को सम्मतिके विना कोई भी मनुष्य सभामें निर्भय होकर धर्मराज का जरासा भी दोष कैसे बता सकता है ? अर्थात् प्रतीत होता है तुम्हारे क०नेमें सभासदोंकी भी सम्मति है ? ॥ ५ ॥ धर्मराज जुआ खेलना नहीं जानते थे और उनकी जुआ खेलनेमें श्रद्धा भी नहीं थी तो भी इन महात्माको जुआ खेलनेके लिये निमंत्रण देकर जुआ खेलने में चतुर पुरुषोंने इन्हें हराया, इसको धर्मविजय कैसे कहा जासकता है ? यदि कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर भाइयोंके साथ अपने घरमें जुआ खेलते होते उस समय इनके पास जाकर उन्होंने इनका पराजय किया होता तो उनकी जीत धर्मानुकूल कहलाती परन्तु यहां तो सदा क्षत्रियधर्ममें परायण रहने वाले राजा युधिष्ठिरको जुआ खेलनेके लिये

कृत्वा पणं परम् ॥८॥ वनवासाद्विमुक्तस्तु प्राप्तः पैतामहं पदम्। यद्ययं प्रार्थयितानि कामयेत युधिष्ठिरः ॥९॥ एवमप्ययसत्यन्तं राज्ञोर्मार्हति याचितुम्। कथञ्च धर्मयुक्तास्ते न च राज्यं जिहीर्षवः ॥ १० ॥ निवृत्तवासान् कौन्तेयान्य आहुर्विदिता इति। अनुनीता हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ॥ ११ ॥ न व्यवस्यंति पाण्डूनां प्रदातुं पैतृकं वसु। अहं तु तां शितैर्बाणैरनुनीय रणे बलात् ॥ १२ ॥ पादयोः पातयिष्यामि कौंतेयस्य महात्मनः। अथ तेन व्यवस्यंति प्रणिपाताय धीमतः ॥१३॥ गमिष्यन्ति सहामात्या यमस्य सदनं प्रति न हि ते युयुधानस्य संरब्धस्य युयुत्सतः ॥ १४ ॥ वेगं समर्था संसोढुं वज्रस्येव महीधराः। को हि गाण्डीवधन्वानं कश्च चक्रायुधं युधि ॥ १५ ॥ मांश्चापि विष-

---

बुलायागया और उनको कपट भरे जुएसे हराया गया अतः इस कामसे क्या कौरवोंका कल्याण होना है ? राजा युधिष्ठिर स्वीकार की हुई वनवास रूपी प्रतिज्ञाको पूरी करके वनवाससे निपट गए हैं और अब वे अपने पितामहके राज्यासनको पानेके अधिकारी हैं, वह राजा युधिष्ठिर अब किस लिये दुर्योधनसे नमै ? मैं कहता हूँ कि— राजा युधिष्ठिर अन्यायसे धन पानेकी इच्छा करें तो वह भी उचित ही होगा, परन्तु अपने कट्टर वैरियोंसे भीख मांगने जाँय यह कैसे उचित माना जासकता है? यदि अज्ञातवासको पूरा करनेवाले पांडवों के विषयमें कौरव कहते हैं कि-ये तो अज्ञातवासकी प्रतिज्ञाको पूरी करनेसे पहिले ही प्रकट होगए हैं तो उन कौरवोंको धर्मनिष्ठ कैसे कहें ? क्यों कि—वे राज्यको पचाजानेकी इच्छा करते हैं। भीष्म द्रोणाचार्य तथा विदुरने उनको बहुतेरा समझाया तो भी वे पांडवों को उनके पिताकी राज्य संपत्ति देनेका प्रयत्न नहीं करते हैं, परन्तु कुछ परवाह नहीं मैं युद्धमें तेज किये हुए बाण मार कर बलात्कारसे कौरवोंको सीधा करदूँगा ॥८-१२॥ और महात्मा कुन्तीपुत्र धर्मराज के चरणोंमें उनको नमाऊँगा, वे यदि बुद्धिमान् धर्मराजको प्रणाम करनेका उद्योग न करेंगे तो अपने मंत्रियोंके साथ यमलोकमें ही जायँगे, जैसे पर्वत वज्रके वेगको नहीं सहसकता तैसे ही जब युयुधान क्रोधमें भरकर युद्ध करनेमें लगेगा तो कौरव उसके वेगको नहीं सह सकेंगे, युद्धके समय गांडीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनको, चक्र-रूपी आयुधको धारण करनेवाले श्रीकृष्णको क्रोधमें भरे हुए महा-प्रचण्ड भीमको दृढ़ धनुषों वाले तथा यम और कालकी समान

हेतुं क्रुद्धं कश्च भीमं दुरासदम्। यमौ च दृढधन्वानौ यमकालोपमद्युती। विराटद्रुपदौ वीरौ यमकालोपमद्युती॥ १६॥ को जिजीविषुरासादेद् धृष्टद्युम्नञ्च पार्षतम्। पञ्चैतान् पाण्डवेयांस्तु द्रौपद्याः कीर्त्तिवर्धनान्॥१७॥ समप्रमाणान् पाण्डूनां समवीर्य्यान् मदोत्कटान्। सौभद्रञ्च महेष्वासममरैरपि दुःसहम्॥ १८॥ गदप्रद्युम्नसाम्बांश्च कालसूर्यानलोपमान्। ते वयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रं शकुनिना सह॥ १९॥ कर्णं चैव निहत्याजावभिषेक्ष्याम पाण्डवम्। नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाततायिनः॥ २०॥ अधर्म्यमयशस्यञ्च शात्रवाणां प्रयाचनम्। हृद्गतस्तस्य यः कामस्तं कुरुध्वमतन्द्रिताः॥ २१॥ निसृष्टं धृतराष्ट्रेण राज्यं प्राप्नोतु पाण्डवः। अद्य पाण्डुसुतो राज्यं लभतां वा युधिष्ठिरः॥ २२॥ निहता वा रणे सर्वे स्वप्स्यन्ति वसुधातले।२३।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
सात्यकिक्रोधवाक्ये तृतीयोऽध्यायः॥३॥

प्रज्वलयमान नकुल और सहदेवको तथा यम और कालकी समान कान्तिवाले वीर विराट् और राजा द्रुपदके वेगको सहसके ऐसा कौन है।॥ १३-१६॥ तथा जीनेकी इच्छा रखनेवाला कौन पुरुष पृषत् के पुत्र धृष्टद्युम्नके वेगको भी सहन करनेकी शक्ति रखता है? तथा जीनेकी इच्छाको रखनेवाला कौन पुरुष पृषत्के पुत्र धृष्टद्युम्नके वेगको भी सहन करनेकी शक्ति रखता है तथा द्रौपदीकी कीर्त्तिको बढ़ाने वाले पाण्डवोंके पांच पुत्र,जो पाण्डवोंकी समान ही ऊँचे शरीरवाले पाण्डवोंकी समान ही शारीरिक बलवाले और मदोन्मत्त हैं उन तथा देवता भी जिसको न सहसकें ऐसे महाधनुर्धर सुभद्राके पुत्र अभिमन्युके और काल,सूर्य तथा अग्निकी समान प्रचण्डपराक्रमी गद प्रद्युम्न, साम्बके भी धावेको सहे ऐसा कौन है? हम, सब, धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनको शकुनि और कर्णको रणमें मारकर राजायुधिष्ठिरका राज्यके ऊपर अभिषेक करेंगे, आततायी शत्रुओंके मारनेमें किसी प्रकारका दोष नहीं है॥१७-२१॥शत्रुओंके आगे जाकर भीख माँगना यह अधर्म और अपयश देनेवाला है अतः तुम सब सावधान होकर युधिष्ठिरके मनके मनोरथोंको पूरा करो।२१। और धर्मराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्रके दियेहुए राज्यको ग्रहण करें, पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर क्या तो अब ही राज्य पावेंगे अथवा सब कौरव मरण पाकर पृथ्वी पर शयन करेंगे॥ २२-२३॥ तृतीय अध्याय समाप्त॥ ३॥ ७

द्रुपद उवाच । एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशयः । न हि दुर्योधनो राज्यं मधुरेण प्रदास्यति ॥१॥ अनुवर्त्स्यति तच्चापि धृतराष्ट्रः सुतप्रियः । भीष्मद्रोणौ च कार्पण्यान्मौर्ख्याद्राधेयसौबलौ ॥२॥ बलदेवस्य वाक्यन्तु मम ज्ञाने न युज्यते । एतद्धि पुरुषेणाग्रे कार्य्यं सुनयमिच्छता ॥ ३ ॥ न तु वाच्यो मृदु वचो धार्त्तराष्ट्रः कथञ्चन । न हि मार्दवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मतो मम ॥४॥ गर्दभे मार्दवं कुर्य्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्। मृदु दुर्य्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि५ मृदुं वै मन्यते पापो भाषमाणमशक्तिकम्। जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति ॥ ६ ॥ एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह। प्रस्थापयाम मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयन्तु नः ॥ ७ ॥ शल्यस्य धृष्टकेतोश्च जयत्सेनस्य वा विभो । केकयानाञ्च सर्वेषां दूता गच्छन्तु शीघ्रगाः ८ स च दुर्य्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः । पूर्वाभिपन्नः सन्तश्च

तदनन्तर राजा द्रुपद बोले कि—हे महाभुज सत्यके ज्ञाता ! इस विषयमें ऐसा ही होगा, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है, क्योंकि राजा दुर्योधन भलाईके साथ पाण्डवोंको राज देना ही नहीं ॥ १ ॥ और राजा धृतराष्ट्र, पुत्रप्रेमके कारण दुर्योधनकी हाँमें हाँ मिलावेंगे, भीष्म और द्रोणाचार्य दीनभावसे उसके कहनेमें चलेंगे, कर्ण और शकुनि मूर्खतावश उसके अनुकूल चलेंगे ॥ २ ॥ अतः बलदेवजीके वचन ज्ञानी मनुष्योंकी मण्डलीमें मान्य नहीं होसकते, तो भी संधिकी इच्छावाले पुरुषको पहिले बलदेवजीके कथनके अनुसार ही काम करना चाहिये ॥३॥ तथापि दुर्योधनके सामने किसी प्रकार भी कोमल(दवे हुए) वचन कहने ठीक नहीं हैं क्योंकि-वह दुष्टचित्त है इसकारण कोमलतासे माननेवाला नहीं है, यह मेरा विचार है॥ ४ ॥ जो मनुष्य पापी मनवाले दुर्योधनके आगे कोमल बातें करै मानो वह गधेके आगे कोमलता और गौके आगे कठोरता दिखानेकी समान काम करता है ॥५॥ पापी मनवाले मनुष्य कोमलतासे बोलने वाले मनुष्य को असमर्थ समझते हैं, और कोमलता देखनेमें आई कि-मूर्ख मनुष्य अपने कार्यको सिद्ध समझलेते हैं ॥ ६ ॥ तो भी हम कोमलतासे काम करेंगे और दूसरी ओर दूसरा उद्योग भी आरम्भ कर दो, अपनी सहायताके लिये मित्रोंके बुलानेको दूत भेजने चाहियें और ऐसा करो कि-वे अपनी सेनाओंको सहायता दें ॥ ७ ॥ हे राजन् ! शीघ्र चलने वाले दूतोंको शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन तथा सकल केकयोंके पास

भजन्ते पूर्वचोदनम् ॥ ९ ॥ तत्त्वरध्वं नरेन्द्राणां पूर्वमेव प्रचोदने । महद्धि कार्यं वोढव्यमिति मे वर्त्तते मतिः ॥ १० ॥ शल्यस्य प्रेष्यतां शीघ्रं ये च तस्यानुगा नृपाः । भगदत्ताय राज्ञे च पूर्वसागरवासिने ॥ ११ ॥ अमितौजसे तथोग्राय हार्दिक्यायांधकाय च । दीर्घप्रज्ञाय शूराय, रोचमानाय वा विभो ॥ १२ ॥ आनीयतां बृहन्तश्च सेनाविन्दुश्च पार्थिवः । सेनजित् प्रतिविन्ध्यश्च चित्रवर्मा सुवास्तुकः॥१३॥वाल्हीको मुञ्जकेशश्च चैद्याधिपतिरेव च । सुपार्श्वश्च सुबाहुश्च पौरवश्च महारथः ॥ १४ ॥ शकानां पह्लवानां च दरदानां च ये नृपाः । सुरारिश्च नदीजश्च कर्णवेष्टश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥ नीलश्च वीरधर्मा च भूमिपालश्च वीर्य्यवान् । दुर्जयो दन्तवक्त्रश्च रुक्मी च जनमेजयः ॥१६ आषाढो वायुवेगश्च पूर्वपाली,च पार्थिवः । भूरितेजा देवकश्च एकलव्यः सहात्मजैः ॥१७॥ कारूषकाश्च राजानः क्षेमधूर्त्तिश्च वीर्य्यवान् । कांबोजा ऋषिका ये च पश्चिमानूपकाश्च ये ॥ १८ ॥ जयत्सेनश्च काश्यश्च तथा पञ्चनदा नृपाः । क्राथपुत्रश्च

भेजो ॥८॥ दुर्योधन भी सब राजाओंकी सहायता पानेके लिये सबोंके पास दूतोंको भेजेगा और वे राजे भी पहिले जिसको सहायता देनेके लिये वचनबद्ध होजायँगे और उसके पक्षमें ही रहेंगे, वे प्रथम दूत भेजने वाले राजाकी सहायता करेंगे ॥ ९ ॥ अतः तुम राजाओंके पास प्रथम ही दूत भेजनेकी शीघ्रता करो,क्योंकि-मेरी समझमें हमें बड़े भारी कामका भार उठाना है ॥ १० ॥ हे व्यापक राजन् ! शल्य और जो राजा उसके अनुकूल चलनेवाले हैं उन राजाओंके पास झट दूत भेजो तथा पूर्व समुद्र पर रहने वाले राजा भगदत्त अमितौजा, उग्र, हार्दिक्य, अन्धक, दीर्घप्रज्ञ वीर रोचमान आदि राजाओंके पास भी शीघ्रतासे दूत भेजो ॥ ११-१२ ॥ तिसके पीछे राजा बृहन्त, सेनाबिन्दु, सेनजित्, प्रतिविन्ध्य, चित्रवर्मा, सुवास्तुक, वाल्हीक, मुञ्जकेश, चैद्याधिपति, सुपार्श्व, सुबाहु, महारथी पौरव तथा शक पल्हव पल्हव और दरदके राजे, सुरारी नदीके तट परके राजे, कर्णवेष्ट पराक्रमी राजा नील, वीरधर्मा, दुर्जय दन्तवक्र, रुक्मी, जनमेजय, आषाढ़, वायुवेग राजा पूर्वपाली, महातेजस्वी देवक, एकलव्य और उसके पुत्र कारूषक नामके राजा, पराक्रमी क्षेमधूर्त्ति, काम्बोजदेशके राजे, ऋषिक नाम वाले राजे, पश्चिम देशमें जलप्रदेशके राजे, जयत्सेन, काशिराज, पञ्चनदके राजे, महाप्रचण्ड

कुद्धर्षः पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ १९ ॥ जानकिश्च सुशर्मा च मणिमान्योतिमत्सकः । पांशुराष्ट्राधिपश्चैव धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ॥ २० ॥ तुण्डश्च दण्डधारश्च बृहत्सेनश्च वीर्य्यवान् । अपराजितो निषादश्च श्रेणिमान् वसुमानपि ॥ २१ ॥ बृहद्बलो महौजाश्च बाहुः परपुरञ्जयः समुद्रसेनो राजा च सह पुत्रेण वीर्यवान् ॥ २२ ॥ उद्भवः क्षेमकश्चैव वाटधानश्च पार्थिवः । श्रुतायुश्च दृढायुश्च शाल्वपुत्रश्च वीर्यवान् ।२३। कुमारश्च कलिङ्गानामीश्वरो युद्धदुर्मदः । एतेषां प्रेष्यतां शीघ्रमेतद्धि मम रोचते२४अयञ्च ब्राह्मणो विद्वान् ममराजन् पुरोहितः । प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मै प्रदीयताम्॥२५॥ यथा दुर्य्योधनो वाच्यो यथा शान्तनवो नृपः । धृतराष्ट्रो यथा वाच्यो द्रोणश्च रथिनां वरः ।२६।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
द्रुपदवाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वासुदेव उवाच । उपपन्नमिदं वाक्यं सोमकानां धुरन्धरे । अर्थसिद्धिकरं राज्ञः पांडवस्यामितौजसः ॥१॥ एतच्च पूर्वकार्यं नः सुनीतमभिकांक्षताम् । अन्यथा ह्याचरन् कर्म पुरुषः स्यात् सुबालिशः २ किंतु सम्बंधकं तुल्यमस्माकं कुरुपाडुषु । यथेष्टं वर्त्तमानेषु पांडवेषु च

क्राथके पुत्र, पर्वतवासी राजे, जानकि, सुशर्मा, मणिमान् अतिमत्सक पांशु देशके राजे पराक्रमी धृष्टकेतु तुण्ड, दण्डधार, पराक्रमीबृहत्सेन अपराजित, निषाद, श्रेणिमान् वसुमान् बृहद्बल,महौजा, शत्रुके नगरों को जीतनेवाला बाहुराज, पराक्रमी राजा समुद्रसेन,उसकेपुत्र उद्धव, क्षेमक, राजा वाटधान, पराक्रमी श्रुतायु, दृढायु, शाल्वपुत्र, युद्धदुर्मद कलिंग देशका राजकुमार इन राजाओंके पास शीघ्र दूत भेजे जायँ यह बात मेरी समझमें अच्छी है ॥ १२-२४ ॥ और हे राजन्! यह विद्वान् ब्राह्मण मेरे पुरोहितजी हैं,अतः जो संदेशा कहना हो वह इनसे शीघ्र ही कहकर धृतराष्ट्रके पास भेजदो ॥ २५ ॥ और दुर्योधन भीष्म, धृतराष्ट्र तथा महारथी द्रोणाचार्यसे जो २ बातें कहनी हों वह सब बातें इन्हें समझादो ॥ २६ ॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णने कहा कि-सोमक वंशमें श्रेष्ठ राजा द्रुपदने जो बात कही है वह योग्य ही है इनका अभिप्राय अपार बलशाली राजा युधिष्ठिरके कार्यको सिद्ध करने वाला है ॥१॥ श्रेष्ठ नीतिके अनुसार काम करनेवाले पुरुषको पहिले यही करना चाहियेपरन्तु इससे विरुद्ध अर्थात् अनीतिसे जो पुरुष काम करता है वह महामूर्ख गिनाजाता

तेषु च ॥३॥ ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान् । कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान् प्रति ॥ ४ ॥ भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च । शिष्यवत्ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः ॥ ५ ॥ भवंतं धृतराष्ट्रश्च सततं बहु मन्यते । आचार्ययोः सखा चासि द्रोणस्य च कृपस्य च ॥ ६ ॥ स भवान् प्रेषयत्वद्य पांडवार्थकरं वचः । सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद्भवान् ॥ ७ ॥ यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुंगवः । न भवेत् कुरुपांडूनां सौभ्रात्रेण महान् क्षयः ॥८॥ अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद् धृतराष्ट्रजः । अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान् समाह्वयेः ॥९॥ ततो दुर्योधनो मंदः सहामात्यः सबांधवः । निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गांडीवधन्वनि॥१०॥ वैशम्पायन उवाच । ततः सत्कृत्य वार्ष्णेयं विराटः पृथिवीपतिः । गृहात् प्रस्थापयामास सगणं सहबांधवम् ॥ ११ ॥ द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरो-

---

है ॥ २ ॥ और हमारा कौरवों तथा पांडवोंके साथ समान सम्बन्ध है अर्थात् वे अपनी इच्छानुसार चाहे सो करें इसमें हमें बोलनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥ ३ ॥ जैसे तुमको विवाहमें बुलाया है तैसे ही हम सबोंको भी विवाहके उत्सवमें हो बुलाया है विवाह निबटने पर हम सब प्रसन्नता पूर्वक अपने २ घरोंको चलेजायँगे ॥ ४ ॥ परन्तु हे द्रुपद ! तुम सब राजाओंमें अवस्थामें और शास्त्राध्ययनमें बहुत अधिक हो,इसलिये हम सब आपके शिष्य हैं,इसमें किसी प्रकारकाभी सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ और राजा धृतराष्ट्र भी तुम्हें बड़ा मान देते हैं, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके तुम मित्र हो ६ अतः तुम ही पांडवोंका कार्य सिद्ध करने वाला सन्देशा आज ही राजा धृतराष्ट्रके पास भिजवाओ, आप जो सन्देशा भिजवावेंगे वह सन्देशा निःसन्देह हम सबोंको मान्य है ॥ ७ ॥ कुरुवंश श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र यदि न्यायसे बात चीत करेंगे तो कौरव पांडवोंमें शत्रुता बँधकर महासंहार नहीं होगा ॥८॥ परन्तु यदि धृतराष्ट्रका पुत्र मूर्खतासे मदमत्त होकर संधि करनेकी इच्छा न रखता होगा तो वह पहिले अपने स्नेहियोंके पास दूत भेजेगा और युद्धका समय आयेगा तब पीछेसे हमारे पास भी दूत भेजकर बुलावेगा ॥९॥ परन्तु गांडीव धनुर्धारी अर्जुन जब क्रुद्ध होगा तब मूढ़ दुर्योधन अपने मंत्रियों सहित नष्ट होजायगा ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-इस प्रकार सभामें राजाओंको बहुतसी बातें होनेके पीछे राजा विराटने वृष्णिवंशोत्पन्न श्रीकृष्णका सत्कार किया

गमाः । चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः ॥ १२ ॥ ततः सम्प्रेषयामास विराटः सह बांधवैः । सर्वेषां भूमिपालानां द्रुपदश्च महीपतिः ॥१३॥ वचनात् कुरुसिंहानां मत्स्यपांचालयोश्च ते । समाजग्मुर्महीपालाः सम्प्रहृष्टा महाबलाः ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा पांडुपुत्राणां समागच्छन्महद् बलम् । धृतराष्ट्रसुताश्चापि समानिन्युर्महीपतीन् १५ समाकुला मही राजन् कुरुपांडवकारणात् । तदा समभवत् कृत्स्ना सम्प्रयाणे महीक्षिताम् ॥ १६ ॥ संकुला च तदा भूमिश्चतुरङ्गबलान्विता । बलानि तेषां वीराणामागच्छन्ति ततस्ततः॥१७॥चालयन्तीव गां देवीं सपर्वतवनामिमाम् । ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पाञ्चाल्यः स्वपुरोहितम् । कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते स्थितः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
पुरोहितयाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

द्रुपद उवाच । भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।

और उनको बांधवों तथा सेवकों सहित अपने घरसे बिदाकर दिया ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण द्वारिकाको चलेगये परन्तु युधिष्ठिर आदि पांचों भाई और राजा विराट युद्ध विषयक सकल सामग्रियें ठीक करने लगे१२राजा विराट राजा द्रुपद और उनके सम्बन्धियोंने सब स्नेहीराजाओंके पास दूत भेजकर पाण्डवोंको सहायता देनेके लिये कहलाकर भेजा ॥ १३ ॥ और महाबली राजा इस निमंत्रणसे बहुत प्रसन्न हुए तथा कुरुवंशमें सिंहसमान पाण्डवोंके और राजा विराट के तथा राजा द्रुपदके निमंत्रणको पाकर वे सब आने लगे । १४ ॥ पाण्डवोंकी महासेना इकट्ठी होने लगी है यह समाचार सुनकर धृतराष्ट्रके पुत्र भी राजाओंको निमंत्रण देकर इकट्ठे करने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जब राजे कौरव और पाण्डवोंके लिये युद्धमें जानेलगे,उस समय संपूर्ण पृथिवी राजाओंसे व्याप्त होगई ॥ १६ ॥ पृथिवी पर चतुरंगिणी सेना फैलने लगी तथा वीरोंकी सेना पृथक् २ देशोंमेंसे आने लगी ॥१७॥ इससे पृथिवी देवी उनके भारसे मानो डोलती हो इस प्रकार डगमगाने लगी, तदनन्तर पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदने, बुद्धि और अवस्थामें वृद्ध अपने पुरोहितको युधिष्ठिरकी सम्मति लेकर कौरव राजाओंके पास बातें करनेके लिये भेजनेका विचार किया ॥ १८ ॥ पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

राजा द्रुपदने अपने पुरोहितको कौरव राजाओंके पास भेजनेसे

बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेष्वपि द्विजातयः ॥१॥ द्विजेषु वैद्याः श्रेयांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥ २ ॥ स भवान् कृतबुद्धीनां प्रधान इति मे मतिः। कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च ॥ ३ ॥ प्रज्ञया सदृशश्चासि शुक्रेणाङ्गिरसेन च । विदितञ्चापि ते सर्वं यथावृत्तं स कौरवः ४ पाण्डवश्च यथावृत्तः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । धृतराष्ट्रस्य विदिते वंचिताः पांडवाः परैः ॥ ५ ॥ विदुरेणानुनीतोऽपि पुत्रमेवानुवर्त्तते । शकुनेर्बुद्धिपूर्वं हि कुन्तीपुत्रं समाह्वयत् ॥ ६ ॥ अनक्षज्ञं मताक्षः सन् क्षत्रवृत्ते स्थितं शुचिम् । ते तथा वञ्चयित्वा तु धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ न कस्याञ्चिदवस्थायां राज्यं दास्यन्ति वै स्वयम् ।भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन् वचः ८मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्त्तयिष्यति।विदुरश्चापि तद्वाक्यं साधयिष्यति

पहिले बुलाकर उनको उपदेश देते हुए कहा कि-हे पुरोहित ! भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं, प्राणियोंमें बुद्धिमान् श्रेष्ठ हैं; बुद्धिमानोंमें मनुष्य उत्तम हैं, मनुष्योंमें द्विज उत्तम हैं, द्विजोंमें विद्वान् उत्तम हैं, विद्वानों में सिद्धान्तवेत्ता उत्तम हैं, उनमें भी तत्वको समझकर यथार्थ आचरण करने वाले श्रेष्ठ हैं और ब्रह्मवादी उनसे भी अधिक श्रेष्ठ हैं१-२ तिन सिद्धान्तवेत्ता विद्वानोंमें तुम श्रेष्ठ हो; कुलमें, अवस्थामें और शास्त्राभ्यासमें तुम बड़े हो ॥ ३ ॥ और मैं मानता हूँ कि-तुम बुद्धि में शुक्राचार्य तथा अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिकी समान हो,तथा दुर्योधन और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर किसप्रकार बर्ताव करते हैं तथा धृतराष्ट्रको ज्ञात होते हुए कौरवोंने पाण्डवोंको कैसे २ धोखा दिया था इन सब बातोंकोभी तुम जानते हो ॥ ४-५ ॥ तुम जानते हो कि विदुर धृतराष्ट्रको प्रायः उपदेश दिया करते हैं तो भी वह अपने पुत्रके अनुकूल ही बर्ताव किया करते हैं, शकुनिने जुआ खेलनेके लिये चतुराईसे कुन्तीपुत्रको बुलाया था ॥ ६ ॥ शकुनि पाशे फेंकनेमें चतुर था इस दशामें उसने जुएसे अनजान और क्षत्रियवृत्तिमें तत्पर रहने वाले तथा पवित्र मनवाले राजा युधिष्ठिरको कपटका द्यूत खिलाकर हराया था । इस प्रकार कौरवोंने धर्मराजको हरा कर उनका राज्य छीन लिया है ॥ ७ ॥ और अब वे किसी समय भी पांडवोंको राज्य लौटा कर देने वाले नहीं है, अतः आपको हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्रसे धर्मयुक्त वचन कहनेकी आवश्यकता है ॥ ८ ॥ तुम धर्मयुक्त बातें कह कर धृतराष्ट्रके योद्धाओंके मनको अवश्य फेर सकोगे और

तात्रकम् ॥ ९ ॥ भीष्मद्रोणकृपादीनां भेदं संजनयिष्यति । अमात्येषु च भिन्नेषु योधेषु विमुखेषु च ॥ १० ॥ पुनरेकत्रकरणं तेषां कर्म भविष्यति। एतस्मिन्नन्तरे पार्थाः सुखमेकाग्रबुद्धयः ११सेनाकर्म करिष्यन्ति द्रव्याणां चैव संचयम् । विद्यमानेषु च स्वेषु लम्बमाने तथा त्वयि न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः। एतत् प्रयोजनं चात्र प्राधान्येनोपलभ्यते ॥ १३ ॥ संगत्या धृतराष्ट्रश्च कुर्य्याद् धर्म्यं वचस्तव । स भवान् धर्मयुक्तश्च धर्म्यं तेषु समाचरन् ॥ १४॥ कृपालुषु परिक्लेशान् पाण्डवीयान् प्रकीर्त्तयन । वृद्धेषु कुलधर्मञ्च ब्रुवन् पूर्वैरनुष्ठितम् ॥१५॥ विभेत्स्यति मनांस्येषामिति मे नात्र संशयः । न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणो ह्यसि वेदवित् ॥ १६ ॥ दूतकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः । स भवान् पुण्ययोगेन मुहूर्त्तेन जयेन च ॥ १७ ॥ कौरवेयान् प्रयात्वाशु कौन्तेयस्यार्थसिद्धये । वैशम्पायन उवाच । तथाऽनुशिष्टः प्रययौ द्रुपदेन महात्मना । पुरोधा वृत्तसम्पन्नो नगरं

विदुर भी तुम्हारे कथनको सिद्ध करेंगे ॥ ९ ॥ तुम भीष्म, द्रोण तथा कृपाचार्य आदिमें भेद डालसकोगे तब मंत्री और योधा भी कौरवों से विमुख होजायँगे ॥ १० ॥ और कौरव उनको फिर एकमत करनेमें घिरजायँगे, इतने समयमें एकाग्र बुद्धि वाले पांडव सुखसे सेनाको इकट्ठी और धनका संग्रह भी कर सकेंगे कौरव अपने योधाओंमें मतभेद होनेसे उदास होजायँगे और तुम तहाँ बहुत समय तक रहना११।१२इससे कौरव सर्वथा सेनाको इकट्ठी नहीं कर सकेंगे तथा तुमको तहाँ भेजनेसे और एक दूसरा मुख्य प्रयोजन सिद्ध होता है१३ वह यह है कि-राजा धृतराष्ट्र भी तुम्हारी संगतिमें पड़नेसे तुम्हारे धर्मयुक्त कथनको मानेगा और तुम धर्मनिष्ठ हो इसकारण तहाँ जाकर दयालु पुरुषोंके साथ धर्मका वर्त्ताव करके पांडवोंकेऊपर पड़ेहुए संकटों का वर्णन करना तथा वृद्ध पुरुषोंके पास पूर्वपुरुषोंके वर्ते हुए कुलके धर्मोंका वर्णन करना इससे कौरवोंके मुख्य २ पुरुषोंके मनके विचार भी पलट जायँगे, यह मेरा पूर्ण विश्वास है, तुम्हें कौरवोंकी ओरसे भय नहीं है क्योंकि तुम वेदवेत्ता ब्राह्मण हो१४-१५अतःअब तुम राजा युधिष्ठिरका काम सिद्ध करनेके लिये पुष्य नक्षत्रमें और विजय मुहूर्त में शीघ्रतासे दूतकार्य करनेके लिये कौरवोंके पास जाओ, वैशम्पायन कहते हैं कि इसप्रकार महात्मा द्रुपदने आज्ञा दी तब सदाचारसम्पन्न नीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्रमें कुशल उनका पुरोहित, शिष्योंको साथ

नागसाह्वयम् ॥१८॥ शिष्यैः परिवृतो विद्वान् नीतिशास्त्रार्थकोविदः। पाण्डवानां हितार्थाय कौरवान् प्रति जग्मिवान् ॥ १९ ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहितयाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच । पुरोहितं ते प्रस्थाप्य नगरं नागसाह्वयम् । दूतान् प्रस्थापयामासुः पार्थिवेभ्यस्ततस्ततः ॥१॥ प्रस्थाप्य दूतान्यत्र द्वारकां पुरुषर्षभः । स्वयं जगाम कौरव्यः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः॥२॥गते द्वारवतीं कृष्णे बलदेवे च माधवे। सह वृष्ण्यन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तदा ॥ ३ ॥ सर्वमागमयामास पांडवानां विचेष्टितम् । धृतराष्ट्रात्मजो राजा गूढैः प्रणिहितैश्चरैः॥४॥स श्रुत्वा माधवं यान्तं सदश्वैरनिलोपमैः । बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात् पुरीम् ॥ ५ ॥ तमेव दिवसं चापि कौंतेयः पांडुनन्दनः । आनर्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनञ्जयः ॥ ६ ॥ तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ । सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चाभिजग्मतुः ॥ ७ ॥ ततः शयाने गोविंदे प्रवि-

---

में लेकर पाण्डवोंका हित करनेके लिये और कौरवोंके पास जानेके लिये हस्तिनापुरकी ओरको विदा हुआ ॥ १७-१८ ॥ षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार राजा द्रुपदके पुरोहितको हस्तिनापुर भेजनेके पीछे पाण्डवोंने जुदे२ देशोंके राजाओं की ओर भी दूत भेजे ॥ १ ॥ अन्य सब स्थानोंको दूत भेजकर श्रीकृष्णको बुलानेके लिये पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन स्वयं द्वारिकाको गया२मधुवंश में उत्पन्न हुए श्रीकृष्ण और बलदेव, जब सैंकड़ों वृष्णि, अंधक तथा भोज राजाओंको साथमें लेकर द्वारिकामें जापहुँचे ॥ ३ ॥ उस समय धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने गुप्तदूत भेजकर उनके द्वारा पाण्डवोंका सब वृत्तान्त जान लिया ॥ ४ ॥ जब दुर्योधनको ज्ञात हुआ कि-पाण्डवों ने लडाई करके भी राज्य लेनेका विचार किया है तब वह श्रीकृष्णके द्वारिकामें पहुँचते ही तुरन्त पवनकी समान वेगवाले उत्तम घोडोंके सहित थोड़ेसे लश्करको साथ लेकर द्वारिकाको गया ॥ ५ ॥ कुन्ती पुत्र अर्जुनने भी उस ही दिन श्रीकृष्णको युद्धमें निमन्त्रण देनेके लिये रमणीय द्वारिकापुरीकी ओर शीघ्रतासे प्रस्थान किया था ॥ ६ ॥ इस प्रकार दोनों कुरुवंशके वीर पुरुषव्याघ्र अर्जुन और दुर्योधन एक ही समय द्वारिकापुरीमें उपस्थित हुए और श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये

वेश दुर्योधनः । उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने ॥ ८ ॥ ततः किरीटी तस्यानु प्रविवेश महामनाः। पश्चाच्चैव कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥ प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम् । स तयोः स्वागतं कृत्वा यथावत् परिपूज्य तौ ॥ १० ॥ तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः । ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव ॥ ११ ॥ विग्रहेऽस्मिन् भवान् साह्यं मम दातुमिहार्हति । समं हि भवतः सख्यं मयि चैवार्जुनेऽपि च ॥ १२ ॥ तथा सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव । अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन ॥ १३ ॥ पूर्वं चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिणः त्वञ्च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन सततं सम्मतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय । कृष्ण उवाच । भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः। दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया तत्र धनञ्जयः १५ तव पूर्वाभिगमनात् पूर्वञ्चाप्यस्य दर्शनात् । साहाय्यमुभयोरेव करि-

---

उनके राजमहलमें गए उस समय श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे, पहिले दुर्योधन जहाँ श्रीकृष्ण सो रहे थे तहाँ पहुँचा और श्रीकृष्णके पलँगके सिरहानेकी ओर एक उत्तम सिंहासन पर बैठ गया ॥ ७-८ ॥ और उदार मन वाला अर्जुन पीछेसे आकर श्रीकृष्णके शयनमन्दिरमें पहुँच दोनों हाथ जोड़े सरलतापूर्वक श्रीकृष्णकी शय्याके पायँत खडा हो-गया ॥ ९ ॥ थोड़े समयके बाद वृष्णिकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण जागे और और उन्होंने अपने आगे अर्जुनको खड़े हुए पाया और फिर पीछेको देखा तो दुर्योधनको सिरहानेके पास बैठे हुए देखा श्रीकृष्णने उन दोनोंका आदर करके यथार्थरीतिसे उनकी पूजा की तदनन्तर मधुसू-दन श्रीकृष्णने उनसे बूझा कि कहो भाई ! तुम दोनों किस कारणसे आये हो ? तब उन दोनोंमेंसे पहिले दुर्योधनने हँसकर श्रीकृष्णसे कहा कि ॥ १०-११ ॥ आगेको होनेवाले युद्धमें आपको मुझे सहायता देनी उचित है आपकी मुझसे और अर्जुनसे एकसी मित्रता है ॥१२॥ ऐसे ही हे माधव ! हमारा भी आपके साथ अर्जुनकासाही सम्बन्ध है और हे मधुसूदन ! मैं तुम्हारे पास आज अर्जुनसे पहिले आगया हूँ१३ प्रथम आने वालेका पक्ष करने वाले सत्पुरुष जो पहिले आया होता है उसके ही अनुकूल रहते हैं, ऐसा न्याय है और हे जनार्दन ! तुम भी जगत्के सब पुरुषोंमें परम उत्तम हो ॥१४॥और महात्मा पुरुषोंमें सदा मान्य गिने जाते हो अतः तुम सत्पुरुषोंके आचारको ग्रहण करो श्री-कृष्णजी बोले कि-हे राजन् दुर्योधन ! तुम प्रथम पधारे हो इसमें मुझे

ष्यामि सुयोधन ॥ १६ ॥ प्रवारणन्तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः । तस्मात् प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनञ्जयः ॥ १७ ॥ मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत् । नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः १८ ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः । अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः ॥ १९ ॥ आभ्यामन्यतरं पार्थ यत्ते हृद्यतरं मतम् तद्वृणीतां भवानग्रे प्रवार्य्यस्त्वं हि धर्मतः २० वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः । अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम्२१नारायणममित्रघ्नं कामाज्जातमजं नृपु । सर्वक्षत्रस्य पुरतो देवदानवयोरपि ॥ २२ ॥ दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमावरयत्तदा । सहस्राणां सहस्रन्तु योधानां प्राप्य भारत॥२३॥कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम् । दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः २४

कुछभी सन्देह नहीं है, परन्तु मैंने तुम्हें देखनेसे पहिले अर्जुनको देखा है ॥ १५ ॥ हे सुयोधन ! तुम प्रथम आये हो इसकारण तुम्हारी और अर्जुनको मैंने तुमसे पहिले देखा है इस कारण इसकी भी मैं युद्धमें सहायता करूँगा ॥ १६ ॥ तोभी शास्त्रमें कहा है कि-बालकोंकी इच्छा को प्रथम पूरी करना चाहिये, अतः अर्जुनकी अभिलाषा प्रथम पूरी करना चाहिये१७मेरे ही सामान दृढ़शरीर वाले एक अर्बुद गोप मेरे पास हैं, उनका नाम नारायण है और वे सब युद्धमें लड़सकते हैं १८ वे प्रचंड पराक्रमी और दुर्धर्ष योधा तुममेंसे एककी ओर युद्ध करने को खड़े होंगे और दूसरेकी ओर अकेला मैं खड़ा होऊँगा, परन्तु ध्यान रखना कि-मै शस्त्रधारण नहीं करूँगा ॥ १९ ॥ हे अर्जुन ! धर्मानुसार पहिले तेरी अभिलाषा पूरी होनी चाहिये; इससे इन दोनों बातोंमेंसे जो तुझे अधिक रुचे उसे तू मांगले ॥ २० ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णने कहा तब कुन्तीपुत्र अर्जुनने, संग्राममें शस्त्रोंको त्याग कर युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा करने वाले श्रीकृष्णको ही सहायताके लिये माँगा श्रीकृष्ण नारायणमूर्त्ति और शत्रुओंका संहार करनेवाले अपनी इच्छासे मनुष्यजातिमें प्रकट हुए और सब क्षत्रिय तथा देव दानवोंसेभी पहले जन्मे थे ऐसे श्रीकृष्णको अर्जुनने माँग लिया तब दुर्योधनने उनकी सबसेनाको माँग लिया और हे भरतवंशी राजन्!लाखों योधाओंकी सहायता मिलनेके पीछे मैंने श्रीकृष्णको सेनारहित करडाला ऐसा मान कर वह अपने मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही श्रीकृष्ण से उस सब सेनाको अपने साथ लेजानेकी आज्ञा लेकर भयंकर बल

ततोऽभ्ययाद्भीमबलो रौहिणेयं महाबलम् । सर्वं चागमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत् । प्रत्युवाच ततः शौरिर्धार्तराष्ट्रमिदं वचः ॥ २५॥ बलदेव उवाच । विदितं ते नरव्याघ्र सर्वं भवितुमर्हति । यन्मयोक्तं विराटस्य पुरा वैवाहिके तदा ॥ २६ ॥ निगृह्योक्तो हृषीकेशस्त्वदर्थं कुरुनन्दन । मया सम्बन्धकं तुल्यमिति राजन् पुनः पुनः ॥ २७ ॥ न च तद्वाक्य-मुक्तं च केशवं प्रत्यपद्यत । न चाहमुत्सहे कृष्णं विना स्थातुमपि क्षणम् । २८ । नाहं सहायः पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य वै । इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह ॥ २९ ॥ जातोऽसि भारते वंशे सर्व-पार्थिवपूजिते । गच्छ युध्यस्व धर्मेण क्षत्रियेण नरपर्षभ ३० वैशम्पा-यन उवाच । इत्येवमुक्तस्तु तदा परिष्वज्य हलायुधम् । कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा युद्धान्मेने जितं जयम् ॥ ३१ ॥ सोऽभ्ययात् कृतवर्माणं धृत-राष्ट्रसुतो नृपः । कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा ॥ ३२ ॥ स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः । वृतः परिययौ हृष्टः सुहृदः सम्प्रहर्ष-

---

वाला दुर्योधन महाबली बलदेवजीके पास गया और उनको अपने आनेका सब कारण कह सुनाया, दुर्योधनकी बात सुनकर बलदेव जी उससे इस प्रकार कहने लगे ॥ २३-२५ ॥ बलदेवजी बोले कि— हे नरव्याघ्र दुर्योधन ! राजा विराटके यहाँ विवाह हुआ था तब मैंने जो कुछ कहा था वह तुझे समझ लेना चाहिये ॥ २६ ॥ हे कुरुपुत्र ! मैंने उस समय राजाओंकी सभामें तेरे विषयमें श्रीकृष्णसे आग्रहपूर्वक बारम्बार कहा था कि मेरा तो दोनोंके साथ समान सम्बंध है ।२७। परन्तु श्रीकृष्णने मेरे कहनेका आदर नहीं किया, अब बात ऐसी आ बनी है कि मैं श्रीकृष्णके विना एक क्षण भी नहीं रहसकता॥२८॥तथा मैं श्रीकृष्णका सामना करूँ यह भी नहीं होसकता, इससे मैंने निश्चय करलिया है कि—मैं युद्धमें अर्जुनको भी सहायता नहीं दूँगा और तुझे भी सहायता नहीं दूँगा ॥ २९ ॥ हे महापुरुष दुर्योधन ! तू सब राजाओंसे पूजित भरतके प्रसिद्ध वंशमें उत्पन्न हुआ है, अतः अब हस्तिनापुरमें जाकर क्षत्रियधर्मानुसार युद्ध करनेके लिये तयार होजा वैशम्पायन कहने हैं कि—इस प्रकार बलरामने कहा तब दुर्योधन उन के हृदयसे लगा और उसने जाना कि श्रीकृष्ण सेनाशून्य खाली होगया है अतः अब युद्धमें अपनी ही विजय होगी३१इसप्रकार आनन्दमें भरा हुआ दुर्योधन तहाँसे कृतवर्माके पास गया कृतवर्माने उससमय एक अक्षौहिणी सेना दुर्योधनको सहायताके लिये दी॥३२॥कुरुपुत्र दुर्यो-

यन् ॥ ३३ ॥ ततः पीताम्बरधरो जगत्स्रष्टा जनार्दनः । गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायाहं वृतस्त्वया । अर्जुन उवाच । भवान् समर्थस्तान् सर्वान्निहन्तुं नात्र संशयः । निहन्तुमहमप्येकः समर्थः पुरुषर्षभ ॥ ३५ ॥ भवांस्तु कीर्त्तिमाँल्लोके तद्यशस्त्वां गमिष्यति । यशसा चाहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः ॥ ३६ ॥ सारथ्यन्तु त्वया कार्य्यमिति मे मानसं सदा । चिररात्रेप्सितं कामं तद्भवान् कर्त्तुमर्हति॥३७॥ वासुदेव उवाच । उपपन्नमिदं पार्थ यत् स्पर्द्धसि मया सह । सारथ्यं ते करिष्यामि कामः सम्पद्यतां तव ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं प्रमुदितः पार्थः कृष्णेन सहितस्तदा । वृतो दाशार्हप्रवरैः पुनरायाद्युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
कृष्णसारथ्यस्वीकारे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच । शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः

धन कृतवर्माकी दीहुई सेनाको तथा श्रीकृष्णकी दीहुई सेनाको साथ में लेकर अपने मनमें हर्षित होता हुआ तथा स्नेहियोंको प्रसन्न करता हुआ हस्तिनापुरकी ओरको चल दिया ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णके मन्दिरमें से दुर्योधनके चलेजाने पर जगत्को रचने वाले पीताम्बरधारी श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि—॥ ३४ ॥ मैं तो युद्धमें लडूँगा नहीं फिरभी तूने क्या सोचकर मुझे माँग लिया ! अर्जुन बोला कि हे पुरुषोत्तम ! आप अकेले ही सबोंका नाश करनेको समर्थ हैं, यह बात निःसन्देह है, तथा मैं भी अकेला ही सब शत्रुओंका संहार करसकता हूँ ॥३५॥ और तुम इस जगत्में कीर्तिमान् हो अतः तुमको यश प्राप्त होगा और मैं भी यशका अभिलाषी हूं, अतः मैंने आपको माँगलिया है ॥३६॥ मेरे मनमें अनेकों रातें बीत गईं सदासे यह इच्छा हुआ करती थी श्रीकृष्ण मेरे सारथी हों तो अच्छा हो, अतः आप मेरे सारथी बनिये और मेरी मनोकामनाको पूरी करिये ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि—हे अर्जुन ! तू मेरे साथ स्पर्धा किया करता है, यह तुझे योग्य है अच्छा मैं तेरा सारथीपना करूँगा, तेरी कामना पूरी हो ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुन बड़ा प्रसन्न हुआ और श्रीकृष्ण तथा दाशार्हवंशके मुख्य २ पुरुषोंके साथ लौट कर वह राजा युधिष्ठिरके पास आया । ३९ । सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजन् ! राजा शल्य पांडवोंके दूतोंसे

अभ्ययात् पांडवान्राजन् सह पुत्रैर्महारथैः१ तस्य सेनानिवेशोऽभूदध्यर्द्धमिव योजनम्। तथा हि विपुलां सेनां बिभर्त्ति स नरर्षभः॥२॥अक्षौहिणीपती राजन् महावीर्य्यपराक्रमः। विचित्रकवचाः शूरा विचित्रध्वजकार्मुकाः॥३॥ विचित्राभरणाः सर्वे विचित्ररथवाहनाः। विचित्रस्रग्धराः सर्वे विचित्राम्बरभूषणाः॥४॥स्वदेशवेषाभरणा वीराः शतसहस्रशः। तस्य सेनाप्रणेतारो बभूवुः क्षत्रियर्षभाः॥५॥ व्यथयन्निव भूतानि कम्पयन्निव मेदिनीम्। शनैर्विश्रामयन् सेनां स ययौ येन पाण्डवः ६ ततो दुर्योधनः श्रुत्वा महात्मानं महारथम्। उपायान्तमभिद्रुत्य स्वयमानर्च्च भारत॥ ७॥ कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः। रमणीयेषु देशेषु रत्नचित्राः स्वलंकृताः॥ ८॥ शिल्पिभिर्विविधैश्चैव क्रीड़ास्तत्र प्रयोजिताः। तत्र माल्यानि मांसानि भक्ष्यं पेयञ्च सत्कृतम्

उनका संदेशा सुन बड़ी भारी सेनाको साथमें लेकर अपने महारथी पुत्रोंके साथ पांडवोंके पास पहुँचनेके लिये घरसे निकला ॥ १ ॥ हे राजन्! उस राजाकी सेनाका पड़ाव अनुमानतः छः गाँवके विस्तार का था और हे राजन्! महावीर्यवाला पराक्रमी तथा अक्षौहिणी सेना का स्वामी राजा शल्य इतनी बडी महासेनाका पोषण करता था और उस राजाकी सेनामें लाखों बड़े २ क्षत्रिय सेनापति थे, वे सब वीर नाना प्रकारके कवचोंको धारण करने वाले विविध प्रकारके आभूषण पहिरने वाले और विचित्र रथ सवारियों वाले थे, उन्होंने कण्ठोंमें नाना प्रकारकी मालाएँ धारणकररखी थीं, शरीरोंमें विचित्र प्रकारके गहने धारण कर रक्खे थे विचित्र वस्त्र पहिरे हुए थे तथा अपने देशका वेष और आभूषणोंसे सजेहुए थे ॥ २-५ ॥ ऐसी सकल सेनाके साथ राजा शल्य सब प्रकारसे प्राणियोंको खिन्न करता हुआ पृथिवीको कपाँता २ और बीच२ में सेनाको विश्राम देता हुआ धीरे धीरे पांडुपुत्र युधिष्ठिर जहाँ पडाव डालकर ठहरे हुए थे, तहाँ जाने लगा ॥ ६ ॥ इतनेमें ही हे भरतवंशी राजन्! दुर्योधनने सुना कि— महात्मा महारथी शल्य राजा युधिष्ठिरकी सहायताके लिये आता है इससे स्वयं उसकी ओरको गया और स्वयं उसका सत्कार करनेका विचार किया। ७। दुर्योधनने उनका सत्कार करनेके लिये रमणीय प्रदेशोंमें रत्नोंसे विचित्र दीखने वाले भली प्रकार सजेहुए सभामंदिर तयार कराये। ८। और उसमें कारीगरोंके द्वारा अनेकों प्रकारके क्रीड़ास्थान बनवाये पुष्प मांस नाना प्रकारके भोजन तथा पीनेकी

कूपाश्च विविधाकारा मनोहर्षविवर्द्धनः वाप्यश्च विविधाकारा ओदनानि गृहाणि च ॥ १० ॥ स ताः सभाः समासाद्य पूज्यमानो यथामरः । दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे समन्ततः ॥११॥ आजगाम सभामन्यां देवावसथवर्चसम्। स तत्र विषयैर्युक्तैः कल्याणैरतिमानुषैः१२ मेनेऽभ्यधिकमात्मानमेव मेने पुरन्दरम् । पप्रच्छ स ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः ॥१३॥ युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः । आनीयन्तां सभाकारा प्रदेयार्हा हि मे मताः ॥ १४ ॥ प्रसादमेषां दास्यामि कुन्तीपुत्रोऽनुमन्यताम्।दुर्योधनाय तत्सर्वं कथयन्ति स्म विस्मिताः१५ संप्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम् । गूढ़ो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम् ॥ १६ ॥ तं दृष्ट्वा मद्रराजश्च ज्ञात्वा यत्नञ्च तस्य तम्। परिष्वज्याब्रवीत् प्रीत इष्टार्थो गृह्यतामिति ॥ १७ ॥ दुर्योधन उवाच ।

वस्तु आदि अनेकों पदार्थोंकी भलीप्रकार तय्यारी कराई तथा मन को आनन्द देने वाले अनेकों प्रकारके कुए खुदवाकर तयार करवाये, नानाप्रकारकी बावड़ियें और फव्वारे भी मार्गमें बनवाये ॥ १० ॥ राजा शल्यने देश २ में जाकर दुर्योधनके बनवायेहुए सभामंदिरोंमें विश्राम किया और दुर्योधनके मंत्रियोंने उसका देवताकी समान सत्कार किया ॥११॥ चलते २ राजा शल्य देवमन्दिरकी समान कांति वाले दूसरे सभामन्दिरमें आपहुँचा और सुखदायक तथा अलौकिक अनेकों वैभवोंका उपभोग किया ॥१२॥ उस समय राजा शल्य अपने को उत्तम माननेलगा और इन्द्र भी तुच्छ है ऐसा विचारने लगा, तदनन्तर क्षत्रियोंमें उत्तम राजा शल्यने आनन्दमें आकर तहाँ प्रत्येक स्थान पर रहनेवाले सेवकोंसे बूझा कि-॥ १३ ॥ यहाँ राजा युधिष्ठिर के किन सेवकोंने यह सभामन्दिर बनाये हैं सभास्थान बनानेवालोंको मेरे सामने उपस्थित करो क्योंकि-मुझे उनका सत्कार करना चाहिये ऐसा मेरा विचार है ॥१४॥ मैं उनको पारितोषिक दूँगा और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर इस बातका अनुमोदन करेंगे राजा शल्यकी ये सब बातें दुर्योधनके सेवकोंने आश्चर्यके साथ दुर्योधनसे कहीं ॥१५॥ जब दुर्योधनने जाना कि-राजा शल्य अत्यन्त प्रसन्न होगया है और अपने प्राणतक भी देना चाहता है तब छुपाहुआ दुर्योधन तुरन्त अपने मामा शल्यके सामने आगया ॥ १६ ॥ मद्रदेशका राजा शल्य दुर्योधनको देखकर और इसका ही यह सब प्रयत्न है ऐसा जानकर प्रसन्न हुआ और उसे छातीसे लगाकर बोला कि-तुझे जो बात प्रिय

सत्यवाग्भव कल्याण वरो वै मम दीयताम्। सर्वसेनाप्रणेता वै भवान् भवितुमर्हति ॥१८॥ वैशम्पायन उवाच। कृतमित्यब्रवीच्छल्यः किमन्यत् क्रियतामिति। कृतमित्येव गान्धारिः प्रत्युवाच पुनः पुनः ॥ १९ ॥ शल्य उवाच। गच्छ दुर्योधन पुरं स्वकमेव नरर्षभ। अहं गमिष्ये द्रष्टुं वै युधिष्ठिरमरिन्दमम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा युधिष्ठिरं राजन् क्षिप्रमेष्ये नराधिप। अवश्यं चापि द्रष्टव्यः पाण्डवः पुरुषर्षभः॥२१॥ दुर्योधन उवाच। क्षिप्रमागम्यतां राजन् पाण्डवं वीक्ष्य पार्थिव। त्वय्यधीना स्म राजेन्द्र वरदानं स्मरस्व नः ॥ २२ ॥ शल्य उवाच। क्षिप्रमेष्यामि भद्रन्ते गच्छस्व स्वपुरं नृप। परिष्वज्य तथान्योऽन्यं शल्यदुर्योधनावुभौ।२३। स तथा शल्यमामन्त्र्य पुनरायात् स्वकं पुरम्। शल्यो जगाम कौन्तेयानाख्यातुं कर्म तस्य तत् ॥ २४ ॥ उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कन्धावारं प्रविश्य च। पाण्डवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह ॥ २५ ॥

हो सो माँगले ॥ १७ ॥ दुर्योधन बोला कि-हे कल्याणकारी मामाजी! आप सत्यवादी हैं और मुझे वर दीजिये मेरी इच्छा है कि आप मेरा सकल सेनाके अधिपति बनें ॥१८॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! दुर्योधनकी तिस प्रार्थनाका उत्तर देतेहुए शल्यने कहा कि-अच्छा तुझे वर देता हूँ, बता इसके सिवाय तेरा और क्या काम करूँ तब गांधारीपुत्र दुर्योधनने वारम्वार उत्तर दिया कि-मेरी समझसे आपने मेरा सब काम पूरा कर दिया ॥ १९ ॥ शल्यने कहा कि-हे महापुरुष दुर्योधन! अब तू अपने घर जा, मैं शत्रुका दमन करनेवाले युधिष्ठिरके पास जाऊँगा ॥ २० ॥ और युधिष्ठिरसे मिलकर हे राजन्! वहाँसे शीघ्र ही लौट आऊँगा मुझे पुरुषोंमें मान्य युधिष्ठिरसे भी अवश्य मिलना चाहिये ॥ २१ ॥ दुर्योधन बोला कि-हे राजन्! तुम युधिष्ठिरसे मिलकर शीघ्र ही आना हे राजेन्द्र! अब मेरा सब काम तुम्हारे ही अधीन है और तुमने मुझे जो वर दिया है उसका स्मरण रखना ॥ २२ ॥ शल्यने कहा कि-हे राजन्! तेरा कल्याण हो! मैं अब शीघ्र ही लौटकर आता हूँ, तू अपने नगरको जा इसप्रकार बातें करके राजा शल्य और दुर्योधन दोनों आपसमें मिले फिर दुर्योधन शल्यसे मिलकर अपने नगरमें आया और राजा शल्य दुर्योधनके आरम्भ कियेहुए सब काम पाण्डवोंसे कहनेके लिये उनके पास गया। २३।२४। राजा शल्य विराटनगरमें स्थित उपप्लव्य नामक प्रदेशमें पाण्डवोंकी छावनीमें उपस्थित हुआ और पाण्डवोंसे मिलकर महाभुज शल्यने

समेत्य च महाबाहुः शल्यः पाण्डुसुतैस्तदा । पाद्यमर्घ्यञ्च गाञ्चैव प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि ॥ २६ ॥ ततः कुशलपूर्वं हि मद्रराजोऽरिसूदनः । प्रीत्या परमया युक्तः समाश्लिष्य युधिष्ठिरम् ॥ २७ ॥ तथा भीमार्जुनौ कृष्णौ स्वस्रीयौ च यमावुभौ । आसने चोपविष्टस्तु शल्यःपार्थमुवाच ह ॥ २८ ॥ कुशलं राजशार्दूल कच्चित्ते कुरुनन्दन । अरण्यवासाद्दिष्ट्याऽसि विमुक्तो जयतां वर ॥२९॥ सुदुष्करं कृतं राजन्निर्जने वसता त्वया । भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह ॥३०॥ अज्ञातवासं घोरञ्च वसता दुष्करं कृतम् । दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य भारत ॥ ३१ ॥ दुःखस्यैतस्य महतो धार्त्तराष्ट्रकृतस्य वै । अवाप्स्यसि सुखं राजन् हत्वा शत्रून् परन्तप ॥ ३२ ॥ विदितं ते महाराज लोकतन्त्रं नराधिप । तस्माल्लोभकृतं किञ्चित्तव तात न विद्यते ॥ ३३ ॥ राजर्षीणां पुराणानां मार्गमन्विच्छ भारत । दाने तपसि सत्ये च भव तात युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥ क्षमा दमश्च सत्यञ्च अहिंसा च युधिष्ठिर ।

पाण्डुपुत्रोंके विधिके अनुसार दियेहुए पाद्य अर्घ और वृषभको ग्रहण किया ॥ २५॥२६ ॥ और शत्रुका नाश करनेवाले मद्रराजने कुशल बूझनेके अनन्तर परमप्रेमसे राजा युधिष्ठिरको आलिंगन किया तथा भीम और अर्जुनको एवं अपनी बहनके पुत्र नकुल तथा सहदेवको भी प्रेमपूर्वक छातीसे लगाया इसप्रकार मिलने भेटनेके अनन्तर वह आसन पर बैठकर राजा युधिष्ठिरसे बूझनेलगा कि-॥ २७॥२८ ॥ हे राजसिंह कुरुपुत्र युधिष्ठिर ! तुम कुशलसे तो हो ? हे महाविजयी ! बनवासमेंसे छूटगये यह अच्छा हुआ ॥२९॥ हे राजेन्द्र ! तुमने निर्जन बनमें भाइयों तथा द्रौपदीसहित निवास किया था, यह महाकठिन काम किया ॥ ३० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुमने इससे भी भयंकर अज्ञातवास किया था, यह भी बड़ा कठिन काम था ओः ! राज्यभ्रष्ट पुरुषको दुःख ही होता है फिर तुमको सुख कहाँसे होगा ? ॥ ३१ ॥ परन्तु हे शत्रुतापी राजन् ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंने तुमको महादुःख दिया है, इसका विनाश होनेके अनन्तर तुम शत्रुओंका संहार करके सुख पाओगे ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! तुम लोकसिद्धान्तको जानते हो, अतः हे तात ! तुमने लोभसे कुछ भी कार्य किया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता ॥ ३३ ॥ और हे भरतवंशी राजन् युधिष्ठिर ! अब भी तुम प्राचीन राजर्षियोंके मार्गसे चलना और दान तप तथा सत्यको धारण किये रहना ॥३४॥ हे राजन् युधिष्ठिर ! क्षमा, दम, सत्य और अहिंसा

अद्भुतश्च पुनर्लोकस्त्वयि राजन् प्रतिष्ठितः ॥३५॥ मृदुर्वदान्यो ब्रह्मण्यो दाता धर्मपरायणः । धर्मास्ते विदिता राजन् बहवो लोकसाक्षिकाः३६ सर्वं जगदिदं तात विदितं ते परन्तप। दिष्ट्या कृच्छ्रमिदं राजन् पारितं भरतर्षभ ॥ ३७ ॥ दिष्ट्या पश्यामि राजेन्द्र धर्मात्मानं सहानुगम् । निस्तीर्णं दुष्करं राजंस्त्वां धर्मनिचयं प्रभो ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततोऽस्याकथयद्राजा दुर्योधनसमागमम् । तच्च शुश्रूषितं सर्वं वरदानञ्च भारत ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिर उवाच । सुकृतं ते कृतं राजन् प्रहृष्टेनान्तरात्मना । दुर्योधनस्य यद्वीर त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ४० एकं त्विच्छामि भद्रन्ते क्रियमाणं महीपते । राजन्नकर्त्तव्यमपि कर्त्तुमर्हसि सत्तम ॥ ४१ ॥मम त्ववेक्षया वीर शृणु विज्ञापयामि ते । भवानिह महाराज वासुदेवसमो युधि। कर्णार्जुनाभ्यां सम्प्राप्ते द्वैरथे राजसत्तम । कर्णस्य भवता कार्यं सारथ्यं नात्र संशयः ॥ ४३ ॥ तत्र पाल्योऽर्जुनो राजन् यदि मत्प्रियमिच्छसि । तेजोवधश्च ते कार्यः

तथा अद्भुत परलोक तुम्हारे विषैं रहता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! तुम कोमल उदार, ब्राह्मणोंके रक्षक, दाता और धर्मनिष्ठ हो तथा लोकों के साक्षीरूप बहुतसे धर्मोंको तुम जानते हो ॥ ३६ ॥ और हे शत्रुतापन ! यह सब जगत् भी तुम्हारा जानाहुआ है हेभरतवंशी राजन्! तुमने जो कष्टदायक वनवासको पूरा किया यह बहुत ठीक किया३७ हे राजेन्द्र ! धर्मके अनेकों आचरणोंसे युक्त तुमसे धर्मात्माको वनवासके दुःखके पार हुआ देखकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ३८ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे भरतवंशी राजन्।तदनन्तर राजा शल्यने दुर्योधनके साथ हुआ समागम उसको की हुई सेवा तथा उसका अपना वर देना ये सब बातें राजा युधिष्ठिरको सुनाई॥ ३९॥ युधिष्ठिर बोले कि—हे वीर राजन् ! तुमने अन्तःकरणसे प्रसन्न होकर दुर्योधनको वाणीसे सहायता करनेका वचन दिया यह बहुत ही अच्छा किया४० हे श्रेष्ठ राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो, यद्यपि आपको करना उचित तो नहीं है तो भी मेरे लिये एक काम तुम्हें अवश्य करना पड़ेगा ४१ और वह भी केवल मेरी ओर दृष्टि करके करनेका है हे वीर ! उसके विषयमें मैं तुमसे विनय करता हूँ उसको सुनिये हे महाराज ! तुम युद्धसमयमें श्रीकृष्णकी समान वीर हो ४२ इसकारण हे राजसत्तम ! जब कर्ण और अर्जुनमें परस्पर रथमें बैठ कर द्वन्द्वयुद्ध होता हो तब अवश्य ही कर्णका सारथिपन करना हे राजन् ! तुम उस समय यदि

सौतेरस्मज्जयावहः ॥ ४४ ॥ अकर्त्तव्यमपि ह्येतत् कर्त्तुमर्हसि मातुल शल्य उवाच । श्रृणु पाण्डव भद्रन्ते यद् ब्रवीषि महात्मनः । तेजोवधनिमित्तं मां सूतपुत्रस्य संगमे ॥ ४५ ॥ अहं तस्य भविष्यामि संग्रामे सारथिर्ध्रुवम् । वासुदेवेन हि समं नित्यं मां स हि मन्यते४६ तस्याहं कुरुशार्दूल प्रतीपमहितं वचः ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे ॥४७॥ यथा स हृतदर्पश्च हृततेजाश्च पांडव । भविष्यति सुखं हन्तुं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥४८॥ एवमेतत् करिष्यामि यथा तात त्वमात्थ माम् । यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्यामि ते प्रियम्४९ यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह । परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि वै५० जटासुरात् परिक्लेशः कीचकाच्च महाद्युते द्रौपद्याधिगतं सर्वं दमयन्त्या यथाऽशुभम् ॥ ५१ ॥ सर्वं दुःखमिदं वीर सुखोदर्कं भविष्यति नात्र मन्युस्त्वया कार्यो विधिर्हि बलवत्तरः॥५२॥ दुःखानि हि महात्मानः प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर । देवैरपि हि दुःखानि प्राप्तानि जग-

मेरा कल्याण चाहते हो तो अर्जुनकी रक्षा करना और मेरी विजय करनेके लिये सूतपुत्र कर्णके उत्साहको भंग करदेना ॥ ४३–४४ ॥ हे मामाजी ! यह काम यद्यपि करने योग्य नहीं है तथापि तुम्हें करना चाहिये शल्य बोला कि हे पाण्डव ! सुनो तुम्हारा कल्याण हो ! अर्जुन और महात्मा कर्णके संग्रामके समय, कर्णका उत्साह भङ्ग करने के लिये जो तुमने मुझसे कहा सो ठीक है॥ ४५ ॥ मैं संग्राममें उसका सारथी अवश्य बनूँगा, क्योंकि वह मुझे सदा वासुदेवकी समान समझता है४६हे कुरुशार्दूल!मैं रणमें लड़नेकी इच्छावाले कर्णसे युद्धके समय उलटे तथा अहितकारी वचनअवश्य कहूँगा और उसके गर्वका तथा तेजका नाश करूँगा, उसके गर्वका तथा तेजका नाश होते ही उसका मारना सहज होजायगा यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ४७-४८ हे तात ! मैं तुम्हारे कहनेके अनुसारही तुम्हारा प्रिय काम करूँगा ४९ जुएमें द्रौपदीसहित तुमने जो बहुतसे दुःख पाये हैं और सूतपुत्र कर्ण ने जो तुमसे बहुतसे तीखे वचन कहे हैं ॥ ५० ॥ और हे महाकांति वाले राजन् ! तुमको जटासुर तथा कीचकसे जो क्लेश हुआ है और दमयन्तीकी समान द्रौपदीपर भी बडे२ दुःख पड़े हैं ॥५१॥ हे वीर ! इन सब दुःखोंका परिणाम सुखके उदयमें आवेगा, इस विषयमें खेद अथवा क्रोध न करो क्योंकि-दैव बडा बलवान् है ॥५२॥ हे राजन् ! युधिष्ठिर ! महात्मा पुरुष भी दुःख पाते हैं और हे राजन् ! देवताओं

तीपते ॥ ५३ ॥ इन्द्रेण श्रूयते राजन् सभार्य्येण महात्मना । अनुभूतं महद्दुःखं देवराजेन भारत ॥ ५४ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
शल्यवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच। कथमिन्द्रेण राजेन्द्र सभार्य्येण महात्मना। दुःखं प्राप्तं परं घोरमेतदिच्छामि वेदितुम् ॥१॥ शल्य उवाच। शृणु राजन् पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम्। सभार्य्येण यथा प्राप्तं दुःखमिन्द्रेण भारत ॥ २ ॥ त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः । स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्रोहात् किलासृजत् ॥ ३ ॥ ऐन्द्रं स प्रार्थयत् स्थानं विश्वरूपो महाद्युतिः । तैस्त्रिभिर्वदनैर्घोरैः सूर्येन्दुज्वलनोपमैः ॥ ४ ॥ वेदानेकेन सोऽधीते सुरामेकेन चापिबत् । एकेन च दिशः सर्वाः पिबन्निव निरीक्षते ॥ ५ ॥ स तपस्वी मृदुर्दान्तो धर्मे तपसि चोद्यतः । तपस्तस्य महत्तीव्रं सुदुश्चरमरिन्दम ॥६॥ तस्य दृष्ट्वा तपोवीर्यं सत्यं चामिततेजसः विषादमगमच्छक्र इन्द्रोऽयं मा भवेदिति । ७ । कथं

ने भी दुःख पाये हैं ॥ ५३ ॥ और हे भरतवंशी राजन्! देवताओंके राजा महात्मा इन्द्रने तथा इन्द्राणीने भी महादुःख भोगा था ऐसो सुननेमें आया है ॥ ५४ ॥ अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ छ

युधिष्ठिर बोले कि-हे राजेंद्र ! महात्मा इंद्र पर तथा इन्द्राणी पर किस प्रकार महाघोर दुःख पड़ा था, यह जाननेकी मुझे उत्कण्ठा है१ शल्य बोला कि-हे भरतवंशी राजन् ! इन्द्रके तथा इन्द्राणीके ऊपर किस प्रकार दुःख पड़ा था ? इस विषयमें मैं तुमसे प्राचीन ऐतहासिक कथा कहता हूँ, उसे सुनो ॥२॥ पहिले देवताओंमें मान्य महातपस्वी त्वष्टा नामक एक देवता था, उसने इन्द्रके साथ वैर बँधजाने पर त्रिशिरा नामक एक पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ ३ ॥ उस महाकांति वाले विश्वरूपने इंद्रकी पदवी लेनेकी इच्छा की थी, उसके सूर्य, चंद्रमा तथा अग्निकी समान महाभयङ्कर तीन मुख थे ॥४॥ वह एक मुखसे वेदोंको पढता था, दूसरेसे सुरा पीता था और तीसरे मुखसे मानों सब दिशाओंको निगले जाता हो इस प्रकार देखा करता था५ हे अरिंदमन राजन् ! वह त्रिशिरा तपस्वी, कोमल, दांत, तथा धर्म और तप करनेमें तत्पर रहता था, उसने इन्द्रकी पदवी पानेके लिये दुष्कर तीव्र तप करना आरम्भ किया ॥ ६ ॥ उस महाबलवान् तपस्वीका तपोबल और सत्य देख कर यह इन्द्र न होय तो अच्छा हो

सज्जेच्च भोगेषु न च तप्येन्महत्तपः। विवर्द्धमानस्त्रिशिराः सर्वं हि भुवनं ग्रसेत् । ८ । इति सञ्चिन्त्य बहुधा बुद्धिमान् भरतर्षभ । आज्ञापयत् सोऽप्सरसस्त्वष्टृ पुत्रप्रलोभने ॥९॥ यथा स सज्जेत् त्रिशिराः कामभोगेषु वै भृशम् । क्षिप्रं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत मा चिरम् ॥ १० ॥ शृङ्गारवेशाः सुश्रोण्यो हारैर्युक्ता मनोहरैः । हावभावसमायुक्ताः सर्वाः सौन्दर्यशोभिताः॥११॥ प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं भयं मम । अस्वस्थं ह्यात्मनात्मानं लक्षयामि वराङ्गनाः । भयं तन्मे महाघोरं क्षिप्रं नाशयतावलाः ॥ १२ ॥ अप्सरस ऊचुः । तथा यत्नं करिष्यामः शक्र तस्य प्रलोभने । यथा नावाप्स्यसि भयं तस्माद् बलनिषूदन॥१३॥निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां योऽसावास्ते तपोनिधिः । तं प्रलोभयितुं देव गच्छामः सहिता वयम् । यतिष्यामो वशे कर्तुं व्यपनेतुञ्च ते भयम् ।१४। शल्य उवाच । इन्द्रेण तास्त्वनुज्ञाता जग्मुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् । तत्र ता

ऐसा विचार करता हुआ इन्द्र खेद करने लगा ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् इंद्र मनमें अनेकों विचार करने लगा, कि-यह विश्वरूप भोग विलासमें किस प्रकार फँसे और यह महातपस्या करना किस प्रकार छोडे यह तीन शिरवाला विश्वरूप यदि वृद्धि पायगा तो सब लोकोंको निगल जायगा ॥ ८ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! इस प्रकार बुद्धिमान् इन्द्रने विचार करके विश्वकर्माके पुत्र त्रिशिराको लुभानेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी कि-॥ ९ ॥ हे अप्सराओ ! मुझे अपना मन अस्वस्थ प्रतीत होता है तुम यहाँसे शीघ्र जाओ और त्रिशिरा विश्वरूप जिस प्रकार काम भोगमें फँसे तैसे ही उसे लुभाओ जरा भी देर न करो तुम सब सौंदर्य वाली और सुन्दर कमर वाली स्त्रियें हो अंत शृंगार रसको दीप्त करने वाले वेश बनाओ मनोहर हारोंको कण्ठमें पहिरो, हावभाव युक्त बनो और त्रिशिरा विश्वरूपको लुभाओ तथा मेरे भयको दूर करो, तुम्हारा कल्याण हो ॥१०-१२॥ यह सुन कर वे अप्सराएं बोलीं कि-"हे इन्द्र ! हम उसको लुभानेका यत्न करेंगी, कि-जिससे हे बलदैत्य के नाशक ! तुमको उससे भय नहीं रहेगा ॥ १३ ॥ हे देव ! जो तपोनिधि मानो जगत्को जलाये देते हों इस प्रकार दोनों नेत्रोंसे दिशाओं की ओर देखा करते हैं, उन विश्वरूपको लुभानेके लिए हम सब इकट्ठी हो कर जाती हैं और तुम्हारे भयको दूर करनेके लिए तथा उनको वशमें करनेके लिये हम प्रयत्न करेंगी ॥ १४ ॥ शल्य बोले कि हे युधिष्ठिर ! इतना कह कर इन्द्रने अप्सराओंको जानेकी आज्ञा दी, तुरन्त

विविधैर्भावैर्लोभयन्ते वरांगनाः॥१५॥ नित्यं सन्दर्शयामासुस्तथैवांगेषु सौष्ठवम्। नाभ्यगच्छत् प्रहर्षन्ताः स पश्यन् सुमहातपाः॥१६॥ इन्द्रियाणि वशे कृत्वा पूर्वसागरसन्निभः। तास्तु यत्नं परं कृत्वा पुनः शक्रमुपस्थिताः॥१७॥ कृताञ्जलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन्। न स शक्यः सुदुर्द्धर्षो धैर्याच्चालयितुं प्रभो ॥ १८ ॥ यत्ते कार्यं महाभाग क्रियतां तदनन्तरम्। सम्पूज्याप्सरसः शक्रो विसृज्य स महामतिः॥१९॥ चिन्तयामास तस्यैव वधोपायं युधिष्ठिर। स तूष्णीं चिन्तयन् वीरो देवराजः प्रतापवान्॥ २० ॥ विनिश्चितमतिर्धीमान् वधे त्रिशिरसोऽभवत्। वज्रमस्य क्षिपाम्यद्य स क्षिप्रं न भविष्यति ॥२१॥ शत्रुः प्रवृद्धो नोपेक्ष्यो दुर्बलोऽपि बलीयसा। शास्त्रबुद्ध्या विनिश्चित्य कृत्वा बुद्धिं वधे दृढाम् ॥ २२ ॥ अथ वैश्वानरनिभं घोररूपं भयावहम्। मुमोच वज्रं

ही वे अप्सराएँ त्रिशिराके पास गईं और तहाँ जाकर उन सुंदरांगनियोंने अनेकों प्रकारके हाव भावोंसे उनको ललचाना आरम्भ किया वे अप्सरायें निरन्तर उनको अंगकी सुन्दरता दिखाती थीं परन्तु महातपस्वी त्रिशिरा पूर्वसागरकी समान अचल थे उन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें रक्खा और अप्सराओंके अङ्ग प्रत्यगोंको देख कर चलायमान नहीं हुए इस प्रकार अप्सराओंने त्रिशिराको मोहित करनेके लिये बहुत ही प्रयत्न किया परन्तु जब वे अपने प्रयत्नमें निष्फल हुईं तो इन्द्रके पास लौट आईं ॥ १६॥१७ ॥ और दोनों हाथ जोड़ इन्द्रसे कहने लगीं कि वह तपस्वी दुराधर्ष है उसको धैर्यसे डिगाना सहज नहीं है ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! अब जो तुम उचित समझो सो करो महाबुद्धिमान् इन्द्रने अप्सराओंका सत्कार कर उन्हें विदा किया तदनन्तर हे युधिष्ठिर ! वह प्रतापी वीर देवराज इन्द्र गुप्त रीतिसे विश्वरूपके वधका प्रयत्न करने लगा त्रिशिराका वध करनेका उसने अपने मनमें दृढ़ विचार किया और उसने मनमें विचारा कि-दुर्बल शत्रु भी यदि बढ़ता हो तो उसकी ओरसे बलवान्को उपेक्षा करके नहीं बैठे रहना चाहिये अतः आज मैं त्रिशिरा पर वज्रका प्रहार करूँगा, जिससे वह तुरत मर जायगा, इस प्रकार नीति शास्त्र के विचारानुसार निश्चय करके उसका संहार करनेका दृढ़ निश्चय किया ॥ १९-२२ ॥ तदनन्तर उसने अति क्रोधमें भर कर त्रिशिराके ऊपर वज्रका घोर प्रहार किया उस प्रहारके होते ही जैसे पर्वतका शिखर टूट कर पृथ्वी पर गिरता है तैसे ही त्रिशिरा विश्वरूप पृथ्वी

संक्रुद्धः शक्रस्त्रिशिरसं प्रति ॥ २३ ॥ स पपात हतस्तेन वज्रेण दृढ-माहतः । पर्वतस्येव शिखरं प्रणुन्नं मेदिनीतले ॥ २४ ॥ तन्तु वज्रहतं दृष्ट्वा शयानमचलोपमम् । न शर्म लेभे देवेन्द्रो दीपितस्तस्य तेजसा२५ हतोऽपि दीप्ततेजाः स जीवन्निव हि दृश्यते । घातितस्य शिरांस्याजौ जीवन्तीवाद्भुतानि वै ।२६। ततोऽतिभीतगात्रस्तु शक्रआस्ते विचारयन् । अथाजगाम परशुं स्कन्धेनादाय वर्द्धकिः ॥२७॥ तदरण्यं महाराज यत्रास्तेऽसौ निपातितः । स भीतस्तत्र तक्षाणं घटमानं शचीपतिः ॥ २८ ॥ अपश्यदब्रवीच्चैनं सत्वरं पाकशासनः । क्षिप्रं छिंधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥२९॥तक्षोवाच । महास्कंधो भृशं ह्येष: परशुर्न भविष्यति । कर्त्तुञ्चाहं न शक्ष्यामि कर्म सद्भिर्विगर्हितम्॥३०॥ इंद्र उवाच । मा भैस्त्वं शीघ्रमेतद्वै कुरुष्व वचनं मम।मत्प्रसादाद्धि ते शस्त्रं वज्रकल्पं भविष्यति ३१ तक्षोवाच । कं भवन्तमहं विद्यां घोरकर्माणमद्य वै । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥३२॥ इन्द्र

पर गिर पड़ा॥२३॥२४॥पर्वतकी समान उन्नतशरीर विश्वरूप वज्रसे मरण पाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा था तो भी इन्द्र उसके तेजको देख कर जलने लगा और उसके मनमें सन्ताप होने लगा ॥ २५ ॥ विश्वरूप मर गया था तो भी उसके तेजके प्रदीप्त होनेके कारण वह जीवितसा ही लगता था उसके मार डालने पर भी रणमें पड़े हुए उसके मस्तक मानो जीवित हैं ऐसे प्रतीत होते थे ॥२६॥ उसके ऐसे स्वरूप को देख कर इन्द्रके अङ्ग (हाथ पैर) ढीले पड़ गए और वह खड़ा २ अब क्या करना चाहिये इसका विचार करने लगा ॥ २७ ॥ इतनेमें ऐसा हुआ कि-हे महाराज ! जिस जङ्गलमें त्रिशिरा पड़ा था, तिस जंगलमें कंधे पर कुल्हाड़ी धरे हुए एक बढ़ई आया डरे हुए इन्द्रने उस बढ़ईको वनमें जाते हुए देख कर तुरन्त उससे कहा, कि-अरे बढ़ई ! मेरे कहनेको मान कर शीघ्र ही इसके मस्तकोंको काट डाल २८-२९ यह सुन कर बढ़ईने कहा, कि-इसके कन्धे बड़े मोटे हैं इसको काटने से मेरी कुल्हाड़ी टूट जायगी और सज्जन पुरुषोंने जिस कामको निन्दित कहा है, उस कामको भी मैं नहीं कर सकता ॥ ३० ॥ इन्द्र बोला कि-तू डरै मत किंतु शीघ्र ही मेरा कहना कर जा मेरी कृपासे तेरा शस्त्र वज्रकी समान होजायगा ॥३१॥ बढ़ई बोला कि-इस घोर कामको करनेमें तत्पर हुए तुम कौन हो ? यह मैं जानना चाहता हूँ तुम मुझे अपना पता भली प्रकार बताओ । ३२ । इन्द्रने कहा कि-

मिन्द्रो देवराजस्तक्षन्विदितमस्तु ते । कुरुष्वैतद्यथोक्तं मे तक्षन्मात्र विचारय ॥ ३३ ॥ तक्षोवाच । क्रूरेण नापत्रपसे कथं शक्रेह कर्मणा । ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न ते ॥ ३४ ॥ शक्र उवाच । पश्चाद् धर्मं चरिष्यामि पावनार्थं सुदुश्चरम्। शत्रुरेष महावीर्यो वज्रेण निहतो मया ॥ ३५॥ अद्यापि चाहमुद्विग्नस्तक्षन्नस्माद्बिभेमि वै । क्षिप्रं छिन्धि शिरांसि त्वं करिष्येऽनुग्रहं तव ॥ ३६ ॥ शिरः पशोस्ते दास्यन्ति भागं यज्ञेषु मानवाः । एष तेऽनुग्रहस्तक्षन् क्षिप्रं कुरु मम प्रियम् ॥ ३७ शल्य उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु तक्षा स महेन्द्रवचनात्तदा । शिरांस्यथ त्रिशिरसः कुठारेणाच्छिनत्तदा ॥ ३८ ॥ निकृत्तेषु ततस्तेषु निष्क्रामन्नण्डजास्त्वथ । कपिञ्जलास्तित्तिराश्च कलविंकाश्च सर्वशः ॥ ३९॥ येन वेदानधीते स्म पिबते सोममेव च । तस्माद् वक्त्राद्विनिश्चेरुः क्षिप्रं तस्य कपिञ्जलाः ॥४०॥ येन सर्वा दिशो राजन् पिबन्निव निरीक्षते । तस्माद्वक्त्राद्विनिश्चेरुस्तित्तिरास्तस्य पाण्डव ॥ ४१ ॥ यत्सुरा-

---

वढ़ई ! तुझे ज्ञात हो कि—मैं देवताओंका राजा हूँ और मेरा नाम इन्द्र है अतः हे वढई ! तुझे विचार नहीं करना चाहिये किन्तु तू मेरे कहनेके अनुसार शीघ्र ही इसका नाश कर ॥ ३३ ॥ वढई बोला कि-हे इन्द्र ! ऐसा क्रूर कर्म करने पर भी तुझे लज्जा नहीं आती इस ऋषिपुत्रका नाश करनेसे तुझे ब्रह्महत्याका डर क्यों नहीं लगता? ३४ इन्द्र बोला कि-मैं पीछे पवित्र होनेके लिये और अपना पाप धोनेके लिये महाकठिन धर्माचरण करूँगा अस्तु यह महापराक्रमी मेरा शत्रु है,अतः मैंने इसको वज्रसे मारडाला है३५हे वढई ! मैं इसके विशाल अंगोंको देखकर भयभीत होरहा हूं और इससे वहुत डरता हूँ अतः इसके मस्तकोंको शीघ्र अलग करदे मैं तेरे ऊपर अनुग्रह करूँगा ३६ हे वढई ! मनुष्य तुझको यज्ञमें पशुके मस्तकका भाग देंगे यह वर मैं तुझे देता हूँ, अतः अव तू भी शीघ्र ही मेरा प्रिय काम कर ॥ ३७ ॥ शल्य बोले कि–हे भरतवंशी राजन् ! वढईने इन्द्रके कहनेको सुनकर उसी समय कुल्हाडी मारकर त्रिशिराके मस्तकोंको धड़से अलग कर दिया ॥ ३८ ॥ त्रिशिराके मस्तक ज्यों ही कटे कि–उसके मस्तकोंमें से वाज तीतर और कलविंक नामक पक्षी निकलने लगे ॥ ३९ ॥ वह जिस मुखसे वेद पढता था और सोमका पान करता था उस मुखमेंसे तुरन्त कपिञ्जल पक्षी उत्पन्न हुए ॥४०॥ हे पाण्डुपुत्र राजन् ! जिस मुखसे वह दिशाओंको पिये जाता हो इस प्रकार देखता था,

पन्तु तस्यासीद्वक्त्रं त्रिशिरसस्तदा । कलविंकाः समुत्पेतुः श्येनाश्च भरतर्षभ॥४२॥ततस्तेषु निकृत्तेषु विज्वरो मघवानथ । जगाम त्रिदिवं हृष्टस्तक्षापि स्वगृहान् ययौ॥४३॥ मेने कृतार्थमात्मानं हित्वा शत्रुं सुरारिहा । त्वष्टा प्रजापतिः श्रुत्वा शक्रेणाथ हतं सुतम् ॥ ४४ ॥ क्रोधसंरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत् । त्वष्टोवाच । तप्यमानं तपो नित्यं क्षांतं दान्तं जितेन्द्रियम् । विनापराधेन यतः पुत्रं हिंसितवान्मम४५ तस्माच्छक्रविनाशाय वृत्रमुत्पादयाम्यहम् । लोका पश्यन्तु मे वीर्यं तपसश्च बलं महत् ॥ ४६ ॥ स च पश्यतु देवेन्द्रो दुरात्मा पापचेतनः । उपस्पृश्य ततः क्रुद्धस्तपस्वी सुमहायशाः ॥४७ ॥ अग्नौ हुत्वा समुत्पाद्य घोरं वृत्रमुवाच ह । इन्द्रशत्रो विवर्द्धस्व प्रभावात्तपसो मम ॥ ४८ ॥ सोऽवर्द्धत दिवं स्पृष्ट्वा सूर्यवैश्वानरोपमः । किं करोमीति चोवाच कालसूर्य इवोदितः ॥ ४९ ॥ शक्रं जहीति चाप्युक्तो जगाम त्रिदिवं

उस मुखमेंसे तीतर उत्पन्न हुए ॥४१॥ और हे राजन् ! वह त्रिशिरा जिस मुखसे मदिरापान करता था उस मुखमेंसे कलविंक तथा बाज उत्पन्न हुए ॥ ४२ ॥ जब बढ़ईने तीनों मस्तकोंको काट डाला तब इन्द्र शांत और प्रसन्न होकर स्वर्गको चला गया और बढई भी अपने घरको चला गया ॥ ४३ ॥ दैत्योंका नाश करनेवाला इन्द्र अपने शत्रु का नाश करके अपनेको कृतार्थ मानने लगा परन्तु प्रजापति विश्वकर्मा, त्वष्टा इन्द्रने मेरे पुत्रको मार डाला है यह सुन कर क्रोधसे लाल २ नेत्र करके इसप्रकार बोला कि-इंद्रने मेरे सदा तप करनेवाले क्षमाशील दांत और जितेन्द्रिय पुत्रको विना अपराधके ही मारडाला है अतः मैं भी इन्द्रका नाश करनेके लिये वृत्रको उत्पन्न करता हूँ, हे लोगों ! अब तुम मेरे पराक्रम तथा तपके बलको देखोगे । तथा दुष्ट चित्त वाला दुरात्मा देवेन्द्र भी मेरे पराक्रमको देखे ? इस प्रकार मनमें कहकर महायशस्वी और तपस्वी त्वष्टाने क्रोधातुर होकर जल का आचमन किया और अग्निमें होम करके महाभयंकर वृत्रको उत्पन्न किया और उसको आज्ञा दी कि-हे इन्द्रशत्रु ! तू मेरे तपके प्रभावसे वृद्धिको प्राप्त कर४४-४६इसप्रकार कहते ही सूर्य औरअग्निकी समान प्रचंड तेज वाला वृत्र उत्पन्न होकर आकाश तक ऊँचा बढ गया और उदय होते हुए कालसूर्यकी समान दीखनेवाला वह वृत्र विश्वकर्मा के आगे जाकर कहने लगा कि-बताइये ! मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ यह सुनकर त्वष्टाने कहा कि-तू इन्द्रका नाश कर ! यह

ततः । ततो युद्धं समभवद् वृत्रवासवयोर्महत् ॥ ५० ॥ संक्रुद्धयो- र्महाघोरं प्रसक्तं कुरुसत्तम । ततो जग्राह देवेन्द्रं वृत्रो वीरः शत- क्रतुम् ॥५१॥ अपावृत्याक्षिपद्वक्त्रे शक्रं कोपसमन्वितः । ग्रस्ते वृत्रेण शक्रे तु सम्भ्रान्तास्त्रिदिवेश्वराः॥५२॥ असृजंस्ते महासत्त्वा जृम्भिकां वृत्रनाशिनीम् । विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादपावृतात् । ५३ ॥ स्वान्यङ्गान्यभिसंक्षिप्य निष्क्रान्तो बलनाशनः । ततः प्रभृति लोकस्य जृम्भिका प्राणसंश्रिता ॥ ५४॥ जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिः- सृतम् । ततः प्रववृते युद्धं वृत्रवासवयोः पुनः ॥५५॥ संरब्धयोस्तदा घोरं सुचिरं भरतर्षभ । यदा व्यवर्द्धत रणे वृत्रो बलसमन्वितः ५६ त्वष्टुस्तेजोबलाद् वृद्धस्तदा शक्रो न्यवर्त्तत । निवृत्ते च तदा देवा विषादमगमन् परम् ॥५७॥ समेत्य सह शक्रेण त्वष्टुस्तेजोविमोहिताः । अमन्त्रयन्त ते सर्वे मुनिभिः सह भारत ॥ ५८ ॥ किं कार्यमिति वै

सुनकर वृत्र तुरन्त स्वर्गमें गया और तहाँ हे कुरुवंशश्रेष्ठ क्रोधित हुए वृत्र और इन्द्रका महाभयंकर युद्ध होने लगा इस लड़ाईमें वृत्रने देव- राज इन्द्रको धर दबोचा ॥ ४७-५१ ॥ और क्रोधसे मुँह फाड़कर इंद्र को साबत ही निगल गया वृत्रासुरने इन्द्रको निगला कि—स्वर्गके बड़े २ देवता घबरा गये ॥ ५२ ॥ फिर महाबली देवताओंने वृत्रका नाश करनेके लिए जम्भाईको उत्पन्न किया और वृत्रासुरने ज्यों ही जँभाई ली कि—उसके फैले हुए मुखमेंसे बलका नाश करनेवाला इंद्र अपने अङ्गोंको सकोड़ कर बाहर निकल आया उस ही दिनसे जंभाई ने मनुष्योंके प्राणमें अपना निवास किया है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इन्द्रको बाहर निकला हुआ देखकर सब देवता प्रसन्न हुए हे भरतवंशश्रेष्ठ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए वृत्र और इन्द्रमें फिरसे बहुत समय तक महाघोर युद्ध हुआ परन्तु त्वष्टाके बल और तेजसे वृत्रासुर बली हो कर युद्धमें प्रबल होने लगा तब इन्द्र युद्धमेंसे भाग गयो और उस के युद्धसे भागते ही देवता बड़े खिन्न होगए ॥ ५५-५७ ॥ हे भरत- वंशी राजन् ! तदनन्तर त्वष्टाके तेजसे मूढ़ बने हुए सब देवता, इन्द्र और मुनियोंके साथ इकट्ठे होकर अब क्या करना चाहिए इस विषय में विचार करने लगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! भयसे व्याकुल हुए देवता अब क्या करें ? इसका विचार करके वृत्रासुरके नाश करनेकी इच्छा से मन्दराचल पर्वतके समीपमें खड़े होकर अन्तःकरणमें महात्मा

राजन् विचिन्त्य भयमोहिताः। जग्मुः सर्वे महात्मानं मनसा विष्णुमव्ययम्। उपविष्टा मन्दराग्रे सर्वे वृत्रवधेप्सवः॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणीन्द्रपराजये नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इन्द्र उवाच। सर्वं व्याप्तमिदं देवा वृत्रेण जगदव्ययम्। न ह्यस्य सदृशं किञ्चित् प्रतिघाताय यद्भवेत्१ समर्थो ह्यभवं पूर्वमसमर्थोऽस्मि सांप्रतम्। कथं नु कार्यं भद्रं वो दुर्द्धर्षः स हि मे मतः॥२ तेजस्वी च महात्मा च युद्धे चामितविक्रमः। ग्रसेत्रिभुवनं सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥३ तस्माद्विनिश्चयमिमं शृणुध्वं त्रिदिवौकसः। विष्णोः क्षयमुपागम्य समेत्य च महात्मना॥ ४॥ तेन संमन्त्र्य वेत्स्यामो वधोपायं दुरात्मनः। शल्य उवाच। एवमुक्ते मघवता देवाः सर्षिगणास्तदा। शरण्यं शरणं देवं जग्मुर्विष्णुं महाबलम्॥५॥ ऊचुश्च सर्वे देवेशं विष्णुं वृत्रभयार्दिताः। त्रयो लोकास्त्वया क्रान्तास्त्रिभिर्विक्रमणैः पुरा॥ ६॥ अमृतं चाहृतं विष्णो दैत्याश्च निहता रणे। बलिं बद्ध्वा महादैत्यं शक्रो देवाधिपः

अविनाशी विष्णुका ध्यान करने लगे ५९ नवम अध्याय समाप्त॥९॥

इन्द्रने देवताओंसे कहा कि-हे देवताओं! वृत्रासुरने इस सब जगत्को घेर लिया है और उसका नाश करनेकी शक्ति वाला कोई भी अस्त्र शस्त्र नहीं है॥ १॥ मैं पहिले तो समर्थ था परन्तु अब मैं असमर्थ होगया हूँ, हे देवताओं! तुम्हारा कल्याण हो हमें अब क्या करना चाहिये यह तुम मुझसे कहो मेरे विचारके अनुसार तो यह दैत्य अजेय है॥२॥ वह तेजस्वी महात्मा और युद्धमें अगाध पराक्रमी है, वह चाहे तो देवता तथा दानवोंसहित तीनों लोकोंको निगल सकता है अतः हे देवताओं! तुम मेरे इस निश्चित किये हुए विचार को सुनो हम सब विष्णुके लोकमें चलें और तहाँ उन महात्मासे मिल कर उनके साथ विचार करके उस दुष्टात्मा वृत्रके वधका उपाय खोजें शल्य कहते हैं, कि हे भरतवंशी राजन्! इस प्रकार इन्द्रके कहनेको सुनकर सब देवता और ऋषि शरणागतवत्सल शरणरूप और महाबली विष्णुदेवकी शरणमें गए॥ ५॥ और वृत्रासुरके भयसे पीडित सब देवता देवनियंता विष्णुसे इसप्रकार बोले कि-हे विष्णो! तुमने पहिले तीन पैरोंसे तीनों लोकोंसे नाप लिया था॥ ६॥ हे विष्णो! तुमने दैत्योंसे अमृत छीन कर देवताओंको दिया है रण करके दैत्यों का नाश किया है और महादैत्य राजा बलिको बाँधकर इन्द्रको देव-

कृतः ॥ ७ ॥ त्वं प्रभुः सर्वदेवानां त्वया सर्वमिदं ततम्
महादेवः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ८ ॥ गतिर्भव त्वं देवान
रोत्तम । जगद्व्याप्तमिदं सर्वं वृत्रेणासुरसूदन ॥ ९ ॥
अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमुत्तमम् । तस्मादुपायं व
न भविष्यति ॥ १० ॥ गच्छध्वं सर्षिगन्धर्वा यत्रासौ
साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥११॥ भविष्य
शक्रस्य मम तेजसा । अदृश्यश्च प्रवेक्ष्यामि वज्रे ह्यस्य
गच्छध्वमृषिभिः सार्द्धं गंधर्वैश्च सुरोत्तमाः । वृत्रस्य सा
कुरुत मा चिरम् ॥ १३ ॥ शल्य उवाच । एवमुक्ते तु देवै
शास्तदा । ययुः समेत्य सहिताः शक्रं कृत्वा पुरःसरम्
मेत्य च यदा सर्व एव महौजसः । तं तेजसा प्र
पन्तं दिशो दश ॥ १५ ॥ ग्रसन्तमिव लोकांस्त्रीन् स
यथा। ददृशुस्ते ततो वृत्रं शक्रेण सह देवताः ॥ १६

ताओंका स्वामी बनाया है ॥ ७ ॥ हे महादेव ! तुम स
के स्वामी हो, यह सब संसार आपसे व्याप्त है, तुम दे
सब लोग तुमको नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥ हे देवश्रेष्ठ
विनाशक ! वृत्रासुर सम्पूर्ण जगत् पर व्याप गया है अ
को और देवताओंको आश्रय दो ॥ ९ ॥ विष्णु बोले कि
हित अवश्य करना चाहिये, अतः मैं तुमसे ऐसा उपाय
जिस उपायके करनेसे वृत्रासुरका नाश होगा ॥ १० ॥
तुम ऋषि और गंधर्वोंके साथ जहाँ विश्वरूपधारी वृत्र
जाओ और उसे सामके प्रयोगसे समझाकर वशमें करो
करनेसे तुम उसका पराजय कर सकोगे॥११॥हे देवता
इन्द्रके तेजसे तुम्हारी विजय होगी, मैं अदृश्यरूपसे इन्द्र
उत्तम आयुधमें प्रवेश करूँगा । १२ । हे श्रेष्ठ देवताओं
गन्धर्व और इन्द्रभी मिलकर वृत्रासुरके पास जाओ और
सन्धि करो विलम्ब मत करो । १३ । शल्य कहते हैं कि
विष्णुने कहा तब ऋषि तथा देवता इकट्ठे होकर वृत्रासु
चल दिये । १४ । जब वे वृत्रासुरके पास पहुँचे तब मह
देवताओंने तथा इन्द्रने तेजसे झलझलाते हुए और द

ततोऽभ्येत्य ह्यूचुः वृत्रमियं वचः । व्याप्त' जगदिदं सर्वं तेजसा तव दुर्ज्जय ॥ १७ ॥ न च शक्नोषि निर्ज्जेतुं वासवं बलिनाम्बर । युध्यतोश्चापि वां कालो व्यतीतः सुमहानिह ॥ १८ ॥ पीडयन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः। सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा १९ अवाप्स्यसि सुखं त्वञ्च शक्रलोकांश्च शाश्वतान् । ऋषिवाक्यं निशम्याथ वृत्रः स तु महाबलः ॥ २० ॥ उवाच तानृषीन् सर्वान् प्रणम्य शिरसासुरः । सर्वे यूयं महाभागा गन्धर्वाश्चैव सर्वशः॥२१॥ यद् ब्रूथ तच्छ्रुतं सर्वं ममापि शृणुतानघाः। सन्धिः कथं वै भविता मम शक्रस्य चोभयोः। तेजसोर्हि द्वयोर्देवाः सख्यं वै भविता कथम्२२ऋषय ऊचुः। सकृत्सतां सङ्गतं लिप्सितव्यं ततः परम्भविता भव्यमेव। नातिक्रामेत् सत्पुरुषेण सङ्गतं तस्मात् सतां सङ्गतं लिप्सितव्यम्२३दृढं सतां सङ्गतं चापि नित्यं ब्रूयाच्चार्थं ह्यर्थकृच्छ्रेषु धीरः । महार्थवत् सत्पुरुषेण संगतं तस्मात् सन्तं न जिघांसेत धीरः ॥ २४ ॥ इन्द्रः सतां सम्म·

और मीठी बातोंमें उससे कहने लगे कि हे दुर्जय ! तेरा तेज इस सब जगत्में व्याप गया है । १७ । तो भी हे महाबलशाली ! तू इन्द्रको क्यों नहीं जीत सका है ? तुम दोनोंको लड़ते २ बहुत समय बीत गया परन्तु उसका अन्त नहीं आया॥१८॥देवता असुर मनुष्य आदि सब प्रजा दुःखित होरही है इससे अतः हे वृत्र ! तू सदाके लिये इन्द्र के साथ मित्रता करले ॥ १९॥ इन्द्रके साथ मित्रता करनेसे तुझे सुख होगा और इन्द्रके अक्षयलोक भी तुझे मिलेंगे ऋषियोंकी ऐसी बात को सुनकर महाबली वृत्रासुरने मस्तक झुका कर उन ऋषियोंको प्रणाम किया और उनसे कहा कि हे निर्दोष ऋषियो ! आप सब भाग्यशाली और सकल गन्धर्व मुझसे जो कुछ कहते हैं वह मैंने सुना अब मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ उस मेरे कथनको तुम भी सुनो, बताओ मेरी और इन्द्रकी मित्रता किस प्रकार हो ?दो तेजस्वियोंमें मित्रता क्योंकर होसकती है ? । २०-२२ । ऋषि बोले कि "एकबार पुरुषोंको मिलना चाहिये फिर चाहें जो कुछ हो,पुरुष सत्संगके अवसरको कभीभी हाथसे न जानेदेय किंतु सत्संगकी इच्छाही किया करे सत्पुरुषोंकी मित्रता बहुत समय तक बनी रहती है और वह दृढ़ होती है, जब धनकी या और किसी बातकी आपत्ति आपड़ती है तब धीर पुरुष अर्थात् सत्पुरुष कार्यसाधक विषयका उपदेश देते हैं महापुरुषोंके साथ जो समागम होता है वह महाफलदायक होता है,

तश्च निवासश्च महात्मनाम् । सत्यवादी ह्यनिन्द्यश्च धर्मवित् सूक्ष्मनिश्चयः ॥ २५ ॥ तेन ते सह शक्रेण सन्धिर्भवतु नित्यदा । एवं विश्वासमागच्छ मा तेऽभूद् बुद्धिरन्यथा ॥२६॥ शल्य उवाच । महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महाद्युतिः । अवश्यं भगवन्तो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ २७ ॥ ब्रवीमि यदहं देवास्तत्सर्वं क्रियते यदि । ततः सर्वं करिष्यामि यदूचुर्मां द्विजर्षभाः ॥ २८ ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा । न शस्त्रेण न चास्त्रेण न दिवा न तथा निशि ॥ २९ ॥ वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः । एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नित्यदा ॥ ३० ॥ बाढमित्येव ऋषयस्तमूचुर्भरतर्षभ । एवं वृत्ते तु सन्धाने वृत्रः समुदितोऽभवत् ॥ ३१ ॥ युक्तः सदाभवच्चापि शक्रो हर्षसमन्वितः । वृत्रस्य वधसंयुक्तानुपायाननुचिन्तयन् ॥ ३२ ॥ छिद्रान्वेषी समुद्विग्नः सदा वसति देवराट् । स

इसलिये धैर्यवान् पुरुष सत्पुरुषोंको नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ २४ ॥ इन्द्र भी सत्पुरुषोंमें माननीय है, महात्माओंको आश्रय देनेवाला है, सत्यवक्ता है, श्रेष्ठ चरित्रवाला है, धर्मवेत्ता है और सूक्ष्म बातका निश्चय करनेवाला है,अतः इस इन्द्रके साथ तू सदाके लिए मित्रता कर और इसका विश्वास कर, अपने मनमें इस विषयमें और कुछ विचार मत कर ॥ २५ ॥ २६ ॥ शल्यने कहा कि—हे राजन् युधिष्ठिर ! महर्षियोंकी इस बातको सुन कर महाकान्ति वाले वृत्रासुरने ऋषियोंसे कहा कि—तुम तपस्वियोंका कहना मुझे अवश्य मान्य है ॥ २७ ॥ परन्तु हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों और देवताओं ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूं यदि तुम उसी प्रकार करो तो तुमने जो कहा है, मैं उसका पालन करूँगा ॥ २८ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! इन्द्र तथा देवता सूखी वस्तुसे, गीली वस्तुसे, पाषाणसे, काष्ठसे, शस्त्रोंसे तथा अस्त्रों से दिनमें अथवा रात्रिमें भी मेरा नाश न कर सकें, इस नियम पर मुझे इन्द्रके साथ सदाको मित्रता करना स्वीकार है ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! वृत्रके इन वाक्योंको सुनकर ऋषियोंने वर देते हुए कहा कि—"तथास्तु" इसप्रकार इन्द्र और वृत्रमें सन्धि होगई तब वृत्र बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥ वह सदा इंद्रके साथ रहने लगा, देवराज इन्द्र भी मनमें हर्षित हुए परन्तु वह वृत्रका नाश करनेके उपायको मनमें खोजते ही रहते थे, इसकारण ही सदा खिन्न रहते थे वह वृत्रको मारनेके लिए उसके छिद्र ढूँढ़ा करते थे, एक समय सम-

कदाचित् समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ॥३३ ॥ सन्ध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्ते चातिदारुणे । ततः सञ्चिन्त्य भगवान् वरदानं महात्मनः ३४ सन्ध्येयं वर्त्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसं न च । वृत्रश्चावश्यवध्योऽयं मम सर्वहरो रिपुः ॥ ३५ ॥ यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वञ्चयित्वा महासुरम् । महाबलं महाकायं न मे श्रेयो भविष्यति ॥ ३६ ॥ एवं संचिन्तयन्नेव शक्रो विष्णुमनुस्मरन् । अथ फेनं तदापश्यत् समुद्रे पर्वतोपमम् ३७ नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा । एनं क्षेप्स्यामि वृत्रस्य क्षणादेव नशिष्यति॥३८॥ सवज्रमथ फेनं तं क्षिप्रं वृत्रे निसृष्टवान् । प्रविश्य फेनं तं विष्णुरथ वृत्रं व्यनाशयत् ॥ ३९ ॥ निहते तु ततो वृत्रे दिशो वितिमिराभवन् । प्रववौ च शिवो वायुः प्रजाश्च जहृषु-स्तदा ॥ ४० ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगाः । ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः ॥४१॥ नमस्कृतः सर्वभूतैः सर्वभूता-

वान् इंद्रने, सायंकालके समय अतिदारुण मुहूर्तमें समुद्रके तट पर महादैत्य वृत्रासुरको घूमते हुए देखा और उसी समय देवताओंने उस को जो जो वर दिये थे उनका भी ध्यान आया ॥ ३२-३४ ॥ उसने मनमें विचारा कि-इस समय रात्रि और दिन कुछ नहीं है, परन्तु इस समय भयंकर सन्ध्याकाल है, अतः सर्वस्व छीननेवाले शत्रु वृत्रासुरको इस समय अवश्य ही मार डालना चाहिये ॥ ३५ ॥ मैं यदि आज महाबली महाकाय, महासुर वृत्रासुरको नहीं मारूँगा तो मेरा कल्याण कभी नहीं होगा ॥ ३६ ॥ इसप्रकार विचार कर इन्द्रने मनमें विष्णुका स्मरण किया इतनेमें ही उसने समुद्रमें पर्वतकी समान झागोंका ऊँचा टीला देखा ॥ ३७ ॥ उसको देखकर मनमें विचार किया कि-यह झागोंका टीला न सूखा है न गीला है तथा यह शस्त्र भी नहीं है, अतः इससे वृत्रासुरको मारूँगा तो इसका एक क्षणमें नाश होजायगा ॥ ३८ ॥ यह विचार कर उसने वृत्रासुरके ऊपर वज्र के साथ झाग लेकर तुरन्त प्रहार किया और विष्णुने उन झागोंमें प्रवेश करके वृत्रका नाश कर दिया ॥ ३९ ॥ वृत्रासुरके नष्ट होते ही दिशायें प्रकाशित होगईं, सुखदायक पवन चलने लगे, प्रजा हर्षमें भर गई और ऋषि, यक्ष, राक्षस, महासर्प तथा देवता विविधप्रकार के स्तोत्रोंसे महेंद्रकी स्तुति करने लगे ॥ ४१॥ सब प्राणियोंने इंद्रको नमस्कार किया और उसने भी सब प्राणियोंको शांत किया, इस प्रकार धर्मवेत्ता इंद्र शत्रुका नाश करके मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ और

शल्य उवाच । ऋषयोऽथाब्रुवन् सर्वे देवाश्च त्रिदिवेश्वराः । अयं वै नहुषः श्रीमान् देवराज्येऽभिषिच्यताम् ॥ १ ॥ तेजस्वी च यशस्वी च धार्मिकश्चैव नित्यदा । ते गत्वा त्वब्रुवन्सर्वे राजा नो भव पार्थिव २ स तानुवाच नहुषो देवानृषिगणांस्तथा । पितृभिः सहितान् राजन् परीप्सन् हितमात्मनः ॥ ३ ॥ दुर्बलोऽहं न मे शक्तिर्भवतां परिपालने । बलवान् जायते राजा बलं शक्रे हि नित्यदा ॥४॥ तमब्रुवन् पुनः सर्वे देवा ऋषिपुरोगमाः । अस्माकं तपसा युक्तः पाहि राज्यं त्रिविष्टपे ५ परस्परभयं घोरमस्माकं हि न संशयः । अभिषिच्यस्व राजेंद्र भव राजा त्रिविष्टपे ॥ ६ ॥ देवदानवयक्षाणामृषीणां रक्षसां तथा । पितृगंधर्वभूतानां चक्षुर्विषयवर्त्तिनाम् ॥ ७ ॥ तेज आदास्यसे पश्यन् बलवांश्च भविष्यसि धर्मं पुरस्कृत्य सदा सर्वलोकाधिपो भव ।८। ब्रह्मर्षींश्चापि देवांश्च गोपायस्व त्रिविष्टपे ।अभ्यषिच्यत राजेन्द्र ततो राजा त्रिविष्टपे ॥ ९ ॥ धर्मं पुरस्कृत्य तदा सर्वलोकाधिपोऽभवत् । सुदुर्लभं

शल्य कहते हैं कि-हे राजन् युधिष्ठिर ! तदनन्तर सब देवता और ऋषि बोले कि-इस श्रीमान् नहुषको देवताओंके राज्य पर अभिषेक करके देवराज बनाओ ॥ १ ॥ क्यों कि-यह तेजस्वी, यशस्वी और सदा धर्ममें स्थित रहता है, इसप्रकार विचार करनेके पीछे हे राजन् ! सब देवता नहुषके पास जाकर कहने लगे कि-तुम हमारे राजा बनो तब हे राजन् ! नहुषने अपने हितकी इच्छा करके पितृगणोंके साथमें विद्यमान देवताओंसे और ऋषियोंसे कहा कि-॥ २-३ ॥ मैं दुर्बल हूँ और तुम्हारी रक्षा करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, इंद्रमें नित्य बल होता है और जो बली होता है वही राजा होसकता है ॥ ४ ॥ ऋषि आदि सब देवताओंने फिर उससे कहा कि- तुम हमारे तपोबलसे स्वर्गको पालना करना ॥ ५ ॥ हमें आपसमें भयंकर भय प्राप्त होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है, अतः हे राजेंद्र ! तुम स्वर्गके राजा बनो और अपना राज्यासन पर अभिषेक कराओ ॥ ६ ॥ यह देव, दानव यक्ष, ऋषि, राक्षस, पितर, गंधर्व, भूत सब तुम्हारी दृष्टिके सामने खड़े रहेंगे और इनको देखते ही इनके तेजको ग्रहण करके तुम बलवान् होजाओगे अतः तुम सदा धर्मको आगे रखते हुए सब लोकोंके स्वामी बनो ॥ ७ ॥ ८ ॥ और स्वर्गमें निवास करके ब्रह्मर्षियोंकी तथा देवताओंकी रक्षा करो इस प्रकार कहकर हे राजेन्द्र ! स्वर्गके सिंहासन पर राजारूपसे उसका अभिषेक करदिया ॥९॥ नहुष सब लोकों

वरं लब्ध्वा प्राप्य राज्यं त्रिविष्टपे ॥१०॥ धर्मात्मा सततं भूत्वा कामात्मा समपद्यत । देवोद्यानेषु सर्वेषु नन्दनोपवनेषु च ॥ ११ ॥ कैलासे हिमवत्पृष्ठे मन्दरे श्वेतपर्वते । सह्ये महेन्द्रे मलये समुद्रेषु सरित्सु च ॥ १२ ॥ अप्सरोभिः परिवृतो देवकन्यासमावृतः । नहुषो देवराजोऽथ क्रीडन् बहुविधं तदा ॥ १३ ॥ शृण्वन् दिव्या बहुविधाः कथाः श्रुतिमनोहराः । वादित्राणि च सर्वाणि गीतञ्च मधुरस्वनम् १४ विश्वावसुर्नारदश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः । ऋतवः षट् च देवेन्द्रं मूर्तिमंत उपस्थिताः ॥ १५ ॥ मारुतः सुरभिर्वाति मनोज्ञः सुखशीतलः । एवञ्च क्रीडतस्तस्य नहुषस्य दुरात्मनः ॥ १६ ॥ सम्प्राप्ता दर्शनं देवी शक्रस्य महिषी प्रिया । स तां सन्दृश्य दुष्टात्मा प्राह सर्वान् सभासदः ॥१७॥ इन्द्रस्य महिषी देवी कस्मान्मां नोपतिष्ठति । अहमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥ १८ ॥ आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् । तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥१९॥

का स्वामी होगया और वह सदा धर्मके अनुसार बर्त्ताव करने लगा परन्तु अतिदुर्लभ वर पाकर तथा स्वर्गका राज्य मिलनेसे राजा नहुष यद्यपि नित्य धर्मात्मा था तो भी उसका मन कामके वशमें हो गया देवराज नहुष देवताओंके सकल बगीचोंमें कैलास पर्वत पर नन्दनवनमें तथा और भी सब बगीचोंमें हिमालय पर मन्दर पर्वत पर श्वेत पर्वत पर सह्य पर्वत पर मलय पर्वत पर समुद्रोंमें और नदियोंमें अप्सराओं तथा देवकन्याओंके साथ अनेकों प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगा ॥१०-१३॥ वह कानोंको मीठी लगनेवाली दिव्य कथाएँ अनेकों प्रकारके बाजे तथा मधुर स्वरवाले गीत निरन्तर सुनने लगा ॥१४॥ विश्वावसु नारद गंधर्व तथा अप्सराओंके समूह तथा छः ऋतुएँ, मूर्तिमती होकर उसकी सेवा करने लगीं ॥ १५ ॥ उस समय सुगंधित शीतल मनोहर; सुखकर पवन चलने लगा, इस प्रकार भोग विलास करते२ एक समय इन्द्रकी प्रिया पटरानी इंद्राणी नहुषकी दृष्टि पड़ी, दुष्टात्मा नहुषने इंद्राणीको देखकर सब सभासदोंसे कहा कि-॥ १६ ॥ १७ ॥ मैं देवताओंका इन्द्र हूँ, तथा लोकों का ईश्वर भी हूँ,तो भी इन्द्रकी पटरानी मेरी सेवा करनेके लिये क्यों नहीं आती है ? । १८ । आज देवी इन्द्राणी शची मेरे मंदिरमें उपस्थित हो, इस वृत्तांतकी सूचना मिलने पर इन्द्राणीके चित्तमें खेद हुआ और उसने प्रकटरूपसे बृहस्पतिसे कहा कि-॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्!

रक्ष मां नहुषाद् ब्रह्मंस्त्वामस्मि शरणं गता । सर्वलक्षणसम्पन्नां ब्रह्मंस्त्वं मां प्रभाषसे ॥ २० ॥ देवराजस्य दयितामत्यन्तसुखभागिनीम् । अवैधव्येन युक्तां चाप्येकपत्नीं पतिव्रताम् ॥ २१ ॥ उक्तवानसि मां पूर्वमृतां तां कुरु वै गिरम् । नोक्तपूर्वञ्च भगवन् वृथा ते किंचिदीश्वर ॥२२॥ तस्मादेतत् भवेत् सत्यं त्वयोक्तं द्विजसत्तम । बृहस्पतिरथोवाच शक्राणीं भयमोहिताम् ॥ २३ ॥ यदुक्तासि मया देवि सत्यं तद्भविता ध्रुवम् । द्रक्ष्यसे देवराजानमिन्द्रं शीघ्रमिहागतम् ॥२४॥ न भेतव्यञ्च नहुषात् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते । समानयिष्ये शक्रेण न चिराद्भवतीमहम् ॥ २५ ॥ अथ शुश्राव नहुषः शक्राणीं शरणंगताम् बृहस्पतेरङ्गिरसश्चुक्रोध स नृपस्तदा ॥ २६ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणीन्द्राणीभय एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शल्य उवाच । क्रुद्धं तु नहुषं दृष्ट्वा देवा ऋषिपुरोगमाः । अब्रुवन् देवराजानं नहुषं घोरदर्शनम् ॥ १ ॥ देवराज जहि क्रोधं त्वयि क्रुद्धे

मैं आपकी शरणमें आई हूँ अतः तुम नहुषसे मेरी रक्षा करो, हे ब्रह्मन्! तुम पहिले मुझे सर्वलक्षणसम्पन्न तथा देवराजकी अतीव सुख भोगने वाली प्रियपत्नी कहते थे, इतना ही नहीं किन्तु अखण्ड सौभाग्यवती एकपति वाली और पतिव्रता कहते थे, अतः अब आप अपनी उस वाणीको सत्य करो, हे भगवन्! तुमने पहिले जो २ कहा है वह जरा भी असत्य नहीं है ॥ २०-२२ ॥ अतः हे द्विजश्रेष्ठ! आज आप का कथन सत्य हो ऐसा करिये 'यह सुनकर बृहस्पतिने भयभीत हुई इंद्राणीसे कहा कि-॥ २३ ॥ हे देवि! मैंने तुमसे जो २ विशेषण लगा कर कहे हैं वे अवश्य सत्य होंगे और तू देवराज इन्द्रको भी थोड़े ही समयमें लौटा हुआ देखेगी ॥ २४ ॥ तू नहुषसे जरा भी न डर, यह बात मैं तुझसे सत्य कहता हूं कि मैं तुझे थोड़ेही समयमें इन्द्रसे मिला दूँगा" ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर 'इन्द्राणी अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिकी शरणमें गई है, यह सुन कर राजा नहुष क्रोधमें भर गया ॥ २६ ॥ एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

शल्यने कहा कि—हे युधिष्ठिर! ऋषि जिनमें प्रधान हैं ऐसे देवता भयानक दीखने वाले, देवराज नहुषको क्रोधमें भरा हुआ देख कर उससे कहने लगे कि-॥ १ ॥ हे विभो देवराज! क्रोधको त्यागिए, आपके क्रोध करनेसे असुर, गन्धर्व, किन्नर और

जगद्विभो । त्रस्तं सासुरगन्धर्वं सकिन्नरमहोरगम् ॥ २ ॥ जहि क्रोधमिमं साधो न कुप्यन्ति भवद्विधाः । परस्य पत्नी सा देवी प्रसीदस्व सुरेश्वर॥३॥निवर्त्तय मनः पापात् परदाराभिमर्दनात् । देवराजोऽसि भद्रं ते प्रजा धर्मेण पालय ॥ ४ ॥ एवमुक्तो न जग्राह तद्वचः काममोहितः । अथ देवानुवाचेदमिन्द्रं प्रति सुराधिपः ॥५॥ अहल्या धर्षिता पूर्वमृषिपत्नी यशस्विनी । जीवतो भर्त्तुरिन्द्रेण स वः किं न निवारितः ॥ ६ ॥ बहूनि च नृशंसानि कृतानीन्द्रेण वै पुरा । वैधर्म्याण्युपधाश्चैव स वः किं न निवारितः ॥ ७ ॥ उपतिष्ठतु देवी मामेतदस्या हितं परम् । युष्माकञ्च सदा देवाः शिवमेवं भविष्यति ॥ ८ ॥ देवा ऊचुः । इन्द्राणीमानयिष्यामो यथेच्छसि दिवस्पते । जहि क्रोधमिमं वीर प्रीतो भव सुरेश्वर ॥ ९ ॥ शल्य उवाच । इत्युक्त्वा तं तदा देवा ऋषिभिः सह भारत । जग्मुर्बृहस्पतिं वक्तुमिन्द्राणीं चाशुभं वचः १०

महासर्पोंसे भरा हुआ यह जगत् त्रास पाता है ॥ २ ॥ हे सत्पुरुष ! तुम इस क्रोधको त्यागो, क्योंकि तुमसे सत्पुरुष कोप नहीं करते हैं, हे देवराज ! देवी इन्द्राणी परस्त्री है, अतः तुम उसके ऊपर क्षमा करो ॥ ३ ॥ और परस्त्रीके संगरूपी पापसे अपने मनको हटाओ तुम देवताओंके राजा हो, इससे धर्मानुसार प्रजाओंका पालन करो, तुम्हारा कल्याण हो४ इसप्रकार देवताओंने तथा ऋषियोंने समझाया तो भी कामसे मोहित हुए देवताओंके राजा नहुषने उनका कहना नहीं माना, किंतु वह देवताओंसे इन्द्रके विषयमें इसप्रकार कहनेलगा कि ॥ ५ ॥ पति जीवित था तो भी इन्द्रने महायशस्वी ऋषिकी पत्नी अहल्याका शील भंग किया था, तब तुमने उसको क्यों नहीं रोका?६ इन्द्रने इसके उपरान्त औरभी बहुतसे क्रूरकर्म पहिले किये थे विश्वरूपको मारकर ब्रह्महत्याकी और वृत्रके साथ मित्रता करके विश्वासघात किया, इस प्रकार बहुतसे अधर्मके काम तथा छल कपट किये तब तुमने उसे क्यों नहीं रोका था ? ॥ ७॥ इन्द्राणी मेरे पास आकर मेरी सेवा करे तो इसमें उसका परम हित है और हे देवताओं ! ऐसा करनेसे तुम्हारा भी सदा हित होगा ॥ ८॥ यह सुनकर देवता बोले कि-हे स्वर्गके स्वामी ! यदि तुम्हारी इच्छा होगी तो हम इन्द्राणीको यहाँ लिवा लावेंगे, परन्तु हे देवताओंके वीर राजन् ! तुम क्रोधको दूर करके प्रसन्न होजाओ ॥९॥ शल्यने कहा कि-हे भरतवंशी राजन् युधिष्ठिर ! इस प्रकार नहुषसे कहकर इन्द्राणीसे इस अशुभ समा-

जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि। दत्ताभयाञ्च विप्रेन्द्र त्वया देवर्षिसत्तम ॥११॥ ते त्वां देवा सगन्धर्वा ऋषयश्च महाद्युते । प्रसादयन्ति चेन्द्राणी नहुषाय प्रदीयताम् ॥१२॥ इन्द्राद्विशिष्टो नहुषो देवराजो महाद्युतिः । वृणोत्त्विमं वरारोहा भर्त्तृत्वे वरवर्णिनी ॥ १३ ॥ एवमुक्ते तु सा देवी बाष्पमुत्सृज्य सस्वनम् । उवाच रुदती दीना बृहस्पतिमिदं वचः ॥ १४ ॥ नाहमिच्छामि नहुषं पतिं देवर्षिसत्तम शरणागतास्मि ते ब्रह्म त्रायस्व महतो भयात् ॥१५॥ बृहस्पतिरुवाच शरणागतां न त्यजेयमिन्द्राणीं मम निश्चयः । धर्मज्ञां सत्यशीलाञ्च न त्यजेयमिनिन्दिते ॥ १६ ॥ नाकार्य्यं कर्त्तुमिच्छामि ब्राह्मणः सन् विशेषतः । श्रुतधर्मा सत्यशीलो जानन् धर्मानुशासनम् ॥ १७ ॥ नाहमेतत् करिष्यामि गच्छध्वं वै सुरोत्तमाः । अस्मिंश्चार्थे पुरा गीतं

चारको कहनेके लिए देवता और ऋषि उसी समय बृहस्पतिके पास गए ॥ १० ॥ और बोले कि-"हे ब्राह्मणराज ! हे देवर्षिश्रेष्ठ ! हम जानते हैं कि-इन्द्राणी आपकी शरणमें आई हुई है वह तुम्हारे घरमें है और तुमने उसे अभयदान दिया है ॥ ११ ॥ परन्तु हे महाकान्ति वाले बृहस्पति ! हम देवता और ऋषि तथा गन्धर्व इकट्ठे होकर आपको प्रसन्न करके विनती करते हैं कि-तुम इन्द्राणी नहुषको सौंप दो ॥ १२ ॥ महाकान्ति वाला देवताओंका राजा नहुष, इन्द्रसे श्रेष्ठ है, अतः जिस प्रकार सुन्दर नितम्बों वाली और सुन्दर कांतिवाली इन्द्राणी इस नहुषको पतिरूपसे अंगीकार कर लेय ऐसा करिये १३ देवताओंने और ऋषियोंने इस प्रकार कहा, तब देवी इन्द्राणी सिसकती २ आँसुओंको गिराती हुई रोने लगी और रोती २ दीन होकर बृहस्पतिसे इस प्रकार कहने लगी कि-॥ १४ ॥ हे देवर्षिसत्तम ! मैं नहुषको पतिरूपसे वरना नहीं चाहती, हे ब्राह्मण ! मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ; अतः तुम महाभयसे मेरी रक्षा करो ॥ १५ ॥ बृहस्पति बोले कि-हे इंद्राणी ! शरणागतका त्याग नहीं करना चाहिये यह मेरा निश्चय है, हे पवित्र आचारवाली स्त्री ! धर्मको जानने वाली और सत्य बोलनेवाली तुझको मैं कभी भी नहीं त्यागूँगा ॥१६॥ इस प्रकार कह कर फिर वह देवताओंकी ओरको मुख करके बोले कि-हे श्रेष्ठ देवताओं ! मैंने धर्म सुने हैं,मैं सत्यवादी हूँ,धर्मशास्त्र जानता हूँ और अधिक क्या कहूँ मैं ब्राह्मणजातिका हूँ अतः मैं अकार्य करनेकी इच्छा नहीं रखता, तुम्हारे कहे हुए कार्यको मैं नहीं करूँगा, तुम

ब्रह्मणा श्रूयतामिदम् ॥ १८ ॥ न तस्य बीजं रोहति रोहकाले न तस्य वर्षं वर्षति वर्षकाले । भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे न स त्रातारं लभते त्राणमिच्छन् ॥ १९ ॥ मोघमन्नं विन्दति चाप्यचेताः स्वर्गाल्लोकाद् भ्रश्यति नष्टचेष्टः । भीतं प्रपन्नं प्रददाति यो वै न तस्य हव्यं प्रतिगृह्णन्ति देवाः ॥ २० ॥ प्रमीयते चास्य प्रजा ह्यकाले सदा विवासं पितरोऽस्य कुर्वते । भीतं प्रपन्नं प्रददाति शत्रवे सेन्द्रा देवाः प्रहरन्त्यस्य वज्रम् ॥ २१ ॥ एतदेवं विजानन् वै न दास्यामि शचीमिमाम् । इन्द्राणीं विश्रुतां लोके शक्रस्य महिषीं प्रियाम् ॥२२॥अस्या हितं भवेद्यच्च मम चापि हितं भवेत् । क्रियतां तत् सुरश्रेष्ठा न हि दास्याम्यहं शचीन् । २३ । शल्य उवाच । अथ देवाः सगन्धर्वा गुरुमाहुरिदं वचः कथं सुनीतं तु भवेन्मन्त्रयस्व बृहस्पते ॥ २४ ॥ बृहस्पतिरुवाच । नहुषं

यहाँसे चले जाओ !!! और जानेसे पहिले शरणागतके विषयमें कही हुई ब्रह्माजीकी गाथाओंको सुनो ॥ १७ ॥ १८ ॥ जो मनुष्य भयभीत होकर शरणमें आये हुएको शत्रुके हाथमें सौंप देता है, उसका बोया हुआ बीज उगनेके समय पर उगता नहीं है, उसके क्षेत्रमें समयानुसार वर्षा नहीं होती है और वह अपनेको बचानेवालेकी इच्छा करता है, तो कोई उसे बचाने वाला नहीं मिलता है ॥ १९ ॥ और जो पुरुष भयभीत होकर शरणमें आया हुआ हो उसको शत्रुके अधीन कर देता है, उसने जो कुछ अर्थ पाया होता है वह व्यर्थ जाता है और दुर्बल मन वाला तथा चेतनताहीन होकर स्वर्गलोकसे गिरकर मृत्युलोकमें जन्म लेता है, अरे रे !! देवता भी उसके हाथकी बलिको ग्रहण नहीं करते हैं ॥२०॥ और यदि राजा भी भयभीत होकर शरण में आये हुएको शत्रुके अधीन कर देता है, तो उसकी प्रजा अकालमृत्युसे मरती है, पितर सदा उसका त्याग करते हैं और इंद्रसहित सब देवता उसके ऊपर वज्रका प्रहार करते हैं ॥२१॥ इसप्रकार ब्रह्माजीके कहे हुए शरणागत धर्मको मैं जानता हूँ, अतः इस जगत्में इंद्राणीके नामसे प्रसिद्ध और इन्द्रकी प्रिया पटरानी इस शची देवी को मैं तुम्हें नहीं दूँगा किन्तु हे श्रेष्ठ देवताओ ! इस इंद्राणीका जिस प्रकार हित हो और मेरा भी जिस प्रकार हित हो तैसा हो करो, रही इंद्राणी उसे तो मैं कभी भी नहीं दूँगा॥ २२ ॥२३॥ शल्य बोला कि-हे भरतवंशी राजन् ! बृहस्पतिके इन वचनोंको सुनकर गन्धर्वोसहित देवता उनसे इस प्रकार बोले कि-हे बृहस्पते ! इसमें शुभ परिणाम

याचतां देवी किंचित्कालान्तरं शुभा। इन्द्राणी हितमेतद्धि तथास्माकं भविष्यति ॥ २५ ॥ बहुविघ्नः सुराः कालः कालः कालं गमिष्यति गर्वितो बलवांश्चापि नहुषो वरसंश्रयात् ॥२६॥ शल्य उवाच। ततस्तेन तथोक्ते तु प्रीता देवास्तदाब्रुवन् ब्रह्मन् साध्विदमुक्तं ते हितं सर्वं दिवौकसाम् २७ एवमेतद् द्विजश्रेष्ठ देवी चेयं प्रसाद्यताम्। ततः समस्ता इन्द्राणीं देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥ २८ ॥ ऊचुर्वचनमव्यग्रा लोकानां हितकाम्यया। देवा ऊचुः। त्वया जगदिदं सर्वं धृतं स्थावरजङ्गमम्। एकपत्न्यसि सत्या च गच्छस्व नहुषं प्रति। २९। क्षिप्रं त्वामभिकामश्च विनशिष्यति पापकृत्। नहुषो देवि शक्रश्च सुरैश्वर्यमवाप्स्यति ।३०। एवं विनिश्चयं कृत्वा इन्द्राणी कार्य्यसिद्धये। अभ्यगच्छत सव्रीडा

कैसे निकलेगा इसका तुम ही विचार करो ॥ २४ ॥ तब बृहस्पति बोले कि-पवित्र देवी इन्द्राणी नहुषके पास जाकर कुछ समयकी अवधि माँग लेय ऐसा करनेसे उसका और हम सबोंका भी हित होगा ॥ २५ ॥ हे देवताओं ! अवधिरूपसे नियत किये हुए समयमें बहुत विघ्न समाप्त होते हैं, यह नहुष वरदानसे घमण्डमें भरगया है और बलवान् होगया है, परन्तु काल उसको कालके अधीन करेगा अर्थात् समय पाकर वह मरणको प्राप्त होगा ॥ २६ ॥ शल्यने कहा, कि-बृहस्पतिजीके ऐसे वचनको सुन कर देवता प्रसन्न होगये और कहने लगे कि-हे बृहस्पते ! आपने जो कुछ कहा है सो ठीक है और इसमें ही देवताओंका हित भी है ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जैसा आपने कहा है ऐसा ही होगा, अब आप देवी इंद्राणीको प्रसन्न करिये इस प्रकार कहकर अग्नि आदि सब देवता लोकोंका हित करनेकी इच्छासे शांत होकर इंद्राणीसे कहने लगे, देवता बोले कि-हे इंद्राणी ! यह स्थावर जंगमरूप सब जगत् तुम्हारे आधारसे टिका हुआ है अकेली तुमही पतिव्रता और सत्यवादिनी देवी हो, अतः नहुषके पास जाओ, हे देवि ! पापी और तुम्हारीचाहना करने वाला नहुष तुम्हारा स्पर्श करते ही तुरंत मरजायगा और राजा इन्द्र देवताओंके ऐश्वर्यको फिर पावेंगे ॥ २८-३० ॥ इस प्रकार देवताओंने इन्द्राणीसे निश्चयपूर्वक कहा तब इन्द्राणी सकुचाती हुई भयंकर दीखने वाले राजा नहुषके पास गई ॥ ३१ ॥ कामसे चेतनाहीन हुआ दुष्टात्मा राजा नहुष तरुण

नहुषं घोरदर्शनम् ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा तां नहुषश्चापि वयोरूपसमन्विताम् । समहृष्यत दुष्टात्मा कामोपहतचेतनः ॥ ३२ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणीन्द्राणीकालावधियाचने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

शल्य उवाच । अथ तामब्रवीद् दृष्ट्वा नहुषो देवराट् तदा । त्रयाणामपि लोकानामहमिन्द्रः शुचिस्मिते ॥ १ ॥ भजस्व मां वरारोहे पतित्वे वरवर्णिनि । एवमुक्ता तु सा देवी नहुषेण पतिव्रता ॥२॥ प्रावेपत भयोद्विग्ना प्रवाते कदली यथा । प्रणम्य सा हि ब्रह्माणं शिरसा तु कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥ देवराजमथोवाच नहुषं घोरदर्शनम् । कालमिच्छाम्यहं लब्धुं त्वत्तः कञ्चित् सुरेश्वर ॥ ४ ॥ न हि विज्ञायते शक्रः किं वा प्राप्तः क्व वा गतः । तत्त्वमेतत्तु विज्ञाय यदि न ज्ञायते प्रभो॥५ ततोऽहं त्वामुपस्थास्ये सत्यमेतद् ब्रवीमि ते । एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ६ ॥ नहुष उवाच । एवं भवतु सुश्रोणि यथा मामिह भाषसे । ज्ञात्वा चागमनं कार्य्यं सत्यमेतदनुस्मरेः ॥ ७ ॥ नहु-

---

अवस्था वाली और अनुपम रूपवती इन्द्राणीको देखकर वड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ३२ ॥ द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ ※ ※

शल्य बोले कि हे युधिष्ठिर ! देवराज नहुष इन्द्राणीको देख कर उससे कहने लगा कि-हे पवित्र हास्यवाली स्त्री ! मैं तीनों लोकोंका इन्द्र हूँ । १ । अतः हे सुन्दराङ्गि ! हे सुन्दर नितम्बवाली ! तू पतिरूपसे मेरी सेवा कर, इस प्रकार नहुषने पतिव्रता देवी इन्द्राणीसे कहा तब वह खिन्न हुई और प्रचण्ड पवन चलते समय जैसे केला काँपता हो तैसे काँपने लगी, वह दोनों हाथ जोड़ मस्तकसे ब्रह्माजी को प्रणाम करके ॥२॥३॥ भयानक दीखनेवाले देवराज नहुषसे कहने लगी कि 'हे सुरेश्वर ! मैं तुमसे कुछ दिनोंकी अवधि माँगना चाहती हूं ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! ऐसा करनेका यह कारण है कि यह नहीं मालूम है कि इन्द्र कहाँ गये हैं और अब आवेंगे या नहीं ? उनके विषयमें ठीक ठीक समाचार जान कर यदि उनका कहीं पता नहीं चलेगा तो मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, यह बात मैं आपसे सत्य कहती हूँ इस प्रकार इन्द्राणीने नहुषसे कहा, इसको सुन कर वह प्रसन्न हुआ। ५-६ और नहुषने कहा कि-हे सुन्दर कमरवाली ! तू जिस प्रकार मुझसे कुछ समयकी अवधि माँगती है, तिस प्रकार ही मैं तुझे उतने समय की अवधि देता हूँ,तू इन्द्रको खोज,परन्तु तू इन्द्रका समाचार जानने

पेण विसृष्टा च निश्चक्राम ततः शुभा । बृहस्पतिनिकेतं च सा जगाम यशस्विनी॥८॥ तस्याः संश्रुत्य च वचो देवाश्चाग्निपुरोगमाः । चिन्तयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं राजसत्तम ॥ ९ ॥ देवदेवेन सङ्गम्य विष्णुना प्रभविष्णुना । ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ १० ॥ ब्रह्मवध्याभिभूतो वै शक्रः सुरगणेश्वरः । गतिश्च नस्त्वं देवेश पूर्वजो जगतः प्रभुः ॥११॥ रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् । त्वद्वीर्यनिहते वृत्रे वासवो ब्रह्महत्यया ॥ १२ ॥ वृतः सुरगणश्रेष्ठ मोक्षं तस्य विनिर्दिश । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां विष्णुरब्रवीत् ॥ १३ ॥ मामेव यजतां शक्रः पावयिष्यामि वज्रिणम् । पुण्येन हयमेधेन मामिष्ट्वा पाकशासन ॥ १४ ॥ पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः । स्वकर्मभिश्च नहुषो नाशं यास्यति दुर्मतिः ॥ १५ ॥ किञ्चित् कालमिमं देवा मर्षयध्वमतन्द्रिताः । श्रुत्वा विष्णोः शुभां सत्यां वाणींताममृतोपमाम्१६

पर मेरे पास आना और तू अपने इस सत्य वचनको याद रखना ७ इस प्रकार कहकर नहुषने इन्द्राणीको जानेकी आज्ञा दी तब यशस्विनी और पवित्र आचरण वाली देवी इन्द्राणी तहाँसे चल कर बृहस्पतिके घर आई॥८॥ और उसने देवताओंसे यह सब बातें कहीं, हे राजश्रेष्ठ ! अग्नि आदि देवता इन्द्राणीकी बात सुन कर इकट्ठे हो इस बातका विचार करने लगे कि इंद्र कहाँ है ॥ ९ ॥ वे देवदेव प्रभु विष्णुसे मिले और बोलनेमें चतुर देवता खिन्न होकर उनसे कहने लगे कि-॥ १० ॥ हे देवेश्वर विष्णु ! देवताओंका राजा इन्द्र ब्रह्महत्यासे पीड़ा पारहा है, उसका उद्धार करना चाहिये तुम हमारे आश्रय हो और जगत्के पूर्वज तथा प्रभु हो ॥११॥ तुमने सब प्राणियों की रक्षा करनेके लिये विष्णुका अवतार धारा है और आपके पराक्रमसे वृत्रका संहार करने पर इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी है, अतः हे देवश्रेष्ठ ! उसका ब्रह्महत्यासे कैसे पीछा छूटे ? बताओ ! देवताओंकी इस बातको सुनकर विष्णु बोले कि-॥ १२ ॥ १३ ॥ इन्द्र मेरा पूजन करेगा तो मैं वज्रधारी इन्द्रको ब्रह्महत्याके पातकसे पवित्र करदूँगा, इन्द्र अश्वमेध नामक यज्ञद्वारा मेरा पूजन करेगा, तो वह देवताओंका राजा होगा और उसको किसीका भय नहीं रहेगा तथा दुष्टबुद्धि नहुष अपने कर्मोंसे नष्ट होजायगा ॥ १४॥१५ ॥ परन्तु हे देवताओं ! तुम कुछ समय तक सावधान होकर इस दुःखको सहो विष्णुकी इस शुभ सत्य और अमृतसमान कल्याणकारिणी वाणीको सुन कर सब

ततः सर्वे सुरगणाः सोपाध्यायाः सहर्षिभिः । यत्र शक्रो भयोद्विग्नस्तं देशमुपचक्रमुः ॥ १७ ॥ तत्राश्वमेधः सुमहान्महेन्द्रस्य महात्मनः । ववृते पावनार्थं वै ब्रह्महत्यापहो नृप ॥ १८ ॥ विभज्य ब्रह्महत्यान्तु वृक्षेषु च नदीषु च । पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैव युधिष्ठिर ॥ १९ ॥ संविभज्य च भूतेषु विसृज्य च सुरेश्वरः । विज्वरो धूतपाप्मा च वासवोऽभवदात्मवान् ॥ २० ॥ अकम्पन्नहुषं स्थानाद् दृष्ट्वा बलनिषूदनः । तेजोघ्नं सर्वभूतानां वरदानाच्च दुःसहम् ॥ २१ ॥ ततः शचीपतिर्देवः पुनरेव व्यनश्यत । अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकांक्षी चचार ह ॥२२॥ प्रनष्टे तु ततः शक्रे शची शोकसमन्विता । हा शक्रेति तदा देवी विललाप सुदुःखिता॥२३॥यदि दत्तं यदि हुतं गुरवस्तोषिता यदि । एकभर्तृत्वमेवास्तु सत्यं यद्यस्ति वामपि ॥२४॥ पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे । देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः ॥२५॥ प्रयता च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा। पतिव्रतात्वात् सत्येन सोप-

---

देवता जहाँ इन्द्र भयसे खिन्न होकर बैठा था तहाँ उपाध्यायों और ऋषियोंके साथ गये १६।१७ और हे राजन्! तहाँ महात्मा महेन्द्रको पवित्र करनेके लिये उन्होंने ब्रह्महत्याको दूर करने वाले अश्वमेध नामके महायज्ञका आरम्भ किया ॥ १८ ॥ और हे युधिष्ठिर ! उन्होंने ब्रह्महत्याके विभाग करके उसको वृक्षोंमें, नदियोंमें, पर्वतोंमें पृथ्वीपर स्त्रियोंमें तथा प्राणियोंमें रख दिया देवराज इन्द्र ब्रह्महत्याके पातक और कष्टसे मुक्त होगया और उसके मनको भी शांति मिली॥१९-२०॥ देवराज शचीपति इन्द्र जब स्वस्थ हुआ तब अपनी स्वाधीनता पानेके लिये आया, परन्तु उसने नहुषको अपने राज्यसिंहासन पर बैठाहुआ, वरदानके प्रभावसे महादुःसह और सब प्राणियोंके तेजका संहार करतेहुए देखा, तब तो वह काँपउठा और तत्काल तहांसे पीछेको भाग आया तथा सब प्राणियोंसे छिपाहुआ रह कर अपने उदयकालकी बाट देखताहुआ पृथ्वीपर फिरनेलगा ॥ २१।२२ ॥ इन्द्र जब भागगया तब इन्द्राणी बड़ी दुःखी हुई और शोकसे व्याकुल होकर हा इन्द्र ! हा ! इन्द्र ! इसप्रकार विलाप करतीहुई कहनेलगी कि-॥ २३ ॥ यदि मैंने दान दिया हो,होम करे हों, गुरुजनोंको सन्तुष्ट कियो हो और यदि मुझमें सत्य हो तो मेरा एक ही पति हो ॥ २४ ॥ मैं उत्तरायणके विषें प्रवृत्त हुई दिव्य और पवित्र रात्रिदेवीको प्रणाम करती हूँ, मेरा मनोरथ सिद्ध हो ॥२५॥ इसप्रकार विलापकरनेके पीछे

श्रुतिमथाकरोत् ॥ २६ ॥ यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे । इत्याहोपश्रुतिं देवीं सत्यं सत्येन दृश्यताम् ॥ २७ ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वण्युपश्रुति-
याचने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

शल्य उवाच । अथैनां रूपिणीं साध्वीमुपातिष्ठदुपश्रुतिः । तां वयोरूपसम्पन्नां दृष्ट्वा देवीमुपस्थिताम् ॥ १ ॥ इन्द्राणी संप्रहृष्टात्मा सम्पूज्यैनामथाब्रवीत् । इच्छामि त्वामहं ज्ञातुं का त्वं ब्रूहि वरानने २ उपश्रुतिरुवाच । उपश्रुतिरहं देवि तवान्तिकमुपागता । दर्शनं चैव संप्राप्ता तव सत्येन भाविनि ॥३॥ पतिव्रता च युक्ता च यमेन नियमेन च । दर्शयिष्यामि ते शक्रं देवं वृत्रनिसूदनम् ॥ ४ ॥ क्षिप्रमन्वेहि भद्रं ते द्रक्ष्यसे सुरसत्तमम् । ततस्तां प्रहितां देवीमिन्द्राणी सा समन्वगात् ॥ ५ ॥ देवारण्यान्यतिक्रम्य पर्वतांश्च बहूंस्ततः । हिम-

---

कार्यको निश्चय करके इन्द्राणीने संयम धारण किया और रात्रिदेवी की उपासना की तथा अपने पतिव्रतापनेके कारणसे सत्य पर विश्वास रखकर उपश्रुति अर्थात् सन्देहको दूर करनेवाली देवी देववाणीका आवाहन करके उससे कहा कि–हे देववाणी ! जहाँ मेरे स्वामी देवराज हों वह स्थान तुम मुझे दिखाओ, सत्यवादी देवताओंकी स्तुति करनेपर वे देवता स्तुति करनेवालेको अवश्य वर देते हैं, इस सत्य वचनसे तुम मेरे वचनको सत्य करो ॥ २६॥२७ ॥ त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ छ छ

शल्य कहने लगे कि–हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर साध्वी उपश्रुति मूर्तिमती होकर इन्द्राणीके पास खड़ी होगई, इन्द्राणी रूपवती तथा तरुण अवस्थावाली उपश्रुति देवीको अपने सामने खड़ी हुई देखकर मनमें प्रसन्न हुई और उसका सत्कार करके उससे कहनेलगी कि–हे सुंदरवदने ! तुम कौन हो ? यह जाननेकी मुझे उत्कण्ठा है, अतः बताओ तुम कौन हो ? ॥ १॥२ ॥ उपश्रुति बोली कि—हे देवि ! मैं उपश्रुति नामकी देवी हूँ, और तेरे सत्यके कारणसे तुझे दर्शन देनेके के लिये तेरे पास आई हूँ ॥ ३ ॥ तू पतिव्रता है और यम तथा नियम वाली है, चल मैं तुझे वृत्रासुरका नाश करनेवालेइन्द्रदेवको दिखाऊँ४ तेरा कल्याण हो ! तू मेरे पीछे२ शीघ्र चली आ,तो तुझे इन्द्रका दर्शन होगा तुरन्त उपश्रुति आगे २ चली और इन्द्राणी उसके पीछे पीछे चलनेलगी उपश्रुति देवताओंके वन, बहुतसे पर्वत और हिमाचल

वन्तमतिक्रम्य उत्तरं पार्श्वमागमत् ॥ ६ ॥ समुद्रञ्च समासाद्य बहुयोजनविस्तृतम् । आससाद महाद्वीपं नानाद्रुमलतावृतम् ॥७॥ तत्रापश्यत्सरो दिव्यं नानाशकुनिभिर्वृतम् । शतयोजनविस्तीर्णं तावदेवायतं शुभम् ॥ ८ ॥ तत्र दिव्यानि पद्मानि पञ्चवर्णानि भारत । षट्पदैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सहस्रशः ॥ ९ ॥ सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मिनी महती शुभा । गौरेणोन्नतनालेन पद्मेन महता वृता ॥ १० ॥ पद्मस्य भित्त्वा नालञ्च विवेश सहिता तया । विसतन्तुप्रविष्टञ्च तत्रापश्यच्छतक्रतुम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा च सुसूक्ष्मेण रूपेणावस्थितं प्रभुम् । सूक्ष्मरूपधरा देवी बभूवोपश्रुतिश्च सा ॥१२॥ इन्द्रं तुष्टाव चेन्द्राणी विश्रुतैः पूर्वकर्मभिः । स्तूयमानस्ततो देवः शचीमाह पुरन्दरः ॥ १३ ॥ किमर्थमसि सम्प्राप्ता विज्ञातश्च कथं त्वहम् । ततः सा कथयामास नहुषस्य विचेष्टितम् ॥ १४ ॥ इन्द्रत्वं त्रिषु लोकेषु प्राप्य वीर्यसमन्वितः । दर्पाविष्टश्च दुष्टात्मा मामुवाच शतक्रतो॥१५॥उपतिष्ठति स क्रूरः कालं च

को लाँघकर उत्तरकी ओरके भागमें आपहुँची ॥ ५॥६ ॥ तहाँसे आगे चलते २ अनेकों योजनोंके विस्तार वाले समुद्रको लाँघकर अनेकों प्रकारके वृक्षोंसे घिरेहुए महाद्वीपमें आपहुँची ॥ ७ ॥ तहाँ इन्द्राणीने एक दिव्य सरोवर देखा, वह नाना प्रकारके पक्षियोंसे परिपूर्ण था, चार सौ कोस चौड़ा और उतना ही लम्बा था तथा उसका दृश्य मनोहर था ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन्! उस सरोवरमें सहस्रों पचरंगे दिव्य कमल खिलरहे थे और उनके ऊपर भौंरे गुञ्जार रहे थे॥९॥ उस सरोवरके मध्यमें एक सुन्दर शोभावाली महाकमिलनी थी, उस कमलिनीको गौर वर्णका ऊँची नालवाला महाकमल घेरेहुए था, वह उपश्रुति उस कमलके नालको फाडकर इन्द्राणीसहित उसके भीतर घुसी तो तहाँ कमलके तन्तुओंमें छिपकर बैठेहुए इन्द्रको देखा१०-११ राजा इन्द्रको अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे छिपकर रहते हुए देखकर देवी उपश्रुति तथा इंद्राणीने सूक्ष्मरूप धारण किया ॥ १२ ॥ फिर इन्द्राणी इन्द्रके पहिले प्रसिद्ध कर्मोंका गान करके उसकी स्तुति करनेलगी तब पुरन्दर इंद्रने इंद्राणीसे कहा कि-॥ १३ ॥ तू यहाँ किस लिये आई है? और मैं यहाँ हूँ यह तूने कैसे जाना तब इन्द्राणी ने नहुषका चरित्र कहना आरम्भ किया ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! वीर्यवान् नहुष तीनों लोकोंका इन्द्र बनकर गर्वमें भर गया है और उस दुष्टात्माने मुझसे कहा है कि—तू पतिरूपसे मेरी सेवा

कृतवान्मम । यदि न त्रास्यति विभो करिष्यति स मां वशे ॥ १६ ॥ एतेन चाहं सम्प्राप्ता द्रुतं शक्र तवान्तिकम् । जहि रौद्रं महाबाहो नहुषं पापनिश्चयम् ॥ १७ ॥ प्रकाशयात्मनात्मानं दैत्यदानवसूदनम् । तेजः समाप्नुहि विभो देवराज्यं प्रशाधि च ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणीन्द्राणींद्रस्तवे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

शल्य उवाच । एवमुक्तः स भगवान् शचीं तां पुनरब्रवीत् । विक्रमस्य न कालोऽयं नहुषो बलवत्तरः ॥ १ ॥ विवर्द्धितश्च ऋषिभिर्हव्यैः कव्यैश्च भाविनि । नीतिमत्र विधास्यामि देवि त्वं कर्त्तुमर्हसि ॥ २ ॥ गुह्यं चैतत्त्वया कार्यं नाख्यातव्यं शुभे क्वचित् । गत्वा नहुषमेकांते ब्रवीहि च सुमध्यमे ॥ ३ ॥ ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते । एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति तं वद ॥ ४ ॥ इत्युक्ता देवराजेन पत्नी सा कमलेक्षणा । एवमस्त्वित्यथोक्त्वा तु जगाम नहुषं प्रति ५

कर इसकारण मैंने उससे कुछ समयकी अवधि माँगली है और उस क्रूरने मुझे कुछ समय दिया भी है । हे प्राणनाथ ! यदि तुम मेरी रक्षा नहीं करोगे तो वह मुझे अपने वशमें करलेगा ॥ १५॥१६ ॥ इस कारण हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे पास शीघ्रतासे आई हूं, हे महाभुज ! तुम पधारो और पाप कर्म करनेका निश्चय करनेवाले उस भयावने राजा नहुषका नाश करो ॥ १७ ॥ हे दैत्य और दानवोंके संहार कर्त्ता व्यापक इन्द्र ! तुम अपने स्वरूपको प्रकट करो और तेजको सम्पादन करके उससे राज्यकी रक्षा करो ॥ १८ ॥ चतुर्दश अध्याय समाप्त १४

शल्य बोले कि–इसप्रकार इन्द्राणीने कहा तब भगवान् इन्द्रने उससे फिर कहा यह समय पराक्रम करनेका नहीं है क्योंकि–राजा नहुष महाबली है ॥१॥ हे भक्तिमती स्त्री ! ऋषियोंने हव्य तथा कव्य देकर उसके बलको बढादिया है, परन्तु हे देवी ! इस कामको करने के लिये मैं तुझे एक नीति भरी युक्ति बताता हूँ,वह नीति तुझे करनी चाहिये ॥२॥ हे कल्याणी ! मैं तुझे जो नीति बताता हूँ यह तू किसी से न कहना परन्तु गुप्तरीतिसे उसे काममें लाना हे सुन्दर कमरवाली! तू एकान्तमें नहुषके पास जाकर उससे कहना कि–॥ ३॥ हे जगत्पते! तुम दिव्य पालकीमें बैठो और वह पालकी ऋषियोंसे उठवाकर मेरे पास आओ तो मैं प्रेमसहित तुम्हारे वशमें होजाऊँगी ॥ ४ ॥ इस प्रकार देवराज इन्द्रने कमलकी समान नेत्रोंवाली अपनी पत्नीसे कहा

नहुषस्तां ततो दृष्ट्वा सस्मितो वाक्यमब्रवीत्। स्वागतं ते वरारोहे किङ्करोमि शुचिस्मिते ॥ ६ ॥ भक्तं मां भज कल्याणि किमिच्छसि मनस्विनि। तव कल्याणि यत् कार्यं तत्करिष्ये सुमध्यमे ॥ ७ ॥ न च व्रीडा त्वया कार्या सुश्रोणि मयि विश्वसेः।सत्येन वै शपे देवि करिष्ये वचनं तव ॥ ८ ॥ इन्द्राण्युवाच। यो मे कृतस्त्वया कालस्तमाकांक्षे जगत्पते। ततस्त्वमेव भर्त्ता मे भविष्यसि सुराधिप९कार्यञ्च हृदि मे यत्तद्देवराजावधारय। वक्ष्यामि यदि मे राजन् प्रियमेतत्करिष्यसि१० वाक्यं प्रणयसंयुक्तं ततः स्यां वशगा तव। इन्द्रस्य वाजिनो वाहा हस्तिनोऽथ रथास्तथा ॥ इच्छाम्यहमथापूर्वं वाहनं ते सुराधिप। यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम्११वहंतु त्वां महाभागा ऋषयः सङ्गता विभो। सर्वे शिविकया राजन्नेतद्धि मम रोचते ॥१२॥नासुरेषु न देवेषु तुल्यो भवितुमर्हसि। सर्वेषां तेज आदत्से स्वेन वीर्येण दर्शनात्

तब वह "तथास्तु" कहकर स्वर्गमें लौट आई और नहुषके पास जाकर खड़ी होगई ॥५॥ नहुष इंद्राणीको देख मुस्कुराता हुआ बोला कि हे सुन्दर नितम्बवाली स्त्री! तू अच्छी आई, हे पवित्र हास्यवाली स्त्री! मैं तेरी कौनसी आज्ञा बजाऊँ ? वह तू बता ॥ ६ ॥ हे कल्याणी! तू इस भक्तजनकी सेवा कर, हे मनस्विनी ! तुझे क्या इच्छा है सो बता, हे कल्याणी ! हे सुन्दर कमरवाली ! तेरा जो काम होगा उस को मैं करूँगा ॥ ७ ॥ हे सुन्दर नितंबवाली ! तू लज्जित न हो, किंतु मेरे ऊपर विश्वास रख, हे देवी ! मैं सत्यकी सौगंध खाता हूँ कि-तू जो कहेगी मैं वही करूँगा ॥ ८ ॥ तब इन्द्राणीने कहा कि-हे जगत्पते! मैंने तुमसे जो अवधि माँगली थी मैं उसकी बाटदेखरही हूँ,उस अवधिके पूरी होने पर हे देवाधीश ! तुम ही मेरे पति होओगे ॥९॥ परन्तु हे देवराज ! मेरे मनमें एक काम करनेका विचार उत्पन्न हुआ है, उस कामको सुनकर तुम उस पर भली प्रकार विचार करना हे राजन् ! मैं तुमसे जो कहती हूँ,वह मुझे प्यारा लगनेवाला और प्रेमसे भरा हुआ वाक्य है,यदि तुम उसे करोगे तो मैं तुम्हारे वशमें हूँ हे राजन् ! इन्द्रके तो घोड़े, हाथी,रथ आदि वाहन थे, परंतु मेरी ऐसी इच्छा है कि-जो वाहन विष्णुके पास न हो, रुद्रके पास न हो,राक्षस तथा असुरोंके पास न हो ऐसा अपूर्व वाहन तुम रक्खो १०-१२ वह वाहन ऐसा होना चाहिये कि-हे समर्थ राजन् ! सब महाभाग्यशाली ऋषि इकट्ठे होकर तुम्हारी पालकीको उठाकर तुम्हें लेकर चला करें

न ते प्रमुखतः स्थातुं कश्चिच्छक्नोति वीर्यवान्॥१४शल्य उवाच । एव-मुक्तस्तु नहुषः प्राहृष्यत तदा किल उवाच वचनं चापि सुरेन्द्रस्तामनिंदिताम् १५ नहुष उवाच । अपूर्वं वाहनमिदं त्वयोक्तं वरवर्णिनि । दृढं मे रुचितं देवि त्वद्वशोऽस्मि वरानने ॥ १६ ॥ न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान् कुरुते मुनीन् । अहं तपस्वी बलवान् भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ १७ ॥ मयि क्रुद्धे जगन्न स्यान्मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। देवदानवगंधर्वाः किन्नरो-रगराक्षसाः ॥ १८ ॥ न मे क्रुद्धस्य पर्याप्ता सर्वे लोकाः शुचिस्मिते । चक्षुषा यं प्रपश्यामि तस्य तेजो हराम्यहम् ॥ १९ ॥ तस्मात्ते वचनं देवी करिष्यामि न संशयः । सप्तर्षयो मां वक्ष्यंति सर्वे ब्रह्मर्षयस्तथा ॥ २० ॥ पश्य माहात्म्ययोगं मे ऋद्धिंच वरवर्णिनि । शल्य उवाच । एवमुक्त्वा तु तां देवीं विसृज्य च वराननाम् । विमाने योजयित्वा च ऋषीन्नियममास्थितान् ॥२१॥ अब्रह्मण्यो बलोपेतो मत्तो मदबलेन च

यह मेरी इच्छा है॥१३॥तुम असुरोंसे और देवताओंसे क्या थोड़े ही हो ? किंतु उनसेभी श्रेष्ठ हो और तुम सामनेको देखनेसे अपने वीर्यसे सबके तेजको हरलेते हो, तुम्हारे सामने कोई भी पराक्रमी मनुष्य खड़ा नहीं होसकता ॥ १४ ॥ शल्यने कहा कि इसप्रकार नहुषसे कहा तब देवराज नहुष प्रसन्न हुआ और उसने पवित्र आचार वाली इन्द्राणीसे कहा ॥ १५ ॥ नहुष बोला कि हे सुन्दर वर्णवाली स्त्री ! तूने मुझे जो वाहन बताया है वह तो नया ही है हे सुन्दरानने ! मुझे तो यह वाहन बहुतही अच्छा लगा और मैं तेरे वशमें हूँ इसलिये ऐसा ही करूँगा ॥ १६ ॥ हे देवि ! जो पुरुष मुनियोंको सवारीमें जोतता है वह थोड़ी शक्तिवाला नहीं होना चाहिये मैं तपस्वी बली और भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान कालका राजा हूँ ॥ १७ ॥ मैं कोप करूँ तो जगत्का नाश होजाय, यह सब जगत् मेरे ही आधारसे ठहरा हुआ है, हे पवित्र हास्यवाली स्त्री ! मैं क्रोध करूँ तो फिर देव, दानव, गंधर्व, किन्नर, उरग, राक्षस तथा सब लोक भी मेरे लिये कुछ नहीं हैं, और मैं नेत्रसे जिसकी ओरको देखता हूँ उसके तेजको तत्काल हरलेता हूँ ॥ १८-१९ ॥ अतः हे देवि ! मैं तेरे कहनेके अनुसार अवश्य करूँगा, सब सप्तर्षि तथा ब्रह्मर्षि मुझे पालकीमें बैठालकर उस पालकीको उठावेंगे ॥ २० ॥ हे सुन्दरांगि ! तू मेरे प्रभाव तथा समृद्धिको देखेगी, शल्य कहने लगे कि हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार कह कर नहुषने सुन्दर मुख वाली देवी इंद्राणीको घर जानेकी आज्ञा दी ॥ २१ ॥

कामवृत्तः स दुष्टात्मा वाहयामास तानृषीन् ॥ २२ नहुषेण विसृष्टा च बृहस्पतिमथाब्रवीत् । समयोऽल्पावशेषो मे नहुषणेह यः कृतः ॥२३॥ शक्रं मृगय शीघ्रं त्वं भक्तायाः कुरु मे दयाम् । बाढमित्येव भगवान् बृहस्पतिरुवाच ताम् ॥ २४ ॥ न भेतव्यं त्वया देवि नहुषाद्दुष्टचेतसः न ह्येष स्थास्यति चिरं गत एष नराधमः ॥ २५ ॥ अधर्मज्ञो महर्षीणां वाहनाच्च ततः शुभे । इष्टिञ्चाहं करिष्यामि विनाशायास्य दुर्मतेः२६ शक्रं चाधिगमिष्यामि मा भैस्त्वं भद्रमस्तु ते । ततः प्रज्वाल्य विधिवज्जुहाव परमं हविः ॥ २७ ॥ बृहस्पतिर्महातेजा देवराजोपलब्धये । हुताग्निं सोऽब्रवीद्राजन् शक्रमन्विष्यतामिति तस्माच्च भगवान् देवः स्वयमेव हुताशनः । स्त्रीवेशमद्भुतं कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ २९ ॥ स दिशः प्रदिशश्चैव पर्वतानि वनानि च । पृथिवीञ्चान्तरिक्षञ्च विचित्याथ मनोगतिः । निमेषांतरमात्रेण बृहस्पतिमुपागमत् ॥ ३० ॥

हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर ब्राह्मणोंकी ओर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने वाला, बली, मदनानलसे मदमत्त हुआ, इच्छानुसार आचरण करने वाला दुष्टात्मा राजा नहुष ऋषियोंसे पालकी उठवाने लगा ॥ २२ ॥ और जिसको नहुषने घर जानेकी आज्ञा दी थी वह इंद्राणी बृहस्पति के पास जाकर कहने लगी कि नहुषने जितने समयकी अवधि दी थी वह बहुत थोड़ा रहगया है ॥ २३ ॥ अतः अब तुम इन्द्रको झट ढूँढ कर निकालो और आप पर श्रद्धा रखने वाली इस स्त्रीके ऊपर दया करो भगवान् बृहस्पतिने उस स्त्रीसे कहा कि-बहुत अच्छा ॥२४॥ हे देवि ! तुझे दुष्टात्मा नहुषसे जराभी न डरना चाहिये, हे कल्याणी उसे धर्मका ज्ञान नहीं है अतः वह महर्षियोंसे पालकी उठवाता है, इस कारण जानलो, कि यह नराधम चिरकाल तक नहीं जियेगा, मैं उस दुष्टका नाश करनेके लिये इष्टि करूँगा जिससे उसका शीघ्र ही नाश होजायगा ॥ २५॥२६ ॥ तथा मैं इंद्रको भी खोज निकालूँगा, तू जरा भी भय मत कर तेरा कल्याण हो इसके अनन्तर बृहस्पतिने अग्निको प्रज्वलित करके शास्त्रानुसार उत्तम हविसे होम किया २७ तदनन्तर महातेजस्वी बृहस्पतिने इन्द्रको खोज करनेके लिये अग्निदेवसे कहा तुम इंद्रको ढूँढ कर लाओ ॥ २८ ॥ बृहस्पतिके आज्ञा देते ही भगवान् अग्नि अद्भुत स्त्रीका वेष धारण करके तहाँ ही अंतर्धान होगए ॥ २९ ॥ मनकी समान वेगसे अग्निदेव, दिशाओंमें कोणोंमें, पर्वतों पर, वनमें पृथ्वी पर और आकाशमें इस प्रकार सब स्थानोंमें

अग्निरुवाच । बृहस्पते न पश्यामि देवराजमिह क्वचित् । आपः शेषाः सदा चापः प्रवेष्टुं नोत्सहाम्यहम् ॥ ३१ ॥ न मे तत्र गतिर्ब्रह्मन् किमन्यत् करवाणि ते । तमब्रवीद्देवगुरुरपो विश महाद्युते ॥ ३२ ॥ अग्निरुवाच । नापः प्रवेष्टुं शक्ष्यामि क्षयो मेऽत्र भविष्यति । शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि स्वस्ति तेऽस्तु महाद्युते ॥३३॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् । तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि बृहस्पत्यग्निसम्वादे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

बृहस्पतिरुवाच । त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमसि हव्यवाट् । त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि साक्षिवत् ॥ १ ॥ त्वामाहुरेकं कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः । त्वया त्यक्तं जगच्चेदं सद्यो नश्येद्धुताशन २ कृत्वा तुभ्यं नमो विप्राः स्वकर्मविजितां गतिम् । गच्छन्ति सह पत्नीभिः सुतैरपि च शाश्वतीम् ॥ ३ ॥ त्वमेवाग्ने हव्यवाहस्त्वमेव परमं हविः । यजन्ति सत्रैस्त्वामेव यज्ञैश्च परमाध्वरे ॥४॥ सृष्ट्वा लोकां

ढूँढ कर क्षणमात्रमें बृहस्पतिके पास आकर खड़े होगए, अग्नि बोले कि हे बृहस्पते ! पृथ्वी पर कहीं भी मुझे इंद्र दिखाई नहीं देता, पृथ्वी के सिवाय दूसरा स्थान तो जल होता है और मैं जलमें कभी घुस नहीं सकता ॥ ३० ॥ ३१ ॥ क्योंकि-हे भगवन् ! जलमें तो मेरी गति ही नहीं है अतः कहो मैं अब तुम्हारा दूसरा क्या काम करूँ ? बृहस्पति बोले कि-हे महाकांतिवाले अग्ने ! तुम जलमें प्रवेश करके इन्द्र को ढूँढो ॥ ३२ ॥ तब अग्नि बोले कि-मैं जलमें प्रवेश नहीं करूँगा क्योंकि-जलमें प्रवेश करनेसे मेरा नाश होजायगा हे महाकान्तिवाले बृहस्पते ! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३३ ॥ जलमेंसे अग्नि, ब्राह्मणमेंसे क्षत्रिय और पत्थरमेंसे लोहा उत्पन्न हुआ, है उनका तेज सर्वत्र प्रकाश करसकता है, परन्तु वह अपनेको उत्पन्न करनेवालेके सामने शान्त पडजाते हैं ॥३४॥ पञ्चदश अध्याय समाप्त

बृहस्पति बोले कि-हे अग्नि ! तुम सब देवताओंके मुख हो, तुम हव्यको ग्रहण करते हो और सब प्राणियोंके अन्तः करणोंमें साक्षीकी समान गूढ विचरते हो ॥ १ ॥ कितने ही विद्वान् तुमको जठराग्नि कहते हैं और कोई गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीय ऐसे तीन प्रकारका भी कहते हैं, हे हुताशन ! तुम यदि इस जगत्को त्याग दो तो इस जगत्का शीघ्र ही नाश होजाय ॥ २ ॥ब्राह्मण भी तीन प्रकार

स्त्रीनिमान् हव्यवाह प्राप्ते काले पचसि पुनः समिद्धः । त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूतिस्त्वमेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा ॥ ५ ॥ त्वामग्ने जलदानाहुर्विद्युतश्च मनीषिणः । वहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः त्वय्यापो निहिताः सर्वास्त्वयि सर्वमिदं जगत् । न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु पावक ॥७॥ स्वयोनिं भजते सर्वो विशस्वापोऽविशंकितः । अहं त्वां वर्द्धयिष्यामि ब्राह्मैर्मन्त्रैः सनातनैः८ एवं स्तुतो हव्यवाट् स भगवान् कविरुत्तमः। बृहस्पतिमथोवाच प्रीतिमान् वाक्यमुत्तमम् । दर्शयिष्यामि ते शक्रं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥९॥शल्य उवाच प्रविश्यापस्ततो वन्हिः ससमुद्राः सपल्वलाः । आससाद सरस्तच्च गूढो यत्र शतक्रतुः ॥ १० ॥ अथ तत्रापि पद्मानि विचिन्वन् भरतर्षभ।

के तुमको नमस्कार करके स्त्री तथा पुत्रों सहित अपने कर्मोंसे संपादन कीहुई अक्षयगतिको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम ही हव्य के पहुँचानेवाले हो तुम ही परम हविरूप हो और द्विजवर्ण उत्तम यज्ञों में सत्रोंसे तथा यज्ञोंसे तुम्हारा ही पूजन करते हैं ॥ ४ ॥ हे हवनको पहुँचानेवाले अग्नि ! तुम इस त्रिलोकीको आरम्भमें उत्पन्न करते हो और प्रलयकाल आता है तब तुम हो भलीप्रकार वृद्धि पाकर इसको संहार करते हो,हे अग्ने! तुमने ही सब भुवनोंको उत्पन्न किया है और उनके संहारकर्त्ता भी तुम ही हो५ हे अग्ने ! बुद्धिमान् मनुष्य तुमको मेघ तथा बिजली कहते हैं तुममेंसे ज्वालाएँ निकलकर सब प्राणियों के योगक्षेमका निर्वाह करती हैं ॥ ६ ॥ हे पावक ! तुम्हारे विषें जल तथा यह संपूर्ण जगत् रहता है तथा इन तीनों लोकोंकी कोई बात भी तुमसे छिपी नहीं है ॥ ७ ॥ क्योंकि-हरएक व्यक्ति अपने उत्पन्न कर्ता कारणकी सेवा करता है, अतः तुम निःशंक होकर जलमें प्रवेश करो, मैं सनातन ब्राह्ममंत्रोंसे तुम्हारी वृद्धि किया करूँगा अर्थात् तुम्हें शान्त (नष्ट) नहीं होनेदूँगा ॥ ८ ॥ इसप्रकार बृहस्पतिने भगवान् कवि अग्निदेवकी स्तुति की तब ;भगवान् अग्निदेव प्रसन्न होकर बृहस्पतिसे श्रेष्ठ वचन कहने लगे कि-॥ ९ ॥ मैं तुम्हें इन्द्रको खोज करके दूँगा; यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, शल्य कहते हैं कि-हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर अग्नि ताल तलैया तथा समुद्रादि सब जलाशयोंमें घूमा और जिस सरोवरके जलमें इन्द्र छिपा हुआ बैठा था, तहाँ जा पहुँचा ॥ १० ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तहाँ पर अग्निने कमलोंके वनमें खोज करना आरंभ की खोजते २ उसने कमल

अपश्यत् स तु देवेन्द्रं विसमध्यगतं तदा ॥ ११ ॥ आगत्य च ततस्तूर्णं तमाचष्ट बृहस्पतिः । अणुमात्रेण वपुषा पद्मतन्त्वाश्रितं प्रभुम् १२ गत्वा देवर्षिगन्धर्वैः सहितोऽथ बृहस्पतिः । पुराणैः कर्मभिर्देवं तुष्टाव बलसूदनम् ॥१३॥ महासुरो हतः शक्र नमुचिर्दारुणस्त्वया । शम्बरश्च बलश्चैव तथोभौ घोरविक्रमौ ॥ १४ ॥ शतक्रतो विवर्द्धस्व सर्वान् शत्रून्निषूदय । उत्तिष्ठ शक्र सम्पश्य देवर्षींश्च समागतान् ॥१५॥ महेंद्र दानवान् हत्वा लोकास्त्राता त्वया विभो । अपां फेनं समासाद्य विष्णुतेजोऽतिबृंहितम् । त्वया वृत्रो हतः पूर्वं देवराज जगत्पते ॥ १६ ॥ त्वं सर्वभूतेषु शरण्य ईड्यस्त्वया समं विद्यते नेह भूतम् । त्वया धार्यन्ते सर्वभूतानि शक्र त्वं देवानां महिमानं चकर्थ ॥ १७ ॥ पाहि सर्वान् सलोकांश्च महेन्द्र बलमाप्नुहि । एवं संस्तूयमानश्च सोऽवर्द्धत शनैः शनैः ॥ १८ ॥ स्वञ्चैव वपुरास्थाय बभूव सबलान्वितः । अब्रवीच्च

की नालके वीचमें तन्तुओंमें स्थित देवराज इन्द्रको छिपकर बैठे हुए देखा ॥ ११ ॥ तब उसने तुरन्त बृहस्पतिके पास आकर कहा राजा इन्द्र अणुकी समान सूक्ष्म शरीर धारण करके कमलके तंतुओंमें बैठा है ॥ १२ ॥ यह सुनकर बृहस्पति, देवर्षियोंको तथा गंधर्वोंको साथमें लेकर उस सरोवरके तट पर गए और उसके प्राचीन पराक्रमोंका गान करके बल दैत्यको मारनेवाले इन्द्रकी स्तुति करने लगे कि–१३ हे इन्द्र ! तूने पहिले नमुचि नामक महादैत्यका नाश किया था तथा भयंकर पराक्रम वाले शंबर और बल दैत्यका भी नाश किया था १४ हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू वृद्धि पाकर सब शत्रुओंका संहारकर हे इन्द्र ! उठ खड़ा हो ! और इकट्ठे हुए देवर्षियोंकी ओर दृष्टि कर हे महेन्द्र ! हे विभो ! तूने दानवोंका संहार कर लोकोंकी रक्षा की थी, तैसे ही देवराज और हे जगत्पते ! तूने फेनमें वज्रको लपेटकर विष्णुके तेजसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुए वज्रसे, पहिले वृत्रासुरका भी नाश किया था ॥ १६ ॥ तू सब प्राणियोंको शरण देनेवाला है, स्तुति करने योग्य है, इस जगत्में तेरी समान कोई भी स्तुति करने योग्य नहीं है, हे इन्द्र ! तू सब प्राणियोंको धारण करता है और देवताओंकी महिमाको भी तूने ही चढाया है ॥ १७ ॥ हे महेन्द्र ! तू बल पाकर सबकी रक्षा कर " इस प्रकार बृहस्पतिने इन्द्रकी स्तुति की तब इन्द्र धीरे २ वृद्धि पाने लगा अर्थात् उसका उत्साह बढने लगा ॥१८॥ और वह अपने पहिले शरीरको फिर धारण करके बल-

गुरुं देवो बृहस्पतिमग्रस्थितम्॥१९॥ किं कार्यमवशिष्टं वो हतस्त्वाष्ट्रो महासुरः। वृत्रश्च सुमहाकायो यो वै लोकाननाशयत् ॥ २० ॥ बृहस्पतिरुवाच। मानुषो नहुषो राजा देवर्षिगणतेजसा । देवराज्यमनुप्राप्तः सर्वान्नो बाधते भृशम्। इन्द्र उवाच। कथं च नहुषो राज्यं देवानां प्राप दुर्लभम्। तपसा केन वा युक्तः किं वीर्यो वा बृहस्पते२२ बृहस्पतिरुवाच। देवा भीताः शक्रमकामयन्त त्वया त्यक्तं महदैन्द्रं पदं तत्। तदा देवाः पितरोऽथर्षयश्च गन्धर्वमुख्याश्च समेत्य सर्वे ॥२३॥ गत्वाब्रुवन्नहुषं तत्र शक्र त्वं नो राजा भव भुवनस्य गोप्ता। तानब्रवीन्नहुषो नास्मि शक्त आप्यायध्वं तपसा तेजसा माम् ॥ २४ ॥ एवमुक्तैर्वर्द्धितश्चापि देव राजाभवन्नहुषो घोरवीर्यः। त्रैलोक्ये च प्राप्य राज्यं महर्षीन् कृत्वा वाहान् याति लोकान् दुरात्मा ॥ २५ ॥ तेजोहरं

वान् बन गया तथा उसने समीपमें खड़े हुए गुरु बृहस्पतिसे कहा, कि-हे महाराज ! मैंने विश्वरूप नामक महादैत्यका नाश किया है, महाकाय वृत्रका भी नाश किया है वे असुर थे और लोकोंका सदा संहार किया करते थे, अब आपका क्या काम होना शेष रहा है वह मुझसे कहिये ॥ १९ ॥२०॥ बृहस्पति बोले कि-नहुष नामका मनुष्य राजा, देवता और ऋषियोंके तेजसे बढकर देवताओं पर प्रभुता चला रहा है और हम सबोंको अतीव कष्ट देता है, तुम उसका नाश करो ॥ २१ ॥ तब इन्द्रने बूझा कि—हे बृहस्पते ! राजा नहुषने देवताओंके दुर्लभ राज्यको किस प्रकार पाया, उसका पराक्रम कैसा है और उसने कौनसा तप किया था ? सो मुझे बताओ ॥ २२ ॥ बृहस्पति बोले कि-जब तुमने इन्द्रपदका त्याग किया तब देवता भयभीत होगए और स्वर्गके राज्य पर इन्द्रको स्थापित करनेकी इच्छा करने लगे, उस समय देवता, पितर,ऋषि तथा मुख्य २ गन्धर्व आदि सब इकट्ठे होकर नहुषके पास गए और उससे बोले कि-हे शक्र ! तुम हमारे राजा बनजाओ और तीनों लोकोंकी रक्षा करो, नहुषने उनसे कहा कि—'मैं स्वर्गका राज्य करनेके लिये समर्थ नहीं हूँ, अतः तुम तपसे और तेजसे मेरे बलकी वृद्धि करो तो मैं इन्द्र बनूं'२३-२४ इस प्रकार नहुषने कहा तब देवताओंने उसको तपसे तथा तेजसे बलवान् किया और भयंकर पराक्रम वाला नहुष स्वर्गका राजाहुआ इस प्रकार तीनों लोकोंका राज्य प्राप्त करके। यह दुष्टात्मा अब महर्षियोंसे पालकी उठवा कर लोकोंमें घूमता है ॥ २५ ॥ नहुषकी दृष्टि

दृष्टिविषं सुघोरं मा त्वं पश्येर्नहुषं वै कदाचित्। देवाश्च सर्वे नहुषं भृशार्त्ता न पश्यन्ते गूढरूपाश्चरन्तः ॥ २६ ॥ शल्य उवाच । एवं वदत्यङ्गिरसां वरिष्ठे बृहस्पतौ लोकपालः कुबेरः । वैवस्वतश्चैव यमः पुराणो देवश्च सोमो वरुणश्चाजगाम ॥ २७ ॥ ते वै समागम्य महेन्द्रमूचुर्दिष्ट्या त्वाष्ट्रो निहतश्चैव वृत्रः । दिष्ट्या च त्वां कुशलिनमक्षतञ्च पश्यामो वै निहतारिञ्च शक्र ॥ २८ ॥ स तान् यथावच्च हि लोकपालान् समेत्य वै प्रीतमना महेन्द्रः । उवाच चैनान् प्रतिभाष्य शक्रः सञ्चोदयिष्यन्नहुषस्यान्तरेण ॥ २९ ॥ राजा देवानां नहुषो घोररूपस्तत्र साह्यं दीयतां मे भवद्भिः । ते चाब्रुवन्नहुषो घोररूपो दृष्टिविषस्तस्य बिभीम ईश ३० त्वं चेद्राजानं नहुषं पराजयेस्ततो वयं भागमर्हाम शक्र । इन्द्रोऽब्रवीद्भवतु भवानपाम्पतिर्यमः कुबेरश्च मयाभिषेकम् ॥३१॥ सम्प्राप्नुवन्त्वद्य सहैव दैवतै रिपुं जयाम तं नहुषं घोर-

में सामनेके मनुष्यके पराक्रमको हरनेवाला भयंकर विष रहता है अतः तुम किसी दिन भी नहुषके सामनेको नहीं देखना रे ! उससे सब देवता भी बहुत ही खिन्न होगए हैं, इस लिए उसकी ओरको देखते नहीं हैं । किन्तु दुबकते हुए विचरा करते हैं ॥ २६ ॥ शल्य बोले कि हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार अङ्गिराके पुत्र बृहस्पति इंद्रसे कह रहे थेकि इतनेमें ही लोकपाल कुबेर, सूर्यपुत्र यमराज और प्राचीन देव चन्द्र तथा वरुण वहां आपहुँचे ॥ २७ ॥ उन्होंने परस्पर मिलकर महेन्द्रसे कहा कि-तुमने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप और वृत्रको मारा यह ठीक किया और हे इन्द्र ! हम आज शत्रुका संहार करने वाले आपको घाव रहित और सकुशल देखते हैं, यह भी हर्षकी बात है ॥२८॥ इंद्र उनकी बात सुनकर मनमें प्रसन्न हुआ तथा वह लोकपालोंसे यथोचित रीतिसे मिला और उसने आये हुए लोकपालोंके साथ बातचीत करते हुए नहुषकी बुद्धिका नाश करनेके लिए कहा कि—।२९। देवराज नहुष भयंकर आकार वाला है, अतः तुम मेरी सहायता करो देवता बोले कि-नहुषका रूप भयंकर है और उसकी आँखमें विष भरा रहता है, इस लिये हे ईश ! हम उससे डरते हैं ॥ ३० ॥ हे इन्द्र ! यदि तुम नहुषका पराजय करोगे तो ही हम यज्ञका भाग पा सकते हैं, इंद्र बोला कि-अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा, आजसे ही वरुण का, यमका और कुबेरको तुम्हारे अपने २ अधिकार पर, अभिषेक करताहूँ और चलो, हम देवताओंसे मिलकर भयंकर दृष्टिवाले नहुष

दृष्टिम् । ततः शक्रं ज्वलनोऽप्याह भागं प्रयच्छ मह्यं तव साह्यं करिष्ये । तमाह शक्रो भविताग्ने तवापि चेन्द्राग्न्योर्वै भाग एको महाक्रतौ शल्य उवाच । एवं सञ्चिन्त्य भगवान् महेन्द्रः पाकशासनः । कुबेरं सर्वयक्षाणां धनानाञ्च प्रभुं तथा ३३ वैवस्वतं पितृणां च वरुणञ्चाप्यपां तथा । आधिपत्यं ददौ शक्रः सञ्चिन्त्य वरदस्तथा ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणीन्द्र-
वरुणादिसम्वादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

शल्य उवाच । अथ सञ्चिन्तयानस्य देवराजस्य धीमतः । नहुषस्य वधोपायं लोकपालैः सदैवतैः ॥१॥ तपस्वी तत्र भगवानगस्त्यः प्रत्यदृश्यत । सोऽब्रवीदर्च्य देवेन्द्रं दिष्ट्या वै वर्द्धते भवान् ॥ २ ॥ विश्वरूपविनाशेन वृत्रासुरवधेन च । दिष्ट्याद्य नहुषो भ्रष्टो देवराज्यात् पुरन्दर । दिष्ट्या हतारिं पश्यामि भवन्तं बलसूदन ॥३॥ इन्द्र उवाच । स्वागतं ते महर्षेऽस्तु प्रीतोऽहं दर्शनात्तव । पाद्यमाचमनीयञ्च गामर्घ्यञ्च प्रतीच्छ मे ॥ ४ ॥ शल्य उवाच । पूजितं चोपविष्टं तमासने

का पराजय करें, उस प्रसंगमें अग्निने इन्द्रसे कहा कि-मुझे भाग दो तो मैं भी तुम्हारी सहायता करूँ, तब इन्द्रने अग्निसे कहा कि-महायज्ञमें इन्द्राग्नी नामका एक स्वतन्त्र भाग तुमको भी मिला करेगा शल्य कहते हैं कि-हे युधिष्ठिर ! वर देने वाले भगवान् पाकशासन महेन्द्रने इस प्रकार विचार करके कुबेरको सब यक्षोंका तथा धनका अधिपतिपना दिया, यमको पितरोंका अधिपतिपना दिया और वरुण को जलका अधिपतिपना दिया ॥३१॥३४॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त

शल्य कहते हैं कि-जब बुद्धिमान् इन्द्र, देवता और लोकपालोंके साथ नहुषका नाश करनेके उपायका विचार कर रहा था ॥१॥ इतने में ही तहां तपस्वी भगवान् अगस्त्य सबोंकी दृष्टि पड़े उन्होंने देवताओंके इन्द्रका सत्कार करके उससे कहा कि-तुमने विश्वरूप और वृत्रका नाश किया, यह काम ठीक किया तथा हे पुरन्दर ! आज राजा नहुष भी देवताओंके राज्यासन परसे भ्रष्ट हुआ यह भी ठीक ही हुआ ॥ २॥३ ॥ हे बल दैत्यका संहार करने वाले ! शत्रुके संहार करने वाले ! तुम्हें जो आज हम सकुशल देखते हैं, यह बड़े आनन्द की बात है, इन्द्र बोले कि-हे महर्षे! तुम भले पधारे, मैं तुम्हारे दर्शन से प्रसन्न हुआ हूँ, मैं आपको पाद्य आचमन, बैल तथा अर्घ अर्पण करता हूँ, उसे आप ग्रहण करिये ॥४॥ शल्य कहते हैं कि-तदनन्तर

मुनिसत्तमम् । पर्यपृच्छत देवेशः प्रहृष्टो ब्राह्मणर्षभम् ।५। एतदिच्छामि भगवन् कथ्यमानं द्विजोत्तम । परिभ्रष्टः कथं स्वर्गान्नहुषः पापनिश्चयः ॥६॥ अगस्त्य उवाच । शृणु शक्र प्रियं वाक्यं यथा राजा दुरात्मवान् । स्वर्गाद् भ्रष्टो दुराचारो नहुषो बलदर्पितः ॥७॥ श्रमार्तास्च वहन्तस्तं नहुषं पापकारिणम् । देवर्षयो महाभागास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥८॥ पप्रच्छुर्नहुषं देव संशयं जयतां वर । य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मंत्रा वै प्रोक्षणे गवाम् ॥ ९ ॥ एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव । नहुषो नेति तानाह तमसा मूढचेतनः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः । अधर्मे सम्प्रवृत्तस्त्वं धर्मं न प्रतिपद्यसे । प्रमाणमेतदस्माकं पूर्वं प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ ११ ॥ अगस्त्य उवाच । ततो विवदमानः सः मुनिभिः सह वासव । अथ मामस्पृशन्मूर्ध्नि पादेनाधर्मपीडितः ॥ १२॥ तेनाभूद्धततेजाश्च निःश्रीकश्च महीपतिः । ततस्तं तमसाविग्नमवोचं भृशपी.

इन्द्रने मुनिश्रेष्ठकी पूजा की, मुनि आसन पर बैठे, तब प्रसन्नहुए देवेश्वर इन्द्रने ब्राह्मणश्रेष्ठ अगस्त्यसे बूझा कि–॥ ५ ॥ हे भगवन्! हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! पाप भरे विचार वाला राजा नहुष स्वर्गमेंसे कैसे भ्रष्ट हुआ ? यह बात मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ, ॥ ६ ॥ अगस्त्य बोले कि–हे इन्द्र! दुष्टात्मा दुराचारी बलसे गर्वमें भरा हुआ राजा नहुष किस कारण स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ है इस विषयमें मैं तुमसे जो प्रिय बात कहता हूँ, उसे तुम सुनो ॥७॥ महाभाग तथा निर्मल गुण वाले देवर्षि और महर्षि, पाप कर्म करने वाले राजा नहुषकी पालकी को उठाकर चल रहे थे परन्तु जब वे थक कर आतुर होगए तब वे, हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ राजन्! इन्द्र! नहुषसे अपना संदेह बूझने लगे कि हे राजन् नहुष! गौओंके प्रोक्षणके विषयमें जो मंत्र वेदमें कहे हैं वे मन्त्र तुम्हें प्रमाण (मान्य) हैं या नहीं अज्ञानताके कारण मूढमति बने हुए नहुषने उत्तर दिया कि मुझको वह मन्त्र मान्य नहीं हैं ८–१० ऋषि बोले कि तू अधर्मके मार्गमें चलता है और धर्मको नहीं मानता है तो जाने दे परन्तु महर्षियोंने पहिले ऐसा कहा है इस लिये वह हमें तो मान्य है ॥ ११ अगस्त्य कहते हैं कि हे इन्द्र! तदनन्तर राजा नहुष मुनियोंके साथ वादविवाद करनेलगा और उसने अधर्मसे मुग्ध होनेके कारण अपना पैर मेरे मस्तक पर मारा ॥ १२ ॥ इससे उस राजाका तेज नष्ट होगया और उसकी लक्ष्मीकाभी नाश होगया तदनन्तर अज्ञानमें डूबे हुए तथा अत्यन्त खिन्न हुए राजा नहुषसे मैंने

ष्ठितम् ॥ १३ ॥ यस्मात् पूर्वैः कृतं राजन् ब्रह्मर्षिभिरनुष्ठितम् । अदुष्टं दूषयसि मे यच्च मूर्ध्न्युपस्पृशः पदा ॥१४॥ यच्चापि त्वमृषीन्मूढ ब्रह्मकल्पान् दुरासदान् ॥ १५ ॥ वाहान् कृत्वा वाहयसि तेन स्वर्गाद्धतप्रभः । ध्वंसपापपरिभ्रष्टः क्षीणपुण्यो महीतले ॥१६॥ दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान् । विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥१७॥ एवं भ्रष्टो दुरात्मा स देवराज्यादरिन्दम । दिष्ट्या वर्द्धामहे शक्र हतो ब्राह्मणकण्टकः ॥१८ ॥ त्रिविष्टपं प्रपद्यस्व पाहि लोकान् शचीपते । जितेन्द्रियो जितामित्रः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ १९ ॥ शल्य उवाच । ततो देवा भृशं तुष्टा महर्षिगणसंवृताः । पितरश्चैव यक्षाश्च भुजगा राक्षसास्तथा ॥ २० ॥ गन्धर्वा देवकन्याश्च सर्वे चाप्सरसां गणाः । सरांसि सरितः शैलाः सागराश्च विशाम्पते ॥ २१ ॥ उपागम्याब्रु-

---

कहा कि-॥ १३ ॥ हे मूढ़ राजन् ! तू प्राचीन कालके महर्षियोंके चलाए हुए और ब्रह्मर्षियोंके आचरण किये हुए दोषरहित वैदिकधर्मपर दोष लगाता है साक्षात् ब्रह्माकी समान श्रेष्ठ और जिनके कोई पास भी नहीं जासकता ऐसे ऋषियोंसे पालकी उठवाकर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर आया जाया करता है तथा तूने पैरसे मेरे मस्तकको ठुकराया है ऐसे भयङ्कर पाप कर्म करनेसे तू पुण्यरहित होकर स्वर्गसे पृथ्वीमें गिरजा ॥ १४॥ १६ ॥ और तहाँ अजगरका रूप धारण करके दश सहस्र वर्षतक टक्करें मारता फिर, दश सहस्र वर्ष पीछे तू फिर स्वर्गमें आवेगा ॥ १७ ॥ हे शत्रुदमन इन्द्र ! इस प्रकार शाप देनेसे वह दुष्टात्मा और ब्राह्मणोंको काँटेकी समान दुःख देने वाला ;नहुष देवराज्यसे भ्रष्ट हुआ है उसका नाश होगया है और हमारे सौभाग्य की वृद्धि हुई है ॥ १८ ॥ हे इन्द्राणीपते ! तुमने शत्रुका पराजय किया है तुम जितेंद्रिय भी हो अब तुम महर्षियोंकी स्तुतियोंसे शोभा पाते हुए स्वर्गमें पधारो और देवताओंका पालन करो ॥ १९ ॥ शल्य बोले कि-हे राजन् ! नहुष स्वर्गसे गिर गया तब देवता महर्षि पितर यक्ष सर्प राक्षस गंधर्व देवकन्याएँ सब अप्सराएँ नदियें सरोवर पर्वत और समुद्र इन्द्रके पास जाकर बोले कि हे शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र ! बुद्धिमान् अगस्त्यजीने पापी राजा नहुषका नाश किया और तुम्हारे सुखमें वृद्धि हुई है, पाप कर्म करने वाले नहुषको अगस्त्यने

श्चेह च मोदते १९ न चारिजं भयं तस्य नापुत्रो वा भवेन्नरः। नापदं प्राप्नुयात् काञ्चिद्दीर्घमायुश्च विन्दति। सर्वत्र जयमाप्नोति न कदाचित् पराजयम् ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमाश्वासितो राजा शल्येन भरतर्षभ। पूजयामास विधिवच्छल्यं धर्मभृतां वरः ॥ २१ ॥ श्रुत्वा तु शल्यवचनं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। प्रत्युवाच महाबाहुर्मद्रराजमिदं वचः ॥ २२ ॥ भवान् कर्णस्य सारथ्यं करिष्यति न संशयः। तत्र तेजोवधः कार्यः कर्णस्यार्जुनसंस्तवः ॥ २३ ॥ शल्य उवाच। एवमेतत् करिष्यामि यथा मां संप्रभाषसे। यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्याम्यहं तव ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच। ततस्त्वामन्त्र्य कौन्तेयाच्छल्यो मद्राधिपस्तदा। जगाम सबलः श्रीमान् दुर्योधनमरिंदम२५

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि
शल्यगमनेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच। युयुधानस्ततो वीरः सात्वतानां महारथः।

जो मनुष्य नियमपूर्वक इस इन्द्रविजय नामवाले उपाख्यानको सुनता है अथवा पढ़ता है उसके पाप धुलजाते हैं, वहमनुष्य स्वर्गको जीतता है और इस लोक तथा परलोकमें आनन्द भोगता है ॥ १९ ॥ उस मनुष्यको शत्रुकी ओरसे भय नहीं रहता है, वह निःसन्तान भी नहीं रहता है तथा उसके ऊपर किसी प्रकारकी आपत्ति भी नहीं पड़ती है, वह दीर्घायुको भोगता है तथा सब जगह विजय पाता है उसका पराजय तो किसी दिन भी नहीं होता है ॥२०॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ! इसप्रकार कहकर शल्यने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मराजको ढाढस दिया और धर्मराजने शल्यकी शास्त्रमें लिखी रीतिसे पूजा की२१शल्यके ऐसे वाक्योंको सुनकर कुन्तीपुत्र महाबाहु युधिष्ठिरने मद्रराजको उत्तर दिया कि-॥ २२ ॥ आप कर्णकी कोचवानी अवश्य करना और उस समय अर्जुनकी प्रशंसा करके कर्णकी शूरता का नाश कर देना ॥ २३ ॥ शल्य बोले कि-हे युधिष्ठिर ! तुम मुझसे जैसा कहते हो मैं ऐसा ही करूँगा तथा तुम्हारा और भी कोई दूसरा काम जो मुझसे बन सकेगा मैं उसे भी अवश्य करूँगा ॥ २४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि हे अरिमर्दन ! तदनन्तर श्रीमान् मद्रराज शल्य कुंतीपुत्रसे आज्ञा लेकर अपनी सेनाके साथ दुर्योधनके पास गए २५ अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनन्तर यादवोंमें महारथी, सात्यकि

महता चतुरंगेण दलेनागाद्युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥ तस्य योधा महावीर्या नानादेशसमागताः । नानाप्रहरणा वीरा शोभयाञ्चक्रिरे बलम् ॥२॥ परश्वधैर्भिन्दिपालैः शूलतोमरमुद्गरैः । परिघैर्यष्टिभिः पाशैः करवालैश्च निर्मलैः ॥ ३ ॥ खड्गकार्मुकनिर्व्यूहैः शरैश्च विविधैरपि । तैलधौतैः प्रकाशद्भिः सदाशोभत वै बलम् ॥ ४ ॥ तस्य मेघप्रकाशस्य सौवर्णैश्शोभितस्य च । बभूव रूपं सैन्यस्य मेघस्येव सविद्युतः ॥५॥ अक्षौहिणी तु सा सेना तदा यौधिष्ठिरं बलम् । प्रविश्यान्तर्दधे राजन् सागरं कुनदी यथा ॥ ६ ॥ तथैवाक्षौहिणीं गृह्य चेदीनामृषभो बली । धृष्टकेतुरुपागच्छत् पाण्डवानमितौजसः ॥ ७ ॥ मागधश्च जयत्सेनो जारासन्धिर्महाबलः । अक्षौहिण्यैव सैन्यस्य धर्मराजमुपागमत्॥ ८ ॥ तथैव पांड्यो राजेन्द्र सागरानूपवासिभिः।वृतो बहुविधैर्योधैर्युधिष्ठिरमुपागमत् ॥ ९ ॥ तस्य सैन्यमतीवासीत्तस्मिन् बलसमागमे । प्रेक्षणीयतरं राजन् सुवेशं बलवत्तदा ॥१०॥ द्रुपदस्याप्यभूत् सेना नाना-

चतुरंगिणी सेनाके साथ राजा युधिष्ठिरके पास आये ॥ १ ॥ महापराक्रमी अनेकों प्रकारके आयुधों वाले, भिन्न २ देशोंमें से आए हुए वीर योधा उनकी सेनामें शोभा पारहे थे ॥ २ ॥ फरस भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुद्गर, परिघ, लकड़ी, पाश, चमचमाती हुई तलवारें, धनुष और अनेकों प्रकारसे सान धरे हुए तथा तेज करनेसे दमकते हुए बाणोंसे उनकी सेना सदा शोभा पाती थी ॥३॥४॥ उनकी सेना मेघकी समान श्यामवर्ण थी और सेनापति सुवर्णके आभूषण पहररहे थे, इससे उनकी छटा बिजलीयुक्त मेघसी लगती थी ॥५॥ हे राजन्! वह अक्षौहिणी सेना युधिष्ठिरकी छावनीमें पहुँची कि—जैसे छोटी सी नदी समुद्रमें मिलकर अंतर्धान होजाती है तिसी प्रकार अदृश्य होगई ६ और एक अक्षौहिणी सेना लेकर चेदियोंमें श्रेष्ठ बली राजा धृष्टकेतु भी अगाधबल वाले पाण्डवोंके यहां आया ७ मगध देशका राजा और जरासंधका पुत्र महाबली जयत्सेन भी एक अक्षौहिणी सेनाको लेकर युधिष्ठिरके पास आ पहुँचा ८ ऐसे ही हे राजेंद्र राजा पांड्य भी समुद्रके तटपर रहने वाले और भिन्न २ नगरोंके निवासी अनेकों योधाओंको साथमें लेकर राजा युधिष्ठिरके पास आया ९ हे राजन् ! इस प्रकार भिन्न २ देशोंसे आई हुई सेनाओंके इकट्ठी होनेसे राजा युधिष्ठिरकी बल भरी और सुन्दर वेषवाली सेना उस समय देखने योग्य थी १० राजा द्रुपदकी सेना भी अनेकों देशों

देशसमागतैः । शोभिता पुरुपैः शूरैः पुत्रैश्चास्य महारथैः ॥११॥ तथैव राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः । पार्वतीयैर्महीपालैः सहितः पाण्डवानियात् ॥ १२ ॥ इतश्चेतश्च पाण्डूनां समाजग्मुर्महात्मनाम् । अक्षौहिण्यस्तु सप्तैता विविधध्वजसंकुलाः ॥ १३ ॥ युयुत्समानाः कुरुभिः पांडवान् समहर्षयन् । तथैव धार्त्तराष्ट्रस्य हर्षं समभिवर्द्धयन् ॥ १४ ॥ भगदत्तो महीपालः सेनामक्षौहिणीं ददौ । तस्य चीनैः किरातैश्च कांचनैरिव संवृतम् ॥ १५ ॥ बभौ बलमनाधृष्यं कर्णिकारवनं यथा । तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनन्दन ॥१६॥ दुर्य्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक्। कृतवर्मा च हार्द्दिक्यो भोजान्धकुकुरैः सह ॥ १७ ॥ अक्षौहिण्यैव सेनायाः दुर्य्योधनमुपागमत् । तस्य तैः पुरुषव्याघ्रैर्वनमालाधरैर्बलम् ॥ १८ ॥ अशोभत यथा मत्तैर्वनं प्रक्रीडितैर्गजैः । जयद्रथमुखाश्चान्ये सिंधुसौवीरवासिनः ॥ १९ ॥ आजग्मुः पृथिवीपालाः कम्पयंत इवाचलान् । तेषामक्षौहिणी सेना बहुला विबभौ तदा ॥ २० ॥ विधूयमानो वातेन बहुरूप इवाम्बुदः ।

से आए हुए वीर राजपुत्रोंसे तथा अपने महारथी पुत्रोंसे शोभित हो रही थी ॥ ११॥ तैसे ही मत्स्यदेशका सेनापति विराट भी, पर्वती राजाओंके साथ पाण्डवोंके दरबारमें उपस्थित हुआ था१२ इसप्रकार नाना प्रकारकी पताकाओंसे युक्त और कौरवोंसे लड़ना चाहनेवाली सात अक्षौहिणी सेनाएँ भिन्न २ देशोंसे आकर महात्मा पाण्डवोंके पास उपस्थित हुई थीं और उन्होंने पाण्डवोंको प्रसन्न किया था, दूसरी ओर राजा भगदत्तने एक अक्षौहिणी सेना देकर दुर्योधनके हर्षको बढ़ाया था, मानो सुनहरी वर्णके पुरुषोंसे भरपूर हों, ऐसे पीले वर्णके चीनी और किरातोंसे भरी हुई तथा किसीसे न दबने वाली भगदत्तकी सेना कनेरके वनकी समान शोभा पा रही थी, तैसे ही हे कुरुपुत्र ! वीर भूरिश्रवा और राजा शल्य भी एक २ अक्षौहिणी सेना लेकर राजा दुर्योधनके पास आये थे, हृदीकका पुत्र कृतवर्मा भोज अंधक और कुकुर नामके राजाओंको साथमें लेकर दुर्योधनके पास आगया था, जिस समय मदमत्त हुए हाथियोंकी क्रीड़ासे जैसे वन सुन्दर प्रतीत होता है, तैसे ही वनमालाको धारण करने वाले महापुरुषोंसे उसकी सेना शोभा पा रहीथी तदनन्तर सिंधु तथा सौवीर देशके राजे जयद्रथ आदि भी पर्वतोंको कंपायमान करते हुए दुर्योधनकी सहायता करनेके लिए आने लगे उनकी अनेकों अक्षौहिणी

सुदक्षिणश्च काम्बोजो यवनैश्च शकैस्तथा ॥२१॥ उपाजगाम कौरव्यमक्षौहिण्या विशाम्पते । तस्य सेनासमावायः शलभानामिवाबभौ॥२२ स च सम्प्राप्य कौरव्यं तत्रैवान्तर्दधे तदा । तथा माहिष्मतीवासी नीलो लीलायुधैः सह ॥ २३ ॥ महीपालो महावीर्यैर्दक्षिणापथवासिभिः आवन्त्यौ च महीपालौ महाबलसुसंवृतौ ॥ २४ ॥ पृथगक्षौहिणीभ्यां तावभियातौ सुयोधनम् । केकयाश्च नरव्याघ्राः सोदर्याः पञ्च पार्थिवाः॥२५॥संहर्षयंतः कौरव्यमक्षौहिण्या समाद्रवन् । ततस्ततस्तु सर्वेषां भूमिपानां महात्मनाम् ॥२६॥तिस्रोऽन्योः समवर्त्तन्त वाहिन्यो भरतर्षभ । एवमेकादशावृत्ताः सेना दुर्योधनस्य ताः॥२७॥ युयुत्समानाः कौन्तेयान् नानाध्वजसमाकुलाः । न हास्तिनपुरे राजन्नवकाशोऽभवत्तदा ॥ २८ ॥ राज्ञां स्वबलमुख्यानां प्राधान्येनापि भारत । ततः पंचनदञ्चैव कृत्स्नञ्च कुरुजाङ्गलम् ॥ २९ ॥ तथा रोहितकारण्यं मरुभू-

---

सेनाएँ रणमें पवनसे कांपते और छिन्न भिन्न हुए अनेकों आकारके मेघोंकी समान शोभा पा रही थीं और हे राजन् ! यवन तथा शक देशके राजाओंको साथमें लिये काम्बोज देशका राजा सुदक्षिण भी अक्षौहिणी सेना सहित कौरवोंको सहायता करनेको आगया था उसकी सेनाका समूह टीड्डियोंके दलकी समान शोभा पारहा था १३-२२ तो भी वह सेना कौरवोंकी सेनाके समीपमें आते ही उसमें अदृश्य होगई अर्थात् कौरवोंकी अगाध सेनाके साथ मिलते ही वह न जाने कहां गई यह दिखाई नहीं दिया, माहिष्मती नगरीका राजा नील भी महापराक्रमी दक्षिण देशके और श्यामवर्णके शस्त्रधारी योधाओंको साथ लेकर कौरवोंके पास आपहुँचा दूसरी ओरसे बड़ी २ सेनाओंसे घिरे हुए अवन्ति देशके राजा विंद तथा अनुविंद भी एक २ अक्षौहिणी सेनाएँ साथमें लेकर दुर्योधनके पास आगये तैसेही मनुष्योंमें वाघोंकी समान पाँच सहोदर भ्राता केकय राजे भी सुयोधनको प्रसन्न करनेके लिये अक्षौहिणी सेना लेकर उपस्थित हुए थे, हे भरतवंशी श्रेष्ठ राजन् ! चारों दिशाओंमेंसे आए हुए अन्य बड़ेर राजाओंकी और तीन अक्षौहिणी सेनाएँभी वहाँ आईं थीं पाण्डवोंसे लड़ना चाहने वाली और नाना प्रकारको शब्दोंसे गुंजारती हुई दुर्योधनकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी हे भरतवंशी राजन् ! उस समय जब कि अपनी सेनाके प्रधान २ राजाओंके रहनेके लिये भी हस्तिनापुरमें पूरा पूरा स्थान नहीं था तो दूसरोंके लिये तो होताही कहाँसे ? हे भरत-

मिश्च केवला। अहिच्छत्रं कालकूटं गङ्गाकूलञ्च भारत ॥३०॥ वारणं वाटधानं च यामुनश्चैव पर्वतः। एवं देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान् ॥३१॥ बभूव कौरवेयाणां वलेनातीव संवृतः। तत्र सैन्यं तथा युक्तं ददर्श च पुरोहितः ॥ ३२ ॥ यः स पाञ्चालराजेन प्रेषितः कौरवान् प्रति ॥ ३३ ॥ छ छ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सेनोद्योगपर्वणि पुरोहित-सैन्यदर्शन एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

समाप्तञ्च सेनोद्योगपर्व।

अथ संजययान पर्व।

वैशम्पायन उवाच। स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः। सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च ॥ १ ॥ सर्वं कौशल्यमुक्त्वादौ पृष्ट्वा चैवमनामयम्। सर्वसेनाप्रणेतॄणां मध्ये वाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥ सर्वैर्भवद्भिर्विदितो राजधर्मः सनातनः। वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिते सति ॥ ३ ॥ धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ। तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नात्र संशयः ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्रस्य ये पुत्राः प्राप्तं तैः

वंशी राजन्! पंचनद संपूर्ण कुरुजांगल रोहितवन, मारवाड़, अहिच्छत्र, कालकूट, गंगाजीका; तट, वारण वाटधान और यमुना नदीके तटका पहाड़ी स्थान (गिरिराज) ये सब प्रदेश बहुत लम्बे और बहुतसे धनधान्यसे पूर्ण थे ये सब प्रदेश कौरवोंकी सेनाओंसे खूब भरगए थे राजा द्रुपदने कौरवोंके पास जिस पुरोहितको दूत बनाकर भेजा था उसने इस प्रकार इकट्ठी हुई सेनाओंको देखा ॥ २३-३३ ॥ एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ छ छ छ

सेनोद्योगपर्व समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय! राजा द्रुपदका पुरोहित दूत बन हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्रके पास पहुँचा। धृतराष्ट्र भीष्म तथा विदुरने उसका सत्कार किया ॥ १ ॥ दूतने पहिले सबके कुशल समाचार कहे और फिर उनका कुशल समाचार बूझा तदनन्तर सब सेनापतियोंके बीचमें वह कहने लगा कि ॥ २ ॥ आप सब सनातन राजधर्मको जानते हैं तोभी मुझे आपसे कुछ कहनेकी इच्छा है अतः मैं आपको धर्म सुनाता हूँ इसे आप सुनो ॥ ३ ॥ राजा धृतराष्ट्र और राजा पांडु एक ही राजाके पुत्र हैं इस बातको सब जानते हैं पिताके धन पर उन दोनोंका समान अधिकार है यह बात निःसंदेह है। ॥४॥

पैतृकं वसु। पाण्डुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु॥ ५॥ एवं गते पाण्डवेयैर्विदितं वः पुरा यथा। न प्राप्तं पैतृकं द्रव्यं धृतराष्ट्रेण संवृतम्॥६॥ प्राणान्तिकैरप्युपायैः प्रयतद्भिरनेकशः। शेषवन्तो न शकिता नेतुं वै यमसादनम्॥ ७॥ पुनश्च वर्द्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः। छद्मनापहृतं क्षुद्रैर्धार्त्तराष्ट्रैः ससौबलैः॥ ८॥ तदप्यनुमतं कर्म यथायुक्तमनेन वै। वासिताश्च महारण्ये वर्षाणीह त्रयोदश॥ ९॥ सभायां क्लेशितैर्वीरैः सहभार्यैस्तथा भृशम्। अरण्ये विविधाः क्लेशाः सम्प्राप्तास्तैः सुदारुणाः॥ १०॥ तथा विराटनगरे योन्यन्तरगतैरिव। प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्महात्मभिः॥ ११॥ ते सर्वं पृष्ठतः कृत्वा तत् सर्वं पूर्वकिल्बिषम्। सामैव कुरुभिः सार्द्धमिच्छन्ति कुरुपुंगवाः १२ तेषां च वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च। अनुनेतुमिहार्हन्ति धार्त्तराष्ट्रं सुहृज्जनाः॥ १३॥ न हि ते विग्रहं वीराः कुर्वन्ति कुरुभिः

तथापि पिताका धन धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मिला है और पांडुके पुत्रों को नहीं मिला इसका क्या कारण है ?॥ ५॥ दुर्योधनने पहिलेसे ही सब धन दवा लिया है इस कारण पांडवोंको पिताका धन नहीं मिला यह भी आप जानते हो॥ ६॥ और कौरवोंने पांडवोंका नाश करनेके लिये भी अनेकों उपाय करनेके प्रयत्न किये परन्तु पांडवोंके भाग्यमें जीवन लिखा था इस कारण कौरव पांडवोंको नहीं मारसके महात्मा पांडवोंको जो अपने हिस्सेका राज्य मिला था उसको उन्हों ने अपने बलसे बढ़ाया था तथापि शकुनिके साथ मिलकर धृतराष्ट्र के क्षुद्रपुत्रोंने कपटसे जुआ खिला कर उनका राज्य छीन लिया॥८॥ और उन्हें तेरह वर्ष तक घोर वनमें रहनेके लिये भेज दिया था। इस कामको भी पाण्डवोंने यथोचितरीतिसे पूरा कर दिया और वनमें निवास किया॥ ९॥ वीर पांडवोंने भरी सभामें अपनी स्त्री द्रौपदी के साथ दुःख भोगे तथा वनमें भी अनेकों प्रकारके दारुण दुःख सहे हैं॥ १०॥ विराटनगरमें भी महात्मा पांडवोंने मानो दूसरा जन्म धारण किया हो इस प्रकार रूप वदल कर पापियोंकी समान महाक्लेश भोगा है॥ ११॥ इस प्रकार कौरवोंने पांडवोंको पहिलेही बड़े बड़े दुःख दिये हैं परन्तु उन किये हुए अपराधोंको भूलकर कुरुवंश में श्रेष्ठ पांडव अबभी अपने भाई कौरवोंकेसाथ मेलका वर्त्ताव रखना चाहते हैं॥ १२॥ अतः पांडवोंके तथा दुर्योधनके वर्त्तावका यथावत् विचार करके इसके स्वरूपको समझ कर संबन्धियोंको चाहिये

सह । अविनाशेन लोकस्य कांक्षन्ते पांडवाः स्वकम् ॥ १४ ॥ यच्चापि धार्तराष्ट्रस्य हेतुः स्याद्विग्रहं प्रति । स च हेतुर्न मन्तव्यो बलीयांसस्तथा हि ते ॥ १५ ॥ अक्षौहिण्यश्च सप्तैव धर्मपुत्रस्य संगताः । युयुत्समानाः कुरुभिः प्रतीक्षन्तेऽस्य शासनम् ॥१६ ॥ अपरे पुरुषव्याघ्राः सहस्राक्षौहिणीसमाः । सात्यकिर्भीमसेनश्च यमौ च सुमहाबलौ॥१७॥ एकादशैताः पृतना एकतश्च समागताः । एकतश्च महाबाहुर्बहुरूपी धनञ्जयः ॥ १८ ॥ यथा किरीटी सर्वाभ्यः सेनाभ्यो व्यतिरिच्यते । एवमेव महाबाहुर्वासुदेवो महाद्युतिः॥१९॥ बहुलत्वञ्च सेनानां विक्रमञ्च किरीटिनः । बुद्धिमत्त्वञ्च कृष्णस्य बुद्ध्वा युध्येत को नरः २० ते भवन्तो यथाधर्मं यथासमयमेव च । प्रयच्छन्तु प्रदातव्यं मा वः कालोऽत्यगादयम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि पुरोहितयाने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंको समझावें ॥ १३ ॥ वीर पांडव कौरवोंसे लड़ना नहीं चाहते किंतु जिसमें लोकोंका संहार न हो इस प्रकार अपना राज्यभाग लेना चाहते हैं ॥ १४ ॥ राज्यसम्पत्तिके लिये युद्ध करना चाहिये यदि दुर्योधनका ऐसा विचार हो तो आप इस बात पर कुछ ध्यान न दें क्योंकि-पांडव भी महाबलवान् हैं ॥ १५ ॥ धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास भी सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होगई हैं और वे सब कौरवोंसे लड़नेके लिये तयार हैं यह सब सेना केवल युधिष्ठिरकी आज्ञाकी ही बाट देख रही हैं ॥ १६ ॥ पुरुषव्याघ्र सात्यकि भीमसेन तथा महाबली नकुल और सहदेव ऐसे बली हैं कि-सहस्रों अक्षौहिणी सेनाओंके समान हैं ॥ १७ ॥ एक ओर तुम्हारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है और दूसरी ओर बहुतसे रूप धारण करनेवाला महाबाहु अर्जुन है ॥ १८ ॥ यह किरीटी अर्जुन सब सेनाओंसे अधिक बलवान् है तैसे ही महाकान्तिवाले महाभुज वासुदेव कृष्ण भी ऐसे ही बली हैं ॥ १९ ॥ इसलिये सेनाकी अधिकता अर्जुनका पराक्रम तथा श्रीकृष्णकी बुद्धिमानीको जानकर कौन पुरुष युद्ध करनेको तयार होगा ? ॥ २० ॥ अतः धर्म तथा समयको देखकर जो उत्तर देना उचित जचे वैसा उत्तर दो और आपको मिला हुआ यह अवसर कहीं हाथसे न चला जाय ॥ २१ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त २०

वैशम्पायन उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रज्ञावृद्धो महाद्युतिः । सम्पूज्यैनं यथाकालं भीष्मो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ दिष्ट्या कुशलिनः सर्वे सह दामोदरेण ते । दिष्ट्या सहायवन्तश्च दिष्ट्या धर्मे च ते रताः ॥ २ ॥ दिष्ट्या च सन्धिकामास्ते भ्रातरः कुरुनन्दन । दिष्ट्या न युद्धमनसः पाण्डवाः सह बान्धवैः ॥ ३ ॥ भवता सत्यमुक्तन्तु सर्वमेतन्न संशयः । अतितीक्ष्णन्तु ते वाक्यं ब्राह्मण्यादिति मे मतिः ॥ ४ ॥ असंशयं क्लेशितास्ते वने चेह च पाण्डवाः । प्राप्ताश्च धर्मतः सर्वं पितुर्धनमसंशयम् ॥५॥ किरीटी बलवान् पार्थः कृतास्त्रश्च महारथः । को हि पाण्डुसुतं युद्धे विषहेत धनञ्जयम् ॥६॥ अपि वज्रधरः साक्षात् किमुतान्ये धनुर्भृतः । त्रयाणामपि लोकानां समर्थ इति मे मतिः ७ भीष्मे ब्रुवति तद्वाक्यं धृष्टमाक्षिप्य मन्युना । दुर्योधनं समालोक्य कर्णो वचनमब्रवीत् ॥८॥ न तत्राविदितं ब्रह्मन् लोके भूतेन केनचित् ।

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! पुरोहितके ऐसे वाक्योंको सुन कर महाबुद्धि और परम कान्ति वाले भीष्मपितामह उसका सत्कार करके समयानुसार इसप्रकार कहने लगे कि-श्रीकृष्णके साथ रहनेवाले सब पाण्डव चतुर हैं उन्होंने अच्छी सहायता पाई है तथा वे धर्म पर प्रीति रखते हैं यह बड़े आनन्दकी बात है कुरुकुलमें उत्पन्न हुए पाण्डव अपने भाइयोंसे मेल मिलाप रखना चाहते हैं और भाइयों के साथ विरोध करना नहीं चाहते यह बात भी बड़ी आनन्ददायक है ॥ १-३ ॥ तुमने जो बात कही वह सब सत्य है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है परन्तु तुम जो अतितीखे वचन कहते हो वह मेरी समझमें ब्राह्मणपनेके कारण कहे होंगे ॥ ४ ॥ पाण्डवोंको यहाँ तथा वनमें बहुत दुःख दिया गया है यह बात भी सत्य है और उन्होंने पिताका सब राज्य धर्मसे प्राप्त किया था यह बात भी निःसन्देह है ॥ ५ ॥ तैसे ही किरीटी अर्जुन बलवान् अस्त्रविद्यामें निपुण और महारथी है, फिर कौनसा पुरुष युद्धमें पाण्डुपुत्र धनञ्जयसे टक्कर ले सकता है ? ॥६॥ साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी अर्जुनसे लड़नेकी शक्ति नहीं रखता है फिर दूसरे धनुषधारियोंकी तो बात ही क्या? मेरी समझमें तो अर्जुन तीनों लोकोंमें सबसे अधिक बली है७ इस प्रकार भीष्म कहरहे थे,इतनेमें कर्णने क्रोध करके अपमानके साथ उनकी बात को काट कर दुर्योधनकी ओर मुख करके कहा कि-॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण! जगत्में अर्जुनके पराक्रमको सब कोई जानते हैं,इसलिए बार २ कहने

पुनरुक्तेन किन्तेन भाषितेन पुनः पुनः ॥ ९ ॥ दुर्योधनार्थे शकुनिर्द्यूते निर्जितवान् पुरा। समयेन गतोऽरण्यं पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥ स तं समयमाश्रित्य राज्यं नेच्छति पैतृकम्। बलमाश्रित्य मत्स्यानां पञ्चालानाञ्च मूर्खवत् ॥११॥ दुर्योधनो भयाद्विद्वन्न दद्यात् पादमन्ततः। धर्मतस्तु महीं कृत्स्नां प्रदद्याच्छत्रवेऽपि च ॥ १२ ॥ यदि कांक्षन्ति ते राज्यं पितृपैतामहं पुनः। यथाप्रतिज्ञं कालं तं चरन्तु वनमाश्रिताः ॥१३॥ ततो दुर्योधनस्यांके वर्त्तन्तामकुतोभयाः। अधार्मिकीं तु मा बुद्धिं मौर्ख्यात् कुर्वन्तु केवलात् ॥ १४ ॥ अथ ते धर्ममुत्सृज्य युद्धमिच्छन्ति पाण्डवाः। आसाद्येमान् कुरुश्रेष्ठान् स्मरिष्यंति वचो मम ॥ १५ ॥ भीष्म उवाच। किन्तु राधेय वाचा ते कर्म तत् स्मर्तुमर्हसि। एक एव यदा पार्थः षड्रथान् जितवान् युधि ॥ १६ ॥ बहुशो जीयमानस्य कर्म दृष्टन्तदेव ते। न चेदेवं करिष्यामो यदयं ब्राह्मणोऽब्रवीत्। ध्रुवं युधि हतास्तेन भक्षयिष्याम पांसुकान् ॥१७॥

से क्या फल है? ॥ ९ ॥ पहिले शकुनिने दुर्योधनके लिए द्यूतमें धर्मराजको हराया था और युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वनमें गए थे ॥ १० ॥ परन्तु कोई प्रतिज्ञाको विना पूरी किये युधिष्ठिर मूर्खकी समान मत्स्य और पांचाल राजाओंके बलका आश्रय करके पिताका राज्य लेनेकी इच्छा करते हैं? ॥ ११ ॥ परन्तु हे विद्वन् ब्राह्मण! महाराज दुर्योधन उनके भयसे डर कर राज्यका चौथाई भाग भी पाण्डवोंको नहीं देंगे, यह (दुर्योधन) तो धर्मके अनुसार शत्रुको भी सम्पूर्ण पृथ्वी देसकते हैं ॥ १२ ॥ परन्तु पाण्डव यदि अपने बाप दादेके राज्यको लेना चाहते हों तो उन्हें प्रतिज्ञाके अनुसार ठहराये हुए समय तक वनमें जाकर फिर रहना चाहिये ॥१३॥ पीछे वह निर्भयतासे दुर्योधनके पास आकर रहें परन्तु उनको मूर्खता से अधर्ममें बुद्धि करना योग्य नहीं है ॥ १४ ॥ पाण्डव धर्मको छोड़ कर कदाचित् युद्ध करना चाहते हों तो वे इन कौरवोंके झपाटेमें आने पर मेरे वचनोंका भली प्रकार स्मरण करेंगे! ॥ १५ ॥ भीष्म बोले, कि-ओ कर्ण! इस तेरी बकवादसे क्या फल होना है अकेले अर्जुनने ही युद्धमें छः महारथियोंको हराया था इस बातको तू इस समय स्मरण क्यों नहीं करता? ॥ १६ ॥ उसने तुझे बहुत बार हराया है और उस समय ही तूने उसका पराक्रम देख लिया है, उसे कैसे भूल गया जैसा यह ब्राह्मण कहते हैं उसके अनुसार हम नहीं करेंगे तो

वैशम्पायन उवाच ॥ धृतराष्ट्रस्ततो भीष्ममनुमान्य प्रसाद्य च । अव-मत्यं च राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥ अस्मद्धितं वाक्यमिदं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् । पाण्डवानां हितं चैव सर्वस्य जगतस्तथा ॥१९॥ चिंतयित्वा तु पार्थेभ्यः प्रेषयिष्यामि सञ्जयम् । स भवान् प्रतिया-त्वद्य पाण्डवानेव मा चिरम् ॥ २० ॥ स तं सत्कृत्य कौरव्यः प्रेषया-मास पाण्डवान् । सभामध्ये समाहूय सञ्जयं वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि पुरोहितयान एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । प्राप्तानाहुः संजय पाण्डुपुत्रानुपप्लव्ये तान् विजानीहि गत्वा । अजातशत्रुञ्च सभाजयेथा दिष्ट्या निजस्थानमुप-स्थितस्त्वम् ॥ १ ॥ सर्वान् वदेः संजय स्वस्तिमन्तः कृच्छ्रं वासमत-दर्हा निरूप्य । तेषां शान्तिर्विद्यतेऽस्मासु शीघ्रं मिथ्यापेतानामुप-कारिणां सताम् ॥ २ ॥ नाहं क्वचित् संजय पाण्डवानां मिथ्यावृत्तिं

अर्जुन युद्धमें हमारा अवश्य ही नाश कर डालेगा और हमें रणभूमि को धूल चाटनी पडेगी ॥१७॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! तदनन्तर धृतराष्ट्रने भीष्मके वचनकी सराहना करके उनको प्रसन्न किया और राधापुत्र कर्णके वचनका अनादर करके कहा कि-॥१८॥ शन्तनुपुत्र भीष्मने जो बातें कहीं हैं उसमें हमारा पाण्डवोंका और सकल जगत्का हित समाया हुआ है॥१९॥ मैं इस विषयका विचार करके पीछे सञ्जयको संदेशा लेकर पाण्डवों के पास भेजूँगा। हे पुरोहितजी ! आप आज ही पाण्डवोंकी ओर बिना विलम्बके चले जायँ ॥ २० ॥ इसप्रकार कहकर कुरुवंशी धृतराष्ट्रने दूत बनकर आये हुए उस ब्राह्मणका सत्कार करके उसको पाण्डवोंकी ओरको विदा करदिया। तदनन्तर संजयको सभामें बुलाकर उससे यह बात कही॥२१

एकविंश अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्रने कहा कि-हे संजय ! लोग कहते हैं कि-पाण्डुके पुत्र उपप्लव्य नामक स्थानमें आये हैं, तू तहाँ जा और उनकी सुधि ले तथा अजातशत्रुका सत्कार कर उनसे कहना कि-हे निर्दोष ! तुम अपने स्थान पर आगए यह बहुत अच्छा हुआ ॥ १ ॥ और उनसे कहना कि-हम सब कुशलपूर्वक हैं हे संजय ! उन्होंने महाकष्टदायक दुःख भोगा है, तो भी वे कपटशून्य उपकारी और सत्पुरुष हैं, इस लिये ही वे हम पर क्रोध नहीं करते हैं ॥ २ ॥ हे संजय ! मैंने किसी

काञ्चन जात्वपश्यम् । सर्वां श्रियं ह्यात्मवीर्येण लब्धां पर्याकार्षुः पाण्डवा मह्यमेव ॥ ३ ॥ दोषं ह्येषां नाध्यगच्छं परीच्छन्नित्यं कञ्चिद्येन गर्हेय पार्थान् । धर्मार्थाभ्यां कर्म कुर्वन्ति नित्यं सुखप्रियेनानुरुध्यन्ति कामात् ॥४॥ घर्मं शीतं क्षुत्पिपासे तथैव निद्रां तन्द्रीं क्रोधहर्षौ प्रमादम् । धृत्या चैव प्रज्ञया चाभिभूतधर्मार्थयोगान् प्रयतन्ति पार्थाः ॥५॥ त्यजन्ति मित्रेषु धनानि काले न संवासाज्जीर्यति तेषु मैत्री । यथार्हमानार्थकरा हि पार्थास्तेषां द्वेष्टा नास्त्याजमीढस्य पक्षे ॥ ६ ॥ अन्यत्र पापाद्विषमान्मन्दबुद्धेर्दुर्योधनात् क्षुद्रतराच्च कर्णात् । तेषां हीमौ हीनसुखप्रियाणां महात्मनां संजनयतो हि तेजः ॥ ७ ॥ उत्थानवीर्यः सुखमेधमानो दुर्योधनः सुकृतं मन्यते तत् । तेषां भागं यच्च मन्येत बालः शक्यं हर्तुं जीवतां पाण्डवानाम् ॥ ८ ॥ यस्यार्जुनः पदवीं केशवश्च वृकोदरः सात्यकोऽजातशत्रोः । माद्रीपुत्रौ सृञ्जयाश्चापि यान्ति

दिन भी पाण्डवोंकी मिथ्यावृत्ति (नियतमें बेईमानी) नहीं देखी है, पाण्डव अपने पराक्रमसे जो कुछ लक्ष्मी पाते थे वह मुझे भेंट करदेते थे ॥ ३ ॥ यद्यपि मैं सदा उनके दोष देखा करता था, परन्तु उनका कोई भी दोष मुझे मालूम न हुआ कि-जिससे मैं उनकी निन्दा करूँ, वे निरन्तर धर्म और अर्थके लिये ही कर्म किया करते हैं, और उस धर्म अर्थका अविरुद्ध रीतिसे सेवन करते हैं, परन्तु कामनासे सुख के लिये अथवा स्त्री पुत्रादिके लिये कोई भी काम नहीं करते हैं ॥४॥ पाण्डव धैर्य और विवेक करनेवाली बुद्धिसे ग्रीष्म ऋतुके धूपको शिशिर ऋतुकी सरदीका क्षुधाका प्यासका निद्राका तन्द्राका क्रोधका हर्षका और प्रमादका तिरस्कारकर धर्म और अर्थका संग्रह करनेके लिये ही प्रयत्न करते हैं॥५॥पाण्डव समय २ पर मित्रोंकी भी धनसे सहायता करते हैं, तथा प्रवास करने पर भी वे मित्रताको भूलते नहीं हैं वे यथायोग्य मान और धन देनेवाले हैं, इस अपने कौरवोंके पक्षमें भी उनका शत्रु कोई नहीं है ॥ ६ ॥ कुरुपक्षमें पाण्डवोंसे द्वेष करनेवाले केवल दोही हैं एक तो पापी और विषयके विचारवाला मन्दबुद्धि दुर्योधन और दूसरा महाक्षुद्र यह कर्ण, सुख और प्रिय पदार्थोंसे बिछुड़े हुए पाण्डवोंको ये दोनों ही क्रोधित करदेते हैं ॥७॥ दुर्योधन जो आरम्भशूर है और सुखमें बढ़ा है वह मूर्ख ऐसा मानता है कि-पाण्डवोंके जीते हुए ही उनके राज्यको दबाया जासकता है क्या उसका यह विचार ठीक है ?॥८॥जिन युधिष्ठिरके पीछे अर्जुन,

पुरा युद्धात् साधु तस्य प्रदानम् ॥९॥ स ह्येवैकः पृथिवीं सव्यसाची गाण्डीवधन्वा प्रणुदेद्रथस्थः । तथा जिष्णुः केशवोऽप्यप्रधृष्यो लोकत्रयस्याधिपतिर्महात्मा ॥ १० ॥ तिष्ठेत कस्तस्य मर्त्यःपुरस्ताद्यः सर्वलोकेषु वरेण्य एकः । पर्जन्यघोषान् प्रवपञ्शरौघान् पतंगसंघानिव शीघ्रवेगान् ॥ ११ ॥ दिशं ह्युदीचीमपि चोत्तरान् कुरून् गाण्डीवधन्वैकरथो जिगाय । धनं चैषामाहरत् सव्यसाची सेनानुगान् द्रविडांश्चैव चक्रे ॥१२॥ यश्चैव देवान् खाण्डवे सव्यसाची गाण्डीवधन्वा प्रजिगाय सेन्द्रान् ।उपाहरत् पाण्डवो जातवेदसे यशो मानं वर्द्धयन् पांडवानाम् ॥ १३ ॥ गदाभृतां नास्ति समोऽत्र भीमाद्धस्त्यारोहो नास्ति समश्च तस्य । रथेऽर्जुनादाहुरहीनमेनं बाह्वोर्बलेनायुतनागवीर्यम् १४ सुशिक्षितः कृतवैरस्तरस्वी दहेत् क्षुद्रांस्तरसा धार्त्तराष्ट्रान् । सदात्य-

श्रीकृष्ण, भीमसेन,सात्यकि,माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव तथा सृंजय ये राजे चलते हैं, उन राजा युधिष्ठिरको युद्ध होनेके पहिले ही उनका राज्यभाग देदिया जाय यह ही ठीक है ॥९॥ सव्यसाची और गांडीव धनुषको धारण करनेवाला अकेला अर्जुन ही रथमें बैठकर इस पृथ्वी की रक्षा करसकता है और विजयी त्रिलोकीपति महात्मा श्रीकृष्ण भी किसीसे दबनेवाले नहीं हैं ॥ १० ॥ लोकमें भोगोंकी और मोक्षकी चाहना वाले सब ही जिन एकका सेवन करते हैं और जो युद्धमें पक्षियोंकी समान वेगवाले और मेघकी समान गर्जना करनेवाले बाणोंके समूहोंको वरसाते हैं उन श्रीकृष्णके सामने कौन मरणधर्मी पुरुष रणमें खड़ा रह सकता है ? ॥ ११ ॥ गांडीव धनुषको धारण करनेवाले और केवल रथ ही की सहायता लेनेवाले अकेले अर्जुन ने ही केवल उत्तर दिशाको नहीं जीता था किंतु साथमें उत्तर कुरुदेश को भी जीतलिया था और उस देशमेंसे धन, हरकर लाया था, तैसे ही उसने द्रविड़ देशके लोगोंको भी हराकर अपनी सेनाका सैनिक बनाया था ॥ १२ ॥ और गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुन ने खांडव वनमें इन्द्र तथा अन्य देवताओंको हराया था और अग्नि कोखाण्डव वन देकर पाण्डवोंके यश और मानमें बढ़ोतरीकी थी १३ तैसे ही भीमकी समान गदाधारी और हाथी पर सवारी करनेवाला भी किसी दूसरे पुरुषको मैं नहीं देखता हूँ, लोग कहते हैं कि—रथयुद्धमें भीम अर्जुनसे भी हारनेवाला नहीं है उसकी भुजाओंका बल दश सहस्र हाथियोंकी समान है ॥ १४ ॥ वह अत्यंत भलीप्रकार

मर्षी न बलात्स शक्यो युद्धे जेतुं वासवेनापि साक्षात् ॥ १५ ॥ सुचेतसौ बलिनौ शीघ्रहस्तौ सुशिक्षितौ भ्रातरौ फाल्गुनेन। श्येनौ यथा पक्षिपूगान् रुजन्तौ माद्रीपुत्रौ शेषयेतां न शत्रून् ॥ १६ ॥ एतद् बलं पूर्णमस्माकमेवं यत् सत्यं तान् प्राप्य नास्तीति मन्ये। तेषां मध्ये वर्त्तमानस्तरस्वी धृष्टद्युम्नः पाण्डवानामिहैकः ॥ १७ ॥ सहामात्यः सोमकानां प्रबर्हः सन्त्यक्तात्मा पाण्डवार्थे श्रुतो मे। अजातशत्रुं प्रसहेत् कोऽन्यो येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ॥ १८ ॥ सहोषितश्चरितार्थो वयस्थो मात्स्येयानामधिपो वै विराटः। स वै सपुत्रः पाण्डवार्थे च शश्वद्युधिष्ठिरे भक्त इति श्रुतं मे ॥ १९ ॥ अवरुद्धा रथिनः कैकेयेभ्यो महेष्वासा भ्रातरः पञ्च सन्ति। कैकयेभ्यो राज्यमाकांक्षमाणा युद्धार्थिन-

सीखा हुआ है, बड़े वेगसे लड़ता है सदा अत्यन्त असहनशील है, उसके साथ वैर किया जायगा तो वह एकसाथ मेरे क्षुद्र पुत्रोंको जला कर भस्म कर डालेगा, साक्षात् इन्द्र भी उसे संग्राममें बलसे नहीं जीत सकता ॥ १५ ॥ और माद्रीके दोनों पुत्र भी शुद्धचित्त हैं, बली हैं, शस्त्रोंका प्रहार करनेमें उनके हाथ बहुत ही शीघ्र चलते हैं उनके बड़े भाई अर्जुनने ही उन्हें अस्त्रविद्यामें बड़ा चतुर किया है, जैसे बाज पक्षियोंके समूहका नाश कर डालते हैं, तैसे ही वे शत्रुओंका संहार कर डालेंगे ॥ १६ ॥ यद्यपि यह ठीक है कि यह हमारी दिखाई देती हुई सेना भी भरपूर है, तोभी यह जब पाण्डवोंसे युद्ध करना आरंभ करेगी तो नष्ट हो होजायगी यह मेरा निश्चय है और पाण्डवोंकी ओर धृष्टद्युम्न नामक एक योधा है, वह बड़ी ही शीघ्रतासे युद्ध करने वाला है और वह सोमक वंशके राजाओंमें श्रेष्ठ गिना जाता है, वह अपने मंत्रियों सहित पांडवोंके पास आया है और उसने पांडवोंके लिये प्राण देनेका विचार किया है, ऐसा मेरे सुननेमें आया है और वृष्णि-वंशमें सिंहसमान श्रीकृष्णजी, जहाँ पांडवोंके अग्रणी हों तहाँ पांडवों के बड़े भाई युधिष्ठिरके सामने कौन टक्कर झेल सकता है ? ।१७।१८। गुप्तवासके समय जो राजा पाण्डवोंके साथ एक वर्षतक रहा था, पांडवोंने गोग्रहणके समय जिसके प्राण बचाये थे और जो अवस्थामें वृद्ध है, वह मत्स्य देशका राजा विराट अपने पुत्रों सहित पाण्डवोंको सहायता देनेको आया है और वह युधिष्ठिरका भक्त है, यह भी मेरे सुननेमें आया है १९, और पाँच भाई केकय जिनको केकय देशमेंसे निकाल दिया गया था और जो केकयोंसे राज्य लौटानेकी इच्छासे पहिले

श्चानुवसन्ति पार्थान् ॥ २० ॥ सर्वांश्च वीरान्पृथिवीपतीनां समागतान् पाण्डवार्थे निविष्टान्। शूरानहं भक्तिमतः शृणोमि प्रीत्यायुक्तान् संश्रितान् धर्मराजम् ॥ २१ ॥ गिर्याश्रया दुर्गनिवासिनश्च योधाः पृथिव्यां कुलजातिशुद्धाः। म्लेच्छाश्च नानायुधवीर्यवन्तः समागताः पाण्डवार्थे निविष्टाः॥२२॥पाण्ड्यश्च राजा समितीन्द्रकल्पो युधि प्रवीरैर्बहुभिः समेतः। समागतः पाण्डवार्थे महात्मा लोकप्रवीरोऽप्रतिवीर्यतेजाः ॥२३॥ अस्त्रं द्रोणादर्जुनाद्वासुदेवात् कृपाद्भीष्माद्येन धृतं शृणोमि। यन्तं कार्ष्णिमप्रतिमानमाहुरेकं स सात्यकिः पांडवार्थे निविष्टः ॥ २४ ॥ उपाश्रिताश्चेदिकरूपकाश्च सर्वोद्योगैर्भूमिपालाः समेताः। तेषां मध्ये सूर्यमिवातपन्तं श्रिया वृतं चेदिपतिं ज्वलन्तम् ॥ २५ ॥ अस्तम्भनीयं युधि मन्यमानो ज्याकर्षतां श्रेष्ठतमं पृथिव्याम्। सर्वोत्साहं क्षत्रियाणां निहत्य प्रसह्य कृष्णस्तरसा

पक्षमें मिलगए हैं और मेरे सुननेमें आया है कि सब शूर वीर राजेभी पांडवोंको सहायता देनेके लिये उनके पास आगये हैं और वे सब शूर भक्तिमान् प्रेमपूर्ण और धर्मराजका आश्रय लेने वाले हैं ॥ २१ ॥ पर्वत के ऊपर निवास करने वाले और विकट भूमिमें रहनेवाले कुल और जातिसे शुद्ध ऐसे पृथ्वी परके योधा तथा अनेकों प्रकारके आयुध धारण करने वाले पराक्रमीभी पाण्डवोंको सहायता देनेकेलिये उनके पास उपस्थित हुए हैं ॥ २२ ॥ संग्राममें जो इन्द्रकी समान पराक्रमी है तथा जो महात्मा लोकमें शूर और अनुपम वीर्यवान् है ऐसा राजा पाण्ड्य भी बहुतसे शूरवीर योधाओंको साथमें लेकर पाण्डवोंको सहायता देनेके लिये आपहुँचा है ॥२३॥ तैसे ही जिसने द्रोणाचार्य श्रीकृष्ण कृपाचार्य और भीष्मसे अस्त्रविद्या सीखी थी,और जिस एक को ही प्रद्युम्नकी समान कहा जाता है वह सात्यकी भी मैंने सुना है पाण्डवोंकी ओर मिल गया है ॥ २४ ॥ चेदिदेश और करूपक देशके राजेभी सब प्रकारकी तयारी करके पाण्डवोंको सहायता देनेके लिये आये हैं पहिले राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सब राजे इकट्ठे हुए थे उस समय चेदिराज शिशुपालको सूर्यकी समान तपता हुआ सौंदर्यशाली देख कर तथा पृथ्वी भरके सब धनुषधारी राजाओंमें महाश्रेष्ठ और रणमें दुराधर्ष मान कर ही श्रीकृष्णने क्षत्रियोंके सब उत्साहको भंग करके बलात्कारसे उसको एक क्षणमें मार डाला था२५ और करूर आदि सब राजे जिसके मानको बढ़ाते थे उस शिशुपाल

सम्मर्द ॥ २६ ॥ यशोमानौ वर्द्धयन् पाण्डवानां पुराभिनच्छिशुपालं समीक्ष्य । यस्य सर्वे वर्द्धन्ति स्म मानं करूषराजप्रमुखा नरेन्द्राः ॥२७॥ तमसह्यं केशवं तत्र मत्वा सुग्रीवयुक्तेन रथेन कृष्णम् । के प्राद्रवंश्चे- दिपतिं विहाय सिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा इवान्ये ॥२८॥ यस्तं प्रतीपस्तरसा प्रत्युदीयादाशंसमानो द्वैरथे वासुदेवम् । सोऽशेत कृष्णेन हतः परा- सुर्वातेनेवोन्मथितः कर्णिकारः ॥ २९ ॥ पराक्रमं मे यदवेदयन्त तेषा- मर्थे सञ्जय केशवस्य । अनुस्मरंस्तस्य कर्माणि विष्णोर्गावल्गणे नाधि- गच्छामि शान्तिम् ॥३०॥ न जातु ताञ्छत्रुरन्यः सहेत येषां स स्याद- ग्रणीर्वृष्णिसिंहः। प्रवेपते मे हृदयं भयेन श्रुत्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ३१ न चेद्गच्छेत् सङ्गरं मन्दबुद्धिस्ताभ्यां लभेच्छर्म तदा सुतो मे । नोचेत् कुरून् सञ्जय निर्दहेतामिन्द्राविष्णू दैत्यसेनां यथैव ॥ ३२ ॥ मतो हि मे शक्रसमो धनञ्जयः सनातनो वृष्णिवीरश्च विष्णुः । धर्मारामो ह्रीनि-

---

का श्रीकृष्णने दृष्टिमात्रसेही संहार करके पाण्डवोंके यशको बढाया २७ और उस समय सुग्रीव नामके घोड़ेसे जुते रथमें बैठे हुए श्रीकृष्णको रणमें असह्य मान कर कुछ राजे छोटे २ मृग जैसे सिंहको देख कर भाग जाते हैं तैसेही श्रीकृष्णको देखकर चेदिराज शिशुपालको छोड़ कर भाग गए थे ॥२८॥ परन्तु श्रीकृष्णसे शत्रुता रखने वाला शिशु- पाल विजयकी इच्छासे श्रीकृष्णके सामने रथमें बैठा हुआ द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिये वेगसे गया और उस युद्धमें श्रीकृष्णने उसको मारडाला तब जैसे पवनकी टक्करसे कनेरका वृक्ष पृथ्वी पर ढह पड़ता है तैसे ही वह प्राणरहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा था ।२९।हे संजय ! मेरे विश्वासपात्र दूतोंने पाण्डवोंके लिये श्रीकृष्णने जो पराक्रम किये हैं वह सुनाए हैं उन विष्णुके कार्योंको हे संजय ! मैं जब सुनता हूँ तब ही मुझे शान्ति नहीं रहती है ॥ ३० ॥ वृष्णिकुलमें सिंह समान श्रीकृष्ण जिनके अगुआ हों उनके सामने कोई शत्रु भी टक्कर नहीं झेल सकेगा श्रीकृष्ण और अर्जुनको रथमें साथ २ बैठे हुए सुन कर मेरा हृदय काँपने लगता है ॥ ३१ ॥ हे संजय ! मेरा मन्दबुद्धि पुत्र यदि युद्धमें नहीं जायगा तो ही जीता रह सकेगा नहीं तो इन्द्र और विष्णु जैसे राक्षसोंकी सेनाको नष्ट कर डालते हैं जैसे ही अर्जुन और श्रीकृष्ण भी कौरवोंको भस्म कर डालेंगे ॥ ३२ ॥ हे संजय ! मैं अर्जुनको इन्द्रकी समान मानता हूँ और वृष्णिवीर श्रीकृष्णको सना- तन विष्णु मानता हूँ, धर्मके ऊपर प्रीति रखने वाले लज्जादि शील-

पेयस्तरस्वी कुन्तीपुत्रः पाण्डवोऽजातशत्रुः ॥३३॥ दुर्योधनेन निकृतो मनस्वी नो चेत् क्रुद्धः प्रदहेद्धार्त्तराष्ट्रान्। नाहं तथा ह्यर्जुनाद्वासुदेवाद्भीमाद्वाहं यमयोर्वा बिभेमि ॥ ३४ ॥ यथा राज्ञः क्रोधदीप्तस्य सूत मन्योरहं भीततरः सदैव। महातपा ब्रह्मचर्येण युक्तः संकल्पोऽयं मानसस्तस्य सिध्येत् ॥ ३५ ॥ तस्य क्रोधं संजयाहं समीक्ष्य स्थाने जानन् भृशमस्म्यद्य भीतः। स गच्छ शीघ्रं प्रहितो रथेन पाञ्चालराजस्य चमूनिवेशनम् ॥ ३६ ॥ अजातशत्रुं कुशलं स्म पृच्छेः पुनः पुनः प्रीतियुक्तं वदेस्त्वम् जनार्दनं चापि समेत्य तात महामात्रं वीर्यवतामुदारम् ॥ ३७ ॥ अनामयं मद्वचनेन प्रच्छेर्धृतराष्ट्रः पाण्डवैः शान्तिमीप्सुः। न तस्य किञ्चिद्वचनं न कुर्यात् कुन्तीपुत्रो वासुदेवस्य सूत ३८ प्रियश्चैषामात्मसमश्च कृष्णो विद्वांश्चैषां कर्मणि नित्ययुक्तः। समानीतान् पाण्डवान् सृञ्जयांश्च जनार्दनं युयुधानं विराटम् ॥ ३९ ॥

सम्पन्न बलवान् और मनस्वी अजातशत्रु धर्मराजको दुर्योधनने कपटके रुपसे छला है वह यदि अब क्रोध करें तो मेरे पुत्रोंको जला कर भस्म न कर डालेंगे क्या? हे सूत! मैं क्रोधमें भरे हुए धर्मराजके कोप से सदा जैसा डरता हूँ तैसा अर्जुन श्रीकृष्ण भीम अथवा नकुल सहदेवके कोपसे भी नहीं डरता हूँ, क्यों कि—महातपस्वी युधिष्ठिरने नियमानुसार ब्रह्मचर्य पाला है, अतः वह मनमें जो सङ्कल्प करेगा वह सिद्ध ही होगा ॥ ३२ ॥ हे संजय! मुझे मालूम हुआ है कि—युधिष्ठिरको क्रोध चढ़ा है और यह बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है मैं अब उनसे बहुत डरता हूँ, अतः तू झट मेरे कहनेसे रथमें बैठ कर पाञ्चालराजकी सेनाकी छावनीमें जा॥३६॥और तहाँ जाकर अजातशत्रु युधिष्ठिरसे कुशल समाचार बूझना तथा वारम्वार उनसे प्रीतियुक्त वाक्य बोलना, तथा हे तात! महासमर्थ वीर्यवान् पुरुषोंमे उदार स्वभाव वाले श्रीकृष्णसे भी मिलना और कहना कि-धृतराष्ट्र भी पाण्डवोंसे मेल करना चाहता है, हे सूत! श्रीकृष्ण जैसे कहते हैं युधिष्ठिर तैसा ही करते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्ण पाण्डवोंको प्रिय और आत्माकी समान हैं, विद्वान् हैं और पांडवोंके काममें सदा तत्पर रहते हैं, वह यदि संधि करनेको कहेंगे तो पाण्डव उसे अवश्य ही मानेंगे, हे सञ्जय! मैं अब तुझसे अधिक तो क्या कहूँ, परन्तु तू पहिले मेरी ओरसे पाण्डवोंसे, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंसे, श्रीकृष्णसे, युयुधानसे, विराटसे और इकट्ठे हुए सृंजयोंसे कुशल समाचार

अनामयं मद्वचनेन पृच्छेः सर्वांस्तथा द्रौपदेयांश्च पंच। यद्यत्तत्र प्राप्तकालं परेभ्यस्त्वं मन्येथा भारतानां हितं च। तत्तद्भाषेथाः संजय राजमध्ये न मूर्च्छयेद्यन्न च युद्धहेतुः ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि धृतराष्ट्रसंदेशे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच। राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य सञ्जयः। उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः ॥ १ ॥ स तु राजानमासाद्य कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्। अभिवाद्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत ॥२॥ गावल्गणिः सञ्जयः सूतसूनुरजातशत्रुमवदत् प्रतीतः। दिष्ट्या राजंस्त्वामरोगं प्रपश्ये सहायवन्तञ्च महेन्द्रकल्पम् ॥ ३ ॥ अनामयं पृच्छति त्वाम्बिकेयो वृद्धो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी। कच्चिद्भीमः कुशली पांडवाग्र्यो धनञ्जयस्तौ च माद्रीतनूजौ ॥४॥ कच्चित् कृष्णा द्रौपदी राजपुत्री सत्यव्रता वीरपत्नी सपुत्रा। मनस्विनी यत्र च वाञ्छसि त्वमिष्टान् कामान् भारत स्वस्तिकामः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच। गावल्गणे सञ्जय स्वागतं ते प्रीयामहे ते वयं दर्शनेन। अनामयं प्रतिजाने

बूझना और पीछे जोर वाक्य उस समय उपयोगी और भरतवंशियों के लिये हितकारी प्रतीत हों और जिनसे उनका क्रोध न बढ़े और युद्धका कारण न होजाय ऐसी बातें तुम सब राजाओंके समक्षमें कहना ॥ ३९-४० ॥ द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! सूतपुत्र सञ्जय राजा धृतराष्ट्रकी बातें सुनकर अपार बलवाले पाण्डवोंसे मिलनेके लिये उपप्लव्य नामक ग्राममें गया ॥ १ ॥ और तहाँ कुंतीपुत्र अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके पास जाकर उनको प्रणाम किया, तदनन्तर प्रसन्न होकर वह इस प्रकार बोला कि-हे राजन् ! मैं तुम्हें महेन्द्रकी सहायता पाये हुए और कुशल देखकर प्रसन्न हुआ हूँ ॥ २—३ ॥ अम्बिकाके पुत्र वृद्ध और विद्वान् राजा धृतराष्ट्रने तुम्हारा कुशल समाचार बूझतेहुए कहा है कि-तुम, भीम पांडवोंमें श्रेष्ठ अर्जुन और माद्रीके पुत्र नकुल सहदेव सकुशल तो हो ? ॥ ४ ॥ तैसे ही सत्यवादिनी वीरपत्नी मनस्विनी राजकन्या द्रौपदी भी अपने पुत्रों सहित सकुशल है ? और जिन संबन्धी पुरुषोंमें तुम कुशलकी कामना करते हो वे तथा हाथी घोड़े, रथ आदि भोग्य वस्तुएँ भी कुशल हैं, युधिष्ठिरने उत्तर दिया कि-हे गावल्गणिके पुत्र सञ्जय ! तू अच्छा आया, हम तेरा दर्शन

तथाहं सहानुजैः कुशली चास्मि विद्वन् ॥ ६ ॥ चिरादिदं कुशलं भारतस्य श्रुत्वा राज्ञः कुरुवृद्धस्य सूत । मन्ये साक्षाद् दृष्टमहं नरेन्द्रं दृष्ट्वैव त्वां सञ्जय प्रीतियोगात् ॥ ७ ॥ पितामहो नः स्थविरो मनस्वी महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः । स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो यथापूर्वं वृत्तिरस्त्यस्य कच्चित् ॥ ८ ॥ कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो वैचित्रवीर्य्यः कुशली महात्मा । महाराजो बाह्लिकः प्रातिपेयः कच्चिद्विद्वान् कुशली सूतपुत्र ॥ ९ ॥ स सोमदत्तः कुशली तात कच्चिद् भूरिश्रवाः सत्यसन्धः शलश्च । द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो महेष्वासाः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः ॥१०॥ सर्वे कुरुभ्यः स्पृहयन्ति सञ्जय धनुर्द्धरा ये पृथिव्यां प्रधानाः । महाप्रज्ञाः सर्वशास्त्रावदाता धनुर्भृतां मुख्यतमाः पृथिव्याम् ॥ ११ ॥ कच्चिन्मानं तात लभन्त एते धनुर्भृतः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः । येषां राष्ट्रे निवसति दर्शनीयो महेष्वासः शीलवान् द्रोणपुत्रः १२ वैश्यापुत्रः कुशली तात कच्चिन्महाप्राज्ञो राजपुत्रो युयुत्सुः।

करके प्रसन्न हुए हैं, हे विद्वन्! तेरे कुशल समाचारके प्रश्नको स्वीकार करता हूँ और कहता हूं कि-अपने बन्धुओं सहित मैं कुशल हूँ ॥ ६ ॥ हे सूत ! कुरुकुलमें वृद्ध भरतवंशी राजा धृतराष्ट्रके कुशल समाचारको बहुत दिनोंमें सुनकर तथा हे सञ्जय ! तुझे भी देखकर पहिलेके संबन्धसे मानो आज साक्षात् राजा धृतराष्ट्र ही का दर्शन कर लिया ऐसा मानता हूं ॥ ७ ॥ हे तात ! हमारे पितामह भीष्मजी जो कुरुकुलोत्पन्न वृद्ध मनस्वी महाबुद्धिमान् और सर्वगुणसम्पन्नहैं वह सकुशल तो हैं ? और उनका हमारे ऊपर पहिलेके समान ही स्नेह है ? ॥८॥ और हे सूतपुत्र ! विचित्रवीर्यके पुत्र महात्मा राजा धृतराष्ट्र पुत्रसहित सकुशल हैं? तथा प्रभववंशमें उत्पन्नहुए महाराज बाल्हीक भी सकुशल हैं ? ॥ ९ ॥ और हे तात ! सोमदत्त, भूरिश्रवा, सत्यप्रतिज्ञ राजा शल्य, पुत्र सहित द्रोणाचार्य और ब्राह्मण कृपाचार्य ये सब धनुर्धर प्रसन्न हैं ॥ १० ॥ और हे सञ्जय ! इस पृथिवी पर महाबुद्धिमान् सब शास्त्रोंके ज्ञानसे शुद्ध अन्तःकरण वाले अन्य जो मुख्य धनुषधारी हैं वे सब कुरुओंकी सम्मति आदिसे कल्याण करना तो चाहते हैं ! ॥ ११ ॥ और हे तात ! जिन कुरुओंके देशमें दर्शनीय, महाधनुर्धारी शीलसम्पन्न द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रहते हैं उन कौरवोंसे तिन धनुर्धारियोंको मान मिलता है क्या और वे धनुर्धारी कुशल तो हैं ॥१२॥ और हे तात ! वैश्याका पुत्र महाबुद्धिमान् राजकुमार युयुत्सु

कर्णोऽमात्यः कुशली तात कच्चित् सुयोधनो यस्य मन्दो विधेयः१३ स्त्रियो वृद्धा भारतानां जनन्यो महानस्यो दासभार्याश्च सूत । वध्वः पुत्रा भागिनेया भगिन्यौ दौहित्रा च कच्चिदप्यव्यलीकाः १४ कच्चिद्राजा ब्राह्मणानां यथावत् प्रवर्त्तते पूर्ववत्तात वृत्तिम् । कच्चिद्दाया-न्मामकान् धार्त्तराष्ट्रो द्विजातीनां सञ्जय नोपहन्ति ।१५। कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्र उपेक्षते ब्राह्मणातिक्रमन्वैं । स्वर्गस्य कच्चिन्न तथा वर्त्मभूतमुपेक्षते तेषु सदैव वृत्तिम् ॥१६॥ एतज्ज्योतिश्चोत्तमं जीव-लोके शुक्लं प्रजानां विहितं विधात्रा।ते चेल्लोभं न नियच्छन्ति मन्दाः कृत्स्नो नाशो भविता कौरवाणाम् ॥ १७ ॥ कच्चिद्राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो बुभूषते वृत्तिममात्यवर्गे । कच्चिन्न भेदेन जिजीविषन्ति सुहृद्रूपा दुर्हृदश्चैकमत्यात्१८कच्चिन्न पापं कथयन्ति तात ते पाण्ड-

---

भी सकुशल है क्या ? तथा हे तात ! मंत्री कर्ण कि जिसकी सम्मति के अनुसार मूर्ख दुर्योधन चलता है वह भी सकुशल हैक्या ? ॥१३॥ और हे सूत ! भरतवंशकी वृद्ध माताएँ, बहिनें, बहुएँ, अन्न राँधने वाली सेविकाएँ आदि स्त्री तथा पुत्र भानजे और धेवते जो निष्कपट-पनेसे राज्यमें रहते हैं वे सब सकुशल हैं ? ॥ १४ ॥ और हे तात ! राजा दुर्योधन पहिलेकीही समान ब्राह्मणोंको उनकी योग्यताके अनु-सार आजीविका देता है क्या ? तैसे ही हे सञ्जय ! मैंने ब्राह्मणोंको जो ग्रामादि दिये थे वह उनसे छीन तो नहीं लिये हैं ? ॥ १५ ॥ धृत-राष्ट्र और उनका पुत्र ब्राह्मणोंसे कोई अपराध होजाता है तो उसकी उपेक्षा करते हैं या नहीं तैसेही ब्राह्मणोंकी बाँधी हुई आजीविकाकी तो उपेक्षा नहीं करते हैं ? क्योंकि-ब्राह्मणोंकी आजीविका स्वर्ग देने वाली है ॥ १६ ॥ ब्राह्मणोंकी बाँधी हुई आजीविकोका परिपालन करना ब्रह्माने मनुष्य लोकमें परलोकको देनेवाला तथा लोकोंमें यश देनेवाला बनाया है, मूर्ख कौरव यदि लोभरूपी दोषको दूर नहीं करेंगे तो कौरवोंका सर्वथा संहार होगा ॥ १७ ॥ राजा धृतराष्ट्र और उनका पुत्र अपने कर्मचारियोंके कामकाजको जाननेकी इच्छा करते हैं क्या ? उनको आजीविकाको बाँधकर देते हैं क्या ? तैसे ही ऊपर से मित्रोंकेसा ढोंग रखने वाले परन्तु भीतरसे दूषित हृदय बन कर और एकमत होकर शत्रुओंके दिये हुए धनसे तो वे अपनी आजी-विका चलानेकी इच्छा तो नहीं करते हैं ? ॥ १८ ॥ और हे तात ! सब कौरव हम पाण्डवोंके पापोंकी बातें तो नहीं करते हैं ? तैसे ही

वानांकुरवः सर्व एव । द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च वीरो नास्मासु पापानि वदन्ति कच्चित् ॥१९॥ कच्चिद्राज्ये धृतराष्ट्रं सपुत्रं समेत्याहुः कुरवः सर्व एव । कच्चिद् दृष्ट्वा दस्युसंघान् समेतान् स्मरन्ति पार्थस्य युधां प्रणेतुः ॥२०॥ मौर्वीभुजाग्रप्रहितान् स्म तात दोधूयमानेन धनुर्धरेण। गाण्डीवनुन्नान् स्तनयित्नुघोषानजिह्मगान् कच्चिदनुस्मरन्ति २१ न चापश्यं कच्चिदहं पृथिव्यां योधं समं चाधिकमर्जुनेन। यस्यैकषष्टिर्निशितास्तीक्ष्णधारान् सुवाससः सम्मतो हस्तवापः ॥२२॥ गदापाणिर्भीमसेनस्तरस्वी प्रवेपयञ्छत्रुसंघाननीके। नागः प्रभिन्न इव नड्वलेषु चंक्रम्यते कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २३ ॥ माद्रीपुत्रः सहदेवः कलिंगान् समागतानजयद्दन्तकूरे। वामेनास्यान् दक्षिणेनैव यो वै महाबलं कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २४ ॥ पुरा जेतुं नकुलः प्रेपितोऽयं शिवींस्त्रिगर्त्तान् संजय पश्यतस्ते। दिशं प्रतीचीं वशमानयन्योमाद्रीसुतं

द्रोणाचार्य उनके पुत्र और वीर कृपाचार्य भी हमारे पापोंके विषयमें तो कुछ बातचीत नहीं करते हैं? ॥ १९ ॥ किसी समयभी सब कौरव इकट्ठे होकर धृतराष्ट्र से तथा उनके पुत्रसे हमें राज्यका भाग देनेके लिये कहते हैं क्या? तथा वे चोरोंके समूहको देखकर कभी योधाओं के नायक अर्जुनका स्मरण करते हैं क्या? ॥ २० ॥ और हे तात! धनुर्धारी अर्जुन अपने गाण्डीव धनुषको घुमाता २ गाण्डीव धनुषपर बाँधी हुई डोरीके टेढे आकारके अग्रभागमेंसे जिन बाणोंको फेंकता था और जो बाण मेघकी समान गर्जना करते हुए तथा सीधे चले जाते थे उन बाणोंकी किसीको याद आती है क्या? ॥ २१ ॥ मैं तो इस पृथिवी पर किसी भी योधाको अर्जुनकी समान अथवा उससे अधिक नहीं समझता, क्योंकि-अर्जुनके हाथमें एक समयमेंही तीक्ष्ण धारवाले और सुंदर पूंछवाले इकसठ बाण मारनेका बल है, ऐसा निश्चय हो चुका है ॥२२॥ और मदमत्त हाथी जैसे भाँति २ के मूंजके वनमें घूमना आरम्भ करता है तैसे ही वेगवान् भीमसेन भी हाथमें गदा लेकर सेनामें शत्रुओंके समूहोंको कँपाता हुआ घूमा करता है इस पराक्रमी भीमसेनकी कौरवोंको याद आती है क्या? २३ तथा माद्रीपुत्र सहदेवका भी कभी स्मरण आता है क्या! कि—जिसने युद्धमें इकट्ठे हुए महाबली कलिंग राजाओं पर दाहिने और बायें हाथोंसे बाणोंका प्रहार किया था ॥ २४ ॥ हे सञ्जय! पहिले शिवि देशके राजाओंको जीतनेके लिये और त्रिगर्त देशके राजाओंको जीत

कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २५ ॥ पराभवो द्वैतवने य आसीद्दुर्मन्त्रिते घोषयात्रागतानाम्। यत्र मन्दाञ्छत्रुवशं प्रयातानमोचयद्भीमसेनो जयश्च ॥२६॥ अहं पश्चादर्जुनमभ्यरक्षं माद्रीपुत्रौ भीमसेनोऽप्यरक्षत्, गाण्डीवधन्वा शत्रुसंघानुदस्य स्वस्त्यागमत् कच्चिदेनं स्मरन्ति ॥ २७ ॥ न कर्मणा साधु नैकेन नूनं सुखं शक्यं वै भवतीह सञ्जय। सर्वात्मना परिजेतुं वयं चेन्न शक्नुमो धृतराष्ट्रस्य पुत्रम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरप्रश्ने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच। यथाऽऽत्थ मे पाण्डव तत्तथैव कुरून् कुरुश्रेष्ठ जनञ्च पृच्छसि। अनामयास्तात मनस्विनस्ते कुरुश्रेष्ठान् पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम् ॥ १ ॥ सन्त्येव वृद्धाः साधवो धार्त्तराष्ट्रे सन्त्येव पापाः पाण्डव तस्य विद्धि। दद्याद्रिपुभ्योऽपि हि धार्त्तराष्ट्रः कुतो दायांल्लोप-

---

नेके लिये मैंने तेरे सामने ही नकुलको भेजा था और इसने पश्चिम दिशाको मेरे आधीन करदिया था, इस माद्रीपुत्र नकुलका भी कौरव कभी स्मरण करते हैं ? ॥ २५ ॥ खोटे विचारसे द्वैतवनमें घोषयात्राके निमित्त कौरव गये थे और तहाँ पर वे मन्दबुद्धि शत्रुओंके हाथमें पड़गए थे तथा उनकी हार हुई थी उस समय भीम और अर्जुनने ही कौरवोंको शत्रुओंके पंजेसे छुटाया था, उस बातका कौरव क्या स्मरण करते हैं ! ॥ २६ ॥ उस समय मैंने पीछे रहकर अर्जुनकी रक्षाकी थी और भीमसेनने भी माद्रीपुत्रोंकी रक्षाकी थी तथा गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाला अर्जुन शत्रुओंके दलको दूर खदेड़ कर चतुराईसे पीछेको लौटा था उस अर्जुनका कौरव स्मरण करते हैं क्या ! ॥२७॥ हे सञ्जय ! हम धृतराष्ट्रके पुत्रोंको यदि सब (साम-दाम आदि) उपायोंसे न समझासके तो अब एक सत्कर्मसे ही उनको सहजमें कैसे समझा सकेंगे अर्थात् यदि वह सामसे नहीं समझेंगे तो फिर दंडका उपयोग किया जायगा ॥ २८ ॥ त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

सञ्जय बोले कि हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! आपने मुझसे जो बात कही है वह ठीक है, कौरवोंके और कर्णके विषयमें जो बूझा वहभी योग्य ही बूझा है, हे तात पार्थ ! आपने जो मनस्वी कुरुश्रेष्ठोंके विषयमें प्रश्न किया उसके उत्तरमें कहना यह है कि सब कौरव सकुशल हैं ॥ १ ॥ और राजा दुर्योधनके पास महात्मा वृद्ध पुरुषभी हैं तथा हे पाण्डव! पापी पुरुषभी हैं, दुर्योधन शत्रुओंकोभी दान देता है तो वह ब्राह्मणों

येद् ब्राह्मणानाम् २ यद्युष्माकं वर्ततेऽसौ न धर्म्यमद्रुग्धेषु द्रुग्धवत्तन्न साधु मित्रध्रुक् स्याद्धृतराष्ट्रः सपुत्रो युष्मान् द्विषन्साधुवृत्तानसाधुः३ न चानुजानाति भृशञ्च तप्यते शोचत्यन्तःस्थविरोऽजातशत्रो शृणोति हि ब्राह्मणानां समेत्य मित्रद्रोहः पातकेभ्यो गरीयान् ॥ ४ ॥ स्मरन्ति तुभ्यं नरदेव संयुगे युद्धे च जिष्णोश्च युधां प्रणेतुः। समुत्क्रुष्टे दुन्दुभिशंखशब्दे गदापाणिं भीमसेनं स्मरन्ति ।५ ।माद्रीसुतौ चापि रणाजिमध्ये सर्वा दिशः सम्पतन्तौ स्मरन्ति। सेनां वर्षन्तौ शरवर्षैरजस्रं महारथौ समरे दुःप्रकम्पौ ॥ ६ ॥ न त्वेवमन्ये पुरुषस्य राजन्ननागतं ज्ञायते यद्भविष्यम् । त्वञ्च तथा सर्वधर्मोपपन्नः प्राप्तः क्लेशं पाण्डव कृच्छ्ररूपम् । त्वमेवैतत् कृच्छ्रगतश्च भूयः समीकुर्याः प्रज्ञयाजातशत्रो७ न कामार्थं सन्त्यजेयुर्हि धर्मं पाण्डोः सुताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः । त्वमे-

---

के दानको कैसे बन्द करेगा ? ॥ २ ॥ तुम क्षत्रियोंका जो हिंसकधर्म है वह द्रोह न करने वालों पर द्रोह करनेवाले (अपराधियों) की समान चलायाजाय तो अच्छा नहीं गिना जायगा, तुम श्रेष्ठ स्वभाव वाले हो तो भी असाधु धृतराष्ट्र और उसका पुत्र तुमसे द्वेष करे तो वह मित्रद्रोही गिने जावेंगे ॥३॥ हे अजातशत्रु राजन् ! वृद्ध धृतराष्ट्र कौरवोंको ऐसा करनेकी आज्ञा नहीं देते हैं किन्तु तुमसे द्रोह करते हुए सुनकर बड़े ही सन्तप्त होते हैं और अन्तःकरणमें शोक करते हैं तैसेही ब्राह्मणोंका समागम करके, सब पापोंसे मित्रद्रोहका पाप बहुत बड़ा है, यह बात उनसे सुनते हैं ॥४॥ और हे राजन् ! युद्धके विषय की बातें चलनेपर तुम्हारा, योधाओंके नायक अर्जुनका स्मरण करते हैं, तैसेही जब दुन्दुभि और शंखोंका शब्द होता है तब कौरव हाथ में गदा धारण करने वाले भीमसेनका भी ध्यान करते हैं ॥ ५ ॥ तैसे ही योधाओंके कोलाहलसे गूंजते हुए संग्राममें चारों दिशाओंमें घूमते हुए सेनापर तला ऊपर बाणोंकी वर्षा करतेहुए और युद्धमें कठिनता से हटने वाले महारथी माद्रीपुत्रोंका भी स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥ परन्तु हे राजन् युधिष्ठिर ! मैं मानता हूं कि-पुरुषका अदृष्ट (भविष्य) ऐसा होगा, इस बातको कोई भी नहीं जान सकता । हे पाण्डव! तुम सब धर्मोंसे युक्त थे तो भी महादुःखको प्राप्त हुआ हुए हो. हे अजातशत्रो ! तुम ही समझ कर इस झगड़ेको शान्त करो जिससे कौरव सुख पावें ॥ ७ ॥ पाण्डुके सब पुत्र इन्द्रकी समान हैं तथापि वे राज्य वैभवकी इच्छाके लिये धर्मको नहीं छोड़ेंगे हे अजातशत्रो ! तुम ही

वैतत् प्रज्ञयाजातशत्रो समीकुर्य्या येन शर्म्मानुयुस्ते ॥ ८ ॥ धार्त्तराष्ट्रः पाण्डवाः सृञ्जयाश्च ये चाप्यन्ये सन्निविष्टा नरेन्द्राः । यन्मामब्रवीद्धृतराष्ट्रो निशायामजातशत्रो वचनं पिता ते ॥ ९ ॥ सहामात्यः सहपुत्रश्च राजन् समेत्य तां वाचिममां निबोध ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि संजयवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच । समागताः पाण्डवाः सृञ्जयाश्च जनार्द्दनो युयुधानो विराटः । यत्ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं गावल्गणे ब्रूहि तत् सूतपुत्र ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । अजातशत्रुञ्च वृकोदरञ्च धनञ्जयं माद्रवतीसुतौ च । आमन्त्रये वासुदेवं च शौरिं युयुधानं चेकितानं विराटम् ॥ २ ॥ पांचालानामधिपञ्चैव वृद्धं धृष्टद्युम्नं पार्षतं याज्ञसेनिम् । सर्वे वाचं शृणुतेमां मदीयां वक्ष्यामि यां भूतिमिच्छन् कुरूणाम् ॥३॥ शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्दन्नयोजयत्त्वरमाणो रथं मे । सभ्रातृपुत्रस्य जनस्य राज्ञस्तद्रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु ॥ ४ ॥ सर्वैर्धर्मैः समुपेतास्तु पार्थाः संस्थानेन मार्द्दवेनार्ज्जवेन । जाता कुले ह्यनृशंसा वदा-

---

बुद्धिसे विचार करो जिससे कौरव पाण्डव तथा सृञ्जय आदि दूसरे राजे जो यहां इकट्ठे हुए हैं वे सुख पावें हे अजातशत्रो राजन् ! तुम्हारे ताऊ राजा धृतराष्ट्रने रात मुझसे जो बातें तुमसे कहनेके लिए कहीं हैं उन्हें तुम मन्त्री और पुत्रों सहित इकट्ठे बैठ कर मुझसे सुनो ।८-१०। चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ छ छ छ छ

युधिष्ठिर बोले कि हे सूतपुत्र गावल्गणि ! यहाँ पाण्डव, सृञ्जय, श्रीकृष्ण, युयुधान, विराट आदि सब राजे उपस्थित हैं अतः धृतराष्ट्र ने तुमसे जिस सन्देसेको कहा हो वह तुम हमें कहकर सुनाओ ॥१॥ सञ्जय बोले कि अजातशत्रु भीमसेन अर्जुन नकुल, सहदेव शूरके पुत्र श्रीकृष्ण, चेकितान, राजा विराट पाञ्चालवृद्ध राजा द्रुपद, पृषत्पुत्र धृष्टद्युम्न आदि सबको सुनानेके लिये कहता हूँ कि-मैं कौरवोंका हित चाह कर जो बात कहता हूं उस मेरी बातको तुम सब सुनो२-३ राजा धृतराष्ट्र संधि चाहते हैं और उन्होंने बड़ीशीघ्रतासे रथ तयार करवाकर मुझे आपके पास भेजा है और मैं समझता हूं कि भाई पुत्र और कुटुम्बियों सहित राजा युधिष्ठिर इस बातको स्वीकार करेंगे और पाण्डवोंके साथ संधि होजायगी ॥४॥ पाण्डव सब धर्मोंसे युक्त हैं, पाण्डवोंमें ज्ञान, कृपा और सरलता है, पाण्डव उत्तम कुलमें जन्मे

न्या ह्यनिषेवाः कर्मणां निश्चयज्ञाः ॥५॥ न युज्यते कर्म युष्मासु हीनं सत्त्वं हि वस्तादृशं भीमसेनाः । उद्भासते ह्यञ्जनबिन्दुवत्तच्छुभ्रे वस्त्रे यद्भवेत् किल्बिषं वा ॥ ६ ॥ सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः । कस्तत्र कुर्य्याज्जातु कर्म प्रजानन् पराजयो यत्र समो जयश्च ॥ ७ ॥ ते वै धन्या यैः कृतं ज्ञातिकार्यं ते वै पुत्राः सुहृदो बान्धवाश्च । उपक्रुष्टं जीवितं सन्त्यजेयुर्यतः कुरूणां नियतो वभवः स्यात् ॥ ८ ॥ ते चेत् कुरूननुशिष्याथ पार्था निर्णीय सर्वान् द्विषतो निगृह्य । समं वस्तज्जीवितं मृत्युना स्याद्यज्जीवध्वं ज्ञातिवधेन साधु ॥ ९॥ को ह्येव युष्मान् सह केशवेन सचेकितानान् पार्षतबाहुगुप्तान् । ससात्यकीन् विषहेत प्रजेतुं लब्ध्वापि देवान् सचिवान् सहेन्द्रान् ॥ १० ॥ को वा कुरून् द्रोणभीष्माभिगुप्तानश्वत्थाम्ना शल्यकृपादिभिश्च । रणे विजेतुं विषहेत राजन् राधेयगुप्तान् सह भूमि-

---

हैं, उदार, क्रूरतारहित, लज्जावान् और कार्योंके परिणामको जानने वाले हैं ॥ ५ ॥ हे भयङ्कर सेनावाले पाण्डवो ! तुममें ऐसा बल है कि तुमसे हीन काम होना सम्भव ही नहीं है आपमें यदि थोड़ासा भी दोष हो तो वह श्वेत वस्त्रमें कालोंचकी समान तुरंत दिखाई देजायगा, परंतु दोष नामको भी नहीं है ॥ ६ ॥ जिस काममें सबका संहार दिखाई देय और परिणाममें पाप तथा विनाशकारी नरकका बाग दिखाई देय तथा जिसमें जय और पराजय समान दिखाई दें ऐसे कामको कोई बुद्धिमान् पुरुष क्या कभी करेगा ? ॥ ७ ॥ जो सम्बन्धवालोंके काम कर देते हैं वे भाग्यवान् हैं और इनको ही मित्र,पुत्र और बंधु जानो कौरव यदि अपनी निन्दित आजीविकाको त्याग दें तो उन्हें सदा वैभव मिला करे ८ परन्तु हे पाण्डवो ! तुम कौरवोंको अपना शत्रु मान कर उनका नाश कर डालोगे तो फिर सम्बन्धियोंका नाश होनेसे तुम्हारा वह जीना भी मृत्युके समान ही गिना जायगा ९ युद्ध होगा तो उसमें दोनों ओरका संहार होगा ही और उसमें भी श्रीकृष्ण, चेकितान, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदिके बाहुबलसे तुम्हारी रक्षा होती हो तो तहाँ कौन पुरुष इन्द्रसहित देवताओंकी सहायता मिलने पर भी युद्धमें तुम्हें जीतनेके लिये तुम्हारे सामने युद्ध करनेको आवेगा ? ॥१०॥ तैसे ही बलधारी द्रोण, भीष्म, अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य, कर्ण और दूसरे राजाओंकी रक्षामें रहनेवाले कौरवोंको भी जीतने वाला कौन है ? ११ कोई पुरुष ऐसा

पालैः ॥ ११ ॥ महद्बलं धार्त्तराष्ट्रस्य राज्ञः को वै शक्तो हन्तुमक्षीयमाणः। सोऽहं जये चैव पराजये च निःश्रेयसं नाधिगच्छामि किंचित्। कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः। सोऽहं प्रसाद्य प्रणतो वासुदेवं पञ्चालानाधिपं चैव वृद्धम् ॥ १३ ॥ कृताञ्जलिः शरणं वः प्रपद्ये कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसृंजयानाम्। न ह्येवमेवं वचनं वासुदेवो धनञ्जयो वा जातु किंचिन्न कुर्यात् ॥ १४ ॥ प्राणान् दद्याद्याचमानः कुतोऽन्यदेतद्विद्वन् साधनार्थं ब्रवीमि। एतद्राज्ञो भीष्मपुरोगमस्य मतं यद्वः शान्तिरिहोत्तमा स्यात् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

युधिष्ठिर उवाच। कां नु वाचं संजय मे शृणोषि युद्धैषिणीं येन युद्धाद्बिभेषि। अयुद्धं वै तात युद्धाद् गरीयः कस्तल्लब्ध्वा जातु युध्येत सूत ॥१॥ अकुर्वतश्चेत् पुरुषस्य संजय सिध्येत् संकल्पो मनसायं यमिच्छेत्। न कर्म कुर्याद्विदितं ममैतदन्यत्र युद्धाद् बहु यल्ल-

---

है जो अक्षत रहकर दुर्योधनकी सेनाका नाश कर सके ? मुझे तो जय और पराजयमें जरा भी कल्याण नहीं दीखता ॥१२॥ मैं बूझता हूँ कि क्या पाण्डव नीच कुलके ओछे पुरुषोंकी समान धर्म और अर्थरहित कामको करेंगे अतः मैं दोनों हाथ जोड़ श्रीकृष्ण और पंचाल के स्वामी वृद्ध राजा द्रुपदको प्रणाम कर प्रसन्न करके उनको शरण जाता हूँ और बूझता हूँ कि—कौरवोंका और सृञ्जयोंका कल्याण किस प्रकार हो यह मुझसे कहिये श्रीकृष्ण और अर्जुन किसी दिन भी मेरे कहनेको न माने ऐसा तुम नहीं कह सकते ॥ १३ ॥ १४ ॥ दूसरी बात एक और है कि—यदि उनसे याचना कीजाय तो प्राण देनेको भी उद्यत होजायँगे, हे विद्वन् राजन्! मैं तुमसे संधि करनेके लिए कहता हूँ और इस विषयमें भीष्म आदि तथा धृतराष्ट्र राजाकी भी सम्मति है, अतः ऐसा करो जिसमें सन्धि हो ॥ १५ ॥ पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरने कहा कि—हे संजय! जिससे मेरी युद्धकी इच्छा प्रतीत हो ऐसी मेरी कौनसी बात सुनी ? जिससे तू लड़ाईसे घबड़ाता है हे तात ! युद्ध करनेसे युद्ध न करना ही श्रेष्ठ है अतः हे सूतपुत्र! यदि सन्धि होती हो तो कौन पुरुष युद्ध करनेको तत्पर होगा ॥१ ॥ और हे संजय ! मनुष्य मनमें जो २ संकल्प करता है वह २ कर्म बिना

घीयः ॥ २॥ कुतो युद्धं जातु नरोऽवगच्छेत् को देवशप्तो हि वृणीत युद्धम् । सुखैषिणः कर्म कुर्वन्ति पार्था धर्मादहीनं यच्च लोकस्य पथ्यम् ॥ ३ ॥ धर्मोदयं सुखमाशंसमानाः कृच्छ्रोपायं तत्त्वतः कर्म दुःखम् । सुखं प्रेप्सुर्विजिघांसुश्च दुःखं स इन्द्रियाणां प्रीतिवशानुगामी ॥ ४ ॥ कामाभिध्या स्वशरीरं दुनोति यया प्रमुक्तो न करोति दुःखम् । यथेध्यमानस्य समिद्धतेजसो भूयो बलं वर्द्धते पावकस्य ५ कामार्थलाभेन तथैव भूयो न तृप्यते सर्पिषेवाग्निरिद्धः । सम्पश्येमं भोगचयं महान्तं सहास्माभिर्धृतराष्ट्रस्य राज्ञः ॥६॥ नाश्रेयानीश्वरो विग्रहाणां नाश्रेयान् वै गीतशब्दं शृणोति। नाश्रेयान् वै सेवते माल्यगन्धान्न चाप्यश्रेयाननुलेपनानि ॥ ७ ॥ नाश्रेयान् वै प्रावारान् संवि-

---

किये सिद्ध होजाय तो कोई भी मनुष्य कर्म करे ही नहीं, ऐसा मेरा विचार है मैं जानता हूँ कि—युद्ध, विना किये थोड़ी वस्तु भी मिल जाय तो वही बहुत बड़ी मानी जाती है ॥ २ ॥ कौन मनुष्य किस लिये युद्धका विचार करेगा ? अथवा कौन दैवसे शाप पाया हुआ युद्धको माँगेगा ? धर्मकी इच्छा वाले पाण्डव, धर्मयुक्त और लोकका हितकारी ही कर्म करते हैं ॥ ३ ॥ क्योंकि-वे धर्मसे उत्पन्न होनेवाले सुखको चाहते हैं परन्तु जो मनुष्य इन्द्रियोंके प्रेममय रसका अनुरागी होता है, दुःखका नाश करनेकी तथा सुख चाहनेकी इच्छा वाला होता है वह जो कर्म करता है वह ही कष्टदायक उपायोंवाला और भली प्रकार देखा जाय तो दुःखरूप है ॥ ४ ॥ कामनाओंका चिन्तवन अपने शरीरको पीड़ित करता है परन्तु जो कामनाओंकी चिन्ता नहीं करता है उसको दुःख भी नहीं होता है, अग्निका तेज बढ़ने पर उसमें ईंधन डालनेसे जैसे अग्निका बल बढता है ॥५॥ तैसे ही कामना और धनका लोभ करनेसे मनको कभी भी तृप्ति नहीं मिलती है परन्तु जैसे घीसे अग्नि बढ़ती है तैसे ही मनकी तृष्णा भी वृद्धि पाती है राजा धृतराष्ट्र ने जो हमारे पास रह कर बड़ा वैभव भोगा है उसकी और इस विषयको ओर तू दृष्टि डाल, पापी मनुष्य युद्धमें विजय नहीं पाता है, पापी मनुष्य गीतोंकी ध्वनिको नहीं सुनता है, पापी मनुष्य सुगंधि और पुष्पोंको नहीं पाता है पापी मनुष्यको चन्दनका लेपभी नहीं मिलता है तथा पापी मनुष्यको ओढने के श्रेष्ठवस्त्र भी नहीं मिलते हैं हम यदि पुण्यवान होते तो हमें कौरवों मेंसे अलग क्यों किया जाता ! तो भी यहाँ एक बात देखनी है यह

स्रते कथं त्वस्मात् संप्रणुदेत् कुरुभ्यः । अत्रैव स्यादबुधस्यैव कामः प्रायः शरीरे हृदयं दुनोति ॥ ८ ॥ स्वयं राजा विषमस्थः परेषु सामर्थ्यमन्विच्छति तन्न साधु । यथात्मनः पश्यति वृत्तमेव तथा परेषामपि सोऽभ्युपैति ।९। आसन्नमग्निन्तु निदाघकाले गम्भीरकक्षे गहने विसृज्य । यथा विवृद्धं वायुवशेन शोचेत् क्षेमं मुमुक्षुः शिशिरव्यपाये ॥ १० ॥ प्राप्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रोऽद्य राजा लालप्यते सञ्जय कस्य हेतोः । प्रगृह्य दुर्बुद्धिमनार्जवे रतं पुत्रं मन्दं मूढममन्त्रिणन्तु ॥ ११ ॥ अनाप्तवच्चाप्ततमस्य वाचः सुयोधनो विदुरस्यावमत्य । सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी सम्बुध्यमानो विशतेऽधर्ममेव१२ मेधाविनं ह्यर्थकामं कुरूणां बहु श्रुतं वाग्मिनं शीलवन्तम् । स तं राजा धृतराष्ट्रः कुरुभ्यो न सस्मार विदुरं पुत्रकाम्यात् ।१३। मानघ्नस्यासौ मानकामस्य चेर्ष्योः संरम्भिणश्चार्थधर्मातिगस्य । दुर्भाषिणो मन्युवशानुगस्य कामात्मनो दौर्हृदैर्भावितस्य ॥ १४ ॥ अनेयस्याश्रेयसो दीर्घमन्योर्मित्रद्रुहः सञ्जय

यह है कि-अज्ञानी मनुष्यकोही अधिकतर शारीरक वैभवोंको भोगने की इच्छा होती है और यह इच्छाही पीछे हृदयमें दुःख उत्पन्न करती है ॥ ६-८ ॥ राजा धृतराष्ट्र जब स्वयं दुःखमें पड़ते हैं तब वह दूसरे की सामर्थ्य (सहायता) को चाहते हैं यह बात अच्छी नहीं है, राजा धृतराष्ट्र जैसे अपने आचरणको देखते हैं, तैसे ही वह दूसरोंके आचरण देखें तो अच्छा हो ॥ ९ ॥ वसन्त ऋतुके बीतने पर गर्मियोंमें मूँजके एक गहन वनमें आग लगादेय और वह अग्नि जब वायुसे बढ़ जाय तब उस दाहमेंसे बचना चाहे और वह मनुष्य जैसे यह शोक करै कि मुझे कुछ सुख नहीं है तैसे हे संजय ! ऐश्वर्य मिलने पर भी राजा धृतराष्ट्र दुर्बुद्धि उद्धत भाग्यहीन मूर्ख और मंत्रीरहित अपने पुत्र दुर्योधनका पक्ष लेकर किस लिये दीनकी समान बिलबिलाया करते हैं ? ॥ १०-११ ॥ दुर्योधन और दूसरे पुत्रोंका हित चाहनेवाले राजा धृतराष्ट्र परम विश्वासपात्र भाई विदुरके वचनोंका अविश्वासी की समान तिरस्कार करके जानने पर भी अधर्ममें ही क्यों घुसा करते हैं ? ॥ १२ ॥ दुर्योधन दूसरेकी प्रतिष्ठाका नाश करने वाला, अपना मान चाहनेवाला डाह करनेवाला क्रोधी है धर्म और अर्थका लाँघने वाला तथा खोटे वचन कहनेवाला है, उसके सेवक क्रोधी हैं, वह कामसे भराहुआ है और दुष्ट पुरुष उसकी सेवा करते हैं उसको शिक्षा नहीं मिली है, वह भाग्यहीन बहुत समय तक क्रोध करनेवाला

पापबुद्धेः । सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी प्रपश्यमानः प्राजहाद्धर्मकामौ ॥१५॥ तदैव मे सञ्जय दीव्यतोऽभून्मतिः कुरूणामागतः स्यादभावः । कथ्यां वाचं विदुरो भाषमाणो न विन्दते यद्धार्त्तराष्ट्रात् प्रशंसाम् ॥ १६ ॥ क्षत्तुर्यदा नान्ववर्त्तन्त बुद्धिं कृच्छ्रं कुरून् सूत तदाभ्याजगाम । यावत्प्रज्ञामन्ववर्त्तन्त तस्य तावत्तेषां राष्ट्रवृद्धिर्बभूव १७ तदर्थलुब्धस्य निबोध मेऽद्य ये मन्त्रिणो धार्त्तराष्ट्रस्य सूत । दुःशासनः शकुनिः सूतपुत्रो गावल्गणे पश्य सम्मोहमस्य ॥१८॥ सोऽहं न पश्यामि परीक्षमाणः कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसृंजयानाम् । आत्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रः परेभ्यः प्रव्राजिते विदुरे दीर्घदृष्टौ ॥ १९ ॥ आशंसते वै धृतराष्ट्रः सपुत्रो महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम् । तस्मिन् शमः केवलं नोपलभ्यः सर्वं स्वकं मद्गते मन्यतेऽर्थम्॥२०॥यत्तत् कर्णो मन्यते पारणीयं युद्धे गृहीतायुधमर्जुनं वै । आसंश्च युद्धानि पुरा महान्ति कथं कर्णो नाभवद्

मित्रद्रोही और पापबुद्धि है, इतना जाननेपरभी राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रका मनचीता काम करनेकी इच्छासे धर्म और कामनाका त्याग क्यों कर बैठे हैं ॥ १३-१५ ॥ हे सञ्जय ! मैं जिस समय जुआ खेलता था उस समय विदुरजी शुक्रनीतिके वचन कहने लगे परन्तु दुर्योधनने उनकी प्रशंसा नहीं की (कि-विदुरजी बहुत अच्छा कहते हैं) उस समय ही मेरे ध्यानमें आगया था कि-अब कौरवोंका नाश समीप ही है१६ हे सूत ! कौरव जबतक विदुरजीकी बुद्धिके अनुसार वर्ताव करते थे,तबतक उनके देशकी भी वृद्धि हुआ करती थी,परन्तु जबसे कौरवोंने विदुरजीके कहनेके अनुकूल वर्ताव करना छोड़दिया तबसे ही वे दुःखी होनेलगे हैं१७हे सञ्जय ! धनके लोभी दुर्योधनके जो मन्त्री हैं उनके नाम तू अब मुझसे सुन दुःशासन, शकुनि और कर्ण ये उसके मन्त्री हैं, उनके ऊपर दुर्योधनका कितना बड़ा मोह है, यह तू ही देखले ॥ १८ ॥ इस सबका विचार करने पर कौरव और सृञ्जयोंका कल्याण किस प्रकार हो, इसका मुझे कोई भी उपाय नहीं सूझता धृतराष्ट्रने शत्रुओंसे ऐश्वर्य पानेके पीछे दीर्घदृष्टि विदुरजीको अपने राज्यमेंसे दूर कर दिया है, और वह तथा उसके पुत्र पृथिवीपर शत्रुशून्य महाराज्य पानेकी इच्छा करते हैं इसीसे मेरे वनमें चले आनेपर मेरे सकल राज्यको भी वह अपनाही राज्य मानने लगे हैं, इसीलिये उन लालचियोंके साथ संधि हो यह बात मुझे संभव प्रतीत नहीं होती ॥ १९।।२० ॥ कर्ण मानता है कि-अर्जुन शस्त्र लेकर आवेगा तो

द्वीप एवाम्॥२१॥ कर्णश्च जानाति सुयोधनश्च द्रोणश्च जानाति पिता-महश्च। अन्ये च ये कुरवस्तत्र सन्ति यथार्जुनान्नास्त्यपरो धनुर्द्धरः॥२२ जानन्त्येतत् कुरवः सर्व एव ये चाप्यन्ये भूमिपालः समेताः। दुर्योधने राज्यमिहाभवद्यथा अरिन्दमे फाल्गुने विद्यमाने ॥ २३ ॥ तेनानुबन्धं मन्यते धार्त्तराष्ट्रः शक्यं हर्त्तुं पाण्डवानां ममत्वम्। किरीटिना तालमात्रायुधेन तद्वेदिना संयुगं तत्र गत्वा ॥ २४ ॥ गाण्डीवविस्फारितशब्दमाजावश्रृण्वाना धार्त्तराष्ट्रा ध्रियन्ते। क्रुद्धं न चेदीक्षते भीमसेनं सुयोधनो मन्यते सिद्धमर्थम् ॥ २५ ॥ इन्द्रोऽप्येतन्नोत्सहेत तात हर्त्तुमैश्वर्य्यं नो जीवति भीमसेने। धनञ्जये नकुले चैव सूत तथा वीरे सहदेवे सहिष्णौ ॥ २६ ॥ स चेदेतां प्रतिपद्येत बुद्धिं वृद्धो राजा सहपुत्रेण सूत। एवं रणे पाण्डवकोपदग्धा न नश्येयुः संजय धार्त्तराष्ट्राः॥२७॥ जानासि त्वं क्लेशमस्मासु वृत्तं त्वां पूजयन् संजयाहं क्षमेहं।

मैं उससे जीत सकूँगा परन्तु मैं बूझता हूँ कि-पहिले भी बड़े २ युद्ध हो चुके हैं उनमें कर्णने युद्धके प्रवाहमें गोते खाते हुए कौरवोंको द्वीप रूप बनकर आश्रय क्यों नहीं दिया था ? ॥२१॥ कर्ण, दुर्योधन, द्रोण भीष्म पितामह और भी जो २ कौरव हस्तिनापुरमें हैं ये जानते हैं कि अर्जुनसे अधिक धनुर्धर दूसरा कोई भी नहीं है ॥ २२ ॥ शत्रुदमन अर्जुनके जीवित रहते हुए दुर्योधनने पाण्डवोंका राज्य कैसे लिया है यह बात सब कौरव और सब राजे भी भली प्रकार जानते हैं २३ ऐसा होते हुए भी धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन चार हाथ लम्बे धनुषसे युद्ध करनेमें प्रवीण अर्जुनके सामने युद्ध करके पाण्डवोंका राज्यछीन सकेगा यह बात तू कैसे मानता है ? ॥ २४ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्र अभी तक जीते हैं इसका कारण यही है कि-युद्धमें उन्होंने अर्जुनके गांडीव धनुषका टङ्कारख नहीं सुना है तैसे ही दुर्योधनने भीमको देखा नहीं है तबतक ही वह अपने कर्मको सिद्ध हुआ मानता है ॥ २५ ॥ परन्तु हे तात सूत ! वीर और सहनशील अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव बैठे हैं, तब तक इन्द्रमें भी हमारे ऐश्वर्यको छीननेकी सामर्थ्य हो ऐसा नहीं होसकता ॥२६॥ परंतु हे सूतपुत्र संजय ! यदि वृद्ध राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रके साथ ऐसा विचार करे कि—हम पांडवोंको राज्य नहीं देंगे तो हमारा नाश होजायगा तो ही ठीक है, इससे ही धृतराष्ट्रके पुत्र रणमें पाण्डवोंकी कोपाग्निसे भस्म होनेसे बचसकेंगे ॥ २७ ॥ हे संजय ! हमारे ऊपर जो जो दुःख पड़े उनको

यच्चास्माकं कौरवैर्भूतपूर्वं या नो वृत्तिर्धार्त्तराष्ट्रे तदासीत् ॥ २८ ॥
अद्यापि तत्तत्र तथैव वर्त्ततां शान्तिं गमिष्यामि यथा त्वमात्थ। इन्द्रप्रस्थे भवतु ममैव राज्यं सुयोधनो यच्छतु भारताग्र्यः ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सञ्जय उवाच। धर्मनित्या पाण्डव ते विचेष्टा लोके श्रुता दृश्यते चापि पार्थ। महाश्रावं जीवितं चाप्यनित्यं सम्पश्य त्वं पाण्डव मा व्यनीनशः ॥ १ ॥ न चेद् भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात् प्रयच्छेरंस्तुभ्यमजातशत्रो। भैक्ष्यचर्यामन्धकवृष्णिराज्ये श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम् ।२। अल्पकालं जीवितं यन्मनुष्ये महाश्रावं नित्यदुःखं चलञ्च। भूयश्च तद्यशसो नानुरूपं तस्मात् पापं पाण्डव मा कृथास्त्वम् ॥ ३ ॥ कामा मनुष्यं प्रसजन्त एते धर्मस्य ये विघ्नमूलं नरेन्द्र। पूर्वं नरस्ता-

---

तुम भी जानते हो मैं तुम्हारा सत्कार करके तुमसे क्षमा मांगता हूँ और कहता हूं कि—हम कौरवोंके साथ पहिले जैसा वर्ताव करते थे और दुर्योधनके साथ जैसा वर्ताव करते थे तैसे ही अब भी उनके साथ वर्तें, और तुम कहते हो तिसी प्रकार मैं शान्ति धारण करूँगा परन्तु भरतवंशमें श्रेष्ठ सुयोधन हमें हमारा राज्य लौटाल दे तथा हमारा राज्य इन्द्रप्रस्थमें फिर प्रथमकी समान हो चलने लगे तब ही ऐसा होगा ॥ २८-२९ ॥ षड्विंश।अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

सञ्जय कहते हैं कि-हे कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर ! तुम्हारा आचरण इस जगत्में सदा धर्ममय सुने और देखनेमें आया है, हे पाण्डवपुत्र ! महाकीर्तिमान् जीवन जो अनित्य कहिये नाशवान् है उसकी ओर तुम दृष्टि करो और धृतराष्ट्रके पुत्रोंके नाशका विचार न करो ॥ १ ॥ हे अजातशत्रु युधिष्ठिर ! मेरी समझमें यदि कौरव तुम्हें युद्धके विना राज्य न दे तो तुम्हारा युद्ध करके राज्य पानेकी अपेक्षा अन्धक और वृष्णिवंशके राज्योंसे भीख मांगकर पेट भर लेना अच्छा है ॥ २ ॥ हे राजन् ! मनुष्यकी आयु थोड़े समयकी, सदा नटने वाली, नित्य दुःखसे भरी हुई और चञ्चल है इस लिये युद्ध करना यशके लिये भी अनुकूल नहीं है, तो हे युधिष्ठिर ! तुम युद्ध करके कौरवोंके संहाररूपी पापको कैसे करोगे ? ॥३॥ हे राजन् ! इस जगत्में विघ्नकारक कामनाएँ मनुष्यका स्पर्श करती हैं, परन्तु वे धर्मका नाश करने वाली हैं, इस लिये ही बुद्धिमान् मनुष्य इन कामनाओंको

न्मतिमान् प्रणिघ्नन् लोके प्रशंसां लभतेऽनवद्याम्४ निबन्धनी ह्यर्थतृ-ष्णेह पार्थ तामिच्छतां बाध्यते धर्म एव। धर्मन्तु यः प्रवृणीते स बुद्धः कामे गृध्नो हीयतेऽर्थानुरोधात् ॥ ५ ॥ धर्मं कृत्वा कर्मणां तात मुख्यं महाप्रतापः सवितेव भाति । हीनो हि धर्मेण महीमपीमां लब्ध्वा नरः सीदति पापबुद्धिः ॥ ६ ॥ वेदोऽधीतश्चरितं ब्रह्मचर्यं यज्ञैरिष्टं ब्राह्म-णेभ्यश्च दत्तम् । परं स्थानं मन्यमानेन भूय आत्मा दत्तो वर्षपूगं सुखेभ्यः७सुखप्रिये सेवमानोऽतिवेलं योगाभ्यासे यो न करोति कर्म । वित्तक्षये हीनसुखोऽतिवेलं दुःखं शेते कामवेगप्रणुन्नः ॥ ८ ॥ एवं पुनर्ब्रह्मचर्याप्रसक्तो हित्वा धर्मं यः प्रकरोत्यधर्मम् । अश्रद्दधत् पर-लोकाय मूढो हित्वा देहं तप्यते प्रेत्य मन्दः ॥९ ॥ न कर्मणा विप्रणा-

पहिलेसे ही त्याग देता है और इससे इस जगत्में निर्दोप प्रशंसाको पाता है ॥ ४ ॥ हे युधिष्ठिर ! इस जगत्में धनकी तृष्णा ही मनुष्यको डोरीकी समान बाँधने वाली है तृष्णाको चाहने वाले मनुष्योंका धर्म नष्ट ही होजाता है और जो मनुष्य उस तृष्णाको त्याग कर धर्मको ग्रहण करे उसकोही ज्ञानी जानना चाहिये परंतु जो पुरुष धनकी इच्छा से कामनो की इच्छा करता है वह धर्मसे अवश्य ही भ्रष्ट होजाता है ५ जो मनुष्य चारों पुरुषार्थोंमें मुख्य धर्मको स्वीकार करता है वह मनुष्य महाप्रतापी सूर्यकी समान महाप्रतापी होकर दिपने लगता है परंतु पापी बुद्धि वाला पुरुष धर्मसे कदाचित् इस सब पृथ्वीको पाजाय तोभी वह पाप बुद्धिवाला पुरुष दुःखीहुए विना नहीं वचता ६ तुमने शास्त्रोक्त विधिसे ब्रह्मचर्य पालकर वेद पढा है, यज्ञोंसे ईश्वर को पूजा की है ब्राह्मणोंको दान दिये हैं और परलोकको माननेवाले तुमने अनंत वर्षोंतक रहने वाला स्वर्गसुख भी अपने आत्माके लिये सम्पादन किया है ॥७ ॥ जो मनुष्य वैभवोंके सुखोंका और प्रिय स्त्री पुत्र आदिका भली प्रकार सेवन किया करता है और चित्तवृत्तिको रोकनेकेलिये आसन प्राणायाम आदि योगाभ्यासके कर्म नहीं करता है वह धनका नाश होजाने पर सुखसे शून्य होजाता है और उसे कामनाके वेगसे प्रेरित होकर दुःखरूपी शय्यामें शयन करना पड़ता है ॥ ८ ॥ जो मूढ मनुष्य, आत्मविचाररूपी कर्मको उपेक्षा करता है और धर्मको त्याग कर अधर्मको स्वीकार करता है तथा परलोकमें श्रद्धा नहीं रखता है वह मनुष्य मरनेके अनंतर परलोक जाकर दुःख पाता है ॥ ९ ॥ इस लोकमें किये हुए पुण्यकर्म और पापकर्म भोगे

शोऽस्त्यत्र पुण्यानां वाप्यथ वा पापकानाम्। पूर्वं कर्त्तुर्गच्छति पुण्य-पापं पश्चात्त्वेनमनुयात्येव कर्त्ता॥ १०॥ न्यायोपेतं ब्राह्मणेभ्यो यदन्नं श्रद्धापूतं गन्धरसोपपन्नम्। अन्वाहार्य्येषूत्तमदक्षिणेषु तथा रूपं कर्म विख्यायते ते॥ ११॥ इह क्षेत्रे क्रियते पार्थ कार्य्यं न वै किञ्चित् क्रियते प्रेत्य कार्य्यम्। कृतं त्वया पारलोक्यञ्च कर्म पुण्यं महत् सद्भिरति प्रशस्तम्॥१२॥जहाति मृत्युं च जरां भयं च क्षुत्पिपासे मनसोऽप्रियाणि न कर्त्तव्यं विद्यते तत्र किंचिदन्यत्र वै चेन्द्रियप्रीणनाद्धि॥१३॥ एवं रूपं कर्मफलं नरेन्द्र मात्रावहं हृदयस्य प्रियेण। स क्रोधजं पाण्डव हर्षजञ्च लोकावुभौ मा प्रहासीश्चिराय॥१४॥अन्तं गत्वा कर्मणां मा प्रजह्याः। सत्यं दमश्चार्जवमानृशंस्यं अश्वमेधं राजसूयन्तथेज्याः। पापस्यान्तं कर्मणो मा पुनर्गाः॥१५॥तच्चेदेव स्वस्वरूपेण पार्थाः करिष्यध्वं कर्म पापं

विना नष्ट नहीं होते हैं, पुण्य अथवा पाप कर्ताके आगे २ चलता है और कर्ता उसके पीछे २ जाता है॥ १०॥ जैसे मासिकादि श्राद्धमें ब्राह्मणोंको नियमके अनुसार श्रद्धासे पवित्र हुआ, सुन्दर सुगन्धित और रसोंसे युक्त भोजन दिया जाता है तैसे ही तुमने भी श्रेष्ठ दक्षिणा वाले राजसूय आदि यज्ञ किये हैं तिससे तुम्हारा कर्म भी तैसा ही प्रसिद्ध हुआ है॥११॥ हे पार्थ! मनुष्य जो कुछ कर्म करते हैं सो इस लोकमें ही कर सकते हैं मरनेके अनन्तर परलोकमें कोई भी कर्म नहीं किया जासकता, तुमने परलोक पानेके लिये पुण्य कर्म किये हैं वे कर्म बडे२ हैं और महात्मा पुरुषोंने उनकी प्रशंसा की। १२ परलोकमें जाने पर पुरुष, मरण, बुढापा, भय, भूँख प्यास तथा मन को अच्छे न लगनेवाले अन्य सब कर्मोंको त्याग देता है, क्योंकि— स्वर्गमें इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करनेके सिवाय और कोई कर्म ही करनेको नहीं रहता है॥ १३॥ हे राजन्! इस प्रकार कर्मोंके फल हैं, अतः तुम कामनासे कर्म मत करो, किन्तु निष्काम कर्म करके क्रोधसे मिलने वाले नरकलोकमें और हर्षसे मिलने वाले स्वर्गमें इस प्रकार दोनों लोकोंमें सदाके लिये न जाओ किन्तु कर्मके फलको त्यागकर मोक्षके लिये योगाभ्यास करो, बान्धवोंके नाशसे मिलने वाले राज्य का क्या प्रयोजन है?॥ १४॥ आप सरीखेको तो ज्ञानके द्वारा कर्मों का नाश करना और कृतकृत्य होना चाहिए, तुम सत्य, दम, सरलता दया, अश्वमेध, राजसूय तथा दूसरे यज्ञ आदि कर्मोंका त्याग न करो और पापकर्मके पास भी न जाओ॥ १५॥ जिन पाण्डवोंने धर्मके

चिराय। निवसध्वं वर्षपूगान् वनेषु दुःखं वासं पाण्डवा धर्म एव ॥१६॥ अप्रव्रज्यो मा स्म हित्वा पुरस्तादात्माधीनं यद्बलं ह्येनदासीत्। नित्यञ्च वश्याः सचिवास्तवेमे जनार्दनो युयुधानश्च वीरः॥१७॥मत्स्यो राजा रुक्मरथः सपुत्रः प्रहारिभिः सहपुत्रैर्विराटः।राजानश्च ये विजिताः पुरस्तात्त्वामेव ते संश्रयेयुः समस्ताः ॥१८॥ महासहायः प्रतपन् बलस्थः पुरस्कृतो वासुदेवार्जुनाभ्याम्। वरान् हनिष्यन् द्विषतो रङ्गमध्ये व्यनेष्यथा धार्त्तराष्ट्रस्य दर्पम् ॥ १९ ॥ बलं कस्माद्वर्द्धयित्वा परस्य निजान् कस्मात् कर्षयित्वा सहायान्। निरुष्य कस्माद्वर्षपूगान् वनेषु युयुत्ससे पाण्डव हीनकालम् ॥ २० ॥ अप्राज्ञो वा पाण्डव युध्यमानो धर्मज्ञो वा भूतिमथोऽभ्युपैति।प्रज्ञावान् वा बुध्यमानोऽपि धर्मं संरंभाद्धा सोऽपि भूतेरपेति ॥ २१ ॥ नाधर्मे ते धीयते पार्थ बुद्धिर्न संरम्भात् कर्म चकर्थ पापम्। आत्थ किं तत् कारणं यस्य हेतोः प्रज्ञाविरुद्धं कर्म चिकीर्षसीदम् ॥२२॥ अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि यशो-

---

लिये बारह वर्ष तक वनमें वास किया है वे पाण्डव क्या द्वेष होनेसे पहिले ही युद्धरूप पापमय कर्म नहीं कर सकते थे, अवश्य कर सकते थे, परन्तु तुमने धर्मके लिये पाप कर्म नहीं किया ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! पहिले तुम्हारे पास जो सेना थी यदि तुम उसे छोड़कर वनमें न गए होते तो सदा तुम्हारे अधीन रहने वाला मन्त्रिमण्डल,श्रीकृष्ण पराक्रमी युयुधान, रणकुशल और वीर पुत्रों सहित रथमें बैठनेवाले मत्स्यराज विराट और पहिले आपने जिन्हें जीता है वे सब राजे आप का पक्ष लेते और आप सहायसम्पन्न बली और प्रतापी बनकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगे कर रङ्गभूमिमें मुख्य २ शत्रुओंका नाश करके धृतराष्ट्रके गर्वको नष्ट कर डालते । १७ ॥ १८ ॥ परन्तु शत्रुओं के बलको बढ़ा कर और बहुत वर्षों तक वनमें निवास करके ऐसे अवनतिके समयमें अब किस लिए रण करना चाहते हो ? ॥ २० ॥ कदाचित् युद्ध प्रारम्भ होगया तो हे युधिष्ठिर ! युद्धमें तो बुद्धिहीन और अधर्मी पुरुष भी राज्यलक्ष्मीको पाजाता है और बुद्धिमान् तथा धर्मज्ञ पुरुष भी निवृत्तिपरायण होकर कर्म न करे तो ऐश्वर्यहीन होजाता है ॥ २१ ॥ हे पार्थ ! तुम्हारी बुद्धि अधर्ममें जानेवाली नहीं है तुमने पहिले भी पापयुक्त कर्म नहीं किया है तो भी बताओ अब इस बुद्धिसे विरुद्ध कर्म करनेकी इच्छा तुम्हें कैसे उत्पन्न हुई ।२२। हे महाराज ! व्याधिके विना उत्पन्न हुआ, स्वाभाविक रीतिसे सिद्ध

शुभं पापफलोदयं वा । सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥२३॥पापानुबन्धं को नु तं कामयेत क्षमैव ते ज्यायसी नोत भोगाः यत्रः भीष्मः शांतनवो हतः स्याद्यत्र द्रोणः सहपुत्रो हतः स्यात्॥२४॥कृपः शल्यः सौमदत्तिर्विकर्णो विविंशतिः कर्णदुर्योधनौ च । एतान्हत्वा कीदृशं तत् सुखं स्याद्यद्विन्देथास्तदनुब्रूहि पार्थ॥२५॥लब्ध्वापीमां पृथिवीं सागरान्तां जरामृत्यू नैव हि त्वं प्रजह्याः । प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्नेवं विद्वन्नैव युद्धं कुरु त्वम्॥२६॥अमात्यानां यदि कामस्य हेतोरेवं युक्तं कर्म चिकीर्षसि त्वम्। अपक्रामेः स्वं प्रदायैव तेषां मा गास्त्वं वै देवयानात् पथोऽद्य ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि संजयवाक्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

युधिष्ठिर उवाच । असंशयं सञ्जय सत्यमेतद्धर्मो वरः कर्मणां यत्त्वमात्थ । ज्ञात्वा तु मां संजय गर्हयेस्त्वं यदि धर्मं यद्यधर्मं चरेयम्

क्रोध, मस्तकको खिझाने वाला, यश और धर्मका नाश करने वाला और पापमय फलका देने वाला तथा तीव्र विषरूप है, उस विषको सज्जन ही पीसकते हैं, असत् पुरुष उसको नहीं पी (रोक) सकते, आप उस क्रोधरूपी विषको पीकर शान्त हूजिए ॥ २३ ॥ कौन सा मनुष्य है जो पापमय क्रोध मुझमें रहे ऐसी इच्छा करेगा ? तुम्हें तो क्षमा धारण करना ही श्रेष्ठ है भोगकी तृष्णा रखनी कल्याणकारक नहीं है, क्योंकि-उसमें शन्तनुके पुत्र भीष्म, पुत्रसहित द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, विविंशति कर्ण और दुर्योधनका विनाश होना संभव है हे कुन्तीके पुत्र ! इन सबोंको मारडालनेके पीछे तुम्हें जो सुख मिलेगा वह किस कामका होगा यह मुझे बताओ इस समुद्रतककी पृथ्वीकी प्रभुता पाकर भी क्या तुम मृत्यु और बुढापेसे बचजाओगे ? इस लिये ही तुम प्रिय और अप्रिय वस्तुका तथा सुख और दुःखका विचार करके जो काम करना तुमने विचारा है उससे चित्तको हटालो ॥ २६ ॥ कदाचित् तुम अपने मन्त्रियोंकी इच्छाके अनुसार इस प्रकार योग्य काम करनेकी इच्छा करते होओ तो तुम इस कामका भार उनके ऊपर ही डालकर उनसे अलग हो जाओ और बहुत समयसे स्वर्गके मार्गके अनुगामी बनकर अब उस से भ्रष्ट न होओ ॥ २७ ॥ सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

युधिष्ठिर बोले कि—हे संजय ! तुमने जो बातें कहीं वे निःसंदेह

यत्राधर्मो धर्मरूपाणि धत्ते धर्मः कृत्स्नो दृश्यतेऽधर्मरूपः विभ्रद्धर्मो धर्मरूपं च तथा च विद्वांसस्तं सम्प्रपश्यन्ति बुद्ध्या ॥२॥एवं तथैवापदि लिङ्गमेतद्धर्माधर्मौ नित्यवृत्ती भजेताम् । आद्यं लिङ्गं यस्य तस्य प्रमाणमापद्धर्मं सञ्जय तन्निबोध ॥ ३ ॥लुप्तायान्तु प्रकृतौ येन कर्म निष्पादयेत्तत् परीप्सेद्विहीनः प्रकृतिस्थश्चापदि वर्त्तमान उभौ गर्ह्यौ भवतः संजयैतौ ॥ ४ ॥ अविनाशमिच्छतां ब्राह्मणानां प्रायश्चित्तं

ठीक है,धर्म सब कर्मोंमें श्रेष्ठ है परन्तु हे संजय! मैं धर्माचरण करता हूँ या अधर्माचरण करता हूँ इसको समझ कर यदि तुम मेरी निन्दा करो तब ही ठीक हो ॥ १ ॥ धर्मकी परीक्षा तीन प्रकारसे होती है कोई पुरुष दम्भी होता है उसमें अभिचार आदि अधर्म भी धर्मकी समान प्रतीत होता है, तिसी प्रकार कोई दत्तात्रेयकी समान योगी होता है उसमें धर्म भी (उन्मत्तादिक आचार) अधर्म की समान दीखता है; तिसी प्रकार किसी (वसिष्ठ आदि) पुरुषमें धर्म धर्मके स्वरूपसे ही रहता हुआ दिखाई देता है, विद्वान् ही ज्ञानदृष्टि से धर्मके वास्तविक स्वरूपको जान सकते हैं ॥ २ ॥ इस प्रकार धर्म का तीन प्रकारका स्वरूप है, तो भी नित्य रहनेवाला धर्म तथा अधर्म आपत्तिके समय अदलबदलसा होजाता है मनुष्यका जो धर्म प्रधान वर्णके अनुसार होता है उसके लिये वह धर्म मान्य होता है, ब्राह्मणोंका पढाना, यज्ञ कराना, आदि मुख्य धर्म हैं क्षत्रियोंके शूरता प्रजापालन आदि मुख्य धर्म हैं और वैश्योंके खेती व्यापार आदि मुख्य धर्म हैं, ये धर्म उन्हें सदा पालने चाहिये हे सञ्जय ! मैं तुझे आपत्तिके समय पालने योग्य धर्म बतलाता हूँ उनके ऊपर ध्यान दे३ जब मनुष्योंकी आजीविका नष्ट होजाय तब संध्या वन्दन आदि कर्म यदि अपनेसे बनसकें तो उन्हें करे,उस समय ब्राह्मण क्षत्रियके और क्षत्रिय वैश्यके तथा वैश्य शूद्रके कर्म करलेय तो कुछ अनुचित नहीं है, तैसे ही क्षत्रिय आदिको अपने श्रेष्ठ कर्म करके प्राण बचानेकी आवश्यकता है परन्तु एक मनुष्य अच्छी दशामें हो और आपत्तिके समयके धर्म पालता हो अथवा आपत्तिमें हो और सुखमयी दशाके धर्म पालता हो तो ये दोनों जने हे संजय ! निन्दाके योग्य मानेजाते हैं ४ब्रह्माजीने भी,अपनी जातिके सिवाय दूसरी जातिकी आजीविका पर निर्वाह करनेसे ब्राह्मणत्वका नाश होजाता है,यह विचार कर ब्राह्मणत्वकी रक्षा करनेकी इच्छासे शास्त्रमें उसका प्रायश्चित्त कहा है,

विहितं यद्विधात्रा । स्वपश्येथाः कर्मसु वर्त्तमानान् विकर्मस्थान् संजय गर्हयेस्त्वम् ॥ ५ ॥ मनीषिणां सत्त्वविच्छेदनाय विधीयते सत्सु वृत्तिः सदैव । अब्राह्मणा सन्ति तु ये न वैद्याः सर्वोत्संगं साधुमन्ये न तेभ्यः ॥६॥ तदध्वानः पितरो ये च पूर्वे पितामहा ये च तेभ्यः परेऽन्ये यज्ञैषिणो ये च हि कर्म कुर्युर्नान्यंततो नास्तिकोऽस्मीति मन्ये ॥ ७ ॥ यत्किंचनेदं वित्तमस्यां पृथिव्यां यद्देवानां त्रिदशानां परं यत् । प्राजापत्यं त्रिदिवं ब्राह्मलोकं नाधर्मतः सञ्जय कामयेयम् ॥ ८ ॥ धर्मेश्वरः

इससे सिद्ध होता है कि-आपत्तिमें एक वर्णको दूसरे वर्णके धर्म अंगीकार करने पड़ते हैं,इस लिये हमने भी एकचक्रा नगरीमें क्षत्रिय होनेपर भी ब्राह्मणोंकी समान भिक्षावृत्तिअंगीकार की थी, यह अयोग्य काम नहीं किया था,अच्छे समयमें हम अपने वर्णके धर्मसे वर्त्ताव करनेवाले और आपत्ति पड़ने पर दूसरे वर्णोंके कर्मोंको स्वीकार करनेवाले थे, यह ठीक ही था,तुम्है ऐसा जानना चाहिये,हम सुखके समयमें दूसरेके धर्मके अनुसार वर्ताव करनेवाले और आपत्कालमें क्षत्रियधर्मके अनुसार वर्ताव करने वाले हों तो तुझे हमारी निंदा करनी चाहिये, अर्थात् हमें जिससमय जिस धर्मका आचरण करना चाहिये हमने उस समय उस ही धर्मका आचरण किया है ॥५॥ मनको नियममें रखने की इच्छा वाले पुरुष,जैसे मूंजमेंसे सींकको अलग कर लिया जाता है तैसेही, बुद्धिसे आत्मतत्वको भिन्नरूप जाननेके लियेसदा महात्माओं के यहाँ अपनी आजीविका करके आत्मज्ञानको पाते हैं परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हैं तथा जिनकी ब्रह्मविद्यामें निष्ठा भी नहीं है उनको महात्माओंके यहाँ भिक्षावृत्तिसे आजीविका नहीं करनी चाहिये किंतु अपनी जातिके धर्म पालने चाहिये, ऐसा मेरा मत है ॥ ६ ॥ यज्ञ करना चाहने वाले हमारे पिता, पितामह और उनके भी पूर्वज तथा दूसरे भी जो बुद्धिमान् पुरुष थे वे भी इस ही मार्गसे चलते थे और कर्म न करने वाले संन्यासी भी इस ही मार्गसे चलते हैं तथा मैं भी आस्तिक हूं, इसलिये दूसरे मार्गका आश्रय नहीं लेता हूं, किंतु पूर्वज पुरुष जिस मार्ग पर चले हैं मैं भी उस मार्गको श्रेष्ठ मानता हूँ ॥७॥ इस जगत्में जो कुछ धन है, वह देवताओंका धन तथा उनके ऊपर रहनेवाले देवताओंका धन प्रजापतिकाधन और स्वर्गका तथा ब्रह्मलोकका जो कुछ धन है उस सब धनको भी हे सञ्जय ! मैं अधर्मसे लेना नहीं चाहता ॥ ८ ॥ तो भी तू यह समझता हो कि हम अधर्म

कुशलो नीतिमांश्चाप्युपासिता ब्राह्मणानां मनीषी । नानाविधांश्चैव महाबलांश्च राजन्यभोजाननुशास्ति कृष्णः ॥ ९ ॥ यदि ह्यहं विसृजन् साम गर्ह्यो नियुध्यमानो यदि जह्यां स्वधर्मम् । महायशाः केशवस्तद् ब्रवीतु वासुदेवस्तूभयोरर्थकामः ॥ १० ॥ शैनेऽयोऽम्भ्र दयश्चाधकाश्च वार्ष्णेयभोजाः कुकुराः सृञ्जयाश्च। उपासीना वासुदेवस्य बुद्धिं निगृह्य शत्रून् सुहृदो नन्दयन्ति ॥ ११ ॥ वृष्ण्यन्धका ह्युग्रसेनादयो वै कृष्ण-प्रणीताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः । मनस्विनः सत्यपरायणाश्च महाबलाः यादवा भोगवन्तः ॥१२॥ काश्यो बभ्रुः श्रियमुत्तमां गतो लब्ध्वा कृष्णं भ्रातरमीशितारम् । यस्मै कामान् वर्षति वासुदेवो ग्रीष्मात्यये मेघ इव प्रजाभ्यः ॥१३॥ ईदृशोऽयं केशवस्तात विद्वान् विद्धि ह्येनं कर्मणां निश्चयज्ञम् । प्रियश्च नः साधुतमश्च कृष्णो नातिक्रमे वचनं केशवस्य

में, लगे रहते हैं तो जो असाधारण ज्ञानके प्रभावसे अनेकों प्रकारके बली क्षत्रिय राजाओंको अपने अधीन रखकर उनके ऊपर राज्य करते हैं वे सब धर्मोंके नियन्ता कार्यकुशल नीतिमान् ब्राह्मणोंके उपासक श्रीकृष्ण यहाँ बैठे हैं, उनको इस काममें मध्यस्थ बनालो, और उनसे बूझो कि यदि मैं संधिको त्यागूँगा तो निंदाके योग्य होऊँगा अथवा युद्धका आरम्भ करके अपने क्षत्रिय कर्मका पालन करूँगा तो निंदा का पात्र होऊँगा ? श्रीकृष्ण पाण्डव और कौरव दोनोंका हित चाहने वाले हैं ॥ ९-१० ॥ ये शिनिवंशधारी सात्यकि, ये चेदिराज और ये अंधक, वार्ष्णेय, भोज कुकुर और सृञ्जय ये सब वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्ण को सलाहके अनुसार चलते हैं और शत्रुओंका संहार करके अपने सम्बंधियोंको आनंद देने वाले हैं ? ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजीके विचारके अनुसार करनेसे वृष्णि, और उग्रसेन आदि सब इन्द्रकी समान प्रताप शाली हुए हैं और महाबली, मनस्वी तथा सत्यपरायण जितने यादव हैं वे सब सर्वोत्तम वैभवों को भोगते हैं ॥ १२ ॥ काशीनिवासी बभ्रु भी बड़े प्रभाववाले श्रीकृष्णको भ्राताकी समान पाकर श्रेष्ठ संपत्ति को प्राप्त हुआ है, ग्रीष्म ऋतु समाप्त होने पर जैसे मेघ प्रजाके सुख के लिये सदा जलकी वर्षा करता है तैसे ही वासुदेवभी इस बभ्रु को अनेकों इच्छित पदार्थ दिया करते हैं ॥१३॥ हे तात ! तुम यह समझ लो कि श्रीकृष्ण महात्मा विद्वान् और हरएक कामके निर्णयको जानने वाले हैं और यह हमें प्रिय तथा परमश्रेष्ठ पुरुष हैं इससे मैं श्रीकृष्णके वचनोंका उल्लंघन नहीं करता हूँ अर्थात् वे जिस प्रकार कहेंगे मैं तैसे ही करनेको तत्पर हूं ॥ १४ ॥ अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

वासुदेव उवाच । अविनाशं सञ्जय पाण्डवानामिच्छाम्यहं भूति-मेषां प्रियञ्च। तथा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सूत समाशंसे बहुपुत्रस्य वृद्धिम्॥१॥ कामो हि मे सञ्जय नित्यमेव नान्यद्ब्रूयां तान्प्रतिशाम्यतेति। राज्ञश्च हि प्रियमेतद्बृणोमि मन्ये वै तत् पाण्डवानां समक्षम् ॥२॥ सुदुष्कर-स्तत्र शमो हि नूनं प्रदर्शितः सञ्जय पांडवेन। यस्मिन् गृद्धो धृतराष्ट्रः सपुत्रः कस्मादेषो कलहो नावमूर्च्छेत् ॥३॥ स त्वं धर्मं विचरं सञ्जयेह मतश्च जानासि युधिष्ठिराच्च। अथो कस्मात्संजय पाण्डवस्य उत्सा-हिनः पूरयतः स्वकर्म ॥४॥ यथाख्यातमोवसतः कुटुम्बे पुरा कस्मात् साधु विलोपमात्थ । अस्मिन् विधौ वर्त्तमानो यथावदुच्चावचा मतयो ब्राह्मणानाम्॥५॥कर्मणाहुः सिद्धिमेके परत्र हित्वा कर्म विद्यया सिद्धिमेके । नाभुञ्जानो भक्ष्यभोज्यस्य तृप्येद्विद्वानपीह विहितं

वासुदेव बोले कि हे सञ्जय ! मैं जिस प्रकार पाण्डवोंका चिर-स्थायी कल्याण चाहता हूँ तैसे ही बहुत पुत्रोंवाले राजा धृतराष्ट्रकी भी वृद्धि चाहता हूँ ॥ १॥ हे संजय ! मैं पांडवोंसे सदा कहता हूँ कि तुम युद्धको छोड़ कर शांत होजाओ, इस बातके सिवाय और कुछ नहीं कहता हूँ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि संधि रहे, मेरे सुननेमें आया है कि धृतराष्ट्रकोभी सन्धि करनेकी बातही प्रिय है,तथा राजा युधि-ष्ठिरकी ओरसे पाण्डवोंके समक्षमें भी सन्धिकी शुभ बात सुनता हूँ और मुझेभी यह बात मान्य है ॥ २ ॥ परंतु हे सञ्जय ! राज्यके लिये युद्ध न करके शांति धारण करना यह काम महाकठिन है, यह बात युधिष्ठिर तुमसे कह चुके हैं, धृतराष्ट्र और उनके पुत्र राज्यके लिये लोभी बन गए हैं, फिर कौरव पांडवोंमें कलह क्यों न होगा ? ॥३॥ हे सञ्जय! तू धर्म अधर्मको मुझसे तथा युधिष्ठिरसेभी अधिक समझता है इस लिये उत्साह शक्तियुक्त अपने कर्म करने वाले और शास्त्रानु-सार कुटुम्बमें रह कर सबका पोषण करने वाले राजा युधिष्ठिरने अपने धर्मका नाश किया है ऐसा तू उनसे कैसे कहता है ? हम जिस के विषयमें विचार करते हैं उस धर्मके विषयमें विद्वान् ब्राह्मणोंके कहे हुए उत्तम मध्यम आदि अनेकों विचार शास्त्रमें दिखाई देते हैं ४-५ कितने ही कहते हैं कि—कर्म से मुक्ति मिलती है कितने हो कहते हैं कि–कर्मको छोड़ कर आत्मविद्यासे मुक्ति मिलती है, परन्तु भक्ष्य भोज्य आदि खानेके पदार्थोंके गुणोंको जान लेने पर भी जैसे उसको खाये विना तृप्ति नहीं होती, तैसे ही धर्मको जान लेने पर भी उसके

ब्राह्मणानाम् ॥६॥ या वै विद्याः साधयन्तीह कर्म तासां फलं विद्यते नेतरासाम्। तत्रेह वै दृष्टफलन्तु कर्म पीत्वोदकं शाम्यति तृष्णयार्त्तः॥७॥सोऽहं विधिर्विहितः कर्मणैव सम्वर्त्तते सञ्जय तत्र कर्म। तत्र योऽन्यत् कर्मणा साधु मन्ये मोघं तस्यालपितं दुर्वलस्य॥८॥ कर्मणामी भांति देवाः परत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा। अहोरात्रे विदधत् कर्मणैव अतन्द्रितो नित्यमुदेति सूर्यः॥९॥मासार्द्धमासानथ नक्षत्रयोगानतन्द्रितश्चन्द्रमाश्चाभ्युपैति। अतन्द्रितो दहते जातवेदाः समिध्यमानः कर्म कुर्वन् प्रजाभ्यः॥१०॥ अतन्द्रिता भारमिमं महान्तं बिभर्त्ति देवी पृथिवी बलेन। अतन्द्रिताः शीघ्रमपो वहन्ति सन्तर्पयन्त्यः सर्वभूतानि नद्यः॥११॥ अतन्द्रितो वर्षति भूरितेजाः सन्नादयन्नन्तरिक्षं दिशश्च। अतन्द्रितो ब्रह्मचर्यं चचार श्रेष्ठत्वमि-

---

आचरणके विना मुक्ति नहीं होती है। ऐसा भी विद्वान् ब्राह्मणोंका मत है॥६॥ इस लोकमें जो विद्यायें फलको सिद्ध करनेवाली हैं वे सब विद्याएँ फलको सिद्ध करने वाली हैं उनके सिवाय और सब विद्यायें फलसिद्धि देने वाली नहीं हैं तैसे ही कर्मका फल भी प्रत्यक्ष होता है, इसमें किसीको कुछ नहीं कहना है तृषातुर मनुष्य की तृषा जल पीने पर ही शान्त होती है कहनेका तात्पर्य यह है कि कर्म और ज्ञान इन दोनोंका समीपी सम्बन्ध है॥७॥ अतः हे सञ्जय! ज्ञानकी सिद्धि कर्म से ही होती है और कर्ममें ज्ञान रहता है अतः जो मनुष्य कर्मका अनादर करके शुद्ध ज्ञानकी प्रशंसा करता है उसके कथनको मिथ्या समझो, क्योंकि-वह कहनेवाला प्रमाणोंमें निर्वल होता है॥८॥ दूसरे स्थानमें परलोकमें जो सब देवता प्रकाशित होरहे हैं, वे सब देवता अपने २ कर्मोंसे ही प्रकाशित होरहे हैं, इस लोकमें जो पवन चलता है वह भी अपने कर्मसे ही चलता है सूर्य भी अपने कर्मसे ही सावधान होकर नित्य दिन तथा रात्रिकी रचना करता है तथा उदय होता है९चन्द्रमा भी सावधान हो अपने कर्मसे ही मासपक्ष और नक्षत्रोंके संयोगको प्राप्त होता है,काष्ठ आदिसे बढ़ता हुआ अग्निभी सावधान होकरप्रजाके लिये कर्म करता हुआ प्रज्वलित हुआ करता है १०पृथ्वी भी सावधान होकर बलसे जगत्के महाभार को धारण किया करती है, नदियें भी सावधान होकर सब प्राणियों को तृप्त करती हुई शीघ्रताके साथ वहा करती हैं॥११॥ मेघवाहन महातेजस्वी राजा इन्द्र भी सावधानतासे अन्तरिक्ष और दिशाओंको

च्छन् बलभिद्देवतानाम् ॥ १२ ॥ हित्वा सुखं मनसश्च प्रियाणि तेन शक्रः कर्मणा श्रैष्ठ्यमाप । सत्यं धर्मं पालयन्नप्रमत्तो दमं तितिक्षां समतां प्रियञ्च ॥ १३ ॥ एतानि सर्वाण्युपसेवमानः स देवराज्यं मघवान् प्राप मुख्यम् । बृहस्पतिर्ब्रह्मचर्यं चचार समाहितः संशितात्मा यथावत् ॥ १४ ॥ हित्वा सुखं प्रतिरुध्येन्द्रियाणि तेन देवानामगमद् गौरवं सः । तथा नक्षत्राणि कर्मणामुत्र भान्ति रुद्रादित्या वसवोऽथापि विश्वे ॥ १५ ॥ यमो राजा वैश्रवणः कुबेरो गन्धर्वयक्षाप्सरसश्च सूत । ब्रह्मविद्यां ब्रह्मचर्यं क्रियाश्च निषेवमाणा ऋषयोऽमुत्र भान्ति ॥ १६ ॥ जानन्निमं सर्वलोकस्य धर्मं विप्रेन्द्राणां क्षत्रियाणां विशां च । स कस्मात्त्वं जानतां ज्ञानवान् सन् व्यायच्छसे सञ्जय कौरवार्थे ॥ १७ ॥ आम्नायेषु नित्यसंयोगमस्य तथाऽश्वमेधे राजसूये च विद्धि । संयुज्यते धनुषा वर्मणा च हस्त्यश्वाद्यै रथशस्त्रैश्च भूयः १८

गुंजारता हुआ पृथ्वी पर जलकी वर्षा किया करता है, बलविनाशक इन्द्रने देवताओंमें श्रेष्ठता पानेकी इच्छासे ब्रह्मचर्य व्रत पाला था और उस समय सुख तथा मनोऽभिलषित विषयोंका त्याग किया था और सावधानतासे सत्य धर्म, दम, तितिक्षा समदृष्टि और प्रिय कार्य इन सबोंका पूर्णरीतिसे सेवन किया था, इस उत्तम कर्मके करनेसेही शक्र इन्द्र देवताओंमें श्रेष्ठपनको और देवराजपनेको प्राप्त हुआ था, पवित्र अन्तःकरण वाले देवगुरु बृहस्पतिनेभी सुखोंको त्यागकर और इंद्रियों का निरोध करके समाधिनिष्ठ होकर शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य पाला था उस कर्मके कारण उन्हें देवताओंमें गौरव मिला था और हे सूत ! यह नक्षत्रोंका समूह ग्यारह रुद्र बारह आदित्य, आठ वसु, विश्वेदेवता, यम, कुबेर गंधर्व, यक्ष और अप्सराओंके मण्डल परलोकमें स्थित हैं यह उनके कर्मकाही फल है ऐसा जानो, तदनन्तर दूसरे ऋषि भी जो स्वर्गमें प्रकाशित होरहे हैं वह ब्रह्मविद्या, ब्रह्मचर्य और उत्तम प्रकारकी धर्मक्रियाओंके सेवन करनेका फल है १२॥१६ हे सञ्जय ! तू ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके धर्मोंको जानता है तथा दूसरोभी सब जातियों के धर्मोंको जानता है, इसप्रकार तू ज्ञानियोंमेंभी ज्ञानी होकर कौरवों के कारण पाण्डवोंके धर्मको क्यों छुपाता है ॥ १७ ॥ इन राजा युधिष्ठिरने वेदोंका भलीभांति अभ्यास किया है अश्वमेध और राजसूय नामक यज्ञ किये हैं और धनुर्विद्या, हस्तिशास्त्र, अश्वशास्त्र, रथयुद्ध तथा शस्त्रयुद्धको भी जानते हैं तथा कवच किसप्रकार पहरने चाहियें

ते चेदिमे कौरवाणामुपायमवगच्छेयुरवधेनैव पार्थाः। धर्मत्राणं पुण्यमेषां कृतं स्यादार्ये वृत्ते भीमसेनं निगृह्य ॥१९॥ ते चेत् पित्र्ये कर्मणि वर्त्तमाना आपद्येरन् दिष्टवशेन मृत्युम्। यथाशक्त्या पूरयंतः स्वकर्म तदप्येषां निधनं स्यात् प्रशस्तम् ॥ २० ॥ उताहो त्वं मन्यसे शाम्यमेव राज्ञां युद्धे वर्त्तते धर्मतन्त्रम्। अयुद्धे वा वर्त्तते धर्मतन्त्रन्तथैव ते वाचमिमां शृणोमि ॥ २१ ॥ चातुर्वर्ण्यस्य प्रथमं संविभागमवेक्ष्य त्वं सञ्जय स्वञ्च कर्म। निशम्याथो पाण्डवानां च धर्म प्रशंस वा निंद वा या मतिस्ते ।२२। अधीयीत ब्राह्मणो वै यजेत दद्यादियात्तीर्थमुख्यानि चैव। अध्यापयेद्याजयेच्चापि याज्यान् प्रतिग्रहान्वा विहितान् प्रतीच्छेत् ॥ २३ ॥ तथा राजन्यो रक्षणं वै प्रजानां कृत्वा धर्मेणाप्रमत्तोऽथ दत्त्वा। यज्ञैरिष्ट्वा सर्ववेदानधीत्य दारान् कृत्वा पुण्यकृदावसेद् गृहान्२४

इस बातमें भी ये चतुर हैं ॥ १८ ॥ कौरवोंको विना मारे ही राज्य मिलनेका कोई उपाय यदि पाण्डवोंको दीखजाय तो पांडवोंको भीमसेनको हिंसाके कर्मसे रोककर उदारता भरी श्रेष्ठ वृत्तिपर लौटें और ऐसा करने पर पांडवोंने धर्मकी रक्षाके लिये पुण्यका काम किया है ऐसा माना जायगा ॥ १९ ॥ परन्तु यदि पांडवोंको युद्धके सिवाय और उपाय नहीं सूझेगा तो पाण्डव अपने पिताके धर्म अर्थात् क्षात्रधर्मको स्वीकार करेंगे और क्षात्रधर्म और क्षात्रधर्मको स्वीकार करते हुए यदि भाग्यवश उनका मरण होजायगा तो अपने धर्मका पालन करनेके कारण वह उनका मरण भी श्रेष्ठ माना जायगा ॥ २० ॥ हे सञ्जय ! तू समझता है कि दोनोंमें संधि होजाय तो अच्छा है, परंतु मैं तुझसे बूझता हूँ कि–युद्ध करनेसे धर्मकी रक्षा होती है अथवा युद्ध न करनेसे धर्मकी रक्षा होती है ? इस विषयमें तेरे वचन सुनना चाहता हूँ ॥२१॥ तू कदाचित् यह समझता होगा कि गोत्रवध करने से तो संधि करना ही श्रेष्ठ है परन्तु प्रथम तू चारों वर्णोंके विभाग का विचार कर तदनन्तर हे सञ्जय ! तू चारों वर्णोंके कर्मोंका विचार कर तब विचारना किपांडवोंका क्या धर्म है ?फिर तेरे मनमें जैसा विचार समावे उसके अनुसार तुझे पांडवोंकी निंदा करनी हो तो निंदा कर और स्तुति करनी हो तो स्तुति कर ॥ २२ ॥ ब्राह्मणको पढ़ना और पढ़ाना,यज्ञ करना और करवाना शास्त्रोक्त दान देना और लेना तथा मुख्य २ तीर्थोंमें यात्रा करना आदि कर्म करने चाहिये ॥२३॥ पुण्य कर्म करनेवाले क्षत्रियको सावधान होकर धर्मसे प्रजाकी रक्षा

स धर्मात्मा धर्ममधीत्य पुण्यं यदिच्छया व्रजति ब्रह्मलोकम् । वैश्योऽधीत्य कृषिगोरक्षपण्यैर्वित्तं चिन्वन् पालयन्नप्रमत्तः ॥ २५ ॥ प्रियं कुर्वन् ब्राह्मणक्षत्रियाणां धर्मशीलः पुण्यकृद्दावसेद् गृहान् । परिचर्या वन्दनं ब्राह्मणानां नाधीयीत प्रतिषिद्धोऽस्य यज्ञः । नित्योत्थितो भूतयेऽतन्द्रितः स्यादेवं स्मृतः शूद्रधर्मः पुराणः ॥ २६ ॥ एतान् राजा पालयन्नप्रमत्तो नियोजयन् सर्ववर्णान् स्वधर्मे । अकामात्मा समवृत्तिः प्रजासु नाधार्मिकाननुरुध्येत कामात् ॥ २७ ॥ श्रेयांस्तस्माद्यदि विद्येत कश्चिदभिज्ञातः सर्वधर्मोपपन्नः । स तं द्रष्टुमनुशिष्यात् प्रजानां नचैतद् बुध्येदिति तस्मिन्नसाधुः ॥ २८ ॥ यदा गृध्येद् परभूतौ नृशंसो विधिप्रकोपाद्बलमाददानः । ततो राज्ञामभवद्युद्धमेतत्तत्र जातं वर्म शस्त्रं

करना, यज्ञ याग करना, सब वेदोंको पढ़ना और विवाह करके गृहस्थाश्रममें रहतेहुए पुण्यभावयुक्त कर्म करने चाहियें ॥२४॥ ऐसा धर्मात्मा क्षत्रिय पवित्र धर्मके ज्ञानको प्राप्त करके धर्मके बलसे ब्रह्मलोकमें जाता है; और वैश्यको भी धर्मशील होना, ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सदा प्रिय करना स्त्रीके साथ विवाह करके गृहस्थाश्रममें रहना तथा वेदाध्ययन करना, यज्ञ, याग, गोरक्षा, खेती, व्यापार आदि करना तथा दानादि पुण्य कर्म करना चाहिये और शूद्रको ब्राह्मणोंकी सेवा करना तथा उनको प्रणाम करना चाहिये, परन्तु शूद्रको वेदाध्ययन तथा यज्ञ यागादि नहीं करने चाहियें, क्योंकि शास्त्र शूद्रको ऐसा करनेका निषेध करते हैं, तदनन्तर शूद्र अपने कल्याणके लिये तथा धन प्राप्त करनेके लिये सदा सावधान होकर कार्यमें लगारहे, प्राचीन शास्त्रोंमें शूद्रोंके ये धर्म कहे हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ अब राजाओंको सावधान होकर चारों वर्णोंका पालन करना, उन चारों वर्णोंको अपने अपने धर्मोंमें लगाना कामनाओंको मनमें स्थान न देना, प्रजाके ऊपर समानभाव रखना और अधर्ममय कामनाओंके अधीन न रहना चाहिये ॥ २७ ॥ जो कोई मनुष्य अपनेसे श्रेष्ठ और सर्व धर्मसम्पन्न जाननेमें आवे तो प्रजाको उस महात्माके दर्शन करनेका उपदेश देना चाहिये, परन्तु राजा दुष्ट होता है तो वह इस बातको नहीं समझता ॥ २८ ॥ क्रूर पुरुष जब बलवान् होजाता है तब वह दैवके कोपके कारण दूसरेकी लक्ष्मीको लेना चाहता है, तदनन्तर राजाओंमें युद्ध होता है और उसमें कवच, शस्त्र तथा धनुष उत्पन्न होते हैं अर्थात् युद्धके लिये इनकी उत्पत्ति हुई है ॥ २९ ॥ पहिले इन्द्रने दस्यु

धनुश्च ।२९। इन्द्रेणैतद्दस्युवधाय कर्म उत्पादितं वर्म शस्त्रं धनुश्च३० तत्र पुण्यं दस्युवधेन लभ्यते सोऽयं दोषः कुरुभिस्तीव्ररूपः। अधर्मज्ञैर्धर्ममबुध्यमानैः प्रादुर्भूतः सञ्जय साधु तन्न ॥ ३१ ॥ तत्र राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो धर्म्यं हरेत् पाण्डवानामकस्मात्। नावेक्षते राजधर्मं पुराणं तदन्वयाः कुरवः सर्व एव ॥ ३२ ॥ स्तेनो हरेद्यत्र धनं ह्यदृष्टः प्रसह्य वा यत्र हरेत दृष्टः। उभौ गर्ह्यौ भवतः सञ्जयैतौ किं वै पृथक्त्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्रे ॥३३॥ सोऽयं लोभान्मन्यते धर्ममेतं यमिच्छति क्रोधवशानुगामी। भागः पुनः पाण्डवानां निविष्टस्तं नः कस्मादाददीरन् परे वै ॥ ३४ ॥ अस्मिन् पदे युध्यतां नो वधोऽपि श्लाघ्यः पित्र्यं परराज्याद्विशिष्टम्। एतान् धर्मान् कौरवाणां पुराणानाचक्षीथाः सञ्जय राजमध्ये ॥३५॥ ये ते मदान् मृत्युवशाभिपन्नाः समानीता धार्त्तराष्ट्रेण

नामक लुटेरी जातिका नाश करनेके लिये युद्धकर्म और कवच, शस्त्र तथा धनुषको उत्पन्न किया था ॥ ३० ॥ युद्धमें लुटेरोंका नाश करनेसे पुण्यका लाभ होता है, हे सञ्जय ! धर्मको नहीं समझने वाले अधर्मी कौरवोंने भी उस लुटेरेपनके दोषको प्रकट किया है यह अच्छा नहीं किया ।३१। राजा धृतराष्ट्रने और उसके पुत्र दुर्योधनने पाण्डवों के पितासे मिलेहुए राज्यको एकाएकी छीनलिया है और उसका अनुकरण करने वाले सब कौरव भी प्राचीन कालके धर्मकी ओर दृष्टि नहीं देते हैं अर्थात् प्राचीन राज धर्मका विचार नहीं करते हैं ॥३२॥ लुटेरे गुप्त रीतिसे धन चुराकर लेजायँ अथवा प्रत्यक्ष रीतिसे बलात्कार करके धन लूटकर लेजायँ, ये दोनों हे सञ्जय ! निन्दाके पात्र मानेजाते हैं, धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन और लुटेरोंमें क्या भेद है ॥ ३३॥ क्रोधके वशमें हुआ दुर्योधन तो लोभके कारण दूसरोंके राज्य पचाजानेको ही अपना धर्म जानता है और पाण्डवोंने उनके यहां धरोहरकी रीतिसे जो राज्य सौंप दिया था उसको वह हड़प जाना चाहता है, कहो तो हमारे उस राज्यके भागको कौरव क्यों छीनना चाहते हैं ॥ ३४ ॥ इस राज्यके कारण हममें युद्ध होने पर यदि हमारा नाश होजाय तो वह प्रशंसाके योग्य गिना जायगा, क्योंकि-दूसरोंके राज्यसे अपने पिताका राज्य श्रेष्ठ माना जाता है और उसे पानेके लिये हरएकको युद्ध करनेकी आवश्यकता है, हे सञ्जय ! मूढ बुद्धि वाले तथा मदके कारण मृत्युके अधीन हुए जिन राजाओंको दुर्योधनने इकट्ठा किया है उन राजाओंके बीचमें तुम कौरवोंको मेरे कहे हुए

मूढाः। इदं पुनः कर्म पापीय एव सभामध्ये पश्य वृत्तं कुरुणाम् ३६
प्रियां भार्यां द्रौपदीं पाण्डवानां यशस्विनीं शीलवृत्तोपपन्नाम्। यदुपे-
क्षन्त कुरवो भीष्ममुख्याः कामानुगेनोपरुद्धां रुदन्तीम् ॥३७॥ तञ्चे-
त्तदा ते सकुमारवृद्धा अवारयिष्यन् कुरवः समेताः। मम प्रियं धृत-
राष्ट्रोऽकरिष्यत् पुत्राणाञ्च कृतमस्याभविष्यत् ॥३८॥ दुःशासनः प्राति-
लोम्यान्निनाय सभामध्ये श्वशुराणाञ्च कृष्णाम्। सा तत्र नीता करुणं
व्यपेक्ष्य नान्यं क्षत्तुर्नाथमवाप किञ्चित् ॥३९॥ कार्पण्यादेव सहिता-
स्तत्र भूपा नाशक्नुवन् प्रतिवक्तुं सभायाम्। एकः क्षत्ता धर्म्यमर्थं
ब्रुवाणो धर्मं बुद्ध्या प्रत्युवाचाल्पबुद्धिम् ॥४०॥ अनुक्त्वा त्वं धर्ममेतं
सभायामथेच्छसे पाण्डवस्योपदेष्टुम्। कृष्णा त्वेतत् कर्म चकार शुद्धं

प्राचीन राजधर्म सुनाना और सभाके मध्यमें कौरवोंने जो पापभरा
काम किया था उसकी ओर भी तू दृष्टि डाल ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ पांडवों
की प्रिया पटरानी यशस्विनी शील और सदाचारवाली द्रौपदी रजो-
दर्शनके कारण राजभवनमें बैठीहुईथी, उसको जब दुर्योधनकी ओर
से कौरवोंकी सभामें लानेकी आज्ञा दीगई थी, उस समय भीष्म
आदि कौरवोंने दुर्योधनके उस आचरणको नीचताका काम नहीं
बताया था क्या यह कौरवोंको महापाप नहीं था? ॥३७॥ उस समय
बालकसे लेकर बूढे तक सब कौरवोंने इकट्ठे होकर यदि दुःशासन
को ऐसा करनेसे रोका होता तो धृतराष्ट्रने मेरा ही प्रिय काम किया
है तथा अपने पुत्रोंका हित किया है ऐसा मानाजाता अर्थात् धृत-
राष्ट्रने मेरे मनके अनुसार काम नहीं किया इससे उसके पुत्रोंका संहार
ही होगा॥३८॥ दुःशासनको रानियोंका मान रखना चाहिये था, परंतु
उसने उलटी ही चाल चली, राजाओंको सभामें तथा श्वशुरोंके सामने
द्रौपदीको घसीट लाया और जब द्रौपदीने अपनी रक्षाके लिये हृदय-
वेधक भावसे सब सभासदोंकी ओर जरा एक दृष्टि डाली तो उस
समय एक विदुरको छोड़कर कोई भी रक्षा करनेवाला उसे न मिला
तात्पर्य यह है कि-सब सभासद् इस अन्यायकी ओर उपेक्षा करके
एक अक्षर भी नहीं बोले थे ॥३९॥ उस सभामें दीनताके कारण कोई
भी राजे, दुःशासनको प्रत्युत्तर नहीं देसके थे, केवल एक विदुरजीने
ही धर्म बुद्धिके कारण अल्पबुद्धि दुःशासनसे धर्म और अर्थमय
वचन कहकर उसके प्रश्नका उत्तर दिया था ॥ ४० ॥ हे संजय ! तू
भी उस समय सभामें धर्मके मर्मको नहीं समझा था, इसलिये मालूम

सुदुष्करं तत्र सभां समेत्य ॥४१॥ येन कृच्छ्रात् पांडवानुज्जहार तथात्मानं नौरिव सागरौघात्। यत्राब्रवीत् सूतपुत्रः सभायां कृष्णां स्थितां श्वशुराणां समीपे ॥ ४२ ॥ न ते गतिर्विद्यते याज्ञसेनि प्रपद्य दासी धार्त्तराष्ट्रस्य वेश्म। पराजितास्ते पतयो न सन्ति पतिं चान्यं भामिनि त्वं वृणीष्व ॥ ४३ ॥ यो बीभत्सोर्हृदये प्रोत आसीदस्थिच्छिन्दिन् मर्मघाती सुघोरः। कर्णाच्छरो वाङ्मयस्तिग्मतेजाः प्रतिष्ठितो हृदये फाल्गुनस्य ॥ ४४ ॥ कृष्णाजिनानि परिधित्समानान् दुःशासनः कटुकान्यभ्यभाषत। एते सर्वे षण्ढतिला विनष्टाः क्षयं गता नरकं दीर्घकालम् ॥४५॥ गान्धारराजः शकुनिर्निकृत्या यदब्रवीत् द्यूतकाले स पार्थम्। पराजितो नन्दनः किं तवास्ति कृष्णया त्वं दीव्य वै याज्ञसेन्या ४६ जानासि त्वं सञ्जय सर्वमेतत् द्यूते वाक्यं गर्ह्यमेवं यथोक्तम्। स्वयं

होता है इस समय युधिष्ठिरको उपदेश देना चाहता है? उस समय द्रौपदीने सभामें आकर बड़ा कठिन और उत्तम काम कर दिखाया था, कि—जिस कर्मने, जैसे मल्लाह समुद्रको तरङ्गोंमेंसे नौकाका उद्धार करता है, तैसे ही दुःखरूपी समुद्रमेंसे अपना और पांडवोंको उद्धार किया था और अपने श्वशुर वृद्ध कौरवोंके समीप सभामें द्रौपदी खड़ी थी उस समय सूतपुत्र कर्णने द्रौपदीसे कहा था, कि-हे यज्ञसेनकी पुत्री! अब तुझे आश्रय देनेवाला कोई नहीं है इस लिये तू दासी बनकर दुर्योधनके घरमें चलीजा, तेरे पति तो हारगये हैं और वे अब तेरे पति नहीं रहे, इस लिए तू किसी दूसरेको पति बनाले ॥ ४१-४३ ॥ कर्णका इस प्रकार मारा हुआ वाणीरूप बाण मर्मच्छेदी महाभयंकर और तीखे तेजवाला था और अर्जुनकी हड्डियों को बींधकर उसके हृदयमें घुस गया था, जो कि अभी तक वहाँ ही चुभा हुआ है। ४४ ॥ और जिस समय पांडव वनवासके लिये काली मृगछालायें ओढने लगे, उस समय दुःशासनने पाण्डवों से इस प्रकार कटु वचन कहे थे, कि-ये सब पाण्डव नपुंसक की समान नष्ट होगये और अब ये चिरकाल तक नरकमें गिरने को जाते हैं ॥४५॥ और गान्धारदेशके राजा शकुनिने भी जुआ खेलते समय कपटसे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे कहा था, कि तुम अपने छोटे भाइयोंको भी हार गये हो, अब तुम्हारे पास क्या है अब तो तुम यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदीको दाँवपर लगाकर जुआ खेलो ॥ ४६ ॥ जुआ खेलते समय जो निंदाके वचन इस प्रकार कहे थे उन सब वचनोंको

स्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं समाधातुं कार्यमेतद्विपक्षम्॥४७॥ अहापयि
यदि पांडवार्थं समं कुरूणामपि चेच्छकेयम्। पुण्यञ्च मे स्याच्चरि
महोदयं मुक्तेरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥ ४८ ॥ अपि मे वाचं भ
माणस्य काव्यां धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम्। अवेक्षेरन् धार्तरा
समक्षं मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयु ॥ ४९॥ अतोऽन्यथा रथिना फा
नेन भीमेन चैवाहवदंशितेन। परासिक्तान् धार्त्तराष्ट्रांश्च विद्धि प्रद
मानान् कर्मणा स्वेन पापान्॥५०॥ पराजितान् पाण्डवेयांस्तु वा
रौद्रा रूक्षा भाषते धार्त्तराष्ट्रः। गदाहस्तो भीमसेनोऽप्रमत्तो दुर्यो
स्मारयिता हि कालम् ॥ ५१ ॥ सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः
कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा। दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं रा
धृतराष्ट्रो मनीषी ॥ ५२ ॥ युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जु
भीमसेनोऽस्य शाखा। माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे मूलन्त्वहं ब्रह्

को तू जानता ही है, परन्तु अब विनष्ट होनेको आये हुए कौरवों
समझानेके लिये मैं तहाँ जानेवाला हूँ ॥ ४७ ॥ यदि मैं तहाँ जा
पाण्डव और कौरवोंके काममें हानि पहुँचाये विना उन दोनोंमें स
कराकर शान्ति स्थापन करसका तो समझाजावेगा कि मैंने महाफ
दायक पुण्यकर्म काम किया है कौरव भी मृत्युकी फाँसीसे छुट
यँगे ॥ ४८ ॥ मैं कौरवोंके पास जाऊँगा उस समय कौरव यदि
सत्कार करेंगे और हिंसारहित धर्म तथा अर्थसे भरी शुक्राचार्य
कही हुई नीतिसे गुथी हुई मेरी वाणीको यदि धृतराष्ट्रके पुत्र सु
तो ही उनका कल्याण होगा ॥ ४९ ॥ और यदि कौरव
नहीं करेंगे तो रथी अर्जुन और भीमसेन युद्ध करनेके लिये क
पहर कर तयार होंगे, उसी समय धृतराष्ट्रके पुत्र राज्यलक्ष्मीसे
होजायंगे, तथा वे पापी अपने कर्मसे जल कर भस्म होजायँगे,
बातको तू जानरखना ॥५०॥ जब पाण्डव जुएमें हारगये थे तब दु
धनने पाण्डवोंको भयंकर और रूखी बातें सुनायी थीं, भीमसेन
के समय हाथमें गदा लेकर सावधानीके साथ दुर्योधनको उन बातें
याद दिलायेगा ।५१। यह दुर्योधन एक क्रोधरूपी बड़ा भारी
है, कर्ण उसकी बड़ी भारी शाखा है, शकुनि उसकी ट
है; दुशासन उसके सुन्दर फल फूल हैं और उसकी मूल मूर्ख र
धृतराष्ट्र है ॥ ५२ ॥ ऐसे ही राजा युधिष्ठिर एक धर्मरूपी महावृक्ष
अर्जुन उसकी बड़ी शाखा है, भीमसेन छोटी शाखा है, माद्रीके

ब्राह्मणाश्चावनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो व्याघ्रास्ते वै संजय पांडुपुत्राः।५३ मा वनं छिंधि सव्याघ्रं मा व्याघ्रानीनशन्वनात्।५४निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्। तस्माद्व्याघ्रो वनं रक्षेद्वनं व्याघ्रञ्च पालयेत्॥५५॥ लताधर्मा धार्त्तराष्ट्राः शालाः सञ्जय पाण्डवाः। न लता वर्द्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता।५६स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः। यत्कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत् करोतु नराधिपः ॥५७॥ स्थिताः शमे महात्मानः पांडवा धर्मचारिणः। योधाः समर्थास्तद्विद्वा-चाचक्षीथा यथातथम् ॥५८॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि कृष्णवाक्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

संजय उवाच।आमन्त्रये त्वां नरदेवदेव गच्छाम्यहं पांडव स्वस्ति तेऽस्तु। कच्चिन्न वाचा वृजनं हि किंचिदुच्चारितं मे मनसोऽभिषङ्गात्॥ १॥ जनार्द्दनं भीमसेनार्जुनौ च माद्रीसुतौ सात्यकिं चेकि-

---

नकुल सहदेव उसके सुन्दर फूल फल हैं और उस धर्मरूप महावृक्षकी मूल में वेद तथा पवित्र ब्राह्मण हैं। हे सञ्जय! राजा धृतराष्ट्र और उसका पुत्र वनरूप है और पाण्डव व्याघ्ररूप हैं।५३। तुम वनका और व्याघ्रका नाश न करो तथा वनमेंसे व्याघ्र भी नष्ट न होजायँ५४ वनके विना व्याघ्रका नाश होजाता है और व्याघ्रके विना वनका नाश होजाता है, व्याघ्र वनकी रक्षा करता है और वन व्याघ्रकी रक्षा करतो है ॥ ५५ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्र लतारूप हैं और पांडव सालके वृक्षकी समान हैं,लताएँ बड़ेभारी वृक्षका आश्रय पाये विना कभी वृद्धि नहीं पासकतीं५६ पाण्डव सेवा करनेकोभी तयार हैं और युद्ध करनेको भी तयार हैं, क्योंकि वे शत्रुओंका दमन करने वाले हैं, इसलिये अब राजा धृतराष्ट्रको जो काम करना हो उस कामको वह भले ही करें॥५७॥ हे बुद्धिमान् संजय! धर्मका आचरण करनेवाले महात्मा पांडव योधा हैं, समर्थ हैं सन्धि करनेको तयार हैं, इस लिये तुझे जो उचित मालूम हो सो कौरवोंसे कहदेना एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त२९

संजय कहने लगा, कि हे राजन् युधिष्ठिर! तुम्हारा कल्याण हो मैं तुमसे आज्ञा माँगकर अब विदा होता हूँ, जानेसे पहिले मुझे इतना कहना है, कि कहीं मैंने मनके आवेशमें आकर अपनी वाणीसे पाप लगानेवाला कोई खराब वचन तो नहीं कहदिया है? मैं चलते समय श्रीकृष्ण, भीमसेन, अर्जुन नकुल सहदेव, सात्यकि और चेकितानकी

तानम् । आमन्त्र्य गच्छामि शिवं सुखं वः सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा नृपाः ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच । अनुज्ञातः संजय स्वति गच्छ न नः स्मरस्यप्रियं जातु विद्वन् । विद्मश्च त्वां ते च वयं च सर्वे शुद्धात्मानं मध्यगतं सभास्थम् ॥ ३ ॥ आप्तो दूतः संजय सुप्रियोऽसि कल्याणवाक् शीलवांस्तृप्तिमांश्च । न मुह्येस्त्वं संजय जातु मत्या न च क्रुध्येरुच्यमानो दुरुक्तैः ॥ ४ ॥ न मर्मगां जातु वक्तासि रूक्षां नोपश्रुतिं कटुकां नो तु मुक्ताम् । धर्मारामामर्थवतीमहिंसामेतां वाचं तव जानीम सूत ॥ ५ ॥ त्वमेव नः प्रियतमोऽसि दूत इहागच्छेद्विदुरो वा द्वितीयः । अभीक्ष्णदृष्टोऽसि पुरा हि नस्त्वं धनञ्जयस्यात्मसमः सखासि ॥ ६ ॥ इतो गत्वा संजय क्षिप्रमेव उपातिष्ठेथा ब्राह्मणान् ये तदर्हाः । विशुद्धवीर्यांश्चरणोपपन्नाः कुले जाताः सर्वधर्मोपपन्नाः ७ स्वाध्यायिनो ब्राह्मणा भिक्षवश्च तपस्विनो ये च नित्या वनेषु ।

भी आज्ञा लेताहूं, हे राजाओं ! तुम्हें सुख मिलैऔर तुम्हारा कल्याण हो तथा तुम शान्तदृष्टिसे मेरी ओरको देखो॥२॥युधिष्ठिर बोले,कि-हे विद्वन् संजय!मैं तुझे जानेकी आज्ञा देता हूँतेरा कल्याण हो,तू कभी मेरी ओरसे अपने मनमें खोटा भाव न लाना कौरव और हम सब जानते हैं कि सभामें वैठने वाले (दरबारी) तुम किसीका पक्ष न करने वाले और शुद्धचित्त हो ॥ ३ ॥ हे सञ्जय ! तू कौरवोंका सत्यवादी दूत है,कौरवोंको वड़ा प्यारा है मीठी वाणी वोलनेवाला शीलवान् और संतोषी है, तेरी वुद्धि कभी मोहमें नहीं पड़ती है और कोई अनुचित वचन कह देय तो भी तू क्रोध नहीं करता है ॥४॥ हे सूत ! तू कभी भी मर्मस्थानमें पीड़ा उत्पन्न करने वाली, रूखी, कड़वी और निकम्मी वात नहीं कहता है हे सूत ! हम जानते हैं, कि-तेरी वात धर्म और अर्थसे भरी है और उसमें हिंसाकी गन्ध भी नहीं है ॥५॥ हे सञ्जय ! तू हमें वड़ा प्यारा है,हमें ऐसा मालूम होता है मानो यहाँ दूसरे विदुरजी ही दूत वनकर आये हैं, तुझे पहिले हमने अनेकों वार देखा है और तू अर्जुनका साक्षात् अपने आत्माकी समान मित्र है ६ हे सञ्जय ! अब तू यहाँसे हस्तिनापुरमें जाकर जो योग्य ब्राह्मण हों उनकी हमारी ओरसे तुरन्त ही सेवा करना, तथा शुद्ध वंशके, ब्रह्मचर्य पालकर वेदाध्ययन करनेवाले,कुलीन, धार्मिक, स्वाध्याय करने वाले, भिक्षुक, तपस्वी, नित्य वनवासको भोगने वाले और जो वृद्ध अवस्थाके हों उनको मेरी ओरसे प्रणाम करना तथा दूसरोंसे मेरी

अभिवाद्या वै मद्वचनेन वृद्धास्तथेतरेषां कुशलं वदेथाः ॥८॥ पुरोहितं धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तथाचार्यानृत्विजो ये च तस्य। तैश्च त्वं सहितैर्यथार्हं संगच्छेथाः कुशलेनैव सूत ॥९॥ अश्रोत्रिया ये च वसन्ति वृद्धा मनस्विनः शीलबलोपपन्नाः। आशंसन्तोऽस्माकमनुस्मरन्तो यथाशक्ति धर्ममात्रां चरन्तः ॥ १० ॥ श्लाघ्यस्य मां कुशलिनं स्म तेभ्यो ह्यनामयं तात पृच्छेर्जघन्यम्। ये जीवन्ति व्यवहारेण राष्ट्रे ये पालयन्तो निवसन्ति राष्ट्रे ॥ ११ ॥ आचार्य इष्टो नयगो विधेयो वेदानभीप्सन् ब्रह्मचर्यं चचार। यो ऽस्त्रं चतुष्पात् पुनरेव चक्रे द्रोणः प्रसन्नोऽभिवाद्यस्त्वयासौ ॥१२॥ अधीतविद्यश्च रणोपपन्नो योऽस्त्रं चतुष्पात् पुनरेव चक्रे। गन्धर्वपुत्रप्रतिमं तरस्विनं तमश्वत्थामानं कुशलं स्म पृच्छेः ॥१३॥ शारद्वतस्यावसथं स्म गत्वा महारथस्यात्मविदां वरस्य।

ओरसे कुशल बूझना ॥ ७ ॥ ८ ॥ और हे तात ! राजा धृतराष्ट्रके पुरोहित तथा उनके आचार्य और ऋत्विजोंसे भी मिलना और हे तात उनसे कुशल समाचार बूझना, तहाँ जो शुद्ध जातिके शीलवान् और बली वृद्ध पुरुष रहते हों और जो अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा सा भी धर्माचरण करते हों तथा अभ्युदयकी इच्छासे मुझे याद करते हों इन पुरुषोंसे मेरा कुशल समाचार कहना और हे तात संजय ! मेरी ओरसे उनसे भी कुशल समाचार बूझना तथा जो देशमें व्यापार करके आजीविका करते हों और जो देशमें प्रजापालन आदि अधिकारियों (ओहदेदारों) का काम करके अपना निर्वाह करते हैं, उनसे भी तुम कुशल समाचार बूझना ॥ ९-११ ॥ और हे संजय! जो नीतिके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले हैं अपनी कही हुई बातका पालन करने वाले हैं, ब्रह्मचर्य पाल कर वेदोंका अध्ययन करने वाले हैं और जो प्रसन्नमुख रहनेवाले हैं, तथा जिन्होंने अस्त्रविद्याके मन्त्र, उपचार, प्रयोग और संहार ऐसे चार विभाग किये हैं ऐसे मेरे गुरु द्रोणाचार्यजीको भी मेरी ओरसे प्रणाम करना ॥ १२ ॥ मन्त्र, उपचार, प्रयोग, और संहार ऐसे चार विभाग किए हैं ऐसे मेरे गुरु द्रोणाचार्यजीको भी और जिन्होंने गुरुके समीप विद्या का अध्ययन किया है, जिन्होंने ब्रह्मचर्यका पालन करके वेद पढ़ा है और जिन्होंने एक अस्त्रविद्यामेंसे फिर मन्त्र, उपचार, प्रयोग और संहार ऐसे चार विभाग किए हैं उन अश्वत्थामासे भी मेरी ओरसे कुशलसमाचार बूझना ॥१३॥ और हे संजय ! तुम आत्मतत्त्वके ज्ञाता

एवं नाममभीक्ष्णं परिकीर्त्तयन् वै कृपस्य पाणी सञ्जय पाणिना स्पृशेः॥१४ यस्मिन् शौर्यमानृशंस्यं तपश्च प्रज्ञा शीलं श्रुतिसत्त्वे धृतिश्च। पादौ गृहीत्वा कुरुसत्तमस्य भीष्मस्य मां तत्र निवेदयेथाः ॥ १५ ॥ प्रज्ञाचक्षुर्यः प्रणेताः कुरूणां बहुश्रुतो वृद्धसेवी मनीषी। तस्मै राज्ञे स्थविरायाभिवाद्य आचक्षीथाः सञ्जय मामरोगम् ॥ १६ ॥ ज्येष्ठः पुत्रो धृतराष्ट्रस्य मन्दो मूर्खः शठः सञ्जय पापशीलः। प्रशास्ता वै पृथिवी येन सर्वा सुयोधनं कुशलं तात पृच्छेः ॥ १७ ॥ भ्राता कनीयानपि तस्य मन्दस्तथाशीलः सञ्जय सोऽपि शश्वत्। महेष्वासः शूरतमः कुरूणां दुःशासनः कुशलं तात वाच्यः ॥ १८ ॥ यस्य कामो वर्त्तते नित्यमेव नान्यच्छमाद्भारतानामिति स्म। स बाह्लिकानामृषभो मनीषी त्वयाभिवाद्यः सञ्जय साधुशीलः ॥१९॥ गुणैरनेकैः प्रवरैश्च युक्तो विज्ञानवान्नैव च निष्ठुरो यः। स्नेहादमर्षं सहते सदैव स सोमदत्तः पूजनीयो

कृपाचार्यजीके घर भी जाना और उनके पास बारर मेरा नाम लेकर उनके दोनों चरणोंको अपने हाथसे छूना ॥ १४ ॥ जिनमें शूरता,दया तप, बुद्धि, शील, शास्त्रको सुननेका व्यसन, सत्वगुण और धीरज रहता है ऐसे, कुरुकुलमें श्रेष्ठ पितामह भीष्मजीके दोनों चरणोंका स्पर्श करके उनके पास मेरे नामका निवेदन करना ॥ १५ ॥ और हे संजय ! जो प्रज्ञाचक्षु (अन्धे) कौरवोंके नेता (सरपरस्त) बहुत पढ़े, वृद्धोंका सेवन करनेवाले और बुद्धिमान् हैं उन बूढे राजा धृतराष्ट्रके पास मेरा कुशल समाचार कहना ॥ १६ ॥ हे तात संजय ! धृतराष्ट्रका बड़ा पुत्र मूर्ख, मन्दबुद्धि, शठ और पापी सुयोधन, जो सकल पृथ्वी पर राज्य कर रहा है, उससे भी मेरी ओरसे कुशल समाचार बूझना ॥१७॥ हे तात संजय ! सुयोधनका जो छोटा भाई लगता है, जो मन्दबुद्धि सदा सुयोधनकेसे ही स्वभाव वाला है, जो कौरवोंमें महाधनुषधारी तथा परम शूर प्रसिद्ध है उस दुःशाससे भी मेरी ओरसे कुशल समाचार पूछना ॥ १८ ॥ और हे तात सञ्जय ! भरतवंशी राजाओंमें परस्पर मेल करादेनेके सिवाय जिसको दूसरी इच्छा ही नहीं है ऐसे विद्वान् और सत्पुरुष राजा बाल्हीकको भी तुम मेरी तरफसे प्रणाम करना ॥१९॥ और जो अनेकों उत्तम गुणोंवाला, ज्ञानी और दयालु तथा जो स्नेहके कारण सदा क्रोधको भी सहा करता है उन सोमदत्तको भी मैं पूजनेके योग्य

मतो मे ॥२०॥ अर्हत्तमः कुरुषु सौमदत्तिः स नो भ्राता संजय मत्सखा च। महेष्वासो रथिनामुत्तमोऽर्हः सहामात्यः कुशलं तस्य पृच्छेः २१ येचैवान्ये कुरुमुख्या युवानः पुत्राः पौत्राः भ्रातरश्चैव ये नः। यंयमेषां मन्यसे येन योग्यं तत्तत् प्रोच्यानामयं सूत वाच्याः ॥२२॥ ये राजानः पांडवायोधनाय समानीता धार्त्तराष्ट्रेण केचित्। वशातयः शाल्वकाः कैकयाश्च तथांवष्ठा ये त्रिगर्त्ताश्च मुख्याः ॥२३॥ प्राच्योदीच्या दाक्षिणात्याश्च शूरास्तथा प्रतीच्याः पार्वतीयाश्च सर्वे। अनृशंसा शीलवृत्तोपपन्नास्तेषां सर्वेषां कुशलं सूत पृच्छेः ॥२४॥ हस्त्यारोहा रथिनः सादिनश्च पदातयश्चार्यसंघा महांतः। आख्याय मां कुशलिनं स्म नित्यमनामयं परिपृच्छे समग्रान् ॥ २५ ॥ तथा राज्ञो ह्यर्थयुक्तानमात्यान् दौवारिकान् ये च सेनान्नयंति। आयव्ययं ये गणयन्ति नित्यमर्थांश्च ये महतश्चिन्तयन्ति ॥ २६ ॥ वृन्दारकं कुरुमध्येष्वमूढं महा-

---

मानता हूँ उनको भी तुम मेरा मेरी तरफसे प्रणाम करना ॥ २० ॥ हे सञ्जय ! जो सोमदत्तका पुत्र कौरवोंमें बडा माननीय होरहा है, जो हमारा भाई मित्र भी लगता है, उस वड़े भारी, महारथी और पूजनीय भूरिश्रवासे तथा उसके मंत्रियोंसे भी मेरी ओरसे कुशलसमाचार वूझना ॥२१॥ हे सूत ! इनसे अलग और दूसरे भी जो कुरुवंश के मुख्य पुरुष, तरुण पुरुष, पुत्र पौत्र और मेरे भाई हैं, उनमें जो जो पुरुष जैसी२ योग्यताके हों उसके अनुसार ही उनसे कुशलसमाचार वूझना २२ और हे सञ्जय ! सुयोधनको पाण्डवोंके साथ युद्ध करना है, इस लिये वशाति, शाल्वक, केकय, अम्बष्ठ, त्रिगर्त्त पूर्वके, उत्तरके दक्षिणके और पश्चिमके राजे तथा पहाडी राजे जो दयालु, शीलवान् और सदाचारी हैं उन सब राजाओंसे भी मेरी ओरसे कुशल समाचार वूझना॥२३॥२४॥ जो हाथियों पर चढ़ने वाले, रथों पर सवारी करने वाले, घोड़ोंपर चढ़ने वाले तथा पैदल योधाओंमें वड़े २ वीर हों उन सवोंसे भी मेरा कुशल समाचार कहना और उनका कुशल समाचार मेरी ओरसे वूझना ॥ २५॥ हे सञ्जय ! राज्यके, धनके कामों के विषयमें विचार करने वाले मंत्री, द्वारपाल, सेनापति, आमदनी खर्चका हिसाव रखने वाले तथा वड़े २ कामोंका विचार करने वाले मंत्रियोंसे भी मेरी ओरसे कुशल समाचार वूझना ॥ २६ ॥ हे तात सञ्जय ! जो कौरवोंमें श्रेष्ट मानाजाता है और जो समझदार, वडा बुद्धिमान् और सब धर्मोंका आचरण करनेवाला है वह वैश्या (वनैनी)

प्राज्ञं सर्वधर्मोपपन्नम्। न तस्य युद्धं रोचते वै कदाचिद् वैश्यापुत्रं कुशलं तात पृच्छेः ॥ २७॥ निकर्त्तने देवने योऽद्वितीयश्छन्नोपधः साधुदेवी मताक्षः। यो दुर्जयो देवरथेन संख्ये स चित्रसेनः कुशलं तात वाच्यः ॥ २८॥ गांधारराजः शकुनिः पार्वतीयो निकर्त्तने योऽद्वितीयोक्षदेवी। मानं कुर्वन् धार्त्तराष्ट्रस्य सूत मिथ्याबुद्धेः कुशलं तात पृच्छेः ॥२९॥ यः पांडवानेकरथेन वीरः समुत्सहत्यप्रधृष्यान् विजेतुम्। यो मुह्यतां मोहयिता द्वितीयो वैकर्त्तनः कुशलं तस्य पृच्छेः ॥३०॥ स एव भक्तः स गुरु स भर्त्ता स वै पिता च तातः सुहृच्च। अगाधबुद्धिर्विदुरो दीर्घदर्शी स नो मंत्री कुशलं तात पृच्छेः ॥३१॥ वृद्धाः स्त्रियो याश्च गुणोपपन्ना ज्ञायंते नः संजय मातरस्ताः। ताभिः सर्वाभिः सहिताभिः समेत्य स्त्रीभिः स वृद्धाभिरभिवादं वदेथाः ३२ कच्चित् पुत्रा जीवपुत्राः सुसम्यग्वर्त्तन्ते वो वृत्तिमनृशंसरूपाः। इति रमोपत्वा

का पुत्र युयुत्सु जो कभी युद्धकी ओर रुचि ही नहीं रखता है उस से भी तुम कुशल समाचार बूझना ॥ २७ ॥ हे तात ! जो जुआ खेलने और धन छीन लेनेमें अद्वितीय है, जो गुप्तरीतिसे छल कपट करने वाला, उत्तम रीतिसे जुआ खेलने वाला, पासे फेंकनेमें प्रवीण और द्यूतयुद्धमें जिसको कोई जीत ही नहीं सकता उस चित्ररथसे भी मेरी ओरसे कुशलसमाचार बूझना ॥२८॥ और हे तात सञ्जय ! जुआ खेलनेमें इक्कड़, पासोंको वशमें रखने वाला,जुएके द्वारा धन छीनने वाला और मिथ्याबुद्धि वाले राजा दुर्योधनका मान रखने वाला जो गान्धारदेशका राजा शकुनि है उससे भी मेरी ओरसे कुशल समाचार बूझना ॥ २९ ॥ जो वीर पुरुष दबावमें न आने वाले पाण्डवोंको एक रथकी सहायतासे जीतनेका उत्साह रखता है और धृतराष्ट्रके मूर्ख पुत्रोंको मोह उपजानेमें इक्कड़ है उस कर्णसे भी तुम मेरी ओर से कुशलसमाचार बूझना ॥ ३० ॥ हे सञ्जय ! मेरे भक्त, गुरु, भर्त्ता, पिता, माता, स्नेही और मन्त्री आदि जो कुछ कहाजाय सब पदोंके योग्य, दीर्घदृष्टि और अगाध बुद्धि वाले विदुरजीसे भी मेरी ओरसे कुशलसमाचार बूझना ॥ ३१ ॥ हे सञ्जय ! श्रेष्ठगुणोंवाली वृद्ध स्त्रियें हों तथा हमारी धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी माताओंकी समान मानी जाती हों उन सब वृद्धस्त्रियों और हमारी माताओंसे भी मिलना और मेरी ओरसे उनको प्रणाम कहना ॥ ३२ ॥ और उनसे मेरी ओरसे बूझना कि तुम्हारे पुत्र और पौत्र सब कुशल हैं ? तुम्हारी आजीविका कौरवों

संजय ब्रूहि पश्चादजातशत्रुः कुशली सपुत्रः ॥ ३३ ॥ या नो भार्याः संजय वेत्थ तत्र तासां सर्वासां कुशलं तात पृच्छेः सुसंगुप्ताः सुरभयोऽनवद्याः कच्चिद् गृहानावसथाप्रमत्ताः ॥३४॥ कच्चिद्वृत्तिं श्वशुरेषु भद्राः कल्याणीं वर्तध्वमनृशंसरूपाम्। यथा च वः स्युः पतयोऽनुकूलास्तथा वृत्तिमात्मनः स्थापयध्वम् ॥ ३५ ॥ या नः स्नुषाः संजय वेत्थ तत्र प्राप्ताः कुलेभ्यश्च गुणोपपन्नाः। प्रजावत्यो ब्रूहि समेत्य ताश्च युधिष्ठिरो वोऽभ्यवदत् प्रसन्नः ॥३६॥ कन्याः स्वजेथाः सदनेषु संजय अनामयं मद्वचनेन पृष्ट्वा। कल्याणा वः सन्तु पतयोऽनुकूला यूयं पतीनां भवतानुकूलाः ॥ ३७ ॥ अलङ्कृता वस्त्रवत्यः सुगन्धा अबीभत्साः सुखिता भोगवत्यः। लघु यासां दर्शनं वाक् च लघ्वी वेशः स्त्रियः कुशलं तात पृच्छेः ॥ ३८ ॥ दास्यः स्युर्या ये च दासाः

की ओरसे दयापूर्वक चलती है ? इस प्रकार उनसे कुशलसमाचार बूझनेके अनन्तर हे संजय ! कहना, कि अजातशत्रु युधिष्ठिर अपने पुत्रों सहित कुशलसे हैं ॥३३॥ और हे तात संजय ! यदि तुम हमारी स्त्रियोंको पहिचानते होओ तो उन सबोंसे भी हमारी ओरसे कुशल बूझना और फिर बूझना, कि तुम सब भलेप्रकार रक्षामें सावधानीके साथ जिसमें, कि कोई निंदा न करने पावे ऐसी रीतिसे घरमें रहती हो क्या ? और हे कल्याणियों ! श्वसुरोंकी ओरको अच्छा और कोमलताभरा वर्त्ताव करती हो क्या ? तुम अपना वर्त्ताव ऐसा रखना कि जिसमें तुम्हारे पति तुम्हारे अनुकूल रहैं ॥३५॥ हे संजय ! हमारी जो उत्तमगुणोंवाली पुत्रवधुएँ अपने कुलीन माता पिताओंके घरसे आई हों और तुम उनको पहिचानते होओ तो उन सन्तानवाली हमारी पुत्रवधुओंके पास जाकर उनसे कहना कि युधिष्ठिरने प्रसन्न होकर तुम्हारा कुशलसमाचार बूझा है ३६ हे संजय ! कौरवोंके राजमहलोंमें जाकर हमारी तथा कौरवोंकी जो राजकन्याएं हों उनको हृदयसे लगाकर प्यार करना और मेरे कहनेसे उनसे कुशलसमाचार बूझ कर मेरी ओरसे कहना कि तुम्हारे पति सुखी हों और तुम्हारे अनुकूल हों तथा तुम अपने पतियोंके अनुकूल रहो ॥ ३७ ॥ हे तात संजय ! सदा सुन्दर वस्त्र पहरकर शृङ्गार करके शरीर और वस्त्रोंमें सुगन्धिके पदार्थ लगाकर जगमगाती हुई रहकर देखनेवालोंके चित्तों को खैंचने वालीं, सुखी ऐश्वर्योंको भोगनेवाली, मीठी बातें करमें पुरुषों के चित्तको हरनेवालीं तथा सुंदर दीखती हुई वेश्याओंसे भी मेरी

कुरूणां तदाश्रया बहवः कुब्जखञ्जाः । आख्याय मां कुशलिनं स्म तेभ्योऽप्यनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ॥ ३९ ॥ कच्चिद् वृत्तिं वर्तते वै पुराणीं कच्चिद्भोगान् धार्त्तराष्ट्रो ददाति । अंगहीनान् कृपणान् वामनान्वा यानानृशंस्यो धार्तराष्ट्रो बिभर्ति ॥ ४० अंधांश्च सर्वान् स्थविरांस्तथैव हस्त्याजीवा बहवो ये वसंति । आख्याय मां कुशलिनं स्म तेभ्योऽप्यनामयं परिपृच्छेर्जघन्यम् ४१ मा भैष्ट दुःखेन कुजीविनेन नूनं कृतं परलोकेषु पापम् । निगृह्य शत्रून् सुहृदोऽनुगृह्य वासाभिरन्नेन च वो भरिष्ये ।४२। सन्त्येव मे ब्राह्मणेभ्यः कृतानि भावीन्यथो नो बत वर्त्तयन्ति । तान् पश्यामि युक्तरूपांस्तथैव तामेव सिद्धिं श्रावयेथा नृपन्तम् ॥ ४३ ॥ ये चानाथा दुर्बलाः सर्वकालमात्मन्येव प्रयतन्तेऽथ मूढाः । तांश्चापि त्वं कृपणान् सर्वथैवास्मद्वाक्यात् कुशलं तात पृच्छेः ॥ ४४ ॥ ये चाप्यन्तः संश्रिता धार्त्तराष्ट्रा-

ओरसे कुशलसमाचार बूझना ॥ ३८ ॥ और जो कौरवोंके दास, दासी तथा उनके आश्रयसे रहनेवाले बहुतसे कुबडे और लंगडे हैं। उनसेभी मेरी कुशलका समाचार कहकर फिर मेरी ओरसे उनका कुशलसमाचार बूझना ॥३९॥ दयालु राजा धृतराष्ट्र, अङ्गहीन दीन और ठिगने आदि सकल निरुपाय मनुष्योंका पालन करते हैं, उनकी पहिलेकी आजीविका वैसी ही चलीजाती है, क्या ? दुर्योधन उनको पहिलेकी समान ही खाना पीना देता है ? ॥ ४० ॥ और राज्यमें जो अन्धे बूढे आदि लोग हों तथा जो हाथीवान् हों उन सबोंसे मेरा, कुशल समाचार कहना और फिर उनसे मेरी ओरसे कुशल बूझना ॥ ४१ ॥ तुम उनको धीरज देकर कहना कि-तुम दुःखो हुए खोटे जीवनसे डरना नहीं, क्यों कि-प्रतीत होता है तुमने वास्तवमें परलोकमें पाप किया होगा, परन्तु मैं अब थोड़े हो समयमें शत्रुओंको दण्ड देकर स्नेहियों के ऊपर दया करूँगा और वस्त्र तथा अन्न देकर तुम्हारा भरण पोषण करूँगा ॥ ४२ ॥ मैंने ब्राह्मणोंको जो आजीविका बांधदो थी वे आजीविकायें अभीतक चलरही हैं और वे अबसे आगेकोभी चलेंगी या नहीं ? मैं अब भी ब्राह्मणोंको अपनी आजीविका खातेहुए देखता हूँ, यही मेरे कर्मकी विजय है, इस प्रकार तुम दुर्योधनको मेरी बात कह सुनाना ॥ ४३ ॥ और हे सञ्जय ! जो अनाथ और दुर्बल पुरुष जन्मभर अपना पेट भरनेके लिये ही प्रयत्न किया करते हैं उनसे, मूढ पुरुषोंसे और दूसरे भी पुरुषोंसे तुम मेरे कहनेसे सब प्रकारकी कुशल

नानादिग्भ्योऽभ्यागता सूतपुत्र। दृष्ट्वा तांश्चैवार्हतश्चापि सर्वान् संपृच्छेथाः कुशलं चाव्ययञ्च ॥४५॥ एवं सर्वानागताभ्यागतांश्च राज्ञो दूतान् सर्वदिग्भ्योऽभ्युपेतान्। पृष्ट्वा सर्वान् कुशलं तांश्च सूत पश्चादहं कुशली तेषु वाच्यः ॥४६॥ न हीदृशा सन्त्यपरे पृथिव्यां ये योधका धार्त्तराष्ट्रेण लब्धाः। धर्मस्तु नित्यो मम धर्म एव महाबलः शत्रुनिबर्हणाय ॥ ४७ ॥ इदं पुनर्वचनं धार्त्तराष्ट्रं सुयोधनं सञ्जय श्रावयेथाः। यस्ते शरीरे हृदयं दुनोति कामः कुरूनसपत्नोऽनुशिष्याम् ॥ ४८ ॥ न विद्यते युक्तिरेतस्य काचिन्नैवं विधा स्याम यथा प्रियं ते। ददस्व वा शक्रपुरीं ममैव युध्यस्व वा भारतमुख्यवीर ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सञ्जययानपर्वणि युधिष्ठिर-संदेशे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर उवाच। उत सन्तमसन्तं वा बालं वृद्धं च सञ्जय। उताबलं बलीयांसं धाता प्रकुरुते वशे ॥ १ ॥ उत बालाय पाण्डित्यं

पूछना ॥ ४४ ॥ और हे तात सञ्जय ! जो जुदी २ दिशाओंमेंसे आ धृतराष्ट्रके पुत्रका आश्रय लेकर रहते हैं तथा जो मान्य पुरुष हैं उन सबोंसे भी मेरी ओरसे कुशल और आरोग्य समाचार पूछना ।४५। हे सञ्जय ! ऐसेही जो राजे सब दिशाओंसे आयेहों तथा जो राजाओं के दूत आयेहों उन सबोंसे कुशल समाचार पूछकर उनसे मेरा कुशल समाचार कहना ।४६। दुर्योधनने जो योधा पाये हैं, ऐसे योधा पृथ्वी पर और कहीं नहीं हैं, परन्तु धर्म सदाकाल रहता है और मैंने भी शत्रुका नाश करनेके लिये महाबलवान् धर्मका ही आश्रय लिया है४७ और हे सञ्जय ! तू धृतराष्ट्रके पुत्र सुयोधनको यह बात सुना देना, कि–मैं शत्रु रहित होकर कौरवोंके ऊपर राज्य करूँ; ऐसी जो तेरी चाहना है वही तेरे हृदयको दुःख दिया करती है, परन्तु तेरे इस विचारको कोई संभावना नहीं है, तेरा ऐसा विचार अनुचित है और और हम भी ऐसे नहीं होसकते, कि जिसमें तेरा यह प्रियकाम सिद्ध होजाय, इस लिये हे भरतवंशके मुख्य वीर ! या तो तू मुझे इन्द्रप्रस्थ देदे नहीं तो मेरे साथ युद्धकर ॥ ४८ ॥४९॥ त्रिंश अध्याय समाप्त३०

युधिष्ठिरने कहा कि—हे सञ्जय ! मनुष्य सज्जन हो वा दुष्ट हो, बालक हो चाहे बूढ़ा हो, निर्बल हो चाहे बली हो, विधाता सबोंको अपने वशमें रखता है ॥१॥ सबका नियन्ता परमात्मा मूर्खको पंडिताई देता है और पण्डितको मूर्खता देता है, परमात्मा सब प्राणियों

पण्डितायोत बालताम् । ददाति सर्वमीशानः पुरस्तात्शुक्रमुच्चरन् २ बलं जिज्ञासमानस्य आचक्षीथा यथातथम् । अथ मंत्र मन्त्रयित्वा याथातथ्येन हृष्टवत् ॥ ३ ॥ गावल्गणे कुरून् गत्वा धृतराष्ट्रं महाबलम् अभिवाद्योपसंगृह्य ततः पृच्छेरनामयम् ॥ ४ ॥ ब्रूयाश्चैनं त्वमासीनं कुरुभिः परिवारितम् । तवैव राजन् वीर्येण सुखं जीवन्ति पाण्डवाः ५ तव प्रसादाद् बालास्ते प्राप्ता राज्यमरिन्दम । राज्ये तान् स्थापयित्वाग्रे नोपेक्षस्व विनश्यतः ॥ ६ ॥ सर्वमप्येतदेकस्य नालं संजय कस्यचित् । तात संहत्य जीवामो द्विषतां मा वशं गमः ॥ ७ ॥ तथा भीष्मं शान्तनवं भारतानां पितामहम् । शिरसाभिवदेथास्त्वं ममनाम प्रकीर्त्तयन् ॥८॥ अभिवाद्य च वक्तव्यस्ततोऽस्माकं पितामहः । भवता शन्तनोर्वंशो निमग्नः पुनरुद्धृतः ॥९॥ स त्वं कुरु तथा तात स्वमतेन

को उत्पन्न करनेसे पहिले उनके पूर्व जन्मके सकल कर्मोंके अनुसार सब पदार्थ देता है ॥ २ ॥ तो भी दुर्योधन हमारे बलकी परीक्षा लेना चाहता होगा, इस लिये तू उससे स्पष्ट कहदेना, कि—पाण्डवोंकी सेना आपसमें विचार कररही है, कि इस समय क्या करनो चाहिये और बड़ी प्रसन्न मालूम होती है३ हे सञ्जय! अब तू कौरवोंके पास जा और महाबली राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम करके उनके चरणोंका स्पर्श करता हुआ उनसे कुशलसमाचार बूझना४ फिर कौरवोंसे घिर कर बैठे हुए धृतराष्ट्रसे कहना, कि हे राजन्! पाण्डव आपके ही पराक्रमसे सुखके साथ समयकोबिता रहे हैं५ हे शत्रुओंका दमन करने वाले राजन्! आपकी कृपासे ही बालकपनमें पाण्डवोंको राज्य मिला था, हे राजन्! पहिले जिनको राज्य पर बैठाया था, अब राज्यभ्रष्ट होकर नष्ट होते हुए पाण्डवोंकी ओरको उदासीनता मत करो ॥ ६ ॥ हे सञ्जय! यह सब पृथ्वी भी किसी एकजनेको मिल जाय तो उस को सन्तोष नहीं होता हे तात! हम सब इकट्ठे होकर राज्यको भोगें और सुखमें जीवनको बितावें यही ठीक है, ऐसी दशामें कोई शत्रु हमें वशमें नहीं कर सकेगा ॥ ७ ॥ और हे सञ्जय ! तू भरतवंशी राजाओंके पितामह शन्तनुके पुत्र भीष्मजीको भी मेरा नाम लेकर मस्तकसे प्रणाम करना ॥ ८ ॥ और प्रणाम करनेके अनन्तर तू हमारे पितामह भीष्मजीसे कहना, कि–आपने नष्ट हुए शन्तनुके वंश का फिर उद्धार किया है ॥ ९ ॥ इसकारण हे पितामह भीष्मजी! जिसमें आपके पोते आपसमें प्रीति रखकर जीते रहें ऐसा काम आप

पितामह ! यथा जीवन्ति ते पौत्राः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥१०॥ तथैव विदुरं ब्रूयाः कुरूणां मन्त्रधारिणम् । अयुद्धं सौम्य भाषस्व हितकामो युधिष्ठिरे ॥ ११ ॥ अथ सुयोधनं ब्रूया राजपुत्रममर्षणम् । मध्ये कुरूणामासीनमनुनीय पुनः पुनः ॥ १२॥ अपापां यदुपैक्षस्त्वं कृष्णामेतां सभागताम् । तद् दुःखमतितिक्षाम मा वधिष्म कुरूनिति १३ एवं पूर्वापरान् क्लेशान् तितिक्षन्ते हि पांडवाः । बलीयांसोऽपि सन्तो यत्तत् सर्वं कुरवो विदुः ॥ १४ ॥ यन्नः प्रव्राजयेः सौम्य अजिनैः प्रतिवासितान् । तद्दुःखमितितिक्षाम मा वधिष्म कुरूनिति ॥ १५ ॥ यत्कुन्तीं समतिक्रम्य कृष्णां केशेष्वधर्षयत् । दुःशासनस्तेऽनुमते तच्चास्माभिरुपेक्षितम् ॥ १६ ॥ अथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परन्तप । निवर्त्तय परद्रव्याद् बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ ॥१७॥ शान्तिरेवं भवेद्राजन् प्रीतिश्चैव परस्परम् । राज्यैकदेशमपि न प्रयच्छ शममिच्छताम् ॥ १८ ॥ अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् । अवसानं

अपनी सम्मतिसे करिये ॥ १० ॥ ऐसे ही तुम कौरवोंको सम्मति देने वाले विदुरजीसे भी कहना, कि—तुम युधिष्ठिरके हितैषी हो, इस लिए हे शान्तगुणों वाले विदुरजी ! आप धृतराष्ट्रसे ऐसी बात कहें कि-जिसमें युद्ध न हो ॥११॥ तदनन्तर क्रोधी सुयोधनसे भी जब वह कौरवोंके मण्डलमें बैठा होय उस समय वारंवार समझा कर कहना कि-जब यह पापरहित द्रौपदी सभामें लाई गई थी तो तूने इसकी कुछ परवाह नहीं की थी इतना होते हुए भी हमने कौरवों का नाश न किया और द्रौपदीके विषयके दुःखको सहलिया था१२।१३ इस प्रकार पहिले जो अनेकों दुःख पाण्डवोंने बलवान् होते हुए भी सहे इस सब बातको कौरव जानते ही हैं ॥ १४ ॥ और हे सौम्य ! तूने हमें मृगचर्म उढ़ा कर वनवासके लिये देशमेंसे बाहर निकाल दिया था, इस दुःखको भी हमने यह विचार कर सह लिया था, कि हमें कौरवोंका संहार न करना पड़े ॥ १५ ॥ और हमारी माता कुंती जीका अपमान करके दुःशासन तेरी सम्मतिसे द्रौपदीको उसकी चोटी पकड़ कर कौरवोंकी सभामें घसीट लाया था, उस अपराध को भी हमने कुछ नहीं गिना ॥ १६ ॥ परन्तु हे शत्रुओंको सतानेवाले राजन्! अब हमको अपना उचित भाग मिलना चाहिए, पराये धन परसे तू अपनी लोभ भरी बुद्धि हटाले ॥ १७ ॥ हे राजन् ! मेरे कहने के अनुसार पराये धन परसे मनको हटा लेनेसे आपसमें शान्ति और प्रीति होगी हम चाहते हैं कि-शान्ति रहै इसलिए तुम हमें राज्यका

भवत्यत्र किञ्चिदेकञ्च पंचमम् ॥ १९ ॥ भ्रातॄणां देहि पंचानां पंच ग्रामान् सुयोधन । शान्तिर्नोऽस्तु महाप्राज्ञ ज्ञातिभिः सह सञ्जय २० भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम् । स्मयमानाः समायान्तु पांचालाः कुरुभिः सह ॥ २१ ॥ अक्षतान् कुरुपांचालान् पश्येयमिति कामये । सर्वे सुमनसस्तात शाम्याम भरतर्षभ ॥ २२॥ अलमेव शमायास्मि यथा युद्धाय सञ्जय । धर्मार्थयोरलं चाहं मृदवे दारुणाय च ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि युधिष्ठिर-
वाक्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच । अनुज्ञातः पांडवेन प्रययौ सञ्जयस्तदा । शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः ॥१॥ सम्प्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रमेव प्रविश्य च । अन्तःपुरं समास्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् २ आचक्ष्व धृतराष्ट्राय द्वाःस्थं मां समुपागतम् । सकाशात् पांडुपुत्राणां

थोड़ासा भाग देदो ॥ १८ ॥ हम यह चाहते हैं कि-हमें अविस्थल, वृकस्थल माकन्दी, वारणावत और पाँचवाँ चाहे जौनसा एक ग्राम इस प्रकार हे सुयोधन ! हम पाँचों भाइयोंको पाँच ग्राम देदो हे महाबुद्धिमान् सञ्जय ! ऐसा करनेसे हमारा सम्बन्धियोंके साथ मेल बना रहेगा ॥ १९॥२० ॥ भाई भाइयोंके साथ हिलें मिलें, पिता पुत्रके साथ हिलेंमिलें और पांचाल देशके राजे सभामें हँसते २ कौरवोंके साथ मिलें ॥ २१ ॥ हे भरतवंशी सुयोधन राजा ! मैं कौरव और पांचाल देशके राजाओंको अक्षत-घावरहित देखना चाहता हूँ और मैं यह भी चाहता हूँ कि-हम सब प्रसन्न मनसे एक दूसरेके साथ मिले रहें २२ हे सञ्जय ! मैं जैसे मेल करनेकी शक्ति रखता हूँ, तैसे ही मुझमें युद्ध करनेकी भी शक्ति है, मैं जैसे धर्मका आचरण कर सकता हूँ तैसेही मुझमें अर्थ संग्रह करनेकी शक्ति भी है, मैं जैसे कोमल भाव धारण कर सकता हूँ, तैसे ही कठोर भाव भी धारण कर सकता हूं ॥२३॥ एकत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार सब सन्देशा कहकर युधिष्ठिरने सञ्जयको जानेकी आज्ञा दी, संजय महात्मा युधिष्ठिरकी सब आज्ञाको शिरपर धरकर और राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञाको बजाकर तहांसे तुरन्त ही हस्तिनापुरको चलागया और अन्तःपुरकी ड्योढीके आगे जाकर द्वारपालसे कहने लगा कि- ॥ १-२ ॥ हे द्वारपाल ! मैं संजय पाण्डवोंके पास दूत बनकर गयाथा और उनके

सञ्जयं मा चिरं कृथाः ॥ ३ ॥ जागर्त्ति चेदभिवदेस्त्वं हि द्वाःस्थ प्रवि-शेयं विदितो भूमिपस्य । निवेद्यमत्रात्ययिकं हि मेऽस्ति द्वाःस्थोऽथ श्रुत्वा नृपतिं जगाद ॥४॥ द्वाःस्थ उवाच । सञ्जयोऽयं भूमिपते नमस्ते दिदृक्षया द्वारमुपागतस्ते । प्राप्तो दूतः पाण्डवानां सकाशात् प्रशाधि राजन् किमयं करोतु ॥ ५ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । आचक्ष्व मां कुशलिनं कल्यमस्मै प्रवेश्यतां स्वागतं सञ्जयाय । न चाहमेतस्य भवाम्यकल्पः स मे कस्माद्द्वारि तिष्ठेच्च सक्तः६वैशम्पायन उवाच।ततः प्रविश्या-नुमते नृपस्य महद्वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम्। सिंहासनस्थं पार्थिवमाससाद वैचित्रवीर्यं प्राञ्जलिः सूतपुत्रः ७ संजय उवाच। संजयोऽहं भूमिपते नमस्ते प्राप्तोऽस्मि गत्वा नरदेव पाण्डवान् अभिवाद्य त्वा पाण्डुपुत्रो मनस्वी युधिष्ठिरः कुशलं चान्वपृच्छत्॥८॥स ते पुत्रान् पृच्छति प्रीय माणः कच्चित् पुत्रैः प्रीयसे नप्तृभिश्च । तथा सुहृद्भिः सचिवैश्च राजन्

पाससे सन्देशा लेकर आयाहूं, यह समाचार महाराजके पास पहुँचा दे, देर न कर ॥ ३ ॥ हे द्वारपाल ! महाराज जागते हों तो तू उनको मेरे आनेकी सूचना कर तो मैं भीतर जाऊँ, क्योंकि-मुझे महाराजसे आवश्यक बात कहनी है, यह सुनकर द्वारपालने राजाके पास जाकर कहा ॥ ४ ॥ द्वारपाल बोला, कि-हे महाराज ! आपको प्रणाम करके कहता हूँ, कि-संजय आपके दर्शनकी इच्छासे द्वारपर खड़े हैं, वह आपके दूत पाण्डवों पाससे लौटकर यहां आये हैं, इस लिये आज्ञा दीजिये कि-वह क्या करें ? ॥ ५ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे द्वारपाल! तू संजयसे कहदे कि-मैं कुशल और नीरोग हूं,तू बहुत अच्छा आया और उसको यहां लिवाला, उसके मिलनेकी मेरी ओरसे किसीसमय भी रोक नहीं है, द्वारपाल फिर वह क्यों रुका खड़ा है? ६वैशम्पायन कहते हैं,कि-हे जनमेजय ! धृतराष्ट्रकी संमतिसे सूतपुत्र संजय राज-महलमें पहुँचा और बुद्धिमान् वीर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंसे घिरकर राज सिंहासन पर बैठे हुए विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्रके पास गया और दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहने लगा ॥ ७ ॥ संजय बोला, कि— हे महाराज ! मैं संजय आपको प्रणाम करता हूँ, मैं पाण्डवोंके पास से मिलकर आया हूँ, मनको वशमें रखनेवाले राजा युधिष्ठिरने आप को प्रणाम करके कुशल समाचार बूझा है ॥ ८ ॥ राजा युधिष्ठिरने प्रीतिके साथ आपसे बुझवाया है, कि-आपके पुत्र आनन्द तो हैं, ? और आप पुत्रपौत्र,सगे, संबन्धी मंत्री तथा आपके आश्रयसे आजी-

ये चापि त्वामुपजीवन्ति तैश्च ॥९॥ धृतराष्ट्र उवाच । अभिनन्द्य त्वां तात वदामि संजय अजातशत्रुञ्च सुखेन पार्थम् । कच्चित् स राजा कुशली सपुत्रः सहामात्यः सानुजः कौरवाणाम् ॥१०॥ संजय उवाच सहामात्यः कुशली पाण्डुपुत्रो बुभूषते यच्च तेऽग्रे मनोभूत् । निर्णिक्त-धर्मार्थकरो मनस्वी बहुश्रुतो ह्यप्रेमान् शीलवांश्च ॥ ११ ॥ परो धर्मात् पांडवस्यानृशंस्यं धर्मः परो वित्तचयान्मतोऽस्य । सुखं प्रिये धर्महीने-ऽनपार्थेऽनुरुध्यते भारत तस्य बुद्धिः ॥ १२ ॥ परप्रयुक्तः पुरुषो विचे-ष्टते सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा । इमं दृष्ट्वा नियमं पाण्डवस्य मन्ये परं कर्म दैवं मनुष्यात् ॥१३॥ इमञ्च दृष्ट्वा तव कर्मदोषं पापोदर्कं घोर-मवर्णरूपम् यावत् परः कामयतेऽतिवेलं तावन्नरोऽयं लभते प्रशंसाम् ॥१४ अजातशत्रुस्तु विहाय पापं जीर्णां त्वचं सर्प इवासमर्थाम् । विरोच-

---

विका करनेवाले पुरुषोंके साथ सुखी तो हो ? ॥ ९ ॥ धृतराष्ट्रने कहा कि-हे तात संजय ! मैं तेरी प्रशंसा करके कहता हूँ; कि-कौरवों के राजा कुन्तीनन्दन अजातशत्रु युधिष्ठिर अपने पुत्र, मंत्री और भाइयों सहित कुशल और सुखी तो हैं ! ॥ १० ॥ सञ्जयने उत्तर दिया, कि—राजा युधिष्ठिर अपने मन्त्रियों सहित कुशल हैं, पहिले जो बात आपके चित्तमें फुरी थी उसको वह अब पाना चाहते हैं, हे महाराज! उनके उत्तम चरित्रकी अधिक बात तो क्या कहूं केवल इतना ही कहता हूँ, कि उनकी इच्छा है, कि परमशुद्ध धर्म और धन प्राप्त हो, वह, उदार, बहुत पढ़ेहुए दीर्घदृष्टि और शीलवान् हैं ॥ ११ ॥ हे महाराज ! अहिंसा और दया उनका परम धर्म है वह धन इकट्ठा करनेकी अपेक्षा धर्मको ही श्रेष्ठ मानते हैं और धर्म तथा अर्थ रहित सुख और प्रिय वस्तुमें उनका मन कभी नहीं लगता है॥१२॥ लकड़ी की पुतली जैसे डोरीके चलनेसे चलती फिरती है तैसे ही मनुष्यभी प्रारब्धकी प्रेरणासे इस जगत्में चलने फिरनेकी चेष्टा करता है. युधि-ष्ठिरके इस नियमको देख कर मैं पुरुषार्थसे प्रारब्ध कर्मको श्रेष्ठ मानता हूँ ॥ १३ ॥ और आपकी पिछली अवस्थामें अशुभ, न कहने योग्य,महाभयंकर कर्मके दोषको देखकरमैं अपने मनमें यहभी विचार-ता हूँ, कि ईश्वरकी इच्छा होती है तब तक ही मनुष्य प्रशंसाको पाता है ॥ १४ ॥ परन्तु जैसे साँप धारण करनेके अयोग्य कैंचुलीको पापकी समान त्याग देता है तैसेही परमधीर अजातशत्रु राजा युधि-ष्ठिर तुम्हारे ऊपर पापको ढकेलकर स्वाभाविक उदारचरित्रसे शोभा

तेऽह्यार्य्यवृत्तेन वीरो युधिष्ठिरस्त्वयि पापं विसृज्य ॥१५॥ हन्तात्मनः कर्म निबोध राजन् धर्मार्थयुक्तादार्य्यवृत्तादपेतम्। उपक्रोशं चेह गतोऽसि राजन् भूयश्च पापं प्रसृजेदमुत्र ॥ १६ ॥ स त्वमर्थं संशयितं विना तैराशंससे पुत्रवशानुगोऽस्य। अधर्मशब्दश्च महान् पृथिव्यां नेदं कर्म त्वत्समं भारताग्र्य ॥१७॥ हीनप्रज्ञो दौष्कुलेयो नृशंसो दीर्घवैरी क्षत्रविद्यास्वधीरः। एवं धर्मानापदः संश्रयेयुर्हीनवीर्यो यश्च भवेदशिष्टः ॥ १८ ॥ कुले जातो बलवान् यो यशस्वी बहुश्रुतः सुखजीवी यतात्मा। धर्माधर्मौ ग्रथितौ यो बिभर्ति स ह्यस्य दिष्टस्य वशादुपैति ॥ १९॥ कथं हि मन्त्राग्र्यधरो मनीषी धर्मार्थयोरापदि संप्रणेता एकमुक्तः कर्ममन्त्रैरहीनो नरो नृशंसं कर्म कुर्य्यादमूढः ॥ २० ॥ तव ह्यमी मन्त्रविदः समेत्य समासते कर्मसु नित्ययुक्ताः। तेषामयं बल-

---

पाते हैं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! आप एक बार अपने कर्मोंकी ओरको विचार करके देखो, आपके कर्म धर्म अर्थवाले श्रेष्ठ चरित्रसे रहित हैं हे भरतवंशके श्रेष्ठ राजन्! आपने अपने इन कर्मोंसे लोकमें निन्दा पाई है और परलोकमें नरक भोगोगे १६आप पुत्रके वशमें हो पांडवोंको धोखा देकर सन्देहमें पडेहुए राज्यको अकेले ही भोगना चाहते हो, यह बडीभारी अधर्मकी बात सबपृथ्वीपर फैलगई है और यह काम किसी प्रकार भी आपके योग्य नहीं है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य बुद्धिहीन, दुष्टकुलमें जन्मा हुआ, क्रूर, चिरकालतक वैर रखनेवाला, युद्धविद्या में अधीर, शूरतारहित और नीच होता है उसको अवश्य ही आपत्ति भोगनी पड़ती है, ॥१८॥ परन्तु जो मनुष्य बुद्धिमान् सत्कुलमें उत्पन्न हुआ, बलवान्, यशस्वी, बहुतसेशास्त्रोंको जाननेवाला, सुखमें जीनेवाला और जितेन्द्रिय होता है तथा धर्म और अधर्मको जुदे२ करके धर्म धारण करता है उसको ऐसे भाग्यका अनुभव नहीं करना पड़ता है अर्थात् सत्य और असत्य दोनों साथ रहते हैं, अतः इनके स्वरूपको जानकर सत्य कहिये परब्रह्म और असत्य कहिये शरीर इन दोनोंके स्वरूपको जो समझता है वह आपत्तिके वशमें न पड़कर स्वतन्त्रता के सुखको भोगता है ॥ १९ ॥ स्वयं बुद्धिमान्; परम उत्तम मन्त्रियों वाला, आपत्तिकालमें यथोचित रीतिसे धर्म और अर्थका प्रयोग करने वाला, और सब प्रकारसे जिसके उत्तम विचार हैं ऐसा बुद्धिमान पुरुष निष्ठुर कर्म कैसे करसकता है ? ॥२०॥ परन्तु राजकार्यों का विचार करनेमें अज्ञान ये तुम्हारे मन्त्री इकट्ठे होकर जो हरसमय

निश्चयश्च कुरुक्षेत्रे नियमेनोदपादि ॥२१॥ अकालिकं कुरवो नाभविष्यन् पापेन चेत् पापमजातशत्रुः । इच्छेज्जातु त्वयि पापं विसृज्य निंदा चेयं तव लोकेऽभविष्यत् ॥ २२ ॥ किमन्यत्र विषयादीश्वराणां यत्र पार्थः परलोकं स्म द्रष्टुम् । अत्यकामत् स तथा सम्मतः स्यान्न संशयो नास्ति मनुष्यकारः॥२३॥एतान् गुणान् कर्मकृतानवेक्ष्यभावाभावौ वर्त्तमानावनित्यौ। बलिर्हि राजा पारमविंदमानो नान्यत् कालात् कारणं तत्र मेने ॥ २४ ॥ चक्षुःश्रोत्रे नासिका त्वक् च जिह्वा ज्ञानस्यैतान्यायतनानि जन्तोः । तानि प्रीतान्येव तृष्णा क्षयान्ते तान्यव्यथो दुःखहीनः प्रणुद्यात् ॥२५॥न त्वेव मन्ये पुरुषस्य कर्म संवर्त्तते सुप्रयुक्तं यथावत् । मातुः पितुः कर्मणाभिप्रसृतः संवर्द्धते विधिवद्भोजनेन २६

कामोंमें लगे रहते हैं, इनका यह दृढ़ निश्चय है कि क्रूरकर्म करना और पाण्डवोंको राज्य न देना, परन्तु मेरी समझमें इन बातोंमें कौरवोंका नाश हुआ धरा है ।२१। यदि राजा युधिष्ठिर तुम्हारे ऊपर पापको ढकेलकर पापका बदला लेनेके लिए पाप कर्म करना चाहेंगे तो कौरवोंका असमयमें ही नाश होजायगा और ऐसा होनेपर लोकमें तुम्हारी निन्दा होगी ॥२२॥ जब अर्जुन स्वर्गका दर्शन करनेके लिये गया था, तब वह इस लोकको छोडकर शरीर सहित ही चला गया था, इस बातको देवताओंकी कृपाके सिवाय और क्या कहा जाय ? नारदादिकी समान दोनों लोकोंमें आवाजाई करनेसे अर्जुन देवताओंमें भी मान्य होगया हो तो इसमें कोई संदेह नहीं है और अर्जुनके ऊपर दूसरे पुरुषका पुरुषार्थ नहीं चल सकता, इसमें भी कुछ संदेह नहीं है । ॥२३॥ शूरता आदि गुण कर्मके अनुसार बढने और नष्ट होते हैं इस लिये उन्नति और अवनति दोनों अनित्य हैं, ऐसा विचार कर जब राजा बलिने पूर्व पूर्व कर्मोंके कारणोंका पार नहीं पाया तब उसने यह निश्चय कर लिया था कि-उन्नति होनेमें ईश्वरके सिवाय और कोई कारण नहीं है ॥ २४ ॥ प्राणीको ज्ञान प्राप्त होनेके आंख, कान, नासिका, त्वचा और जिह्वा इतने स्थान हैं, ये अपने २ विषयोंको पूर्ण रीतिसे भोगकर जब तृष्णासे रहित होते हैं तो प्रसन्न होते हैं और तब ही जीव भी दुःख रहित होकर इन्द्रियोंको उन विषयोंसे दूर हटा सकता है, इस लिये जीव पहिले हानि लाभको समान मान नाना प्रकारकी व्यथासे मुक्त होता हुआ इन्द्रियोंको विषयोंसे हटानेका उद्योग करें ॥ २५ ॥ परन्तु मैं इस बातको नहीं मानता, कि-मनु-

प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राजन्निन्दाप्रशंसे च भजन्त एव। परस्त्वेनं गर्हयतेऽपराधे प्रशंसते साधुवृत्तं तमेव ।२७। स त्वां गर्हे भारतानां विरोधादन्तो नूनं भवितायं प्रजानाम्। नो चेदिदं तव कर्मापराधात् कुरून् दहेत् कृष्णवर्त्मेव कक्षम् ॥ २८ ॥ त्वमेवैको जातपुत्रस्य राजन् वशं गत्वो सर्वलोके नरेन्द्र । कामात्मनः श्लाघनो द्यूतकाले नागाः शमं पश्य विपाकमस्य ॥ २९ ॥ अनाप्तानां संग्रहात्त्वं नरेन्द्र तथाप्तानां निग्रहाच्चैव राजन् । भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वामनन्तामशक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय ॥३०॥ अनुज्ञातो रथवेगावधूतः श्रान्तोऽभिपद्ये शयनं नृसिंह। प्रातः श्रोतारः कुरवः सभायामजातशत्रोर्वचनं समेताः ॥ ३१ ॥ धृत-

ष्यसे बराबर अच्छे ही कर्म बना करते हैं, मनुष्य माता और पिताके कर्मके अनुसार जन्म धारण करता है और विधिपूर्वक अन्नका भोजन करके वृद्धि पाता है ॥२६॥ हे महाराज ! प्रिय और अप्रिय सुख और दुःख, निन्दा और प्रशंसा मनुष्यका आश्रय करके रहते हैं, मनुष्यसे यदि अपराध बन जाता है तो लोग उसकी निन्दा करते हैं और यदि वह अच्छा काम करता है तो लोग उसकी ही प्रशंसा करते हैं ।२७। सो हे राजन्! कौरव पाण्डवोंमें विरोध करा देनेके कारणसे मैं आपकी निंदा करता हूँ आपकी इस करतूतसे प्रजाका नाश अवश्य ही होगा, जैसे अग्नि सूखे तृणोंके ढेरको जला कर भस्म कर डालता है तैसे ही तुम्हारे ही अपराधसे कौरवोंका नाश होगा ॥२८॥ हे नरेंद्र ! सब लोकमें केवल एक आप ही यथेच्छाचरण (मनमाने काम) करने वाले पुत्रके वशमें हुए हो, आपकी समान कभी किसीने ऐसा नहीं किया, देखो पुत्रके वशमें होकर और पुत्रकी प्रशंसा करते हुए आप द्यूतक्रीडाके समय समझानेसे भी नहीं माने, देखो अब उसका परिणाम क्या होता है ? ॥२९॥ हे राजन् ! मिथ्याभाषी, विश्वासके अयोग्य पुरुषोंकी मण्डली इकट्ठी करते हो और विश्वासपात्र पुरुषोंको दंड देकर दूर करदेते हो इस कारण हे कुरुवंशी राजन् ! तुम स्वयं शक्तिहीन होनेसे अपार सम्पदाओंसे दमकती हुई भूमिकी रक्षा नहीं करसकते ॥ ३० ॥ हे मनुष्योंमें सिंहसमान राजन् ! मैं रथके वेगके कारण इधर उधरको झटके खानेसे थक गया हूँ, इस लिये मुझे आज्ञा दीजिये तो मैं घर जाकर शय्या पर सोऊँ और कल प्रातःकाल सब कौरवोंकी सभामें मैं अजातशत्रु युधिष्ठिरकी बातें सुनाऊंगा ॥३१॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि हे सूतपुत्र ! सञ्जय ! मैं तुझे आज्ञा देता हूँ, जा

राष्ट्र उवाच । अनुज्ञातोऽस्यावसथं परेहि प्रपद्यस्व शयनं सूतपुत्र । प्रातः श्रोतारः कुरवः सभायामजातशत्रोर्वचनं त्वदुक्तम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि संजययानपर्वणि धृतराष्ट्रसंजय-
सम्वादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

समाप्तञ्च सञ्जययानपर्व ।

अथ प्रजागरपर्व ।

वैशम्पायन उवाच । द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः । विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम् ॥ १ ॥ प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत् । ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥२॥ एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम् । अब्रवीद्धृतराष्ट्राय द्वाःस्थं मां प्रतिवेदय ॥ ३ ॥ द्वाःस्थ उवाच । विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात् । द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम् । अहं हि विदुरस्याय नाकल्पो जातु दर्शने ॥ ५ ॥ द्वाःस्थ उवाच । प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः । न हि ते दर्शनेऽकल्पो जातु राजाब्रवीद्धि

अपने घर जाकर शय्या पर आराम कर, कल प्रातःकालके समय सभामें कौरव तुझसे युधिष्ठिरके संदेशेकी बातें सुनेंगे ॥३२॥ द्वात्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३२॥ छ छ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि हे जनमेजय ! फिर महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने द्वारपालसे कहा कि मैं विदुरको देखना चाहता हूं, तू उस को यहां लिवाला, विलम्ब न कर ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रके भेजे हुए दूतने जाकर विदुरसे कहा, कि-हे महाबुद्धिमान् ! हमारे ईश्वर महाराज धृतराष्ट्र तुम्हें देखना (तुमसे मिलना) चाहते हैं ॥ २ ॥ द्वारपालके इस प्रकार कहने पर विदुरजी राजमहल पर जाकर कहने लगे, कि-हे द्वारपाल ! महाराज धृतराष्ट्रको समाचार दो, कि-मैं आगया॥३॥ द्वारपालने जाकर कहा, कि-हे महाराज ! आपकी आज्ञासे यह विदुर जी आगये हैं, वह आपके चरणोंका दर्शन करना चाहते हैं मुझे आज्ञा दीजिए, कि—वह क्या करें ? ॥४॥धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे द्वारपाल ! महाबुद्धिमान् दीर्घदर्शी विदुरको यहाँ लिवाला,क्योंकि-मैं कभी भी विदुरको दर्शन देनेमें असमर्थ नहीं हूँ अर्थात् विदुरको मुझसे मिलने का कभी निषेध नहीं है और विदुरसे मैं किसी बातको छिपा नहीं रखना चाहता॥५॥द्वारपालने आकर कहा, कि-हे विदुरजी ! बुद्धिमान्

माम् ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेसनम् । अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम् ॥७॥ विदुरोऽहं महाप्राज्ञ संप्राप्तस्तव शासनात् । यदि किञ्चन कर्त्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच। सञ्जयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च माङ्गतः । अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥ ९ ॥ तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मम । तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् ॥ १० ॥ जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि । तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥ ११ ॥ यतः प्राप्तः सञ्जयः पाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः । सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता ॥१२॥ विदुर उवाच । अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् । हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥ १३ ॥ कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप ।

महाराज धृतराष्ट्रके महलमें पधारिये, क्योंकि-राजाने मुझसे कहा है, कि-मैं किसी दिन भी विदुरका दर्शन करनेमें असमर्थ नहीं हूं ॥ ६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार द्वारपालने कहा, तब विदुरजी धृतराष्ट्रके राजमहलमें जाकर दोनों हाथ जोड़, चिन्तामें बैठे हुए राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ७ ॥ विदुर बोले कि-हे महाबुद्धिमान् धृतराष्ट्र ! आपकी आज्ञासे मैं विदुर उपस्थित हूँ, यदि कुछ काम हो तो मुझे उसकी आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे विदुर ! बुद्धिमान् सञ्जय आया था वह मेरी निन्दा करके चला गया है और वह कलको सभामें युधिष्ठिरकी बात सुनावेगा कुरुवीर युधिष्ठिरने क्या बात कही है वह अभी तक मुझे मालूम नहीं हुई, इसकारण मेरे शरीरमें आग सी लग रही है और मुझे नींद नहीं आती ॥१०॥ हे तात ! तुम धर्म और अर्थके विषयमें प्रवीण हो, इस कारण निन्द्रारहित हुए और अन्तःकरणमें जलने वाले मेरा जिसमें कल्याण दीखता हो वह उपाय मुझे बताओ ॥ ११ ॥ जबसे सञ्जय पाण्डवोंके पाससे आया है तबसे मेरे मनको जरा भी शान्ति नहीं मिलती है, सब इन्द्रियोंमें पीड़ा होरही है और संजय न जाने क्या कहेगा ? इस बातकी आज मुझे बड़ी भारी चिन्ता होरही है ॥ १२ ॥ विदुरने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! सेना आदि सामग्री न होतेहुए बलवान्के साथ लड़नेको तयार हुए दुर्बल मनुष्यको, जिसका धन लुटगया हो ऐसे मनुष्यको कामी

कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन्न परितप्यसे ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः । अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ॥ १५ ॥ विदुर उवाच । राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत् । प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः॥१६॥ विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः । अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥ १७ ॥ आनृशंस्यादनुक्रोशाद्धर्मात् सत्यात् पराक्रमात् । गुरुत्वात्त्वयि संप्रेक्ष्य बहून् क्लेशान् तितिक्षते ॥१८॥ दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा । एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि१९. आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता । यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै

को और चोरको निद्रा नहीं आती है ॥१३॥ हे राजन् ! इन बड़भारी चारों दोषोंने तो तुम्हें स्पर्श नहीं नहीं किया है ? अथवा तुम दूसरे का धन लेनेके लिये ललचाते हुए तो दुःखी नहीं होरहे हो ? ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि हे विदुर! परम कल्याण और धर्मभरे तेरे वचन सुनना चाहता हूँ, क्योंकि इस राजर्षियोंके वंशमें एक तूनेही पण्डितों में प्रतिष्ठा पाई है ॥ १५ ॥ विदुरने कहा, कि हे धृतराष्ट्र ! जिस राजा में राजाके लक्षण होते हैं वह तीनों लोकोंका स्वामी होसकता है, इस लिये वनमें भेजे हुए युधिष्ठिर सर्वथा तुम्हारे प्रार्थना करने योग्य हैं अर्थात् युधिष्ठिरमें राजाके सब लक्षण हैं इस कारण तुमको चाहिये, कि उनको वनमेंसे बुलाकर राजगद्दी पर बैठालदो, क्योंकि गुणवान् होनेके कारण ये ही राज्यके स्वामी होने चाहियें ॥ १६ ॥ तुम नेत्रहीन होनेके कारण राजाके लक्षणोंसे हीन हो, इस लिये धर्मात्मा और धर्ममें चतुर होकरभी राज्यका भाग पानेके योग्य नहीं हो, तात्पर्य यह है, कि तुम धर्ममें प्रवीण हो, इस लिये समझते हो, कि—अन्धा राज्यका अधिकारी नहीं होसकता है तो भी तुम राजसिंहासनको दबा बैठे हो और स्वार्थी हो १७ कोमलता दयालुता धार्मिकता सत्यपालन और पराक्रमीपनेके कारणसे तथा तुम्हारे बड़प्पनको देखकर युधिष्ठिर अनेकों क्लेशोंको सहरहे हैं अर्थात् वह युद्धमें तुम्हें जीत कर राज्य लेसकते हैं परंतु कोमलता आदिपर दृष्टि रखकर तुम्हारे सामने नहीं पड़ते हैं॥१८॥हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन इन चारके ऊपर राज्यके कामका भार रखकर तुम उन्नति पानेकी इच्छा कैसे रखते हो ? अर्थात्-ऐसा करनेसे तो अनर्थ ही होगा, सुख समृद्धिकी आशा रखना वृथा है ॥ १९ ॥ आत्माका ज्ञान, शक्तिके

पण्डित उच्यते ॥ २० ॥ निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते। अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पंडितलक्षणम् ॥ २१ ॥ क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता। यमर्थान्नापि कर्षन्ति स वै पंडित उच्यते२२यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मंत्रितं परे। कृतमेवास्य जानन्ति स वै पंडित उच्यते २३ यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयंरतिः। समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पंडित उच्यते २४ यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्त्तते। कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित

अनुसार कामका आरम्भ, सहनशीलता और धर्मपरायणता, इन चार वस्तुओंके होते हुए भी जो पुरुषार्थसे भ्रष्ट नहीं होता है वही पण्डित है तात्पर्य यह है कि—शास्त्रसे आत्म-ज्ञान होता है, शक्तिसे कामका आरम्भ किया जासकता है, वैराग्यसे सहनशीलता आती है और श्रद्धासे धर्ममें एकनिष्ठा होती है, इन चार बातोंको जो उलटी रीतिसे वर्त्तते हैं तो यह बातें उन मूर्खोंको पुरुषार्थसे भ्रष्ट कर देती हैं, परन्तु पण्डितको भ्रष्ट नहीं कर सकतीं, पण्डित तो इन बातोंको पाकर अपना पुरुषार्थ सिद्ध करते हैं ॥२०॥ जो उत्तम कामोंको करता है और निन्दित कामोंसे बचता है, जो नास्तिक नहीं है किंतु श्रद्धावाला है यही पण्डितका लक्षण है, तात्पर्य यह है कि—दुर्योधनादि निंदित काम करते हैं, अच्छे कामोंका अनादर करते हैं, ईश्वरके ऊपर उनकी श्रद्धा नहीं है इस कारण वे मूर्ख हैं ॥ २१ ॥ क्रोध, हर्ष, दूसरोंका अपमान करनेका कारण गर्व, लज्जा अकड़ना और अपनेको ही मान्य समझना (अहंकार) ये बातें जिस मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम मोक्ष-रूप पुरुषार्थसे भ्रष्ट नहीं करती हैं वह ही पण्डित कहलाता है ॥२२॥ जिसके किये हुए कामको वा चित्तमें धारण किये हुए विचारको दूसरे नहीं जान सकते हैं, वही पण्डित कहलाता है ॥ २३ ॥ गरमी सरदी, भय, प्रेम, सम्पदा और निर्धनता इनमेंसे कोई भी जिसके काममें विघ्न नहीं डाल सकता वही पण्डित कहलाता है ॥२४॥ जिसकी व्यवहारिक बुद्धि धर्म और अर्थके पीछे२ चलती है तथा जो कामसे भी अर्थको पाता है वही पण्डित कहलाता है, तात्पर्य यह है, कि—जो मनुष्य निष्काम होकर धर्म और अर्थको प्राप्त करता है उसको ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होती है, काम आदि सब पदार्थ मोक्षके अन्तर्गत हैं, इस कारण मोक्षार्थीको सब पदार्थ अपने आप ही मिल जाते हैं, जैसे कि—विदेहजनकने सब पुरुषार्थोंको प्राप्त

उच्यते ॥ २५ ॥ यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते न किंचिद- वमन्यन्ते नराः पंडितबुद्धयः ॥ २६ ॥ क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् । नासंपृष्टो व्युपयुंक्ते परार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पंडितस्य ॥२७॥ नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचि तुम् । आपत्सु न मुह्यन्ति नराः पंडितबुद्धयः ॥२८॥ निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः । अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥ २९ ॥ आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते । हितञ्च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥ ३० न हृष्यात्यात्मसम्माने नावमा- नेन तप्यते । गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ३१ तत्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पंडित

करके अन्तमें मोक्ष पाई थी, ॥२५। जो पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार काम करना चाहते हैं और शक्तिके अनुसार ही काम करते हैं तथा किसीका भी अपमान नहीं करते हैं, उन मनुष्योंको पण्डित जानें २६ जो झट समझ जाता है और चिरकाल तक कहने वालेकी बातको सुनता है और उसके वाक्योंके अर्थको समझता है, परन्तु तत्काल आसक्त होकर उसको स्वीकार नहीं करता है और जो दूसरेके काम में ठीक २ बूझे बिना कुछ नहीं कहता है, यह पण्डितकी मुख्य पहि- चान है ॥ २७ ॥ जो न मिलने योग्य वस्तुकी इच्छा नहीं करते हैं जो खोई हुई वस्तुका शोक करना नहीं चाहते हैं और जो दुःखमें घब- ड़ाते नही हैं वे मनुष्य पण्डित कहलानेके योग्य होते हैं ॥ २८ ॥ यह काम मेरे उद्योगसे होसकेगा ऐसा निश्चय करके जो पुरुष कामका आरम्भ करता है जो आरम्भ कियेहुए कामको अधबीचमें नहीं छोड़ता है पूरा करके ही छोड़ता है, जो अपने समयको वृथा नहीं जाने देता है औरजो मनको अपने वशमें रखता है वहही पण्डित कहलाता है२९ हे भरतवंश श्रेष्ठ ! पण्डित पुरुष करने योग्य उत्तम काममें चित्त लगाते हैं; सम्पदा बढाने वाले कामोंको करते हैं और किसी हित- कारीसे द्वेषभाव नहीं करते हैं ॥ ३० ॥ जो पुरुष अपना सन्मान होने पर प्रसन्न नहीं होता है अपना अपमान होनेपर दुःख नहीं मानता है और जो गङ्गाके कुण्डकी समान दूसरेसे क्षुभित नहीं होता है वह पण्डित कहलाता है॥३१। जो पदार्थमात्रको नाशवान् मानता है, सब काम करनेकी युक्तिको तथा उपायको जानता है वह मनुष्योंमें पंडित

उच्यते ॥ ३२ ॥ प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिमानवान्। आशुग्रन्थस्य वक्ता च यः स पंडित उच्यते ॥३३॥ श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा। असम्भिन्नार्यमर्यादः पंडिताख्यां लभेत सः ३४ अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः। अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ ३५ ॥ स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति। मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥ ३६ ॥ अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजंत्। बलवन्तञ्च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ३७ अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च। कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ३८ ॥ संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।

कहलाता है ।३२। बात करते समय जिसकी वाणी अडखडाती नहीं है जो नाना प्रकारके इतिहासोंको जानने वाला लौकिक बातें कहने में चतुर, अपनी बुद्धिसे नई २ बातें उपजाने वाला और झट ग्रन्थके तात्पर्यको कह सकता है वही पण्डित कहलाता है ॥ ३३ ॥ शास्त्र जिसकी बुद्धिके अधीन होता है और जिसकी बुद्धि शास्त्रके अनुकूल चलती है तथा जो पूज्य पुरुषोंकी बांधी हुई मर्यादाका खण्डन नहीं करता है वह मनुष्य पण्डित नामको पाता है ॥ ३४ ॥ शास्त्रका ज्ञान न होने पर भी जो बड़ा अभिमानी है, दरिद्र होकर भी जो उदार मन वाला है और जो जुआ खेलना आदि नीच काम करके धन पाना चाहता है उसको पण्डित पुरुष मूढ नामसे पुकारते हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य अपना काम छोड़कर दूसरेके कामके लिये उद्योग करता है और जो मित्रके लिये खोटा काम करता है वह मूढ़ कहलाता है तुम्हारे पुत्र दुर्योधनमें ये लक्षण हैं इस लिये वह मूढ़ है) ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य प्रेमहीन मनुष्योंको चाहता है और अपनेसे प्रेम करनेवालेको त्यागता है तथा जो बलवान्से द्वेष करता है उसको विद्वान् पुरुष मूढबुद्धि कहते हैं अर्थात् कर्ण आदिका तुम्हारे ऊपर प्रेम नहीं है, परन्तु तुम्हारा उनके ऊपर प्रेम है और पांडव तुम्हारे ऊपर पूज्यभाव रखते हैं परन्तु तुम उनका अनादर करते हो तथा बलवान् राजा युधिष्ठिरसे तुम द्वेष कर बैठे हो इसलिये तुम मूर्ख हो ॥ ३७ ॥ जो पुरुष शत्रुके साथ मित्रता करता है और मित्रको द्वेष करके मार डालता है और खोटे काम करनेका आरम्भ करता है उसको पंडित मूढ़बुद्धि कहते हैं अर्थात् तुमने हितकारी मित्ररूप पांडवोंसे वैर करके उनको लाक्षाभवनमें जलाना आदि

चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥ ३९ ॥ श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्च्चति । सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ४०
अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते । अविश्वस्ते विश्वसिति मूढ़-चेता नराधमः ।४१। परं क्षिपति दोषेण वर्त्तमानः स्वयं तथा । यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः॥४२॥आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् । अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥ ४३ ॥
अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते । कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ४४ ॥ अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा । विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ।४५। एकः सम्पन्नमश्नाति

नीच काम किये हैं इस कारण तुम मूढ हो ॥ ३८ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ जो अपने करने योग्य कामको चाकरोंसे करवाता है औरसब कामों में शंका करता है तथा शीघ्र ही करनेके काममें देर लगाता है उसको मूढ जानो ॥ ३९ ॥ जो पितरोंका श्राद्ध नहीं करता है, देवताओंकी पूजा नहीं करता है, तथा जिसको हितैषी मित्र नहीं मिलता है उस को विद्वान् मूढ बुद्धि कहते हैं ॥४०॥ जो विना बुलाये भीतर घुसता है विना प्रश्नके बहुत बोलता है और विश्वासके अयोग्य मनुष्यमें विश्वास करता है उसको मूढ़ बुद्धि और नीच जानना।४१।जो दूसरे के दोष देकर उसकी निन्दा करता है और अपने आप तैसा ही (खोटा वर्त्ताव) करता है तथा जो शक्तिहीन होकर भी क्रोध करता है वह मनुष्य महामूढ है ॥ ४२ ॥ जो धर्म और अर्थसे रहित अपने बलको जाने विना तथा परिश्रम किये विना अलभ्य वस्तुको पाना चाहता है वह इस जगत्में मूढबुद्धि कहलाता है, अर्थात् मेरी बुद्धि कितनी है, उसको धर्म और अर्थकी सहायता है या नहीं इसका कुछ विचार न करके परिश्रम किये विना ही दुर्लभ पदार्थोंको पाने की आशा करना वृथा है अतः तुम अपनी शक्तिके ऊपर दृष्टि डालोगे तो मालूम होगा, कि—यह राज्य तुमने धर्मसे नहीं पाया है और तुम्हें पचना कठिन है ॥ ४३ ॥ हे धृतराष्ट्र ! जो शिक्षाके अपात्रको शिक्षा करता है; जो छिपकर रानियोंको भोगता है और कृपणोंकी सेवा करता है वह मूढबुद्धि कहलाता है ॥४४॥ जो मनुष्य बहुतसा धन, विद्या और गौरवको पाकर उद्धत बना नहीं फिरता है किन्तु सरल रहता है वह पण्डित कहलाता है ॥ ४५ ॥ जो पोषण करने योग्य मनुष्यको विभाग दिये विना अकेला आप ही स्वादिष्ट भोजन

वस्ते वासश्च शोभनम् । योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ४६
एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः । भोक्तारो विप्रमुच्यंते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥ ५७ ॥ एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता । बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम ॥ ४८ ॥ एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु । पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥ ४९ ॥ एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते । सराष्ट्रं

भोजन करता है और अकेला आप ही सुन्दर वस्त्रोंको धारण करता है उससे अधिक क्रूर कौन होगा ? ॥ ४६ ॥ एक मनुष्य पाप करता है, परन्तु उसके फलको वहुतसे पुरुष भोगते हैं, फल भोगने वाले पापसे छूट जाते हैं और कर्त्ता पुरुष पापके दोषसे दूषित रहता है तात्पर्य यह है, कि मनुष्य किसीके चित्तको दुखा कर एक वस्तु लाता है उस वस्तुको वहुतसे लोग भोगते हैं परन्तु उसके पाप का भागी चित्तको दुःखाने वाला ही होता है, तुम पुत्रोंके लिये जो कुछ करते हो उसके फलको ये भोगेंगे परन्तु पापके भागी तुम ही होओगे ॥ ४७ ॥ धनुषधारीका छोड़ा हुआ वाण एकको मारता है अथवा मारतेमें चूक जाता है परन्तु बुद्धिमान्की चलाई हुई बुद्धि तो राजा सहित देशका नाश करदेती है ॥४८॥ एक वस्तुसे दोका निश्चय करके तीन और चारको वशमें करो, पाँचका विजय करके छ को जानकर और सातको त्यागकर सुखी होओ, इस श्लोकमें वड़ा चमत्कार है एक तो क्रमसे एकसे सात तकके अंक हैं और उनमें नीतिशास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्र संक्षेपसे समाया हुआ है । नीतिपक्षमें एक बुद्धिकी सहायतासे क्या करने लायक है और क्या न करने लायक है, ऐसे दो प्रकारके कामका निर्णय करके साम, दाम, भेद और दंड इन चार उपायोंसे शत्रु मित्र और उदासीन इन तीनको वशमें करे, पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें रक्खै सन्धि विग्रह यान आसन संश्रय और द्वैधीभाव इन छः वस्तुओंको जानै और स्त्रीसंग जुआ शिकार मद्यपान क्रूरवाणी घोर दंड करना और वृथा धन खरच करना इन सात वस्तुओंका त्याग करो तो सुख पाओगे । अध्यात्मपक्षमें एक बुद्धिसे नाशवान् और अमर वस्तुका विचार करके शम दम उपशम और श्रद्धा इन चार वस्तुओंसे काम क्रोध और लोभको वशमें करके पाँच ज्ञानेंद्रियोंको वशमें करो क्षुधा तृषा शोक मोह जरा मृत्युके स्वरूपको जानो तथा पाँच इंद्रियें मन और बुद्धि इन सातोंके विषयोंका

सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ॥ ५० ॥ एकः स्वादु न भुञ्जी
थाश्चार्थान्न चिन्तयेत् । एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृय
एकमेवाद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे । सत्यं स्वर्गस्य सोपानं
पारस्य नौरिव ॥ ५२ ॥ एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोप
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥५३॥ सोऽस्य दोषो न म
क्षमा हि परमं बलम् । क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं
क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते ॥ ५४ ॥ शान्तिः

त्याग करो तो परमसुख पाओगे ॥ ४९ ॥ विषका रस एक पी
को ही मारता है और शस्त्र भी एकको ही मारता है परन्तु
का मन्त्र (गुप्तविचार) यदि सर्वसाधारणमें फैलजाय तो व
और प्रजासहित राजका नाश करडालता है ॥ ५० ॥ अकेला
दिष्ट पदार्थ न खाय,अकेला किसी विषयका विचार न करै,
मार्गमें न चलै और बहुतसे मनुष्योंके सोजाने पर अकेला
न रहे (तात्पर्य यह है, कि-कुछ काम करना हो तो दूसरेको
में लेलेय, क्योंकि-अकेलेको झंझट उठानी पड़ती है, जैसे कि-
मिष्टान्न खानेसे पातक लगता है इसलिये दूसरेको भी खवावे,
कामका अकेले विचार करनेसे उसका परिणाम ठीक २ समझ
आता है इसलिये उसमें दूसरेकी सम्मति अवश्य लेय, पर
जाते समय मार्गमें अकेला चले तो डर लगता है साथमें को
या लुटेरा लग जाता है तो वह अकेला देखकर धोखा देजा
सबके सोजाने पर अकेले जागनेसे यदि सोने वालोंमेंसे कि
कोई चीज खोजाय तो उसकी चोरी जागने वालेको लगती
लिये आप भी सोरहे ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! जैसे समुद्रके परले
पर जानेका साधन एक नौका है तैसे ही सत्यभाषण स्वर्गकी
है, एक अद्वितीय ब्रह्म मुक्तिका कारण है, इस बातको तु
जानते ॥ ५२ ॥ क्षमावान् पुरुषोंमें एक ही दोष होसकता है
दोष नहीं होसकता, क्योंकि-इस क्षमावान् पुरुषको दुर्जन
मानता है, परन्तु क्षमाको क्षमावानोंका अवगुण न जानो, क्य
क्षमा बड़ा भारी बल है, क्षमा असमर्थ पुरुषोंका एक गुण है
शक्तिमानोंका भूषणरूप है तथा क्षमा जगत्में वशीकरणरूप है
है, ऐसा कौनसा काम है जो क्षमासे सिद्ध नहीं होसकता ?
जिसके हाथमें क्षमारूपी खड्ग है दुर्जन उसका क्या कर स

करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः । अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥ ५५ ॥ अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् । एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा । विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥ ५६ ॥ द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव । राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ ५७ ॥ द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिल्लोके विरोचते । अब्रुवन् परुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥५८ द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ । स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥ ५९ ॥ द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषणौ । यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ ६० ॥ द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा । गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव

तृणरहित स्थानमें पड़ी हुई अग्नि अपने आप ही शान्त होजाती है अर्थात् क्षमावान् पुरुषके समीपमें दुर्जन पुरुष अपने आप अपनी दुर्जनताको छोड़कर ठण्डा पड़ जाता है ॥ ५५ ॥ क्षमारहित पुरुष अपने को तथा दूसरेको भी अवगुणोंमें डाल देगा, एक धर्म परमकल्याणरूप है और एक क्षमा उत्तम शान्ति रूप है, एक विद्या परम तृप्तिरूप है, और एक अहिंसा ही सुख देने वाली है ॥ ५६ ॥ सर्प जैसे बिलमें रहने वाले चूहोंको निगल जाता है तैसे ही पृथ्वी किसीसे विरोध न करने वाले (पराक्रमहीन) राजा और परदेशमें न विचरनेवाले ब्राह्मण इन दोनोंको निगल जाती है अर्थात् निर्बल राजाके राज्यको दूसरे छीन लेते हैं और घरमें पड़ा रहनेवाला ब्राह्मण भूखा मरता है ॥ ५७ ॥ इस लोकमें मीठी वाणी और दुर्जन का सन्मान न करना इन दो कामोंको करनेसे मनुष्य शोभा पाता है ॥ ५८ ॥ हे पुरुषसिंह ! स्त्रियें और मनुष्य ये दोनों जने दूसरेके ऊपर विश्वास रख कर काम करते हैं, जैसे कि-एक स्त्री जिसके ऊपर आसक्त होती है उसके ऊपर बहुतसी स्त्रियें आसक्त बनजाती हैं और एक मनुष्य जिसकी प्रतिष्ठा करता है उसकी बहुतसे मनुष्य प्रतिष्ठा करने लगते हैं, तात्पर्य है, कि-मनुष्योंमें भेड़ा चाल है, परमार्थका विचार नहीं करते, देखो तुम अपने बेटेके माने हुए कर्णका कितना मान करते हो ? ॥ ५९ ॥ जो निर्धन होकर भी अनेकों वस्तुओंकी इच्छा करता है और शक्ति न होने पर भी क्रोध करता है वह मनुष्य दुर्बल होजाता है, क्योंकि-ये वस्तुयें शरीरको सुखाने वाले तीखे काँटे हैं ॥ ६० ॥ गृहस्थ होकर उदासीन रहने वाला और

भिक्षुकः ॥ ६१ ॥ द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः । प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥ ६२ ॥ न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ । अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ६३ द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् । धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ ६४ ॥ द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ । परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥६५॥ त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ । कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ।६६।

भिखारी होकर बड़े २ काम करनेवाला ये दोनों जने उल्टे काम करने के कारण प्रतिष्ठा नहीं पाते हैं॥६१॥ हे राजन् ! जो शक्तिमान् होकर क्षमावान् है और दरिद्री होने पर भी दाता है ये दोनों पुरुष स्वर्गसे ऊपर रहते हैं (देखो पाण्डव शक्तिमान् हैं तो भी क्षमा किये बैठे हैं और राज्यसे भ्रष्ट होकर दरिद्रदशामें बैठे हैं तो भी ब्राह्मण आदिका सत्कार करते हैं) ॥६२॥ न्यायसे पाया हुआ धन अपात्रको देना और पात्रको नहीं देना, इन दोनोंको दुर्व्यवस्था जानो (तात्पर्य यह है कि—परिश्रमसे धन पाकर उसकी अच्छी व्यवस्था करना चाहिये, पात्रको देना और अपात्रको नहीं देना चाहिये, परन्तु तुम ऐसा नहीं करते देखो अयोग्य दुर्योधन आदिको देते हो और योग्य पाण्डवोंको नहीं देते यह व्यवस्था ठीक नहीं है ॥ ६३ ॥ धनवान् होकर कृपण होय और दरिद्र होकर गृहस्थी बनाबैठा हो और तपस्या न करता हो इन दोनोंको गलेमें मजबूत शिला बांधकर जलमें डुबोदेना चाहिये ॥ ६४ ॥ जो संन्यासी होकर योगविद्याको जानता है और जो रणमें सन्मुख जाकर मरता है ये दोनों पुरुष सूर्य-मण्डलको भेद कर ऊपरके लोकमें जाते हैं ॥ ६५ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! मनुष्योंको वशमें करनेके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ये तीन उपाय सुननेमें आते हैं, यह वेदवेत्ता ब्राह्मण जानते हैं तात्पर्य यह है कि— युद्ध अधम, दान मध्यम और साम उत्तम है, इस श्लोकमें कोई उपायके स्थानमें अपाय पद पढ़ते हैं,तो यह अर्थ होता है, कि—राज्य आदिका पानेका लोभ अधम, स्वर्ग आदिको पानेका लोभ मध्यम और मुक्तिको पानेका लोभ उत्तम है, विदुर धृतराष्ट्रसे कहते हैं, कि तुम दोनों दशामें अधम उपायका आश्रय लेकर काम करना चाहतेहो यह बड़ी भूल है, तुम उपायकी योजना करो अर्थात् पाण्डवोंके साथ सामसे सन्धि करो, युद्ध मत करो, युद्धमें दोनों ओरकी हानि है,

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः । नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ६७ ॥ त्रय एवाधमा राजन् भार्या दासस्तथा सुतः । यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥६८॥ हरणञ्च परस्वानां परदाराभिमर्षणम् । सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥६९॥ त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ ७० ॥ वरप्रदानं राज्यञ्च पुत्रजन्म च भारत । शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात् त्रीणि चैकञ्च तत् समम्॥७१॥ भक्तञ्च भजमानञ्च तवास्मीति च वादिनम् । त्रीनेताञ्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न

दोनों लोकमें भला चाहो तो इस कूटकर्मको छोड़ो ॥ ६६ ॥ हे राजन् उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकारके पुरुष होते हैं, इनको यथा योग्य तीन प्रकारके कर्मोंमें लगावे अर्थात् तुमने कर्ण आदि अधम पुरुषोंको ऊँचा काम सौंपा है, इस लिये तुम्हारे राज्यकी व्यवस्था ठीक नहीं है और इसमें अच्छा परिणाम नहीं निकलेगा ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! स्त्री, पुत्र और सेवक इन तीनको पराधीन जानो, क्योंकि ये जिसके पास रहते हैं उसके अधीन रहते हैं अर्थात् हे राजन् धृतराष्ट्र ! तुम्हारे जीते हुए तुम्हारा पुत्र दुर्योधन पराधीन है; इस लिये तुम चाहो युधिष्ठिरको राज्य देसकते हो, उसमें दुर्योधनको रोकनेका अधिकार नहीं है ।६८। पराये धनका हरण करना, परस्त्रीका सेवन करना और संबन्धियोंका त्याग करना ये तीन अवगुण नाश करने वाले हैं, अर्थात्—लोभ पराये धनका हरण कराता है, काम परस्त्रीका संग कराता है और मद संबन्धियोंका त्याग कराता है, इसलिए ये तीनों अवगुण त्यागने योग्य हैं, परन्तु तुमने तीनों ही अवगुणोंको स्वीकार किया है—पाण्डवोंके हिस्सेका राज्य दाब बैठे हो, द्रौपदीकी लज्जा लेनेका साहस करचुके हो और तुमने अपने सगे भतीजोंको त्याग दिया है, इस लिए तुम्हें बड़ी हानि उठानी पड़ेगी ॥६९॥ काम क्रोध तथा लोभ ये तीनों नरकके द्वार और आत्मस्वरूपको भुला देने वाले हैं इस लिए इन तीनोंको त्याग देय ॥ ७० ॥ हे भारत ! वरदान मिलना, राज्य मिलना और पुत्रका जन्म होना ये तीनों एक समान गिने जाते हैं अर्थात् इन तीनों बातोंसे एकसा सन्तोष होता है परन्तु शत्रुको दुःखमेंसे छुड़ाना इन एकत्रित तीनों बातोंमें शत्रुको आपत्ति से छुटाना सबसे श्रेष्ठ है ॥७१॥ अपना भक्त अपनी सेवा करता हुआ पुरुष और मैं तुम्हारा हूँ, ऐसा कहने वाला पुरुष ये तीन मनुष्य शरण

सन्त्यजेत् ॥ ७२ ॥ चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात्। अल्पप्रज्ञैः सहमन्त्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रैरलसैश्चारणैश्च । ७३ ॥ चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे। वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ७४ चत्वार्याह महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः। पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे ॥७५ ॥ देवतानाञ्च संकल्पमनुभावञ्च धीमताम् विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥ ७६ ॥ चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि । मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ ७७ ॥ पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः

में आवें तो विपत्तिकेसमयभी इनका त्याग न करें,(इसलिए तुम्हारे) भक्त बालक पाण्डव जो तुम्हारी शरणमें आये तो भी तुमने उनका अनादर किया, यह तुमने बहुत बुरा किया) ॥ महाबलवान् राजाको चार वस्तुएँ त्यागने योग्य कही हैं, और उन वस्तुओंको पण्डित जानते हैं. वे ये हैं क्षुद्रबुद्धि मनुष्यके साथ सलाह न करना दीर्घसूत्री मनुष्यके साथ विचार न करें, इर्षाके वेगमें भरे पुरुषके साथ गुप्तविचार न करें ॥ ७३ ॥ हे तात ! लक्ष्मीवान् गृहस्थके घर धर्मपर चार जने रहने चाहियें-बूढा संबन्धी, २ चतुर कुलीन पुरुष ३ दरिद्र मित्र और ४ सन्तानहीन बहिन बूढ़ा संबन्धी कुलके धर्म सिखाता है, चतुर कुलीन पुरुष बालकोंको आचार सिखाता है, दरिद्र मित्र हित की बातें कहकर उपदेश देता है और सन्तानरहित बहिन धनकी रक्षा करती है, इस दशामें घरमें अधर्म नहीं घुसने पाता है ॥ ७४ ॥ हे महाराज ! इन्द्रके प्रश्न करने पर बृहस्पतिने तत्काल फल देनेवाली वस्तु कही है उन चारोंको तुम मुझसे सुनो—१ देवताओंका मानसिक विचार २ बुद्धिमान्का प्रताप ३ विद्यावान्की विनय और ४ पापकर्मोंका नाश, ध्यान करने वाला, जो वस्तु चाहे, देवता तुरन्त दे देते हैं, बुद्धिमान्का प्रताप भी तुरन्त फल देता है, पढाहुआ पुरुष विनयी होय तो उसको उसका फल तुरन्त मिलता है और घोर पाप करने वाला तुरन्त नष्ट होजाता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ अग्निहोत्र मौनव्रत वेदाध्ययन और यज्ञ ये चार वस्तु अभय देनेवाली हैं परन्तु यदि मान के लिए कीजाएँ तो भय देनेवाली हैं, तात्पर्य यह है, कि-सच्चे अंतःकरणसे जो कुछ कियाजाता है वह सुखकारी होता है परन्तु जो बडा पानेके लिए किया जाता है वह पाखण्डरूप बनकर दुःखदायक होता

प्रयत्नतः । पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥ ७८ ॥ पंचैव पूजयन् लोके यशः प्राप्नोति केवलम् । देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥ ७९ ॥ पंच त्वनुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि । मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ॥ ८० ॥ पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम् । ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ८१ ॥ षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता। निद्रा तंद्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥ ८२ ॥ षडिमान् पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे । अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥८३॥ अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम् । ग्रामकामञ्च गोपालं वनकामं च नापितम्८४षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन । सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥ ८५ ॥ अर्थागमो नित्यमरोगिता

है ॥ ७७ ॥ हे भरतवंश श्रेष्ठ ! पिता, माता अग्नि परमात्मा और गुरु ये पाँचों अग्निरूप हैं इनकी सेवा प्रयत्नके साथ करनी चाहिये ॥७८॥ देवता, पितर, मनुष्य, भिक्षुक और अतिथि इन पाँचको जो मनुष्य सत्कार करता है वह जगत्में यश पाता है ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! तुम जहां जहां जाओगे तहाँ २ तुम्हारे मित्र, शत्रु, मध्यस्थ और पोषण करने योग्य बड़े और सेवक ये पाँच तुम्हारे पीछे २ आवेंगे ॥ ८० ॥ मनुष्य पाँच इन्द्रियों वाला है, उनमेंसे यदि एक इन्द्रिय भी विषयासक्त होजाय तो उससे बुद्धिका नाश होजाता है, जैसे कि–चमड़ेकी डोलची आदिमें एक छिद्र होजाय तो उसमेंका सब पानी निकल जाता है तात्पर्य यह है कि-जो मनुष्य पाँच इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रियके द्वारा भी विषयलम्पट होजाता है तो मनुष्यकी बुद्धि नष्ट होजाती है फिर जिसकी पाँचों इन्द्रियें विषयासक्त होजायँ उसका कहनाही क्या है ? ॥ ८१ ॥ जगत्में ऐश्वर्य पानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता ये छः अवगुण त्याग देने चाहियें ॥ ८२ ॥ समुद्रमें टूटी हुई नौकाकी समान पुरुषको ये छः पदार्थ त्यागदेने चाहियें ? उपदेश न देनेवाला आचार्य, मूर्ख ऋत्विज (पाधा), प्रजाकी रक्षा न करनेवाला राजा, अप्रिय बोलनेवाली स्त्री ग्राममें रहनेकी इच्छा करनेवाला ग्वाला औरवनमें रहना चाहनेवाला नाई ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ सत्य, दान, सावधानी, प्रेम क्षमा और धीरज ये छः गुण पुरुषको कभी नहीं त्यागने चाहियें ॥८५॥ हे राजन् ! धनकी आमदनी नित्यनीरोगता, प्रिय और प्रिय बोलनेवाली स्त्री, वशमें रहने

च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च। वश्यश्च पुत्रोऽर्थकारी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥८६॥षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति। न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः॥८७॥ षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः॥८८॥ प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः। राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः॥८९॥ षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्। गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः॥९०॥ षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्॥९१॥ नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्। नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्॥९२॥

वाला पुत्र और पुरुषार्थ करानेवाली विद्यायें छः वस्तुएं मनुष्य लोक में सुख देनेवाली हैं॥ ८६॥ जो मनुष्य सदा अपने शरीरमें रहने वाले क्रोध, शोक, मोह, मद और मान इन छःको वशमें रखता है वह जितेन्द्रिय है और उसको पातक नहीं लगता है, फिर उसका बुरा तो होगा ही कैसे ? ॥८७॥ चोर सदा असावधानीसे जीविका चलाते हैं, वैद्य रोगियोंसे आजीविका करते हैं, स्त्रियें (व्यभिचारिणी) कामियोंसे आजीविका करती हैं, पुरोहित पोधा यजमानोंसे आजीविका करते हैं, राजा विवाद करनेवालोंसे आजीविका करते हैं और पंडित मूर्खोंसे आजीविका करते हैं, ये छः इन छहोंसे आजीविका करते हैं, इनकी आजीविकाका उपाय सातवाँ नहीं है ॥८८॥८९॥गौ, नौकरी, खेती, स्त्री,विद्या, और शूद्रके साथ संगति इन छःके ऊपर दो घड़ी भी दृष्टि न रक्खी जाय तो ये नष्ट होजाते हैं, तात्पर्य यह है कि-बार २ देखनेसे गौ वशमें रहती है, यदि दो घड़ीको भी नौकरी पर ध्यान न दो तो स्वामी रुष्ट होकर अलग करदेता है,यदि किसान खेतीको न देखै तो पशु आदिके द्वारा नष्ट होजाती है, स्त्रीको न डाटो तो बिगड़जाती है, विद्याको न फेरते रहो तो ध्यानसे उतर जाती है, शूद्रके समागम पर ध्यान न रक्खा जाय तो अपनेको हानि पहुँच जाती है९०ये छः सदा अपमान करते हैं,पढ़ेहुए विद्यार्थी पहिले उपकार करनेवाले गुरुका अपमान करते हैं, विवाह किया हुआ पुत्र माताका अपमान करता है,काम शांत होनेपर पुरुष नारीका अपमान करता है, कार्य सिद्ध होजाने पर मनुष्य काम सिद्ध होनेकी युक्ति बताने वालेका अपमान करता है, समुद्रके पार पहुँचने वाला नौका

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः । स्वप्रत्यया-वृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥ ९३ ॥ ईर्षुर्घृणी न सन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः । परभाग्योपजीवी च षडेते नित्य-दुःखिताः॥९४॥ सप्तदोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः । प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः॥९५॥स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्-पारुष्यं च पञ्चमम् । महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥९६॥ अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः । ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥ ९७॥ ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति । रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति ९८ नैनान् स्मरति कृत्येषु याचित-श्चाभ्यसूयति एतान् दोषान् नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्वा विसर्जयेत्९९

का अपमान करता है, और रोगी अच्छा होजाने पर वैद्यका अना-दर करता है ॥ ९१-९२ ॥ हे राजन् ! नीरोग रहना, किसीका ऋणी न होना, सदा अपने देशमें रहना, सज्जन पुरुषोंका संग, अपने अनु-कूल आजीविका तथा भयरहित निवासस्थान ये छः मनुष्यलोकके सुख माने जाते हैं (तुममें ये छः बातें नहीं हैं इसकारणही तुम सुख नहीं पाते हो) ॥ ९३ ॥ दूसरेकी उन्नतिको न सहने वाला, दयालु, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शंका रखनेवाला और दूसरेके प्रारब्ध पर जीनेवाला इन छः जनोंको सदा दुःखी जानना ॥ ९४ ॥ स्त्री, जुआ मृगया (शिकार), मद्यपान, कठोर वाणी, भयंकर दंड और धनका नाश करानेवाला काम ये दुःखदायक सात दोष राजाको सदा त्यागने चाहिये, क्योंकि-जिनकी जड़ मजबूत होती है ऐसे समर्थ राजाओं को भी प्रायः इन सात व्यसनोंमेंका एक व्यसन भी यदि प्रबल हो जाय तो विपत्ति उठानी पड़ती है ॥९५-९६॥ पहिले १ ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है २ ब्राह्मणोंके साथ लड़ाई करता है ३ ब्राह्मणोंका धन छीन-लेता है, ४ ब्राह्मणोंको मारना चाहता है, ५ ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, ६ उनकी प्रशंसाको स्वीकार नहीं करता है; ७ किसी भी काममें ब्राह्मणोंको याद नहीं करता है ८ और ब्राह्मण माँगने जाता है तो उस के अवगुण निकालता है, आगेको नष्ट होनेवाले मनुष्यमें पहिले ये आठ कारण होते हैं, ऐसा जानकर पंडित मनुष्यको ये आठ अवगुण त्याग देने चाहियें ॥ ९७—९८ ॥ हे भरतवंशी ! मित्रोंका समा-गम, बहुतसे धनकी आमदनी, पुत्रके साथ समागम, विषय सुखकी प्राप्ति, समय पर प्रियभाषण, अपना अभ्युदय, इच्छित

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत । वर्त्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव सुसुखान्यपि॥१००॥ समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः । पुत्रेण च परिष्वङ्गः सन्निपातश्च मैथुने ॥ १०१ ॥ समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः । अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥१०२॥ अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च । पराक्रमं च बहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च १०३ नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पंचसाक्षिकम् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः४ दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् । मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥ १०५ ॥ त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी

वस्तुकी प्राप्ति और सज्जनोंकी सभामें सत्कार होना ये वर्त्तमान आठ सद्गुण अपने ही हैं और हर्षके माखनरूप हैं (परंतु हे धृतराष्ट्र! तुममें ये सद्गुण नहीं हैं, पहिले तो मित्रसमागम ही कहाँ है ? यदि है भी तो तुम उनकी बात कब मानते हो ? यदि सुन भी लेते तो उसके अनुसार काम नहीं करते हो, धनसम्पदा भी जितनी चाहिये उतनी नहीं है पुत्रोंके साथ तुम्हारा मेल प्रेमका नहीं है, पांडव भी तुम्हारे पुत्रसमान हैं, उनके साथ भी तुम्हारा मेल नहीं है :) ॥ १००-१०२ ॥ बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियोंको वशमें रखना, शास्त्रका ज्ञान, पराक्रम; थोड़ा बोलनेका स्वभाव,शक्तिके अनुसार दान करना और कृतज्ञता ये आठ गुण पुरुषोंको शोभा देते हैं १०३ इस शरीररूप घरमें नौ द्वार हैं तीन थंभ हैं पाँच साक्षी हैं और इसमें जीवनिवास करता है,जो विद्वान् इस घरको जानता है उसको महाब्रह्मज्ञानी जानो तात्पर्य यह है कि यह शरीर एक घरकी समान है जैसे घरमें द्वार होते हैं तैसेही शरीर में दो आँख, दो कान, दो नाकके छेद, मुख, गुदा, और मूत्रेन्द्रिय ये नौ द्वार हैं, जैसे घरमें टेकके लिये थंभे होते हैं तैसे ही शरीरमें अविद्या,काम और कर्म ये तीनखंभे हैं जैसे घरमें कोई साक्षी होता है तैसे ही शरीरमें शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच साक्षी हैं घरमें जैसे कोई रहा करता है तैसे ही शरीरमें जीव रहता है, ऐसे स्थूल शरीरको जो मनुष्य पहिचानता है वह बड़ा ज्ञानी माना जाता है ॥ १०४ ॥ हे धृतराष्ट्र ! दश जने धर्मको नहीं जानते हैं उनके नाम सुनो-१ मदिरा पीकर मतवाला रहनेवाला, २ विषयलंपट होनेसे व्याकुल रहने वाला, ३ धातुके दोषसे विकल हुआ ४ थका हुआ ५ क्रोधमें भरा हुआ ६ भूखा, ७ उतावला ८ लोभी, ९ डरपोक

च ते दश । तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्येत पण्डितः ॥ १०६ ॥ अत्रै-वोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतञ्चैव सुधन्वना ॥१०७॥ यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनञ्च। विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥ १०८ ॥ जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान् विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम् । जानाति मात्राञ्च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ॥ १०९ ॥ सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चिद्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम् । न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ॥ ११० ॥ प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिदुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः । दुःखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥ १११ ॥ अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः सन्धिं परदाराभिमर्षम् । दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव ॥११२ ॥ न संरम्भेणारभते त्रिवर्गमाकारितः

और १० कामी; इसलिये पण्डित इन दशका संग न करे १०५॥१०६ इस विषयमें असुरोंके राजा सुधन्वाने अपने पुत्रसे प्राचीन इतिहास कहा था, वह इसप्रकार है १०७ जो राजा काम और क्रोधका त्याग करता है,सुपात्रको धन देता है, ऊँच नीचको जानता है, शास्त्रको जानता है और झट काम करता है उसको सब राजे प्रणाम करते हैं८ जो राजा प्रजाको विश्वासी बनाना जानता है, जिसका अपराध मालूम हो उसको दण्ड देता है, अपराधके अनुसार दण्ड देनेका प्रमाण जानता है और जैसे दण्ड करना जानता है तैसे ही क्षमा करना भी जानता है उस राजाकी सेवा पूर्ण लक्ष्मी करती है ।१०९। जो राजा किसी भी परम दुर्बलका अपमान नहीं करता है,सावधान होकर शत्रुके छिद्रोंको जाननेके लिये बुद्धि लगाकर वर्त्ताव करता है बलवान्के साथ कलह करना नहीं चाहता है और समय पड़ने पर पराक्रम करता है उसको धीर जानो ॥ ११० ॥ जो राजा आपत्ति आ पड़ने पर भी कभी शोक नहीं करता है, सदा सावधान रह कर उद्योग करना चाहता है और समय पर दुःखको भी सह लेता है उस राजाको बड़ा भारी महात्मा जानो और वह शत्रुओंको तो मानो जीत ही चुका है ॥ १११ ॥ जो राजा घरमेंसे निकल कर परदेशमें वृथा नहीं घूमता है, पापियोंके साथ मित्रता नहीं करता है, परस्त्रियोंका सेवन नहीं करता है, पाखण्ड नहीं रखता है, चोरी नहीं करता है, चुगलखोरी नहीं करता है और मदिरा नहीं पीता है वह सदा सुखी

शंसति तत्क्षमेव । न मित्रार्थे रोचयते विवादं ।न पूजितः कुप्यति चाप्यमूढः ॥ ११३ ॥ योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रतिभाव्यं करोति । नात्याह किंचित् क्षमते वै विवादं सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम् ॥ ११४ ॥ यो नोद्धतं कुरुते जातु वेशं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान् । न मूर्छितः कटुकान्याह किंचित् प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि ॥ ११५ ॥ न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति । न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥ ११६ ॥ न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः । दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥११७॥ देशाचारान् समयान् जातिधर्मान् बुभूषते यः स परावरज्ञः। स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥ ११८ ॥ दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं

रहता है ॥ ११२ ॥ जो क्रोध करके धर्म, अर्थ और कामका आरम्भ नहीं करता है, कोई बुलाकर पूछे तो उससे यथार्थ बात कहता है, मित्रके लिये झूठा विवाद नहीं करता है, और अपना सत्कार न होने पर भी क्रोध नहीं करता है उसको पण्डित जानो ॥ ११३ ॥ जो ईर्षा नहीं करता है,दया रखता है,समर्थ होनेपर भी किसीके साथ विरोध नहीं करता है, जो मर्यादासे बाहर कुछ बात नहीं कहता है और कोई विवाद करे तो उसको सह लेता है ऐसा मनुष्य सर्वत्र प्रशंसा पाता है ॥ ११४ ॥ जो कभी अपना उद्धत पहनावा नहीं रखता है किन्तु सादे वस्त्र पहरता है, पराक्रमी होने पर भी दूसरेकी निन्दा नहीं करता है, अपनी प्रशंसा नहीं करता है, दुःखको सह लेता है परन्तु किसीसे जरा भी कड़वी बात नहीं कहता है वह मनुष्य सदा सबको प्यारा लगता है ॥ ११५ ॥ जो शान्त हुए वैरको फिर नहीं उभारता है, गर्व नहीं करता है और पराक्रमहीन भी नहीं होजाता है, 'मैं दुर्गतिमें पड़ा हुआ हूँ' ऐसा मानकर अयोग्य काम नहीं करता उसको आर्य पुरुष उत्तम स्वभाव वाला कहते हैं ॥ ११६॥ जो मनुष्य अपनेको सुख मिलने पर अधिक हर्ष नहीं मानता है, दूसरेको दुःख मिलने पर प्रसन्न नहीं होता है और किसीको देकर पछतावा नहीं करता है उस मनुष्यको सत्पुरुषकेसे श्रेष्ठ स्वभाव वाला जानो ११७ जो देशके आचारोंको-रीतियोंको, भाषाओंके भेदोंको, औरब्राह्मण क्षत्रियादि जातियोंके धर्मोंको जानता है, तथा जिसको उत्तम,मध्यम और अधमका विवेक है वह ऐश्वर्यको भोगनेकी इच्छा करता हुआ

राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् । मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत्स प्रधानः ॥ ११९ ॥ दानं होमं दैवतं मङ्गलानि प्रायश्चित्तान् विविधाँल्लोकवादान् । एतानि यः कुरुते नैत्यकानि तस्योत्थानं देवताराधयन्ति ॥ १२० ॥ समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथां च । गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥१२१॥ मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा । ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः १२२ चिकीर्षितं विप्रकृतञ्च यस्य नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित् । मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः।१२३। यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः अतीव स ज्ञायते

जहाँ कहीं भी जाता है तहां ही सदा मनुष्योंके ऊपर प्रभुता करता है ॥ ११८ ॥ दम्भ, मोह मत्सर (डाह) पापकर्म, राजाका शत्रु, चुगल खोर, समूहके साथ वैर और मत्त, उन्मत्त तथा दुर्जनोंके साथ विवाद इतनी वस्तुओंको जो बुद्धिमान् पुरुष त्याग देता है वह प्रधान माना जाता है ॥ ११९ ॥ मनुष्य यदि दान, होम, देवताओंका पूजन आदि मङ्गलकार्य, प्रायश्चित्त और अनेकों प्रकारकी लौकिक बातें इतनी बातोंको सदा करता है तो देवता भी उसकी उन्नति चाहते हैं १२० जो अपने समानके साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार, और बात चीत करता है तथा अपनेसे नीचोंके साथ ये बातें नहीं करता है और जो गुणोंमें अपनेसे अधिक उत्तम हो उसको पुरोहित वा गुरु करता है उसको विद्वान् और उसकी नीतिको परमोत्तम समझो ॥ १२१ ॥ जो मनुष्य अपने आश्रित कुटुम्ब आदिको बांटकर अपने आप थोड़ा खाता है और बहुतसा काम करनेके पीछे थोड़ी देरको सोता है और याचना करने पर शत्रुओंको भी देता है ऐसे ज्ञानी पुरुषको दुःख छोड़ कर चले जाते हैं ।१२२। जिसके मनमें विचारे हुए कामको तथा जिसके किये हुए अपमानको दूसरे मनुष्य जरा भी नहीं जान सकते हैं उन मनुष्योंके भले प्रकार किये हुए गुप्त विचारमेंसे जरासी बात को भी हानि नहीं पहुँचती है ॥१२३॥ सकल प्राणियोंको शान्ति देने में लगा हुआ, सच्चा, कोमल, शुद्ध और उत्तम खानमें उत्पन्न हुआ निर्मल महामणि जैसे मणियोंमें शोभा पाता है तैसे ही सब प्राणियों का भला करनेमें चित्त लगाने वाला, कोमल, सबका आदर सत्कार करने वाला शुद्धस्वभाव और निर्मल पुरुष अपनी जातिमें बड़ी शोभा

ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः ॥१२४॥ य आत्मनापत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत । अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते ॥१२५॥ वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पांडोः पुत्राः पञ्च पंचेन्द्रकल्पाः । त्वयैव बाला वर्द्धिताः शिक्षिताश्च तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय ॥ १२६ ॥ प्रदायैषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः । न देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसित्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ॥ १२७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीति-
वाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । जाग्रतो दह्यमानस्य यत् कार्यमनुपश्यसि । तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥१॥ त्वं मां यथा वद्विदुर प्रशाधि प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः । यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम् ॥ आपाशङ्की पापमेवानुपश्ये न पृच्छामि

पाता है ॥१२४॥ जो मनुष्य दूसरोंके जाननेमें न आने पर भी अपने खोटे कामसे लज्जित होता है वह सब मनुष्योंका गुरु बनता है, परम तेजस्वी तथा प्रसन्न मनवाला और सावधान रहता हुआ वह पुरुष तेजसे सूर्यकी समान शोभा पाता है ॥ १२५ ॥ शापसे मरणको प्राप्त हुए राजा पाण्डुके इंद्रकी समान पांच पुत्र वनमें उत्पन्न हुए थे हे धृतराष्ट्र ! उन बालकोंको तुमने ही पाला और विद्या पढ़ाई थी, वे बालक आपकी आज्ञा मानते हैं । १२६ । हे तात ! हे नरेन्द्र ! उन बालकोंको राज्यका उचित भाग देकर प्रसन्नतासे पुत्रों सहित सुखी रहो, ऐसा करनेसे देवताओंमें और मनुष्योंमें कोई भी तुम्हारे ऊपर पक्षपातीपनेका दोष नहीं लगावेगा ॥ १२७ ॥ तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३३।

धृतराष्ट्र बोले, कि-हे तात विदुर ! मुझे निद्रा नहीं आती है और मैं चिंतारूप अग्निसे जलता हूँ, अब तुम जो काम मेरे योग्य करने हो उसको मुझसे कहो क्योंकि—तुम धर्म और अर्थशास्त्रमें निपुण हो ॥१॥ हे महाबली विदुर! युधिष्ठिरने अपनी बुद्धिसे जो कुछ करने का निश्चय किया हो वह तुम मुझसे कहो और जो काम कौरवोंके लिये परम हित और कल्याणकारी हो वह भी बताओ ॥ २ ॥ हे व्यवहारकुशल ! मुझे शंका होती है, कि—आगेको हमारे ऊपर दुःख आकर पड़ेगा, और मैं हरसमय जिस आगेको आनेवाले पापरूप दुःख को देखा करता हूँ उससे चित्तमें घबड़ाकर मैं तुमसे बूझरहा हूँ इस

त्वां व्याकुलेनात्मनाहम् । कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥ ३ ॥ विदुर उवाच । शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् । अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत् पराभवम् ॥४॥ तस्माद्वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरून् प्रति । वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ५ ॥ मिथ्योपेतानि कर्माणि सिद्ध्येयुर्यानि भारत । अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥६॥ तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति । उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः॥७॥ अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु । सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥ ८ ॥ अनुबन्धञ्च संप्रेक्ष्य विपाकंचैव कर्मणाम्। उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥९॥ यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये । कोशे जनपदे दंडे न स राज्येऽवतिष्ठते.॥१०॥ यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति । युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति ॥ ११ ॥ न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्त्तितव्यमसांप्रतम् ।

कारण युधिष्ठिरने अपने मनमें जो विचार किया हो सो सब तुम मुझे ठीक २ बताओ ॥ ३ ॥ विदुर बोले, कि हे धृतराष्ट्र ! जो जिस मनुष्यकी उन्नति चाहता हो वह उस मनुष्यके विना पूछे भी उससे उसका शुभ वा अशुभ और प्रिय वा अप्रिय भी कहदेय ॥ ४ ॥ इस कारण हे राजन् ! कौरवोंका हित करनेवाला, कल्याणकारी तथा धर्मस्वरूप जो वचन मैं तुमसे कहता हूँ उसको सुनो॥५॥ हे भारत ! जो जो काम कपटसे अथवा द्यूत आदि खोटे उपायोंसे सिद्ध होते हों उन कामोंमें तुम ध्यान न दो ॥६॥ तैसेही जिसके उपाय कहे हों ऐसा काम यदि उपाय करने पर भी सिद्ध न होय तो बुद्धिमान् पुरुष उससे अपने मनमें ग्लानि न माने ॥ ७ ॥ प्रयोजनके कामोंमें प्रयोजन सिद्ध होनेकी वाट देखें और प्रयोजनका निश्चय करके ही कामका आरम्भ करें, विना विचारे सहसा कोई काम न करें ॥ ८ ॥ कामके प्रयोजन और परिणामको पहिले जानलेय फिर अपनी इच्छाके अनुसार उद्योग करें न या न करें ॥९॥ जो राजा अपनी दशाको नहीं जानता है तथा स्थान, वृद्धि, हानि खजाना देशकी आवादी और दण्ड देनेके नियम को नहीं जानता है वह राजा राज्य सिंहासन पर बहुत दिनों तक नहीं टिक सकता ॥ १० ॥ परन्तु जो राजा ऊपर कहे हुए विषयोंको जैसा शास्त्रमें लिखा है तैसा ठीक २ जानता है तथा धर्म और अर्थ को जाननेमें सावधान रहता है वह राजा राज्यको पाता है ॥ ११ ॥

श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥१२॥ भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम्। लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥१३॥ यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्। हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥१४॥ वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः। स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥ १५ ॥ यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्। फलाद् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥ १६ ॥ यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः। तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥ १७ ॥ पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्। मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥ १८ ॥

'मुझे राज मिलगया' ऐसा समझ कर अनुचित रीतिसे वर्त्ताव न करें क्योंकि-जैसे बुढ़ापा सुन्दररूपका नाश करदेता है तैसा ही अविनय उद्धतपना लक्ष्मीकानाश करदेता है१२ मछली भोजनके उत्तम पदार्थ से ढकेहुए लोहेके कांटोंको लोभसे निगलजाती है परंतु आगेपीछेका विचार नहीं करती है (तात्पर्य यह है कि-तुमने मछलीकी समान एक साथ राज्यको अपने वशमें करलिया है,आगेपीछेका कुछ विचार नहीं किया) इस लिये यह तुमको पच नहीं सकता किंतु तुम्हारी मछलीकीसी गति होगी ॥ १३ ॥ जो अपनी उन्नति चाहै उसको उचित है, कि-जितना निगलनेकी शक्ति हो उतना ही निगले, जो निगलने पर पचसकै और जो परिणाममें हितकारक होय वही खाय ॥ १४ ॥ जो मनुष्य वृक्षके कच्चे फलोंको तोड़ता है, वह उन फलोंमेंसे रस नहीं पाता है तथा उस वृक्षका बीजभी नष्ट होजाता है ॥१५॥ जो मनुष्य समय पाकर बड़े हुए और पके हुए फलोंको वृक्षमेंसे तोड़ता है वह उस फलमेंसे रस पाता है और उस फलमेंके बीजमेंसे फिर फल पाता है ॥ १६ ॥ जैसे भौंरा फूलोंकी रक्षा करता हुआ उनमेंसे मकरन्दको लेलेता है, तैसे ही बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि—मनुष्योंकी रक्षा करता हुआ उनसे धन लेलेय, तात्पर्य यह है कि राजा प्रजासे धन तो लेय परन्तु उसमें प्रजाका नाश करके अत्याचारसे न लेय, जैसे कि भौंरा फूलोंको विना तोड़े और नष्ट किये विनाही उनमेंसे रस इकट्ठा करलेता है, ॥ १७ ॥ जैसे माली बगीचेमेंके पेडोंमेंसे फूलोंको बीन लेता है, उन वृक्षोंकी जड़को नहीं काटता है ऐसा ही वर्त्ताव राजाको प्रजाके साथ करना चाहिये, कोयले बनाने वालेकी समान वर्त्ताव नहीं करना चाहिये तात्पर्य यह है, कि यदि माली पेड़ों परसे

किन्तु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः । इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा ॥ १९ ॥ अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथाऽगताः । कृतः पुरुषकारो हि भवेद्येषु निरर्थकः ॥ २० ॥ प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः । न तं भर्त्तारमिच्छंति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ २१ ॥ कश्चिदर्थोन्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् । क्षिप्रमारभते कर्त्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥ २२ ॥ ऋजुः पश्यति यः सर्वं चक्षुषा नु पिबन्निव । आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः २३ सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद्दुरारुहः । अपक्वः पक्वसंकाशो न

फूल बीने और उनकी जडको काटडाले तो फिर उसकी फूलफलोंकी आमदनी ही बन्द होजाय, ऐसे ही राजा प्रजाका नाश करनेपर फैल पडता है तो उसकी आमदनी बन्द होजाती है, परन्तु माली फूलही तोड़ता है, जड नहीं काटता है; ऐसा ही वर्त्ताव राजा भी करे तो सम्पति पाता है, परन्तु जैसे कोयले बनाने वाला पुरुष वृक्षको जड से काटकर उसके कोयले बना डालता है तो उसके पास वह कोयले ही रहते हैं, फुलफल कुछ नहीं मिलते हैं, ऐसे ही जो राजा प्रजाको अत्याचारसे नष्ट करता है उसको सम्पत्ति नहीं मिलती है ।१८। इस कामको करनेसे मुझे क्या फल मिलेगा ? और न करनेसे क्या फल मिलेगा ? अथवा क्या हानि होगी ? ऐसा विचार करनेके अनन्तर पुरुष काम करे अथवा न करे ॥१९॥ कितने ही काम आरम्भ करने योग्य ही नहीं होते हैं जैसे कि—अधिक बलीके साथ वैरभाव कभी करनेयोग्य नहीं है,और कितने ही काम ऐसे होते हैं,कि-उनका कभी पार ही नहीं मिलता इस कारण इन दोनों प्रकारके कामोंमें किया हुआ परिश्रम वृथा ही जाता है ॥ २० ॥ जिस राजाका प्रसन्न होना निष्फल है और जिस राजाका क्रोध करना भी निष्फल है, उसकी प्रजा उसको अपना स्वामी बनाना नहीं चाहती, जैसे कि—स्त्रियें नपुंसक पुरुषको अपना पति बनाना नहीं चाहती हैं ॥ २१ ॥ बुद्धिमान् पुरुष थोड़े उपायमें बडा फल देनेवाले कामोंको करनेका शीघ्र ही आरम्भ करदेता है और ऐसे कामोंमें विघ्न नहीं डालता है ।२२। जो राजा प्रेम भरे नेत्रसे पीता हुआसा चारों ओरको कोमल दृष्टिसे देखता है और मौन होकर बैठा रहता है उसके ऊपर प्रजाप्रेम करती है२३ जो वृक्ष उत्तम२ फलोंसे भराहुआ होने पर भी फलरहित होता है फलयुक्त होनेपर भी कठिनतासे ऊपर चढ़ने योग्य प्रतीत होता है

तु शीर्यंत कर्हिचित् ॥ २४ ॥ चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् । प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥२५॥ यस्मात्त्रस्यंति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव । सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥ २६ ॥ पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा । वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंसयत्यनये स्थितः ॥ २७ ॥ धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्द्धते भूतिवर्द्धिनी ॥ २८ ॥ अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मञ्चानुतिष्ठतः प्रति संवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥ २९ ॥ य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने । स एव यत्नः कर्त्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥ ३० ॥ धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परि-

---

तथा पका हुआ न होने पर भी पका हुआसा दीखता है वह वृक्ष कभी नष्ट नहीं होता है (ऐसे ही जो वाणीसे तथा दृष्टिसे प्रेम दिखाने वाला होय वह यदि धनधान्य न देता हो तो भी लोग उसके प्रेम करते हैं ऐसे ही धन देनेकी आशा देनेपर भी लोग प्रीति करते हैं तैसेही भीतरसे चाहे कच्चापन नहो परंतु वाहरके भपकेसे जिसकी गंभीरता दीखती हो उस राजासे लोग प्रेम करते और वह कभी किसीके वश में होकर राज्यभ्रष्ट नहीं होता है ॥ २४ ॥ जो राजा चक्षु, मन वाणी और दान इन चारोंसे प्रजाको राजी रखता है, उस राजाके ऊपर प्रजा प्रसन्न रहती है ॥ २५ ॥ जैसे शिकारीसे हिरन भयभीत होते हैं तैसे ही जिस राजासे सब प्रजा भय मानती है, वह राजा समुद्रपर्यंत की पृथ्वीको पाकर भी राज्यभ्रष्ट होजाता है ॥२६॥ राजा अपने बाप दादेके राज्यको अपने पुरुषार्थसे पाजाने पर भी यदि अन्याय करने लगे तो जैसे वायु बादलोंमें मिलकर उनका नाश कर देता है तैसे ही अन्यायी राजाका नाश कर देता है ॥ २७ ॥ पहिले समयमें सत्पुरुषोंने जिस धर्मका आचरण किया है उस धर्मका आचरण करने वाला राजा धनसे भरी हुई और ऐश्वर्यको बढ़ाने वाली भूमिका स्वामी होता है ॥ २८ ॥ जो राजा धर्मको छोड़ कर अधर्मका आचरण करता है उसकी भूमि अग्निमें डाले हुए चमड़ेकी समान सुकड़ जाती है और अन्तमें नष्ट होजाती है ॥ २९ ॥ शत्रुके देशको नष्ट भ्रष्ट करनेके लिए जो उद्योग किया जाता है, वह उद्योग अपने राज्यकी रक्षा करनेके लिए करना चाहिए ॥ ३० ॥ धर्मसे राज्यको प्राप्त करे और धर्मसे ही राज्यका पालन करे जो इसप्रकार धर्मसे लक्ष्मीको प्राप्त करता है, वह लक्ष्मी उस राजाको छोड़कर नहीं जाती है और

पालयेत् । धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥ ३१ ॥ अप्युन्मतात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः । सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥ ३२ ॥ सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः । संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा ॥ ३३ ॥ गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः । चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ ३४ ॥ भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा । अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदन्त्यपि ॥ ३५ ॥ यदतप्तं प्रणमति न तत् सन्तापयन्त्यपि । यच्च स्वयं नतं दारु न तत् सन्तापयन्त्यपि ३६ एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे । इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥३७॥ पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः । पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥ ३८ ॥ सत्येन रक्ष्यते धर्मो

वह राजा नष्ट नहीं होता है ॥ ३१ ॥ जैसे पत्थरमेंसे सोना निकाल लिया जाता है तैसे ही पागल बकवादी और निष्प्रयोजन बातें करने वाला बालक इनकी बातोंमेंसे सारभूत कामकी बात लेलेय ॥ ३२ ॥ शिलका भोजन करनेवाला जैसे काटे हुए खेतमेंसे दाने बीन लेता है तैसे ही धीर मनुष्य अपने माता पिता गुरुके पण्डिताई भरे वचनों मेंसे श्रेष्ठ वचनोंको खोज लेय और वचनोंसे सत्कर्मोंका पता पाकर उनका आचरण करे ॥ ३३ ॥ गौएँ सूँघनेसे देखती हैं (सूँघ कर बच्चेको पहचान लेती हैं) ब्राह्मण वेदसे देखते हैं (वेदके अध्ययन से अलौकिक वस्तुओंको जान सकते हैं) राजा दूतोंके द्वारा देखते हैं (सर्वत्रके समाचारको जानते हैं) और दूसरे पुरुष नेत्रोंसे देखते हैं ॥३४॥ हे धृतराष्ट्र ! जो गौ बड़े कष्टसे दुहने देती है वह बड़ा कष्ट पाती है और हे राजन् ! जो गौ सहजमें ही दुहा लेती है उसको कोई भी दुःख नहीं देता है ॥ ३५॥ जो विना तपाये हुए ही नम सकता है उसको अग्निमें कोई नहीं तपाते हैं और जो लकड़ी अपने आप नमी हुई होती है उसको भी कोई नहीं तपाते हैं ॥३६॥ इस उपमाके अनुसार धीर पुरुष बलवान्को प्रणाम करता है वह इन्द्रको प्रणाम करता है (तात्पर्य यह है, कि—बलवान् क्षत्रिय विराटरूप परमात्माकी भुजा हैं और इन्द्रको भुजाओंका देवता माना है इसकारण बलवान् क्षत्रियको किया हुआ प्रणाम इन्द्रको पहुँचता है) ॥३७॥ पशुओंकी सहायक वर्षा है, राजाओंके सहायक मन्त्री हैं, स्त्रियोंका सहायक पति और ब्राह्मणोंका सहायक वेद है ॥ ३८ ॥ सत्य बोलनेसे धर्मकी रक्षा

विद्या योगेन रक्ष्यते । मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥ ३९ ॥ मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः। अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचेलतः ॥ ४० ॥ न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः । अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥ ४१ ॥ य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये । सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥ ४२ ॥ अकार्यकरणाद्भीतः कार्याणां च विवर्जनात् । अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन तत्पिबेत् ॥ ४३ ॥ विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः । मद एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥ ४४ ॥

होती है, अभ्यास करनेसे विद्याकी रक्षा होती है, शरीरको मलकर न्हानेसे रूपकी रक्षा होती है और सदाचरणसे कुलकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ तोल कर भरनेसे अन्नकी रक्षा होती है, प्रतिदिन फेरनेसे घोड़ेकी रक्षा होती है, बार २ देखभाल रखनेसे गौओंकी रक्षा होती है, मैले फटे वस्त्रोंसे स्त्रियोंकी रक्षा करे अर्थात् स्त्रियोंको मैले फटे वस्त्र न पहरने देय ॥ ४० ॥ मेरी समझमें अच्छे कुलका होने पर भी जो मनुष्य दुराचरणी होता है वह आदर करने योग्य नहीं होता है, परन्तु नीच कुलमें जन्मा हुआ भी मनुष्य यदि सदाचरणी होय तो वह उत्तम गिना जाता है सदाचरण ही उत्तमता का हेतु है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य दूसरेके धनको देखकर डाह करता है दूसरेके रूप और पराक्रमको देखकर जलता है, दूसरेके कुल और वंशकी ईर्षा करता है, दूसरेके सुख सौभाग्यकी ईर्षा करता है और दूसरेका आदर सत्कार होता हो उसको देख कर जलता है उसको ऐसी पीड़ा हुआ करती है, कि-जिसका अन्त ही नहीं मिलता ४२ जो मनुष्य न करने योग्य कामको करनेसे डरता है, जो मनुष्य करने योग्य कामको छोड़नेसे डरता है जो सिद्धि होनेसे पहिले गुप्त बात के प्रकट होनेसे डरता है और जिसको पीने पर मद होजाय उस मादक पदार्थको नहीं पीता है वह मनुष्य सुखी होता है॥४३॥ विद्या का मद, धनकामद औरतीसरा कुटुंबका मदयह मद अभिमानियोंको होते हैं और सत्पुरुषोंके लिये ये ही दम होते हैं, तात्पर्य यह है, कि-पिछले श्लोकमें लिखे अनुसार केवल किसी मादकपदार्थको पीनेसेही मद नहीं होता है, किन्तु जितने ही बाहरके पदार्थ भी उपजा मद देते हैं, इस लिये विद्या धन और कुटुम्बका अभिमान नहीं करना चाहिये जो ऐसा करता है वह खोटा कहलाता है, सत्पुरुष तो मदको उलटा

असंतोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित्कार्ये कदाचन। तावन्न तस्य सुकृतं किंचित्कार्यं कदाचन। मन्यंते सन्तमात्मानमसंतमपि विश्रुतम् ॥४५॥ गतिरात्मवतां सन्तः संत एव सतां गतिः। असतां च गतिः संतो नत्वसंतः सतां गतिः ॥४६॥ जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता। अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥ ४७ ॥ शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति। न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥ ४८ ॥ आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्। तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा

करलेते हैं अर्थात् दम बना लेते हैं जिससे कि-इन्द्रियोंको वशमें रख कर मोक्षपर्यन्तके अधिकारी होजाते हैं ॥४४॥ असत् पुरुषोंका कभी कोई काम भला नहीं होता है, इसकारण ही वे असत् (खोटे) प्रसिद्ध होते हैं, तो भी यदि किसी समय कोई सज्जन उनसे किसी विषयमें सहायता माँगने लगे तो वे अपनेको बड़ा प्रतिष्ठित और सज्जन मानने लगते हैं परन्तु उनसे सत्पुरुषोंका कुछ काम नहीं सधता ॥ ४५ ॥ ज्ञानियोंका आश्रय (सहारा) सत्पुरुष हैं, सत्पुरुषोंका आश्रय भी सत्पुरुष हैं और असत् (दुष्ट) पुरुषोंका आश्रय भी सत्पुरुष हैं परन्तु असत्पुरुष सत्पुरुषोंका आश्रय नहीं होते तात्पर्य यह है कि—सत्पुरुष पाण्डव सदा तुम्हारा उपकार करेंगे, परन्तु असत्पुरुषोंकी मण्डलीसे घिरे हुए तुमसे पाण्डवोंका कुछ उपकार नहीं होसकता ॥ ४६ ॥ जो स्वच्छ सुन्दर वस्त्र पहरता है उसने मानो सभा जीतली, जिसके पास दूध देनेवाली गौ है उसने मिष्टान्नको जीत लिया, (क्योंकि-वह दही दूध खाकर ही सन्तुष्ट होजाता है) जिसके पास सवारी है उसने मार्गको जीत लिया (क्योंकि – वह सहजमें ही मार्गको काटदेता है) और जिसका अच्छा स्वभाव है उसने तो सबको ही जीतलिया पुरुषमें अच्छा स्वभाव हो यही सबसे बड़ी बात है, वह शील जिसका इस लोकमें नष्ट होजाता है उसका जीवन, धन और सगे सम्बन्धी सब निरर्थक हैं ॥४७—४८॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! (प्राय संसारी पुरुष ऐसा मानते हैं, कि-) धनी क्षत्रियोंका मांस उत्तम भोजन है, मध्यम स्थितिके लोगोंका गोरस उत्तम भोजन है, और दरिद्र मनुष्यों के लिये तेल उत्तम भोजन है (यह सब कल्पना धनके अभिमानी अविचारियोंकी है, शास्त्र तो सदा दधि दुग्धादि सात्विक भोजनको ही हितकारी बताता है) ॥४९॥ दरिद्र मनुष्य जो भोजन करते हैं वह

भुञ्जते सदा। क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ॥५०॥ प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते। जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ॥ ५१ ॥ अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम् उत्तमानान्तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम् ॥ ५२ ॥ ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः। ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते ॥५३॥ इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्त्तमानैरनिग्रहैः। तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव ॥५४॥ यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा। आपदस्तस्य वर्द्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट् ॥ ५५ ॥ अविजित्य यथात्मानममात्यान् विजिगीषते। अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ ५६ ॥ आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत्। ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं

उनको बड़ा स्वाद लगता है, क्योंकि—जो धनवान्को दुर्लभ है वह भूख ही भोजनको स्वाद बनाती है ॥ ५० ॥ हे राजन्! अधिकतर धनवानोंको खानेकी रुचि ही नहीं होती है, यदि होती भी है तो उन को पचता नहीं परन्तु गरीब तो लकड़ियें खाय तो वे भी पचजाती हैं ॥ ५१ ॥ अन्तिम श्रेणीके लोगोंको अपनी आजीविका जानेका भय होता है और मध्यम श्रेणीके लोगोंको मृत्युका भय होता है परन्तु उत्तम श्रेणीके लोगोंको तो अपमानका ही बड़ाभारी भय होता है अर्थात् गिरी हुई दशाके लोगोंको आजीविका जाना उनके मरनेकी समान है प्रतिष्ठित पुरुषको तो अपमान ही मरण है ॥५२॥ मद्य भांग आदि पीनेके मद ही मद हैं (क्योंकि-उनका नशा चढ़कर कुछ समय में उतर जाता है परन्तु) धनका मद बड़ा ही पापिष्ठ है, क्योंकि-जो ऐश्वर्यके मदसे मतवाला होरहा है वह जब तक गरीबीमें नहीं गिरता तबतक उसका नशा उतरता ही नहीं (कहावत है, कि-लदक रुपये वालेको एक बोतल मदिराका नशा रहता है)५३ स्वतंत्र हुए ग्रह जैसे नक्षत्रोंको पीड़ा देते हैं, तैसेही स्वतन्त्रतासे शब्द आदि विषयोंमें लिपटनेवाली इन्द्रियें इसलोकको कष्ट देती हैं ५४ सहजमें ही आत्मा को वशमें करनेवाली पांच इंद्रियोंके वशमें जो पुरुष होजाता है उस की विपत्तियें शुक्लपक्षमें चंद्रमाकी कलाओंकी समान बढ़तीहैं५५ जो राजा अपने आत्माको बिनाजीते मंत्रियोंको जीतनेका उद्योग करता है और मंत्रियोंको जीतेबिना शत्रुओंको जीतना चाहता है वह परा- धीन राजा नष्ट होजाता है ॥ ५६ ॥ इसलिये जो राजा पहिले अपने आत्माको शत्रुरूप मानता हुआ वशमें करता है वही राजा अपने

विजगीषते ॥ ५७ ॥ यस्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु । परी क्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥ ५८ ॥ रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः । तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥ ५९ ॥ एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् । अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ ६० ॥ अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थञ्चैवाप्यनर्थतः । इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥ ६१ ॥ धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः । श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ ६२ ॥ अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः । इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः ॥६३ आत्मनात्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः । आत्मा ह्येवात्मनो बन्धु

मंत्रियों और शत्रुओंको जीत सकता है और उसका उद्योग निष्फल नहीं होता ॥ ५७ ॥ जिसने इन्द्रियें वशमें करली हैं, आत्मा मन और बुद्धिको जीतलिया है, जो अपराधियोंको उचित दण्ड देता है, जो सब कामको विचार कर करता है और जो मनुष्य धीरज रखता है उसकी लक्ष्मी सेवा करती है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! पुरुषका शरीर एक रथरूप है, बुद्धि उसका सारथि है, इंद्रियें घोड़े हैं, इसलिये रथमें बैठा हुआ मनुष्य जैसे सिखाये हुए श्रेष्ठ घोड़े के द्वारा मार्गमें कुशलताके साथ सुखसे चलाजाता है तैसे ही आत्मा भी सावधान होकर इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ वर्त्ताव करता है तो इस संसारमार्गमें कुशलपूर्वक सुखसे चला जाता है ॥५९॥ जैसे शिक्षा न दिये हुए और वशमें न रहनेवाले घोड़े मार्गमें मूर्ख सारथीका नाश कर देते हैं तैसे ही वशमें न कीजायँ तो ये इन्द्रियेंभी प्राणीका नाश करनेको पर्याप्त हैं६० जो अशुभको शुभ और शुभको अशुभ मानता है वह बालक है और वशमें न कीहुई इन्द्रियोंके कारणसे परमदुःखको सुख मानलेता है६१ जो मनुष्य धर्म और अर्थको त्याग कर इन्द्रियोंके वशमें होजाता है वह थोड़ेही समयमें सौभाग्य,प्राण,धन और स्त्रीसे बिछुड़जाता है६२ जो मनुष्य अर्थोंका (धनका) स्वामी होकर भी इन्द्रियोंका स्वामी (वशमें रखनेवाला) नहीं होता है, वह इन्द्रियोंको वशमें न रख सकनेके कारणसे ऐश्वर्यको हाथसे खोबैठता है ॥ ६३ ॥ मन बुद्धि और इन्द्रियोंको वशमें रखकर बुद्धिसे ही (अपने आप ही) आत्माकी खोज करै, क्योंकि बुद्धिही आत्माका बन्धु है और बुद्धिही आत्माका शत्रु है, तात्पर्य यह है, कि श्रेष्ठ बुद्धिको पाकर आत्मज्ञान प्राप्त

रात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ६४ ॥ बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्मात्मना जितः । स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥ ६५ ॥ क्षुद्राक्षेणैव जालेन झषावपि हितावुरू । कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥६६ ॥ समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति । स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥६७॥ यः पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रून् अविजित्य मनोमयान् जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ६८ दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः । इन्द्रियाणामनीशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ॥ ६९ ॥ असन्त्यागात् पापकृतामपापस्तुल्यो

किया तब ही आत्माका उद्धार होता है परन्तु यदि बुद्धि खोटी हो गई तो फिर आत्मज्ञान न होकर आत्माका उद्धार भी नहीं होता है. इस लिये अच्छी बुद्धि बन्धुरूप होकर आत्माकी सहायता करती है और खोटी बुद्धि शत्रुरूप होकर आत्माको दुःख देती है ॥६४॥ बुद्धि ही आत्माका बन्धु है और इस ही बुद्धिसे आत्मा पराधीन है, इस लिये बुद्धि ही सदा आत्माका बन्धु और शत्रु है, अतः बुद्धिसे ही आत्माका उद्धार करै ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! जैसे सूक्ष्म छेदोंवाले जाल में फँसे हुए दो बड़े २ मच्छ जातिके स्वभावसे परस्पर शत्रु होने पर भी जालको काटनेके लिये मित्रता बाँध कर परस्पर हित करने वाले (मित्र) होजाते हैं तैसे ही काम और क्रोध प्रज्ञानका नाश करनेवाले हैं क्योंकि-काम बुद्धिआत्माको संसारमें डालनेवाली ज्ञानकी विरोधिनी है, परन्तु वही कामना यदि मोक्षनाशकेलिये होजाय तो संसारजालको काटनेमें ज्ञानकी सहायता करती है, इसलिये पहिले खोटी कामना और उसके ही दूसरे रूप क्रोधको जीते, जिससे श्रेष्ठ बुद्धि का नाश होनेसे रुकजाय और आत्माका कल्याण हो ॥६६॥ जिसमें धर्म और अर्थमें बाधा न पड़े इस प्रकारसे जो मनुष्य दोनों ओरको देखताहुआ विजयके साधनोंको इकट्ठे करता है वह विजयके साधनों का संग्रह करनेवाला पुरुष अवश्य ही विजय पाकर सुख भोगता है ॥ ६७ ॥ जो मनुष्य भीतरके मनोमय (पाँच काम क्रोध आदि) शत्रुओंको विना जीते और शत्रुओंको जीतना चाहता है उसको वे शत्रु दबालेते हैं ॥६८॥ इन्द्रियोंके वशमें न रखनेसे तो बड़े २ राजाओं को भी ऐश्वर्यके विलासोंसे और उनके मनमाने कामोंसे बन्धनमें पड़ते हुए देखते हैं॥६९॥ पापियोंका साथ भली प्रकार न छोड़ देनेसे निष्पाप पुरुषोंको भी उनमें मिले रहनेके कारण (किसी समय) उनके

दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् । शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात् तस्मात् पापैः सह सन्धिं न कुर्यात् ॥ ७० ॥ निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान् । यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम् ॥ ७१ ॥ अनसूयार्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता । दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥ ७२ ॥ आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता । वाक्चैव गुप्तदानञ्च नैतान्यन्त्येषु भारत ॥ ७३ ॥ आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् । वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ।७४। हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् । शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ।।७५।। वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः। अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहुभाषितुम् ।७६। अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता । सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ।७७।

समान ही दण्ड भोगना पड़ता है, देखो मिला हुआ होनेके कारणसे सूखे काठके साथ गीला काठ भी जलजाता है, इसलिये पापियोंके साथ मेल न करें ॥ ७० ॥ जो मनुष्य मोहके कारण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांच विषयोंसे सम्बन्धवाली पांच इन्द्रियोंको वशमें नहीं करसकता है उस मनुष्यको आपत्ति निगल जाती है अर्थात् वह सदा दुःख भोगा करता है ॥ ७१ ॥ किसीके साथ डाह न रखना, सरलता, पवित्रता, सन्तोष, मीठी वाणी बोलना, वाहरी इन्द्रियोंका वशमें रखना, सत्य बोलना और अनायास (फुरती) ये बातें दुष्टात्मा पुरुषोंमें नहीं होती हैं ॥ ७२ ॥ हे भारत ! आत्मज्ञान, निश्चलता, सहनशीलता, नित्य धर्माचरणमें लगे रहना, जितनेकी आवश्यकता हो उतना ही बोलना और गुप्तदान देना ये बातें नीच पुरुषोंमें नहीं होती हैं ॥ ७३ ॥ दुष्ट पुरुष पण्डितोंकी निंदा करके और आक्षेप करके दुःख देते हैं, परन्तु इसका पाप उन दुष्ट पुरुषों को ही लगता है, पण्डित पुरुष तो क्षमा करके पापसे अलग रहता है७४दुष्टोंका बल हिंसा है,राजाओंका बल उचित है दण्ड मर्यादा है स्त्रियोंका बल सेवा करना है और गुणवान्का परमबल क्षमा है ७५ हे राजन् ! वाणीको वशमें रखना मेरी समझमें बड़ा ही कठिन है, ऐसे ही प्रयोजनकी और चमत्कारभरी बातके विषयमें बहुत बोलना भी कठिन है ॥ ७६ ॥ विचार करके बोली हुई प्यारी बातही अनेकों प्रकारका कल्याण करनेवाली होती है और वही बात यदि अनुचित रीतिसे बोलीजाय तो हे राजन् ! अनर्थ करडालती है (क्योंकि शस्त्र

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् । वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ ७८ ॥ कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः । वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥७९॥ वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि । परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ॥८०॥ यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् । बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ८१ बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते । अनयो नयसङ्काशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ८२ ॥ सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ । पाण्डवानां विरोधेन न चैनामवबुध्यसे ॥ ८३ ॥ राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रै-

---

का घाव समय पाकर भरजाता है परंतु वातका घाव मरनेतक भरता ही नहीं) ।७७। देखो वाणोंसे विधाहुआ और कुल्हाडीसे काटाहुआ वृक्ष फिर शाखायें निकल कर हरा भरा होजाता है, परंतु निंदारूप वाणीसे छिदाहुआ मन कभीभी प्रसन्न नहीं होता है, वाणीका घाव कभी भरता ही नहीं ॥ ७८ ॥ कर्णि नालीक और नाराच नामके वाण शरीरमेंसे बाहर निकलते हैं,परंतु हृदय में विधाहुआ वातका वाण तो कभी निकाला ही नहीं जासकता ॥ ७९ ॥ वातरूपी वाण जो मुखमें से निकलते हैं उनसे घायल हुआ पुरुष रात दिन शोक किया करता है, यह न समझो कि वह दूसरोंके मर्मस्थानोंमें जाकर नहीं घुसते हैं किंतु घुसते ही हैं, इस लिये बुद्धिमानको चाहिये कि दूसरेके ऊपर वातका वाण न छोड़े (देखो सभामें तुम्हारे पुत्रोंने द्रौपदीसे कैसे मर्म भेदी वचन कहे थे ? क्या पाण्डवोंके मनमें उनका घाव कभी भरेगा? और वे तुम्हें क्षमा करेंगे ?) ॥ ८० ॥ देवता जिस पुरुषको तिरस्कार देना चाहते हैं (जिसकी अप्रतिष्ठा कराना चाहते हैं) वह पहिले उस की बुद्धिको ही खेंच लेते हैं तो ही उस मनुष्यको नीच काम करने की सूझती है ॥ ८१ ॥ जब शीघ्र ही नाश होनेको होता है तो बुद्धि पलट कर कलुषित होजाती है तो उस मनुष्यको नीति अनीति सी मालूम होने लगती है और जो उलटी वात उसके मनमें जम जाती है वह फिर हटती ही नहीं (तुम्हारे ऊपर भी विपत्ति आने वाली ही है तभी तो तुम अपने पुत्रोंकी वातमें आकर नीतिको अनीति और अनीतिको नीति समझ रहे हो) ॥ ८२ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! पाण्डवोंके साथ विरोध करनेसे तुम्हारे पुत्रोंकी बुद्धि भी पलट गई है और यह वात तुम्हारी समझमें नहीं आती है ॥८३॥ हे धृतराष्ट्र !

लोक्यस्यापि यो भवेत् । शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥ ८४ ॥ अतीत्य सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः । तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित् ॥८५॥ अनुक्रोशादानृशंस्याद्योऽसौ धर्मभृतां वरः । गौरवात्तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षति ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः। शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥ १ ॥ विदुर उवाच । सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् । उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥ २ ॥ आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो । इह कीर्त्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥३॥ यावत् कीर्त्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते । तावत् स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥ ४ ॥ अत्राप्यु-

---

जिस राजामें राजाके लक्षण होते हैं वह त्रिलोकीका राजा होसकता है, वह युधिष्ठिर यद्यपि तुम्हारा छोटा और तुमसे शिक्षा पानेके योग्य है, परन्तु उसमें लक्षण ऐसे हैं, कि-वह भूमण्डल भरका राजा होना चाहिए ॥८४॥ युधिष्ठिर तेजस्वी और बुद्धिमान् होनेके कारण तुम्हारे पुत्रोंसे बहुत ही योग्य है और (राजसिंहासनको पाये हुए पाण्डुका पुत्र होनेके कारणसे) सबसे पहिले राज्यका अधिकारी है (तुझ अन्धेका पुत्र दुर्योधन राज्यका अधिकारी नहीं है, इतना ही नहीं किन्तु) वह धर्ममें और व्यवहारमें भी बड़ा चतुर है ८५ हे राजेन्द्र! (ऐसा योग्य होने पर भी) वह धार्मिकोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर दयालुता और कोमलताके साथ तुम्हारा गौरव रखकर अनेकों क्लेशोंको सहा करता है ॥ ८६ ॥ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्रने कहा कि-हे महाबुद्धिमान् विदुरजी ! मुझे फिर भी धर्म और अर्थकी बातें सुनाओ, क्योंकि-तुम इस विषयमें विचित्र २ बातें कहते हो, जिनको सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती है, किंतु यही इच्छा होती है, कि—अधिक सुनूँ तो अच्छा है ॥ १ ॥ विदुरजी बोले, कि-सब तीर्थोंमें स्नान करना और सब प्राणियोंमें सरल(सम) दृष्टि रखना ये दोनों बातें समान हैं, परन्तु समदृष्टि विशेष अच्छी मानी जाती है ॥ २ ॥ हे धृतराष्ट्र ! इसलिए तुम सदा पुत्रोंके ऊपर समान दृष्टि रक्खो तो तुम इस लोकमें उत्तम कीर्त्ति पाकर मरनेके अनन्तर स्वर्गलोकमें जाओगे ॥ ३ ॥ हे पुरुषसिंह ! जब तक मनुष्य

दाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना ॥ ५ ॥ स्वयम्वरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः । रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया ॥ ६ ॥ विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह । प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी ७ केशिन्युवाच । किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद्विरोचन अथ केन स्म पर्यंकं सुधन्वा नाधिरोहति ॥ ८ ॥ विरोचन उवाच । प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः। अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः ॥ ९ ॥ केशिन्युवाच । इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन । सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ ॥ १० ॥ विरोचन उवाच । तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे । सुधन्वानञ्च माञ्चैव प्रातर्द्रष्टासि सङ्गतौ ॥ ११॥ विदुर उवाच । अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले। अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राज-

---

की पवित्र कीर्त्ति इस लोकमें गाई जाती है तब तक वह मनुष्य स्वर्गलोकमें सत्कार पाता है ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस विषयमें केशिनी नामकी कन्याको विवाहनेके लिए विरोचन और सुधन्वामें जो बात चीत हुई थी उसको सुनो ॥ ५ ॥ हे धृतराष्ट्र ! अनुपम रूप वाली केशनी नामकी कन्या शूरता, उदारता, सुजनता आदि श्रेष्ठ गुणों वाले पतिको वरनेकी इच्छासे स्वयंवरके मण्डपमें आई ॥ ६ ॥ उस स्वयम्वरमें कन्याको पानेकी इच्छासे विरोचनदैत्य आया था, उसको देखकर केशिनीने उससे बूझा, ॥ ७ ॥ केशिनी बोली, कि-हे विरोचन ! ब्राह्मण उत्तम हैं या दैत्य उत्तम हैं ? यदि ब्राह्मण उत्तम हों तो मैं सुधन्वा ब्राह्मणके साथ विवाह क्यों न करूँ ? ॥८॥ विरोचनने कहा कि-हे केशिनी ! हम प्रजापतिसे उत्पन्न हुए हैं, इस लिये बड़े ही उत्तम हैं ये सब लोक वास्तवमें हमारे ही हैं, फिर देवता और ब्राह्मण हमारे सामने किस गिनतीमें हैं ? ॥ ९ ॥ केशिनी बोली कि-हे विरोचन ! कल प्रातःकाल मुझे विवाहनेके लिए सुधन्वा आने वाला है, इस लिये हम यहां ही उसकी बाट देखते हैं, उसके आजाने पर मैं तुम दोनोंको एक साथ इकट्ठे खड़े हुए देखूँगी ॥ १० ॥ विरोचनने कहा, कि-हे भीरु! हे कल्याणी! तू जैसा कहती है मैं वैसा ही करूँ ॥ कल प्रातःकाल मैं और सुधन्वा इकट्ठे होंगे तब तू हम दोनोंको देखना ॥ ११ ॥ विदुर बोले कि—हे राजाओंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! तदनन्तर रात बीत कर प्रातःकालके समय सूर्योदय होजाने पर जहां

सत्तम । विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः ॥१२॥ सुधन्वा च समागच्छत् प्राल्हादिं केशिनीं तथा । समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ । प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घं ददौ पुनः ॥ १३ ॥ सुधन्वोवाच। अन्वालभे हिरण्मयं प्राल्हादे ते वरासनम्। एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेहं त्वया सह ॥ १४ ॥ विरोचन उवाच । तवार्हते तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृषी। सुधन्वन्नत्वमर्होऽसि मया सह समासनम्१५ सुधन्वोवाच । पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि । वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् ॥ १६॥ पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः। बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुध्यसे १७ विरोचन उवाच । हिरण्यञ्च गवाश्वञ्च यद्वित्तमसुरेषु नः । सुधन्वन् विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः१८सुधन्वोवाच।हिरण्यं च गवाश्वञ्च तवैवास्तु विरोचन । प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः१९

केशिनीके साथ विरोचन बैठा था उसही स्थान पर सुधन्वा आया१२ हे भरतवर्षभ ! पहिले कहे अनुसार सुधन्वा, विरोचन और केशिनी से मिला, केशिनी सुधन्वाको आताहुआ देखकर खड़ी होगई उसको पैर धोनेके लिये जल दिया, पूजा करी और फिर आसन दिया ।१३। फिर सुधन्वाने कहा, कि—हे विरोचन ! तेरी समान बनकर मैं तेरे साथ एक आसन पर नहीं बैठूँगा, किन्तु मैं तेरे उत्तम सोनेकेआसन का स्पर्श करता हूँ (हटाता हूँ) ॥ १४ ॥ विरोचन बोला कि—हे सुधन्वा ! तू पटले, कुशासन अथवा डोरीसे बुनी हुई कुरसी पर बैठनेके योग्य है; तू मेरे साथ एक आसनपर बैठनेके योग्य नहीं है१५ सुधन्वाने कहा कि—बाप बेटेके साथ बैठ सकता है, दो ब्राह्मण एक साथ बैठ सकते हैं, दो क्षत्रिय एक साथ बैठ सकते हैं, दो बूढ़े वैश्य एक साथ बैठ सकते हैं और दो शूद्र भी एक आसन पर बैठ सकते हैं, परन्तु आपसमें जुदी जातिके पुरुष एक आसनपर एक साथ नहीं बैठ सकते ॥ १६ ॥ तेरा पिता मुझे सिंहासनके ऊपर बैठालकर आप नीचे खड़ा हुआ मेरी सेवा करता है, परन्तु तू बालक है और घरके भीतर ही सुखमें पला है, इसकारण तू कुछ भी नहीं जानता है ।१७। विरोचनने कहा, कि—हे सुधन्वा ! गौ, घोड़ा, सोना आदि जो धन हमारे असुरोंमें है, उसका पण करना, जो लोग जानते हैं उनसे चलो बूझें कि—हम दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ! ॥१८॥ सुधन्वाने कहा, कि—हे विरोचन ! अपने सुवर्ण गौ घोड़े सब अपने पास ही रख, हम दोनों

विरोचन उवाच। आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते। न तु देवेष्वहं स्थाता मनुष्येष्वेह कर्हिचित्॥२०॥ सुधन्वोवाच। पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते। पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत्॥२१॥ विदुर उवाच। एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा। विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति॥ २२॥ प्रह्लाद उवाच। इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह। आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ॥ २३॥ किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह। विरोचनैतत् पृच्छामि किन्ते सख्यं सुधन्वना॥२४॥ विरोचन उवाच। न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे। प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः॥ २५॥ प्रह्लाद उवाच। उदकं मधुपर्कं वाप्यानयन्तु सुधन्वने। ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरी कृता॥ २६॥ सुधन्वोवाच। उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम। प्रह्लादत्वन्तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि

प्राणका पण करके जो चतुर हो उनसे प्रश्न कर॥ १९॥ विरोचनने कहा, कि-हे सुधन्वा! प्राणका पण करके हम प्रश्न करनेके लिये किसके पास चलें? मैं कभी देवताओंमें और मनुष्योंमें जाकर खड़ा नहीं होता हूँ २० सुधन्वाने कहा, कि-हम दोनों प्राणका पण करके तेरे पिताके पास चलेंगे, क्यों कि—प्रह्लाद अपने बेटेके लिये भी मिथ्या नहीं बोलेगा॥ २१॥ विदुरजी बोले, कि—ऐसा विचार और आपसमें पण करके उसी समय क्रोधमें भरे हुए विरोचन और सुधन्वा जहां प्रह्लादजी बैठे थे तहां आये॥ २२॥ प्रह्लादजी बोले कि जो दो कभी साथ नहीं विचरते वे दो जने क्रोध में भरे हुए एक बिलमें घुसनेवाले दो विषधर सर्पोंकी समान एक मार्गमेंसे साथ साथ चलकर यहाँ आते दीखरहे हैं (यह क्या बात है?)॥ २३॥ हे विरोचन! तुम दोनों तो पहिले कभी साथ२ फिरते नहीं थे, फिर आज ऐसे साथ साथ कैसे आरहे हो? मैं इस विषयमें बूझता हूं, क्या सुधन्वाके साथ तेरी मित्रता होगई है?॥ २४॥ विरोचन बोला, कि मेरी सुधन्वाके साथ मित्रता नहीं है, किंतु हम दोनोंने प्राणकी बाजी लगायी है, हे पिताजी! मैं आपसे जो कुछ बूझता हूं उसका ठीक ठीक उत्तर दीजिये मिथ्या नहीं कहना॥२५॥ प्रह्लादने कहा, कि अरे! इस सुधन्वाके लिये जल और मधुपर्क लेकर आओ, हे ब्रह्मन्! तुम पूजाके योग्य हो, मैंने श्वेत और पुष्ट बैल आप को मधुपर्कमें देनेके लिये रखछोड़ा है,॥ २६॥ सुधन्वाने कहा, कि

पृच्छतः। किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद्विरोचनः ॥ २७ ॥ प्रह्लाद उवाच। पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वञ्च साक्षादिहास्थितः। तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत् ॥ २८ ॥ सुधन्वोवाच। गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वान्यत् स्यात् प्रियं धनम्। द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यञ्च मतिमंस्त्वया ॥ २९ ॥ प्रह्लाद उवाच। अथ यो नैव प्रब्रूयात् सत्यं वा यदि वानृतम्। एतत् सुधन्वन् पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ॥३०॥ सुधन्वोवाच। यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः। यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥ ३१ नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः। अमित्रान् भूयसः पश्येद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥३२॥ पंच पश्वनृते हन्ति दश हंति गवानृते। शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ३३ हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं

हे प्रल्हादजी ! जल और मधुपर्क तो मुझे किसीने मार्गमें ही दे दिया था, आप तो, मैं प्रश्न करता हूं उसका ठीक २ उत्तर मुझे दीजिये हे प्रल्हादजी ! मुझसे कहो, कि-ब्राह्मण उत्तम है या तुम्हारा पुत्र विरोचन उत्तम है ? ॥ २७ ॥ प्रल्हादने कहा, कि—हे ब्रह्मन् ! तुम दोनोंमें एक मेरा पुत्र है और तुम साक्षात् ब्रह्मदेव यहाँ बैठे हो, इस दशामें मुझ सरीखा पुरुष विवाद करनेवाले दो जनोंके प्रश्नका उत्तर कैसे दे सकेगा ? ॥ २८ ॥ सुधन्वाने कहा, कि हे बुद्धिमान् ! तुम गौएँ तथा और जो कुछ तुम्हारा प्यारा धन हो वह अपने ओरसे पुत्रको दो; परन्तु विवाद करनेवाले हम दोनोंसे तुम्हें सत्य बात अवश्य कहनी होगी ॥ २९ ॥ प्रल्हाद बोले, कि-हे सुधन्वा ! मैं बूझता हूँ, कि—जो प्राणी सत्य नहीं बोले या मिथ्या बोले तो वह अन्यायकी बात कहने वाला किस दुःखको पाता है ? ॥३०॥ सुधन्वाने कहा, कि हे प्रह्लाद जी ! सौतवाली स्त्री सारी रातभर जो दुःख पाती है, जुएमें जिसका सब धन हरगया हो वह मनुष्य जो दुख पाता है, तथा बोझा उठाने से जिसका शरीर पिचाजाता हो वह मनुष्य जो दुःख पाता है वही दुःख मिथ्या बोलने वाला पाता है ॥ ३१ ॥ जो शहरमें कैद होगया हो, जो घरके द्वारके आगे भूँखा पड़ा हो तथा वह बहुतसे शत्रुओं को देखरहा हो उस मनुष्यको जो दुःख होता है वही दुःख झूँठी गवाही देनेवालेको होता है । ३२ ॥ पशुके लिये मिथ्या बोलनेवाला अपनी पाँच पीढ़ियोंको नरकमें डालता है, गौके लिये मिथ्या बोलने वाला दश पीडियोंको नरकमें डालता है, घोड़ेके लिये झूठ बोलने

वदन् सर्वं भूम्यनृतं वदेः ॥ ३४ ॥ प्रह्लाद उवाच । मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन । मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः ३५ विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव । सुधन्वन् पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम् ॥ ३६ ॥ सुधन्वोवाच । यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः । पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात् प्रह्लाद दुर्लभम् ॥३७॥ एषः प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः । पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः सन्निधौ मम ॥३८॥ विदुर उवाच । तस्माद्राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि । मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन् ॥ ३९ ॥ न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् । यन्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम् ॥ ४० ॥ यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।

वाला सौ पीढियोंको नरकमें डालता है और पुरुषके लिये मिथ्या बोलनेवाला सहस्र पीढियोंको नरकमें डालता है ॥ ३३ ॥ सुवर्णके लिये मिथ्या बोलने वाला अपने पिछले और अगले वंशको नरकमें डालता है, भूमिके लिये मिथ्या बोलने वाला सबका नाश करता है इसलिये तुम भूमि समान केशिनीके लिये मिथ्या न बोलना ॥ ३४ ॥ (सुधन्वाकी इन बातोंको सुनकर) प्रह्लादने कहा, कि-हे विरोचन ! मुझसे अङ्गिरा उत्तम है तथा यह सुधन्वा तुझसे उत्तम है और इसकीमाता तेरीमातासे उत्तम है, इसलिये सुधन्वाने तुझे जीतलिया ३५ हे विरोचन । इस कारण यह सुधन्वा तेरे प्राणोंका स्वामी हो चुका हे सुधन्वा ! मैं चाहता हूँ, कि-तू इस विरोचनको फिर प्राणोंका दान देदे ॥ ३६ ॥ सुधन्वाने कहा, कि—हे प्रह्लाद ! तुमने लोभसे मिथ्या नहीं बोला किंतु तुमने धर्मका पालन किया है इसकारण मैं परिश्रम से मिलसकने वाला तुम्हारा पुत्र तुमको फिर अर्पण करता हूं ॥३७॥ हे प्रह्लाद ! यह तुम्हारा पुत्र विरोचन तुमको दान करदेता हूँ परंतु यह उस कुमारीके सामने मेरे चरण धोवे ॥३८॥ विदुरजी कहने लगे कि-इसलिये हे धृतराष्ट्र ! भूमिके लिये मिथ्या बोलना तुम्हें उचित नहीं है पुत्रके लिये मिथ्या बोलकर तुम पुत्र और सेवकों सहित नष्ट मत होओ ॥३९॥ देवता ग्वालियेकी समान हाथमें दण्डा लेकर पुरुषों की रक्षा नहीं करते हैं, किंतु वे तो जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसकी बुद्धिको सुधार देते हैं इस लिये जिसकी बुद्धि सुधरी हो उसको समझलो कि-देवता इसके अनुकूल हैं और जिसकी बुद्धि खोटी हो उसको समझलो कि-अब देवता इसका नाश करना चाहते हैं ॥४०

तथा तथास्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः ॥ ४१ ॥ नैनं छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्त्तमानम् । नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ४२ ॥ मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् । राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ॥४३॥ सामुद्रिकं वणिजं चौरपूर्वं शलाकधूर्त्तञ्च चिकित्सकञ्च । अरिञ्च मित्रञ्च कुशीलवञ्च नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ॥ ४४ ॥ मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः । एतानि चत्वार्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ॥४५॥ अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी । पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ॥ ४६ ॥ भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः । अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ४७ ॥ स्रुव-

---

मनुष्य ज्यों ज्यों शुभकर्म करनेमें मनको लगाता है त्यों त्यों उसके सब काम सिद्ध होते चले जाते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ४१ ॥ कपटके काम करनेवाले कपटी मनुष्यको वेद पापसे नहीं छुटाते, किंतु जैसे पक्षी पर निकल आने पर घोंसलेको छोड़जाते हैं तैसे ही अंतकालमें वेद कपटी मनुष्यको छोड़ जाते हैं ॥ ४२ ॥ मदिरा पीना कलह करना, बहुतसोंके साथ वैर करना स्त्री पुरुषोंका वियोग कराना जातिमें कलह उत्पन्न करदेना, राजाके शत्रुसे मेल करना और स्त्री पुरुषोंमें कलह करादेना, इतनी बातोंको त्यागना कहा है और जो मार्ग खोटा हो उसको भी त्यागना कहा है ॥ ४३ ॥ हाथकी रेखा आदि देखनेवाला, जो पहिले चोर हो और पीछेसे व्यापारी बन गया हो, बनावटी फाँसे आदिसे शकुन देखकर विश्वासु लोगोंका धन लूटनेवाला. वैद्य, वैरी, मित्र और दुष्टस्वभाववाला इन सातको गवाहीमें न लेय४४संसारमें प्रतिष्ठा पानेके लिये अग्निहोत्रकरना प्रतिष्ठा पानेके लिये मौनव्रत धारण करना प्रतिष्ठाके लिये वेद पढ़ना और प्रतिष्ठाके लियेही यज्ञ करना ये चारों काम उलटी रीतिसे किये जानेके कारण, सुखदायक होतेहुए भी दुःखदायक होजाते हैं, इनको निष्कामभावसे अपना धर्म समझकर करै तब ही ये परलोकमें सुखदायक होते हैं ॥ ४५ ॥ घरको जलानेवाला, विष देनेवाला, स्त्रीके व्यभिचारसे आजीविका करनेवाला, सोमरस बेचनेवाला, बाण बनानेवाला, तिथि नक्षत्र बतानेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, गर्भ गिरानेवाला, गुरुकी शय्यापर अधिकार करनेवाला, और जो ब्राह्मण

ब्रह्मणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि। रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः ॥ ४८ ॥ तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः। शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥ ४९ ॥ जरा रूपं हरति हि धैर्य्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया। क्रोधः श्रियं शीलमनार्य्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥ ५० ॥ श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् प्रवर्द्धते। दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति ॥ ५१ ॥ अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतञ्च। पराक्रमश्चाबहुभाषिता च

होकर मदिरा पीता हो तथा अतिक्रूर बात कहनेवाला, काक अर्थात् जैसे कौआ ढोरोंके घावोंमें चोंच मारकर उन दुःखियोंको और दुःखी करता है तैसे ही मर्मभेदी वचन कहकर दुःखी पुरुषोंको और दुःखी करनेवाला, ईश्वर नहीं है ऐसा माननेवाला नास्तिक, वेदकी निंदा करनेवाला, राजाकी बाँधीहुई आजीविकाके प्रतापसे सब व्यापारियों से चुंगी लेनेवाला अथवा ग्रामयाजक (खेड़ापती), जिसका यज्ञोपवीत होनेका समय बीतगया हो ऐसा व्रात्य ब्राह्मण, हल जोतनेवाला अथवा लोभी (गुप्तरीतिसे पशुओंको मारनेवाला) और मेरी रक्षा करो ऐसा कहनेवालेको शक्तिमान् होतेहुए भी मार डालनेवाला ये सब ब्रह्महत्यारोंको समान (त्यागने योग्य) हैं ॥ ४६-४८ ॥ तृणोंकी लपट (आग) से सोनेकी कसौटी जानी जाती है, चालचलन से भद्र पुरुष जाना जाता है, व्यवहारसे सत्पुरुष जाना जाता है भय के अवसर पर शूरकी परीक्षा होती है धनकी कमीके अवसरों पर धीर मनुष्यकी परख होती है और दुःख तथा भयके समय मित्र और शत्रु परखे जाते हैं ॥ ४९ ॥ वृद्धावस्था रूपको नष्ट करती है, आशा धीरजका नाश करती है, मृत्यु प्राणोंका नाश करती है, डाह धर्मका नाश करती है, क्रोध लक्ष्मीका नाश करता है, नीचकी सेवा शीलका नाश करती है, काम लज्जाका नाश करता है और अभिमान तो सबका ही नाश करता है ॥ ५० ॥ शुभ काम करनेसे लक्ष्मी उत्पन्न होती है, प्रौढ़पनेसे उसकी वृद्धि होती है, चतुराईसे उसकी जड़ दृढ़ होजाती है और इन्द्रियोंको वशमें करनेसे वह स्थिर होकर रहती है ॥ ५१ ॥ बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियोंको वशमें करना, शास्त्र का ज्ञान, पराक्रम, थोड़ा बोलनेका स्वभाव, शक्तिके अनुसार दान देना और दूसरेके किये हुए उपकारको मानना ये आठ गुण मनुष्य

दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ५२ ॥ एतान् गुणांस्तात महानुभावा-नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य । राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणा-नेष गुणो विभाति॥५३॥ अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि । चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भिश्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ॥५४॥ यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः। दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥ ५५ ॥ इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा । अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥५६॥ तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते। उत्तरस्तु चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥ ५७ ॥ न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् । नासौ धर्मो यत्र न सत्य-मस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥ ५८ ॥ सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्। शौर्यं च चित्रभाष्यञ्च दशेमे स्वर्गयोनयः५९ पापं कुर्वन् पापकीर्त्तिः पापमेवाश्नुते फलम्। पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्त्तिः

को दिया देते हैं ॥ ५२ ॥ हे धृतराष्ट्र ! इन आठ गुणोंको शोभा देने वाला एक गुण बलात्कारसे आठ महाप्रतापी गुणोंका आश्रय करता है अर्थात् जब राजा मनुष्यका आदर सत्कार करता है तब राजाका किया हुआ आदर सत्काररूप एक गुण सब गुणोंको शोभा देता है ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! मनुष्यलोकमें आठ बातें स्वर्ग देने वाली हैं, इन आठमेंसे पहिली चार बातें सदा सत्पुरुषोंके साथ रहती हैं और पिछली चार बातोंका सत्पुरुष यत्न करके सेवन करते हैं ॥ ५४ ॥यज्ञ दान, वेदाध्ययन और तप ये चार बातें सदा सत्पुरुषोंमें सम्बन्ध करके रहती हैं और दम, सत्य, सरलता तथा दयालुता इन चार बातोंका सत्पुरुष सेवन करते हैं ॥ ५५ ॥ यज्ञ, वेदाध्ययन, दान, तप सत्य, क्षमा, दया और उदारता यह आठ प्रकारका धर्मका मार्ग कहा है ॥ ५६ ॥ ऊपर कही आठ बातोंमेंसे पहिली चार बातोंको लोग पाखण्डके लिए भी सेवन करते हैं, परंतु पिछली चार बातें तो महात्मा पुरुषोंमें ही रहती हैं ॥ ५७ ॥ जिसमें बूढ़े नहीं हैं, वह सभा नहीं है, जो धर्मकी बात नहीं कहते वे बूढे नहीं हैं जिसमें सत्य नहीं वह धर्म नहीं है और जिसमें कपट भरा है वह सत्य नहीं है ॥ ५८ ॥ सत्य, विनयको भरी सूरत, पढना, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और युक्तिभरी बात ये दश बातें स्वर्ग देनेवाली हैं ५९ जो मनुष्य पापकर्म करता है वह अपयश पाता है और उसके बुरे

पुण्यमत्यन्तमश्नुते ॥ ६० ॥ तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः संशितव्रतः । पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥ ६१॥ नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः । पुण्यं प्रज्ञां वर्द्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ६२ वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः । पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्त्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति ॥ ६३ ॥ तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः । असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः । स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन् ॥ ६४ ॥ अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा । न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते ॥ ६५ ॥ प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः । प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥ ६६ ॥ दिवसेनैव तत् कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत् ॥ ६७ ॥ पूर्वे वयसि तत् कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् । यावज्जीवेन तत् कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत्॥६८॥ जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च

ही फलको भोगता है तथा जो मनुष्य पुण्यकर्म करता है वह अच्छी कीर्त्ति पाता है और अत्यन्त पुण्यफलको भोगता है ॥ ६० ॥ इस लिए उत्तम आचरण वाला पुरुष पापकर्म न करे, वार २ कियाहुआ पापकर्म बुद्धिका नाश कर देता है ॥६१॥ नष्टबुद्धि मनुष्य नित्य पाप के ही काम किया करता है और वार २ पुण्यकर्म किया जाय तो वह बुद्धिको बढ़ाता है ॥ ६२ ॥ विशाल बुद्धि मनुष्य नित्य पुण्य कर्म ही किया करता है, जो मनुष्य अच्छे काम करता है वह उत्तम कीर्त्ति पाकर उत्तम लोकमें जाता है, इसलिए अच्छे प्रकार सावधान होकर पुण्यकर्म करने चाहियें ॥ ६३ ॥ दूसरोंके गुणोंमें दोष लगाने वाला मर्मस्थानमें दुःख पहुँचाने वाला कठोर बोलने वाला वैर करनेवाला और शठ ये सब पापके काम करके शीघ्र बड़े भारी दुःखको पाते हैं ॥ ६४ ॥ और दूसरोंके गुणोंको देखकर प्रसन्न होने वाला, चतुर तथा सदा अच्छे काम करनेवाला मनुष्य बड़ा सुख पाता है ॥६५॥ जो विद्वानोंसे चतुराई सीखता है वह पण्डित है, क्योंकि वह बुद्धिमान् मनुष्य धर्म और अर्थको प्राप्तकरके अपने जीवनको सुखमें बिता सकता है ॥ ६६ ॥ जिसको करनेसे रात्रिके समय सुखसे सोसके वह काम दिनमें ही करडाले, और जिस कामको करनेसे चौमासेके चार महीने सुखसे बीतसकें उस कामको शेष आठ महीनेमें करलेय ।६७। जिस कामको करनेसे वृद्धावस्था सुखमें बीतसके उसकामको पहिली अवस्थामें करडालें और जिस कामको करनेसे मरनेके अनन्तर सुख

गतयौवनाम् । शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥६९॥ धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपि धीयते । असम्वृतं तद्भवति ततोऽन्यदवदीर्यते ॥ ७० ॥ गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् । अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ७१ ॥ ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् । प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥७२॥ द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी । क्षत्रियः शीलभाग्राजंश्चिरं पालयते महीम् ॥ ७३ ॥ सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः । शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥ ७४ ॥ बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत । तानि जंघाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ॥७५॥ दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा । कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि । सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ । पितृवत्त्वयि वर्त्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥ ७७ ॥

मिलें उस कामको जीवनभर करता रहे ॥ ६८ ॥ चतुर पुरुष, अच्छे प्रकार पकेहुए अन्नकी,जवानीसे उतरी हुई स्त्रीकी,संग्रामको जीतने वाले शूरकी और तपका पार पानेवाले तपस्वीकी प्रशंसा करतेहैं६९ जो मनुष्य अधर्मसे धनपैदा करके उससे जिस छिद्रको ढकना चाहता है वह छिद्र ढकता नहीं है,किंतु दूसरी जगह उसके दूसरे छिद्र उघडने लगते हैं ७० गुरु मनको वशमें करनेवाले मनुष्योंको शिक्षा करता है, राजा दुराचरणी पुरुषोंका शिक्षा करता है और यमराज गुप्तपाप करनेवालको शिक्षा (दण्ड) देता है ॥ ७१ ॥ ऋषियोंका, नदियोंका, कुलोंका, आत्माओंका,स्त्रियोंका और दुराचरणियोंका पराक्रम जान नेमें नहीं आसकता ॥७२॥ हे राजन् ! ब्राह्मणोंकी सेवा करनेमें तत्पर दाता जातिके साथ सरलतासे वर्त्तनेवाला और अच्छे स्वभाव वाला क्षत्रिय राजा चिरकाल तक राज्य करता है ॥ ७३ ॥ शूर, विद्यावान् और जो सेवा करनी जानता है ये तीन पुरुष सुवर्णके फूलोंसे भरी हुई पृथिवीमेंसे सुवर्ण इकट्ठा करते हैं ॥७४॥ हे भारत ! जो काम बुद्धिसे बनसकनेवाले हों वे मध्यम मानेजाते और जो काम कपट आदिसे बन सकनेवाले हों वे काम नीच मानेजाते हैं तथा जो काम बड़े संकटसे किये जाते हों वे बहुत ही हलके गिनेजाते हैं ॥७५॥ हे राजन् ! दुर्योधन,शकुनि,मूढ दुःशासन और कर्ण इनके उपर राज्यका ऐश्वर्य रख कर तुम कल्याणकी आशा कैसे करते हो ? ॥७६॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! सकलगुणसम्पन्न पाण्डव तुम्हारे साथ पिताकेसा वर्ताव करते हैं, इसलिये तुम भी उनके साथ पुत्रकेसा वर्ताव करो ७७

विदुर उवाच । अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । आ
पस्य च सम्वादं साध्यानां चेति नः श्रुतम् ॥ १ ॥ चरन्तं हंसरूपं
महर्षिं संशितव्रतम् । साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥
साध्या ऊचुः । साध्या देवा वयमेते महर्षे दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमो
मातुम् । श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदार
हंस उवाच । एतत् कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मा
वृत्तिः । ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत
आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः । आक्रोष्टारं निर्दह
सुकृतं चास्य विन्दति ॥५॥ नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रो
नोत नीचोपसेवी । न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचं रुष
वर्जयीत ॥८॥ मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून् रूक्षा वाचो निर्दहन्त

विदुर कहते हैं, कि—हे राजन्! आपकी सुनीहुई और पुरा
अत्रिके पुत्र और साध्य देवताओंके विवादकी कथा इस विष
ठीक घटती है ॥ १ ॥ पहिले साध्य नामके देवताओंने बुद्धि
धर्मज्ञ और परमहंसरूपसे विचरने वाले महर्षि दत्तात्रेयसे प्र
किया था ॥ २ ॥ साध्य देवताओंने बूझा, कि—हे महर्षे ! हम सा
देवता आपको देखकर आप अमुक पुरुष हैं, इस बातका अनु
नहीं करसकते, परन्तु हमारी समझमें आप शास्त्रको जाननेवाले
वान् और बुद्धिमान् अवश्य हैं, इसलिये आप हमें विद्वत्ता जत
वाली उदार वाणी सुनाइये ॥ ३ ॥ हंस बोले कि-हे साध्य देवता
धीरज, शम (इन्द्रियोंका निग्रह),सत्य, परब्रह्मकी प्राप्ति करानेव
ध्यान, धारणा और समाधि आदिका अनुष्ठान करना, हृदयकी अ
कार और ममता रूप गाँठको अथवा चैतन्यात्मा और जड़ अंतःक
को एक माननारूप चपलभावको दूर करना, प्रिय और अप्रिय ब
को अन्तःकरणके धर्म जानना, ये करने योग्य काम मैंने अपने गु
सुने हैं ॥ ४ ॥ कोई गालियें देय तो भी उसको बदलेमें गाली न
क्योंकि सहलेने वालेका क्रोध ही गाली देनेवालेको भस्म करडाल
है और सहन करनेवाला उसके पुण्यको पाजाता है ॥ ५ ॥ दूसरे
गाली न देय, दूसरेका अपमान न करै, मित्रसे द्रोह न करै, नीच
सेवा न करै, अभिमानी न बनै, सदाचारसे भ्रष्ट न होय रूखी
क्रोधी बात न कहै ॥ ६ ॥ इस जगत्में तीखी बात पुरुषोंके मर्मस्
को, हड्डीको, हृदयको तथा प्राणोंको जला डालती है, इस

पुंसाम् । तस्माद्वाचमुषतीं रूक्षरूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत॥७॥ अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्। विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निरृतिं वै वहन्तम् ॥ ८ ॥ परश्चेदेनमभिविध्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः । स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्यात् कविः सुकृतं मे दधाति ॥९॥ यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव । वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ १० ॥ अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्यो नाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्। हन्तुञ्च यो नेच्छति पापकं वै तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥ ११ ॥ अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद्व्याहृतं तद् द्वितीयम् । प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ १२॥ यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते । यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः।१३।यतो यतो निवर्त्तते ततस्ततो विमु-

धर्मात्मा पुरुष सदा जलानेवाली भयंकर बातको त्याग देय ॥ ७ ॥ जो कठोर बात कहकर मनुष्यके मर्मस्थानको दुखाता है और वाणीरूप काँटोंसे मनुष्यको छेदना है उस कठोर पुरुषको अकल्याण अथवा मुखमें कालरूप वाणीको धारण करनेवाला जानो ॥८॥ कोई दुष्ट पुरुष धकधकाती हुई अग्नि और सूर्यकी समान तीखी वाणीरूप बाणसे सज्जनको घायल करता है, परन्तु सज्जन तो घायल होनेपर भी और परम दुःखी होनेपर भी जानता है, कि यह मनुष्य मेरे पुण्य को बढाता है ९ जैसे कपडा रङ्गके संगमें रङ्गके अधीन हो जाता है तैसेही मनुष्य यदि सत्पुरुषकी सेवा करताहै तो उसकेसाही होजाता है और दुर्जनकी सेवा करता है तो उसकेसा ही होजाता है, तपस्वी की सेवा करता है वह तपस्वीके अधीन होजाता है और यदि चोर की सेवा करता है तो चोरके वशमें होजाता है॥१०॥ अपनेसे विवाद करनेवालेके साथ जो विवाद नहीं करता है दूसरेको विवाद करनेके लिये जो नहीं उकसाता है कोई मारजाय तोभी उसको बदलेमें नहीं मारता है अथवा दूसरेसे नहीं पिटवाता है तथा किसी भी पापीको मारनेकी इच्छा नहीं करता है वह मनुष्य स्वर्गमें जाता है और देवता उसको चाहते हैं ॥ ११ ॥ मौन रहना अच्छा है, परन्तु सत्य बोलना उससे भी अच्छा है प्रिय बोलना और भी अच्छा है, और यदि वह धर्मानुकूल हो तो सबसे ही अच्छा है, यह चार प्रकारका बोलना है ॥१२॥ पुरुष जैसोंके साथ बैठता है, जैसोंकी संगति करता

च्यते । निवर्त्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥ १४ ॥ न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान्न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च । निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥ १५ ॥ भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः । सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥१६॥ नानर्थकं सांत्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च । रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः ॥ १७ ॥ दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो नावर्त्तते मन्युवशात् कृतघ्नः । न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः ॥१८॥ न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशंकितः । निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः ॥ १९ ॥ उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान् । अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद्भूतिमात्मनः॥२०॥ प्राप्नोति

है और जैसा होना चाहता है तैसा ही होजाता है ॥१३॥ पुरुष जिस जिस विषयसे हटताजाता है उस २ ही विषयके दुःखसे छूटता चला जाता है, सब विषयोंसे बचजाय तो फिर अणुमात्र भी दुःख नहीं भोगता है ॥ १४ ॥ विषयोंसे बचाहुआ पुरुष किसीके जीतनेमें नहीं आता और दूसरोंको जीतनेकी इच्छा भी नहीं करता है, किसीके साथ वैर नहीं करता है, किसीका नाश नहीं करता है, निन्दा और प्रशंसाको समान मानता है, कोई उसकी निन्दा करे तो दुःख नहीं मनाता और प्रशंसा करे तो हर्ष नहीं मानता है ॥ १५ ॥ जो सबका कल्याण चाहता है, किसीका अकल्याण नहीं चाहता है, सत्य बोलता है, कोमलता रखता है और इन्द्रियोंको वशमें किये रहता है, वह ही उत्तम मानाजाता है ।१६। जो मिथ्या समझौता नहीं देता है अर्थात् चित्तसे प्यारी बात कहकर समझाता है, किसी वस्तुकी प्रतिज्ञा करके देदेता है और दूसरेके छिद्रोंको जानता है वह मध्यम पुरुष है १७ खोटा उपदेश देनेवाला, मार खानेवाला शस्त्रसे घायल होजाने पर भी क्रोधके मारे पीछेको न लौटने वाला, किये हुए उपकारका नाश करनेवाला, किसीका भी मित्र न हो, दुष्ट वा चालाक हो, ये सब अधम पुरुषकी कला हैं ॥ १८ ॥ जो दूसरोंसे कल्याणकारी बातें सुन कर उनके ऊपर विश्वास नहीं करता है, जिसको अपने आत्माका भी विश्वास नहीं है और जो मित्रोंका तथा मित्रोंकी बातोंका अनादर करता है वह निःसन्देह अधम पुरुष है ॥१९॥ जिस मनुष्यको अपना कल्याण करनेकी इच्छा होय वह मनुष्य उत्तम पुरुषोंसे मित्रता करे; समय पाकर मध्यम पुरुषोंकी भी संगति करलेय परन्तु अधम पुरुषों

वै चित्तप्रसह्यलेन नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण। न त्वेव सम्यग्लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्र उवाच। महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च। पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥ २२ ॥ विदुर उवाच। तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥२३॥ येषां न वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्। ये कीर्त्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि । २४ ॥ अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च२५ देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥२६॥ ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत। कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च ॥ २७ ॥ कुलानि समुपेतानि

की संगति कभी न करें ॥२०॥ जो मनुष्य कपट करके या कोलाहल करके बुद्धिकी युक्तिसे या बलात्कार करके धन इकट्ठा करता है वह मनुष्य यश नहीं पाता है और महाकुलमान्के आचारको भी नहीं पाता है ॥ २१ ॥ धृतराष्ट्रने प्रश्न किया, कि—हे विदुर ! सदा धर्ममें तथा अर्थमें मग्न रहनेवाले देवता भी महाकुलवाले पुरुषोंके ऊपर प्रेम करते हैं, और उनके घर जन्म लेना चाहते हैं, इस लिये मैं यह प्रश्न पूछता हूँ कि महाकुल कौन कहलाते हैं ? ॥ २२ ॥ विदुरने कहा, कि हे धृतराष्ट्र ! तप, इन्द्रियनिग्रह ब्राह्मणका धनरूप वेद, यज्ञ, पुण्यकर्म विवाह आदि उत्तम कर्म और सदा अन्नका दान करना ये सात गुण भलेप्रकार स्थिरतासे जिनकुलोंमें वास करतेहैं उनको महाकुल जानो२३ जिनका चित्त सदाचारसे चलायमान नहीं होता है, जिनके आचरण से माता पिता आदि अप्रसन्न नहीं होते हैं जो प्रसन्न मनसे धर्माचरण करते हैं, जो कुल उत्तम कीर्त्ति पानेकी आशा रखते हैं, उनको महाकुल जानो ॥२४॥ यज्ञ न करनेसे, अयोग्य विवाह करनेसे, वेद का पढ़ना छोड़नेसे और धर्ममर्यादाका लोप करनेसे ऊँचे कुल नीच कुल बनजाते हैं ॥ २५ ॥ देवधनका नाशहोनेसे, ब्राह्मणका धन छीन लेनेसे और ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे ऊँचे कुल नीच कुल बनजाते हैं ॥ २६॥ हे भारत ! ब्राह्मणोंका तिरस्कार करनेसे उनकी निंदा करनेसे और धरोहडको मार रखनेसे बड़े कुल नीचकुल गिने जाते हैं ॥ २७ ॥ जो कुल सदाचारसे हीन होते हैं चाहे विद्यावाले हों, चाहे

गोभिः पुरुषतोऽर्थतः। कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः २८ वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि। कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥ २९ ॥ वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति च याति च अक्षीणो वृत्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ ३० ॥ गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया। कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥ ३१ ॥ मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी। मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥ ३२ ॥ यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत्। न नः स समितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत् पितॄन् ॥३३॥ तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता। सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ३४ ॥ श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम्। प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ॥ ३५॥ सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो

धन वाले हों परन्तु अच्छे कुलोंमें नहीं गिनेजाते हैं ॥ २८ ॥ थोड़े धनवाले होनेपर भी जो कुल सदाचरणसे रहित नहीं होते हैं, वे महाकुलोंकी गिनतीमें आते हैं और बड़ी कीर्त्ति पाते हैं ॥२९॥ धन आता है और चलाजाता है, परन्तु गया हुआ सदाचरण फिर नहीं आता, इस लिये सदाचरणकी प्रयत्न करके रक्षा करै, जोमनुष्य धनसे क्षीण होता है वह क्षीण नहीं माना जाता, परन्तु जो सदाचरणसे हीन होता है वह दरिद्र माना जाता है ॥३०॥ जो कुल सदाचरणसे हीन हैं वे कुल गौओंसे, पशुओंसे, घोड़ोंसे और बहुत उन्नति वाली खेती से भी सत्कुल नहीं होसकते ॥ ३१ ॥ हमारे कुलमें कोई राजा और मन्त्री वैर करनेवाला न हो, पराये धनको हरनेवाला न हो, मित्रोंसे द्रोह करनेवाला न हो, कपटी न हो, मिथ्या बोलने वाला न हो, और अतिथि देवता तथा पितरोंको अर्पण करनेसे पहिले भोजन करने वाला न हो ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाला हो, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला हो, और जो पितरोंके लिए तर्पण न करता हो वह हमारी सभामें न आवे ॥ ३३ ॥ तृणको आसन, बैठनेको भूमि पीनेको जल और सच्ची प्यारी वाणी ये चार वस्तुयें सत्पुरुषोंके घरोंसे कभी कम नहीं होती हैं ॥ ३४ ॥ हे महाबुद्धिमान् राजन्! पुण्यवान् धर्मव्रतधारियोंके यहाँ परमश्रद्धाके साथ आदर सत्कार करनेकी वस्तुयें सदा बनी रहती हैं ॥ ३५ ॥ हे धृतराष्ट्र! रथ छोटासा हो तो भी जैसे बोझा ढोसकता है, तैसे दूसरे काठ बोझा नहीं ढोसकते;

यै शक्तो वोढुं न तथान्ये महौजाः । एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः ॥ ३६ ॥ न तन्मित्रं यस्य कोपाद्बिभेति यद्वा मित्रं शंकितेनोपचर्यम् । यस्मिन्मित्रे पितरीवाश्वसीत तद्वै मित्रं सङ्गतानीतिराणि ॥ ३७ ॥ यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्त्तते । स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम् ॥ ३८ ॥ चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः । पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः ३९ चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।अर्थाः समभिवर्त्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा ॥ ४० ॥ अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः। शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥ ४१॥ सत्कृताश्च कृतार्थाश्च

इसीप्रकार योग्य महाकुलीन पुरुष आने वाले अतिथियोंका जैसा आदर सत्कार कर सकते हैं, तैसा और लोग नहीं कर सकते ॥३६॥ जिसके कोपसे भय लगे वह मित्र नहीं है अथवा जो मित्रता करनेमें शङ्का करता है उसको मित्र न समझे किन्तु जिस मित्रका अपने मन को पिताकी समान विश्वास हो उसको ही मित्र जाने, दूसरेको तो आकर मिलनेवाला जाने ॥ ३७ ॥ जो कोई भी बन्धनमें न पड़ कर भी यदि मित्रताका वर्त्ताव करे तो उसको ही बन्धु, उसको ही मित्र और उसको ही परम आश्रय जानो ॥३८॥ जिस पुरुषका मन चंचल होता है, जो वृद्धोंकी सेवा नहीं करता है और जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती है,उस पुरुषके मित्रोंका संग्रह स्थिर नहीं रहता है अर्थात् जो कामी क्रोधी बड़ोंका अपमान करनेवाला है और घड़ी २ में कुछ से कुछ कहने लगता है उसका कौन मित्र ? कोई शिक्षा देय तो उस को वह सह नहीं सकता, खोटे कामोंको छोड़नेके लिए समझाया जाय तो क्रोधमें भर जाय, इसलिए ऐसेका कोई संग नहीं करता है, विदुर कहते हैं, कि—युधिष्ठिरसा तुम्हारा कोई मित्र नहीं है जो तुम्हें उचित सम्मति देय, तुम्हारी बुद्धि चंचल है और जो विद्वान् हैं उनका कहना तुम मानते नहीं, इस कारण ही कोई तुम्हारा मित्र नहीं बनता है और मित्रके सिवाय दूसरा अच्छी सम्मति दे नहीं सकता ॥ ३९ ॥ जिसका मन चंचल होता है जो स्वयं मूर्ख होता है और इन्द्रियोंके वशमें होता है ऐसे पुरुषसे लक्ष्मी इस प्रकार दूर भाग जाती है जैसे हंस सूखे हुए सरोवरसे भाग जाते हैं ॥ ४० ॥ नीच मनुष्य एक साथ क्रोधमें भरजाता है, और विना ही कारणके प्रसन्न होजाता है, क्योंकि—दुर्जनका स्वभाव चंचल मेघकी समान होता है

मित्राणां न भवन्ति ये। तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुंजते ४२ अर्चयेदेव मित्राणि सति वासति वा धने। नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ॥ ४३ ॥ सन्तापाद् भ्रश्यते रूपं सन्तापाद् भ्रश्यते बलम्। सन्तापाद् भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद्व्याधिमृच्छति ।४४। अनवाप्यञ्च शोकेन शरीरं चोपतप्यते। अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः४५पुनर्नरो म्रियते जायतेच पुनर्नरो हीयते वर्द्धते च। पुनर्नरो याचति याच्यते च। पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥ ४६ ॥ सुखञ्च दुःखञ्च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च। पर्य्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥ ४७ ॥ चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद्यद्वर्द्धते यत्र यत्र। ततस्ततः स्रवते

अर्थात् जैसे मेघ एक साथ चढ़ आता है और फिर आप ही तित्तर वित्तर होजाता है यही दशा दुर्जनकी है ॥ ४१ ॥ जो पुरुष मित्रोंकी ओरसे आदर सत्कार पाने पर भी मित्रोंका आदर सत्कार और उपकार नहीं करते हैं उन मनुष्योंके मरे हुए कृतघ्नो शरीरोंको मांसाहारी प्राणी भी नहीं खाते हैं ॥ ४२ ॥ उदार पुरुष धनवान हो चाहे न हो तो भी वह मित्रोंका सत्कार करता है,उनसे कुछ मांगता नहीं तथा उनका सार पाना रूप हल्केपनको जानना नहीं चाहता है तात्पर्य यह है, कि—उदारता निष्काम होती है, उसमें कुछ कामना हुई तो वह उदारता ही नहीं कहलाती, परन्तु नीच पुरुष तो अपना प्रयोजन साधनेके लिए ही मित्रता किया करते हैं, ऐसे लोभी पुरुषों को मित्रताका सार क्या है और मित्रतामें ओछापन क्या है यह मालूम ही नहीं होता ॥ ४३ ॥ संताप करनेसे रूपका नाश होता है, संतापसे बलका नाश होता है,संतापसे ज्ञान नष्ट होता है और संतापसे मनुष्य रोगी होजाता है ॥४४॥ जो वस्तु दुर्लभ है वह संताप करनेसे नहीं मिलसकती शोकसे शरीर भस्म होनेलगता है तथा शत्रु बड़े प्रसन्न होते हैं,इसलिये मनमें सन्तापको न रहने देना४५मनुष्य मरता है और फिर जन्मपाता है,मनुष्य दरिद्री होता है और फिर बढ़जाता है,पुरुष याचना करता है,मनुष्य शोक करता है और दूसरोंको अपने शोकमें डालता है ॥४६॥ सुख और दुःख ऐश्वर्य और निर्धनता लाभ और हानि, मरण और जन्म ये लौटते फिरते सबको आते हैं इस लिये धीर पुरुष इनसे हर्ष शोक नहीं मानता है ॥ ४७ ॥ पांच इन्द्रियें और छठा मन ये छहों इन्द्रियें चञ्चल हैं, इनमेंकी इन्द्रियें ज्यों ज्यों विषयोंमें

बुद्धिरस्य छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः॥४८॥ धृतराष्ट्र उवाच । तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया । मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥ ४९ ॥ नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः । यत्तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते५०विदुर उवाच। नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् नान्यत्र लोभसन्त्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ५१बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥ ५२ ॥ अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः । रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥ ५३ ॥ स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः। तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते५४ स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते । न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥ ५५ ॥

आसक्त होजाता है त्यों त्यों उसकी बुद्धि इसप्रकार क्षीण होती चली जाती है जैसे टूटे हुए घड़ेमेंसे जल टपक २ कर नष्ट होजाता है ४८ धृतराष्ट्र पूछते हैं कि हे महामते ! अपने शरीररूप काठमें जिसने अपनी शक्तिको गुप्त रक्खा हो ऐसे अग्निके समान जिसने सहनशीलतासे अपने शरीरमें प्रतापीपनेको छिपारक्खा है ऐसे राजा युधिष्ठिरको मैंने बालकपनमें वृथा ही पाला वह युधिष्ठिर अब मेरे मूर्ख पुत्रोंका नाश कर डालेगा ॥४९॥ जैसे सब जगत् सदा उद्वेगमें रहता है तैसे ही मेरा मन भी सदा व्याकुलतामें रहता है, इस लिये जैसे वाक्योंसे मेरा मन आनन्दमें आवे तैसे वाक्य कहो ॥५०॥ विदुरजी बोले कि-हे निर्दोष धृतराष्ट्र ! विद्या, तप और जितेन्द्रियपनेके विना तथा लोभको त्यागे विना तुमको शांति मिले, ऐसा मैं नहीं देखता५१ मनुष्य बुद्धिसे भयको दूर करता है, तपसे तेज पाता है, गुरुजनोंकी सेवासे ज्ञान मिल जाता है और योगसे शान्ति पाता है ॥ ५२ ॥ जो पुरुष दानपुण्य करके उसके फलको नहीं चाहते और जो वैदिक यज्ञको करके फलको नहीं चाहते वे राग द्वेषसे छूटजाते हैं और इसलोक में जीवन्मुक्त होकर विचरते हैं ५३ पुरुष, अच्छीप्रकार अभ्यास करनेका, अच्छी प्रकार युद्ध करनेका, अच्छी प्रकार कियेहुए कर्मका और अच्छेप्रकार कियेहुए तपका उसकी समाप्ति होनेपर सुखरूप फल पाता है५४ हे राजन् ! जातिके साथ विरोध करनेवाले पुरुष अच्छेप्रकारसे बिछाई हुई शय्याओं पर भी कभी सुखकी नींद नहीं पाते और स्त्री का रतिसमागम भी नहीं पाते हैं और सूत तथा मागधोंके स्वर होने

न वै भिन्ना जातु चरंति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः। न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति॥५६॥ न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमङ्कल्पते नैव तेषाम्। भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किञ्चिदन्यद्विनाशात् ॥५७॥ सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं संभाव्यं ब्राह्मणे तपः। सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥ ५८ ॥ तन्तवोऽप्यायता नित्यं तनवो बहुलाः समाः। बहून्-बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम् ॥ ५९ ॥ धूमायंति व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च। धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥६०॥ ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च। वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतंति ते ॥६१॥ महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः। प्रसह्य एव वातेन सस्कंधो मर्दितुं क्षणात् ॥६२॥ अथ ये सहिता वृक्षाः

तो भी उससे प्रसन्न नहीं होते हैं ॥५५॥ जातिके साथ विरोध करने वाले पुरुष कभी धर्माचरण नहीं करसकते, जातिसे विरोध करने वाले इस लोकमें कभी सुख नहीं पाते, जातिके साथ विरोध करने वाले पुरुष कभी गौरव नहीं पाते और जातिके साथ विरोध करने वालोंको कभी शांतिका सुख भी नहीं मिलता ॥५६॥ हे नृपते ! जातिके साथ विरोध करनेवालोंको किसीका दिया हुआ उपदेश नहीं रुचता, उनके योग (अप्राप्तवस्तुका लाभ) और क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) का निर्वाह भी नहीं होता सार यह है कि-जातिसे विरोध करनेवालोंका नाश होजाय इसके सिवाय उनको और कोई आश्रय नहीं मिलता ॥ ५७ ॥ गौओंमें दुग्ध आदि सम्पदाकी संभावना करै, ब्राह्मणमें तपकी संभावना करै, स्त्रियोंमें चपलताकी संभावना करै और जातिसे भयकी संभावना करै ॥५८॥ छोटे छोटे और एकसमान बहुतसे तंतु इकट्ठे होनेसे दृढ़ताको पाकर बड़े भारी भारको सहलेते हैं (खैंच लेते हैं) ऐसा ही पुरुषोंमें भी जानो, यह एक सत्पुरुषोंकी उपमा है ॥५९॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! जैसे जलती हुई लक-ड़ियें अलग २ होजाने पर धुआँ करदेती हैं और इकट्ठी होकर जलने लगती हैं ऐसा ही जातिको जानो ॥ ६० ॥ हे धृतराष्ट्र ! जो पुरुष ब्राह्मणोंके ऊपर, स्त्रियोंके ऊपर, जातिके ऊपर और गौओंके ऊपर शूर बनते हैं वे पुरुष, जैसे फल दण्डोंमेंसे नीचे गिरपड़ता है तैसे ही गिरजाते हैं (दुःख पाते हैं) ॥ ६१ ॥ वृक्ष भूमिमें गहरा जमा होता है, दृढ और बहुत बड़ा होता है तो भी पवन उसकी शाखाओं

संश्रयाः सुप्रतिष्ठिताः । ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योऽन्यसंश्रयात् ॥६३॥ एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् । शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥ ६४ ॥ अन्योऽन्यसमुपष्टम्भादन्योऽन्यापाश्रयेण च । ज्ञातयः सम्प्रवर्द्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥६५॥ अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः । येषाञ्चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥ ६६ ॥ न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन् सधनतामृते । अनातुरत्वाद्भद्रन्ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥ ६७ ॥ अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम् । सताम्पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥ ६८ ॥ रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् । दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥६९॥ पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते

सहित एक क्षणभरमें उखाड़सकता है ॥६२॥ और जो वृक्ष एकसाथ इकट्ठे होकर दृढ़ताके साथ जमेहुए होते हैं वे अवश्य ही एक दूसरेके आश्रयसे बड़े वेगवाले पवनको भी सहजाते हैं ॥ ६३ ॥ इसीप्रकार मनुष्य गुणवान् होय तो भी यदि एक (सहायतासे रहित) होय तो जैसे पवन आश्रयरहित वृक्षको उखाड़ डालनेकी शक्ति रखता है तैसे ही उसको शत्रु नाश करनेयोग्य मानते हैं ॥ ६४ ॥ जैसे सरोवरमें कमल एक दूसरेके साथ सटेहुए होनेके कारण तथा एकको दूसरेका भलीप्रकार आश्रय होनेके कारण बराबर बढते चलेजाते हैं तैसे ही जातिके पुरुष भी एक दूसरेके साथ दृढ़ता करलेने पर तथा परस्परका आश्रय लेनेसे उन्नतिको पाते हैं ॥६५॥ ब्राह्मण, गौ, जाति, बालक, स्त्रियें, जिनका अन्न खाय और जो शरणमें आय ये मारने योग्य नहीं हैं ॥६६॥ हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो, मनुष्यमें धनीपना और नीरोगताके सिवाय तीसरा गुण नहीं है, क्योंकि-जो निर्धन और रोगी है वह मृतकसमान मानाजाता है ॥ ६७ ॥ हे महाराज ! अतितीक्ष्ण, माथेमें रोग पैदा करनेवाले, पाप करानेवाले, कठोर, प्रचण्ड, गरम, विना ही व्याधिके उत्पन्न हुए तथा जो असत् पुरुषोंके पीने योग्य नहीं है, किंतु जिसको सत्पुरुष ही पी सकते हैं ऐसे क्रोध को पीजाओ और शांत होओ ॥ ६८ ॥ रोगसे पीडा पाते हुए प्राणी पुत्र, स्त्री, धन आदि किसीकी भी अपेक्षा नहीं करते हैं, विषयोंमें इष्ट अनिष्टके विवेकको जानते ही नहीं तथा दुःखी रोगी धनको खर्च कर उससे सुख पाना जानते ही नहीं ॥६९॥ हे धृतराष्ट्र ! मैंने पहिले

जितान्द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन् । दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिता वर्जयंति ॥७०॥ न तद् बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः। प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥७१॥ धार्त्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु। एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः ॥७२॥ मेढ़ीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ । पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान् गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥ ७३ ॥ सन्धत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु । सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ७४

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि विदुरहितवाक्ये
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

विदुर उवाच । सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् । वैचित्रवीर्य पुरुषा नाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥ १ ॥ दानवेन्द्रस्य च धनु-

---

द्यूतक्रीडामें द्रौपदीको जीतीहुई देखकर कहा था, कि-तुम दुर्योधन को द्यूतक्रीड़ा करनेसे रोको तोभी तुमने मेरा कहना नहीं माना परंतु पण्डित पुरुष द्यूतक्रीड़ामें प्रेम नहीं रखते हैं ॥ ७० ॥ जो बल सहनशीलके साथ विरोध कराता है वह बल नहीं है जो बलवान्के साथ युद्ध करावे वही सच्चा पराक्रम कहलाता है थोड़ेसेभी धर्मको शीघ्रता से सेवन करै, क्रूर पुरुषको प्राप्त हुई लक्ष्मी नष्ट होजाती है और कोमल पुरुषके पास आयी हुई लक्ष्मी वृद्धिको प्राप्त होकर पुत्र पौत्रों तक चली जाती है ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र पाण्डवोंकी रक्षा करें और पाण्डव तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करें, पाण्डवोंके जो शत्रु और मित्र हैं वे ही कौरवोंके शत्रु और मित्र हों, कौरव और पाण्डव आपसमें मिलकर एक काम करें, सम्पत्तिमान् हों और सुखमें जीवन को बितावें ॥७२॥ हे धृतराष्ट्र ! तुम आज कौरवोंमें स्तम्भकी समान मुख्य हो, कुरुकुल तुम्हारे अधीन है, इस कारण हे तात ! वनवासके कारण अत्यंत पीड़ा पातेहुए बालक पांडवोंकी रक्षा करो और अपनी कीर्त्तिको फैलाओ॥७३॥हे धृतराष्ट्र ! तुम पाण्डुके पुत्रोंके साथ सन्धि करलो शत्रु तुम दोनोंमें भेद न डलवासकें, हे नरदेव ! वे पाण्डुके पुत्र सत्यका आश्रय लेकर रहते हैं, इस लिये हे नरेन्द्र ! तुम दुर्योधनको युद्धकी तयारी करनेसे रोको ॥ ७४ ॥ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ३६

हे राजन् ! हे विचित्रवीर्यके पुत्र! जो शिक्षा देनेके अयोग्य पुरुषको

धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया । कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥८॥ धृतराष्ट्र उवाच । शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा । नाप्नोत्यथ च तम् सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९ ॥ विदुर उवाच । अतिमानोऽतिवादश्च तथा त्यागो नराधिप । क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥१०॥एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥ ११ ॥ विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः । वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥ १२ ॥ आदेशकृद्वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः । एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमितिश्रुतिः ॥ १३ ॥ गृहीतवाक्यो नयविद्वदान्यः शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च । नानर्थकृत्या-

---

का वर्ताव करे ॥ ७ ॥ बुढ़ापा रूपका नाश करता है, आशा धीरज का नाश करती है, मृत्यु प्राणोंका नाश करती है, डाह धर्माचरणका नाश करता है, काम लज्जाका नाश करता है, नीचकी सेवा सदाचरणका नाश करती है, क्रोध लक्ष्मीका नाश करता है और अभिमान सर्वस्वका नाश करडालता है ॥८॥ धृतराष्ट्र बोले, कि-हे विदुर ! जब चारों वेदोंमें मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी लिखी है तब मनुष्य जगत्में पूरी आयुको क्यों नहीं भोग पाता है ? ॥ ९ ॥ विदुरजीने उत्तर दिया, कि हे राजन् ! अभिमान, अतिनिन्दा, विष देना, घरमें फूमल देकर चोरी करना अथवा लोभी होना, क्रोध करना, केवल अपना ही पेट भरलेना, मित्रोंसे द्रोह करना ये छः बातें मानो तेज करी हुई तलवारें हैं और प्राणियोंकी उमरको काटा करती हैं ये मनुष्योंको मारडालती हैं परन्तु मृत्युको नहीं मारतीं, उनसे तुम्हारा कल्याण हो१०-११हे भरतवंशी राजन् ! जो मनुष्य विश्वास करनेवाले की स्त्रीके साथ व्यभिचार करता है, जो गुरुकी स्त्रीके साथ कुकर्म करता है और जो ब्राह्मण होकर शूद्रजातिकी स्त्रीसे समागम करता है जो न पीने योग्य मदिरा आदिको पीता है जो मजूरोंसे आज्ञा देकर काम कराता है और उनको मजदूरी नहीं देता है जो ब्राह्मणकी आजीविकाका नाश करता है, जो ब्राह्मणोंसे मजदूरका काम लेता है और जो शरणागतको मार डालता है, ये सब ब्रह्महत्यारेकी समान हैं वेद कहता है कि-इनके साथ मिलकर प्रायश्चित्त करना चाहिये १२॥१३ विद्यावान्, अथवा विनयवान् नीतिको जाननेवाला दाता, पितरोंको

कुलितः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥१४॥ सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः । अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ १५॥ यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्त्तुः प्रियाप्रिये । अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥ १६ ॥ त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १७ ॥ आपदर्थे धनं रक्षेद्रक्षेद् दारान् धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १८ ॥ द्यूतमेतत् पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् । तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥१९॥ उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय । तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥२०॥ काकैरिमांश्चित्रबर्हान्मयूरान् पराजयेथाः पाण्डवान् धार्त्तराष्ट्रैः । हित्वा सिंहान् क्रोष्टु

अर्पण करनेके पीछे शेष अन्नको खानेवाला, किसीकी हिंसा न करनेवाला, खोटे कामके करनेमें न लगा रहनेवाला, किये हुए उपकारको माननेवाला सत्यवक्ता और दयालु स्वभाववाला विद्वान् स्वर्ग पाता है१४हे राजन् ! सदा मीठी बातें कहनेवाले पुरुष वहुतेरे मिलजाते हैं परन्तु कडवी लगनेवाली और हितकारी वातको कहने और सुननेवाले बडी कठिनतासे मिलते हैं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य धर्मका आश्रय लेकर स्वामीको अच्छा लगेगा या बुरा लगेगा इस विचारको छोडकर कडुवे और हितकारी वचन कहता है उसको ही राजाका सहायक जानो ॥ १६ ॥ कुलके लिये एक मनुष्यको छोड देय, ग्राम भरके लिये कुलको छोड देय देशके लिए ग्रामको छोड देय और अपनी रक्षाके लिए भूमिको छोड देय ॥ १७ ॥ दुःखमें काम आनेके लिये धनकी रक्षा करे, धनसे स्त्रीकी रक्षा करे और सदा स्त्रीसे और धनसे भी अपनी रक्षा करे ॥ १८ ॥ जुआ मनुष्योंमें वैर कराने वाला है, यह बात पुराने ग्रन्थोंमें देखनेमें आती है, इसलिए बुद्धिमान् हास्यके लिए भी जुआ न खेले॥१९॥हे विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्र ! जुआ खेलते समय भी मैंने कहा था, कि—यह बात अच्छी नहीं है, परन्तु जैसे मरनेको तयार हुए रोगीको पथ्य देनेवाली औषधि अच्छी नहीं मालूम होती है, तैसे ही उस समय मेरा हितकारी वचन तुम्हें अच्छा नहीं लगा ॥ २० ॥ हे नरेंद्र! तुम कौओंकी समान कौरवोंके द्वारा विचित्र पूँछवाले मोरोंकी समान पाण्डवोंको जीतना चाहते हो इसलिये तुम सिंहोंको छोडकर गीदडों

कान् गृहमानः प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥ २१ ॥ यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य । तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २२ ॥ न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं सञ्जिघृक्षेदपूर्वम् । त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः स्निग्धं ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २३ ॥ कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वाण्यायव्ययै चानुरूपाञ्च वृत्तिम् । संगृह्णीयादनुरूपान् सहायान् सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २४ ॥ अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री । वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २५ ॥ वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥ २६ ॥ अस्तब्धमक्लीब-

को खोजरहे हो परन्तु जब समय आवेगा तब तुम पछताओगे २१ हे तात ! जो स्वामी अपने ऊपर भक्ति रखनेवाले और अपना हित करनेमें तत्पर ऐसे सेवकके ऊपर किसी दिन भी कोप नहीं करता है किन्तु प्रसन्न रहता है तो वे सेवक उस स्वामीका विश्वास रखते हैं और आपत्तिके समय भी उसको नहीं छोडते हैं ॥ २२ ॥ नौकरोंकी नौकरी आदिको रोक कर दूसरेका राज्य व धन लेनेकी इच्छा न करे यदि आजीविकामें बाधा पडती है तो मन्त्री आदि काम करनेवाले लोग राजाके ऊपर प्रेम करनेवाले होने पर भी हमें धोका दिया है ऐसा मानकर विरोध करते हैं और छोड कर चले जाते हैं ॥ २३ ॥ इसलिए राजाको उचित है कि-अमुक काम बन सकेगा या नहीं इस बातका पहिलेसे ही विचार कर लें तथा नौकरोंको नौकरी, आमदनी और खर्चेके अनुकूल दीजाती है या नहीं इसका भी विचार करके अनुकूल सहायकोंको इकट्ठे करे क्योंकि-कठिन काम सहायतासे ही सिद्ध होते हैं२४जो सेवक अपने स्वामीके अभिप्रायको समझ करसावधानी के साथ सब कामोंको करता है हितकारी बात कहता है-प्रेम रखता है, श्रेष्ठ होता है और प्रभुशक्ति,मंत्रशक्ति तथा उत्साहशक्ति इन तीनों शक्तियोंको जानता है उसका पालन राजा अपने शरीरकी समान करे ॥ २५ ॥ जो सेवक आज्ञा करने पर राजाको वाक्यका अनादर करता है, काम बताने पर मैं नहीं करूँगा ऐसा उत्तर देता है, चतुराईका अभिमान रखता है और उल्टी बातें करता है ऐसे सेवकको बहुत ही शीघ्र त्यागदेना चाहिये ॥ २६ ॥ अभिमानरहित, उत्साही,

मदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः । अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम्॥२७॥ न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकालेन चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत ॥ २८ ॥ न निन्हवं मन्त्रगतस्य गच्छेत् संसृष्टमन्त्रस्य कुसंगतस्य। न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति सकारणं व्यापदेशन्तु कुर्यात्२९ घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा। सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥ ३० ॥ अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयंति प्रज्ञा च कौलञ्च श्रुतं दमश्च पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ३१ ॥ एतान्गुणांस्तात महानुभावानेको गुणःसंश्रयते प्रसह्याराजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो बिभर्ति ॥ ३२॥ गुणा दश स्नानशीलं भजंते बलं रूपं स्वरवर्णः प्रशुद्धिः । स्पर्शश्च गंधश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यप्रवराश्च

शीघ्रतासे काम करनेवाला, स्वामीकी हानि न होनेके लिये दयाभाव रखनेवाला, प्रसन्नचित्त, दूसरोंके बहकाने पर नौकरी छोड़ कर न जाने वाला, सब प्रकारके रोगोंसे रहित और मधुरभाषी इन आठ गुणों वाले मनुष्यको दूत (सेवक) कहते हैं ॥ २७ ॥ समझदार मनुष्य विश्वास न करनेयोग्य दूसरे मनुष्यके घर सायंकालके समय कभी न जाय रात्रिके समय चौराहेमें छुपकर न बैठे और राजाकी चाही हुई स्त्रीसे संभोगके लिये प्रार्थना न करे ॥ २८ ॥ बहुतसे मनुष्य इकट्ठे हो कर जो गुप्त संमति करते होंय और उनमें किसी सम्मति देनेवाला का विचार खोटा होय तो उस खोटी संमति देनेवालेको निकालनेके लिये न कहे और मैं तेरे ऊपर विश्वास नहीं करता यह बात भी न कहे परन्तु मुझे कुछ आवश्यक काम है ऐसे कारणका बहाना करके तहाँसे उठजाय ॥२९॥ लज्जावान्, राजा, वेश्या, राजाका अधिकारी पुत्र, भाई, बालक, बालकवाली विधवा, सेनापति, और अधिकारसे अलग हुआ मनुष्य इतनोंके साथ धन आदिका व्यवहार न करे ३० चतुराई, कुलीनता, शास्त्रका पठन, इन्द्रियोंको वशमें करना, पराक्रम, थोड़ा बोलना, शक्तिके अनुसार दान देना और उपकारको मानना ये आठ गुण पुरुषको दमका देते हैं ॥३१॥ हे तात ! ये उत्तम गुण किसी समय प्रतिष्ठासे इकट्ठे होजाते हैं जबराजा किसी मनुष्य का सत्कार करता है तब वह अकेला राजसत्कार ही इन गुणोंको इकट्ठे करके पुष्ट करता है ॥ ३२ ॥ स्नान करनेवाले मनुष्यको बल,

नार्यः ॥ ३३॥ गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजंते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च । अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपंति ॥ ३४ ॥ अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् । आदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहेन प्रतिवासयेत॥३५॥कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् । निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान्भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥ ३६ ॥ संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चाहढभक्तिकञ्च । विसृष्टरागं पटुमानिनञ्चाप्येतान्न सेवेत नराधमान् षट् ॥ ३७ ॥ सहायबन्धना ह्यर्थाःसहायाश्चार्थबन्धनाः । अन्योऽन्यबन्धनावेतौ विनान्योऽन्यं न सिद्ध्यतः ॥३८॥ उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिञ्च तेभ्योऽनुविधाय कांचित् स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥ ३९ ॥ हितं यत् सर्वभूताना-

रूप, स्वरकी शुद्धि, रंग स्पर्श, सुगन्ध, शुद्धता, शोभा सुकुमारपना और उत्तम स्त्रियें ये दश सेवा करते हैं ॥ ३३ ॥ नीरोगपना, आयु, बल, सुख श्रेष्ठपुत्रकी प्राप्ति और जिसको लोग बहुत, खानेवाला न कहें; ये छः गुण मितभोजन करनेवालेकी सेवा करते हैं ॥ ३४ ॥ जो कुछ भी काम करना न चाहै अथवा खोटे काम करनेवाला, बहुतसा खानेवाला, सब लोगोंका शत्रु, अनेकों प्रकारके कपट करने वाला, क्रूर, देशकालको न जाननेवाला, बुरा वेष रखनेवाला, इतने पुरुषों को अपने घरमें न रहने देय ॥ ३५॥ लोभी अथवा महाकृपण गालियें बकने वाला, मूर्ख, जंगलका रहनेवाला, धूर्त, बहुतसा सत्कार करने पर भी मेरा कुछ सत्कार न किया ऐसा मानने वाला, क्रूर शत्रुता रखनेवाला और कृतघ्नी, इतनोंसे अत्यन्त दुःख पाने पर भी कभी याचना न करै ॥ ३६ ॥ आततायी, बड़ा प्रमादी, सदा मिथ्या बोलने वाला, साधारण प्रेम रखनेवाला, प्रीति त्यागनेवाला, अपनेको चतुर माननेवाला, इन छः नीच पुरुषोंकी नौकरी न करै॥३७॥ धनसे सहायक मिल सकता है धन और सहायक यह दोनों परस्परके आश्रयसे रहते हैं इनमेंसे एकके विना दूसरा नहीं मिलसकता ॥ ३८ ॥ पुत्रोंको उत्पन्न करके उनको लिखा पढाकर उऋण कर देय फिर उनको कुछ आजीविका बाँधकर तथा सब पुत्रियोंको योग्य वरोंमें विवाह कर वनमें रहता हुआ मुनि बननेकी इच्छा करै क्योंकि-ऐसा किये बिना घरको छोड देनेसे मन घरमें ही पड़ा रहता है और आत्मविचार नहीं होसकता॥३९॥जो सब लोगोंको हितकारी हो और अपनेको भी सुख

मात्मनश्च सुखावहम् । तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ४० बुद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च । व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्य वृत्तिभयं कुतः ॥ ४१ ॥ पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः । पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः ॥ ४२ ॥ भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्पद्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य उत सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतोग्र हस्तिर्यगिवापतन् खे ॥ ४३ ॥ तव पुत्रशतं चैव कर्णः पंच च पाण्डवाः । पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥४४॥ धार्त्तराष्ट्रा वनं राजन् व्याघ्रा पांडुसुता मताः । मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रानीनशन्वनात् ४५ न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम् । वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान्रक्षति काननम्॥४६॥न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान् । यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥४७॥ अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत् । न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोका-

---

दायक हो वहही ईश्वरकोअर्पण करै क्योंकि-सकल पदार्थोंकी प्राप्ति एक इससे ही होती है ॥ ४० ॥ उन्नति, प्रताप, तेज, बल, उद्यम और निश्चय, इतनी बातें जिसमें होती हैं उसको आजीविका न मिलने का भय नहीं होता पाण्डवोंके साथ कलह करनेमें तुम्हारी ही हानि है क्योंकि संग्राममें इन्द्र आदि देवता भी कष्ट पावेंगे पुत्रोंके साथ वैर करना सदा व्याकुल रखता है, यशका नाश करता है और शत्रुओं को प्रसन्न करता है ॥ ४२ ॥ भीष्मका तुम्हारा इन्द्रकी समान द्रोणाचार्यका और राजा युधिष्ठिरका कोप यदि बढजायगा तो आकाशमें तिरछे उदय होतेहुए धूमकेतु तारेकी समान इस जगत्का नाश कर देगा ॥ ४३ ॥ परन्तु तुम यदि शान्तिरक्खो तो तुम्हारे सौ पुत्र, कर्ण और पाँचों पांडव ये समुद्रपर्यन्तकी सकल पृथ्वीपर राज्य करेंगे४४ हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन आदि वनकी समान हैं और पांडव व्याघ्रोंकी समान हैं इस लिये तुम व्याघ्रों सहित वनका नाश न करो और इन व्याघ्रोंको भी वनमेंसे न निकलने दो॥४५॥व्याघ्रोंके विना वन नहीं रहसकता और वनके विना व्याघ्र नहीं रहसकते, व्याघ्र वनकी रक्षा करते हैं और वन व्याघ्रोंकी रक्षा करता है ॥ ४६ ॥ तुम्हारे पापबुद्धि पुत्र जैसे पाण्डवोंके दोष देखना चाहते हैं तैसे दूसरों के शुभ गुणोंको देखना नहीं चाहते ॥ ४७ ॥ जिसको बहुत सा धन पानेकी इच्छा हो वह आरम्भसे ही धर्मका आचरण करे

दिवामृतम् ॥४८॥ यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः। तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥ ४९ ॥ यो धर्ममर्थं च कामं च यथा कालं निषेवते। धर्मार्थकामसंयोगं लोऽमुत्रेह च विन्दति ५० सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः। स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति५१बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते५२अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते। तृतीयं धनलाभन्तु बलमाहुर्मनीषिणः५३यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्। अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ।५४। येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत। यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते ॥ ५५ ॥ महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः। तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥ ५६ ॥ स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु। भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ५७ ॥ प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न

जैसे स्वर्गमेंसे अमृत दूर नहीं होता तैसे ही धन धर्मसे दूर नहीं जाता है ॥ ४८ ॥ जिसने अपने मनको पापोंसे हटा कर कल्याणमें लगा दिया है उस मनुष्यने भला बुरा सब जान लिया है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य धर्म, अर्थ और कामका समयके अनुसार सेवन करता है वह मनुष्य धर्म, अर्थ और कामके संयोगको इस लोकमें पाता है ५० हे धृतराष्ट्र! जो मनुष्य काम और क्रोधके उठे हुए वेगको वशमें रखता है वह लक्ष्मीवाला होता है और विपत्तिके समय भी कुमलाता नहीं है ॥ ५१ ॥ पुरुषोंका सदा पाँच प्रकारका बल है उसको मुझसे सुनो जो भुजाओंका बल कहलाता है वह कनिष्ठबल है ॥ ५२ ॥ हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो विद्वान् लोग दूसरा बल मन्त्रीके लाभको कहते हैं और तीसरा बल धनके लाभको कहते हैं ॥ ५३ ॥ हे राजन्! उत्तम कुलके बलको चौथा बल जानो, यह बल तो इन पाण्डवोंमें स्वाभाविक ही बाप दादासे चला आता है ॥ ५४ ॥ हे भरतवंशी राजन्! सब बलोंमें जो बल उत्तम है उसको बुद्धिबल कहते हैं, जिस बलसे सब बल इकट्ठे होसकते हैं ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य दूसरोंका बहुत बुरा कर सकता है, उसके साथ वैर करके, मैं उससे दूर रहता हूं, ऐसा विश्वास न करे ॥ ५६ ॥ कौनसा बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियोंका राजाओंका, साँपोंका, पढी हुई विद्याका, शक्तिमान् शत्रुका, ऐश्वर्यो का और आयुका विश्वास करता है? कोई नहीं करता ५७ बुद्धिरूप

चौषधानि । न होममन्त्रा न च मङ्गलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥ ५८ ॥ सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत । नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥५९॥ अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु । न चोपयुंक्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥ ६० ॥ स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते । तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥ ६१ ॥ एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः । क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥ ६२॥ लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः । न लता वर्द्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥ ६३ ॥ वनं राजंस्त्वं सपुत्रोऽम्बिकेय सिंहान् वने पाण्डवांस्तात विद्धि । सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत् सिंहा विनश्येयु ऋते वनेन ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

विदुर उवाच । ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।

बाणसे घायल हुए प्राणीको वैद्य, औषध, हवनके मन्त्र, शांतिकर्म, अथर्ववेदके मंत्र और भलेप्रकार सिद्ध हुए पारा आदि रस भी आराम नहीं कर सकते ५८ हे भारत ! मनुष्यको चाहिये, साँप, आग, सिंह और जाति इन चारका अपमान न करे क्योंकि-ये बड़े उग्र हैं ५९ जब तक मनुष्य काठको मथकर अग्निको प्रज्वलित नहीं करते हैं तबतक अग्निका बड़ा भारी तेज काठमें छिपा रहता है और वह काममें नहीं आता ॥ ६० ॥ जब काठको मथकर उससे अग्निको प्रज्वलित करते हैं तब ही वह अग्नि अपने तेजसे निःसन्देह उस काठको और दूसरे वनको जरा देरमें भस्म कर डालता है ॥ ६१ ॥ इसप्रकार ही कुलमें उत्पन्न हुए पाण्डव अग्निकी समान तेजस्वी हैं परन्तु क्षमावान् होने के कारण जैसे अग्नि काठमें अपने आकारको छिपा कर रहता है तैसे ही पाण्डव भी अपने स्वरूपको छिपाये हुए सोया करते हैं ६२ हे राजन् ! पुत्रों सहित तुम लतारूप हो और पाण्डवोंको सालके वृक्षोंकी समान जानो, लता बड़े वृक्षोंका आश्रय लिए विना कभी नहीं बढ सकती ॥ ६३ ॥ हे राजन् धृतराष्ट्र ! तुम्हारे पुत्र वन हैं और हे तात ! उस वनमें पाण्डवोंको सिंह जानो सिंहके विना वन अवश्य नष्ट होजाता है और वनके विना सिंह नष्ट होजाते हैं ॥ ६४ ॥ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

विदुर बोले कि-हे धृतराष्ट्र ! जब वृद्ध पुरुष आता है तब तरुण

प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥ १ ॥ पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ । सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २ ॥ यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे । लोभाद्भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥ ३ ॥ चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णी स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च । सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ ४॥ अविक्रेयं लवणं पक्वमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृतञ्च । तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥५ ॥ अरोषणो यः समलोष्टाश्मकांचनः प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः । निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेव भिक्षुकः ॥ ६ ॥ नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु

पुरुषके प्राण ऊपरको निकल आते हैं और उस वृद्धका सन्मान तथा अभिवादन करनेके अनन्तर उन प्राणोंको फिर पाजाता है ॥ १ ॥ सत्पुरुष घर आवे तो धीर पुरुष पहिले उसको बैठनेके लिये आसन देय जल मँगाकर उसके पैर धोवे, फिर कुशलमंगल बूझकर अपना समाचार कहे, फिर अन्नको देख भाल कर वह अन्न अतिथिको देय ॥ २ ॥ लोभसे या राजा आदि मुझे धनवान् समझ लेंगे ऐसे भय से अथवा कृपणतासे जिसके घरमें वेदको जानने वाला ब्राह्मण जल मधुपर्क और गौको नहीं पाता है उसके जीवनको श्रेष्ठ लोग निरर्थक कहते हैं ॥ ३ ॥ वैद, शस्त्र बनानेवाला, ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुआ, चोर, क्रूर, मदिरा पीनेवाला, गर्भ गिरानेवाला, केवल आजीविकाके लिए सेनामें नौकरी करनेवाला और धन लेकर वेद पढानेवाला इतने जने यद्यपि जलके भी योग्य नहीं हैं परन्तु जब ये अतिथि बनकर अपने घर आवें तब गृहस्थी इनको अपना प्यारा मानें ॥ ४ ॥ मीठा, रांधा हुआ अन्न, दही, दूध, मद्य, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, शाक, लाल वस्त्र, सब प्रकारके सुगन्धित पदार्थ और गुड़ इतनी वस्तुयें वेचनेके योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥ क्रोधरहित, पत्थर और सोनेको एक समान मानने वाला, शोकरहित होकर सदा आनन्दमें रहने वाला, किसीसे मेल वा विवाद न करने वाला, निन्दा वा प्रशंसा करनेसे बचा हुआ, उदासीनकी समान भले बुरे दोनोंको त्यागने वाला, ऐसे पुरुषको भिक्षाका अधिकारी अतिथि जानै ॥६॥ समा आदि धान्य, मूल, इंगुदी और शाकसे निर्वाह करने वाला, मनको अच्छे प्रकार

चोद्यः । वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥ ७॥ अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् । दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥ ८ ॥ न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् । विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥९॥ अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः । श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥१०॥ पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥ ११ ॥ पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् । गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत् । भृत्यैर्वाणिज्यचारश्च पुत्रैः सेवेत च द्विजान् ॥१२॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् । तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥१३॥ नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः । क्षमा-

---

वशमें करने वाला, अग्निहोत्रादि कर्ममें तत्पर, वनमें रहने वाला, अतिथियोंके विषयसे सावधानी रखनेवाला और पुण्यकर्म करनेवाला ऐसे मनुष्यको बड़ा तपस्वी अतिथि जानो ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् पुरुषका अपकार कर के मैं उससे दूर रहता हूँ, इस बातके भरोसे न रहै, क्यों कि-बुद्धिमान् पुरुषके हाथ बड़े लम्बे होते हैं कि-जिन दोनों हाथोंसे तिरस्कार पाया हुआ बुद्धिमान् हानि पहुंचाने वालेके प्राण लेलेता है८ अविश्वासी मनुष्यका विश्वास न करै और विश्वासीका अधिक विश्वास न करै, क्योंकि-विश्वासीसे उत्पन्न हुआ भय जड़ तकका नाश कर डालता है ॥ ९ ॥ किसीसे डाह न करै, स्त्रीकी रक्षा करै, समान विभाग करै, प्यारा बोलै, कोमल रहै, मीठा वचन बोलै और स्त्रियोंका विश्वास न करै ॥ १० ॥ पूजा करने योग्य महाभाग्यवान् पवित्र और घरको शोभा देने वाली स्त्रियोंको घरकी लक्ष्मी कहा है इस लिये स्त्रियोंकी यत्नसे रक्षा करै ॥११॥ पिताको अन्तःपुरके ऊपर नियत करै, माताको रसोईघरका काम देय, गौओंके ऊपर अपनी समान अवस्था वालेको नियत करै, और खेती करनेको अपने आप जाय, बाजारका व्यापार नौकरोंसे करावै और ब्राह्मणको सेवा पुत्रके हाथसे करावै ॥१२॥ जलमेंसे अग्नि उत्पन्न हुई है, पत्थरोंमेंसे लोहा उत्पन्न हुआ है, क्षत्रिय जाति ब्राह्मणोंसे उत्पन्न हुई है, इनका तेज सर्वत्र फैला हुआ है और ये अपने कारणोंमें जाकर शान्त होजाते हैं पाण्डव निरन्तर सद्गुणी हैं, अच्छे कुलमें उत्पन्न हुए हैं, अग्निकी समान तेजस्वी हैं और क्षमावान् हैं, जैसे काठमें अग्नि छिपी हुई है

वन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥ १४ ॥ यस्य मंत्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये । स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ॥१५॥ करिष्यन्न तु भाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् । धर्मकामार्थकार्य्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ॥ १६ ॥ गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः । अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते ॥ १७ ॥ नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् । अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान् ॥ १८ ॥ नापरीक्ष्य महीपालः कुर्य्यात् सचिवमात्मनः ॥१९॥ अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च । कृतानि सर्वकार्य्याणि यस्य पारिषदा विदुः ॥ २० ॥ धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः। गूढमंत्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥२१॥ अप्रशस्तानि कार्य्याणि यो मोहादनुतिष्ठति । स तेषां विपरिभ्रंशाद्भ्रश्यते जीवितादपि २२ कर्मणान्तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् । तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम्२३ अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति। एवमश्रुतषाड्-

तैसे ही वे अपने पराक्रमको छिपाये रहते हैं ॥ १३।१४ ॥ जिसके गुप्त विचार शत्रु तथा मंत्रियोंके भी जाननेमें नहीं आते और जो दूतोंके द्वारा चारों ओरको दृष्टि रखता है तथा करनेके कामोंको पहिलेसे कहता नहीं है किंतु करके ही दिखाता है वह राजा चिरकाल तक राज्य भोगता है ॥ १५—१६ ॥ हे भरतवंशी राजन्! पर्वत पर चढ़ कर, महलमें एकान्तमें बैठ कर अथवा तृणरहित वनमें जाकर गुप्त विचार करै, कि—जिससे धर्म, अर्थ और कामके कार्य तथा गुप्त विचार प्रकट न हों, जो शत्रु है वह परमगुप्त विचारको जाननेका अधिकारी नहीं है ॥ १७।१८ ॥ मित्र होने पर भी पण्डित न हो और पण्डित होने पर भी पराधीन हो, उसको राजा विना परीक्षा किये अपना मन्त्री न बनावे॥१९॥क्योंकि-धन पानेकी इच्छा और विचार को गुप्त रखनेका आधार मन्त्री ही है और वह ही राजा सबमें उत्तम कहलाता है कि—जिसके धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्योंको सभासद् लोग सिद्ध होने पर ही जानते हैं, विचारको गुप्त रखने वाले राजाको निःसन्देह सिद्धि प्राप्त होती है ॥२०—२१॥ जो राजा मूर्खतावश अशुभ काम करता है वह राजा अयोग्य कार्योंकी दुष्टता के कारण मरण पाता है ॥ २२ ॥ उत्तम काम करनेसे सुख मिलता है और उन उत्तम कामोंको न करनेसे अर्थात् अनुचित कर्म करनेसे पश्चात्ताप होता है ॥ २३ ॥ जैसे ब्राह्मण विना वेद पढ़े श्राद्धमें योग्य

गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥२४॥ स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः । अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥ २५ ॥ अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्वा न्यवेक्षिणः । आत्मप्रत्ययकोशस्य स्वाधीनेयं वसुन्धरा ॥ २६ ॥ नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः । भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत् ॥ २७ ॥ ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्त्ता वेद स्त्रियं तथा । अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥ २८ ॥ न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति । अहताद्धि भयं तस्माज्जायते न चिरादिव ॥२९॥ दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च । नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥ ३० ॥ निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् । कीर्त्तिञ्च लभते लोके न चार्थेन वियुज्यते ॥ ३१ ॥ प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः । न तं भर्त्तारमिच्छन्ति षण्ढं

नहीं होता है तैसे ही जिसने छः (संधि-विग्रह-यान-आसन संश्रय और द्वैधीभाव) गुणोंको नहीं सुना है वह गुप्तविचारको सुननेका अधिकारी नहीं है ॥ २४ ॥ हे धृतराष्ट्र ! जो राजा रक्षा, वृद्धि और नाश इन बातोंका जाननेवाला हो, जो संधि आदि छः गुणोंसे अपने स्वरूपको पहिचानता हो जिसका स्वभाव किसीका तिरस्कार करने का न हो, पृथ्वी उस राजाके वशमें रहती है ॥ २५ ॥ जिस राजाका क्रोध और हर्ष फलदायक होता हो, जो स्वयं काम करके भी उसकी देखभाल रखता हो, खजाने आदिको स्वयं देखता हो उस राजाको पृथ्वी धन देती ही है ॥२६॥ राजा अपने नामसे और छत्रसे ही प्रसन्न रहे, अपने नौकरोंको धन देय परन्तु सब वस्तुओंको अकेला आप ही लेलेनेवाला न बने२७ब्राह्मण ब्राह्मणको पहिचानता है,पति पत्नीके आचार आदिको जानता है, राजा मंत्रियोंको पहिचानता है और राजा ही राजाको पहिचानता है ॥२८॥ मारने योग्य शत्रु अपने वशमें आजाय तो उसे जीवित ही न छोड़ देय, बल न हो तो दूर रहकर उसकी सेवा करै और बल होने पर शत्रुको मारडाले, यदि उसे न मारा जाय तो थोड़े ही समयमें उससे भय उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥ पुरुष देवता, राजा, ब्राह्मण, बालक और दुःखी इनके ऊपर क्रोध आने पर भी क्रोधको प्रयत्नपूर्वक रोकै अर्थात् इनके ऊपर क्रोध न करै ॥ ३० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य मूर्खके सेवन करेहुए निरर्थक कलहको त्याग देय तो जगत्में कीर्त्ति पाता है और दुःखी नहीं होता है ॥३१॥

पतिमिव स्त्रियः ॥ ३२ ॥ न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये । लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥३३॥ विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत । धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ३४ अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् । अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥३५॥ अविसंवादनन्दान्तं समयस्याव्यतिक्रमः । आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक् प्रणिहिता च वाक् ॥३६॥ अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः । अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥३७॥ धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा । मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥ ३८ ॥ असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः । तादृङ् नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥३९॥ न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि । यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यंतरं

स्त्रियें जैसे नपुंसक पतिको नहीं चाहती हैं तैसे ही प्रजाएँ भी जिसका क्रोध निरर्थक है और कृपा निष्फल है ऐसे राजाको नहीं चाहती हैं ॥ ३२ ॥ बुद्धि धनका लाभ नहीं कराती है और मूर्खता दरिद्रता नहीं देती है, जो बुद्धिमान् मनुष्य हैं वे इस लोकमें किये हुए कर्मका परलोकमें फल पाते हैं उस विषयमें वे ही जानते हैं दूसरे उस बात को नहीं जानते ॥ ३३ ॥ हे भारत ! मूर्ख मनुष्य ही सदा विद्या, स्वभाव बुद्धि और अवस्थामें बड़े, धनमें और जातिमें उत्तम, इतने मनुष्योंका अपमान करता हैं ॥ ३४ ॥ जिसका आचरण दूषित होता है जो मूर्ख होता है, जो डाह करनेवाला होता है जो धर्मभ्रष्ट होता है जो कठोर बोलनेवाला होता हैं तथा जो क्रोधी होता है उसके ऊपर शीघ्रही दुःख आपड़ते हैं ३५ किसीसे कपट न करना दान देना अपनी कोई मर्यादा (प्रतिज्ञा) पालना और मीठा बोलना, इन बातोंसे शत्रुभी मित्र बन जाते हैं ॥३६॥ जो राजा किसीके साथ झगड़ा नहीं करता हैं, जो राजा चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और कोमल होता है यदि उसका खजाना नष्ट होजाय तो भी सेवक मित्र और परिवारको पाता है अर्थात् वे उसे तब भी नहीं त्यागते हैं ॥३७॥ १ धैर्य, २ शम, ३ दम, ४ पवित्रता, ५ दयालुता, ६ कोमल भाषण और ७ मित्रके साथ द्रोह न करना ये सात वस्तुएँ लक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाली हैं ३८ हे धृतराष्ट्र ! जो पालने योग्यों को भी बिना दिये खाजाता है, जो दुर्जन होता है जो कृतघ्न होता है और जो निर्लज्ज होता है वह राजा त्याग करने योग्य है ३९ जो अवगुणोंसे भरा हुआ मनुष्य, निर्दोष मनुष्योंको क्रोधित करता है वह अवगुणी मनुष्य

जनम् ॥ ४० ॥ येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत । सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥ ४१ ॥ येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च । ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥ ४२ ॥ यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता । मज्जंति तेऽवशा राजन्नद्यामश्मप्लवा इव ॥ ४३ ॥ प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत । तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः ॥ ४४ ॥ यं प्रशंसंति कितवा यं प्रशंसंति चारणाः । यं प्रशंसन्ति बंधक्यो न स जीवति मानवः ॥ ४५ ॥ हित्वा तान् परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः । आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥ ४६ ॥ तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात्त्वमचिरादिव । ऐश्वर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरहितवाक्ये अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सर्पवाले घरमें जैसे सुखसे निद्रा नहीं आती है तैसे ही रात्रिको आनंद से नहीं सोता है ॥ ४० ॥ हे भारत ! जिनके क्रोधित होनेसे धन मिलने और पाये हुए धनकी रक्षा करनेमें अड़चन पड़े ऐसे मनुष्योंको सदा देवताओंकी समान प्रसन्न रक्खे ॥ ४१ ॥ जो धन स्त्रियोंको सौंपा हो, जो धन मदोन्मत्तोंको सौंपा होय, जो धन पापियोंको सौंपा होय और जो धन दुर्जनको सौंपा होय ये सब धन फिर नहीं मिलते ४२ हे राजन्! जिनके घरमें स्त्रियोंकी चलती है, जहाँ धूर्त मनुष्योंकी प्रबलता होती है और जहाँ बालक राजा होता है तहाँके लोग परवश होतेहुए पाषाण की नावमें बैठनेवाले जैसे डूब जाते हैं तैसे ही डूब जाते हैं (दुःखी होते हैं) ४३ हे भारत! जो लोग केवल अपने कामकी बातोंमें ही लगे रहते हैं और अधिक व्यर्थकी बातोंमें नहीं फँसते हैं उनको ही मैं पण्डित मानता हूँ और जो मनुष्य निरर्थक बातोंमें लगे रहते हैं उनको संसारमें टक्करें खानेवाला ही समझो ४४ कपटी जिसकी प्रशंसा करते हैं चारण जिसकी प्रशंसा करते हैं और वेश्याएँ जिसकी प्रशंसा करती हैं वह मनुष्य जीवित नहीं है अर्थात् जीता हुआ ही मरे हुएकी समान है ४५ हे भारत ! महापराक्रमी और महाधनुर्धर पाण्डवोंको छोड़कर तुमने दुर्योधन पर इतने बड़े राज्यका भार डोलदिया है अतः ऐश्वर्यके मद में चूर हुआ राजा बली जैसे तीनों लोकोंके राज्य परसे गिरगया था तैसे ही तुम ऐश्वर्यके मदमें मूढ़ हुए दुर्योधनको थोड़े ही समयमें राज्य से भ्रष्ट हुआ देखोगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ३८ ॥

धृतराष्ट्रउवाच । अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा । धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोयं तस्माद्वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् । लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानञ्च भारत ॥२॥ प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः । मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥ ३ ॥ द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः । प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥ ४ ॥ उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन् दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम् । तस्य त्यागात् पुत्रशतस्य वृद्धिरस्यात्यागात् पुत्रशतस्य नाशः ॥५॥ न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् । क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥ ६ ॥ न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत् क्षयः न स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत७

धृतराष्ट्रने बूझा कि हे विदुर ! डोरीमें पुरी हुई काठकी पुतली जैसे डोरीके अधीन होनेसे (चलने फिरने आदिमें) पराधीन होती है, तैसे ही विधाताके द्वारा दैवके वशमें गया हुआ मनुष्य शुभ वा अशुभ फल पानेमें पराधीन है । अतः तुम मुझे ज्ञानके वाक्य सुनाओ मैं उन्हें धैर्यसे सुनूँगा ॥ १॥ विदुर बोले कि- हे धृतराष्ट्र ! बृहस्पति भी असमय कोई बात कहता है तो मूर्ख गिना जाता है और बड़ा तिरस्कार पाता है ॥ २॥ कुछ मनुष्य वस्तुएँ देनेसे मित्र बनजाते हैं, कुछ मनुष्य मीठा बोलनेसे मित्र बन जाते हैं, कुछ मनुष्य गुप्तविचार के बलसे मित्र बनजाते हैं, कुछ मनुष्य सम्बन्धियोंके कारणसे मित्र बनजाते हैं, परन्तु मित्र वह ही होता है जो मित्र होता है ॥ ३ ॥ जो शत्रु होता है वह मित्र नहीं होसकता, शत्रु पण्डित नहीं जँचता और बुद्धिमान् भी नहीं जँचता है । मित्र जितने काम करता है वे सब अच्छे लगते हैं शत्रु जितने काम करता है वे सब अवश्य बुरे लगते हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! जब दुर्योधनका जन्म हुआ था तबही मैंने कहा था कि-तुम एक पुत्र दुर्योधनको छोड दो इसका त्याग करनेसे सौ पुत्रोंकी वृद्धि और ग्रहण करनेसे सौ पुत्रोंका नाश होगा ॥ ५ ॥ जो बढ़ोतरी नाश करनेवाली हो उस वृद्धिको अच्छी नहीं माने, जो घटाव वृद्धि करनेवाला हो वह घटाव भी उत्तम माना जाता है ॥ ६ ॥ हे महाराज ! जो क्षय वृद्धि करनेवाला हो वह क्षय नहीं कहाजाता है परन्तु क्षय तो उसे मानना चाहिये जिसके होनेसे बहुतोंका नाश हो ॥७॥ बहुतसे गुणसे समृद्धि

समृद्धा गुणतः केचिद्भवन्ति धनतोऽपरे। धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय ॥८॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्। न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९ ॥ विदुर उवाच। अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः। सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥ १० ॥ परापवादनिरता परदुःखोदयेषु च। परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥ ११ ॥ सदोषं दर्शनं येषां सम्वासे सुमहद्भयम्। अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद्भयम् ॥ १२ ॥ ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः। ये पापा इति विख्याताः सम्वासे परिगर्हिताः ॥ १३ ॥ युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्। निवर्त्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति १४ या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत् सुखम्। यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ॥१५॥ अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति।

वाले होते हैं, कुछ धनसे समृद्धि वाले होते हैं। हे धृतराष्ट्र! इनमें जो धनसे बड़े हों और गुणसे बड़े न हों उनका त्याग करो ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि हे विदुर! तुम जो कहते हो यह परिणाममें फल देने वाली और विद्वानोंकी मानी हुई है, तो भी मैं पुत्रका त्याग करना नहीं चाहता, जहाँ धर्म है तहाँ जय है ॥ ९ ॥ विदुर बोले, कि-जो मनुष्य बडे बुद्धिमान् और विनय धारण करनेवाले होते हैं, वे किसी दिन भी प्राणियोंको जरासा भी दुःख नहीं देते हैं ॥१०॥ जो दूसरों की निन्दा करनेमें लगे रहते हैं, जो दूसरोंको दुःख देनेमें तत्पर रहते हैं, जो सदा सावधान रहकर एक दूसरेसे कलह करानेका यत्न करते हैं, जिनका दर्शन करनेसे पाप लगता है, जिनके साथ रहनेमें बड़ा डर लगता है, जिनका विरोध करवानेका स्वभाव है। जो कामी-निर्लज्ज और शठ हैं उनको प्रसिद्ध पापियोंमें गिनना चाहिये और साथ रहनेमें भी इतनोंकी निन्दा की है ॥ ११-१३ ॥ जिन मनुष्योंमें ऊपर गिनाये हुए दोषोंके सिवाय दूसरे महादोष हों उन मनुष्योंका भी संग न करे, क्योंकि-मित्रता समाप्त होनेके पीछे नीच मनुष्योंका प्रेम नष्ट होजाता है ॥ १४ ॥ मित्रताका फल और सुख इन (दो) के बन्द होने पर दुर्जन मित्र उसकी बुराई करने और उसका नाश करनेको मथता है, कोई मनुष्य मूढ़, क्रूर और नीच स्वभाव वाले पुरुषका थोड़ासा भी मनके प्रतिकूल काम कर देता है तो वह मूर्खता के कारण शान्ति नहीं रखता है किन्तु सामना करनेको तयार हो

तादृशैः सङ्गतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥१६॥ निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद्विवर्जयेत्। यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् १७ स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते । ज्ञातयो वर्द्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ॥१८॥ कुलवृद्धिश्च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर। श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ॥१९॥ विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ। किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः॥२०॥ प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते। दीयन्तां ग्रामकाः केचित्तेषां वृत्यर्थमीश्वर ॥ २१ ॥ एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप। वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम् २२ मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम् । ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्त्तव्यः शुभार्थिना। सुखानि सह भोक्तव्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥ २३ ॥ सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्। ज्ञातिभिः

जाता है अतः विद्वान् ऐसे नीच पुरुषोंकी देखभाली करता रहै और जाननेके पीछे ऐसे नीचको दूरसे छोड़ देय, जो मनुष्य दरिद्र दशामें पड़ेहुए दीन और आतुर हुए अपनी जातिवालों के ऊपर दया करता है उसके पुत्र और पशुओंमें वृद्धि होती है और वह अपार कल्याणको पाता है, अतः जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो उसे अपनी जातिवालोंकी वृद्धि करनी चाहिये ॥ १५-१८ ॥ हे राजेन्द्र ! इसलिये तुम भलीप्रकार कुलकी वृद्धि करो, हे राजन् ! जो ज्ञातिका सत्कार करता है वह सुख पाता है ॥१९॥ हे राजन् ! जाति (कुटुंब) के मनुष्य गुणरहित और अवगुणोंसे भरे हुए हों तो भी उनका भली प्रकार पालन करना चाहिएऔरयह पाण्डव तो गुणी हैं और तुम्हारी कृपा चाहते हैं तब तुम उनका किस लिये पालन नहीं करते हो ।२०। हे समर्थ राजन् ! तुम शूरवीर पाण्डवोंको अपनी आजीविका चलाने के लिये कुछ छोटे २ ग्राम देदो ॥२१॥ हे नराधिप ! इसप्रकार बर्ताव करनेसे तुम्हें जगत्में यश मिलेगा, हे तात ! तुम वृद्ध हो अतः तुम्हें पुत्रोंका पालन करना ही चाहिये ॥ २२ ॥ हे भरतर्षभ ! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ ऐसा समझो और मुझे भी तुम्हें हितका उपदेश करना चाहिए, हे तात ! कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको जातिवालोंके साथ वैर नहीं करना चाहिये परन्तु उनके साथ सुख भोगना चाहिए २३ जातिवालोंके साथ भोजन करना, उनके साथ बात चीत करना, परस्पर प्रेम करना, काम करना चाहिए परन्तु किसी दिन भी कलह

सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥२४॥ ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च। सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥ २५ ॥ सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद। अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥ श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति। दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति॥ २७ ॥ पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति। तान् वा हतान् सुतान् वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय ॥ २८ ॥ येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा। आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥ २९ ॥ न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्। शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥ ३० ॥ दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम्। त्वया तत् कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ॥ ३१ ॥ तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः। भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम्॥३२॥सुव्याहृतानि धीराणां

नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ इस जगत्में जाति तारती है और जाति ही डुबा देती है, जो जातियें खोटे आचरण वाली होती हैं वे डुबो देती हैं और अच्छे आचरण करने वाली जातियें पार लगा देती हैं ॥ २५॥ हे मानद ! तुम पाण्डवोंसे अच्छा व्यवहार करनेवाले बनो हे राजेन्द्र ! पाण्डवोंकी सहायता मिलने पर तुम्हें शत्रु दबा नहीं सकेंगे ॥ २६ ॥ यदि कुटुम्बका मनुष्य लक्ष्मी वाले कुटुम्बके आश्रयमें रहकर दुःख पाता है तो व्याधेके पाशमें पड़ कर जो मृग मरजाता है और उसके वधका पाप व्याधेको लगता है तैसे ही श्रीमान् मनुष्य दुःखी कुटुम्बोंके पापको पाता है॥२७॥ हे नरश्रेष्ठ! पाण्डव तुम्हारे पुत्रको मारडालेंगे, और यह सुनकर पीछे तुम पछताओगे अतः इसका विचार करो ॥ २८ ॥ आयु चंचल है अतः जिस कामको करनेसे खाट पर बैठे २ सन्ताप करना पड़े उस कामको पहिलेसे ही नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ नीतिशास्त्रके कर्त्ता शुक्राचार्य के सिवाय दूसरा कोई अन्याय नहीं करता है ऐसा न समझो, किंतु सब अनीति करनेवाले हैं, इसलिये जो हुआ सो हुआ, बाकी रही बातका विचार करनेका ज्ञान बुद्धिमान् पुरुषोंमें ही रहता है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! पहिले दुर्योधनने पाण्डवोंको जो दुःख दिया है उस दुःख को तुम मिटादो, क्योंकि-तुम कुलमें बड़े हो ॥३१॥ हे राजन् ! पांडवों को राजसिंहासन पर बैठालोगे तो तुम पापरहित होजाओगे और जगत्में पण्डितोंमें सन्मान पाने योग्य होओगे ॥३२॥ जो पुरुष धीर

फलतः परिच्छिन्द्य यः । अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति॥३३॥ असम्प्रयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि । उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्द्धते ३५ यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्त्तते । अगाधपंके दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥ ३६ ॥ मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत् । अर्थसन्ततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ॥ ३७ ॥ मदस्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम् । दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥३८॥ द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप । त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ॥३९॥ न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य च । धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ॥४०॥ नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्य-

पुरुषोंके हितकारी वचन सुन कर उनके परिणामका विचार करके काम करनेका निश्चय करता है वह चिरकाल तक कीर्त्तिमान् रहता है ॥ ३३ ॥ पण्डितोंका उपदेश दिया हुआ ज्ञान जानने योग्य होनेपर भी जाननेमें न आवे अथवा जानलेने परभी उससे कुछ काम न लिया जाय तो उस ज्ञानको निरर्थक जानो ॥ ३४ ॥ अमुक कामको करनेसे परिणाममें बुरा फल निकलेगा, ऐसा जान कर जो कामको करनेसे बचा रहता है, उसकी उन्नति होती है ॥ ३५ परन्तु जो मनुष्य पहिले कियेहुए पापका विचार न करके बराबर पाप ही करता रहता है उस खोटी बुद्धिवाले मनुष्यको यमके दूत नरकमें डालते हैं ॥३६॥ मदिरा पीनेसे होनेवाला मद, निद्रा अपने और दूसरेके दूत आदिकी पहिचान न होना, अपने मुख और नेत्रका विकार (जिससे कि मनका भाव जाना जाता है), दुष्ट मन्त्रीका भरोसा और मूर्ख दूतका भरोसा यह छः वस्तुएँ गुप्त विचारको खोल देनेके द्वाररूप हैं, ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिये और सम्पदाको बढ़ाना चाहने वाले चतुर मनुष्यको इन छः वस्तुओंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३७-३८ ॥ हे धृतराष्ट्र ! जो मनुष्य सदा इन छः द्वारोंको जानकर इनको बन्द रखता है, खुलने नहीं देता है और धर्म, अर्थ तथा कामका सेवन करनेमें लगा रहता है वह मनुष्य शत्रुको अपने वशमें रखता है ॥ ३९ ॥ शास्त्रको पढ़े बिना और वृद्धोंकी सेवा किये बिना बृहस्पतिकी समान (चतुर) पुरुष भी धर्म और अर्थको नहीं जानसकता ॥ ४० ॥ समुद्रमें गिरे हुएको नष्ट हुआ जाने जिसको सामने बैठा मनुष्य न सुने उस बात को नष्ट हुई जाने, मूर्खके पढ़नेको नष्ट हुआ जाने और बिना अग्निके

मशृण्वति। अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ॥ ४१ ॥ मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्धया सम्पाद्य चासकृत्। श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ॥ ४२ ॥ अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः। हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ४३ ॥ परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया। परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ॥ ४४ ॥ उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते। अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥ ४५ ॥ प्राज्ञोपसेवनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्। मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ॥४६॥ दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लंघयेत्। धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनः शताद्वरः॥४७॥ ययोश्चित्तेन चित्तं वा निभृतं निभृतेन वा। समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति। दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव। विवर्जयीत मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति ॥ ४९ ॥ अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च। तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाच-

---

स्थान (राखके ढेर) में होमेहुएको नष्ट हुआ जानो ॥ ४१ ॥ बुद्धिमान् पुरुष मनुष्यकी बुद्धिसे परीक्षा करै, बुद्धिसे वारंवार उसकी योग्यता का विचार करै, उसके गुण दोषोंको सुनै उसके चालचलनको जानै और यह सब ठीक २ जानलेय तब उसके साथ मित्रता करै ॥ ४२ ॥ विनय अपयशका नाश करता है, पराक्रम दुःखका नाश करता है, क्षमा सदा क्रोधका नाश करती है और सदाचार कुलक्षणोंका नाश करता है ॥ ४३ ॥ हे धृतराष्ट्र ! सेवाकी सामग्रीसे, जन्मसे, घरसे आचरणसे, भोजनसे और वस्त्रसे कुलकी परीक्षा करै ॥४४॥ मुमुक्षु पुरुषको भी समीपमें आयीहुई वस्तुका अनादर नहीं करना चाहिये फिर अभिलाषा वाला मनुष्य तो समीपमें आयीहुई वस्तुके लिये निषेध करेगा ही कैसे ? ॥ ४५ ॥ विद्वान् जिसकी सेवा करते हों, जो विद्वान् हो, धर्मसे प्रेम करता हो, रूपवान्, मित्रोंवाला और मीठी वाणी बोलने वाला हो ऐसे संबन्धीकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ४६ ॥ नीच कुलका हो, चाहे अच्छे कुलका हो, जो मनुष्य मर्यादामें रहता हो उसको तो कुलवान्से भी अच्छा समझे ॥ ४७ ॥ जिन दोके मन परस्परमें मिलतेहुए होते हैं और जिनकी बुद्धिसे बुद्धि मिलती हुई होती हैं उन दोकी मित्रता नष्ट नहीं होती किन्तु अखण्ड रहती है४८ मूर्ख मनुष्यको त्यागदेय अर्थात् उसके साथ मित्रता न करै क्योंकि-उसके साथकीहुई मित्रता नष्ट होजाती है ॥ ४९ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य

रेद् बुधः॥५०॥कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्। जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ॥ ५१ ॥ इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते। अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद्दैवतान्यपि ॥५२॥ मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः। आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाभिमानना॥५३ अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते। मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम्॥५४ आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः। अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ॥५५॥ कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते। तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत्॥५६॥ मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्। भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ॥५७॥ अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च। महान् भव-

---

अभिमानीके साथ, मूर्खके साथ, क्रोधीके साथ विनाविचारे काम करनेवालेके साथ और धर्मभ्रष्टके साथ मित्रता न करै ॥ ५० ॥ बुद्धिमान्, धार्मिक, सत्यवादी, उत्तम, दृढ प्रेम करनेवाले, जितेन्द्रिय और मर्यादामें रहनेवाले मित्रका त्याग न करे ॥ ५१ ॥ शब्द आदि विषयमेंको जातीहुई इन्द्रियोंको रोकना मृत्युसे भी अधिक कठिन है और इन्द्रियोंको सब प्रकारसे स्वतंत्र देदीजाय तो वह देवताओं का भी नाश करदेती हैं ५२ कोमलता, सब प्राणियोंके ऊपर एकसी दृष्टि रखना, क्षमा, धीरज और मित्रोंका आदर सत्कार करना ये वस्तुएँ आयुको बढ़ानेवाली हैं, ऐसा पण्डित कहते हैं ॥५३॥ नीतिको जाननेवाले पुरुषने अन्याय से जिस वस्तुका नाश किया हो उस वस्तुको जो मनुष्य, दृढ बुद्धि का आश्रय लेकर फिर पानेकी इच्छा करता है, वह उत्तम पुरुषका आचरण कहलाता है ।५४। जो आगेको होनेवाले दुःखका उपायजानता है दुःखके समय अपने निश्चयको दृढ रखता है और दुःखके अन्तमें जो शेष काम करना चाहिये उसको जानता है वह मनुष्य अर्थरहित नहीं होता है अर्थात् वह अपनी वस्तुको नहीं खोता है॥५५॥जो काम मन, वाणी और कर्मसे वारंवार करनेमें आता है वह काम ही मनुष्यको वशमें करता है,इसलिये मनुष्यको कल्याणकारी काम करना चाहिये ॥ ५६ ॥ दर्पण, दही, दूध, मङ्गलकारक पदार्थ गौ आदिका स्पर्श, सहायतारे बिना ही उत्साही रहना शास्त्र पढ़ना, उद्योग करना, कोमलता और बड़े पुरुषों का वारंवार दर्शन ये वस्तुएँ सुखकारक हैं ॥५७॥ उद्योगमें तत्पर रहना लक्ष्मीका लाभका और कल्याणका मूल है, उद्यममें लगा रहनेवाला मनुष्य बड़ा

क्षमा हिता॥६०॥यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते। तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥६१॥ दुःखार्त्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च। न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्ज्जिताः ॥ ६२ ॥ ...वेन नरं युक्तमार्ज्जवात् सव्यपत्रपम्। अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥ ६३ ॥ अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्। प्रज्ञा...निनञ्चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति॥६४॥ न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यंतं ...षु च। नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते ॥६५॥ उन्मत्ता ...ान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते। अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तः ...तम्। रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ॥ ६६ ॥ अधर्मो-

---

...ा है और अपार सुख भोगता है ॥ ५८ ॥ हे तात! जैसे शक्ति-...नुष्यको सदा सब जगह क्षमा ही उत्तम कल्याणकारी है, तैसी ...ल्याणकारी और परमहितकारी और कोई वस्तु नहीं है ॥५९॥ मनुष्य सबके ऊपर क्षमा रक्खे समर्थ मनुष्य धर्मके लिये क्षमा ...ीर जिसको भला बुरा दोनों समान हों ऐसे उदासीन मनुष्यको ...मा सदा हितकारी है ॥६० ॥ जिस सुखका सेवन करता हुआ धर्म और अर्थसे भ्रष्ट नहीं होय उस सुखका अवश्य सेवन करे मूढव्रती अर्थात् भोजन आदिमें अधिक लिप्त न होय ॥ ६१ ॥ ...े पीड़ितोंमें मतवालोंमें, नास्तिकोंमें, आलसियोंमें, इन्द्रियोंके ...रहनेवालोंमें और उत्साहहीनोंमें लक्ष्मी नहीं रहती है ॥ ६२ ॥ ...तासे युक्त और जो सरलताके कारण लज्जालु (शरमीला) हो ...ो दुष्टबुद्धि पुरुष असमर्थ मान कर दबाया करते हैं॥६३॥अपना बड़प्पन रखनेवाले, बडे दाता, बड़े शूर, बड़े व्रतधारी और ...ा बड़ा भारी अभिमान रखनेवालेके पास लक्ष्मी भयके मारे नहीं है॥ ६४ ॥ यह लक्ष्मी न अधिक गुणवानोंमें ही रहती है और ...यन्त गुणहीनोंके पास ही रहती है, क्योंकि-यह गुणोंको चाहती ...ौर गुणहीनोंसे प्रेम नहीं करती॥६५॥उन्मत्त हुई गौकी समान ...हुई लक्ष्मी कहीं नहीं ठहरती है, अग्निहोत्र लेकर सदाचरणका ...करना यह शास्त्र पढ़नेका फल है, रतिसमागम और पुत्रकी ...यह स्त्रीके साथ विवाह करनेका फल है और दान करना तथा

पार्जितैरर्थैर्यः करोत्यर्ध्वदैहिकम्। न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥ ६७ ॥ कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे। उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ॥ ६८ ॥ उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः। समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ॥ ६९ ॥ तपोबलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्। हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥७०॥ अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥ ७१ ॥ न तत् परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः। संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्त्तते ७२ ॥ अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्। जयेत्कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥ ७३ ॥ स्त्रीधूर्त्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि। चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥७४॥ अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि सम्प्रवर्द्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ॥ ७५ ॥ अतिक्लेशेन येऽर्थाःस्यु-

---

खोना धनका फल है ॥ ६६ ॥ जो मनुष्य अधर्मके द्वारा इकट्ठे किये हुए धनसे यज्ञ दान आदि कर्म करता है वह मनुष्य मरनेके अनन्तर अधर्मसे धन इकट्ठा करनेके कारण धनका फल नहीं भोगता है ६७ भयंकर जंगलोंमें दुर्गम वनोंमें, घोर आपत्तियोंमें भयके अवसरोंमें और शस्त्रोंके उठनेके समय पराक्रमी पुरुषोंको भय नहीं लगता है ६८ उत्साह, इन्द्रियोंको वशमें रखना, चतुरता, सावधानी, धीरज, स्मरणशक्ति और भलेप्रकार विचार कर कामका आरम्भ करना इन बातोंको ऐश्वर्यका मूल जानो ६९तपस्वियोंका बल तप है,ज्ञानियोंका बल वेद है, नीच मनुष्योंका बल हिंसा है और गुणवान्‌का बल क्षमा है७०जल, मूल,फल, दूध, हवि,ब्राह्मणकी इच्छा, गुरुका वचन और औषध ये आठ बातें व्रतका भंग नहीं करती हैं ॥ ७१ ॥ जो बात अपने प्रतिकूल होय वह दूसरेके लिये न करै यह शास्त्रके अनुसार धर्म है और अपनी इच्छानुसार बर्ताव करनेसे अधर्म होता है ।७२। क्षमासे क्रोधको जीतै, दुर्जनको सज्जनतासे जीतै, कृपणको दानसे जीतै और सत्यसे असत्यको जीतै ॥७३॥ स्त्री, धूर्त्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी अभिमानी, चोर कृतघ्नी और नास्तिकका विश्वास न करे ॥७४॥ जिसका स्वभाव प्रणाम करनेका हो और जो सदा गुरुजनोंकी सेवा करता हो, उसकी कीर्त्ति, आयु, यश और बल ये चार वस्तु बढ़ती हैं ॥ ७५ ॥ जो धन अत्यन्त कष्टसे वा धर्मका उल्लंघन

धर्मस्यातिक्रमेण वा । अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ७६ अविद्यः पुरुषःशोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् । निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥ ७७ ॥ अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा । असंभोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥७८॥ अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् । मलं पृथिव्याः वाल्हीकाः पुरुषस्यानृतं मलम् ॥ ७९ ॥ कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ॥ ८० ॥ सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु । ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥ ८१ ॥ न स्वप्नेन जयेन्निन्द्रां न कामेन जयेत्स्त्रियः । नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥ ८२ ॥ यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः । अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्८३सहस्रिणोऽपि जीवंति जीवन्ति शतिनस्तथा। धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते ॥ ८४ ॥ यत् पृथिव्यां

करनेसे अथवा शत्रुको अधिक दबानेसे मिलता हो उस धनमें तुम मन न लगाओ ॥ ७६ ॥ विद्याहीन पुरुष शोकके योग्य है सन्तानहीन स्त्रीसमागम शोकके योग्य है, भोजन न पानेवाली दरिद्रप्रजा शोकके योग्य है और राजासे सूना देश शोकके योग्य है ॥ ७७ ॥ मार्गचलना शरीरधारियोंके लिये बुढ़ापा है, पहाड़ोंके लिये जल बुढ़ापा है, पतिसमागम न मिलना स्त्रियोंके लिये बुढ़ापा है और बातकी चोट मनके लिये बुढ़ापा है ॥ ७८ ॥ अभ्यासका छोड़देना वेदोंका मल है, व्रतको त्यागदेना ब्राह्मणका मल है वाल्हीक देश पृथ्वीका मल है,मिथ्या बोलना पुरुषका मल है॥७९॥किसी वस्तुकी इच्छा करना सती स्त्रीका मल है और पतिका परदेशमें निवास स्त्रियोंका मल है ॥ ८० ॥ सोनेका मल चाँदी है, चाँदीका मल रांग है, रांगका मल सीसा है और सीसेका मल स्वयं मल है ॥ ८१ ॥ सोनेसे निद्राको नहीं जीत सकेगा, काम-भोगसे स्त्रियोंको नहीं जीता जा सकता ईंधनसे अग्निको नहीं जीता सकेगा और पानके द्वारा मदिराको नहीं जीता जा सकता ॥ ८२ ॥ जिसने मित्रोंको दानसे जीत लिया है, युद्धमें शत्रुओंको जीत लिया है और स्त्रियोंको अन्नपानसे जीतलिया है उसका जीवन सफल है८३ हे धृतराष्ट्र ! सहस्र रुपयोंवाला जीवित रहता है, सौ रुपयोंवाला भी जीवित रहता है अर्थात् अपनी आजीविका चलाता है, इसकारण तुम राज्य भोगनेकी अभिलाषाको दूर करो,क्योंकि-किसी न किसी

व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥८५॥ राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा ॥८६॥ ॐ ॐ

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुर वाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

विदुर उवाच। योऽभ्यर्च्यितः सद्भिरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा । क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्तमलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः ॥ १ ॥ महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव । सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य ॥२॥ अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् । गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥ असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः । अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥ ४ ॥ आलस्यं मदमोहौ च

प्रकार आजीविका न चलसके, ऐसा नहीं होसकता ॥ ८४ ॥ पृथिवी पर जितना भी धन धान्य जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियें हैं, वह सब भी एक मनुष्यको मिलजायँ तो भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती है ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता है ॥ ८५ ॥ हे धृतराष्ट्र ! अपने और पाण्डुके पुत्रोंमें तुम्हारी समदृष्टि हो तो हे राजन् ! मैं तुमसे फिर भी कहता हूँ, कि-तुम सब पुत्रोंमें समभाव रक्खो ॥ ८६ ॥ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ ॐ

सत्पुरुष जिसका सन्मान करते हैं ऐसा जो मनुष्य निरभिमानी होकर अपनी शक्तिके अनुसार काम करता है वह सत्पुरुष है और शीघ्र ही यश पाता है, क्योंकि-सत्पुरुष प्रसन्न होजाय तो उसको सुख देते हैं ॥ १ ॥ सर्प जैसे पुरानी कैंचुलीको उतार कर सुख से सोता है तैसे ही जो मनुष्य अधर्मसे मिलीहुई सम्पत्तिको त्यागदेता है वह मनुष्य दुःखसे रहित होकर सुखसे सोता है ॥२॥ मिथ्या बोलकर उन्नति पाना, राजाके पास चुगली खाना और गुरु अथवा बड़ोंके सामने मृथा आग्रह करना ये तीनों बातें ब्रह्महत्याकी समान हैं ॥ ३ ॥ जैसे बने तैसे डाह करना मार डालना, मर्यादासे बाहर विवाद करना ये तीन बातें लक्ष्मीका नाश करती हैं । गुरुकी सेवा न करना, शीघ्रता करना और अपनी प्रशंसा करना ये तीन बातें विद्याकी शत्रु हैं ॥ ४ ॥ आलस्य, मद मोह, चपलता, वृथा बातें करना, उद्धतपना, अभिमान

चापलं गोष्ठिरेव च। स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च५ एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः। सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ॥ ६॥ सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्। नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः। नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥७॥ आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यताम्। अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्॥ ८॥ अजाश्च कांस्यं रजतञ्च नित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च। वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥ ९॥ अजोक्षा चन्दनं वीणां आदर्शो मधुसर्पिषी। विषमौदुम्बरं शंखः स्वर्णनाभोऽथ रोचना ॥ १० ॥ गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्। देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत ॥ ११ ॥ इदञ्च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्। न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ १२ ॥ नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये

और लोभ ये सात सदा विद्यार्थियोंके दोष माने गये हैं, सुख चाहने वालेको विद्या कहाँ और विद्यार्थीको सुख कहाँसे मिल सकता है?५।६ सुखकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य विद्याको त्याग देय और विद्याकी इच्छावाला सुखको त्यागदेय, काष्ठोंसे अग्नि तृप्त नहीं होता है, नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है, सकल प्राणियोंसे काल तृप्त नहीं होता है और पुरुषोंसे स्त्रियें तृप्त नहीं होती हैं ॥ ७ ॥ हे धृतराष्ट्र ! आशा धैर्यका नाश करती है काल समृद्धिका नाश करता है, क्रोध लक्ष्मी का नाश करतो है, कृपणता यशका नाश करती है, रक्षा न करना पशुओंका नाश करता है और कोपमें भरा हुआ एक ब्राह्मण सकल देशका नाश करता है ॥ ८ ॥ हे धृतराष्ट्र ! बकरे, काँसी, चाँदी; मधु विषको चूँसने वाला पक्षी, वेदपढा ब्राह्मण जातिका बूढा पुरुष और निर्धन कुलीन पुरुष इतने आपके घरमें सदा रहैं ॥ ९ ॥ बकरा, बैल चन्दन, बीणा, दर्पण, शहद, घी, लोहा, ताँबेके पात्र, दक्षिणावर्त्त शंख, शालिग्राम और गौरोचन इतनी मंगलकारक वस्तुयें देवपूजा ब्राह्मणपूजा और अतिथिपूजाके लिये घरमें रखने योग्य हैं, ऐसा मनु जीने कहा है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे तात ! यह बडी उत्तम, सबोंमें मुख्य और पुण्यदायक बात मैं तुमसे कहता हूँ, कि-मनुष्य कभी भी किसी वस्तुको पानेकी इच्छासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राणोंके लिये भी धर्मको कभी न त्यागे ॥ १२ ॥ धर्म सदा रहता है, सुख और दुःख

जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः त्यक्त्वा नित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः ॥ १३ ॥ महाबलान् पश्य महानुभावान् प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम् । राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान् गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य ॥ १४ ॥ मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति । तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥ १५ ॥ अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुंक्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून् । द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥ १६ ॥ उत्सृज्य विनिवर्त्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः । अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः ॥ १७ ॥ अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम् । तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद्धर्मं सञ्चिनुयाच्छनैः॥१८॥अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम् । तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां बुद्ध्यस्व मा त्वां प्रलभेत

अनित्य हैं अर्थात् आज सुख है तो कल दुःख है दो दिन बाद फिर सुख है, जीव अविनाशी है और उसका कारण माया नाशवान् है, इसलिए तुम नाशवान् सुख दुःखको त्याग कर अविनाशी धर्म और आत्मामें स्थित होजाओ और सदा सन्तोष रक्खो, क्योंकि-संतोष ही मुख्य लाभ है ॥ १३ ॥ महाबली, महाप्रतापी बड़े २ राजे धन और धान्यसे भरी पुरी पृथ्वीका राज्य करके उन राज्योंको और बड़े बड़े ऐश्वर्योंको यहाँ ही छोड़कर कालके गालमें समा गये, इसका स्मरण करो ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जिसको बड़े कष्टसे पाला होता है ऐसा पुत्र मरजाता है तो उसको उठाकर मनुष्य श्मशानमें लेजाते हैं और केश खोले हुए ऐसा विलाप करते हैं, कि—जिसको देख कर दया उत्पन्न होती है, तो भी उस पुत्रको काठकी समान चितामें डाल देते हैं ॥ १५ ॥ मरणको प्राप्त हुए पुरुषका धन दूसरे ही पुरुष भोगते हैं, मरे हुएके शरीरको पक्षी खाते हैं, उसकी धातुओंको अग्नि खाता है और मरणको प्राप्त हुआ प्राणी पुण्य और पाप इन दो वस्तुओंके साथ परलोकमें जाता है ॥ १६ ॥ हे तात ! जैसे पक्षी फूल और फलोंसे रहित वृक्षोंको छोड़ कर चले जाते हैं तैसे ही जाति वाले, मित्र और पुत्र मरे हुएको चितामें छोड़कर चले जाते हैं ॥१७॥ अग्नि में छोड़े हुए पुरुषके पीछे २ उसका अपना किया हुआ कर्म ही जाता है, इसीलिये मनुष्य उद्योग करके धीरे २ धर्मका सञ्चय करे ॥१८॥ हे राजन् ! इस लोकके ऊपर स्वर्गलोक है और इस लोक

राजन् ॥१९॥ इदं वचः शक्ष्यसि चेद्यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव । यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति ॥ २० ॥ आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः । तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥ २१ ॥ कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् । नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ॥ २२ ॥ प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम् । कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित् ॥२३॥ धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा। चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनोवाचं च कर्मणा ॥ २४ ॥ नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी । सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥ २५ ॥ अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नी-

---

के नीचे बड़ाभारी अन्धतामिस्र नरक है, उस नरकको इन्द्रियोंको महामोहमें डालनेवाला जानो, वह नरक आपको न मिले ॥१९॥ इस बातको यथावत् सुनकर यदि यह सब जान सकोगे तो तुम मनुष्यलोकमें उत्तम यश पाओगे और तुम्हें इस लोकमें तथा परलोकमें भय नहीं होगा ॥ २० ॥ हे भरतवंशी ! आत्मा नदी है, धर्म उसका तीर्थ (घाट) है, वह सत्य (परब्रह्म) से उत्पन्न हुई है, धैर्य उसका तट है और दया तरंग है, उसमें जो मनुष्य स्नान करता है अर्थात् जो आत्मस्वरूपको पहिचान लेता है वह प्राणी पवित्र होजाता है और वह ही पुण्यकर्म करनेवाला है और जो नित्य संतोष रखता है वह पुण्यकर्मा है ॥ २१ ॥ कामक्रोधरूपी नाकोंवाली पाँच इन्द्रियें रूपी जलसे भरी नदीमें धैर्यमयी नौकाका आश्रय लेकर जन्मके दुःखोंको तरजाओ ॥ २२ ॥ जो मनुष्य बुद्धिमें बड़ा है, जो धर्मवृद्ध है, जो विद्यावृद्ध है, जो अवस्थामें वृद्ध है, जो अपने कुटुम्बीका सन्मान करके उसको प्रसन्न करके 'क्या करना चाहिये, क्या न करना चाहिये' इस विषयमें बूझता है वह कभी दुःखमें नहीं पड़ता है ॥२३॥ लिंगेन्द्रियकी और उदरकी धैर्यसे रक्षा करै, हाथ और पैरोंकी नेत्रोंसे रक्षा करै, नेत्रोंकी और कानोंकी मनसे रक्षा करै तथा मन और वाणीकी कर्मसे रक्षा करै ॥ २४ ॥ जो नित्य स्नान संध्या आदि कर्म करनेवाला, नित्य यज्ञोपवीत धारण करनेवाला, नित्य वेदका अध्ययन करनेवाला है, पापीके अन्नको त्यागनेवाला, सत्यवादी और गुरुका काम करनेवाला ऐसा ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता है और मृत्यु-

निष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च । गोब्राह्मणार्थे शस्त्रपूतान्तरात्मा हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥ २६ ॥ वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च । त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुंक्ते ॥ २७ ॥ ब्रह्मक्षत्रं वैश्यवर्णञ्च शूद्रः क्रमेणैतान् न्यायतः पूजयानः । तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुंक्ते ॥ २८ ॥ चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध । क्षात्राद्धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्रस्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुंक्ष्व ॥ २९ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । एवमेतद्यथा त्वं मामनुशास्सि नित्यदा । ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथात्थ माम् ॥ ३० ॥ सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा । दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्त्तते ॥ ३१ ॥ न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित् । दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषन्तु निरर्थकम् ॥ ३२ ॥समाप्तञ्च प्रजागरपर्व ।

लोकमें नहीं आता है ॥२५॥ जो क्षत्रिय वेदका अभ्यास करके अग्निहोत्रमें होम करके और यज्ञोंसे देवताओंको तृप्त करके प्रजाका पालन करता है और गौओं तथा ब्राह्मणोंके लिये संग्राममें मरण पाता है वह अपने अन्तरात्माको पवित्र करके स्वर्गमें जाता है ॥ २६ ॥ जो वैश्य वेदाध्ययन करके समय पर ब्राह्मणोंको,क्षत्रियोंको और आश्रितों को धन बांट कर अग्निहोत्रकी तीन अग्नियोंसे पवित्ररूप पुण्यधूम को सूँघकर मरणको प्राप्तहोता है वह स्वर्गमें दिव्य सुखोंको भोगता है ॥२७॥ जो शूद्र क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णकी योग्यता के अनुसार सेवा करता है और जब वह प्रसन्न होजाते हैं तो उस शूद्रकी पीड़ा और पाप भस्म होजाते हैं और वह शरीरको छोड़कर स्वर्गमें सुख भोगता है ॥२८॥ हे धृतराष्ट्र ! यह मैंने तुम्हें चारों वर्णों का धर्म कहकर सुनादिया इसको कहनेका कारण तुम यह समझना कि-युधिष्ठिर पृथ्वीकी रक्षा आदि क्षत्रियके धर्मसे भ्रष्ट होता है, इसीलिये तुम उसको क्षत्रियधर्ममें लगाओ ॥ २९ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सौम्य ! तुम सदा जिसप्रकार मुझे उपदेश देते हो और जिस प्रकार तुम मुझसे कहते हो ऐसी ही मेरी इच्छा भी है ॥ ३० ॥ पाण्डवोंके ऊपर सदा मेरी ऐसी ही इच्छा होती है, परंतु दुर्योधनसे मिलनेपर वह इच्छा फिर पलटजाती है॥३१॥कोई भी प्राणी प्रारब्ध को नहीं लांघसकता, प्रारब्ध सबसे बलवान् है,इसलिये मैं प्रारब्ध को ही अटल मानता हूँ और उद्योगको निरर्थक मानता हूँ ॥ ३२ ॥ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ प्रजागर पर्व समाप्त ।

अथ सनत्सुजातपर्व ॥

धृतराष्ट्र उवाच । अनुक्तं यदि ते किञ्चिद्वाचा विदुर विद्यते । तन्मे शुश्रूषितो ब्रूहि विचित्राणि हि भाषसे ॥१॥ विदुर उवाच । धृतराष्ट्र कुमारो वै यः पुराणः सनातनः । सनत्सुजातः प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत ॥ २ ॥ स ते गुह्यान् प्रकाशांश्च सर्वान् हृदयसंश्रयान् । प्रवक्ष्यति महाराज सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ ३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । किं त्वं न वेद तद् भूयो यन्मे ब्रूयात् सनातनः । त्वमेव विदुर ब्रूहि प्रज्ञाशेषोऽस्ति चेत्तव ॥ ४ ॥ विदुर उवाच । शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे । कुमारस्य तु या बुद्धिर्वेद तां शाश्वतीमहम् ॥५॥ ब्राह्मीं हि योनिमापन्नः सुगुह्यमपि यो वदेत् । न तेन गर्ह्यो देवानां तस्मादेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । ब्रवीहि विदुर त्वं मे पुराणं तं सनातनम् । कथमेतेन देहेन स्यादिहैव समागमः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच । चिन्तयामास विदुरस्तमृषिं शंसितव्रतम् । स

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे विदुरजी ! तुम्हें और कुछ कहनेको शेष रहगया हो तो वह भी मुझसे कहो, मैं उसको सुनना चाहता हूँ, क्योंकि-तुम मधुरतासरी विचित्र बातें कहते हो ॥ १ ॥ विदुरजीने कहा, कि-हे भरतवंशी महाराज धृतराष्ट्र ! सब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सनातन, पुराणमुनि, कुमार, ब्रह्मचारी सनत्सुजातका कथन है, कि मृत्यु नहीं है, वह मुनि तुम्हारे हृदयमें स्थित छिपेहुए (योगविषयक) और प्रकट सकल संदेहोंको दूर करेंगे । २। ३ । धृतराष्ट्रने कहा, कि-जो बात मुझसे सनातनमुनि कहेंगे, उसे क्या तुम अच्छे प्रकारसे नहीं जानते हो ? हे विदुर ! यदि तुमको वह बात स्मरण हो तो तुम ही कहो विदुरजीने उत्तर दिया कि-मैं शूद्रजातिमें उत्पन्न हुआ हूं, इसलिये मैं इससे अधिक और विशेष कुछ नहीं कहना चाहता, मैं कुमार सनत्सुजातकी बुद्धिको सनातन बुद्धि जानता हूं ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण जातिमें जन्म लेता है वह उपनिषदकी अत्यंत गूढ़ बातोंका भी उपदेश देसकता है और ऐसा करने से देवता उसकी निन्दा नहीं करते हैं, इसलिये ही यह बात मैंने आपसे कही है ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे विदुर ! इस शरीरसे इस ही मृत्युलोकमें उन पुरातन सनातन मुनिके साथ मेरा समागम किस प्रकार हो सो मुझे बतलाइये ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे भरतवंशी जनमेजय राजन् ! यह सुनकर विदुरजीने तीव्रव्रतधारी उन

च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा दर्शयामास भारत ॥ ८ ॥ स चैनं प्रतिजग्राह विधिदृष्टेन कर्मणा । सुखोपविष्टं विश्रान्तमथैनं विदुरोऽब्रवीत् ॥ ९॥ भगवन् संशयः कश्चिद् धृतराष्ट्रस्य मानसः। यो न शक्यो मया वक्तुं त्वमस्मै वक्तुमर्हसि ॥१०॥ यं श्रुत्वायं मनुष्येन्द्रः सर्वदुःखातिगो भवेत् । लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ यथैनं न जरान्तकौ ॥११॥ विषहेरन् भयामर्षौ क्षुत्पिपासे मदोद्भवौ । अरतिश्चैव तन्द्री च कामक्रोधौ क्षयोदयौ ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि विदुरकृत-
सनत्सुजातप्रार्थने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी सम्पूज्य वाक्यं

ऋषिका स्मरण किया, उस ऋषिने धृतराष्ट्रके लिये विदुर मुझे याद कररहे हैं ऐसा जानकर विदुरजीको दर्शन दिया ८ उस समय विदुरने शास्त्रमें लिखे अनुसार मधुपर्क आदि कर्मसे उन ऋषिकी पूजा करी, फिर सनत्सुजात आनन्दसे बैठ कर विश्राम लेने लगे और विदुरजी इन मुनिसे बूझने लगे, कि-॥ ९ ॥ हे भगवन् ! धृतराष्ट्रके मनमें एक सन्देह है, वह मुझसे दूर नहीं होसकता, आप उनका सन्देह दूर करनेके लिये उनको उपदेश देसकते हैं ॥ १० ॥ जिस उपदेशको सुन कर यह राजा धृतराष्ट्र सब दुःखोंके पार होजावें, तथा जिसके प्रभावसे लाभ हानि, प्रिय अप्रिय, बुढ़ापा मृत्यु, भय असहापना, भूख, प्यास, मद, उत्कट ऐश्वर्य, अरुचि, तन्द्रा, काम, क्रोध, क्षय तथा वृद्धि ये राजाको पीड़ा न देसकें ऐसा उपदेश दीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! शास्त्रके संस्कार वाली है बुद्धि जिसकी ऐसे महात्मा राजा धृतराष्ट्रने परब्रह्मरूप होनेकी इच्छा से सनत्सुजातकी पूजा करके जो बात विदुरजीने कही थी, वही बात भले प्रकार सत्कार करके एकान्तमें सनत्सुजातसे परम विद्याके विषयमें बूझी इस श्लोकका विशेष विचार यह है कि-हर एक ग्रन्थमें विषय प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी ये चार बातें होनी चाहियें, श्रीशङ्कराचार्यजी और टीकाकार नीलकण्ठने इस आख्यान को स्वतन्त्र ग्रन्थ मान कर विशेष विस्तारसे व्याख्याकी है उन ही दोनों भाष्यटीकाओंके अनुसार हम भी इस सम्वाद पर विशेष अनुवाद करेंगे, नीलकण्ठने इस श्लोकका अनुवाद करते हुए अनुबन्ध

विदुरेरितं तत् । सनत्सुजातं रहिते महात्मा पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥ १ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । सनत्सुजात यदिदं शृणोमि न मृत्यु-

चतुष्टयको दिखाया है । राजा धृतराष्ट्र मनीषी कहिये शास्त्रोंका श्रवण करनेसे संस्कारयुक्त बुद्धि वाला था, उसने जो एकान्तमें परविद्याका प्रश्न किया वह ही इस ग्रन्थका मुख्य विषय है । परविद्याका अर्थ है श्रुतिमें प्रसिद्ध ब्रह्मविद्या । श्रुति कहती है-"अथा परा यया तदक्षरमधिगम्यते, अपर और पर दो विद्यायें हैं । उनमें जिससे अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है उसका नाम पर विद्या है, मूलमें जो बुभूषन् अर्थात् परब्रह्मरूप होनेकी इच्छासे ऐसा कहा है, इससे इस प्रकरणका मुख्य प्रयोजन दिखाया है । श्रुति भी ब्रह्मज्ञानका फल दिखाती हुई कहती है—'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' जो ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्मरूप ही होजाता है । विदुरने धृतराष्ट्रसे कहा, कि—'सनत्सुजात प्रोवाच मृत्युर्नास्तीति भारत' हे भरतवंशी राजन् ! सनत्सुजातका कथन है, कि—मृत्यु नहीं है । यहाँ मृत्यु पदसे बन्धन अर्थ समझो राजा धृतराष्ट्र बन्ध नामकी कोई वस्तु है ही नहीं, यह सुन कर संसारके सङ्गसे रहित होनेके कारण, कपटी होने पर भी अपनेको पापका भय नहीं है, ऐसा जान कर संतुष्ट होगये थे, इस पदसे ज्ञान सब कर्मोंका संहार करनेमें कारण भूत है, यह बात दिखाई गई । भगवद्गीता भी कहती है, कि—'हत्वापि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते ।' ज्ञानी इस लोकका नाश करने पर भी उसका नाशक सिद्ध नहीं होता है तथा उसके पापसे बन्धनमें नहीं पड़ता है अर्थात् ज्ञानसे बन्धनका नाश होता है, यह बात दिखाई । सनत् शब्दका अर्थ है सनातन ब्रह्मा, ब्रह्माका दूसरा नाम है हिरण्यगर्भ, उससे जिसने उत्तमताके साथ जन्म धारण किया है वही सनत्सुजात है सनत्सुजात अर्थात् सनत्कुमार जो प्रथम शरीरी ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं, उनकी ही इच्छासे इन्होंने ज्ञानवैराग्यसम्पन्न होकर जन्म धारण किया था ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सनत्सुजात ! अर्थात् कुमार होनेसे 'जरामरण रहित' मुने ! मैंने विदुरजीके मुख से सुना है, कि-आपने अपने शिष्योंको यह उपदेश दिया है, कि-मृत्यु नहीं है, परन्तु देवताओंने और असुरोंने मृत्युको दूर करनेके लिये ब्रह्मचर्यका आचरण किया था, सो इन दोनोंमें कौनसी बात सत्य है अर्थात् हे मुने ! श्रुति कहती है, कि-'ध्रुवं जन्म मृतस्य च,

रस्तीति तव प्रवादम् । देवासुरा ह्याचरन् ब्रह्मचर्यमन्त्यवे तत् कतरन्नु सत्यम् ॥ २ ॥ सनत्सुजात उवाच । अपृच्छः कर्मणा यच्च

जो मरता है वह अवश्य ही फिर जन्म धारण करता है । इसमें मरण और जन्म दोनों एक साथ रहनेके कारण जन्ममरणका प्रवाहरूपी बन्धन शास्त्रमें कहा है वह मिथ्या है इस बातको पहिले आपने दृढ़ताके साथ कहा है, ऐसा मुझसे विदुरजी कहते थे । श्रुति भी कहती है "न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥,, अर्थात् न निरोध है, न उत्पत्ति है, न कोई बँधा है, न कोई साधक है न कोई मुमुक्षु है और न कोई मुक्त है, ऐसी बुद्धिका नाम परमार्थ बुद्धि है । इसमें सिद्ध होता है, कि-मृत्यु कोई पदार्थ है ही नहीं । दूसरी ओर देखते हैं तो छान्दोग्य उपनिषद्में "तद्धोभये देवा असुरा अनुबुबुधिरे (यहाँसे लेकर) तौ ह द्वात्रिंशद्वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः,, यहाँतक यह बात दिखायी है कि-देवता और असुरोंने गुरुके घर ब्रह्मचर्य धारण करके निवास किया था। और मृत्युका नाश करनेकी इच्छासे बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचारी बन कर प्रजापतिके पास निवास किया था और एक श्रुतिमें लिखा है कि 'एकशतं वर्षाणि मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास' अर्थात् इन्द्रने मृत्युबन्धनको दूर करनेके लिये सौ वर्षतक प्रजापतिके पास रहकर ब्रह्मचर्यका पालन किया।इससे सिद्ध होता है,कि-मृत्यु अवश्य है यदि मृत्यु असत् मिथ्या है, कुछ है ही नहीं, यह आपका कहा हुआ पक्ष ही यदि निश्चित होता तो देवता और असुर मृत्युका नाश करनेके लिये ब्रह्मचर्य धारणका प्रयास क्यों करते ? इसप्रकार आप तो कहते हैं, कि-मृत्यु नहीं है और शास्त्रमें सुनते हैं, कि मृत्यु है । इसकारण मैं सन्देह में पड़कर आपसे बूझता हूँ,कि-इन दोनों मतोंमें कौनसा मत सत्य है जो सत्य हो उसको मुझे बताइयेसनत्सुजात बोले,कि-हे राजन्! ब्रह्मचर्यरूपी कर्मके द्वारा मृत्युका नाश होता है अर्थात् मृत्यु है परंतु कर्म के द्वारा उसमेंसे छूटसकता है ऐसा एकपक्ष है तथा मृत्यु नामकी कोई वस्तु है ही नहीं ऐसा दूसरा पक्ष है इन दोनोंमेंसे कौनसा पक्ष सत्य है इस विषयका तुमने मुझसे प्रश्न किया है, परन्तु इस विषय में तुम स्वयं शंका करना छोड़दो और मैं जो कहता हूं उसको सुनो । तात्पर्य यह है, कि-जो लोग अविद्यासे ग्रसेहुए हैं वहां 'मृत्यु है' ऐसा मानकर कहते हैं, कि-वेदमें कहे क्रियाकलापके द्वारा मृत्यु दूर

मृत्युर्नास्तीति चापरम्।शृणु मे ब्रुवतो राजन् यथैतन्माविशंकिथाः३
उभे सत्ये क्षत्रियैतस्य विद्धि मोहान्मृत्युः सम्मतोऽयं कवीनाम्।

होजाती है । जो विषयविषसे अन्धे होरहे हैं, उनको विषयोंके सिवाय निर्विषय मोक्ष दीखता ही नहीं अर्थात् उनके मनमें विषयों को छुड़ानेवाली मोक्षकी बात जमती ही नहीं ऐसे सब ही पुरुष यह मानते और कहते हैं, कि-कर्मके द्वारा अमृत्यु अर्थात् अमरता (मोक्ष) उत्पन्न होती है, इस विषयमें विषयप्रेमी भी एक श्लोकका उदाहरण दिया करते हैं, वह श्लोक यह है-"अपि वृन्दावने रम्ये शृगालत्वं स इच्छति । न तु निर्विषयं मोक्षं कदाचिदपि गौतम ॥" अर्थात्-हे गौतम ! रमणीय वृन्दावनमें शृगाल बननेकी इच्छा करे, परन्तु विषयहीन (निर्वाण) मोक्षकी इच्छा न करे विषय शब्दका अर्थ है आत्माके सिवाय अन्य पदार्थमात्र और निर्विषयका अर्थ है, विषयों को छोड़कर केवल एकरस चिदात्मा, तात्पर्य है, कि-विषयानुरागी पुरुष केवल चेतनरूप होना नहीं चाहते, परन्तु जो परमात्माके सिवाय और पदार्थको देखते ही नहीं वे जानते हैं और कहते भी हैं, कि-मृत्यु नहीं है । जो अद्वितीय आत्मदर्शी हैं वे आत्माके सिवाय समस्त ही मिथ्या और कल्पित है ऐसा जानते हैं, इसलिये ही कहते हैं, कि-मृत्यु नहीं है । हे राजन् ! इसप्रकार मृत्यु है भी और नहीं भी है । जिस प्रकार-है, और नहीं है, उन दोनों वाक्योंसे दीखने वाला विरोध दूर होता है, उसकी रीति मैं तुमसे कहूंगा, जो कहूं उसको तुम निःशंकचित्त होकर सुनो [सनत्सुजातके मतमें ज्ञान अवस्थामें मृत्यु नहीं है किन्तु अज्ञान अवस्था में है, इसलिये वह अवस्था भेदसे सत्य भी है और मिथ्या भी है ॥३॥ हे राजन् ! जीव की अवस्थाके भेदसे दोनों पक्ष सत्य हैं, मोहसे मृत्यु होती है, ऐसा विवेकियोंने माना है, इस लिये मैं प्रमादको मृत्यु कहता हूं और सदा अप्रमादको अमृतत्व (मृत्यु न होनेके कारण) कहता हूँ ❀ इस श्लोक पर भगवान् शङ्कराचार्यके भाष्यका यह अभिप्राय है, कि जो मोह अर्थात् मिथ्याज्ञान है-अनात्म देह आदिमें मिथ्या अभिमान है है वही अनेकों पण्डितोंके मतमें मृत्यु है, परन्तु मैं उसको मृत्यु नहीं कहता हूँ, मैं तो प्रमादको मृत्यु और अप्रमादको अमृत्यु (अमरत्व) कहता हूं । स्वाभाविक ब्रह्मभावसे गिरजानेका नाम प्रमाद है, यह प्रमाद सकल मिथ्याज्ञानों (भ्रान्तियों) का कारण है । आत्माके

प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि तथाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥ ४॥ प्रमादको अनवधारण अर्थात् अपरोक्षज्ञान न होनेका नाम अज्ञान है। सनत्कुमारके मतमें यातायमें वही मरण या मृत्यु है, यह मृत्यु ही जन्म मरण आदि संसारप्रवाहका और क्लेशका मूल है। तथा अप्रमादका अर्थ है स्वरूपमें स्थिति। सनत्कुमारके मतमें यही अमृत, अमरत्व और मोक्ष है। श्रुतिने भी स्वरूपमें स्थितिको ही मोक्षपद कहा है-परं ज्योतीरूपंसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' अर्थात् परज्योतिको प्राप्त होकर अपने स्वाभाविक स्वरूपमें स्थित होता है। अनुगीतामें भी स्पष्टरूपसे कहा है,कि-एको यहो नास्ति ततोऽद्वितीयो यो हृच्छयस्तमहममृतत्वं ब्रवीमि।' अर्थात् आत्मा एक है, उससे दूसरा नहीं है, जो हृदयमें स्थित है उसको अमृत जान। स्वरूपस्थित और मोक्ष एक ही तत्त्व है, इसलिये ही उत्पन्न वह न कर्म से होता है और न कर्म और उपासना दोनोंसे ही उत्पन्न होता है। जो कहते हैं कि-कर्मके द्वारा अमृत्यु अर्थात्मोक्ष उत्पन्न होता है। उनका मत युक्तिशून्य है। सनत्कुमार आगे जाकर स्पष्ट अक्षरोंसे कर्मजन्य मोक्षका खंडन करेंगे। अब प्रमाद ही मृत्यु और अप्रमाद ही अमरता है इन दोनोंका उदाहरण कहते हैं * नीलकण्ठी टीकाके अनुसार इस श्लोकका अभिप्राय यह है, कि-मृत्यु का अर्थ बन्धन और अमृत्युका अर्थ बंधन न होना है। ये दोनों वस्तु एक ही जीवात्मामें भिन्न २ अवस्थाओंमें बन सकती हैं, इसकारण ये दोनों सत्य ही हैं, ऐसा जानो। हे राजन्! जब अविद्या अर्थात् अज्ञानदशा होती है तब जीवात्माको बन्धन भी होता है और ब्रह्मचर्य आदि कर्म करनेसे बन्धनका नाश होता है, परन्तु ज्ञानियोंको तो रज्जुमें भासनेवाले सर्पकी समान तीनों कालमें मृत्यु (बन्धन) होता ही नहीं और कदाचित् मोहसे भासता भी है तो ज्ञानका उदय होते ही फिर दूर होजाता है अर्थात् मोहरहित जीवको मृत्युका बन्धन है ही नहीं, किन्तु मैं तो प्रमादको ही मृत्यु कहता हूं। आत्मतत्त्वके अज्ञानका नाम प्रमाद है, उसको ही अनादिकालका अज्ञान भी कहते हैं और उसको ही मृत्यु नामसे बोला जाता है। श्रुति कहती है, कि-"मृत्युर्वै तमः" अज्ञान ही मृत्यु है। अप्रमाद अर्थात् सावधानता भले प्रकार अवलोकन करना, ज्ञान इन अर्थोंमें अप्रमाद शब्दका व्यवहार किया जाता है, स्मृतिमें कहा है, कि-"ज्ञानं सम्य-

असुराः पराभवन्न प्रमादाद् ब्रह्मभूताः भवन्ति । नैव मृत्युर्व्याघ्र

गवेक्षणम्" भले प्रकार गहराईमें घुस कर अवलोकन करनेका नाम ज्ञान है, उस आत्मतत्त्वके ज्ञानसे अमृतपना अर्थात् मोक्ष मिलती है ॥ ४ ॥ असुर (आसुरी जीव) निःसन्देह प्रमादसे मृत्युके वशमें होनारूप तिरस्कारको प्राप्त होते हैं और अप्रमादसे सुर (दैवीसंपदा वाले जीव) परब्रह्मरूप होजाते हैं, मृत्यु व्याघ्रकी समान जीवोंको खा नहीं जाता है, क्योंकि-मृत्युका कोई रूप किसीके देखनेमें नहीं आता है । भगवान् शंकराचार्यने इसका अभिप्राय इसप्रकार लिखा है, कि प्रमादके कारण अर्थात्-स्वाभाविक ब्रह्मभावसे गिरजाने पर या यों कहिये कि-देह आदिमें आत्मबुद्धि जमजाने पर असुरोंने तिरस्कार पाया था अर्थात् तापत्रयसे भस्मी भूत हुए थे, छान्दोग्य उपनिषद्में यह बात "अनुपलभ्य आत्मानं" यहाँसे लेकर "देवा वा असुरा वा ते पराभविष्यति" यहाँ तक स्पष्ट करके कही है । और अप्रमादके कारण अर्थात् स्वाभाविक सनातन सच्चिदानन्द ब्रह्मविज्ञानमें जागरूक होनेसे इन्द्रादि देवता ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्मको प्राप्त होगये थे । यह बात भी "तं देवा आत्मानमुपासते, इत्यादि श्रुतिमें कही है । अथवा इन्द्रिय अर्थवाला असु शब्द और रमणार्थक रम् धातु यह दोनों मिल कर असुर शब्द बना है। जो इन्द्रियोंके विषयोंमें रमे रहते हैं और आत्मज्ञानसे शून्य हैं वे वैषयिक पुरुष ही असुर हैं । असुर अपने स्वाभाविक ब्रह्मभावको भूल कर देह आदिमें आत्मभावको स्थापन करनेसे पराभूत हुए अर्थात् निकृष्ट पशु आदि योनियोंको प्राप्त हुए। यह रहस्य बृहदारण्यक ब्राह्मणमें दिखाया है और समानार्थक स्व शब्दका सु और रमणार्थक रम् धातुका र मिलकर सुर शब्द बना है, अर्थात् जो आत्मामें रमण करते हैं वे सुर हैं। यही बात शास्त्रमें और जगह भी दिखायी है-"आत्मन्येव रतिर्येषां स्वस्मिन् ब्रह्मणि चाचले। ते सुरा इति विख्याताः सूरयश्च बुधा मताः॥" अर्थात्-जिनकी ब्रह्मसे अभिन्न आत्मामें रुचि है उनका नाम सुर है और जो सूरि अर्थात् आत्मज्ञानी हैं वे भी सुर हैं। ब्रह्मभूतका अर्थ है-अज्ञान और उसका कार्य जगत् प्रपञ्च रज्जुमें भासनेवाले सर्पकी समान बाधित होजाने पर अद्वय ब्रह्ममें लीन होना । लोग कहते हैं,कि-मृत्यु प्राणियोंको मारनेवाला है, परन्तु यह व्याघ्र आदिकी समान चर्वण आदिकी समान चर्वण भक्षण आदि नहीं करता है, उसकी मूर्त्ति भी

ध्वान्ति जन्तून् तस्य रूपमुपलभ्यते हि ॥ '५॥ यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्य-

किसीने नहीं देखी है, इसलिये मृत्यु नहीं है, क्योंकि—जो किसी प्रमाणसे किसीके अनुभवमें आता ही नहीं उसका होना कैसे माना जाय? ॥*॥नीलकण्ठीटीकेका अभिप्राय यह है,कि-जीव प्रमाद कहिये अज्ञानसे असुर होता है अर्थात् काम,क्रोध,लोभ,मोह आदि आसुरी-वृत्तियोंके वशमें होता है वही मृत्युके वशमें पड़ता है, ज्ञानी जीव अप्रमाद कहिये ज्ञानसे ब्रह्मरूप है ही, परन्तु अविद्या उपाधिके कारण अपनेको ब्रह्मसे भिन्न पर मान लेता है और पीछे फिर विद्याके प्रताप से फिर ब्रह्मरूप ही होजाता है। श्रुति भी कहती है, कि—"ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" अर्थात् जीवात्मा पहिले ब्रह्मरूप ही होता है और पीछे परब्रह्मके रूपको ही पाता है। मृत्यु कहिए अज्ञान मनुष्यको संसाररूपी संकटमें डाल देता है, परन्तु वह मृत्यु व्याघ्रकी समान किसीको दृष्टिसे नहीं दीखता है, केवल उसका कार्य ही देखनेमें आता है, मृत्युके स्वरूपको देखने पर भी वह नहीं दीखता। इसपर एक दृष्टान्त इस प्रकार है कि—अन्धकारमें पड़ी हुई रज्जुमें जो साँप का भान होता है वह रज्जुके सत्यस्वरूपके अज्ञानके कारण होता है, इसमें साँपके भासनेका उपादान कारणरूप जो अज्ञान है वह डोरी और साँपकी समान दीख नहीं सकता तैसे ही मृत्यु भी देखनेमें नहीं आसकता, केवल इसका काम ही देखनेमें आता है ॥५॥ कितने ही प्रमादरूपी मृत्युसे भिन्न यमको मृत्यु कहते हैं और वह यम मरण के समय आत्माको शरीरमेंसे खेंचकर लेजाता है और ब्रह्मचर्यको अमत कहते हैं अर्थात् ब्रह्मचर्य पालनेसे मृत्युका प्रभाव आत्माके ऊपर नहीं चलता है, वह यमदेव पितृलोकमें राज्य करता है और वह पुण्यात्माओंके लिए कल्याणरूप है तथा पापकर्म करने वालोंके लिये अकल्याणरूप है ॥ *॥ भगवान् शंकराचार्यने जो इस श्लोकके ऊपर भाष्य किया है उसका अभिप्राय यह है कि—सावित्रीकी कथा में मृत्युके रूपका वर्णन है और सावित्रीने मृत्युको देखा था, इस सम्वादके आधार पर पीछे धृतराष्ट्रके मनमें 'मृत्यु नहीं है' इस बात के विरुद्ध शंका उठेगी, इसलिये फिर कहते हैं, कि—सावित्रीने मृत्युका रूप देखा था यह तुम्हारा कहना ठीक है,परन्तु वह साक्षात् कपर्दी था अर्थात् वह मुख्यमृत्यु नहीं था। प्रमाद नामक अज्ञान ही मुख्य-मृत्यु है। प्रमाद नामक अज्ञान ही विनाशका हेतु है, यही बात श्रुति

माहुरात्मावसन्नमसृतं ब्रह्मचर्यम्। पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः

में भी कही है—"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः" अर्थात् इस शरीरके रहतेर यदि जान लिया यदि ब्रह्मात्मतत्त्वको निःसन्देहरूपसे समझ लिया तब तो सत्यको पालिया और यदि नहीं जाना तो बड़ा भारी विनाश कर लिया। बृहदारण्यक उपनिषद्में भी प्रमादनामक अज्ञानको साक्षात् मृत्यु कहा है-"मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतमिति" अर्थात् तम ही मृत्यु है और ज्योति ही अमृत कहिए मोक्ष है। क्योंकि-प्रमाद ही सब प्रकारके अनर्थोंका मूल है, इसलिए प्रमादी मत बनो, किन्तु सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्ममें स्थिति करो। भगवान् कृष्णने भी अज्ञानको बन्धनका हेतु और विज्ञानको मोक्षका हेतु कहा है "अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः" अर्थात् ज्ञान कहिये चैतन्य अज्ञानसे आच्छन्न है, इसकारण ही जीव मोहमें पड़े हुए हैं, इसप्रकार आत्माका अज्ञान ही बन्धनका और आत्मज्ञान मोक्षका हेतु है। क्योंकि-प्रमाद ही मृत्यु और अप्रमाद ही अमृत्यु है, इस कारण अमृत्यु न कर्मसे उत्पन्न होता है और न कर्मसे प्राप्त होता है। नित्यसिद्ध होनेके कारण किसीसे उत्पन्न होनेवाला नहीं है और सदा प्राप्त होनेके कारण किसीसे प्राप्य नहीं है। यह बात भी श्रुतिमें कही है-"एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य" अर्थात् ब्रह्मज्ञानीकी महिमा नित्यसिद्ध है। "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अर्थात् जीव अपनेको ब्रह्मसे अभिन्न जानकर मृत्युके पार होजाता है, मृत्युके पार होनेको और कोई उपाय नहीं है। "तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः" अर्थात् धीर पुरुष उसको जानकर ही ब्रह्मज्ञानी होता है और ब्रह्ममें प्रज्ञाको स्थापन करता है, इत्यादि श्रुतियें ज्ञानको ही मोक्षका हेतु कहती हैं। भगवान् सनत्कुमारने भी आगे अन्तवन्तः क्षत्रिय, इत्यादि और "एवं मत्युं जायमानं विदित्वा" इन दो श्लोकोंमें ज्ञानको ही मोक्षकी कारणता कही है। मोक्षधर्ममें भी लिखा है, कि-"कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः॥" तथा "ज्ञानं विशिष्टं न हि यज्ञाः" अर्थात्—जीव कर्मके द्वारा बद्ध और ज्ञानके द्वारा मुक्त होता है, इसकारण ब्रह्मदर्शी कर्म नहीं करते हैं,ज्ञान ही विशिष्ट है, यज्ञ आदि वैसे नहीं हैं। वेदके तत्त्वका उपदेश देनेवाले मनुजीने भी ज्ञानको मोक्षकी हेतुता मान कर

शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम्। आस्वादेव निःसरते नराणाम्

कर्मको त्यागनेका उपदेश दिया है। यथा-"यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः। आत्मज्ञाने शमे च स्यात् वेदाभ्यासे च यत्नवान्" अर्थात् अग्निहोत्र आदि कर्म वेदोक्त होनेपर भी उत्तम द्विज उन सब कर्मों को त्यागकर ब्रह्मात्मविज्ञानमें तथा ब्रह्मात्मविज्ञानको पानेके उपाय शम दम आदिमें और उपनिषद्रूप वेदका अभ्यास करनेकी चेष्टा करे।यही बात भगवान् परमेश्वरने भी कही है-ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम्। तस्माद्भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम् विज्ञातव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं द्रष्टव्यमेव च। एवं सर्वगतो ह्यात्मा केवलः स्थितमानसः॥ आनन्दो निर्मलो नित्यः स्यादेतत्सांख्यदर्शनम् एतदेव परं ज्ञानमेतन्मोक्षोऽनुगीयते। तत्कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः। आश्रित्यैतत्परं तत्त्वं तन्निष्ठास्तत्परायणाः। गच्छन्ति मां महात्मानं यतन्तो विश्वमीश्वरम्॥" अर्थात् ज्ञान ही श्रेष्ठ है, वह न्यूनाधिकभावरहित और साक्षात् मोक्ष देनेवाला है, इस कारण तुम कैवल्यदायक निर्मलज्ञान को यत्न करके जानो, उसको सुनो और देखो। मानसिक प्रत्यक्ष करनेका नाम ही देखना है। वह अक्षय, सर्वत्र स्थित आत्मा केवल, चैतन्यघन, आनन्द, निर्मल निरपेक्ष और नित्य है। इसको ही शास्त्र में सांख्य, ज्ञान और मोक्ष नामसे कहा है और परमकैवल्य, अमृत तथा ब्रह्मनामसे वर्णन किया है। इस परमतत्त्वका अवलम्बन करके तन्निष्ठ और तत्परायण हुए पुरुष मुझ ईश्वरको ही प्राप्त होते हैं। अब शङ्का होती है, कि-तो क्या कर्मानुष्ठान निष्फल है ? नहीं कर्मानुष्ठान निष्फल नहीं है, किन्तु अवस्थाके भेदसे निष्फल और अवस्था के भेदसे ही सफल है। ज्ञान न होने तक ही कर्म करनेका उपदेश है, ज्ञान होजाने पर कर्मकलापका प्रयोजन न रहनेसे वह निष्फल होजाता है। भगवान् कृष्णने भी "यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।" इस श्लोकमें यही बात कही है। ब्रह्मपुराणमें कावषेय मुनि ने कहा है, कि—"किमद्य वयमध्ययनेन कार्यम्।" अर्थात् अब हमें अध्ययन करने की क्या आवश्यकता है ? बह्वृच उपनिषद्में भी यही बात कही है कि-'किमर्थं वयमध्येष्यामहे,' बृहदारण्यक श्रुतिने भी ज्ञानीको कर्मको त्याग करनेकी बात कही है। लिङ्गपुराणमें भी लिखा है, ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कर्मणा प्रजया च किम्।' अर्थात् जो "ज्ञानरूप अमृतसे तृप्त है उसको कर्म करनेकी और सन्तान उत्पन्न

करनेकी क्या आवश्यकता है आथर्वणश्रुतिमें भी लिखा है, कि-"नैतद्विद्वान्,, अर्थात् जिसके पास ब्रह्मात्मविज्ञानकी सम्पदा है वे कर्ममें लिप्त नहीं होते हैं। यदि कहो कि-तो कर्म किसको करने चाहियें तो सुनो-जो पुरुष अपने आत्मविषयक अज्ञानको समझकर आरुरुक्षु है अर्थात् ज्ञानमार्गमें चढ़ना चाहता है, उस पुरुषको ही नित्य नैमित्तक कर्मोंमें लगना चाहिये। यही बात भगवान् कृष्णने लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा' यहाँसे आरुरुक्षोर्मुनेर्योगम्। यहाँ तकके श्लोकोंसे कही है। भगवान् सत्यवतीनन्दन व्यासदेवने भी कहा है, कि-द्वाविमावथ पन्थानौ। और-यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः। तथा-प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्त्यैव व्यवस्थितः। अर्थात् ज्ञान और कर्म ये दो ही मार्ग हैं और सकल वेद ब्रह्ममें प्रतिष्ठित हैं तथा प्रवृत्तिधर्म अन्तमें निवृत्तिमें ही जाकर पर्यवसित होते हैं। यहाँ शङ्का होसकती है, कि-तो आरुरुक्षु भी कर्म क्यों करे? जब कर्म बंधनका हेतु है तो वह कदापि अनुष्ठानके योग्य नहीं है। भगवान्ने भी कहा है कि-कर्मणा बध्यते जंतुर्विद्यया च विमुच्यते। अर्थात् जीव कर्मसे बँधता और ज्ञानसे मुक्त होता है। यह शङ्का करना ठीक है कि-कर्म बन्धनका कारण है परन्तु फलकी इच्छाको त्यागकर केवल ईश्वरार्पणकी इच्छासे कर्म कियाजाय तो वह बन्धनका कारण नहीं होता है। यही बात गीता में भगवान्ने कही है-यज्ञार्थात्कर्मणः इत्यादि ईश्वरके उद्देश्यसे किया हुआ कर्म बन्धनका कारण नहीं है। यदि कहो कि-ऐसा करनेसे क्या लाभ है ? तो सुनो-ईश्वरकी आज्ञा समझ कर कर्म करनेसे उसके द्वारा चित्तकी शुद्धि होती है और कुछ फल उत्पन्न नहीं होता है, इसलिये ऐसा कर्म ज्ञानको उपकार करता है, बन्धनकी सहायता नहीं करता है। यही बात भगवान्ने और श्लोकमें भी कही है। कायेन मनसा बुद्ध्या इति। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्, इति। गतसङ्गस्य इति च। अर्थात्-शरीर मन और बुद्धिके द्वारा। मनीषियोंके यज्ञ, दान, तप ये सब पवित्र करनेवाले हैं। अपना चित्त ईश्वरको अर्पण करनेवाले पुरुषका नाम मनीषी है। तथा फलमें आसक्तिरहित पुरुषका कर्म बन्धनका कारण नहीं होता है। इसके सिवाय अन्यत्र भी लिखा है, कि—'कषायपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः। कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्त्तते ॥' निष्काम कर्म पापोंका परिपाक करता है और ज्ञान सर्वोपरि उत्तम

गति देता है । कर्मके द्वारा पापका परिपाक (क्षय) होने पर ज्ञान प्रकट होता है । यहाँ शङ्का होती है कि-विद्यासहित कर्म भी मोक्ष के हेतु होते हैं, ऐसा शास्त्रमें सुनाजाता है-'विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्त-द्वेदोभयम्।' अर्थात्-जो विद्या और अविद्या दोनोंका अवलम्बन करते हैं वे मोक्ष पाते हैं । मनुजी भी कहते हैं—"तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरे उभे' अर्थात्-तप और विद्या ये दोनों विप्रको मोक्ष देनेवाले हैं । परन्तु ऐसा नहीं है अर्थात् कर्मयुक्त ज्ञानको ही मोक्षका कारण न समझलेना । इन श्रुति और स्मृतियोंके पूर्वापरका विचार न करने पर ऐसा भ्रम होसकता है, परन्तु पूर्वापरकी संगति बैठाने पर प्रतीत होगा, कि-ज्ञानके साथ कर्मका समुच्चय नहीं है अर्थात्-दोनोंका एकसाथ होना नितान्त असम्भव है । क्योंकि-'विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह' इस श्रुतिको कहकर आगे ही कहा है कि-अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते' अर्थात्-पहिले अविद्या (कर्म) के द्वारा मृत्युको (चित्तके दोष रूप अज्ञानको)'लाँघकर फिर विद्या (ज्ञान) के द्वारा अमरपदको पाजाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होगया, कि-अविद्या और विद्याका अधिकार और फल एक नहीं है किन्तु भिन्न २ है, इसकारण ही दोनोंका समुच्चय होना असम्भव है भगवान् मनुजीने भी-'तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयककरावुभौ' यह कहकर दूसरे आधे श्लोकमें कहा है, कि-तपसा कल्मषं हन्ति । विद्य-यामृतमश्नुते ।' अर्थात्-तपस्यासे पापोंका नाश करता है और ज्ञान के द्वारा मोक्ष पाता है और भी देखो श्रुति कहती है, कि-'ईशावा-स्यमिदं सर्वम्' अर्थात् यह सब ईश्वरके द्वारा आच्छादनीय है, इसमें सर्वत्र ईश्वरदृष्टि करनी कही है । जो सर्वत्र ईश्वरदृष्टि करेंगे यह सब विश्व उनका आत्मस्वरूप होजायगा और जो-मैं ही सब हूँ, ऐसा साक्षात्कार पाजायँगे, निश्चय ही उसको कुछ कर्तव्य नहीं रहेगा, वे कृतार्थ होजायँगे, इसलिये ही श्रुतिने इसके अनन्तर 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इस कथनके द्वारा उस कृतकृत्य पुरुषके आत्म-पालनका प्रकार प्रकट करके अनात्म ज्ञानियोंके आत्मपरिपालनका प्रकार वर्णन किया है-"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे" अर्थात् देहाभिमानी मनुष्य कर्म करनेमें लगा रहकर सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहनेकी इच्छा करे अर्थात् जीवन भर नित्य नैमित्तिक कर्म करे, देहाभिमानी

जीवको इसके सिवाय और गति (उपाय) नहीं है, ऐसा नियम रखनेसे भी उसका आत्मा कर्ममें लिप्त नहीं होगा। जो सर्वात्मक सर्वव्यापी और अक्षर है वह अपनेको मनुष्यमात्र जाने तो अज्ञानी है, जबतक यह अज्ञान दूर नहीं होगा तबतक विहित कर्मके अनुष्ठान में लगा ही रहेगा, इस उपदेशसे श्रुतिने देहाभिमानी जीवको चित्त-शुद्धिके लिये ही कर्मानुष्ठानको करना कहा है, इसलिये जो श्रुति, स्मृति और पुराणोंके वचन उद्धृत किये हैं, उन सबका सिद्धान्त यह है, कि-कर्मका फल बहुत अधिक होय तो चित्तशुद्धि होती है, मोक्ष नहीं होती है अर्थात् निष्काम कर्म चित्तशुद्धिके सिवाय और किसी फलको उत्पन्न नहीं करसकता। "ब्रह्मवित् पुण्यकृत् च" इस श्रुतिमें च शब्द होनेके कारण ज्ञान और कर्म दोनोंका समुच्चय बुद्धिस्थ होने पर भी प्रबल श्रुतिके द्वारा उसकी व्यवस्था करनी चाहिये अर्थात्--जिन श्रुतियोंने कर्मको चित्तके दोषोंको धो देनेवाला और फिर क्रमर से ज्ञानकी उत्पत्ति होकर मुक्तिका कारण कहा है, ऐसी श्रुतियोंको ज्ञानकी प्रधानता कहनेवाली श्रुतियोंके अनुगामी करके व्याख्या करो अनुगीतामें भी भगवान्ने स्पष्ट कहा है, कि-"नित्यनैमित्तिकैः इति" नित्यनैमित्तिक कर्मोंसे चित्तशुद्धि हो कर मोक्षकी प्राप्ति होती है। भगवान् सनत्कुमारने भी आगे जाकर निष्काम कर्मको चित्तशुद्धि परम्पराके द्वारा मोक्षका कारण कहा है। यदि कोई कहने लगे, कि-चित्तशुद्धिकी क्या आवश्यकता है ? कर्म चित्तको शुद्ध न करके ज्ञान को ही उत्पन्न करदेगा तो इसका उत्तर यह है, कि ज्ञानका उदय होने पर मोक्ष होती है यह सत्य है, परंतु चित्तशुद्धहुए विना ज्ञान होही नहीं सकता यह बात ऋषियोंने भी कही है "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः" अर्थात् पापकर्मका क्षय होजानेपर ही मोक्षसाधक ज्ञान का उदय होता है। याज्ञवल्क्यने भी कहा है "तथाप्यपक्वकरण आत्मज्ञानस्य न क्षमः।" अशुद्ध इंद्रियोंवाला आत्मज्ञान नहीं पासकता। इस लिये जो पुरुष शुद्धसत्व है उसको ही विवेक और मोक्षदायक ज्ञान प्राप्त होता है इस लिये यह विधि रक्खी गई है कि--मनुष्य पहिले चित्तशुद्धिके लिये परमात्माके उद्देश्यसे मन वाणी और कर्मके द्वारा वैदिक और स्मार्त्त कर्मोंको करता रहे। जब तक चित्त शुद्ध न होगा इस लोक और परलोकके भोगविलासमें निःस्पृहता न होगी तब तक कामनाशून्य होकर नित्य नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करसकेगा

भगवान्ने भी गीतामें कहा है 'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगम् । संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।' अर्थात जो आरुरुक्षु मुनि हैं उसको ज्ञान प्राप्त होनेका कारण योग ही है हे अर्जुन ! संन्यासके विना योगको परम दुर्लभ जानो । जो पुरुष पहिले यज्ञ दान आदिके द्वारा शुद्ध चित्त होजाता है वही फिर वैराग्यका आश्रय लेता है, तदनन्तर योगारूढ़ होता है, शम गुण ही उस पुरुषकी ज्ञानोत्पत्तिका कारण होता है भगवान्ने कहा भी है 'योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते' शम योगारूढ़ पुरुषके ज्ञानका कारण है, इसलिये शमदमादिसम्पन्न श्रवण समन्वित योगारूढ़ वा योगी पुरुष निर्जन स्थानका आश्रय लेकर आत्माके द्वारा आत्माको मुक्त करे । शास्त्रमें यही उपदेश दिया है । अब योगानुष्ठानकी रीति सुनो शंकर; आगकी गरमी, रेता, कोलाहल और सीलन जहाँ न हो ऐसे किसी चित्तको प्रसन्न करने वाले समतल स्थानमें ऊँची हो न नीची हो ऐसी एक समतल वेदी (चौंतरी) बनावे । उस पर कुश, मृगचर्म और वस्त्र बिछा कर उसके ऊपर स्वस्तिक आदि आसनसे बैठे । उस समय शरीर मस्तक और गरदनको सूधी निश्चल और निष्कम्प रक्खे तथा दोनों हाथोंको गोदीमें रक्खे । इस प्रकार बैठ कर जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञको कार्यकारणमुक्त परमात्मामें लीन करके अपने आत्मामें पूर्णात्माका ध्यान करे । ध्यान इस प्रकार करे, कि-ध्यायेत्पुरीशयं देवं पूर्णानन्दं निरञ्जनम् । अपूर्वानपरं प्राग् नेति नेत्याद्विलक्षणम् ।, अर्थात् शरीररूप पुरमें विराजमान परमात्मा द्युतिमान् होनेसे देव पूर्णानन्द, निर्लेप, अनुत्पन्न, अविनाशी आकाशकी अपेक्षा भी विस्तीर्ण वा व्यापी है, श्रुति जिसको नेति नेति कहकर समझाती है और जो सब निषेधोंसे विलक्षण है । जिसका इस प्रकार वर्णन है और क्षुधा पिपासा आदिसे रहित, नित्योदित, चैतन्यघन और केवल मनसे ही ग्रहण करने योग्य है वह मैं ही हूँ, अतः मैं परमात्मासे भिन्न नहीं हूँ । ब्रह्मवादियोंने भी कहा है ''विविक्तदेशमाश्रित्य ब्राह्मणः शुद्धचेतसा । भावयेत्पूर्णमेकाख्यं हृद्याकाशमयं विभुम् ॥,, अर्थात् ब्राह्मण उपद्रवरहित स्थानमें बैठकर शुद्ध चित्तसे हृदयाकाशमें आकाश समान विभु चिदात्माका ध्यान करे । ब्रह्मपुराणमें लिखा है तस्माद्विमोक्षाय कुरु प्रयत्नम् ।' मोक्षके लिये पीछे कही रीतिसे उद्योग कर । इस प्रकार योग करते २ जिस दिन अपनेको परमात्मासे अभिन्न

समझलेगा उस दिन सब अज्ञान और अज्ञानका कार्य दूरहोकर शोक के पार अर्थात् कृतार्थ होजायगा। यही बात शास्त्रमें कही है 'आत्मानं चेद्विजानीयात् (वृहदारण्यक) वह पूर्णपुरुष मैं ही हूँ ऐसा अपरोक्ष ज्ञान होजाने पर शोक नहीं रहेगा। यस्मिन् सर्वाणि भूतानि (ईशावास्य) जिसमें सम्पूर्ण प्राणी रज्जुमें सर्पकी समान भास रहे हैं। तं दुर्दर्शम् (कठवल्ली) वह दुर्दर्श है। आत्मज्ञः शोकसन्तीर्णो न बिभेति कुतश्चन (कावषेयगीता) आत्मज्ञानी पुरुष शोकके पार होजाता है और किसीसे नहीं डरता। सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं मतम् (मनु) मैंने जो कुछ कहा है आत्मज्ञान उस सबसे श्रेष्ठ है। एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् (गीता) इस आत्माको जो जान लेता है वही सबसे श्रेष्ठ बुद्धिमान है। इस प्रकार आत्माके परमतत्वज्ञानसे ही परम पुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति होती है इस कारण परमानन्द परमात्माको अहंज्ञान पर चढ़ा कर विचार करे, कि-मैं परमात्मसम्पन्न होगया ध्यानयोगमें केवल यही भावना करे और कुछ भावना न करे। श्रुति भी कहती है 'तमेव धीरो विज्ञाय' धीर पुरुष उसको ही विशेपरूपसे जानकर उसमें ही प्रज्ञाके प्रवाहको वहावे इत्यादि। इस प्रकार सब शास्त्रोंका तात्पर्य दिखाया, अब प्रस्तुत विषयका वर्णन करते हैं सकल अनर्थोंका मूल होनेके कारण मैं प्रमादको ही मृत्यु कहता हूँ; जो विषय-विषसे अन्धे होरहे हैं और अविद्यासे दबे हुए हैं वे ही मृत्युको आत्मभिन्न जानते हैं, इसलिये ही वे-विवस्वान्का पुत्र मृत्यु है, ऐसी कल्पना करनेवाले प्रमाद नामक मृत्युको नहीं जानते हैं [मृत्यु क्या वस्तु है इस वातको वे जानते ही नहीं, इस कारण ही वे वास्तविक मृत्युसे भिन्न काल्पनिक यम आदि मृत्युको मानलते हैं] वे कहते हैं कि-मृत्यु संयमनपुरमें रहता है, परन्तु ऐसा नहीं है। मृत्युका निवासस्थान वास्तवमें बुद्धि है [कल्पनापक्षमें भी बुद्धि मृत्युका निवासस्थान है और प्रमादपक्षमें भी बुद्धि मृत्युका निवासस्थान है] अभिप्राय यह है, कि—अज्ञानी पुरुष बुद्धिके दोषसे मृत्यु करके ग्रसे जाते हैं और यम यमपुर आदि की कल्पना करते हैं। मृत्यु आत्मा नाम वाली बुद्धिमें वसता है अर्थात् उसकी बुद्धिमें कल्पना करते हैं इस कारण उस मृत्युका नाम आत्मावास है। इस सबका सार अर्थ है, कि-यम यमपुरी यह सब अज्ञानियोंके लिये कल्पना है। भगवान् मनुने भी मृत्युका बुद्धिवासी होना वर्णन किया है। 'यमो वैवस्वतो राजा यस्तवैष हृदि स्थितः। तेन

चेद्विवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः। अर्थात्-वह विवस्वान्का पुत्र यमराज जो कि-तेरे हृदयमें निवास करता है, उसके साथ यदि तेरा विवाद नहीं है अर्थात् यदि तेरे हृदयमें पापकर्मकी कालिमा नहीं है तो फिर पापक्षालनके लिये तुझे गङ्गाको या कुरुक्षेत्रको जानेकी क्या आवश्यकता है ? । यहाँ तक मृत्युका विषय कहा, अब अमृत्युका वर्णन कहते हैं । ब्रह्मचर्य ही अमृत्यु अर्थात् अमरत्व है। ब्रह्मात्मविज्ञानमें रमण करना अर्थात् ब्रह्मनिष्ठताका नाम ब्रह्मचर्य है। ऐसे आत्माकार देव अर्थात् मृत्युदेव पितृलोकमें राज्य करते हैं । वह पुण्यकारीको सुखदायक और पापकारीको दुःख देने वाले हैं॥ ८॥ टीकाकार नीलकण्ठने इस श्लोकका तात्पर्य इस प्रकार दिखाया है, कि-जब पीछे कहे अनुसार मृत्युका रूप जाननेमें नहीं आता है तो उसके होने में क्या प्रमाण है ? इस बातके उत्तरमें कहते हैं, कि-कितने ही मूढ़ पुरुष अज्ञान नामक मृत्युको यम नामसे पुकारते हैं और इस प्रकार कहते हैं, कि-'अथ सत्यवतः कायात्पाशबद्धं वशंगतम्। अंगुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्।' अर्थात्-तदनन्तर पाशमें बाँध कर वशमें किये हुए अंगूठेकी समान जीवात्माको यमराज सत्यवान्की कायामेंसे बलपूर्वक खेंच कर लेजाने लगा। यमकी अन्वयरूपसे नहीं, किन्तु व्यक्तिरूपसे आत्मामें कल्पना करी है । अर्थात् मृत्यु आत्माके ऊपर अपनी सत्ता जमा कर रहता है। जैसे रज्जुमें सर्पकी कल्पना की जाती है ऐसे ही आत्मामें भी यमकी कल्पना की जाती है, परन्तु ब्रह्मचर्य करने अर्थात् आत्माकी खोज करनेसे यम आदिकी कल्पनाका जाल कट जाता है और मोक्ष मिलती है अर्थात् योगीको यमका भय नहीं रहता है। श्रुति कहती है, कि-'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।' योगीको रोग, जरा वा मृत्यु बाधा नहीं करती है। यहाँ कोई शंका करे कि-जब यम कल्पनामात्र है, तब तो उसके द्वारा मृगतृष्णाके जल की समान कोई काम नहीं होना चाहिये। इसका उत्तर यह है, कि- 'यादृशो यक्षस्तादृशो बलिः।' जैसा यक्ष होता है उसकी तैसी ही पूजा होती है, इस नियमके अनुसार किसीके सर्पने काटा हो और वह अपनेको गरुड़ मान लेय तो जैसे उसका विष उतर जाता है तैसे ही कल्पना किये हुए यममें भी इस प्रकारकी काम करनेकी शक्ति होती है। इस पर भी वादी यदि शङ्का करे, कि-यह समाधान तो ठीक है, परन्तु एक ही यममें तुम शिव और अशिव दो धर्म बताते

क्रोधः प्रमादो लोभ रूपश्च मृत्युः। अहं गते नैव चरन् .विमोर्गाग्ना-

हो तो वह विरुद्ध धर्म शीतलता और उष्णताकी समान एकमें कैसे रह सकते हैं ? इसका समाधान यह है, कि-एक ही रज्जुमें जैसे लकड़ीकी कल्पना भी की जाती है और सांपकी कल्पना भी कीजाती है तैसे ही यममें भी शिव और अशिव दोनोंकी कल्पना कीजाती है६ इस यमराजकी आज्ञासे ही मनुष्योंके क्रोधरूपसे, प्रमादरूपसे और लोभरूपसे मृत्यु उत्पन्न होता है, जीव अहङ्कारके वशमें होनेसे ही खोटे मार्गोंमें भटकता फिरता है और आत्मयोगको अर्थात निजस्वरूपको कोई भी नहीं प्राप्त होता है ॥※॥ भगवान शंकराचार्यने इसका तात्पर्य यह दिखाया है; कि-यह वात सिद्ध होगई, कि-प्रमाद ही मृत्यु है, अब उसकी रूपान्तरसे स्थिति दिखाते हैं-जो प्रमाद नामक मृत्यु है वह पहिले आस्यरूपसे प्रकाशित होता है अभिमानरूप अहंकार ही आस्य नामसे कहा जाता है, कहा भी है-'सर्वार्थाक्षेपसंयोगादसुधातुसमन्वयात्। आस्य इत्युच्यते घोरो ह्यहंकारो गुणो महान्' अर्थात्-महाघोर अहङ्कार चतुर्वर्गका संक्षेप (विनाश) करता है, इस कारण आस्य नामको प्राप्त हुआ है [अस् धातुका अर्थ संक्षेप अर्थात् कम कर देना है] तदनन्तर वह कामरूपसे निकलता है। काम काम्य वस्तुओंमें विचरता है, उस विचरनेमें वाधा पड़ती है तो वही क्रोध, प्रमाद (चित्तकी अनवस्थिति) और मोहरूपको धारण करता है। अहंकार आदि रूपसे स्थित हुए उस अज्ञानके प्रभावसे अनात्म पदार्थोंमें आत्मभावना होने लगती है, तव मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं स्थूल हूँ, मैं दुवला हूँ, मैं अमुकका पुत्र हूँ, अमुकका पोता हूँ, ऐसे भावोंका अनुभव करता है और रागद्वेष आदि युक्त होकर कुमार्गमें चलने लगता है, ऐसा पुरुष परमात्मयोगको नहीं पाता है। अथवा ऐसी व्याख्या करो कि-अविद्या, काम और कर्म ये तीन संसारके उत्पादक अर्थात् कारण हैं। इन तीनके होते हुए परमात्मामें समाहित नहीं होसकता। इसी तात्पर्यसे 'मोहो मृत्युसंमतः, यह श्लोक कहा है। नवम श्लोकमें कर्मका स्वभाव कहेंगे। अव इस श्लोमें कामका वर्णन करते हैं । प्राणी कामके द्वारा संसारमें पड़ते हैं, इस कारण आस्य शब्दका अर्थ काम है [असु क्षेपणे प्यत] । अथवा आस्य शब्दका अर्थ मुख है अर्थात् प्रसिद्ध आस्य कहिये मुख जैसे सर्वभक्षक है तैसे ही काम भी सर्वभक्षक होनेके कारण आस्य नामवाला

चात्मनो योगमुपैति कश्चित् ॥ ७ ॥ ते मोहितास्तद्वशे वर्तमानाद्दतः

भगवान्ने भी "कामएषःक्रोधएषः" इस श्लोकमें कामकी सर्वभक्षकता दिखायी है । मृत्यु पहिले आस्य कहिये कामरूपसे दिखायी देता है; फिर क्रोधरूपमें परिणत होजाता है । यह बात भी "कामात्संजायते क्रोधः" इत्यादि वचनसे स्पष्ट है । तदनन्तर वह आस्य अर्थात् कोन अज्ञानसमारूढ़ चिदाभासको असन्मार्गमें भ्रमाता है । चिदाभासका अर्थ है अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित चैतन्य, वह परमात्माका प्रतिबिम्ब है और जीव नामसे प्रसिद्ध है । क्योंकि-जीव कामके द्वारा असत् मार्गमें जाता है, इस कारण परमात्ममार्गको नहीं पासकता है ॥ॐ॥ टीकाकार नीलकण्ठने इस श्लोकका यह अभिप्राय प्रकट किया है कि इस कल्पना कियेहुए यमकी आज्ञासे क्रोध, प्रमाद,लोभ आदि अनेक रूपधारी मृत्यु अर्थात् मरण करनेवाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं । यहाँ जैसे अज्ञानका अभिमानी देवता है यम तैसेही क्रोध आदिका अभिमान रखनेवाले देवता उसके दास हैं। ऐसा कह कर यहाँ उसका आधिदैवपना दिखाया है तथा अज्ञानसे क्रोध आदि उत्पन्न होते हैं और जीव उनसे मरणको होता प्राप्त है,ऐसा कहकर अध्यात्म वस्तुका भी दर्शन कराया है । इस पर कोई शङ्का करे, कि अज्ञान आत्मामें रहता है, ऐसा तुम कहते हो तो वह आत्मासे पृथक् सिद्ध है ? या अपृथक् सिद्ध है ? यदि उसको अपृथक् सिद्ध मानोगे तब तो मुक्तोंका भी फिर वन्धनका अवसर आजायगा और पृथक् सिद्ध मानोगे तो सांख्याचार्यकी मानी हुई प्रकृतिकी समान उसका भी अनित्यपना सिद्ध होगा ? ऐसी शंका होने पर मृत्युके ऊपर विवेचन करते हैं कि जीव जब अहंकारके साथ सङ्ग करते हैं तब वे आत्माके जानेके अयोग्य खोटे मार्गोंमें जापहुँचते हैं अर्थात् विषयोंका भोग करनेमें लग पड़ते हैं, परन्तु मुक्तिदशामें तो अज्ञानका आश्रय करनेवाले अहंकारका चिदाभासका नाश होजाता है और केवल शुद्ध आत्मा ही रहता है आत्मामेंसे अज्ञानका फिर उदय नहीं होता है, तथा इससे जुदा भी अज्ञान नहीं रहता है । इस पर कोई शंका करे, कि-अहंकारका लय तो सुषुप्तिमें भी होजाता है,फिर सुषुप्ति दशामें मुक्ति क्यों नहीं होती तो इसका समाधान यह है, कि-सुषुप्तिदशामें भी अहंकाररूपी सूक्ष्म-पदार्थ रहता है,कोई भी प्राणी ज्ञानके विना आत्माके साथ एकताको नहीं पाता है. इस लिये अहङ्कारके नाशसे पहिले जीवात्मा क्रोधादि-

प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति । ततस्तान् देवा अनु विप्लवन्ते अतो मृत्यु-

रूपमें रहनेवाले मृत्युके साथ मिलता है ॥ ७ ॥ जीव क्रोध आदिसे मोहको पानेके अनन्तर क्रोध आदि रूपमें रहनेवाले मृत्युके वशमें हो कर देहत्यागके अनन्तर यमलोकमें जाकर वारम्वार नरकमें पड़ते हैं उस समय सब इन्द्रियें भी जीवोंके पीछे २ जाती हैं, इस लिये ही अज्ञान मरणके नामको धारण करता है ॥❀॥ भगवान् शंकराचार्यके भाष्यके अनुसार इसका तात्पर्य यह है, कि जीव अहंकाररूपी अज्ञान से छाये हुए होते हैं इस कारण देह आदिमें आत्मबुद्धिका आरोपण करके मृत्युके वशीभूत होजाते हैं । तदनन्तर वे इस लोकसे श्रुतिमें बताये हुए पितृयान मार्गके द्वारा परलोकमें जाकर कुछ कालतक वहाँ रहते हैं। तदनन्तर फिर योनि जन्मग्रहण करनेके लिये उस लोकसे श्रुतिमें कहे हुए मार्गके द्वारा इस लोकमें आते हैं अर्थात् उस देहका भोग समाप्त होनेपर फिर मनुष्य पशु आदिका जन्म पाते हैं।श्रुति भी कहती है, कि-"तस्मिन् यावत्सम्पातमुषित्वा अथैतमेवाध्वानं पुनर्नि-वर्तते ।" अर्थात् जबतक पतनकाल नहीं आता है तबतक उस लोक में निवास करता है, तदनन्तर भोगका क्षय होने पर जिस मार्गसे उस लोकमें गया था फिर उसही मार्गसे इस लोकमें आता है अर्थात् योनिजन्मको पाता है । तदनन्तर वह जब देहको धारण करता है तब इन्द्रियें उसकी अनुगामिनी होती हैं और वह चारों ओर कर्मोंमें लगजाती हैं,क्योंकि वह बारर अज्ञानसे ग्रसित होता है, इसकारण बार २ मरणका अनुभव करता है । मरणके अनन्तर जन्म और जन्मके अनंतर मरण इस क्रमसे मरणके प्रवाहमें पड़जाता है,मुक्त नहीं होने पाता। इसप्रकार अपना अज्ञान ही अपने संसारका कारण है।श्रुति भी कहती है, कि जीव जबतक परमात्माका अपनेसे अभिन्न साक्षात्कार नहीं करता है तबतक त्रितापसे जलता रहता है और कुम्भीपाक आदिकी समान राग द्वेष आदिसे बार २ खिंचा हुआ मोहमें मग्न रहता है ।❀॥ टीकाकार नीलकण्ठने इस श्लोकका तात्पर्य इसप्रकार दिखाया है, कि-क्रोध आदिसे मोहको प्राप्त हुए और क्रोध आदिसे मृत्युके वशमें हुए जीव, इस लोकमें मरणको प्राप्त होनेके अनन्तर यम लोकमें जाते हैं और वहाँ नरक आदिमें पड़ते हैं और उन जीवोंके पीछे २ उनकी इंद्रियें भी नरकमें जाती हैं । श्रुति कहती है, कि तम-मुत्क्रामन्तं प्राणोऽनुत्क्रामति प्राणमनुत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनुत्क्रामन्ति"

मरणाख्यामुपैति ॥ ८ ॥ कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तथानु ये यान्ति न

अर्थात् जीव देहमेंसे बाहर निकलता है, कि-उसके पीछे २ प्राण भी बाहर निकलजाता है और प्राण ज्यों ही बाहर निकलता है कि-उसके पीछे २ इन्द्रियें भी बाहर निकल जाती हैं (मृङ्प्राणत्यागे) मृङ्धातु प्राणत्याग अर्थमें व्यवहार कीजाती है और अज्ञान मरण आदि अर्थोंको भी धारण करती है अर्थात् मृत्यु शब्दका अर्थ अज्ञान है। श्रुति भी कहती है "मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः,, आत्मस्वरूपके अत्यन्त विस्मरणका नाम मृत्यु है। यह प्रत्येक शरीरमें निवास करने वाले आनन्दरूप परमात्माका विस्मरण कराता है तैसे ही यम भी प्रत्यक्पनेसे ग्रहण किये हुए परमात्माका और देहका विस्मरण कराता है, इस कारण ये दोनों एकसे हैं और दोनोंको मृत्यु नामसे कहा जाता है, इनमें मुख्य मृत्यु अज्ञान है और साधारण मृत्यु यम है ॥ ८ ॥ कर्मके फलमें आसक्ति रखनेवाले जीव, कर्मके फलका उदय होनेके समय अर्थात् कर्मोंके फल मिलनेके समय देहको त्याग कर भोगके साधनेरूप स्वर्ग आदि लोकमें जाते हैं, परन्तु वे मृत्युके पार नहीं होते हैं, देहाभिमानी जीव परब्रह्मकी प्राप्तिके साधन भूत यम नियमादियोंको न प्राप्त करके केवल भोगोंको ही पानेकी वासनावाले देवता मनुष्य और पशु पक्षियोंकी योनियोंमें जन्म धारण किया करता है ॥ ॐ ॥ श्रीशंकरभाष्यके अनुसार इस श्लोकका तात्पर्य यह है, कि-अपनेको न जानना प्रत्यक् अज्ञानके नामसे कहा जाता है। यह लिंग-शरीर उस ही मूल अज्ञानके कामपरिणाम और उसमें प्रतिबिम्बित चिदाभासके अनुरूप होकर काम करता है, चिदाभास शब्दका अर्थ है-सर्वव्यापी चेतन परमात्माका आलोकिक बुद्धिरूपमें पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब। परमात्मा उक्त चिदाभासरूप फलक (प्रतिबिम्ब) पर आरूढ होकर साक्षी, ईश्वर, कारण और अन्तर्यामी आदि नामोंको पाता है। आत्मा इस प्रकार प्रपञ्चमें स्थित होने पर भी कमलके पत्ते पर पड़े हुए जलकी समान अथवा रज्जुमें भासनेवाले सर्पकी समान प्रपञ्चमें लिप्त नहीं होता है । यह रहस्य 'असङ्गोऽयं पुरुषः' इत्यादि श्रुतिमें कहा है। अत एव ईश्वरत्व आदि औपाधिक ही हैं, पारमार्थिक नहीं है। शास्त्रोंमें अन्यत्र भी कहा है - 'अविद्या [illegible]-रूपोपाध्यनुरोधादीश्वरः सर्वः [illegible] परमात्मा [illegible] अज्ञानके द्वारा उत्पन्न हुई नाम रूप आदि उपाधियोंके अनुरोधसे

तरन्ति मृत्युम् । सदर्थयोगानवगमात् समन्तात् प्रवर्त्तते मोक्षयोगेन

ईश्वर नामको पाता है । इस कारण आत्मज्ञानसे ही आत्मकल्पित ईश्वरत्व आदिका तिरोधान होता है, यह बात प्रमाणविरुद्ध नहीं है। यही बात सुरेश्वराचार्यने भी कही है–'स्वाभासफलकारूढस्तदज्ञानजभूमिषु । तत्स्थोऽपि तदसम्बन्धे ईश्वराद्यात्मतां गतः ॥ इस प्रकार अविद्या और कामकी बन्धनहेतुताको कहकर अब कर्मकी बन्धनकारणताका वर्णन करते हैं, कि–कर्मके द्वारा अमरत्वकी प्राप्ति नहीं होती है, किन्तु कर्म निष्पन्न होने पर सब लोग उसके फलमें आसक्त होजाते हैं, जो बार २ उसके ही अनुगामी होते हैं और कर्मफलके अनुगामी होनेके कारणसे वे मृत्युके पार नहीं होसकते हैं अर्थात् बार बार जन्ममरणके प्रवाहरूप संसारमें ही घूमते रहते हैं । फलको चाहने वाले कर्मासक्त पुरुष जो बार २ कर्मफलभोगके वशीभूत होते हैं इसका कारण यह है कि–वे सदर्थयोगको नहीं जानते । सदर्थ परमात्मा का नाम है, और योगका अर्थ है–ऐक्य । इसका भाव यह हुआ कि–वे परमात्माके साथ आत्माके एकत्वको नहीं जानते । स्पष्ट भाव यह है कि–वे अपने सच्चिदानन्द भावको नहीं जानते इसकारण देहाभिमानी होकर वृथा भोगलालसासे संसारचक्रमें भ्रमते रहते हैं । जैसे अन्धे मार्गको न देखसकनेके कारण ऊँचे नीचेमें और काँटेभरे स्थान में जापड़ते हैं और कष्ट पाते हैं । ऐसे ही आत्मान्धपुरुष भी आत्मज्ञान न होनेके कारणसे विषयरसके लालची होकर संसारवनमें वृथा ही टक्करें खातेहुए भटकते फिरते हैं ॥ ※ ॥ नीलकण्ठी टीकाका भावार्थ यह है, कि–जीवको मरणसे पहिले सब प्रकारका भय होता है परन्तु मरणके अनन्तर जीव कृतकृत्य बनजाता है, अतः उसकी मुक्ति के लिये अधिक खटपट करनेकी क्या आवश्यकता है ? यह शंका प्रायः होती है । इसका समाधान यह है, कि–एक जातिका भोग देने वाले कर्म जब पककर फल देते हैं, तब कर्मोंके फलोंको भोगनेमें प्रेम करनेवाले जीव भोगोंको भोगनेकी वासनासे पहिले देहको त्याग कर स्वर्गमें जाते हैं, परन्तु इससे वे मृत्युके पार नहीं होसकते अर्थात् उनके स्थूल देहका नाश होजाता है परन्तु सूक्ष्मदेहका नाश नहीं होता है और जबतक सूक्ष्म देह रहता है तब तक वे जन्ममरणके बन्धनसे नहीं छूटसकते । मरणके अनन्तर जीवका अस्तित्व होता है या नहीं इस विषय पर कठोपनिषद्में विचार किया है कि–"येयं प्रेते विचिकि

वेदो ॥९॥ तद्धै महामोहनमिन्द्रियाणां मिथ्यार्थयोगस्य गतिर्हि नित्या ।

त्ता नराणां मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।" मनुष्यके मरणके अनन्तर जीवके अस्तित्वके विषयमें विचार कियाजाता है, कि-कितने ही कहते हैं-मरणके अनन्तर जीवका अस्तित्व है और कितने ही कहते हैं कि-मरणके अनन्तर जीवका अस्तित्व नहीं है । अन्तमें जीवका अस्तित्व सिद्ध होने पर-यह जीव पहिले शरीर को त्याग कर दूसरे देहको धारण करता है, यह बात सिद्ध करनेके लिये कहा है, कि—योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसंयान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्,, अर्थात्-कितने ही देहधारी जीव, शरीर धारण करनेके लिये जंगमकी योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही जीव स्थावरकी योनिको प्राप्त होते हैं जीव कर्मके अनुसार तथा ज्ञानके अनुसार योनिको प्राप्त होते हैं इस श्रुति से यह दिखाया, कि-मरणके अनन्तर भी जीवका अस्तित्व है और वह दूसरे देहको धारण करता है, अब उसका कारण बतातेहुए कहते हैं, कि-सत् कहिये परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन योगके आठ अङ्गोंका लाभ न होनेसे जीवात्माको देव मनुष्य और पशु पक्षी आदि की योनिमें जन्म धारण करना पड़ता है, जन्मधारण करनेका दूसरा कारण ऐश्वर्यको भोगनेकी इच्छा भी है । देहका अभिमानी जीव भोगोंको भोगनेकी इच्छासे वारंवार देव मनुष्यादि वा स्थावर योनियोंको पाता है ॥ ९ ॥ पुरुषको मिथ्याभूत विषयोंमें स्वाभाविक ही प्रवृत्ति होती है, वह प्रवृत्ति जीवोंकी इन्द्रियोंको महामोह उत्पन्न करती है, संकल्पोंसे उत्पन्न हुए मिथ्या विषयोंमें संबंध होजाने पर और उसके द्वारा नित्य पराभव (दबाव) पानेसे जीवात्मा सर्वथा विषयोंका ही स्मरण किया करता है और उसका ही सेवन करता है ॥ * ॥ इस श्लोकके शंकरभाष्यका भावार्थ है, कि-विषयोंके राग से अभिभूत हुए मनुष्यकी इन्द्रियें विषयोंमेंको ही जाती हैं, आत्मा की ओरको अभिमुख नहीं होती हैं, इसलिये इन्द्रियोंका विषयोंमें प्रवृत्त होना ही महामोहन है । यह बात भी शास्त्रमें कही है, कि-जो विषयोंको मृगतृष्णाकी समान मिथ्या जानते हैं उनकी इन्द्रियें विषयासक्त नहीं होती हैं । विषयोंकी प्रवृत्तिको त्यागदेनेके कारण वे सदा आनन्दरूप आत्मामें ही प्रवृत्त रहते हैं, इसलिये वे मोहमहान

मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात् ॥१०॥

नहीं होते हैं, जो विषयको सत्य और सुखदायक मानते हैं, उनकी ही इन्द्रियें सदा बाहरके विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं इसकारण वे अपनी सत्स्वरूपता, प्रत्येक शरीरमें व्यापकता, अद्वितीयता और परमत्वको नहीं जानते हैं। पुरातन पण्डित भी कहगये हैं, कि "स्त्रीपिण्डसम्पर्ककलुषितचेतसो विषयविषान्धा ब्रह्म न जानन्ति" अर्थात् स्त्रीके शरीरके सम्पर्कसे कलुषितचित्त पुरुष विषयरूप विषसे अन्धे (आत्मज्ञानशून्य) होजाते हैं और ब्रह्मज्ञानको नहीं पासकते। इसकारण मोह उनको विषयोंमें प्रवृत्त करदेता है। मनुजीने भी कहा है-"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति,, काम कभी काम्य वस्तुओंके भोगसे शान्त नहीं होता है किन्तु दिनप्रतिदिन बढ़ता ही चलाजाता है। इसलिये अपने अज्ञानसे रज्जुमें कल्पना कियेहुए सर्पकी समान मिथ्यारूपआदि विषयोंमें आसक्त रहता है, इसकारण देहाभिमानी की संसारगतिको टालना बड़ा कठिन होता है। यह बात पण्डितोंमें प्रसिद्ध भी है, "स्वात्मभूतं परात्मानमवगम्य विषयेषु प्रवर्त्तमानाः पराग्भूतास्तिर्यगादियोनिं प्राप्नुवंति, अर्थात् स्वतःसिद्ध अहमात्मा ही परमात्मा है वह अपने अज्ञानके कारण अनजानमें विषयोंमें आसक्त और बाह्यदर्शी होजाता है और फिर अनेकों योनियोंमें घूमता है। यह बात बृहदुच्च ब्राह्मणमें भी कही है। भगवान् सनत्कुमार भी आगे कहेंगे कि-"कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति,, अर्थात्-कामका अनुरागी पुरुष काम्य विषयोंके विनाशके साथ विनष्ट हो जाता है। विषयसङ्गीकी संसारगतिको हटाना कठिन क्यों होता है? इस बातको ही चौथे पादमें कहा है, कि-वह इन्द्रजालसमान विषयोंके द्वारा इस विषयसंगीका आत्मा अभिभूत होजाता है, अर्थात् ब्रह्मभावसे च्युत होजाता है इसलिये वह विषयोंमें ही लगा रहता है परमात्माकी उपासना करनेका उसको ध्यान ही नहीं होता ॥ ७ ॥ नीलकंठी टीकेका तात्पर्य यह है कि-भोगकी इच्छासे जीवको अनेकों शरीर धारण करने पड़ते हैं, यह बात ऊपर कह चुके हैं, अब उन भोगोंकी ही निन्दा करते हैं, कि-जीवको मिथ्यारूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध नामक विषयोंमें प्रीति होजाती है तब उन विषयोंको पानेके लिये जीवकी स्वाभाविक ही प्रवृत्ति होती है, उस प्रवृत्तिसे ही इन्द्रियोंको महा-

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति लोकान् कामक्रोधावनुगृह्याशु पश्चात् । एते बालान्मृत्यवे प्रापयन्ति धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम् ॥ ११ ॥ योऽभि-

मोह उत्पन्न होता है, परन्तु जिन शब्दादि विषयोंको भोगनेकी इन्द्रियें लालसा रखती हैं वे विषय तो मिथ्या हैं, क्योंकि वे तो केवल सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हुए हैं । न्यायशास्त्रके आचार्य अक्षपादाचार्यने कहा है, कि-" दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः" अर्थात्-रूप आदि विषय सङ्कल्पसे उत्पन्न हुए हैं और राग आदि दोषोंके निमित्तकारण हैं । जीवात्माका मन जब मिथ्या विषयोंमें जा जुटता है और उनके रङ्गसे बादल होजाता है तब वह बारंबार विषयोंका ही स्मरण करके उनकी सेवा किया करता है । यहाँ 'स्मरन्' में जो शतृ प्रत्यय है वह हेतु अर्थमें है । विषयोंका स्मरण करते रहना यही विषयोंकी सेवामें कारण है इस लिये विषयोंको तो जहाँ तक होसके भूल जानेका उद्योग करना चाहिये ॥१०॥ पहिले तो विषयोंको स्मरण कहिये उनका विचार ही जीवका नाश कर देता है (मोहमें डाल देता है) तदनन्तर काम और क्रोध धीरे२जीवका पीछा लेते हैं अर्थात् जीवात्मामें आ विराजते हैं, तदनन्तर विषयोंका विचार और काम क्रोध ये सब इकट्ठे अज्ञानी जीवात्माको तुरन्त ही मृत्युके पास घसीट कर लेजाते हैं, परन्तु धीर जीव धैर्यसे मृत्युको तर जाते हैं ॥ ॐ ॥ (शाङ्करभाष्यका तात्पर्य) अब विषयोंके स्मरणका दोष कहते हैं कि-विषयोंका स्मरण (अनु-ध्यान) कहिये निरन्तर चिन्तवन पहिले तो विषयचिन्तकको नष्ट करता है अर्थात् स्वरूपज्ञानसे गिरा देता है, फिर काम उसको विषय रसमें डुबा कर नष्ट कर देता है, तदनन्तर क्रोध उस कामहत पुरुषका वध करता है । विषयध्यान, काम और क्रोध ये जिनके पञ्जे पड़े हुए उन अज्ञानी मनुष्योंको मृत्युके पास लेजाते हैं, परन्तु विवेकी पुरुष धीरताके द्वारा सब विषयोंको जीत लेते हैं तथा आत्मस्वरूप परमात्माको जानते हुए मृत्युको तर जाते हैं ॥ ॐ ॥ (नीलकण्ठका तात्पर्य) विषयोंका स्मरण करनेसे होने वाली हानिको दिखाते हुए कहते हैं, कि-पहिले जीवात्मा विषयोंका चिन्तन स्मरण करता है, चिन्तन करने पर जीवात्माको उन विषयोंको पानेकी इच्छा और भोगनेकी कामना होती है, परन्तु वे विषय जब किसी कारणसे नहीं मिल सकते हैं तो जीवको क्रोध उत्पन्न होजाता है । इसप्रकार

ध्यायन्नुत्पतितान्निहन्यादनादरेणाप्रतिबुध्यमानः । नैनं मृत्युर्मृत्युरिवात्तिभूत्वा एवं विद्वान् यो विनिहन्ति कामान् ॥ १२ ॥ कामानुसारी

पहिले विषयोंका स्मरण, फिर उनको पानेकी कामना और फिर उनके न मिलनेसे क्रोध, इस क्रमसे उत्पन्न हुई अनर्थोंकी टोली मनको वशमें न रखने वाले जीवात्माओंका नाश कर डालती है अर्थात् मोहित कर देती है, परन्तु जो धीर कहिये मनको वशमें करने वाले हैं वे मृत्युके पार होजाते हैं ॥ ११ ॥ धैर्यधारी योगी पुरुष आत्माका चिन्तवन किया करता है और पासमें आये हुए सांसारिक भोगोंकी ओर तुच्छ दृष्टि रख कर उनका चिंतवन नहीं करता है, किंतु उनका नाश कर डालता है वह जीवात्मा, जैसे मृत्यु औरोंको खाता है तैसे मृत्युको खाजाता है ॥ ※ ॥ (शांकर-भाष्यका तात्पर्य)-धीर पुरुष जिस प्रकार धैर्यके द्वारा सकल विषयों को जीत कर मृत्युका नाश करते हैं, उस प्रणालीको कहते हैं, कि-जो मेधावी पुरुष सकल विषयोंको उत्पतिष्णु (उत्पन्न और विनष्ट होने का स्वभाव वाले) अपवित्र और दुःखभरे जान कर (विचारके द्वारा निश्चय करके) उनका हनन कर सकता है अर्थात् उन सर्वोको त्याग सकता है । जैसे साधारण पुरुष अनादरके द्वारा अर्थात् त्याज्य मान कर अपवित्र बीभत्स (विष्टा मूत्र आदि) पदार्थोंको त्याग कर उनसे उत्पन्न होने वाले क्लेशोंसे छूट जाते हैं, ऐसे ही जो अनादर और अचिन्तनके द्वारा हेय समझ कर सकल विषयोंको त्याग सकते हैं वे पुरुष ही मृत्युके मृत्यु बन कर जैसे मृत्यु अन्य प्राणियोंको खाता है तैसे मृत्युको खासकते हैं और अमर होसकते हैं । कहा भी है—
"विषयप्रतिसंहारं यः करोति विवेकतः । मृत्योर्मृत्युरिति ख्यातः स विद्वानात्मवित् कविः ॥" अर्थात् जो पुरुष विवेकके द्वारा सकल विषयों का संहार करता है अर्थात् त्याग करता है वह पुरुष मृत्युका मृत्यु विद्वान् और कवि है ॥ ※ ॥ (नील०का तात्पर्य) मृत्युको तरनेकी इच्छा वाले पुरुषको अथवा हर एक योगी पुरुषको आत्माका चिन्तवन करते रहना चाहिये और यदि विषय अपने पासको आने लगे तो उनका नाश कर डालना चाहिये, उन विषयोंका नाश करनेका उपाय यह है, कि-अपने पास स्त्री आदि विषय स्वयं ही आजायँ तो भी उनकी ओरको मार्गमें पड़े हुए तृणकी समान तुच्छपनेकी बुद्धि करे और स्वयं तो उनका विचार ही न करे किन्तु विषयोंको हृदयमेंसे

पुरुषः कामाननु विनश्यति । कामान् व्युदस्य धुनुते यत् किंचित् पुरुषो रजः ॥ १३ ॥ तमोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रदृश्यते । मुह्यन्त इव

निकाल डाले । जो पुरुष ऐसा ज्ञानी होकर कामनाओंका नाश करता है उस पुरुषको मृत्यु नहीं खासकता, किन्तु जैसे अज्ञानरूपी मृत्यु विषयीपुरुषोंको खाजाता है तैसे ही यह अज्ञानरूपी मृत्युको खा जाता है ॥१२॥ पुरुष विषयोंका अनुगामी बननेसे विषयोंके साथ २ ही मर जाता है, परन्तु यदि वह सब कामनाओंका त्याग कर देता है तो जो कुछ भी दुःखरूप रजोगुण होता है, उस सबका नाश कर देता है ॥ * ॥ (शा० भा० का तात्पर्य) जो पुरुष ऊपर कहे अनुसार विषयोंके दोष देख सकता है वह पुरुष ही अनादर आदिके द्वारा काम्यवासना कहिये विषयाभिलाषका नाश करसकता है, परंतु जो ऐसा नहीं करसकता है, उसको करनीको कहते हैं, कि-जो विषयों का चिन्तवन करता हुआ कामानुसारी होजाता है अर्थात् विषयाभिलाषीकी प्रेरणासे विषयासक्त होजाता है वह पीछे काम्य विषयों के नाशके साथ २ नष्ट होजाता है । काम, काम्यवस्तु और कामना ये सब अनित्य और क्षणस्थायी हैं । जो पुरुष दोषदृष्टि रखकर काम्य-कामनाका त्याग करता है वही पुरुष सकल काम्यविषयोंको त्यागकर विवेकज्ञानको प्राप्त करता हुआ इस जन्म और पूर्वजन्मके रज अर्थात् पुण्य और पापका नाश करसकता है ॥१३॥ (नी० का तात्पर्य)— कामनावाले पुरुषकी निंदा करते हैं,कि-विषयी पुरुष विषयोंका सेवन करते ही मरजाता है । शास्त्रमें कहा है, कि-'कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।' अर्थात् इस जगत्में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच विषय हैं, इनमेंके शब्दरूपी विषयमें मोहित होनेसे मृग नष्ट होता है । मातंग कहिये हाथी हथिनीके अङ्गस्पर्शके लोभसे गढेमें पड़कर मर जाता है, पतंगे जलतेहुए अग्निके रूप पर मोहित होकर उसकी लपटपर जल कर मरजाते हैं । मछलियें आटा वा माँस लिपटेहुए काँटेके मुखमें पड़कर मरजाते हैं और भौंरे सुगंधि से लुभिया कर कमलकी कलीमें बन्द होते हुए प्राण खोदेते हैं । इस प्रकार एक २ विषयमें आसक्ति होनेसे इन प्राणियोंका नाश हो-जाता है, फिर जो पाँचों ही विषयोंमें फँसा रहता है उसका विषयों के संगसे मरण कैसे न होगा ? इसलिये ज्ञानीपुरुष सब विषयोंका त्याग करदेता है और दुःखरूप जो कुछ रजोगुण है उस सबको भी

धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रवत् सुखम् ॥१४॥ अमूढवृत्तेः पुरुषस्येह कुर्यात

त्याग देता है ॥ १३ ॥ प्राणियोंको अज्ञानमें डालनेवाली कामनायें विवेकका नाश करनेवाली तथा नरकमें डालनेवाली देखनेमें आती हैं, क्योंकि-मनुष्य कामनाओंके कारणसे ही विषयोंके विवेकसे शून्य हो अज्ञानभरे ऐसे २ काम करनेमें लगपड़ता है, कि-जैसे मदमत्त मनुष्य मार्गमें चलते २ गढ़ेवाले प्रदेशोंकी ओरको दौड़ता है, तैसे ही कामासक्त पुरुष भी संसारमें रहकर ऊपर ही ऊपरसे मनोहर दीखनेवाले स्त्री आदि विषयोंकी ओरको दौडा करता है ॥*॥ (शा० भा० का तात्पर्य) अब इस कामनीय देहकी हेयताको कहते हैं, कि-यह जो प्राणीका शरीर देखनेमें आता है, यह केवल तम(अन्धकार वा जड़) है इस कारण यह अज्ञानकी ही कल्पना वा विकार है और यह नरक अर्थात् कफ, विष्टा, मूत्र, रक्त, रेत, पूय और कीडे आदिसे भराहुआ है। मनुजी कहते हैं कि-"अस्थिस्थूणं स्नायुबद्धं मांसक्षतजलेपनम्। चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्। रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥" अर्थात्-जिसमें हड्डियोंकी खूंटियें हैं, रगोंका बन्धन है, मांस और रक्तकी लहेसन है, जो चर्मसे मढा और विष्ठा आदिका आधार है, दुर्गन्धि जरा और शोक आदिका भण्डार है, रोगका स्थान, आतुर, मैला और क्षणभरमें नष्ट होजानेवाला है ऐसे २ इस भूतावास कहिये पाञ्चभौतिक भवनको जीव त्यागदेय। अर्थात् इसमें मैं और मेरा ऐसा अभिमान न रक्खै। जो ऐसे बीभत्स स्त्री शरीर आदिको कमनीय मानते हैं और उसकी अभिलाषा करते हैं वे अन्धोंकी समान गढोंमें गिरते हैं अर्थात् ऐसे विषयासक्त पुरुष ही स्त्रीशरीरआदिकी कामना करके नरकगामी होते हैं ॥ * ॥ (नील० का तात्पर्य) विरुद्धपक्षमें दोष दिखाते हैं, कि-कामनायें कहिये विषय प्राणीमात्रको अज्ञानमें डालते हैं और अज्ञानके कारणसे मनुष्योंको विषयोंका विवेक अर्थात् उनके सार असारका ज्ञान नहीं रहता है इस कारण अज्ञान उनको नरककी समान दुःखदायक होजाता है। जैसे मदिरा पीनेसे मदमत्त हुए पुरुष मार्गमें चलते २ अज्ञानके कारण गढोंकी ओरको दौड़ते हैं तैसे ही कामी पुरुष भी संसारमें रहकर विषयोंके विवेकज्ञानसे शून्य होनेके कारण ऊपर ऊपरसे सुख देने वाले स्त्री पुत्र आदिके ऊपर ममता करके उन मिथ्या पदार्थोंके पीछे २ भटका करते हैं ॥ १४ ॥

किं वै मृत्युस्तीर्णं इवास्य व्याघ्रः।अमन्यमानः क्षत्रिय किञ्चिदन्यान्ना-

परन्तु जिस मनुष्यका मन कामनाके द्वारा तिरस्कार नहीं पाता है ऐसे अमूढ कहिये मोहवृत्तिसे रहित पुरुषको तृणोंके बनायेहुए व्याघ्रकी समान मृत्यु क्या करसकता है ? कुछ नहीं करसकता, इसलिये हे क्षत्रिय ! कामनाके आयुरूप अर्थात् मूल कारणरूप अज्ञानको तू दूर कर तथा दूसरी जो कोई कामना करने योग्य वस्तु हो उसकी तू गिनती भी न करना क्रोधी, लोभी, और मोहवाला अर्थात् अनात्मरूप देह आदिके विषें आत्मबुद्धि करके बैठाहुआ जो जीवात्मा तेरे शरीरमें विद्यमान है वही मृत्यु है इसप्रकार मृत्युकी उत्पत्ति होती है,ऐसा जानकर पुरुष यदि ज्ञानमें निष्ठा करता है अर्थात् ज्ञानकी प्राप्ति करता है तो वह मृत्युसे नहीं डरता है, क्योंकि-जैसे देह मृत्युकी दृष्टिमें पड़नेसे नष्ट होजाता है तैसे ही मृत्यु भी ज्यों ही ज्ञानकी दृष्टिमें पड़ता है कि-अपने आप ही नष्ट होजाता है ॥ ७ ॥ (शा० भा० का तात्पर्य) अब यह बात कहते हैं, कि-जो स्त्री आदिके शरीरको ग्रहण करते हैं अर्थात् यह मेरा है ऐसा मानते हैं वे ही भ्रमते हैं और जो भ्रमते हैं उनका ही शरीर निरर्थक है । जो पुरुष स्त्री पुत्रादिकी इच्छामें दौड़ते हैं तो वह मानो विषय विषयसे अन्धे होरहे हैं । हे क्षत्रिय ! विषयान्धपुरुष विषयके सिवाय और कुछ देखता ही नहीं । आत्मा ही परमात्मा है, यह भाव उनके मनमें उठता ही नहीं और उठता भी है तो स्थान नहीं पाता, इस लिये वे स्वात्मब्रह्मबोधक सूक्ष्म अध्यात्मशास्त्रको नहीं पढ़ते हैं । और पढ़ते हैं तो उसका मर्म नहीं समझ सकते हैं, ऐसा पुरुष अध्यात्मशास्त्रको पढलेय तो भी उसका शरीर तृणके बनाये हुए व्याघ्रके शरीरकी समान निरर्थक है (क्योंकि-उसके घटमें चैतन्य ही नहीं होता) भगवान् वसिष्ठजीने भी कहा है, कि-"चतुर्वेदज्ञोऽपि यो विप्रः सूक्ष्मं ब्रह्म न विन्दति । देहभारभराक्रान्तः स वै ब्राह्मणगर्दभः ॥" अर्थात्-जो विप्र चारों वेदोंको पढलेने पर भी सूक्ष्म ब्रह्मको नहीं जानता है, वह विप्र वृथा ही वेदके भारको उठाता है और वह वेदका बोझा ढोनेवाला ब्राह्मणोंमें गधा है ऐसेका केवल शरीर ही निरर्थक नहीं होता है किन्तु जो ऐसा है वह आप ही अपनी मृत्यु है । मोहके कारणभूत क्रोध और लोभके द्वारा बनाहुआ मोहके भय वाला तुम्हारे शरीरमें स्थित तुम्हारा अन्तरात्मा ही तुम्हारी मृत्यु है, इस बातको निश्चय जानना । अर्थात्

धीयीत् निर्गुदन्निवास्य चायुः ॥१५॥ स क्रोधलोभौ मोहवानन्तरात्मा

तुम्हारा जो आत्मा (बुद्धि) क्रोध लोभ आदिसे युक्त होकर विषयोंमें प्रवृत्त होता है वह अजित आत्मा ही तुम्हारे विनाशका कारण है। कहा भी है—"आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।,, अर्थात् मनुष्य आप ही अपना बन्धु और आप ही अपना शत्रु है। अब मृत्यु-नाशका उपाय कहते हैं, कि-प्रमाद नामक मृत्यु ही क्रोधादिरूपसे जन्म लेता है अर्थात प्रकट होता है। और जन्म मरण आदिके प्रसिद्ध क्लेशका कारण होता है, ऐसा जान कर क्रोध आदि दोषोंको त्याग देय, जिसके ये दोष जड़मूलसे दूर होजायँ ऐसा उद्योग करे। फिर क्रोधशून्यता आदि वृत्तियोंको धारण करके, ज्ञानसाधनामें लग जाय, ज्ञान-सच्चिदानन्द आत्मचैतन्य है, उसमें निष्ठा होजाने पर मृत्युका भय नहीं रहता है । श्रुति भी कहती है "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।" अर्थात् जो ब्रह्मानन्दको जान जाता है वह किसी से भयभीत नहीं होता है। ज्ञानमें निष्ठा होजाने पर मृत्युका भय नहीं रहता, इस बातको दृष्टान्तके द्वारा समझाते हैं, कि-जैसे मृत्युके अधि-कारके पुरुष मृत्युका दबाव पाकर नष्ट होजाते हैं तैसे ही प्रमादरूप मृत्यु भी आत्मज्ञानी पुरुषके अधिकारमें पहुँच जाने पर ज्ञानके द्वारा नष्ट होजाता है। ज्ञानमहोदधि ग्रन्थमें लिखा है, कि-"ज्ञानसंस्थान-सद्भावो ज्ञानाग्निज्ञानवज्रभृत्। मृत्युं हन्तीति विख्यातः स वीरो वीत-मत्सरः॥" अर्थात्-ज्ञानमें स्थित, ज्ञानभावको प्राप्त ज्ञानाग्नियुक्त और ज्ञानरूप वज्रको धारण करने वाला मनुष्य मृत्युका नाश करता है,यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है। जो पुरुष मृत्युका मारक है वह पुरुष ही सच्चा वीर है और मत्सरतारहित है॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य) जिस मनु-ष्यकी चित्तवृत्ति कामनाके वशमें न हुई हो उसका मृत्यु क्या कर सकता है ? जैसे तृणोंका बनाया हुआ बाघ पुरुषका कुछ नहीं कर सकता तैसे ही मृत्यु भी उसका कुछ नहीं कर सकता। इस लिये कामनाओंके मूल कारण अज्ञानको दूर कर देय तथा स्त्री आदि कामके अनेकों विषयोंकी ओरको उपेक्षा रख कर उनका स्मरण ही न करे अर्थात् विषयोंकी ओरको तुच्छदृष्टि रख कर उनको सर्वथा भूलजानेसे ही कामके मूलका नाश होता है। वशिष्ठजीने कहा है-'भ्रमस्य जाग-तस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत्। अपुनः स्मरणं मन्ये साधो विस्मरणं वरम्॥ तथापि तव न स्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते॥' अर्थात्-जैसे

स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः । एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञाने तिष्ठन्न बिभेतीह मृत्योः । विनश्यते विषये तस्य मृत्युर्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यानेवाहुरिज्यया साधुलोकान्

आकाशमें लाल, पीले, नीले आदि रङ्गका मिथ्या भ्रम होता है, परन्तु आकाश वैसा है ही नहीं, वैसे ही इस जगत्के विषयमें भी भ्रम उत्पन्न होगया है, वास्तवमें जगत् नामका कोई पदार्थ है ही नहीं, इस लिये हे साधो ! उसको तू फिर याद न करना, इसको ही मैं उत्तम प्रकारका भूल जाना मानता हूँ, तुम भी जब तक ऐसे ही सब वस्तुओं को भूल नहीं जाओगे तब तक चैन नहीं मिलेगा। तात्पर्य यह है, कि-सब कामनाओं को भुला देनेसे अज्ञान नहीं होता, क्योंकि-विषयोंका विचार करनेसे ही अज्ञान उत्पन्न होता है। हे क्षत्रिय ! तेरे शरीरमें 'मैं' ऐसी ही प्रतीतिका विषयरूप जो अन्तरात्मा है वह शरीरकी अपेक्षा कुछ एक आन्तर, चित् तथा अचित्की ग्रन्थिरूप जीव है; उस जीवको जब मोह होता है अर्थात् जो आत्मा नहीं है ऐसे देह आदि मिथ्या पदार्थों पर जब उसको 'ये आत्मा हैं, ऐसा आत्मबुद्धिरूप उलटा ज्ञान होता है तब क्रोध, लोभ और मृत्युके बन्धनमें फँसजाता है और शुकनलिकाकी समान, वास्तवमें बंधनहीन होने पर भी स्वयं ही अपनेको बँधा हुआ मानने लगता है। तोता पींजरेके मध्यभागमें धरी हुई एक तुलीके ऊपर बैठ कर वहाँ मानो बँधा हुआ है ऐसा हो जाता है और उड़ नहीं सकता, परन्तु वह तुलीके ऊपर ही बैठा होता है। ऐसे ही जीवात्मा भी वास्तवमें छूटा हुआ है और देह आदि कि-जिनमें वह निवास करता है उनसे अलग है तो भी उनको आत्मस्वरूप मानता है; यहाँ तक कि-मैं शरीरादिरूप हूँ, ऐसी मिथ्या प्रतीति इसको होजाती है, इससे ही यह काम आदिके वशमें होजाता है। परन्तु जिस मनुष्यकी निष्ठा मोहके विरोधी ज्ञानके ऊपर होती है वह यमसे भी नहीं डरता है, क्योंकि-जीवको ज्यों ही ज्ञान होता है, कि-तुरन्त जैसे यमकी दृष्टिमें पड़ते ही मनुष्यका शरीर नष्ट होजाता है तैसे ही मृत्यु कहिये बन्धन नष्ट होजाता है। सबका इकट्ठा सार यह है, कि-अज्ञानसे हुआ बन्धन ज्ञानसे नष्ट होजाता है, परन्तु कर्मसे नष्ट नहीं होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सनत्कुमार ! उपासनायुक्त अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा द्विजोंको जो उत्तम महापुण्यसे प्राप्त होने वाले सनातन लोकोंके मिलनेकी बातें वेदोंमें कही

द्विजातीनां पुण्यतमान् सनातनान् । तेषां परार्थं कथयन्तीह वेदा एत-द्विद्वान्नोपैति कथं नु कम ॥ १७ ॥ सनत्सुजात उवाच । एवं ह्यविद्वानु-पयाति तत्र तत्रार्थजातञ्च वदन्ति वेदाः । अनीह आयाति परं परात्मा

हैं उनके विषयमें वेद कहते हैं, कि-वे सब लोक मोक्षकी प्राप्ति कराने वाले हैं, इस प्रकार कर्मसे मुक्ति मिलती है, इस बातको जानते हुए भी मनुष्य कर्मका आश्रय क्यों नहीं लेते हैं ? अर्थात् कर्मसे ही मुक्ति मिल जाती है तो ज्ञानकी क्या आवश्यकता है ! ॥ ॐ ॥ (शा० का तात्पर्य)-भगवान् सनत्कुमारने 'धर्मोदये' इत्यादि श्लोकमें कहा, कि-कर्म ही बन्धनका कारण है और 'ज्ञाने तिष्ठन् इस श्लोकमें कहा, कि-ज्ञान ही मोक्षका प्रधान उपाय है, यह सुन कर धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे भगवन् वेदवादी कहते हैं; कि-द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णके पुरुष, इज्या कहिये उपासनायुक्त यज्ञोंके द्वारा जिन पवित्र सनातन लोकोंको पाते हैं, वेदमें कहा है, कि-वे सब लोक उनके लिये परमपुरुषार्थरूप मोक्षके उपाय हैं, इस बातको सब वेदवेत्ता जानते हैं, परन्तु वे फिर भी कर्मानुष्ठानसे उदासीन रहते हैं, इसका क्या कारण है [तात्पर्य यह है, कि-ज्ञान बड़ा दुर्लभ है, लोग निष्काम-भावसे याग यज्ञ आदि करेंगे तो ब्रह्मलोक आदिको पाते हुए क्रमसे मुक्त होजायँगे, वेदका यह उपदेश क्या अज्ञानियोंके लिये है, ज्ञानियों के लिये नहीं है ? इस बातका जो कुछ तत्त्व हो वह मुझे सुनाइये नीलकण्ठने इसकी कुछ विशेष व्याख्या नहीं की है॥१७॥सनत्सुजातने कहा, कि-तुम जैसा कहते हो, इस प्रकार अविद्वान् कहिये कर्ममार्ग का अवलम्बन करने वाला जीव क्रम २ से मुक्तिपद पर पहुँचता है तथा चारों वेद भी सामान्यरीतिसे भोग और मोक्षके प्रयोजनको कहते हैं, परात्मा कहिये आत्मासे भिन्नरूप देहको आत्मरूप मानने वाला जीवात्मा यदि कामनासे रहित होजाता है तो वह निर्गुण-आत्म-भावको पाजाता है, अर्थात् कामनारहित जीवात्मा अनेकों उपाधियों के आकारको त्याग कर निरवयव ब्रह्मरूप होजाता है और यदि निष्काम नहीं होता तो सुषुम्ना नाड़ीरूप मार्गसे स्वर्ग आदिमें पहुँ-चाने वाले सब मार्गोंको क्रम २ से लाँघता हुआ अन्तमें ब्रह्मलोकके द्वारा परब्रह्मको प्राप्त होजाता है ॥ ॐ॥ (शा० का तात्पर्य)-जो ब्रह्मलोक आदिमें प्राप्त होने वाले सुखको ही परमपुरुषार्थ मानते हैं वे सब विषयविषयान्ध अज्ञानी पुरुष ब्रह्मलोककी प्राप्ति कराने वाले कर्मोंमें ही

प्रयाति मार्गेण निहत्य मार्गान् ॥ १८ ॥ धूम्रगन्धु उवाच । कोऽसौ

लगे रहते हैं। परन्तु ज्ञानीपुरुष उसमें अविद्या आदि दोषोंकी छाया देख कर विरत रहते हैं। श्रुति भी कहती है-"अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति अविद्वांसोऽबुधा-जनाः॥" अर्थात् वे सब लोक अन्धतमसात्मक अज्ञानसे ढके हुए हैं, इसलिये उनमें वास्तविक आनन्द नहीं है, अज्ञानी, अविवेकी पुरुष ही इस देहको त्यागनेके अनन्तर उन सब लोकोंमें जाते हैं। वेदने ऐसे पुरुषोंके विषयमें ऐसी भोगमोक्षकी बात ही कही है, क्योंकि-वेदने अविद्वानोंके लिये ही ऐसी २ बातें कही हैं, विद्वानोंके लिये नहीं कही हैं इसलिये ही विद्वान् पुरुष ब्रह्मलोक आदिमें मिलनेवाले अनित्य सुखमें और उसको पानेके उपायरूप कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं होते हैं। वे केवल परमात्माको आत्मस्वरूप जानकर परमात्मसम्पन्न होजाते हैं और ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश करते हैं। अथवा ऐसी व्याख्या भी होसकती है, कि-सगुण ब्रह्मज्ञ पुरुष उन विशुद्ध कर्मोंको करके तिन लोकोंमें पहुँचते हैं और तहाँ शुद्ध ब्रह्मके उपासक होते हैं तथा वेद ब्रह्मलोकमें पहुँचे हुए उन सब उपासकोंके परमपुरुषार्थरूप प्रयोजन का उपदेश करते हैं अर्थात् वेदोंने यही बात कही है, कि-ब्रह्मलोकमें जाकर जिनको ज्ञानकी प्राप्ति होगयी है वे कर्मियोंकी समान इस लोकमें नहीं आवेंगे, किन्तु तहाँ ही रहकर ब्रह्मज्ञानका उपार्जन करते हुए संसारगतिका नाश करके ब्रह्मरूप होजायँगे ॥ ७ ॥ (श्लो० का तात्पर्य)-जो क्रम कहा है उस क्रमसे कर्ममार्गावलम्बी पुरुष मुक्ति पाते हैं और वेदोंमें भी भोग और मोक्षके प्रयोजन सामान्य रीतिसे बताये हैं, अर्थात् जुदे २ भोगोंके लिये और मोक्षके लिये कर्मोंका उप-देश दिया है। अज्ञानसे देहको आत्मा मान बैठा हुआ जीवात्मा यदि कामनाका त्याग देता है तो वह उपाधियोंसे छूटकर निष्कल ब्रह्म-रूप बनजाता है, नहीं तो "शतं चैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति,, अर्थात्-हृदयमें एक सौ एक नाडियें हैं, उनमें सुषुम्ना नाडीसे जीव ऊपर चढ़ कर मोक्षको पाता है। बृहदारण्यकमें कहा है-"तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते एवमेवेदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वेति नु कामय-मानो योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव

निर्युक्तं तमजं पुराणं स चेदिदं सर्वमनुक्रमेण। किं वास्य कार्यमथवा

समवनीयन्त इति।,, अर्थात्-जैसे सुनार सोनेका थोड़ा २ भाग लेकर दूसरी पहली रचनाकी अपेक्षा नयी ही बड़ी सुन्दर गढाई गढता है, ऐसे ही यह आत्मा भी इस पाञ्चभौतिक शरीरको त्यागकर उसको अपने वियोगसे अचेतन बनाकर दूसरा नया ही सुन्दर रूपवाला शरीररचता है। पितृलोकके उपभोगके योग्य, गंधर्वलोकके उपभोगके योग्य देवलोकके उपभोगके योग्य प्रजापतिलोकके उपभोगके योग्य, ब्रह्मलोकके उपभोगके योग्य अथवा किन्हीं अन्य भूतोंके उपभोगके योग्य कर्मके अनुसार शास्त्रके और श्रवणसे पायेहुए ज्ञानके अनुसार दूसरा शरीर बनाता है, इन सब शरीरोंको कामनाके अनुसार बनाता है, परंतु जो जीवात्मा कामनारहित होता है वह आत्माके सिवाय अन्य सकल कामनाओंसे रहित होता है, इसकारण पूर्णकाम मानाजाता है, उस पूर्णकाम आत्माकी वाणी आदि इंद्रियें शरीरमेंसे बाहर निकल कर नहीं जाती हैं, किंतु आत्मामें ही लीन होजाती हैं॥१८॥धृतराष्ट्र ने पूछा, कि-यदि परमात्मा ही अनुप्रवेशके द्वारा सकल विश्वरूप होता है तो जन्म आदिसे रहित पुराणपुरुपको जगत् रूप होनेकी प्रेरणा कौन करता है? यदि कहो कि-वह कार्य करनेसे जगत् रूप होता है तो उसमें वह बाधा आवेगी कि-निष्कामको कार्य करनेका क्या प्रयोजन है? तथा उसको सुखकी इच्छा भी क्यों होती है? हे विद्वन्! इन सब बातोंको आप मुझसे यथावत् कहिये ॥ ॐ॥ (शा० का तात्पर्य)-ऋषि सनत्सुजातने पहिले 'प्रमादं वै मृत्युः, इत्यादि श्लोकमें अज्ञानका लक्षण वा अज्ञान नामक प्रमादको मृत्यु और स्वरूपस्थितिरूप अप्रमादको अमरत्व कहा है। 'आस्यादेव निःसरते' इत्यादि श्लोकसे मृत्युका अन्यरूप कार्य वर्णन करके फिर कहा, कि—वह मृत्यु ही सकल अनर्थोंका मूल कारण है। तदनन्तर कहा, कि-आत्मज्ञानसे मृत्यु की मृत्यु होती है अर्थात् अज्ञानरूप मृत्युका नाश होता है। यहाँ तक सुन कर धृतराष्ट्रने पूछा, कि-जब वेदने कहा है कि ब्रह्मलोकमें जाने पर मोक्ष होती है तो ब्रह्मलोकको परम पुरुषार्थ क्यों नहीं कहा इसके उत्तरमें सनत्कुमारने 'एवं ह्यविद्वान्' इस श्लोक में ब्रह्मलोकको भी अविद्याके अन्तर्गत और अपुरुषार्थ कह दिया। तदनन्तर 'परं परात्मा प्रयाति' इस श्लोकमें कहा, कि ज्ञानके द्वारा परमात्मा ही परमात्मा होता है। इस सबका अभिप्राय यह है, कि मोक्ष

सुखं च तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्वं यथावत् ॥२९॥ सनत्सुजात उवाच । दोषो महानत्र विभेदयोगे ह्यनादियोगेन भवन्ति नित्याः । तथास्य

ज्ञानमार्गसे मिलता है। परमात्मा ही परमात्मा होता है, इससे धृतराष्ट्रने समझा, कि-परमात्मा ही जीवभावको प्राप्त होता है और ज्ञान होने पर अज्ञानमूलक जीवभाव दूर होजाता है, जीव कोई भिन्न पदार्थ नहीं है, परमात्मा ही प्रमादवश जीव बना हुआ है, इसप्रकार जीवात्मा एक अर्थात्-अभिन्न है। ऋषि सनत्कुमारके इन उपदेशसे धृतराष्ट्र सन्तुष्ट नहीं हुए और फिर बूझने लगे, कि-तो उस जन्मादि रहित सच्चिदानन्द अद्वितीय परमपुरुषको संसारमें कौन भेजता है यदि कहो, कि-वह अपने आपही आकाश आदि भूत और इस भौतिक प्रपञ्चको रचकर उसमें अनुप्रविष्ट और संसारी होगया है तो यह प्रश्न है, कि-उसका इस प्रकार योनिजन्म ग्रहण करनेका क्या प्रयोजन है? जो अपनी महिमामें प्रतिष्ठित है, मौनभावसे स्थित रहना ही जिसका स्वभाव है उसने संसारमें घुस कर सैंकड़ों और सहस्रों अनर्थोंको अपने ऊपर क्यों लिया? हे विद्वन्! इस सबका जो ठीक ठीक तत्त्व हो वह आप मुझसे स्पष्ट कहिये। श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य ऋषिने भी परमात्मासे सृष्टि और उसके जीवरूप होनेका। उपदेश देकर पीछेसे वावदूकोंके पूर्वपक्षको उठाया है-"यद्येवं स कथं ब्रह्मन् पापयोनिषु जायते। ईश्वरश्च कथं भावैरनिष्टैः सम्प्रयुज्यते।" अर्थात् हे ब्रह्मन्! परमेश्वर किस कारणसे पापयोनियोंमें जन्म लेता है और अनिष्ट दुःखोंको भोगता है? ॥क्षे॥ (नील०का तात्पर्य) हे विद्वन्! सनत्सुजात! आप कहते हो, कि-जीवात्मा परमात्मरूप होजाता है, परन्तु एक व्यक्ति दूसरा रूप कभी नहीं होसकता, इसलिये तुम पहिले कह गये हो, कि-परमात्मा अज्ञानवश जीवात्मारूप होजाता है, यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि-परमात्मा ब्रह्मभूत है, इसका प्रेरक कोई दूसरा नहीं होसकता, ऐसा होते हुए भी यदि तुम इस बातको नहीं मानते हो तो बताओ कि-जन्मादिसे रहित पुराण कहिये सदा नवीन ही रहने वाले अर्थात् परिणामसे रहित परमात्माको प्रेरणा कौन करता है? कि-जिसकी प्रेरणासे यह दुःख आदि भोगने वाला जीवात्मा बनकर जन्म लेता है, यदि तुम उसका दूसरा प्रेरक मानोगे तो फिर उसका भी कोई तीसरा प्रेरक मानना पड़ेगा, तीसरेका चौथा और चौथेका पाँचवाँ प्रेरक मानना पड़ेगा, इस दशामें अन-

वस्था दोष आजायगा । यदि कहो कि-परमात्मा किसी दूसरे प्रेरकके विना स्वयं ही इस सकल स्थावर जङ्गमरूपसे क्रमशः उत्पन्न होजाता है । श्रुति कहती है, कि-"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" परमात्मा इस जगत्को रच कर इसमें प्रविष्ट होजाता है । परन्तु इसमें भी दोष आता है । क्योंकि—परमात्मा कामनारहित होनेसे पूर्ण काम है, उसको कोई काम करना ही नहीं है । लोकमें कहावत है, कि-"प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते" मूर्ख भी प्रयोजनके बिना किसी काममें प्रवृत्त नहीं होता है, फिर ज्ञानस्वरूप परमात्माकी विश्वरूप होनेमें कैसे प्रवृत्ति होसकती है ? कदाचित् तुम कहोगे, कि-"लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्" लोकमें जैसे आनन्दके लिये आमोद प्रमोद किया जाता है तैसेही ईश्वर भी केवल आमोद प्रमोद के लिये ही जगत्को रचता है इस न्यायके अनुसार लोकमें चौसर आदिका खेल विना ही प्रयोजनके केवल आमोदके लिये होता हुआ देखनेमें आता है, ऐसे ही परमात्मा भी जगत्की रचना करता है और इसमें प्रवेश करता है, यह परमात्माका आमोदमात्र है । इस पर कोई शङ्का करे, कि-चौसर आदिके खेल भी सुखके ही लिये किये जाते हैं, परन्तु परमात्माको तो किसी सुखके पानेकी इच्छा होती ही नहीं है, तथा जो आप ही अपने आपेको संकटमें डालता है उसको सुख नहीं मिलता है, तथा परमात्माकी सृष्टि रचनेमें स्वयं प्रवृत्ति होना भी संभव नहीं है एवं परमात्माके साथ जीवका अभेद होना भी सम्भव नहीं है, किन्तु जीवात्मा और परमात्मा ऐसे दो होनेका भेद जब अज्ञानसे पड़ता है तब परमात्मा राजाकी समान जीवके भाग्यके अनुसार जीवके भोगके निमित्त सृष्टि आदिको उत्पन्न करनेके लिये और अपनी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये प्रवृत्ति करता है इस लिये तुमने जो इन दोनोंमें अभेद कहा है, वह नहीं होसकता ॥१९॥ सनत्सुजातने कहा, कि-तुम जीवात्मा परमात्माका भेद मान कर उनकी एकता मनोगे तो बड़ा दोष आवेगा, परमात्माका स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों प्रकारके देहोंके साथ सम्बन्ध होता है, तब परमात्मा से जीवात्मा उत्पन्न होते हैं, और इसप्रकार जीवात्मा और परमात्मा में औपाधिक भेद होनेके कारण परमात्माकी अधिकताका जरा भी नाश नहीं होता है तथा देहधारी अनादिकालके अज्ञानके कारणसे देहादिके साथ जुटजाते हैं ॥ ❀ ॥ (शा०का तात्पर्य) धृतराष्ट्रके प्रश्न

करने पर सनत्सुजातने कहा, कि-जो ऐसा पूर्वपक्ष करते हैं उनका अभिप्राय यह है, कि-नियोज्य नियोजक एक अभिन्न नहीं होसकते। प्रत्यक्ष भी देखते हैं, कि-एक पुरुष दूसरे पुरुषको प्रेरणा करता है, इस लिये भेदशून्य अक्षर परब्रह्ममें अद्वयभाव होनेके कारण ऊपर कहे हुए दोनों भावोंका होना असमञ्जस वा असम्भव है। इस कारण ही मानाजाता है, कि-परमात्मा अन्य है और जीवात्मा अन्य है। परमात्मा नियन्ता है और जीव उसका नियम्य है। पूर्वपक्ष उठानेवाले के इस कथनमें बडाभारी दोप आता है और दोप होनेके कारण यह भेदपक्ष ठहर नहीं सकता, किंतु विशृंखल होजाता है। वह दोप यह आता है, कि-भेदपक्ष वेदके बाहर है। वेदका सिद्धांत अद्वैतमें है, द्वैत मानना मानों वेदका अपमान करना है, ब्रह्म एक और सत्य है, परन्तु वह नाना रूपमें परिणामको प्राप्त होरहा है, ऐसा भेद मानने पर ब्रह्ममें अनित्यता आदि दोप आते हैं और भेदभावका पक्ष, ब्रह्म स्थूल अह्रस्व है, इत्यादि वेदवाक्यके विरुद्ध पडता है। यदि यह अभिप्राय हो कि—ब्रह्म नाना नहीं है, किन्तु एक है, एकरूप और एकरस है, परन्तु वह जीव नहीं है, जीव ब्रह्मसे पृथक् है,ऐसा माननेमें भी बडा दोप है और वह दोपइस सिद्धांतको ठहरने नहीं देता। वह दोप यह है कि-जीव विनाश कहिये अधोगतिको प्राप्त होता है। श्रुति कहती है, कि—'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति' अर्थात् जो पुरुष अपने को ब्रह्मसे भिन्न देखता है वह मृत्युसे नाशको प्राप्त होता है। और भी कहा है 'यदाह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति।' जो पुरुष भेद देखता है उसको मृत्युका भय दूर नहीं होता है तथा जीव और परमात्माका भेद तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके विरुद्ध है। इसप्रकार भेदपक्ष महावाक्यरूप वेदवाक्योंके विरुद्ध होनेसे अवैदिक है।जो अवैदिक सिद्धांत है उसको वेदवादी नहीं मानसकते। इस पर कोई कहे कि-तो तुम फिर इस विद्यमान जीव ईश्वरके भेदकी व्यवस्था कैसे करोगे? और साथमें ही उनको नित्य भी कैसे मानोगे? तो इसपर सनत्सुजातने कहा, कि-अनादियोगेन भवन्ति नित्याः। अनादि शब्दका अर्थ है-माया। भगवान्‌ने गीतामें प्रकृतिको अर्थात् ईश्वरकी शक्ति मायाको अनादि कहा है,यथा 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभा अपि।' हे अर्जुन! प्रकृति और पुरुष दोनोंको अनादि जान।अन्यत्र भी लिखा है "अनादि-

मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्ध्यते । अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्ध्यते तदा।" अनादिमायासे निद्रित जीव जिस दिन जागेगा अर्थात् इस की अविद्यारूपी निद्रा दूर होगी, उस दिन इसको जन्मादिरहित अद्वैत आत्माका ज्ञान प्रकट होगा । यह अनादि अविद्या ज्ञानसे नष्ट होती है और अज्ञान नामसे कही जाती है । श्रुतिने इस मायाको ही प्राज्ञका ईक्षण कहा है [प्राज्ञ कहिये ईश्वर उसका ईक्षण कहिये सृष्टि रचनेकी इच्छा वा संकल्प] श्रुतिने और भी कहा है कि-"अनीशया शोचति मुह्यमानः" मैं अनीश्वर हूँ, ईश्वर नहीं हूँ अत्यन्त हीन हूँ ऐसे मिथ्याज्ञानसे मोहित होकर जीव शोक करता है । मायाके अस्तित्वमें और भी बहुतसे प्रमाण हैं-यथा-'देहात्मशक्ति स्वगुणै-र्निगूढां' अर्थात् परमात्माकी यह शक्ति निगूढ है 'न तं विदाथ य इमा जजान यद्ु युष्माकमन्तरं बभूव' जिसने इस विश्वको उत्पन्न किया है उसको तुमने नहीं जाना और जो तुम्हारे घटमें विराजमान हैं । 'नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति' । प्राण और इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें लगे हुए पुरुष मायारूपी कुहरेसे ढके हुए हैं । नीहार, तम और अज्ञान इन तीनों शब्दोंका एक ही अर्थ है। 'मायान्तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्' मायाको प्रकृति और उससे उपहित चैतन्यको महेश्वर जानो । 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' परमेश्वर मायाके द्वारा अनेकरूप होता है । 'अजामेकां लोहि-तशुक्लकृष्णाम्' जन्मरहित त्रिगुणमयी प्रकृति एक है । 'अनृतेन हि प्रत्यूढः' आत्मा मिथ्याज्ञानसे आवृत होरहा है । 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' ज्ञान अज्ञानसे ढक रहा है, इसीसे जीव मोहमें पड़े हैं अर्थात् वे अपने ब्रह्मत्वको समझनेमें असमर्थ हैं ऐसे २ श्रुति और स्मृतियोंके प्रमाण हैं ! "यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म" जो साक्षात् अपरोक्ष अर्थात् निरवच्छिन्न चैतन्य है वही ब्रह्म है । "अयमात्मा सर्वान्तरः" यह आत्मा सर्वान्तर है अर्थात्-सबोंके घट २ में विरा-जमान है । यह दोनों श्रुतियें भी उस ही अर्थको सिद्ध करती हैं। इस लिये जीव आदि सब ही एक अद्वितीय आत्माके मायिक आविर्भाव के सिवाय और कुछ नहीं हैं और यह सब मायाके योगसे मायाकी समान मिथ्या हैं। अपनी मायाके द्वारा एक अद्वितीय परमात्माका बहुत होना न असम्भव है और न अनुपपन्न है, श्रुतिने भी कहा है-"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" परमात्मा मायाके द्वारा बहुतरूप होता है

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः,, एक ही देव सब भूतोंमें गुप्तरूपसे स्थित है "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" एक होने पर भी विप्र उसको बहुत प्रकारका कहते हैं। एकः सन् बहुधा विचचार' वह एक है परन्तु बहुत प्रकारसे विचरता है। 'त्वमेकोऽसि' तू एक ही है अर्थात तेरे सिवाय और कोई नहीं है 'अन्तरजायमानो बहुधा विजायते' वह भीतर अज है परन्तु बाहर अनेकों आकारोंसे जन्मवान् है। मोक्षधर्ममें भी लिखा है-'एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥' एक ही परमात्मा प्रत्येक भूतमें स्थित है, एक होने पर भी वह जलमें कई चन्द्रमा दीखनेकी समान अनेकों रूपोंवाला दीखता है। याज्ञवल्क्यने भी कहा है-'आकाशमेकम्' वह आकाशकी समान एक है। कावषेय गीतामें लिखा है—न जायते म्रियते वा विपश्चित्। आत्मा न जन्मता है न मरता है। 'एकश्च सूर्यः' वह सूर्यकी समान एक ही है। भगवान् कृष्णने भी कहा है एकः सर्वगतो ह्यात्मा' आत्मा एक सर्वगत, अचल और सनातन है। इस प्रकार एककी मायिकरूपताका वर्णन सर्वत्र देखनेमें आता है। इस विषयमें सिद्धान्त यह है, कि-वह कारणरूपसे एक है परन्तु कार्यरूपसे अनेक है। कारणरूपसे परमेश्वर और कार्यरूपसे जीव है। वह मायाके द्वारा अपने रचे हुए जीवोंकी इच्छा चेष्टा आदिके द्वारा उनको प्रेरणा करता है अर्थात् उनको फलाफल भोगनेमें लगाता है, परन्तु परमार्थमें अद्वैतभाव होनेके कारण कोई किसीको कहीं भी नियुक्त नहीं करता है और न कोई किसीको संसारी करता है। (जब एकके सिवाय दो हैं ही नहीं तो कोई किसीका करेगा ही क्या?) भगवान् वासुदेवने भी कहा है-अहं प्रशास्ता सर्वस्य एक मैं ही सब का शासन करने वाला हूँ। 'न चाप्ययं संसरति न च संसारयन् प्रभुः' प्रभु परमात्मा संसारी नहीं है और किसीको संसारी करता भी नहीं है इस प्रकार मायिक भेदको मान लेने पर भी कार्यरूप और कारणरूपसे स्थित परमात्माका आधिपत्य जरा भी लुप्त नहीं होता है। संसार मायिक है और असंसार अर्थात् केवल कूटस्थ निर्विकार है। अतः अनादि अविद्याके सम्पर्कसे ही बहुतसे जीव होते हैं, यह रहस्य असमञ्जस नहीं है। अथवा इसप्रकार भी व्याख्या होसकती है, कि-पुरुषकी अर्थात पूर्णस्वभाव परमात्माकी अनादिसिद्ध मायाके द्वारा ही बहुतसे जीव होते हैं। यह बात भगवान्ने अनुगीतामें स्पष्ट कहदी

नाधिक्यमपैति किञ्चिदनादियोगेन भवन्ति पुंसः ॥ २० ॥ य एतद्वा भगवान् स नित्यो विकारयोगेन करोति विश्वम् । तथा च तच्छक्ति-

है-इदं जगदनेकन्तु इति वेदानुशासनम् । अर्थात्-वेदका उपदेश है कि यह जगत् अनेक है । आत्मातिरिक्त सब जगत्का मिथ्यात्व भगवान् पाराशरने भी कहा है-ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः । अर्थात् जो ज्ञानका स्वरूप है वह अत्यन्त निर्मल है । यही बात यहाँ सनत्कुमारने कही है । कावषेय गीतामें लिखा है, कि-असंगेन वेदान् पठध्वम् । अर्थात् तुम असंग कहिये कूटस्थ, निर्विकार चैतन्य होनेके लिये कामनाशून्य होकर वेदोंको पढ़ो ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य)-यदि जीवात्मा और परमात्मामें पहिले तो बड़ाभारी भेद रक्खा जाय और पीछेसे उनकी एकता होजाती है, ऐसा मानाजाय तो बड़ाभारी दोष आता है । क्योंकि-एक वस्तु दूसरी वस्तु बनजाय, यह बात असम्भव है, इस लिये जीवात्मा और परमात्माका वास्तवमें भेद नहीं है, जब यह बात है तो उनमें भेद होना ही कैसे ? इसका उत्तर यह है, कि-अनादिकालके भोग्यवर्ग अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके साथ सम्बन्ध होनेसे नित्य परमात्मा स्वयं ही घटाकाश और जलचंद्र की समान अनेकों जीवरूपसे उत्पन्न होता है । जैसे आकाश एक ही है, परन्तु घट मठ आदि उपाधियोंमें अनेकसा भासता है तथा चंद्रमा भी एकही है तो भी जुदे२ पात्रोंमें भरेहुए जलरूपी उपाधियोंसे अनेक रूप भासता है तैसे ही परमात्मा भी स्थूल सूक्ष्म शरीरकी उपाधि से जुदा २ भासता है इसप्रकार उपाधिके कारणसे जीवात्मा परमात्मा में जो भेद होता है उससे परमात्माके अधिपनेमें कोई बाधा नहीं आती है । जलके हिलनेसे जलमेंका चन्द्रमा भी हिलने लगता है, है, परन्तु उससे मुख्य चन्द्रमा नहीं हिलता है । ऐसे ही जब घटा-काश चलता होता है तो मुख्य आकाशमें चलनेका भाव नहीं होता है, ऐसे ही जीवात्माको दुःख आदि होनेसे परमात्माको दुःख आदि होनेका कुछ संभव नहीं है । श्रुति भी कहती है । एक एव तु भूतात्मा भूते भूते प्रकाशते । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ इसका अर्थ ऊपर लिखचुके हैं, और श्रुति भी कहती है, कि-यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपो भित्त्वा बहुधैकोऽनुगच्छन् । उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेनमजोऽयमात्मा ॥ अर्थात्-जैसे ज्योति-रूप सूर्य नारायण एक हैं तो भी जुदे २ पात्रोंमें प्रवेश करके अनेकरूप

भासते हैं तैसे ही अजन्मा परमात्मा शरीरोंकी उपाधियोंके कारणसे एक होने पर भी अनेक रूप भासता है। घटसंवृत्तमाकाशं नीयमाने यथा घटे। घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः। अर्थात्- जिस घड़ेमें आकाश भरा होता है घड़ेको जैसे लेजा सकते हैं परन्तु आकाशको नहीं लेजा सकते तैसा ही जीव है, उपाधिरूप शरीरको चाहे तहाँ लेजासकते हैं परन्तु उसमेंके जीवात्माको कोई भी कहीं नहीं लेजासकता अर्थात् वह आकाशकी समान सर्वत्र व्यापक है। इत्यादि श्रुतियें जीवात्मा और परमात्माके औपाधिक भेदको दिखाती हैं। पहिली श्रुतिका भाव यह है कि-ईश्वर एकही है और शुद्ध है, परन्तु जीवरूपसे अनेक है, जलाशय की तरंगोंमें दीखनेवाले चन्द्रमाकी समान अनेकों रूपोंमें भासता है, ऐसे ही जीव और ईश्वरके भेदको लेकर सब व्यवहार चलता है और दूसरे एक परमात्माकी कल्पना भी नहीं करनी पड़ती। परमात्माको स्थूल सूक्ष्म शरीरोंका संबन्ध क्यों होता है, कि-जिससे उसको जीवकोटिमें आना पड़ता है? इस प्रश्नका उत्तर देतेहुए सनत्सुजात कहते हैं कि-अनादिकालके अज्ञानके कारणसे आत्माको नाशवान् शरीरका संबन्ध होता है चारों ओर दीखता हुआ यह जो मिथ्या प्रपञ्च सत्यसा भासता है, यह अविकारी परमात्मा रूप है वह परमात्मा विकारके योगसे इस विश्वकी रचना करता है, वेदमें उस की ऐसी शक्तिको माना है और शक्ति तथा शक्तिमान्का अभेद सम्बन्ध होता है, ऐसी उसकी मायाके होनेमें भी वेद प्रमाण देते हैं ॥ ७ ॥ (शा०का तात्पर्य)-सनत्कुमारने यहाँ तक जो कुछ कहा है उससे सिद्ध होता है, कि-परमात्मा एक और एकरूप है परन्तु अनादिमायाके योगसे बहुत और बहुत रूप होरहा है अब कहते हैं, कि-ईश्वरकी जगत्कारणता सोपाधिक है अर्थात् मायाशक्तिके आवेश से उत्पन्न हुई है। जो ऐसे परमार्थ नित्य भगवान् कहिये षडैश्वर्य से युक्त हैं वह विकारके योगसे ईक्षणादिके द्वारा विश्वकी रचना करते हैं। विकार उनकी शक्तिरूपिणी माया है। अनादि अनन्त परमात्मा स्वरूपसे कुछ भी नहीं करता है, उसकी वह मायाशक्ति ही विश्वकी सृष्टि करती है। इस सबका तात्पर्य यह है, कि-अद्वितीय सच्चिदानन्द पदार्थ साक्षात्सम्बन्धसे किसीका कुछ भी कारण नहीं है। उसको जो विश्वका कारण कहाजाता है वह कारणता मायाके आवेश-

वश है। वेदमें उसमें ऐसी शक्ति होनेका प्रमाण मिलता है। लिखा है, कि-इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते। अर्थात्-परमात्मा मायाके द्वारा अनेकों आकारवाला होता है। भगवान् कृष्णने कहा है दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। अर्थात्-मेरी गुणमयी माया बड़ी ही दुरधिगम है॥ ॥ (नी० का तात्पर्य) पहिले श्लोकमें जीवात्मा और परमात्माका वास्तविक भेद नहीं है यह बात कही और भेदवाद का खण्डन किया। अब यह प्रपञ्च कहिये जगत् भी परमात्मासे जुदा है इस बातका वारण करते हैं अर्थात् यह जगत् परमात्मस्वरूप ही है, यह बात दिखाते हैं चारों ओर दीखनेवाला जगत् जो यह प्रतीत होता है यह नित्य कहिये विकाररहित है और भगवान् कहिये सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्मारूप ही है। मूलमें जो वा शब्द है वह मिथ्यापनेका द्योतक है श्रुतिमें और लोकमें मिथ्या वस्तुका अनुवाद करना होता है तो इव शब्द (समान अर्थवाले) का प्रयोग होता जैसे कि-यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति। अर्थात्-जहाँ द्वैत सा होता है तहाँ जीव दूसरेको अन्यरूपवाला देखता है अर्थात् भेद दृष्टि करता है। यहाँ इव शब्दका प्रयोग मिथ्यावस्तुका अनुवाद करनेमें किया है। तथा-अहमद्य स्वप्ने गजमिवाद्राक्षम्। अर्थात् मैंने आज स्वप्नमें हाथीसा देखा। यहाँ भी मिथ्या वस्तुका अनुवाद करनेमें इव शब्द किया है तथा मूल श्लोकमें भी इवको समान वा शब्दका प्रयोग किया है वह भी मिथ्याप्रपञ्चका अनुवाद ही है। यह सब प्रपञ्च परमात्मरूप ही हैं इस विषयमें श्रुति भी कहती है इदं सर्वं यदयमात्मा। अर्थात्-यह जो सब दीखरहा है सो परमात्मस्वरूप है ब्रह्मैवेदं विश्वम् अर्थात् यह सब विश्वब्रह्मरूप ही है। सर्वं खल्विदं ब्रह्म। अर्थात् यह सब वास्तवमें ब्रह्मरूप ही है। इत्यादि श्रुतियें भी जगत् का ब्रह्मसे अभिन्नपना ही कहती हैं। मूलमें जो विकार शब्द है उस का अर्थ माया है उस मायाके संबन्धसे परमात्मा जगत्को रचता है। परमात्मा इस जगत्को स्वप्न और इन्द्रजालकी समान उत्पन्न करता है, परन्तु जैसे सुवर्णमेंसे कड़े आदि बनजाते हैं तैसे वह जगत्को नहीं रचता है अर्थात् सुवर्ण जैसे कड़ा कुंडल आदि अनेकों रूपोंसे परिणामको प्राप्त होता है तैसे परमात्मा जगतरूपसे विकारको प्राप्त नहीं होता है जगत् और परमात्मा ये विकार और विकारीभाव नहीं हैं, क्योंकि-ऐसा माननेमें परब्रह्ममें भी अनित्यताका दोष आजायगा। यदि यहाँ कोई शंका करे कि-प्रधान कहिये माया नित्य हैं, परिणाम पानेवाली

विति स्म मन्यते तथार्थयोगे च भवन्ति वेदाः ॥२९॥ धृतराष्ट्र उवाच।
यस्मिन् धर्मानाचरन्तीह केचित्तथा धर्मान् केचिदिहाचरन्ति। धर्मः

और स्वतन्त्र है और यह जगत् तो जड़ है अतः इसका कारण भी जड़ ही होना चाहिये, क्योंकि-कार्य और कारणमें समानता होती है, इसकारण जगत्का कारण चेतन नहीं होसकता, क्योंकि-वह जड़रूप जगत्से विलक्षण है। ऐसी शंका उठाकर टीकाकार समाधान करता है, कि-परमात्माकी शक्ति परमात्मासे अभिन्न है, वह परमात्मामें स्वप्नकी समान जगत्की प्रतीति कराती है। श्रुति भी कहती है-देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्। अर्थात्-परमात्माकी शक्ति परमात्माके अपने गुणोंसे ढकी हुई है। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। अर्थात्-इसकी पराशक्ति, अनेकों स्वरूपोंसे सुननेमें आती है। यदि यहाँ कोई ऐसी शंका करे, कि-शक्ति भोग्य वस्तु होनेसे उसके ऊपर आत्माका स्वामित्व है और वह आत्माकी भोग्य वस्तु मानीजाती है, इसलिये शक्ति और शक्तिमान्में भेद होना चाहिये इसका निर्णय करताहुआ टीकाकार कहता है, कि-शक्ति शक्तिमान् से जुदी कहीं देखनेमें नहीं आती। जैसे जलाना और प्रकाश करना अग्निकी शक्ति है, वह अग्निसे जुदी नहीं है। वेद भी कहता है-बहु स्यां प्रजायेय। अर्थात्-मैं बहुतरूपसे होऊँ और प्रजाओंको रचूँ। सच्च त्यच्चाभवत्। अर्थात्-परमात्मा आकाश वायुरूपी नित्य और वहाँ वाणी तथा अनित्य पदार्थरूपसे हुआ था। मूलमें वा चकार यह सूचित करता है, कि-लोकव्यवहारमें भी ऐसे अर्थका प्रसङ्ग होय तो शक्ति और शक्तिमान्का अभेद ही मानाजाता है ॥ २९ ॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे महाराज! कितने ही जनमुक्तिके लिये धर्माचरण करते हैं अर्थात् अग्निहोत्र आदि उपासनाके कर्म करते हैं और कोई मोक्षप्राप्तिके लिये कर्म न करके संन्यासको ही ग्रहण करते हैं, जो धर्माचरण करते हैं, उनका वह धर्म क्या काम आदि दोषरूप पापों द्वारा नष्ट होजाता है? अथवा वह धर्म स्वयं काम आदि पापका नाश करता है ॥ * ॥ (शा०का तात्पर्य)-सनत्कुमारने प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि। इत्यादि श्लोकके द्वारा मृत्युका स्वरूप कहा, फिर उसका कार्य और उससे होनेवाले अनर्थभोगकी दशा कही तदनन्तर एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा। इत्यादि श्लोकके द्वारा मृत्युके नाशका

पापेन प्रतिहन्यते स्विदुताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम् ॥२२॥ सनत्सुजात उवाच । उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च ॥ २३ ॥

उपाय भी कहा । ज्ञानके द्वारा अभयप्राप्ति अर्थात् मोक्ष मिलती है, यह बात भी कही, इस सबको धृतराष्ट्रने सुन लिया । अब कर्मका स्वभाव क्या है ? इस बातको जाननेके लिये प्रश्न करते हैं, कि-इस संसारमें अनेकों लोग धर्मानुष्ठान करते हैं और साथ २ में अधर्म भी करते हैं, इस विषयमें मैं बूझता हूँ, कि-उनका धर्म अधर्मसे नष्ट हो जाता है अथवा उनका अधर्म धर्मसे नष्ट होता है अथवा धर्माधर्म समानबल होकर परस्परमें नष्ट होजाते हैं ॥ * ॥ (नीलकण्ठका का तात्पर्य)-ऊपर लिखे अनुसार जीवात्मा और परमात्माका अभेद, जगत्का मिथ्यापना और जन्म आदिमें निमित्तकारणरूप प्रकृतिके ब्रह्मसे अभिन्न होनेके कारण अद्वैतब्रह्म सिद्ध हुआ और उसके द्वारा-मृत्युर्नास्ति । मृत्यु नामकी कोई वस्तु है ही नहीं, यह बात दृढ़ हुई तथा जो मानते हैं कि-कर्मसे मृत्युका नाश होता है, उनके मतसे भी क्रममुक्तिकी प्रणालीके अनुसार कर्ममोक्षमें कारण हुए तिसमें जो कितने ही पुरुष मोक्षके लिये अग्निहोत्र आदि कर्म नहीं करते हैं किंतु मोक्षके लिये संन्यास ही धारण करते हैं, कितने ही पुरुष क्रममुक्ति के लिये उपासनाके साथ अग्निहोत्र आदि कर्म ही करते हैं और जो ऊपर कहे अनुसार बड़ेभारी धर्मका आचरण नहीं कर सकते हैं किंतु अग्निहोत्र आदि नित्यकर्मरूप स्वल्प धर्मका आचरण करते हैं उनका वह धर्म पाप कहिये राग आदि दोषोंसे नाशको प्राप्त होजाता है या उनका आचरण कियाहुआ धर्म ही पाप कहिये रागादि दोषोंका नाश करता है ? इनमें जो बात ठीक हो सो कहिये ॥२२॥ सनत्सुजात बोले, कि-मोक्षको पानेमें संन्यास और उपासनासहित अग्निहोत्र आदिकर्म ये दोनो ही उपयोगी होते हैं, तिसमें धर्मका फल स्वर्ग अथवा चित्त शुद्धि होता है और अधर्म कहिये नित्यकर्मके त्यागका फल नरक होता है । उस मोक्षस्थिति कहिये स्वस्वरूपकी प्राप्तिके लिये संन्यास और उपासना वाला कर्म ये दोनो अविचल हैं, तिसमें विद्वान् पुरुष नित्यरूप ज्ञानसे सिद्ध परब्रह्मको पाता है तथा देहाभिमानी पुरुष उपासना वाले कर्मके द्वारा पुण्यको प्राप्त करके देवपनेको पाता है और कभी नरदेहके अभिमानसे होनेवाले पापके फलको भी पाता है ॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य)-सनत्सुजातने कहा, कि-पुण्यकर्म और

तस्मिन् स्थितौ वाप्युभयं हि नित्यं ज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति सिद्धम्।

पापकर्म करने पर भी ज्ञानी पुरुष ज्ञानके द्वारा उस सबका नाश कर देता है । श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण सबोंमें प्रसिद्ध है कि-ज्ञानी ज्ञानरूप अग्निके द्वारा पुण्य और पाप दोनोंको भस्म कर देता है । श्रुति कहती है-भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ अर्थात्-ब्रह्मदर्शन होने पर हृदयकी गांठ खुलजाती है, सकल संशय छिन्न होजाते हैं और सब कर्म क्षीण होजाते हैं । यथा पुष्कर पलाशे आपो न श्लिष्यन्ति । अर्थात् जैसे जल कमलके पत्तेमें नहीं चिपटता है तैसे ही ज्ञानीकी आत्मामें पुण्य पाप नहीं चिपटते हैं। यथैषीकातूलमग्नौ । अर्थात्-जैसे सूखे तृणकी तुली और रुई अग्निमें भस्म होजाते हैं, तैसे ही ज्ञान पुण्य और पाप भस्म होजाते हैं । यथैधांसि समिद्धोऽग्निः । अर्थात्-जैसे बलता हुआ अग्नि सूखे काठोंको भस्म करडालता है तैसे ही ज्ञान पुण्य और पापको जला देता है। क्षणमात्मानुसंधानं पापं दहति कोटिशः । अन्यथा पापविध्वंसो न भवेत्कोटिपुण्यतः ॥ अर्थात्-क्षण भरका भी आत्मानुसन्धान करोडों पापोंको जलादेता है, यदि ज्ञान न होय तो करोडों पुण्य भी पापका नाश नहीं करसकते । इसलिये जो ज्ञानहीन होता है वह पुण्य पाप दोनोंको अवश्य ही भोगता है । तुम कहसकते हो, कि-अज्ञानी अपने किये पुण्य पापके फलको भोगते हैं, इसमें क्या प्रमाण है ? तो इसका उत्तर यह है, कि-यह बात श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण आदिकोंमें प्रसिद्ध है। श्रुति कहती है-इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो ह्यभिनन्दन्ति मूढाः । नाकस्य पृष्ठे सुकृतेन भूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति । अर्थात्-मूढ पुरुष इष्टापूर्त्त कहिये कूप खुदाना बाग लगाना आदि कर्मको श्रेष्ठ मानते हैं, जो परम श्रेय है उसको वे अच्छा नहीं कहते, वे किये हुए पुण्यके फलसे स्वर्गमें जाते हैं, परन्तु स्वर्गभोगके अनन्तर फिर इस लोकमें या इससे भी हीनलोकमें जन्म लेते हैं । अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः अर्थात्-जो कोई आत्मघाती कहिये आत्मज्ञानसे हीन पुरुष हैं वे सब इस शरीरको त्यागनेके अनन्तर निरानन्द कहिये अज्ञानलोक (पशु आदि योनि) में जाते हैं । त्रैविद्या माम् । अर्थात् तीनों वेदों के ज्ञाता (केवल कर्म करनेवाले) मुझे प्राप्त नहीं होते हैं ॥ [illegible] ॥ (नोट

तथान्यथा पुण्यमुपैति देही तथागतं पापमुपैति सिद्धम्॥२४॥ गत्वो-भयं कर्मणा युज्यतेऽस्थिरं शुभस्य पापस्य स चापि कर्मणा। धर्मेण पापं

का (तात्पर्य)-मोक्षमें स्थिति करनी हो अर्थात् स्वस्वरूपको पानेकी इच्छा होय तो संन्यास और उपासनावाला कर्म ये दोनों उसके साधन हैं, परन्तु इन दोनोंमें इतना अन्तर है, कि-ज्ञानीपुरुष संन्यास-पूर्वक ज्ञानके द्वारा अर्थात् ब्रह्मविद्याके द्वारा सिद्ध कहिये नित्य निवृत्तिवाले परब्रह्मको पाता है वह परब्रह्म अनृत कहिये असत्य जड़ दुःख आदि पदार्थोंसे प्रतिकूल होनेके कारण सत् कहिये तीनों कालमें रहनेवाला, चित्त (चेतन) और आनन्दरूप है। इसश्लोकमें 'प्रतिहन्ति' यह हन् धातुका प्रयोग है इसका अर्थ गति है। उपा-सनावाले कर्मसे श्रेष्ठ देवता आदिके रूपको पाता है और देहका अभिमानी होनेके कारण कभी मनुष्य शरीरके अभिमानसे पापका भी भोगी होता है, तात्पर्य यह है, कि-देवपनेको पाजाने पर भी किसी दिन धीरे २ मुक्ति पाजाता है अथवा जय विजय नाम वाले विष्णुके पार्षदोंकी समान पुण्य क्षीण होने पर देवशरीरसे भ्रष्ट होता है और फिर मर्त्यलोकमें जन्मता है इस लिये उपासना वाले कर्मोंके द्वारा क्रम २ से मुक्ति पानेकी अपेक्षा ज्ञान ही श्रेष्ठ है॥ २३ ॥ २४ ॥ कर्ममें आसक्ति रखने वाला पुरुष कर्मोंके द्वारा पुण्य और पापके स्वर्ग और नरक रूप नाशवान् फलको पाता है और उनसे छूटने पर भी कर्मोंको करनेमें ही फँस जाता है, परन्तु विद्वान् कर्मयोगी तो धार्मिक कर्मोंके द्वारा पापका नाश करता है और धर्मके अत्यन्त बलवान् होनेसे उसमें उसको सिद्धि भी मिलती है॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य) आत्मज्ञानहीन पुरुष क्या दोनों प्रकारका अनुभव करता है अथवा एकके द्वारा दूसरे का नाश होता है ? इसका उत्तर कहते है, कि-आत्मज्ञानहीन पुरुष कर्मके द्वारा परलोकमें जाकर पुण्य पाप दोनोंका फल कुछ २ समय तक भोगते है । कर्मफल कुछ समयको होता है यह बात श्रुति भी कहती है-तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते। अर्थात् जैसे खेती व्यापार आदि कर्मका फल अस्थायी है।तैसे ही वैदिक कर्मसे उत्पन्न होने वाला स्वर्ग आदि फल भी अस्थायी (चिरकाल न रहने वाला) है। बृहदारण्यक उपनिषद्में भी कहा है-यो वा एतदक्षरम्। अथ ये अन्य-थाऽतो विदुः। अर्थात्-जो इसको अक्षय रूप जानता है और जो उस को इससे विपरीत जानता है ये दोनों एक समान नहीं हैं अर्थात् जो

प्रणुदतीह विद्वान् धर्मो बलीयानिति तस्य सिद्धिः॥२५॥ धृतराष्ट्र उवाच।
यानिहाहुः स्वस्य धर्मस्य लोकान् द्विजातीनां पुण्यकृतां सनातनान्।

कर्मफलको अनित्य जानते हैं वे ही धर्मके द्वारा पापका नाश कर कर सकते हैं, दूसरे नहीं। छान्दोग्य उपनिषद्में भी कहा है-धर्मेण पापमपनुदति। अर्थात्-विद्वान् पुरुष धर्म कर्मके द्वारा पापका नाश करते हैं। जो इस लोकमें आगे कहे प्रकारके ज्ञानी हैं अर्थात् जो ईश्वरार्पण बुद्धिसे कर्मानुष्ठान करते हैं उनका ही धर्म पापसे बलवान होता है इस बातको सनत्कुमार आगे 'तदर्थमुक्तम्' इत्यादि श्लोकके द्वारा कहेंगे॥(नील० का तात्पर्य)-पुण्यकर्म करनेसे स्वर्गलोक मिलता है और पापकर्म करनेसे नरक मिलता है, ये दोनों लोक नाशवान् हैं, जीवात्मा अपने कर्मके अनुसार इन लोकोंमें जाता है, और पुण्य वा पापका नाश होने पर फिर इस लोकमें आकर जन्म लेता है और फिर पूर्वजन्मके संस्कारके अनुसार तथा अपनी जातिके अनुकूल कर्म करने में लग पड़ता है अर्थात कर्मनिष्ठ पुरुष कर्मोंसे छूटता नहीं। ऐसा होते हुए भी विद्वान कर्मयोगी कहिये कर्म करके भी उन कर्मोंके ऊपर अभिमान न रखने वाला विवेकी जीवात्मा पुण्य कर्म करके पापका नाश करता है, परन्तु मूर्ख कहिये अविवेकी जीवात्मा तो धर्मादि कर्मोंको निष्कामभावसे नहीं करता है, किन्तु वह कर्म करके उनसे स्वर्ग, धन धान्य, पशु आदिकी इच्छा करता है। इससे सिद्ध होता है, कि-अधर्म बलवान् नहीं है किन्तु धर्म ही बलवान् है अतः धर्माचरण करने वालेके समय पाकर राग द्वेष नष्ट होजाते हैं और फिर मोक्ष भी मिल जाता है इस प्रकार कर्मोंसे चित्तशुद्धि होती है और चित्तशुद्धिके द्वारा परम्परासे मुक्ति मिलती है॥२५॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि पुण्य कर्म करने वाले द्विजोंको अपने धर्मके फलरूप जो सनातन लोक मिलनेकी बात वेद कहते हैं, उनका क्रम कहो और उनसे अन्य लोकोंकी बात भी कहो, हे विद्वन्! मैं इस कर्मके विषयमें और अधिक नहीं जानना चाहता इस श्लोक पर शाङ्करभाष्य नहीं है॥ ॥ (नील० का तात्पर्य) काम्य धर्म और पापकर्म बन्धनमें डालते हैं और नित्यकर्म करनेसे उत्पन्न हुए पुण्यके द्वारा मोक्ष मिलता है, ऐसा मान कर धृतराष्ट्र प्रश्न करते हैं, कि-हे महाराज! "अपाम सोमममृता अभूम" अर्थात्-हम सोमरस पियें और अमर होजावें। "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति" अर्थात्-चातुर्मास्य नामक

तेषां क्रमात् कथय ततोऽपि चान्यान्नैतद्विद्वन् वेत्तुमिच्छामि कर्म २६
सनत्सुजात उवाच । येषां व्रतेऽथ विस्पर्द्धा बले बलवतामिव । ते

याग करने वालेको अक्षय पुण्य मिलता है । "यस्यैतेऽष्टाचत्वारिंशत्संस्काराः स ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां गच्छति,; अर्थात् जिस द्विजको अड़तालीस संस्कारोंसे संस्कृत किया जाता है वह परमात्माके सायुज्यको और उसके समान लोकोंको पाता है । इत्यादि श्रुतियें और स्मृतियें पुण्यकर्म करनेवाले द्विजोंको अपने धर्मके फलरूप नित्यलोक मिलते हैं, ऐसा कहती हैं, उन लोकोंके क्रम अर्थात् धर्मकी न्यूनाधिकताके अनुसार उच्च नीच भाव मुझसे कहो और उनके अतिरिक्त जिनसे बड़े और कोई भी लोक नहीं हैं ऐसे सकल आनन्दरूप लोक तथा मोक्षका सुख मुझसे कहो । मैं स्वधर्मकी अपेक्षा स्वाभाविक प्रवृत्तिके कारणरूप निषिद्ध और काम्य कर्मोंको जानना नहीं चाहता, ऐसा कह कर धृतराष्ट्रने अपना वैराग्य दिखाया, परन्तु इस प्रस्तुत विषयमें उससे कोई लाभ नहीं है ॥ २६ ॥ सनत्सुजातने उत्तर दिया, कि-बलवान् लोगोंको जैसे बलके विषयमें विशेष स्पर्धा होती है तैसे ही जिनकी व्रतमें विशेष स्पर्धा होती है वे ब्राह्मण मरणके अनन्तर इस लोकमेंसे ब्रह्मलोकमें विराजमान होते हैं ॥ ※ ॥(शा० का तात्पर्य) अब कहते हैं, कि-जिनकी धर्ममें स्पर्धा नहीं है धर्म उनके ही ज्ञानका कारण होता है । जैसे कोई राजा दूसरे राजाकी अपेक्षा अधिक बलवान् होनेके लिये स्पर्धा करता है अर्थात् बड़ी भारी इच्छा करता है तैसे ही जो; 'स्वर्गमें उर्वशी आदिकी भोग मिलता है' ऐसा शास्त्रसे सुन कर स्वर्गदायक ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके अनुष्ठानमें स्पर्धा (बड़ी प्रबल इच्छा) वाला होता है यह यज्ञ आदि करने वाला कामनावान् पुरुष धूमादि (१) मार्गसे लोकान्तरमें जाकर स्वर्गमें नक्षत्रादिरूपसे

---

(१) शास्त्रमें जीवकी तीन प्रकारकी गति कही है-देवयान पितृयान और तुरीयस्थान । जो ज्ञानी और कर्मी हैं वे सूर्यादिरूप सोपानपरम्परा (सीढी) को पाकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं जो केवल कर्मी हैं वे धूमादि सोपान परम्पराको पाकर चन्द्रादि लोकमें पहुँचकर जन्म लेते हैं और जो दोनोंसे भ्रष्ट हैं वे इस भूतल पर ही बार २ कीट पतङ्ग आदि होकर जन्मते और मरते हैं । पितृयान गतिका नाम धूममार्ग है ।

ब्राह्मण इतः प्रेत्य ब्रह्मलोकप्रकाशकाः ॥२७॥ येषां धर्मे च विस्पर्द्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम् । ते ब्राह्मणा इतो मुक्ताः स्वर्गं यान्ति त्रिविष्ट-

---

प्रकाशित होता है । श्रुतिमें भी कहा है—"अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तम्,, अर्थात्-जो ग्राम(संसार)में रहता है और इष्टापूर्त्त कहिये कुआ खुदाना बाग लगाना तथा दान आदि कर्म करता है वह धूमके साथ होता हुआ इंद्र आदिके लोकमें जाता है ॥ ७ ॥ (नी० का तात्पर्य)- बलवान् मल्ल आदिकोंमें, जैसे मैं अधिक बलवान् हूँ, मैं अधिक बल-वान हूँ, ऐसी होड़ होती है तैसे ही जिनकी यम नियम आदि व्रतोंमें विशेष स्पर्धा होती है, कि-मैं दूसरोंकी अपेक्षा यम नियम आदिका विशेष साधन करूँगा । जैसे कि—विश्वामित्रका तप करनेका विशेष आग्रह था, ऐसे ही योगी अर्थात् सगुण ब्रह्मके स्वरूपको जानने वाले ब्राह्मण देहसे अलग होकर ब्रह्मलोकमें पहुँचने पर तहाँ तेजस्वी होते हैं अर्थात् पूजनीय होते हैं और फिर ब्रह्मके साथ मुक्ति पाजाते हैं।स्मृति में भी कहा है—'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसञ्चरे। परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्' ॥ अर्थात् ब्रह्माकी परमायुके अन्तमें महाप्रलय होते समय जिनके मनकी वृत्ति ब्रह्मरूप होती है ऐसे सब महात्मा ब्रह्माके साथ परमपदमें प्रवेश करते हैं जो कर्मोंके द्वारा ब्रह्म लोकमें जाते हैं उनको मुक्ति नहीं मिलती है, परन्तु परब्रह्मको प्राप्त हुए जीव तो फिर जन्मते ही नहीं हैं ॥ २७ ॥ जिनकी वैदिक कर्म कांडरूप धर्ममें विशेष स्पर्धा होती है उनको तिस धर्मसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और वे ब्राह्मण इस लोकसे मुक्त होकर देवताओंके स्वर्गमें जाते हैं ॥ ॐ ॥ (शां० का तात्पर्य) जिनके स्वर्गमें भोगकी आसक्ति नहीं होती है, अनित्य स्वर्ग आदि फलके साधन ज्योतिष्टोम आदिमें जिनकी स्पर्धा नहीं होती है वे ही स्पर्धारहित अर्थात् फल की इच्छासे रहित होकर केवल ईश्वरार्पण करनेके लिये या ईश्वरकी आज्ञा मानकर कर्म करते हैं,वे कर्म ऐसे ब्राह्मण आदिके चित्तको शुद्ध करते हुए ज्ञानका कारण होते हैं । श्रुति भी कहती है—"तमेतं वेदा-नुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन॥ ब्राह्मण यज्ञ, दान तपस्या और संन्यासके आश्रयसे परमात्माको जानते हैं । भगवान् सनत्कुमार भी आगे स्वयं ही कर्मको चित्तशुद्धिके द्वारा ज्ञानका कारण कहेंगे—पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात् स जायते ज्ञान-विदीपितात्मा' यज्ञादिके द्वारा शुद्धचित्त हुए जो साधक परमात्मा

पम् ॥ २८ ॥ तस्य सम्यक् समाचारमाहुर्वेदविदो जनाः । नैनं मन्येत

को आत्मस्वरूप जानते हैं वे इस लोकको त्यागकर त्रिविष्टपको पाते हैं । त्रितापमुक्त ब्रह्मका नाम त्रिविष्टप है अथवा तापत्रययुक्तजीवके त्राणकर्त्ता (रक्षक) का नाम त्रिविष्टप है ॥ ❋ ॥ (नी०का तात्पर्य) सब धर्मोंमें श्रेष्ठ योगधर्मका फल कह कर अब यज्ञादि वेदोक्त धर्म का फल कहते हैं, जिनको ऐसा आग्रह होता है, कि—मैं ही सबसे अधिक यज्ञयाग आदि करूंगा, यज्ञ आदि कर्मके द्वारा ही उनका अंतः करण शुद्ध होता है तब उनको ब्रह्मको जाननेकी इच्छा होती है, इस प्रकार, यज्ञादिपरम्परा ज्ञानका साधन है । यही बात—तमेतं वेदानुवचनेन इत्यादि श्रुतिमें कही है । (मूलमें जो त्रिविष्टप पद है उसका अर्थ सत्यलोक नहीं किंतु देवलोक है) ज्ञानकेलिये यज्ञादि कर्म करने वालोंको भी साथ २ में स्वर्गलोकका लाभ भी होता है । यही बात सनत्सुजातने उत्तरार्द्धमें दिखायी है । आपस्तम्ब कहते हैं,कि-"तद्यथाम्रे फलार्थे निर्मिते छायागन्धे इत्यनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यन्ते अर्थात् जैसे फलोंके लिये आमका वृक्ष लगाया जाता है परन्तु उस वृक्षके उत्पन्न होजाने पर साथ २ में स्वयं ही छाया और और गन्ध भी प्राप्त होजाते हैं ऐसे ही चित्त शुद्ध होकर ज्ञान प्राप्त करनेके लिये धर्माचरण किया जाता है, परन्तु धर्माचरण करनेसे पीछे अर्थोंको लाभ भी होता है ॥ २८ ॥ वैदिक कर्म के अभिमानी मनुष्य कहते हैं कि-वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करना अच्छा है, परन्तु वैदिक कर्म करके इस लोकके अथवा परलोक के फलकी इच्छा न करे जो वर्णाश्रम आदिके अभिमानसे बहिर्मुख हों और जो निष्काम कर्म वाले होकर आत्माकी उन्नतिके लिये उद्योग करते हो ऐसोंको अधिक प्रतिष्ठा न करे ॥ ❋ ॥ (शा० का तात्पर्य)-वेदवेत्ता पण्डित ज्ञानीके सम्यक् आचार व्यवहारका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि—जैसे योगियोंका उनके स्त्री पुत्र आदि अधिक मान्य नहीं करते हैंऔर योगी भी अपने स्त्री पुत्रादिका अधिक मान्य नहीं करते हैं अर्थात्-योगी पुत्र कलत्र आदिके विषें लिप्त होकर निवास नहीं करते हैं किंतु उनसे बचे २ रहते हैं (पुत्र आदि भी योगी पिताको अकर्मण्य कहिये निकम्मा समझते हैं और योगी पिता भी पुत्र आदिको अपने किसी प्रयोजनका नहीं मानतो) ॥ (नी० का तात्पर्य) वैदिक कर्मोंको न करनेसे दोष लगता है ऐसा मानकर

सूयिष्ठं ब्राह्ममाभ्यन्तरं जनम् ॥ २१ ॥ यत्र मन्येत भूयिष्ठं मानुषीय

जो मनुष्य वर्णधर्मके लिये धर्माचरण करते हैं परन्तु मानके लिये तथा स्वर्गकेलिये धर्माचरण नहीं करते हैं,ऐसे मनुष्योंका यह निष्काम धर्माचरण श्रेष्ठ है ऐसा वेदधर्मको जाननेवाले और उसके ऊपर अभिमान रखनेवाले पुरुष कहते हैं। क्योंकि ऊपर कहे धर्मके लिये ही धर्माचरण करनेवाले निष्काम पुरुष इस लोकके तथा परलोकके किसी फलकी इच्छा नहीं रखते हैं,ऐसे मनुष्य अधिक मानके पात्र नहीं होते हैं वे थोड़े बहुत मानके पात्र होते हैं इसलिये उनका थोडासाही मान करना चाहिये। वे वर्ण,आश्रम उमर और अवस्थाके,अभिमानके कारण आत्मज्ञानसे तो बहिर्मुख होते हैं परन्तु वैदिकधर्मावलम्बी होनेसे तथा निष्काम होनेसे वह श्रोत्रिय (वेदवेत्ता) आत्मतत्त्वके अधिकारी माने जाते हैं। जहाँ मनुष्यसे लेकर हिरण्यगर्भ पर्यन्तके आनन्दकी उत्तरोत्तर सौ गुणी गिनती की है तहाँ कामनाओंसे न दबे हुए श्रोत्रियके आनन्दकी उत्तरोत्तर उन्नति यजुर्वेदके तैत्तिरीय उपनिषद्में इसप्रकार कही है तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् स एको मानुष आनन्दः ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानंदः स एको देवगंधर्वाणामानंदः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवगंधर्वाणामानन्दाः स एकः पितृणांचिरलोकलोकानामानन्दः स एक आजानजानां देवानामानंदः स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः ये कर्मणा देवानपियन्ति श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ये ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः ये ते शतं देवानामानन्दाः स एकः इन्द्रस्यानन्दः ते ये शतमिन्द्रस्यानंदाः स एको बृहस्पतेरानन्दः स एकः प्रजापतेरानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण आनन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।" अर्थात्–जिनके पास यह सब पृथिवी धनसे पूरी २ भरी हुई होती है उन मनुष्योंका जो यह एकगुणा आनन्द गिनाजाता है मनुष्योंका जो सौ गुणा आनंद है वह मनुष्यगंधर्वोंका एक गुणा है और कामनासे हत न हुए श्रोत्रियका भी एक गुणा आनन्द गिनाजाता है। मनुष्यगन्धर्वोंका जो सौगुणा आनंद होता है वह देवगंधर्वोंका और कामनासे हत न हुए श्रोत्रियका एक गुणा आनंद मानाजाता है देवगंधर्वोंका जो सौगुणा आनंद है वह पितृ-

तृणोलपम् । अन्नं पानं ब्राह्मणस्य यज्जीवेन्नानुसंज्वरेत् ॥ ३०॥ यत्रा कथयमानस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम् । अतिरिक्तमिवाकुर्वन् स श्रेयान्

कालतक रहने वाले लोकके निवासी पितरोंका और कामनासे हत न हुए श्रोत्रियका एक गुणा आनंद है । चिरकाल तक रहने वाले लोकके निवासी पितरोंका जो सौगुणा आनन्द है वह देवलोकमें उत्पन्न हुए देवगणोंका और कामनाओंसे न दबने वाले श्रोत्रियका एकगुणा आनंद है जो देवलोकवासी देवताओंका सौ गुणा आनंद है वह अग्निहोत्र आदि कर्मसे प्रकाशवान् देवताओंका और निष्काम श्रोत्रिय का एकगुणा आनंद है कर्मदेवोंका जो सौगुणा आनंद है वह इंद्रका और निष्काम श्रोत्रियका एकगुणा आनंद गिना जाता है । इन्द्रका जो सौगुणा आनंद है वह बृहस्पतिका और निष्काम श्रोत्रियका एक गुणा आनन्द है जो बृहस्पतिका सौगुणा आनंद है वह प्रजापतिका और निष्काम श्रोत्रियका एक गुणा आनन्द है प्रजापतिका जो सौगुणा आनंद है वह हिरण्यगर्भका और निष्काम श्रोत्रियका एक गुणा आनंद है।अर्थात् निष्काम श्रोत्रियके आनंदको उत्तरोत्तर सबसे श्रेष्ठ माना है ॥ २९ ॥ जैसे वर्षाकालमें बहुतसी ऊँची २ घास उग निकलती है तैसे ही जिस घरमें बहुतसे अन्न जल आदिकी वृद्धि समझे उसी घरसे भिक्षा करके योगी ब्राह्मण अपना निर्वाह करे, परन्तु धनहीन गृहस्थको कभी कष्ट न देय ॥॥ (शा० का तात्पर्य) योगीको कहाँ निवास करना चाहिये सो कहते हैं-जैसे हरिण निर्जन उपद्रव रहित, तृणोंसे भरे स्थानमें सुखसे स्वच्छन्द रहते हैं तैसे ही योगी ब्राह्मण भी उपद्रवरहित सुभिक्षस्थानमें रहें जहाँ दुष्टोंका उप-द्रव न हो और अन्न जल आदि अनायाससे मिलसके ऐसा स्थान-ही योगियोंके लिये उपयोगी होता है । इसश्लोकपर नीलकण्ठने कुछ विशेष नहीं लिखा है ॥ ३० ॥ जिस प्रदेशमें अपनी महिमा प्रकटरूपसे न कहनेसे अशुभ भय आपड़ना सम्भव हो ऐसे भयदायक प्रदेशमें खड़ा होकर भी जो अपनी शक्तिको प्रकट नहीं करता है वह मनुष्य श्रेष्ठ है, दूसरा नहीं ॥॥ (शा० का तात्पर्य) योगियोंको कैसे मनु-ष्योंके समीप रहना चाहिये सो कहते हैं-जिस देश या स्थानमें जड़ बहरे या गूंगेकी समान मौन होकर खड़े हुए योगीके ऊपर अज्ञानी मनुष्य अशुभ आचरण करें अर्थात् अपमान और हास्य आदि हेय व्यवहार करें और ज्ञानीपुरुषके प्रतिष्ठाका व्यवहार न करें अर्थात् यह

स्वं नोपभुञ्जीत तदन्नं सम्मतं सताम् ॥ ३२ ॥ यथा स्वं वान्तमश्नाति श्वा वै नित्यमभूतये। एवन्ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्य्यस्योपसेवनात् ३३ नित्यमज्ञातचर्य्या मे इति मन्येत् ब्राह्मणः ज्ञातीनां तु वसन्मध्ये तं

भोजन नहीं करता है उस पुरुषके अन्नका खाना सत्पुरुषोंने अच्छा कहा है। ब्रह्मस्वके विषयमें स्मृति कहती है, कि-यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। अर्थात्-यति और ब्रह्मचारी ये दोनों राँधेहुए अन्नके स्वामी हैं अतः संन्यासी आदिको विना दिये भोजन करना ब्रह्मस्वका खाना माना जाता है। ब्रह्मस्वका भोजन न करनेवालेके घरका अन्न ग्रहण करना सत्पुरुषोंने कहा है अर्थात् गुणोंमें दोष लगानारुप असूयासे रहित और श्रद्धाके साथ देनेवालेका अन्न खाय ॥ ३२ ॥ जैसे कुत्ता नित्य अपने अकल्याणके लिये स्वयं वमन करके निकाले हुए अन्नको आप ही खाजाता है, ऐसे ही जो योगी अपना पराक्रम दिखा कर आजीविका करता है वह अपना ओका-हुआ आप ही खाता है इस श्लोकपर शाङ्कर भाष्य और नीलकंठी टीकेमें कोई विशेष बात नहीं कही है ॥३३॥ जो ब्राह्मण अपनी जातिमें रहता हुआ भी मनमें ऐसा विचार रखता है, कि-मेरी ज्ञाति वाले मेर योग आदि धर्माचरणको न जाने तो अच्छा है उस पुरुषको पण्डित ब्राह्मण कहते हैं (शा० का तात्पर्य) जो ब्रह्मका मनन करने वाला पुरुष नित्य यह विचार करता है, कि-मैं नित्य नियमितरूपसे गूढचर्यामें रहूँगा, (छिपाहुआ रहूँगा) वह पुत्र मित्र स्त्री आदिके समीप इस प्रकार रहता है कि—मानो कुछ जानता ही नहीं। पुत्र आदि भी नहीं समझसकते कि-हमारा पिता योगी है, किन्तु समझते हैं कि-हमारा पिता बुद्धिहीन है श्रुतिमें लिखा है, कि-कुटुम्बं पुत्रदाराँश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः। यज्ञं यज्ञोपवीतञ्च त्यक्त्वा गूढश्चरेन्मुनिः अर्थात्-मुनि पुरुष, कुटुम्ब पुत्र, स्त्री, वेदादि सब पुस्तक पञ्चयज्ञ और यज्ञोपवीतको त्यागकर गुप्तरूपसे रहे। वशिष्ठजीने भी कहा है यन्न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम्। जानन्नपि हि मेधावी जड़वल्लोकमाचरेत्। अर्थात्-ज्ञानी पुरुष सत् असत् पढ़ा बहुत पढ़ा सबको जानते हैं और वह लोकमें जड़ तथा मूकको समान विचरते हैं यही सनत्कुमारके इस श्लोककी व्याख्या है तथा दूसरे प्रकारकी व्याख्या भी होसकती है-ब्रह्मज्ञानी पुरुष सदा ही विचारते हैं, कि-हमारी अज्ञातचर्या सदा अटल रहे अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंके अगो-

विदुर्ब्राह्मणं बुधाः ॥ ३४ ॥ को ह्यनन्तरमात्मानं ब्राह्मणो हन्तुमर्हति ।

चर और वाणीके अविषयक प्रत्यक् आत्मारूप परब्रह्ममें समाधिनामक चर्या अटल रहै । पराग् भूत अर्थात् आत्मासे भिन्न मिथ्या-देह इन्द्रिय मित्र-पुत्र-कलत्र आदि दृष्ट पदार्थोंमें 'मैं और मेरा' ऐसा अभिमान-रूप चर्या न हो । श्रुति भी कहती है-यच्चक्षुषा न पश्यति । अर्थात् जिसको चक्षुके द्वारा नहीं देखा जासकता इत्यादि । वास्तविक योगी इन्द्रियोंके साथ निवास करने पर भी अर्थात्-देखना सुनना, मनन करना इत्यादि सब कुछ करनेपर भी यह नहीं मानता है, कि मैं देखता हूँ, मैं सुनता हूँ, मैं मनन करता हूं । यह इन सब कार्योंका साक्षीमात्र होता है । यहाँ ज्ञाति शब्दका इन्द्रिय अर्थ शास्त्रसम्मत है । लिखा है कि—क्रोधमानादयोऽनित्या विषयाश्चेन्द्रियाणि च । ज्ञातयश्च समाख्याता देहिनस्तत्त्वदर्शिनः । अर्थात् अनित्य क्रोध, मान, इन्द्रियें और विषय ये सब तत्त्व ज्ञानियोंकी ज्ञाति हैं । वास्तवमें आत्मा गन्धको ग्रहण नहीं करता है, नासिका ही ग्रहण करती है आत्मा तो केवल उसको जानता है । श्रुति भी कहती है—अथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा । जो गन्धज्ञानको जानता है, वही आत्मा है । तात्पर्य यह है, कि-योगी स्थूल सूक्ष्म शरीर और उनके धर्मोंको अपना माने ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य) जो ब्रह्मज्ञानी अपनी जाति वालोंमें रहता हुआ भी, मेरी जाति वाले मेरे योग आदि धर्ममें आचरणसे अजान रहैं तो अच्छा है ; ऐसा निश्चय करके अपने तेजको छिपा रखता है उसको पण्डित ब्राह्मण नामसे कहते हैं२४ ऐसो अज्ञानचर्यासे रहित कौनसा ब्राह्मण, उपाधि के किये हुए व्यवधानसे रहित और अनुमान आदिसे जाननेमें न आनेवाले, सर्वव्यापक, असङ्ग और सब प्रकारके हननभावसे रहित परमात्माको जानसकता है ? ॥ ❀ ॥ (शा० का तात्पर्य)-कौनसा ब्राह्मण विषयासक्तिके साथ ज्ञातियों (इन्द्रियों) में वास करके निर्लिङ्ग कहिये अत्यन्त ही सूक्ष्म और कठिनसे जानने योग्य अचल (क्रिया-रहित) शुद्ध (अविद्या आदि दोषोंसे रहित) और निर्द्वन्द्व (भूख प्यास सुख दुःख आदिसे रहित) आत्मारामको जान सकता है ? कोई नहीं जानसकता किन्तु उलटा अनात्माको आत्मा समझ बैठता है, जिससे विपरीत ज्ञानके कारण वह ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है । आगे जाकर भी सनत्कुमार कहेंगे, कि-य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया ॥

निर्लिङ्गमचलं शुद्धं सर्वद्वैतविवर्जितम् ३५ तस्माद्धि क्षत्रियस्यापि ब्रह्मा चलति पश्यति॥३६॥ योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते। किं न तेन कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा । ३७ ॥ अथांतः स्यादना-

अर्थात्-जो सत्यरूप ब्रह्मसे विलग नहीं होता है उसको तुम ब्राह्मण जानो ॥ ※ ॥ (नील० का तात्पर्य)-ऊपर जो ब्रह्मवेत्ताके लक्षण कहे हैं उनके अनुसार वर्त्ताव किये विना कोई ब्राह्मण, सर्वसंगरहित हर एक शरीरमें रहने वाले तथा सब प्रकारके द्वैतसे रहित कहिये सजा-तीय-विजातीय-स्वगतभेदशून्य परमात्माको कैसे जानसकता है ? वेदांतशास्त्रमें तीन प्रकारके भेद कहे हैं सजातीय, विजातीय और स्वगत । बड़ और पीपल ये दोनों वृक्षरूपसे एक जाति हैं परन्तु बड़ पीपल नहीं है, पीपल बड़ नहीं है, दोनों एक दूसरेसे जुदे हैं इसका नाम सजातीय भेद है बड़रूप और पीपलरूपसे दोनों भिन्न २ है इस कारण उनमें सजातीय भेद है । पत्थर और वृक्षमें जो भेद मानाजाता है वह विजातीय भेद है तथा वृक्षका अपने ही फल फूल आदिसे जो भेद है वह स्वगत भेद है । परमात्मा इन तीनों प्रकारके भेदोंसे रहित और शुद्ध है, इस कारण उसको मूल ग्रन्थमें सर्वद्वैतविवर्जित नाम से कहा है ॥ ३५ ॥ ऊपर कही हुई अज्ञातचर्यासे क्षत्रिय भी परब्रह्म में स्वप्रकाशसे नित्य निवास करता है, इस कारण क्षत्रिय भी आत्मा के ब्रह्मभावका दर्शन करता है अर्थात् ब्रह्मज्ञानको पाकर अपनी ब्रह्म भावनाका साक्षात्कार करता है जो पुरुष आत्मा रूपसे भासने वाले देह इन्द्रिय आदिके भिन्न आत्मको देहरूप वा इन्द्रियादि रूप मानता है उस आत्माके स्वरूपको चुराने वाले चोरने कौनसा पाप नहीं किया ? ॥※॥ (शां०का तात्पर्य) जो ऐसा आत्मज्ञान रहित है वह पापको इकट्ठा करता है, इस बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि-जो पुरुष अज्ञानके वशमें होकर अपनेको लिंगरहित, अचल, शुद्ध, द्वन्द्वा-तीत चेतन सदा आनन्दरूप परब्रह्मसे भिन्न जानता है अर्थात् अपनेको अब्रह्म मानता है, यदि स्पष्ट करके कहें तो जो शरीरको आत्मा और शरीरके धर्मोंको आत्माके धर्म मानता अर्थात् मैं करता हूँ,मैं इन शरीर आदि सब भोगोंको भोगता हूँ मैं सुखी हूं,मैं दुःखी हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं अमुकका पुत्र हूँ, अमुकका पौत्र हूं, मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूँ, ऐसी भ्रांतिका अनुभव करता है वह पुरुष आत्मचोर वा आत्मघाती है । ऐसा आत्मचोर कौनसा पाप नहीं करता है ? वह तो

दुर्द्धर्षा दुष्प्रकम्प्यास्तान् विद्याद् ब्रह्मणस्तनुम् ॥३९॥ सर्वान् स्विष्ट-

तथा जो देह इन्द्रियादिके ठीक २ स्वरूपको जानता है वही ब्रह्मके स्वरूपको जानता है॥३८॥जो पुरुष मानुषी धनके दरिद्र होते हैं,परन्तु दैवीसम्पदा और यज्ञसम्पदासे भरपूर होते हैं वे पुरुष किसीसे दबाव खानेवाले वा चलायमान होनेवालेनहीं होते हैं, ऐसे पुरुषोंको परब्रह्म की मूर्त्ति जाने ॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य)-जो द्विज मानुषीधन कहिये स्त्री पुत्र रुपये आदिके धनी नहीं होते केवल वैदिक धन कहिये अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, शम, दम, आदिके धनी होते हैं वे बड़े तेजस्वी और अपने नियम पर अटल होते हैं विवेकियोंके मतमें वे ब्रह्मका शरीर हैं ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य)-जो पुरुष मानवीधनके दरिद्र होते हैं अर्थात् नेत्रोंसे दीखनेवाले स्त्री पुत्र सुवर्ण आदि विषयोंसे दूर रहते हैं-सबका संग छोड़ कर निःसङ्ग रहते हैं तथा दैवीधन कहिये शास्त्रके द्वारा सुननेमें आनेवाले पारलौकिक धर्मसम्पत्तिसे भर पूर होते हैं तथा यज्ञसम्पत्तिसे पूर्ण होते हैं अर्थात् ईश्वरकी उपासनामें वैराग्यपूर्वक कर्मके अनुष्ठानमें रातदिन लगे रहते हैं उन पुरुषोंको कोई तिरस्कृत नहीं करसकता और विचलित भी नहीं कर सकता अर्थात् वे निर्भय रहते हैं और परब्रह्मकी मूर्त्ति माने जाते हैं ॥ ३९ ॥ इस जगत्में जो कोई पुरुष सुन्दर इष्ट (अभिलषित) पदार्थ देनेवाले सब देवताओंको प्रत्यक्ष देखता है वह पुरुष भी ब्रह्मज्ञानीकी समान नहीं होता है, क्योंकि—वह पुरुष अपनी इष्ट वस्तुके लिये स्वयं ही उद्योग करलेता है ॥*॥ (शा०का तात्पर्य)-अब ब्रह्मज्ञानकी महिमा को कहते हैं, कि अग्नि और इंद्र आदि देवता याज्ञिकोंके स्विष्टकृत् हैं अर्थात् इन्द्र आदि देवता आराधित होकर आराधना करने वालों को इच्छित फल देते हैं, इस कारण ही उनका नाम स्विष्टकृत् है। याज्ञिक उन भिन्न २ देवताओंके उद्देशसे होम करते हैं वे भी हरएक उपासकको एक २ सामान्य शुभ फल देते हैं। जो सब देवताओंका यजन करते हैं वे सब देवताओंके दियेहुए सब फलोंको पाजाने पर भी ब्रह्मज्ञानीकी समान नहीं होपाते, क्योंकि ब्रह्मज्ञानी अपने आप ही अपने सर्वोत्तम इष्टको सिद्ध करलेता है। यज्ञ करनेवालेकी बात तो दूर रही, यज्ञ करनेवाले फल पानेके लिये जिन देवताओंके उद्देशसे "इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय" इत्यादि वाक्य बोलकर हवि छोड़ते हैं वे सब देवता इकट्ठे होजायं तो वे भी ब्रह्मज्ञानीकी समता नहीं कर

कुतो देवान् विद्याय इह कश्चन । न समानो ब्राह्मणस्य तस्मिन् प्रयतते स्वयम् ॥ ४० ॥ यमप्रयतमानन्तु मानयन्ति स मानितः । न मान्य-

लभते । मोक्षमें लिखा है, कि-"ब्राह्मस्य न सादृश्ये वर्त्तते सोऽपि किं पुनः । इज्यते येन मन्त्रेण यजमानो द्विजोत्तम ॥" अर्थात् यजमान जिस मन्त्रसे जिस देवताका यजन करते हैं वह मन्त्र और वह देवता भी ब्रह्मज्ञानीकी समान नहीं होसकता । मनुजीने भी कहा है-"ब्रह्मविद्भ्यः परं भूतं न किञ्चित्" अर्थात् ब्रह्मज्ञानीसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ॥ छ ॥ (नी० का तात्पर्य) वेदमें देवताओंको स्विष्टकृत् नामसे कहा है क्योंकि-देवता यज्ञ यागसे प्रसन्न होकर यजमानको दिव्य स्त्रियें अन्न, पान आदि उत्तम इच्छित पदार्थ देते हैं । उन सकल स्विष्टकृत् देवोंका अश्वमेधपर्यन्त सकल यज्ञ करने वाले यजमान प्रत्यक्षदर्शन पाते हैं तो भी वे ब्रह्मज्ञानीकी समान नहीं होते, क्योंकि-यजमानको तो अपनी अभिलषित वस्तुएं पानेके लिये प्रयत्न करना पड़ता है परन्तु ब्रह्मज्ञानीको उन वस्तुओंकी इच्छा होती ही नहीं । इस सब का सार यह है, कि-दिव्य स्त्रियें अन्न आदि पदार्थ याज्ञिकोंको यज्ञकर्म सिद्ध होने पर मिलते हैं इस कारण वे सब अनित्य हैं और ब्रह्म तो स्वतःसिद्ध ही है तथा परब्रह्मके ज्ञानका फलरूप मोक्ष भी स्वतःसिद्ध है इस कारण नित्य है' अतः यज्ञ याग आदिसे मिलने वाली वस्तुएं ब्रह्मज्ञानकी समान नहीं होती हैं ॥ ४० ॥ अनित्य फलके लिये प्रयत्न न करने वाले पुरुषका देवता सन्मान करते हैं, इस लिये उस को मान्य समझना चाहिये, दूसरे सन्मान करें तो भी ज्ञानी पुरुष अपनेको प्रतिष्ठित न समझे और अपमान होय तो उससे दुःख भी न माने ॥ छ ॥ (शां० का तात्पर्य) कोई ब्रह्मज्ञानी सकल व्यवहारोंसे बचकर अपनी महिमामें मग्न है, उस अवस्थामें यदि उस गूढचारी ब्रह्मज्ञानीका कोई ज्ञानीके लक्षणोंको जानने वाला पुरुष आदर पूजन आदि करे तो उस आदर सन्मानसे अभिमानी न होय अर्थात् अपने को बड़ा मान कर हृष्ट न होय । ऐसे ही अज्ञानी पुरुष उसको मूर्ख वा पागल मान कर अपमान आदि करें तो उस अपमानके कारणसे खिन्न न होय ॥ छ ॥ (नी० का तात्पर्य) जो पुरुष अनित्य स्त्री पुत्र धन आदिके लिये किसी प्रकारका उद्योग नहीं करता है, देवता भी उसका मान करते हैं और वह ब्रह्मज्ञानी होता है, परन्तु यह किसी फलको पानेकी इच्छासे यज्ञ आदि करने वाला है, ऐसा मान कर

मानी मन्येत न मान्यमभिसंज्वरेत् ॥ ४१ ॥ लोकः स्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्मेषवत् सदा। विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः ४२ अधर्मनिपुणा मूढा लोके मायाविशारदाः। न मान्यं मानयिष्यन्ति मान्यानामवमानिनः ॥ ४३ ॥ न वै मानञ्च मौनञ्च सहितौ वसतः

देवता जिसको कर्मफल देते हैं वह तो देवताओंका पशु और अपमानका पात्र ही है। श्रुति कहती है 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्यो सावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम्'। अर्थात् जो पुरुष यज्ञ याग आदि करके परमात्मासे भिन्न दूसरे देवताकी उपासना करता है वह पुरुष, मैं जुदा हूं और यह उपास्य देवता जुदा है, ऐसा मानता है तथा वह आत्माके स्वरूपको नहीं जानता है, वह पुरुष देवताओंके एक पशुकी समान है। इस लिये दूसरे पुरुष अपना आदर करें तोभी स्वयं अपनेको प्रतिष्ठित न समझे तथा कोई अपना अपमान करे तो उससे सन्ताप भी न करे, क्योंकि—ऐसा करना अज्ञानियोंका लक्षण है ॥ ४१ ॥ निमेष उन्मेष कहिये नेत्रोंको मूंदने खोलनेकी समान लोग अपने २ स्वभावके अनुसार वर्त्ताव करते हैं, विद्वान् पुरुष इस जगत्में आदरके योग्य पुरुषोंका आदर करते हैं, सम्मान पानेवाला ऐसा माने ॥ *॥ (शा० का तात्पर्य)-ज्ञानी पुरुष लोकमें ज्ञानीका सम्मान और पूजन करते हैं तब संमानित ज्ञानी समझते हैं कि-जैसे लोगोंका निमेष उन्मेष स्वाभाविक होता है तैसे ही ज्ञानीका सन्मान करना भी ज्ञानीके लिए स्वाभाविक है। जैसे स्वाभाविक बातसे कभी अचम्भा नहीं होता है तैसे ही ज्ञानीसे स्वाभाविक सम्मान पाये हुए ज्ञानीको अभिमान नहीं होता है। ज्ञानीका कोई आदर करे तो वह सन्तुष्ट नहीं होता और कोई सम्मान न करे तो अप्रसन्न नहीं होता ॥ ४२ ॥ परन्तु मान्य पुरुषोंका अपमान करनेवाले, अधर्ममें कुशल, मायामें प्रवीण मूढ पुरुष जगत्में मान्योंका आदर करेंगे ही नहीं ॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य) यदि अज्ञानी पुरुष अपमान करें तो समझ लेय, कि-धर्मके ज्ञानसे रहित मूढ पुरुष तो मोहसे ग्रस्त और शासनशून्य हैं इसकारण मान्योंका मान न करना इनका स्वाभाविक है ॥ ४३ ॥ मान कहिए अभिमान और मौन कहिये योगचर्या ये दोनों बातें एक स्थानमें नहीं रह सकती, यह लोकमान के लिए हैं और परलोक मौनधर्मके लिए है, ऐसा तत्ववेत्ता मनुष्य कहते हैं ॥*॥ (शा० का तात्पर्य)-मान और मौन ये दोनों विरुद्ध

सह । अयं हि लोको मान्यस्य असौ मौनस्य तद्विदुः ॥ ४८ ॥ श्रीः सुखस्येह संवासः सा चापि परिपन्थिनी । ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि

पदार्थ कभी एक जगह नहीं रह सकते, क्योंकि-यह लोक अर्थात् दृश्यप्रपञ्च मानका विषय है और यह प्रपञ्चातीत ब्रह्म वस्तु मौनका विषय है। विषयका अर्थ है अधिकार या स्थान। तत्पदार्थ कहा है "ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।" अर्थात् ब्रह्मके ॐ तत्, सत्, ये तीन नाम प्रसिद्ध हैं। अनुगीतामें लिखा है, कि— "ॐ तत्सद्विष्णुरेवेति सायुज्यानि पदानि वै॥" अर्थात्-ॐ, तत्, सत् और विष्णु ये चार नाम ब्रह्मके हैं, इस कारण तत्पदका वाच्य परब्रह्म मौनके विषयमें अर्थात् अधिकारमें विराजमान है और यह जगत् नामक मिथ्या प्रपंच मानके अधिकारमें स्थित है, तात्पर्य यह है, कि-प्रपञ्चातीत परब्रह्ममें ही मौन होसकता है और जगह नहीं होसकता। मानमें ही संसार है और मौनमें ही परमात्माकी प्राप्ति है। भगवान् हिरण्यगर्भने मान और मौनकी परिभाषा इस प्रकारकी है- अन्नाङ्गनादिभोगेषु भावो मान इति स्मृतः। ब्रह्मानन्दसुखप्राप्तिहेतु-र्मौन इति स्थितिः अर्थात्-अन्न और स्त्री आदिके भोगके विषयमें जो मनकी वृत्ति है उसका नाम मान है और ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिके कारणरूप ब्रह्ममें जो मनकी वृत्ति लगना है उसका नाम मौन है॥४३॥ (नी० का तात्पर्य) मानकी इच्छा वाले पुरुषको परलोक मिलना कठिन होता है और योगिचर्यासे रहनेवाले परलोकके अभिलाषीको इस लोकका निभाना कठिन होता है॥ ४४॥ लक्ष्मीमें सुखका वास है परन्तु वह लक्ष्मी भी परलोकका नाश करनेवाली है और हे क्षत्रिय! जो ब्राह्मी लक्ष्मी है वह बुद्धिहीन पुरुषको बड़ी दुर्लभ है॥४५॥ (शा० का तात्पर्य)-अब यह दिखाते हैं, कि-मानके अधिकारमें रहनेसे मोक्ष नहीं मिलती, हे क्षत्रिय धृतराष्ट्र! स्वर्ग अन्न धन आदिरूप मानके अधिकारमें रहनेसे अर्थात्-अन्न धन आदिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंमें लगे रहनेसे जो श्रीकी प्राप्ति होती है वह श्री श्रेयोमार्ग कहिये मोक्षमें विघ्न डालनेवाली अर्थात् शत्रु है। यह बात मोक्षधर्ममें लिखी है-"निबन्धिनी रज्जुरेषा।" अर्थात् श्री जीवको बांधनेकी रज्जुरूप है। जो ऐसी श्रीको पाने पर आपेसे बाहर होजाते हैं वे ही विषयलम्पट और गँवार मनुष्य हैं। वे सत्कर्मोंसे रहित लोग ब्राह्मी श्रीको नहीं पाते। ब्राह्मी श्रीके स्वरूपको हिरण्यगर्भने कहा है-'या

प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय ॥ ४५ ॥ द्वाराणि तस्येह वदन्ति सन्तो बहुप्रका-

नित्या चिद्घनानन्ता गुणरूपविवर्जिता। आनन्दाख्या परा शुद्धा ब्राह्मी श्रीरिति कथ्यते' ॥ अर्थात् रूप आदि रहित, सबसे अधिक श्रेष्ठ, असीम चैतन्यघन ऐसी स्वतःसिद्ध ब्राह्मी श्री शास्त्रमें कही है, यह ब्राह्मी श्री बड़ी ही दुर्लभ है। श्रुतिने भी कहा है-"श्रवणायापि बहुभिः ॥" अर्थात् शास्त्रको बहुत कुछ पढ़ लेने पर भी ब्राह्मी श्री की प्राप्ति होना कठिन है ॥※॥ (नी० का तात्पर्य) धन, कुल और ऐश्वर्य आदि अनेकों फलवाली लक्ष्मीमें मानरूप सुख रहता है तो भी वह लक्ष्मी परलोककी परिपन्थिनी कहिए लुटेरेकी समान नाश करनेवाली है, योगियोंका तो बड़ा ही भारी अनिष्ट करने वाली है। ऋक् यजु और सामवेदरूपा ब्राह्मी लक्ष्मी ब्रह्मवेत्ताके ही योग्य है। श्रुति भी कहती है-'ऋचः सामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृता सताम्'। अर्थात्-ऋक् यजु और साम यह सत्पुरुषोंकी अमर लक्ष्मी है, परन्तु बुद्धिहीन मनुष्य इन वेदोंके उत्तम रहस्यको नहीं जान सकता ॥४५॥ पण्डित कहते हैं, कि-ऊपर कहे हुए ब्रह्मसुखको पानेकेअनेकों साधन हैं परन्तु उन सब साधनोंकी रक्षा करना बड़ा कठिन है,उन साधनों में सत्य, सरलता, लोकलज्जा, जितेन्द्रियपना, शौच और शास्त्रज्ञान ये छः मोहको रोकनेवाले हैं ॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य) अब ब्राह्मी श्रीको पानेका मार्ग कहते हैं, कि—ऋषि कहते हैं, कि-ब्राह्मी श्रीको पानेका उपाय वा मार्ग एक प्रकारका नहीं है, अनेकों प्रकारका है, परन्तु उसका साधन करना बड़ा कठिन है सत्य, सरलता, लज्जा, दम, शौच और विद्या इन छः मार्गोंमेंको चलने पर धीरे २ मान और मोह घट जाते हैं तब मौन नामक ब्राह्मी श्रीकी प्राप्ति होती है। ठीक २ बात कहना और प्राणियोंका हित करनेका नाम सत्य है। शठताके त्यागका नाम सरलता है खोटा काम करनेसे संकुचित होने का नाम लज्जा है। इन्द्रियोंको वशमें रखनेका नाम दम है। पापको धोनेका नाम शौच है और आत्मज्ञानको विद्या कहते हैं ॥※॥ (नी० का तात्पर्य) परब्रह्मके सुखको धारण करनेके जो २ साधन हैं, उन को धारण करना बड़ा कठिन है। वे साधन ये हैं-सत्य कहिये सच्चा बोलना सरलता, ह्री कहिये लोकनिन्दाका भय, जितेन्द्रियता, शौच कहिये मट्टी और जलसे बाहरकी शुद्धि और ज्ञान आदिसे भीतर की शुद्धि, विद्या कहिये वेद और शास्त्रका अभ्यास, इन साधनोंके

राणि दुराधराणि । सत्यार्जवे ह्रीर्दमशौचविद्या यथा न मोहप्रतिबन्धनानि ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । कस्यैष मौनः कतरन्नु मौनं प्रब्रूहि विद्वन्निह मौनभावम् । मौनेन विद्वानुत याति मौनं कथं मुने मौनमिहाचरन्ति ॥

होने पर यदि अनादिकालकी वासनासे मोहका उदय हो भी तो वह अपना प्रभाव नहीं चला सकता ॥४८॥ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे विवेकी सनत्सुजातजी ! आपने जो मौन की बात कही उसका क्या प्रयोजन है ? वाणी तथा मनका संयमरूप लोकप्रसिद्ध मौन और श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप वेदोक्त मौन, इन दो प्रकारके मौनमेंसे आपका अभिप्राय कौनसे मौनसे है ? मौन का लक्षण क्या है? मौनकेद्वारा विद्वान् पुरुष मौन कहिये परम निर्विकल्प पदको प्राप्त होता है या नहीं ? और प्राणी मौनका आचरण किस प्रकार करते हैं । हे मुने ! तुम विचार करके ये सब विषय मुझ से कहो ॥ * ॥ इस श्लोक पर शाङ्करभाष्यमें विशेष विचार नहीं किया है ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य) पहिले अध्यायके अन्तमें मौन, ब्राह्मी लक्ष्मी और सत्य आदि छः वस्तु मोहरूप मृत्युकी विरोधिनी हैं, यह बात कही. अब उसका ही विस्तारके साथ वर्णन करनेके लिये दूसरे अध्यायका आरम्भ होता है । त्यागपूर्वक मुनियों का धर्म ही मौनधर्म गिना जाता है उस मौनधर्मका क्या प्रयोजन है ? यह पहिला प्रश्न है । मौन शब्दका लोकमें यह अर्थ प्रसिद्ध है, कि-वाणीको नियममें रक्खे अथवा-"अमौनञ्च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः" इस श्रुतिमें जो मौन और अमौन शब्द कहे हैं वे पाण्डित्य और मूढ़ताके वाचक हैं तथा इस मौन शब्दका अर्थ श्रवण, मनन भी होसकता है, इसलिये इनसे भिन्न और इनके साथ भी नियम के साथ रहनेवाले निदिध्यासनको मौन जानो । इसप्रकार लोकप्रसिद्ध वाणीके नियमको मौन समझें या निदिध्यासनको मौन मानें यह दूसरा प्रश्न है । उस मौनका लक्षण क्या है ? यह तीसरा प्रश्न है । उस मौनधर्मसे विद्वान् कहिये विवेकी पुरुष मन प्राण और इन्द्रियोंकी की क्रियायें जिसमें पूर्ण रीतिसे उपराम पाजाती हैं अर्थात् जो पद विकल्प रहित है क्या उस पदको प्राप्त होजाता है ? यह चौथा प्रश्न

सनत्सुजात उवाच। यतो न वेदा मनसा सहैनमनुप्रविशन्ति ततोऽथ मौनम्। यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथायं स तन्मयत्वेन विभाति राजन् २

है तथा मौनधर्मका आचरण किस प्रकार करना चाहिए यह पाँचवाँ प्रश्न है ॥ १ ॥ सनत्सुजातने कहा, कि-हे राजन्! वेद तथा मन परमात्मामें प्रवेश नहीं कर सकते इसकारण परमात्माको मौन कहाजाता है और प्रणवरूपी वैदिक शब्द तथा जीवात्मारूपी व्यावहारिक शब्द स्वाभाविक रीतिसे ही जिस परमात्मामेंसे उत्पन्न हुआ है वह भूतात्मा (व्यापक) ब्रह्म इस जगत्में वैदिक तथा लौकिक शब्दरूपसे प्रकाशित होरहा हैं ॥ ❋ ॥ (शा० का तात्पर्य)-सनत्सुजातने कहा कि-मनके साथ सब वेदवाक्य परमात्माको ग्रहण कहिये विषय वा व्यक्त नहीं कर सकते इस कारण वाणी और मनका अगोचर परमात्मा ही मौन है। श्रुति भी कहती है—"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" अर्थात्—वाणी और मन दोनों जिसको न पाकर लौट आते हैं। मौन नामक परमात्माका लक्षण यह है कि-वेदके सब शब्द उसको ही लक्ष्य करके उदित हुए हैं अर्थात् शास्त्रयोनित्व ही मौन नामक परमात्माका लक्षण है। वेदशब्द जिस संवित्स्वरूपका वाचक है वह संवित्स्वरूप ही परमात्मा है इसके अनुसार लक्षण—वेदका तात्पर्य जिसमें जाकर समाप्त होजाता है वह संवित्रूप ही मौन परमात्माका लक्षण है यदि कहो कि-परमात्मा संवित्रूप कहिये वाणी का अगोचर है तो जाना कैसे जाता है ? तो सुनो-परमात्मा हमारे समीप ज्योतिर्मयरूपसे विराजमान है। वाक्य मन और ज्ञान इनकी प्रकाशक चेतनाका नाम ज्योति है। श्रुति स्मृति पुराण आदिमें उस को ही ज्योतिर्मय कहा है, उसके ही अनुसार और लोग भी उसको ज्योतिर्मय कहते हैं। श्रुति कहती है, कि-तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्'। अर्थात्—देवता उसको ज्योतिकी ज्योति कहते हैं और उपासना करते हैं, तात्पर्य यह है, कि—अग्नि चन्द्र तारागण आदि भौतिक पदार्थका नाम ज्योति है उस ज्योतिका भी ज्योति अर्थात् प्रकाशक है; वही आत्मा वा चैतन्य है, चेतना इन सबका प्रकाश करती है, आत्मचेतनाके विना इनका अस्तित्व ही नहीं रह सकता ॥ ❋ ॥ (नी० का तात्पर्य)-ऊपर कहे हुए पाँच प्रश्नोंका संक्षेपमें उत्तर देते हैं, कि-हर एक शरीरमें रहनेवाले परमात्माको मन तथा वेद नहीं जान सकते। श्रुति कहती है—"यतो

धृतराष्ट्र उवाच । ऋचो यजूंषि यो वेद सामवेदञ्च वेद यः । पापानि कुर्वन् पापेन लिप्यते किं न लिप्यते ॥ २ ॥ सनत्सुजात उवाच । मैनं

वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" । अर्थात् वाणी मनके साथ परमात्माके पास पहुँचे विना पीछेको लौट आती है। इसलिए परमात्मा को मौन कहते हैं । वाणी तथा मनसे अतीत पदको पानेके लिये मौन की आवश्यकता पड़ती है । वाणी आदि बाहरी इन्द्रियोंका तथा मनका निग्रह मौन कहलाता है । उस मौनको ग्रहण करने पर मनसे बाहरके और भीतरके प्रपंचका भान जाता रहता है तब वाणी और मनसे अतीत परमपदको पानेकी योग्यता होती है। इस प्रकार चारों प्रश्नोंका संक्षेपमें उत्तर देकर पाँचवें प्रश्नका उत्तर देते हैं, कि-जैसे खेतमें अङ्कुर उत्पन्न होता है और समुद्रमें तरंगें उत्पन्न होती हैं तैसे ही अधिष्ठानरूप भूमा ब्रह्ममेंसे वेदरूप सकल शब्द और लौकिक शब्द उत्पन्न हुए हैं, अतः भूमा ब्रह्म वैदिक और लौकिक शब्दरूपसे जगत्में प्रकाश कर रहा है । मूलमें जो वेद शब्द है, उसका अर्थ है वेदका साररूप प्रणव । प्रणव कहिए ॐकारकी ईश्वरसे किस प्रकार उत्पत्ति हुई है, इस विषयमें यह वृत्त ब्राह्मणमें कहा है-'भूरित्येव ऋग्वेदादजायत, भुवरिति यजुर्वेदात्स्वरिति सामवेदात्तानि शुक्राण्यभ्यतपत्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति तानेकधा समभरत्तदेतदोमिति' । अर्थात्-ऋग्वेदसे भूर्, यजुर्वेदसे भुवर्, सामवेदसे स्वर् ये तीन व्याहृतियें उत्पन्न हुई हैं, उन तीनों शुद्ध व्याहृतियों को परमात्माने तपाया, वे तीनों व्याहृतियें चारों ओरसे तप्त हुईं तब उनमेंसे अकार, उकार और मकार ये तीन वर्ण उत्पन्न हुए वे तीनों वर्ण इकट्ठे होकर ॐकार हुआ । उस प्रणवकी सर्वात्मकपना दिखाती हुई श्रुति कहती है, कि-"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् ।" अर्थात्-ॐ यह अक्षर सकल विश्वरूप है। इस ॐकारकी तन्मात्रायें अकार, उकार और मकार ये क्रमसे स्थूल सूक्ष्म और कारणप्रपंचकी वाचक हैं । वाच्य (अर्थ) और वाचक (शब्द) का अभेद होनेसे, गुरुकी बतायी हुई युक्तिके अनुसार पहिले २ अक्षरका अगले २ अक्षरमें लय करने पर लवणोदकन्यायसे स्थूल जगत्का सूक्ष्म जगत्में लय होजाता है, सूक्ष्म जगत्का कारण जगत्में लय होता है और कारणजगत्का अर्धमात्रा नामसे कहे जानेवाले तुरीयतत्त्वमें लय होता है । श्रुति कहती है-"शिवमद्वैतं

सामान्यृचो वापि न यजूंष्यविचक्षणम् । त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥ न छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्त्तमानम् । नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्य-

चतुर्थं मन्यन्ते" अर्थात्-अद्वैत शिवरूप परमात्माको तुरीय तत्त्व मानते हैं । इस श्रुतिके अनुसार जिसका सकल द्वैतभाव दूर होगया है वह वाणी तथा मनके अतीत परमात्माके विषैं लय पाता है, इस लिए प्रणवनामधारी परमात्माके शब्दस्वरूप होनेसे प्रणवके द्वारा वाणी और मनके अतीत परमात्माका ज्ञान होता है ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-पुरुष ऋग, यजु और सामवेदको पूर्ण रीतिसे जानता हो, वह यदि पाप कर्म करे तो पापसे लिप्त होता है या नहीं लिप्त होता है ? ॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य)—हे ब्राह्मण ! जो पुरुष पाप करके ऋग्वेद आदिको पढ़ता है, पापका नाश करनेके लिए वेदपाठ आदि करता है वह उस पाठसे पवित्र कहिए निष्पाप होता है या नहीं? * (नी० का तात्पर्य)-यदि वेदस्वरूप ॐकारके द्वारा तथा वेदके द्वारा वाणी और मनसे अतीत परब्रह्मका ज्ञान होता हो और उस ज्ञानसे श्रुतिमें कहे अनुसार-"यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते" जैसे तृण और रुई अग्निमें भस्म होजाते हैं तैसे ही वेदवेत्ताके सब पाप नष्ट होजाते हैं इस प्रकार मौनरहित पुरुषको भी ऋग्वेद आदिका अभ्यास करनेसे ब्रह्मकी प्राप्ति और पापका नाश इन दोनों वस्तुओंकी प्राप्ति होसकती है ? ॥ ३ ॥ सनत्सुजातने कहा कि-सामवेद ऋग्वेद और यजुर्वेद ये बुद्धिहीन (जिसका मन वशमें नहीं है ऐसे) पापकर्म करनेवालेकी पापकर्मसे रक्षा नहीं कर सकते हैं, यह बात मैं तुझसे मिथ्या नहीं कहता हूँ ॥ * ॥ इस पर भाष्य और टीकामें विशेष व्याख्या नहीं है ॥ ४ ॥ वेद मायाके द्वारा वर्त्ताव कहनेवाले मायावीका पापसे रक्षा नहीं कर सकते किंतु जैसे पंख निकल आने पर पक्षी घोंसलेको छोड़कर चले जाते हैं तैसे ही वेद भी अन्तकालमें उस मायावीको त्याग जाते हैं ॥ ५ ॥ (नी० का तात्पर्य)-वेदमें कहा है, कि-" यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्या-स्ताद्भाव्यमनुभवति" जीव जिस २ देवताके मन्त्रका स्मरण करता है, उस २ देवताके स्वरूपको पाता है । इस श्रुतिवचनसे तथा "यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तंतमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः" भगवान्ने कहा, कि-हे कुन्तीनंदन ! केवल मेरा

न्तकाले ॥ ५ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । न चेद्वेदा विना धर्मं त्रातुं शक्ता विचक्षण । अथ कस्मात् प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः ॥ ६ ॥ सनत्सुजात उवाच। तस्यैव नामादिविशेषरूपैरिदं जगद्भाति महानुभाव।

स्मरण करते हुए मेरे रूपको पाता है, यह नियम नहीं है, किन्तु पुरुष मरणके समय जिस २ वस्तुका स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागता है, उस २ पदार्थको ही पाता है क्योंकि-नित्य उन २ पदार्थोंका ही विचार करनेसे उसके मनमें उन वस्तुओंकी वासना लगी रहती है, इस भगवद्गीताके वचनके अनुसार, नित्यके अभ्यासके कारण अन्तकालमें जिस देवताके मन्त्रका स्मरण किया जाता है उस २ देवताके ही रूपवाला होजाता है तब वाणी और मनके निग्रहरूप मौनकी क्या आवश्यकता है ? वादीकी ऐसी शंकाके उत्तरमें कहते हैं, कि मौनव्रत धारण नहीं किया होता है तो अन्तकालमें जीवको वेद फुरते ही नहीं ॥ ५ ॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-यदि शम दम आदि धर्मके बिना वेद अविचक्षण पापी पुरुषकी रक्षा कर ही नहीं सकते 'तो फिर ब्राह्मणोंके माहात्म्यको प्रकट करनेवाले और सदा प्रसिद्ध ऋक् यजु और सामके द्वारा पवित्र होकर ब्रह्मलोकमें पूजा जाता है, जितने देवता हैं वे सब ब्राह्मणके शरीरमें वास करते हैं ऐसे २ प्रलापवाक्य वेदमें क्यों कहे हैं ? ॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य) धृतराष्ट्रने पूछा, कि जब नित्य कर्म और काम्यकर्म पितृलोक आदिकी प्राप्ति करानेके कारण संसाररूप अनर्थके हेतु होते हैं और निषिद्धकर्म नरकमें पहुँचानेके कारण और भी अधिक अनर्थकारी होते हैं तो अनेकों वैदिक कर्म और वेदाध्ययनका प्रचार ब्राह्मणोंमें अनादिकालसे क्यों चला आता है ? क्या यह वेदका प्रलाप है ? ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य)-भगवद्गीतामें स्वाभाविक धर्म इस प्रकार कहा है-"शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥" अर्थात्—शम, दम, तप, पवित्रता, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता यह ब्राह्मणका स्वाभाविक धर्म है । इस कर्मके सिवाय और सब निरर्थक प्रलाप किया है, जैसा कि-श्रुति कहती है—"यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति॥" अर्थात्-जितने देवता हैं वे सब ब्राह्मणके शरीरमें बसते हैं ऐसे अनादिकालसे चले आये हुए वाक्य क्या प्रलाप हैं ? ॥ ६ ॥ सनत्सुजातने उत्तर दिया, कि—हे महानुभाव ! यह वेद शास्त्र आदि प्रपञ्च

जिसकी वाणी है तथापि स्वाभाविक रीतिसे निर्विकार होनेपर भी जो नामरूप आदि विशेषरूपसे विकारको प्राप्त होता है उस परमात्माके स्वरूपमें यह जगत् भासता है। वेद अध्यारोपके प्रसङ्गमें मूर्त्त (दृश्य) तथा अमूर्त्त (अदृश्य) सकल विश्वको ब्रह्मरूपसे वर्णन करके ब्रह्मके स्वरूपका भले प्रकार वर्णन करता है तथा अपवादके प्रसङ्गमें ब्रह्मका विश्वसे विलक्षणपना वर्णन करता है, इसलिए ऐसे परमात्मासे उत्पन्न होनेके कारण वेद माननीय गिने जाते हैं, ऐसे वेद में बताये हुए मार्गसे जो पुरुष नहीं चलता है, किन्तु उसका अपमान करता है उसका वेद पढ़ना भी निष्फल होता है ॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य)-सनत्कुमारने कहा, कि-हे,महानुभाव! यदि केवल स्वर्ग आदि पदार्थका ही वेदमें वर्णन होता तो यह शंका होसकती थी, परन्तु वेदका अर्थ और भी है,वह है मुख्य और मोक्ष नामक परमपुरुषार्थ। उस परम पुरुषार्थको पानेका साक्षात् उपाय ज्ञान है,ज्ञान को पानेका उपाय चित्तशुद्धि है,कर्म और उपासना उस चित्तशुद्धि को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार परम्परासम्बन्धसे कर्म भी वेदका अर्थ मान लिया गया है। वास्तवमें वेदने परमात्माको ही परमपुरुषार्थ कहा है। वेदने भी कहा है-"अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।" अर्थात्-अविद्वान् कहिये ज्ञानहीन पुरुष शरीर को त्यागनेके अनन्तर उन लोकोंमें जाते हैं कि-जो लोक आनन्दसे शून्य और घोर अन्धकारसे ढके हुए अर्थात् अज्ञानमय हैं। इस श्रुति ने स्वर्ग आदि लोकको भी आनन्दशून्य और अविद्याग्रस्त होनेसे अपुरुषार्थ कहा है। फिर कहा है, कि-"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥"अर्थात् जीव यदि अपनेको इस प्रकार जानजाय कि-पूर्णपुरुष ब्रह्म मैं ही हूँ तो फिर कौन किसके लिये किस प्रयोजनकेअधीन होकर अथवा किस कामनासे शरीरकोक्लेश देय?यह श्रुति भी आत्मतत्त्वज्ञानसे कृतकृत्य होना कहती है तदनन्तर श्रुति और भी कहती है न चेदवेदीन्महती विनष्टिः। य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।" अर्थात् इस शरीरमें विद्यमान रहते हुए यदि उसको इस प्रकार न जाना तो अपना बड़ा अनिष्ट कर लिया परन्तु जो उसको जान लेते हैं वे अमर होजाते हैं। 'अथेतरे दुःखमेवापियन्ति' और जो नहीं जानते हैंवे दुःखमें डूबते हैं वेदने इस प्रकार आत्मज्ञानीको दुःखमोचन और अनात्मज्ञानीका विनाश और दुःखमें डूबने तथा अधोगतिका वर्णन किया है। फिर

"यदैवमनुपश्यत्यात्मानं देवमञ्जसा। ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते" ॥ अर्थात् जो इसप्रकार भूत भविष्यत्के प्रभु आत्मदेव का निश्चित रूपसे प्रत्यक्ष कर लेता है वह फिर दुःख नहीं भोगता है इत्यादिके द्वारा आत्माका स्वरूप, उसके विषयका तत्त्वज्ञान और तत्त्वज्ञानके फल मोक्षका वर्णन किया है। तदनन्तर वेदने राग आदि के द्वारा खिंचे हुए विषयासक्त संसारी आत्माको किस प्रकार मुक्त करूँगा? संसारके क्लेशोंसे किस प्रकार इसका उद्धार करूँगा? और उद्धार करके परमपद परमात्मा पूर्णानन्द मोक्ष नामक स्वर्ग राज्यमें फिर किस प्रकार स्थापित करूँगा, मानो ऐसा विचार कर ब्रह्मप्राप्ति का उपाय तत्त्वज्ञान, ब्रह्मज्ञानको पानेका उपाय प्रबल विविदिषा तथा विविदिषाको उत्पन्न करनेका उपाय यज्ञ दान आदि क्रियाका उपदेश दिया है। कहा भी है-'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणाः विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन'। ऐसे इस ब्रह्मको जाननेके लिये ब्राह्मण वेदाध्ययन, यज्ञ, दान तपस्या और संन्यासका अवलम्बन करते हैं। इस कारण ज्ञानको पानेके लिये किया हुआ जो यज्ञ दान आदि है वह पुरुषार्थका कारण होता है। परन्तु और किसी फलको पानेकी इच्छासे किया हुआ यज्ञ दान आदि पुरुषार्थका कारण नहीं होता है, प्रत्युत वह सब *श्येनयाग आदिकी समान अपुरुषार्थ कहिये अशुभ फलको उत्पन्न करनेवाला होता है। श्रुति भी कहती है-"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति" ॥ अर्थात् ये जो यज्ञरूप डोंगे हैं ये बड़े ही निर्बल (कमजोर) हैं, जो मूढ पुरुष इन की प्रशंसा करते हैं वे बारम्बार जरा मरणके वशमें पड़ते हैं। इस प्रकार जब वेद मोक्षके उपायरूप ज्ञानका उपदेशक और संसार रूप अनर्थको दूर करने वाला सिद्ध होता है तो वह अवश्य वेदवेत्ता ब्राह्मणकी रक्षा करसकेगा भगवान् सनत्सुजातने इस ही अभिप्रायको लेकर बराबर तीन श्लोक कहे हैं, उनमें पहिले श्लोकमें

---

* श्येनयाग एक प्रकारका अभिचार (जादू) है, पहिले शत्रुको मारनेके लिये यह याग किया जाता था, जब इस समय स्थानमें तान्त्रिक मारण उच्चाटन आदि किया जाता है। इन सब क्रियाओं से शत्रुमारण आदि फल होने पर भी उससे पारलौकिक नरकभोग आदि फल भी अवश्य ही होता है।

परमात्माकी ही परमपुरुषार्थता दिखाते हैं, कि-हे महानुभाव धृतराष्ट्र! परमात्माकी जो माया है उसके द्वारा ही कल्पित हुआ नाम रूप आदिवाला यह विचित्र जगत् उसमें ही भासित होता है अर्थात् परमात्मा ही अपनी मायासे विश्वके आकारमें विवर्त्तित होती है। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। परमेश्वर अपनी मायासे अनेकों रूप-वाला होता है। यह श्रुतिका कहाहुआ परमेश्वरका बहुरूपीपना मायिक है और "तदेतद्ब्रह्मापूर्वमपरमनन्तबाह्यम्।" वह यह ब्रह्म अपूर्व, अपर, अनन्त औ अबाह्य है। इस श्रुतिका कथन है, कि-ब्रह्म वास्तवमें अद्वितीय है। "द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्च।" अर्थात् ब्रह्मके क्रमसे मूर्त्त और अमूर्त्त दोही रूप हैं। फिर 'नेति नेति, इत्यादि वाक्यके द्वारा मायिक भेदोंके अपवादसे निर्विशेषरूप का उपदेश दिया है। अन्य श्रुतिने-आत्मन आकाशः संभूतः। परमात्मासे आकाश प्रकट हुआ है। इत्यादि क्रमसे पञ्चमहाभूतोंकी सृष्टिका वर्णन कर, पञ्चकोषका वर्णन करके उसका जो वास्तविक-रूप है। यतो वाचो निवर्त्तन्ते। वाणी जिसको न पाकर लौट आती है, इत्यादि वाक्योंमें कहा है। दूसरी श्रुति भी कहती है-"अधीहि भगवो ब्रह्मन्," हे भगवन् मुझे ब्रह्म समझाओ। इत्यादि बहुतसी आख्यायिकायें उठाकर उनमें प्राणपर्यन्त जगत्का वर्णन करके पीछे से 'यत्र नान्यत्पश्यति' जब देखे कि-और कुछ नहीं दीखता अर्थात् जब भेददृष्टि न रहे। इत्यादि वाक्योंसे ब्रह्मके यथार्थरूपका ही उप-देश दिया है। केवल वेदोंने ही ऐसा नहीं कहा है, किन्तु मुनियोंने भी ब्रह्मको विश्वरूपके विपरीत कहा है। जैसे कि भगवान् पराशर ने कहा है, कि-'प्रत्यस्तमित्यभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम्। वचसामात्म-संवेद्य' तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥ तच्च विष्णोः परं रूपमरूपाख्यमनुत्त-मम्। विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः'॥ अर्थात् जिसमें सब प्रकारका भेद अस्त होगया है, जो केवल सत्तामात्र है, जो वाणी आदिके पार और स्वप्रकाश है, वह स्वाधीन ज्ञान (चैतन्य) ब्रह्म-नामसे बोला जाता है। और वह ही विष्णुका परमपद है, उसका रूप और नाम वास्तवमें कुछ नहीं है तथा उससे उत्तम भी कोई नहीं है। इसलिये जो विश्वका रूप है, परमात्मा उस रूपके पार है॥*॥

(नी० का तात्पर्य)-'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितं तद्यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः'। अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये जिस

निर्दिश्य सम्यक् प्रवदन्ति वेदास्तद्विश्वरूपमुदाहरन्ति ॥८॥ तदर्थ-

महान् परमात्माके निःश्वासरूप हैं। इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे यह वेद शास्त्रादिका समूह जिस परमात्माकी वाणी है, उस ही नाम तथा रूपसे परिणामको प्राप्त न होने वाले परमात्मामें उसका स्वरूप रूप यह जगत् भासता है। मूलमें जो 'नामादिविशेषरूपैः' यह तृतीया विभक्ति दी है वह इत्थंभावमें लिखी है अर्थात्-नाम तथा स्वरूपा-त्मक जो विशेषरूप तदात्मक स्वरूप ऐसा अर्थ करना चाहिये। श्रुति कहती है, कि—"तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्या-क्रियत,असौ नामायमिदं रूप इति।" वह ब्रह्म उस समय अपरिणामी था, वह नामसे तथा रूपसे विस्तारको प्राप्त हुआ, जैसे कि-ऐसे नाम वाला यह है तथा ऐसे रूप वाला यह है, इस प्रकार ,परमात्मा स्वयं प्रपञ्चरहित है, उसमें पहिले प्रपञ्चका आरोप किया ;जाता है और पीछे उस प्रपंचका अपवाद कहिये निषेध करके उसका निष्प्रपंच-पना सिद्ध किया जाता है। उसमें पहिले सब विश्वको ब्रह्मरूपसे दिखाते हुए अपवादका प्रसंग कहते हैं-"द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तञ्च" अर्थात् ब्रह्मके दो रूप हैं, एक मूर्त्तिमान् और दूसरा मूर्त्तिरहित। इस श्रुतिके द्वारा दृश्य और अदृश्य सब जगत्को ब्रह्म-रूपसे कहकर फिर उसका यथार्थ कथन करते हुए कहा है, कि—"ब्रह्मैवेदं सर्वम्' यह सब विश्व ब्रह्मरूप ही है। अपवादका प्रसंग कहते हुए पहिले अध्यारोपका प्रसंग कहा अब अपवादका प्रसंग कहते हैं। अपवाद प्रसंगमें ब्रह्मको मूर्त्तिमान् और मूर्त्ति-रहित, सकल विश्वसे विलक्षण ही कहा है। श्रुति कहती है—अर्थात् आदेशो नेति नेति। परमात्मासे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है ऐसी वेदकी आज्ञा है, इस श्रुतिमें-नेति नेति, यह जो दो वार निषेध किया है, वह मूर्त्त अमूर्त्त दोनोंका निषेध करनेके लिये है। मूर्त्त अमूर्त्त दोनोंका निषेध करने पर अन्तमें शून्य ही रह जायगा तब तो परब्रह्म सिद्ध ही नहीं होगा, ऐसी शंका कोई लोग करें तो ऐसी शंका करना ,व्यर्थ है। यहाँ तो परमात्माके सिवाय दूसरा कोई भी कार्य वा कारण है ही नहीं, इसलिये ही नेति नेति कहा है,अतः शून्य नहीं रहेगा। नेति नेति यह श्रुति ही ब्रह्मकी जगत् से विलक्षणता कहिये प्रपंचरहितपना और निरञ्जनपना दिखाती है। वेद परमात्मासे प्रकट हुए हैं, इसकारण ही माननीय हैं। जो पुरुष

युक्तं तप एतदिज्या ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान्। पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात् सञ्जायते ज्ञानविदीपितात्मा ॥ ८ ॥ ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वान् अथान्यथा वर्गफलानुकांक्षी। अस्मिन् कृतं तत्परि-

वेदमें कहे हुए मार्गके अनुसार वर्त्ताव नहीं करता है और उसका अपमान करता है उसका वेद पढ़ना भी वृथा होता है, क्योंकि-भगवान्की आज्ञाको भंग किया जाता है। श्रुति कहती है—"न तस्य वाच्यपि भागोऽस्तीति" जो देहमें आत्मबुद्धि कर और परमात्माको न मानकर त्यागता है उसको वेदपाठका फल नहीं मिलता है ॥७॥ परब्रह्मको पानेके लिये ये तपस्या और योग आदि कहे हैं, विद्वान् पुरुष इन दोनोंके द्वारा पुण्यको प्राप्त करता है और पुण्यसे पापका नाश करके अन्तमें ज्ञानसे आत्माके स्वरूपका दर्शन करता है ॥❋॥ (शा० का तात्पर्य)-ऋषि सनत्कुमार ईश्वरार्पणके लिए किये हुए कर्मकी पुरुषार्थता और भोगाभिलाषासे किये हुए कर्मकी अपुरुषार्थताको कहते हैं, कि-जिस ब्रह्मको विश्वरूपके विपरीत कहागया, वेदने उसको पानेके लिए जीवको चान्द्रायण आदि तपस्या और ज्योतिष्टोम आदि यागका उपदेश दिया है, इसकारण जो पुरुष ब्रह्मको जाननेके लिए अन्य फलको पानेकी आशा छोड़कर इन सब कर्मोंको करनेमें लगता है वह पुण्य कहिये चित्तशुद्धिरूप पवित्रताको पाता है, उससे पापशून्य होता है और फिर ज्ञानकी निर्मलताको पाकर उसके द्वारा चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्मरूप होजाता है ॥ ❋ ॥ (नी० का तात्पर्य)-सब विश्वसे विलक्षण परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये कृच्छ्र चान्द्रायण आदि और ध्यान धारणा आदि तप कहा है। श्रुति भी कहती है-"तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" तू तपसे परब्रह्मको जान। यज्ञ आदि जो किये जाते हैं वे भी ब्रह्मके लिए ही किये जाते हैं, उनसे ब्रह्मप्राप्तिका क्रम यह है-यज्ञ तप आदिसे पुण्यकी उत्पत्ति होती है, पुण्यसे पापका नाश होता है, पापरहित पुरुषको ब्रह्माकार चित्तकी वृत्तिसे आत्मतत्त्वका प्रकाश होता है। इस वर्णनसे यज्ञ, याग और तपको मोक्षका साक्षात् हेतु नहीं माना है, इससे ज्ञान और कर्मके समुच्चयका अर्थात् ज्ञान और कर्म ये दोनों मोक्षके साक्षात् कारण हैं इस पक्षका खण्डन होगया ॥ ८ ॥ विद्वान् पुरुष ज्ञानसे परमपुरुषार्थरूप आत्मस्वरूपको पाता है, परन्तु आत्मज्ञानके बिना विषयोंके सुखका अभिलाषी होता है और इस लोकमें किये हुए पुण्य पापका

गृह्य सर्वमनुप्र भुङ्क्ते पुनरेति मार्गम् ॥ ९ ॥ अस्मिँल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते । ब्राह्मणानामिमे लोका धात्वे तपसि तिष्ठताम् १०

सब कर्मोंको ग्रहण करके परलोकमें अर्थात् स्वर्गमें या नरकमें जाता है और वहाँ उनका फल भोगकर फिर इस लोकमें ही आकर जन्म लेता है ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य)-यदि कोई कहे, कि-आत्मतत्त्व के प्रकाशसे क्या लाभ होगा ? तो इसके उत्तरमें सनत्सुजात कहते हैं, कि-आत्मस्वरूपके लाभसे बढ़कर इस जगत्में दूसरा कोई भी श्रेष्ठ लाभ नहीं है । श्रुति भी आत्मस्वरूपके लाभको परमपुरुषार्थ बताती है—"आत्मानं चेद्विजानीयादहमस्मीति पूरुषः । किमिच्छ-न्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥" अर्थात्-जीव यदि ऐसा जान जाय, कि—मैं तो आत्मस्वरूप हूं तो फिर किस इच्छासे और किस की कामनाके लिये शरीरको दुःख देय । परन्तु यदि आत्मस्वरूपकी प्राप्ति नहीं हुई तो जो आत्मा नहीं है ऐसे देहके लाभको पुरुषार्थ मानकर जीव वर्गफलका अभिलाषी होता है 'वृङ्क्ते आत्मानं स्वस्व-विषयोपहारसुखेन आवृणोति इति वर्गः' अपने २ विषयोंका उपहार कर जो आत्माको घरता है उसका नाम वर्ग है, अर्थात् इन्द्रियोंके समूहका नाम वर्ग है, उनका प्यारा फल जो विषयसुख, उसकी इच्छा वाला पुरुष, इस लोकमें किये हुए पुण्य और पापको ग्रहण करके परलोकमें जाता है । श्रुति कहती है-'विद्याकर्मणी समन्वार-भेते पूर्वप्रज्ञा च ।' विद्या, कर्म तथा पूर्वजन्मकी बुद्धि ये सब जीवा-त्माके पीछे २ चलते हैं । जीवात्मा स्वर्गमें पुण्यका फल और नरकमें पापका फल भोगता है तथा उसके पूरा होजाने पर फिर इस लोकमें जन्म लेता है । श्रुति कहती है-'तस्मिन् यावत्सम्पातमुषित्वैतम-ध्वानं पुनर्निवर्तते' जीवात्मा, जब तक अपने कर्म रहते हैं तब तक परलोकमें रह कर उनका फल भोगता है और कर्म निबट जाने पर इस लोकको लौट आता है । "अस्माल्लोकात्परेति अस्मै लोकाय कर्मणे" अर्थात्-कर्म करनेके लिये परलोकमेंसे फिर इस लोकमें आता है । इत्यादि श्रुतियें कर्म समाप्त होने पर जीवका फिर इस लोकमें लौटकर आना कहती हैं ॥ ९ ॥ वेद पढ़नेमें तत्पर रहनेवाले ज्ञानहीन पुरुष इस लोकमें जो तप करते हैं उसका फल वे परलोकमें भोगते हैं,परन्तु शम दम आदि अवश्य कर्तव्य कर्म करनेवाले ज्ञानी ब्राह्मणों को तो ये सब लोक फलदायक होते हैं ॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य)

कर्म एक है परन्तु कर्त्ताके भिन्न होनेसे फल भिन्न होता है, ज्ञानी कर्त्ताको और फल होता है तथा अज्ञानी कर्त्ताको और फल होता है। इस लोकमें जो तपस्या आदि कीजाती है उस सबका फल परलोकमें भोगना होता है, परन्तु ब्रह्मज्ञानियोंके लिए कुछ विशेष नियम है। ज्ञानीका कर्म समृद्ध फलको उत्पन्न करता है और अज्ञानीका कर्म केवल विधिवाक्यमें लिखे फलको ही उत्पन्न करता है, उसको समृद्ध फल कहिये इस लोकमें चित्तकी शुद्धि और ज्ञानकी उत्पत्ति रूप फल प्राप्त नहीं होता है ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य) तुम ज्ञान को ही मोक्षका कारण मानते हो तो श्रुतिमें स्वाध्याय और प्रवचन कहिये वेदके पठन पाठनको मुख्य तप मानकर उसको मोक्षका कारण क्यों कहा है ? श्रुति कहती है कि-"स्वाध्यायप्रवचन एवेति नाको मौद्गल्यः" स्वाध्याय और प्रवचन ही मुख्य तप है ऐसा मुद्गलका पुत्र नाक कहता है। 'तद्धि तपस्तद्धि तपः" वह ही तप है वह ही तप है। इस प्रकार श्रुति आदरके साथ वेदके पठन पाठनको मुख्य तप कहती है, फिर भी "न छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति' वेद पापसे नहीं तारते ऐसा क्यों कहा है ? ऐसी शङ्का सबको होसकती है, इस को दूर करनेके लिए विद्वान् और अविद्वान्के तपका भेद दिखाते हैं, कि-अज्ञानियोंके तपका फल परलोकमें मिलता है परन्तु आवश्यक कर्म करनेवाले ज्ञानी ब्रह्मवेत्ताओंको तो इस लोकमें ही तपका फल मिल जाता है वह फल है-दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ॥१०॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सनत्सुजात! यह तप किसप्रकार समृद्धि वाला और किस प्रकार असमृद्धिवाला होता है, इस बातको जिसप्रकार मैं समझ सकूँ तैसे कहिये ॥ ११ ॥ सनत्सुजातने कहा, कि-जो तपस्या निष्कल्मष कहिये कामना और अश्रद्धा आदिसे रहित होती है वह कैवल्य (मोक्ष) की साधन रूप होनेसे केवल शब्दसे ही कहनेमें आती है और श्रद्धा आदिसे युक्त होने पर भी जो सकाम होती है उसको समृद्ध कहते हैं, परन्तु जो केवल ढोंगके लिए ही कीजाती है उस तपस्यको समृद्ध नहीं कह सकते उसको किंतु ऋद्ध कहते हैं॥*॥ (शा० का तात्पर्य) सनत्सुजात ने कहा, कि-जो तपस्या निष्कल्मष कहिए मनके मैल राग द्वेष आदि से रहित अर्थात् निष्काम है वह तपस्या ही केवल है, कैवल्यदायिनी

तद् ब्रूहि यथा विद्याम तद्वयम् ॥११॥ सनत्सुजात उवाच । निष्कल्मषं तपस्त्वेतत् केवलं परिचक्षते। एतत् समृद्धमप्यृद्धं तपो भवति केवलं ॥१२॥ तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय । तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः ॥ १३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । कल्मषं तपसो ब्रूहि श्रुतं निष्कल्मषं तपः । सनत्सुजात येनेदं विद्यां गुह्यं सनातनम् ॥ १४ ॥ सनत्सुजात उवाच । क्रोधादयो द्वादश यस्य दोषास्तथा नृशंसानि

होनेसे केवल कहलाती है । अथवा केवल शब्दका अर्थ है बीज, जो सकल जगत्का बीज है वह ही केवल है, इसीसे उसका प्राप्त कराने वाला निष्काम कर्म भी केवल है । उहानाने कहा है, कि गुणसाम्य-स्थितं तत्त्वं केवलं त्विति कथ्यते । केवलादेतदुद्भूतं जगत् सद्-सदात्मकम् । अर्थात् गुणसाम्यमें स्थित तत्त्व (महाप्रलय कालमें ब्रह्म) केवल नामसे कहा जाता है, इस केवलसे ही यह सत् असत् रूप जगत् उत्पन्न हुआ है, उस केवलको प्राप्त कराने वाली तपस्या ही सुसमृद्ध है । नहीं तो वह समृद्ध होने पर भी असमृद्ध है । तात्पर्य यह है कि—तपस्या आदि यदि निष्क-लमष न हो या कामदोषसे दूषित हो तो उससे चित्तकी शुद्धि नहीं होती। इस कारण वह कैवल्यदायक ज्ञानको उत्पन्न नहीं करती ॥क्ष॥ (नी०का तात्पर्य)-तप श्रद्धाके साथ होता है तो वह कैवल्य-पदका साधन होनेसे केवल कहलाता है और वही तप श्रद्धा आदि से युक्त होय तो समृद्ध कहलाता है, परन्तु जो तप केवल दम्भके लिये ही होता है उस तपको ऋद्ध कहते हैं । श्रुति कहती है "यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति"। जो विद्या से, श्रद्धासे, और ज्ञानसे किया जाता है वह तप ही महावीर्यवाला होता है । इस श्रुतिमेंके वीर्यवत्तर शब्दमें जो तरप् प्रत्यय है वह यह सूचित करता है, कि-विद्याहीन पुरुषका तप वीर्यवत् नहीं होता है इस कारण वह समृद्ध नहीं होता किंतु ऋद्ध होता है। हे क्षत्रिय! तुम जो मुझसे पूछते हो वह सब तपोमूलक है अर्थात् तपस्यासे मिलता है, वेदवेत्ता पण्डित केवल तपके द्वारा ही परम अमृत कहिये मुक्तिको पाते हैं, अर्थात् तपके द्वारा परलोकमें पहुँच कर क्रमसे मुक्ति पाते हैं ॥ १३ ॥ धृतराष्ट्रने पूछा कि—हे सनत्सुजात ! निष्कल्मष तपकी बात सुनली, परन्तु तपका कल्मष क्या पदार्थ है ? सो मुझसे कहो, जिसको सुनकर मैं अकल्मष तपस्याके द्वारा परम गुप्त सनातन ब्रह्म

दश त्रि राजन् । धर्मादयो द्वादशैते पितृणां शास्त्रे गुणा ये विदिता द्विजानाम् ॥१५॥ क्रोधः कामो लोभमोहौ विधित्साऽकृपाऽसूये मानशोकौ स्पृहा च । ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा, वर्ज्याः सदा द्वादशैते नराणाम् ॥१६॥ एकैकः पर्य्युपास्ते ह मनुष्यान्मनुजर्षभ । लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः ॥ १७ ॥ विकत्थनः स्पृहयालु-

को जान् ॥ १४ ॥ सनत्सुजातने कहा, कि—हे राजन् ! क्रोध आदि बारह प्रकारके दोष और विकत्थन आदि सात प्रकारका नृशंसवर्ग-तपका कल्मष माना जाता है और द्विजोंके जाने हुए धर्म आदि बारह गुण, पितरोंके वंशमें उत्पन्न हुए मनु आदिकी स्तुतियोंमें कहे हैं वे तपके गुण कहलाते हैं ॥ १५ ॥ क्रोध कहिये इच्छामें रुकावट होनेपर चिल्लाना ताड़न आदिसे होनेवाला मनका सन्ताप, काम कहिये स्त्रीके सङ्गकी इच्छा, लोभ कहिये धनके व्ययसे डरना, मोह कहिये कार्य अकार्यका विवेक न होना, विधित्सा कहिये अधिकाधिक लाभ होने पर भी तृष्णाका शांत न होना, अकृपा कहिये निर्दयीपन असूया दूसरेके गुणोंमें दोष निकालना, मान कहिये अपनेको बड़ा मानना, शोक कहिये प्रिय वस्तुका नाश होनेसे मनकी व्याकुलता, स्पृहा कहिये भोगके पदार्थोंको अच्छा मानना, ईर्षा कहिये दूसरेकी उन्नति को न सहना और जुगुप्सा कहिये दूसरेकी निंदा अथवा भयानकता ये बारह मनुष्योंके दोष हैं, योगी वा अयोगी सब मनुष्योंको इनको त्याग करना चाहिये ॥ १६ ॥ हे श्रेष्ठ मनुष्य ! जैसे व्याधा मृगोंमें छिद्रोंको ढूंढा करता है तैसे ही इन दोषोंमेंका एकर दोष सब मनुष्योंके छिद्र खोजनेकी इच्छासे इनकी उपासना करता है ॥ ❀ ॥ (शा० का तात्पर्य) हे राजेन्द्र ! जैसे व्याधे मृगोंके छिद्र खोजा करते हैं और छिद्र पाते ही उनको मारडालते हैं, तैसे ही इन बारह दोषोंमेंसे हरएक दोष शरीरमें घुसनेके लिये निरन्तर छिद्र देखा करते हैं और अवसर पाते ही मनुष्योंका नाश करडालते हैं, जब कि इनमें से हरएक दोष नाश करनेको उद्यत है तो इन सब दोषोंको अवश्य ही त्याग देना चाहिये भगवान् हिरण्यगर्भने कहा है, कि—"यथा पान्थस्य कान्तारे सिंहव्याघ्रमृगादयः । उपद्रवकरास्तद्वत् क्रोधाद्या दुर्गमा नृणाम् ॥" अर्थात् जैसे दुर्गम वनमें सिंहव्याघ्र आदि हिंसक पशु बटोहीको कष्टमें डाल देते हैं, तैसे ही क्रोध आदि दोष भी मनुष्योंके कल्याणमार्गमें विघ्नकारी होते हैं १७ विकत्थन कहिये दूसरेके

मनस्वी विध्रत् कोपी चपलोऽरक्षणश्च । एतान् पापाः षण्नराः पापधर्मात् प्रकुर्वते नात्र सन्तः सुदुर्गे ॥ १८ ॥ सम्भोगसंविद्विषमोऽतिमानी दत्तानुतापी कृपणो बलीयान् । वर्गप्रशंसी वनितासु द्वेष्टा एते परे सप्त नृशंसवर्गाः ॥ १९ ॥ धर्मश्च सत्यञ्च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया । यज्ञश्च दानञ्च धृतिः श्रुतञ्च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य ॥२०॥ यस्त्वेतेभ्यः प्रभवेद् द्वादशेभ्यः सर्वामपीमां पृथिवीं

गुणोंपर आक्षेप करने वाला और अपने गुणोंकी वृद्धिको कहनेवाला स्पृहयालु कहिये उद्योग करके परस्त्री और परधन आदिको भोगने की इच्छा वाला, मनस्वी कहिये बड़े भारी घमण्डके कारण दूसरेका अपमान करनेको उद्यत, कोपकारी कहिये बिना ही कारणके क्रोध करनेवाला, चपल कहिये मित्रता आदि किसी काममें अविचल न रहनेवाला और अरक्षण कहिये शक्ति होनेपर भी स्वीकार करेहुए स्त्री आदिका पालन न करनेवाला ये छः पापी मनुष्य सुदुर्ग कहिये इस लोकके सङ्कटसे अथवा परलोकके सङ्कटसे भयभीत हुए बिना पाप-कर्म ही किया करते हैं ॥१८॥ स्त्री सम्भोग आदिके विषयमें पुरुषार्थ बुद्धि होनेसे दुर्दशामें पड़ाहुआ, बड़ा अभिमानी, दान देनेके अनन्तर 'मेरे धनका नाश होगया' ऐसा सन्ताप करने वाला, कृपण कहिये प्राणांत होने पर भी धनके व्ययको न सहनेवाला, पहिले राजाओंकी अपेक्षा प्रजासे अधिक कर लेने वाला, वर्गप्रशंसी कहिये दूसरेके तिरस्कारकी प्रशंसा करनेवाला अर्थात् दूसरोंके दुःखमें सुखी होने वाला और पतिव्रता स्त्रीसे द्वेष करनेवाला ये सात और पहिले छः ये सब मिलकर तेरहका नृशंसोंवर्ग कहलाता है ॥ १९ ॥ वर्ण तथा आश्रमके अनुसार सन्ध्यावन्दन आदि धर्म, सत्यभाषण, श्रोत्र त्वचा आदि इन्द्रियोंको वशमें रखनारूप दम, कृच्छ्चान्द्रायण आदि तप, दूसरेके गुणोंको देखकर प्रसन्न होनारूप अमात्सर्य, लज्जा, क्रोधके कारण होने पर भी क्रोध न करनारूप तितिक्षा, दूसरेके गुणों पर भक्ति रखनारूप अनसूया, ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ, सुपात्रोंको श्रद्धा साथ दान देना बड़ी भारी आपत्ति आपड़ने पर भी व्रत आदिका त्याग न करना, अर्थ सहित वेदोंका पढ़ना, ये बारह ब्रह्मको पानेकी इच्छा वाले मनुष्योंके गुण हैं॥२०॥ जो इन बारह गुणोंके ऊपर अपनी प्रभुता कर सकता है वह सकल गुणोंसे युक्त मनुष्य सब पृथ्वीके ऊपर राज्य करता है तथा जो पुरुष ऊपर कहे हुए बारह गुणोंमें

स शिष्यात् । त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वर्धितो यस्तस्य स्वमस्तीति स वेदितव्यः ॥ २१ ॥ दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम् । तानि सत्यमुखान्याहुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ॥२२॥ दमो ह्यष्टादशगुणः प्रतिकूलं कृताकृते । अनृतं चाभ्यसूया च कामार्थौ च तथा स्पृहा ॥ २३ ॥ क्रोधः शोकस्तथा तृष्णा लोभः पैशुन्यमेव च । मत्सरश्च विहिंसा च परितापस्तथाऽरतिः ॥ २४ ॥ अपस्मारश्चातिवादस्तथा सम्भावनात्मनि । एतैर्विमुक्तो दोषैर्यः स दान्तः सद्भिरुच्यते ॥ २५ ॥ मदोऽष्टादशदोषः स्यात्त्यागो भवति षड्विधः । विपर्ययाः स्मृता एते मददोषा उदाहृताः ॥ २६ ॥ श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागस्तृतीयो दुष्करो भवेत् ।

तीनका या दोका अथवा एकका अधिकारी होता है उसको ऐश्वर्यवान् जानो ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य) जिसमें ऊपर कहे सब गुण देखनेमें आवें वह ब्रह्मवेत्ता और सत्काम आदि गुणों वाला होता है। श्रुति कहती है-"यस्तमात्मात्मानमनुविद्य विजानाति स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्" जो जीवात्मा आत्मस्वरूपको जान कर ज्ञानी होता है वह सब कामनाओंको पाता है ॥ २१ ॥ दम, दान और प्रमाद न करना इन तीनमें अमृत भरा है अर्थात् ये तीन मुक्ति के आधार हैं जो विवेकी ब्राह्मण हैं वे इनको सत्यका मुख कहते हैं२२ दममें अठारह गुण रहते हैं,कृत तथा अकृत कर्मोंमें प्रतिकूलता कहिये वैदिक कर्मोंमें अश्रद्धा और आलस्य आदि तथा व्रत उपवास आदि में क्षुधा और जिह्वाकी चंचलता आदि, मिथ्या बोलना दूसरेके गुणों में दोष लगाना, स्त्रीके संगकी इच्छा करना, धन पानेके लिए बड़ा भारी उद्योग करना, विषयोंको भोगनेकी इच्छा, क्रोध, शोक, तृष्णा लोभ, चुगलीखाना, डाह, मार काट करना, परिताप, सत्कारकी इच्छा न करना ॥ २४ ॥ करनेके कामको भूल जाना रूप अपस्मार दूसरोंकी बुराई करना और अपनेको प्रतिष्ठित मानना इन दोषोंसे जो पुरुष बचा रहता है उसको सत्पुरुष दान्त कहते हैं ॥ २५ ॥ जैसे दममें अठारह गुण समाये हुए हैं, ऐसे ही दमसे उलटे मदमें अठारह दोष समाये हुए हैं, त्याग कहिये दान छः प्रकारका है और इसके विपरीत छः दोष कहे हैं, इस प्रकार सब मिलकर मदके चौबीस दोष कहे हैं ॥ २६ ॥ छः प्रकारका त्याग श्रेष्ठ कहा है, परन्तु उसमें तीसरा त्याग बड़ा ही कठिन है, मनुष्य इस तीसरे पदार्थके त्यागसे अवश्य ही दुःखोंसे तर जाता है, क्योंकि-उस त्यागके सेवनसे ऐसा

तेन दुःखं तस्यैव भिन्नं तस्मिन् जितं कृते ॥ २७ ॥ श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः श्रियं प्राप्य न हृष्यति। इष्टापूर्ते द्वितीयं स्यान्नित्यवैराग्ययोगतः ॥२८॥ कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः। अप्यदान्यं यदन्त्येतं स तृतीयो गुणः स्मृतः ॥२९॥ त्यक्तैर्द्रव्यैर्यद्भवति नोपयुक्तैश्च

माना जाता है, कि-मानो द्वैतको जीत लिया ॥ ✽ ॥ (नी० का तात्पर्य) छः प्रकारके त्यागमें तीसरा कामनाका त्याग अधिक श्रेष्ठ माना जाता है । क्योंकि-उसको त्यागनेसे ।दुःखदायक द्वैतभाव दूर होजाता है । श्रुति कहती है-"द्वितीयाद्वै भयं भवति" द्वैतभावसे भय होता है-"यत्र अन्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोति तदल्पमथ यदल्पं तद्दुःखम्" जहाँ अन्य बुद्धिसे देखा जाता है और अन्य बुद्धिसे सुना जाता है वह अल्प (तुच्छ) माना जाता है और जो अल्प है वह दुःखरूप है, इत्यादि श्रुतियें भेदको दुःख रूप कहती हैं और कामनाओंका त्याग करनेसे ही सब दुःखोंकी निवृत्तिरूप मोक्ष मिलता है । श्रुति भी कहती है-"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।" जीवात्माके हृदयमें जो कामनायें भरी हुई हैं वे सब जब नष्ट होजाती हैं तब मरणधर्मा जीवात्मा अमर होजाता है और इस लोकमें ही इस शरीरसेही परब्रह्मको पाजाता है ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! छः प्रकारके श्रेष्ठ त्यागका वर्णन इसप्रकार है,कि-लक्ष्मीको पाकर भी जो पुरुष गर्व नहीं करता है वह पहिला त्याग है,वैराग्यके कारण इष्टापूर्त कर्मका त्याग दूसरा त्याग है॥✽॥ (शा० का तात्पर्य)-श्रुतिमें कहेहुए यज्ञ आदिमें जो धन उठता है उसका नाम इष्ट है,स्मृतिमें कहेहुए कामोंमें जो धन उठता है वह पूर्त्त वा आपूर्त कहलाता है । बावड़ी, कूप, तालाव आदि खुदवाना और इसको सब प्राणियोंके उपकारके लिये दान कर देना, सर्वस्वदान करदेना, प्राणियोंके सुखके लिये धर्मशाला आदि बनवाना और दरिद्रोंका पालन पोषण करना यह सब स्मृतियोंमें कहा हुआ कर्म आपूर्त कहलाता है ॥ २८ ॥ और हे राजेन्द्र ! कामनाका त्याग तीसरा त्याग कहलाता है, पण्डित जिस गुणसे पुरुषको अनिर्वचनीय कहते हैं वह यह तीसरा कामत्यागरूप गुण है ॥ ✽ ॥ (शा० का तात्पर्य)-तत्त्वबुद्धि और वैराग्यके कारण संसारको असार जान कर धनको और कामनाओंका त्यागना तीसरा त्याग है॥२९॥ वैराग्य के द्वारा स्त्री आदि भोग्य वस्तुओंका त्याग करनेसे जो कामका

कामतः। न च द्रव्यैस्तद्भवति नोपयुक्तैश्च कामतः ॥३०॥ न च कर्मस्वसिद्धेषु दुःखं तेन च न ग्लपेत्। सर्वैरेव गुणैर्युक्तो द्रव्यवानपि यो भवेत्॥३१॥अपि ये च समुत्पन्ने व्यथां जातु न गच्छति इष्टान् पुत्रांश्च दारांश्च न याचेत कदाचन ॥ ३२ ॥ अर्हते याचमानाय प्रदेयं तच्छुभं भवेत्। अप्रमादी भवेदेतैः स चाप्यष्टगुणो भवेत् ॥३३॥ सत्यं ध्यानं समाधानं चोद्यं वैराग्यमेव च। अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च तथा संग्रहमेव च ॥ ३४ ॥ एवं दोषा मदस्योक्तास्तान्दोषान् परिवर्ज्जयेत्। तथा त्यागोऽप्रमादश्च स चाप्यष्टगुणो मतः ॥ ३५ ॥ अष्टौ दोषाः प्रमादस्य तान्दोषान्परिवर्ज्जयेत्। इन्द्रियेभ्यश्च पंचभ्यो मनसश्चैव भारत।

त्याग होता है वह ही यथार्थ काम त्याग कहलाता है, परन्तु कामना के साथ इच्छानुसार विषयोंका भोग करनेसे अथवा बहुतसा धन-सञ्चय करनेसे अथवा विषयभोगके लिये सब धन खरच डालनेसे कामका त्याग नहीं होता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य सकल गुणोंसे युक्त और धनवान् हो उसके सब काम सिद्ध न हों तो इसके लिये खेद न करे तथा मनमें ग्लानि भी न करे ॥ ३१ ॥ कीर्त्ति धन आदिके नाश का अवसर आपड़े तो भी जो कभी खिन्न नहीं होता है यह चौथा गुण कहलाता है और किसीसे भी याचना न करना पाँचवाँ गुण है अपने प्यारे पुत्र भाई और स्त्रीसे भी कभी याचना न करे ॥ ३२ ॥ योग्यता वाले याचकको दान देय तो वह शुभदायक होता है, यह छठा गुण गिनाजाता है,इस छः प्रकारके त्याग गुणसे पुरुष अप्रमादी होता है, इसमें जोअप्रमाद (सावधान) कहा है वह आठ गुणवालो है ॥ ३३ ॥ सत्यभाषण, आत्मस्वरूपका ध्यान, संप्रज्ञात असंप्रज्ञात समाधिरूप समाधान, तर्क, वैराग्य, अस्तेय कहिये चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और असंग्रह (बहुतसा सामान इकट्ठा न करना) ये आठ अप्रमादके गुण हैं ॥ ३४ ॥ ऊपर मदके जो दोष गिनाये हैं उन दोषोंको त्याग देय तथा त्याग और अप्रमादके जो आठ गुण कहे हैं उनको स्वीकार करे॥३५॥ हे भरतवंशी राजन्! पाँच इन्द्रियोंसे मनसे तथा भूतकाल और भविष्यत्कालके दुःखोंसे आठ प्रकारका प्रमाद उत्पन्न होता है, इस लिये जो प्रमादोंमेंसे छूटता है वह सुखी होता है ॥छ॥ (नो०० का तात्पर्य) नेत्र, जीभ, नासिका, त्वचा और कान ये पाँच ज्ञानेन्द्रियें और छटा मन इन छः से अपने २ विषयोंमें रागद्वेषके द्वारा उत्पन्न होनेवाले छः प्रमाद तथा भूतकालमें उत्पन्न हुए पुत्रके मरणसे

अतीतानागतेश्चैव मुक्त्युपेतः सुखी भवेत् ॥ ३६ ॥ सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः । तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम् ॥ ३७ ॥ निवृत्तेनैव दोषेण तपोव्रतमिहाचरेत् । एतद्धातृकृतं वृत्तं सत्यमेव सतांव्रतम् ॥ ३८ ॥ दोषैरेतैर्वियुक्तस्तु गुणैरेतैः समन्वितः । एतत् समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम् ॥ ३९ ॥ यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र संक्षेपात् प्रब्रवीमि ते । एतत् पापहरं पुण्यं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ ४० ॥ धृतराष्ट्र उवाच । आख्यानपंचमैर्वेदैर्भूयिष्ठं

हुआ दुःखरूप प्रमाद और पुत्रकी इच्छा होने पर पुत्र उत्पन्न न होने से होनेवाला क्लेशरूप प्रमाद यह आठ प्रकारका प्रमाद है, इससे जो बचा रहता है वह सुखी होता है ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम सत्यात्मा होजाओ, सत्य कहिये ब्रह्म आत्मा कहिये चित्त अर्थात् ब्रह्ममें एकाग्रचित्त होजाओ क्योंकि-सब लोक सत्यके आधार पर टिके हुए हैं, पण्डित परलोकको सत्यमुख कहते हैं और अमृतरूप मुक्ति भी सत्य में ही भरी हुई है ॥ ३७ ॥ विधाताकी रची हुई मर्यादा यह है, कि-दोषोंके दूर होने पर ही इस लोकमें तपकी सिद्धि होती है,इसकारण दोषोंको दूर करके ही तप करे, साधु पुरुषका व्रत सत्यरूप ब्रह्म ही है ॥ ३८ ॥ पुरुष जब ऊपर कहे हुए दोषोंसे छूटजाता है और ऊपर कहे हुए गुणों युक्त होजाता है तब ही उसका कैवल्यसाधन तथा अत्यन्त समृद्धिवाला कहिये ब्रह्मको प्राप्त करानेवाला तप होता है ३९ हे राजेन्द्र ! तुमने जो बात पूछी थी, वह मैंने तुमसे संक्षेपमें कहदी, यह पापका नाश करनेवाली और शुद्ध कहिये निष्काम है ऐसा निष्काम तप और व्रत जन्म मरण और जराको दूर कर सकता है, जन्म मरण जराके पार होते ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ ४० ॥ धृतराष्ट्रने पूछा कि-हे महात्मन् ! इतिहास आदि कथाएँ और ऋग्वेद आदि वेद भूमा ब्रह्मको चराचर जगत् रूपसे वर्णन करते हैं, चतुर्वेदी चार वेद्य (जानने योग्य वस्तु) को कहते हैं त्रिवेदी तीन वेद्योंका वर्णन करते है, द्विवेदी दो वेद्योंका वर्णन करते हैं, एकवेदी वेद्यका वर्णनकरते हैं, अनृचवादी ब्रह्माद्वैतका वर्णन करते हैं, इनमें ऐसा कौन है, कि जिस को मैं ब्रह्मवेत्ता समझूँ ॥ ● ॥ (शा० का तात्पर्य) धृतराष्ट्रने कहा कि-हे ऋषे ! कोई २ आख्यान कहिये इतिहासको पाँचवाँ वेद कहते हैं, ऐसे ब्राह्मण पंचवेदी कहलाते हुए बड़ी प्रतिष्ठा पाते हैं, कोई चतुर्वेदी हैं कोई त्रिवेदी हैं, कोई द्विवेदी हैं, कोई एकवेदी हैं और कोई अनृच

कथ्यते जनः । तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथाऽपरे ॥ ४१ ॥

कहिये ऋचाहीन अवेदी हैं, इन सबोंमें कौनसा ब्राह्मण श्रेष्ठ है ? मैं किसको श्रेष्ठ मानूं ॥ ७ ॥ (नी० का तात्पर्य)-पीछे कहे अनुसार विद्याके साधनोंको जान लेने पर, अध्ययन किये हुए वेदोंमेंसे राजा धृतराष्ट्रको अनेकों वेद्य (जानने योग्य बातें) प्रतीत हुए इस कारण सनत्सुजातसे पूछा, कि-मैंने वेदाध्ययन करके उसमें अनेकों वेद्य जाने हैं, उनमें जो श्रेष्ठ वेद्य हो मुझे बताओ । चारों वेद और आख्यान कहिये इतिहास पुराण आदि तो "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह सब सर्वथा ब्रह्मरूप है । ब्रह्मैवेदं सर्वम्' यह सब जगत् ब्रह्मरूप है । 'पुरुष एवेदं सर्वम्" यह सब पुरुषरूप है । इत्यादि वचनोंसे नाम तथा रूपात्मक प्रपञ्चसे अधिक श्रेष्ठ भूमा नामक परब्रह्म है । वही स्थावर जङ्गम जगत्रूपसे हुआ है, ऐसा कहा जाता है । चार वेद्योंको जानने वाले चतुर्वेदी कहते हैं, कि-शरीरपुरुष छन्दःपुरुष (चतुर्वेदस्वरूप) वेदपुरुष (कर्ममें विनियोग करानेवाले ब्राह्मणग्रन्थ) और महापुरुष वे चार वेद्य कहिये जानने योग्य हैं । तीन वेद्योंको जानने वाले त्रिवेदी कहते हैं, कि-क्षर, अक्षर और उत्तमपुरुष ये तीन तत्त्व वेद्य हैं । श्रुति भी कहती है-"क्षरं प्रधानं अमृताक्षरं परः क्षरात्मानावीशते देव एकः" प्रधान कहिये प्रकृति क्षर कहिए नाशवान् है और कूटस्थ जीव अक्षर कहिये अविनाशी है, इन दोनोंको एक ईश्वर अपने वशमें रखता है । तीन वेद्यके विषयमें भगवद्गीतामें भी कहा है-"क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते । उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" ॥ सब प्राणी क्षर कहिये नाशवान् कहलाते हैं, कूटस्थ अक्षर कहलाता है और उत्तम पुरुष इन दोनोंसे अन्य है, वह परमात्मा नामसे कहा जाता है । दो वेद्यको माननेवाले द्विवेदी कहते हैं, कि-"द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत्" दो ब्रह्म जानने योग्य हैं,एकशब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म । वाच्य (अर्थ) और वाचक (शब्द) का अभेद सम्बन्ध होनेके कारण इस श्रुतिमें शब्द ब्रह्मसे नामरूपवाले सब जगत्प्रपंचको कहा है और परब्रह्म उससे रहित है, ये दोनों वस्तु वेद्य हैं ऐसा द्विवेदी कहते हैं । एकवेदी कहते हैं, कि-एकधैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन" एक प्रकारकी ही दृष्टि रखनी चाहिए, यहाँ अनेक कुछ है ही नहीं, ऐसा कहकर यही दिखाया है, कि-वेद्य वस्तु एक ही है । ऋक् कहिए जो ईश्वर उसको जगत्से

भिन्न जानते हैं वे अनूच कहिए अद्वैतब्रह्मवादी हैं, वे कहते हैं, कि-एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा वेद्य है ही नहीं। एकवेद्य वादियोंके मतमें भी व्युत्थानदशा कहिये व्यवहार दशामें द्वैत होता है और समाधिमें उस का बाध होजाता है, परन्तु अनूच कहिये ब्रह्माद्वैतवादियोंके मतमें व्युत्थान और समाधि दोनों अवस्थाओंमें अद्वैतभाव ही होता है दोनोंमें बस इतना ही भेद है। इन छहोंमें ऐसा तत्त्वज्ञानी कौन है, कि-जिसको मैं ब्रह्मवेत्ता समझूँ इन छहोंमें पहिला पक्ष विशेषयुक्त अद्वैतपक्ष है दूसरा सांख्य और मीमांसकोंका निरीश्वरपक्ष है। त्रिवेदियोंका पक्ष जीव, ईश्वर और जगत् इन तीन भेदोंको मानने वाले पातञ्जलों (योगियों) का पक्ष है। द्विवेदियोंका जो मत है वह कार्य रूपसे भेद और कारणरूपसे अभेद माननेवाले औडुलोमीका मत है, वे कार्यरूपसे भेदको भी सत्य मानते हैं और कारणरूपसे अभेदको भी सत्य मानते हैं। सुवर्णमेंसे बनेहुए कड़े कुण्डल आदि रूपसे भेद भी सत्य है और सुवर्णरूपसे उन सबोंमें अभेद भी सत्य है ऐसे ही कार्य स्वरूप जगत्रूपसे देखें तो भेद भी सत्य है और कारणस्वरूप ब्रह्म-रूपसे देखें तो अभेद भी सत्य है। एक वेदके मतमें भी किञ्चित् बाध करने योग्य अनिर्वचनीय व्यावहारिक द्वैत तो है ही परन्तु वह द्वैत प्रातिभासिक और थोड़े समयमें नष्ट होनेवाला अर्थात् रज्जुमें प्रतीत होने वाले सर्पकी समान क्षणभरमें नष्ट होजानेवाला नहीं है किंतु वह विलक्षण है और मोक्षकाल पर्यन्त अबाध्य (नष्ट न होनेवाला) है। अनूचवादी कहिये दृष्टि सृष्टिवादी (जब तक दृष्टिसे दीखे तब तक ही सृष्टिको माननेवाले) जैसे रज्जुमें सर्पकी और मालाकी कल्पना की जाती है तैसे ही आत्मामें भी जाग्रत् और स्वप्न, समान सत्तासे कल्पना किये हुए हैं ऐसा मानते हैं। इसमें "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चः प्रपञ्च्यते" प्रपञ्चरहित परमात्माका विवेचन किया जाता है। वेदांतमें कहेहुए इस न्यायके अनुसार पहिले चार पक्षोंमें अध्यारोपदृष्टिके द्वारा व्यवहारके पारमार्थिकपनेका (सत्यता) स्थापन कियागया है। अंतकेपक्षमें अपवाद दृष्टिके द्वारा व्यवहारको मिथ्या मानागया है और एक वेद्यको मानने वाले एकवेदके मतमें अनिर्वचनीय ब्यामिश्र दृष्टिके आधार पर शास्त्रकी प्रवृत्ति हुई है। भगवान् वेदव्यासजी ईश्वरका परिणामीपना दिखाते हुए कहते हैं, कि "आत्म कृतेः परिणामात्" परमात्मा पहिले सिद्ध थे पीछे वह स्वयं जगत्रूप

। परिणामको प्राप्त हुए जिस समय ब्रह्ममें जगत्‌का अध्यारोप किया
उस समय परिणामदृष्टिको सूचित किया है परिणामदृष्टिका अर्थ
यह है, कि-जैसे सोना कुण्डलरूपसे परिणामको प्राप्त होता है तैसे
ही ब्रह्म जगत्‌रूपसे परिणामको प्राप्त है। श्रुति भी कहती है "तदा-
त्मानं स्वयमकुरुत सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्" उस समय परमात्मा
ने स्वयं अपने आत्माको जगत्‌रूप किया। उसको सत्य कहें तो
जाग्रत् अवस्था आदि तथा रज्जु आदिकी समान और असत्य कहें तो
स्वप्न तथा डोरीमें भासनेवाले सर्पकी समान प्रातिभासिक है इस
प्रकार दोनों रूपसे स्वयं सत्य कहिये तीनोंकालमें अबाधित ब्रह्म ही
है। भगवान् व्यासजी सृष्टिकी विचित्रता दिखाते हुए कहते हैं कि-
"तथा आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि" स्वप्नके समय (निद्रामें) तथा
जाग्रदवस्थामें माया, इन्द्रजाल, मृगतृष्णाके जल आदि बड़े ही प्रसिद्ध
और विचित्र हैं ऐसी अनेकों सृष्टियें आत्मामें देखनेमें आती हैं। वे
असद सृष्टियें नहीं हैं, ऐसा भी नहीं कहसकते क्योंकि-उन सृष्टियोंका
हम अनुभव करते हैं तथा ज्ञान होने पर उसका तुरन्त नाश होजाता
है, इसकारण उसको सत्य भी नहीं कहसकते, ऐसे ही परब्रह्ममें भी
विचित्र और अनिर्वचनीय अनेकों सृष्टि हुआ करती हैं। जगत्‌का
अनिर्वचनीयपना दिखाती हुई श्रुति कहती है, कि—"को अद्धा वेद
क इह प्रवोचत् कुतआजाता कुत इयं विसृष्टिः।" उसको साक्षात्
कौन जानता है? उसका वर्णन कौन कर सकता है? यह सृष्टि कहाँ
से उत्पन्न हुई? इसको किसने रचा? अर्थात् जगत्‌को कोई नहीं
जानता है और न कोई उसका वर्णन कर सकता है, इसका नाम व्या-
मिश्र दृष्टि है। भगवान् बादरायण व्यामिश्र दृष्टिका वर्णन करते हुए
कहते हैं, कि—"आह च तन्मात्रम्" श्रुति कहती है कि-परमात्मा
चैतन्यमात्र है अर्थात् विलक्षण रूपान्तरसे रहित निर्विशेष रूप है।
"स यथा सैंधवघनोऽनन्तरोऽबाह्यःकृत्स्नो रसघन एवं वा अरेऽय-
मात्मा कृत्स्नः प्रज्ञाघनः।" जैसे सैंधेलवणके टुकडेको जलमें डाला
जाय तो वह गलकर जलमें ही लीन होजाता है। वह सैंधेलवणका
टुकड़ा जैसे बाहर तथा भीतरके भागमें लवण रूप ही होता है तैसे
ही परमात्मा भी बाहर तथा भीतर सर्वत्र चैतन्यघन ही है। जलमें
डालाहुआ सैंधेका टुकड़ा जैसे अपने उपादान कारणरूप जलमें गल
जाता है, अर्थात् उसमें समाजाता है यदि ऐसा न हो तो कलशके जलमें

जैसे दूसरा जल डालनेपर विशेष जल होजाता है तैसेही समुद्र आदिके जलमें भी अधिकता होनी चाहिये परन्तु अधिकता होती नहीं है। यह कारणरूप और कार्यरूप दोनों रूपोंसे रहित केवल रसही तन्मात्रारूपसे जलमें स्पष्टरूपसे दीखता है, ऐसेही कार्यकारणात्मक दोनों रूपसे रहित यह प्रपञ्च भी समाधिमें केवल परब्रह्म ही प्रतीत होता है। इन तीन दृष्टियोंसे मनुष्यको परब्रह्मके स्वरूपका उपदेश करनेके लिये भगवान् वेदव्यासने शारीरक सूत्रोंमें विचार किया है, और इसका विस्तार संक्षेप शारीरकमें इसप्रकार किया है-"आरोपदृष्टिरपवाददृष्टिरेवं व्यामिश्रदृष्टिरिति दृष्टिविभागमेनम्। संगृह्य सूत्रकृदयं पुरुषं मुमुक्षुं सम्यक् प्रबोधयितुमुत्सहते क्रमेण ॥" अर्थात्-सूत्रकार भगवान् वेदव्यासजी मुमुक्षु पुरुषोंको परमात्माके सत्य स्वरूपका उपदेश करनेके लिये आरोपदृष्टि, अपवाददृष्टि और व्यामिश्रदृष्टि इन तीन दृष्टियोंको क्रमसे कहनेका आरम्भ करते हैं। "आरोपदृष्टिरुदिता परिणामदृष्टिर्द्वैतोपशांतिरपवाददृष्टिरन्त्यामध्ये विवर्तविषयव्यामिश्रदृष्टिर्व्यामिश्रदृष्टिरधरोत्तरभूमिभावात् ॥" अर्थात्—आरोपदृष्टिको ही परिणामदृष्टि नामसे कहा है अर्थात् ब्रह्ममें प्रपंचका अध्यारोप करके इस दृष्टिके द्वारा परब्रह्मको प्रपंचरूपसे जाने, अंतकी अपवाद दृष्टि कही है, इसमें सकल द्वैतभावकी शांति होजाती है और अद्वैत परमात्माका साक्षात्कार होता है तथा मध्यमें आरोप तथा अपवाद इन दोनों दृष्टियोंसे मिलीहुई व्यामिश्रदृष्टि होती है अर्थात् पहिले परब्रह्ममें जगत्का आरोप कियाजाता है और फिर तुरंतही उसका अपवाद कियाजाता है इस प्रकार दोनों विचारोंसे युक्त होनेसे यह व्यामिश्रदृष्टि कहलाती है आरोपदृष्टि अधम है, व्यामिश्रदृष्टि मध्यम है और अपवाददृष्टि उत्तम कहलाती है कहाभी है-'तत्त्वविदवमानदृष्टिरधमा नरवक्षनिर्णयमानरद-प्रच्युतिविभ्रमक्षतिकरी तदनन्तरदृष्टिर्मता। जीवेश्वरमुमुक्षुभेदगणितो व्यामिश्रदृष्टिर्द्विधा। भिन्ना तत्र च पूर्वपूर्वविलयाद्रूपोत्तरं त्रिविधेषु' अर्थात् प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके द्वारा प्रपंचका ज्ञान करानेवाली होनेसे आरोपदृष्टि अधम कहलाती है, क्योंकि—यह अविवेकी आदिके भी साधारण पुरुषोंके जानने योग्य और मोक्षरूप पुरुषार्थमें अनुपयोगी, अनर्थ करने वाली, देह आदि मिथ्या पदार्थोंको सत्य बतानेवाली है तथा प्रपंचके सत्यपनेका नाश करनेवाली होनेसे व्यामिश्रदृष्टि मध्यम कहलाती है, क्योंकि-यह प्रपञ्चका मिथ्यापना सिद्ध करती है, और

ब्रह्मका विचार करनेमें उपयोगी वह व्यामिश्रदृष्टि विवेक तथा शम दम आदिवाले पुरुषोंके आचारसे रहती है, परम्परासे मोक्षमें उपयोगी होती है और आत्मतत्त्वका ज्ञान कराती है। अपवाददृष्टि उत्तम गिनीजाती है, क्योंकि-वह प्रपञ्चके सत्यपनेको दूर करती है, ब्रह्ममें प्रपंचका भ्रम उत्पन्न करनेवाली विवर्त्तदृष्टिका नाश करती है, उत्तम विवेकी पुरुषोंका आश्रय करकेरहती है, द्वैतमात्रके भ्रमको दूर करके साक्षात् मोक्षकी साधनरूप है और इस ही कारण परमानन्दस्वरूप परमात्माका ज्ञान करानेवाली है। इन दृष्टियोंमें व्यामिश्र दृष्टि के दो भेद हैं एक एकजीववादी और दूसरा बहुजीववादी। एक जीववादी कहते हैं कि--मैं एक ही सब कार्य और कारणोंका साक्षी हूँ, अविद्या कहिये अज्ञानसे मुक्त, अमुक्त ज्ञानी, अज्ञानी अनेकों ईश हैं अनेकों जीव हैं इस प्रकार कल्पना किया हुआ यह जगत् अनेकों रूप वाला देखनेमें आता है और मुझ एकका ज्ञान होनेसे यह सब जगत् शांत होजाता है। बहु जीववादी कहते हैं कि-जीव असंख्यों हैं और वे क्रमसे मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छावाले) होते हैं और संसारमेंसे छूटने के मार्ग भी अनादि और अनन्त हैं। इन तीनों दृष्टियोंमेंसे पहिली २ दृष्टिका जैसे २ लय होजाता है तैसे२ अगली२ दृष्टिकी प्राप्ति होती जाती है। "परिणामबुद्धिमपमृद्य पुमान्, विनिवर्त्तयत्यथ विवर्त्तसतिम्। उपमृद्य तामपि पदार्थधिया परिपूर्णदृष्टिमुपसर्पति सः।" अर्थात् विवेकी पुरुष परिणामदृष्टिका लय करके विवर्त्तदृष्टिको पाता है और तत्त्ववस्तुके ज्ञानसे इस विवर्त्तदृष्टिका भी लय करके परिपूर्ण दृष्टिको अर्थात्-शुद्ध तत् और त्वम् पदार्थका निश्चय करके प्रपञ्च रहित परब्रह्मरूपा अभेद दृष्टिको पाता है। "अथ शब्दसूचितमुमुक्षुरिमं,खलु दृष्टिभेदमुदितक्रमतः। उपढौकते विगलिताखिलधीरवतिष्ठते निजमहिम्नि ततः॥" अर्थात्—अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। सूत्रमेंके शब्दसे सूचित कियाहुआ विवेक वैराग्य आदि गुणोंवाला, श्रवणका अधिकारी मुमुक्षु पुरुष,ऊपर कहीहुई तीनोंदृष्टियोंको क्रमसे पाता है अर्थात्-आरोपदृष्टिको लाँघकर विवर्त्तदृष्टिको पाता है और विवर्त्तदृष्टि मेंसे अपवाददृष्टिको पाता है तब उसकी सांसारिक सब दृष्टि नष्ट हो जाती है और वह अपने आत्मस्वरूपमें स्थिति करता है। "परिणाम इत्यथ निवर्त्त इति, वहवोऽहमेव च मुमुक्षुरिति। परिपुष्कलंच परमं पदमित्यवगत्य तिष्ठति महिम्नि निजे॥" अर्थात्-मुमुक्षु पुरुष पहिले

सृष्टिका वर्णन करने वाले वाक्योंसे जैसे कि-"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" जिससे ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं "येन जातानि जीवन्ति" जिससे उत्पन्न हुए जीवित रहते हैं इत्यादि वचनोंका विचार करनेसे घड़े सकोरे आदिका जैसे मट्टी उपादान कारण है तैसे ही ब्रह्म भी इस जगत्‌का उपादान कारण है, ऐसा समझ कर ब्रह्ममें जगत्‌का आरोप करता है, परन्तु तदनन्तर जब 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन' यह सब ब्रह्मरूपही है, उसके विना नाना प्रकारका कुछ है ही नहीं। "वाचारम्भणो विकारो नामधेयं मृत्तिकेव सत्यम्" वाणीसे जो नाम बोलाजाता है वह विकाररूप है परंतु सत्य एक मट्टी ही है इत्यादि निषेधवाक्योंका अर्थात् ब्रह्म जगत्‌रूप नहीं है ऐसे वाक्योंके अर्थका तात्पर्य देखता है, तब सृष्टिका वर्णन करनेवाले वाक्य, विवर्त्तरूपको जताते हैं अर्थात्--जैसे सीपीमें चाँदीका मिथ्या भ्रम होता है तैसे ब्रह्ममें जगत्‌का मिथ्या भ्रम हुआ है, ऐसा जताते हैं। ब्रह्ममें जगत्‌की आरोपबुद्धि किये विना विवर्त्त-बुद्धिका निश्चय नहीं होसकता, क्योंकि-जिसमें जिस वस्तुका ज्ञान हुआ हो उसमें उस ही वस्तुका निषेध किया जाय तब ही उसका मिथ्यापना स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है, इसलिये पहिले ब्रह्ममें प्रपंच को आसक्तिरूप आरोपबुद्धि करनेकी आवश्यकता है। इसपर ब्रह्मसे प्रपंच विवर्तरूप करके परिणामको प्राप्त होता है, ऐसी बुद्धि किये विना शुद्ध आत्मतत्त्वका साक्षात्कार नहीं होता है। इसप्रकार परि-णाम और विवर्त्त इन दोनों दृष्टियोंके ज्ञानकी आवश्यकता होनेके कारण पहिले वे दोनों दृष्टियें दिखायी हैं। इसमें विवर्त्तबुद्धिके एक जीववाद और बहुजीववाद ऐसे दो भेद हैं, उन दोनोंको यथार्थ रीति से जान लेनेपर मुमुक्षु अपने स्वरूपमें स्थिति करता है। "परिणाम-धियो विवर्त्तधीरपवादात्मतया व्यवस्थिता। सकलद्वयमर्दिनी धियं प्रति सारोपगिराऽभिधीयते।" अर्थात्-सीपीमें चाँदीका ज्ञान होना वा डोरीमें सर्पका भ्रम होना रूप विवर्त्तबुद्धि, परिणामबुद्धिका अर्थात् परब्रह्म ही जगत्‌रूप होरहा है ऐसी बुद्धिका नाश करनेवाली है और द्वैतमात्रका नाश करनेवाली अपवाददृष्टि कहिये ब्रह्मके सिवाय कोई दूसरा पदार्थ है ही नहीं ऐसी बुद्धि विवर्त्तबुद्धिका अर्थात् व्यामिश्र-दृष्टिरूपा भ्रान्तिका नाश करनेवाली है। "उभयत्वमिति मिश्रनामकं भवते तेन विवर्त्तधीरियम्; प्रथमोत्तमयोर्द्वयोः पुनर्व्यतिमिश्रो भवनं न विद्यते,

अर्थात्—आरम्भकी आरोपदृष्टिसे और अंतकी अपवाददृष्टिसे अर्थात् ब्रह्ममें प्रपंचका संसर्ग है ऐसी दृष्टिसे तथा ब्रह्म प्रपंचरहित शुद्ध तत्त्वरूप है ऐसी अपवाद दृष्टिसे मिलीहुई होनेके कारण विवर्त्त दृष्टि व्यामिश्रदृष्टि कहलाती है, परन्तु आदिकी दृष्टि और अंतकी दृष्टिका मिश्रभाव नहीं है, क्योंकि-आरम्भकी दृष्टि ब्रह्ममें प्रपंचका आरोप करती है अंतकी अपवाददृष्टि द्वैतमात्रका निषेध करके एक परब्रह्मका ही वर्णन करती है। "कृपणधीः परिणाममुदीक्षते, क्षपित-कल्मषधीस्तु विवर्त्तताम्। स्थिरमतिः पुरुषः पुनरीक्षते व्यपगत-द्वितीयं परमं पदम्॥" अर्थात्—कृपण बुद्धि वाला पुरुष परिणाम दृष्टिसे देखता है, अर्थात्-जिसकी बुद्धि संसारसे विरक्त नहीं हुई है ऐसा पुरुष, यह सब प्रपंच ब्रह्मका सत्य परिणाम है, मैंभी वास्तव में कर्त्ता भोक्ता हूं, उसकी आराधना करके उसकी कृपासे कल्याणको पाऊंगा, ऐसा जानता है और जिसकी बुद्धिके पाप क्षीण होगये हैं ऐसा पुरुष संसारसे विरक्त होकर ब्रह्मका वर्णन करनेवाले शास्त्रोंको सुनकर संसारको विवर्त्तरूप जानता है अर्थात् इस जगत्का ब्रह्ममें मिथ्या आरोप किया गया है और एक ब्रह्म ही सत्य वस्तु है, ऐसा देखता और जानता है तथा श्रवण मनन आदिसे जिसकी बुद्धि स्थिर होगयी है ऐसा पुरुष अपवाददृष्टिसे जिसमें का सब द्वैतभाव दूर होगया है ऐसे शुद्ध परमपदको जानता है। "पुरुषभेदवशाद्द्वि-विधा भवेत्क्षपितकल्मषधीरपि मध्यमा। जगदनेकमुमुक्षुकमीक्षते पुरुष एकतरो न तथेतरः" अर्थात्-बुद्धिके दोषका नाश करने वाली मध्यमबुद्धि कहिये विवर्त्तबुद्धि उत्तम, मध्यम और अधम अधिकारियों के अनुसार अनेकों प्रकारकी है, एक जगत्में अनेकों अधिकारी जीवों को मानती है और दूसरी एक ही अधिकारी जीवको मानती है। इति तु केचिदुशंति महाधियस्तदपि सम्भवतीति न दुष्यति इह तु सूत्रकृताथ गिरोदितः पुरुष एकविधस्त्रिविधो न तु॥" अर्थात् भिन्न-दृष्टि वाले भिन्न २ अधिकारी हैं, ऐसा कितने ही महाबुद्धिमान् पुरुष कहते हैं परन्तु ऐसा कहनेमें दोष आता है, इस कारण यह बात नहीं होसकती, यहाँ सूत्रकार भगवान् वेदव्यासने स्वयं ही 'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा, इस सूत्रमें अथ शब्दसे एक ही मुमुक्षुको अधिकारी कहा है, तीनप्रकारका नहीं कहा है। "तिसृषु भूमिषु तस्य च तिष्ठतः क्रम-वशात्स्वयमुत्तमभूमिका। समुपसर्पति तत्र च तिष्ठतः समुपशोऽस्यति

द्विवेदाश्चैकवेदाश्चाप्यनृचश्च तथापरे। तेषां तु कतरः स स्यात्यमहं वेद वै द्विजम् ॥ ४२ ॥ सनत्सुजात उवाच। एकस्य वेदस्याज्ञानाद्वे-

कारणकार्यधीः ॥" अर्थात् यह अधिकारी पुरुष तीनों दृष्टियोंका अनुभव करता है और क्रम २ से अपनी उत्तम भूमिकाको जाता है और तहाँ स्थिति करने पर उसकी कार्य कारणरूप बुद्धि शांत होजाती है। "श्रुतिवचांसि मुनिस्मरणानि च द्वयविशारदगीरपि सर्वशः। प्रथमपेक्ष्य दशात्रितयं विना न हि घटामुपयाति कदाचन ॥" अर्थात् ब्रह्ममें जगत्का आरोप करनेवाले तथा उसका निषेध करनेवाले वेद के वचन, सूत्र तथा इन दोनोंका अर्थ करनेमें चतुर भाष्यकारोंकी वाणी ये तीन दृष्टियें एकही अधिकारी पुरुषमें होसकती हैं, क्योंकि एक अधिकारीकी तीन अवस्थाओंके बिना ऊपर कही हुई श्रुतियें कभी संघटित नहीं होसकती ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ सनत्सुजातने कहा, कि हे राजेन्द्र! केवल एक ब्रह्म ही वेद्य और सत्य है, उस सत्यके तुझे अज्ञानके कारणसे अनेकों वेद्यों (उपास्यों) की कल्पना कीजाती है, परब्रह्मकी प्राप्ति होना यह बड़ी दुर्घट बात है, सत्य परब्रह्ममें स्थिति करनेवाला कोई विरला ही पुरुष होता है ॥*॥ (शा० का तात्पर्य) सनत्सुजातने कहा,कि-हे श्रेष्ठ राजन्! एक वेदका ज्ञान न होनेसे ही बहुतसे वेद प्रसिद्ध हुए हैं वेद्यको समझानेके लिये ही वेद हैं। जब वेद्य एक है तो वेद भी एक ही है। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह एक ही वेद्य हो है, अतः इसके अर्थका प्रकाशक वेद भी एक ही है, बहुत नहीं है। जिन२ वेदोंका नाम लियागया है वे सबही उस एक ही वेद्य को समझाने और प्राप्त करानेके लिये प्रकट हुए हैं इस लिये यह सब एक हो वेद है। अथवा एक कहिये द्वितीयसे रहित और वेद कहिये संवित् उसको ही शास्त्रमें ब्रह्म, परमात्मा और सत्य नामसे कहा है उस एक ही सत्य ब्रह्मका ज्ञान न होनेके कारण ऋक् आदि बहुतसे वेद प्रकट हुए हैं, इस कारण ही अब भी ब्राह्मण उस अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार पानेके लिये ऋग्वेद आदि वेदोंको विचार और अध्ययन करते हैं,क्योंकि-वेसबवेदएक अद्वितीय ब्रह्मको जाननेका उत्तम उपाय हैं। इस लिये सब वेद एक ही है। हे राजन्! तुमतो उस एक अद्वितीय ब्रह्ममें हीस्थिति करते हो?अर्थात् तुम तो बहुवेदी नहीं हो? बहुवेदीका अर्थ है भेद बुद्धिवाला। वेद शब्दकी व्युत्पत्ति पर ध्यान दो तो समझसकोगे, कि-वेद एक है या बहुत हैं। वेद सदा वस्तु है

दास्ते बहवः कृताः । सत्यैकस्य तु राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः ॥४३॥
एवं वेदमविज्ञाय प्राज्ञोऽहमिति मन्यते । दानमध्ययनं यज्ञो लोभा-

इसका विचार करो । वेद शब्द विद् धातुसे बनता है । विद् धातुका अर्थ है विचार, सत्ता, ज्ञान और लाभ । जिसमें सत् वस्तुका विचार है या जिसके द्वारा सत् वस्तु कहिये ब्रह्मसत्ताका निश्चय होता है अथवा जो सत् वस्तुके लाभका उपाय है या जो सत् वस्तुके मिलने में हेतु है वही वेद है । यदि ऐसा ही है तो दूसरे वेदका होना कैसे बनसकता है ? सब वेद एक ही है । हे महाराज ! जब तक सत्य आदि लक्षण वाले अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार नहीं होता है तबतक ऋक् यजु, साम, अथर्व और पुराण ये पाँच वेद हैं, फिर इन सब वेदों का वेदत्व एक वेदमें समाजाता है, इसकारण उस समय एक ही वेद्य अद्वितीय परब्रह्ममें प्रतिष्ठित होता है ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य)- अब सिद्धान्तपक्षको कहते हैं, कि-एक ब्रह्म ही वेद्य है और वह सत्य कहिये तीनों कालमें रहता है, परन्तु उसके सत्य स्वरूपका ज्ञान न होनेसे वेदमें और बहुतसे ब्रह्मभिन्न भूतोंको वेद्य (उपास्य) रूपसे कल्पना कर लिया है और सत्य वस्तुके ज्ञानके लिये वेद स्वयं ही उन भूतोंकेअब्रह्मपनेको कहता है "यद्वाचा नाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" अर्थात् जो वाणीसे नहीं कहा जासकता परंतु जिससे वाणीका उच्चारण होसकता है उसको तू ब्रह्म जान और तू जिसकी उपासना करता है वह ब्रह्म नहींहै 'यच्छ्रोत्रेण न श्रूयते येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।' अर्थात् जो कानसे सुननेमें नहींआताऔर जिससे इन कानोंमें सुननेकी शक्ति आई है उसको ही तू ब्रह्म जान परंतु जिसकी तू उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है इसप्रकार श्रुतियोंमें ब्रह्मके स्वरूपका वर्णन किया है परंतु ऐसे सत्यस्वरूप परब्रह्ममें कोई ही जीव स्थिति करता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति होना बड़ी ही कठिन है श्रुति भी कहती है कि-यह जगत् अज्ञानका कार्य है 'तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तमसस्तन्महिनाऽजायतैकम्' जैसे डोरीमें सर्पका मिथ्याअध्यास होता है तैसे ही सर्वव्यापक परब्रह्म भी मिथ्याभूत अज्ञानसे ढका होता है तब एक होनेपर भी अज्ञानकेप्रभावसे प्रपञ्चरूप दीखता है अर्थात् जैसे रज्जु रज्जुरूप से जाननेमें न आनेके कारण सर्परूपसे दीखती है तैसे ही परब्रह्म भी अपने सत्यस्वरूपसे जाननेमें न आनेके कारण प्रपञ्चरूपमें दीखता है४३

वेतत् प्रवर्त्तते ॥ ४४ ॥ सत्यात् प्रच्यवमानानां संकल्पश्च तथा भवेत् । ततो यज्ञः प्रतायेत सत्यस्यैवावधारणात् ॥ ४५ ॥ मनसान्यस्य भवति

इस प्रकार अद्वयानन्द वेद्य पुरुष (परब्रह्म) को न जानने पर भी लोग अपनेको बुद्धिमान् समझते हैं और बाहरी सुखके लोभसे दान शास्त्रकाअध्ययन और यज्ञ आदि करते हैं ॥ ४४ ॥ सत्यवस्तुसे भ्रष्ट हुए लोगोंका सङ्कल्प भी वैसा ही होता है और वे 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' इस वेद वचनको ही प्रमाण मानकर ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करते हैं । (शा० का तात्पर्य) हे राजन् ! मैं फिर कहता हूँ, सावधान होकर सुन, जो सत्यादिस्वरूप ब्रह्मसे गिरेहुए हैं अर्थात् जो ब्रह्मवेत्ता नहीं हैं उनका संकल्प व्यर्थ होता है। स्वाभाविक सत्य-संकल्पता आदि शक्तिके नष्ट होनेसे ही उनके यज्ञ आदि कर्मोंका फैलाव होता है । इस कारण जो वास्तवमें सत्य है उसको न जानना ही प्रवृत्तिका मूल कारण है । संसार तत्त्वज्ञान न होनेका ही विजृम्भण है अर्थात् अज्ञानकी की हुई कल्पना है । इस लिये ही सत्य ब्रह्मका अपने आत्माके अभेद सम्बन्धसे साक्षात्कार न होने तक प्राणी तीनों तापोंसे भस्म होते रहते हैं, उनको रागद्वेष आदि खेंचते रहते हैं,रोग ग्रसते रहते हैं और सत्य संकल्पताको खो देनेके कारण स्वर्ग, पशु, अन्न, धन आदिको पानेकी आशासे व्याकुल रहते हैं और उनको पानेके लिये अनेकों प्रकारके उपाय खोजते हैं (नी० का तात्पर्य)— जो मनुष्य परमानन्दके स्वरूपसे भ्रष्ट होजाता है अर्थात् जिसको परमानन्दके स्वरूपका ज्ञान नहीं होता है उसको क्षुद्र आनन्द सांसारिक सुखोंकी इच्छा होती है और फिर वह "ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत" स्वर्गकी इच्छावाला ज्योतिष्टोम यज्ञसे यजन करे, इत्यादि वेदवचनोंको प्रमाण मानकर संसारके तुच्छ आनन्दकी आशा से यज्ञ याग आदि करनेमें लगजाता है, परन्तु सत्यस्वरूप परब्रह्मका ज्ञान होजाने पर वह-"एतद् बुध्वा बुद्धिमान् स्यात्कृतकृत्यश्च भारत" हे भारत ! जीवात्मा ब्रह्मको जान लेनेपर बुद्धिमान् और कृतार्थ होजाता है, इस गीताके प्रमाणसे जीव ज्ञानी होने पर कृतार्थ होता है ॥ ४५ ॥ किसीका यज्ञ मनके द्वारा, किसीका वाणीके द्वारा और किसीका कर्मके द्वारा सिद्ध होता है परन्तु सत्यसंकल्प वाला ब्रह्मज्ञानी पुरुष तो कल्पनाजन्य ब्रह्मलोक आदिका स्वामी होता है ॥४६॥ (नी० का तात्पर्य)-कोई मनुष्य मनमें देवताओंका ध्यान धर कर

वाचान्यस्याथ कर्मणा संकल्पसिद्धः पुरुषः संकल्पेनाधितिष्ठति॥४६॥ अलैभूतेन चैतस्य दीक्षितव्रतमाचरेत् । नामैतद्धातुनिर्वृत्तं सत्यमेव सतां परम् ॥ ४७ ॥ ज्ञानं वै नाम प्रत्यक्षं परोक्षं जायते तपः । विद्याद् बहुपठन्तन्तु द्विजं वै बहुपाठिनम् ॥ ४८ ॥ तस्मात् क्षत्रिय मामंस्था

मानसिक यज्ञ करता है, कोई वेदाध्ययन जप आदि करके वाक्यज्ञ करता है और कितने ही ज्योतिष्टोम आदि कर्मयज्ञ करते हैं इन तीन प्रकारके यज्ञोंमें पिछलोंकी अपेक्षा पहिले २ यज्ञ उत्तम माने जाते हैं, इन सबोंमें ब्रह्मवेत्ता सत्यसंकल्प मानाजाता है, क्योंकि—वह अपने मनमें जो २ सङ्कल्पना करता है वे सब सिद्ध होते हैं, ब्रह्मलोक आदि सब लोक कल्पनासे उत्पन्न हुए हैं, उनका ब्रह्मवेत्ता स्वामी होता है श्रुति भी कहती है "आप्नोति स्वाराज्यम्" ज्ञानी ब्रह्मैश्वर्यको पाता है "आप्नोति मनसस्पतिम्" ज्ञानी मनके अधिपतिपनेको पाता है, तथा वाणी, चक्षु, श्रोत्र और विज्ञानका स्वामी होता है अर्थात् स्वाराज्य पाता है ॥ ४६ ॥ आत्मज्ञानकी दृढ़ता न होनेके कारणसे यदि संकल्पकी सिद्धि न होय तो वेदकी दीक्षा ले कर व्रत धारण करे। दीक्षित शब्द दीक्ष धातुसे बना है, महात्मा पुरुष तो एक परब्रह्मको ही श्रेष्ठ मानते हैं ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य)–जीवको जवतक आत्मस्वरूपका ज्ञान नहीं होता है, तब उसका कोई भी संकल्प सिद्ध नहीं होता है, इस कारण मनको शुद्ध करनेके लिये उसको दीक्षित व्रत करना चाहिये अर्थात्–सोम आदि यज्ञोंकी दीक्षा लेकर नियत कियेहुए दिन तक दोनों हाथोंकी मुट्ठियें बाँधकर और मौन रहकर नियमका पालन करे, इन कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले सब संस्कारों को नाशवान् जाने, केवल एक परब्रह्म ही कार्यरूप न होनेसे अविनाशी है और महात्मा पुरुष भी उसको ही सबसे श्रेष्ठ मानते हैं ४७ ज्ञानका फल प्रत्यक्ष होता है और तपका फल परोक्ष होता है, जो ब्राह्मण बहुत पढ़ता है उसको बहुत पढने वाला ही जाने ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य) ज्ञान होनेसे शोक मोह आदि दूर होते हैं, इससे ज्ञानके फलको प्रत्यक्ष कहा है और कायिक, वाचिक तथा मानसिक तपका फल इस लोकमें नहीं मिलता, किन्तु परलोक में मिलता है, इस कारण उसके फलको परोक्ष कहा है, जो ब्राह्मण बहुत समय तक वेदादि शास्त्रोंको पढा करता है उसको बहुत पढ़ा हुआ शास्त्री कहा जासकता है, ज्ञानी नहीं कहा जासकता, क्योंकि

जल्पितेनैव वै द्विज । य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया॥४९॥
छन्दांसि नाम क्षत्रिय तान्यथर्वा पुरा जगौ । महर्षि संघ एष छन्दो-

केवल शास्त्रोंको पढ लेने मात्रसे कोई आत्मस्वरूपको नहीं जान सकता ॥४८॥ इसलिये हे क्षत्रिय ! कोई केवल वेदको पढनेके कारण करिये ब्रह्मज्ञानी होसकता है, ऐसा नहीं समझना, किन्तु जो सत्यसे चलायमान नहीं होता है उसको ही ब्रह्मवेत्ता जानो ॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य)—जो बहुत पढाहुआ है वही श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण नहीं है किंतु जो सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्ममें मग्न है, उसको भूलाहुआ नहीं है वही मुख्य ब्राह्मण है । जो सत्यस्वरूप ब्रह्मसे विमुख है वह कृतार्थ न होनेके कारण कामनाके साथ कर्मनुष्ठानमें लगजाता है, और उसको देहाभिमान वा मैं मेराका अभिमान होनेके कारण ब्रह्म-वेत्तापनेका अभाव होता है, ब्रह्मवेत्ता होना ही ब्राह्मणोंका मुख्य लक्षण है इसी बातको श्रुति भी दिखाती हैं, कि–"मौनञ्चामौनञ्च निर्विद्याथ ब्राह्मणः" मौन और अमौनको समाप्त करने पर ब्राह्मण होता है। "विपापो विज्वरो विचिकित्सो ब्राह्मणो भवति" ब्रह्मज्ञानी निष्पाप निस्ताप और सन्देहरहित होता है ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य)— ऊपर कहे विषयका उपसंहार करते हुए कहते हैं, कि–केवल वेदको पढलेने मात्रसे पुरुष ब्राह्मण नहीं होता है, किन्तु जो सर्वव्यापी अद्वितीय आनन्दमय परब्रह्म परमात्माके स्वरूपसे भ्रष्ट नहीं होता है उसको ही श्रेष्ठ ब्राह्मण जानो । श्रुतिमें कहा है-"यो वा एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः।" हे गार्गि ! जो अविनाशी परमात्माको जानकर इस लोकसे परलोकमें जाता है उसको ही तुम ब्राह्मण जानो, इस श्रुतिमें अपरोक्ष ज्ञान पानेवालेका ब्राह्मणपना कहा है और दूसरेका अब्राह्मणपना अर्थात् ब्राह्मणको समान वा केवल ब्राह्मण जातिवाला कहा है ॥४९॥ हे क्षत्रिय ! उपनिषदोंमें प्रसिद्ध महामुनि अथर्वाने पहिले महर्षियोंके समूहके पास जाकर जो कुछ कहा था उन सबको छन्दस् नामसे कहाजाता है, जो उपनिषद् और वेदोंको अर्थके साथ पढे हुए होते हैं वे भी वेदवेत्ता नहीं कहलाते क्योंकि–वे भी वेदसे वेद्य कहिये, परमात्माको नहीं जानते ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य) राजा धृतराष्ट्रको शङ्का हुई कि–ऊपर कहे अनु-सार तो वेदोंका अध्ययन और यज्ञ याग आदि निष्फल होजायगा, इस ही बात पर ध्यान देकर सनत्सुजात कहते हैं, कि—हे राजन् !

वितस्ते य उत नाधीतवेदानवेदवेद्यस्य विदुर्हि तत्त्वम् ॥५०॥ छंदांसि

महा मुनि अथर्वाने जो वचन कहे थे उनका नाम छन्दस् है 'छादयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात्कर्मणः'-जो पापकर्मोंसे मनुष्य की रक्षा करते हैं वे छन्दस् कहलाते हैं, यह श्रुति उपनिषद्को छन्द नामसे कहती है "प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः" कर्मकाण्डरूप वेद दृढ़ता रहित नौका हैं, ऐसा अथर्वोपनिषद्में कहा है, इससे सिद्ध होता है, कि यज्ञ पापसे रक्षा नहीं कर सकते। इस कारण ही ब्रह्म-विद्याका प्रकाश करनेवाले छन्दोंका छन्दस्पना मुख्य मानाजाता है और जो वेद तथा उपनिषदोंको अर्थ सहित केवल मुखसे पढ़ेहुए हैं वे भी छन्दके वेत्ता नहीं कहलाते, क्योंकि-वे वेदोंके द्वारा वेद्य परमात्मा को नहीं जानते ॥ ५० ॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! वेद परमात्माके स्वरूपको दिखानेमें स्वतन्त्रताके साथ कार्यसाधक हैं और परमात्मा के स्वरूपका ज्ञान पानेसे मनुष्य छन्दोवेत्ता होसकता है, आर्यपुरुष ऐसे छन्दोवेत्ताओंके पास जाता है, वह वेदोंसे वेद्य परमात्माको नहीं जानता ऐसा नहीं समझना, किन्तु जानता है ॥ छ ॥ (शा० का तात्पर्य) हे राजन् ! सब छन्दस् (वेद) स्वाधीनभावसे पूर्वोक्त पर-ब्रह्ममें प्रमितिको उत्पन्न करते हैं अर्थात् सब वेद प्रधानरूपसे परब्रह्म को ही प्रतिपादन करते हैं। सुना जाता है और स्मरण आता है, कि 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' सब वेद जिस पदको कहते हैं । गीतामें भी भगवान् कहते हैं, कि—"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" सब वेदोंके द्वारा एक मैं ही जाना जाता हूँ। इस सबका तात्पर्य यह है, कि ब्रह्म ही परमपुरुषार्थ है और सब वेद उसको ही प्राप्त कराने वाले वा प्रमाणरूप हैं इस लिये वे सब प्रलाप नहीं है। सब वेद स्वतन्त्ररूपसे वेदके विषयमें प्रमाण हैं, इस लिये ऋषि वेदका अध्ययन करते हैं अर्थात् वेदांतका श्रवण आदि करते हैं और उससे वेदके सारूप्य अर्थात् ज्ञानरूपको पाते हैं और वेद्य कहिये वाणी मनके गोचर संसार के स्वारूप्यको त्यागते हैं अर्थात् संसारको भूल जाते हैं ॥ छ ॥ (नी० का तात्पर्य)-वेद परमात्माके स्वरूपको स्वतन्त्रताके साथ कह रहे हैं। वेदके दो भाग हैं एक कर्मकाण्ड और दूसरा ज्ञानकाण्ड तिसमें कर्मकाण्डके अर्थको जाननेमें जैसे दूसरे कर्मोंको जानने की आवश्यकता रहती है, तैसे ज्ञानकाण्डके अर्थ ज्ञानमें दूसरे कर्मोंको जाननेका आवश्यकता नहीं है, इस विषयमें श्रुतिमें एक यह उदा-

नाम द्विपदां वरिष्ठ स्वच्छन्दयोगेन भवन्ति तत्र। छन्दोविदस्तेन च तानधीत्य गता न वेदस्य न वेद्यमार्याः ॥ ५१ ॥ न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति कश्चित्त्वेतान् बुध्यते वापि राजन्। यो वेद वेदान्न स वेद

हरण दिया है, कि-तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्चेति।" वामदेव ऋषिको परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन होजानेपर उन्होंने जाना, कि-मैं मनु था मैं सूर्य था इस श्रुतिमें दिखाये हुए ब्रह्मदर्शन और सर्वात्मकपना इन दोनोंके मध्यमें खड़ा२ गाता है दो२ क्रियाओंमें मध्यभागकी समान दूसरी क्रियाका वारण किया जाता है अर्थात्—ज्यों ही ब्रह्मज्ञान होता है, कि-तुरन्त ही जीवात्मा सकल विश्वरूप बनजाता है, इसलिये सत्यस्वरूप परब्रह्मके ज्ञानसे ही मनुष्य छन्दोवेत्ता होसकता है, केवल कर्ममात्रके ज्ञानसे छन्दोवेत्ता नहीं होसकता आर्य पुरुष ऐसे छन्दोवेत्ताके पास जाकर यदि कुछ पढ़ते हैं तो वे भी ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करते हैं, इससे यह दिखाया कि-'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' परब्रह्मके स्वरूपको जाननेके लिये गुरुको शरणमें जाय ॥५१॥ हे राजन्! कोई भी वेदोंका जानने वाला नहीं है तो भी कोई २ (चित्तशुद्धिकी वृद्धि होनेके कारण) वेदोंको जानता है, जो वेदोंको पढगये हैं वेदोंसे वेद्य वस्तुको नहीं जानते हैं किन्तु जो मनुष्य सत्य पर आधार किये हुए हैं वेही वेदवेद्य परमात्माको जानते हैं ॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य)-यदि परब्रह्मको वेद वेद्य मानोगे तो 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितात्' अर्थात् वह विदित और अविदित से अन्य ही है। तथा "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" जिसके पाससे वाणी लौट आती है। इन श्रुतियोंसे विरोध आवेगा, इस पर कहते हैं, कि—चारों वेदोंमेंसे कोई वेद भी वाणीके अगोचर संवित्-रूप परमात्माका ज्ञाता नहीं है, कारण यह है कि-जो २ वेद्य कहिये संवित् (चैतन्य) के द्वारा प्रकाशित होता है वह २ सब जड़ है। जड़ किस प्रकार संवित्रूप वेदको जानेगा? जड़का संवित्रूप परमात्माको जानना तो दूर रहा वह जड़ प्रपञ्चको भी नहीं जानसकता जड़ पदार्थका प्रकाश वा अस्तित्व संवित् कहिये चैतन्यके अधीन है इस लिये जो उस मुख्य वेद कहिये सम्वित्रूप परमात्माको जानते हैं वे सर्वज्ञ हैं। श्रुतिने भी कहा है—"आत्मा वा रे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः, आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्" आत्माका दर्शन श्रवण और मनन करके

वेद्यं सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम् ॥ ५२ ॥ न वेदानां वेदिता कश्चि-

उसको जानता हुआ जो प्रपंचके पार होजाता है। प्रपंचके रूपको तो जानता है और वेदके रूपको नहीं जानता है वह सत्यज्ञानादिरूप परमात्माको नहीं जानसकता ॥ ✽ ॥ (नी० का तात्पर्य)-इस श्लोकमें ब्रह्मके स्वरूपकी दुर्ज्ञेयता दिखायी है, वेदोंके रहस्योंको जानने वाला कोई भी पुरुष नहीं है तो भी अत्यन्त चित्तशुद्धि होनेसे कितने ही परब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले वेदोंके रहस्यको जानते हैं, जो मनुष्य समाधिके पहिलेकी व्युत्थित दशामें होता है अथवा जो 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यका तत्त्व जाननेवाला होता है वह पुरुष वेदको जानता है परन्तु वह पुरुष भी विकल्पकी अवस्थामें होता है इसकारण वह विकल्परहित तथा सब वृत्तियोंका लय होनेपर प्रकाशित होनेवाले परब्रह्मको नहीं जानता है, परन्तु जो पुरुष सत्य कहिये सब वृत्तियों के नाशकी अवधिरूप और हरएकके शरीरमें चैतन्यरूपसे रहने वाले परब्रह्ममें मग्न होकर रहता है वही पुरुष निर्विकल्प आनन्दरूप परब्रह्मको जानता है ॥५२॥ अहंकार आदि अचेतन वेद्योंमें कोई वेदिता-जाननेवाला नहीं है, इस कारण ही कोई अन्तः करणसे आत्माको नहीं जानसकता तथा अनात्माको भी नहीं जानसकता, जिसने आत्माको जान लिया है उसने अनात्माको भी जान लिया है, परन्तु जिसने केवल अनात्माको जाना है वह सत्यस्वरूप ब्रह्मको नहीं जानता है✽ (नी० का तात्पर्य) पिछली बातको ही दूसरे प्रकारसे कहते हैं, कि इसमें वेद शब्दसे अहंकार आदि अचेतन वेद्य पदार्थोंको कहा है, इन अहंकार आदि जड़ पदार्थोंमें भी वेद्य वस्तुको जानने वाला नहीं है, इसलिये वेद्य जानने योग्य आत्माको अंतःकरणसे कोई नहीं जानसकता तथा अनात्म देह आदिको भी नहीं जान सकता अर्थात्— आत्मा और अनात्म इन्द्रियादिक जड़ पदार्थोंसे जाननेमें नहीं आसकते। यहाँ कोई शंका करे, कि-तुम तो कहते हो, कि-अन्तःकरण जड़ है, इसलिये वह आत्मा और अनात्मा दोनोंको नहीं जानसकता परन्तु इसमें तुम्हारी भूल है, क्योंकि-भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण ने ही कहा है—"दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥" सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी सूक्ष्म और श्रेष्ठ बुद्धिसे परमात्माका दर्शन करते हैं। परन्तु इस शंकाका यहाँ अवकाश ही नहीं है, क्योंकि-जो आत्माके स्वरूपको जाने वही देह आदि सकल अनात्म वस्तुओंको भी जानेगा

त येन वेदं न विदुर्न वेद्यम् । यो वेद वेदं स च वेद वेद्यं यो वेद
न स वेद सत्यम्॥५३॥यो वेद वेदान् स च वेद वेद्यं न तं विदुर्वेद-

स्वाभाविक बात है, क्योंकि सब वस्तुएँ परमात्मासे ही हुई हैं,
तु जो वहिर्मुख अज्ञानी देह आदि अनात्माको जानता है वह
त्मस्वरूप ब्रह्म को नहीं जानता । श्रुति भी कहती है "आत्मनो वा
दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्" आत्माके दर्शन,
ण, मनन और विज्ञानसे यह सब विश्व जाननेमें आजाता है ।
राञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्
श्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्" परमात्माने
द्रियोंको बाहरके भोगमें ही रहने दिया है, इस कारण वे बाहरके
षयोंको ही जानती हैं, अंतरात्माको नहीं जान सकती हैं, परन्तु
ई धीर पुरुष मोक्षकी इच्छासे दोनों आँखें मीच कर भीतर रहने
ले प्रत्यक् तत्त्वरूप परमात्माका दर्शन करता है ॥५३॥ जो चिदात्मा
ाणोंको जानता है वही चिदात्मा वेदवेद्य प्रमेयको भी जानता है,
न्तु वेदवेत्ता और प्रमाण परमात्माको नहीं जानते, तोभी जो ब्राह्मण
वेत्ता हैं वे वेदोक्त प्रमाणोंसे सबको जाननेवाले परमात्माको जानते
॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य)-जो केवल ऋक्, यजु, साम, अथर्व
र वेदोंको ही जानते हैं वे वेद्य कहिये अनात्म पदार्थोंको ही जानते
उनको जिस अविच्छिन्न चैतन्यके द्वारा इन सबको जानना चाहिये उस
विच्छिन्न चैतन्यको ये नहीं जानते, इस प्रकारके वेदज्ञ अनात्मवित्
ते हैं, क्योंकि वे वाणी मनके अतीत परमात्माको नहीं जानते, केवल
ही अनात्मवित् नहीं होते हैं, किंतु ऋक् आदि वेद भी अनात्मवित्
अर्थात् ऋक् आदि वेद भी उसको भले प्रकार व्यक्त नहीं करसकते
ार अर्थ यह है, कि—कोई भी वेदवाणीके मार्गसे पर परमात्माको
ाक्षात् रूपसे नहीं समझा सकता । ऋक् आदि वेद साक्षात् रूपसे
र्थात् उसके वाचक शब्दके द्वारा सच्चित् रूप परमात्माको समझानेमें
समर्थ तो हैं, परंतु किसीप्रकार लक्षणा कहिये भावसहोसे द्वारा समझा
ी सकते हैं, इसलिये ही वेदवेत्ता ब्राह्मण उपनिषदोंके उपक्रमोपसंहार*

* उपक्रमोपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति
े छः प्रकारके चिन्ह हैं । उपक्रम-विषयका आरम्भ, उपसंहार उस
की समाप्ति, दोनोंकी एकरूपता । अभ्यास-आरम्भ किये हुए विषय
का बीच २ में कथन । अपूर्वता-शास्त्रके सिवाय अन्यत्र प्रारम्भ की

विदो न वेदाः। तथापि वेदेन विदन्ति वेदं ये ब्राह्मणा वेदविदो भवंति५४

आदिको देख कर और जहदजहल्लक्षणा (२) के सहारे से "तत्त्वमसि" आदि महावाक्योंके द्वारा सच्चित्रूप परमात्माको समझ सकते हैं ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य)— चेतनात्मा सर्वोंमें व्यापकरूपसे प्रसिद्ध है, वह वेदोंको अर्थात्-पदार्थोंका ज्ञान कराने वाले प्रमाणोंको तथा प्रमाणोंसे सिद्ध प्रमेयको जानता है, परन्तु प्रमाण स्वयं तो जड़ होनेके कारण परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सकते। परमात्मा प्राण आदिका प्रवर्त्तक है, इस विषयमें श्रुति कहती है-"प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो यो मनो विदुः" अर्थात्-जो परमात्माको प्राणका प्राण, श्रोत्रका श्रोत्र और मनका मन जानते हैं। इस श्रुतिके अनुसार प्राण आदिके प्रवर्त्तक रूपसे प्रसिद्ध परमात्माको प्रमाण तथा प्रमाणोंको जाननेवाला प्रमाता नहीं जानते हैं। श्रुति कहती है—"यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" मन और वाणी जिस ब्रह्मको न पाकर पीछेको लौट आते हैं। इसमें परमात्माका मन वाणीका अगोचर कहा है, तो भी पाठ, अर्थ और अनुष्ठानसे वेदको जाननेवाले ब्राह्मण 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ। इत्यादि वेदके प्रमाणोंसे परमात्माको जानते हैं, अर्थात् जिनका चित्त अध्ययन और यज्ञयाग आदिसे संस्कारी

हुई वस्तुकी अप्राप्ति। फल-प्रारम्भ किये विषयको कहने और जानने का प्रयोजन। अर्थवाद-प्रारम्भ किये पदार्थकी प्रशंसा। उपपत्ति— प्रारम्भ किये विषयको समझानेके लिये युक्ति।

(२) शब्दके शक्तिबोध्य अर्थको त्यागने पर जहल्लक्षणा, न त्यागे पर अजहल्लक्षणा और कुछ अंशको त्यागने पर जहदजहल्लक्षणा होती है। गङ्गा गाँव है, यहाँ जहल्लक्षणा है, क्योंकि-गङ्गाशब्द जलप्रवाह अर्थको त्यागकर तट अर्थको दिखाता है, गंगामें गाँवका अर्थ है-गंगा तटपर गाँव। एक श्वेत जारहा है, इसमें अजहल्लक्षणा है, श्वेत शब्दका शक्यार्थ है, श्वेत वर्ण इस अर्थका त्याग नहीं हुआ और श्वेत वर्णवाला प्राणी समझा गया, श्वेत जारहा है इसका अर्थ होता है श्वेत वर्णका पशु जारहा है। वही पुरुष यह है इस वाक्यमें जहदजहल्लक्षणा है, वही पदका वाक्यार्थ उस समयको त्याग कर केवल उसका विशेष्य पुरुष लिया गया वही पुरुषका अर्थ होता है वह और यह एक ही व्यक्ति।

धामांशभागस्य तथा हि वेदा यथा च शाखा हि महीरुहस्य । संवेदने चैव यथामनन्ति तस्मिन् हि सत्ये परमात्मनोऽथ ॥ ५५ ॥ अभिज्ञानामि ब्राह्मणं व्याख्यातारं विचक्षणम् । यश्छिन्नविचिकित्सः स व्याचष्टे

होगया है, वे ही लक्षणा वृत्तिसे परमात्माके स्वरूपको जानते हैं ५४ पण्डितोंने ऐसा सिद्धांत किया है, कि-प्रतिपदा(द्वितीया) तिथिके दिन किसी पुरुषको चन्द्रमाकी कला दिखानी हो तो जैसे पहिले वृक्षकी शाखा दिखायी जाती है तैसेही परमपुरुषार्थरूप परमात्माके परमतत्त्व का ज्ञान कराना हो तो पहिले सब वेदोंका अर्थ पढ़ाया जाता है॥❀॥ (शा० का तात्पर्य) जैसे दुर्लक्ष्य प्रतिपदाका चन्द्रमा दिखानेके लिये वृक्षकी शाखा आदिका अवलम्बन कियाजाता है, इस वृक्षकी अगली डाली पर दृष्टि लगाकर देखो तो दीख जायगा ऐसा कहाजाता है, ऐसे ही ब्रह्मका स्वरूप समझानेके लिये ऋग्वेद आदिका अवलम्ब लिया जाता है, मुनि कहते हैं कि-इस प्रकार ही वाणीके मार्गसे पर परमात्मा दूसरोंको समझाया जासकता है, इसका स्पष्ट भाव यह है कि-साक्षात् वाचक शब्दके द्वारा ब्रह्मका ज्ञान नहीं होता, किन्तु किसी न किसी प्रकारसे लक्षणाके द्वारा समझाया जासकता है ❀ (नी०का तात्पर्य) पड़वाका चन्द्रमा किसीको दिखाना हो तो पहिले उस चन्द्रमाकी कलाके समीप कोई वृक्ष खड़ा हो उसकी कोई शाखा दिखायी जाती है, इसका नाम शाखाचन्द्रन्याय है, ऐसे ही परमात्मा का परम पुरुषार्थरूप तत्त्व समझाना हो तो पहिले श्रुतियोंका ज्ञान कराया जाता है एक श्रुति कहती है-"तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" मैं तुमसे उपनिषद्में वर्णन किये हुए पुरुषका स्वरूप पूछता हूँ। दूसरी श्रुति कहती है "अप्राप्य मनसा सह" मन और वाणी परमात्माको नहीं पहुँचते । इन दोनों श्रुतियोंमें परस्पर विरोध आजायगा परन्तु ऐसा नहीं होसकता, क्योंकि-ये श्रुतियें तो ब्रह्मका अनिर्वचनीयपना दिखाती हैं । 'सोऽयं देवदत्तः' यह वही देवदत्त है। इस वाक्यमें जैसे वह कहिये पहिले देखाहुआ और यह कहिये वर्त्तमान कालमें देखाहुआ इन दोनोंका भागत्यागलक्षणासे त्याग करके केवल देवदत्तका ही ग्रहण किया जाता है । ऐसे ही 'तत्त्वमसि' वह तू है यह महावाक्य भी भागत्याग लक्षणासे अपने अर्थको ही सिद्ध करता है॥५५॥ जो स्वयं संशयशून्य और सब संशयोंको दूर करने वाला हो, ऐसे व्याख्याता और विलक्षण पुरुषको मैं ब्राह्मण कहिये ब्रह्मवेत्ता मानता हूँ ॥ ५६ ॥

सर्वसंशयान् ॥ ५६ ॥ नास्य पर्येषणं गच्छेत् प्राचीनं नोत दक्षिणम् । नार्वाचीनं कुतस्तिर्यङ् नादिशन्तु कथंचन ॥ ५७ ॥ तस्य पर्येषणं गच्छेत् प्रत्यर्थिषु कथञ्चन । अविचिन्वन्निमं वेदे तपः पश्यति तं

क्या पूर्वमें, क्या पश्चिममें, क्या उत्तरमें, क्या दक्षिणमें, ऊपर अथवा नीचे, तिर्यक् स्थानमें अथवा दिशारहित स्थानमें अर्थात् हृदयके भीतर इस प्रकार कहीं भी किसी प्रकार भी परमात्माको खोजने न जाय । आत्मा नामसे प्रसिद्ध होकर भी जो आत्मारूप नहीं हैं ऐसे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पञ्चकोषोंमें आत्मा को खोजना बड़ा कठिन काम है, ध्यान करनेवाला तपस्वी पुरुष, वेदोंमें कहे न्यायोंका विचार न करके केवल ज्ञानके द्वारा परमात्माका दर्शन करता है ॥ ॐ ॥ (शा० का तात्पर्य) ब्राह्मण इस दीखने वाले प्रपञ्चको न खोजता फिरे अर्थात् विषयोंमें मग्न न होय । आत्मदर्शन के शत्रु देह आदिमें आसक्त न होजाय अथवा देह आदिके लिये विषयों का सञ्चय न करे, पहिले इन सबको त्याग देय, फिर वेद कहिये उपनिषदोंके तत्त्वमसि आदि वाक्योंके द्वारा परमात्माका अभेदरूपसे दर्शन करे । अथवा ब्राह्मण (ब्रह्मस्वरूप होनेकी इच्छावाला पुरुष) आत्माकी ही खोज करे देह आदिको आत्मा और देह आदिके धर्मोंको आत्माके धर्म न मान लेय।देह इंद्रिय आदिको मैं और मेरा न मानने पर पहिले इन सबके साक्षी परमात्माकी प्राप्ति होती है अर्थात् परमात्मा लक्ष्य होता है फिर तत् और त्वम् पदार्थका संशोधन(१) होनेसे परमात्माका दर्शन होता है ॥ छ ॥ (नी०का तात्पर्य) ऐसा कोई भी स्थान नहीं है,कि-जहाँ खोजनेसे परमात्मा मिलसके अर्थात् वह सर्वत्र

(१) व्यवहारदशामें और शास्त्रकी संज्ञामें 'तत्' ब्रह्म और 'त्वम्' जीव है। तत्त्वज्ञान होजाने पर यह व्यवहारिक भेद नहीं रहता है उस समय सब एक प्रतीत होता है । अज्ञानके समय एकताका ज्ञान होनेमें बाधा होती है, वह बाधा विचारसे दूर होती है, उस बाधाके दूर होनेका ही नाम है तत और त्वम् पदार्थको संशोधन । बाधा यह है-ब्रह्म महत् अर्थात् पूर्ण वस्तु है और जीव क्षुद्र वा परिछिन्न है, ब्रह्म सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है ये दोनो एक किसप्रकार होसकते हैं ? इस बातको असम्भव मान लेना ही जीव और ब्रह्मकी एकताके ज्ञानमें बाधा डालता है । इस बाधाका नाश ब्रह्मचर्य और विचारसे होता है ।

प्रभुम् ॥ ५८ ॥ तूष्णीम्भूतमुपासीत न चेष्टेन्मनसापि च । उपरामस्य तद्ब्रह्म अन्तरात्मनि विश्रुतम् ॥ ५९ ॥ मौनान्न स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः । स्वलक्षणन्तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते ६० सर्वार्थानां व्याकरणाद्वैयाकरण उच्यते । तन्मूलतोव्याकरणं व्याकरो-

व्यापरहा है परन्तु खोजानेसे नहीं मिलता है । कितने ही पुरुष,जिन को,जड़ होनेपर भी अज्ञानियोंने आत्मा मानलिया है ऐसे पंचकोषोंमें आत्माको खोजते हैं, परन्तु तपस्वी तो केवल ध्यानके द्वारा ही परमात्माके स्वरूपका दर्शन करते हैं श्रुति कहतीहै "तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः" जो ध्यान करता है वह निर्दोष परमात्माको पाताहै५७ ५८ वाणी आदि सब इन्द्रियोंके व्यापारको त्याग कर परमात्माकी उपासना करते समय मनसे भी व्यापार न करे, हे राजन् ! तू इस प्रकार मनके और शरीरके व्यापारको त्याग कर उस वेदमें वर्णन किये हुए मन तथा वाणीके अगोचर परब्रह्मकी हृदयाकाशमें उपासना कर * (शा० का तात्पर्य) विषयोंको त्यागना ही परमात्माके दर्शनका हेतु है, इस कारण तूष्णीं होकर अर्थात् मनमेंसे सब विषयोंको निकाल एकाग्री होकर अद्वितीय ब्रह्मके ध्यानमें तत्पर होय,क्षण भरको भी मन में विषयोंकी और इन्द्रियोंकी चिंता न करे, जो पुरुष सब विषयोंका उपसंहार अर्थात् मौनभावसे स्थिति करताहुआ आत्मदर्शनमें तत्पर होता है,शीघ्र ही ब्रह्म उस ब्राह्मणके सन्मुख होता है श्रुति भी कहती है "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्" ब्रह्म जिसके ऊपर प्रसन्न होता है उसको ही प्राप्त होता है । ब्रह्मके अभिमुख होते ही स्वरूपका प्रकाश होता है और स्वरूपका प्रकाश होते ही पूर्ण परमात्मा मिलजाता है ॥ ५९ ॥ केवल ध्यान करनेसे ही पुरुष मुनि नहीं हो सकता है तथा केवल वनमें रहनेसे भी मुनि नहीं हो- सकता है; किंतु जो पुरुष जगत्में जन्म आदिके हेतुरूप व्यापक आत्माके लक्षणको जानता है वह ही श्रेष्ठमुनि कहलाता है॥६०॥(शा० का तात्पर्य) वनमें रहकर केवल वाणीको रोकलेनेसे कोई मुनि नहीं होता, किंतु विषय वासनाको त्याग चुप रहनेसे मुनि होता है, ऐसे मुनियोंमें जो अविनाशी परमात्माका साक्षात् दर्शन करताहै अर्थात् अयमहमस्मि, वह ब्रह्म मैं ही हूं, ऐसे ज्ञानको दृढ़ करलेता है वह श्रेष्ठ मुनि है । श्रुति भी कहती है-"एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति" इस ब्रह्मको जान लेनेपर ही मुनि होता है ॥ ६० ॥ ज्ञानी पुरुष सर्वकारने

तीति तत्तथा ॥६१॥ प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः । सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठंस्तद्विद्वान् सर्वविद्भवेत् ॥६२॥ धर्मादिषु स्थितो ह्येवं

से तथा सब विषयोंका व्याकरण कहिये प्रकटन करनेसे वैयाकरण कहलाता है, यह व्याकरण मूल कारण परब्रह्मको प्राप्त करनेसे होता है, क्योंकि-परब्रह्म ही सब विषयोंको व्याकृत अर्थात् विशेषरूपसे प्रकट करता है ॥ छ ॥ (शा० का तात्पर्य)-जो केवल शब्दों के रूपोंको स्पष्ट करदेता है, उसको वैयाकरण कहते हैं यह ठीक है, परंतु वह मुख्य वैयाकरण नहीं है, किंतु जिसने सकल पदार्थ कहिये विश्वभरको व्याक्रिया कहिये प्रकटता की है वह ही मुख्य वैयाकरण है । श्रुति भी कहती है-"अनेन जीवेन आत्मानमनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" अर्थात् तत् शब्दके वाच्य ब्रह्मसे ही नाम रूपों वाला सब प्रपञ्च (जगत्) व्याकृत कहिये स्पष्टरूपसे प्रकाशित हुआ है, इस कारण विश्वमूल ब्रह्म ही यथार्थ वैयाकरण है और जो उसको जानते हैं वे भी वैयाकरण हैं ॥ छ ॥ (नी० का तात्पर्य)-ज्ञानी सर्वज्ञ होता है, इस कारण वह सब विषयोंको प्रकट करसकता है, इससे शास्त्रमें उसको वैयाकरण कहा है। कोई२ कहते हैं कि-योगशक्तियोंके प्राप्त होनेसे योगीको सकल पदार्थोंका ज्ञान होजाता है, परन्तु ऐसा नहीं है,मूलरूप परब्रह्मके ज्ञानसे ही ज्ञानी सब पदार्थोंका व्याकरण कहिये प्रकट करना करसकता है।श्रुति भी कहती है, कि-आत्मज्ञानसे ही सबका ज्ञान होता है, प्रकृतिके ज्ञानसे अथवा किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञानसे विज्ञान नहीं होता है, क्योंकि-नामरूपसे प्रकट होने वाला स्वयं परमात्मा ही है। श्रुति कहती है-"तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत् नामरूपे व्याकरवाणि" परमात्मा नामसे तथा रूपसे परिणामको प्राप्त होता है मैंने नामको तथा रूपोंको प्रकट किया इसलिये जब ब्रह्मकाज्ञान होता है तबही इस विश्वका ज्ञान होता है ६१ सब विषयोंको प्रत्यक्ष देखने वाला पुरुष सर्वदर्शी माना जाता है, ब्रह्मविद्याको जाननेवाला ब्राह्मण यदि सत्यका आश्रय करता है तो सर्वज्ञ होता है ॥ छ ॥ (शा० का तात्पर्य)-और सर्वदर्शी वास्तवमें सर्वज्ञ नहीं हैं, जिन्होंने भूलोक द्युलोक आदि सबको प्रत्यक्ष करलिया है अर्थात् सर्वात्मक परमात्माको जानलिया है वेही वास्तवमें सर्वदर्शी हैं सर्वदर्शी मनुष्य सत्य ज्ञानादि स्वरूप परब्रह्ममें स्थिति करते हैं अर्थात्-चित्तसमाधान और सत्यज्ञानादि स्वरूप परमात्माको जानते हैं तब

सर्ववित् और सर्वज्ञ होते हैं ॥ ७ ॥ (नी० का तात्पर्य)-इस श्लोक में ब्रह्मवेत्ताओंका सर्वज्ञपना मुख्यरूपसे दिखाया है, मूलमें जो सत्य-पद है वह देह आदि आकारवाली वृत्तिसे रहित परब्रह्मका वाचक है॥५२॥हे क्षत्रिय ! ऐसा साधन सम्पन्न पुरुष पीछे कहे धर्म आदिमें तथा वेदोंमें सीढी पर चढनेके क्रमसे चढकर ब्रह्मका दर्शन करता है यह बात मैंने बुद्धियोगसे कहकर तुम्हें सुनायी है ॥ ७ ॥ शा० का तात्पर्य)-अरे क्षत्रिय ! जिस प्रकार पीछे कहे हुए ज्ञान आदि गुणोंमें और सत्यमें स्थिति करते हुए वेदांत श्रवणके द्वारा ब्रह्मदर्शन होता है उसकी रीति कहता हूँ सुन । अथवा ज्ञान आदि गुणोंमें स्थिति करने पर वेदांतश्रवण आदिके बिना ब्रह्मदर्शन नहीं होसकता, हे धृतराष्ट्र ! उस ब्रह्मदर्शनकी रीति कहता हूँ ॥ ७ ॥ (नी० का तात्पर्य)—अब अध्याय भरमें कहे हुए विषयका उपसंहार करते हुए सनत्सुजात कहते हैं, कि-धर्म आदि बारह बातोंका आश्रय लेनेवाला तथा सत्य आदि आठ प्रकारके अप्रमादका अवलम्बन करनेवाला पुरुष सकल साधनोंको प ने पर पीछे कही हुई आरोपदृष्टि, व्यामिश्रदृष्टि और अपवाददृष्टिमें सोपानके क्रमसे चढ कर परब्रह्मके स्वरूपका दर्शन करता है, यह बात हे राजन् धृतराष्ट्र ! मैंने तुमसे स्नेह भरी बुद्धिसे अपने अनुभवके अनुसार कही है ।नृसिंहतापिनी उपनिषद्‌में सोपान क्रम इस प्रकारका कहा है कि-ओत, अनुज्ञातृ अनुज्ञा और अविकल्प ये चार प्रकारका है, उसके लक्षण ये हैं-"ओतश्च कारणव्याप्तिः कार्ये यद्वन्मृदो घटे । सर्वं ब्रह्मेति तन्निष्ठा जानते परिणामतः ॥ कार्यस्या-समसत्त्वं यत्कारणे समुदीरितम् । तदनुज्ञातृशब्दार्थो मरौ वारि-विवर्त्तनम् । एतन्निष्ठास्ततो भूत्वा जगन्मिथ्येति जानते । अनुज्ञायां जगत्तुच्छं शशशृंगादिवन्मतम्॥एवं सोपानरीत्यैव भूमित्रितयलंघनात् अविकल्पं परं यत्तदहं ब्रह्मास्मि निर्भयम् ॥" अर्थात् कार्यमें कारणकी व्याप्तिका नाम ओत है, जैसे घड़ेमें मृत्तिका व्यापी हुई है, क्योंकि-वह घड़ेका कारण है, तैसे ही परब्रह्म भी विश्वका कारण होनेसे सकल विश्वमें व्यापरहा है,यह बात उसके परिणामसे जानी जाती है, कारणमें कार्य असम सत्तासे रहे इसकानाम अनुज्ञातृ है जैसे कि-मरु-मरीचिका जल,यहाँ जल कार्य है वह मरीचिकारूपी कारणमें समान सत्तासे नहीं रहता है,जहाँ मरुमरीचिकाका जल होता है तहाँ जल होता ही नहीं है, इस कारण कारणरूपी मरीचिकामें कार्यरूपी जल

क्षत्रिय ब्रह्म पश्यति । वेदानां चानुपूर्वेण पतद्बुद्ध्या ब्रवीमि ते ६३

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि
सनत्सुजातवाक्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३॥

धृतराष्ट्र उवाच । सनत्सुजात यामिमां परां त्वं ब्राह्मीं वाचं वदसे विश्वरूपाम् । परां हि कामेन सुदुर्लभां कथां प्रब्रूहि मे वाक्यमिदं कुमार ॥ १ ॥ सनत्सुजात उवाच । नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां

होता ही नहीं है, ऐसे ही जगत भी ब्रह्ममें समसत्तासे नहीं रहता है, किंतु विषमसत्तासे रहता है । इसप्रकार परब्रह्मके स्वरूपको जानलेने पर जगत्के मिथ्यापनको जानता है और अनुज्ञामें जगत्को खरगोश के सींगकी समान सर्वथा मिथ्या ही माना है अर्थात् जगत् त्रिकाल में हैही नहीं।ऊपर कहे अनुसार सोपान क्रमसे तीनों भूमियोंको लाँघने पर 'विकल्परहित जो निर्भय पद वह मैं ही हूँ' ऐसा ज्ञान होजाता है ॥ ६३ ॥ तितालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा,कि-हे सनत्सुजात! आपने जो कथा कही उससे भी उत्तम विश्वको प्रकाशित करनेवाली और परब्रह्मकी प्राप्ति कराने वाली उपनिषद्को वाणीको आप जानते हैं,विषयोंके संबंधसे रहित वह्परमदुर्लभ कथा मुझे सुनाओ,हे कुमार ! आप मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दीजिये ॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य) धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सनत्कुमार ! आप ब्रह्मके विषयकी बड़ी उत्तम बातें कहते हैं, आपकी कहीहुई अनेकों प्रकारकी बातें बड़ी ही उत्तम हैं, संसारमें ऐसी बातें बड़ी ही दुर्लभ हैं इसके सुनने और कहनेवाले दोनोंही,बड़ी कठिनता से मिलते हैं, हे कुमार क्योंकि—आप परम पुरुषार्थकी उपाय रूप दुर्लभ ब्रह्मके विषयकी बातें कह सकतेहैं इस लिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि-आप ऐसी दुर्लभ बातें और सुनाइये,एक आपही ऐसी दुर्लभ बातें सुना सकते हैं ॥ ※ ॥ (नी०का तात्पर्य) इस श्लोकमें आत्मज्ञानका मार्ग सुननेके अनन्तर उसके भीतरी साधनरूप योगके विषयमें प्रश्न किया है ॥ १ ॥ सनत्सुजातने कहा, कि-हे धृतराष्ट्र ! तुम बड़े आग्रह के साथ परब्रह्मके विषयमें मुझसे प्रश्न करते हुए बड़े हर्षमें आगये हो, परन्तु तुम्हारे सरीखे उतावले पुरुष परब्रह्मको नहीं जान सकते 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी निश्चयरूपी बुद्धिमें मनका लय होजाने पर जो एक अनिर्वचनीय अवस्था प्राप्त होती है, जिसमें सकल वृत्तियोंका निरोध होकर केवल एक चिन्तनीय ब्रह्म मात्र ही विचारका विषय रहता है

पृच्छन्नतिहृष्यतीव। बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिन्त्या विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ॥ २ ॥ अत्यन्तविद्यामिति यत् सनातनीं ब्रवीषि त्वं ब्रह्मचर्येण सिद्धाम्। अनारभ्यां वसतीह कार्यकाले कथं ब्राह्मण्यममृतत्वं लभेत ॥३॥ सनत्सुजात उवाच। अव्यक्तविद्यामभिधास्ये पुराणीं

यह ब्रह्मको प्राप्ति कराने वाली विद्या कहलाती है, और यह विद्या ब्रह्मचर्य कहिये श्रेष्ठ गुरुके यहाँ रहनेसे ही प्राप्त होसकती है ॥ ※ ॥ (शा० का तात्पर्य)-सनत्सुजातने कहा कि—हे राजन् ! तुम जिस ब्रह्मको जानना चाहते हो मैं उसका वर्णन करता हूँ, शीघ्रता करने वाले पुरुषको उसका मिलना दुर्लभ है वह अभिषंग कहिये केवल आग्रहसे नहीं मिल सकता, वह विद्यासे मिलता है, विद्या प्रचिन्त्या है (प्रगतं चिन्त्यं यस्यां सा निरुद्धसर्ववृत्तिश्चावस्था समाधिः) अर्थात् मनकी सब वृत्तियोंका लय होनेपर प्रकट होती है, जब किसी प्रकारकी चिंता नहीं होती अर्थात् जो मनकी निरुद्ध अवस्था है तथा जिसका दूसरा नाम ब्रह्मसमाधि है, उसको ही अचिंत्या विद्या और ब्रह्मविद्या कहते हैं, यह विद्या ब्रह्मचर्य रखकर गुरुकी सेवा करनेसे मिलती है ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य)—सनत्सुजात ब्रह्मविद्याकी दुर्लभता दिखातेहुए कहते हैं, कि-हे राजन् ! मैं ब्रह्मविद्याका अधिकारी हूँ ऐसा मान कर तू बड़े गर्वमें भर गया है, परन्तु हर्षके आवेशमें आया हुआ पुरुष परब्रह्मको नहीं जानसकता, सुन—जब, मैं ब्रह्मरूप हूँ, ऐसे निश्चयवाली बुद्धिमें सब इन्द्रियोंका निरोध होजाने पर भी जिसका निरोध नहीं होसकता है ऐसा सङ्कल्पविकल्पात्मक मन जब लय पाजाता है उस समय जो अवस्था होती है उसका नाम विद्या है इस अवस्थामें सब वृत्तियें रुक जाती हैं, ऐसी उत्तम अवस्था गुरुके घर निवास करके वेदव्रतका आचरण करनेके साथ ब्रह्मका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करनेसे ही प्राप्त होती है, इसको ब्राह्मी स्थिति भी कहते हैं ॥ २ ॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सनत्सुजात ! नित्यसिद्ध ब्रह्मविद्याका कर्मकी समान आरम्भ नहीं करना पड़ता है, किंतु ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे वह अवसर पाकर आत्मामें स्वयं ही निवास करती है, ऐसा जो तुम कहते हो यदि ऐसा ही है तो फिर ब्राह्मणको प्राप्त करने योग्य इस अमृतत्व रूप मुक्तिको किस लिये प्राप्त करना चाहिये, अर्थात् जो वस्तु प्राप्त है उसको ही पानेके लिये प्रयत्न करने की कुछ आवश्यकता नहीं है, अतः ब्रह्मचर्य आदि व्रतको धारण

बुद्धया च तेषां ब्रह्मचर्येण सिद्धाम् यां प्राप्यैनं मर्त्यलोकं त्यजन्ति या वै विद्या गुरुवृद्धेषु नित्या॥४॥ धृतराष्ट्र उवाच। ब्रह्मचर्येण या विद्या शक्या वेदितुमञ्जसा। तत् कथं ब्रह्मचर्यं स्यादेतत् ब्रह्मन् ब्रवीहि मे॥५॥ सनत्सुजात उवाच। आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भं ब्रह्मचर्यं चरन्ति। इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति प्रहाय देहं परमं यांति योगम्॥ ६॥ अस्मिँल्लोके वै जयन्तीह कामान् ब्राह्मीं स्थितिं ह्यनुतितिक्षमाणाः। त आत्मानं निर्हरन्तीह देहान्मुञ्जादिषीकामिव सत्वसंस्थाः॥ ७॥ शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत। आचार्य-

करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है,॥ ३॥ सनत्सुजात बोले कि-ब्रह्म जो कि-नित्य प्रत्यक्ष है तो भी बुद्धि नाम वाली उपाधिके सम्बन्धसे होनेवाले मलके कारण प्रकाशित न होकर अव्यक्त रहता है, जो विद्या उस अव्यक्तका प्रत्यक्ष करती है वह नित्य सिद्ध है तो भी उसकी साधनाके लिये अवश्य ही प्रत्यक्ष करनेकी आवश्यकता है जो श्रेष्ठ विद्या गुरु परम्परासे सिद्ध होनेवाली है और जो विद्या वृद्ध गुरुओंकी बुद्धिके द्वारा ब्रह्मचर्यसे सिद्ध होती है और जिस विद्याको प्राप्त करनेसे मनुष्य इस मृत्युलोकको छोड़ जाता है, ऐसी सनातनकालकी ब्रह्मविद्याको मैं अब तुझसे कहूँगा॥ ४॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे ब्रह्मन्! जो विद्या ब्रह्मचर्यके द्वारा सहजमें जानी जासकती है, उस विद्याका साधनरूप ब्रह्मचर्य कैसे होता है, यह मुझसे कहिये॥ ५॥ सनत्सुजात बोले, कि-ब्रह्मविद्याको पानेके लिए जो आचार्यके घर रहकर, निष्कपटभावसे उनकी सेवा करके उनके प्रिय शिष्य बनते हैं और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं वे इस लोकमें शास्त्रकार होते हैं और देहको त्यागने पर परब्रह्मके साथ एकतारूप परमयोगको पाते हैं॥ ❋॥ (नी० का तात्पर्य)-मूलमें जो शास्त्रकार पद दिया है, उसका अर्थ है-ब्रह्म। क्योंकि-श्रुति कहती है—"यदेतन्महतो भूतस्य निःश्वसितं ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः" ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये महाभूत परमात्माके श्वाससे प्रकट हुए हैं। इस कारण ब्रह्म ही वेदादि शास्त्रोंका रचने वाला है, इस प्रकार वही शास्त्रकार है॥६॥ जो ब्रह्मपदको पानेके लिए इस लोकमें दुःख सुख शीत उष्ण आदि द्वंद्वोंको सहकर सकल कामनाओंको जीतते हैं वे सत्वगुणी मनुष्य मूँजमेंसे सींककी समान देहमेंसे आत्माको जुदा कर सकते हैं॥ ७॥ हे धृतराष्ट्र! माता पिता तो इस शरीरको

शास्ता या जातिः स पुण्या साजराऽमरा ॥ ८ ॥ यः प्रावृणोत्य वितथेन वर्णानृतं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन्। तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन् ॥९॥ गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत स्वाध्यायमिच्छच्छुचिरप्रमत्तः। मानं न कुर्यान्नदधीत रोषमेषः प्रथमो

केवल उत्पन्न करते हैं, परन्तु आचार्यके उपदेशसे ब्रह्मको प्राप्त कराने वाली जो जाति (जन्मान्तर) उत्पन्न होती है वह सत्य,अजर और अमर है ॥ *॥ (शा० का तात्पर्य)-माता और पिता ये दोनों प्राणी के शरीरमात्रको उत्पन्न करते हैं वे स्वरूपका ज्ञान नहीं कराते, स्थूल और सूक्ष्म शरीरका जन्म असत्य और नाशवान् है, परन्तु आचार्य कहिये ब्रह्मविद्या देनेवाले गुरुके द्वारा जो जन्म कहिये सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्मरूपका साक्षात्कार होता है वह ही सत्य कहिये परमार्थ है और वही अमृत कहिये अविनाशी और मोक्ष है।इसकारण ही शास्त्रमें कहा है, कि आचार्य ही उत्तम जन्मका कारण है। प्रश्न उपनिषद्में देखा जाता है, कि—"त्वं हि नः पिता यो अस्माकं अविद्यायाः परं पारं तारयसि" शिष्य कृतार्थ होकर गुरुसे कहता है, कि—आप ही मेरे वास्तविक पिता हैं क्योंकि-आपनेमुझे अविद्याके परले पार तार दिया है। आपस्तम्ब मुनि भी कहते हैं, कि—"स हि विद्यातस्तं जनयति तत् श्रेष्ठं जन्म शरीरमेव मातापितरौ जनयतः।" आचार्य जो विद्यादानके द्वारा शिष्यको जन्म देते हैं वह जन्म ही श्रेष्ठ जन्म है माता पिता तो केवल शरीरको ही उत्पन्न करदेते हैं ॥*॥ (नी० का तात्पर्य) द्विजोंका पहिला जन्म माता पितासे होता है,दूसरा जन्म यज्ञोपवीतकी दीक्षा लेनेसे होता है, और तीसरा जन्म 'ब्रह्मविद्याको ग्रहण करनेसे होता है,यह तीसराजन्म अजर,अमर और सत्य है॥८॥ जो उपदेशके द्वारा परब्रह्मका वर्णन करके उसके फलरूप मोक्षका वर्णन करता है तथा जो ब्राह्मण आदि सब वर्णोंको सत्य वस्तुका ज्ञान कराकर उनको द्वैत वस्तुसे होनेवाले भयसे रक्षा करता है ऐसे आचार्य को ही माता पिता माने और उनके कियेहुए उपकारको ओर ध्यान देकर कभी भी उनसे द्रोह न करे ॥ ९ ॥ शिष्य नित्य गुरुको प्रणाम करे, पवित्र तथा सावधान होकर नित्य स्वाध्याय करनेकी इच्छा करे, रोष या अभीमान कभी न करे, यह ब्रह्मचर्यका पहिला पाद कहलाता है ॥*॥ (नी०का तात्पर्य) गुरु नीचेसे नीचा काम करने को कहें तो भी निरभिमान होकर करे, गुरुके कामर्में अधिक परिश्रम

ब्रह्मचर्यस्य पादः॥१०॥शिष्य वृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः। ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते॥११॥ आचार्यस्य प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि। कर्मणा मनसा वाचा द्वितीयः पाद उच्यते ॥१२॥ समा गुरौ यथा वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथाचरेत्। तत् पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १३ ॥ आचार्येणात्मकृतं विजानन् ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन। यन्मन्यते तं प्रतिहृष्टबुद्धिः स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः॥१४॥नाचार्यस्यानपाकृत्य प्रवासं प्राज्ञः कुर्वीत नैतदहं करोमि। इतीव मन्येत न भाषयेत स वै चतुर्थो ब्रह्मचर्यस्य पादः१५ कालेन पादं लभते तथार्थं ततश्च पादं गुरुयोगतश्च। उत्साहयोगेन च

करना पड़े तोभी क्रोध न करे, ऐसी गुरुसेवा ही ब्रह्मचर्यका पहिला चरण है॥ १० ॥ शिष्य पवित्र हो कर शिष्यवृत्तिके क्रमसे अर्थात् गुरुके ऊपर आजीविकाका भार न रखकर स्वयं ही प्रातःकाल और सायंकालके समय भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करे तथा विद्या पढ़े, ब्रह्मचर्य व्रतवाले शिष्यके इस आचरणको ब्रह्मचर्यका पहिला चरण कहते हैं११कर्म, मन और वाणीके द्वारा तथा धन और प्राणोंके द्वारा आचार्यके प्रिय कामको पूरा करे,यह ब्रह्मचर्यका दूसरा चरण है ॥ १२ ॥ जैसा वर्त्ताव गुरुके साथ करे तैसाही वर्त्ताव गुरुकी पत्नी और गुरुके पुत्रके साथ भी करे, इसको ब्रह्मचर्यका दूसरा चरण कहते हैं॥१३॥विद्यादान आदिके द्वारा आचार्यने जो अपना उपकार किया हो उसको अच्छी प्रकार समझे और दुःखकी निवृत्ति तथा आनन्दकी प्राप्तिरूप उसके प्रयोजनको हृदयमें समझ कर शिष्य गुरुके ऊपर प्रसन्नचित्त रहे और मनमें विचारे कि—इन्होंने मुझे बड़ी उन्नतिमें पहुँचाया है यह ब्रह्मचर्यका तीसरा चरण है॥ १४ ॥ बुद्धिमान् शिष्य आचार्यके किये हुए विद्या दानरूपी ऋणको चुकाये बिना दूसरे आश्रममें न जाय और धन देनेके अनन्तर वाणीसे कहना तो क्या मनमें भी यह न कहै कि-मैंने गुरुको धन दिया है तथा आचार्यने जो मुझसे दक्षिणा पाई है उसके विषयमें आचार्य कोई सन्तोषसूचक बात कहें, इस बातको जाननेकी चेष्टा भी न करे, यह ब्रह्मचर्यका चौथा चरण है॥१५॥शिष्य ब्रह्मचर्यके प्रयोजनरूप ब्रह्मविद्याके प्रथम पादको समय करके अर्थात् बुद्धिका परिपाक होने पर पाता है, एकपाद बुद्धि वैभवसे मिलता है और एक पाद सहाध्यायियोंके साथ उत्तम विचार करनेसे मिलता है ॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य)

पादमृच्छेच्छास्त्रेण पादश्च ततोऽभियाति ॥ १६ ॥ धर्मादयो द्वादश यस्य रूपमन्यानि चाङ्गानि तथाबलञ्च । आचार्य्ययोगे फलतीति चाहुर्ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यम् ॥ १७ ॥ एवं प्रवृत्तो यदुपालभेत वै धनमाचार्य्याय तदनुप्रयच्छेत् । सतां वृत्तिं बहुगुणामेवमेति गुरोः पुत्रे भवति च वृत्तिरेषा ॥ १८ ॥ एवं वसन् सर्वतो वर्द्धतीह बहून् पुत्रा-

ब्रह्मचर्यकी समान ब्रह्मचर्य से प्राप्त होनेवाली विद्याकेभी चार चरण हैं । विद्या (ज्ञान) का पहिला चरण सद्गुरुका मिलना है, दूसरा चरण उत्साह योग है अर्थात् उत्साह भरी बुद्धिका प्रकट होना है । तीसरा चरण काल अर्थात् बुद्धिके परिपक्क होनेका समय है और चौथा चरण सहपाठियोंके साथ तत्वविचार करना है, इस प्रकार विद्या चतुष्पदी होकर पूर्ण होती है ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य)—विद्याके चारों चरणोंको श्रुति कहती है-आचार्यात्पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया । कालेन पादमादत्ते पादं सब्रह्मचारिभिः ॥" शिष्य ब्रह्मचर्यका पहिला चरण आचार्यसे सीखता है, दूसरा चरण अपनी बुद्धिसे सीखता है, तीसरा चरण समय पाकर पकी हुई बुद्धिसे सीखता है और चौथा चरण सहपाठियोंके साथ शास्त्रचर्चा करके पाता है ॥ १६ ॥ पण्डित कहते हैं, कि--धर्म आदि बारह वस्तुएँ, आसनको जीतना प्राणको जीतना इत्यादि अङ्गोंके लिये तथा योगके लिये नित्य उद्योग करना जिसका स्वरूप है ऐसा ब्रह्मचर्य आचार्यके उपदेश से और वेदके अर्थको जाननेसे अर्थात् कर्म तथा ब्रह्मकी प्राप्ति से सफल होता है ॥ ❀ ॥ (शा० का तात्पर्य) पीछे कहे हुए ज्ञान आदि बारह गुण जिस ब्रह्मचर्यके रूप वा अङ्ग हैं वह ब्रह्मचर्य तथा अन्य गुण अर्थात् पीछे कहे हुए छः प्रकारका त्याग, ध्यान, सत्य और बल कहिये इन गुणोंको स्थिर रखनेकी शक्ति ये सब गुरुके मिलजाने से सफल होजाते हैं, आचार्य से शिक्षा विना पाये यदि अपने आप ही उनका अनुष्ठान किया जाय तो कुछ फल नहीं होता है । गुरुके यहाँ रह कर गुरुसेवा और ब्रह्मचर्यको उस दिन सफल हुआ माने जिस दिन देखे, कि--अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मभावका साक्षात्कार होगया, इसका ही नाम वेदके अर्थको जानना है ॥ १७ ॥ इसप्रकार शिष्य गुरुको दक्षिणा देनेको प्रवृत्त होय और जो धन पैदा करे वह गुरुको अर्पण करे, इस प्रकार गुरु बहुत गुणवाली सत्पुरुषों की आजीविकाको पाता है शिष्य गुरुपुत्रके साथ भी गुरुकी समान

न्लभते च प्रतिष्ठाम्‌।वर्षन्ति चास्मै प्रदिशो दिशश्च वसंत्यस्मिन् ब्रह्मचर्ये जनाश्च१९एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन्। ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मलोकं मनीषिणः २० गन्धर्वाणामनेनैव रूपमप्सरसामभूत्। एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्योऽप्यह्नाय जायते२१आकांक्षयार्थस्य संयोगाद्रसभेदार्थिनामिव। एवं ह्येते समाज्ञाय तादृग्भावं गता इमे॥ २२ ॥ य आश्रयेत् पावयेच्चापि राजन् सर्वं शरीरं तपसा तप्यमानः। एतेन वै बाल्य-

हो वर्त्ताव करे ॥ १८ ॥ शिष्य यदि इस रीतिसे ब्रह्मचर्यको धारण करता है तो इस लोकमें उन्नति पाता है, बहुतसे पुत्रोंको पाता है, और प्रतिष्ठाको पाता है, दिशा और कोणोंमें रहनेवाले मनुष्य वर्षा की समान उसको धन देते हैं तथा अनेकों शिष्य ब्रह्मचर्यके लिये उस के घर आकर रहते हैं॥१९॥इस ब्रह्मचर्यके द्वारा देवताओंने देवतापन पाया था और महाभाग विचारशील ऋषियोंने इस ब्रह्मचर्यके प्रभाव से ही ब्रह्मलोक पाया है ॥ २० ॥ इस ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही गंधर्व और अप्सराओंने रूपको जीत लिया और इस ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही सूर्य भी प्रतिदिन आकाशमें उदय होनेकी शक्ति रखता है ॥२१॥ चिंतवन कीहुई वस्तु देनेवाली चिंतामणि नामवाली पारेकी गोली की प्रार्थनासे चिन्तित वस्तुका लाभ होने पर मनुष्योंके मनमें जैसा भाव होता है सब देवता भी ब्रह्मचर्यको प्राप्त करके तैसे ही भावको प्राप्त हुए थे ॥ ❀ ॥ (शा० का तात्पर्य)-जैसे चिन्तामणिसे इच्छा-नुसार इच्छित वस्तु मिल जाती है तैसे ही यह ब्रह्मचर्य भी ब्रह्मचा-रियोंको इच्छानुसार वस्तु प्राप्त कराता है,ऐसा जान अनेकों इच्छाओं से ब्रह्मचर्य कर देवताओंने देवयोनिको पाया था, सार अर्थ यह है, कि आचार्यके समीप धारण कियेहुए ब्रह्मचर्यसे परमपुरुषार्थ मिलता है और यदि कुछ कामना हो तो इच्छित वस्तु भी मिलती है, इस लिये आचार्यरूप योनिमें प्रवेश करके और गर्भगत होकर अर्थात् गुरु के पुत्रकी समान बनकर ब्रह्मचर्य व्रतमें लगजाय ॥ २२ ॥ हे राजन्! जो मनुष्य तपस्या करके इस प्रकार चार चरण वाले ब्रह्मचर्यका पालन करता है और उसके द्वारा देहको पवित्र करता है वह विद्वान् पुरुष ब्रह्मचर्य आदि धर्मका आचरण करके बाल्य भावको पाता है और अन्तकालमें मृत्युको जीतता है ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य) मूलमें जो बाल्य शब्द है उसका अर्थ बालकपन नहीं है, किंतु राग द्वेषका अभाव अथवा उपनिषद्के वाक्योंका युक्तिपूर्वक विचार करके

गभ्येति विद्वान् मृत्युन्तथा स जयत्यन्तकाले ॥२३॥ अन्तवतः क्षत्रिय ते जयन्ति लोकान् जनः कर्मणा निर्मलेन । ब्रह्मैव विद्वांस्तेन चाभ्येति सर्वं नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥२४॥ धृतराष्ट्र उवाच । आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो कृष्णमथांजनं काद्रवं वा । सद्ब्रह्मणः

तत्त्वका निश्चय करता है । मूलमें जो 'अन्तकाले' पद है उसका यह अभिप्राय है, कि मनुष्यको जीवन भर बाल्यदशामें ही रहना चाहिये भगवद्गीतामें कहा है-"शक्नोति हैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् । कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः" अर्थात् जो मनुष्य शरीर छूटने पर्यन्त काम और क्रोधके वेगको सह सकता है उसको योगयुक्त जानो और वह ही सुखी है ॥ २३ ॥ हे क्षत्रिय ! ब्रह्मविद्याहीन मनुष्य, वेदमें कहे हुए निर्मल कर्मोंके द्वारा सकल नाशवान् लोकोंको जीतलेता है अर्थात उसको मुक्ति नहीं मिलती है, परन्तु विद्वान् मनुष्य ज्ञानके द्वारा विश्वात्मा ब्रह्मको ही पाता है, ज्ञानके विना दूसरे किसी मार्गसे मुक्ति नहीं मिल सकती ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य)-मुक्तिके लिये एक ज्ञान ही साधन है " ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः" ज्ञानके विना मुक्ति नहीं मिलती, इसलिये जहाँ तक बनसके ज्ञानको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है ॥ २४ ॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-जो विद्वान् पुरुष अपने हृदयमें ब्रह्मके सत्यस्वरूपका दर्शन करता है, उसको ब्रह्म लोहित, श्याम, काजलसा, धूसर अथवा सुनहरी रङ्गका प्रतीत होता है, इस लिये सर्वव्यापी अविनाशी ब्रह्मका कैसा रूप है सो मुझसे कहो ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य) योगी अपने हृदयमें परब्रह्मका ध्यान करता है उस समय शास्त्रमें लिखे अनुसार परब्रह्मकी उपासना करता है " तूष्णींभूत उपासीत न चेष्टेन्मनसापि च । उपावर्त्तस्व तद् ब्रह्म अंतरात्मनि विश्रुतम् ॥" अर्थात् उपासना करनेवाला साधक वाणी आदि सब इंद्रियोंको रोककर ब्रह्मकी उपासना करे, उपासनाके समय मनसे भी व्यापार न करे और अंतरात्मामें रहने वाले तथा शास्त्रमें सुने हुए परमात्माकी उपासना करे, उस उपासनाके समय हृदयके भीतर अनेकों रङ्गके मार्ग दीखते हैं इस कारण उसको परब्रह्मका स्वरूप अनेकों प्रकारका प्रतीत होता है, मोक्षसाधनके मार्गमें अनेकों प्रकारके रूप देखनेमें आते हैं । श्रुति कहती है—"तस्मिन् शुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलं हरितं लोहितञ्च । एषः पंथा ब्रह्मणा ह्यनुवित्तस्ते-

पश्यति योऽत्र विद्वान् कथं रूपं तदमृतमक्षरम् ॥ २५ ॥ सनत्सुजात उवाच । आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो कृष्णमायसमर्कवर्णम् । न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे नैतत् समुद्रे सलिलं बिभर्त्ति ॥ २६ ॥ न

नैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च ॥" अर्थात् मुमुक्षु पुरुष उपासना करते समय हृदयाकाशमें स्वेत वर्णको, श्याम वर्णको अग्निकी ज्वालाकेसे वर्णको और लालवर्णको नीलेवर्णको देखता है, परंतु वास्तवमें विचार करके देखाजायगा तो यह सब कफसे भरीहुई सुषुम्ना आदि नाडियों के वर्ण हैं! ये परब्रह्मके रङ्ग नहीं हैं, इस लिये उपासकोंको उपासनाके समय जो अनेकों रङ्गके मार्ग दीखते है वे सब ब्रह्मविद्याके मार्गसे भिन्न मार्ग हैं और वह ब्रह्मा आदिके लोकोंकी प्राप्ति कराने वाले हैं, उनसे परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होसकती, ब्रह्ममार्गसे तो उससे भिन्न ही है, उस मार्गमें तो सब प्रकारकी इच्छाओंसे रहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही निवास करता हैं और उस ही ज्ञानमार्गमें होकर सब प्रकारके पुण्यकर्मोंको करके निष्कामभावसे वर्त्ताव करने वाला तेजःस्वरूप हुआ ब्रह्मज्ञानी भी जाता है ॥ २५ ॥ सनत्सुजातने कहा, कि-हे राजन! ब्रह्मका रूप शुक्ल, लोहित श्यामल, धूसर अथवा सुनहरा प्रतीत होता है, यह ठीक है, परन्तु वह परब्रह्मका नहीं है, ब्रह्म पृथ्वी पर नहीं है, अन्तरिक्षमें नहीं है, समुद्रके जलमें नहीं है तथा किसी भी स्थान पर विद्यमान नहीं है ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य)-ब्रह्मके मार्गमें शुक्ल आदि रूप भासते हैं, परन्तु ब्रह्मका जो रूप है वह पृथ्वी आदिमें नहीं है, ब्रह्मका स्वरूप बताती हुई श्रुति कहती है कि-"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।" परब्रह्मका रूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे रहित है, ऐसा कह कर परब्रह्ममें शब्द आदिकी गतिका निषेध करती है, रूप तो शब्द आदिसे युक्त हैं उन रूपोंको ब्रह्मकी प्राप्तिके चिन्ह समझो, उनको ब्रह्मके रूप मत समझो, श्रुति कहती है कि-"नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे" ॥ कुहरा, धुआं, सूर्य, पवन, अग्नि, तारे, बिजली, स्फटिकमणि और चन्द्रमा इनके रूप जब योगमें ब्रह्मदर्शन होनेको होता है उससे पहिले ब्रह्मदर्शनकी सूचना करनेके लिये पहिलेसे दीखने लगते हैं,इस संसार सागरमें पञ्चभूतात्मक शरीर ब्रह्मको धारण नहीं करता है, अर्थात जीवोंकी समान परब्रह्मको उपाधिकृत दुःख नहीं भोगना पड़ता है२६

तारकासु न च विद्युदाश्रितं न चाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य। न चापि वायौ न च देवतासु नैतच्चन्द्रे दृश्यते नोत सूर्ये ॥२७॥ नैवर्क्षु तन्न यजुष्षु नाप्यथर्वसु न दृश्यते वै विमलेषु सामसु। रथन्तरे बार्हद्रथे चापि राजन्महाव्रते नैव दृश्येद् ध्रुवं तत् ॥ २८ ॥ अपारणीयं तमसः परस्तात्तदन्तकोऽप्येति विनाशकाले। अणीयो रूपं क्षुरधारया समं महच्चरूपं तद्वै पर्वतेभ्यः ॥ २९ ॥ सा प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद् ब्रह्म

तारोंमें, बिजलियोंमें अथवा मेघोंमें भी परब्रह्मका स्वरूप देखनेमें नहीं आता, ऐसे ही वायुओंमें, देवताओंमें, चन्द्रमामें और सूर्यमें भी परब्रह्मका स्वरूप देखनेमें नहीं आता ॥ २७ ॥ तथा ऋग्वेदमें, यजुर्वेदमें, अथर्ववेदमें और निर्मल सामवेदमें रथन्तर साममें बार्हद्रथ साममें अथवा महाव्रत वाले यज्ञमें ऐसे किसी स्थान पर भी परब्रह्मका स्वरूप देखनेमें नहीं आता है, किन्तु वह केवल ज्ञान आदि बारह गुणोंसे युक्त महाव्रत वाले ब्राह्मण कहिये ब्रह्म प्राप्तिके व्रतमें लगे हुए विवेकी के अन्तःकरणमें ही दर्शन देता है, क्योंकि–वह अज्ञानकी मलिनतासे रहित होता है, ज्ञानके सिवाय और किसी उपायसे तो मोक्ष मिलती ही नहीं "नास्त्याकृतः कृतेन" मोक्ष कर्म करनेसे नहीं मिलती है, क्योंकि–परब्रह्म ध्रुव कहिये नित्य है और कर्मका फल अनित्यहै, फिर अनित्यसे नित्य कैसे मिल सकता है ? ॥ २८ ॥ परब्रह्मके पार कोई नहीं पहुँच सकता, वह अज्ञानरूपी उपाधिसे रहित है, प्रलयके समय सबका संहार करने वाला काल भी अन्तमें उसमें ही लय पाता है, उसके स्वरूपका दर्शन होना बड़ा कठिन है, वह छुरीकी धारकी समान अतिसूक्ष्म और पर्वतादि पदार्थोंसे भी बहुत बड़ा है अर्थात् सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थकी अपेक्षा सूक्ष्म और बड़ेसे बड़े पदार्थकी अपेक्षा बड़ा है ॥२९॥ परब्रह्ममें ही सब प्राणियोंका लय होता है, वह विकाररहित है, ये जो लोक दीखते हैं ये सब परब्रह्म ही है, वही यश कहिये सबसे अधिक सुन्दर है, प्राणिमात्र उससे उत्पन्न होते हैं और फिर उसमें ही लीन होजाते हैं ॥ ❋ ॥ (नी० का तात्पर्य) यजुर्वेदमें परमात्माके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा है, कि–"न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः" परमात्माकी कोई उपमा नहीं है क्योंकि–उसका नाम महद्यश है अर्थात उसकी समान उत्तमतामें प्रसिद्ध और कोई है ही नहीं। महद्यश यह परमात्माका आरोपित नाम है, जैसे सुवर्णमेंसे कड़े कुण्डल बनते हैं तैसे ही परब्रह्मसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और

तद्यशः । भूतानि जज्ञिरे तस्मात् प्रलयं यान्ति तत्र हि ॥३०॥ अनामयं तन्महदुद्यतं यशो वाचो विकारं कवयो वदन्ति । यस्मिन् जगत् सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ३१ ॥

इति श्री महाभारत उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि सनत्सुजातवाक्ये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सनत्सुजात उवाच । शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मानः परासुता । ईर्ष्या मोहो विधित्सा च कृपाऽसूया जुगुप्सता ॥ १ ॥

अन्तमें जैसे घड़ा मिट्टीमें मिल जाता है तैसे ही फिर परमात्मामें विलीन होजाते हैं, श्रुति ब्रह्मसे जगत्‌की उत्पत्तिका वर्णन करती हुई कहती है, कि–"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म" अर्थात जिससे ये प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिससे जीवित रहते हैं और पीछेसे जिसमें फिर लय होजाते हैं, उसको तू जान वही ब्रह्म है ॥ ३० ॥ वह अनामय कहिये द्वैतरोगसे रहित है, उद्यत कहिये जगत्‌के आकारसे उत्पन्न हुआ है और बड़ा भारी यशरूप कहिये परमव्यापक है, पण्डित कहते हैं, कि–परब्रह्ममें विकार केवल वाणीरूपसे है, स्वरूपसे नहीं है; यह सब जगत् ब्रह्ममें ही रहता है; जो उसको जानते हैं वह अमृत (मुक्त) मुक्त होजाते हैं ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य)–परब्रह्म स्वयं निर्विकार है, परन्तु वाणीसे उसमें विकारका आरोप किया गया है, वास्तवमें वह निर्विकार है, श्रुति कहती है, कि–"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकैव सत्यम् ।" नाम आदिक केवल वाणीसे ही बोलनेमें आते हैं, वास्तवमें देखा जाय तो एक मृत्तिका ही सत्य है, घड़े कूँड़े आदि मिथ्या हैं क्यों कि–अन्तमें वह भी मट्टी ही होजाते हैं ऐसे ही जगतमें जो २ पदार्थ हैं सब नाममात्र हैं, वास्तवमें देखा जाय तो एक ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है ॥ ३१ ॥ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

सनत्सुजातने कहा, कि–हे राजेन्द्र ! शोक, क्रोध, लोभ, काम, अभिमान, परासुता कहिये निद्राके वशमें रहना, ईर्षा, मोह, अभिमान, विधित्सा कहिये काम करनेकी इच्छा, कृपा, असूया कहिये दूसरेके गुणोंमें दोष लगाना और निन्दा करना ये मनुष्यके प्राणका नाश करने वाले वारह महादोष हैं, इनमेंका हर एक दोष मनुष्योंका आश्रय करनेके लिये उनकी उपासना किया करता है और इन दोषोंके

द्वादशैते महादोषा मनुष्यप्राणनाशनाः । एकैकमेते राजेन्द्र मनुष्यान् पर्युपासते । यैराविष्टो नरः पापं मूढसंज्ञो व्यवस्यति ॥ २ ॥ स्पृहयालुरुग्रः परुषो वा वदान्यः क्रोधं विभ्रन्मनसा वै विकत्थी । नृशंसधर्माः षडिमे जना वै प्राप्याप्यर्थं नोत सभाजयन्ते ॥३॥ सम्भोगसंविद्विषमोऽतिमानी दत्त्वा विकत्थी कृपणो दुर्बलश्च । बहुप्रशंसी वनिताद्विट् सदैव सप्तैवोक्ताः पापशीला नृशंसाः ॥ ४ ॥ धर्मश्च सत्यञ्च तपो दमश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया । दानं श्रुतञ्चैव धृतिः क्षमा च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ ५ ॥ यो नैतेभ्यः प्रच्यवेद् द्वादशभ्यः सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् । त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वार्थितो यो

आवेशसे मनुष्य मूढबुद्धि होकर पापकर्म करनेमें लग जाता है ॥ ॥ (नी० का तात्पर्य)–जिसमें ज्ञान मुख्य और योग गौण है, ऐसी ब्रह्मविद्या ऊपरके अध्यायमें कही, अब जिसमें योग मुख्य और ज्ञान गौण है ऐसी विद्याका वर्णन अगले दो अध्यायोंमें किया है जिसमें पहिले चित्तकी वृत्तिके निरोधसे त्वं पदार्थको जान कर पीछे वेदांतके श्रवण मनन आदिसे तत् पदका निश्चय किया है, यह आद्या ब्रह्मविद्या कहलाती है और जिसमें पहिले श्रवण मनन आदिसे प्रत्यक् तत्त्वके ब्रह्मभावका परोक्षरूपसे निश्चय करके पीछे निदिध्यासनसे उसका अपरोक्ष कियाजाता है वह दूसरी ब्रह्म विद्या कहलाती है, इन दोनोंका क्रम जुदा २ है, परन्तु फल उन दोनोंका एक ही है और उनके साधनोंका समूह भी एक ही है, इस बातको दिखानेके लिये पहिले त्यागने योग्य दोष और ग्रहण करने योग्य गुण दिखाये हैं ॥ १ ॥ २ ॥ नयी २ इच्छायें करनेवाला, उग्र स्वभाव, तीखा बोलने वाला, बहुत बोलनेवाला, मन ही मनमें क्रोध करनेवाला और निन्दक, ये छः क्रूर धर्मवाले मनुष्य धन मिलजाने पर भी उसको उचित रीतिसे काममें नहीं लाते हैं किन्तु श्रेष्ठ लोगोंका अपमान ही किया करते हैं ॥ ३ ॥ स्त्रीसंभोग आदिको ही पुरुषार्थ माननेसे भयानक, बड़ा अभिमानी, दान देकर अपनी प्रशंसा करनेवाला, कृपण खोटे बलवाला अर्थात् बलसे दूसरोंका अनिष्ट करनेवाला, अपनी बड़ी प्रशंसा करनेवाला, सदा स्त्रियोंसे द्वेष रखनेवाला इन सातको पापस्वभाव और क्रूर कहा है ॥ ४ ॥ धर्म, सत्य, तपस्या, शास्त्रका पढ़ना, इन्द्रियोंको जीतना, दूसरेकी उन्नति न सहना न करना, लज्जा, सहनशीलता, किसीके गुणोंमें दोष न निकालना, दान धैर्य क्षमा ये बारह ब्राह्मणके महाव्रत हैं ॥५॥ जो मनुष्य इन बारह

नास्ति स्वमस्तीति च वेदितव्यम् ॥ ६ ॥ दमस्त्यागोऽथाप्रमाद इत्येते-ष्वमृतं स्थितम्। एतानि ब्रह्ममुख्यानां ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ॥ ७ ॥ सद्वाऽसद्वा परीवादो ब्राह्मणस्य न शस्यते। नरकप्रतिष्ठास्ते स्युर्य एवं कुर्वते जनाः ॥ ८ ॥ मदोऽष्टादशदोषः स स्यात् पुरा योऽप्रकीर्त्तितः। लोकद्वेष्यं प्रातिकूल्यमभ्यसूना मृषा वचः ॥ ९ ॥ कामक्रोधौ पारतन्त्र्यं परिवादोऽथ पैशुनम्। अर्थहानिर्विवादश्च मात्सर्यं प्राणिपीडनम् १० ईर्ष्या मोदोऽतिवादश्च संज्ञानाशोऽभ्यसूयिता। तस्मात् प्राज्ञो न माद्येत सदा ह्येतद्विगर्हितम् ११ सौहृदे वै षड् गुणा वेदितव्याः प्रिये हृष्यन्त्य-प्रिये च व्यथन्ते। स्यादात्मनः सुचिरं याचते यो ददत्यया-

महाव्रतोंसे भ्रष्ट नहीं होता है वह सब भूमण्डल पर अपनी प्रभुता करसकता है और जो इनमेंसे तीन वा दो अथवा एकका भी अधिकारी होता है तो उसको किसी वस्तु पर भी ममता नहीं रहती है ६ दम कहिये जितेन्द्रियपना, त्याग और अप्रमाद ये तीनों अमृत कहिये मुक्तिके स्थान हैं, बुद्धिमान् ब्रह्मपरायण ब्राह्मणोंको इन सब व्रतोंको ग्रहण करनेका अधिकार है ॥७॥ सच्ची हो वा झूठी हो।परन्तु दूसरों की निन्दा करना ब्राह्मणोंको शोभा नहीं देता, जो ऐसा करते हैं वह नरकमें पड़ते हैं ॥ ८ ॥ पीछे कहचुके हैं, कि-मदमें अठारह दोष होते हैं, परन्तु उन दोषोंको स्पष्टरूपसे नहीं कहा था, अतः अब उन सबों को कहते हैं-लोकद्वेष्य (दूसरोंके स्त्री धन आदिको छीनलेना) प्रातिकूल्य (धर्माचरण आदिमें विघ्न करना), अभ्यसूया (गुणियोंके गुणों में दोष लगाना), झूठो बातें कहना, काम, क्रोध, मदिरा आदि पीकर अपने आपेमें न रहना, निन्दा करना, चुगलखोरी, धनहानि अर्थात् वेश्या आदिमें वा राजद्वारमें वृथा धन उठाना, सबसे विवाद करना, डाह प्राणियोंको दुःख देना, ईर्षा, मोह(घमण्डके कारण हर्ष) मर्यादा के बाहर बातें करना, क्या काम करना चाहिये क्या न करना चाहिये इसका विवेक न रखना सदा दूसरोंसे द्रोहका स्वभाव ये अठारह मदके दोष हैं, इसकारण बुद्धिमान पुरुषको इन दोषोंमें फँस कर कभी मदमत्त नहीं होना चाहिये, क्योंकि-इस मदमत्तपनेकी सदा निन्दाकी गयी है ॥९-११॥ सौहार्दके छः गुण अवश्य जानने चाहियें मित्रका हित होनेसे प्रसन्न होय, अहित होनेसे दुःख माने, सौहार्द (मित्रता) के ये दो गुण हैं, अपनी अत्यन्त प्यारी वस्तु भी मित्र मांगे तो उसको देदेय, जिसको दूसरे न मांगसकै ऐसी वस्तुको भी

च्यमपि देयं खलु स्यात् । इष्टान् पुत्रान् विभवान् स्वांश्च दारानभ्यर्थितश्चार्हति शुद्धभावः ॥ १२ ॥ त्यक्तद्रव्यः संवसेन्नेह कामान् भुंक्ते कर्म स्वाशिषम्बाधते च १३ द्रव्यवान् गुणवानेवं त्यागी भवति सात्त्विकः । पञ्चभूतानि पञ्चभ्यो निवर्त्तयति तादृशः ॥ १४ ॥ एतत् समृद्धमप्यूर्ध्वं तपो भवति केवलम । सत्त्वात् प्रच्यवमानानां संकल्पेन समाहितम ॥ १५ ॥ यतो यज्ञाः प्रवर्द्धन्ते सत्यस्यैवावरोधनात् । मनसा-

अपना स्नेही मांगे ते देदेय, जिसके अन्तःकरणका भाव शुद्ध होता है, उस पुरुषसे ही कुछ मांगाजाता है ते वह अत्यन्त प्रिय भोगकेपदार्थ, पुत्र और स्त्रीतक भी दे देता है इसके सौहार्दका तीसरा गुण जाने।१२ किसी भी पुरुषको अपनी सब धन सम्पदा देदी हे। उसके पर 'मैंने इसका उपकार किया है' ऐसा विचार कर न रहे, यह सौहार्दका चौथा गुण गिना जाना है । मित्र आदिके ऊपर भरोसा न रखकर केवल अपने आप पायेहुए धनको ही भोगै, यह सौहार्दका पाँचवाँ गुण गिनाजाता है । अपने मित्रका हित करनेके लिये अपने स्वार्थका नाश करना पडे तब भी पीछेके न हटै, किन्तु अपने स्वार्थका बलिदान कर देय यह सौहार्दका छटा गुण है ॥ १३ ॥ जो धनी गृहस्थ ऐसा गुणवान, दानी और सत्त्वगुणी होता है वह शब्द आदि पाँच विषयोंमेंसे श्रोत आदि पाँचों इन्द्रियोंको पीछेको लौटा सकता है ॥ १४ ॥ इंद्रियोंको उनके अपने २ विषयोंसे पीछे को हटा लेना, यह तपस्या यदि उन्नति पाजाय ते वह केवल ऊपरके लोकोंकी गति देती है, जे परम तीव्र वैराग्यके न होनेसे धीरजसे गिरजाते हैं वे दिव्य लोकोंको भोगनेके संकल्पसे ही तप इकट्ठा किया करते हैं ॥ ❁ ॥ (नी० का तात्पर्य) इन्द्रियोंको उनके विषयोंमेंसे पीछेको लौटानारूप जे तप किया जाता है उस तपमें ज्ञान का भाव न होनेसे वह तप केवल ऊपरके लोकोंकी गति देना है उस से ज्ञानकेसी इसही लोकमें कृतार्थता नहीं मिलती जिनके तीव्र वैराग्य नहीं होता है वह धीरज भी नहीं रख सकते किन्तु वह, मैं दिव्य ब्रह्मलोकके ऐश्वर्योंको भोगूँगा ऐसे संकल्पसे ही तप करते हैं, उनको ज्ञान नहीं होता किन्तु वह केवल परलोकको ही पाते हैं ।१५ जिस संकल्पसे सब यज्ञ वृद्धि पाते हैं, उस सत्यसंकल्पकी अनुकूलतासे किसीका यज्ञ मनकेद्वारा, किसीका वाणीके द्वारा और किसीका कर्मके द्वारा सिद्ध होता है ॥ ❁ ॥ (नी०का तात्पर्य)-योगी

न्यस्य भवति वाचान्यस्याथ कर्मणा ॥ १६ ॥ संकल्पसिद्धं पुरुषमसङ्कल्पोऽधितिष्ठति। ब्राह्मणस्य विशेषेण किंचान्यदपि मे शृणु १७ अध्यापयेन्महदेतद्यशस्यं वाचो विकारान् कवयो वदन्ति। अस्मिन् योगेन सर्वमिदं प्रतिष्ठितं ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १८ ॥ न कर्मणा सुकृतेनैव राजन् सत्यञ्जयेज्जुहुयाद्वा यजेद्वा। नैतेन बालोऽमृत्युमभ्येति राजन् रतिञ्चासौ न लभत्यन्तकाले ॥१९॥ तूष्णीमेक उपासीत चेष्टेत

के संकल्प सत्य ही होते हैं। श्रुति कहती है-"संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति" योगीके संकल्पसे ही पितर परलोकमें पहुँचजाते हैं। इससे योगी सत्यसंकल्प वाला सिद्ध होता है, योगी सत्यसंकल्प होने के कारण मानसिक यज्ञ किया करते हैं इस विषयमें एक कथा है, कि-त्रित नामके एक मुनिको उसके भाईने कुएमें ढकेल दिया तो उसने कुएमें पड़े २ ही मनमें सब यज्ञ किये थे, इसही बातका संकेत श्रुति करती है, कि-त्रितःकूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये" त्रित कुए में पड़ा २ ही सावधान होकर यज्ञ करनेके लिये देवताओंको बुलाता है इससे सिद्ध होता है, कि—योगी मानसिक यज्ञ कर सकता है। मध्यम पुरुष ब्रह्मयज्ञ, जपयज्ञ, वाणीके द्वारा यज्ञ कर सकता है और साधारण पुरुष दही, घृत, पुरोडाश आदि पदार्थोंसे यज्ञ करसकता है ॥ १६ ॥ जैसे राजा सेवकके ऊपर स्वामीपना करता है तैसे ही संकल्पशून्य चेतनात्मा, सगुण ब्रह्मज्ञानी सत्यसङ्कल्प पुरुषके ऊपर स्वामीपना करता है। और तू मेरे एक दूसरे मतको भी सुन संकल्परहित ईश्वर, निर्गुण ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणके संकल्पमें अधिकतासे बसता है अर्थात् सगुणोपासककी अपेक्षा निर्गुणब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणमें सत्य संकल्प आदिका उदय अधिक होता है ॥ १७ ॥ पण्डित कहते हैं, कि ब्रह्मकी प्राप्ति कराने वाला यह योगशास्त्र शिष्यको पढ़ाना चाहिये, क्योंकि-इस शास्त्रको छोड़ कर शेष सब शास्त्र वाणीके विकार रूप हैं, इस योगशास्त्रमें यह सब विश्व समाया हुआ है अर्थात् सब जगत् योगीके वशमें रहता है, जो इस योगशास्त्रको जानता है वह मुक्त होजाता है ॥ १८ ॥ हे राजन्! भले प्रकारसे धर्म कर्मोंको करने पर भी पुरुष सत्यको नहीं जीत सकता अर्थात् परब्रह्मको प्राप्ति नहीं होती है। हे राजन्! अज्ञानी पुरुष यज्ञ याग करे तो भी उससे वह मोक्ष नहीं पासकता तथा अन्तकालमें आनन्दका लाभ भी नहीं उठासकता ॥ १९ ॥ बाहरी इन्द्रियोंके राग आदि सब

मनसापि न । तथा संस्तुतिनिन्दाभ्यां प्रतिरोधो विवर्ज्जयेत ॥ २० ॥
अत्रैव तिष्ठन् क्षत्रिय ब्रह्माविशति पश्यति । येइषु चानुपूर्वेण पतद्विद्वन् ब्रवीमि ते ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि
सनत्सुजातवाक्ये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५॥

सनत्सुजात उवाच । यत्तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः । तद्वै देवा उपासते तस्मात् सूर्य्यो विराजते । योगिनस्तं प्रपश्यन्ति

व्यवहारको त्याग कर एक ब्रह्मकी उपासना करे इतना ही नहीं किन्तु मनसे भी किसी प्रकारका व्यापार न करे तथा कोई अपनी प्रशंसा अथवा निंदा करे तो उससे भी प्रसन्न अथवा क्रोधमें न होय ॥ २० ॥ हे क्षत्रिय ! योगी पुरुष यदि सोपान पर चढ़नेके क्रमसे पीछे कही हुई आरोप, व्यामिश्र और अपवाददृष्टिका यथार्थ रीतिसे विचार करता है तो वह इस लोकमें ही ब्रह्मका दर्शन करता है और उसमें ही लीन होजाता है, हे विद्वान् राजा ! इस प्रकार मैंने तुझे योगशास्त्र कहकर सुना दिया ॥ ※ ॥ (नी० का तात्पर्य)—आरोप, व्यामिश्र और अपवाद इन तीन प्रकारकी दृष्टियोंका वर्णन पहिले किया जा-चुका है इनमें सोपानारोहण न्यायके अनुसार क्रमसे पहुँचे, ऐसा करते २ अन्तमें अपवाददृष्टिहोनेपर अर्थात् ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं ऐसा ज्ञान होजानेपर परब्रह्मका साक्षात्कार होता है, महाकाश घटाकाशकी समान अर्थात् घड़ा फूटजानेपर उसमेंका आकाश जैसे महाकाशमें मिल जाताहै, ऐसे ही उपाधिका लय होनेपर जीवात्मा ब्रह्मरूप बन जाता है इस लिये इष्ट फलवाली तथा अनन्तफल-वाली ब्रह्मविद्या विनाशी फल वाले कर्मोंसे श्रेष्ठ है, ऐसा जान कर विवेकी पुरुषोंको ज्ञानके लिये ही उद्योग करना चाहिये यह मैं तुझे उपदेश देता हूँ ॥ २१ ॥ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

सनत्सुजात बोले कि—बीजकी समान इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति आदि करनेमें मूलकारण जो पाँच प्रकारकी वृत्ति रूप उपाधि है तिससे रहित, ज्योतिःस्वरूप, सूर्यादिरूपसे प्रकाश करने वाला, महद्यश नामधारी जो परब्रह्म है, इन्द्रियें उसकी ही उपासना करती हैं और उससे ही मायोपाधिक ईश्वर भी प्रकाश पाता है, उस सनातन ब्रह्मको योगी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ※ ॥ (नी०का तात्पर्य)—पहिले अध्यायके अन्तमें कहा है, कि-'मनसापि न चेष्टेत' मनसे भी किसी

भगवन्तं सनातनम् ॥ १ ॥ शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्द्धते ।

प्रकारका व्यापार न करे, परन्तु यदि मनकाव्यापार बन्द होजायगा तब तो बड़े भारी ब्रह्मचर्यरूपी व्रतसे शेष रहे हुए एक शून्यका ही साधन करना माना जायगा ? ऐसी शङ्का करके उसके उत्तरमें कहते हैं, कि-शून्यकी समान सब प्रकार धर्मोंसे रहित होने पर भी शून्यभावको प्रकाशित करनेवाले सत्यस्वरूप परब्रह्मको सर्वव्यापक प्रत्यक्तत्त्वरूप जाने, इस विषयमें कितने ही पुरुष वैदिक मन्त्रोंको उदाहरण रूपसे कहते हैं, और उस योगीको प्रत्यक्ष होता है, यह बात प्रमाणरूपसे वारम्वार कहीजाती है। शुक्र नाम बीजका है, बीज जैसे वृक्ष आदिकी उत्पत्ति आदिका कारण होता है तैसे ही परब्रह्म भी जगत्की उत्पत्ति स्थिति आदिका कारण है, यह सब प्राणियोंकी चेष्टाओंको प्रवृत्त करता है, आनन्दरूप है तथा पाँच प्रकारकी वृत्ति उपाधियोंसे रहित है। योगशास्त्रमें प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा औरूप स्मृति ये पाँच वृत्तियें कही हैं। यह स्वयं ही ज्ञप्तिरूप है और स्वयं ही सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थोंके रूपसे प्रकाश किया करता है, वेदमें उसको महद्यश नामसे कहा है "यस्य नाम महद्यशः" ऐसे परमात्माको इन्द्रियें उपासना करती हैं और उस ही मूलकारणरूप परमात्माके प्रतापसे सूर्य कहिये जगत्को उत्पन्न करनारूप जिसका धर्म है ऐसा मायोपाधिवाला ईश्वर भी प्रकाशित होता है। श्रुति कहती है--"आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।" आनन्दात्मक चिदात्मासे ही वास्तवमें येसव प्राणी उत्पन्न होते हैं यह जन्मे हुए प्राणी आनन्दसे ही जीवित रहते हैं और अन्तमें आनन्दमें ही समा जाते हैं "को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्" यदि यह सर्वव्यापक आनन्द नहीं होता तो कौन जी सकता ? "येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद्यशः" जिसके तेजसे दमकता हुआ सूर्य तपता है उसके ऊपर कोई भी प्रभुता नहीं चलासकता, उसको नाम महद्यश है ॥ "न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।" प्राणसे तथा अपानसे कोई भी मरणधर्मा नहीं जीसकता, मिथ्या पदार्थोंसे भिन्न जो परमात्मा है उससे ही सब जीवित हैं कि-जिसके आश्रयसे यह प्राण और अपान अपनी २ चेष्टा करते हैं 'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुष-

तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम्। योगिनस्तं० ॥ २ ॥

दत्रक्षुः यह परमात्मा प्राणका प्राण और चक्षुका चक्षु है। इत्यादि श्रुतियें जिस परमात्माका वर्णन करती हैं उस सकल ऐश्वर्यों वाले परमात्माको योगी चित्तवृत्तिके निरोधसे संप्रज्ञात कहिये सविकल्प समाधिमें प्रत्यक्ष देखते हैं, परंतु असंप्रज्ञात कहिये निर्विकल्प समाधि में उस सनातन अखण्ड एक रसरूप परमात्माको ही देखते हैं। योगी योग करके ही उस परमात्माका दर्शन करते हैं और किसी रीतिसे परमात्माका दर्शन नहीं होसकता। इस विषयमें दक्ष कहते हैं, कि— "स्वसंवेद्यं हि तद् ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं तथा। अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो यथा घटम्॥" अर्थात्-परब्रह्म केवल अपने अनुभवसे ही जानाजाता है, जैसे कुमारी स्त्रीके सुखको नहीं जानती और जैसे जन्मका अन्धा पुरुष घड़ेको नहीं जानता तैसे ही अयोगी परब्रह्मको नहीं जानसकता ॥ १ ॥ ब्रह्म शुक्र कहिये आनन्दको प्राप्त करके जगत्की उत्पत्ति स्थिति आदि करनेको समर्थ होता है और आनन्दसे ही ब्रह्मकी वृद्धि भी होती है, वह शुक्र (आनन्दमूर्त्ति) सूर्य आदि ज्योतियोंके मध्यमें स्थित होकर तपता है और स्वयं अतप्त कहिये दूसरेसे अप्रकाश्य होकर भी और सबोंको तपाता है उन सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ छ ॥ (नीलका तात्पर्य)-ऊपरके श्लोकमें जो मंत्र कहा था उसकी ही व्याख्यारूप आगेके मंत्रोंको कहते हैं, कि-जो जगत्का बृंहण कहिये विस्तार करता है उसको ब्रह्म कहते हैं, यह परम व्योम नामका ब्रह्म नाम रूपसे अव्याकृत है अथवा यह अवस्तुरूप है तो भी यह चैतन्यके प्रतिबिम्बको पाकर जगत्की उत्पत्ति स्थिति आदि कार्यों को करनेमें समर्थ होता है तथा वह आनन्दसे ही वृद्धिपाता है, इस लिए ही शुक्र कहिये आनन्दात्मक ब्रह्म, सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थोंमें रह कर प्रकाशित होता है। भगवद्गीतामें कहा है, कि-यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्" ॥ सूर्यमेंका जो तेज सब जगत्को प्रकाशित करता है और जो तेज चंद्रमामें और अग्निमें है, उस तेजको तू मेरा तेज जान। यह अतप्त है अर्थात् उसको कोई दूसरा प्रकाशित नहीं करता, और वह स्वयंज्योति है और तापन कहिये सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थोंको भी भय देता है श्रुति कहती है, कि-भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति

अपोथ अद्भ्यः सलिलस्य मध्ये उभौ देवौ शिश्रियातेऽन्त रिक्षे। अतन्द्रितः सवितुर्विवस्वानुभौ विभर्त्ति पृथिवीं देवञ्च। योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवं० ॥ ३ ॥ उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च दिशः शुक्रो भुवनं विभर्त्ति। तस्माद्दिशः सरितश्च स्रवन्ति तस्मात् समुद्रा विहिता

सूर्यः, भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम" अर्थात् परमात्माके भयसे पवन चलता है,सूर्य उदित होता है और अग्नि, चन्द्रमा तथा पाँचवाँ मृत्यु भी उसके भयसे दौड़ादौड़ी किया करता है ॥ २ ॥ परब्रह्मके मध्यमें रहनेवाले दो देवता पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न हुए पाञ्चभौतिक शरीरके हृदयाकाशमें आश्रय करके रहते हैं, जो उन दोनों देवताओंसे जुदा, तन्द्रा रहित है और सूर्यसे भी विलक्षण कहिये नित्य उदय अस्तसे रहित है वह परमात्मा पृथिवी और आकाश दोनों देवताओंको धारण करता है, उन सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥🙞॥ (नी०का तात्पर्य)-सलिल शब्दका अर्थ है-एकरसरूपपरब्रह्म श्रुतिमें भी सलिल शब्द ब्रह्मका वाचक प्रसिद्ध है 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति' एक द्रष्टा अद्वैत सलिल कहलाता है। उस परब्रह्मके विषै रहनेवाले जलमेंसे उत्पन्न हुए जो पञ्चमहाभूत हैं उनसे शरीर उत्पन्न होता है, उस शरीरके हृदयाकाशका आश्रय लेकर दो देवता रहते हैं और वह दोनों चैतन्यरूपसे प्रकाश करते हैं उनमें एकका नाम जीव और दूसरेका नाम परमात्मा है। सुषुप्तिके समय परमात्मा तन्द्राके अधीन होजाता है, ईश्वर प्रलयके समय तन्द्राके अधीन होता है, परंतु उन दोनोंसे जुदा परब्रह्म तन्द्रासे रहित है अर्थात् मायासे रहित है और सविता कहिये जगत्का कारणरूप है, जो ईश्वरसे विलक्षण कहिये अपरिच्छिन्न चैतन्यरूप है तथा जिसका उदय वा अस्त कभी नहीं होता ऐसे प्रकाशवाला है, सबका अधिष्ठान कहिये आधार रूप है, वह परमात्मा जीव, ईश्वर पृथिवी तथा आकाशको धारण करता है ऐसे सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ३ ॥ वह शुक्र कहिये आनन्दब्रह्म जीवात्मा परमात्मा रूपी दोनों देवताओंको पृथिवी, स्वर्ग, दिशायें और चौदह ब्रह्माण्डों को धारण करता है, उससे दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं, उससे नदियें बहती हैं और बड़े २ समुद्र भी उससे ही उत्पन्न होते हैं, ऐसे सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥🙞॥ नीलकण्ठने समुद्र का अर्थ कामना किया है, और यह श्रुतिका प्रमाण दिया है, कि-

महान्तः । योगिनस्तं ॥४॥ चक्रे रथस्य तिष्ठन्तो ध्रुवस्याव्ययकर्मणः । केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि । योगिनस्तं० ॥ ५ ॥ न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् । मनीषयाध

"कामं समुद्रमाविश" इसप्रकार परमात्मा अपार कामनाओंको भी उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥ नाशवान् होने पर भी अविनाशी कर्मवाले, रथ (शरीर) के दो पहियोंके आधारसे रहनेवाले घोड़े (इंद्रियें) केतुमान् (जीव) को स्वर्गमें दिव्य अजर अमर परमात्माके पास ले जाते हैं, उस सनातन ब्रह्मका योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ❀ ॥ (नी०का तात्पर्य) इस श्लोकमें शरीरका रथरूपसे वर्णन किया है, शरीर एक रथरूप और नाशवान् है, परंतु उसके कर्म अविनाशी हैं, उस शरीररूपी रथमें पहियेकी समान चलायमान करनेवाले पूर्वके सञ्चित और प्रारब्ध कर्मोंके अधीन रहनेवाले इन्द्रियरूपी घोड़े जुड़े हुए हैं। वे घोड़े शरीररूपी रथमें बैठे हुए केतुमान् कहिये प्रज्ञावाले जीवको परमात्माके पास लेजाते हैं और वह घोड़े यदि परमात्माके पास न लेजाकर जीवको विषयोंके पास लेजाते हैं तो शरीरका नाश होजाने पर भी उसके कर्मोंका नाश नहीं होता है, इसकारण जीव मरणके अनन्तर फिर कर्मानुसार दूसरे शरीरके साथ तुरन्त ही युक्त होजाता है, जिसका योगी दर्शन करते हैं वह परमात्मा दिव्य कहिये अलौकिक है, अहंप्रत्यक्षके विषयसे अन्य अर्थात् अज्ञानादिसे रहित है ॥ ५ ॥ इस परमात्माका रूप अनुपम है, कोई इसके स्वरूपको चक्षु इन्द्रियसे नहीं देखसकता, जो पुरुष मनीषा कहिये निर्मल ज्ञान वा विश्वाससे स्वच्छकी हुई बुद्धिके द्वारा तथा हृदयमें निग्रह किये हुए मनके द्वारा इस परमात्माको जानता है वह अमर होता है, ऐसे सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य)-परमात्माका आकार किसीके समान नहीं है किन्तु वह अनुपम है, उसको कोई चक्षु इन्द्रियसे भी नहीं देख सकता, चक्षु शब्द इन्द्रियोंका उपलक्षण है अर्थात् वह सब इन्द्रियोंके अगोचर है श्रुति भी कहती है-"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" परमात्मा शब्द स्पर्श-रूपरहित तथा अविनाशी है। मनीषा कहिये मनका निग्रह करके सूक्ष्म मनसे ही परमात्माका दर्शन करै "मनसैवानुद्रष्टव्यम्" परमात्माको मनके द्वारा ही देखना चाहिये। ऐसा कहकर श्रुतिने मनका करण-पना सिद्ध किया है जो मनका हृदयमें निग्रह करके इस परमात्माको

मनसा हृदा च य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति । योगिनस्तं ॥ ६ ॥ द्वादशपूगां सरितं पिबन्ति देवरक्षिताम् । मध्वीशन्तश्च ते तस्याः सञ्चरन्तीह घोराम् । योगिनस्तं प्रपश्यन्ति० ॥७॥ तदर्द्धमासं पिबति

जानते हैं वह मुक्त होजाते हैं । जिसमें बारह पूग हैं और देवता जिस की रक्षा करते हैं ऐसी अविद्या नदीका जल पीनेवाले और शुक्र नामक अधिष्ठानके विषै रहनेवाली उस अविद्या नदीके मधुर फल की इच्छा वाले जीवात्मा उस भयानक नदीमें ऊपरनीचे गोते खाया करते हैं और जो योगी हैं वे सनातन ब्रह्म का दर्शन किया करते हैं ॥ ॥ (शा०का तात्पर्य)-पाँच कर्मेन्द्रिय पाँच ज्ञानेन्द्रिय, एक मन तथा एक बुद्धि इन बारहका एक महापूग (समूह) है । यह महापूग सरणशील महानदीकी समान निरंतर बहता रहता है और परमात्मासे रक्षा पाताहुआ जीवको असंकर क्रमसे विषय रूपी मधुका पान कराता है (चक्षु रूपमें ही जाता है शब्दमें नहीं जाता, अन्य इन्द्रियें भी इस ही नियम पर अपना २ काम करती हैं, कोई किसीसे मिलती नहीं इस लिये असङ्कर हैं), ज्यों ही वह विषय मधुको पीती हैं अर्थात् रूप रस आदिका सेवन करती हैं, त्यों ही जीव भयानक संसारमें जा पड़ता है, इस लिये द्वादश महापूगको विषयोंसे बचा कर आत्माकी ओरको लेजाय, जिससे रक्षा पाकर यह महापूग जीवको विषयमधु पिलाता है, उस सनातन देवका दर्शन केवल योगी ही पाते हैं ॥ ॥ (नी० का तात्पर्य) जब तक परमात्माके स्वरूपका ज्ञान नहीं होता तब तक संसारका नाश भी नहीं होता है, इस ही बातको कहते हैं, कि-अविद्यारूपी एक नदी है, उसमें बारह पूग हैं,उन पूगोंका वर्णन इसप्रकार है । "चित्तादिपूगो स्मरणादिपूगः श्रोत्रादिपूगः श्रवणादिपूगः । वागादिपूगो वचनादिपूगः शब्दादिपूगो विषयादिपूगः॥प्राणादिपूगः श्वसनादिपूगः संस्कारपूगः सुकृतादिपूगः एतैर्महापूगवरैरविद्यानद्यामधश्चोपरि चैति जीवः ।." अर्थात् चित्त आदिका पूग (समूह) उनके विषय स्मरण आदिका पूग, श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका पूग और उनके विषय श्रवण आदिका पूग, वाक् आदि इन्द्रियोंका पूग और उनके विषय वचन आदिका पूग शब्द आदिका पूग और विषय आदिका पूग, प्राण आदिका पूग और श्वसन आदि का पूग, संस्कारोंका पूग, और सुकृत आदिका पूग, इन बडे२पूगोंके कारण अर्थात् इन्द्रियोंके और इनके विषयोंके समूह रूपी तरङ्गोंसे

सञ्चित्य भ्रमरो मधु । ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत् । योगि-

जीव अविद्यारूपी नदीमें ऊपर नीचे गोते खाया करता है । इस प्रकार जीव नित्य प्रवाहवाली अविद्या नदीके जलको पिया करते हैं अर्थात् उसके दिये हुए पुत्र पशु आदि मन चाहे पदार्थोंको पाकर सन्तोष मानते हैं, और नेत्र आदि इन्द्रियोंके ऊपर अनुग्रह करने वाले सूर्य आदि देवता अपने २ विषयका दर्शन करा कर अनेकों संस्कारोंको जमाते हुए अविद्यानदीकी रक्षा करते हैं । जीवात्मा उस अविद्या-नदीके मधुकी अर्थात् पुत्र पशु आदि मधुर फलकी इच्छा करते हैं और उसको लेनेकी इच्छासे शुक कहिये आनन्दस्वरुप परमात्माके विषें प्रतीत होने वाली महाशयानक अविद्यारूपी नदीमें ऊपर नीचे गोते खाया करते हैं अर्थात् ऊपर नीचेके लोकोंमें आवागमन किया करते हैं, उस आनन्दस्वरूप परमात्माका योगी प्रत्यक्ष दर्शन पाते हैं७ भ्रमर कहिये भ्रमणके स्वभाव वाला जीव अनेकों वासनाओंसे विचार करके अपने किये हुए आधे कर्मोंका फल परलोकमें भोगता है और जो कुछ कर्म शेष रह जाते हैं उनको भोगनेके लिये फिर इस लोकमें जन्म लेता है; जो पुण्यकर्मों वाला जीव है वही ईशान है तथा बलि-दानसे सिद्ध होने वाले यज्ञका कर्त्ता भी वही है, उस सनातन ब्रह्मको योगी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ७ ॥ (शा० का तात्पर्य) जैसे भ्रमर (मधु-मक्षिका) आधे महीने मधुको इकट्ठा करती है और आधे महीने उसको पीती है ऐसे ही संसारमें भ्रमण करनेके कारण भ्रमण नाम वाले जीव भी आधे मास विषय मधुका सञ्चय करते हैं और आधे महीने उसको भोगते हैं, तात्पर्य यह है, कि-पहिले जन्ममें सञ्चय किये हुए कर्मका फल अगले जन्ममें भोगते हैं, जिस ईशान (ईश्वर)ने जीवोंके कर्मानुसार प्राणाग्निहोमके द्रव्य (भोगदायक अन्नादि) को रचा है, उस सनातन ब्रह्मका केवल योगी ही दर्शन पाते हैं ॥ ७ ॥ (नी० का तात्पर्य)-इस लोकमें जो कुछ कर्म किये हैं उनको परलोकमें ही भोग लेने पर यदि कुछ कर्म शेष न रहें तो फिर इस लोकमें जन्म नहीं होना चाहिये, किन्तु मुक्ति होजानी चाहिये, ऐसी शङ्का उठाकर उसका समाधान करते हैं, कि—जहाँ तहाँ भटकते फिरनेका स्वभाव होनेसे भ्रमररूप माना जानेवाला जीवात्मा मधु कहिये कर्मके फलको आधे महीने पीता है, जिसमें आधे मास चन्द्रमाका पान किया जाता है उसको अर्द्धमास कहते हैं । श्रुतिमें कहा हैं, कि—"तेदां सोमो

नस्तं० ॥ ८ ॥ हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपद्य ह्यपक्षकाः । ते तत्र पक्षिणो

राजान्नं तं देवा भक्षयन्ति" देवताओंका राजा सोम है और उस सोमरूपी अन्नको देवता भक्षण करते हैं, तात्पर्य यह है, कि—यज्ञ आदि करने वाले देवरूप होकर परलोकमें जा सोममेंके अमृतको पीते हैं, जीव भी देव होकर परलोकमें जाने पर तहाँ पहिले अर्धमास सोम का पान करता है अर्थात् आधे कर्मोंके फलको भोगता है और शेष कर्मोंके फलको भोगनेके लिये इस लोकमें फिर जन्म लेता है। मूलमें 'संचित्य' पद है उससे यह जताया है, कि-परलोकके भोगोंको भोगनेके अनन्तर इस लोकके भोगोंको भोगनेकी भी वासना रहती है। कर्म दो प्रकारके हैं-कितने ही परलोक देने वाले हैं और कितने ही इस लोकमें जन्म देते हैं। उनमेंसे एक प्रकारके कर्मोंका भोग होने पर दूसरे कर्मोंका फल भोगनेके लिये इस लोकमें जन्म लेता है।श्रुति कहती है, कि-"यावत् सम्पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानम्पुनर्निवर्त्तते तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशोह ते रमणीयां योनिमापद्यन्ते कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते" जब तक कर्म रहते हैं तब तक जीव स्वर्गमें रहता है और फिर इस मर्त्यलोकके ही मार्गसे लौट आता है, उनमें जो पुण्य कर्म करने वाले होते हैं वह तुरन्त पवित्र योनियोंमें जन्म धारण करते हैं और पापकर्म करने वाले पापयोनियोंमें जन्म धारण करते हैं। जो जीव पवित्र कर्म करने वाला होता है वही जीव ईशान कहिये अन्तर्यामी है और सब प्राणियोंमें वास करके रहता है तथा वह हविष्य पदार्थोंसे होने वाले यज्ञोंको करता है अर्थात् वह वेद और वेदोक्त मार्गको चलाता है, ऐसा कह कर त्वम् और तत् पदके अर्थमें अभेद दिखाया है ऐसे वेदमार्गके प्रवर्त्तक सनातन भगवान्का दर्शन योगी ही पाते हैं ॥ ८ ॥ विना पंखोंके पक्षी हिरण्यके पत्तों वाले अश्वत्थ (पीपल) का आश्रय करके तहाँ पंखों वाले होजाने पर मन-मानी दिशाओंको उड़ जाते हैं, योगी उनके अधिष्ठानरूप सनातन भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥❀॥ (शा० का तात्पर्य)-हित और रमणीय दोका मिलकर हिरण्य बनता है,जो ज्ञानरूपी पक्षसे रहित हैं वे अपक्षक हैं। जो अस्थायी अर्थात् नाशवान् है वह अश्वत्थ है। ज्ञानपक्षसे रहित व्यक्ति हिरण्यपर्ण अश्वत्थके ऊपर चढ़करभी अर्थात् वेदसंयोगी ब्राह्मण शरीर पाकर भी विषयरूपी फलको खानेके लिये इधर उधर भटकते फिरते हैं, अर्थात् वारम्वार संसारवनमें पड़ते हैं,

भूत्वा प्रपतन्ति यथादिशम ॥ योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम ॥ ९ ॥ पूर्णात्पूर्णान्युद्धरंति पूर्णात पूर्णानि चक्रिरे । हरंति पूर्णात्

परन्तु जो अपक्षक नहीं हैं, किंतु ब्राह्मणादि देहरूप वृक्षके पक्षी (ज्ञानी) हैं वह इच्छानुसार उड़ते हैं अर्थात् देहरूप वृक्षमेंसे उड़ जाते हैं सार यह है, कि-देहाभिमानको त्याग कर केवल वा अद्वितीय ब्रह्मरूप होजाते हैं, वह सब पक्षी (ज्ञानी) जिसको जान कर सुखके साथ देहवृक्षसे उड़ जाते हैं उन सनातन भगवान्का दर्शन योगियों को ही होता है, औरोंको नहीं होता ॥ ७ ॥ (नी० का तात्पर्य) इस श्लोकमें जीवात्माको पक्षीका रूपक दिया है और अविद्याका अश्वत्थ रूपसे वर्णन किया है, इस अश्वत्थ शब्दमें श्लेष भी है । ईश्वर जो जीवभावको प्राप्त होता है, इसका क्या कारण है ? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं, कि—'न श्वः तिष्ठतीति अश्वत्थः' जिसकी कलको भी रहनेकी आशा नहीं है वह अश्वत्थ कहलाता है, अर्थात नाशवान् अविद्या वृक्षका नाम अश्वत्थ है, उस अश्वत्थ वृक्षके पत्ते ऊपर २ से रमणीय होनेके कारण मनको हरण करते हैं, इस कारण उनको हिरण्य नामसे कहा है । जगत्में स्त्री पुत्र आदि मनको मोहमें डालने वाले अविद्यावृक्षके पत्ते हैं, ऐसे अविद्यारूपी वृक्षका पक्षी कहिये जीव आश्रय करते हैं उस समय उनको उत्क्रमणकी कारण भूत प्राणरूप उपाधियें न होनेसे वह विना पंखके होते हैं, परन्तु अविद्यावृक्षका आश्रय लेनेके अनन्तर उनको प्राण आदिकी उपाधि प्राप्त होनेसे वह उत्क्रमणके योग्य होते हैं अर्थात् पंखवाले होते हैं इस कारण मन मानी दिशाओंमेंको जाते है अर्थात् अपनी वासनाओंके अनुसार अनेकों योनियोंमें जन्म धारण करते हैं यह चिदात्मा एक है तो उपाधिके भेदको लेकर उसको बहुवचनसे कहा है, चिदात्मा प्राणोपाधिके कारण उत्क्रमण करता है । प्रश्नोपनिषद्में लिखा है, कि-"स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रांत उत्क्रांतो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत" प्राण आदि सोलह कलाओं वाले पुरुषने देखा, कि-किसके उत्क्रमणसे मेरा उत्क्रमण होगा और किसकी स्थितिसे मेरी स्थिति होगी, ऐसा विचार कर उसने पहिले प्राणको रचा, उस प्राणके ही कारणसे चिदात्माका उत्क्रमण होता है ॥९॥ प्राण आदि उपाधिरूप दर्पण, चैतन्य परमात्मामेंसे चैतन्यमें प्रतिबिंबरूपसे पड़ेहुए जीवात्माओंको चैतन्यसे जुदा करती है और प्राण आदिको

पूर्णानि पूर्णमेवावशिष्यते। योगिनस्तं प्रपश्यंति भगवंतं सनातनम् १०

भी ब्रह्ममेंसे ही उत्पन्न किया है, उन प्राण आदिकोंका ब्रह्ममें अध्यास हुआ है, इस बातको विवेकदृष्टिसे उसको ब्रह्मसे जुदा करते हैं, यह बात जीव और ईश्वरके भेदमें कारणभूत उपाधिके मिथ्यापनेके कारण से है और केवल पूर्ण ब्रह्मही शेष रहता है योगी इस सनातन ब्रह्मका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ❀ ॥ (शा० का तात्पर्य)-देश, काळ और अन्यदीखनेवाले पदार्थ जिसका परिच्छेद (यह इतना है ऐसा निश्चय) नहीं करसकते उस पूर्ण परमात्मासे पूर्ण (जीव) उत्पन्न हुआ है, पूर्णसे उत्पन्न होनेके कारण पण्डितोंने उस उत्पन्न हुए पूर्ण (जीव) को भी पूर्ण नामसे कहा है, फिर इस उत्पन्न पूर्णसे वह पूर्ण उद्धृत होता है अर्थात् पूर्ण ब्रह्मही अपनी अविद्याके द्वारा जीव होता है और जीव फिर अपनी आत्मविद्याके द्वारा जीवभावको छोड़ कर पूर्ण (ब्रह्म) होजाता है, पूर्णके पूर्णमें स्थित होने पर मूलभूत पूर्णानन्द ही शेष रहता है अर्थात् अद्वितीय चिदानन्दमय ब्रह्मभाव स्थिर होता है, वह स्थिर सच्चिदानन्द ही भगवान् सनातन आत्मब्रह्म है, उसका दर्शन केवल योगियोंको ही ज्ञानयोगके द्वारा होता है ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य) ईश्वर जो जीवपनेको पाता है उसमें उपाधिका संबंध ही कारण है यह बात कही तो क्या उपाधियें सर्व ब्रह्मका बोध करती हैं या ब्रह्म के अंशोंको ही बाध करती हैं, यदि पहिला पक्ष मानो तब तो बहुतसे जीव सिद्ध होंगे और यदि दूसरा पक्ष मानोगे तो ब्रह्मके निरवयवपने में बाधा आवेगी, क्योंकि-जो अंश होता है वह अंशी नहीं होसकता, इस कारण जीव और ईश्वरमें अभेद सिद्ध नहीं होगा, ऐसी शंका उठा कर उसका समाधान करते हुए कहते हैं, कि-प्राण आदि उपाधिरूप दर्पण, पूर्ण कहिये व्यापक चिदात्मामेंसे जीव आकारवाले चैतन्यके प्रतिबिम्बोंको जुदा करते हैं। यहाँ एक शंका उठती है, कि-यदि प्राण आदि उपाधियें पूर्णनाम वाले परमात्मासे जुदी हों तब तो फिर पूर्ण परमात्माके पूर्णपनेका ही नाश होजाय, इस दूसरी शंकाको दूर करने के लिये तुरन्त ही कहा गया है, कि-प्राण आदि उपाधियें भी ब्रह्ममेंसे ही रची गई हैं, इसका भाव यह है, कि घटाकाश न्यायकी समान अर्थात् घट उपाधि है और आकाश उपाधेय है, उसकी समान उपाधि और उपाधेय ये दोनों एक दूसरेके परिच्छेदक (मापक) कहिये तोल या नाप करनेवाले हों तो दोनोंमेंसे एकको भी पूर्णता नहीं होसकती,

तस्माद्वै वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रयतः सदा। तस्मादग्निश्च सोम
तस्मिंश्च प्राण आततः॥११॥ सर्वमेव ततो विद्यात्तत्वक्तुं न शक्

इस कारण यहाँ जो उपाधि कही है वह अध्यासमात्र ही है और
अध्यासरूप ही है तो उनकी सत्ता विषम होनेके कारण उनका परस
परिच्छेदकपना नहीं होसकता, किन्तु एक दूसरेके स्वरूपको ढ
वाला है, अपनी २ प्रतीतिके समय अर्थात् रज्जु दीखती हो तब र
का और सर्प दीखता हो उस समय सर्पका, इसप्रकार दोनोंका पृ
पना भासता है, उस समय कोई प्रतियोगी पदार्थ देखनेमें नहीं आ
उपाधि एक कल्पित वस्तु है और वह जीव तथा ईश्वरका भेद क
में कारणभूत है। प्राण आदि ब्रह्ममें अध्यासी हैं, उनको जब विवे
दृष्टिसे भले प्रकार देख कर, जैसे रज्जुमेंसे सर्पको दूर किया जाता
तैसेही उसको ब्रह्मसे जुदा किया जाता है तब जीव और ईश्वरके
में निमित्तरूप उपाधिका अभाव होजानेसे पूर्णब्रह्म ही शेष रहता
विष्णुपुराणमें लिखा है, कि-"विभेदजनके ज्ञाने नाशमात्यन्तिकं
आत्मनो ब्रह्मणा भेदमसन्तं कः करिष्यति ॥" भेदको उत्पन्न क
वाली बुद्धि जब जड़मूलसे नष्ट होजाती है तब फिर आत्माका जो
ब्रह्मके साथ असत् भेद है उसको कौन करेगा ? ॥१०॥ उस परमा
से वायु आदि भूतोंका समूह उत्पन्न हुआ है और उसमें ही स
जाता है उससे अग्नि, सोम और प्राण अर्थात् भोक्ता, भोज्य और श
तथा इन्द्रियोंका समूह उत्पन्न हुआ है और वह सब, उसमें ही विस
पाकर रहता है, उस सनातन ब्रह्मको योगी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥
(नी० का तात्पर्य) श्रुति कहती है, कि—तस्माद्वा एतस्मादा
आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ
पृथिवी" उस परमात्मासे पहिले आकाश उत्पन्न हुआ, आका
वायु हुआ, वायुसे अग्नि हुआ, अग्निसे जल हुआ, और जलसे पृ
हुई। इसप्रकार पाँचों महाभूत परमात्मासे ही उत्पन्न हुए हैं और
सदा उसमें ही समाजाते हैं॥ ११ ॥ यह सब दीखता हुआ विश्व
से ही उत्पन्न हुआ है, परन्तु हम उसके स्वरूपको स्पष्टरूपसे नहीं
सकते, योगी वाणीके अगोचर उस सनातन ब्रह्मका प्रत्यक्ष द
करते हैं ॥ ॥ (नी० का तात्पर्य)—यह सब ब्रह्माण्ड तत् श
वाच्य परब्रह्मसे हुआ है, तत् शब्द प्रसिद्ध रीतिसे ब्रह्मका वाच
"तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति" तब यह महाभूत

योगि० १२ अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चंद्रमाः । आदित्यो गिरते

मात्माका नाम है यह बात श्रुतिमें भी कही है, उस वाणीके अगोचर परब्रह्मको 'इसप्रकारका है' ऐसा हम नहीं कहसकते, किंतु उस सनातन परमात्माका योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ १२ ॥ प्राणवायु अपानवायुको निगल जाता है, चन्द्रमा कहिये मन प्राणवायुको निगल जाता आदित्य कहिये बुद्धि मनको निगल जाती है, फिर परमात्मा बुद्धिको निगल जाता है, इस प्रकार बुद्धिको ग्रस जाने वाले परमात्माका योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ॥ (नी० का तात्पर्य)-इस श्लोकमें तत् पदके वाच्य परमात्माका दर्शन करनेके उपायरूप योगका संक्षेपसे वर्णन किया है, योगमें कहीहुई रीतिके अनुसार अपान प्राण आदिका अगले २ पदार्थमें उपसंहार कहिये लय करै लय करनेकी रीति इसप्रकार कही है कि-पुरुष पहिले पैरोंकी एडीसे गुदाके छिद्रको ढकदेय, दाँतोंसे दाँतोंको न पीसै, किन्तु अलग अलग रक्खे, आसनको दृढ़ करके धीरे २ अपानवायुको ऊपरको चढ़ावे और उसको प्राणवायुके साथ इकट्ठा करके हृदयाकाशमें स्थिर करै और फिर उसका चित्तमें लय करे, उस चित्तका बुद्धिमें लय करे और बुद्धिका परमात्मामें लय करे इसप्रकार लय करते २ परमात्मस्वरूपमें स्थिति करे ऐसी साधना करके योगी सनातन परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन पाते हैं ॥१३॥ चार चरणवाला हंस जैसे किसी २ समय तीन चरणसे चलता है और अपने एक चरणको नहीं दिखाता है ऐसे ही चार चरणवाला हंस (परमात्मा) भी संसाररूपी अगाध सागरमें ऊपरके भागमें तीन चरणोंसे विहार करता है और चौथे चरणको प्रकट नहीं करता है, जो मनुष्य उन तीन चरणोंको चलाने की क्रियामें व्यापे हुए उस तुरीय पदका दर्शन करता है उसकी मृत्यु वा मृत्युका अभाव नहीं होता है, उस तुरीयपदरूप सनातन भगवान्को योगी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ॥ (शा० का तात्पर्य) संसारमें परमात्मा ही जीवरूपसे स्थित है, इस बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि--हंस कहिये परमात्मा संसाररूप जलके ऊपर विचरता हुआ भी अर्थात् संसारसे मुक्त होकर भी एक (जीव नामक चरणको नहीं उठाता है, यदि सतत ऋत्विज् कहिये निरन्तर कर्म करने वाले जीवरूप चरणको ऊपरको उठा लेता तो मृत्यु और अमरत्व इन दोनोंमेंसे कुछ भी नहीं रहता, इस संसारमें जो जीवरूप एक

चंद्र आदित्यं गिरते परः । योगि० ॥१३॥ एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन् । तञ्चेत् संततमूर्ध्वाय न मृत्युर्नामृतं भवेत् । योगि० ॥ १४ ॥ अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा लिङ्गस्य योगेन स याति

चरणसे भी संसारके ऊपर सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्मरूप त्रिपादमें विराजमान रहता है उन सनातन भगवानका योगी योगदृष्टिसे प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। इस ही भावको अथर्वकी श्रुति कहती है-"एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन्। स चेदुत्क्षिपत्यानन्दं न मृत्युर्नामृतं भवेत्" ॥ शङ्कराचार्यजीने इस श्लोकके उत्तरार्द्धका-'तं चेत्सततमृत्विजम्' ऐसा पाठभेद मानकर अर्थ किया है ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य) श्रुति कहती है,कि-'यत्साक्षादपरोक्षात्' परब्रह्म परोक्ष नहीं है, किन्तु प्रत्यक्ष है, इस श्रुतिके अनुसार ब्रह्म जब नित्य प्रत्यक्ष है तो फिर योगका क्या प्रयोजन है ? हंसकी समान हंसरूप परमात्मा शरीररूपी वृक्षका आश्रय करके रहता है तो भी शरीरके साथ बँधाहुआ नहीं है, उसके चार चरण हैं, श्रुति भी कहती है-"सोऽयमात्मा चतुष्पात्" वह आत्मा (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन) चार चरणों वाला है, इनमेंसे तुरीय नामके एक चरणको वह हंस प्रकट नहा करता है, किन्तु महागंभीर संसाररूपी समुद्रके ऊपर तीन चरणोंसे विचरता है, श्रुतिमें भी कहा है "तं तुरीयं पादं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यंते स आत्मा विज्ञेयः" [योगी उस [तुरीय पदको शिव, अद्वैत और चतुर्थतत्त्व मानते हैं, उसको आत्मा जानो। इस प्रकार श्रुतिमें प्रसिद्ध तुरीय पद विश्व, तैजस और प्राज्ञ इन तीन पादोंमें व्याप्त है और इनको चलायमान करता है चैतन्यके संबन्धके बिना विश्व तैजस आदि अपना २ काम नहीं कर सकते, परन्तु उस परमात्माका दर्शन हुआ कि-अज्ञानसे होनेवाले मृत्यु और अमृत्यु (जन्म) नष्ट होजाते हैं, ज्ञान होजाने पर तीनों कालमें जन्म मरण नहीं रहते। यद्यपि ब्रह्म नित्य प्रत्यक्ष है तो भी उपाधिके कारणसे अप्रत्यक्ष होरहा है, ऐसे ब्रह्मका दर्शन करनेके लिये योगकी आवश्यकता है ॥ १४ ॥ अँगूठेकेसा अन्तरात्मा पुरुष, लिङ्गशरीरके संबन्धसे नित्य इस लोकमें, परलोकमें और जाग्रत् तथा स्वप्नमें जाता है, वह सबका नियन्ता, स्तुति करनेयोग्य और उपाधिके संबन्धसे सब कार्य करनेमें समर्थ है, मूल कारणरूप परमात्मा चैतन्य रूपसे प्रकाशवान है तो भी मूढ पुरुष उसको नहीं देखते हैं,

नित्यम् । तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं पश्यन्ति मूढा न विराजमानम् । योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १५ ॥ असाधना वापि ससाधना वा समानमेतद् दृश्यते मानुषेषु । समानमेतदमृतस्येतरस्य

उस सनातन भगवान्को योगी ही प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ * ॥ (शा० का तात्पर्य) परमात्मा कौनसी उपाधिसे जीव नामक एक पादमें स्थित होता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं, कि-परमात्मा लिंगशरीररूप उपाधिसे जीव है, वही अद्वितीय सच्चिदानन्द परमात्मा सकल भूतों के अन्तर्यामीरूपसे विराजमान है । वह पुरुष कहिये पूर्ण होने पर भी लिंग कहिये अन्तःकरणके संयोगसे अंगुष्ठ परिमाण है, वह अपरिच्छिन्न होनेपर भी परिच्छिन्नसा होकर विचरता है (लिंगके विचरने में उसका विचरना अध्यस्त) है जो लिंगशरीरके संयोगसे परिच्छिन्न सा होकर संसारमें विचरता है, वह ही विश्वका ईश्वर, सबका पूज्य; सकल व्यवहारके पदार्थोंमें प्रवेश कियेहुए, सबका कल्पक कहिये रचनेवाला, सबका आदि कहिये मूलकारण और सबठौर देदीप्यमान है । मूढ पुरुष उसको ऐसे स्वभाववाला नहीं जानते इसकारण वह अपने ब्रह्मभावको भूले हुए संसारमें लिप्त होरहे हैं । जिस महान् आत्माके स्वरूपको न जानने पर संसार है, उन सनातन भगवान्का योगी दर्शन करते हैं ॥ * ॥ (नी० का तात्पर्य) हृदयाकाश अँगूठेकी बराबर है अतः उसमें बसनेवाले परमात्माको भी अँगूठेकी बराबर कहा है परमात्माका अंगुष्ठमात्र विशेषण देकर इस बातका उपदेश दिया है, कि-योगियोंका हृदयकमल ध्यानकास्थान है। पुरुष कहिये पूर्ण अन्तर्यामी परमात्मा, अन्नमय, प्राणमय,मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच प्रकारके बाहरी कोषोंके भीतरी भागमें रहता है और वह लिंगशरीर कहिये पाँच प्राण, मन बुद्धि और दश इन्द्रियोंके संबन्धसे सदा इस लोक और परलोकमें तथा जाग्रत् अवस्था और स्वप्न अवस्थामें जाता है, वह सबका ईश कहिये नियन्ता है, स्तुति करने के योग्य है, उपाधिके साथ रहकर सब काम करसकता है, इस जगत का मूलकारण है, प्रत्यक्ष चैतन्य रूपसे सर्वत्र प्रकाशवान् है तो भी मूढ पुरुष उसको नहीं देखसकते, किंतु उस परमात्माको योगी देखते हैं ॥ १५ ॥ मनुष्योंमें चाहे साधनोंवाले हों, चाहे साधनहीन हों, परंतु परब्रह्म सबके लिये समान है अर्थात् सबको निर्विकार दीखता है, चाहे मुक्त हो चाहे बद्ध हो, दोनोंकी दृष्टिमें ब्रह्म समान ही है,

मुक्तास्तत्र मध्व उत्संसमापुः ॥ योगि० ॥ १६ ॥ उभौ लोकौ विद्यया-

परंतु उनमेंसे जो मुक्त हैं वह ब्रह्मरसकी परकाष्ठाको पागये हैं, जो इस प्रकार सबको समान है ऐसे सनातन ब्रह्मको योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ॥ (शा०का तात्पर्य) देखनेमें आता है, कि-मनुष्योंमें कोई शम दम आदि साधनोंसे रहित हैं और कोई असाधनोंसे युक्त हैं बाहर,कोई चाहे जैसा हो परन्तु उनके भीतर जो ब्रह्म विराजमान है वह सबोंमें एकसमान है, आत्माके स्वरूपमें कुछ कमी बढती नहीं होती, मनुष्योंमें मुक्त और बद्ध दोनों दशा देखनेमें आती हैं,परन्तु उन दोनों अवस्थाओंमें आत्माका स्वरूप एकसा ही रहता है, आत्मा तो सदा एकसा ही रहता है, भेद इतना ही है कि-जो साधनसम्पन्न और मुक्त होते हैं वह पूर्णानन्द परब्रह्मरूप मधुर सोतेका स्वाद चखते हैं और जो साधनहीन बद्ध पुरुष हैं वह उससे वञ्चित रहते हैं, ऐसे मधुर सोतेको केवल योगी ही पाते हैं ॥ ॥(नी० का तात्पर्य)-यहाँ किसीको शङ्का होय कि-अँगूठेकी समान हृदयाकाशमें विराजे हुए परमात्माको हृदयके तापसे ताप होना संभव है और सन्तप्त स्वभाव वाले पुरुषकी मुक्ति नहीं होसकती, इस शङ्काका समाधान करते हुए सनत्सुजात कहते हैं, कि-पूर्ण पुरुष परमात्माको कभी भी ताप नहीं हो सकता, क्योंकि-वह निर्विकार है, प्राण तथा इन्द्रियोंके अभिमानी मनुष्योंमें कितने ही साधनसम्पन्न होते हैं और कितने ही साधनशून्य होते हैं, परन्तु इन सबोंमें जो चैतन्य ब्रह्म रहता है वह विकाररहित है, श्रुति कहती है "असङ्गो ह्ययं पुरुषः" पुरुष सङ्ग रहित है, परमात्मा साधनसहित और साधन रहित, मुक्त और बद्ध सबमें निर्विकार भावसे विराजमान है, हाँ इतनी विशेषता देखते हैं कि-जो मुक्त हैं वह ब्रह्मरसकी पराकाष्ठाका अनुभव करते हैं, इस सब का सार यह है, कि-एक अवस्थामें जो दुःख देखनेमें आता है उसको दूसरी अवस्थामें नहीं देखते, इससे सिद्ध होता है, कि-उपाधिके धर्मका ही नाम दुःख है, परन्तु भ्रान्तिके कारण जैसे गुडहलके फूलकी लालीको पासमें धरे हुए स्फटिककी लाली मान लेते हैं, तैसे ही उपाधिके दुःखको आत्माका दुःख मान लेते हैं पूर्णरीतिसे उपाधिका त्याग करने पर मुक्त पुरुषोंको दुःख छूना भी नहीं किन्तु मुक्त पुरुष परम आनन्दको भोगता है, इस प्रकार जो ब्रह्म मुक्त और बद्ध दोनोंमें निर्विकाररूपसे रहता है उसको योगी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥१६॥

घाप्य याति तदाहुतं चाहुतमग्निहोत्रम् । मा ते ब्राह्मी लघुतामादधीत प्रज्ञानं स्यान्नाम धीरा लभन्ते । योगिन० ॥ १७ ॥ एवंरूपो महात्मा स

विद्वान् पुरुष ब्रह्मविद्यासे दोनों लोकोंमें व्याप कर विहार करताहै और उस समय उसका न होमा हुआ अग्निहोत्र भी होमा हुआ माना जाता है, ब्राह्मी वाणी तेरी लघुता न करे, इसकी तू सावधानी रखना, ब्रह्म का नाम ही 'प्रज्ञान' है और धीर पुरुष उसको पाते हैं, उस प्रज्ञान सनातन ब्रह्मको योगी पुरुष प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ॥ (शा० का तात्पर्य) अब संक्षेपसे ब्रह्मात्मविज्ञानका फल कहते हैं, कि-साधक ब्रह्मविद्याके द्वारा अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कारिणी प्रज्ञाके द्वारा इस लोक और परलोकमें व्यापक रहता है, वह अग्निहोत्र आदि न करके भी उसके उत्तम फल को पाता है, अर्थात् सब सत्कर्मोंका फल उसके ब्रह्मज्ञानके भीतर होता है, उस समय वह सब संसारको लाँघ कर स्थित होता है, हे महाराज ! कहीं तुम्हारी ब्रह्मविद्यामें कमी न आजाय, ब्रह्मविद्यामें निष्ठा होजानेके समय परमात्मामें जो आत्मज्ञान दृढ़ वा परिसमाप्त होता है उस ज्ञानका नाम प्रज्ञान वा ब्रह्म है, धीर पुरुष उस प्रज्ञान ब्रह्मको पाते हैं, योगी उन सनातन भगवानका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ॥ (नी० का तात्पर्य) इस प्रकार परब्रह्मकी प्राप्ति होनेसे सब फल मिल जाते हैं और जीव कृतार्थ होजाता है यह बात कहते हैं-नित्य अनित्य वस्तुके विवेक वाला विद्वान, पुरुष ब्रह्माकार हुई अन्तःकरणकी वृत्तिरूप विद्यासे 'मैं ही सकल जगत्रूप हूँ' ऐसी सबके आत्माकार वृत्तिसे आत्मलोक और अनात्मलोक दोनोंका प्रकाश करके अर्थात् सम्पूर्ण रूपको जान कर प्रारब्धकर्मसे मिले हुए देहको धारण करता हुआ दोनों लोकोंमें विहार करता है उस समय वह अग्निहोत्र न करे तो भी करे हुए की समान ही होता है, अर्थात ज्ञानके भीतर सब कर्मोंका अन्तर्भाव होता है इस लिये ब्राह्मी वाणी जीवको कभी हलका न करे अर्थात् मैं दास हूँ, ऐसा तू कभी न कहना । श्रुति कहती है-"तं चेद् ब्रूयुरतिवाद्यसि अतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत इति" कोई कहे, कि-तू बहुत बोलने वाला है तो उससे कहै, कि-हाँ मैं बहुत बोलने वाला हूँ, परन्तु छुपावे नहीं, इससे यह दिखाया, कि-ब्रह्मवेत्तामें अतिवादीपना भी दोष नहीं है । ब्रह्मवेत्ताका नाम ही प्रज्ञान है । श्रुति कहती है "प्रज्ञानं ब्रह्म" प्रज्ञान ब्रह्म माना जाता है "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूप ही होता है । ब्रह्मभूत

पावकं पुरुषो गिरन्। यो वै तं पुरुषं वेद तस्येहार्थो न रिष्यते। योगि० १८
यः सहस्रं सहस्राणां पक्षान् सन्तत्य सम्पतेत्। मध्यमे मध्यमागच्छेदपि

विद्वान् अपने महात्म्यको अधिकारियोंसे छुपावे नहीं, परन्तु सर्वसाधारणसे छुपावै। शास्त्रमें कहा है-"तथा चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन्। जना यथावमन्येरन् गच्छेयुर्नैव सङ्गतम॥" सत्पुरुषोंके धर्मको दूषित न करता हुआ योगी ऐसा वर्त्ताव करे, कि-मनुष्य सङ्गति न करके अपमान करें। ध्यान करने वाले धीरपुरुष ही ऊपर कहे हुए प्रज्ञान ब्रह्मको पाते हैं और योगी उसका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं१७ जो परमात्मा,भोक्ता जीवोंको अपनेमें लीन करता है उस ऊपर वर्णन करे हुए परमात्मा पुरुषको जो जीव जानता है उसका प्रयोजन इस लोकमें नष्ट नहीं होता है और ऐसे महात्मा सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं॥॥ (शा० का तात्पर्य)-जो परमप्रज्ञान ब्रह्ममें स्थिति करता है वह महान् आत्मा अर्थात ब्रह्म होजाता है, सबको भक्षण करने वाला अग्नि जैसे अपनेमें सबको समेटकर भस्म करडालता है तैसे ही वह भी अपनेमें अपने जीवत्वका उपसंहार करता है।जो ज्ञानी शरीरमें रहते हुए उस पूर्ण ब्रह्मको जान लेता है अर्थात वह ब्रह्म मैं ही हूँ,ऐसा साक्षात्कार करता है। प्रज्ञानरूप परमात्माको अपनेसे अभिन्न जान लेनेके कारण उस ज्ञानीका आत्मा उस देहमें नष्ट नहीं होता है अर्थात् देहांतसमयमें उसके प्राण आदि पुनर्जन्मके लिये नहीं निकलते हैं, देहमें ही वा देहके साथ लयको प्राप्त होजाते हैं, जिसके ज्ञानमें प्राण आदिका उत्क्रमण निवृत्त होता है उस सनातन भगवान्का दर्शन योगी करते हैं ॥॥ (नी० का तात्पर्य)-ऊपर जिसके रूपका वर्णन किया है अर्थात् मन वाणीके अगोचर जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयके कारण निर्विकार, एक योगसे ही जाननेमें आने वाले और जिसके स्वरूपके ज्ञानसे महापूज्यपना मिल सकता है तथा जिसको कर्मलेपका दोष नहीं लगता है ऐसा परमात्मा पावक कहिये भोक्ता जीवको अपनेमें लय करता है; उस पूर्ण पुरुषको जो जीव जानता है उस जीवका अर्थ कहिये मोक्षरूप प्रयोजन नष्ट नहीं होता है अर्थात् जैसे कर्मके फल अनित्य हैं तैसे ज्ञानका फल अनित्य नहीं है,जिसके स्वरूपके ज्ञानसे मोक्षमें बाधा नहीं पड़ती है उन सनातन भगवान्का प्रत्यक्ष योगियोंको ही होता है ॥ १८ ॥ जो लाखों अथवा अनन्तों पंख फैला कर दूरको उड़े और उसका वेग मनकी समान हो तो भी वह

चेन्स्यान्मनोजवः। योगि० ॥१९॥ न दर्शने तिष्ठति रूपमस्य पश्यन्ति चैनं सुविशुद्धसत्त्वाः हितो मनीषी मनसा न तप्यते ये प्रव्रजेयुरमृतास्ते भवन्ति। योगि० ॥ २० ॥ गहंति सर्पा इव गह्वराणि स्वशिक्षया स्वेन

शरीरके मध्यमें रहने वाले परमेश्वरके पास ही रहता है, जिसके कारणसे दूरकी वस्तु भी समीप होजाती है उस सनातन भगवान्को योगी प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ॥ (नी० का तात्पर्य) लाखों वा अनन्तों पंखोंसे कोई मनकी समान वेगसे उड़े तो भी अपने हृदयाकाशमें रहने वाले परमात्मासे दूर नहीं जासकता किन्तु उसके पास ही रहता है; सार यह है कि-योगी चाहे जितनी दूरकी वस्तुको अपने हृदयाकाशमें देखता है ऐसे ही भूतकाल और भविष्यत्कालकी घटनाओंको भी देखता है। श्रुतिमें भी हृदयाकाशका वर्णन करके कहा है, कि—"यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदत्र गत्वा विन्दते" जो कुछ वस्तु इस लोकमें है और जो नहीं है वह सब हृदयकमलमें रहनेवाले ब्रह्मको पालेनेसे मिल सकती है ॥ छ ॥ (शा० का तात्पर्य)—कोई पुरुष लाखों पर लगा कर असंख्यों मनकी सामान वेगसे उडसके तो भी उस सर्वकारण परमात्मपुरुषके अन्त कहिये सीमाको नहीं देख सकता, क्योंकि-उसका तो अन्त है नहीं उस अनन्तका केवल योगी ही दर्शन करते हैं ॥ १९ ॥ इसका रूप चक्षु आदि इन्द्रियोंके देखने में नहीं आता, शुद्ध सत्त्ववाले पुरुष निर्मल चित्तके द्वारा ही इसका दर्शन करते हैं, जो पुरुष संसार भरका हित चाहने वाला हो, मनको वशमें करसकता हो, दुःख पड़ने पर भी मनमें सन्ताप न मानता हो और जो संसारको छोड़ कर संन्यासी होगया हो वह अमृतरूप हो-जाता है, उस अमृतरूप सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करता है ॥ ॥ (नी० का तात्पर्य)-परमात्मदर्शनके लिये योगके अनुकूल दूसरे साधन कहते हैं, कि-चक्षु आदिसे न दीखने वाले परमात्माको अतिशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुष ही शुद्धचित्तसे जानते हैं, परन्तु पुरुषका चित्त शुद्ध हुआ तब जानो जब पुरुष सब जगत् का बनजाय, मनको वशमें करनेमें लगा रहै, पुत्र स्त्री धन आदिका नाश होने पर भी मनमें दुःख न माने। इस प्रकार ब्रह्मके स्वरूपको जान कर जो विक्षेपके कारणभूत घर स्त्री पुत्र आदिको त्याग संन्यासी होते हुए अमर बनजाते हैं वे ही अमर सनातन भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन पाते हैं ॥ २० ॥ जैसे सर्प बिलोंमें घुस कर अपने शरीरोंको

वृत्तेन मर्त्याः । तेषु प्रमुह्यंति जना विमूढा यथाध्वानं मोहयंते भयाय।

छुपा लेते हैं तैसे ही मनुष्य भी अपने गुरुके उपदेशसे तथा अपने चरित्रसे अपने पापोंको ढक देते हैं अर्थात् प्रकट नहीं होने देते हैं, ऐसे ऊपर २ से अच्छे दीखनेवाले पुरुषोंके ऊपर मूढ पुरुष मोहित होजाते हैं और वह प्रकटमें शिष्टलोगोंके मार्गके अनुसार वर्त्ताव करके अज्ञानी पुरुषोंको भयमें डालनेके लिये मोहित करते हैं, अतः ऐसे दुर्जनोंको त्याग कर सत्सङ्ग करना चाहिये, कि-जिससे परमात्माके स्वरूपका ज्ञान हो, क्योंकि-ऐसा ज्ञान प्राप्त करनेवाले योगियोंको सनातन भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन होता है ॥ ❀ ॥ (नी० का तात्पर्य)-संन्यास लेने पर भी वञ्चकोंकी सङ्गति न करे, जैसे साँप दूसरोंको दुःख देते हुए अपने शरीरको बिलोंमें छुपा देते हैं ऐसेही वंचक पुरुष भी जिसमें बहिर्दृष्टि मनुष्योंको अच्छा लगे, इस प्रकारकी अपने गुरुकी दीहुई दम्भरूप शिक्षासे अथवा अपने आचरणसे मद्यपान परस्त्रीसेवन आदि अपने पापोंको ढके रहते हैं और ऊपरसे बगुलाभगतपने का ऐसा सुन्दर दिखाव रखते हैं, कि—मानो बड़े भारी महात्मा हैं, इनको देखकर मूर्ख पुरुष धोखेमें आजाते हैं ऐसे धूर्त्त पुरुष दिखाने के लिये शिष्ट पुरुषोंके सब आचरणों करते हैं और अपने चुङ्गलमें फँसे हुए दूसरे नासमझोंको मद्यपान परस्त्रीसेवन आदि अपवित्र बातोंका उपदेश देकर नरकगामी बनाते हैं इस लिये अच्छे प्रकार परीक्षा करके उनका सङ्ग करे, सत्संगसे ही परमात्मा मिलता है, उस सनातन परमात्माका योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ❀ ॥ (शा० का तात्पर्य) इन्द्रियें और इन्द्रियोंके रूप रस आदि विषय दोनोंही अनर्थ के हेतु हैं, जैसे साँप बिलोंमेंसे बाहर निकलकर अपने स्वभावके अनुसार काटनेके स्थानमें विष छोड़ कर मनुष्योंको नष्ट करदेते हैं और फिर बिलोंमें घुस कर अपनेको छुपा लेते हैं ऐसे ही इन्द्रिय आदि सर्प भी अपने २ स्वभावसे चक्षु आदि बिलोंमेंसे निकल कर विषयरूपी विष छोड़ते हुए अर्थात् रूपरस आदिका ज्ञान करातेहुए मनुष्योंको मोहित करके फिर अपने २ स्थानमें जाकर आपेको छुपा लेते हैं और मनुष्य भी उस विषयविषसे जर्जरित, अभिभूत और मोहित होजाते हैं अर्थात् विषयके सिवाय उनका और ज्ञान लुप्त होजाता है। इन्द्रियोंके दिखाये हुए विषय और उनका भोग विषकी समान हैं, क्योंकि इनके कारण मनुष्य ऐसे मोहित होजाते हैं, कि—कुछ भी सुध नहीं रहती, वह

योगि० ॥ २१ ॥ नाहं सदा सत्कृतः स्यां न मृत्युर्न चामृत्युरमृतं मे कुतः स्यात् । स(त्या)नृते सत्यसमानबन्धे सतश्च योनिरसतश्चैक एव

विषयविषका मोह ही गर्भ, जन्म, जरा, मरणादिरूप संसारका कारण है, जिनको न जाननेके कारण लोग विषयविषसे जर्जरित होते हैं उन सनातन भगवान्का दर्शन योगी ही पाते हैं॥२१॥जीवन्मुक्त पुरुषको ऐसा अनुभव होता है, कि-देह तथा इन्द्रियादिकोंका समूह असत् (मिथ्या) है तो फिर मैं किसी भी समय असत्के कियेहुए जरा मरण आदि धर्मोंसे क्यों लिप्त होऊँगा? और मुझे जन्म मरणका प्रवाहरूप मृत्युनामक बन्धन नहीं है तो फिर देहका वियोगरूप मृत्यु भी नहीं है तथा जन्मकी प्राप्तिरूप अमृत्यु भी नहीं है औरजो सत्य तथा समान है अर्थात् किसी समय भी जिसको किसीप्रकारकी पीड़ा नहीं होती है और जो सब कालमें तथा सब देशमें एकरूप है वह ब्रह्म घट आदि- रूप सत्यका और रज्जुसर्प आदिरूप मिथ्या वस्तुओंका निग्रहस्थान रूप है अर्थात् सब जगत् परमात्माके अधीन है,इसलिये अब मेरा मोक्ष किससे हो?मैं ही कार्य तथा कारणकी उत्पत्ति,स्थिति और प्रलयका स्थान हूँ,योगी इस अहंरूपी सनातन भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं॥❋॥ (नी० का तात्पर्य)-जिनको सकल कार्योंका स्पर्श नहीं होता ऐसे योगियोंको भी दुष्टोंके सङ्गका त्याग अवश्य ही करना चाहिये,यह बात कहकर सनत्कुमार जी जीवन्मुक्तोंका अनुभव कहते हैं, कि-जो मैं तीनों कालमें सुख दुःख जरा मरण आदि धर्मोंसे रहित था वही मैं असत् कहिये देह इन्द्रियादिरूप होजानेके कारण सुख दुःख आदि धर्मोंवालासा होरहा हूँ,परन्तु देह आदि तो मिथ्या हैं,इनसे मुझे कुछ हानि नहीं पहुँच सकती और इस दशामें शरीरका वियोगरूप मृत्यु भी मुझे नहीं लगसकता और मृत्युका विरोधी जन्म भी मुझे नहींलग सकता, क्योंकि जन्म मरणके प्रवाहरूप मृत्यु नामके बंधनका मुझमें अभाव है, फिर मेरा मोक्ष हो किससे होगा ?, घट आदि सत्य वस्तु और रज्जुसर्प आदि असत्य वस्तु ये दोनों सब देशमें समानभाव से रहनेवाले ब्रह्मके अधीन हैं परंतु कार्य और कारणकी उत्पत्ति और प्रलयका एक स्थान मैं ही हूँ,इसको योगी प्रत्यक्ष देखते हैं,श्रुति कहती है "न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः । नमुमुक्षुर्न वै मृत्यु- रित्येषा परमार्थता ॥" जिसका प्रलय और उत्पत्ति नहीं है, जो बद्ध और साधक नहीं है तथा जो मुमुक्षु वा मुक्त नहीं है इसका ही नाम

योगि० २२ ॥ न साधुना नोत असाधुना वा समानमेतद् दृश्यते मानुषेषु । समानमेतदमृतस्य विद्यादेवं युक्तो मधु तद् परीप्सेत् । योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं० ॥२३॥ नास्याभिवादा हृदयं तापयन्ति नानधीतं नाहुतमग्निहोत्रम् । मनो ब्राह्मी लघुतामादधीत प्रज्ञाऽऽस्यास्य

परमार्थता है अर्थात् सृष्टि आदि सब परमात्मामें ही कल्पित है ॥२२॥ (शा०का तात्पर्य)-आत्मविज्ञानमें आत्माका अविनाशीपना निश्चित है, इस कारण ज्ञानी सदा सत्कृत होते हैं अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' इस ज्ञानका अभ्यास कर धारण करते हैं,जो सदा ऐसे ज्ञानको धारण करते हैं वह उसके प्रभावसे सदा सत्कृत (ब्रह्मसमान) होते हैं, उनकी मृत्यु नहीं होती अर्थात् उनका जन्ममरण आदि रूप संसार, भ्रांतिसे देखे हुए डोरीके सर्पकी समान अन्तर्धान होजाता है । तो क्या अमरत्व होजाता है ? नहीं अमरत्व नहीं होता, क्योंकि-अमरत्व मरणधर्मोंको प्राप्त होता है, जिसका मरण नहीं उसको अमरत्वकी प्राप्ति कैसी ? जैसे रज्जुमेंका सर्प होता है तैसे ही एक सत्यमें अनेकों मिथ्याओंकी स्थिति है । सत्का और असत्का अर्थात् लौकिक सत्यका और मिथ्याका कारण एक ही है और आधार भी एक ही है, दूसरा कारण और दूसरा आधार नहीं है, इस कारण सत्यमिथ्यामिश्रित जगत् एक आधारभूत सत्यके समान है,तात्पर्य यह है,कि-जगत्सत्ता ब्रह्मसत्ता के अधीन है औरब्रह्मज्ञान होनेपर जगत्सत्ता ब्रह्मसत्तामें समाजाती है जिस तत्त्वका ज्ञान होनेपर मृत्युका नाश होता है और जिसके संबंध से सत्यमिथ्यामिश्रित जगत्के जीव जागते रहते हैं उन सनातन भगवान्का दर्शन योगी ही पाते हैं ॥ २२ ॥ यह ब्रह्मवेत्तापन सब शुभ कर्मोंसे उत्तम नहीं होता है और अशुभ कर्मोंसे अधम नहीं होता है, यह बात तो केवल मनुष्योंमें ही देखनेमें आती है । ब्रह्मज्ञानी पुरुषको कैवल्यकी समान जानना चाहिये, अर्थात् जैसे कैवल्यको पुण्य पाप का स्पर्श नहीं होता है तैसे ही ब्रह्मज्ञानीको भी पुण्य पाप नहीं छू सकते, इस प्रकार योगसे मुक्त होकर ब्रह्म रसको प्राप्त करनेकी सब प्रकारसे इच्छा करे, क्योंकि—योगी ही उस सनातन ब्रह्मका दर्शन पाते हैं ॥ २३ ॥ निंदाके वचन ब्रह्मज्ञानी पुरुषके हृदयको दुःख नहीं देसकते, तथा मैंने अमुक ग्रन्थको नहीं पढ़ा, मैंने अग्निहोत्रमें हवन नहीं किया, ऐसी २ चिन्तायें भी उसके मनको सन्ताप नहीं दे सकतीं, ब्रह्मविद्या ही उस पुरुषको तुरन्त ऐसी प्रज्ञा देती है, कि—

नाम धीरा लभन्ते । योगि० ॥ २४ ॥ एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनु-
पश्यति । अन्यत्रान्यत्र युक्तेषु किं स शोचेत्ततः परम् ॥ २५ ॥ यथोद-
पाने महति सर्वतः संप्लुतोदके। एवं सर्वेषु वेदेषु आत्मानमनुजानतः२६
अंगुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा न दृश्यतेऽसौ हृदि सन्निविष्टः । अजश्चरो

जिस प्रज्ञाको धीर पुरुष पासकते हैं, जिसको चितायें सन्ताप नहीं
देतीं ऐसे सनातन भगवान्का योगी प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ॥ ❋ ॥
(नी० का तात्पर्य) जो पुरुष आत्मज्ञानी होता है, उसको निंदाकी
बात सुनकर हृदयमें दुःख नहीं होता है तथा किसी ग्रन्थको न पढ़ने
और अग्निहोत्र आदि न करनेके निमित्तसे भी उसका चित्त खिन्न नहीं
होता है "नैनं कृताकृते तपतः" किये और न किये हुए पाप ज्ञानीको
सन्ताप नहीं देते "एवं ह वाव न तपति किमहं साधु कर्म नाकरवं
किमहं पापमकरवम्" मैंने अच्छे काम क्यों नहीं किये ? मैंने पाप क्यों
किया ? ऐसे विचार ब्रह्मज्ञानीके मनको दुःख नहीं देते, ब्रह्मविद्या
इस पुरुषको स्वयं ही ऐसी बुद्धि देदेती है, कि-तुझको पाप पुण्यका
लेश भी नहीं लग सकता । स्मृति कहती है, कि-प्रज्ञाप्रासादमारुह्य
ह्यशोच्यः शोचतो जनान् । भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनु-
पश्यति" ॥ जो शोक करनेके योग्य नहीं है ऐसा विवेकी पुरुष प्रज्ञा-
रूपी महलके ऊपर चढ़कर पहाड़के ऊपर बैठाहुआ पुरुष जैसे भूमिपर बैठे
हुए पुरुषोंको देखताहै तैसेही वह शोक करनेवाले मनुष्योंको देखता है
ऐसी ऋतम्भरा प्रज्ञा ज्ञानीकोही मिलती है अर्थात आत्मवेत्ता सर्ववेत्ता हो
जाता है इससे शोक मोहकी निवृत्ति और सर्वज्ञपना ब्रह्मविद्याका फल
दिखाया जिसको चिंता आदि नहीं सताती ऐसे विद्वान्से अभिन्न
परमात्माका योगी दर्शन पाते है २४ ऊपर कहे अनुसार जो पुरुष सब
प्राणियोंमें रहने वाले परमात्माका साक्षात् दर्शन करता है वह पुरुष
अनेकों कर्मोंमें लगे हुए मनुष्योंमें आत्मारूपसे वास करनेके कारण
किसका शोक करे ? ॥ २५ ॥ चारों ओरसे जलसे भरे हुए जलाशय
मेंसे जैसे तृषासे आतुर हुआ पुरुष, निर्वाह योग्य जलसे स्नान पान
आदिका काम करलेता है तैसे ही आत्मज्ञानी पुरुष भी सब वेदोंमेंसे
अपने उपयोगी सारको लेकर कृतकृत्य होजाता है ॥ २६ ॥ हृदयमें
रहनेवाला अंगूठेकी समान महान् आत्मपुरुष दृष्टिसे नहीं दीखता, वह
जन्म आदि रहित होने पर भी रात दिन तन्द्रारहित होकर विचरा
करता है, आत्मजिज्ञासु पुरुष उसको आत्मा जानकर कर्ममात्रसे मुक्त

दिवारात्रमतन्द्रितश्च स तं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः ॥ २७ ॥ अहमेव स्मृतो माता पिता पुत्रोऽस्म्यहं पुनः। आत्माहमपि सर्वस्य यच्च नास्ति यदस्ति च ॥ २८ ॥ पितामहोऽस्मि स्थविरः पिता पुत्रश्च भारत। ममैव यूयमात्मस्था न मे यूयं न वोऽहम् ॥ २९ ॥ आत्मैव स्थानं मम जन्म चात्मा ओतप्रोतोऽहमजरः प्रतिष्ठः। अजरश्चाहोरात्रमतन्द्रितोऽहं मां विज्ञाय कविरास्ते प्रसन्नः ॥ ३० ॥ अणोरणीयान्

होता है और उपाधिके कारण मैलसे रहित होजाता है ॥ २७ ॥ मैं ही माता पिता रूपसे कहलाता हूँ और फिर पुत्र भी मैं ही कहलाता हूँ तथा मैं ही सबका आत्मा हूँ और जो आगेको होंगे तथा जो इस समय हैं उन सबका आत्मा मैं ही हूं ॥ २८ ॥ हे भरतवंशी राजन्! मैं वृद्ध पितामह हूँ, पिता हूँ, तथा पुत्ररूप हूँ, तुम मेरे आत्मामें ही निवास कर रहे हो, परन्तु तुम मेरे नहीं हो और मैं तुम्हारा नहीं हूँ॥२९॥ (नी० का तात्पर्य)-इस प्रकार सब वस्तुओंका आत्मामें आरोप करके अब उसका निषेध करके अब उसका निषेध करते हुए सनत्सुजात कहते हैं, कि-तुम मेरे नहीं हो, और मैं तुम्हारा नहीं हूं रज्जु में सर्पका आरोप किया जाता है परन्तु उन दोनोंमें भी परस्पर सम्बन्ध कुछ नहीं है, क्योंकि—दोनोंका अधिष्ठान जुदा २ है और अध्यासवाली वस्तु मिथ्या है ऐसे ही परमात्मा और जगत् इन दोनों में किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि-दोनोंके अधिष्ठान जुदे जुदे हैं और उनमें ब्रह्मके विषें अध्यास वाला जगत् केवल मिथ्या ही है ॥ २९ ॥ आत्मा ही मेरा अधिष्ठान है और मेरे जन्मका हेतु भी आत्मा ही है, मैं वस्त्रमेंके सूत्रकी समान सकल विश्वमें ऊपर नीचे पुरा हुआ हूं, मेरा अधिष्ठान भी नष्ट होनेवाला नहीं है, मैं जन्म आदि से रहित होने पर भी रात दिन आलस्यरहित होकर फिरा करता हूँ, परन्तु मुझे जानकर जीवात्मा कृतकृत्य और निर्मल होजाता है ॥३०॥ सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, सुमना कहिये भूत भविष्यत् आदि सबका प्रकाशक माया नामक सुंदर दिव्य नेत्रों वाला है, सब प्राणियों में अन्तर्यामीरूपसे जागता रहता है, वह जरायुज आदि सब प्राणियों का पिता है और सबोंके शरीरके हृदयकमलोंमें रहता है ऐसा ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥ ३१ ॥ (नी० का तात्पर्य)-मुनि सनत्सुजातने राजा धृतराष्ट्रको जो उपदेश दिया उसकी समाप्ति करतेहुए परमात्माका वर्णन करते हैं, कि-परमात्मा सूक्ष्म (परमाणु) सेभी सूक्ष्म है अर्थात् दुर्लक्ष्य

द्युमनाः सर्वभूतेषु जाग्रति । पितरं सर्वभूतेषु पुष्करे निहितं विदुः३१
इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सनत्सुजातपर्वणि
सनत्सुजातवाक्ये षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥
समाप्तञ्च सनत्सुजातपर्व ॥

अथ यानसन्धिपर्व ।

वैशम्पायन उवाच । एवं सनत्सुजातेन विदुरेण च धीमता सार्द्धं कथयतो राज्ञः स व्यतीयाय शर्वरी१ तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्व एव ते । सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया ॥ २ ॥ शुश्रूषमाणाः पार्थानां वाचो धर्मार्थसंहिताः । धृतराष्ट्रमुखाः सर्वे ययू

कहिये दुःखसे जाना जाता है, परन्तु वह अणुतर परिणामवाला भी नहीं है, क्योंकि श्रुतिमें परमात्माके निर्गुण स्वरूपका इसप्रकार वर्णन किया है, कि-"अस्थूलमनण्वमह्रस्वमदीर्घम्" परमात्मा स्थूल, अणु ह्रस्व, और दीर्घ नहीं है, ऐसा कहकर उसके चार प्रकारके परिमाण का निषेध किया है, इससे परमात्माके स्व पको निर्गुण कहा है, वह परमात्मा मायारूपी दिव्य नेत्रों वाला है "मनोऽस्य दैवं चक्षुः" मन परमात्माका दैवी नेत्र है,यहश्रुति भी परमात्माकेरूपको सगुणकहती है, वह परमात्मा सब प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपसे जागता रहता है, वह आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंका और जरायुज आदि प्राणियोंका पिता कहिये उत्पन्न करनेवाला है और सब प्राणियोंके शरीरमें हृदय कमल में निवास करता है औरब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं जो पुरुष ऐसे गुणोंवाले परमात्माका हृदयमें ध्यान करता है वह पुरुष उसका प्रत्यक्ष दर्शन करके कृतार्थ होजाता है ॥ ३१ ॥ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ४६

अथ यानसन्धिपर्व ।

वैशम्पायन कहते है, कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार बुद्धिमान् सनत्सुजात तथा विदुरके साथ बातें करते हुए राजा धृतराष्ट्रको रात भर बीत गई ॥१॥ और प्रातःकाल होते ही देशांतरोंसे हस्तिनापुरमें आये हुए सब राजे तथा भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, वाल्हीक, परम बुद्धिमान विदुर और महारथी युयुत्सु आदि राजे धृतराष्ट्रको आगे करके और दुःशासन, चित्रसेन, सुबलका पुत्र शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक तथा विविंशति आदि, देखजलने दुर्योधनको आगे करके

राजसभां शुभाम् ॥ ३ ॥ सुधावदातां विस्तीर्णां कनकाजिरभूषिताम्। चन्द्रप्रभां सुरुचिरां सिक्तां चन्दनवारिणा ॥ ४ ॥ रुचिरैरासनैस्तीर्णां काञ्चनैर्दारवैरपि । अश्मसारमयैर्दान्तैः स्वास्तीर्णैः सोत्तरच्छदैः ॥५॥ भीष्मो द्रोणः कृपः शल्यः कृतवर्मा जयद्रथः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ६ ॥ विदुरश्च महाप्राज्ञो युयुत्सुश्च महारथः । सर्वे च सहिताः शूराः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ ७ ॥ धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां शुभाम् दुःशासनश्चित्रसेनः शकुनिश्चापि सौबलः ८ दुर्मुखो दुःसहः कर्ण उलूकोऽथ विविंशतिः । कुरुराजं पुरस्कृत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ९ ॥ विविशुस्तां सभां राजन् सुराः शक्रसदो यथा । आविशद्भिस्तदा राजन् शूरैः परिघबाहुभिः ॥ १० ॥ शुशुभे सा सभा राजन् सिंहैरिव गिरेर्गुहा । ते प्रविश्य महेष्वासाः सभां सर्वे महौजसः ॥ ११ ॥ आसनानि विचित्राणि भेजिरे सूर्यवर्चसः । आसनस्थेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत१२द्वाःस्थो निवेदयामास सूतपुत्रमुपस्थि-

---

सञ्जयसे मिलनेके लिये तथा पाण्डवोंकी धर्म-अर्थ भरी बातोंको सुननेके लिये, जैसे देवता इन्द्रसभामें प्रवेश करते हैं तैसे ही कौरवोंकी सुंदर राजसभामें जापहुँचे, वह सभाभवन चारों ओर चूनेसे पुतवाकर स्वच्छ किया गया था, चन्दनका जल छिड़का गया था इसलिये चन्द्रमाकी समान स्वेत कांतिवाला दीखता था, उस बड़े विशाल सभाभवनकी अँगनईमें सुनहरी कीमखाप बिछाई गयी थी, उसके ऊपर सुंदर गद्दियों और चाँदनियोंवाले, सोनेके काठके और हाथीदाँतके रत्नोंसे जड़े हुए सिंहासन बिछाये गये थे, इस सामग्री से कौरवोंकी राजसभा बड़ीही अच्छी मालूम होती थी, हे राजन्! लोहेके दण्डोंकी समान भुजाओंवाले वीर पुरुष,जैसे सिंह गुहाओंमें घुसते हैं तैसे उस कौरवोंकी महासभामें घुसने लगे, उससमय जैसे सिंहोंसे पर्वतकी गुफा शोभा पाती है तैसेही कौरवोंकी राजसभा उन राजाओं से दमक उठी, सूर्यकी समान तेजस्वी और बड़े धनुषधारी वह राजे, राजसभामें पहुँच कर क्रमसे अलग २ सिंहासनों पर बैठने लगे, हे भरतवंशी राजन्! सब राजे अपनी २ योग्यताके अनुसार आसनों पर बैठगये ॥ २-१२ ॥ इतनेमें ही सूतपुत्र सञ्जय रथमें बैठ कर सभाके द्वार पर आपहुँचा, उसी समय द्वारपालने सभामें आकर निवेदन किया, कि आपका दूत सूतपुत्र सञ्जय जो कि-पाण्डवोंके पास गया था,शीघ्र चलनेवाले सिंधदेशके घोड़ोंसे जुड़े रथमें बैठकर शीघ्रता

तम् । अयं सरथ आयाति योऽयासीत् पाण्डवान् प्रति ॥ १३ ॥ दूतो नस्तूर्णमायातः सैन्धवैः साधुवाहिभिः । उपेयाय स तु क्षिप्रं रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली । प्रविवेश सभां पूर्णां महीपालैर्महात्मभिः ॥ १४ ॥ सञ्जय उवाच । प्राप्तोऽस्मि पाण्डवान् गत्वा तद्विजानीत कौरवाः । यथावयः कुरून् सर्वान् प्रतिनन्दन्ति पाण्डवाः ॥ १५ ॥ अभिवादयंति वृद्धांश्च वयस्यांश्च वयस्यवत् । यूनश्चाभ्यवदन् पार्थाः प्रतिपूज्य यथावयः ॥ १६॥ यथाहं धृतराष्ट्रेण शिष्टः पूर्वमितो गतः । अब्रुवन् पांडवान् गत्वा तन्निबोधत पार्थिवाः ॥ १७ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयप्रत्यागमने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। पृच्छामि त्वां सञ्जय राजमध्ये किमब्रवीद् वाक्यमदीनसत्वः । धनञ्जयस्तात युधां प्रणेता दुरात्मनां जीवितच्छिन्महात्मा ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । दुर्य्योधनो वाचमिमां शृणोतु यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः । युधिष्ठिरस्यानुमते महात्मा धनञ्जयः शृण्वतः

से आपहुँचा है, ऐसा द्वारपालने पुकारकर कहा था, इतनेमें ही कानों में कुण्डल धारण करनेवाला सञ्जय रथमेंसे नीचे कूदकर तुरंत उदार मनवाले राजाओंसे भरी हुई राजसभामें आपहुँचा ॥१३॥१४॥ संजय कहने लगा, कि-हे कौरवो ! आपको मालूम हो, कि—मैं पाण्डवोंके पास जाकर तहाँसे आपके पास आया हूं, पांडवोंने सब कौरवोंको अवस्थाके अनुसार यथायोग्य कहा है ॥ १५ ॥ पाण्डवोंने वृद्धोंको प्रणाम कहा है,मित्रोंको मित्रोंकी समान प्रणाम कहा है और युवाओं कोभी उनकी योग्यताके अनुसार आदरके साथ यथायोग्य कहा है१६ हे राजाओ ! मै यहाँसे गया उससे पहिले महाराज धृतराष्ट्रने मुझे जैसा उपदेश दियो था उसके अनुसार हो मैंनेपाण्डवोंके पास जाकर महाराजका सन्देशा कहा, उसका समाचार आप सुनिये १७ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७॥ छ छ छ छ

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे तात सञ्जय ! उदार, बलवान् योधाओं को नियममें रखनेवाले तथा दुष्टोंको प्राणदण्ड देनेवाले महात्मा अर्जुन ने, राजाओंके बीचमें कृष्णके सामने क्या २ कहा ? यह मैं तुझसे पूछता हूँ ॥ १ ॥ सञ्जयने कहा, कि-युधिष्ठिरकी संमतिके अनुसार वर्त्ताव करने वाले, युद्धके अभिलाषी महात्मा धनञ्जय (अर्जुन) ने श्रीकृष्णके सुनतेमें जो जो बातें कही है, वह वह बातें दुर्य्योधनका

केशवस्य ॥२॥ अन्वग्रस्तो बाहुवीर्यं विद्वान उपह्वरे वासुदेवस्य धीरः। अवोचन्मां योत्स्यमानः किरीटी मध्ये ब्रूया धार्त्तराष्ट्रं कुरूणाम् ॥३॥ संशृण्वतस्तस्य दुर्भाषिणो वै दुरात्मनः सूतपुत्रस्य सूत। यो योद्धुमाशंसति मां सदैव मन्दप्रज्ञः कालपक्वोऽतिमूढः॥ ४ ॥ ये वै राजानः पांडवायोधनाय समानीताः शृण्वतां चापि तेषाम्। यथा समग्रं वचनं मयोक्तं सहामात्यं श्रावयेथा नृपं तत् ॥ ५ ॥ यथा नूनं देवराजस्य देवा शुश्रूषन्ते वज्रहस्तस्य सर्वे तथाशृण्वन् पाण्डवाः सृञ्जयाश्च किरीटिना वाचमुक्तां समर्थाम् ॥६॥ इत्यब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानो गाण्डीवधन्वा लोहितपद्मनेत्रः। न चेद्राज्यं मुञ्चति धार्त्तराष्ट्रो युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः॥ ७ ॥ अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्तादनिर्विष्टं पापकं धार्त्तराष्ट्रैः। तेषां युद्धं भीमसेनार्जुनाभ्यां तथाश्विभ्यां वासुदेवेन चैव ॥ ८ ॥ शैनेयेन ध्रुवमात्तायुधेन धृष्टद्युम्नेनाथ शिखण्डिना च।

सुन लेनी चाहिये ॥ २ ॥ भुजबलमें कुशल, धीर और युद्ध चाहनेवाले अर्जुनने निडर होकर श्रीकृष्णके सामने मुझसे कहा, कि—हे सूतपुत्र संजय! तुम दुष्ट और खोटी बातें करनेवाले सूतपुत्र कर्णको सुनाकर तथा जिन राजाओंको कौरवोंने पाण्डवोंके साथ लड़नेको बुलाया हो उन सब राजाओंको भी सुनाकर राजा धृतराष्ट्रसे उनके मन्त्रियोंसे तथा मन्दबुद्धि, कालकेमुखमें जानेको तयार हुए और सदा मेरे साथ युद्ध करनेकी कामना रखनेवाले धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनसे भी कौरवों के बीचमें मेरा सन्देशा कहना ॥ ३-५ ॥ जैसे सूर्यदेवता, हाथमें वज्र लेकर खड़े हुए इन्द्रकी बात सुनना चाहते हैं, ऐसे ही अर्जुनकी कही हुई अर्थ भरी बात पाण्डवोंने और सृञ्जयोंने सुनी थी ॥६॥ गाण्डीव धनुषको धारण करने वाला अर्जुन युद्ध करनेकी इच्छासे नेत्ररूप कमलोंको लाल लाल करके बोल उठा था, कि-यदि दुर्योधन, अजमीढके वंशधर राजा युधिष्ठिरको उनका राज्य लौटाकर नहीं देगा तो धृतराष्ट्रके पुत्रोंको, जो पहिला किया हुआ पापकर्म उन्होंने अभी तक नहीं भोगा है वह पापकर्म उनको अवश्य ही भोगना पड़ेगा और कौरवोंको भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, साक्षात् वासुदेव श्रीकृष्ण, सात्यकि, शस्त्रधारी धृष्टद्युम्न शिखण्डी आदि तथा जो दूसरोंका अशुभ चिन्तवन करते ही पृथ्वी और स्वर्ग तकको भस्म कर सकते हैं ऐसे इन्द्रकी समान बलवान् राजा युधिष्ठिर इन सबोंके

युधिष्ठिरेणेन्द्रकल्पेन चैव योऽध्यानाग्निर्दहे मां दिवं च ॥ ९ ॥ तैश्चेद्योद्धुं मन्यते धार्त्तराष्ट्रो निवृत्तोर्थः सकलः पाण्डवानाम्। मा तत् कार्यो पाण्डवस्यार्थहेतोरुपैहि युद्धं यदि मन्यसे त्वम् ॥ १० ॥ यां तां वने दुःखशय्यामवात्सीत् प्रव्राजितः पांडवो धर्मचारी। आप्नोतु तां दुःखतरामनर्थामन्त्यां शय्यां धार्त्तराष्ट्रः परासुः ॥ ११ ॥ ह्रिया ज्ञानेन तपसा दमेन शौर्येणाथो धर्मगुप्तया धनेन। अन्यायवृत्तिः कुरुपांडवेयानध्यातिष्ठद्धार्त्तराष्ट्रो दुरात्मा ॥ १२ ॥ मायोपधः प्रणिपातार्जवाभ्यां तपोदमाभ्यां धर्मगुप्त्या बलेन। सत्यं ब्रुवन् प्रतिपन्नो नृपो नस्तितिक्षमाणः क्लिश्यमानोतिवेलम् ॥ १३ ॥ यदा ज्येष्ठः पांडवः संशितात्मा क्रोधं यत्तं वर्षपूगान् सुघोरम्। अवस्रष्टा कुरुषूद्वृत्तचेतास्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ॥ १४ ॥ कृष्णवर्त्मेव ज्वलितः

साथ युद्ध होगा ॥ ७-९ ॥ दुर्योधन यदि पाण्डवोंके साथ युद्ध करना चाहता हो तो बड़ी ही अच्छी बात है क्योंकि-युद्ध करनेसे पांडवों को सब राज्य मिल जायगा, दुर्योधनको युद्ध करनेकी इच्छा हो और यदि तुम ठीक समझो तो पाण्डवोंके हितके लिए सन्धिकी बात कदापि न करना, युद्ध ही होने देना ॥ १० ॥ धर्मका आचरण करनेवाले वनवासी पाण्डव वनवासके लिये निकल कर जिस दुःखशय्या पर सोये हैं, उस महादुःखदायिनी अनर्थ भरी अन्तकालकी शय्या पर भले ही दुर्योधन प्राणरहित होकर सोवे ॥ ११ ॥ दुष्टात्मा और अन्यायसे वर्त्ताव करने वाले दुर्योधनने, इस समय कुरु और पाण्डु दोनों पक्षोंके लोगोंका पालन पोषण करके उनको अपना प्रेमी बना लिया है, उनको लज्जा, ज्ञान, तप, दम शूरता, धर्मरक्षा और इनसे मिली हुई सम्पत्ति वाले युधिष्ठिरके ऊपर प्रेमभक्ति वाले करो दुर्योधनके मारे जाने पर प्रजाओंको पक्षमें करदेना तुम्हारा काम है, दुर्योधनके साथ हमारी सन्धि कराना हमारा हितकारी काम नहीं है ॥ १२ ॥ बड़े भाई राजा युधिष्ठिरमें नम्रता, सरलता, तप, दम, धर्मरक्षा और बल इतनी बातें हैं, बहुत दिनोंसे वह दुःखकी दशाको भोग रहे हैं तो भी सत्य ही बोलते हैं और तुम्हारी ओरके कपट भरे षड्यंत्रोंको क्षमा करके सहा करते हैं ॥ १३ ॥ परन्तु पवित्र मन वाले राजा युधिष्ठिर चिरकालसे इकट्ठे होते हुए क्रोधको जब कौरवोंके ऊपर छोड़ेंगे तब युद्ध होगा और दुर्योधनको इसके लिये मनमें पछतावा करना पड़ेगा॥१४जैसे गरमीके दिनोंमें धकधकाता हुआ अग्निवृद्धि

समिद्धो यथा वह्नेत् कक्षमग्नि निदाघे । एवं दग्धा धार्त्तराष्ट्रस्य सेनां युधिष्ठिरः क्रोधदीप्तोऽन्ववेक्ष्य ॥ १५ ॥ यदा द्रष्टा भीमसेनं रथस्थं गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम् । अमर्षणं पाण्डवं भीमवेगं तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १६ ॥ सेनाग्रगं दंशितं भीमसेनं स्वालक्षणं वीरहणं परेषाम् । घ्नन्तञ्चमूमन्तकसन्निकाशं तदा स्मर्त्ता वचनस्यातिमानी ॥ १७॥ यदा द्रष्टा भीमसेनेन नागान् निपातितान् गिरिकूटप्रकाशान् । कुम्भैरिवासृग्वमतो भिन्नकुम्भांस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ १८ ॥ महासिंहो गाव इव प्रविश्य गदापाणिर्धार्त्तराष्ट्रानुपेत्य यदा भीमो भीमरूपो निहन्ता तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥१९॥ महाभये वीतभयः कृतास्त्रः समागमे शत्रुबलावमर्दी । सकृद्रथेनाप्रतिमान् रथौघान् पदातिसंघान् गदयाभिनिघ्नन् ॥२०॥ शैक्यैन नागांस्त-

पा घासके ढेरको जलाकर भस्म कर डालता है, तैसे ही युधिष्ठिर भी जब क्रोधके मारे प्रज्वलित हो उठेंगे तब दुर्योधनकी सेनापर दृष्टि डालते ही उसको भस्मकर डालेंगे ॥१५॥ जिस समय दुर्योधन हाथमें गदा ले रथमें बैठ कर क्रोधरूपी विषको उगलते तथा भयानक वेगसे अपने ऊपर चढ़ कर आये हुए भीमसेनको देखेगा, उस समय दुर्योधन पछतावेगा कि–हाय मैंने यह युद्ध क्यों किया ? ॥ १६ ॥ जिस समय अभिमानी दुर्योधन, आवेशमें भरजानेके कारण जिसकी ओरको देखना भी कठिन होगा ऐसे शरीरपर कवच (बक्तर) पहरकर खड़े हुए, वीर शत्रुओंका नाश करनेवाले कालमूर्त्ति भीमसेनको सेनाके मुहाने पर देखेगा उस समय मेरी बातोंको याद करेगा ॥ १७ ॥ जब भीमसेनके भूमि पर लुढकाये हुए, पहाड़के शिखरकी समान और गंडस्थलोंमेंसे मद टपकाने वाले हाथियोंको घड़ेकी समान आवड़ोंमें से रुधिर ओकते हुए देखेगा, उस समय दुर्योधन पछतावेगा कि—हाय मैंने युद्ध क्यों किया ? ॥ १८ ॥ जैसे बड़ा भारी सिंह गौओंके झुण्डमें घुस जाता है तैसे ही भयङ्कर रूपधारी भीम हाथमें गदा लेकर जब कौरवोंके झुण्डमें घुस कर उनका संहार करने लगेगा उस समय दुर्योधनको पछताना पडेगा कि—हाय मैंने युद्धका आरम्भ क्यों किया ? ॥१९॥ जब शस्त्रविद्यामें चतुर और शत्रुओंका संहार करनेवाला शूर भीमसेन निर्भय होकर महाभयानक युद्धके समय एक रथकी सहायतासे अनुपम रथियोंके और पैदलोंके समूहोंको गदासे कुचलने लगेगा, हाथियोंको फाँसी डालकर बांधने लगेगा और फरसे

रसा निगृह्णन् यदा छेत्ता धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्यम्। छिन्नम् वनं परशुनेव शूरस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २१ ॥ तृणप्रायं ज्वलनेनेव दग्धं ग्रामं यथा धार्त्तराष्ट्रान् समीक्ष्य। पक्वं शस्यं वैद्युतेनेव दग्धं परासिक्तं विपुलं स्वस्वलौघम् ॥ २२ ॥ हतप्रवीरं विमुखं भयार्त्तं पराङ्मुखं प्रायशोऽधृष्टयोधम्। शस्त्रार्चिषा भीमसेनेन दग्धं तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २३ ॥ उपासंगानाचरेद्दक्षिणेन वराङ्गानां नकुलश्चित्रयोधी यदा रथाग्र्यो रथिनः प्रचेता तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ॥ २४ ॥ सुखोचितो दुःखशय्यां वनेषु दीर्घं कालं नकुलो यामशेत। आशीविषः क्रुद्ध इवोद्वमन्विषं तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ २५ ॥ त्यक्तात्मानः पार्थिवा योधनाय समादिष्टा धर्मराजेन सूत। रथैः शुभ्रैः सैन्यमभिद्रवन्तो दृष्ट्वा पश्चात्तप्स्यते धार्त्तराष्ट्रः ॥२६ शिशून् कृतास्त्रान् शिशुप्रकाशान् यदा दृष्ट्वा कौरवः पञ्च शूरान्। त्य-

से जैसे वनको काटता हो ऐसे दुर्योधनकी सेनाको काटनेपर फैलेगा तब दुर्योधन पछतावेगा, कि-हाय मैंने युद्ध क्यों किया ? ॥२०-२१॥ जैसे अग्नि तृणोंके झूँ ड़ोंवालेग्रामको जलाडालता है और जैसे बिजली गिरकर पके हुए अन्नको जला डालती है, ऐसे ही भीमसेनके शस्त्र की आगभी धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी ओरको जाकर उसकी सेनाका संहार करने लगेगी तब सेनामेंके कितने ही वीर मारे जायेंगे, कितने ही भयभीत होजायेंगे, कितने ही घबड़ाकर रणमेंसे भाग जायेंगे और कितने ही योधा भोचकेसे होजायेंगे, उस समय अपनी सेनाकी यह दशा देख कर दुर्योधन पछतावेगा, कि-हाय मैंने युद्ध क्यों किया ? २३ विचित्र प्रकारके युद्ध करने वाला और रथियोंमें श्रेष्ठ नकुल, रणमें रथोंमें बैठे हुए शत्रुओंके शिर काटकर चतुराईसे उनके ढेर करेगा। उस समय दुर्योधनको युद्धके लिए पछतावा होगा ।२४। सुख भोगने के योग्य जो नकुल चिरकालतक दुःखदायक तृण आदिकी शय्यापर सोया है, उस दुःखदायक शय्याको जब याद करेगा और क्रोधमें भरकर जब सर्पकी समान विषको उगलेगा तब ही दुर्योधन युद्धके लिए पछतावेगा ॥ २५ ॥ और हे सञ्जय ! जब युद्धके लिए प्राणोंका मोह न करनेवाले राजाओंको युधिष्ठिर आज्ञा देंगे उस समय वह राजे श्वेत वर्णके घोड़ों पर चढ़कर कौरवोंकी सेना पर चढ़ाई करेंगे तब दुर्योधन युद्ध करनेके विषयमें पछतावेगा ॥ २६ ॥ जिस समय प्रतिविन्ध्य आदि पांडवोंके वीर कुमार, जो कि-शस्त्रविद्यामें चतुर

कृत्वा प्राणान् कौरवानाद्रवन्तस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् २७ यदा गतोद्वाहमकूजनाक्षं सुवर्णतारं रथमाततायी। दान्तैर्युक्तं सहदेवोऽधिरूढः शिरांसि राज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः २८ महाभये संप्रवृत्ते रथस्थं विवर्त्तमानं समरे कृतास्त्रम्। सर्वा दिशः सम्पतन्तं समीक्ष्य तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ॥ २९ ॥ ह्रीनिषेधो निपुणः सत्यवादी महाबलः सर्वधर्मोपपन्नः। गांधारिमार्च्छंस्तुमुले क्षिप्रकारी क्षेप्ता जनान् सहदेवस्तरस्वी ॥३०॥ यदा द्रष्टा द्रौपदेयान्महेष्वासाञ्छूरान् कृतास्त्रान् रथयुद्धकोविदान्। आशीविषान् घोरविषानिवायतस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत्॥३१॥ यदाभिमन्युः परवीरघाती शरैः परान् मेघ इवाभिवर्षन्। विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्रस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ॥ ३२ ॥ यदा द्रष्टा बालमबालवीर्यं द्विषच्चमूं मृत्युमिवोत्प-

---

हैं और बालक होने पर भी बालकसे नहीं लगते हैं वह प्राणरक्षाकी अपेक्षा (परवाह) न करके कौरवोंके ऊपर टूट पड़ेंगे उस समय ही दुर्योधन पछतावेगा कि—हाय ! मैंने युद्धका आरम्भ क्यों किया? २७ और सहदेव जब सरल चालसे चलने वाले सुवर्णको पत्तरोंसे जड़े हुए और जिसकी धुरी शब्द नहीं करती है ऐसे शिक्षित घोड़ोंसे जुड़े हुए रथमें बैठ आततायीपनेमें आकर बाणोंके समूहोंसे राजाओं के मस्तकोंको काटेगा और महाभयानक युद्ध होते समय शस्त्रविद्या में प्रवीण सहदेव रथमें बैठकर सब ओरको घूमने लगेगा उस समय निःसन्देह सुयोधन युद्धके लिए पछतावेगा ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ जब लज्जाशील, चतुर, सत्यवादी, महाबली और सब धर्मकार्योंको करनेवाला वेगवान् (फुरतीला) सहदेव रणमें वीरपक्षके मनुष्योंका संहार करता हुआ शकुनिके ऊपरको चढ़कर आवेगा ॥ ३० ॥ और जब महाधनुर्धारी, वीर, अस्त्रविद्यामें प्रवीण रथके युद्धमें सिद्धहस्त, भयानक विषधर सर्पोंकी समान कौरवोंके ऊपरको झपटते हुए द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको दुर्योधन देखेगा तब इसको युद्ध छेड़नेका पछतावा होगा ॥३१॥ जब कृष्णकी समान बली, अस्त्रविद्यामें चतुर शत्रुओंका संहार करनेवाला वीर अभिमन्यु शत्रुओंके ऊपर मेघकी समान बाणोंकी वर्षा करके तिरस्कार करेगा तब दुर्योधन युद्धके लिये पछतावेगा ॥३२॥ बालक होकर भी जवानोंकेसा पराक्रम करने वाले, कालकी समान शत्रुकी सेनापर झुके हुए, इन्द्रकी समान पराक्रमी और अस्त्रविद्यामें प्रवीण अभिमन्युको जब दुर्योधन देखेगा तब

तन्तम् । सौभद्रमिन्द्रप्रतिमं कृतास्त्रं तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ३३ प्रभद्रकाः शीघ्रतरा युवानो विशारदाः सिंहसमानवीर्याः । यदा क्षेप्तारो धार्त्तराष्ट्रान् ससैन्यांस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ॥३४॥ वृद्धौ विराटद्रुपदौ महारथौ पृथक् चमूभ्यामभिवर्त्तमानौ॥ यदा द्रष्टारौ धार्त्तराष्ट्रान् ससैन्यांस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ॥ ३५ ॥ यदा कृतास्त्रो द्रुपदः प्रचिन्वन् शिरांसि यूनां समरे रथस्थः । क्रुद्धः शरैश्छेत्स्यति चापमुक्तैस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ॥ ३६ ॥ यदा विराटः परवीरघाती मर्मान्तरे शत्रुचमूं प्रवेष्टा । मत्स्यैः सार्द्धमनृशंसरूपैस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठं मात्स्यमनृशंसार्यरूपं विराटपुत्रं रथिनं पुरस्तात् ।यदा द्रष्टा दंशितं पाण्डवार्थे तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोन्वतप्स्यत् ॥ ३७ ॥ रणे हते कौरवाणां प्रवीरे शिखण्डिना सत्तमे शान्तनूजे । न जातु नः शत्रवो धारयेयुरसंशयं सत्यमेतद्

ही पछतावेगा कि—हाय मैंने युद्ध क्यों किया ॥३३॥ जब युद्ध करने के लिये उत्सुक, सिंहकी समान पराक्रमी, तरुण अवस्थाके चतुर प्रभद्रक धृतराष्ट्रके पुत्रोंके और उनकी सेनाके ऊपर बाणोंकी मारामार करेंगे तब धृतराष्ट्रनन्दन सुयोधन युद्धके लिये पछतावेगा ।३४। वृद्ध अवस्थाके महारथी राजा विराट और राजा द्रुपद अलग अलग अपनी सेनाओंको लिये हुए जिस समय धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी ओरको और उनकी सेनाकी ओरको देखेंगे उस समय दुर्योधन युद्धके लिए पछतावेगा ॥ ३५ ॥ अस्त्रविद्यामें चतुर राजा द्रुपद रथमें बैठकर क्रोध में भरा हुआ जब धनुषमेंसे बाणोंको छोड़कर तरुण योधाओंके शिरों को चुन २ कर रणभूमिमें काटने लगेगा उस समय सुयोधनको युद्ध आरम्भ करनेका पछतावा होगा ॥ ३६ ॥ जिस समय घोर संहारवाले रणमें वीर शत्रुओंका संहार करनेवाला महाबली राजा विराट कोमल रूपवाले मत्स्यदेशके राजाओंको साथमें लिये हुए शत्रुसेनामें घुसेगा उस समय सुयोधन पछतावेगा, कि—हाय मैंने युद्धका आरम्भ क्यों किया ? ॥ ३७ ॥ दयालु और सुन्दर दीखनेवाले रथी, राजा विराटके बड़े पुत्रको जब सुयोधन पाण्डवोंके लिये कवच पहर कर रणभूमिमें खड़ा हुआ देखेगा उससमय भी वह युद्ध छेड़नेके लिये पछतावेगा३८ जब शिखण्डी, कौरवोंके महारथी शन्तनुके पुत्रमहात्मा भीष्म पितामहको रणमें मारडालेगा उस समय मेरे शत्रु कदापि जीते नहीं रह सकते, यह बात मैं निश्चयके साथ और सत्य कहता हूं ॥ ३९ ॥ यह

नर्दामि ॥३९॥ यदा शिखण्डी रथिनः प्रचिन्वन् भीष्मं रथेनाभियाता वरूथी। दिव्यैर्हयैरवमृद्नन् रथौघांस्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥४०॥ यदा दृष्टा सृञ्जयानामनीके धृष्टद्युम्नं प्रमुखे रोचमानम्। अस्त्रं यस्मै गुह्यमुवाच धीमान् द्रोणस्तदा तप्स्यति धार्तराष्ट्रः ॥४१॥ यदा स सेनापतिरप्रमेयः परामृद्नन्निषुभिर्धार्तराष्ट्रान्। द्रोणं रणे शत्रुसहोऽभियाता तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ४२ ॥ ह्रीमान्मनीषी बलवान्मनस्वी स लक्ष्मीवान् सोमकानां प्रबर्हः। न जातु तं शत्रवोऽन्ये सहेरन् येषां स स्यादग्रणीर्वृष्णिसिंहः ॥ ४३ ॥ इदञ्च ब्रूयामावृणीष्वेति लोके युद्धेऽद्वितीयं सचिवं रथस्थम्। शिनेर्नप्तारं प्रवृणीम सात्यकिं महाबलं वीतभयं कृतास्त्रम् ॥ ४४ ॥ महोरस्को दीर्घबाहुः प्रमाथी युद्धेऽद्वितीयः परमास्त्रवेदी। शिनेर्नप्ता तालमात्रायुधोऽयं महारथो वीतभयं कृतास्त्रः ॥ ४५ ॥ यदा शिनीनामधिपो मयोक्तः शरैः परान्मेघ

शिखण्डी दिव्य घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठ कर दूसरे रथियोंको रक्षा में रखकर जब रथियोंको खोजता हुआ भीष्मके ऊपर चढ़कर आवेगा और रथियोंके समूहका संहार करने लगेगा उस समय दुर्योधन युद्ध के लिये पछतावेगा ॥४०॥ जिसको बुद्धिमान् द्रोणाचार्यने गुप्त अस्त्र विद्या पढ़ायी है उस धृष्टद्युम्नको जब सृञ्जयोंके सेनाके मुहाने पर शोभा पाता हुआ देखेगा उस समय सुयोधन युद्धके लिये पछतावेगा ॥ ४१ ॥ जिस समय शत्रुओंकी मारको सहसकने वाला अपार प्रभावशाली सेनापति धृष्टद्युम्न बाणोंके समूहोंसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंका संहार करता हुआ द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ कर आयगा उस समय सुयोधन युद्धके लिये पछतावेगा ॥ ४२ ॥ लज्जावान् बुद्धिमान्, बलवान्, उदार, लक्ष्मीवान् और सोमकवंशमें श्रेष्ठ वृष्णिसिंह सात्यकी जिसकी सेनाका अगुआ है उसको कोई भी शत्रु कभी भी नहीं सह सकेगा ॥ ४३ ॥ तुम दुर्योधनसे कहना, कि-अब तू राज्यकी आशा को छोड़दे, क्योंकि-हमने युद्धमें अद्वितीय, महाबली, निर्भय अस्त्रविद्यामें प्रवीण और सचिव रूप कहिये सहायता करने वाले, शिनिके पोते सात्यकीको अपना सहायक मान कर स्वीकार करलिया है ४४ वह शिनिका पोता सात्यकी विशाल छाती और लंबी भुजाओंवाला, शत्रुओंका नाशक और रणमें उत्तम अस्त्रोंका अद्वितीय जानने वाला, तालसमान आयुधोंको धारण करने वाला, महारथी, निर्भय और अस्त्रविद्यामें प्रवीण है ॥ ४५ ॥ जब शिनियोंका स्वामी शत्रुओंका

इव प्रवर्षन्। प्रच्छादयिष्यत्यरिहा योधमुख्यांस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ४६॥ यदा धृतिं कुरुते योत्स्यमानः स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा सिंहस्येव गन्धमाघ्राय गावः संवेष्टन्ते शत्रवोऽस्माद्रणाग्रे॥४७ स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा भिन्द्याद् गिरीन् संहरेत् सर्वलोकान्। अस्त्रे कृती निपुणः क्षिप्रहस्तो दिवि स्थितः सूर्य्य इवाभिभाति ४८ चित्रः सूक्ष्मः सुकृतो यादवस्य अस्त्रे योगो वृष्णिसिंहस्य भूयान्। यथाविधं योगमाहुः प्रशस्तं सर्वैर्गुणैः सात्यकिस्तैरुपेतः॥ ४९॥ हिरण्मयं श्वेतहयैश्चतुर्भिर्यदा युक्तं स्यन्दनं माधवस्य। द्रष्टा युद्धे सात्यकेर्धार्त्तराष्ट्रस्तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः॥५०॥ यदा रथं हेममणिप्रकाशं श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम्। दृष्ट्वा ममाप्यास्थितं केशवेन तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः॥ ५१॥ यदा मौर्व्यास्तलनिष्पेषमुग्रं

संहार करने वाला सात्यकी मेरे कहते ही मुख्य २ योधाओंके ऊपर मेघकी समान बाणोंकी वर्षा करके उनको ढकदेगा तब दुर्योधन युद्धके विषयमें पछतावेगा॥४६॥ जब वह लम्बी भुजा और दृढ़ धनुष वाला महात्मा सात्यकी लड़नेके लिये निश्चय करेगा, उस समय, जैसे सिंह की गन्ध पाकर गौएं भागजाती हैं तैसे ही शत्रु इस सात्यकीके पास से रणभूमिमें इधर उधरको भागने लगेंगे॥ ४७॥ विशालबाहु और दृढ़ धनुषको धारण करनेवाला, अस्त्रविद्यामें कुशल बुद्धिमान्, फुरतीले हाथोंवाला यह सात्यकी आकाशमें स्थित सूर्यकी समान जगजाहिर है, यह चाहे तो पहाड़ोंको तोड़डाले और सब लोकोंका संहार कर डाले॥ ४८॥ वृष्णियोंमें सिंहसमान श्रीकृष्णका अस्त्रविद्याका ज्ञान इतना अधिक है, कि—उसको देख कर लोग अचरजमें होजाते हैं, उन्होंने उसको ऐसी उत्तमतासे सीखा है, कि—उसकी सूक्ष्मताओंको हर एक नहीं समझ सकता, उनके अस्त्रविद्याके जितने प्रशंसनीय गुण हैं वे सब सात्यकी में विद्यमान हैं॥ ४९॥ जब रणभूमिमें मधुवंशी सात्यकीके श्वेतवर्ण के चार घोड़ोंसे जुते हुए सोनेके रथको देखेगा तो मनको वशमें न रखनेवाला मूढ दुर्योधन पछतावेगा॥ ५०॥ सुवर्ण और मणियोंसे दमकते हुए, श्वेत घोड़ोंसे जुते तथा जिसकी ध्वजामें वानर बैठा है ऐसे मेरे भयङ्कर रथको और उसके ऊपर बैठे हुए श्रीकृष्णजीको देखेगा तबभी दुष्टात्मा मूढ़ दुर्योधनको युद्धकेलिये पश्चात्ताप होगा। ५१ जब मैं महासमरमें गाण्डीव धनुषकी डोरीको खेंचकर इधर उधरको

महाशब्दं वज्रनिष्पेषतुल्यम्। विधूयमानस्य महारणे मया सगांडीवस्य श्रोष्यति मन्दबुद्धिः ॥५२॥ तदा मूढो धृतराष्ट्रस्य पुत्रस्तप्ता युद्धे दुर्मतिर्दुःसहायः। दृष्ट्वा सैन्यं बाणवर्षान्धकारे प्रभज्यन्तं गोकुलवद्रणाग्रे ॥५३॥ बलाहकादुच्चरतः सुभीमान् विद्युत्स्फुलिङ्गानिव घोररूपान्। सहस्रघ्नान् द्विषतां सङ्गरेषु अस्थिच्छिदो मर्मभिदः सुपुङ्खान् ।५४। यदा द्रष्टा ज्यामुखाद्बाणसंघान् गांडीवमुक्तानापततः शिताग्रान्। हयान् गजान् वर्मिणश्चाददानांस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥५५॥ यदा मन्दः परबाणान् विमुक्तान्ममेषुभिर्ह्रियमाणान् प्रतीपम्। तिर्यग्विध्यच्छिद्यमानान् पृषत्कैस्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५६ ॥ यदा विपाठा मद्भुजविप्रमुक्ता द्विजाः फलानीव महीरुहाग्रात्। प्रचेतार उत्तमांगानि यूनां तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत् ॥ ५७ ॥ यदा द्रष्टा पततः स्यन्दनेभ्यो महागजेभ्योऽश्वगतान् सुयोधनान्। शरैर्हतान् पतितांश्चैव रङ्गे तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वत-

---

टङ्कारें दूंगा उससमय धनुषकी डोरी और हथेलीकी परस्परकी रगड़ से आपसमें टकराने वाले वज्रोंकेसा महाशब्द होगा, उसको जब मूढ़-बुद्धि दुर्योधन सुनेगा और बाणोंकी वर्षाके अन्धकारमें गौओंके झुंड की समान अपनी सेनाको रणके मुहाने परसे भागते हुए देखेगा उस समय दुष्टबुद्धि और दुष्ट पुरुषोंकी सहायता वाला धृतराष्ट्रका पुत्र मूढ दुर्योधन पछतावेगा, कि-हाय मैंने युद्ध क्यों छेड़ा ? ॥ ५२ ।५३। और घनघटाओंमेंसे बाहर निकली हुई बिजलियोंके लपकोंकी समान गाण्डीव धनुषकी डोरीके मुखमेंसे बाहर निकले हुए, बड़ी ही पैनी नोकोंवाले, डरावने और रणभूमिमें सहस्रों वैरियोंका प्राणान्त करने वाले तथा हड्डियोंको और मर्मस्थानोंको भी छेदने वाले सुन्दर पूंछ से शोभित बाणोंको शत्रुओंकी सेना पर मारना आरम्भ करूँगा तो वह कवचधारी हाथियोंको भी निगलने लगेंगे, यह देखकर दुर्योधन दुःखित होगा, कि-हाय मैंने यह युद्ध अपने आप ही क्यों छेड़ लिया? ५५॥५६जब मूढ दुर्योधन यह देखेगा कि-अर्जुनके बाण वैरियोंके बाणोंको उलटे खेंचकर टेढ़े करके बींधडालते हैं तब पछतावेगा, कि-मैंने यह युद्धकी आपत्ति क्यों बुलाली५७जैसे पक्षी वृक्षोंकी डालियों परसे फलोंको तोड़लेते हैं तैसे ही मेरी भुजाओंमेंसे छूटे हुए विपाठ जातिके बाण रणभूमिमें वैरियोंके शिरोंको काटेंगे उस समय दुर्योधन आरम्भ किये हुए युद्धके लिये पछतावेगा और रथों परसे, बड़े२

स्यत् ॥ ५८ ॥ असम्प्राप्तानन्त्रपथं परस्य यदा द्रष्टा नश्यतो धार्त्तरा-ष्ट्रान्।अकुर्वतः कर्म युद्धे समन्तात्तदा युद्धं धार्त्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्५९ पदातिसंघान् रथसंघान् समन्ताद्व्यात्ताननः काल इवाततेषुः । प्रणो-त्स्यामि ज्वलितैर्बाणवर्षैः शत्रूंस्तदा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥६०॥ सर्वा दिशः सम्पतता रथेन रजोध्वस्तं गांडीवेन प्रकृत्तम् । यदा द्रष्टा स्वबलं सम्प्रमूढं तदा पश्चात्तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥ ६१ ॥ कान्दिग्भूतं छिन्नगात्रं विसंज्ञं दुर्योधनो द्रक्ष्यति सर्वसैन्यम् । हताश्ववीराग्र्य-नरेन्द्रनागं पिपासितं श्रान्तपत्रं भयार्त्तम् ॥ ६२ ॥ आर्त्तस्वरं हन्यमानं हतञ्च विकीर्णकेशास्थिकपालसंघम् ।प्रजापतेः कर्म यथार्थनिष्ठितं तदा दृष्ट्वा तप्स्यति मन्दबुद्धिः ॥६३॥ यदा रथे गाण्डिवं वासुदेवं दिव्यं शङ्खं

हाथियों परसे और घोड़ों परसे गिरते हुए बड़े२ योधाओंको देखेगा तब उसको युद्धके लिये पछताना होगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ जब धृतराष्ट्र के पुत्र और योधा, वैरियोंके अस्त्रोंको देखते ही रणभूमिमें मरने लगेंगे और रणमें युद्ध करना छोड़ भागेंगे, इस बातको जब दुर्योधन देखेगा तब पछतावेगा कि—हाय मैंने युद्धका आरम्भ क्यों किया५९ जिसके बाणोंकी धारा टूटती ही नहीं है ऐसा मैं जब कालकी समान मुख फाडे हुए बाणोंकी वर्षा करके वैरियोंकी पैदलसेना और रथियों के समूहोंका चारों ओरसे संहार करने लगूँगा उस समय मन्दबुद्धि दुर्योधन दुःखी होगा ॥ ६० ॥ मैं जब सब दिशाओंमेंको घूमते हुए रथमें बैठूँगा उस समय रथके पहियोंसे उड़ी हुई धूलिसे उसकी सेना व्याकुल होजायगी और रथोंमेंसे नीचे गिरने लगेगी और गाण्डीव धनुषसे कटने लगेगी, यह दशा देखकर मूढ दुर्योधन युद्ध के लिये पछतावेगा ॥ ६१ ॥ जब उसकी सेनामेंके वीर पुरुष, राजे और हाथियोंमेंसे कितनेहो चारों ओरको भागजायगे कितनोंहीके अंग कट जायँगे कितने ही मूर्छित होजायँगे, कितने ही मरजायँगे, कितनेही प्याससे घबड़ाजायँगे,कितनोंहीके वाहन थकजायँगे,कितने ही भयके मारे घबड़ाजायँगे, कितनेही आतुर होकर हाय २ करने लगेंगे, कितनेही मार खाने लगेंगे, कितनेही प्राणहीन होजायँगे और रणभूमिमें शिरोंके बाल हड्डियें तथा खोपड़ियोंके इधरउधर ढेरलग जायँगे तथा प्रजापतिके राज्य और स्वर्गके लिये निश्चयके साथ आरम्भ किया हुआ वाजपेय यज्ञकी–जिसमें सहस्र पशुओंका बलि दिया जाता है उसकी–समान भयानक दृश्य दीखने लगेगा तो उसको

पांचजन्यं हयांश्च। तूणावक्षय्यौ देवदत्तञ्च मां च दृष्ट्वा युद्धे धार्तराष्ट्रो-ऽन्वतप्स्यत्॥६४॥ उद्वर्त्तयन् दस्युसंघान् समेतान् प्रवर्त्तयन् युगमन्यद् युगान्ते। यदा धक्ष्याम्यग्निवत् कौरवेयांस्तदा तप्ता धृतराष्ट्रः सपुत्रः॥६५॥ सभ्राता वै सहसैन्यः सभृत्यो भ्रष्टैश्वर्यः क्रोधवशोऽल्पचेताः। दर्प-स्यान्ते निहतो वेपमानः पश्चान्मन्दस्तप्स्यति धार्त्तराष्ट्रः॥६६॥ पूर्वा-ह्णे मां कृतजप्यं कदाचिद्विप्रः प्रोवाचोदकान्ते मनोज्ञम्। कर्त्तव्यं ते दुष्करं कर्म पार्थ योद्धव्यन्ते शत्रुभिः सव्यसाचिन्॥६७॥ इन्द्रो वा हरिमान् वज्रहस्तः पुरस्ताद्यातु समरेऽरीन् विनिघ्नन्। सुग्रीव-युक्तेन रथेन वा ते पश्चात् कृष्णो रक्षतु वासुदेवः॥६८॥ वव्रे चाहं वज्रहस्तान्महेन्द्रादस्मिन् युद्धे वासुदेवं सहायम्। स मे लब्धो दस्युव-धाय कृष्णो मन्ये चैतद्विहितं दैवतैर्मे॥६९॥ अयुध्यमानो मनसापि यस्य

देखकर मन्दबुद्धिवाला दुर्योधन पछतावेगा॥६२॥६३॥ जब रथमें गाण्डीव धनुषको, श्रीकृष्णको, दिव्य पांचजन्य शंख और घोड़ोंको दो अक्षय भाथोंको, देवदत्तनामक शंख और रणमें खड़े हुए मुझे देखेगा तब दुर्योधन युद्धके लिये पछतावेगा॥६४॥ मैं जब इकट्ठे हुए और पाण्डवोंके राज्यको डाकुओंकी समान हथिया लेनेवाले कौरवों का नाश करूँगा तब वैरियोंको निर्मूल करके दूसरे धार्मिक युगका आरम्भ करूँगा और अग्निकी समान कौरवोंको जलाकर भस्म कर डालूँगा उससमय धृतराष्ट्र और उसके पुत्र युद्धके लिये पछतावेंगे६५ जब दुर्योधनका घमण्ड टूटजायगा और भाई, सेना, सेवक तथा अन्य साथियों सहित क्षुद्रचित्त दुर्योधन ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो वैरियोंके हाथकी मार खाकर कांपने लगेगा, उस समय इस मूर्खको आरम्भ किए हुए युद्धके लिए पश्चात्ताप होगा॥६६॥ एक दिन मैं सन्ध्या-वन्दनके अनन्तर जप करके आचमनसे निवटा था कि-किसी एक ब्राह्मणने आकर मधुर वाणीमें मुझसे कहा, कि-हे सव्यसाचिन् अर्जुन! तुझे शत्रुओंके साथ युद्ध करना और बड़ा दुष्कर काम करना होगा६७ उससमय रणमें इन्द्र घोड़ेपर सवार हो हाथमें वज्र लेकर तेरे वैरियों का संहार करता हुआ तेरे आगे २ चलेगा और सुग्रीवनामके घोड़ों से जुते हुए रथसे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण तेरी पीछेसे रक्षा करेंगे, यह मेरा आशीर्वाद है॥६८॥ मैंने वज्रधारी इन्द्रदेवसे इस युद्ध में वासुदेवकी सहायताका वर मांगलिया था, सो मैंने डाकुओंका वध करनेके लिए श्रीकृष्णको पा भी लिया है मेरी समझमें देवताओं

जयं कृष्णः पुरुषस्याभिनंदेत् । एवं सर्वान् स व्यतीयादमित्रान् सेन्द्रान् देवान्मानुषे नास्ति चिन्ता ॥ ७० ॥ स बाहुभ्यां सागरमुत्तितीर्षेन्महोदधिं सलिलस्याप्रमेयम् । तेजस्विनं कृष्णमत्यन्तशूरं युद्धेन यो वासुदेवं जिगीषेत् ७१ गिरिं य इच्छेत्तु तलेन भेत्तुं शिलोच्चयं श्वेतमतिप्रमाणम् । तस्यैव पाणिः सनखो विशीर्येन्न चापि किंचित् स गिरेस्तु कुर्यात् ७२ अग्निं समिद्धं शमयेद्भुजाभ्यां चन्द्रञ्च सूर्यञ्च निवारयेत् । हरेद्देवानाममृतं प्रसह्य युद्धे नयो वासुदेवं जिगीषेत् ७३ यो रुक्मिणीमेकरथेन भोजानुत्साद्य राज्ञः समरे प्रसह्य । उवाह भार्यां यशसा ज्वलन्तीं यस्यां जज्ञे रौक्मिणेयो महात्मा ॥ ७४ ॥ अयं गान्धारांस्तरसा सम्प्रमथ्य जित्वा पुत्रान्नग्नजितः समग्रान् । बद्धं मुमोच विनदन्तं प्रसह्य सुदर्शनं वै देवतानां ललामम् ॥ ७५ ॥ अयं कपाटेन जघान पांड्यं तथा कलिंगान् दंतकूरेममर्द । अनेन दग्धा वर्षपूगान्विनाथा वाराणसी

ने अनुग्रह करके मेरा यह काम बना दिया है ॥ ६९ ॥ यह श्रीकृष्ण युद्ध न करके केवल मनसे ही जिस मनुष्यकी विजय कराना चाहें वह मनुष्य इन्द्रसहित देवता भी वैरी बन कर आवें तो उनको हरा देता है फिर मनुष्योंके विषयमें तो कुछ चिंता है ही नहीं ॥७०॥ जो पुरुष परम शूर तेजस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको युद्धके द्वारा जीतना चाहे वह मानो जलके अपार महाभण्डाररूप सागरको दोनों भुजाओंसे तरना चाहता है ॥ ७१ ॥ जिसका ओर छोर नहीं ऐसे शिलाओंके ढेररूप श्वेत गिरिको जो अपनी हथेलीसे तोड़ना चाहेगा उसका नखोंसहित हाथ ही टूटजायगा और वह पहाड़का कुछ भी नहीं कर सकेगा ७२ जो पुरुष युद्ध करके वासुदेव श्रीकृष्णको जीतना चाहता है वह मानो जलते हुए अग्निको दोनों भुजाओंसे बुझाना चाहता है, चन्द्रमा और सूर्यको हाथसे ढकना चाहता है और बलात्कार करके देवताओंका अमृत छीनना चाहता है॥७३॥ जिन्होंने अकेले ही रथमें बैठ कर युद्धमें भोजवंशके राजाओंको हराकर वशमें किया था और यशसे दिपती हुई रुक्मिणीको विवाह कर भार्या बनाया था, जिस रुक्मिणसे महात्मा प्रद्युम्नका जन्म हुआ है ॥ ७४ ॥ जिनको देवता भी रत्नरूप मानकर शिरपर धारण करते हैं ऐसे श्रीकृष्णने अपने बल से गांधारोंको मारडाला था और नग्नजित्के सब पुत्रोंको भी जीत कर उनके कैद किये हुए रुदन करने वाले राजा सुदर्शनको छुड़ाया था ॥ ७५ ॥ इन श्रीकृष्णने छातीमें घूँसा मार कर राजा पाण्ड्यको

नगरी सम्बभूव ॥ ७६ ॥ अयं स्म युद्धे मन्यतेऽन्यैर्जेयं तमेकलव्यं नाम निषादराजम्। वेगेनेव शैलमभिहत्य जम्भं शेते स कृष्णेन हतः परासुः७७ ततोग्रसेनस्य सुतं सुदुष्टं वृष्ण्यन्धकानां मध्यगतं सभास्थम्। अपातयद् बलदेव द्वितीयो हत्वा ददौ चोग्रसेनाय राज्यम् ७८ योधयामास खस्थं विभीषणं मायया शाल्वराज्यम्। सौभद्वारि प्रत्यगृह्णाच्छतघ्नीं दोर्भ्यां क एनं विसहेत मर्त्यः॥७९॥प्राग्ज्योतिषं नाम बभूव दुर्गं पुरं घोरमसुराणामसह्यम्। महाबलो नरकस्तत्र भौमो जहारादित्याः मणिकुण्डले शुभे ॥ ८० ॥ न तं देवाः सह शक्रेण शेकुः समागता युधि मृत्योरभीताः। दृष्ट्वा च तं विक्रमं केशवस्य बलं तथैवास्त्रमवारणीयम् ॥ ८१ ॥ जानन्तोऽस्य प्रकृतिं केशवस्य न्ययोजयन् दस्युवधाय कृष्णम्। स तत् कर्म प्रतिशुश्राव दुष्करमैश्वर्यवान् सिद्धिषु वासुदेवः ॥ ८२ ॥ निर्मोचने षट् सहस्राणि हत्वा संछिद्य

मार डाला था और घोर युद्धमें कलिङ्गदेशके राजाओंका भी संहार किया था और जिनको जला कर भस्म कीहुई काशी नगरी सैंकड़ों वर्षों तक अनाथ पड़ी रही थी ॥ ७६ ॥ जैसे जम्भासुर नामका दैत्य बड़े वेगसे पहाड़के ऊपर प्रहार कर २ के अपने आप ही मर गया तैसे ही जिसको श्रीकृष्ण सदा युद्ध करनेके लिये कहा करते थे वह किसीके जीतनेमें न आनेवाला एकलव्य नामका भील भी इनके साथ युद्ध करके मारा गया ॥ ७७ ॥ हे तात ! उग्रसेनका पुत्र कंस बड़ा ही दुष्ट था, वह वृष्णि और अन्धकोंकी सभामें बैठा था तहाँ ही श्रीकृष्णने बलदेवजीके साथ जाकर उसको मारडाला और मथुराका राज्य उग्रसेनको देदिया ॥ ७८ ॥ इन ही श्रीकृष्णने मायासे आकाशमें विचरने वाले राजा सौभके साथ संग्राम किया था और शाल्वकी फेंकी हुई शतघ्नी सौभनगरके द्वार परसे जिन श्रीकृष्णने दोनों हाथोंसे पकड़ी थी इन श्रीकृष्णको मनुष्य कौन कहसकता है ? ॥७९॥ पहिले महाभयानक और असह्य प्राग्ज्योतिष नामवाला असुरका एक नगर था, उसमें पृथ्वीका पुत्र महाबली नरकासुर रहता था, वह अदितिके मणियोंसे जड़े सुंदर दो कुण्डल चुरा लाया था ॥ ८० ॥ मृत्युसे न डरने वाले और इन्द्रके साथ इकट्ठे हुए देवताओंने उसके साथ युद्ध किया परन्तु उसको हरा नहीं सके,वह देवता कृष्णके स्वभावको जानते थे,इसकारण इन्होंने उक्त भौमासुरका नाश करनेके लिये श्रीकृष्णको नियत किया और कामको सिद्ध करनेकी शक्तिवाले श्रीकृष्णने देव-

पाशान् सहसा क्षुरान् तान्मुरं हत्वा विनिहत्यौघरक्षो निर्मोचनं चापि जगाम वीरः ॥ ८३ ॥ तत्रैव तेनास्य बभूव युद्धं महाबलेनातिबलस्य विष्णोः । शेते स कृष्णेन हतः परासुर्वातेनेव मथितः कर्णिकारः ।८४। आहृत्य कृष्णो मणिकुण्डले ते हत्वा च भौमं नरकं मुरञ्च श्रिया वृतो यशसा चैव विद्वान् प्रत्याजगामाप्रतिमप्रभावः ॥८५॥ अस्मै वराण्यददंस्तत्र देवाः दृष्ट्वा भीमं कर्म कृतं रणे तत् । श्रमश्च ते युध्यमानस्य न स्यादाकाशे चाप्सु च ते क्रमः स्यात् ॥ ८६ ॥ शस्त्राणि गात्रे न च ते क्रमेरन्नित्येव कृष्णश्च ततः कृतार्थः । एवं रूपे वासुदेवेऽप्रमेये महाबले गुणसम्पत् सदैव ॥ ८७ ॥ तमसह्यं विष्णुमनन्तवीर्यमाशंसते धार्त्तराष्ट्रो विजेतुम् । सदा ह्येनं तर्कयते दुरात्मा तच्चाप्ययं सहतेऽस्मान् समीक्ष्य ॥ ८८ ॥ पर्यागतं मम कृष्णस्य चैव यो मन्यते कलहं

ताओंका काम करदेनेकी प्रतिज्ञाकी ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वीर श्रीकृष्णने निर्मोचन नामके नगरमें छः सहस्र राक्षसोंका प्राणान्त किया और क्षण भरमें छुरेकी धारकी समान तीक्ष्ण लोहेके पाशको भी काटकर मुर और ओघ नामवाले दैत्योंको मारडाला और फिर नरकासुरकी निर्मोचन नामके नगरमें घुस गये ॥ ८३ ॥ तहाँ महाबली विष्णुका महाबलवान् नरकासुरके साथ युद्ध हुआ उसमें, जैसे पवन कनेरके वृक्षको तोड़ डालता है तैसे ही कृष्णने उसको मारडाला था और वह प्राणहीन होकर भूमि पर ढहपड़ा था ॥ ८४ ॥ इस प्रकार पृथ्वीके पुत्र नरकासुरको और मुरको मार कर लक्ष्मी तथा यशको प्राप्त करतेहुए अनुपम प्रभाववाले विद्वान् श्रीकृष्ण मणिजड़े दोनों कुण्डलोंको लौटा लाये थे॥८५॥उस समय इन्होंने रणमें भयानक परिश्रम किया था उस को देख कर देवताओंने इनको वरदान दिया था कि—तुमको युद्ध करनेके समय थकावट नहींचढ़ेगी और आकाशमें तथा जलमें तुम्हारी गति नहीं रुकेगी ॥ ८६ ॥ तुम्हारे शरीरमें शस्त्र नहीं चुभेंगे, ऐसे वरदान मिलनेसे श्रीकृष्ण कृतार्थहोगये हैं, ऐसे कठिनकर्म करने वाले महाबली श्रेष्ठ श्रीकृष्णमें सदा दैवी सम्पदा रहती है ॥ ८७ ॥ असह्य और अनन्तपराक्रमी श्रीकृष्णको दुष्टात्मा दुर्योधन जीतनेकी आशा रखता है, परन्तु यह श्रीकृष्ण तो मेरा मान रख कर दुर्योधनके इस अपराधको सहन किया करते हैं ॥ ८८ ॥ दुर्योधन समझता है कि—मैंने श्रीकृष्णको बलात्कारसे अपने पक्षमें कर लिया है, इस लिये मैं बलात्कार करके उनमें मित्रभेद करा दूँगा और वह यह भी समझता

संप्रसह्य । शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वं तद्वेदिता संयुगं तत्र गत्वा ॥८९॥ नमस्कृत्वा शान्तनवाय राज्ञे द्रोणायाथो सहपुत्राय चैव । शारद्वतायाप्रतिद्वन्द्विने च योत्स्याम्यहं राज्यमभीप्समानः ॥ ९० ॥ धर्मेणास्तं निधनं तस्य मन्ये यो योत्स्यते पाण्डवैः पापबुद्धिः । मिथ्याग्लहे निर्जिता वै नृशंसैः संवत्सरान् वै द्वादश राजपुत्राः ॥ ९१ ॥ वासः कृच्छ्रो विहितश्चाप्यरण्ये दीर्घं कालं चैकमज्ञातचर्यम् । ते हि कस्माज्जीवतां पाण्डवानां नन्दिष्यन्ते धार्तराष्ट्राः पदस्थाः ९२ ते चेदस्मान् युध्यमानान् जयेयुर्देवैर्महेन्द्रप्रमुखैः सहायैः । धर्माद्धर्मश्चरितो गरीयांस्ततो ध्रुवं नास्ति कृतञ्च साधु ॥ ९३ ॥ न चेदिदं पौरुषं कर्म बद्धं न चेदस्मान्मन्यतेऽसौ विशिष्टान् । आशंसेऽहं वासुदेवद्वितीयो दुर्योधनं सानुबन्धं निहन्तुम् ॥ ९४ ॥ न चेदिदं कर्म नरेन्द्र वन्ध्यं न चेत् भवेत्सुकृतं निष्फलं वा । इदञ्च तच्चाभिसमीक्ष्य नूनं पराजयो धार्त-

---

है, कि-पांडवोंका कृष्णके ऊपर जो ममत्व है उसको भी मैं दूर करदूँगा यह सब बात उसको कुरुक्षेत्रके युद्धमें पहुँचने पर मालूम होगी ।८९। मैं राज्यको प्राप्त करनेकी इच्छासे शन्तनुके पुत्र महाराज भीष्मको, पुत्रसहित द्रोणाचार्यको तथा अनुपम योधा शरद्वत्के पुत्र कृपाचार्य को प्रणाम करके युद्ध करूँगा ॥ ९० ॥ जो पापबुद्धि पुरुष पाण्डवोंके साथ इस युद्धमें लड़ेगा, मेरी समझमें उसका धर्मानुसार मरणका समय आपहुँचा है, जिन क्रूर कौरवोंने जुआ खिलाकर और कपटका पण कराकर पाण्डवोंको हराया था और पाण्डवोंने बारह वर्ष तक दुःखसे वनमें वास किया था तथा एक वर्ष अज्ञातवास किया था, इस प्रकार पाण्डवोंके साथ अनर्थ करनेवाले धृतराष्ट्रके पुत्र, पाण्डवों के जीवित रहते राजसिंहासन पर बैठकर कैसे आनन्द कर सकते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ और यदि कौरवोंने इन्द्रादि देवताओंकी सहायता लेकर युद्ध करतेमें हमें जीत लिया तो समझा जायगा, कि—धर्मकी अपेक्षा अधर्म करना ही अच्छा है और निःसन्देह सत्कर्म करना वृथा है ॥ ९३ ॥ दुर्योधन यदि मनुष्यको कर्मोंसे बँधा हुआ न मानता हो और हमें अपनेसे उत्तम न मानता हो तो उसकी विजय हो परन्तु मैं इस बातको नहीं मानता, मुझे तो आशा है, कि-मैं श्रीकृष्णकी सहायतासे दुर्योधनका और उसके साथियोंका नाश करूँगा ॥ ९४ ॥ हे राजन् ! यदि करा हुआ कर्म निष्फल नहीं होता है और यदि दुष्य-कर्म भी निष्फल नहीं होता है तो यह हमें हमारा राज्य नहीं देने तथा

राष्ट्रस्य साधुः ॥ ९५ ॥ प्रत्यक्षं वः कुरवो यद् ब्रवीमि युध्यमाना धार्त्त-राष्ट्रा न संति । अन्यत्र युद्धात् कुरवो यदि स्युर्न युद्धे वै शेष इहास्ति कश्चित् ॥ ९६ ॥ हत्वा त्वहं धार्त्तराष्ट्रान् सकर्णान् राज्यं कुरूणामजेता समग्रम् । यद्वः कार्य्यं तत् कुरुध्वं यथास्वमिष्टान्दारानात्मभोगान् भजध्वम् ॥९७॥ अप्येवं नो ब्राह्मणाः सन्ति वृद्धा बहुश्रुताः शीलवन्तः कुलीनाः।सांवत्सरा ज्योतिषिचाभियुक्ताःनक्षत्रयोगेषु च निश्चयज्ञाः९८ उच्चावचं दैवयुक्तं रहस्यं दिव्याः प्रश्ना मृगचक्रा मुहूर्त्ताः । क्षयं महांतं कुरुसृञ्जयानां निवेदयंते पाण्डवानां जयञ्च ॥ ९९ ॥ यथा हि नो मन्यतेऽजातशत्रुः संसिद्धार्थो द्विषतां निग्रहाय । जनार्दनश्चाप्यपरोक्षविद्यो न संशयं पश्यति वृष्णिसिंहः ॥ १०० ॥ अहं तथैनं खलु

कपटका जुआ खेल कर हमें राज्यमेंसे निकाल दिया था, यह सब देख कर निश्चयके साथ कहता हूँ, कि-मैं दुर्योधनको अवश्य ही जीतूँगा और हे कौरवो ! मैं तुमसे प्रत्यक्ष कहता हूँ, कि-यदि धृतराष्ट्रके पुत्र युद्ध करेंगे तो वह मारे जायँगे, यदि वह युद्ध नहीं करेंगे तब ही उन की रक्षा होगी, परंतु यदि उन्होंने युद्ध किया तो उनमेंसे कोई भी जीता नहीं बचेगा ॥ ९६ ॥ मैं युद्धमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंको और कर्णको मार कर कौरवोंका सब राज्य जीतलूंगा, इस लिये अब तुम्हें जो काम करना हो सो करलो और तुम अपनी स्त्रियोंके साथ प्रिय ऐश्वर्योंको भोगलो ॥ ९७ ॥ इसके सिवाय वृद्ध बहुतसे शास्त्रोंको पढ़े हुए, सुशील, कुलीन, संवत्सरका फल जाननेमें प्रवीण, ज्योतिश्चक्रके, ज्ञाता, नक्षत्रोंके योगोंके विषयमें बड़े ही चतुर, भाग्यके विषयमें छोटे बड़े रहस्योंको समझनेवाले, अगली पिछली बातोंके जानकर, प्रश्नों के उत्तर देनेवाले,शैवशास्त्रमें प्रसिद्ध,सर्वतोभद्र आदिके ज्ञाता अर्थात् कौनसा नक्षत्र किस नक्षत्रके विरुद्ध है इसका विचार करके खरा खोटा कहनेके लिये सर्वतोभद्रके द्वारा नक्षत्रोंका विचार करने वाले और मुहूर्तोंको जानने वाले ब्राह्मण भी हमारे पास हैं, वह कहते हैं, कि--इस युद्धमें कौरवोंका और सृञ्जयोंका बड़ा भारी संहार होगा और पाण्डवोंकी विजय होगी ॥ ९८-९९ ॥ और हमारे अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर शत्रुओंका निग्रह करनेमें अपनेको जैसा सिद्धकाम मानरहे हैं तैसे ही जोकि-अपरोक्षवेत्ता कहिये दिव्यदृष्टिसे आगे पीछे की बातोंको जानते हैं वह वृष्णिकुलमें सिंहकी समान श्रीकृष्ण भी युद्धके समय, हमारी विजय होनेमें किसीप्रकारका सन्देह नहीं देखते

भाविरूपं पश्यामि बुद्धया स्वयमप्रमत्तः । दृष्टञ्च मे न व्यथते पुराणी संयुध्यमाना धार्त्तराष्ट्रा न सन्ति ॥ १०१ ॥ अनालब्धं जृम्भति गाण्डिवं धनुरनाहता कम्पति मे धनुर्ज्या । बाणाश्च मे तूणमुखाद्विसृत्य मुहुर्मुहुर्गन्तुमुशन्ति चैव ॥ १०२ ॥ खड्गः कोशान्निः सरति प्रसन्नो हित्वेव जीर्णामुरगस्त्वचं स्वाम् । ध्वजे वाचो रौद्ररूपा भवन्ति कदा रथो योक्ष्यते ते किरीटिन् ॥ १०३ ॥ गोमायुसंघाश्च नदन्ति रात्रौ रक्षांस्यथो निष्पतन्त्यन्तरीक्षात । मृगाः शृगालाः शितिकण्ठाश्च काका गृध्रा बकाश्चैव तरक्षवश्च ॥ १०४ ॥ सुवर्णपत्राश्च पतन्ति पश्चात दृष्ट्वा रथं श्वेतहयप्रयुक्तम् । अहमेकः पार्थिवान सर्वयोधान् शरान् वर्षन् मृत्युलोकं नयेयम् ॥ १०५ ॥ समाददानः पृथगस्त्रमार्गान् यथाग्निरिद्धो गहनं निदाघे । स्थूणाकर्णं पाशुपतं महास्त्रं ब्राह्मं चास्त्रं यच्च शक्रोऽप्यदान्मे १०६ वधे धृतो वेगवतः प्रमुञ्चन्नाहं प्रजाः किञ्चिदिहावशिष्ये ।

हैं ॥ १०० ॥ और मैं स्वयं भी सावधान होकर अपनी बुद्धिसे आगे को होने वाली घटनाको देख सकता हूं, मेरी योगशक्ति वाली दृष्टि भविष्यकी बातको जाननेमें असमर्थ नहीं है मुझे स्पष्ट दीखता है कि यदि धृतराष्ट्रके पुत्र रणभूमिमें जूझनेको जायँगे तो मारेही जायंगे १०१ मेरा गांडीव धनुष बिना छुए ही फड़का करता है, मेरी धनुषकी डोरी बिना खेंचे ही हिला करती है और मेरे बाण भाथोंके मुखोंसे बाहर निकल कर बारम्बार बाहर निकलनेकी सूचना दिया करते हैं ॥ १०२ ॥ जैसे साँप अपनी केंचुलीको त्यागकर बाहर निकल आता है तैसे ही मेरी चमचमाती हुई तलवार भी म्यानमेंसे बाहर निकल २ पड़ती है और ध्वजामेंसे भी भयंकर शब्द निकला करते हैं, कि-हे अर्जुन ! तेरा रथ कब जुड़ेगा १०३ रात्रिके समय गीदड़ियोंके समूह रोया करते हैं, राक्षस आकाशमेंसे नीचे गिरा करते हैं, मेरे रथ को श्वेत घोड़ोंसे जुड़ा हुआ देखकर मृग, सियार, मोर, कौए, गिद्ध, बगले, भेड़िये और गरुड़ मेरे रथके पीछे उड़ते हैं इससे सिद्ध होता है कि-मैं अकेला ही बाणोंकी वर्षा करके धृतराष्ट्र के सब योधाओंको यमलोकमें पहुँचा दूँगा ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ गर्मीमें गहन वनको जलाने के लिए जैसे अग्नि बढ़ता है तैसे ही मैं भी लोकोंका संहार करनेका पक्का निश्चय करके अनेकों प्रकारकी अस्त्रविद्याकी रीतियोंसे बड़े वेग वाले स्थूणाकर्ण, पाशुपत, ब्रह्मास्त्र तथा इन्द्रास्त्र आदि बड़े २ अस्त्रोंका प्रहार करके प्रजाओंमेंसे किसीको भी बाकी नहीं छोड़ूंगा,

शान्ति लप्स्ये परमो ह्येष भावः स्थिरो मम ब्रूहि गावल्गणे तान्॥१०७ ये वै जय्याः समरे सूत लब्ध्वा देवानपीन्द्रप्रमुखान् समेतान्। तैर्मन्यते कलहं सम्प्रसह्य स धार्त्तराष्ट्रः पश्यत मोहमस्य॥१०८॥ वृद्धो भीष्मः शांतनवः कृपश्च द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान्। एतं सर्वे यद्वदंत्येतदस्तु आयुष्मंतः कुरवः संतु सर्वे॥१०९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वण्यर्जुनवाक्यनिवेदनेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

वैशम्पायन उवाच। समवेतेषु सर्वेषु तेषु राजसु भारत। दुर्य्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनोऽब्रवीत॥१॥ बृहस्पतिश्चोशना च ब्रह्माणं पर्युपस्थितौ। मरुतश्च सहेन्द्रेण वसवश्चाग्निना सह॥२॥ आदित्याश्चैव साध्याश्च ये च सप्तर्षयो दिवि। विश्वावसुश्च गन्धर्वः शुभाश्चाप्सरसाङ्गणाः॥३॥ नमस्कृत्योपजग्मुस्ते लोकवृद्धं पितामहम्। परिवार्य च विश्वेशं पर्यासत दिवौकसः॥४॥ तेषां मनश्च तेजश्चा-

हे सञ्जय! तुम कौरवोंसे जाकर कहना, कि-अर्जुन कहता है कि— मैं ऐसा करके ही शांति पाऊँगा क्योंकि ऐसा करना मेरा मुख्य और दृढ़ अभिप्राय है॥१०६॥१०७॥ हे सूतपुत्र सञ्जय! इन्द्रादि देवता इकट्ठे होकर लडनेको आजायँ तो उनके साथ भी युद्ध करके पाण्डव विजय पावेंगे ऐसे पाण्डवोंके साथ दुर्य्योधन जोरावरी युद्ध करना चाहता है, यह उसकी मूर्खता तो देखो!॥१०८॥ बूढ़े शन्तनुके पुत्र भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, और बुद्धिमान् विदुरजी ये सब जो कुछ कहें सोई करो जिससे सब कौरव जीवित रहें॥१०९॥ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४८॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे भरतवंशी जनमेजय! कौरवसभा में सब राजे इकट्ठे होकर बैठे थे उस समय सञ्जयकी बात सुनकर शन्तनुके पुत्र भीष्मपितामहने दुर्योधनसे यह बात कही कि-॥१॥ एक समय बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्माजीके आस पास बैठे थे उस समय पवन इन्द्रके साथ, वसु अग्निके साथ, आदित्य, साध्य देवता, स्वर्गवासी सप्तऋषि, विश्वावसु आदि गन्धर्व तथा अप्सराओंके उत्तम गण ये सब देवलोकमें सबसे बूढ़े पितामह ब्रह्माजीके पास आये और प्रणाम करके विश्वनाथ ब्रह्माजीको चारों ओरसे घेर कर बैठ गए२-४ उस समय तहाँ पूर्वदेव नामसे प्रसिद्ध नर तथा नारायण ऋषि बैठे थे, वह अपने ओज और पराक्रमसे सबोंके मन और तेजको हरतेहुए

प्यादृदानविवौजसा। पूर्वदेवौ व्यतिक्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ५ ॥ बृहस्पतिस्तु पप्रच्छ ब्रह्माणं काविमाविति। भवन्तं नोपतिष्ठेते तौ नः शंस पितामह ॥६॥ ब्रह्मोवाच। यावेतौ पृथिवीं द्यां च भासयन्तौ तपस्विनौ। ज्वलन्तौ रोचमानौ च व्याप्यातीतौ महाबलौ७ नरनारायणावेतौ लोकाल्लोकं समास्थितौ। ऊर्जितौ स्वेन तपसा महासत्वपराक्रमौ८एतौ हि कर्मणा लोकं नन्दयामासतुर्ध्रुवम्। द्विधा भूतौ महाप्राज्ञौ विद्धि ब्रह्मन् परन्तपौ। असुराणां विनाशाय देवगन्धर्वपूजितौ९ वैशम्पायन उवाच। जगाम शक्रस्तच्छ्रुत्वा यत्र तौ तेपतुस्तपः। सार्द्धं देवगणैः सर्वैर्बृहस्पतिपुरोगमैः ॥ १०॥ तदा देवासुरे युद्धे भये जाते दिवौकसाम्। अयाचत महात्मानौ नरनारायणौ वरम् ॥ ११ ॥ तावब्रूतां वृणीष्वेति तदा भरतसत्तम। अथैतावब्रवीच्छक्रः साह्यं नः क्रियतामिति ॥ १२ ॥ ततस्तौ शक्रमब्रूतां करिष्यावो यदिच्छसि।

तहांसे उठकर चलेगये ॥ ५ ॥ तब बृहस्पतिने ब्रह्माजीसे पूछा, कि-हे पितामह ब्रह्मदेव ! आपकी उपासना किये विना जो दोनों यहांसे चले गये यह कौन थे ? उनको हमें बताइये ॥ ६ ॥ ब्रह्माने उत्तर दिया, कि-जो दोनोंजने यहांसे चलेगये हैं वह नर और नारायण नामके प्राचीन ऋषि हैं, वह अपने तेजसे पृथिवी और आकाशको दिपाते हैं, तपस्वी और महाकान्तिमान् हैं, जगत्में व्याप कर सबसे बढ़कर होगये हैं, यह महाबली अभी मनुष्यलोकमेंसे ब्रह्मलोकमें आये थे, यह अपने तपसे बड़े तेजस्वी हैं, इनका मनोबल और पराक्रम बड़ाभारी है॥७।८॥ इन्होंने निःसन्देह अपने कर्मसे सब लोकोंको प्रसन्न कर लिया है और हे ब्राह्मण ! महाबुद्धिमान् तथा शत्रुओंको ताप देनेवाले यह देवता असुर और गन्धर्वोंका नाश करनेके लिये नर और नारायणरूपसे प्रकट हुए हैं, देवता तथा गन्धर्व इनको पूजते हैं ॥ ९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! ब्रह्माजीकी इस बातको सुन इन्द्र, बृहस्पति आदि सब देवताओंको साथमें लेकर जहां नर नारायण तपस्या कर रहे थे तहां गये ॥ १० ॥ उस समय देवता और असुरोंका युद्ध होनेको था इस कारण देवता बड़े डर रहे थे, इन्द्रने महात्मा नर नारायणके पास आकर वर मांगा ॥ ११ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! उस समय उन दोनोंने कहा, कि—मांगो क्या चाहिए, इन्द्रने कहा, कि—आप युद्धमें हमारी सहायता करिये ॥ १२ ॥ तब उन दोनोंने इन्द्रसे कहा कि—अच्छा तुम जो चाहते हो, हम वैसा

ताभ्यां च सहितः शक्रो विजिग्ये दैत्यदानवान् ॥ १३ ॥ नर इन्द्रस्य संग्रामे हत्वा शत्रून् परन्तपः । पौलोमान् कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च ॥१४॥ एष भ्रांते रथे तिष्ठन् भल्लेनापाहरच्छिरः। जम्भस्य ग्रसमानस्य तदा ह्यर्जुन आहवे ॥ १५ ॥ एष पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरमारुजत् । जित्वा षष्टिं सहस्राणि निवातकवचान् रणे।१६। एष देवान् सहेंद्रेण जित्वा परपुरञ्जयः । अतर्पयन्महाबाहुरर्जुनो जातवेदसम् १७ नारायणस्तथैवात्र भूयसोऽन्यान् जघान ह । एवमेतौ महावीर्यौ तौ पश्यत समागतौ ॥ १८ ॥ वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ । नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः ॥ १९ ॥ अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः । एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः । नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधाकृतम् ।२०। एतौ हि कर्मणा लोकानश्नुवातेऽक्षयान् ध्रुवान् । तत्र तत्रैव जायेते युद्धकाले पुनः पुनः २१

ही करेंगे, तब उनको साथमें लेकर इन्द्रने दैत्य दानवोंको जीतलिया१३ परन्तप नर भगवान्ने संग्राममें पौलोम और कालखञ्ज नामवाले सैंकड़ों और सहस्रों इन्द्रके शत्रुओंको मारा था, इस समय वही नर भगवान् अर्जुनके रूपमें उत्पन्न हुए हैं और इसने चारों ओरको घूमने वाले एक ही रथमें बैठकर भी संग्राममें अपनेको ग्रसनेके लिये आये हुए जम्भासुरके शिरको भालेसे काट लिया था ॥ १४ ॥ १५ ॥ और अर्जुनरूपमें वर्त्तमान उन नरभगवान्ने समुद्रके पार हिरण्यपुरमें रहने वाले निवातकवच नामके आठ हजार असुरोंको रणमें हराकर हिरण्यपुरका भी नाश करदिया था ॥१६॥ शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले इस महाबली अर्जुनने इन्द्रसहित देवताओंको हराकर खाण्डव वनसे अग्निको तृप्त किया था॥१७॥इसके सहायकऔर श्रीकृष्णरूपसे प्रकट हुए नारायणने भी और बहुतसोंका नाश किया था, ऐसे महापराक्रमी ये दोनों देवता इकट्ठे होगये हैं, इसको तुम देखलो ॥ १८ ॥ महारथी श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ये दोनों वीर जो इकट्ठे हुए हैं, हमने सुना है, कि-यह दोनों नरनारायण नामवाले प्राचीन देवता हैं ॥१९॥ इन दोनोंको मनुष्यलोकमें इंद्रसहित सुर असुर भी नहीं जीतसकते हैं यह श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण और अर्जुन नर है ऐसा शास्त्रमें कहा है, यह नारायण और नर एक ही सत्त्व हैं, परन्तु योगके प्रभावसे दो भागमें बटगये हैं ॥ २० ॥ ये दोनों अपने कर्मके प्रभावसे अक्षय ध्रुवलोकोंमें रहते हैं, परन्तु युद्धके समय बार २ जहां तहां जन्म धारण

तस्मात् कर्मैव कर्त्तव्यमिति होवाच नारदः। एतद्धि सर्वमाख्यद् वृष्णिचक्रस्य वेदवित् ।२२। शंखचक्रगदाहस्तं यदा द्रक्ष्यसि केशवम्। पर्याददानं चास्त्राणि भीमधन्वानमर्जुनम् ॥ २३ ॥ सनातनौ महात्मानौ कृष्णावेकरथे स्थितौ दुर्योधनस्तदा तात स्मर्त्तासि वचनं मम ॥ २४॥ नो चेदयमभावः स्यात् कुरूणां प्रत्युपस्थितः। अर्थाच्च तात धर्माच्च तव बुद्धिरुपप्लुता ॥ २५ ॥ न चेत् गृहीष्यसे वाक्यं श्रोतासि सुबहून् हतान्। तवैव हि मतं सर्वे कुरवः पर्युपासते ॥ २६ ॥ त्रयाणामेव च मतं तत्त्वमेकोऽनुमन्यसे। रामेण चैव शप्तस्य कर्णस्य भरतर्षभ ।२७। दुर्जातेः सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च। तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च ।२८। कर्ण उवाच। नैवमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह। क्षत्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान् ॥ २९ ॥ किञ्चान्यन्मयि दुर्वृत्तं येन मां परिगर्हसे। न हि मे वृजिनं किञ्चिद्धार्त्तराष्ट्रा

क्रिया करते हैं ॥ २१ ॥ इस लिये ही नारदजीने श्रीकृष्ण और अर्जुन इन दोनोंसे कहा है कि-तुम्हे युद्धरूप कर्म अवश्य ही करना चाहिये और सब बात वेदवेत्ता नारदजीने यादवोंसे भी कही है।२२।हे तात! अर्जुन ! तू जिस समय शंख, चक्र, और गदाधारी श्रीकृष्णको और शस्त्रोंको चारों ओरसे ग्रहण करनेवाले भयंकर धनुषधारी अर्जुनको देखेगा तथा सनातन महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक साथ रथमें बैठे हुए देखेगा, उससमय मेरी बात याद आवेगी ॥२३॥२४॥हे तात! यदि तू मेरी बातको नहीं मानेगा तो जानलेना, कि-कौरवोंके संहार का समय आपहुँचा है और तेरी बुद्धि अर्थसे तथा धर्मसे भ्रष्ट होगई है ॥२५॥ यदि तू मेरे कहनेको नहीं मानेगा तो तुझे बहुतसोंका मरण सुनना पड़ेगा, क्यों कि-सब कौरव तेरी ही बातपर चलते हैं ॥२६॥ और तू तीन पुरुषोंकी बातको ही तत्त्वरूप मानता है, हे भरतश्रेष्ठ ! उनमें पहला तो परशुरामका शाप दिया हुआ अधमजाति सूतका पुत्र कर्ण है, दूसरा सुबलका पुत्र शकुनि है और तीसरा खोटी बुद्धिवाला तेरा भाई पापी दुःशासन है।२७॥२८।यह सुनकर कर्ण बोल उठा कि-हे पितामह!आप जो कुछ कहरहे हैं वह ठीक है,परन्तु आप सरीखे वृद्ध पुरुषोंको ऐसा कहना शोभा नहीं देता है क्योंकि मैं क्षत्रियके धर्मके अनुसार वर्त्ताव करता हूं और अपने धर्मसे कभी भी नहीं डिगता हूं २९. मुझमें और कौनसा दुराचरण है, कि—जिसके कारणसे आप मेरी निन्दा करते हैं और धृतराष्ट्रके पुत्रोंनेभी कहीं मेरा कुछ पातक नहीं

विदुः क्वचित् ॥ ३० ॥ नाचरं वृजिनं किंचिद् धार्त्तराष्ट्रस्य नित्यशः। अहं हि पाण्डवान् सर्वान् हनिष्यामि रणे स्थितान् ॥३१॥ प्राग्विरुद्धैः समं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः राज्ञो हि धृतराष्ट्रस्य सर्वं कार्य्यं प्रियं मया। तथा दुर्योधनस्यापि स हि राज्ये समाहितः ॥ ३२ ॥ वैशम्पायन उवाच। कर्णस्य तु वचः श्रुत्वा भीष्मः शान्तनवः पुनः। धृतराष्ट्रं महाराज सम्भाष्येदं वचोऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥ तदयं कत्थते नित्यं हन्ताहं पाण्डवानिति। नोयं कलोपि सम्पूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम् ॥३४॥ अनयो योऽयमागन्ता पुत्राणां ते दुरात्मनाम्। तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः ॥ ३५ ॥ एनमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः। अवामन्यत तान् वीरान् देवपुत्रानरिन्दमान्३६किंचाप्येते न तत् कर्म कृतपूर्वं सुदुष्करम्। तैर्यथा पाण्डवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम्। धनञ्जयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम् ॥ ३८ ॥ स हि तान् हि कुरून् सर्वानभियातो धनञ्जयः।

देखा है ॥ ३० ॥ मैं सदा दुर्योधनका जरा भी अनिष्ट नहीं करता हूँ, मैं रणमें खडे हुए सकल पाण्डवोंकोमारडालूँगा ॥ ३१ ॥ सत्पुरुष होने पर भी जो पहिले विरुद्ध होचुके हों उनके साथ संमति कैसे की जासकती है ? मुझे तो धृतराष्ट्रका और दुर्योधनका सब प्रकारसे हित करना चाहिये, दुर्योधन इस समय राजसिंहासन पर है, इसकारण उसका अधिक हित करना चाहिये ॥३२॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेय ! शन्तनुके पुत्र भीष्मजीने कर्णकी बात सुन कर धृतराष्ट्रको पुकारा और फिर यह बात कहने लगे, कि ॥३३॥ यह कर्ण जो नित्य कहा करता है, कि-मैं पाण्डवोंको मार डालूँगा, परन्तु यह तो महात्मा पाण्डवोंको एक पूरी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं है ॥३४॥ तेरे दुष्टात्मा पुत्रोंको जो यह अन्यायका फल मिलने वाला है, इस सबको तुम इस दुष्टात्मा सूतपुत्र कर्णकी ही करतूत समझना ॥ ३५ ॥ तेरे मूढ़बुद्धि पुत्र दुर्योधनने इसकेही आश्रयसे उन शत्रुनाशी वीर देवकुमारोंका अपमान किया है ॥ ३६ ॥ पहिले एकर पाण्डवने वा सब पाण्डवोंने इकट्ठे होकर जोर पराक्रम किये हैं, वैसा कठिन कर्म इस कर्णने कभी किया भी है ? ३७ विराट नगरमें अर्जुन ने पराक्रम करके कर्णके प्यारे भाईको मार डाला था, उससमय उस को देख कर इस कर्णने क्या किया था ? ॥ ३८ ॥ जिस समय सब इकट्ठे होकर लडनेको आये तब कौरवोंकेसाथ ए. इनेको अर्जुन अकेला

प्रमथ्य चाच्छिन्नवासाः क्वायं प्रोषितस्तदा ॥ ३९ ॥ गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत् सुतस्तव । क्व तदा सूतपुत्रोऽभूद् य इदानीं वृषायते ॥ ४० ॥ ननु तत्रापि भीमेन पार्थेन च महात्मना । यमाभ्यामेव संगम्य गंधर्वास्ते पराजिताः ॥ ४१ ॥ एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ । विकत्थनस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः ॥ ४२ ॥ भीष्मस्य तु वचः श्रुत्वा भारद्वाजो महामनाः । धृतराष्ट्रमुवाचेदं राजमध्येऽभिपूजयन् ॥ ४३ ॥ यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत् क्रियतां नृप । न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि ॥ ४४ ॥ पुरा युद्धात् साधु मन्ये पाण्डवैः सह संगतम् । यद्वाक्यमर्जुनेनोक्तं संजयेन निवेदितम् ॥ ४५ ॥ सर्वं तदपि जानामि करिष्यति च पाण्डवः । न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः ॥ ४६ ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यमर्थवद् द्रोणभीष्मयोः ततः स सञ्जयं राजा पर्य-

---

ही गया था और उसने हराकर इनके वस्त्र छीन लिये थे तब क्या यह कर्ण कहीं परदेशको चला गया था ? ॥३९॥ हे धृतराष्ट्र ! जब घोषयात्रामें गन्धर्व तुम्हारे पुत्रको पकड़ कर लेगये थे, उस समय यह सूतपुत्र कहाँ गया था, कि-जो अब बैलकी समान गरज रहा है ॥ ४० ॥ सत्य २ कहा जाय तो उस समय भीमसेन महात्मा अर्जुन तथा नकुल और सहदेवने मिलकर युद्धमें उन गन्धर्वोंको जीता था ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! इस बहुतसी बढ २ करने वाले कर्णका कहना सब मिथ्या है, तुम्हारा कल्याण हो, यह तो सदा धर्मका लोप ही करने वाला है ॥ ४२ ॥ भीष्मजीकी बातको सुन कर उदार मन वाले भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्यजी सब राजाओंके मध्यमें भीष्मजीकी प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहने लगे कि—॥ ४३ ॥ हे राजन् ! भरतवंशमें श्रेष्ठ भीष्मजीने जो कुछ कहा है, तुम ऐसा ही करो, तुम को अधिकतर धनके लोभियोंकी बात नहीं माननी चाहिये ॥४४॥ युद्ध करनेसे पहिले पाण्डवोंके साथ संधि करलेना ही मेरी समझमें अच्छा है, अर्जुनने जो सन्देशा कहलाया है और सञ्जयने जो बात आकर कही है, उस सबको मैं जानता हूँ और अर्जुन ऐसा ही करेगा, अर्जुन की समान धनुषधारी त्रिलोकीमें कोई नहीं है ॥४५-४६॥ फिर राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्यकी सारभरी गम्भीर बातोंका अनादर करके संजयसे पाण्डवोंका समाचार पूछने लगा जब धृतराष्ट्र ने भीष्म और द्रोणाचार्यसे अच्छी प्रकार बात चीत नहीं की तब तो

पृच्छत पाण्डवान् ॥ ४७ ॥ तदैव कुरवः सर्वे निराशा जीवितेऽभवन्। भीष्मद्रोणौ यदा राजा न सम्यगनुभाषते ॥ ४८ ॥ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि भीष्म-
द्रोणवाक्य ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । किमसौ पाण्डवो राजा धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत । श्रुत्वेह वहुलाः सेनाः प्रीत्यर्थं नः समागताः ॥ १ ॥ किमसौ चेष्टते सूत योत्स्यमानो युधिष्ठिरः । केवास्य भ्रातृपुत्राणां पश्यन्त्याज्ञेप्सवो मुखम् २ के स्विदेनं वारयन्ति युद्धाच्छाम्येति वा पुनः निकृत्या कोपितं मन्दैर्धर्मज्ञं धर्मचारिणम् ॥३॥ संजय उवाच । राज्ञो मुखमुदीक्षन्ते पञ्चालाः पांडवैः सह । युधिष्ठिरस्य भद्रन्ते स सर्वाननुशास्ति च ४ पृथग्भूताः पांडवानां पाञ्चालानां रथव्रजाः । आयांतमभिनन्दन्ति कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥५॥ नभः सूर्यमिवोद्यन्तं कौंतेयं दीप्ततेजसम् । पञ्चालाः प्रतिनन्दन्ति तेजोराशिमिवोदितम् ॥ ६ ॥ आगोपालाविपालाश्च नन्द-

---

सब कौरव भी जीवनके विषयमें निराश होगये ॥ ४८ ॥ उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ ❀ ❀ ❀

धृतराष्ट्र ने पूछा, कि—हे संजय ! हमारी प्रसन्नताके लिये यहाँ इकट्ठी हुई वहुतसी सेनाओंका समाचार सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने क्या कहा ? ॥ १ ॥ हे सूत ! युधिष्ठिर युद्ध करनेकी इच्छासे क्या २ उद्योग कर रहा है और उसके भाइयोंके पुत्रोंमेंसे कौन २ आज्ञाका पालन करनेकी इच्छासे उसके मुखकी ओरको देखा करते हैं ॥ २ ॥ तथा मूर्खोंने कपट करके जिस धर्मको जाननेवाले धर्मात्मा युधिष्ठिरको कुपित किया है उसको युद्धसे रोकनेके लिये यह बात कौन २ कहते हैं कि-युद्धसे शान्त रहो ॥ ३ ॥ संजयने कहा कि—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारा कल्याण हो, पाण्डव और पाञ्चाल राजा युधिष्ठिरके मुखकी ओरको देखा करते हैं, कि यह हमको क्या आज्ञा देते हैं ? और राजा युधिष्ठिर उन सबोंको आज्ञा दिया करते हैं ॥ ४ ॥ पाण्डव और पाञ्चाल राजाओंके रथोंके समूह अलग २ बँटगये हैं और कुंतीनन्दन युधिष्ठरको आते हुए देखकर वह अभिनन्दन किया करते हैं ॥ ५ ॥ जैसे प्रदीप्त तेजवाले सूर्यका उदय होनेपर आकाश उसको अभिनन्दन देता है तैसे ही मानो तेजके पुञ्जका उदय होता हो इस प्रकार दीखने वाले राजा युधिष्ठिरका पाञ्चाल राजे सन्मान करते हैं ॥ ६ ॥ ग्वालिये और वकरे चराने वाले तक सब

मोना युधिष्ठिरम् । पाञ्चालाः केकया मत्स्या प्रतिनन्दन्ति पांडवम् ७ ब्राह्मण्यो राजपुत्र्यश्च विशां दुहितरश्च याः । क्रीडन्त्योऽभिसमायांति पार्थं सन्नद्धमीक्षितुम् ॥ ८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । संजयाचक्ष्व येनास्मान् पांडवा अभ्ययुञ्जत । धृष्टद्युम्नस्य सैन्येन सोमकानां बलेन च ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच । गावल्गणिस्तु तत् पृष्टः सभायां कुरुसंसदि । निःश्वस्य सुभृशं दीर्घं मुहुः सञ्चिन्तयन्निव ॥ १० ॥ तत्रानिमित्ततो दैवात् सूतं कश्मलमाविशत् । तदाचचक्षे विदुरः सभायां राजसंसदि ॥ ११ ॥ सञ्जयोऽयं महाराज मूर्च्छितः पतितो भुवि । वाचं न सृजते काञ्चिद्धीनप्रज्ञोऽल्पचेतनः ॥ १२ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । अपश्यत् संजयो नूनं कुन्तीपुत्रान्महारथान् । तैरस्य पुरुषव्याघ्रैर्भृशमुद्वेजितं मनः ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच । सञ्जयश्चेतनां लब्ध्वा प्रत्याश्वस्येदमब्रवीत् धृतराष्ट्रं महाराज सभायां कुरुसंसदि ॥ १४ ॥ संजय उवाच । दृष्टवानस्मि राजेन्द्र कुन्तीपुत्रान्महारथान् । मत्स्य-

---

लोग तथा पाञ्चाल देशके राजे, केकय और मत्स्य देशके राजे भी राजा युधिष्ठिरका सन्मान करते हैं ॥ ७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों की कन्यायें भी खेलती २ युद्ध करनेके लिये उद्यत राजा युधिष्ठिरको देखनेके निमित्त उनके सामनेको दौड़ी २ जाती हैं ॥ ८ ॥ राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे सञ्जय ! ये पांडव किसकी सहायतासे हमारे साथ लड़नेको चढ़कर आरहे हैं ? धृष्टद्युम्नकी सेनाके साथ या सोमकोंकी सेनाके साथ, यह मुझे बताओ ? । ९ । वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! कौरव राजाओंकी सभामें इसप्रकार सञ्जयसे बहुत पूछा तब सञ्जय जोरसे गहरी सांस लेकर बार बार इस विषयमें विचार करता हो इसप्रकार चुप होकर बैठरहा ॥१०॥ इसप्रकार दैवयोगसे बिना कारण ही संजयको मूर्छा आगयी, यह देखकर विदुरजी राजसभाके बीचमें कहनेलगे, कि-॥ ११ ॥ हे महाराज ! यह संजय मूर्छित होकर भूमिपर गिरपड़ा है, इसकारण नहीं बोलता है और इसकी बुद्धि तथा चेतनाशक्ति घटगयी है, धृतराष्ट्रने कहा, कि-संजय को मूर्छा आगई, इससे मालूम होता है, कि-संजयने अवश्य ही कुन्तीके महारथी पुत्रोंको देखा होगा और उन पुरुषसिंहोंने संजयके चित्तको बहुत ही व्याकुल किया होगा । १३ । वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! थोड़ी देरमें संजय सावधान हुआ और फिर लंबा सांस लेकर कौरवोंकी सभामें राजा धृतराष्ट्रसे इसप्रकार कहने

राजगृहावासनिरोधेनावकर्षिभान् ॥ १५ ॥ शृणु यैर्हि महाराज पांडवा अभ्ययुञ्जत । धृष्टद्युम्नेन वीरेण युद्धे वस्तेभ्य युंजत ॥ १६ ॥ यो नैव रोषान्न भयान्न लोभान्नार्थकारणात् । न हेतुवादाद्धर्मात्मा सत्यं जह्यात् कदाचन ॥ १७ ॥ यः प्रमाणं महाराज धर्मे धर्मभृतां वरः । अजातशत्रुणा तेन पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥ १८ ॥ यस्य बाहुबले तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन । यो वै सर्वान् महीपालान् वशे चक्रे धनुर्द्धरः । यः काशीनङ्गमगधान् कलिङ्गांश्च युधाजयत् ॥ १९ ॥ तेन वो भीमसेनेन पांडवा अभ्ययुञ्जत । यस्य वीर्येण सहसा चत्वारो भुवि पांडवाः ॥२०॥ निःसृत्य जतुगेहाद्वै हिडिम्बात् पुरुषादकात् । यश्चैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ २१ ॥ याज्ञसेनीमथो यत्र सिंधुराजोपकृष्टवान् । तत्रैषामभवद् द्वीपः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥२२॥ यश्च तान् संगतान् सर्वान् पांडवान् वारणावते । दह्यतो मोचयामास तेन

लगा ॥ १४ ॥ संजय बोला, कि-हे राजेन्द्र ! मैंने कुन्तीके महारथी पुत्रोंको देखा है, वह मत्स्यराजके घर उसके अधीन रहनेसे दुर्बल हो गये हैं ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र ! पाण्डव जिन योधाओंके साथ मिले हैं, उनके नाम सुनो-युद्धमें शूर धृष्टद्युम्न उनके साथ है, उनका साथी होकर तुम्हारे साथ लड़ेगा । १६ । जो धर्मात्मा क्रोध, भय, लोभ वा धनके लिये अथवा किसी कुतर्कसे कभी सत्यको नहीं छोड़ते हैं ।१७। तथा हे महाराज !-जो धर्ममें अद्वितीय प्रमाणरूप मानेजाते हैं उन अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके साथ होकर पांडव आपके साथ लड़ने को तयार हुए हैं १८ भूमण्डलभरमें, बाहुबलमें जिसकी समान कोई है ही नहीं, जिस धनुषधारीने सब राजाओंको वशमें कर लिया है, जिसने काशीके अङ्गदेशके मगधदेशके और कलिङ्ग देशके राजाओं को युद्धमें जीत लिया है ।१९। उस भीमसेनके साथ पाण्डव इकट्ठे हुए हैं, जिस भीमके पराक्रमसे वे चारों पांडव एक साथ लाखके जलते हुए भवनमेंसे बाहर निकल सके थे, जिसने मनुष्योंको भक्षण करनेवाले हिडिम्ब राक्षससे पांडवोंकी रक्षाकी थी, वह कुन्तीपुत्र भीमसेन ही वनमें पांडवोंका अवलम्ब हुआ था ॥ २० ॥ २१ ॥ जब सिंधुराज जयद्रथ द्रौपदीको पकड़कर लेगया था तब भी कुन्तीपुत्र भीमसेन ही पाण्डवोंका आधार और रक्षक हुआ था ॥ २२ ॥ जब वारणावत नगरमें सब पाण्डव भस्म होनेको थे उस समय भी जिसने पांडवोंको आगमेंसे बचाया था, उस ही भीमसेनके साथ

यत्तेभ्य युञ्जते ॥ २३ ॥ कृष्णायाश्चरतां प्रीतिं येन क्रोधवशा हताः । प्रविश्य विषमं घोरं पर्वतं गन्धमादनम् ॥ २४ ॥ यस्य नागायुतैर्वीर्यं भुजयोः सारमर्पितम् । तेन वो भीमसेनेन पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥२५॥ कृष्णद्वितीयो विक्रम्य तुष्ट्यर्थं जातवेदसः । अजयद्यः पुरा वीरो युध्यमानं पुरन्दरम् ॥ २६ ॥ यः स साक्षान्महादेवं गिरिशं शूलपाणिनम् । तोषयामास युद्धेन देवदेवमुमापतिम् ॥ २७ ॥ यश्च सर्वान् वशे चक्रे लोकपालान् धनुर्द्धरः । तेन वो विजयेनाजौ पांडवा अभ्ययुञ्जत २८ यः प्रतीचीं दिशं चक्रे वशे म्लेच्छगणायुताम् । स तत्र नकुलो योद्धा चित्रयोधी व्यवस्थितः ॥ २९ ॥तेन वो दर्शनीयेन वीरेणातिधनुर्भृता माद्रीपुत्रेण कौरव्य पांडवा अभ्ययुंजत ॥ ३० ॥ यः काशीनङ्गमगधान् कलिङ्गांश्च युधाजयत् तेन वः सहदेवेन पांडवा अभ्ययुंजत ॥ ३१ ॥ यस्य वीर्येण सदृशाश्चत्वारो भुवि मानवाः । अश्वत्थामा धृष्टकेतू रुक्मी प्रद्युम्न एव च ॥ ३२ ॥ तेन वः सहदेवेन युद्धं राजन्महात्ययम्।

मिलकर पांडव तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ द्रौपदीके ऊपर प्रेम रखनेवाले जिस भीमसेनने भयानक और ऊंचाई वाले गन्धमादन पर्वत पर चढ़ कर क्रोधवश नामके राक्षसोंका नाश किया था ॥ २४ ॥ जिसकी भुजाओंमें दश हजार हाथियोंका बल रक्खा गया है, ऐसे भीमसेनको साथ लेकर पांडव तुम्हारे ऊपर चढ़ कर आते हैं । २५ । पहिले जिस अर्जुनने अग्निको प्रसन्न करनेके लिए श्रीकृष्णके साथ रहकर, युद्ध करते हुए इन्द्रको जीत लिया था ।२६। जिसने युद्ध करके हाथमें शूलको धारण करनेवाले देवदेव साक्षात् उमापति महादेवको प्रसन्न किया था । २७ । तथा जिस धनुषधारी ने सब लोकपालोंको अपने वशमें किया था, उस अर्जुनके साथ पांडव रणमें आपके ऊपर चढ़ाई करके आरहे हैं २८ जिसने म्लेच्छोंसे भरी हुई पूर्व दिशाको वशमें किया था और जो अनेकों प्रकारकी युद्धकलाको जानने वाला योधा है, उस दर्शनीय बड़े भारी धनुषधारी और वीर माद्रीपुत्रके साथ हे कौरव ! पांडव युद्ध करनेके लिये तयार होकर चढ़कर आरहे हैं । २९ । ३० । जिसने काशी, अङ्ग मगध और कलिङ्गदेशके राजाओंको युद्ध करके हराया था उस सहदेवके साथ तयार होकर पांडव तुम्हारे साथ लड़नेको चढ़कर आते हैं ॥३१॥ इस पृथिवीपर सहदेवकी समान पराक्रमी अश्वत्थामा, धृष्टकेतु, रुक्मी और प्रद्युम्न यह चार ही हैं, उन माद्रीके छोटे पुत्र मनुष्यों

यवीयसा नृवीरेण माद्रीनन्दिकरेण च ॥ ३३ ॥ तपश्चचार या घोरं काशिकन्या पुरा सती। भीष्मस्य वधमिच्छन्ती प्रेत्यापि भरतर्षभ ३४ पांचालस्य सुता जज्ञे दैवाच्च स पुनः पुमान्। स्त्रीपुंसोः पुरुषव्याघ्र यः स वेद गुणागुणान्। ३५। यः कलिंगान् समापेदे पांचाल्यो युद्धदुर्मदः। शिखण्डिना वः कुरवः कृतास्त्रेणाभ्ययुंजत। ३६। यं यक्षः पुरुषं चक्रे भीष्मस्य निधनेच्छया। महेष्वासेन रौद्रेण पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥ ३७ ॥ महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः। आमुक्तकवचाः शूरास्तैश्च वस्तेऽभ्ययुञ्जत ॥ ३८ ॥ यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान् सत्यविक्रमः। तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन संगरः ॥३९॥ य आसीच्छरणं काले पाण्डवानां महात्मनां। रणे तेन विराटेन भविता वः समागमः ॥ ४० ॥ यः काशिपती राजा वाराणस्यां महारथः। स तेषामभवद्योद्धा तेन वस्तेभ्ययुञ्जत ॥ ४१ ॥ शिशुभिर्दुर्जयैः संख्ये

में वीर सहदेवके साथ हे राजन्! तुम्हे महाभयंकर युद्ध करना पडेगा।३२।३३।काशीराजकी सती कन्या, जो कि मृत्युके पीछे भी भीष्म का नाश करना चाहती थी, उसने पहिले महाभयानक तपस्या करके राजा द्रुपदके यहाँ कन्यारूपसे जन्म धारण किया है और दैवयोगसे अब वह पुरुष होगई है वह पुरुषसिंह स्त्री तथा पुरुषके गुण और दोषों को जानता है३४।३५वह पांचालराजका पुत्र युद्ध करनेको कलिङ्गदेशमें गया था, हे कौरवों! उस अस्त्रविद्यामें चतुर शिखंडीके साथ मिलकर पाण्डव तुम्हारे ऊपर चढाई करते हैं ३६ भीष्मका नाश करनेकी इच्छा से यक्षने जिसको पुरुष कर दिया है उस महाधनुषधारी और भयानक शिखंडीके साथ पांडव तयार होकर तुम्हारे ऊपर चढाई करनेको हैं ३७ केकयवंशी पांच राजकुमार भाई २ हैं, वह बड़े धनुषधारी वीर हैं और शरीर पर हर समय कवच पहरे रहते हैं, पाण्डव उनके साथ इकट्ठे होकर तुम्हारे ऊपर चढाई करनेको हैं ॥ ३८ ॥ जो महाबाहु बड़ी शीघ्रतासे अस्त्र चलाने वाला धीर और सत्यपराक्रमी है उस वृष्णिवंशमें उत्पन्नहुए वीर युयुधानके साथ तुम्हें युद्ध करना पड़ेगा३९ जिसने समय पर महात्मा पाण्डवोंको अपने यहाँ आश्रय दिया था उस विराट राजाके साथ भी रणमें तुम्हारी भेट होगी ॥ ४० ॥ जो महारथी काशिराज काशीमें राज्य करता है वह भी उनका योधा बना है इस कारण पाण्डव उसको भी साथ लेकर चढाई करेंगे ४१ इनके सिवाय जिनको रणमें जीतना बड़ाही कठिन है ऐसे द्रुपद राज

द्रौपदेयैर्महात्मभिः। आशीविषसमस्पर्शैः पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४२ ॥ यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे तेनाभिमन्युना संख्ये पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥४३॥ यस्त्वेवाप्रतिमो वीर्ये धृष्टकेतुर्महायशाः। दुःसहः समरे क्रुद्धः शैशुपालिर्महारथः ॥ ४४ ॥ तेन चाभ्येचिराजेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत। अक्षौहिण्या परिवृतः पाण्डवान् योभिसंश्रितः ॥ ४५ ॥ यः संश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः। तेन वो वासुदेवेन पांडवा अभ्ययुञ्जत ॥ ४६ ॥ तथा चेदिपतेर्भ्राता शरभो भरतर्षभ। करकर्षेण सहितस्ताभ्यां वहतेभ्ययुञ्जत ॥ ४७ ॥ जारासन्धिः सहदेवो जयत्सेनश्च तावुभौ। युद्धे प्रतिरथौ वीरौ पाण्डवार्थे व्यवस्थितौ ॥४८॥ द्रुपदश्च महातेजा बलेन महता वृतः। त्यक्तात्मा पाण्डवार्थाय योत्स्यमानो व्यवस्थितः ॥४९॥ एते चान्ये च बहवः प्राच्योदीच्या महीक्षितः। शतशो यानुपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

के पुत्र विषधर सर्पोंकी समान तीक्ष्ण डङ्क मारने वाले हैं, उनको भी साथमें लेकर पांडव तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करेंगे ॥ ४२ ॥ जो वीरतामें कृष्णकी समान और मनका दमन करनेमें युधिष्ठिरकी समान है उस अभिमन्युको भी साथमें लेकर पाण्डव तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले हैं ॥४३॥ जो शिशुपालका पुत्र महारथी धृष्टकेतु है वह बड़ा पराक्रमी बड़ा यशस्वी, युद्धमें असह्य तथा बड़ा क्रोधी है ॥४४॥ उस चेदिदेश के राजा धृष्टकेतुको भी साथमें लेकर पाण्डव तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करेंगे, वह एक अक्षौहिणी सेनाको साथमें लिये हुए पाण्डवोंसे आकर मिला है ॥ ४५ ॥ जिस प्रकार देवताओंका आश्रय इन्द्र होता है तैसे ही जो पाण्डवोंके आश्रय हैं उन वासुदेव श्रीकृष्णको साथमें लेकर पाण्डव तुम्हारे ऊपर चढ़ाई कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ हे भरतसत्तम ! चेदिदेशके राजाका भाई शरभ और करकर्ष हैं, इन दोनोंको भी साथ में लेकर पांडव तुम्हारे ऊपर चढ़ाई कर रहे हैं ॥ ४७ ॥ जरासन्धका पुत्र सहदेव और जयत्सेन ये दोनों वीर पुरुष भी पाण्डवोंके लिये उद्यत हुए हैं ॥ ४८ ॥ तथा महातेजस्वी राजा द्रुपद भी बड़ी भारी सेनाको साथ लेकर पांडवोंके लिये लड़नेकी इच्छासे प्राण तक देने को तयार होगया है ॥४९॥ ये राजे तथा पूर्व और उत्तरके अन्य सैकड़ों राजे पांडवोंके पास आये हैं और धर्मराज उनका आश्रय लेकर युद्ध के लिये प्रबन्ध कर रहे हैं ॥ ५० ॥ पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

धृतराष्ट्र उवाच। सर्व एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्त्तिताः। एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः ॥ १ ॥ भीमसेनाद्धि मे भूयो भयं सञ्जायते महत्। क्रुद्धादमर्षणात्तात व्याघ्रादिव महारुरोः ॥ २ ॥ जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन्। भीतो वृकोदरात्तात सिंहात्पशुरिवापरः ॥ ३ ॥ न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः। सैन्येस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद्युधि ॥ ४ ॥ अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पाण्डवः। अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः ॥५॥ महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः। मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति॥६॥ उरुग्राहगृहीतानां गदां बिभ्रद् वृकोदरः। कुरूणामृषभो युद्धे दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ७ ॥ अष्टास्त्रिमायसीं घोरां गदां काञ्चनभूषणाम्। मनसाहं प्रपश्यामि ब्रह्मदण्डमिवोद्यतम् ॥ ८ ॥ यथा मृगाणां यूथेषु सिंहो जातबलश्चरेत्। मामकेषु तथा भीमो बलेषु विचरिष्यति९ सर्वेषां मम पुत्राणां स एकः क्रूरविक्रमः। बह्वाशी विप्रतीपश्च बाल्येपि

धृतराष्ट्र सञ्जयसे कहने लगे, कि तूने जिन राजाओंके नाम लिये हैं ये सब बड़े उत्साहवाले हैं, परन्तु यह सब राजे एक ओर तथा अकेला भीमसेन एक ओर हो तो बराबर समझो ॥१॥ हे तात! जैसे असहनशील क्रोधी व्याघ्रसे बड़ा भारी मृग डरता है, ऐसे ही क्रोध में भरे हुए असहनशील भीमसेनसे मुझे बड़ा भय लगता है । २ । हे तात! साधारण पशु जैसे सिंहसे डरकर रात्रियोंमें जागा करता है तैसे ही मैंभी भीमसेनसे डरकर रातभर गरम२ श्वासें लेकर जागता रहता हूँ ॥ ३ ॥ मैं अपनी सेनामें किसीको भी भीमसेनकी समान नहीं देखता, कि-जो रणमें उससे टक्कर लेसके, क्योंकि-महाभुज भीमसेन इन्द्रकी समान तेजस्वी है ॥ ४ ॥ कुन्तीनन्दन भीमसेन क्रोधी, दृढ़ वैर रखनेवाला, सच्चा हास्य करनेवाला, उन्मादी तिरछी आँख से देखनेवाला बड़ा गरजनेवाला, बड़े वेगवाला, युद्धमें बड़ा उत्साही, महाबाहु और महाबली है, निःसन्देह वह युद्धमें मेरे निर्बल पुत्रोंका नाश कर डालेगा ॥ ५—६ ॥ बड़ी हठ करने वाले कौरवोंके मध्यमें श्रेष्ठ भीमसेन, हाथमें गदा लेकर दण्डधारी कालकी समान रणमें घमसान मचा देगा ॥ ७ ॥ मैं अपने मनसे भीमसेनकी सुवर्णसे मँढी हुई लोहेकी अटपैलू भयानक गदाको उठे हुए ब्रह्मदण्डकी समान देखता हूँ ॥ ८ ॥ जैसे सिंह मृगोंके झुण्डोंमें बलवान् होकर घूमता है तैसे ही भीमसेन भी मेरी सेनामें फिरेगा९मेरे सब पुत्रोंमें अकेला वह

रमसः सदा ॥ १० ॥ उद्वेपते मे हृदयं ये मे दुर्योधनादयः । बाल्येऽपि तेन युध्यंतो वारणेनेव मर्दिताः ॥ ११ ॥ तस्य वीर्येण संक्लिष्टा नित्यमेव सुता मम । स एव हेतुर्भेदस्य भीमो भीमपराक्रमः । १२ । ग्रसमानमनीकानि नरवारणवाजिनाम् । पश्यामीवाग्रतो भीमं क्रोधमूर्छितमाहवे ॥१३॥ अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे । महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद्भीममाहवे ॥ १४ ॥ संजयाचक्ष्व मे शूरं भीमसेनममर्षणम् । अतिलाभन्तु मन्येऽहं यत्तेन रिपुघातिना ॥ १५ ॥ तदैव न हताः सर्वे पुत्रा मम मनस्विना । येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च पुरा हताः ॥ १६ ॥ कथं तस्य रणे वेगं मानुषः प्रसहिष्यति । न स जातु वशे तस्थौ मम बाल्येऽपि संजय ॥ १७ ॥ किं पुनर्मम दुष्पुत्रैः क्लिष्टः सम्प्रति पाण्डवः । निष्ठुरो रोषणोऽत्यर्थं भज्येतापि न संनमेत्। तिर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद् वृकोदरः॥१८॥ शूरस्तथाप्रतिबलो

ही क्रूरपराक्रमी,अधिक भोजन करनेवाला,वैरभाव रखने वाला और बालकपनसे ही सदा वेगमें भरा रहता है१०मेरा हृदय उसके कारण से कांपा जाता है, मेरे जो पुत्र दुर्योधन आदि हैं वे बालकपनमें भी जब उसके साथ लड़ते थे तो भीमसेन हाथीकी समान उनको कुचल डालता था ॥ ११॥ मेरे पुत्र सदा ही उसके पराक्रमसे क्लेश पाते थे, वह भयानक पराक्रम वाला-भीमसेन ही कौरव पांडवोंमें भेद पड़ने का कारण है ॥ १२ ॥ भीमसेन जब रणमें क्रोधके वशमें होगा उस समय वह मनुष्योंका, हाथियोंका और घोड़ोंका भी नाश करडालेगा यह बात मैं पहिलेसे ही देख रहा हूँ ॥ १३ ॥ वह अस्त्रविद्यामें द्रोणाचार्य और अर्जुनकी समान है, वेगमें वायुकी समान क्रोधमें शिवकी समान है ॥१४॥ हे संजय ! तू मुझे क्रोधी शूर भीमसेनका समाचार सुना, जिस शत्रुघाती भीमसेनने पहिले भयानक बलवाले यक्ष और राक्षसोंको मार डाला था, उस उदार भीमसेनने उस समय ही मेरे सब पुत्रोंको नहीं मारा यह मैं बड़ा भारी लाभ समझता हूँ १५॥१६ हे संजय ; उस महाबली भीमसेनके वेगको रणमें कौन मनुष्य सह सकता है ? वह तो बालकपनमें भी कभी मेरे वशमें नहीं रहा ॥१७॥ फिर इस समय तो कहना ही क्या जाय,जब कि-मेरे पुत्रोंने उस पांडुकुमारको महाक्लेश दे रक्खा है ? वह क्रूर और अत्यन्त क्रोधी होने के कारण चाहे हानि भले ही उठा जाय, परन्तु नमने वाला नहीं है, वह तिरछी आंखसे देखा करता है और उसकी त्योरी सदा क्रोधसे

गौरस्ताल इवोन्नतः । प्रमाणतो भीमसेनः प्रादेशेनाधिकोऽर्जुनात् १९ जवेन वाजिनोऽत्येति बलेनात्येति कुञ्जरान् ॥ अव्यक्तजल्पी मध्वक्षो मध्यमः पाण्डवो बली ॥ २० ॥ इति बाल्ये श्रुतः पूर्वं मया व्यासमुखात्पुरा । रूपतो वीर्यतश्चैव याथातथ्येन पाण्डवः ॥ २१ ॥ आयसेन स दण्डेन रथान्नागान्नरान्हयान् । हनिष्यति रणे क्रुद्धो रौद्रः क्रूर-पराक्रमः ॥२२॥ अमर्षी नित्यसंरब्धो भीमः प्रहरतां वरः । मया तात प्रतीपानि कुर्वन् पूर्वं विमानितः ॥ २३ ॥ निष्कर्णामायसीं स्थूलां सुपार्श्वां काञ्चनीं गदाम् । शतघ्नीं शतनिर्ह्रादां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥ २४ ॥ अपारमप्लवागाधं समुद्रं शरवेधनम् । भीमसेनमयं दुर्गं तात मन्दास्तितीर्षवः ॥ २५ ॥ क्रोशतो मे न शृण्वन्ति बालाः पण्डितमानिनः । विषमं न हि मन्यन्ते प्रपातं मधुदर्शिनः ॥ २६ ॥

चढ़ी ही रहती है, ऐसा भीमसेन कैसे शान्त होय ? ॥१८॥ वह बड़ा शूर है, उसके सा बली कोई है ही नहीं, शरीरमें गौर वर्ण, ताड़की समान ऊँचा और अर्जुनसे भी लगभग दश अंगुल ऊँचा है ॥ १९॥ उसका वेग तो ऐसा है कि-घोड़े भी उससे अधिक नहीं दौड़ सकते और बलमें हाथी भी उसको नहीं पासकते, वह बातको मन ही मन में घोटा करता है स्पष्ट नहीं कहता, उसकी आँखें हर समय लाल २ रहती हैं वह पाण्डुका बिचला पुत्र बड़ा ही बली है ॥२०॥ इसप्रकार मैं व्यासजीके मुखसे पहिले बालकपनमें ही भीमके रूप और पराक्रम को यथार्थरूपसे सुन चुका हूँ ॥ २१ ॥ भयंकर और क्रूरपराक्रमी वह भीमसेन जब क्रोधके आवेशमें आवेगा तब लोहेकी गदासे रणभूमि में रथ हाथी मनुष्य और घोड़ोंको कुचल डालेगा ॥ २२ ॥ हे संजय! क्रोधी नित्य आवेशमें रहनेवालों और योधाओंमें श्रेष्ठ भीमसेन,पहिले मेरे कहनेके विरुद्ध काम किया करता था इसकारण मैं उसका अप-मान करता था ॥ २३ ॥ भीमसेनकी सीधी चारों ओरसे मोटी,दोनों ओरसे बड़ी शोभायमान सैंकड़ोंका संहार करनेवाली, सोनेके पत्रों से जड़ी हुई, सैंकड़ों प्रकारके शब्द, करनेवाली लोहेकी गदाको मेरे पुत्र कैसे सह सकेंगे ॥ २४ ॥ हे संजय ! भीमसेनरूपी समुद्रका ओर छोर नहीं है, न उससे पार लगानेवाली कोई नौका ही है,वह गंभीर बाणकी समान वेगवाला और दुस्तर है उसको मेरे निर्बल पुत्र तरना (जीतना) चाहते हैं ॥ २५ ॥ मैं पुकारता रहता हूं तो भी पण्डित बननेवाले मेरे मूर्ख पुत्र मेरी एक बात भी नहीं सुनते, पहाड़के ऊँचे

संयुगं ये गमिष्यन्ति नररूपेण मृत्युना। नियतं चोदिता धात्रा सिंहेनेव महामृगाः ॥ २७ ॥ शैक्यां तात चतुष्किष्कुं षडस्रिममितौजसम्। प्रहिता दुःखसंस्पर्शां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः ॥ २८ ॥ गदां भ्रामयतस्तस्य भिन्दतो हस्तिमस्तकान्। सृक्किणी लेलिहानस्य बाष्पमुत्सृजतो मुहुः ॥ २९ ॥ उद्दिश्य नागान् पततः कुर्वतो भैरवान् रवान्। प्रतीपं पततो मत्तान् कुञ्जरान् प्रति गर्जतः ॥ ३० ॥ विगाह्य रथमार्गेषु वरानुद्दिश्य निघ्नतः। अग्नेः प्रज्वलितस्येव अपि मुच्येत मे प्रजाः ॥ ३१ ॥ वीथीं कुर्वन् महाबाहुर्द्रावयन्मम वाहिनीम्। नृत्यन्निव गदापाणिर्युगान्तं दर्शयिष्यति ॥ ३२ ॥ प्रभिन्न इव मातङ्गः प्रभञ्जन् पुष्पितान्द्रुमान्। प्रवेक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मे वृकोदरः ॥ ३३ ॥ कुर्वन् रथान्विपुरुषान् विसारथिहयध्वजान्। आरुजन्पुरुषव्याघ्रो

टीले पर मधु (शहद) को देख कर उसके लिए लालचमें पड़े हुए मनुष्य नीचे गिराने पर दुःखदायी भयंकर भागकी ओरको ध्यान नहीं देते हैं ॥ २६ ॥ विधाताकी प्रेरणासे जैसे बड़े २ मृगादि पशु सिंहके सामने लड़नेको जायँ तैसे ही मेरे पुत्र भी निःसन्देह विधाता की प्रेरणासे मनुष्यरूपधारी मृत्युसे लड़नेको तयार हुए हैं ॥ २७ ॥ हे तात ! गिरते क्षण ही भूमिमें घुस जानेके भयसे छींकेमें रक्खी हुई, चार चक्कर और छः आरों वाली अपारशक्तिमयी तथा दुःख दायक प्रहार करनेवाली भीमकी गदाको मेरे पुत्र कैसे सह सकेंगे २८ जब भीमसेन रणभूमिमें गदा घुमाने लगेगा हाथियोंके मस्तक फोड़ने लगेगा, बार २ जाबड़ोंको चाटने लगेगा, बारम्बार आँसुओंको बहावेगा, हाथियोंकी ओरको ताक२ कर दौड़ेगा,भयंकर गर्जनायें करेगा सामनेको आते हुए मतवाले हाथियोंकी ओरको दहाड़ेगा, रथियोंके समूहमें घुसकर उत्तम रथियोंका संहार करेगा और धकधकाते हुए अग्निकी समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठेगा उस समय उसके झपाटे मेंसे मेरे पुत्र कैसे छूट सकेंगे ? ॥ २९-३१ ॥ महाबाहु भीमसेन हाथ में गदा लेकर मेरी सेनामें मार्ग करावेगा, मेरी सेनाको भगावेगा तथा नाच नाच कर मेरी सेनाको प्रलयका समय दिखा देगा ॥३२॥ जैसे मद टपकाने वाला हाथी पुष्पवाले वृक्षोंको तोड़ता हुआ वनमें प्रवेश करता है इसी प्रकार भीमसेन भी रणमें योधाओंका संहार करता हुआ मेरे पुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करेगा ॥३३॥ पुरुषसिंह भीमसेन, रथोंका, सारथियोंका, घोड़ोंका और घुड़सवारोंका भी संहार

रथिनः सादिनस्तथा ॥ ३४॥ गङ्गावेग इवानूपांस्तीरजान् विविधान् द्रुमान्। प्रभंक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मम संजय ॥ ३५ ॥ दिशो नूनं गमिष्यन्ति भीमसेनभयार्दिताः। मम पुत्राश्च भृत्याश्च राजानश्चैव सञ्जय ॥ ३६ ॥ येन राजा महावीर्यः प्रविश्यान्तःपुरं पुरा। वासुदेवसहायेन जरासन्धो निपातितः ॥ ३७ ॥ कृत्स्नेयं पृथिवी देवी जरासन्धेन धीमता। मागधेन्द्रेण बलिना वशे कृत्वा प्रतापिता ॥ ३८॥ भीष्मप्रतापात्कुरवो न येमांधकवृष्णयः। यन्न तस्य वशे जग्मुः केवलं दैवमेव तत् ॥ ३९ ॥ स गत्वा पांडुपुत्रेण तरसा बाहुशालिना। अनायुधेन वीरेण निहतः किं ततोधिकम् ॥४०॥ दीर्घकालसमासक्तं विषमाशीविषो यथा स मोक्ष्यति रणे तेजः पुत्रेषु मम संजय ॥४१॥महेन्द्र इव वज्रेण दानवान्देवसत्तमः। भीमसेनो गदापाणिः सूदयिष्यति मे सुतान् ॥ ४२ ॥ अविषह्यमनावार्यं तीव्रवेगपराक्रमम्। पश्यामीवाति-

---

करेगा ॥ ३४ ॥ हे संजय! जैसे गंगाका वेग जलकी भूमिमें और किनारे पर उगे हुए नाना प्रकारके वृक्षोंका नाश कर देता है तैसे ही भीमसेन रणमें खड़ी हुई मेरे पुत्रोंकी सेनाका संहार करेगा ३५ हे संजय! वास्तवमें मेरे पुत्र, सेवक और राजे भीमसेनके भयसे पीडित होकर जिधर तिधरको भागजायँगे ॥ ३६ ॥ जो जरासन्ध महाबली, बुद्धिमान् और मगधदेशका महाराजा था जिसने सब पृथ्वीको वशमें करके अपने प्रतापसे छालिया था उस महापराक्रमी राजाके अन्तःपुरमें घुसकर भीमसेनने श्रीकृष्णकी सहायतासे उस को मारडाला था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भीष्मजीके प्रतापसे ही कौरव उस जरासन्धके हाथमें पडनेसे बचे रहे और अन्धक वृष्णिकुलके योधा तो नीतिसे हीउसके वशमें नहीं हुए थे इसमें केवल भाग्य ही कारण था ॥ ३९ ॥ ऐसे महाबली जरासन्धको वीर और भुजबल वाले भीमसेनने विना शस्त्र उठाये ही उसके सामने जाकर मार डाला इससे अधिक भीमसेनके बलका और क्या दृष्टान्त दूँ? ॥ ४० ॥ जैसे विषधर सांप बहुत दिनोंसे भीतर भर कर धरे हुए विषको बाहर ओक देता है, तैसे ही हे संजय! भीमसेन भी बहुत दिनोंसे इकट्ठे होते हुए तेजको रणमें मेरे पुत्रोंके ऊपर छोड़ेगा॥४१॥जैसे देवताओंमें श्रेष्ठ राजा इन्द्र, वज्रसे दानवोंका संहार करता है तैसे ही भीमसेन भी गदासे मेरे पुत्रोंका नाश करेगा ॥ ४२ ॥ मैं देखता हूँ, कि-जब भीमसेन चढ़ कर आवेगा तब उसको न कोई सह सकेगा, न कोई

ताम्राक्षमापतन्तं वृकोदरम् ४३ अगदस्याप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः
बाहुभ्यां युध्यमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् ॥ ४४ ॥ भीष्मो द्रोणश्च
विप्रोऽयं कृपः शारद्वतस्तथा। जानंत्येते यथैवाहुर्वीर्यज्ञास्तस्य धीमतः ४५
आर्यवृत्तन्तु जानन्तः संगरान्तं विधित्सवः । सेनामुखेषु स्थास्यंति
मामकानां नरर्षभाः । ४६ । बलीयः सर्वतो दिष्टं पुरुषस्य विशेषतः ।
पश्यन्नपि जयं तेषां न नियच्छामि यत् सुतान् ॥४७॥ ते पुराणं महे-
ष्वासा मार्गमैंद्रं समास्थिताः। त्यक्ष्यन्ति तुमुले प्राणान् रक्षन्तः पार्थिवं
यशः ॥ ४८ ॥ यथैषां मामकास्तात तथैषां पाण्डवा अपि । पौत्रा
भीष्मस्य शिष्याश्च द्रोणस्य च कृपस्य च॥४९॥ये त्वस्मदाश्रयं किञ्चि-
द्दत्तमिष्टं च सञ्जय । तस्यापचितिमार्यत्वात्कर्त्तारः स्थविरास्त्रयः ५०
आददानस्य शस्त्रं हि क्षत्रधर्मं परीप्सतः। निधनं क्षत्रियस्याजौ वरमे-
वाहुरुत्तमम् ॥ ५१ ॥ स वै शोचामि सर्वान्वै ये युयुत्संति पाण्डवैः ।

रोक सकेगा, क्योंकि-वह बड़े तीव्र वेगवाला, महापराक्रमी और अति
लाल २ आँखों वाला है ॥४३॥ भीमसेन गदा, धनुष, रथ और कवच
के बिना केवल दोनों भुजाओंसे ही लड़ने लगेगा तो भी कौनसा वीर
पुरुष उसके सामनें खड़ा रह सकेगा ? ॥ ४४ ॥ बुद्धिमान् भीमसेनके
शरीरके बलको जैसे मैं जानता हूँ, तैसेही यह भीष्म द्रोण और शर-
द्वान्के पुत्र कृपाचार्य भी जानते हैं॥४५॥ तो भी श्रेष्ठ पुरुषोंके सदाचार
को जानने वाले यह महापुरुष रणभूमिमें अपना प्राणान्त होनें तक
मेरे पुत्रोंकी सेनाके मुहाने पर खड़े रहेंगे ॥ ४६ ॥ पुरुषका भाग्य सब
से अधिक बलवान् है, मैं जानता हूँ, कि—पाण्डवोंकी विजय होगी
तो भी मैं अपने पुत्रोंको नहीं रोकता हूँ ॥ ४७ ॥ भीष्म आदि बड़े २
धनुषधारी पुरुष इन्द्रके प्रकट किये हुए प्राचीन युद्धमार्गका आश्रय
लेकर घोर रणमें लड़ते हुए अपने प्राणका नाश करके भी क्षत्रियके
यशको प्राप्त करेंगे ॥ ४८ ॥ हे सञ्जय ! मेरे पुत्र जैसे भीष्मके पोते
और द्रोणाचार्य्य कृपाचार्यके शिष्य हैं तैसे ही पाण्डव भी उनके पोते
और शिष्य हैं । ४९ ॥ तो भी हे सञ्जय ! इनको हमारी ओरसे जो
उत्तम वस्तुएँ मिली हैं, उनका बदला बड़प्पनके कारण ये तीनों बृद्ध
पुरुष अवश्य ही चुकावेंगे ॥ ५० ॥ क्षत्रियधर्मकी रक्षा करना चाहनें
वाले शस्त्रधारी क्षत्रियका रणमें मरण ही उत्तम माना जाता है॥५१॥मैं
तो उन सबोंका ही शोक करता हूँ,जो कि-पाण्डवोंके साथ युद्ध करने
को तयार हुए हैं, विदुरने पहिले ही दुःख बताकर जो कहा था, वही

विक्रुष्टं विदुरेणादौ ततस्तद्भयमागतम् ॥ ५२ ॥ न तु मन्ये विघाताय ज्ञानं दुःखस्य सञ्जय । भवत्यतिबलं ह्येतज्ज्ञानस्याप्युपघातकम् ५३ ऋषयो ह्यपि निर्मुक्ताः पश्यंतो लोकसंग्रहान्। सुखैर्भवन्ति सुखिनस्तथा दुःखेन दुःखिताः ॥ ५४ ॥ किं पुनर्मोहमासक्तस्तत्र तत्र सहस्रधा। पुत्रेषु राज्यदारेषु पौत्रेष्वपि च बन्धुषु ॥ ५५ ॥ संशये तु महत्यस्मिन् किं नु मे क्षममुत्तरम् । विनाशं ह्येव पश्यामि कुरूणामनुचिंतयन् ५६ द्यूतप्रमुखमाभाति कुरूणां व्यसनं महत् । मंदेनैश्वर्यकामेन लोभात् पापमिदं कृतम् ॥ ५७ ॥ मन्ये पर्यायधर्मोऽयं कालस्यात्यन्तगामिनः । चक्रे प्रधिरिवासक्तो नास्य शक्यं पलायितुम् ॥ ५८ ॥ किन्नु कुर्यां कथं कुर्यां क नु गच्छामि सञ्जय । एते नश्यंति कुरवो मन्दाः कालवशं गताः ॥ ५९ ॥ अवशोऽहं तदा तात पुत्राणां निहते शते । श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत् ॥ ६० ॥ यथा निदाघे ज्वलनः

भय अब सामने आगया ॥ ५२ ॥ हे संजय ! दुःखका नाश करनेके लिये ज्ञान लाभदायक होता है, इस बातको तो मैं मानता ही नहीं हूँ, परन्तु यह आने वाला दुःख तो ज्ञानसे मिटे, यह बात दूर रही उलटा ज्ञानका भी नाश करदेगा ॥५३॥ प्रजाको धर्ममें चलानेके लिये धर्माचरण करने वाले जीवन्मुक्त ऋषि भी सुखसे सुखी और दुःख से दुःखी होते हैं ॥ ५४ ॥ फिर इस संसारमें जो पुत्रोंपर, रानियोंपर, पोतों पर और संबन्धियों पर सहस्रों प्रकारसे मोहासक्त होरहे हों उनको दुःख हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? यह बड़ा सन्देह-कारक अवसर आपड़ने पर मुझे क्या उपाय करना चाहिये, इसका विचार करता हूँ तो मैं कौरवोंका नाश ही होता देखता हूँ ५५-५६ कौरवोंके ऊपर जो यह बड़ा भारी दुःख आकर पड़ा है इसका मुख्य कारण जुआ ही प्रतीत होता है, मैंने मूर्ख बन ऐश्वर्य पानेकी इच्छासे लोभमें पड़ कर यह पापकर्म किया है ॥ ५७ ॥ परन्तु अब मुझे मालूम होता है कि-बड़े वेगसे चलनेवाले कालका स्वभाव बड़ा ही उलटा है, जैसे धार (हाल) पहियेमें चिपटी होती है तैसे ही मैं भी काल-चक्रके साथ चिपट गया हूं, अब उसमेंसे छूटनेकी मुझमें शक्ति नहीं है ॥५८॥ हे संजय ! मैं क्या करूँ ! कैसे करूँ ! कहाँ जाऊं ! ये मंद-बुद्धि कौरव कालके वशमें होगए हैं और नष्ट होनेके लिये तयार हो रहे हैं५९हे तात ! जब मेरे सौ पुत्र मरजायँगे और मैं उनकी स्त्रियोंके विलापको सुनूँगा, उस समय परवश हुआ मैं कैसे मरूंगा ? ॥६०॥

समिद्धो दहेत्कक्षं वायुना चोद्यमानः । गदाहस्तः पाण्डवो वै तथैव हन्ता मदीयान् सहितोऽर्जुनेन ॥ ६१ ॥

इतिश्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्य एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यस्य वै नानृता वाचः कदाचिदनुशुश्रुम । त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद्योद्धा यस्य धनञ्जयः १ तस्यैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः । अनिशं चिंतयानोऽपि यः प्रतीयाद्रथेन तम् २ अस्यतः कर्णिनालीकान् मार्गणान् हृदयच्छिदः । प्रत्येता न समः कश्चिद्युधि गाण्डीवधन्वनः ॥३॥ द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि वीरौ नरर्षभौ । कृतास्त्रौ बलिनां श्रेष्ठौ समरेष्वपराजितौ ॥ ४ ॥ महान् स्यात् संशयो लोके न त्वस्ति विजयो मम । घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः ॥५॥ समर्थो बलवान् पार्थो दृढधन्वा जितक्लमः । भवेत् सुतुमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजयः ॥ ६ ॥ सर्वे ह्यस्त्रविदः शूराः सर्वे

गरमियोंमें पवनसे बढ़ा हुआ अग्नि जैसे घासके ढेरको जलाकर भस्म करदेता है,तैसे ही भीमसेन भी हाथमें गदा लेकर अर्जुनकी सहायता से मेरे सब पुत्रोंको मारडालेगा॥६१॥इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ५१

राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि मैंने किसी दिन भी जिसकी मिथ्या बात नहीं सुनी है और जिसका लड़वैया अर्जुन है उस धर्मराजको त्रिलोकीका राज्य मिल जाना सम्भव है ॥ १ ॥ मैं हरसमय विचार किया करता हूँ, तो भी ऐसे किसी पुरुषको नहीं देखता, कि-जो रथमें बैठ कर रणमें गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनके सामने लड़नेको तत्पर होय॥२॥छातीको फाड़ डालने वाले कर्णी और नालीक नामके बाणोंको छोड़ने वाले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनकी समान कोई भी नहीं दीखता, कि—जो रणमें उसके सामने लड़नेको जाय ॥ ३ ॥ मनुष्योंमें श्रेष्ठ,अस्त्रविद्यामें चतुर,बलवानोंमें श्रेष्ठ और युद्धमें किसीसे जीते न जानेवाले वीर द्रोणाचार्य और कर्ण कदाचित् अर्जुनके साथ युद्ध करनेको आगे बढ़े तो भी जगत्में तो अर्जुनको जीतनेके विषय में सन्देह ही रहेगा और मेरी विजय तो होगी नहीं, क्योंकि--कर्ण भीम आदिके ऊपर दयालु और चूक जानेवाला है, इसकारण अवसर पर अपनी विद्याको भूल जाता है और द्रोणाचार्य बूढ़े तथा पाण्डवोंके गुरु हैं ॥ ४।५ ॥ उधर अर्जुन समर्थ, बलवान्, दृढ धनुषधारी और सकल संकटोंको जीतनेवाला है, महाघोर युद्ध होगा तो

ज्ञाता महद्यशः अपि सर्वामरैश्वर्यं त्यजेयुर्न पुनर्जयम् ॥ ७ ॥ वधे नूनं भवेच्छान्तिस्तयोर्वा फाल्गुनस्य च । न तु हन्तार्जुनस्यास्ति जेता चास्य न विद्यते॥८॥ मन्युस्तस्य कथं शाम्येन्मन्दान् प्रति य उत्थितः। अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च ॥९॥ एकान्तविजयस्त्वेव श्रूयते फाल्गुनस्य ह । त्रयस्त्रिंशत् समाहूय खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ॥ १० ॥ जिगाय च सुरान् सर्वान्नास्य विद्मः पराजयम् । यस्य यन्ता हृषीकेशः शीलवृत्तसमो युधि ॥ ११ ॥ ध्रुवस्तस्य जयस्तात यथेन्द्रस्य जयस्तथा । कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गाण्डिवं धनुः १२ युगपत् त्रीणि तेजांसि समेतान्यनुशुश्रुम । नैवास्ति नो धनुस्तादृक् न योद्धा न च सारथिः ॥ १३ ॥ तच्च मन्दा न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः । शेषयेदशनिर्दीप्तो विपतन्मूर्ध्नि संजय ॥ १४ ॥ न तु शेषं

भी पाण्डवोंकी सब प्रकारसे विजय ही होगी ॥ ६ ॥ सब पाण्डव अस्त्रविद्याके ज्ञाता, शूर और बड़ा भारी यश पाये हुए हैं, वह अवसर पर देवताओंके ऐश्वर्यको भी त्याग सकते हैं, परन्तु विजयको नहीं छोड़ सकते ॥७॥ यदि द्रोणाचार्य और कर्ण मारे जायँ तो लड़ने के लिये ऊधम मचाने वाले मेरे पुत्र शान्त होजायँ और यदि अर्जुन मारा जाय तो पाण्डव शान्त होजायँ, परन्तु जो अर्जुनको मार सके ऐसा तो मैं किसीको देखता ही नहीं ॥ ८ ॥ मेरे मूर्ख पुत्रोंके सामने लड़नेको तयार हुए अर्जुनका कोप कैसे शान्त होय ? और भी बहुतसे लोग अस्त्रविद्या जानते हैं, परन्तु वह दूसरोंसे हार जाते हैं और कभी संयोगवश ही जीत जाते हैं ॥९ ॥ परन्तु उन सबमें अर्जुन का तो विजय पाना ही सुननेमें आता है, तैंतीस वर्ष हुए अर्जुनने अग्निको खाण्डववन खिलाकर (जलवा कर) तृप्त किया था ॥१०॥ उस समय इसने सब देवताओंको भी हरा दिया था, परन्तु अर्जुन कहीं हारा हो यह मैंने नहीं सुना क्योंकि—युद्धमें श्रेष्ठ स्वभाव और आचरण वाले श्रीकृष्ण उसके सारथी बनते हैं ॥ ११ ॥ हे संजय ! इन्द्रकी समान अर्जुनकी तो अवश्य ही विजय होगी, क्योंकि—दो कृष्ण (अर्जुन और श्रीकृष्ण) सावधान होकर एक रथमें बैठते हैं और अर्जुनका गाण्डीव धनुष रोदा चढा तयार ही रहता है ॥१२॥ इस प्रकार हम एक ही समयमें ही तीनों तेजोंको इकट्ठे हुए सुनते हैं परन्तु हमारे पास न तैसा धनुष है, न तैसा योधा है और न तैसा सारथी ही है ॥ १३ ॥ हे संजय ! मेरे अज्ञानी पुत्र दुर्योधनके वशमें

शरास्तात कुर्युरस्ताः किरीटिना। अपि चास्यन्निवाभाति निघ्नन्निव धनञ्जयः ॥ १५ ॥ उद्धरन्निव कायेभ्यः शिरांसि शरवृष्टिभिः । अपि बाणमयं तेजः प्रदीप्तमिव सर्वतः॥१६॥ गाण्डीवोत्थं दहेताजौ पुत्राणां मम वाहिनीम् । अपि सा रथघोषेण भयार्त्ता सव्यसाचिनः ॥ १७ ॥ वित्रस्ता बहुधा सेना भारती प्रतिभाति मे । यथा कक्षं महानग्निः प्रदहेत् सर्वतश्चरन् । महार्चिरनिलोद्धूतस्तद्वद्धक्ष्यति मामकान् ॥१८॥ यदोद्वमन्निशितान् बाणसंघांस्तानाततायी समरे किरीटी। सृष्टोऽन्तकः सर्वहरो विधात्रा यथा भवेत्तद्वदवारणीयः ॥ १९ ॥ यदा ह्यभीक्ष्णं सुबहून् प्रकारान् श्रोतास्मि तानावसथे कुरूणाम् । तेषां समन्ताच्च तथा रणाग्रे क्षयः किलायं भरतानुपैति ॥ २२ ॥

होरहे हैं, इसीसे यह नहीं जानते, कि-शिर पर दहकता हुआ बम आपड़े तो कदाचित् उससे बचा जासकता है, परन्तु अर्जुनके हाथमें पहुँचने पर कभी नहीं बच सकेंगे ॥ १४ ॥ हे तात ! अर्जुनके छोड़े हुए बाण जरासा भाग भी शेष नहीं छोड़ेंगे, किन्तु जड़मूलसे नष्ट कर डालेंगे, मुझे तो ऐसा दीखता है, कि-मानो अर्जुन बाण छोड़कर मेरे पुत्रोंका नाश कर रहा है ॥ १५ ॥ और मानों बाणोंकी वर्षा करके शरीरों परसे मस्तकोंको काटरकर गिरा रहा है, मैं ऐसा देख रहा हूँ, और यह भी दीखता है, कि-गाण्डीव धनुषमेंसे निकला हुआ बाण-रूप तेज चारों ओर चमचमाहटके साथ फैल गया है, यह तेज रण-भूमिमें अवश्य ही मेरे पुत्रोंकी सेनाका नाश करेगा, मुझे तो ऐसा मालूम होरहा है, कि-मानो अर्जुनके रथकी ध्वनिको सुनकर कौरवों की सेना भयभीत और बहुत ही व्याकुल होरही है, जैसे धक २ करके जलनेवाला बड़ी भारी लपटका अग्नि पवनसे बढ़ता हुआ चारों ओर को फैलकर फूँसके ढेरको जलाकर भस्म कर डालता है तैसे ही अर्जुन भी बाणोंकी आगसे मेरे पुत्रोंको जलाकर खाक कर डालेगा १६-१८ अर्जुन क्रोधके आवेशमें भरकर जब रणमें तेज किये हुए बाणोंको छोड़ने लगेगा, उस समय विधाताके उत्पन्न किये हुए सबका नाश करनेवाले कालको समान अपार (जिसका पार न पाया जा सके ऐसा) होजायगा ॥ १९ ॥ और मैं भी उस समय कौरवोंके घरों में बैठा २ बारम्बार कौरवोंका संहार, उनकी आपसकी फूट और नाश आदि अनेकों बातोंको सुना करूँगा, वास्तवमें चारों ओरसे यह विनाश रणभूमिमें कौरवोंकी ओरको ही आवेगा ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र उवाच । यथैव पाण्डवाः सर्वे पराक्रान्ता जिगीषवः । तथैवाभिसरास्तेषां त्यक्तात्मानो जये धृताः ॥ १ ॥ त्वमेव हि पराक्रान्तानाचक्षीथाः परान्मम । पांचालान् केकयान्मत्स्यान्मागधान् वत्सभूमिपान् ॥ २ ॥ यश्च सेन्द्रानिमांल्लोकानिच्छन् कुर्याद्वशे बली । स स्रष्टा जगतः कृष्णः पाण्डवानां जये धृतः ॥ ३ ॥ समस्तामर्जुनाद्विद्यां सात्यकिः क्षिप्रमाप्तवान् । शैनेयः समरे स्थाता बीजवत् प्रवपन् शरान् ॥ ४ ॥ धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः क्रूरकर्मा महारथः । मामकेषु रणं कर्ता बलेषु परमास्त्रवित् ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरस्य च क्रोधादर्जुनस्य च विक्रमात् । यमाभ्यां भीमसेनाच्च भयं मे तात जायते ॥ ६॥ अमानुषं मनुष्येन्द्रैर्जालं विततमन्तरा । न मे सैन्यास्तरिष्यन्ति ततः क्रोशामि सञ्जय ॥ ७ ॥ दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान् ब्रह्मवर्चसी । मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पांडुनन्दनः ॥८॥ मित्रामात्यैः सुसम्पन्नः सम्पन्नो युद्धयोजकैः । भ्रातृभिः श्वसुरैर्वीरैरुपपन्नो महारथैः ॥ ९ ॥ धृत्या च

धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे सञ्जय ! जैसे सब पाण्डव पराक्रमी और विजय चाहने वाले हैं, ऐसे ही उनके साथी योधा भी रणमें प्राण देने वाले और विजय पाने वाले हैं ॥ १ ॥ हे सञ्जय ! तूने जो मुझसे पांचाल, केकय, मत्स्य, मगध तथा वत्सदेशके दूसरे पराक्रमी राजाओं के नाम कहे हैं ॥ २ ॥ उनमेंसे एक श्रीकृष्ण ही चाहें तो इन्द्रसहित इस लोकको अपने वशमें कर सकते हैं जगत्को रचनेवाले यह श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी विजयके लिये निश्चय कर बैठे हैं ॥ ३ ॥ इसके सिवाय जो यदुवंशी सात्यकी है उसने अर्जुनसे सब अस्त्रविद्या सीखली है वह शिनिका पोता रणभूमिमें बीजोंकी समान बाणोंको बोता हुआ खडो रहेगा ॥४॥ क्रूर कर्म करनेवाला पांचालराजका पुत्र महारथी धृष्टद्युम्न अस्त्रविद्याका बड़ा जानकार है वह भी मेरी सेना के साथ युद्ध करेगा ॥५॥ हे तात ! मुझे युधिष्ठिरके कोपका, अर्जुन के पराक्रमका तथा नकुल सहदेव और भीमसेनका भय लगा रहता है ॥ ६ ॥ राजाओंने सेनाके मध्यमें अस्त्रोंके फैलावका दिव्य जाल बिछा रक्खा है, उस जालमेंसे मेरे योधा नहीं निकल सकेंगे, इस कारण हे सञ्जय ! मैं रोता हूँ ॥ ७॥ पाण्डुका पुत्र युधिष्ठिर धर्मात्मा दर्शनीय, शोभायमान, ब्रह्मतेजस्वी, बुद्धिमान्, उत्तमपुण्यवाला और संस्कारमयी बुद्धि वाला है ॥ ८ ॥ वह मित्र और मंत्रियोंसे अच्छे प्रकार भरपूर है, उसके पास युद्धका उद्योग करने वाले योधा हैं,

पुरुषव्याघ्रो नैभृत्येन च पाण्डवः। अनृशंसो वदान्यश्च ह्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥१०॥ बहुश्रुतः कृतात्मा च वृद्धसेवी जितेन्द्रियः। तं सर्वगुणसम्पन्नं समिद्धमिव पावकम् ॥११॥ तपन्तमभि को मन्दः पतिष्यति पतङ्गवत्। पांडवाग्निमनायार्य मुमूर्षुर्नष्टचेतनः ॥ १२ ॥ तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया। मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति। १३। तैर्युद्धं साधु मन्ये कुरवस्तन्निबोधत। युद्धे विनाशः कृत्स्नस्य कुलस्य भविता ध्रुवम् ॥ १४ ॥ एषा मे परमा बुद्धिर्यया शाम्यति मे मनः। यदि त्वयुद्धमिष्टं वो वयं शान्त्यै यतामहे ॥ १५ ॥ न तु नः क्लिश्यमानानामुपेक्षेत युधिष्ठिरः। जुगुप्सति ह्यधर्मेण मामेवोद्दिश्य कारणम् ॥ १६ ॥ ७ ७

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

महारथी वीर भ्राता और श्वसुर भी उसके साथ हैं ॥ ९ ॥ वह महारथी पाण्डुपुत्र, पुरुषोंमें सिंहसमान, विचारोंको गुप्त रखने वाला, धीरजधारी, क्रूरतारहित, उदार, लज्जाशील, सत्यपराक्रमी, बहुत पढ़ा हुआ, आत्मज्ञानी, वृद्धोंकी सेवा करने वाला, जितेन्द्रिय और सकल गुणोंका भण्डार है, ऐसे उत्तम गुणोंसे युक्त और किसीसे भी शांत न होसकने वाले पाण्डवरूपी अग्निमें कौन मन्दबुद्धि मूर्ख पुरुष मरनेकी इच्छासे पतङ्गकी समान कूदपड़ेगा ? ॥१०-१२॥ जैसे अग्नि थोड़ासा हो तो भी, जलनेवाली वस्तु मिलते ही बड़ा होजाता है, ऐसे ही राज्य छिन जानेके कारण छोटे होजाने पर भी स्वरूप वाले राजा युधिष्ठिरको मैंने धोखा दिया है, वह अब युद्ध करके मेरे पुत्रों का नाश करडालेगा ॥ १३ ॥ हे कौरवों ! उसके साथ युद्ध न करना ही मैं अच्छा समझता हूँ और तुम इस बातपर ध्यान दो, वास्तवमें इस युद्धमें सब कुटुम्बका नाश होजायगा ॥ १४ ॥ इस लिये ऐसा विचार करो कि जिससे मेरे मनको शान्ति मिले, यदि तुम भी युद्ध करना अच्छा नहीं समझते होओ तो हम संधिके लिये उद्योग करें १५ यदि हम क्लेश करेंगे तो युधिष्ठिर हमारी उपेक्षा नहीं करेंगे, परंतु जो राजा अधर्मसे कलहका कारण मुझे ही ठहरा कर मेरी निन्दा करता है, उसकी प्रार्थना करेंगे तो वह हमारे साथ कलह क्यों करेगा ? ॥ १६ ॥ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ ७

सञ्जय उवाच ॥ एवमेतन्महाराज यथा वदसि भारत । युद्धे विनाशः क्षत्रस्य गाण्डीवेन प्रदृश्यते ॥ १ ॥ इदन्तु नाभि जानामि तव धीरस्य नित्यशः । यत् पुत्रवशमागच्छेस्तत्त्वज्ञः सव्यसाचिनः ॥ २ ॥ नैव कालो महाराज तव शश्वत्कृतागसः । त्वया ह्येवादितः पार्था निकृता भरतर्षभ ॥ ३ ॥ पिता श्रेष्ठः सुहृद्यश्च सम्यक् प्रणिहितात्मवान् । आस्थेयं हि हितं तेन न द्रोग्धा गुरुरुच्यते ॥ ४ ॥ इदं जितमिदं लब्धमिति श्रुत्वा पराजितान् । द्यूतकाले महाराज स्मयसे स्म कुमारवत् ॥५॥ परुषाण्युच्यमानांश्च पुरा पार्थानुपेक्षसे । कृत्स्नं राज्यं जयंतीति प्रपातं नानुपश्यसि ॥६॥ पित्र्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते सजांगलाः । अथ वीरैर्जितामुर्वीमखिलां प्रत्यपद्यथाः ७ बाहुवीर्यार्जिता भूमिस्तव पार्थैर्निवेदिता । मयेदं कृतमित्येव मन्यसे राजसत्तम ॥ ८ ॥ ग्रस्तान् गन्धर्वराजेन मज्जतो ह्यप्लवेऽम्भसि । आनिनाय पुनः पार्थः

सञ्जय कहने लगे, कि—हे भरतवंशी राजन् ! आप जैसा कहते हैं यह ठीक ही है, युद्धमें गाण्डीव धनुषसे क्षत्रियोंका नाश होता ही ही दीख रहा है ॥१॥ मैं इस बातको नहीं जानता था कि-तुम धीरज धर कर सदा ही पुत्रके वशीभूत होकर रहोगे, क्योंकि-तुम अर्जुनके स्वरूपको जानते हो ॥ २ ॥ हे महाराज ! आपने पांडवोंका अपराध किया है, इसकारण सदा तुम्हारा ऐसा अच्छा ही समय नहीं रहेगा हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तुमने आरम्भसे ही पाण्डवोंको दुःखी किया है३जो पिता प्रेम करनेवाला और अच्छे प्रकारसे सावधान मन वाला होता है, वही श्रेष्ठ मानाजाता है तथा पिताको अवश्य ही पुत्रों का हित करना चाहिये, जो द्रोह करता है वह बड़ा नहीं माना जाता है४हे महाराज ! तुमने जुएके समय पांडवोंको हाराहुआ सुनकर, यह राज्य जीत लिया,यह वस्तु लेली,ऐसा विचारतेहुए बालककी समान गर्व किया था, पहिले पांडवोंसे कठोर वचन कहने वाले कौरवोंसे तुमने कुछ भी नहीं कहा था और विचारा था कि--कौरवोंने सब राज्य जीत लिया, परंतु उनके नाशका तो विचारही नहीं किया५।६ हे महाराज ! जाङ्गल देश और कुरु देश आपके पूर्वपुरुषोंका राज्य है उसको तुमने पाया, यह पाण्डवोंका ही प्रताप है तथा तुम जो राज्य करते हो यह सब भूमि भी वीर पाण्डवोंकी जीती हुई है ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! पांडवोंने भुजबलके प्रतापसे पृथ्वी जीत कर आपको निवेदन करदी है, तो भी तुम यह समझते हो, कि यह विजय मैंने

पुत्रांस्ते राजसत्तम। कुमारवच्च स्मयसे द्यूते विनिकृतेषु यत् पाण्डवेषु वने राजन् प्रव्रजत्सु पुनः पुनः ॥ १० ॥ मपर्वतः शरव्रातानर्जुनस्य शितान् बहून्। अभ्यर्णवा विशुष्येयुः किं पुनर्मांसयोनयः ॥ ११ ॥ अस्यतां फाल्गुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम्। केशवः सर्वभूतानामायुधानां सुदर्शनम् ॥१२॥ वानरो रोचमानश्च केतुः केतुमतां वरः। एवमेतानि सरथो वहन् श्वेतहयो रणे ॥ १३ ॥ क्षपयिष्यति नो राजन् कालचक्रमिवोद्यतम्। तस्याद्य वसुधा राजन् निखिला भरतर्षभ ॥ १४ ॥ यस्य भीमार्जुनौ योधौ स राजा राजसत्तम। तथा भीमहतप्रायां मज्जन्तीं तव वाहिनीम् ॥ १५ ॥ दुर्योधनमुखा दृष्ट्वा क्षयं यास्यन्ति कौरवाः। न भीमार्जुनयोर्भीता लप्स्यन्ते विजयं विभो ॥ १६ ॥ तव पुत्रा महाराज राजानश्चानुसारिणः। मत्स्यास्त्वामद्य नार्चन्ति पञ्चालाश्च सकेकयाः ॥ १७ ॥ शाल्वेयाः शूरसेनाश्च सर्वे त्वामवजानते। पार्थं गते

किया है ॥ ८ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! गन्धर्वराजने तुम्हारे पुत्रोंको कैद करलिया था और तुम्हारे पुत्र कोई अवलम्बन न पाकर अथाह जल में डूबे जाते थे उस समय उनको अर्जुनने ही उबारा था ॥ ९ ॥ जब पांडव जुएमें हारगये और हे राजन् ! जिस समय वह वनको जाने लगे तब तुम बारम्बार बालकोंकी समान घमण्ड करते थे ॥ १० ॥ परन्तु जब अर्जुन तेज किये हुए बहुतसे बाणोंके समूह बरसाना चाहेगा तब समुद्र भी सूख जायँगे, फिर मनुष्योंका नाश होगा, इस का तो कहना ही क्या ? ॥ ११ ॥ बाण छोड़ने वालोंमें अर्जुन श्रेष्ठ है, धनुषोंमें गांडीव उत्तम है, सकल प्राणियोंमें श्रीकृष्ण उत्तम हैं आयुधों में सुदर्शनचक्र उत्तम है, जिसमें वानर शोभा पारहा है ऐसी ध्वजा सब ध्वजाओंमें श्रेष्ठ है, यह सब वस्तुएँ अर्जुनके पास हैं, हे राजन् ! स्वेत घोड़ोंसे जुते रथमें बैठा हुआ अर्जुन, रणमें जैसे कालचक्र चढ़ कर आता हो तैसे ही इन सबोंके ऊपर चढ़ाई करके इनका नाश कर डालेगा, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ महाराज ! जिसके पास भीमसेन और अर्जुन जैसे योधा हैं, उस धर्मराजकी यह सब पृथ्वी इसी समयसे है इस बातको तुम जाने रहो, भीमसेन तुम्हारी सेनाके बहुतसे बड़े भागका नाश करडालेगा और यह देखकर दुर्योधन आदि कौरव भी नष्ट ही होजायँगे, हे महाराज ! भीमसेन तथा अर्जुनसे भयभीत हुए कौरव और उनके साथी राजे क्या विजय पासकेंगे ? कभी नहीं, मत्स्य और कैकयों सहित पांचाल राजाओंमेंसे अब कोई भी आपको

गताः सर्वे वीर्यज्ञास्तस्य धीमतः ॥१८॥ भक्त्या ह्यस्य विरुध्यन्ते तव पुत्रैः सदैव ते। अनर्हानेव तु वधे धर्मयुक्तान् विकर्मणा॥१९॥ योऽक्लेशयत् पांडुपुत्रान् यो विद्वेष्टयधुनानपि । सर्वोपायैर्नियन्तव्यः सानुगः पापपूरुषः॥ २० ॥ तव पुत्रो महाराज नानुशोचितुमर्हसि । द्यूतकाले मया चोक्तं विदुरेण च धीमता ॥ २१ ॥ यदिदं ते विलपितं पांडवान् प्रति भारत । अनीशेनेव राजेन्द्र सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जयवाक्ये चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दुर्योधन उवाच । न भेतव्यं महाराज न शोच्या भवता वयम् । समर्थाः स्म परान् जेतुं बलिनः समरे विभो ॥ १ ॥ वने प्रव्राजितान् पार्थान् यदायान्मधुसूदनः । महता बलचक्रेण परराष्ट्रावमर्दिना ॥२॥ केकयो धृष्टकेतुश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः। राजानश्चान्वयुः पार्थान् बहवोऽन्येनुयायिनः ॥ ३ ॥ इन्द्रप्रस्थस्य चादूरात् समाजग्मुर्महारथाः व्य-

---

प्रतिष्ठा नहीं करता है ॥ १२ १७ ॥ तथा शाल्व राजाके वंशधर शूरसेन देशके राजे आदि भी आपका आदर नहीं करते हैं किंतु तुम्हारा अपमान ही करते हैं ये सब राजे बुद्धिमान् धर्मराजके बलको जान कर उनके ही अनुगामी होगये हैं ॥१८॥ उनकी धर्मराजके ऊपर भक्ति है, इस कारण यह तुम्हारे पुत्रोंके साथ सदा विरोध ही रखते हैं, पाण्डव धर्मात्मा होनेके कारण मारनेके योग्य नहीं हैं, उनको तुम्हारे पुत्रोंने नीच काम करके दुःखी किया था और अब भी यह पाण्डवोंसे वैर ही किया करते हैं, इस लिये तुम अपने पापी पुत्रोंको और उनके साथियोंको जैसे होसकै तैसे वशमें रक्खो, तो ही ठीक है,इस विषय में अब शोक करनेसे क्या होसकता है ? मैंने और बुद्धिमान् विदुर जीने जुआ होते समय तुमसे सब बात कही ही थी, हे भरतवंशी राजेन्द्र ! अब जो तुम असमर्थ पुरुषकी समान पाण्डवोंके विषयमें विलाप करते हो, यह सब वृथा है १९–२२ चौअनवाँ अध्याय समाप्त

दुर्योधन बोल उठा, कि-हे महाराज ! आप डरें नहीं और हमारे लिये शोक भी न करिये, हे व्यापक राजन् ! हम रणभूमिमें बलवान् शत्रुओंको जीतनेकी शक्ति रखते हैं ॥१॥ पांडव जिस समय वनवास करनेको वनमें गये थे, उस समय श्रीकृष्ण शत्रुके देशका नाश करने वाली बड़ी भारी सेनाको साथ लेकर पाण्डवोंके पास गये थे तथा केकय देशके राजे, धृष्टकेतु, पृषत्का पुत्र धृष्टद्युम्न तथा उनके साथी

गर्हयंश्च संगम्य भवन्तं कुरुभिः सह ॥४॥ ते युधिष्ठिरमासीनमजिनैः प्रतिवासितम्। कृष्णप्रधानाः संहत्य पर्युपासंत भारत ॥ ५ ॥ प्रत्यादानञ्च राज्यस्य कार्यमूचुर्नराधिपाः। भवतः सानुबन्धस्य समुच्छेदं चिकीर्षवः। ६। श्रुत्वा चैवं मयोक्तास्तु भीष्मद्रोणकृपास्तदा। ज्ञातिक्षयभयाद्राजन् भीतेन भरतर्षभ ॥ ७ ॥ ततः स्थास्यन्ति समये पाण्डवा इति मे मतिः। समुच्छेदं हि नः कृत्स्नं वासुदेवश्चिकीर्षति ॥ ८ ॥ ऋते च विदुरात् सर्वे यूयं वध्या मता मम। धृतराष्ट्रस्तु धर्मज्ञो न वध्यः कुरुसत्तमः ॥ ९ ॥ समुच्छेदञ्च कृत्स्नं नः कृत्वा तात जनार्दनः। एकराज्यं कुरूणां स्म चिकीर्षति युधिष्ठिरे ॥१०॥ तत्र किं प्राप्तकालं नः प्रणिपातः पलायनम्। प्राणान् वा सम्परित्यज्य प्रतियुध्यामहे परान् ॥११॥प्रतियुद्धे तु नियतः स्यादस्माकं पराजयः। युधिष्ठिरस्य

और बहुतसे राजे भी पाण्डवोंसे मिलनेको उनके पास गये थे, राजा युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से थोड़ी ही दूर पड़ाव डालकर ठहरे हुए थे, श्रीकृष्ण आदि सब महारथियोंका मण्डल युधिष्ठिरके पास गया और उन्होंने इकट्ठे होकर आपको तथा कौरवोंकी बड़ी भारी निंदा करना आरम्भ किया,हे भरतवंशी राजन्! उस समय श्रीकृष्ण आदि राजे इकट्ठे होकर,मृगचर्म ओढकर बैठे हुए राजा युधिष्ठिरकी सेवा करने लगे और तुम्हारा तथा तुम्हारे कुटुम्बका संहार करनेकी इच्छा वाले वह राजे कहने लगे, कि—अपना राज्य लौटा लेना चाहिये ॥ २-६ ॥ उन राजाओंकी बात जब मेरे सुननेमें आयी तब हे भरतवंशमें श्रेष्ठ महाराज ! मैं संबन्धियोंके नाशका विचार करके भयभीत होगया और उस समय मैंने भीष्मजी, द्रोणाचार्यजी और कृपाचार्यजीको बुलाकर कहा कि–मुझे प्रतीत होता है, कि–पाण्डव अवसर आने पर हमारे राजसिंहासन पर बैठेंगे और श्रीकृष्ण हम सबोंका संहार करना चाहते हैं ॥ ७-८ ॥ उनका विचार है कि–एक विदुरको छोड़कर मेरे संबंधी तुम सब मारदेनेके योग्य हो परन्तु राजा धृतराष्ट्र धर्मज्ञ और कुरुकुलमें श्रेष्ठ हैं इस कारण उनको मारनेकी इच्छा नहीं करते हैं ॥९॥ और हे तात ! श्रीकृष्ण हम सबोंका संहार करके कौरवोंका राज्य युधिष्ठिरके हाथमें देना चाहते हैं ॥ १० ॥ तो कहिये अब इस विषयमें हमें क्या करना चाहिये, संधि करनेके लिये उनसे नम जावें, लज्जित होकर यहांसे भाग जावें अथवा प्राणोंकी इच्छा न रख कर शत्रुओंसे लड़ें ? ॥ ११ ॥ उनके साथ युद्ध करनेमें

सर्वे हि पार्थिवा वशवर्त्तिनः ॥ १२ ॥ विरक्तराष्ट्रश्च वयं मित्राणि कुपितानि नः धिक्कृताः पार्थिवैः सर्वैः स्वजनेन च सर्वशः१३प्रणिपाते न दोषोऽस्ति सन्धिर्नः शाश्वतीःसमाः । पितरन्त्वेव शोचामि प्रज्ञानेत्रं जनाधिपम् ।१४।मत्कृते दुःखमापन्नं क्लेशं प्राप्तमनन्तकम् । कृतं हि तव पुत्रैश्च परेषामवरोधनम् । मत्प्रियार्थं पुरैवैतत् विदितं ते नरोत्तम१५ ते राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सामात्यस्य महारथाः । वैरं प्रतिकरिष्यन्ति कुलोच्छेदेन पाण्डवाः ॥ १६ ॥ ततो द्रोणोऽब्रवीत् भीष्मः कृपो द्रौणिश्च भारत । मत्वा मां महतीं चिन्तामास्थितं व्यथितेन्द्रियम् ॥१७॥ अभिद्रुग्धाः परे चेन्नो न भेतव्यं परन्तप । असमर्थाः परे जेतुमस्मान् युधि समास्थितान् ॥ १८ ॥ एकैकशः समर्थाः स्मो विजेतुं सर्वपार्थिवान् । आगच्छन्तु विनेष्यामो दर्पमेषां शितैः शरैः । पुरैकेन हि भीष्मेण निर्जिताः सर्वपार्थिवाः । मृते पितर्यतिक्रुद्धो रथेनैकेन भारत ॥ २० ॥

तो निःसन्देह हमारी हार होगी, क्योंकि—सब राजे युधिष्ठिरके वश में हैं ॥ १२ ॥ और हमसे तो हमारा देश भी रुठ रहा है, हमारे मित्र भी कुपित होरहे हैं और सब राजाओंने तथा अपने कुटुम्बियोंने तो हमें धिक्कार दिया है ॥१३॥नमजानेमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि—ऐसा करने पर हम चिरकाल तक मेल रहेगा , मुझे केवल एक अपने अन्धे पिता धृतराष्ट्रका ही शोक है, क्योंकि—उन्होंने मेरे लिये अनन्तों दुःख और अनेकों क्लेश भोगे हैं तथा मेरे भाइयोंने मेरा हित करनेके लिये दूसरोंके अपराध किये हैं, इस बातको हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! आप पहिलेसे ही जानते हैं ॥ १४-१५ ॥ महारथी पाण्डव धृतराष्ट्रका और उनके मन्त्रियोंके कुलका नाश करके वैरका बदला लेंगे ॥ १६ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यह सुनकर द्रोणाचार्य, भीष्मजी, कृपाचार्य और अश्वत्थामा मेरी इन्द्रियोंको घबड़ाई हुई देखकर तथा मुझे बड़ी भारी चिन्तामें पड़ा हुआ देखकर कहने लगे, कि—॥ १७ ॥ हे शत्रुओं को कष्ट देनेवाले राजन् ! शत्रु हमसे द्रोह करते हैं तो भले ही करें इससे तुम डरो मत, जब हम रणमें जाकर शत्रुओंके सामने खड़े होंगे तो वह हमको जीत नहीं सकेंगे ॥ १८ ॥ हम एक२ भी सब राजाओं को जीत सकते हैं, शत्रु भले ही लड़नेके लिए आवें हम तेज किये हुए बाणोंसे शत्रुओंके घमण्डको तोड़ देंगे ॥ १९ ॥ पहिले अकेले भीष्मपितामहने ही अपने पिताके मरणके बाद कोपमें भरकर रणमें सब राजाओंको हरा दिया था तथा हे भरतवंशी राजन् ! कुरुवर भीष्म

जघान सुबहूंस्तेषां संरब्धः कुरुसत्तमः । ततस्ते शरणं जग्मुर्देवव्रतमिमं भयात् ॥ २१ ॥ स भीष्मः सुसमर्थोऽयमस्माभिः सहितो रणे । परान् विजेतुं तस्मात्ते व्येतु भीर्भरतर्षभ ॥ २२ ॥ इत्येषां निश्चयो ह्यासीत् तत्कालेऽमिततेजसाम् । पुरा परेषां पृथिवी कृत्स्नासीद् वशवर्तिनी ॥ २३ ॥ अस्मान् पुनरमी नाथ समर्था जेतुमाहवे । छिन्नपक्षाः परे ह्यद्य वीर्यहीनाश्च पाण्डवाः ॥ २४ ॥ अस्मत्संस्था च पृथिवी वर्त्तते भरतर्षभ । एकार्थाः सुखदुःखेषु समानीताश्च पार्थिवाः ॥ २५ ॥ अप्यग्निं प्रविशेयुस्ते समुद्रं वा परन्तप । मदर्थं पार्थिवाः सर्वे तद्विद्धि कुरुसत्तम ॥ २६ ॥ उन्मत्तमिव चापि त्वां प्रहसन्तीह दुःखितम् । विलपन्तं बहुविधं भीतं परविकत्थने ॥ २७ ॥ एषां ह्येकैकशो राज्ञां समर्थः पाण्डवान् प्रति । आत्मानं मन्यते सर्वो व्येतु ते भयमागतम् ॥ २८ ॥ जेतुं समग्रां सेनां मे वासवोऽपि न शक्नुयात् । हन्तुमक्षय्यरूपेयं ब्रह्मणोऽपि स्वयम्भुवः ॥ २९ ॥ युधि-

जीने केवल एक रथकी सहायतासे ही बहुतसे शत्रुओंका संहार कर डाला था और सब राजे भयभीत होकर इनकी शरणमें आये थे २०।२१ बड़े शक्तिमान् भीष्मजी रणमें शत्रुओंको जीतनेके लिये हमारे साथ आवेंगे, इस लिये हे भरतवंशश्रेष्ठ ! तू अपने भयको दूर कर दे २२ इस प्रकार उस समय द्रोणाचार्य आदि महातेजस्वियोंका निश्चय हुआ था, पहिले यह सब भूमि शत्रुओंके हाथमें ही थी वह अब हमारे वशमें है २३ शत्रु पाण्डव इस समय पक्षशून्य और पराक्रमहीन होगए हैं, इस कारण अब हमारा तिरस्कार करने योग्य होगए हैं ॥ २४ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इस समय यह पृथ्वी हमारे वशमें है और मेरे बुलाये हुए राजे सुख दुःखमें मेरे साथ रहकर समान भाग लेने वाले हैं ॥ २५ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ परन्तप राजन् ! यह सब राजे समय पर मेरे लिये आगमें भी कूद पड़ेंगे और समुद्रमें भी कूद पड़ेंगे, इस बातको आप निश्चय समझें ॥ २६ ॥ तुम शत्रुओंके गुणों का गान सुन कर डरते हुए बड़ा विलाप कर रहे हो, पागलसे बन कर दुःखी होगये हो, इस कारण ये राजे तुम्हारी हँसी करते हैं २७ हमारे यहाँ आये हुए राजाओंमेंसे हर एक राजा पाण्डवोंसे लड़नेके लिये अपनेको शक्तिमान् मानता है, इस लिए यदि तुमको भय लगता हो तो उसको दूर कर देना चाहिये ॥ २८ ॥ मेरी सब सेना को इन्द्र भी नहीं जीत सकता तथा स्वयम्भू ब्रह्मा भी नहीं जीत

ष्ठिरः पुरं हित्वा पञ्च ग्रामान् स याचति । भीतो हि मामकात् सैन्यात् प्रभावाच्चैव मे विभो ॥३०॥ समर्थं मन्यसे यच्च कुंतीपुत्रं वृकोदरम् । तन्मिथ्या न हि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्सि भारत ॥ ३१ ॥ मत्समो हि गदायुद्धे पृथिव्यां नास्ति कश्चन । नासीत्कश्चिदतिक्रान्तो भविता न च कश्चन ३२ युक्तो दुःखोपितश्चाहं विद्यापारगतस्तथा । तस्मान्न भीमान्नान्येभ्यो भयं मे विद्यते क्वचित् । ३३ । दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः । संकर्षणस्य भद्रन्ते यत्तदैनमुपावसम्॥ ३४ ॥ युद्धे संकर्पणसमो बलेनाभ्यधिको भुवि । गदाप्रहारं भीमो मे न जातु विषहेद्युधि ॥ ३५ ॥ एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप । स एवैनं नयेत् घोरः क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम् ॥ ३६ ॥ इच्छेयञ्च गदाहस्तं राजन् द्रष्टुं वृकोदरम् । सुचिरं प्रार्थितो ह्येष मम नित्यं मनोरथः॥३७॥ गदया निहतो ह्याजौ मया पार्थो वृकोदरः । विशीर्णगात्रः पृथिवीं

सकता, मेरी सेना ऐसी अजेय है ॥ २९ ॥ हे महाराज ! युधिष्ठिर भी मेरी सेनासे और मेरे प्रभावसे डर कर नगरका माँगना छोड केवल पांच ग्राम ही मांगनेको तयार होगये हैं ॥ ३० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम कुन्तीनन्दन भीमसेनको बड़ा शक्तिमान् कहते हो, यह भी मिथ्या है, आप मेरे पराक्रमको जानते नहीं हैं ॥ ३१ ॥ इस पृथ्वी पर गदायुद्ध करनेमें मेरी समान कोई है ही नहीं, तथा पहिले भी मुझसे अधिक जाननेवाला कोई नहीं था और आगेको भी मुझसे अधिक जाननेवाला कोई नहीं होगा ॥३२॥ मैं गुरुके घर रहकर मन को नियममें रखकर बड़े कष्टसे युद्धविद्यामें पारङ्गत हुआ हूँ, इसकारण मैं भीमसेन या किसी दूसरेसे कभी भी नहीं डरता हूँ, ॥ ३३ ॥ गदा-युद्धमें दुर्योधनकी समान कोई नहीं है इस बातका बलदेवजीको निश्चय होगया है, क्यों कि—मैंने शिष्य बनकर उनकी सेवा की है तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३४ ॥ मैं पृथिवी पर युद्ध करनेमें बलदेवजीकी समान हूं तथा बलमें भी मुझसे बढ़कर कोई नहीं है, भीमसेन युद्धमें मेरी गदाके प्रहारको कभी भी नहीं सह सकता ॥३५॥ हे राजन् ! मैं कोपमें भरकर भीमसेनके एक गदा मारूँ तो वह महाभयङ्कर प्रहार तुरन्त ही भीमसेनको यमलोकमें पहुँचादेय ।३६। हे राजन् ! मैं भीमसेनको हाथमें गदा लेकर खड़ा हुआ देखना चाहता हू और मेरा यह मनोरथ सदाका और चिरकालसे चाहा हुआ है ॥३७॥ मैं रणभूमिमें भीमसेनके ज्यों ही गदा मारूँगा, कि–उसके शरीरके अंगोंके टुकड़े २

परासुः प्रपतिष्यति ॥ ३८ ॥ गदाप्रहाराभिहतो हिमवानपि पर्वतः । सकृन्मया विशीर्येत गिरिः शतसहस्रधा ॥ ३९ ॥ स चाप्येतत् विजानाति वासुदेवार्जुनौ तथा । दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः ॥ ४० ॥ तत्ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे । व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन् विमना भव ॥४१॥ तस्मिन् मया हते क्षिप्रमर्जुनं बहवो रथाः तुल्यरूपा विशिष्टाश्च क्षेप्स्यन्ति भरतर्षभ ॥ ४२ ॥ भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः कर्णो भूरिश्रवास्तथा। प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्यः सिन्धुराजो जयद्रथः ॥ ४३ ॥ एकैक एषां शक्तस्तु हन्तुं भारत पाण्डवान् । समेतास्तु क्षणेनैतान्नेष्यन्ति यमसादनम्। समग्रा पार्थिवी सेना पार्थमेकं धनंजयम् ॥ ४४ ॥ कस्मादशक्ता निर्जेतुमिति हेतुर्न विद्यते । शरव्रातैस्तु भीष्मेण शतशो निचितोऽवशः ।४५। द्रोणद्रौणिकृपैश्चैव गन्ता पार्थो यमक्षयम् । पितामहोऽपि गांगेयः शान्तनोरधि भारत ॥ ४६ ॥ ब्रह्म-

---

होजायंगे और वह प्राणहीन होकर भूमिपर ढह पड़ेगा ॥ ३८ ॥ अजी मैं हिमालय पहाड़के ऊपर एक गदा मारदूं तो वह पहाड़ भी मेरी गदाके प्रहारसे सैंकड़ों और सहस्रों टुकड़े होकर बिखर जाय ॥३९॥ इस बातको भीमसेन भी जानता है तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन भी समझते हैं, कि–दुर्योधनकी समान गदायुद्धमें दूसरा कोई नहीं है, यह बात निश्चित है ॥ ४० ॥ इस कारण आपको महासंग्राममें भीमसेनका जो भय है उसको दूरकर दीजिये, हे राजन् ! मैं रणमें उसको अवश्य ही मार डालूँगा आप मनमें उदास न हूजिये ॥४१॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! मैं ज्यों ही भीमसेनको मारडालूँगा, कि–उसी समय अर्जुन सरीखे तथा उससे भी अधिक बलवान् बहुतसे रथी उसके ऊपर बाणोंकी मारामार करने लगेंगे ॥४२॥ हे भरतवंशी राजन् भीष्म, द्रोणाचार्य कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग्ज्योतिष नगरका स्वामी, शल्य, सिन्धु देशका राजा जयद्रथ ॥ ४३ ॥ हे भरतवंशी ! इनमेंका एक २ राजा पाण्डवोंको मारडालनेकी शक्ति रखता है, फिर जब यह इकट्ठे होकर चढ़ेंगे तब तो एक क्षणमें ही इन सबों को यमलोकमें पहुँचादेंगे, इन राजाओंकी सब सेना अकेले अर्जुनको जीतनेमें क्यों असमर्थ होगी ? इसका तो कोई कारण नहीं है, अजी ! भीष्म सैंकड़ों बाण छोडकर उसको ढकदेंगे तब विवश हुआ अर्जुन अश्वत्थामा द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके प्रहारोंसे यमलोकमें पहुँच जायगा, हे राजन् ! पितामह भीष्मजी जो शान्तनु और गङ्गासे उत्पन्न

पिसदृशो जज्ञे देवैरपि सुदुःसहः । न हन्ता विद्यते चापि राजन् भीष्मस्य कश्चन ॥४७॥ पित्रा ह्युक्तः प्रसन्नेन नाकामस्त्वं मरिष्यसि । ब्रह्मर्षेश्च भरद्वाजाद् द्रोणो द्रोण्यामजायत ॥४८॥ द्रोणाज्जज्ञे महाराज द्रौणिश्च परमास्त्रवित । कृपश्चाचार्यमुख्योऽयं महर्षेर्गौतमादपि ४९ शरस्तम्बोद्भवः श्रीमानवध्य इति मे मतिः । अयोनिजास्त्रयो ह्येते पितो माता च मातुलः ५० अश्वत्थाम्नो महाराज स च शूरः स्थितो मम । सर्व एते महाराज देवकल्पा महारथाः ॥५०॥ शक्रस्यापि व्यथां कुर्युः संयुगे भरतर्षभ । नैतेषामर्जुनः शक्त एकैकं प्रतिवीक्षितुम् ५२ सहितास्तु नरव्याघ्र हनिष्यंति धनञ्जयम्। भीष्मद्रोणकृपाणां च तुल्यः कर्णो मतो मम ॥ ५३ ॥ अनुज्ञातश्च रामेण मत्समोसीऽति भारत । कुण्डले रुचिरे चास्तां कर्णस्य सहजे शुभे ॥ ५४ ॥ ते शच्यर्थं महेन्द्रेण याचितः स परन्तपः । अमोघया महाराज शक्त्या परमभीमया ॥५५॥

हुए हैं वह ब्रह्मर्षिकी समान, अजी ! उनके पराक्रमको तो देवता भी नहीं सह सकते, हे राजन् ! भीष्मको मारनेवाला तो इस भूमंडल पर कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ है ॥ ४३-४७ ॥ उनके पिताने प्रसन्न होकर भीष्मजीसे कहा था, कि-तू अपनी इच्छाके विना नहीं मरेगा दूसरे योधा द्रोणाचार्य हैं वह भी ब्रह्मर्षि हैं वह भरद्वाज ऋषिसे द्रोणी में उत्पन्न हुए हैं ॥ ४८ ॥ और हे महाराज ! उन द्रोणाचार्यसे ही अश्वत्थामाका जन्म हुआ है वह बड़ा अस्त्रवेत्ता है, आचार्योंमें मुख्य महर्षि कृपाचार्यजी गौतमसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ४९ ॥ दर्भके कुण्डमेंसे उत्पन्न हुए श्रीमान् कृपाचार्यजी भी मेरी समझमें किसीसे मरनेवाले नहीं हैं, हे महाराज ! अश्वत्थामाके पिता माता और मामा तीनों अयोनिज (योनिसे उत्पन्न नहीं हुए हैं) अश्वत्थामा भी मेरी सेना में बडा शूर है और हे महाराज ! ये सब महारथी देवताओंकी समान बलवान् हैं ॥ ५०-५१ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! ये रणभूमिमें इन्द्रको भी पीडा देसकते हैं अर्जुन इनमेंसे एककी ओरको भी आंख उठाकर नहीं देख सकता ॥ ५२ ॥ वह सब पुरुषसिंह इकट्ठे होकर अर्जुनका नाश ही करडालेंगे और मेरी समझमें तो कर्ण भी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यके समान ही है ॥ ५३ ॥ हे भारत ! पहिले परशुरामजीने कर्णसे कहा भी था, कि-तू मेरी समान है, कर्णका जन्म हुआ तबसे स्वाभाविक ही उसके कानोंमें मनोहर कुण्डल थे । ५४ । वह दोनों कुण्डल शत्रुतापी कर्णसे इन्द्रने इन्द्राणीके लिये मांगे थे और हे महा-

तस्य शक्त्योपगूढस्य कस्माज्जीवेद्धनञ्जयः । विजयो मे ध्रुवं राजन् फलं पाणाविवाहितम । ५६ । अभिव्यक्तः परेषाञ्च कृत्स्नो भुवि परा- जयः । अह्ना ह्येकेन भीष्मोऽयं प्रयुतं हन्ति भारत ॥५७॥ तत्समाश्च महेष्वासा द्रोणद्रौणिकृपा अपि । संशप्तकानां वृन्दानि क्षत्रियाणां परन्तप ॥५८॥ अर्जुनं वयमस्मान् वा निहन्यात् कपिकेतनः। तं चाल मिति मन्यन्ते सव्यसाचिवधे धृताः ॥५९॥ पार्थिवः स भवांस्तेभ्यो ह्यकस्माद् व्यथते कथम् । भीमसेने च निहते कोऽन्यो युध्येत भारत६० परेषां तन्ममाचक्ष्व यदि वेत्थ परन्तप । पंच ते भ्रातरः सर्वे धृष्ट- द्युम्नोऽथ सात्यकिः ॥ ६१ ॥ परेषां सप्त मे राजन् योधाः सारं बलं मतम् । अस्माकन्तु विशिष्टा ये भीष्मद्रोणकृपादयः ॥६२॥ द्रौणिर्विक- र्णनः कर्णः सोमदत्तोऽथ बाल्हिकः । प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्य आवन्त्यौ च जयद्रथः ॥ ६३ ॥ दुःशासनो दुर्मुखश्च दुःसहश्च विशाम्पते । श्रुता-

---

राज ! इंद्रने इनके बदलेमें महाभयानक कभी निष्फल न जानेवाली शक्ति देनेको कहा था । ५५ । ऐसी शक्तिसे ढके हुए कर्णके साथ लड़ कर अर्जुन कैसे जीवित रह सकता है ! इस कारण हे राजन ! मेरी विजयको निःसंदेह फलकी समान हाथमें धरी हुई समझो ॥ ५६ ॥ पृथिवी पर शत्रुओंकी पूरी २ हार स्पष्ट ही है, देखो महाराज ! ये भीष्मजी एक दिनमें दश सहस्र शत्रुओंका नाश कर सकते हैं ।५७। हे शत्रुनाशी महाराज ! द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य भी भीष्मकी समान ही धनुषधारी हैं और संशप्तक नाम वाले क्षत्रियोंके समूह भी तैसे ही हैं ॥ ५८ ॥ वह तो कहते हैं, कि-हम अर्जुनको मार डालेंगे या कपिध्वज अर्जुन ही हमें मार डालेगा, वह अर्जुनको अपने साथ युद्ध करनेमें ही पर्याप्त मानते हैं अर्थात् वह कहते हैं कि अर्जुन के लिये हम ही बहुत हैं, इस कारण मैंने अर्जुनका वध करनेके लिये उन राजाओंको ही नियत करदिया है, फिर आप पाण्डवोंसे निष्का- रण क्यों डरते हो ? आप ही बताइये, कि-जब भीमसेन मारा जायगा तो फिर उनमें लड़नेको खड़ा होने वाला दूसरा कौन है ? ।५९-६०। हे राजन् ! शत्रुओंके पाँच पाण्डव धृष्टद्युम्न और सात्यकी ये सात योधाही मेरी समझमें उनकी सेनाका सार हैं, हे परन्तप ! यदि आप को इससे अधिक मालूम हो तो मुझे बताइये और हमारे जो बड़े २ योधा हैं उनमें भीष्मजी द्रोणाचार्य,कृपाचार्य आदितथा अश्वत्थामा विकर्त्तन, कर्ण, सोमदत्त, बाल्हीक, प्राग्ज्योतिषपुरका राजा, शल्य,

चुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः ॥ ६४ ॥ शलो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः । अक्षौहिण्यो हि मे राजन् दशैका च समाहृताः ॥ ६५ ॥ न्यूनाः परेषां सप्तैव कस्मान्मे स्यात् पराजयः । बलं त्रिगुणतो हीनं योद्धुं प्राह बृहस्पतिः । परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी ६६ गुणहीनं परेषांच बहु पश्यामि भारत । गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशाम्पते ॥६७॥ एतत् सर्वं समाज्ञाय बलाग्र्यं मम भारत । न्यूनतां पाण्डवानां च न मोहं गन्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥ इत्युक्त्वा संजयं भूयः पर्यपृच्छत भारत । विवित्सुः प्राप्तकालानि ज्ञात्वा परपुरञ्जयः ॥६९॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि दुर्योधन-वाक्ये पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५॥

दुर्योधन उवाच । अक्षौहिणीः सप्त लब्ध्वा राजभिः सह सञ्जय । किंस्विदिच्छति कौन्तेयो युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । अतीव मुदितो राजन् युद्धप्रेप्सुर्युधिष्ठिरः। भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमा-

---

अवन्तीके दोनों राजे, जयद्रथ, दुःशासन दुर्मुख दुःसह श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति,शल, भूरिश्रवा आपका पुत्र विकर्ण तथा हे राजन् ! मेरी इकट्ठी कीहुई ग्यारह अक्षौहिणी सेना, इतना बल मेरे पास है ॥ ६१-६५ ॥ और शत्रुओंके पास तो थोड़ीसी सात अक्षौहिणी सेना ही है, फिर मेरी हार कैसे होसकती है ? बृहस्पतिजीने कहा है, कि-अपनेसे तिहाई सेनाके साथ लड़ना चाहिये, सो हे महाराज ! मेरी यह सेना शत्रुओंसे तिगुनी है ही॥६६॥और हे भरतवंशी राजन् ! मैं शत्रुओंकी सेनाको अधिक अंशमें गुणहीन देखताहूं तथा अपनी सेनाको परिणाममें फलदायक और बहुतसे गुणों वाली देखता हूँ ॥ ६७ ॥ हे भारत ! इन सब बातोंसे मेरी सेनाको अधिक बल वाली और शत्रु पांडवोंकी सेनाको बलहीन मान कर आपको घबड़ाना नहीं चाहिये ॥ ६८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! शत्रुओंके नगरों को जीतने वाला दुर्योधन धृतराष्ट्रसे ऐसा कह कर, शत्रुओंकी ओर के सब कामोंको जाननेके अनन्तर, समय पर आपहुँचे हुए कार्योंसे पार होनेके लिये सञ्जयसे फिर पूछने लगा ॥६९॥ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ छ छ छ

दुर्योधनने पूछा, कि-हे संजय ! युद्ध प्रारम्भ करनेकी इच्छा वाला कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेना और बहुतसे राजाओंको इकट्ठा करके क्या करना चाहता है ? ॥१॥ सञ्जय बोला

पि न बिभ्यतः ॥ २ ॥ रथन्तु दिव्यं कौन्तेयः सर्वा विभ्राजयन्दिशः। वर्म्म जिज्ञासमानः सन् बीभत्सुः समयोजयत् ॥३॥ तमपश्याम संनद्धं मेघं विद्युद्युतं यथा। समन्तात् समभिध्याय हृष्यमाणोऽभ्यभाषत ॥४॥ पूर्वरूपमिदं पश्य वयं जेष्याम सञ्जय। बीभत्सुर्मां यथोवाच तथाऽवैम्यहमप्युत ॥५॥ दुर्योधन उवाच। प्रशंसस्यभिनन्दंस्तान् पार्थानक्षपराजितान्। अर्जुनस्य रथे ब्रूहि कथमश्वाः कथं ध्वजाः ॥ ६ ॥ सञ्जय उवाच। भौवनः सह शक्रेण बहुचित्रं विशांपते। रूपाणि कल्पयामास त्वष्टा धाता सदा विभो ॥ ७ ॥ ध्वजे हि तस्मिन् रूपाणि चक्रुस्ते देवमायया। महाधनानि दिव्यानि महान्ति च लघूनि च ॥८॥ भीमसेनानुरोधाय हनूमान् मारुतात्मजः। आत्मप्रतिकृतिं तस्मिन् ध्वज आरोपयिष्यति ॥९॥ सर्वा दिशो योजनमात्रमन्तरं स तिर्यगूर्ध्वञ्च रुरोध

कि हे राजन् ! युद्धकी इच्छा वाला युधिष्ठिर बड़ा ही प्रसन्न है, भीमसेन, अर्जुन और दोनों भाई नकुल सहदेव भी निर्भयता दिखाते हैं ॥ २ ॥ एक दिन कुन्तीनन्दन अर्जुन दिव्य अस्त्रके सम्बन्धी परीक्षा करनेके लिये दिव्य रथ जोड़कर उसमें बैठा था और उसने चारों ओर रथको घुमाकर सब दिशाओंमें उजालाजा कर दिया ॥ ३ ॥ जिस समय वह कवच पहर कर खड़ा हुआ तो बिजली वाले मेघके समान दीखता था, फिर उसने चारों ओरको देखा और कुछ विचार कर प्रसन्न होता हुआ मुझसे कहने लगा, कि—॥ ४ ॥ हे सञ्जय ! इस मेरे पूर्वरूप (तयारी) को देखो और समझ लो, कि—रणमें हम ही जीतेंगे, सो अर्जुनने मुझसे जैसा कहा था मैं भी इस विषयका परिणाम यही समझता हूं अर्थात् अवश्य पाण्डवोंकी ही विजय होगी ५ दुर्योधनने कहा कि—जुयेमें हारे हुए कुन्तीके पुत्रोंको होते ही निकला हुआ उनकी बड़ाई करता है तो मैं तुझसे पूछता हूं कि—कहो अर्जुन के रथमें कैसे घोड़े जुते हैं और कैसी ध्वजायें लगी हैं ॥ ६ ॥ सञ्जय ने उत्तर दिया, कि-हे राजन् ! त्वष्टा, विश्वकर्मा, इन्द्र और प्रजापति इन सबोंने इकट्ठे होकर अर्जुनके रथपर कई विचित्र मूर्तियों और अनेकों आकारोंकी रचना करी है ॥ ७ ॥ उन देवताओंने उस रथकी ध्वजामें दैवी मायाके प्रभावसे छोटी बड़ी बहुमूल्यकी अनेकों दिव्य मूर्तियें बनायी हैं ॥ ८ ॥ भीमसेनके प्रार्थना करनेपर पवनकुमार हनुमानजीने अर्जुनकी ध्वजामें अपनी मूर्ति स्थापन की है ॥ ९ ॥ विश्वकर्माने उस ध्वजामें ऐसी माया की है कि—वह ध्वजा इधर तिरछेभाग

वै ध्वजः । न संसज्जत्यसौ तरुभिः संवृतो पि तथाहि माया विहिता भौमनेन ॥ १० ॥ यथाकाशे शक्रधनुः प्रकाशते न चैकवर्णं न च विद्मि किन्तु तत् । तथा ध्वजो विहितो भौमनेन बह्वाकारं दृश्यते रूपमस्य ॥ ११॥ यथाग्निधूमो दिवमेति रुद्ध्वा वर्णान् बिभ्रत्तैजसांश्चित्ररूपान् । तथा ध्वजो विहितो भौमनेन न चेद्भारो भविता नोत रोधः१२ श्वेतास्तस्मिन् वातवेगाः सदश्वा दिव्या युक्ताश्चित्ररथेन दत्ताः । भुव्यन्तरिक्षे दिवि वा नरेन्द्र एषां गतिर्हीयते नात्र सर्वा । शतं यत्तत् पूर्यते नित्यकालं हतं हतं दत्तवरं पुरस्तात् ॥ १३ ॥ तथा राज्ञो दन्तवर्णा बृहन्तो रथे युक्ता भान्ति तद्वीर्यतुल्याः । ऋक्षप्रख्या भीमसेनस्य वाहा रथे वायोस्तुल्यवेगा बभूवुः ॥ १४ ॥ कल्माषांगास्तित्तिरिचित्रपृष्ठा भ्रात्रा दत्ता प्रीयता फाल्गुनेन । भ्रातुर्वीरस्य स्वैस्तुरंगैर्विशिष्टा

में और सब दिशाओंमें एक २ योजन तक फहराया करती है और वृक्षोंके झुण्डोंकी आड़ आजाने पर भी उसकी गति नहीं रुकती है१० जैसे वर्षाकालमें आकाशमें इन्द्र धनुष दीखता है वह एक रङ्गका नहीं होता है किंतु अनेकों रङ्गका दीखता है और वह क्या है यह भी जैसे हमारे जाननेमें नहीं आता तैसे ही विश्वकर्माने इस ध्वजाको भी विचित्र रङ्गोंसे बनाया है, इस कारण उसका स्वरूप अनेकों आकारका दीखता है ॥ ११ ॥ अग्निका धुआँ अनेकों प्रकारके तेजोमय विचित्र रूपोंको धारण करके आकाशको ढकता हुआ ऊपरको चढता है, तैसे ही विश्वकर्माने अर्जुनकी ध्वजा बनायी है, उससे रथ पर किसी प्रकारको भार नहीं पड़ता तथा द्वार आदिमें घुसते समय वह ध्वजा अटकती भी नहीं है ॥ १२ ॥ हे नरेन्द्र ! अर्जुनके उस रथमें, श्वेत शरीर, वायुकी समान वेग और उत्तम जाति वाले चित्ररथ गन्धर्वके दिये हुए सब दिव्य घोड़े जोते जाते हैं, जो कि-पृथ्वी आकाश और स्वर्ग सब जगह आजासकते हैं तथा पहिले मिले हुए वरदानके अनुसार उन सौ घोड़ोंमेंसे जितने मरते जाते हैं उतने ही नये होकर सदा सौकी गिनती पूरी रहती है ॥ १३ ॥ राजा युधिष्ठिरके रथमें जो घोड़े जोते जाते हैं वह हाथीदाँतकी समान स्वेत रंगके, बडे ऊँचे और अर्जुनके घोड़ोंकी समान ही बलवान् हैं, भीमसेनके रथके घोड़े सप्तऋषियोंकी समान तेजस्वी हैं, वह रथमें जोते गये तो वायुकी समान वेगमें भर गए ॥ १४ ॥ सहदेवके रथमें जुतनेवाले घोड़े तीतरकी समान चितकबरी पीट वाले हैं और यह घोड़े भाई

मुदा युक्ताः सहदेवं वहन्ति ॥ १५ ॥ माद्रीपुत्रं नकुलं त्वाजमीढ महेन्द्रदत्ता हरयो वाजिमुख्याः । समा वायोर्बलवन्तस्तरस्विनो वहन्ति वीरं वृत्रशत्रुं यथेन्द्रम् ॥ १६ ॥ तुल्यास्चैभिर्वयसा विक्रमेण महाजवाश्चित्ररूपाः सदश्वाः । सौभद्रादीन् द्रौपदेयान् कुमारान् वहन्त्यश्वा देवदत्ता बृहन्तः ॥ १७ ॥

इतिश्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जयवाक्ये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । कांस्तत्र सञ्जयापश्यः प्रीत्यर्थेन समागतान् । ये योत्स्यन्ते पाण्डवार्थे पुत्रस्य मम वाहिनीम् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । मुख्यमन्धकवृष्णीनामपश्यं कृष्णमागतम् । चेकितानं च तत्रैव युयुधानश्च सात्यकिम् ॥ २ ॥ पृथगक्षौहिणीभ्यां तु पाण्डवानभिसंश्रितौ । महारथौ समाख्यातावुभौ पुरुषमानिनौ ॥ ३ ॥ अक्षौहिण्याथ पांचाल्यो दशभिस्तनयैर्वृतः । सत्यजित् प्रमुखैर्वीरैर्धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥४॥

अर्जुनने प्रसन्न होकर सहदेवको दिये हैं तथा अर्जुनके अपने घोड़ोंसे भी यह घोड़े उत्तम हैं और वह बड़ी प्रसन्नतासे सहदेवको सवारी देते हैं ॥ १५ ॥ और हे दुर्योधन ! इन्द्रके दिये हुए वायुकी समान बलवान् और वेगवान् श्रेष्ठ घोड़े माद्रीनन्दन नकुलको इस प्रकार सवारी देते हैं, जैसे वृत्रासुरके वैरी वीर इन्द्रको सवारी दिया करते हैं ॥ १६ ॥ उन घोड़ोंकी समान ही अवस्था और पराक्रम तथा बड़े वेगवाले विचित्र रूपोंके तथा देवताओंके दिये हुए श्रेष्ठ और बड़े २ घोड़े सुभद्रा और द्रौपदीके अभिमन्यु आदि कुमारोंको रथोंमें सवारी दिया करते हैं ॥ १७ ॥ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

फिर धृतराष्ट्रने कहा, कि–हे संजय ! वहाँ पांडवोंके प्रेमके कारण आये हुए किन २ राजाओंको तुमने देखा, कि—जो पांडवोंके लिये मेरे पुत्रकी सेनासे लड़ेंगे ॥ १ ॥ सञ्जय बोला, कि–मैंने अन्धक और वृष्णियोंमें मुख्य श्रीकृष्णको आये हुए देखा और उनके पास ही चेकितान और युयुधान नामसे प्रसिद्ध सात्यकीको भी देखा ॥ २ ॥ पुरुषपनेका अभिमान रखनेवाले ये दोनों महारथी अलग २ एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंकी सहायता करनेको आये हैं ॥ ३ ॥ जिसकी रक्षाका काम शिखण्डीने लिया है ऐसा पाञ्चाल देशका राजा द्रुपद सत्यजित् और धृष्टद्युम्न आदि दश वीर पुत्रोंके साथ एक अक्षौहिणी सेनाको लेकर पाण्डवोंका मान

द्रुपदो वर्द्धयन्मानं शिखण्डिपरिपालितः । उपायात् सर्वसैन्यानां प्रतिच्छाद्य तदा वपुः ॥ ५ ॥ विराटः सह पुत्राभ्यां शंखनैवोत्तरेण च। सूर्यदत्तादिभिर्वीरैर्मदिराक्षपुरोगमैः ॥ ६ ॥ सहितः पृथिवीपालो भ्रातृभिस्तनयैस्तथा । अक्षौहिण्यैव सैन्यानां वृतः पार्थं समाश्रितः ॥७॥ जारासन्धिर्मागधश्च धृष्टकेतुश्च चेदिराट् । पृथक् पृथगनुप्राप्तौ पृथगक्षौहिणीवृतौ ॥ ८ ॥ केकया भ्रातरः पञ्च सर्वे लोहितकध्वजाः । अक्षौहिणीपरिवृताः पाण्डवानभिसंश्रिताः ॥ ९ ॥ एतानेतावतस्तत्र तानपश्यं समागतान् । ये पाण्डवार्थे योत्स्यन्ति धार्त्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥ यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम् । स तत्र सेनाप्रमुखे धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ११ ॥ भीष्मः शान्तनवो राजन् भागः क्लृप्तः शिखण्डिनः । तं विराटोभिसंयाता सार्धं मत्स्यैः प्रहारिभिः १२ ज्येष्ठस्य पाण्डुपुत्रस्य भागो मद्राधिपो बली । तौ तु तत्राब्रुवन्केचिद्विषमौ नो मताविति ॥ १३ ॥ दुर्योधनः सहसुतः सार्धं भ्रातृशतेन

बढानेके लिए आया है और उसने सब सेनाके योधाओंको कवच पहिरा दिए हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ राजा विराट शंख और उत्तर नामके दोनों पुत्र,सूर्यदत्त और मदिराक्ष आदि वीर पुरुष तथा भाइयोंके साथ एक अक्षौहिणी सेनासे घिरकर राजा युधिष्ठिरके पास आया है ॥६॥७॥ जरासन्धका पुत्र मगधदेशका राजा सहदेव और चेदिका राजा धृष्टकेतु यह दोनों अलग २ एक २ अक्षौहिणी सेना लेकर राजा युधिष्ठिरके पास अलग २ आए हैं॥८॥ जिनकी लाल ध्वजा है ऐसे केकयराज पाँचों भाई एक अक्षौहिणी सेनासे घिरकर पांडवोंको सहायता देने आए हैं ॥ ९ ॥ इतने ही राजाओंको मैंने तहाँ आए हुए देखा था, जो पाण्डवोंके लिए आपके पुत्र दुर्योधनकी सेनासे लडेंगे ॥ १० ॥ जो मनुष्योंका, देवताओंका, गन्धर्वोंका और असुरोंका व्यूह रचना जानता है वह महारथी धृष्टद्युम्न वहाँ सेनाका मुख्य अधिपति बनाया गया है ॥११॥ हे राजन् ! शन्तनुके पुत्र भीष्मपितामहके साथ शिखंडीका युद्ध करना नियत किया गया है और उसका पृष्ठरक्षक होकर राजा विराट मत्स्यदेशी योधाओंके साथ उसके पीछे २ चलेगा १२ मद्रदेशके बली राजाके साथ लडना युधिष्ठिरके बाँटमें रक्खा गया है जब यह निश्चय होरहा था उस समय कितनों ही ने कहा था, कि-हमारी समझमें इन दोनोंका युद्ध बराबरीका नहीं है१३दुर्योधन, उसके पुत्र तथा सौ कौरव और पूर्व तथा दक्षिणदेशके राजाओंके साथ

च । प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भीमसेनस्य भागतः १४ अर्जुनस्य तु भागेन कर्णो वैकर्त्तनो मतः।अश्वत्थामा विकर्णश्च सैन्धवश्च जयद्रथः१५ अशक्याश्चैव ये केचित् पृथिव्यां शूरमानिनः । सर्वांस्तानर्जुनः पार्थः कल्पयामास भागतः ॥ १६ ॥ महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पंच केकयाः । केकयानेव भागेन कृत्वा योत्स्यन्ति संयुगे ॥ १७ ॥ तेषामेव कृतो भागो मालवाः शाल्वकास्तथा । त्रिगर्त्तानाञ्च यै मुख्यौ यौ तौ संशप्तकाविति ॥ १८ ॥ दुर्योधनसुताः सर्वे तथा दुःशासनस्य च । सौभद्रेण कृतो भागो राजा चैव बृहद्बलः ॥१९॥ द्रौपदेया महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः । धृष्टद्युम्नमुखा द्रोणमभियास्यन्ति भारत ।२०। चेकितानः सोमदत्तं द्वैरथे योद्धुमिच्छति । भोजन्तु कृतवर्माणं युयुधानो युयुत्सति ॥ २१ ॥ सहदेवस्तु माद्रेयः शूरः संक्रन्दनो युधि । स्वमंशङ्कल्पयास श्यालं ते सुबलात्मजम् ॥२२॥ उलूकं चैव कैतव्यं ये च सारस्वता गणाः । नकुलः कल्पयामास भागं माद्रवतीसुतः ॥२३॥ ये चान्ये पार्थिवा राजन् प्रत्युद्यास्यन्ति संगरे । समाह्वानेन तांश्चापि

युद्ध करनेका काम भीमसेनको सौंपा गया है ॥१४॥ सूर्यनन्दन कर्ण, अश्वत्थामा विकर्ण और सिन्धुदेशके राजा जयद्रथके साथ लड़नेका काम अर्जुनको सौंपा गया है ॥ १५ ॥ इसके सिवाय कितने ही कठिनसे भी जीतनेमें न आने वाले तथा अपनेको शूर मानने वाले राजे हैं उन सबोंके साथ युद्ध करनेका काम भी अर्जुनने अपने ही ऊपर लिया है ॥ १६ ॥ महाधनुषधारी केकय नामके पाँच राजकुमार हमारे पक्षके केकयोंके साथ युद्ध करेंगे ॥ १७ ॥ मालव और शाल्वक तथा त्रिगर्तोंमें मुख्य जो दोनों संशप्तक हैं उनके साथ युद्ध करना भी केकयोंके ही बाँटमें आया है ॥ १८ ॥ दुर्योधनके सब पुत्र तथा दुःशासनके सब पुत्र और राजा बृहद्बल इनके साथ लड़ना सुभद्रानन्दन अभिमन्युने अपने बाँटमें लिया है।१९।हे भारत ! सुनहरी ध्वजावाले बड़े धनुषधारी धृष्टद्युम्नको आगे लिए द्रौपदीके पुत्र द्रोणाचार्यके ऊपर चढ़ाई करेंगे ॥ २० ॥ चेकितान द्विरथ रीति से सोमदत्तके साथ युद्ध करना चाहता है, युयुधान भोजवंशी कृतवर्माके साथ युद्ध करना चाहता है । २१ । माद्रीके पुत्र वीर सहदेव और संक्रन्दको तुम्हारे साले शकुनिके साथ युद्ध करनेका काम सौंपागया है २२ माद्रीनन्दन नकुलने उलूक, कैतव्य और सारस्वत नामक गणोंके साथ लड़ना अपने बाँटमें लिया है ।२३। हे राजन्! जो

पांडुपुत्रा अकल्पयन् ॥ २४ ॥ एवमेषामनीकानि प्रविभक्तानि भागशः यदो कार्यं सपुत्रस्य क्रियतां तदकालिकम् ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । न सन्ति सर्वे पुत्रा मे मूढा दुर्द्यूतदेविनः। येषां युद्धं बलवता भीमेन रणमूर्धनि ॥ २६ ॥ राजानः पार्थिवाः सर्वे प्रोक्षिताः कालधर्मणा। गांडीवाग्निं प्रवेक्ष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥ २७ ॥ विद्रुतां वाहिनीं मन्ये कृतवैरैर्महात्मभिः। तां रणे केऽनुयास्यन्ति प्रभग्नां पांडवैर्युधि२८ सर्वे ह्यतिरथाः शूराः कीर्त्तिमन्तः प्रतापिनः। सूर्यपावकयोस्तुल्या-स्तेजसा समितिञ्जयाः २९ येषां युधिष्ठिरो नेता गोप्ता च मधुसूदनः। योधौ च पांडवौ वीरौ सव्यसाचिवृकोदरौ ॥३०॥ नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः। सात्यकिर्द्रुपदश्चैव धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥३१॥ उत्तमौजाश्च पांचाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः। शिखंडी क्षत्रदेवश्च तथा वैराटिरुत्तरः ।३२। काशयश्चेदयश्चैव मत्स्याः सर्वे च सृञ्जयाः।

और राजे रणमें लडनेके लिए चढ़कर जानेवाले हैं उनके नाम लेकर उनके साथ लड़नेके लिए पांडवोंने अपने कितने ही योधाओंको नियत कर दिया है । २४ । इस प्रकार पांडवोंकी सेनायें जुदे जुदे भागोंमें बटगई हैं, अब तुम्हें या तुम्हारे पुत्रोंको जो कुछ करना हो सो विना विलम्बके करो । २५ । धृतराष्ट्रने कहा, कि-बड़े ही नीच और जुआ खेलनेवाले मेरे सब मूर्ख पुत्र मानों अब मेरे नहीं हैं क्यों कि-अब उनको रणके आगे जाकर बलवान् भीमसेनके साथ युद्ध करना है । २६ । कालरूपी यजमानने सब राजाओंको पशुकी समान जलसे प्रोक्षण करके पवित्र किया है और अब वह पतङ्ग जैसे आगमें गिरपड़ता है तैसे ही गांडीवरूप आगमें प्रवेश करके जल मरेंगे ।२७। मेरे पुत्रोंने जिनके साथ वैर बाँध लिया है ऐसे महात्मा पांडव मेरी समझमें मेरी सेनाको मार भगावेंगे और जब सेनामें भागड पड़ जायगी, उस समय पांडवोंका सामना कौन करेंगे२८ सब ही पांडव अतिरथी, शूर, कीर्त्तिमान्, प्रतापी, तेजमें सूर्य और अग्निकी समान तथा युद्धमें विजय पानेवाले हैं २९ जिनके नेता युधिष्ठिर, रक्षक श्रीकृष्ण और योधा पांडुकुमार वीर अर्जुन और भीमसेन हैं ।३०। नकुल सहदेव, पृषत्का पुत्र धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रुपद, भाइयों सहित धृष्टकेतु३१पंचाल देशका राजा उत्तमौजा,जिसको जीतना बड़ाही कठिन है ऐसा युधामन्यु, शिखण्डी, क्षत्रदेव, विराटका पुत्र उत्तर । ३२ । काशीदेश, चेदिदेश और मत्स्यदेशके राजे सब सृञ्जय, विराटका पुत्र

विराटपुत्रो बभ्रुश्च पांचालाश्च प्रभद्रिकाः ।३३। येषामिन्द्रोऽप्यकामानां न हरेत् पृथिवीमिमाम् । वीराणां रणधीराणां ये भिन्द्युः पर्वतानपि ॥ ३४ ॥ तान् सर्वगुणसम्पन्नानमनुष्यप्रतापिनः । क्रोशतो मम दुष्पुत्रो योद्धुमिच्छति सञ्जय ॥ ३५ ॥ दुर्योधन उवाच । उभौ स्व एकजातीयौ तथोभौ भूमिगोचरौ । अथ कस्मात् पाण्डवानामेकतो मन्यसे जयम् ॥३६॥ पितामहञ्च द्रोणञ्च कृपं कर्णञ्च दुर्जयम् । जयद्रथं सोमदत्तमश्वत्थामानमेव च ॥३७॥ सुतेजसो महेष्वासानिन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः । अशक्तः समरे जेतुं किं पुनस्तात पाण्डवाः ॥३८॥ सर्वे च पृथिवीपाला मदर्थे तात पाण्डवान् । आर्याः शस्त्रभृतः शूराः समर्थाः प्रतिबाधितुम् ॥३९॥ न मामकान् पाण्डवास्ते समर्थाः प्रतिवीक्षितुम् । पराक्रान्तो ह्यहं पांडून् सपुत्रान् योद्धुमाहवे॥४०॥ मत्प्रियं पार्थिवाः सर्वे ये चिकीर्षन्ति भारत । ते तानावारयिष्यंति ऐणेयानिव तन्तुना ॥ ४१ ॥ महता रथवंशेन शरजालैश्च मामकैः । अभिद्रु ता

बभ्रु, पांचालदेश और प्रभद्रक देशके राजे ।३३। यदि ये न चाहें तो इन रणधीर वीर राजोंकी भूमिको इन्द्र भी नहीं छीन सकता और ये चाहें तो पहाड़ोंको भी तोड़डालें ।३४। हे सञ्जय ! ये सब राजे सकल गुणोंसे युक्त और देवताओंकी समान प्रतापशाली हैं मैं बहुतेरा चिल्लाता हूँ कि-इनसे मत लड़ो,परन्तु मेरा दुष्टपुत्र इनके साथ लड़ना ही चाह रहा है ॥ ३५ ॥ दुर्योधनने कहा, कि-हे पिताजी ! हम दोनों एक ही जातिके हैं और एक ही पृथ्वीपर रहते हैं फिर तुम एक ओर पाण्डवोंकी जय ही होगी ऐसा क्यों मान रहे हो ? ॥३६॥ हे पिताजी भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य,कृपाचार्य,कठिनसे जीता जानेवाला कर्ण! जयद्रथ, सोमदत्त और अश्वत्थामा ये सब बड़े तेजस्वी और महाधनुषधारी हैं, इनको देवताओं सहित इन्द्र भी रणमें नहीं हरासकता फिर पाण्डवोंकी तो शक्ति ही क्या है ? ॥ ३७—३८ ॥ हे पिताजी ! शूर और शस्त्रधारी ये सब श्रेष्ठ राजे मेरे लिये पाण्डवोंको बाधा दे सकते हैं ॥ ३९ ॥ पांडव रणमें मेरी ओरके राजाओंकी ओरको आंख उठाकर भी नहीं देखसकते तथा मैं रणमें पुत्रोंसहित पाण्डवोंके साथ लड़नेको और पराक्रम दिखानेको तयार हूँ ॥ ४० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! जो सब राजे मेरा हित करना चाहते हैं वे सब, जैसे व्याधे मृगोंके बच्चोंको पाशमें बांध लेते हैं तैसे ही पांडवोंको घेरलेंगे ४१ और मेरे बाणोंके समूहोंसे पाञ्चाल पाण्डवोंको साथ लेकर आग

भविष्यन्ति पांचालाः पांडवैः सह ॥ ४२ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष सञ्जय । नहि शक्तो रणे जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ४३ ॥ जानाति हि यथा भीष्मः पांडवानां यशस्विनाम् । बलवत्तां सपुत्राणां धर्मज्ञानां महात्मनाम् ॥ ४४ ॥ यतो नारोचयदयं विग्रहं तैर्महात्मभिः । किंतु संजय मे ब्रूहि पुनस्तेषां विचेष्टितम् ॥४५॥ कस्तांस्तरस्विनो भूयः सन्दीपयति पाण्डवान् । अर्चिष्मतो महेष्वासान् हविषा पावकानिव ॥ ४६ ॥ संजय उवाच । धृष्टद्युम्नः सदैवैतान् सन्दीपयति भारत । युध्यध्वमिति मा भैष्ट युद्धाद्भरतसत्तमाः॥४७ ये केचित् पार्थिवास्तत्र धार्त्तराष्ट्रेण संवृताः । युद्धे समागमिष्यन्ति तुमुले शस्त्रसंकुले ॥४८॥ तान् सर्वानाहवे क्रुद्धान् सानुबन्धान् समागतान् ।अहमेकः समादास्ये तिमिर्मत्स्यानिवोदकात् ॥ ४९ ॥ भीष्मं द्रोणं कृपं कर्णं द्रौणिं शल्यं सुयोधनम् ।एतांश्चापि निरोत्स्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥ तथा ब्रुवन्तं धर्मात्मा प्राह राजा युधिष्ठिरः ।

जायँगे ॥ ४२ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे सञ्जय ! ये मेरा पुत्र पागल की समान बलबला रहा है, परन्तु वह रणमें धर्मराज युधिष्ठिरको नहीं जीत सकता ॥ ४३ ॥ जिनका यश फैल रहा है ऐसे धर्मके स्वरूपको जानने वाले महात्मा,पाण्डवोंकी और उनके पुत्रोंकी शक्तिको पितामह भीष्मजी ठीक २ जानते हैं।॥४४॥ इस कारण ही भीष्मजीको इन महात्माओंके साथ कलह करनेकी बात अच्छी नहीं लगी थी तो भी हे संजय! पाण्डव जो कुछ उद्योग कररहे हैं वह सब मुझसे फिर कहो ॥ ४५ ॥ जैसे कोई घृत आदि हवनकी सामग्रियोंसे अग्निको चेतन करदेता है, तैसे ही महातेजस्वी, बडे धनुषधारी और बलवान् पांडवोंको लड़नेके लिये अत्यन्त उत्साह वाले कौन करता है ? ।४६। संजयने कहा कि-हे भरतवंशी राजन् ! धृष्टद्युम्न सदा पांडवोंको लड़नेके लिये उकसाया करता है और कहा करता है, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजाओं ! तुम युद्धसे डरो मत किंतु युद्ध करो । ४७ । दुर्योधनके साथ मेल रखनेवाले चाहे जितने राजे अपने परिवारसहित क्रोध करके शस्त्रोंसे भरे हुए घोर रणमें आवें उन सब इधर उधरसे आये हुए राजाओंको मैं ऐसे पकड़ लूँगा जैसे तिमि नामका बड़ाभारी मत्स्य जलमें मछलियोंको पकड़लेता है ४८-४९ जैसे किनारा समुद्रको रोके रहता है तैसेही मैं अकेला भीष्म,द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण अश्वत्थामा, शल्य और दुःशासन इन सबोंको रोके रहूँगा अर्थात्

तव धैर्यंच वीर्यंच पांचालाः पाण्डवैः सह ॥ ५१ ॥ सर्वैः समभिरुद्धाः स्मः संग्रामान्नः समुद्धर । जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥ ५२ ॥ समर्थमेकं पर्याप्तं कौरवाणां विनिग्रहे । पुरस्तादुपयातानां कौरवाणां युयुत्सताम् ॥ ५३ ॥ भवता यद्विधातव्यं तन्नः श्रेयः परन्तप । संग्रामादपयातानां भग्नानां शरणैषिणाम् ॥ ५४ ॥ पौरुषं दर्शयन् शूरो यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान् । क्रीणीयात्तं सहस्रेण इति नीतिमतां मतम् ॥ ५५ ॥ स त्वं शूरश्च वीरश्च विक्रांतश्च नरर्षभ । भयार्त्तानां परित्राता संयुगेषु न संशयः ॥ ५६ ॥ एवं ब्रुवति कौन्तेये धर्मात्मनि युधिष्ठिरे । धृष्टद्युम्न उवाचेदं मां वचो गतसाध्वसम् । सर्वान् जनपदान् सूत योधा दुर्योधनस्य ये ॥ ५७ ॥ सबाह्लिकान् कुरून् ब्रूयाः प्रातिपेयान् शरद्वतः । सूतपुत्रं तथा द्रोणं सहपुत्रं जयद्रथम् ॥ ५८ ॥ दुःशासनं विकर्णञ्च तथा दुर्योधनं नृपम् । भीष्मं च ब्रूहि गत्वा त्व-

आगेको नहीं बढ़ने दूँगा ॥ ५० ॥ ऐसे कहते हुए धृष्टद्युम्नसे धर्मात्मा युधिष्ठिरने कहा, कि-ये सब पांचाल और पाण्डव तेरे ही बल और वीरताका भरोसा किये बैठे हैं, तू इस संग्रामसे हमें पार लगा, हे महाबाहु ! तू क्षत्रियके धर्म पर डटा हुआ है, इस बातको मैं जानता हूँ ॥ ५१-५२ ॥ तथा अकेला तू ही सब कौरवोंके अभिमानको तोड़ सकता है, इस बातको भी मैं जानता हूँ, हे परन्तप! जिस समय कौरव युद्ध करनेकी इच्छासे आगेको बढ़कर आवें, उस समय तू ऐसा काम करना, कि—जिसमें हमारा कल्याण हो, जिस समय योधा तितर बितर होकर रणमेंसे भागने लगे तथा शरणमें आवे उस समय जो धीर पुरुष अपना पुरुषार्थ दिखा कर रणके मुहाने पर खड़ा रहता है उस पुरुषको सहस्रों सोनेकी मुहरें देकर भी खरीद लेना चाहिये, यह नीति जानने वालोंका मत है ॥ ५३-५५ ॥ हे महात्मा पुरुष ! तू शूर पराक्रमी और रणमें भयसे घबड़ा जानेवालोंका रक्षक है, इसमें ज़रा सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार धर्मात्मा कुन्तीनन्दन, युधिष्ठिर कह रहे थे इतनेमें ही धृष्टद्युम्नने, निर्भय होकर बैठे हुए मुझसे यह बात कही, कि-हे संजय ! तू अब यहाँसे शीघ्र ही हस्तिनापुरको जा विलम्ब न कर और वहाँ जाकर देशके सब लोगोंसे, दुर्योधनके योधाओंसे, बाह्लीकोंसे, प्रतीपवंशके राजाओंसे, थोड़ी अवस्थाके कौरवोंसे, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन, विकर्ण, राजा दुर्योधन और भीष्मजीसे जाकर कहना कि-जिसकी देवता रक्षा

माशु गच्छ च मा चिरम् ॥ ५९ ॥ युधिष्ठिरः साधुनैवाभ्युपेयो मा वोऽवधीदर्जुनो देवगुप्तः । राज्यं दद्ध्व धर्मराज्यस्य तूर्णं याचध्वं वै पाण्डवं लोकवीरम् ॥ ६०॥ नैतादृशो हि योधोऽस्ति पृथिव्यामिह कश्चन । यथा विप्रः सव्यसाची पाण्डवः सत्यविक्रमः ॥६१॥ देवैर्हि संभृतो दिव्यो रथो गाण्डीवधन्वनः । न स जेयो मनुष्येण मा स्म कृद्ध्वं मनो युधि ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जय-
वाक्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । क्षत्रतेजा ब्रह्मचारी कौमारादपि पाण्डवः । तेन संयुगमेष्यन्ति मन्दा विलपतो मम ॥ १ ॥ दुर्योधन निवर्त्तस्व युद्धा-द्भरतसत्तम । न हि युद्धं प्रशंसन्ति सर्वावस्थास्वरिन्दम ॥ २ ॥ अलमर्द्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम् । प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिन्दम ॥ ३ ॥ एतद्धि कुरवः सर्वे मन्यन्ते धर्मसंहितम् ।

करते हैं ऐसा अर्जुन तुम्हारा संहार न करे, इसके लिए तुम श्रेष्ठ उपायोंसे राजा युधिष्ठिरको वशमें करो, शीघ्र ही युधिष्ठिरको राज्य सौंप दो और जिसको सब लोग वीर मानते हैं ऐसे अर्जुनके पास जाकर याचना करो, कि—हम युधिष्ठिरको राज्य देते हैं आप इस बातको स्वीकार करिए ॥ ५७—६० ॥ सव्यसाची, सत्यपराक्रमी अर्जुन जैसा है, ऐसा और कोई योधा तो इस भूतल पर है ही नहीं ॥ ६१ ॥ गाण्डीव धनुषको धारण करने वाले अर्जुनके दिव्य-रथकी देवता रक्षा करते हैं, उसको कोई मनुष्य तो जीत ही नहीं सकता, इसलिए तुम युद्ध करनेका विचार न करो ॥ ६२ ॥ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे बेटा ! धर्मराजमें बालकपनसे ही क्षत्रिय तेज भरा हुआ है और वह बालकपनसे ही ब्रह्मचर्यका पालन कर रहा है, उस धर्मराजके साथ मेरे मूर्ख पुत्र युद्ध करनेको तयार होरहे हैं, इसलिये मैं विलाप करता हूँ ॥ १ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! तू युद्ध करनेको रहने दे, हे परन्तप ! विद्वान् पुरुष किसी अवस्थामें भी युद्धको अच्छा नहीं कहते ॥ २ ॥ तुझे और तेरे मन्त्रियोंको आधा राज्य निर्वाहके लिए बहुत है, इसलिए हे अरिन्दम ! जैसा कि—उचित है-तू पाण्डवोंको आधा राज्य देदे ॥ ३ ॥ तू महात्मा पाण्डवोंके साथ मेल जोलमें समयको विता इस बातको सब

यश्चं प्रशान्ति मन्येथाः पाण्डुपुत्रैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥ अङ्ग मां समवेक्षस्व पुत्र स्वामेव वाहिनीम् । जात एव तवाभावस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ॥ ५ ॥ न त्वहं युद्धमिच्छामि नैतदिच्छति बाह्लिकः । न च भीष्मो न च द्रोणो नाश्वत्थामा न संजयः ॥ ६ ॥ न सोमदत्तो न शलो न कृपो युद्धमिच्छति । सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवास्तथा ॥ ७ ॥ येषु सम्प्रतितिष्ठेयुः कुरवः पीडिताः परैः । ते युद्धं नाभिनन्दन्ति तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥ ८ ॥ न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव । दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ९ ॥ दुर्योधन उवाच ॥ नाहं भवति न द्रोणे नाश्वत्थाम्नि न सञ्जये । न भीष्मे न च काम्बोजे न कृपे न च बाह्लिके ॥ १० ॥ सत्यव्रते पुरुमित्रे भूरिश्रवसि वा पुनः । अन्येषु वा तावकेषु भारं कृत्वा समाह्वयम् ॥११॥ अहञ्च तात कर्णश्च रणयज्ञं वितत्य वै । युधिष्ठिरं पशुं कृत्वा दीक्षितौ भरतर्षभ ॥ १२ ॥ रथो वेदी स्रुवः खड्गो गदा

कौरव धर्मानुकूल मानते हैं ॥ ४ ॥ हे बेटा ! तू अपनी ही सेना पर दृष्टि डाल, यह तेरे नाशकी सूचना देरही है, परन्तु तू अज्ञानवश इस बातको समझता नहीं है ॥५॥ मैं तो युद्धको चाहता ही नहीं, यह बाह्लीक भी युद्धको नहीं चाहता, भीष्म भी युद्धकी इच्छा नहीं रखते और द्रोणाचार्य भी युद्धको नहीं चाहते, अश्वत्थामा और सञ्जय भी नहीं चाहते कि-युद्ध हो ॥ ६ ॥ न सोमदत्त, न शल और न कृपाचार्य ही युद्धको चाहते हैं तथा सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय और भूरिश्रवाका विचार भी युद्धके विरुद्ध ही है ॥ ७ ॥ हे तात ! इस समय कौरव शत्रुओंसे पीड़ा पाकर जिनका आश्रय लें, वह भी युद्धको अच्छा नहीं मानते परन्तु हे तात ! वह युद्ध तुझे अच्छा लगता है ॥ ८ ॥ इस युद्धको तू स्वयं अपनी इच्छासे नहीं करता है, किन्तु कर्ण, दुरात्मा दुःशासन और सुबलका पुत्र शकुनि तुझसे कराता है ॥ ९ ॥ दुर्योधनने उत्तर दिया, कि—कुछ तुम्हारे भरोसे पर, द्रोणाचार्यके भरोसे पर, अश्वत्थामाके भरोसे पर, संजयके भरोसे पर, भीष्मजीके भरोसे पर, काम्बोजके भरोसे पर, कृपाचार्यके भरोसे पर, बाह्लीकके भरोसे पर, सत्यव्रतके भरोसे पर, पुरुमित्रके भरोसे पर, भूरिश्रवाके भरोसे पर वा तुम्हारे दूसरे योधाओंके भरोसे पर मैंने पाण्डवोंको लड़नेके लिए नहीं बुलाया है ॥ १० ॥ ११ ॥ किन्तु मैंने और कर्णने रणयज्ञका आरम्भ करके

स्रुक् कवचं सदः । चातुर्होत्रश्च धुर्या मे शरा दर्भा हविर्यशः ॥ १३ ॥ आत्मयज्ञेन नृपते इष्ट्वा वैवस्वतं रणे । विजित्य च समेष्यावो हतामित्रौ श्रिया वृतौ ॥ १४ ॥ अहञ्च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे । एते वयं हनिष्यामः पाण्डवान् समरे त्रयः ॥ १५ ॥ अहं हि पांडवान् हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम् । मां वा हत्वा पाण्डुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम् ।१६। त्यक्तं मे जीवितं राज्यं धनं सर्वञ्च पार्थिव । न जातु पांडवैः सार्द्धं वसेयमहमच्युत ॥ १७ ॥ यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णायाः विध्येदग्रेण मारिष । तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पांडवान्प्रति ॥ १८ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । सर्वान् वस्तात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया । ये मन्दमनुयास्यध्वं यान्तं वैवस्वतक्षयम् १९ रुरूणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः । वरान् वरान् हनिष्यन्ति समेता युधि पांडवाः ॥२०॥

इसकी दीक्षा ली है और हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! उस यज्ञमें पशु युधिष्ठिरको माना है ॥ १२ ॥ उस रणयज्ञमें रथको वेदी माना है खड्गको स्रुवा, गदाको स्रुच्, कवचको सभा और अपने रथके चारों घोड़ोंको मैंने कर्मके चार मुख्य होता माना है, बाणोंको कुशा और यशको हवि समझा है ॥ १३॥ और हे राजन्! इस रणयज्ञमें आत्मारूपी यागसे यमदेवका यजन करूँगा और शत्रुओंको जीतकर जिनके वैरी मारे गये हैं ऐसे हम राजलक्ष्मीको प्राप्त करते हुये कुशलक्षेमसे आकर मिलेंगे ॥ १४ ॥ हे पिताजी! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन हम तीनों जने रणमें पाण्डवोंका संहार करेंगे ॥ १५ ॥ या तो मैं ही पाण्डवोंको मारकर इस भूतल भरका राज्य करूँगा, अथवा पाण्डुके पुत्र ही मेरा प्राणान्त करके इस भूमिको भोगेंगे ॥ १६ ॥ हे दृढ़चित्त पिताजी! मैं अपने प्राण, राज्य और सब धनको त्यागदूँगा, परन्तु पाण्डवोंके साथ मैं कभी नहीं रहूंगा ॥१७। हे पिताजी! सुईकी सूक्ष्म नोकसे जितना भाग विधजाय, उतनी पृथिवी भी मैं पाण्डवोंके लिये नहीं छोडूंगा॥१८॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-हे तात! दुर्योधनको तो मैंने त्याग दिया, परन्तु यमलोकमें जानेको उद्यत हुए दुर्योधनके पीछे २ तुम कौरव भी यमलोकमें जाओगे, इस कारण मुझे तुम सब कौरवों का शोक है ॥ १९ ॥ जैसे व्याघ्र मृगोंकी बड़ी २ धाँगमेंसे उत्तम उत्तम मृगोंको मार डालते हैं तैसे ही रणमें इकट्ठे हुए पाण्डव भी हमारे उत्तम २ योधाओंको मार डालेंगे ॥ २० ॥ मुझे

प्रतीपमिव मे भाति युयुधानेन भारती। व्यस्ता सीमन्तिनिप्रस्ता प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥ २१ ॥ सम्पूर्णं पूरयन् भूयो बलं पार्थस्य माधवः। शैनयः समरे स्थाता बीजवत् प्रवपन् शरान् ॥ २२ ॥ सेनामुखे प्रयुद्धानां भीमसेनो भविष्यति। तं सर्वे संश्रयिष्यन्ति प्राकारमकुतोभयम् ॥ २३ ॥ यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुंजरान् विनिपातितान्। विशीर्णदन्तान् गिर्याभान् भिन्नकुम्भान् सशोणितान् ॥ २४ ॥ तानभिप्रेक्ष्य संग्रामे विशीर्णानिव पर्वतान्। भीतो भीमस्य संस्पर्शात् स्मर्त्तासि वचनस्य मे ॥ २५ ॥ निर्दग्धं भीमसेनेन सैन्यं रथहतद्विपम्। गतिमग्नेरिव प्रेक्ष्य स्मर्त्तासि वचनस्य मे ॥ २६ ॥ महद्वो भयमागामि न चेच्छाम्यथ पांडवैः। गदया भीमसेनेन हताः शममुपैष्यथ ॥ २७ ॥ महावनमिव च्छिन्नं यदा द्रक्षसि पातितम्। बलं कुरूणां भीमेन तदा

अपनी सेनाका खोटा ही परिणाम प्रतीत होरहा है, जैसे पुरुष अपनी लम्बी भुजासे स्त्रीको पकडकर उसका मर्दन कर डालता है तैसे ही सात्यकी अपने घुटनों तक लम्बी विशाल बाहुसे भरतवंशी दुर्योधनकी सेनाको पकडकर उसका संहार करके अस्तव्यस्त कर डालेगा ॥ २१ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण भी धर्मराजके बलमें पूरी २ वृद्धि किया करते हैं, शिनिका पुत्र सात्यकी रणभूमिमें खडा होकर बीज की समान बाणोंको बरसावेगा ॥ २२ ॥ युद्ध करनेवालोंमें भीमसेन सेनाके मुहाने पर खडा होगा और दूसरे सब योधा पूर्ण रीतिसे निर्भय होकर एक किलेकी समान खडे हुए उस भीमसेनका आश्रय लेंगे ॥ २३ ॥ जिस समय भीमसेनके भूमिपर गिराये हुए, पहाडकी समान ऊँचे, टूटे हुए दांत और गण्डस्थलवाले लोहूलुहान हुए हाथियोंको पृथिवीपर टूटकर गिरे हुए पहाड़ोंकी समान रणमें पडे हुए देखेगा और भीमसेनके पराक्रमसे भयभीत होगा, उस समय तू मेरी बातको याद करेगा ॥ २४-२५ ॥ भीमसेन हाथी, घोडे और रथोंकी सेनाको भस्म करडालेगा, तब उसको और उसकी अग्निकी समान गतिको देखकर तू मेरी बातको याद करेगा ॥ २६ ॥ हमारे ऊपर बडा भारी भय आनेवाला है, इस कारण मैं पाण्डवोंके साथ युद्ध करना नहीं चाहता, तुम भीमसेनकी गदासे मारेजाओगे तब ही शान्त होओगे ॥ २७ । और जब भीमसेन बडे भारी वनकी समान कौरवों के कुलको छाँटकर भूमिपर विछादेगा, और तू उस दशाको देखेगा तब ही तुझे मेरी बात याद आवेगी । २८ । वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे

स्मर्त्तासि मे वचः ॥ २८॥ वैशम्पायन उवाच। एतावदुक्त्वा राजा तु सर्वांस्तान् पृथिवीपतीन्। अनुभाष्य महाराज पुनः प्रपच्छ सञ्जयम्॥२९

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

धृतराष्ट्र उवाच। यदब्रूतां महात्मानौ वासुदेवधनञ्जयौ। तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच। शृणु राजन् यथा दृष्टौ मया कृष्णधनञ्जयौ। ऊचतुश्चापि यद्वीरौ तत्ते वक्ष्यामि भारत २ पादांगुलीरभिप्रेक्षन् प्रयतोऽहं कृतांजलिः। शुद्धान्तं प्राविशं राजन्नाख्यातुं नरदेवयोः ॥ ३ ॥ नैवाभिमन्युर्न यमौ तं देशमभियांति वै। यत्र कृष्णौ च कृष्णा च सत्यभामा च भामिनी ॥ ४ ॥ उभौ मध्वासवक्षीवावुभौ चन्दनरूषितौ।स्रग्विणौ वरवस्त्रौ तौ दिव्याभरणभूषितौ ॥ ५ ॥ नैकरत्नविचित्रन्तु काञ्चनं महदासनम्। विविधास्तरणाकीर्णं यत्रासातामरिन्दमौ ॥ ६ ॥ अर्जुनोत्संगगौ पादौ केशवस्योप-

---

महाराज जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र सब आये हुए राजाओंसे यह बात कह कर, फिर सञ्जयसे बातें करता हुआ उससे पूछने लगा ॥२९॥ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ छ छ छ छ

धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे महाबुद्धिमान् सञ्जय! महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने जो बात कही हो, वह मुझे सुना, क्यों कि—मैं तुझसे वह बात सुनना चाहता हूँ। १। सञ्जय बोला कि—हे भरतवंशी राजन्! श्रीकृष्ण और अर्जुनको मैंने जिस दशामें देखा है सुनो और उन दोनों वीरोंने जो कुछ कहा है, वह भी मैं तुमसे कहूँगा। ।२ ॥ हे राजन्! मैं उन दोनों राजाओंसे आपका सन्देशा कहनेके लिये सरलताके साथ दोनों हाथ जोड़े और अपने चरणकी अंगुलियोंपर दृष्टि लगाये हुए भीतर चला गया ॥३॥ जहां श्रीकृष्ण; अर्जुन द्रौपदी और सत्यभामा बैठ थे उस भवनमें अभिमन्यु और नकुल सहदेव भी नहीं जाने पाते हैं। ४। अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों मधुर आसव पीकर आनन्दमें बैठे थे, उनके शरीर पर चन्दन लगा हुआ था, मालायें पहिरे, सुन्दर वस्त्र धारण किये और दिव्य आभूषणोंसे दमक रहे थे। ५। उस स्थानमें वह शत्रुओंका दमन करनेवाले दोनों वीर जिस पर नाना प्रकारके बिछौने बिछ रहे थे ऐसे तथा अनेकों रत्न जड़े होनेसे विचित्र दीखनेवाले सुवर्णके सिंहासन पर विराजमानथे।६। मैंने जाकर देखा कि-महात्मा श्रीकृष्णके दोनों चरण अर्जुन और सत्य-

लक्षये । अर्जुनस्य च कृष्णायां सत्यायां च महात्मनः ॥ ७ ॥ कांचनं पादपीठन्तु पार्थो मे प्रादिशत्तदा । तदहं पाणिना स्पृष्ट्वा ततो भूमावुपाविशम् ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वरेखातलौ पादौ पार्थस्य शुभलक्षणौ । पादपीठादपहृतौ तत्रापश्यमहं शुभौ ॥ ९ ॥ श्यामौ बृहन्तौ तरुणौ शालस्कन्धाविवोद्गतौ । एकासनगतौ दृष्ट्वा भयं मां महदाविशत् ॥ १० ॥ इन्द्रविष्णुसमावेतौ मन्दात्मा नावबुध्यते । संश्रयाद् द्रोणभीष्माभ्यां कर्णस्य च विकत्थनात् ॥ ११ ॥निदेशस्थायिनौ यस्य मानसस्तस्य सेत्स्यते । संकल्पो धर्मराजस्य निश्चयो मे तदाभवत १२ सत्कृतश्चान्नपानाभ्यामासीनो लब्धसत्क्रियः । अञ्जलिं मूर्ध्नि सन्धाय तौ सन्देशमचोदयम् ॥ १३ ॥ धनुर्गुणकिणांकेन पाणिना शुभलक्षणम् । पादमानमयन् पार्थः केशवं समचोदयत् ॥ १४ ॥ इन्द्रकेतुरिवोत्थाय सर्वाभरणभूषितः । इन्द्रवीर्योपमः कृष्णः संविष्टो माभ्यभाषत ॥१५॥ वाग्मी

भामाकी गोदमें हैं तथा अर्जुनके चरण द्रौपदीकी गोदमें हैं अर्थात् अर्जुन और सत्यभामा श्रीकृष्णके चरण दाबरहे थे और द्रौपदी अर्जुन की चरणसेवा कर रही थी॥७॥अर्जुनने मुझे पैरोंके धरनेकी सोनेकी चौकी बैठनेको दी, परन्तु मैं उसको केवल हाथसे ही छूकर फिर भूमिमें बैठ गया ॥ ८ ॥ जब अर्जुनने अपने दोनों चरण पादपीठ पर से हटाये थे, उस समय मैंने देखा, कि–अर्जुनके उन सुन्दर तलुओंमें शुभ लक्षणरूप ऊँची ऊर्ध्वरेखा थीं ॥ ९ ॥ यह दोनों अर्जुन और श्रीकृष्ण, शरीरमें श्यामवर्ण तरुण अवस्था वाले और सालके वृक्षकी समान ऊँचे थे, उन दोनोंको एक आसन पर बैठे हुए देख कर मुझे तो बड़ा भय लगने लगा ॥१०॥ द्रोणाचार्य और भीष्मजीका आश्रय मिल जानेसे तथा कर्णके झूठी बकवाद करनेसे यह मन्दबुद्धि दुर्योधन, उन इन्द्र और विष्णुकी समान अर्जुन श्रीकृष्णके स्वरूपको नहीं पहचानता है ॥११॥ मुझे तो उस ही समय निश्चय होगया, कि—ये दोनों जिसके आज्ञाकारी हैं उस धर्मराजके मनका विचार अवश्य ही सिद्ध होगा ॥ १२ ॥ तहाँ अन्न पानसे मेरा सत्कार किया गया और सत्कार पानेके अनन्तर जब मैं बैठा तो हाथ जोड़ उनको सिर तक लेजा कर मैंने उन दोनोंसे आपका सन्देशा कहा ॥ १३ ॥ तब अर्जुन ने धनुषकी डोरीकी रगड़के कारण जिसमें ठेठ पड़ गयी है ऐसे हाथ से शुभ चिन्हों वाले कृष्णके चरणको प्रणाम करके उनसे मेरे प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कहा ॥१४॥ तब सब प्रकारके आभूषणोंसे शोभाय-

स वदतां ज्येष्ठो ह्लादिनीं वचनक्षमाम्। त्रासिनीं धार्त्तराष्ट्राणां मृदुपूर्वां सुदारुणाम् ॥ १६ ॥ वाचं तां वचनार्हस्य शिक्षाक्षरसमन्वितोम् अश्रौषमहमिष्टार्थां पश्चाद्धृदयहारिणीम् ॥ १७ ॥ वासुदेव उवाच ॥ सञ्जयेदं वचो ब्रूया धृतराष्ट्रं मनीषिणम्। कुरुमुख्यस्य भीष्मस्य द्रोणस्यापि च शृण्वतः॥१८॥ आवयोर्वचनात् सूत ज्येष्ठानप्यभिवादयन्। यवीयसश्च कुशलं पश्चात् पृष्ट्वैवमुत्तरम् ॥ १९ ॥ यजध्वं विविधैर्यज्ञैर्विप्रेभ्यो दत्तदक्षिणाः। पुत्रैर्दारैश्च मोदध्वं महद्वो भयमागतम् २० अर्थं त्यजत पात्रेभ्यः सुतान् प्राप्नुत कामजान्। प्रियं प्रियेभ्यश्चरत राजा हि त्वरते जये ॥ २१ ॥ ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति। यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥२२॥ तेजोमयं दुराधर्षं गाण्डीवं यस्य कार्मुकम्। मद्द्वितीयेन तेनेह वैरं वः सव्यसा-

मान इन्द्रकी समान पराक्रमी, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी इन्द्रकी ध्वजाकी समान उठकर आसनपर बैठगये और आनन्ददायक, बोलने योग्य परन्तु आपके पुत्रोंको घबड़ाहटमें डालनेवाली, आरंभमें कोमल परंतु बड़ी दारुण वाणीसे मेरे साथ बातें करनेलगे ॥ १५ १६ ॥ और बोलनेकी योग्यता वाले श्रीकृष्णकी, उपदेशके अक्षरोंसे भरीहुई जिस का तात्पर्य बड़ा ही अच्छा लगता था ऐसी पीछेसे हृदयको पकड़ने वाली उस वाणीको मैं सुनने लगा ॥१७॥ कृष्णने कहा कि–हे संजय ! बुद्धिमान् धृतराष्ट्रसे कौरवोंमें मुख्य भीष्मजी और द्रोणाचार्यको सुना कर यह बात कहना ॥ १८ ॥ हे सूत ! पहिले तो हमारी ओरसे बड़ों को प्रणाम कहना और फिर छोटोंसे कुशल पूछकर यह उत्तर देना कि-॥१९॥ तुम अनेकों प्रकारके यज्ञ करके देवताओंको पूजो, ब्राह्मणों को दक्षिणायें दो तथा पुत्र और स्त्रियोंके साथ जो कुछ सुख भोगना हो भोगलो, क्योंकि—तुम्हारे शिर पर बड़ा भारी भय आपहुँचा है।२०। तुम सुपात्र पुरुषोंको धनका दान दो, इच्छापूर्वक सन्तानोंको उत्पन्न करो और अपने प्रिय पुरुषोंके प्यारे काम करो, क्योंकि राजा युधिष्ठिर तुम्हें जीतनेके लिये शीघ्रता कर रहे हैं ॥२१॥ मैं दूर द्वारका में रहता था, द्रौपदीने तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंसे डर कर हे गोविन्द ! हे गोविन्द !! कह कर मुझे बुलाया है इस ऋणको मैंने अभी चुकाया नहीं है, किंतु वह ऋण मेरे ऊपर और बढ़गया है, मेरे हृदय परसे हटता ही नहीं।२२।जिसके पास तेज भरा और किसीसे दबाव न खाने वाला गाण्डीव धनुष है और जिसको मेरी सहायता मिली हुई है

चिना॥२३॥मद्विहितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमिच्छति। यो न काल-परीतो वाप्यपि साक्षात् पुरन्दरः २४ बाहुभ्यामुद्धरेद् भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः। पातयेत् त्रिदिवाद्देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत्॥२५॥ देवासुरमनुष्येषु यक्षगन्धर्वभोगिषु। न तं पश्याम्यहं युद्धे पाण्डवं योऽभ्ययाद्रणे॥२६॥ यत्तद्विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम्। एकस्य च बहूनाञ्च पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ २७ ॥ एकेन पाण्डुपुत्रेण विराटनगरे यदा। भग्नाः पलायत दिशः पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥२८॥ बलं वीर्यंच तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता। अविषादश्च धैर्यंश्च पार्थान्नान्यत्र विद्यते।२९। इत्यब्रवीद्धृषीकेशः पार्थमुद्धर्षयन् गिरा। गर्जन् समयवर्षीव गगने पाकशासनः॥३०॥ केशवस्य वचः श्रुत्वा किरीटी श्वेतवाहनः। अर्जुनस्तन्महद्वाक्यमब्रवीद्रोमहर्षणम्॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयेन श्रीकृष्णवाक्यकथन एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

उस सव्यसाची अर्जुनके साथ तुम्हारा वैर हुआ है॥ २३ ॥ जिसको काल चारों ओरसे नहीं घेर रहा है ऐसा कौन पुरुष मेरी सहायता पाये हुए अर्जुनसे युद्ध करनेको प्रार्थना करना चाहेगा ?, दूसरेकी तो बातही क्या ? साक्षात् इंद्र भी अर्जुनके सामने नहीं आसकता२४ जो अर्जुनको रणमें जीत लेय वह तो अपनी भुजाओंसे भूमण्डलको उठासकता है और क्रोधमें भर जाय तो सब प्रजाको भस्म कर डाले तथा देवताओंको भी स्वर्गमेंसे धकेलकर गिरा देय ॥ २५ ॥ देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, और नागोंमें मैं ऐसा नहीं देखता कि— जो रणभूमिमें पाण्डुनंदन अर्जुनके सामने आकर लड़े ॥ २६ ॥ यह जो विराट नगरमें अनेकों योधाओंके साथ अकेले अर्जुनने ही युद्ध किया था, उसका जो बड़े अचरजका वृत्तांत सुनते हैं वही इसका दृष्टांत है २७ जब विराटनगरमें अकेले ही अर्जुनने कौरवोंमें भगद़ डालदी थी और सब कौरव इधर उधरको भाग गये थे, यह दृष्टांत ही बहुत है२८बल, वीरता तेज, कामको शीघ्र ही समझाना,प्राणोंको छोड़नेमें फुरती,आनंद और धीरज इतनी बातें अर्जुनको छोड़कर और किसी में इकट्ठी हैं ही नहीं२९समय पर वर्षा करनेवाला,मेघ जैसे आकाशमें गरज उठता है तैसेही इंद्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण भी समय पर अपनी वाणीसे अर्जुनको उत्साह दिलाते हुए गरजकर इसप्रकार बोले थे३० फिर श्वेत घोड़ोंवाला अर्जुन,केशवकी बात सुनकर रोंगटे खड़े करने वाली बड़ी मर्मभरी बात कहने लगा ३१ उनसठवां अध्याय समाप्त॥

वैशम्पायन उवाच । सञ्जयस्य वचः श्रुत्वा प्रज्ञाचक्षुर्जनेश्वरः । ततः संख्यातुमारेभे तद्वचो गुणदोषतः ॥ १॥ प्रसंख्याय च सौक्ष्म्येण गुणदोषान् विचक्षणः । यथावन्मतितत्त्वेन जयकामः सुतान् प्रति ॥२॥ बलाबलं विनिश्चित्य याथातथ्येन बुद्धिमान् । शक्तिं संख्यातुमारेभे तदा वै मनुजाधिपः ॥ ३ ॥ देवमानुषयोः शक्त्या तेजसा चैव पाण्डवान् । कुरून् शक्त्याल्पतरया दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ४ ॥ दुर्योधनेयं चिन्ता मे शश्वन्न व्युपशाम्यति । सत्यं ह्येतदहं मन्ये प्रत्यक्षं नानुमानतः ॥ ५ ॥ आत्मजेषु परं स्नेहं सर्वभूतानि कुर्वते । प्रियाणि चैषां कुर्वन्ति यथाशक्तिहितानि च ॥६॥ एवमेवोपकर्तॄणां प्रायशो लक्षयामहे । इच्छन्ति बहुलं सन्तः प्रतिकर्तुं महत् प्रियम् ।७। अग्निः साचिव्यकर्त्ता स्यात् खाण्डवे तत्कृतं स्मरन्। अर्जुनस्यापि भीमेऽस्मिन् कुरुपाण्डुसमागमे ॥ ८ ॥ जातिगृद्ध्याभिपन्नाश्च पाण्डवानामनेकशः । धर्मादयः समेष्यन्ति समाहूता दिवौकसः ॥ ९ ॥ भीष्मद्रोणकृपादीनां

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! अन्धा राजा धृतराष्ट्र सञ्जयकी यह बात सुनकर फिर श्रीकृष्णके वचनोंसे गुण और दोषोंकी गणना करने लगा ॥ १ ॥ अपने पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने यथार्थ रीति पर सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्रकारसे गुण दोष और बलाबलका विचार किया, फिर प्रभाव मन्त्र और उत्साह इन तीनों शक्तियोंका भी दोनों पक्षके विषयमें विचार करनेलगा।२।३ अन्तमें राजा धृतराष्ट्रकी समझमें आया कि—पाण्डवोंमें देवताओंकी शक्ति मनुष्योंकी शक्ति और तेज है तथा कौरवोंकी शक्ति बहुत थोड़ी है, फिर दुर्योधनसे कहने लगा, कि-॥४॥ हे दुर्योधन ! मेरी यह चिन्ता किसी समय भी शान्त नहीं होती, मेरा जो कुछ विचार है वह अनुमानसे नहीं है, किन्तु मैं इस बातको प्रत्यक्ष और सत्य मानता हूँ । ५ । सब ही प्राणी अपने पुत्रोंके ऊपर परम प्रेम करते हैं तथा अपनी शक्ति भर उनका प्रिय और हित भी करते हैं ॥ ६ ॥ ऐसे ही हम देखते हैं, कि—सत्पुरुष ।उपकार करने वालोंके उपकारका बदला चुकानेके लिये प्रायः उनका परमप्रिय काम करनेकी इच्छा करते हैं । ७ । इस लिए इस कौरव पाण्डवोंके भयानक युद्धमें अग्निदेवता भी खाण्डव वनमें अर्जुनके किए हुए उपकारको याद करके उसकी सहायता करेंगे ॥ ८ ॥ तथा अपने अंशोंसे जन्म धारण करनेके कारण उनके पितारूप धर्म आदि अनेकों देवता भी पाण्डवोंके

भयाद्वशनिसन्निभम् । रिरक्षिषन्तः संरम्भं गमिष्यन्तीति मे मतिः१० ते देवैः सहिताः पार्था न शक्याः प्रतिवीक्षितुम् । मानुषेण नरव्याघ्रा वीर्यवन्तोऽस्त्रपारगाः ॥ ११ ॥ दुरासदं यस्य दिव्यं गाण्डीवं धनुरुत्तमम् । दारुणौ चाक्षयौ दिव्यौ शरपूर्णौ महेषुधी ।१२। वानरश्च ध्वजे दिव्यो निःसङ्गो धूमवद्गतिः । रथश्च चतुरन्तायां यस्य नास्ति समः क्षितौ ॥१३॥ महामेघनिभश्चापि निर्घोषः श्रूयते जनैः । महाशनिसमः शब्दः शात्रवाणां भयंकरः ॥ १४ ॥ यश्चातिमानुषं वीर्यं कृत्स्नो लोको व्यवस्यति । देवानामपि जेतारं यं विदुः पार्थिवा रणे ॥१५॥ शतानि पञ्च चैवेषून् यो गृह्णन्नेव दृश्यते । निमेषांतरमात्रेण मुञ्चन् दूरञ्च पातयन् ॥ १६ ॥ यमाह भीष्मो द्रोणश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च । मद्रराजस्तथा शल्यो मध्यस्था ये च मानवाः ॥१७॥ युद्धायावस्थितं पार्थं

बुलानेपर उनकी सहायता करनेको आवेंगे । ९ । मेरी समझमें भीष्म द्रोण और कृपाचार्य आदिके भयसे पाण्डवोंकी रक्षा करना चाहते हुए देवता वज्रकी समान क्रोधके वशमें भी होजायँगे ॥ १० ॥ जो आप ही बड़े पराक्रमी और अस्त्रोंके पारगामी हैं उन देवताओंको सहायता पाये हुए पाण्डवोंकी ओरको तो कोई मनुष्य आंख उठाकर भी नहीं देख सकेगा ॥ ११ ॥ अर्जुनका गाण्डीव नामवाला दिव्य धनुष ऐसा उत्तम है कि-कोई उसका तिरस्कार नहीं कर सकता, उसके दोनों भाथे भी कभी दारुण बाणोंसे खाली न रहनेवाले, किंतु दिव्य हैं और सदा बाणोंसे भरे हुए रहते हैं ।१२। और उसकी ध्वजा में दिव्य वानर बैठा हुआ है, उसकी गति धुएँकी समान कहीं भी नहीं रुकती है तथा उसका रथ भी ऐसा ही है कि-जिसकी जोड़का दूसरा रथ भूमण्डल पर चारों खूंटमें कहीं नहीं है ॥ १३ ॥ उसकी रथकी झनझनाहटको जब लोग सुनते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, है, कि-मानों बड़ी भारी घटा गरज रही है और उसके रथके शब्द को शत्रु सुनते हैं तो उनको बड़े भारी वज्रपातकी समान भयानक मालूम होता है । १४ । और जिस अर्जुनको सब ही लोग वीरतामें मनुष्योंकी शक्तिके बाहर काम करनेवाला मानते हैं और राजे जिसको रणमें देवताओंको भी जीतने वाला मानते हैं ।१५। वह अर्जुन पलक मारने मात्र समयमें इस प्रकार पांचसौ बाणोंको तरकससे लेता, छोड़ता और दूर शत्रुओंके ऊपर गिराता है कि-उसको कोई दृष्टिसे देख भी नहीं पाता ॥१६॥ भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अश्वत्थामा,

पार्थिवैरतिमानुषैः । अशक्यं रथशार्दूलं पराजेतुमरिन्दमम्॥१८॥क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्चबाणशतानि यः । सदृशं बाहुवीर्येण कार्तवीर्यस्य पाण्डवम् ॥ १९ ॥ तमर्जुनं महेष्वासं महेन्द्रोपेन्द्रविक्रमम् । निघ्नन्तमिव पश्यामि विमर्देऽस्मिन् महाहवे ॥ २० ॥ इत्येवं चिन्तयन् कृत्स्नमहोरात्राणि भारत। अनिद्रो निःसुखश्चास्मि कुरूणां शमचिंतया॥२१ क्षयोदयोऽयं सुमहान् कुरूणां प्रत्युपस्थितः । अस्य चेत् कलहस्यान्तः शमादन्यो न विद्यते ॥२२॥ शमो मे रोचते नित्यं पार्थैस्तात न विग्रहः। कुरुभ्यो हि सदा मन्ये पाण्डवान् शक्तिमत्तरान् ॥ २३ ॥ ⁂

इतिश्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रविवेचने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

वैशम्पायन उवाच । पितुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः । आधाय विपुलं क्रोधं पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अशक्या देवसचिवाः पार्थाः स्युरिति यद्भवान् । मन्यते तद्भयं व्येतु भवतो राजसत्तम ॥२॥

मद्रराज शल्य तथा दूसरे मध्यस्थ पुरुष कहते हैं, कि–जब शत्रुओंका दमन करनेवाला और रथियोंमें सिंहसमान अर्जुन युद्ध करनेको खड़ा होय तो अलौकिक बलवाले राजे भी उसको नहीं हरा सकते।१७।१८। जो एक वेगमें पाँचसौ बाण फेंकता है और जिसका भुजबल सहस्राबाहुकी समान है उस महाधनुर्धारी, महेन्द्र और उपेन्द्रकी समान पराक्रमी अर्जुनको मैं इस महासंहारकारी घोर युद्धमें मारता हुआ सा देख रहा हूं । १९-२० । हे भरतवंशी बेटा दुर्योधन ! इस प्रकार मैं रातभर और दिनभर निरन्तर चिन्ता किया करता हूं और कौरवों का कल्याण कैसे हो ? इस चिन्ताके कारण मुझे न निद्रा ही आती है न सुख ही मिलता है ।२१। यह तो कौरवोंके बड़े भारी नाशका अवसर आलगा है, यदि इस कलहकी शान्ति होगी तो सन्धि करनेसे ही होगी, इसका और कोई उपाय है ही नहीं ।२२। हे बेटा ! मुझे तो पाण्डवोंके साथ सदा सन्धि रखना ही अच्छा लगता है,कलह अच्छा नहीं मालूम होता, क्यों कि–मैं तो पाण्डवोंको सदा कौरवोंसे बहुत अधिक शक्तिवाले मानता हूं । २३ । साठवां अध्याय समाप्त । ६० ।

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! महाक्रोधी दुर्योधन पिताकी इस बातको सुनते ही बड़ा क्रोध दिखला कर फिर भी यह बात कहने लगा कि–॥ १ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! आप जो समझ रहे हैं, कि–देवताओंकी सहायता पाये हुए पाण्डव जीतनेमें नहीं आसकेंगे

अकामद्वेषसंयोगाल्लोभाद् द्रोहाच्च भारत । उपेक्षया च भावानां देवा देवत्वमाप्नुवन् ॥ ३ ॥ इति द्वैपायनो व्यासो नारदश्च महातपाः । जामदग्न्यश्च रामो नः कथामकथयत् पुरा ॥ ४ ॥ नैव मानुषवद्देवाः प्रवर्त्तन्ते कदाचन । कामात् क्रोधात् तथा लोभाद् द्वेषाच्च भरतर्षभ ॥ ५ ॥ यदा ह्यग्निश्च वायुश्च धर्म इन्द्रोऽश्विनावपि कामयोगात् प्रवर्त्तेरन्न पार्था दुःखमाप्नुयुः ॥ ६ ॥ तस्मान्न भवता चिन्ता कार्यैषा स्यात् कथञ्चन । दैवेष्वपेक्षका ह्येते शश्वद्भावेषु भारत ७ अथ चेत् कामसंयोगाद् द्वेषो लोभश्च लक्ष्यते । दैवेषु दैवप्रामाण्यान्नैषां तद्विक्रमिष्यति ॥ ८ ॥ मयाभिमन्त्रितः शश्वज्जातवेदाः प्रशाम्यति । दिधक्षुः सकलाँल्लोकान् परिक्षिप्य समन्ततः ॥ ९ ॥ यद्वा परमकं तेजो येन युक्ता दिवौकसः । ममाप्यनुपमं भूयो देवेभ्यो विद्धि भारत १० विदीर्यमाणां वसुधां गिरीणां शिखराणि च । लोकस्य पश्यतो राजन्

सो आपका यह भय दूर हो ॥ २ ॥ क्योंकि-हे पिताजी ! इन देवताओंने राग द्वेषके अभावसे लोभ और द्रोहसे रहित होनेके कारण तथा संसारके विषयोंमें उपेक्षा रखनेसे ही देवपना पाया है ॥ ३ ॥ यह कथा हमसे पहिले कृष्णद्वैपायन व्यासजी, महातपस्वी नारदजी और जमदग्निके पुत्र परशुरामजीने कही थी ॥४॥ हे पिताजी ! देवता कभी भी किसी भी काममें मनुष्योंकी समान, कामसे, क्रोधसे लोभ से तथा द्वेषसे प्रवृत्त नहीं होते हैं ॥ ५ ॥ यदि अग्नि, वायु, धर्म, इन्द्र और अश्विनीकुमार पाण्डवोंके लिये इच्छा करके उनका भला करने में प्रवृत्त होते तो पाण्डव दुःख न पाते ॥ ६ ॥ हे पिताजी! इसकारण से ऐसी चिन्ता आपको कभी भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि-यह देवता तो शम, दम आदि दैवी पदार्थोंमें ही ध्यान देते हैं, काम क्रोध आदि आसुरी पदार्थोंसे बचते हैं ॥ ७ ॥ और कदाचित् देवताओंमें रागके कारणसे द्वेष और लोभ देखनेमें आजाय तो भी हमारा प्रारब्ध प्रबल होनेसे देवताओंका क्रोध हमारा कुछ भी नहीं कर सकेगा ८ इस पर भी यदि अग्निदेवता सब लोकोंको जला कर भस्म कर डालनेकी इच्छासे चारों ओर फैल जायगा तो वह मेरे मन्त्र पढ़ कर जल छिड़कनेसे सदा शान्त होजाया करता है ॥ ९ ॥ यदि आप कहें कि-जिसको देवताओंने पाया है वह तेज तो बड़ा भारी है तो हे भरतवंशी पिताजी ! आप मेरे तेजको भी देवताओंसे विलक्षण और बड़ा भारी समझिए ॥ १० ॥ हे राजन् ! मैं फटती हुई भूमिको और

स्थापयाम्यभिमन्त्रणात् ॥ ११ ॥ चेतनाचेतनस्यास्य जङ्गमस्थावरस्य च । विनाशाय समुत्पन्नमहं घोरं महास्वनम् ॥ १२ ॥ अश्मवर्षं च वायुञ्च शमयामीह नित्यशः । जगतः पश्यतोऽभीक्ष्णं भूतानामनुकम्पया ॥ १३ ॥ स्तम्भितास्वप्सु गच्छन्ति मया रथपदातयः । देवासुराणां भावानामहमेकः प्रवर्त्तिता ॥ १४ ॥ अक्षौहिणीभिर्यान् देशान् यामि कार्येण केनचित् । तत्राश्वा मे प्रवर्त्तन्ते यत्र यत्राभिकामये १५ भयानकानि विषये व्यालादीनि न सन्ति मे । मन्त्रगुप्तानि भूतानि न हिंसन्ति भयंकराः ॥ १६ ॥ निकामवर्षी पर्जन्यो राजन् विषयवासिनाम् । धर्मिष्ठाश्च प्रजा सर्वा ईतयश्च न सन्ति मे ॥ १७ ॥ अश्विनावथ वाय्वग्नी मरुद्भिः सह वृत्रहा । धर्मश्चैव मया द्विष्टान् नोत्सहन्तेऽभिरक्षितुम् ।१८। यदि ह्येते समर्थाः स्युर्मद्विस्त्रातुमञ्जसा । न स्म त्रयोदशसमाः पार्था दुःखमवाप्नुयुः ॥ १९ ॥ नैव देवा न गंधर्वा नासुरा न च राक्षसाः । शक्तास्त्रातुं मया द्विष्टं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते२०

पहाड़ोंके शिखरोंको लोकोंके देखते हुए मन्त्र पढ कर फटनेसे रोक सकता हूँ ॥ ११ ॥ चेतन अचेतन चराचर जगत्का नाश करनेके लिए उत्पन्न हुए, बड़ा भारी शब्द करनेवाले और पत्थरों (ओलों) की वर्षा करते हुए घोर वायुको मैं अनेकोंबार प्राणियोंके ऊपर दया आनेके कारण सब जगत्के देखतेहुए शान्त कर दिया करता हूँ१२।१३ मैं बहते हुए जलको रोक देता हूँ तो रथ और पैदल सहजमें पार हो जाते हैं, मैं देवताओंके और असुरोंके प्रभावोंको चलानेमें अद्वितीय हूँ ॥ १४॥ मैं किसी कामसे कई २ अक्षौहिणी सेनाओंको साथ लेकर जिन देशोंमें जाता हूं तथा जहाँ २ मैं जाना चाहता हूँ तहाँ २ मेरे घोड़े वेरोक टोक बढ़ते चले जाते हैं ॥ १५ ॥ मेरे देशमें सर्प आदि भयानक जीव नहीं हैं, वह भयानक प्राणी मन्त्रोंसे रक्षा किये हुए जीवोंकी हिंसा नहीं कर सकते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! मेघ मेरे देशवासियोंकी इच्छाके अनुसार बरसता है, मेरी सब प्रजा धर्माचरण करती है और मेरे देशमें अधिक वर्षा अवर्षा आदि छः कारणोंसे होनेवाला दुर्भिक्ष भी नहीं पड़ता है॥१७॥ मैं जिससे बैर करता होऊँ उनकी रक्षा अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, मरुत् देवताओं सहित इंद्र और धर्म भी नहीं कर सकता । १८ । यदि वह देवता मेरे शत्रुओंकी सहजमें रक्षा कर सकते होते तो पाण्डव तेरह वर्ष तक दुःख न भोगते ॥ १९ ॥ मैं आपसे कहता हूँ, जिससे मैं द्वेष करने लगूँ उस

यदभिध्याम्यहं शश्वच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् । नैतद्विपन्नपूर्वं मे मित्रेष्वरिषु चोभयोः ॥२१॥ भविष्यतीदमिति वा यद् ब्रवीमि परंतप नान्यथा भूतपूर्वं च सत्यवागिति मां विदुः ॥ २२ ॥ लोकसाक्षिकमेतन्मे माहात्म्यं दिक्षु विश्रुतम् । आश्वासनार्थं भवतः प्रोक्तं न श्लाघया नृप ॥ २३ ॥ नह्यहं श्लाघनो राजन् भूतपूर्वः कदाचन । असद्वाचरितं ह्येतद्यदात्मानं प्रशंसति ॥ २४ ॥ पाण्डवांश्चैव मत्स्यांश्च पञ्चालान् केकयैः सह । सात्यकिं वासुदेवञ्च श्रोतासि विजितान्मया ॥ २५ ॥ सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः । तथैव ते विनंक्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः ॥ २६॥ परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम परा विद्या परो योगो मम तेभ्यो विशिष्यते ॥२७॥ पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तथा । अस्त्रेषु यत् प्रजानन्ति सर्वं तन्मयि विद्यते२८

की रक्षा न देवता ही कर सकते हैं, न गन्धर्व ही कर सकते हैं, न असुर ही कर सकते हैं और न राक्षस ही कर सकते हैं ॥ २० ॥ मैं सदा शुभ वा अशुभ जो कुछ चिंतवन करता हूँ, वह मेरा विचार मेरे शत्रु और मित्रोंमें आजतक कभी विपरीत नहीं हुआ है ॥ २१ ॥ हे परन्तप ! यह होगा वा ऐसा होगा, इस प्रकार मैं जो कुछ भी कह देता हूँ आज तक उसके विपरीत नहीं हुआ है, इस लिये लोग मुझे सत्यवक्ता मानते हैं ॥२२॥ हे राजन् ! मेरे इस प्रभावके लोग साक्षी हैं और चारों ओर प्रसिद्ध है यह मैंने आपको धीरज दिलानेके लिये कहा है, अपनी प्रशंसा करनेके लिये नहीं कहा है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! मैंने कभी पहिले भी अपनी प्रशंसा नहीं की थी, क्योंकि-जो मनुष्य अपनी प्रशंसा करता है वह उसका खोटा काम है ॥ २४ ॥ आप इस बातको सुनेंगे, कि-पाण्डव, मत्स्य, केकयों सहित पाञ्चाल, सात्यकी और श्रीकृष्ण इन सबोंको मैंने जीत लिया ॥२५॥ जैसे नदियें समुद्र में पहुँच कर जड़मूलसे नष्ट होजाती हैं तैसे ही सब पाण्डव भी मेरे पास पहुँचते ही कुटुम्ब सहित नष्ट होजायंगे ॥ २६ ॥ मेरी श्रेष्ठबुद्धि श्रेष्ठ तेज, श्रेष्ठ शारीरिक बल, श्रेष्ठ विद्या और श्रेष्ठ योग उन पाण्डवोंसे अधिक श्रेष्ठ हैं ॥ २७ ॥ पितामह भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य और शल ये अस्त्रोंके विषयमें जितना जानते हैं वह सब जानकारी मुझमें भी है ॥ २८ ॥ हे भरतवंशी जनमेजय ! परंतप दुर्योधन इस प्रकार कह कर युद्ध करनेकी इच्छा वाले युधिष्ठिरके

इत्युक्त्वा सञ्जयं भूयः पर्यपृच्छत भारत । ज्ञात्वा युयुत्सोः कार्याणि प्राप्तकालमरिन्दमः ॥ २९ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि दुर्योधन-वाक्य एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन उवाच। तथा तु पृच्छन्तमतीव पार्थं वैचित्रवीर्यं तमचिंतयित्वा। उवाच कर्णो धृतराष्ट्रपुत्रं प्रहर्षयन् संसदि कौरवाणाम् १ मिथ्या प्रतिज्ञाय मया यदस्त्रं रामात् कृतं ब्रह्ममयं पुरस्तात्। विज्ञाय तेनास्मि तदैवमुक्तस्ते नान्तकाले प्रतिभास्यतीति॥२॥महापराधे ह्यपि यन्न तेन महर्षिणाहं गुरुणा च शप्तः। शप्तः प्रदग्धुं ह्यपि तिग्मतेजाः ससागरामप्यवनिं महर्षिः ॥ ३ ॥ प्रसादितं ह्यस्य मया मनोऽभूच्छुश्रूषया स्वेन च पौरुषेण। तदस्ति चास्त्रं मम सावशेषं तस्मात् समर्थोऽस्मि ममैष भारः४निमेषमात्रात्तमृषेः प्रसादमवाप्य पाञ्चालकरूषमत्स्यान्। निहत्य पार्थान् सह पुत्रपौत्रैर्लोकानहं शस्त्रजितान् प्रपत्स्ये ५ पितामह-

---

सब कामोंको जान लेनेके अनन्तर समयोचित बातोंको जाननेके लिये फिर सञ्जयसे पूछने लगा ॥ २९ ॥ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र ने अर्जुनके विषयमें बहुत कुछ पूछा, उसको कुछ न विचार कर कौरवोंकी सभामें धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनका उत्साह बढ़ाता हुआ कर्ण कहने लगा कि-॥ १ ॥ पहिले जो मैंने झूठी प्रतिज्ञा करके अर्थात् मैं ब्राह्मणका कुमार हूँ ऐसी झूठी बात कह कर परशुरामजीसे ब्रह्मास्त्रविद्या सीखी थी, पीछे मैं ब्राह्मणकुमार नहीं हूं, किंतु सूतपुत्र हूं, इस बातको जान लेनेपर गुरु और महर्षि परशुराम जीने, मेरे बड़े भारी अपराध करने पर भी मुझसे उसी समय कहा, कि यह अपराध करनेके कारण तू अन्तकालमें ब्रह्मास्त्रके ज्ञानको भूल जायगा, ऐसा शाप दिया था वह समुद्र सहित पृथ्वीको भस्म कर सकते थे और महाक्रोधी थे, तो भी उन्होंने मुझे दूसरा शाप नहीं दिया ॥ २-३ ॥ मैंने सेवा करके और अपने पुरुषार्थसे उन महर्षिके मनको प्रसन्न कर लिया था, इस कारण अभी तक ब्रह्मास्त्र मेरे पास है, और मेरी आयु अभी शेष है, इसकारण मैं अर्जुनको जीतसकता हूँ और यह भार मेरे ऊपर रहा ॥ ४ ॥ मैं उन महर्षिके अनुग्रहको पाकर पलक मारनेमात्र समयमें पाञ्चाल, करूषक, मत्स्य और पांडवों को बेटे पोतों सहित मार डालूँगा और फिर मैं शस्त्रसे जीते हुए

स्तिष्ठतु ते समीपे द्रोणश्च सर्वे च नरेन्द्रमुख्याः। यथाप्रधानेन बलेन गत्वा पार्थान् हनिष्यामि ममैष भारः॥६॥ एवं ब्रुवन्तं तमुवाच भीष्मः किं कत्थसे कालपरीतबुद्धे। न कर्ण जानासि यथा प्रधाने हते हताः स्युर्धृतराष्ट्रपुत्राः॥७॥ यत् खाण्डवं दाहयता कृतं हि कृष्णद्वितीयेन धनञ्जयेन। श्रुत्वैव तत् कर्म नियन्तुमात्मा युक्तस्त्वया वै सहबान्धवेन ॥ ८ ॥ यां चापि शक्तिं त्रिदशाधिपस्ते ददौ महात्मा भगवान्महेन्द्रः। भस्मीकृतां तां समरे विशीर्णां चक्राहतां द्रक्ष्यसि केशवेन ॥ ९ ॥ यस्ते शरः सर्पमुखो विभाति सदाग्र्यमाल्यैर्महितः प्रयत्नात्। स पाण्डुपुत्राभिहतः शरौघैः सह त्वया यास्यति कर्ण नाशम् १० बाणस्य भौमस्य च कर्ण हन्ता किरीटिनं रक्षति वृष्णिदेवः। यस्त्वादृशानां च गरीयसां च हन्ता रिपूणां तुमुले प्रगाढे ॥ ११ ॥ कर्ण उवाच। असंशयं वृष्णिपतिर्यथो-

सब लोकोंको पाजाऊँगा ५ पितामह भीष्मजी, द्रोणाचार्य और सब मुख्य २ राजाओंको आप अपने पास ही रहने दीजिये, मैं ही अपनी मुख्य सेनाके साथ जाकर पाण्डवोंको मार डालूँगा, इस कामका भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ ॥ ६ ॥ इस प्रकार कर्ण कह रहा था कि उसका हास्य करते हुए भीष्मजीने उससे कहा, कि--अरे! कर्ण ! तेरी बुद्धि कालभगवान्ने उलटी करदी है, तू क्या बकरहा है, तुझे खबर नहीं है कि-मुख्य प्रधान पुरुषके मारे जाते ही ये धृतराष्ट्रके पुत्र भी मारेजायँगे ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णकी सहायता पाये हुए अर्जुनने खांडव वनको जलातेमें जो पराक्रम किया है, उसको ही सुन कर तुझे और तेरे भाइयोंको अपना आपा वशमें रखना चाहिये ॥ ८ ॥ अरे स्वर्गके स्वामी, महात्मा, भगवान् इंद्रने तुझे जो शक्ति दी है उसको रण भूमिमें श्रीकृष्णजी अपने सुदर्शन चक्रसे तोड़ डालेंगे और भस्म कर डालेंगे, इस बातको तू अपनी आँखोंसे देखेगा ॥ ९ ॥ हे कर्ण! जो तेरा सर्पकेसे मुख वाला बाण चमक रहा है, जिसका कि—तू सदा उद्योगके साथ सुन्दर फूलोंसे पूजा किया करता है, वह पांडुनन्दन अर्जुनके बाणोंकी चोटसे टुकड़े २ होकर नष्ट होजायगा और इसके साथ ही तेरा भी नाश होजायगा ॥ १० ॥ अरे कर्ण! भौमासुर और बाणासुरका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं जो कि महाघोर गाढ़ा संग्राम होने पर तुझ सरीखे योधाओंका और तुझसे भी बड़े २ योधाओंका नाश करेंगे ॥ ११ ॥ यह सुनकर कर्ण कहने लगा, कि—भीष्मपितामहने वृष्णिकुलके स्वामी श्रीकृष्णजीका जो

कस्तथा च भूयश्च ततो महात्मा । अहं यदुक्तः परुषन्तु किञ्चित् पितामहस्तस्य फलं शृणोतु॥१२॥ न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये पितामहो द्रक्ष्यति मां सभायाम् । त्वयि प्रशान्ते तु मम प्रभावं द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्येवमुक्त्वा स महाधनुष्मान् हित्वा सभां स्वं भवनं जगाम । भीष्मस्तु दुर्योधनमेव राजन् मध्ये कुरूणां प्रहसन्नुवाच ॥ १४ ॥ सत्यप्रतिज्ञः किल सूतपुत्रस्तथा स भारं विषहेत कस्मात् । व्यूहं प्रतिव्यूह्य शिरांसि भित्त्वा लोकक्षयं पश्यत भीमसेनात् ॥ १५ ॥ आवन्त्यकालिङ्गजयद्रथेषु चेदिध्वजे तिष्ठति बाह्लिके च । अहं हनिष्यामि सदा परेषां सहस्रशश्चायुतशश्च योधान् ॥ १६ ॥ यदैव रामे भगवत्यनिन्द्ये ब्रह्म

बड़ाई की है, वास्तवमें श्रीकृष्ण ऐसे ही महात्मा और महापुरुष हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, परन्तु भीष्मपितामहने मुझे जो कुछ कठोर वचन कहे हैं, अब पितामह उसके फलको भी सुन लें ॥१२॥ मैं अब शस्त्रोंको धरे देता हूँ, पितामह आजसे मुझे किसी दिन भी रणमें नहीं देखेंगे, मेरा इनका दर्शनमेला अब केवल सभामें ही हुआ करेगा, इतनी कह कर वह भीष्मजीकी ओरको दृष्टि फेर कर कहने लगा, कि-सुनो दादाजी ! अब तो आपका मरण होजाने पर ही सब भूपाल मेरे प्रभावको देखेंगे तात्पर्य यह है, कि—यदि मैं सहायता करूँगा तो ही आपकी रक्षा होसकेगी, लो मैं तो आपके जीते जो लड़ूँगा नहीं और आप असहाय होकर मरिये, यही आपको कठोर, बातोंका फल है ॥ १३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार यह बात कह कर वह बड़ा धनुषधारी कर्ण राजसभामेंसे उठ कर अपने घरको चला गया तब भीष्मजी सब कौरवों के मध्यमें हँसते २ दुर्योधनसे कहने लगे कि—हे राजन् ! ॥ १४ ॥ सूतपुत्र कर्ण तो सत्यप्रतिज्ञा वाला है ! उसने अवन्ती देशके राजा, कलिंग देशके राजा, जयद्रथ, चेदिध्वज और बाल्हीक राजाओंके सामने प्रतिज्ञा करी थी, कि-मैं सदा सहस्र और दश सहस्र योधाओं का संहार करूँगा, देखना है, कि-कर्ण अब इस प्रतिज्ञाको कैसे पूरी करेगा । और अपने शिर पर लिये हुए भारको कैसे सहेगा ! और तुम देखोगे, कि-यह भीमसेन तो अपनी सेनाको व्यूहरचनासे खड़ी करके शत्रुओंके शिर काटेगा और लोकोंका संहार करेगा ॥१५॥१६॥ इस सूर्यपुत्र अधम कर्णने जिस समय पवित्र चरित्रवाले भगवान् परशु-

ष्ठुवाणः कृतवांस्तदस्त्रम् । तदैव धर्मश्च तपश्च नष्टं वैकर्त्तनस्याधमपुरुषस्य ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथोक्तवाक्ये नृपतीन्द्रभीष्मे निक्षिप्य शस्त्राणि गते च कर्णे । वैचित्रवीर्यस्य सुतोऽल्पबुद्धिर्दुर्योधनः शान्तनवं बभाषे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि कर्णभीष्मवाक्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दुर्योधन उवाच । सदृशानां मनुष्येषु सर्वेषां तुल्यजन्मनाम् । कथमेकान्ततस्तेषां पार्थानां मन्यसे जयम् ॥१॥ वयञ्च तेऽपि तुल्या वै वीर्येण च पराक्रमैः । समेन वयसा चैव प्रातिभेन श्रुतेन च ॥ २ ॥ अस्त्रेण योधयुग्या च शीघ्रत्वे कौशले तथा । सर्वे स्म समजातीयाः सर्वे मानुषयोनयः ॥ ३ ॥ पितामह विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम् । नाहं भवति न द्रोणे न कृपे न च वाह्लिके ॥ ४ ॥ अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे । अहं वैकर्त्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे॥५॥पाण्डवान् समरे पञ्च हनिष्यामः शितैः शरैः। ततो राजन् महा-

---

रामजीके पास जा 'मैं ब्राह्मणकुमार हूं' ऐसा कहकर उनसे ब्रह्मास्त्र विद्या सीखी थी तब ही इसका तप और धर्म नष्ट होगया था.॥१७॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजेन्द्र जनमेजय ! जब भीष्मजीने ऐसी बातें कहीं और कर्ण शस्त्रोंको फेंक कर चला गया तब धृतराष्ट्रका पुत्र अल्पबुद्धि दुर्योधन भीष्मजीसे कहने लगा ॥ १८ ॥ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥

दुर्योधनने कहा, कि-सब मनुष्य समान हैं और एकसमान ही जन्म धारण करते हैं, तो भी तुम सर्वथा उन पाण्डवोंकी ही जय होगी, यह बात कैसे मानरहे हो॥१॥हम और वह वीरतामें और पराक्रममें एकसमान हैं, हम सब ही एकसमान अवस्था,एकसी प्रतिभा और एकसी विद्यावाले हैं ॥२॥ अस्त्रविद्या शूरसंपदा, अस्त्र छोड़नेकी फुरती और कुशलतामें हम दोनों एकसमान हैं तथा हम सब एक जाति और मनुष्ययोनिमें ही तो उत्पन्न हुए हैं॥३॥ तो भी हे पितामह ! आप यह कैसे समझ रहे हैं, कि-पाण्डवोंकी ही विजय होगी ? सुनिये—मैं आपके ऊपर, द्रोणाचार्यके ऊपर, कृपाचार्यके ऊपर, वाह्लीकके ऊपर या दूसरे राजाओंके ऊपर भरोसा रखकर युद्धका आरंभ नहीं करता हूं, मैं सूर्यनन्दन कर्ण और मेरा भाई दुःशासन॥४-५ हम तीनों ही रणमें तेज किये हुए बाण मारकर पाँचों पांडवोंका

यज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥६॥ ब्राह्मणांस्तर्पयिष्यामि गोभिरश्वैर्धनेन च । यदा परिकरिष्यन्ति ऐणेयानिव तन्तुना। अतरित्रानिव जले बाहुभिर्मामका रणे ॥ ७ ॥ पश्यन्तस्ते परांस्तत्र रथनागसमाकुलान् । तदा दर्पं विमोक्ष्यन्ति पाण्डवाः स च केशवः ॥ ८ ॥ विदुर उवाच । इह निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः । ब्राह्मणस्य विशेषेण दमो धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥ तस्य दानं क्षमा सिद्धिर्यथावदुपपद्यते । दमो दानं तपो ज्ञानमधीतञ्चानुवर्त्तते १० दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दम उत्तमम् । विपाप्मा वृद्धतेजास्तु पुरुषो विन्दते महत् ॥११॥ क्रव्याद्भ्य इव भूतानामदान्तेभ्यः सदा भयम्। येषाञ्च प्रतिषेधार्थं क्षत्रं सृष्टं स्वयम्भुवा१२ आश्रमेषु चतुर्ष्वाहुर्दममेवोत्तमं व्रतम् । तस्य लिंगं प्रवक्ष्यामि येषां समुदयो दमः ॥ १३ ॥ क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।

संहार कर डालेंगे फिर हे राजन् । बड़ी २ दक्षिणाओं वाले अनेकों प्रकारके बडे२ यज्ञ करतेहुए सौ घोड़े और धनका दान देकर ब्राह्मणों को तृप्त करेंगे, जैसे फाँसीसे हिरनोंकी धांगोंको बाँध लिया जाता है तथा जैसे मल्लाहोंसे रहित नौकाओंको भँवरपड़तेहुए जलका प्रवाह घसीटकर लेजाता है तैसेही मेरे योधा जय अपने भुजदण्डोंसे शत्रुओं को पकडलेंगे और जब अपने और शत्रुओंके रथोंसे तथा हाथियोंसे हमें भरापुरा देखेंगे तब पांडव अपने घमण्डको छोड़देंगे और वह कृष्ण भी अपने घमण्डको छोड़ बैठेगा ॥ ६-८ ॥ यह सुनकर विदुरजी बोल उठे, कि—पक्के निश्चयको जाननेवाले वृद्ध पुरुष इस लोकमें दमको ही कल्याणकारी कहते हैं, यह दम सबोंका और विशेषकर ब्राह्मण जातिका सनातन धर्म है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य दम कहिये मनके निग्रह को धारण करके दान, तप, ज्ञान और वेदका पठन करता है उसका दान, क्षमा और मोक्ष ठीक ठीक सिद्ध होते हैं ।१०।दम तेजको बढ़ाता है,दम पवित्र और उत्तम है, दमसे जिसका पाप दूर होकर तेज बढ़ गया है वह पुरुष परब्रह्मको पाजाता है ॥ ११॥ जैसे प्राणियोंको मांसभोजियोंसे भय रहता है तैसेही अदान्त कहिये अव्यवस्थित मनवाले पुरुषोंसे भी भय रहता है ऐसे ही दुष्टोंको रोकनेके लिये विधाताने क्षत्रिय जातिको रचा है ॥१२॥ चारों ही आश्रमोंमें दमको उत्तम व्रत कहा है, अब उस दमके उन लक्षणोंको कहता हूँ, कि-जिनकी दमसे उत्पत्ति होती है ॥१३॥ क्षमा (चाहे कोई मार बैठे तोभी उसको सह लेना,) धृति (कामनाओंसे चलायमान न होना,) अहिंसा (मन

इन्द्रियाभिजयो धैर्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ १४ ॥ अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्धानता । एतानि यस्य राजेन्द्र स दान्तः पुरुषः स्मृतः १५ कामो लोभश्च दर्पश्च मन्युर्निद्रा विकत्थनम् । मान ईर्ष्या च शोकश्च नैतद्दान्तो निषेवते । अजिह्ममशठं शुद्धमेतद्दान्तस्य लक्षणम् ॥ १६ ॥ अलोलुपस्तथाल्पेप्सुः कामानामविचिंतिता । समुद्रकल्पः पुरुषः स दान्तः परिकीर्त्तितः ॥ १७ ॥ सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्मात्मविद् बुधः । प्राप्येह लोके सम्मानं सुगतिं प्रेत्य गच्छति ॥१८॥ अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः। स वै परिणतप्रज्ञः प्रख्यातो मनुजोत्तमः१९ सर्वभूतहितो मैत्रस्तस्मान्नोद्विजते जनः । समुद्र इव गम्भीरः प्रज्ञातृप्तः प्रशाम्यति ॥२०॥ कर्मणाचरितं पूर्वं सद्भिराचरितञ्च यत् । तदे-

---

से, वाणीसे वा शरीरसे किसीको कष्ट न देना), समता (शत्रु मित्र आदि सबोंको एकसा समझना), सत्य (यथार्थ बात कहना), सरलता, इन्द्रियोंको जीते रहना, बड़ी भारी आपत्तिमें भी मनको स्थिर रखना, कोमलता, ओछे काम करनेमें लज्जित होना, चंचलपना न करना, उदारता शान्ति और संतोष रखना तथा शास्त्र और पूज्योंमें श्रद्धा रखना, हे राजन् ! इतने लक्षण जिसमें हों उसको दान्त पुरुष जानो ॥ १४—१५ ॥ काम, लोभ, घमण्ड, क्रोध, निद्रा, वृथा बकवाद मान, ईर्षा और शोक इन बातोंको दमका साधन करनेवाला पुरुष अङ्गीकार नहीं करता है, जो कुटिल न हो, शठ न हो और शुद्धतासे रहै उसको ही दमके लक्षणोंसे युक्त जानो ॥ १६ ॥ जो पुरुष लोलुपतारहित (आशायें न बाँधने वाला) थोड़ी इच्छावाला, स्त्री आदि भोगके पदार्थोंका ध्यान न रखनेवाला और समुद्रकी समान गम्भीर भाव रखनेवाला होता है उसको ही दान्त नामसे कहा है १७ अच्छे आचरण वाला, अच्छे स्वभाववाला प्रसन्नचित्त और आत्मज्ञानी विद्वान् पुरुष इस लोकमें सन्मान पाकर मरनेके अनन्तर सद्गति पाता है ॥ १८ ॥ जिसको किसी प्राणीसे भय नहीं होता है और जिस से सकल प्राणियोंको अभय होता है वह निःसन्देह परिपक्व बुद्धि वाला है और उसको सबलोग श्रेष्ठ मनुष्य मानते हैं ॥१९॥ जो सब प्राणियोंका हितकारी होता है, जिसमें मित्रताके गुण होते हैं उससे कोई भी मनुष्य नहीं डकराता है, जो मनुष्य समुद्रकी समान गहरा होता है वह सत्यवस्तुके ज्ञानरूप प्रज्ञासे तृप्त हुआ पुरुष परमशान्ति रूप आनन्दमें रहता है ॥ २० ॥ जो पहिले कर्मके द्वारा आचरण किया

यास्थाय मोदन्ते दांताः शमपरायणाः ॥ २१ ॥ नैष्कर्म्यं वा समास्थाय ज्ञानतृप्तो जितेन्द्रियः । कालाकांक्षी चरँल्लोके ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२२॥ शकुनीनामिवाकाशे पदं नैवोपलभ्यते । एवं प्रज्ञानतृप्तस्य मुनेर्वर्त्म न दृश्यते॥२३॥ उत्सृज्यैव गृहान् यस्तु मोक्षमेवाभिमन्यते । लोकांस्तेजोमयास्तस्य कल्पन्ते शाश्वता दिवि ॥ २४ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि विदुरवाक्ये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

विदुर उवाच । शकुनीनामिहार्थाय पाशं भूमावयोजयत् । कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुम ॥ १ ॥ तस्मिंस्तौ शकुनौ बद्धौ युगपत् सहचारिणौ । तावुपादाय तं पाशं जग्मतुः खचरावुभौ ।२। तौ विहाय समाक्रांतौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा। अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः ॥ ३ ॥ तथा तमन्वधावन्तं मृगयुं शकुनार्थिनम् । आश्र-

---

है और जिसका सत्पुरुषोंने आचरण किया है उसको ही अँगीकार कर अर्थात् भाग्यानुसार मिले हुए पदार्थोंको और ।सदाचरणको स्वीकार कर, जो अपने दिनोंको आनन्दमें विताते हैं वह ही दान्त हैं और वह ही शान्त हैं ॥ २१ ॥ जो ज्ञानसे तृप्त हुआ जितेंद्रिय पुरुष निष्काम-भावका आश्रय लेकर मृत्युकालकी बाट देखता हुआ जगत्का व्यवहार करता है अर्थात् प्रारब्ध कर्मोंका भोग करता है वह ब्रह्मरूप होने की योग्यता पाजाता है ।२२। जैसे आकाशमें उड़तेहुए पक्षियोंकी गति जाननेमें नहीं आती है तैसे ही ज्ञानसे संतुष्ट हुए मुनिकी गति भी देखनेमें नहा आती है ॥ २३ ॥ जो घर और परिवार आदिको त्याग कर केवल मोक्षमार्गमें ही मनको लगाता है उसके लिये स्वर्गमें तेजोमय अविनाशी लोक नियत कियेजाते हैं ॥ २४ ॥ तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ छ छ छ छ छ

विदुरजी कहने लगे, कि-हे तात ! हमने वृद्ध पुरुषोंके मुखसे सुना है, कि-एक चिडीमारने पक्षियोंको पकडनेके लिए इस भूमिपर जाल विछाया था ॥ १ ॥ उस जालमें एक साथ फिरनेवाले दो पक्षी एक साथ आकर फँसगये और वह दोनों आकाशचारी पक्षी उस जल को लेकर चल दिये २ उस समय वह निर्दयी चिडीमार उन पक्षियों को आकाशमेंको उडते हुए देखकर वह जिधर२ को गये उधर२ को ही उनके पीछे भागता रहा ।३। एक ऋषि अपना नित्यकर्म करके अपने आश्रममें बैठे थे उन्होंने इस पक्षियोंको पकडना चाहनेवाले व्याधेको

मस्थो मुनिः कश्चिद्ददर्शाथ कृताह्निकः ॥ ४ ॥ तावन्तरिक्षगौ शीघ्रमनुयान्तं महीचरम्। श्लोकेनानेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा ॥५॥ विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन् प्रतिभाति मे। प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावसि ॥६॥ शाकुनिरुवाच। पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतो मम। यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः ॥७॥ विदुर उवाच। तौ विवादमनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसंधितौ। विगृह्य च सुदुर्बुद्धी पृथिव्यां सन्निपेततुः ॥ ८ ॥ तौ युध्यमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ। उपसृत्यापरिज्ञातो जग्राह मृगहा तदा ॥ ९ ॥ एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्। तेऽमित्रवशमायांति शकुनाविव विग्रहात् ॥१०॥ सम्भोजनं संकथनं सम्प्रश्नोऽथ समागमः। एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ ११ ॥ ये स्म काले सुमनसः सर्वे वृद्धानुपासते। सिंहगुप्तमिवारण्यमप्रधृष्या भवन्ति ते ॥ १२ ॥ येऽर्थं संततमासाद्य

इस प्रकार उनके पीछे दौडते हुए देखा ॥ ४ ॥ हे राजन ! उन मुनिने आकाशमें उड़ने वाले उन पक्षियोंके पीछे २ भूमिपर दौड़ते हुए उस चिड़ीमारसे इस श्लोकसे प्रश्न किया, कि-॥ ५ ॥ अरे व्याधे ! यह मुझे बड़ा ही विचित्र आश्चर्य मालूम होता है कि-यह दोनों पक्षी तो आकाशमें उड़रहे हैं और तू इनके पीछे भूमिपर पैरोंसे भागा भागा फिरता है ॥ ६ ॥ उस व्याधेने उत्तर दिया, कि-ये दो पक्षी इकट्ठे हो गये हैं, इस कारण मिलकर मेरे जालको हरे लिए जाते हैं, परन्तु ये जहाँ पहुँचकर आपसमें लड़ने लगेंगे तहाँ ही मेरे हाथमें आजायँगे ७ विदुरजी कहते हैं, कि—कुछ ही देरमें मृत्युके समीप पहुँचे हुए वह दोनों नष्ट बुद्धिवाले पक्षी आपसमें लड़ने लगे और लड़ते २ जाल सहित, पृथिवी पर आ गिरे ॥ ८ ॥ वह दोनों पक्षी मृत्युरूप फाँसोंमें बँधेहुए थे, इस कारण क्रोधमें भरकर आपसमें लड़ने लगे तब धीरे से उनके पास जाकर चिड़ीमारने उसी समय उन दोनों पक्षियोंको पकड़ लिया ॥९॥ इस प्रकार ही जो कुटुम्बी पुरुष धनके लिए आपस में विवाद करते हैं वह भी उन दोनों पक्षियोंकी समान लड़ाई करके शत्रुके वशमें होजाते हैं॥१०॥साथ बैठकर भोजन करना, एक स्थानमें बैठकर प्रेमके साथ बातें करना, सुःख दुःखकी बातें बूझना और आपस में मिलते रहना ये ही ज्ञाति (जातिवालों) के काम हैं, आपसमें विरोध करना संबन्धिओंका काम कभी नहीं है ॥ ११ ॥ जो शुद्ध मनवाले पुरुष अवसर पड़नेपर बूढ़ोंकी सम्मति लेकर काम करते हैं वह सब

दीना इव समासते । श्रियं ते सम्प्रयच्छन्ति द्विषद्भ्यो भरतर्षभ ।१३। धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलंति सहितानि च । धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥ १४ ॥ इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि यथा दृष्टं गिरौ मया । कृत्वा तदपि कौरव्य यथा श्रेयस्तथा कुरु ॥ १५ ॥ वयं किरातैः सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम् । ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्या-जम्भकवार्त्तिकैः ॥ १६ ॥ कुञ्जभूतं गिरिं सर्वमभितो गन्धमादनम् । दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १७ ॥ तत्रापश्याम वै सर्वे मधुपीतकमाक्षिकम् । मरुप्रपाते विषमे निविष्टं कुम्भसम्मितम् ।१८। आशीविषै रक्ष्यमाणं कुवेरदयितं भृशम् तत् प्राप्य पुरुषो मर्त्योऽप्य-मरत्वं नियच्छति ॥१९॥ अचक्षुर्लभते नेत्रं वृद्धो भवति वै युवा । इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणाः जम्भसाधकाः॥२०॥ ततः किरातास्तद् दृष्ट्वा

पुरुष सिंहके रक्षा कियेहुए वनकी समान किसीके दबावमें नहीं आ सकते ।१२। हे भरतसत्तम ! जो निरन्तर धन पाकर भी निर्धन दीनों की समान धनको बटोरनेमें ही लगे रहते हैं वह अपना धन शत्रुओं के अर्पण कर बैठते हैं ।१३। हे भरतवंशी श्रेष्ठ धृतराष्ट्र ! जैसे जलती हुई छोटी २ लकड़ियोंके ऊके अलग २ होजायँ तो धुँआ देने लगते हैं और इकट्ठे होजायँ तो प्रज्वलित ही उठते हैं ऐसे ही कुटुम्बी भी विवाद करके अलग २ होजायँ तो आप ही आप सुलगा करते हैं और इकट्ठे होनेपर दमक उठते हैं ॥ १४ ॥ हे कुरुवंशी ! यह एक और वृत्तान्त कहता हूं, जैसा कि-मैंने पहाड़पर देखा था, उसको भी सुन कर जिस प्रकार तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥१५॥ एक समय हम कितने ही भील और तन्त्र मन्त्र तथा रसायन आदि औषधें बनानेके प्रेमी और उनका व्यवहार करनेवाले देवता समान ब्राह्मणोंके साथ उत्तर दिशामें गन्धमादन पर्वत पर गए थे ॥ १६॥ वह सब गन्धमा-दन पर्वत चारों ओर लताओंके घिरावसे कुञ्जसी बनरहा था, उसके ऊपर अनेकों औषधें चमक रही थीं, जहाँ तहाँ सिद्ध गन्धर्व रहते थे ॥ १७ ॥ हम सबोंने उस पहाड़के एक अगम्य ढलाव पर घड़की समान छत्तेमें भराहुआ पीले रङ्गका मधुर शहद(वा सोनामाखी धातु का हिस्सा) देखा ॥ १८ ॥ विषधर सर्प उसकी रक्षा कर रहे थे और वह कुबेरको बड़ा ही प्यारा था, उसको पाजाय तो मरणके स्वभाव वाला भी मनुष्य अमर होजाता है ॥ १९ ॥ अन्धा इसके सेवनसे नेत्र पाजाता है और बूढ़ा जवान होजाता है, यह बात हमसे उन रसायन

मार्थयन्तो महीपते । विनेशुर्विषमे तस्मिन् ससर्पे गिरिगह्वरे ॥ २१ ॥ तथैव तव पुत्रोऽयं पृथिवीमेक इच्छति । मधु पश्यति सम्मोहात् प्रपातं नानुपश्यति ॥ २२ ॥ दुर्योधनो योद्धुमनाः समरे सव्यसाचिना । न च पश्यामि तेजोऽस्य विक्रमं वा तथाविधम् ।२३। एकेन रथमास्थाय पृथिवी येन निर्जिता । भीष्मद्रोणप्रभृतयः सन्त्रस्ताः साम्परायिनः२४ विराटनगरे भग्नाः किं तत्र तव दृश्यताम् । प्रतीक्षमाणो यो वीरः क्षमते वीक्षितं तव ॥ २५ ॥ द्रुपदो मत्स्यराजश्च संक्रुद्धश्च धनञ्जयः । न शेष-येयुः समरे वातयुक्ता इवाग्नयः ॥ २६ ॥ अंके कुरुष्व राजानं धृतराष्ट्र युधिष्ठिरम् । युध्यतोर्हि द्वयोर्युद्धे नैकान्तेन भवेज्जयः ॥ २७ ॥

इतिश्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि विदुरवाक्ये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

रूप औषधोंका साधन करनेवाले ब्राह्मणोंने कही थी॥२०॥हे राजन् ! हमारे साथके वह भील उसको देखकर उसको लेनेके लिए ललचाए परन्तु विषधर सर्पोंवाली पहाडकी उस अटपटी गुफामें शहद लेनेके लिए जाकर अपने प्राणोंको खो बैठे ।२१। ऐसे ही यह आपका बेटा ही सब पृथिवीको लेना चाहता है, यह मोहके कारण शहदको तो देख रहा है परन्तु यह अपने नाशकी सामग्रीको नहीं देखता है ॥ २२ ॥ दुर्योधन रणमें अर्जुनके साथ लडना तो चाहता है, परन्तु मैं इसमें अर्जुनकेसा तेज वा पराक्रम नहीं देखता हूं ॥ २३ ॥ जिस अर्जुनने अकेले ही रथमें बैठकर पृथिवी जीतली थी और विराट नगरके समीप गौओंको छीनते समय बडे जोरके साथ चढाई करके गए हुवे भीष्म द्रोणाचार्य आदि भी उससे भय मानगये थे और इधर उधरको भाग निकले थे, उस समय वहां क्या हुआ था, उस पर जरा तुम दृष्टि तो डालो! वह वीर अर्जुन आपकी ओरको देखकर क्षमा कर रहा है । २४—२५ । जैसे पवनकी सहायतावाला अग्नि सब वस्तुओंको जलाकर भस्म कर डालता है वैसे ही संग्राम भूमिमें राजा द्रुपद, मत्स्यराज और क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन ये किसीको भी जीवित नहीं छोडेंगे ।२६। इस कारण हे धृतराष्ट्र ! तुम राजा युधि-ष्ठिरको अपनी गोदीमें लो अर्थात् उनको आधा राज्य देदो, क्योंकि वे जब दोनों युद्ध करेंगे तो निश्चय रक्खो कि-तुम्हारी विजय किसी प्रकार नहीं होगी ॥ २७ ॥ चौंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। दुर्योधन विजानीहि यत्त्वां वक्ष्यामि पुत्रक। उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाध्वगः॥ १॥ पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां यत्तेजः प्रजिहीर्षसि। पञ्चानामिव भूतानां महतां लोकधारिणाम् २ युधिष्ठिरं हि कौन्तेयं परं धर्ममिहास्थितम्। परां गतिमसंप्रेत्य न त्वं जेतुमिहार्हसि॥ ३॥ भीमसेनं च कौन्तेयं यस्य नास्ति समो बले। रणान्तकं तर्जयसे महावातमिव द्रुमः॥ ४॥ सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं मेरुं शिखरिणामिव। युधि गाण्डीवधन्वानं कोऽनुयुध्येत बुद्धिमान्५धृष्ट- द्युम्नश्च पाञ्चाल्यः कमिवाद्य न शातयेत्। शत्रुमध्ये शरान् मुञ्चन् देव- राडशनीमिव॥ ६॥ सात्यकिश्चापि दुर्द्धर्षः संमतोऽन्धकवृष्णिषु। ध्वंसयिष्यति ते सेनां पांडवेयहिते रतः॥ ७॥ यः पुनः प्रतिमानेन त्रीन् लोकानतिरिच्यते तं कृष्णं पुण्डरीकाक्षं कोऽनुयुध्येत बुद्धिमान्८

विदुरजीकी बात सुनकर धृतराष्ट्र बोले, कि-हे बेटा दुर्योधन! मैं तुझसे जो कुछ कहता हूं उसको सुन जैसे कोई अनजान बटोही कुमार्गको भी मार्ग ही मानता है तैसे ही तू भी,खोटे मार्गको सत्मार्ग मानरहा है॥ १॥ तभी तो तू लोकोंको धारण करने वाले पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतोंकी समान सब लोकोंको अपने अनुकूल रखने वाले पाण्डुके पाँचों पुत्रोंके तेजको नष्ट करना चाहता है॥ २॥ इस लोकमें परमधर्मका आचरण करने वाले कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर को तू परगति (मरण) को बिना प्राप्तहुए नहीं जीतसकता अर्थात् इस जन्ममें तेरी शक्ति नहीं है जो युधिष्ठिरको जीत सके, यदि उन का सामना करेगा तो अपने प्राण खो बैठेगा॥ ३॥ जैसे वृक्ष आँधी के पवनका तिरस्कार करना चाहे तैसे ही जिसकी समान बलधारी कोई है ही नहीं ऐसे रणमें काल समान कुन्तीनन्दन भीमसेनको तू डराना चाहता है॥ ४॥ पर्वतोंमें सुमेरु पर्वतकी समान सब शस्त्र- धारियोंमें श्रेष्ठ गांडीव धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनके साथ कौन बुद्धिमान् पुरुष रणमें लड़ना चाहेगा ?॥ ५॥ पांचालनंदन धृष्टद्युम्न भी जैसे इंद्र अपने वज्रको छोड़ता है तैसे ही जब शत्रुओंके मध्यमें बाणोंको छोड़ेगा, उस समय भला किसको विनाकाटे छोड़देगा ? ६ अन्धक और कृष्ण जिसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं ऐसा सात्यकी भी किसीसे दबने वाला नहीं है, वह युधिष्ठिरका हित चाहता हुआ तेरी सेनाका विध्वंस ही कर डालेगा॥ ७॥ और जो अपनी समता में तीनों लोकोंसे अधिक हैं उन कमलनयन श्रीकृष्णके साथ कौन

एकतो ह्यस्य दाराश्च ज्ञातयश्च सबान्धवाः । आत्मा च पृथिवी चैव-मेकतश्च धनञ्जयः ॥९॥ वासुदेवोऽपि दुर्द्धर्षो यतात्मा यत्र पाण्डवः अविषह्यं पृथिव्यापि तद् बलं यत्र केशवः॥१०॥ तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम् । वृद्धं शांतनवं भीष्मं तितिक्षस्व पितामहम् ११ मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थदर्शिनम् । द्रोणं कृपं विकर्णञ्च महा-राजञ्च बाह्लिकम्॥१२॥ एते ह्यपि यथैवाहं मन्तुमर्हसि तांस्तथा । सर्वे धर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत ॥१३॥ यत्तद्विराटनगरे सह भ्रातृ-भिरग्रतः । उत्सृज्य गाः सुसन्त्रस्तं बलं ते समशीर्य्यत ॥१४॥ यच्चैव नगरे तस्मिन् श्रूयते महदद्भुतम् । एकस्य च बहूनांच पर्य्याप्तं तन्नि-

बुद्धिमान् युद्ध करेगा ? ॥ ८ ॥ उन श्रीकृष्णको अपनी स्त्रियें, कुटुम्बी सम्बंधी, अपना शरीर और अधिक क्या कहूँ सब पृथिवी एक ओर है और अर्जुन एक ओर है अर्थात् अर्जुन श्रीकृष्णको अपने कुटुम्ब तथा आत्मासे भी अधिक प्यारा है ॥ ९ ॥ जहाँ अर्जुन होता है तहाँ मनको वशमें रखने वाले तेजस्वी कृष्ण होते हैं और जिस सेनामें श्री-कृष्ण होते हैं उस सेनाके भारको पृथिवी भी नहीं सहसकती है १० हे बेटा ! हितकारी और प्रयोजनकी बात कहनेवाले श्रेष्ठ संबंधियों के कहनेमें चलो और शंतनुनन्दन वृद्ध भीष्म पितामहजीसे क्षमा मांगो ॥ ११ ॥ कौरवोंका हित विचारने वाले द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण, बाह्लीक जो कुछ कहें और मैं जो कुछ कहता हूँ उसको ध्यान देकर सुन ॥ १२ ॥ जैसा मैं हूँ तैसे ही यह भी हैं, इसकारण तुझे इन को भी मेरी समान ही मानना चाहिये, हे बेटा दुर्योधन ! ये सब धर्मको जानने वाले तथा कौरवों और पांडवोंके ऊपर एकसा प्रेम रखने वाले हैं ॥ १३ ॥ यह जो विराट नगरमें तेरे भाइयों सहित तेरी सेना अत्यन्त भयभीत होकर तेरे सामने ही गौओंको छोड़कर तितर बित्तर होगयी थी ॥ १४ ॥ और यह जो उस ही विराटनगरमें एकका अनेकों पुरुषोंके साथ बड़े अचरजमें डालनेवाला युद्ध हुआ था ऐसा सुननेमें आता है, यह ही पांडवोंकी विजयका पूरा दृष्टांत है ॥१५॥ अकेले अर्जुनने ही उस समय विराट नगरमें ऐसा अद्भुत पराक्रम करके दिखाया था, फिर जब सब पांडव इकट्ठे होकर चढ़ाई करेंगे तो क्या नहीं करसकेंगे ? इस लिये तू उनको अपने सगे भाई मान

दर्शनम् । १५ । अर्जुनस्तत्तथाकार्षीत् किं पुनः सर्व एव ते । सम्राडस्तु न मिजानीहि वृत्या तं प्रतिपादय ॥ १६ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रः सुयोधनम् । पुनरेव महाभागः सञ्जयं पर्यपृच्छत ॥१॥ ब्रूहि सञ्जय यच्छेषं वासुदेवादनन्तरम् । यदर्जुन उवाच त्वां परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥ सञ्जय उवाच। वासुदेववचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। उवाच काले दुर्द्धर्षो वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ ३ ॥ पितामहं शांतनवं धृतराष्ट्रञ्च संजय । द्रोणं कृपं च कर्णं च महाराजं च वाह्लिकम् ॥४॥ द्रौणिं च सोमदत्तं च शकुनिं चापि सौबलम् । दुःशासनं शलं चैव पुरुमित्रं विविंशतिम् ५ विकर्णं चित्रसेनं च जयत्सेनं च पार्थिवम् । विंदानुविन्दावावन्त्यौ दुर्मुखं चापि कौरवम् ॥ ६ ॥ सैन्धवं दुःसहं चैव भूरिश्रवसमेव च । भगदत्तं च राजानं जलसंधं च पार्थिवम् ॥७॥ ये चाप्यन्ये पार्थिवास्तत्र योद्धुं समागताः कौरवाणां प्रियार्थम् । मुमूर्षवः पाण्डवाग्नौ प्रदीप्ते

और उनको आधा राज्य देकर उनका सत्कार कर ॥ १६ ॥ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! महाबुद्धिमान् तथा परमभाग्यवान् राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार दुर्योधनको उपदेश देकर फिर संजयसे पूछने लगे, कि-॥ १ ॥ ॥ हे संजय ! अब जो बात शेष रही हो और श्रीकृष्णके कहचुकने पर अर्जुनने तुझसे जो कुछ कहा हो वह मुझे सुना, क्योंकि-उन बातोंको सुन २ कर मुझे बड़ा अचरज होता है ॥ २ ॥ संजय बोला, कि-श्रीकृष्णकी बात सुनकर किसीसे न दबने वाला कुन्तीनंदन अर्जुन अवसर देख कर श्रीकृष्णजीको सुनाता हुआ इस प्रकार कहने लगा कि—॥ ३ ॥ हे संजय ! शन्तनुनन्दन पितामह भीष्मजीसे, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और महाराज बाह्लीकसे ॥ ४ ॥ अश्वत्थामा, सोमदत्त और सुबलके पुत्र शकुनिसे, दुःशासन, शल, पुरुमित्र और विविंशतिसे ॥ ५ ॥ विकर्ण, चित्रसेन और राजा जयत्सेनसे, अवंतीके राजा विंद और अनुविंदसे तथा कुरुवंशी दुर्मुखसे दुःसह सिंधुराज और भूरिश्रवोसे राजा भगदत्त और राजा जलसंधसे ॥ ७ ॥ तथा और भी राजे कौरवोंका प्रेम निभानेके लिये वहाँ लड़नेको आये हों उनसे और जिन मौतके समीपमें पहुंचे हुए

समानीता धार्त्तराष्ट्रेण होतुम् ॥८॥ यथान्यायं कौशलं वन्दनं च समागता मद्वचनेन वाच्याः । इदं त्वया संजय राजमध्ये दुर्योधनं पापकृतां निधानम् ॥ ९ ॥ अमर्षणं दुर्मतिं राजपुत्रं पापात्मानं धार्त्तराष्ट्रं सुलुब्धम् । सर्वं ममैतद् वचनं समग्रं सहामात्यं सञ्जय श्रावयेथाः १० एवं प्रतिष्ठाप्य धनञ्जयो मां ततोऽर्थवद्धर्मवच्चापि वाक्यम् । प्रोवाचेदं वासुदेवं समीक्ष्य पार्थो धीमाँल्लोहितान्तायताक्षः ॥ ११ ॥ यथाश्रुतं ते वदतो महात्मनो मधुप्रवीरस्य वचः समाहितम् । तथैव वाच्यं भवता हि मद्वचः समागतेषु क्षितिपेषु सर्वशः ॥ १२ ॥ शराग्निधूमे रथनेमिनादिते धनुःस्रुवेणास्त्रबलप्रसारिणा । यथा न होमः क्रियते महामृधे समेत्य सर्वे प्रयतध्वमादृताः ॥ १३ ॥ न चेत् प्रयच्छध्वममित्रघातिनो युधिष्ठिरस्यांशमभीप्सितं स्वकम् । नयामि वः साश्व-

---

राजाओंको दुर्योधनने पांडवरूप धकधकाती हुई आगमें होमनेके लिये बुलाया हो उनसे भी ॥ ८ ॥ उन सब इकट्ठे हुए राजाओंसे मेरे कहनेके अनुसार यथोचित रीतिसे मेरा प्रणाम कहना, कुशल पूछना और हे संजय ! सब राजाओंके सामने पाप कर्मोंके भण्डाररूप दुर्योधनसे यह बात कहना ॥ ९ ॥ हे संजय ! दैवजलने, खोटे विचार वाले पापी और महालोभी धृतराष्ट्रनन्दन दुर्योधनको और उसके मन्त्रियोंको भी मेरी यह सब बात पूरी २ सुना देना ॥ १० ॥ इस प्रकार भूमिका बाँधकर बुद्धिमान् और लाल २ विशाल नेत्रों वाला अर्जुन, श्रीकृष्णजीके मुखकी ओरको देखकर धर्म और अर्थसे भरे हुए वचन मुखसे इस प्रकार कहने लगा, कि-॥ ११ ॥ हे संजय! मधुवंशमें वीर महात्मा श्रीकृष्णकी समाधानसे भरी हुई बात तूने जैसी सुनी है तैसे ही यह सब तथा मेरी भी बात वहाँ आये हुए सब राजाओंको सुना देना कि-॥ १२ ॥ जिसमें आपसमें टकराने वाले बाणोंमेंसे छूटने वाली अग्नियोंके धुएं निकलते हैं और जिसमें रथके पहियोंकी घरघराहटरूपी वेदध्वनि होरही है वैसे अस्त्रोंके बलसे वृद्धि पाने वाले महासंग्रामरूपी यज्ञमें, जिसप्रकार कि-धनुषरूपी स्रुवे से हवन करनेका अवसर न आवे, उसके लिए तुम सब इकट्ठे होकर आदरके साथ उद्योग करो अर्थात् इस स्वत्वको रोको ॥१३॥ राजा युधिष्ठिर जो अपना राज्यका भाग लेना चाहते हैं उसको यदि तुम लौटा कर नहीं दोगे तो मैं तेज किए हुए बाण मारकर तुम्हारे घुड़सवार, पैदल तथा हाथियोंके साथ तुम्हें भी पितरोंकी अशुभ दिशा

पदातिकुञ्जरान् दिशं पितृणामशिवां शितैः शरैः ॥ १४ ॥ ततोऽहमामन्त्र्य तदा धनञ्जयं चतुर्भुजं चैव नमस्य सत्वरः। जवेन संप्राप्त इहामरद्युते तवान्तिकं प्रापयितुं वचो महत् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जयवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

वैशम्पायन उवाच। दुर्योधने धार्त्तराष्ट्रे तद्वचो नाभिनन्दति। तूष्णीं भूतेषु सर्वेषु समुत्तस्थुर्नरर्षभाः ॥ १ ॥ उत्थितेषु महाराज पृथिव्यां सर्वराजभिः। रहिते सञ्जयं राजा परिप्रष्टुं प्रचक्रमे आशंसमानो विजयं तेषां पुत्रवशानुगः। आत्मनश्च परेषां च पाण्डवानां च निश्चयम् ॥ ३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच। गावल्गणे ब्रूहि नः सारफल्गु स्वसेनायां यावदिहास्ति किञ्चित्। त्वं पाण्डवानां निपुणं वेत्थ सर्वं किमेषां ज्यायः किमु तेषां कनीयः ॥ ४ ॥ त्वमेव यो सारवित्सर्वदर्शी धर्मार्थयोर्निपुणो निश्चयज्ञः। स मे पृष्टः सञ्जय ब्रूहि

कहिए यमपुरीमें पहुँचा दूँगा॥१४॥ फिर उस समय मैं अर्जुनसे आज्ञा माँगकर और श्रीकृष्णको प्रणाम करके हे देवताओंको सी कांतिवाले राजन् धृतराष्ट्र! अर्जुनका तथा श्रीकृष्णका गौरवभरा सन्देशा आपसे कहनेके लिये बहुत ही शीघ्रताके साथ यहाँको चला आरहा हूँ।१५। छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय! धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन ने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी इन बातोंको अच्छा नहीं बताया और जो राजे देशदेशान्तरोंसे आकर सभामें बैठे थे वह सब बिना कुछ कहे चुपचाप बैठे रहे और वह फिर तुरन्त ही उठकर खड़े होगए ॥ १ ॥ हे महाराज! जब राजे उठकर अपने २ ठहरने के स्थानोंको चले गए तब पुत्रोंको विजय चाहने वाले और पुत्रोंके वशीभूत हुए राजा धृतराष्ट्रने एकान्तमें संजयसे उसका अपना, अन्य तटस्थ मनुष्योंका और पाण्डवोंका क्या निश्चय है यह पूछना आरम्भ किया ॥२॥३॥ धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सञ्जय! हमारी अपनी सेनामें जो बल अथवा निर्बलता हो वह मुझे बता, तू पाण्डवोंकी सब बातों को भी यथावत् जानता है, इसलिये उनमें और हममें कौन बलवान् है तथा कौन निर्बल है यह भी मुझे बता, तू दोनोंके बलको जानता है, धर्म और व्यवहारमें निपुण है तथा सब बातोंके परिणामको जानता है, इस कारण हे सञ्जय! मैं तुझसे पूछता हूँ तू मुझे बता

सर्वं युध्यमानाः कतरेऽस्मिन् क्षयन्ति ॥ ५ ॥ संजय उवाच । न त्वां ब्रूयां रहिते जातु किंचिदसूया हि त्वां प्रविशेत राजन् । आनयस्व पितरं महाव्रतं गांधारीं च महिषीमाजमीढ ॥६॥ तौ ते असूयां विनयेतां नरेन्द्रः धर्मज्ञौ तौ निपुणौ निश्चयज्ञौ । तयोस्तु त्वां संनिधौ तद्वदेयं कृत्स्नं मतं केशवपार्थयोर्यत् ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्तेन च गान्धारी व्यासश्चात्राजगाम ह ८ । आनीतौ विदुरेणेह सभां शीघ्रं प्रवेशितौ ॥ ८ ॥ ततस्तन्मतमाज्ञाय संजयस्यात्मजस्य च । अभ्युपेत्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥ व्यास उवाच । संपृच्छते धृतराष्ट्राय संजय आचक्ष्व सर्वं यावदेषोऽनुयुंक्ते । सर्वं यावद्वेत्थ तस्मिन् यथावद्याथातथ्यं वासुदेवेऽर्जुने च ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि व्यास-
गांधार्यागमने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

संजय उवाच । अर्जुनो वासुदेवश्च धन्विनौ परमार्चितौ । कामा-

कि-इस रणमें किधरके योधाओंका नाश होगा ? ॥ ४ ॥ ५ ॥ संजय ने उत्तर दिया, कि-हे अजमीढवंशी राजा धृतराष्ट्र ! मैं आपसे एकांत में कभी भी कुछ बात कहना नहीं चाहता, क्योंकि—एक पक्षकी बात कहनेसे तुम्हारे मनमें ईर्षा उत्पन्न होजायगी आप महाव्रतधारी अपने पिता व्यासजीको और महारानी गांधारीके यहाँ बुलवा लीजिये ॥ ६ ॥ क्योंकि-वह दोनों धर्मको जानने वाले, चतुर और बातके परिणामको जानजाते हैं इस कारण वह दोनों तुम्हारी ईर्षाको दूर करदेंगे उन दोनोंके सामने मैं तुम्हें श्रीकृष्णका और अर्जुनका जो कुछ विचार है सो सब कह कर सुनाऊँगा ॥७॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! संजयके इसप्रकार कहते ही धृतराष्ट्र ने विदुर जीके द्वारा गांधारी और व्यासजीको बुलवा लिया, ज्यों ही वह आये कि-विदुरजी उनको सभाभवनमें लिवा लाये ॥ ८ ॥ तदनन्तर महाबुद्धिमान् वेदव्यासजी सञ्जयकी और अपने पुत्र धृतराष्ट्रकी बातको समझ कर कहने लगे ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले, कि-हे संजय ! धृतराष्ट्र पूछता है कि-यह संजय श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सब बात जानता है, इस लिये तू उन दोनोंकी जो कुछ बात जानता हो वह सब प्रश्न करने वाले राजा धृतराष्ट्रको ठीक २ सुनादे ॥ १० ॥ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥

संजयने कहा, कि—अर्जुन और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण महान्-

दन्यत्र सम्भूतौ सर्वभावाय संमितौ ॥ १ ॥ व्यामान्तरं समास्थाय यथा मुक्तं मनस्विनः। चक्रं तद्वासुदेवस्य मायया वर्त्तते विभो। २। सापन्हवं कौरवेषु पांडवानां सुसम्मतम्।सारासारबलं ज्ञातुं तेजःपुंजावभासितम् ॥ ३ ॥ नरकं शम्बरञ्चैव कंसं चैद्यञ्च माधवः। जितवान् घोरसङ्काशान् क्रीडन्निव महाबलः ॥४॥ पृथिवीं चांतरिक्षं च द्यां चैव पुरुषोत्तमः। मनसैव विशिष्टात्मा नयत्यात्मवशं वशी ॥ ५ ॥ भूयो भूयो हि यद्राजन् पृच्छसे पाण्डवान् प्रति। सारासारबलं ज्ञातुं तत् समासेन मे शृणु ॥ ६ ॥ एकतो वा जगत् कृत्स्नमेकतो वा जनार्दनः। सारतो जगतः कृत्स्नादतिरिक्तो जनार्दनः ॥ ७ ॥ भस्मकुर्य्याज्जगदिदं मनसैव जनार्दनः। न तु कृत्स्नं जगच्छक्तं भस्मकर्त्तुं जनार्दनम् ८ यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः। ततो भवति गोविंदो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ ९ ॥ पृथिवीं चान्तरिक्षञ्च दिवं च पुरुषोत्तमः।

धारी, बड़े प्रतिष्ठित और बड़े सम्पन्न हैं अर्थात् वह साक्षात् परब्रह्मरूप हैं और उन्होंने इसलोकमें अपनी इच्छासे जन्म धारण किया है॥१॥हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णका जो चक्र है उसके भीतरके भाग की चौड़ाई पाँच कोलिया भर है, उस चक्रको वह अपनी इच्छानुसार चाहे तहाँ छोड़ सकते हैं और उसकी माया ऐसी गहन है, कि जाननेमें नहीं आती ॥ २ ॥ तेजके पुंजसे दमदमाते हुए प्रकाश वाला वह चक्र कौरवोंका नाश करने वाला और पाण्डवोंके बलाबलको जाननेका एक उत्तम साधन है, इस कारण पाण्डवोंको वह बड़ा ही प्यारा है ॥३॥ महाबली श्रीकृष्णने नरकासुर शम्बरासुर, कंस, शिशुपाल आदि भयानक असुरोंको तो जैसे खेल कर रहे हों इस प्रकार जीत लिया था ४ ऐश्वर्य वाले पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सङ्कल्प मात्रसे ही पृथिवी, आकाश और स्वर्गको अपने वशमें कर लेते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन्! तुम जो पाण्डवोंका बलाबल जाननेके लिये मुझसे वार २ पूछते हो, इसका उत्तर तुम मुझसे संक्षेपमें सुनो ॥६॥ एक ओर सब जगत्को रक्खो और एक ओर जनार्दन श्रीकृष्णको रक्खो तो बलमें श्रीकृष्ण सब जग जगत्से अधिक उतरेंगे ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण चाहें तो सङ्कल्पमात्रसे ही इस सब जगत्को जलाकर भस्म करडालें, परन्तु सब जगत् श्रीकृष्णको जलाकर भस्म नहीं कर सकता ॥ ८ ॥ जहाँ सत्य होता है, जहाँ धर्म होता है, जहाँ लज्जा है और जहाँ सरलता होती है तहाँ ही गोविन्द श्रीकृष्ण रहते हैं और जहाँ श्रीकृष्ण होते हैं

दिवं चेष्टयति भूतात्मा क्रीडन्निव जनार्दनः ॥ १० ॥ स कृत्वा पाण्डवान् सत्रं लोकं संमोहयन्निव । अधर्मनिरतान्मूढान् दग्धुमिच्छति ते सुतान् ॥ ११ ॥ कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रञ्च केशवः । आत्मयोगेन भगवान् परिवर्त्तयतेऽनिशम् ॥ १२ ॥ कालस्य च हि मृत्योश्च जङ्गमस्थावरस्य च । ईशते भगवानेकः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥ ईशन्नपि महायोगी सर्वस्य जगतो हरिः । कर्माण्यारभते कर्त्तुं कीनाश इव वर्धनः ॥ १४ ॥ तेन वंचयते लोकान्मायायोगेन केशवः । ये तमेव प्रपद्यन्ते ते न मुह्यन्ति मानवाः ॥ १५ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि यानसन्धिपर्वणि संजयवाक्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । कथं त्वं माधवं वेत्थ सर्वलोकमहेश्वरम् । कथमेनं न वेदाहं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । शृणु राजन्

वहाँ ही विजय रहती है ॥ ९ ॥ सब प्राणियोंके अन्तर्यामीरूप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण क्रीड़ा करते हुएसे पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्गके निवासियोंसे चेष्टा करते हैं ॥ १० ॥ यह भगवान् श्रीकृष्ण ही सब कुछ करते हैं तथापि प्राणियोंके ऊपर उन्होंने ऐसी माया डाल रक्खी है, कि-उनकी लीला किसीकी समझमें आती ही नहीं, वह पाण्डवोंको निमित्तमात्र करके तुम्हारे अधर्मी मूढ़पुत्रोंको भस्म करडालना चाहते हैं ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपनी चेतनशक्तिसे कालचक्रको जगत् चक्रको और युगचक्रको रात दिन चलाया करते हैं ॥ १२ ॥ यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, कि-वह एक भगवान् श्रीकृष्ण ही कालके मृत्युके और सकल स्थावर जङ्गमोंके स्वामी हैं । १३ । महायोगी श्रीहरि (श्रीकृष्ण) स्वयं सब जगत्के स्वामी होकरभी धान्य आदिकी वृद्धि करने वाले किसानकी समान अथवा देह आदिका नाश करने वाले यमराजकी समान कर्म किया करते हैं ॥ १४ ॥ और अपनी अलौकिकी मायाके प्रभावसे लोकोंको मोहित किया करते हैं, जो प्राणी ऐसे श्रीकृष्णकी शरण लेते हैं वह इस संसारमें मोहित नहीं होते हैं १५ अड़सठवां अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥ * *

धृतराष्ट्रने पूछा, कि—हे संजय ! माधव श्रीकृष्ण सब लोकोंके महेश्वर हैं इस बातको तू कैसे जानता है ? और मैं उनको ऐसा क्यों नहीं जानता, यह बात मुझे बता ॥ १ ॥ संजयने कहा कि हे राजन्! सुनो, तुम्हारे पास विद्या कहिये ज्ञान नहीं है और मेरा ज्ञान कभी

ते विद्या मन विद्या न हीयते । विद्याहीनस्तपोध्वस्तो नाभिजानाति केशवम् ॥ २ ॥ विद्यया तात जानामि त्रियुगं मधुसूदनम् । कर्त्तारम-कृतं देवं भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ ३ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । गावल्गणेऽत्र का भक्तिर्या ते नित्यं जनार्दने । यया त्वमभिजानासि त्रियुगं मधुसूद-नम् ॥ ४ ॥ संजय उवाच । मायां न सेवे भद्रन्ते न वृथाधर्ममाचरे । शुद्धभावं गतो भक्त्या शास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम् ॥५॥ धृतराष्ट्र उवाच । दुर्योधन हृषीकेशं प्रपद्यस्व जनार्दनम् । आप्तो नः संजयस्तात शरणं गच्छ केशवम् ॥ ६ ॥ दुर्योधन उवाच । भगवान्देवकीपुत्रो लोकांश्चे-न्निहनिष्यति । प्रवदन्नर्जुने सख्यं नाहं गच्छेऽद्य केशवम् ॥ ७॥ धृत-

क्षीण नहीं होता है,जो मनुष्य ब्रह्म विद्यारूप ज्ञानसे हीन है,वह अज्ञान के कारण विषयरूप आनन्दस्वरूपसे भ्रष्ट होजाता है,इसकारण ही वह श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता ॥ २ ॥ हे तात ! मैं ब्रह्मविद्याके प्रभावसे स्थूल सूक्ष्म और कारणशरीरके साथ संबन्ध रखनेवाले इस जगत्के निमित्त कारणरूप, नित्य सिद्ध होनेके कारण कर्मों करके असाध्य आकाश वायु आदि पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय होनेके स्थान रूप, मधु दैत्यका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण को यथार्थरूपसे जानता हूं॥३॥धृतराष्ट्र ने पूछा, कि-हे सञ्जय ! श्रीकृष्ण के ऊपर जो तेरी नित्य भक्ति रहती है वह कैसी है,कि-जिसके प्रभाव से तू जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्तिरूप तीनों अवस्थाओंके साक्षीरूप मधुसूदन भगवान्को जानता है ॥ ४ ॥ संजय बोला, कि-आपका कल्याण हो, सुनो मैं स्त्री, पुत्र, घर द्वार आदि अनेकों रूप धारने वाली मायामें नहीं फँसता हूँ, भगवान्को अर्पण बिना किये कोई धर्म नहीं करता हूँ, काम क्रोध आदिको त्यागनेसे मेरा मन निर्मल होगया है, ध्यान योगसे और तत्त्वमसि आदि शास्त्रके विचारसे परमात्माके स्वरूप को जानता हूँ अर्थात् मैं संसारी नहीं हूँ किन्तु ब्रह्मस्वरूप हूँ ऐसे तत्त्वविचाररूप ज्ञानसे ही परमात्मतत्त्व समझमें आसकता है ॥ ५ ॥ संजयकी इस बातको सुनकर धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे कहा, कि-हे बेटा! तू हृषीकेश जनार्दन भगवान्की शरणमें जा, हे तात ! संजय हमारा हितकारी और सत्यवादी है, इसलिये तू श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर उनसे क्षमा माँग ॥ ६ ॥ दुर्योधनने कहा, कि-यदि भगवान् देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण लोकोंका संहार करेंगे तो वह भले ही ऐसा करें, परन्तु जब वह अर्जुनसे मित्रभावकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं तो अब मैं उनकी

राष्ट्र उवाच । अनायं गान्धारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः । ईर्ष्युर्दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः ॥ ८॥ गान्धार्युवाच । ऐश्वर्यकाम दुष्टात्मन् वृद्धानां शासनातिग । ऐश्वर्यजीविते हित्वा पितरं मां च बालिश ॥ ९ ॥ वर्द्धयन् दुर्हृदां प्रीतिं मां च शोकेन वर्धयन् । निहतो भीमसेनेन स्मर्तासि वचनं पितुः ॥ १० ॥ व्यास उवाच । प्रियोऽसि राजन् कृष्णस्य धृतराष्ट्र निबोध मे । यस्य ते सञ्जयो दूतो यस्त्वां श्रेयसि योक्ष्यते ॥११॥ जानात्येष हृषीकेशं पुराणं यच्च वै परम् । शुश्रूषमाणमैकाग्र्यं मोक्ष्यते महतो भयात् ॥ १२ ॥ वैचित्रवीर्य पुरुषाः क्रोधहर्षसमावृताः । सिता बहुविधैः पाशैर्ये न तुष्टाः स्वकैर्धनैः ॥ १३ ॥ यमस्य वशमायान्ति काममूढाः पुनः पुनः । अन्धनेत्रा यथैवान्धा नीयमानाः स्वकर्मभिः ॥ १४ ॥ एष एकायनः पन्था येन यान्ति मनी-

---

शरणमें नहीं जाऊँगा ॥ ७ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि-अरी गान्धारी ! तेरा यह खोटी बुद्धिवाला दुष्टात्मा और अभिमानी पुत्र ईर्षाके कारण गुरुजनोंके उपदेशका अपमान करके अधोगतिमें पड़नेको तयार हो रहा है ॥ ८ ॥ गान्धारीने कहा, कि—अरे ऐश्वर्य्य चाहने वाले बेटा दुर्योधन ! तेरा मैला मन बड़ा ही बुरा है, वृद्धोंके उपदेशको न मानने वाले मूर्ख पुत्र ! प्रतीत होता है, तू अब ऐश्वर्य्य, जीवन और माता पितासे हाथ धोचुका है ॥ ९ ॥ अरे ! तू शत्रुओंकी प्रसन्नताको बढ़ाता हुआ मेरे शोकको बढ़ा रहा है, परन्तु जब भीम-सेनके हाथसे तेरा प्राणान्त होने लगेगा तब तू अपने पिताकी बात को याद करेगा ॥ १० ॥ तदनन्तर व्यासजीने कहा, कि—हे धृत-राष्ट्र ! तुम मेरी बात सुनो, तुम श्रीकृष्णको प्रिय हो और जब कि—तुम्हारा दूत यह संजय है तो तुम्हें कल्याणकारी मार्गमें ही लगा-वेगा ॥ ११ ॥ क्योंकि—यह मायाको वशमें रखने वाले पुराणपुरुष घटघटवासी श्रीकृष्णके स्वरूपको जानता है एकाग्रमनसे इसकी बात सुनोगे तो यह महाभयसे छुटा देगा ॥ १२ ॥ हे विचित्रवीर्य्यके पुत्र धृतराष्ट्र ! जो पुरुष अपनेको मिले हुए धनसे सन्तोष नहीं मानते हैं और कभी क्रोधमें फंस जाते हैं, कभी प्रसन्न होनने लगते हैं वह पुरुष अनेकों प्रकारकी सांसारिक फाँसियोंमें बँधे रहते हैं ॥ १३ ॥ अनेकों कामनाओं (मनसूबों) से मूढ बने हुए वह अज्ञानी पुरुष अँधे की प्रेरणाके अनुसार चलनेवाले अँधोंकी समान वारम्वार अपने कर्मोंके अनुसार मृत्युके वशमें पड़ते हैं ॥ १४ ॥ परब्रह्मके पास पहुँचने

षिणः। तं दृष्ट्वा मृत्युमत्येति महांस्तत्र न सज्जति॥१५॥धृतराष्ट्र उवाच । अङ्ग सञ्जय मे शंस पन्थानमकुतोभयम् येन गत्वा हृषीकेशं प्राप्नुयां सिद्धिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥ सञ्जय उवाच । नाकृतात्मा कृतात्मानं जातु विद्या जनार्दनम् । आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् १७ इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादजः । अप्रमादोऽविहिंसा च ज्ञानयोनिरसंशयम् ॥ १८ ॥ इन्द्रियाणां यमे यत्तो भव राजन्नतन्द्रितः। बुद्धिश्च ते मा च्यवतु नियच्छैनां यतस्ततः ॥१९॥ एतज्ज्ञानं विदुर्विप्रा ध्रुवमिन्द्रियधारणम् । एतज्ज्ञानं च पन्थाश्च येन यांति मनीषिणः२० अमाप्यः केशवो राजन्निन्द्रियैरजितैर्नृभिः । आगमाधिगमाद्योगाद्वशी तत्वे प्रसीदति ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि सञ्जय-वाक्य ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

वाला एक यह ज्ञानमार्ग ही है, विद्वान् पुरुष उस ही मार्गमें चलते हैं, महात्मा पुरुष उस परमात्माका दर्शन पाकर मृत्युके पार होता है,संसार में आसक्त नहीं होता ॥ १५ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे प्यारे सञ्जय ! तू मुझे सब ओरसे भयरहित मार्ग बता, जिसके द्वारा मैं हृषीकेश पर-मात्माके समीप पहुँच कर मोक्षरूप उत्तम सिद्धिको पाजाऊँ ॥ १६ ॥ सञ्जयने उत्तर दिया कि—जो अपने मनको वशमें नहीं कर सकता है वह पुरुष नित्यसिद्ध जनार्दन भगवान्को कभी भी नहीं जान सकेगा अपनी इन्द्रियोंको वशमें किये विना यज्ञ आदि कर्मानुष्ठानसे परमात्मा नहीं मिलसकता ॥ १७ ॥ इन्द्रियें विषयोंको पाकर उन्मत्त होजाती हैं इस कारण सावधान रहकर विषयोंसे बचा रहै, प्रमाद न करना और किसी प्रकारकी हिंसा न करना निःसन्देह ज्ञानकी उत्पत्तिका हेतु है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तुम सावधान होकर इन्द्रियोंका निग्रह करनेमें लगजाओ, तुम्हारी बुद्धि तत्वविचारसे भ्रष्ट न होने पावै, यह बाहरी या भीतरी विषयोंमेंको जाय तो इसको रोको ।१९ मन सहित इंद्रियें को नियममें रखना इसको ही ब्राह्मण सच्चा ज्ञान मानते हैं, यही ज्ञान है और यही उत्तम मार्ग है और सब विचारवान् पुरुष इस ही मार्गमेंको जाते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! जिन मनुष्योंने इन्द्रियोंको नहीं जीता है, उनको भगवान् कृष्ण कभी नहीं मिलसकते, जितेंद्रिय पुरुष शास्त्रमें बतायी हुई युक्तिसे तथा चित्तकी वृत्तिको रोकनेसे ज्ञान पाकर आत्मस्वरूपमें आनन्द पाता है ॥ २१ ॥ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त६९

धृतराष्ट्र उवाच । भूयो मे पुण्डरीकाक्षं संजयाचक्ष्व पृच्छतः । नामकर्मार्थवित्तात प्राप्नुयां पुरुषोत्तमम् ॥ १ ॥ सञ्जय उवाच । श्रुतं मे वासुदेवस्य नामनिर्वचनं शुभम् । यावत्तत्राभिजानेऽहमप्रमेयो हि केशवः ॥ २ ॥ वसनात्सर्वभूतानां वसुत्वाद्देवयोनितः । वासुदेवस्ततो वेद्यो बृहत्त्वाद्विष्णुरुच्यते ॥३॥ मौनाद्ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम् । सर्वतत्त्वमयत्वाच्च मधुहा मधुसूदनः । ४ । कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः । विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः ॥५॥ पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम् । तद्भावात्पुण्ड-

---

धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सञ्जय ! श्रीकृष्णके विषयमें मैं तुझसे फिर पूछता हूँ, इस लिये तू मुझे कमलनयन श्रीकृष्णकी कथा सुना, जिससे कि-हे तात ! मैं श्रीकृष्णके नाम और चरित्रको जान कर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको पाजाऊँ ॥ १ ॥ सञ्जय बोला, कि-मैंने श्रीकृष्णके शुभनामोंका निर्वचन (वाच्य अर्थ) सुना है, उसमेंसे जितना मैं जानता हूँ, उतना तुम्हें सुनाये देता हूँ, क्योंकि-केशव भगवान् अप्रमेय हैं ॥२॥ सब प्राणियोंके वसन अर्थात् मायाके द्वारा आवरण करने वाले होनेसे, वसु कहिये तेजोमय होनेसे तथा देवताओंके कारणरूप होनेसे श्रीकृष्णजी वासुदेव नामवाले माने जाते हैं और सर्वव्यापक होनेसे विष्णु कहलाते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! मुनियोंका मननरूप कर्म अर्थात् तत्त्वोंका दर्शन ध्यान कहिये निश्चय करे हुए तत्त्वोंमें चित्तका प्रणिधान तथा चित्तका निरोधरूप योग है, इतनी वस्तुओंसे 'म' कहिये आत्माकी उपाधिभूत बुद्धिवृत्तिको 'धवन' कहिये धो देता है इस कारण वह माधव कहलाता है, वह मधु नामवाले दैत्यका संहार करता है अथवा मधु नाम वाले पृथिवी आदि चौबीस तत्त्वोंका संहार करता है अर्थात उनको अपने स्वरूपमें लय करता है, इसकारण वह मधुसूदन कहलाता है ॥ ४ ॥ जो अपनेमें सबको खेंचकर विलीन करलेय उस सकल प्रपञ्चके बाधकी अवधिरूप सत्ता 'कृष' धातुका अर्थ है और 'ण' शब्दका अर्थ मोक्षसुख है, इन दोनों गुणोंके कारण से यदुवंशमें प्रकट होनेवाले विष्णु भगवान् श्रीकृष्ण नामसे कहे जाते हैं ॥ ५ ॥ श्वेतकमलकी समान स्वच्छ हृदय कमल ही निवासस्थान है, उसमें निवास करने पर भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं पाते और सदा अविनाशी रहते हैं,इस अभिप्रायको लेकर उनका नाम पुण्डरीकाक्ष है दस्यु कहिये चोर समान अधर्मी पुरुषोंको पीड़ा देते हैं, इस

रीकाक्षो दस्युत्रासाज्जनार्दनः ६ यतः सत्वान्न च्यवते यच्च सत्वान्न हीयते । सत्वतः सात्वतस्तस्मादार्षभाद्वृषभेक्षणः ७ न जायते जनि- त्रायमजस्तस्मादनीकजित् देवानां स्वप्रकाशत्वाद्दमाद्दामोदरो विभुः८ हर्षात्सुखात्सुखैश्वर्याद्धृषीकेशत्वमश्नुते । बाहुभ्यां रोदसी बिभ्रन्महा- बाहुरिति स्मृतः ॥ ९ ॥ अधो न क्षीयते जातु यस्मात्तस्मादधोक्षजः । नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ॥१०॥ पूरणात्सदनाच्चापि ततोऽसौ पुरुषोत्तमः । असतश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाप्ययात् ।११। सर्वस्य च सदा ज्ञानात् सर्वमेतं प्रचक्षते । सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णः सत्य-

---

कारण वह जनार्दन कहलाते हैं ॥ ६ ॥ जिनमेंसे सत्त्वगुण नष्ट नहीं होता तथा जो सत्त्वगुणसे भ्रष्ट नहीं होते इस कारण वह सात्वत अथवा सात्वत कहलाते हैं, अर्ष कहिये उपनिषद्रूप वेदसे भासते हैं इस कारण आर्षभ कहलाते हैं, वृष कहिये धर्मको भास (ज्ञान) कराता है अतः वृषभ नाम वेदका, नेत्रकी समान जिसके स्वरूपको जताते हैं उस परमात्माका नाम वृषभेक्षण है ॥ ७ ॥ युद्धमें सेनाओं पर विजय पानेवाले श्रीकृष्ण किसी उत्पन्न करनेवालेके द्वारा जन्म धारण नहीं करते हैं इस कारण अज कहलाते हैं दमन करनेवाला दाम कहलाता है और उद शब्दका अर्थ है आकाशवान् अर्थात् व्यापक मधुसूदन कृष्ण स्वयं दमन करते हैं और इन्द्रियोंको स्वयं उत्तम प्रकारका प्रकाश देते हैं इस कारण दामोदर कहलाते हैं ॥ ८ ॥ उनसे आनन्द मिलता है इसकारण वह हृषीक कहलाते हैं और ईश कहिये ईश्वर हैं अर्थात् वृत्तिसुख, स्वरूपानन्द तथा ऐश्वर्य यह तीन वस्तुएँ श्रीकृष्ण में हैं इस कारण वह हृषीकेश कहलाते हैं और वह अपनी दोनों भुजाओंसे स्वर्ग और पृथिवीको धारण किये हुए है इसकारण महा- बाहु कहलाते हैं ॥ ९ ॥ वह कभी भी अधःस्थानमें क्षयको नहीं प्राप्त होते हैं अर्थात् संसारके धर्मोंसे लिप्त नहीं होते हैं इस कारण उनका नाम अधोक्षज है नार कहिये जलमें उनका निवास है इससे नारा- यण कहलाते हैं ॥ १० ॥ जो पूर्ण करता है उसको 'पुरु' कहते हैं और जो विनाश करता है उसको 'स' कहते हैं इन दोनोंके मिलनेसे पुरुष शब्द बनता है और जो पुरुषोंमें उत्तम हो वह पुरुषोत्तम कहलाता है, श्रीकृष्ण जगत्की उत्पत्ति और संहार करते हैं अतः पुरुषोत्तम हैं और वह सकल कार्य कारणोंकी उत्पत्ति तथा संहारके हेतु हैं और सदा सब विषयोंको जानते हैं, इसकारण पण्डित उनको सर्वनामसे पुकारते हैं

मत्र प्रतिष्ठितम् ॥ १२ ॥ सत्वात्सत्यं तु गोविन्दस्तस्मात्सत्योऽपि नामतः । विष्णुर्विक्रमणाद्देवो जयताञ्जिष्णुरुच्यते ॥१३॥ शाश्वतत्वादनंतश्च गोविंदो वेदनाद् गवाम् । अतत्त्वं कुरुते तत्त्वं तेन मोहयते प्रजाः ॥ १४ ॥ एवंविधो धर्मनित्यो भगवान्मधुसूदनः । आगन्ता हि महाबाहुरानृशंस्यार्थमच्युतः ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि संजयवाक्ये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

धृतराष्ट्र उवाच। चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि सञ्जय द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे । विभ्राजमानं वपुषा परेण प्रकाशयंतं प्रदिशो दिशश्च १ ईरयंतं भारतीं भारतानामभ्यर्चनीयां शंकरीं सृंजयानाम् । बुभूषद्भिर्ग्रहणीयामनिंद्यां परासूनामग्रहणीयरूपाम् ॥ २ ॥ समुद्यंतं सात्वतमेकवीरं प्रणेतारमृषभं यादवानाम् । निहंतारं क्षोभणं शात्रवाणां

श्रीकृष्ण सत्यमें निवास करते हैं और सत्य श्रीकृष्णमें वास करता है ॥ ११-१२ ॥ गोविन्द भगवान सत्यकी सत्यमूर्त्ति हैं, इस कारण उनका नाम सत्य भी है और वह सकल जगत्में व्यापे हुए हैं इस कारण विष्णु, विजय करते हैं इस कारण जिष्णु नित्य होनेके कारण अनन्त और गो कहिये गयपत्ररूप शब्दप्रवाहको विद कहिये जानते हैं इसकारण गोविंद नामसे संसारमें प्रसिद्ध हैं, वह इस मिथ्याभूत विश्वको अपनी सत्तासे स्फूर्त्ति देकर उसको सत्यता प्रकाशते हैं और उससे सब जगत्को मोहित करते हैं ॥१३॥१४॥ ऐसे माहात्म्यवाले और धर्मको सदा मानने वाले महाबाहु भगवान् मधुसूदन अच्युत,कौरवोंका नाश न हो,इसलिये दया करके तुम्हारे यहां पधारने वाले हैं ॥ १५ ॥ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥

धृतराष्ट्र कहने लगे, कि-हे सञ्जय ! उत्तम शरीरसे देदीप्यमान दिशाओं और कोनोंको प्रकाशित करनेवाले वसुदेव-कुमार श्रीकृष्णको जो अपने समीपमें देखते हैं उन नेत्रवालोंके भाग्यके लिये मैं ललचाता हूं ॥ १ ॥ भरतवंशी राजाओंके पूजने योग्य, ऐश्वर्यकी इच्छा वाले पुरुषों करके ग्रहण करने योग्य और मरनेको तयार हुए पुरुष जिसको स्वीकार नहीं करते ऐसी कल्याणकारिणी वाणीका उपदेश करने वाले शत्रुओंका संहार करनेके लिये उनके मनमें क्षोभ उत्पन्न करने वाले, शत्रुओंके पक्षका नाश करने वाले, उद्यमी, यादवोंमें श्रेष्ठ स्वामी, और भूमण्डल भरमें अद्वितीय वीर, महात्मा श्रीकृष्ण

मुंचंतं च क्षिपतां वै यशांसि ३ द्रष्टारो हि कुरवस्तं समेता महात्मानं शत्रुहणं वरेण्यम् । ब्रुवंतं वाचमनृशंसरूपां वृष्णिश्रेष्ठं मोहयंतं मदीयान् । ४ । ऋषिं सनातनतमं विपश्चितं वाचः समुद्रं कलशं यतीनाम् अरिष्टनेमिं गरुडं सुपर्णं हरिं प्रजानां भुवनस्य धाम ॥ ५ ॥ सहस्रशीर्षं पुरुषं पुराणमनादिमध्यान्तमनन्तकीर्त्तिम्। शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं परं परेषां शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं देवासुराणामथं नागरक्षसाम् । नराधिपानां विदुषां प्रधानमिन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि यानसंधिपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

समाप्तं च यानसन्धिपर्व ॥

॥ अथ भगवद्यानपर्व ॥

वैशम्पायन उवाच । सञ्जये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिरः । अभ्यभाषत दाशार्हमृषभं सर्वसात्वताम् ॥ १ ॥ अयं स कालः संप्राप्तो

का इकट्ठे हुए सब कौरव दर्शन करेंगे और शत्रुओंका संहार करने वाले, सेवायोग्य वृष्णिवंशमें सिंहसमान श्रीकृष्ण भी दयो भरे वाक्य कह कर मेरे पुत्रोंको मोहित करेंगे ॥ २—४ ॥ मैं उन परम पुरातन, आत्मज्ञानी ऋषियोंकी वाणीके समुद्ररूप, यतियोंके लिये कलशकी समान प्राप्त होने वाले सुन्दर परों वाले अरिष्टनेमि, गरुड़रूप, प्रजा की उत्पत्ति और संहार करने वाले, तीनों लोकोंके निवासस्थान, तीनों लोकोंके स्थानरूप, विश्वके कारण, अजन्मा, सबसे श्रेष्ठ, आदि मध्य और अन्तरहित, अनन्त कीर्त्तिवाले, विराट आदिसे भी श्रेष्ठ, कर्मजन्यपुण्य आदिका फल देनेवाले, पुराण पुरुष श्रीनारायणकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ५-६ ॥ तीनों लोकोंकी रचना करने वाले, देवता असुर नाग और राक्षस आदिको उत्पन्न करने वाले, विद्वानोंमेंऔर राजाओंमें मुख्य उन इन्द्रके छोटे भ्राता श्रीकृष्णकी मैं शरण लेता हूँ ७ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ छ छ

यानसन्धिपर्व समाप्त

भगवद्यानपर्व

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय ! संजयके लौट जाने पर धर्मराज युधिष्ठिरने सकल यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णसे कहा, कि

मित्राणां मित्रवत्सल । न च त्वदन्यं पश्यामि यो न आपत्सु तारयेत् २ त्वां हि माधवमाश्रित्य निर्भया मोघदर्पितम् । धार्त्तराष्ट्रं सहामात्यं स्वयं शानुयुंक्ष्महे॥३॥यथा हि सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीनरिन्दम । तथा ते पाण्डवा रक्ष्याः पाह्यस्मान्महतो भयात् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच । अयमस्मि महाबाहो ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् । करिष्यामि हि तत्सर्वं यत्त्वं वक्ष्यसि भारत ॥५॥ युधिष्ठिर उवाच । श्रुतं ते धार्त्तराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम् । एतद्धि सकलं कृष्ण संजयो मां यदब्रवीत् ।६। तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सोऽस्यात्माऽविवृतान्तरः । यथोक्तं दूत आचष्टे वध्यः स्यादन्यथा ब्रुवन् ७ अप्रदानेन राज्यस्य शांतिमस्मासु मार्गति । लुब्धः पापेन मनसा चरन्नसममात्मनः ॥ ८ ॥ यत्तद्द्वादश वर्षाणि वनेषु व्युषिता वयम् । छद्मना शरदं चैकां धृतराष्ट्रस्य

हे मित्रोंके ऊपर प्रेम करने वाले श्रीकृष्ण ! मित्रोंके मित्रता दिखानेका यह अवसर अब यह आगया, मैं आपके सिवाय और किसीको ऐसा नहीं देखता, कि-जो आपत्तियोंमेंसे हमें उबारे ॥२॥ हे माधव ! हम आपका आश्रय लेकर निर्भय रहते हैं और वृथा घमण्डमें भरे हुए मन्त्रियोंसहित धृतराष्ट्रकुमार दुर्योधनसे हम स्वयं अपना राज्यका भाग माँगना चाहते हैं ॥ ३ ॥ हे शत्रुदमन ! तुम जैसे वृष्णियोंकी सकल आपत्तियोंसे रक्षा करते हो तैसे ही तुम्हें पाण्डवोंकी रक्षा भी करनी चाहिये, अब आप इस महाभयसे हमारी रक्षा करिये ।४। श्रीभगवान् बोले कि-हे महाभुज भरतवंशी राजन् ! मैं तो तुम्हारे पास इस लिये आया ही हूँ, तुम जो कुछ कहना चाहते हो सो कहो तुम जो कुछ भी कहोगे मैं वह सब काम करूँगा ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे श्रीकृष्ण ! राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्र जो कुछ करना चाहते हैं वह तो तुमने सुन ही लिया, यह सब बात जो कि-सञ्जय ने मुझसे कही है सो सब धृतराष्ट्रका मत है, क्योंकि-संजय धृतराष्ट्रका निजका पुरुष है, इस कारण धृतराष्ट्रने अपने मनकी बात सञ्जयसे स्पष्ट कहदी है और दूत अपने स्वामीके कहनेके अनुसार ही कहा करता है, यदि वह कुछका कुछ कहे तो प्राणांत दण्डका पात्र होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ लोभी धृतराष्ट्र अपने मनमें पाप रख कर हमारे साथ भेदभावका वर्त्ताव करते हैं और हमें राज्यका भाग बिना दिये ही हमारे साथ सन्धि करनेका अवसर खोजते हैं ८ हम तो धृतराष्ट्रकी आज्ञासे बारह वर्षतक वनमें रहे और फिर एक वर्षतक छिप

शासनात् ॥ ९॥ स्थाता नः समये तस्मिन् धृतराष्ट्र इति प्रभो । नार्हो स्म समयं कृष्ण तद्धि नो ब्राह्मणा विदुः ॥१० ॥ गृध्नो राजा धृतराष्ट्रः स्वधर्मं नानुपश्यति । वश्यत्वात् पुत्रगृद्धित्वान्मन्दस्यान्वेति शासनम् ॥११॥ सुयोधनमते तिष्ठन् राजास्मासु जनार्दन । मिथ्या चरति लुब्धः सन् चरन् हि प्रियमात्मनः ॥ १२ ॥ इतो दुःखतरं किं नु यदहं मातरं ततः । शं विधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन ॥ १३ ॥ काशिभिश्चेदिपांचालैर्मत्स्यैश्च मधुसूदन। भवता चैव नाथेन पञ्चग्रामा वृता मया ॥ १४ ॥ अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दी वारणावतम् । अवसानञ्च गोविन्द कञ्चिदेवात्र पञ्चमम् ॥१५ ॥ पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा वा नगराणि वा । वसेम सहिता येषु मा च नो भरतानशन्१६ न च तानपि दुष्टात्मा धार्त्तराष्ट्रोऽनुमन्यते । स्वाम्यमात्मनि मत्वासा-

---

कर भी रहे ९ हे महाराज! हम तो वनवासको जाते समय समझे थे, कि—तुम तेरह वर्षके पीछे आकर अपना राज्य लौटालेना, ऐसा जो धृतराष्ट्र कहते हैं, वह अपने वचनका पालन करेंगे, हे कृष्ण ! हमने तो जो प्रतिज्ञाकी थी उसको निभा दिया, इस बातको ब्राह्मण जानते हैं ॥ १० ॥ राजा धृतराष्ट्र लोभी हैं वह अपने धर्मकी ओरको नहीं देखते, किन्तु पुत्रके वशमें होनेके कारण मूर्ख पुत्रका पक्षपात करते हैं और उसकी आज्ञा बजाते हैं ॥११॥ हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र लोभी होने के कारण दुर्योधनके विचारके अनुसार बर्त्ताव करते हैं और अपना हित करना चाहते हुए हमारे साथ दिखावटका झूठा बर्त्ताव करते हैं ॥ १२ ॥ इस कारण हे कृष्ण ! जो मैं वहाँ रहनेवाली अपनी माताजीको और विदुर आदि संबन्धियोंका अच्छे प्रकारसे भरणपोषण भी नहीं कर सकता हूं इससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ।१३। मेरे ऊपर काशिराज, चेदी देशके राजे, पाञ्चाल देशके राजे, मत्स्य-देशके राजे तथा आप रक्षा करनेवाले हैं तो भी मैंने कौरवोंसे पांच ही ग्राम माँगे ।१४। हे गोविन्द ! मैं धृतराष्ट्रसे कहता हूँ, कि–हे महाराज ! तुम मुझे अविस्थल, वृकस्थल माकन्दी, वारणावत और पाँचवाँ जौनसा उचित समझो इस प्रकार पाँच ग्राम वा नगर हमें देदो, कि–जिनमें हम पाँचों भाई इकट्ठे होकर रहें और हमारे कारण से भरतवंशी राजाओंका वृथा नाश न होय १५-१६ परन्तु दुष्टात्मा दुर्योधन धृतराष्ट्र भीष्म आदि बड़ोंको कुछ गिनता ही नहीं है तथा

वतो दुःखतरं नु किम् ॥ १७ ॥ कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृद्धयतः । लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम्॥१८॥ ह्रीर्हता बाधते धर्मं धर्मो हन्ति हतः श्रियम् । श्रीर्हता पुरुषं हन्ति पुरुषस्याधनं वधः ॥१९॥ अधनाद्धि निवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदो द्विजाः । अपुष्पादफलाद् वृक्षाद्यथा कृष्ण पतत्रिणः ॥२०॥ एतच्च मरणं तात यन्मत्तः पतितादिव । ज्ञातयो विनिवर्तन्ते प्रेतसत्वादिवासवः ॥ २१ ॥ नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् । यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥२२॥ धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम् । जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥ २३ ॥ ये धनादपकर्षन्ति नरं स्वबलमास्थिताः ते धर्ममर्थं कामञ्च प्रमथ्नन्ति नरं च तम् ॥ २४ ॥

हमारे माँगे हुए ग्राम देना भी स्वीकार नहीं करता है क्यों कि—वह अपनेको सब राज्यका स्वामी मानता है, इससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ॥ १७ ॥ अच्छे कुलमें उत्पन्न और वृद्ध होने पर भी पुरुष लोभके कारण दूसरेके धनकी आशा रखता है, यह लोभ उसकी बुद्धिका नाश करदेता है और ज्यों ही बुद्धि नष्ट हुई, कि-लज्जाका भी नाश होजाता है ॥ १८ ॥ लज्जाका नाश हुआ, कि-वह धर्ममें बाधा डालने लगती है, धर्मका नाश हुआ कि—वह लक्ष्मीका नाश करदेता है और लक्ष्मी नष्ट हुई कि-वह पुरुषका नाशकर देती है, क्यों कि-निर्धनता ही पुरुषका मरण कहलाती है ॥ १९ ॥ हे कृष्ण ! जैसे फूलफलशून्य वृक्षको पक्षी छोडकर चले जाते हैं ऐसे ही कुटुंबी और मित्र निर्धन पुरुषको छोडकर दूर चलेजाते हैं२०हे तात!जिसमें से बुद्धिका लोप होगया है ऐसे मुर्दार शरीरमेंसे जैसे प्राण निकल जाते हैं ऐसे ही मैं पापी ज्यों ही निर्धन दशामें पडूँगा, कि-मेरे पास से भी कुटुंबी और सम्बन्धी सब दूर भागजायँगे, यह दशा तो मुझे मरणकी समान दुःख देगी ॥ २१ ॥ शम्बरासुरने कहा था कि-जिस दशामें आजके लिये और आनेवाले कलके प्रातःकालके लिए घरमें भोजन न दीखता हो, ऐसी अवस्थासे बढकर पाप भरी कष्टकी और कोई अवस्था नहीं होसकती ॥ २२ ॥ व्यवहार में चतुर पुरुष धनको ही मुख्यधर्म कहते हैं, क्यों कि-सब कुछ धनके ही सहारेसे टिकरहा है, इस जगत्में जो मनुष्य धनवान् हैं वह जीवित हैं और जो निर्धन हैं वह मानो मरे हुए हैं ॥२३॥ जो अपने बलके भरोसेपर शत्रुको धन से शून्य कर डालते हैं वह मानो उस मनुष्यका ही नाश कर डालते

एतामवस्थां प्राप्यैके मरणं वव्रिरे जनाः। ग्रामायैके वनायैके नाशायैके प्रवव्रजुः ॥ २५॥ उन्मादमेके पुष्यन्ति यान्त्यन्ये द्विषतां वशम्। दास्यमेके च गच्छन्ति परेषामर्थहेतुना ॥२६॥ आपदेवास्य मरणात्पुरुषस्य गरीयसी। श्रियो विनाशस्तद्ध्यस्य निमित्तं धर्मकामयोः २७ यदस्य धर्म्यं मरणं शाश्वतं लोकवर्त्म तत्। समन्तात्सर्वभूतानां न तदत्येति कश्चन ॥ २८ ॥ न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः। यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तया हीनः सुखैधितः ॥ २९ ॥ स तदात्मापराधेन सम्प्राप्तो व्यसनं महत्। सेन्द्रान् गर्हयते देवान्नात्मानञ्च कथञ्चन॥३०॥ न चास्य सर्वशास्त्राणि प्रभवन्ति निबर्हणे। सोऽभिक्रुध्यति भृत्यानां सुहृदश्चाभ्यसूयति ॥ ३१ ॥ तत्तदा मन्युरेवैति स भूयः संप्रमुह्यति। स

हैं ऐसा नहीं समझना, किन्तु उसके धर्मका अर्थका और कामका भी नाश करडालते हैं। २४। निर्धन दशामें पहुँचने पर बहुतसे तो मृत्यु को माँगा करते हैं, कितने ही नगरोंको छोडकर ग्रामोंमें जा बसते हैं कितने ही घरद्वार छोड़कर वनमें चलेजाते हैं और कितने ही मरनेके लिए यमराजके अतिथि बनजाते हैं ॥ २५॥ कितने ही पागल होजाते हैं और कितने ही अपने शत्रुओंके वशीभूत होकर रहने लगते हैं और कितने ही धनके लिए अपने शत्रुओंके टहलुए सेवक तक बनजाते हैं। २६। इस मनुष्यकी निर्धनतारूप आपत्ति मरणसे भी बढ़कर है, क्यों कि-निर्धनतामें धर्म और व्यवहारकी साधनारूप लक्ष्मीका नाश होजाता है। २७। मनुष्यका जो स्वाभाविक मरण है वह तो सनातनकालसे होता ही चला आता है और वह एक संसारका मार्ग है उसको तो चारों खूटके प्राणियोंमेंसे कोई लाँघ ही नहीं सकता २८ जो मनुष्य जन्मसे ही निर्धन होता है उसको ऐसा दुःख नहीं होता, जैसे कि कल्याणकारिणी लक्ष्मीको पाकर सुखमें पले हुए मनुष्यको निर्धन होजाने पर होता है। २९। सम्पत्तिमान् पुरुष जब अपने दुराचरणरूप अपराधके कारणसे दरिद्रतारूपी बड़े दुःखमें आपड़ता है तब वह अपने आपको किसी प्रकारका उलाहना नहीं देता, किन्तु इन्द्रकी तथा अन्य देवताओंकी निन्दा करता है। ३०। उस समय उसके सकल शास्त्र उसके दुःखको नहीं टाल सकते, वह मनुष्य उस समय दुःखके कारण अपने चाकरोंके ऊपर क्रोध करता है और सम्बन्धियोंसे ईर्षा करने लगता है३१दबकर कर्म अकर्म कुछ नहीं समझता इस प्रकार मोहके वशमें हुआ, कि-क्रूर कर्म करनेमें लग जाता

गोदवशमापन्नः क्रूरं कर्म निषेवते ॥ ३२ ॥ पापकर्मतया चैव संकरं तेन पुष्यति । संकरो नरकायैव सा काष्ठा पापकर्मणाम् ॥ ३३ ॥ न चेत् प्रबुध्यते कृष्ण नरकायैव गच्छति । तस्य प्रबोधः प्रज्ञैव प्रज्ञाचक्षुस्तरिष्यति॥३४॥प्रज्ञालाभो हि पुरुषः शास्त्राण्येवान्ववेक्षते। शास्त्रनिष्ठः पुनर्धर्मं तस्य ह्रीरङ्गमुत्तमम्॥३५॥ ह्रीमान् हि पापं प्रद्वेष्टि तस्य श्रीरभिवर्धते । श्रीमान्स यावद्भवति तावद्भवति पूरुषः॥३६॥धर्मनित्यः प्रशांतात्मा कार्ययोगवहः सदा । नाधर्मे कुरुते बुद्धिं न च पापे प्रवर्त्तते॥३७ अह्रीको वा विमूढो वा नैव स्त्री न पुनः पुमान् । नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ ३८ ॥ ह्रीमानवति देवांश्च पितॄनात्मानमेव च । तेनामृतत्वं व्रजति सा काष्ठा पुण्यकर्मणाम् ॥ ३९ ॥ तदिदं मयि ते दृष्टं प्रत्यक्षं मधुसूदन । यथा राज्यात्परिभ्रष्टो वसामि

है ।३२। पापकर्मोंमें जानेके कारण वर्णसंकरता फैलाने लगता है और वर्णसंकर नरकमें पड़ता ही है यही पापकर्मोंकी अन्तिम दशा है ३३ हे कृष्ण!यदि मनुष्य अज्ञान निद्रामेंसे नहीं जागता है तो वह नरकमें ही पड़ता है, अविद्यारूपी निद्रामें पड़े हुए धर्मीको विवेकदृष्टिरूप प्रज्ञा हीजगा सकती है, जिसको ज्ञानरूप दृष्टि मिल जायगी वह मनुष्य संसार सागरके पार होजायगा ३४ जब मनुष्य विवेक दृष्टिको पाजाता है तो वह शास्त्रोंको ही देखा करता है और शास्त्रमें श्रद्धा हुईकि-फिर वह धर्माचरण करने लगता है,दुष्कर्मको करनेसे रुकना रूप लज्जा धर्मका उत्तम अङ्ग मानी जाती है ३५ लज्जावान् मनुष्य पापकर्मोंको शत्रुकी समान देखता है, ऐसा करने वाले मनुष्यको धनसम्पदा बढ़ती है, इस जगतमें मनुष्य जब तक धनी है तब तक ही मनुष्य कहलाता है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य नित्य धर्मके ऊपर श्रद्धा रखता है, अन्तःकरणको शान्त रखता है और सदा परिश्रम करके धन पैदा करता है वह कभी अपनी बुद्धिको अधर्ममें नहीं लेजाता है और पापकर्म करनेमें भी प्रवृत्त नहीं होता है ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य निर्लज्ज और बुद्धिहीन है वह न स्त्री है, न पुरुष है, वह धर्माचरण करनेका भी अधिकारी नहीं रहता है,किन्तु जैसा शूद्र होता है तैसा ही वह भी होजाता है ॥ ३८ ॥ लज्जावान् पुरुष, देवताओंकी,पितरोंकी और अपनी भी रक्षा करता है और ऐसे आचरणोंसे मुक्ति पाता है, यही पुण्यकर्मोंकी अन्तिमदशा है ॥ ३९ ॥ सो हे मधुसूदन ! यह लज्जाशीलताकी बात आपने मुझमें प्रत्यक्ष देखली है, जिस प्रकार

वसतीरिमाः ॥ ४० ॥ ते वयं न श्रियं हातुमलं न्यायेन केनचित् । अत्र नो यतमानानां वधश्चेदपि साधु तत् ॥ ४१ ॥ तत्र नः प्रथमः कल्पो यद्वयं ते च माधव । प्रशान्ताः समभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि ४२ तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया । यद्वयं कौरवान् हत्वा तानि राष्ट्राण्यवाप्नुमः ॥४३॥ ये पुनः स्युरसम्बद्धा अनार्याः कृष्ण शत्रवः । तेषामप्यवधः कार्यः किं पुनर्ये स्युरीदृशाः ॥४४॥ ज्ञातयश्चैव भूयिष्ठाः सहायो गुरवश्च नः । तेषां वधोऽपि पापीयान् किं नु युद्धेऽस्ति शोभनम् ॥ ४५ ॥ पापः क्षत्रियधर्मोऽयं वयञ्च क्षत्रबन्धवः । स नः स्वधर्मो धर्मो वा वृत्तिरन्या विगर्हिता ॥ ४६ ॥ शूद्रः करोति शुश्रूषां वैश्याः वैपण्यजीविकाः । वयं वधेन जीवामः कपालं ब्राह्मणैर्वृतम्४७ क्षत्रियः क्षत्रियं हन्ति मत्स्यो मत्स्येन जीवति । श्वा श्वानं हन्ति दाशार्ह

मैं राज्यसे भ्रष्ट होकर जहाँ तहाँ वसता फिरता हूं ॥ ४० ॥ इसप्रकार राज्यभ्रष्ट हुए हम नीतिके किसी भी नियमके अनुसार राज्यलक्ष्मीको नहीं छोड़ सकते, राज्यलक्ष्मीको पानेके लिये यत्न करते हुए यदि हम मारे भी जायँ तो यह भी अच्छा है ॥ ४१ ॥ हे माधव ! इस विषयमें हमारा पहला निश्चय यह है कि-हम और कौरव आपसमें सन्धि करके परम शान्तिके साथ राज्यलक्ष्मीको भोगें ॥ ४२ ॥ और ऐसा नहीं होगा तो अन्तिम निश्चय यह है, कि-कौरवोंका संहार करके हम उनके सब देशोंको अपने वशमें करेंगे, परन्तु इसमें हिंसा-रूप भयंकर कर्मसे शत्रुओंका नाश करने पर उदय होगा, परन्तु यह कुछ न बसाने पर अन्तिमदशा है ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण ! जो सम्बन्धी न हों, दुराचरणी हों तथा शत्रु हों उनको भी मारना अच्छा नहीं है और जो फिर ऐसे निकटके सम्बन्धी हों उनके विषयमें तो कहना ही क्या है ? ॥ ४४ ॥ जो हमारे बड़े भारी सम्बन्धी, सहायक और गुरु-जन हैं उनका वध करना तो बड़ा भारी पापकर्म है, फिर युद्धमें अच्छापन ही क्या है ? ॥ ४५ ॥ हम क्षत्रियोंका यह धर्म ही पापरूप है हम क्षत्रिय नीच हैं, वह युद्ध हमारा धर्म हो चाहे अधर्म हो, परंतु इसको छोड़कर दूसरी आजीविका हमारे लिए निन्दित मानी गई है४६ शूद्र तीनों वर्णकी सेवा करके आजीविका करता है,वैश्य खेती व्यापार आदिसे अपनी आजीविका चलाते हैं, हम क्षत्रिय दुष्टोंका वध करके अपनी आजीविका चलाते हैं और ब्राह्मणोंने आजीविका के लिये भिक्षाका पात्र स्वीकार कर लिया है ॥ ४७ ॥ हे कृष्ण ! कुल

पश्य धर्मो यथागतः ॥ ४८ ॥ युद्धे कृष्ण कलिर्नित्यं प्राणाः सीदन्ति संयुगे । बलन्तु नीतिमाधाय युद्धे जयपराजयौ ॥ ४९ ॥ नात्मच्छन्देन भूतानां जीवितं मरणं तथा । नाप्यकाले सुखं प्राप्यं दुःखं वापि यदूत्तम ॥ ५० ॥ एको ह्यपि बहून् हन्ति घ्नन्त्येकं बहवोऽप्युत । शूरं कापुरुषो हन्ति अयशस्वी यशस्विनम् ॥ ५१ ॥ जयो नैवोभयोर्दृष्टो नोभयोश्च पराजयः । तथैवापचयो दृष्टो व्यपयाने क्षयव्ययौ ॥ ५२ ॥ सर्वथा वृजिनं युद्धं कोऽघ्नन्न प्रतिहन्यते । हतस्य च हृषीकेशः समौ जयपराजयौ ॥ ५३ ॥ पराजयश्च मरणान्मन्ये नैव विशिष्यते । यस्य स्याद्विजयः कृष्ण तस्याप्यपचयो ध्रुवम् ॥ ५४ ॥ अन्ततो दयितं घ्नन्ति केचिदप्यपरे जनाः । तस्याङ्गबलहीनस्य पुत्रान् भ्रातॄनपश्यतः ॥ ५५ ॥

परम्परासे जिसका जो धर्म चला आता है उसके ऊपर दृष्टि डालिये क्षत्रिय अपनी आजीविकाके लिए क्षत्रियका नाश करता है, मच्छ २ को मार कर निर्वाह करता है और अपनी आजीविकाके लिये कुत्ता कुत्तेको मारने लगता है ॥४८॥ हे कृष्ण ! युद्धमें सदा कलह भराहुआ है और युद्धमें जीवोंके प्राण सङ्कटमें रहते हैं, इस लिये मैं नीतिरूप बलका आश्रय लेकर ही लड़ूँगा, प्राणियोंकी जीत हार तथा जन्म मरण अपनी इच्छाके अनुसार नहीं होते, यह तो दैवाधीन हैं तथा हे यादवश्रेष्ठ! समय बिना आये सुख वा दुःख भी नहीं मिलता है४९,५० जब समय आजाता है तो एक ही बहुतसोंको मार डालता है वा बहुतसे मिल कर एकका प्राणांत करते हैं, डरपोक मनुष्य शूर पुरुष को मार डालता है तथा जिसका कुछ यश नहीं है, वह एक यशवाले पुरुषको मार डालता है ॥ ५१ ॥ न कहीं दोनोंकी विजय होती देखी है और न कहीं दोनोंको हारतेहुए ही देखा है, किंतु परिणाममें दोनों को हानि ही पहुँचती देखी है, इनमेंसे जो भयभीत होकर रणमेंसे भाग जाता है उसके धन जन दोनोंका नाश होता है ॥ ५२ ॥ इससे सिद्ध होता है, कि-युद्ध सर्वथा पापरूप ही है,युद्ध करने वाला कौन सा पुरुष रणमें शत्रुके हाथसे नहीं मारा जाता है ? परन्तु हे हृषीकेश ! जो मरगया उसके लिये जीत और हार दोनों एकसा हैं ॥५३॥ हे कृष्ण ! मैं पराजयको मरणसे श्रेष्ठ नहीं मानता हूँ, किंतु दोनोंको समान ही मानता हूँ, तो भी जिसको विजय होती है उसको भी हानि अवश्य ही पहुँचती है ॥ ५४ ॥ शत्रु मुख्य योधाको भले ही न मारसके, परन्तु युद्धकी समाप्ति होने तक उसके अनेकों प्यारे मनुष्यों

निर्वेदो जीवते कृष्ण सर्वतश्चोपजायते । ये ह्येव धीरा ह्रीमन्त आर्याः करुणवेदिनः ॥५६॥ त एव युद्धे हन्यन्ते यवीयान्मुच्यते जनः । हत्वाप्यनुशयो नित्यं परानपि जनार्दनः ॥ ५७ ॥ अनुबंधश्च पापोऽत्र शेषश्चाप्यवशिष्यते । शेषो हि बलमासाद्य न शेषमवशेषयेत् ॥ ५८ ॥ सर्वोच्छेदे च यतते वैरस्यांतविधित्सया । जयो वैरं प्रसृजति दुःखमास्ते पराजितः ॥ ५९ ॥ सुखं प्रशांतः स्वपिति हित्वा जयपराजयौ । जातवैरश्च पुरुषो दुःखं स्वपिति नित्यदा ॥ ६० ॥ अनिर्वृतेन मनसा ससर्प इव वेश्मनि । उत्सादयति यः सर्वं यशसा च विमुच्यते ॥६१॥ अकीर्त्तिं सर्वभूतेषु शाश्वतीं स नियच्छति । न हि वैराणि शाम्यंति दीर्घकालधृतान्यपि ॥ ६२ ॥ आख्यातारश्च विद्यन्ते पुमांश्चेद्विद्यते

को मार डालता है, इसप्रकार पराजय पाया हुआ पुरुष जातिबलसे हीन होजानेपर जब अपने पुत्रोंको अथवा भार्योंको नहीं देखता है५५ तो हे कृष्ण ! उसको अपने जीवन पर भी सब प्रकारसे वैराग्य हो जाता है अर्थात् उसको अपना जीवन भी अच्छा नहीं मालूम होता, जो धीर, लज्जावान्, सद्गुणी और दयावान् होते हैं वह ही रणमें मरण पाते हैं और जो हलका मनुष्य होता है वह छूट भागता है, हे जनार्दन ! शत्रुओंको मार डालने पर उनके लिये भी नित्य पश्चात्ताप हुआ करता है ॥ ५६—५७ ॥ और उन मारे जाने वाले शत्रुओंमेंसे कोई बचजाता है तो उसके मनमें वैरका बदला लेनेके पापी विचार भी बाकी रहजाते हैं और शेष बचाहुआ शत्रु यदि किसी समय कुछ बल पाजाय तो वह विजय पानेवालोंमेंसे भी किसीको शेष नहीं छोड़ेगा ५८ किन्तु वैरका बदला लेनेकी इच्छासे सबका ही नाश करनेके लिये यत्न करता है, इसप्रकार विजय वैरको उत्पन्न करदेता है और हारा हुआ पुरुष अपने समयको दुःखसे काटता है ॥ ५९ ॥ जो किसीके साथ शत्रुता नहीं रखता है उसको जय पराजयकी कुछ चिंता ही नहीं होती और वह परम शांतिके साथ सुखकी नींद लिया करता है, परन्तु जिसका लोगोंके साथ वैरभाव होता है वह पुरुष सदा दुःखमें ही सोया करता है ॥ ६० ॥ जैसे सर्प वाले घरमें रहनेसे सदा मनमें घबड़ाहट ही रहती है ऐसे ही जिसके शत्रु हैं उसका मन सदा व्याकुल ही रहता है, तथा जो मनुष्य हरएकको दुःख दिया करता है उसका जगत्में अपयश ही होता है ॥ ६१ ॥ वह सब लोकोंमें चिरकाल तक रहने वाली अपकीर्त्तिको पाता है, वैररूप अग्नि चिरकाल

कुले । न चापि वैरं वैरेण केशव व्युपशाम्यति ॥६३॥ हविषाग्निर्यथा कृष्ण भूय एवाभिवर्धते । अतोऽन्यथा नास्ति शांतिर्नित्यमन्तरमंततः अन्तरं लिप्समानानामयं दोषो निरन्तरः । पौरुषे यो हि बलवानाधिर्हृदयबाधनः । तस्य त्यागेन वा शांतिर्मरणेनापि वा भवेत् ॥६५॥ अथवा मूलघातेन द्विषतां मधुसूदन । फलनिर्वृतिरिद्धा स्यात्तन्नृशंसतरं भवेत् ॥६६॥ या तु त्यागेन शांतिः स्यात्तद्दते वध एव सः । संशयाच्च समुच्छेदाद् द्विषतामात्मनस्तथा ।६७। न च त्यक्तुं तदिच्छामो न चेच्छाम कुलक्षयम् । अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी६८

तक चलती रहनेपर भी शांत नहीं होता है ॥६२॥ शत्रुके कुलमें यदि कोई भी पुरुष जीता रहता है तो उसको पूर्वपुरुषोंके कियेहुए वैरका वृत्तांत कहनेवाले अनेकों पुरुष मिलजाते हैं, हे केशव ! वैरकी शांति वैरसे नहीं होती है ॥६३॥ किन्तु जैसे घी आदि हवि डालनेसे अग्नि और बढ़ता ही है, तैसे ही वैरसे वैर और अधिक बढ़ जाया करता है इस लिये दोनों पक्षोंमेंसे एक पक्षका नाश हुए बिना सदाके लिये शांति नहीं होती है, क्योंकि-ऐसे हुए बिना आपसमें जो चित्त फट जाते हैं वह भरते नहीं ॥ ६४ ॥ जो लोग छिद्र खोजना चाहते हैं, उनका सदा ही ऐसा स्वभाव होता है, कि-वह अपने बल पर अभिमान किया करते हैं और वह अभिमान बलवान् भीतरी रोगकी समान उनके हृदयको दुःख दिया करता है, या तो वैरको त्याग देनेसे अथवा मर जानेसे इनमेंसे किसी एक उपायसे ही वैरकी शांति होती है ॥ ६५ ॥ अथवा हे मधुसूदन ! शत्रुका जड़मूलसे संहार कर डालने पर दमकती हुई फलसिद्धि मिलती है, परन्तु ऐसा करनेमें क्या महाक्रूर कर्म नहीं होगा ? ॥ ६६ ॥ राज्यका त्याग करनेसे जो शान्ति मिलती है, वह शान्ति राज्य छूट जानेके कारण मरणरूप ही मानी जाती है, क्योंकि—ऐसा करनेसे शत्रुकी इच्छा पूरी होती है और राज्यभ्रष्ट होजानेके कारण अपना नाश होनेका अवसर आजाता है, इस लिये राज्यका छोड़ देना ठीक नहीं है ॥ ६७ ॥ हम राज्यको त्यागना नहीं चाहते और कुलका नाश करनेकी भी हमारी इच्छा नहीं, किन्तु हम तो साम, दाम और भेदसे राज्य पानेका उद्योग करेंगे और हम तो यही चाहते हैं, कि-युद्ध न हो, इस विषय में यदि समझानेसे शान्ति होजाय तो शान्ति ही अच्छी होगी, परन्तु समझाने पर भी यदि शान्ति वा सन्धि नहीं हुई तो युद्ध अवश्य

सर्वथा यतमानानामयुद्धमभिकांक्षताम् । सान्त्वे प्रतिहिते युद्धं प्रसिद्धं नापराक्रमः ॥ ६९ ॥ प्रतिघातेन सांत्वस्य दारुणं संप्रवर्त्तते । तच्छुनामिव सम्पाते पण्डितैरुपलक्षितम् ॥ ७० ॥ लांगूलचालनं क्ष्वेडा प्रतिवाचो निवर्त्तनम् । दन्तदर्शनमारावस्ततो युद्धं प्रवर्त्तते ॥ ७१ ॥ तत्र यो बलवान् कृष्णः जित्वा सोऽत्ति तदामिषम् । एवमेव मनुष्येषु विशेषो नास्ति कश्चन ॥ ७२ ॥ सर्वथा त्वेतदुचितं दुर्बलेषु बलीयसाम् । अनादरो विरोधश्च प्रणिपातीह दुर्बलः ॥७३॥ पिता राजा च वृद्धश्च सर्वथा मानमर्हति तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च धृतराष्ट्रो जनार्दन ॥ ७४ ॥ पुत्रस्नेहश्च बलवान् धृतराष्ट्रस्य ,माधव । स पुत्रवशमापन्नः प्रणिपातं प्रहास्यति ॥ ७५ ॥ तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम् । कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेमहि माधव ॥७६॥ ईदृशेह्यर्थकृच्छ्रेऽस्मिन् कमन्यं मधुसूदन । उपसम्प्रष्टुमर्हामि त्वामृते

करना ही पड़ेगा और ऐसी दशामें पराक्रम न करना कदापि ठीक नहीं है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ जब आपसमें मेल नहीं होता है तो दारुण युद्ध होने लगता है, पण्डितोंने उसको कुत्तोंके युद्धकी उपमा दी है ॥७०॥ कुत्ते पहिले पूँछ हिलाते हैं, एक दूसरेका छिद्र देखने लगते हैं आपसमें घुर्राने लगते हैं और फिर एक दूसरेकी निन्दा तथा अपनी प्रशंसा करते हुए, भूमिमें लोटने लगते हैं, दाँत दिखाने लगते हैं, भौंकने लगते हैं और फिर लड़ने लगते हैं ॥ ७१ ॥ हे कृष्ण ! उनमें जो कुत्ता बलवान् होता है वह औरोंको जीतकर उनके शरीरको फाड़ खाता है, ऐसी ही दशा युद्धके समय मनुष्योंकी भी होती है, इसमें कुछ भी अन्तर नहीं होता ॥७२॥ तो भी बलवान् मनुष्योंको दुर्बलों के ऊपर दया करनी चाहिए, तथापि यदि हम यों ही बैठे रहेंगे तो राज्य नहीं मिलेगा, युद्ध करेंगे तो कुलका नाश होगा और यदि नम जायँगे तो दुर्बल कहलावेंगे क्योंकि-प्रणिपात करने वाला दुर्बल माना जाता है ॥ ७३ ॥ हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र हमारे पितासमान, राजा और अवस्थामें वृद्ध हैं, इस लिये वह सर्वथा सन्मान करने योग्य हैं अतः वह हमारे मान्य और पूज्य है ॥७४॥ परन्तु हे माधव ! धृतराष्ट्रका पुत्रप्रेम बड़ा बलवान् है वह पुत्रके वशमें होनेके कारण नम्रताको छोड़ बैठेंगे७५हे कृष्ण ! अब इस विषयमें आप क्या करना उचित समझते हैं हे माधव ! वह कौन उपाय है, कि–जिससे आगे को हम धर्म और अर्थसे भ्रष्ट न हों ॥ ७६ ॥ हे मधुदैत्यका नाश करने

पुरुषोत्तम॥७७॥ प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम्। को हि कृष्णोऽस्ति नस्त्वादृक् सर्वनिश्चयवित्सुहृत् ॥ ७८ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः। उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥ ७९ ॥ शमं तत्र लभेयं चेद्युष्मदर्थमहापयन्। पुण्यं मे सुमहद् राजंश्चरितं स्यान्महाफलम् ॥ ८० ॥ मोचयेयं मृत्युपाशात् संरब्धान् कुरुसृञ्जयान्। पाण्डवान् धार्त्तराष्ट्रांश्च सर्वाञ्च पृथिवीमिमाम् ॥ ८१ ॥ युधिष्ठिर उवाच। न ममैतन्मतं कृष्ण यत्त्वं यायाः कुरून् प्रति। सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥८२॥ समेतं पार्थिवं क्षत्रं दुर्योधनवशानुगम्। तेषां मध्यावतरणं तव कृष्ण न रोचये ॥ ८३ ॥ न हि नः प्रीणयेद् द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम्। न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव ॥ ८४ ॥ श्रीभगवानुवाच। जानाम्येतां महाराज धार्त्तराष्ट्रस्य पापताम्। अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्व-

वाले पुरुषोत्तम! ऐसे अत्यन्त कष्टके समयमें आपके सिवाय और किसके पास जाकर पूछें ? ॥ ७७ ॥ हे कृष्ण! तुमसा प्यारा हितैषी, सब कामोंके परिणामको जानने वाला और सब बातोंको निश्चित रूपसे समझने वाला हमारा दूसरा कौनसा सम्बन्धी है ७८ वैशंपायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय! राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर जनार्दन श्रीकृष्णने धर्मराजसे कहा, कि–मैं तुम दोनोंका मेल करानेके लिये कौरवोंको सभामें जाऊँगा ॥ ७९ ॥ और वहाँ तुम्हारे लाभमें बाधा पहुँचाये बिना यदि मैं परस्पर मेल करा सकूँगा तो समझूँगा, कि–मैंने परम फल देने वाला बड़ा भारी पुण्य कर्म किया॥८०॥ संधि हो गयी तो मानो मैं क्रोधमें भरे हुए कौरव, सृञ्जय, पांडव, धृतराष्ट्रके पुत्र तथा सब पृथ्वीको मृत्युकी फाँसीमेंसे छुटा लूँगा ॥ ८१ ॥ राजा युधिष्ठिरने कहा, कि—हे कृष्ण ! आप सन्धिके लिये कौरवोंके पास जायँ यह मेरी समझमें ठीक नहीं है, क्योंकि—तुम समझाने की बात कहोगे तो भी दुर्य्योधन तुम्हारा कहना नहीं मानेगा ।८२। और हे कृष्ण! वहाँ इकट्ठे हुए दुर्योधनके वशमें रहने वाले राजाओंके बीच में आप जायँ इस बात को मैं अच्छा नहीं मानता ॥ ८३ ॥ हे माधव ! आपको दुःख पहुँचा कर हमें धन, राज्य या सुख मिले तो वह हमें आनन्ददायक नहीं होगा, इतना ही नहीं किन्तु इस दशामें हमें स्वर्गका राज्य और देवनापन भी आनंद नहीं देगा ॥ ८४ ॥ श्रीभगवानने कहा, कि–हे महाराज ! मैं दुर्योधनके

लोके महीक्षिताम् ॥८५॥ न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः। क्रुद्धस्य संयुगे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ८६ ॥ अथ चेत्ते प्रवर्तेत मयि किञ्चिदसाम्प्रतम्। निर्दहेयं कुरून् सर्वानिति मे धीयते मतिः ८७ न जातु गमनं पार्थ भवेत्तत्र निरर्थकम्। अर्थप्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाप्यवाच्यता ॥ ८८ ॥ युधिष्ठिर उवाच। यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान्। कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ॥ ८९॥ विष्वक्सेन कुरून् गत्वा भारतान् शमयन् प्रभो। तथा सर्वे सुमनसः सह स्याम सुचेतसः ॥९०॥ भ्राता चासि सखा चासि बीभत्सोर्मम च प्रियः। सौहृदेनाविशंक्योऽसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये ९१ अस्मान् वेत्थ परान् वेत्थ वेत्थार्थान् वेत्थ भाषितुम्। यद्यदस्मद्धितं

पापीपनेको जानता हूँ,तो भी तहां जाकर स्पष्ट कह देनेसे हम सबदेशों के राजाओंकी दृष्टिमें निर्दोष सिद्ध होजायँगे ॥ ८५ ॥ तुम जो चिन्ता करते हो सो ठीक नहीं है, जैसे सिंहके कोप करने पर मृग उसके सामने खड़े नहीं रह सकते तैसे ही जब मुझे क्रोध आजायगा तो इकट्ठे हुए सब राजे भी युद्धमें मेरे सामने खड़े नहीं रह सकेंगे ।८६। कदाचित् मेरे तहाँ पहुँचने पर कौरव मुझे तुम्हारे पक्षका समझ कर मेरा जरा भी अपमान करेंगे तो मैं सब कौरवोंको भस्म करडालूँगा, इस बातका मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिया है ॥ ८७ ॥ हे कुंतीनन्दन ! मेरा तहाँ जाना कभी भी निष्फल नहीं होगा कदाचित् काम बनजाय नहीं तो फिर लोग हमें दोष तो नहीं लगावेंगे ।८८। युधिष्ठिरने कहा, कि-हे कृष्ण ! जो आपको रुचै सो करिये, कुशलपूर्वक कौरवोंके पास पहुँचिये, मुझे आशा है कि-मैं तुम्हें काम सिद्ध कर के कुशलपूर्वक लौटकर आये हुए देखूँगा॥८९॥हे विश्वक्सेन प्रभो ! आप भरतवंशी कौरवोंके पास जाकर उनको शान्त करना, कि-जिस से हम सब आपसमें मिलकर शान्त मनसे रहेंगे ॥ ९० ॥ तुम हमारे भाई हो अर्जुनके मित्र हो और मेरे स्नेही हो,उस स्नेहीपनेके कारण आपमें किसी प्रकारकी शंका नहीं होसकती आप हमारे कल्याणके लिये कुशलपूर्वक कौरवोंके पास पहुंचिये ॥ ९१ ॥ तुम हमारे स्वरूप को जानते हो और कौरवोंके स्वरूपको भी जानते हो, सब व्यवहारों का जानते हो और बातें करना भी जानते हो, इस लिए जो २ बात हमारी हितकारी हो वह सब दुर्योधनसे कह देना ॥ ९२ ॥ हे केशव! हम आधे राज्यके अधिकारी हैं तो भी हमें पाँच ग्राम देकर अधर्मसे

कृष्ण तत्तद्वाच्यः सुयोधनः ॥ ९२ ॥ यद्यधर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्धितं वचः । तत्तत् केशव भाषेथाः सान्त्वं वा यदि वेतरत् ॥ ९३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानसंधिपर्वणि युधिष्ठिरकृतकृष्णप्रेरणे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

श्रीभगवानुवाच । सञ्जयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया । सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥१॥ तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रया मतिः यदयुद्धेन लभ्येत तत्ते बहुमतं भवेत्२ न चैवं नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशाम्पते । आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत्३ जयो वधो वा संग्रामे धात्रा दिष्टः सनातनः । स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥ ४ ॥ न हि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर । विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून् परन्तप ॥ ५ ॥ अतिगृद्धाः कृतस्नेहा दीर्घकालं सहोषिताः। कृतमित्राः कृतबला धार्तराष्ट्राः परन्तप ।६। न पर्यायोऽस्ति यत् साम्यं त्वयि कुर्युर्विशाम्पते । बलवत्तां हि मन्य-

---

मेल करना चाहे या वह जुआ खेलकर मेरा राज्य लौटाना चाहे, जैसे भी हो जो कुछ हमारे हितकी बात कहना उचित हो उसको वहाँ कहना । ९३ ॥ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा, कि-हे राजन् युधिष्ठिर ! मैंने सञ्जयकी बात सुनी है, और तुम्हारे वाक्य भी सुने हैं, तुम्हारा और उनका जो कुछ अभिप्राय है सो सब जानता हूँ ॥ १ ॥ तुम्हारी बुद्धि धर्मका आश्रय लिये हुए है और उनकी बुद्धि वैरभावसे सनी हुई है, जो कुछ विना युद्ध किये मिलजायगा, उसको ही तुम बहुत समझोगे॥२॥ हे राजन्! सब आश्रमोंवाले कहते हैं, कि—क्षत्रियको जन्म भरका ब्रह्मचर्य नहीं धारण करना चाहिये और भिक्षासे आजीविका नहीं चलानी चाहिये ॥३॥ ब्रह्माने जो युद्धमें विजय पानेकी वा प्राण देनेकी विधि रचदी है वह क्षत्रियका अपना सनातनधर्म है, क्षत्रिय प्राणोंका मोह करे तो उसकी प्रशंसा नहीं होती है।४। हे महाबाहु राजन् युधिष्ठिर ! नपुंसकताका आश्रय लेकर क्षत्रियकी जीविकाका निर्वाह नहीं हो सकता, हे परन्तप ! पराक्रम करके शत्रुओंका संहार करो ॥ ५ ॥ हे परन्तप राजा युधिष्ठिर ! धृतराष्ट्रके पुत्र बड़े लोभी हैं और बहुत समयसे दूसरे राजाओंके साथ रहकर उन्होंने प्रेम बढा लिया है तथा उन राजाओंको अपना मित्र बना लिया है, इस कारण वह बड़े बलवान् होगये हैं ॥६॥ इस कारण हे राजन् ! अब वह तुम्हारे साथ मेल

न्ते भीष्मद्रोणकृपादिभिः ॥ ७ ॥ यावच्च मार्दवेनैतान् राजन्नुपचरिष्यसि । तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिन्दम ॥ ८ ॥ नानुक्रोशान्न कार्पण्यान्न च धर्मार्थकारणात् । अलं कर्तुं धार्त्तराष्ट्रास्तव काममरिन्दम ॥ ९ ॥ एतदेव निमित्तं ते पाण्डवास्तु यथा त्वयि । नान्वतप्यन्त कौपीनं तावत् कृत्वापि दुष्करम् ॥ १० ॥ पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य च धीमतः । ब्राह्मणानाञ्च साधूनां राज्ञश्च नगरस्य च ॥११॥ पश्यतां कुरुमुख्यानां सर्वेषामेव तत्त्वतः । दानशीलं मृदुं दान्तं धर्मशीलमनुव्रतम् ॥ १२ ॥ यत्त्वामुपधिना राजन् द्यूते वञ्चितवांस्तदा । न चापत्रपते तेन नृशंसः स्वेन कर्मणा ॥ १३ ॥ तथा शीलसमाचारे राजन् मा प्रणयं कृथाः । वध्यास्ते सर्वलोकस्य किं पुनस्तव भारत ॥१४॥ वाग्भिस्त्वप्रतिरूपाभिरतुदत्त्वां सहानुजम् । श्लाघमानः प्रहृष्टः सन् भ्रातृभिः सह भाषते ॥१५॥ एतावत् पाण्डवानां हि नास्ति किंचिदिह स्वकम् ।

करलें, ऐसा कोई उपाय नहीं है, इसके सिवाय भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदिको साथ लेलेनेके कारण वह अपनेको बडा बलवान् समझते हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमन राजन् ! जब तक तुम कोमल बने हुए इनकी सवामें लगे रहोगे तबतक वह तुम्हारे राज्यको हड़प हा करे रहेंगे ॥ ८ ॥ हे शत्रुदमन ! धृतराष्ट्रके पुत्र दयालु होकर, अपनेको दुर्बल मानकर, धर्मकी ओर ध्यान देकर या व्यवहार शुद्ध रखनेके लिये तुम्हारी कामनाको पूरी नहीं करेंगे ।९। हे पाण्डव ! तुम्हें कठिन वनवास देकर तथा कौपीन पहरा कर भी धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पछतावा नहीं किया, यही मेल न होनेमें एक कारण है ॥ १० ॥ हे राजन्! तुम धर्मशील, कोमलस्वभाव,मनको वशमें रखनेवालेदानी और ब्रह्मनिष्ठ हो, तो भी जिसने पितामह भीष्मजी, द्रोणाचार्य, बुद्धिमान् विदुरजी महात्मा, ब्राह्मण, राजा धृतराष्ट्र, मुख्य २ कौरव और सब नगरनिवासी लोगोंके देखते हुए तुम्हें कपटके जुएसे छल लिया था, तो भी अपने क्रूर कर्मके लिये उस दुष्टको लज्जा नही आयी ? ॥११-१३॥ ऐसे खोटे स्वभाव और आचरण वालेके साथ हे राजन् ! तुम मेल न करो, हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हें ही नहीं; सब लोगोंको चाहिये, कि उन कौरवोंका वध करडालें ॥ १४ ॥ तुम अपने मनमें विचार कर तो देखो, कि-एक समय दुर्योधनने; बड़े आनन्दमें भरकर अपने भाइयोंके साथ बैठ,अपनीप्रशंसा करते हुए अनुचित वाणीसे तुम्हें तुम्हारेभाइयों के चितपर चोट लगाने वाले वचन कहकर स्पष्टरूपसे कहा था, कि

नामधेयञ्च गोत्रञ्च तदप्येषां न शिष्यते ॥ १६ ॥ कालेन महता चैषां भविष्यति पराभवः । प्रकृतिं ते भजिष्यन्ति नष्टप्रकृतयो मयि ॥ १७॥ दुःशासनेन पापेन तदा द्यूते प्रवर्त्तिते । अनाथवत्तदा देवी द्रौपदी सुदुरात्मना ॥ १८ ॥ आकृष्य केशे रुदती सभायां राजसंसदि । भीष्मद्रोणप्रमुखतो गौरिति व्याहृता मुहुः ॥ १९ ॥ भवता वारिताः सर्वे भ्रातरो भीमविक्रमाः । धर्मपाशनिबद्धाश्च न किञ्चित् प्रतिपेदिरे २० एताश्चान्याश्च परुषा वाचः स समुदीरयन् । श्लाघते ज्ञातिमध्ये स्म त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ २१ ॥ ये तत्रासन् समानीतास्ते दृष्ट्वा त्वामनागसम् । अश्रुकण्ठा रुदन्तश्च सभायामासते तदा ॥ २२ ॥न चैनमभ्यनन्दंस्ते राजानो ब्राह्मणैः सह । सर्वे दुर्योधनं तत्र निन्दन्ति स्म सभासदः ॥ २३ ॥ कुलीनस्य च या निन्दा वधो वा मित्रकर्शन । महागुणो वधो राजन्न तु निन्दा कुजीविका ॥ २४ ॥ तदैव निहतो राजन् यदैव

इस पृथिवी पर पाण्डवोंका 'यह वस्तु तो हमारी है, ऐसा कहनेको अब कुछ नहीं रहा इनका नाम और गोत्र भी शेष नहीं रहेगा और हमारे महाबलसे इनका तिरस्कार होगा तब यह शूरता आदि स्वभावसे रहित होकर मर जायँगे ॥ १५-१७ ॥ पहिले उस समय जुएका खेल चलने पर महादुष्टात्मा पापी दुःशासन, रोती हुई देवी द्रौपदीकी चोटी पकड़कर अनाथ स्त्रीकी समान राजसभामें घसीट लाया था और भीष्म, द्रोणाचार्य आदिके सामने उसने वारम्वार द्रौपदीको तू गौ है, अर्थात् सब मनुष्योंके भोगने योग्य है, ऐसा कहकर हँसी की थी १८-१९ उस समय आवेशमें आएहुए महाभयंकर पराक्रमी अपने सब भाइयोंको तुमने रोकदिया था इसी कारणसे धर्मकी फाँसीमें बँधेहुए तुम्हारे भाइयोंने वैरका बदला लेनेके लिए कुछ भी नहीं कहा थां । २० । तुम्हारे वनमें चलेजाने पर दुर्योधनने ऊपर कही हुई तथा और भी कठोर बातें कह कर सम्बन्धियोंके बीचमें अपनी बड़ाई की थी ॥ २१ ॥ और उस समय जो लोग सभामें बुलाये गये थे वह तुम्हें निरपराध देखकर आँखोंमें आँसू भर लाये और मुखसे कुछ न कहकर वहाँ बैठे२ ही रोते रहे थे ।२२। सभामें सभासदरूपसे बैठेहुए राजे ब्राह्मण आदि सबोंने दुर्योधनकी सराहना न करके उसकी निंदा ही की थी ॥ २३ ॥ हे शत्रुमर्दन ! कुलीन पुरुषकी निंदा होना और प्राणांत होजाना इन दोनों बातोंमें प्राणान्त होना बहुत अच्छा माना जाता है, परंतु जीवनको खराब करदेने वाली निंदा अच्छी नहीं

निरपत्रपः । निन्दितश्च महाराज पृथिव्यां सर्वराजभिः ॥ २५ ॥ ईषत्कार्यो वधस्तस्य यस्य चारित्रमीदृशम् प्रस्कुन्देन प्रतिस्तब्धश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ २६ ॥ वध्यः सर्प इवानार्यः सर्वलोकस्य दुर्मतिः । जह्येनं त्वममित्रघ्न मा राजन् विचिकित्सिथाः ॥२७॥ सर्वथा त्वत्क्षमश्चैतत् रोचते च ममानघ। यत्त्वं पितरि भीष्मे च प्रणिपातं समाचरेः२८ अहन्तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम् । येषामस्ति द्विधाभावो राजन् दुर्योधनं प्रति ॥ २९ ॥ मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान् गुणान्। तव संकीर्त्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः ॥ ३० ॥ ब्रुवतस्तत्र मे वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् । निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः ॥ ३१ ॥ त्वयि सम्प्रतिपत्स्यन्ते धर्मात्मा सत्यवागिति । तस्मिंश्चाधिगमिष्यन्ति यथा लोभादवर्त्तत ॥३२॥ गर्हयिष्यामि चैवैनं पौरजानपदेष्वपि । वृद्धबालानुपादाय चातुर्वर्ण्ये समागते ॥३३॥ शमं

मानी जाती । २४ । हे महाराज ! जबसे पृथ्वीके सब राजाओंने उस निर्लज्जकी निंदा करी है तबसे ही उसको मरा हुआ समझ लो ।२५। जिसकी जड़ चारों ओरसे कटगयी हो और जो मट्टी थुहेके आधार से खड़ा हो उस वृक्षको जैसे सहजमें ही गिराया जासकता है तैसे ही जिसका ऐसा (खोटा) चरित्र होता है उसको मारडालना बहुत ही सहज होता है ॥ २६ ॥ जो पुरुष खोटी बुद्धि वाला और अधम होता है वह साँपकी समान सब लोगोंके मारने योग्य होता है, हे शत्रुनाशक राजन् ! तुम भी अब कुछ विचार न करके दुर्योधनका नाश करो ॥ २७ ॥ हे निर्दोष राजन् ! तुम पितासमान धृतराष्ट्र और पितामह भीष्मजीके विषयमें नम्रता दिखाना चाहते हो, यह सब प्रकारसे तुम्हें उचित ही है और मुझे भी यह बात अच्छी लगतीहै२८ हे राजन्! दुर्योधनके विषयमें जिनके मनमें द्विविधा है अर्थात् दुर्योधन भला है या खोटा है? ऐसा संदेह है,उन लोगोंके संदेहको मैं तहाँ जाकर दूर करदूँगा २९ तहाँ जाकर मैं सब राजाओंके बीचमें सब पुरुषों से मिलने हुए तुम्हारे गुणोंको और दुर्योधनके दोषोंको विस्तारसे कहूँगा३०मैं धर्म और व्यवहारके अनुकूल जो हितकारी बात करूँगा, उस बातको सुनकर जुदे२ देशोंके सबराजे इस बातको मान जायँगे, कि-युधिष्ठिर सत्यवादी और धर्मात्मा है तथा दुर्योधनका बर्त्ताव लोभ से भरा हुआ है इस बातको भी वह अच्छीप्रकारसे जान जायँगे३१-३२ और मैं चारों वर्णोंके इकट्ठे हुए लोगोंके सामने, नगर निवासियों के सामने, देशवासियोंके सामने तथा बूढ़े और बालकोंके सामने भी

धे याचमानस्त्वं नाधर्मं तत्र लप्स्यसे । कुरून् विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः ॥ ३४ ॥ तस्मिंल्लोकपरित्यक्ते किं कार्य्यमवशिष्यते । हते दुर्योधने राजन् यदन्यत् क्रियतामिति ॥३५॥ यात्वा चाहं कुरून् सर्वान् युष्मदर्थमहापयन् । यतिष्ये प्रशमं कर्त्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम् ३६ कौरवाणां प्रवृत्तिञ्च गत्वा युद्धादिकारिकाम् । निशम्य विनिवर्त्तिष्ये जयाय तव भारत ॥३७॥ सर्वथा युद्धमेवाहमाशंसामि परैः सह । निमित्तानि हि सर्वाणि यथा प्रादुर्भवन्ति च ॥ ३८ ॥ मृगाः शकुन्ताश्च वदन्ति घोरं हस्त्यश्वमुख्येषु निशामुखेषु । घोराणि रूपाणि तथैव चाग्निर्वर्णान् बहून् पुष्यति घोररूपान् ३९ मनुष्यलोकक्षयकृत् सुघोरो नो चेदनुप्राप्त इहान्तकः स्यात् । शस्त्राणि यन्त्रं कवचान् रथांश्च नागान् हयांश्च प्रतिपादयित्वा ४० योधाश्च सर्वे कृतनिश्चयास्ते भवन्तु हस्त्यश्वरथेषु युक्ताः । सांग्रामिकं ते यदुपार्जनीयं सर्वं समग्रं कुरु

दुर्योधनकी दुष्टता दिखाऊँगा ॥३३॥ तुम तो शांतिके लिये प्रार्थना करते हो, इस कारण तहां तुम्हारी निन्दा नहीं होगी, किन्तु वहां इकट्ठे हुए राजे कौरवोंकी और धृतराष्ट्रकी निन्दा करेंगे ॥ ३४ ॥ तथा लोग भी दुर्योधनका पक्ष छोड़ देंगे और दुर्योधन निन्दासे अधिकतर नष्टसा होजायगा, तब फिर हे राजन् ! हमको दूसरा कौनसा काम करना शेष रहजायगा ? कि-जो तुम्हें करना पड़ेगा ? ।३५। मैं यहांसे कौरवोंके पास जाऊँगा और जिसमें तुम्हारा काम बिगड़ने न पावे इस प्रकार सन्धि करनेका उद्योग करूँगा, कौरवोंकी करतूतोंको और उनकी युद्धके विषेकी तयारीको भी जान लूँगा और फिर हे भरतवंशी राजन् ! तुम्हारी विजयके लिए वहांसे लौट आऊँगा ।३६-३७। मुझे तो आशा होती है, कि-हमारा शत्रुओंके साथ सर्वथा युद्ध ही होगा, क्यों कि-मुझे ऐसे ही सब शकुन होते हैं ॥३८॥ पशु और पक्षी सायंकालके समय घोर शब्द करते हैं, हाथी और घोड़े आदि मुख्य मुख्य पशुओंके रूप सायंकालके समय विकराल दीखते हैं, अग्निकी ज्वालाओंमें भी अनेकों रङ्ग देखनेमें आते हैं ।३९। यदि मनुष्योंका संहार करने वाला महाभयंकर समय हमारे समीप नहीं आया होता तो ऐसा होता ही नहीं, इसलिए तुम सब योधा एक निश्चय पर आकर शस्त्र, गोले छोड़नेके यंत्र, कवच, रथ, हाथी और घोड़ोंको तयार करो, हाथी घोड़े और रथोंकी तयारीके लिए सावधान होजाओ और हे राजन् ! तुम्हें युद्धके काममें आनेवाली जो कुछ वस्तुएँ इकट्ठी

तन्नरेन्द्र४१ दुर्योधनो न ह्यलमद्य दातुं जीवंस्तवैतन्नृपते कथञ्चित्।
यत्ते पुरस्तादभवत् समृद्धं द्यूते हृतं पाण्डवमुख्य राज्यम् ॥ ४२ ॥
इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्ण-
वाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

भीमसेन उवाच। यथा यथैव शान्तिः स्यात् कुरूणां मधुसूदन।
तथा तथैव भाषेथा मास्म युद्धेन भीषयेः ॥ १ ॥ अमर्षी जातसंरंभः
श्रेयोद्वेषी महामनाः। नोग्रं दुर्योधनो वाच्यः साम्नैवैनं समागरेः॥२॥
प्रकृत्या पापसत्त्वश्च तुल्यचेतास्तु दस्युभिः। ऐश्वर्य्यमदमत्तश्च कृत-
वैरश्च पांडवैः ॥ ३ ॥ अदीर्घदर्शी निष्ठूरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः। दीर्घ-
मन्युरजेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः ॥ ४ ॥ म्रियेतापि न भज्येत नैव
जह्यात् स्वकं मतम्। तादृशेन शमः कृष्ण मन्ये परमदुष्करः ।५। सुहृ-
दामप्यवाचीनस्त्यक्तधर्मा प्रियानृतः। प्रतिहन्त्येव सुहृदां वाचश्चैव
मनांसि च ॥ ६ ॥ स मृत्युवशमापन्नः स्वभावं दुष्टमास्थितः। स्वभा-

करनी हों उन सबको भी तुम इकट्ठी करना आरम्भ करदो ४०-४१ हे पाण्डवोंमें बड़े राजन् युधिष्ठिर! तुम्हारा पहिला सकल समृद्धि वाला जो राज्य जुएके खेलसे दुर्योधनने छीन लिया है उस राज्यको अब दुर्योधन जबतक जीवित है तबतक तुम्हें किसी प्रकार भी नहीं देसकेगा। ४२। तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ७३।

भीमसेनने कहा, कि—हे मधुसूदन श्रीकृष्णजी! जिस प्रकार कौरवोंके जीमें मेल और शान्ति करनेकी बात जम सके ऐसी बातेंही तहाँ कहना, और युद्धका नाम लेकर कौरवोंको डराना नहीं ॥ १ ॥ दुर्योधन किसीकी बात न सहनेवाला, क्रोधी, कल्याणका वैरी तथा बड़ा अभिमानी है, इस लिए तुम उससे उग्र वचन नहीं कहना किंतु उसके साथ शान्तिकी बातोंसे ही व्यवहार करना ।२। उसको दूरकी बात नहीं सूझती है,स्वभावका क्रूर, निंदक, क्रूरपराक्रमी, महाक्रोधी पापी मनवाला और उपदेश देनेके अयोग्य है ।४। वह चाहे मरजाय परन्तु अपनी हठको नहीं,छोड़ेगा, हे कृष्ण! ऐसे पुरुषके साथ मेल होजाय, इस कामको मैं महा कठिन समझता हूँ ।५। वह अपने संब-न्धियोंसे भी विपरीत रहता है, उसने धर्मको त्यागकर, असत्यसे प्रेम कर लिया है, वह अपने संबन्धियोंकी बातोंको न मानकर उन का चित्त दुखाया करता है ६ जब अपने दुष्ट स्वभावके वशमें होकर क्रोधमें भर जाता है तब तृणोंसे ढके हुए साँपकी समान स्वभावसेही

वान् पापमभ्येति तृणैश्छन्न इवोरगः॥७॥दुर्योधनो हि यत्सेनः सर्वदा विदितस्तव। यच्छीलो यत्स्वभावश्च यद्बलो यत्पराक्रमः ॥८॥ पुरा प्रसन्नाः कुरवः सहपुत्रास्तथा वयम्। इन्द्रज्येष्ठा इवाभूम मोदमानाः सबांधवाः ९ दुर्योधनस्य क्रोधेन भरता मधुसूदन। धक्ष्यन्ते शिशिरापाये वनानीव हुताशनैः ॥ १० ॥अष्टादशेमे राजानः प्रख्याता मधुसूदन। ये समुच्चिच्छिदुर्ज्ञातीन् सुहृदश्च सबान्धवान् ॥११॥ असुराणां समृद्धानां ज्वलतामिव तेजसा। पर्य्यायकाले धर्मस्य प्राप्ते बलिरजायत ॥ १२ ॥ हैहयानामुदावर्त्तो नीपानां जनमेजयः। बहुलस्तालजंघानां कृमीणामुद्धतो वसुः ॥ १३ ॥ अजबिन्दुः सुवीराणां सुराष्ट्राणां रुषर्द्धिकः। अर्कजश्च बलीहानां चीनानां धौतमूलकः ॥ १४ ॥ हयग्रीवो विदेहानां वरयुश्च महौजसाम्। बाहुः सुंदरवंशानां दीप्ताक्षाणां पुरूरवाः॥१५॥ सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रवीराणां वृषध्वजः। धारणश्चंद्रवत्सानां मुकुटानां विगाहनः ॥ १६ ॥ शमश्च नन्दिवेगानामित्येते

पाप कर्म करने लगता है। ७। दुर्योधनके पास जो सेना है उसको तो तुम अच्छे प्रकारसे जानते हो हो, उसका शील, स्वभाव, बल और पराक्रम कितना है ? उसको भी तुम जानते ही हो ॥ ८ ॥ देखो पहिले पुत्रों सहित कौरव तथा हम प्रसन्न रहते थे और जिनमें इन्द्र बड़ा है ऐसे देवताओंकी समान हम बान्धवोंके साथ आनन्दमें दिन बिताते थे।।९।। परन्तु हे मधुसूदन! अब, जैसे वन गरमियोंमें आग से जल कर खाक होजाते हैं तैसे ही दुर्योधनके क्रोधसे भरतवंशी राजे भस्म होजायँगे। १०। हे मधुसूदन! यह अठारह राजे इतिहास में प्रसिद्ध होगये हैं कि-जिन्होंने अपने गोत्रवालोंका मित्रोंका तथा साले ससुरे आदि संबन्धियोंका संहार कर डाला था ॥ ११ ॥ जब धर्मके नाशका समय समीप आलगा, तब तेजसे दमकने हुएसे, तेजस्वी और भले प्रकार उदयको प्राप्तहुए असुरोंके वंशमें जैसे बलि का जन्म हुआ था ॥ १२ ॥ तैसे ही हैहयवंशके राजाओंमें उद्धत स्वभाव वाला मुदावर्त्त, नीप वंशके राजाओंमें जनमेजय, तालजंघोंके वंशमें बहुल, कृमियोंके वंशमें वसु ॥ १३ ॥ सुवीरोंके वंशमें अजबिन्दु सुराष्ट्रोंके वंशमें रुषर्द्धिक, बलीहाओंके वंशमें अर्कज, चीनोंके वंशमें धौतमूलक ॥१३॥ विदेहोंके वंशमें हयग्रीव, महौजाओंके वंशमें वरयू, सुन्दरवंशियोंमें बाहु दीप्ताक्षोंमें पुरूरवा ॥ १५ ॥ चेदी और मत्स्य राजाओंके वंशमें सहज, प्रवीरोंके वंशमें वृषध्वज, चन्द्रवत्स राजाओं

कुलपांसनाः । युगान्ते कृष्ण सम्भूताः कुलेषु पुरुषाधमाः ॥१७॥अयं नः कुरूणां स्याद्युगान्ते कालसंभृत. । दुर्योधनः कुलाङ्गारो जघन्यः पापपूरुषः ॥१८॥ तस्मान्मृदुः शनैर्ब्रूया धर्मार्थसहितं हितम् । कामानुवद्धं वहुलं नोग्रमुग्रपराक्रम ॥ १९ ॥ अपि दुर्योधनं कृष्ण सर्वे वयमधश्चराः । नीचैर्भूत्वानुयास्यामो मा स्म नो भरतानशन् ॥ २० ॥ अप्युदासीनवृत्तिः स्याद्यथा नः कुरुभिः सह । वासुदेव तथा कार्यं न कुरूननयः स्पृशेत् ॥ २१ ॥ वाच्यः पितामहो वृद्धो ये च कृष्ण सभासदः । भ्रातॄणामस्तु सौभ्रात्रं धार्त्तराष्ट्रः प्रशाम्यताम् ॥ २२ ॥ अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति । अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने ॥ २३ ॥ ❀ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमसेनवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

के वंशमें धारण, मुकुट राजाओंके वंशमें विगाहन । १६ । और नन्दिवेग राजाओंकेवंशमें शम, हे कृष्ण ! ये सब कुलको कलङ्क लगानेवाले महानीच पुरुष कुलनाशरूप प्रलयके समय ऊपर कहे राजाओंके कुलोंमें उत्पन्न हुए थे ॥ १७ ॥ तैसे ही इससमय प्रतीत होता है कि कुरुकुलके नाशका समय आलगा है, जो यह कालका प्रेरणा किया हुआ, नीच,कुलाङ्गार दुर्योधन पापके अवताररूपसे हमारे कौरवकुल में उत्पन्न होगया है ॥ १८ ॥ इस लिये हे उग्रपराक्रमी कृष्ण ! तुम तहाँ जाकर जो कुछ कहो वह उग्रतासे न कह कर कोमल वाणीमें कहना, वहभी धीरेसे बोलना, जो बात कहो वह धर्म और व्यवहार के अनुकूल तथा हितकारी हो और अधिकतर उसकी इच्छाके अनुकूल हो ॥ १९ ॥ हे कृष्ण ! हम सब दुर्योधनके हाथके तले रहेंगे और नम्र होकर उसके पीछे २ चलेंगे, हम वह काम करना चाहते हैं, कि-जिसमें हमारे भरतवंशी राजाओंका नाश न हो ॥ २० ॥ हे वासुदेव! आप ऐसा करना कि--जिसमें हम कौरवोंके साथ उदासीनभावसे वर्त्ताव करसकें और विनाशरूपी अन्याय कौरवोंके शिर न पड़े ॥२१॥ हे कृष्ण ! तुम कौरवोंकी सभामें जाकर हमारे वृद्ध पितामहसे तथा सभासदोंसे कहना, कि-जिसमें भाइयोंमें परस्पर मेल होजाय और दुर्योधन शांत होजाय, ऐसा उपाय करो ॥ २२ ॥ मैं भी ऐसा ही कहता हूँ और राजा युधिष्ठिर भी इस बातको ही अच्छा मानते हैं तथा अर्जुन भी युद्धका पक्षपाती नहीं है क्योंकि अर्जुनमें बड़ी भारी दया है ॥ २३ ॥ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ ❀

वैशम्पायन उवाच । एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः केशवः प्रहसन्निव अभूतपूर्वं भीमस्य मार्दवोपहितं वचः ॥ १ ॥ गिरेरिव लघुत्वं तत् शीतत्वमिव पावके । मत्वा रामानुजः शौरिः शार्ङ्गधन्वा वृकोदरम् २ सन्तेजयंस्तदा वाग्भिर्मातरिश्वेव पावकम् । उवाच भीममासीनं कृपयाभिपरिप्लुतम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच । त्वमन्यदा भीमसेन युद्धमेव प्रशंससि । वधाभिनन्दिनः क्रूरान् धार्त्तराष्ट्रान्मिमर्दिषुः ॥ ४ ॥ न च स्वपिषि जागर्षि न्युब्जः शेषे परन्तप । घोरामशान्तां रुशतीं सदा वाचं प्रभाषसे ॥५॥ निःश्वसन्नग्निवर्णेन सन्तप्तः स्वेन मन्युना । अप्रशांतमना भीम सधूम इव पावकः ॥ ६ ॥ एकान्ते निःश्वसन् शेषे भारार्त्त इव दुर्बलः । अपि त्वां केचिदुन्मत्तं मन्यन्तेऽतद्विदो जनाः ७ आरुज्य वृक्षान्निर्मूलान् गजः परिरुजन्निव । निघ्नन् पद्भिः क्षितिं भीम निःस्व-

---

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार पहिले कभी न सुनीहुई भीमसेनकी कोमलता भरी बात सुनकर बलदेवजीके छोटे भाई, शार्ङ्ग नामके धनुषको धारण करने वाले महाबाहु केशव, खिलखिलाकर हँस पडे और भीमसेनकी उस बातको, पर्वतके हलकेपनकी समान तथा अग्निके शीतलपनकी समान मानने लगे फिर जैसे पवन अग्निको उत्तेजना देता है तैसे ही दयासे भरे तहाँ बैठेहुए भीमसेनको उस समय वाणीसे उत्तेजित करते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ १-३ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि-हे भीमसेन ! और समय तो तू हिंसाको ही प्यारा मानने वाले तथा निर्दयी, धृतराष्ट्रके पुत्रोंका संहार करनेकी इच्छासे युद्धकी ही प्रशंसा किया करता था ४ और ऐसे विचारके कारणसे हे शत्रुनाशक ! तुझे रातमें नींदभी नहीं आती किंतु जागा ही करता है,तथा नीचेको मुख कियेपड़ा रहता है और सदा भयानक, अशांतिभरी खो बातें किया करता है ५ अपने क्रोधसे अग्निकी समान जलता रहता है श्वासें छोड़ता रहता है तथा तेरा मन धुएँ वाले अग्निकी समान घुटता रहता है ॥ ६ ॥ बोझा उठानेसे दुःखी हुए दुर्बल मनुष्यकी समान एकांतमें पड़ा पड़ा सांसें भरा करता है और जिनको इस बातका पता नहीं है ऐसे कितने ही पुरुष तो तुझे पागल मानने लगे हैं ॥ ७ ॥ और जैसे हाथी वृक्षोंको भूमिमेंसे जड़सहित उखाड़ कर उनको तोड़ चूरा चूरा कर डालता है तथा भूमिको चरणोंसे कुचलता है और चिंघारता है तैसा ही हे भीम ! तू भी भूमिपर अपने चरणोंसे प्रहार करताहुआ गरजर

न् परिधावसि ॥ ८ ॥ नास्मिन् जनेन रमसे रहः क्षिपसि पाण्डव । नान्यन्निशि दिवा चापि कदाचिदभिनन्दसि ॥ ९ ॥ अकस्मात् स्मयमानश्च रहस्यास्से रुदन्निव । जान्वोर्मूर्द्धानमाधाय चिरमास्से प्रमीलितः भ्रुकुटिञ्च पुनः कुर्वन्नोष्ठौ च विदशन्निव । अभीक्ष्णं दृश्यते भीम सर्वं तन्मन्युकारितम् ॥११॥ यथा पुरस्तात् सविता दृश्यते शुक्रमुच्चरन् । यथा च पश्चान्निर्मुक्तो ध्रुवं पर्य्येति रश्मिमान् ॥१२॥ तथा सत्यं ब्रवीम्येतत् नास्ति तस्य व्यतिक्रमः । हन्ताहं गदयाभ्येत्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ १३ ॥ इति स्म मध्ये भ्रातॄणां सत्येनालभसे गदाम् । तस्य ते प्रशमे बुद्धिर्धीयतेऽद्य परन्तप ॥ १४ ॥ अहो युद्धाभिकांक्षाणां युद्धकाल उपस्थिते । चेतांसि विप्रतीपानि यत्त्वां भीर्भीमविन्दति ॥१५॥ अहो पार्थ निमित्तानि विपरीतानि पश्यसि । स्वप्नान्ते जागरान्ते च तस्मात् प्रशममिच्छसि ॥ १६ ॥ अहो नाशंससे किंचित् पुंस्त्वं क्लीब

कर चारों ओरको दौड़ा करता है ८ और हे पाण्डव ! तू यहाँ किसी भी मनुष्यके साथ आनन्दसे क्रीड़ा नहीं करता है किंतु एकान्तमें बैठ कर वा ब्राह्मणोंमें बैठकर समयको विताया करता है तथा रातमें या दिनमें कभी भी किसीकी वातमें नहीं पड़ता है ॥ ९ । और एकांतमें बैठा हुआ कभी अचानक हँस पड़ता है तथा कभी रोता हुईसी चेष्टा करलेता है, और कभी दोनों आखें मूंद दोनों घुटनोंके बीचमें शिर करके बहुत देरतक चुपचाप बैठा रहता है ॥१०॥ कभी त्यौरी चढ़ालेता है और कभी दोनों ओठोंको दांतोंसे चबाता हुआसा दीखता है, हे भीम ! ऐसी दशा वार २ देखनेमें आती है, यह सब क्रोधकी ही करतूत है ॥ ११ ॥ हे परन्तप ! पहिले तूने भाइयोंके बीचमें गदा लेकर ऐसी प्रतिज्ञा की थी, कि-जैसे किरणोंवाला सूर्य पूर्व दिशामें उदय पाकर अपने तेजको प्रकट करता है तथा मेरु पर्वतकी परिक्रमा करके फिर सायंकालको अस्त होजाता है, उसके इस नियममें कभी अन्तर नहीं पड़ता है तैसे ही मैं भी सत्य कहता हूं, कि-क्रोधी दुर्योधनसे भेंटा होते ही मैं उसको गदासे मार डालूँगा, इस वातमें जरा भी अन्तर नहीं पड़ेगा, परन्तु आज तेरी उस ही बुद्धिमें मेल करनेके विचार कैसे उत्पन्न होगए ? ॥ १२-१४ ॥ हे भीम ! जब युद्धका अवसर आता है तो युद्धकी इच्छा करनेवाले बहुतसे लोगोंका मन युद्ध से उदास होजाता है तैसे ही तुझे भी युद्धसे भय लगने लगा है १५ अरे कुन्तीके पुत्र भीम ! तू सोतेमें और जागतेमें खोटे शकुन देखता

ह्यात्मनि । कश्मलेनाभिपन्नोऽसि तेन ते विकृतं मनः । १७ । उद्वेपते ते हृदयं मनस्ते प्रतिसीदति । ऊरुस्तम्भगृहीतोऽसि तस्मात् प्रशममिच्छसि ॥ १८ ॥ अनित्यं किल मर्त्यस्य पार्थ चित्तं चलाचलम् । वातवेगप्रचलिता अष्ठीला शाल्मलेरिव ॥ १९ ॥ तवैषा विकृता बुद्धिर्गवां वागिव मानुषी । मनांसि पाण्डुपुत्राणां मज्जयत्यप्लवानिव ।२०। इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम् । यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनासमं वचः ॥ २१ स दृष्ट्वा स्वानि कर्माणि कुले जन्म च भारत । उत्तिष्ठस्व विषादं मा कृथा वीर स्थिरो भव ।२२। न चैतदनुरूपं ते यत्ते ग्लानिररिन्दम । यदोजसा न लभते क्षत्रियो न तदश्नुते ॥ २३ ॥

होगा, इस कारण ही तुझे सन्धि करनेकी इच्छा हुई होगी ? ॥१६॥ परन्तु बड़े दुःखकी बात है, कि-जैसे नपुंसक अपनेमें किसी प्रकार के पुरुषपनेकी आशा नहीं रखता है, तैसे ही तू भी अब अपनेमें कुछ पुरुषार्थ नहीं समझता है परन्तु तूने दुःख बहुत पाया है इस कारण तेरा मन विक्षिप्त होगया है । १७ । तेरा हृदय काँपता है, तेरे मनमें खेद होता है और तू जाघोंके सुन्न पडजानेसे पराधीन होगया है, इससे ही मेल करना चाहता है । १८ । सेमलकी रूईसे भरीहुई घुंडियें जैसे पवनके वेगसे चलायमान होती रहती हैं तैसे ही हे भीम ! मनुष्यका अनित्य मन भी सांसारिक विचारोंके कारण कभी चञ्चल और कभी स्थिर देखनेमें आता है ।१९। गौओंकी वाणी मनुष्योंकीसी होय तो वह जैसे विकार भरी मानीजाती है तैसे ही तेरी यह बुद्धि भी मुझे विकार भरी मालूम होती है और ऐसी बुद्धि समुद्रमें नौकाहीन मनुष्योंकी समान, निराधार हुए पाण्डवोंके मनको दुःखसागरमें डुबाये देती है । २० । हे भीमसेन ! तू जो अनुचित वचन कहरहा है यह पहाडके चलायमान होनेकी समान अचम्भा है और मुझे तो यह बड़े ही अचरजमें डाल रहा है । २१ । हे भरतवंशी भीम ! तू अपने क्षत्रियके योग्य कर्मकी ओरको तथा जन्मकी ओरको देख और हे वीर ! खेदको त्यागकर धीरज धरता हुआ युद्ध करनेके लिए खड़ा होजा । २२ । हे शत्रुदमन ! तुझे जो युद्ध करनेमें ग्लानि होरही है, यह तेरे स्वरूपके योग्य नहीं है, जो पदार्थ अपनी वीरता और बलसे न मिले वह वस्तु क्षत्रियको अपने काममें कभी नहीं लानी चाहिए अर्थात् जो सच्चा क्षत्रिय होता है वह तो हरएक वस्तुको अपने पराक्रमसे ही पाना चाहता है । २३ । पिचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७५॥

वैशम्पायन उवाच। तथोक्ते वासुदेवेन नित्यमन्युरमर्षणः। सदश्ववत् समाधावद्बभाषे तदनन्तरम् ॥ १॥ भीमसेन उवाच। अन्यथा मां चिकीर्षन्तमन्यथा मन्यसेऽच्युत। प्रणीतभावमत्यर्थं युधि सत्यपराक्रमम् ॥ २ ॥ वेत्सि दाशार्ह सत्त्वं मे दीर्घकालं सहोषितः। उत वा मां न जानासि प्लवन् ह्रद इवाप्लवे ॥ ३ ॥ तस्मादनभिरूपाभिर्वाग्भिर्मां त्वं समर्च्छसि। कथं हि भीमसेनं मां जानन् कश्चन माधव ॥४॥ ब्रूयादप्रतिरूपाणि यथा मां वक्तुमर्हसि। तस्मादिदं प्रवक्ष्यामि वचनं वृष्णिनन्दन ॥ ५ ॥ आत्मनः पौरुषञ्चैव बलञ्च न समं परैः। सर्वथानार्यकर्मतं प्रशंसा स्वयमात्मनः ॥ ६ ॥ अतिवादापविद्धस्तु वक्ष्यामि बलमात्मनः। पश्येमे रोदसी कृष्ण ययोरासन्निमाः प्रजाः ॥७॥ अचले चाप्रतिष्ठे चाप्यनन्ते सर्वमातरौ। यदि मे सहसा क्रुद्धे समेयातां शिले

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! श्रीकृष्णने सदा क्रोधमें रहने वाले, असहनशील भीमसेनसे इस प्रकार कहा तब उत्तम घोड़े की समान बड़े हो वेगमें भर कर भीमसेन श्रीकृष्णजीसे कहने लगा१ भीमसेनने कहा, कि-हे अच्युत! मैं कुछ और ही करना चाहता हूँ, परन्तु आप मुझे कुछ और ही समझते हैं, मैं तो युद्धका बड़ा ही प्रेमी और सच्चा पराक्रम दिखाने वाला हूँ॥ २ ॥ हे यादव! तुम तो मेरे साथ बहुत दिनोंसे रहते हो, इस कारण मेरे हृदयके सच्चे भावको जानते हो अथवा जैसे बिना नौकाके अथाह जल भरे जलाशयोंमें तैरनेवाला उनके पारको नहीं जानता है तैसे ही प्रतीत होता है तुम भी मुझे पहिचानते नहीं हो॥३॥ और इसकारण ही तुम अनुचित बात कहकर मेरा तिरस्कार करते हो, हे माधव! तुम मुझसे जैसी अनुचित बात कहते हो, ऐसी बात मुझ भीमसेनके स्वरूपको जानने वाला कौन कह सकता है, इसलिये हे वृष्णिनन्दन! मैं स्वयं ही तुम को अपने बलका प्रभाव सुनाता हूँ॥ ४--५ ॥ मेरा अपना पुरुषार्थ और बल दूसरोंकेसा नहीं है, यद्यपि स्वयं अपने बलका बखान करना भलेमानुषोंका काम नहीं है ॥ ६ ॥ तो भी तुम मेरी निंदा करने लगे हो तो मैं अपना बल तुमसे कहनेको तयार हुआ हूं, हे कृष्ण! तुम इन भूमि और द्युलोकको देखो, कि-जिनमें ये सब प्रजा बस रही है ॥ ७ ॥ जो अचल, असीम और अनन्त हैं, यदि ये दोनों क्रोधमें भर कर परस्पर दो शिलाओंकी समान जुड़जायँ तो मैं अकेला ही अपने दोनों हाथोंसे इन चराचर प्रजासहित भूमि और द्युलोकको

इव ॥ ८ ॥ अहमप्येनिर्वहणीयां बाहुभ्यां सचराचरं । पश्यैतदन्तरं बाह्वोर्महापरिघयोरिविश्य यन्तु प्राप्य मुच्येत न तं पश्यामि पूरुषम् । हिमवांश्च समुद्रश्च वज्री च बलभित् स्वयम्॥१०॥मयाभिपन्नं त्रायेरन् बलमास्थाय न यः।युद्धार्हान् क्षत्रियान् सर्वान् पाण्डवेष्वाततायिनः॥११ अधः पादतलेनैतानधिष्ठास्यामि भूतले। न हि त्वं नाभिजानासि न मे विक्रममच्युत ॥१२॥ यथा मया विनिर्जित्य राजानो वशगाः कृताः अथ चेन्मां न जानासि सूर्यस्येवोद्यतः प्रभाम् ॥ १३ ॥ विगाढे युधि सम्बाधे वेत्स्यसे मां जनार्दन । परुषैराक्षिपसि किं व्रणं पूतिमिवोन्नयन् ॥ १४ ॥ यथामति ब्रवीम्येतद् विद्धि मामधिकं ततः । द्रष्टासि युधि सम्बाधे प्रवृत्ते वैशसेऽहनि।मया प्रयुन्नान्मातङ्गान् रथिनः सादिनस्तथा । तथा नरानभिक्रुद्धं निघ्नन्तं क्षत्रियर्षभान् ॥ १६ ॥ द्रष्टा मां त्वमत्र लोकश्च विकर्षन्तं वरान् वरान्। न मे सीदन्ति मज्जानो न मगो-

---

छुदे २ कर देनेकी शक्ति रखता हूँ, तुम मेरे इन दोनों मोटे लोहदंडों की समान भुजदण्डोंको तो देखो॥८॥९॥मैं तो ऐसा किसीको देखता नहीं जो इन दोनोंके बीचमें आकर छूटसके, जिसके ऊपर मैं चढ़ायी करदूं उसकी रक्षा तो हिमाचल, समुद्र और बल दैत्यका नाश करने वाला स्वयं इन्द्र ये तीनों महापुरुष भी अपना बल लगाकर नहीं कर सकते, पाण्डवोंके ऊपर क्रोध करके चढ़ायी करने वाले सब युद्धके योग्य क्षत्रियोंको मैं पृथ्वी पर टुकड़े २ करके गिराऊँगा और उनके ऊपर लात जमा कर बैठ जाऊँगा, हे अच्युत ! तुम मेरे पराक्रम को न जानते हो यह बात नहीं है ॥ १० ॥ मैंने जिस प्रकार राजाओं को जीत कर अपने वशमें किया था क्या आपने नहीं देखा ? और यदि आप मुझे नहीं जानते हैं तो जैसे सूर्य जब उदय होता है तबही उसकी कांति जाननेमें आती है ॥ १३ ॥ तैसेही अतिभयानक संहार से भरे हुए महासंग्रामके समय, हे जनार्दन ! मेरे पराक्रमको तुम जान जाओगे, जैसे जब फोड़ा पकनेको आजाता है तो पीड़ा देता है, तैसे ही तुम भी तीखे वचनोंसे मेरा तिरस्कार क्यों करते हो ! १४ यह अपना पराक्रम मैंने तुमने बुद्धिके अनुसार कहदिया है परंतु आप मुझे इससे अधिक जानना, जिस समय रणभूमिमें मार काट होने लगेगी और आपसमें युद्ध जम जायगा, उस समय मेरे पराक्रमको देखोगे ! ॥१५॥ उस समय हाथी, रथ, घोडे और बड़े २ क्षत्रियोंका मैं परम क्रोधमें भर कर संहार करने लगूंगा तथा अच्छे २ योधाओंको

द्रूयते मनः ॥ १७ ॥ सर्वलोकादभिक्रुद्धान्न भयं विद्यते मम । किंतु सौहृदमेवैतत् कृपया मधुसूदन । सर्वास्तितिक्षे संक्लेशान्मा स्म नो भरतानशन् ॥ १८ ॥ ❀ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीमसेन-वाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

श्रीभगवानुवाच । भावं जिज्ञासमानोऽहं प्रणयादिदमब्रुवम् । न चाक्षेपान्न पाण्डित्यान्न क्रोधान्न विवक्षया ॥१॥ वेदाहं तव माहात्म्य-मुत ते वेद यद् बलम् । उत ते वेद कर्माणि न त्वां परिभवाम्यहम् २ यथा चात्मनि कल्याणं सम्भावयसि पाण्डव । सहस्रगुणमप्येतत् त्वयि सम्भावयाम्यहम् ॥३॥ यादृशे च कुले जन्म सर्वराजाभिपूजिते। बंधुभिश्च सुहृद्भिश्च भीम त्वमसि तादृशः ॥४॥ जिज्ञासंतो हि धर्मस्य सन्दिग्धस्य वृकोदर । पर्यायं नाध्यवस्यन्ति देवमानुषयोर्जनाः ॥५॥ स एव हेतुर्भूत्वा हि पुरुषस्यार्थसिद्धिषु । विनाशेऽपि स एवास्य

रणमें घसीट डालूंगा, इस बातको आप तथा और सब लोग देखेंगे, मेरी मज्जामें पीड़ा नहीं होती है और मेरा मनभी नहीं काँपता है १६-१७ यदि सब जगत् भी क्रोध करके मेरे ऊपर चारों ओरसे चढ़ आवे तो भी मुझे उसका भय नहीं है, परन्तु हे मधुसूदन ! सबके सब भरत-वंशी राजाओंका नाश न होजाय, यह विचार कर मुझे दया आती है और इसीसे मैं सब दुःखोंको सहा करता हूं, इसका कारण केवल सुहृदपना ही है ॥ १८ ॥ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ छ

श्रीभगवान्ने कहा, कि हे भीमसेन ! मैंने तेरा तिरस्कार करनेकी की इच्छासे वा अपनी बुद्धिमानी दिखानेके लिये अथवा क्रोधसे तुझ से कुछ नहीं कहा है, किंतु तेरे मनका भाव जाननेकी इच्छासे प्रेमके साथ यह बात कही है ॥ १ ॥ मैं तेरे प्रभावको, तेरे बलको और तेरे पराक्रमोंको भी जानता हूँ, इस लिये यह मैंने तेरा तिरस्कार नहीं किया है ॥ २ ॥ हे पाण्डव ! तू जिस प्रकारसे अपना कल्याण होना समझता है तुझमें उससे हजारगुणा अपना कल्याण करनेकी शक्ति है इस बातका मुझे भरोसा है ॥ ३ ॥ सब राजाओंके पूजे हुए जैसे कुलमें तेरा जन्म हुआ है और तेरे बान्धव तथा मित्र जैसे योग्य हैं तैसा ही योग्य तू भी है ॥ ४ ॥ हे भीम ! मनुष्य देवताओंके और मनुष्योंके सन्देह भरे हुए धर्मको जानना चाहते हैं परन्तु वह उसको जान नहीं सकते हैं ॥ ५ ॥ पुरुषका प्रयोजन सिद्ध होनेमें धर्म ही

सन्दिग्धं कर्म पौरुषम् ॥ ६॥ अन्यथा परिदृष्टानि कविभिर्दोषदर्शिभिः अन्यथा परिवर्त्तन्ते वेगा इव नभस्वतः ॥ ७ ॥ सुमन्त्रितं सुनीतञ्च न्यायतश्चोपपादितम् । कृतं मानुष्यकं कर्म दैवेनापि विरुध्यते ॥ ८॥ दैवमप्यकृतं कर्म पौरुषेण विहन्यते । शीतमुष्णं तथा वर्षं क्षुत्पिपासे च भारत ॥ ९ ॥ यदन्यद्दिष्टभावस्य पुरुषस्य स्वयं कृतम् । तस्मादनुपरोधश्च विद्यते तत्र लक्षणम् ॥१०॥ लोकस्य नान्यतो वृत्तिः पांडवान्यत्र कर्मणः । एवं बुद्धिः प्रवर्त्तेत फलं स्यादुभयान्वये ॥ ११ ॥ य एवं कृतबुद्धिः स कर्मस्वेव प्रवर्त्तते । नासिद्धौ व्यथते तस्य न सिद्धौ

कारण है और प्रयोजनके नष्ट होनेमें भी वही कारण है इस कारण पुरुषका कर्म सन्देह भरा माना जाता है अर्थात् अमुक कामका अमुक ही परिणाम होगा, ऐसा विचार किया ही नहीं जासकता ६ दोषदर्शी विवेकी पुरुष कर्मकी गतिके विषयमें और ही प्रकारका निश्चय कर बैठते हैं, परन्तु पवनके वेगकी समान कर्मोंकी गति उससे जुदे ही प्रकारकी देखनेमें आती है ॥ ७ ॥ मनुष्य एक कामको अच्छे विचारसे, अच्छे न्यायसे और उत्तम प्रकारकी नीतिसे करता है, परन्तु तो भी उसका काम प्रारब्धवश नष्ट होजाता है ८ हे भारत ! जाड़ा, गरमी, वर्षा, भूख और प्यास आदि काम मनुष्यके किये हुए नहीं हैं किन्तु वह मनुष्यके उद्योगसे दूर होसकते हैं कंबलसे जाड़ा नहीं लगता, छायासे धूपकी तेजी नहीं सताती, पानी पीनेसे पिलास नहीं रहती और भोजन करनेसे भूख दूर होती है ॥ ९ ॥ इस लोकमें प्रारब्ध कर्मोंको छोड़ कर अपने किये हुए और कर्मोंका मनुष्य त्याग कर सकता है, यह बात हमें श्रुति और स्मृतियोंको पढनेसे मालूम होती है, श्रुति कहती है कि-'धर्मेण पापमपनुदति' धर्म करके मनुष्य पापका नाश करता है ॥ १० ॥ हे पाण्डव ! इस जगत्में लोकोंका व्यवहार कर्म किये बिना नहीं चलता, इस लिए भाग्य और पुरुष इन दोनोंके संयोगसे काम सिद्ध होता है ऐसा विचार कर काम करनेमें प्रवृत्त होना चाहिये, केवल प्रारब्धके भरोसे पर नहीं रहना चाहिए ॥ ११ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य विचारशील होता है वह कर्म ही किया करता है और कदाचित् उसका काम निष्फल होजाता है तो भी वह अपने मनमें दुःख नहीं मानता है तथा काम सफल होजाता है तो उससे हर्ष भी नहीं मानता है, अपने आप जो कुछ करता है सो उचित काम ही करता है ॥ १२ ॥ हे भीमसेन !

हर्षमश्नुते१२ तत्रेयमनुमात्रा मे भीमसेन विवक्षिता। नैकांतसिद्धिर्वक्तव्या शत्रुभिः सह संयुगे ॥ १३ ॥ नातिप्रहीणरश्मिः स्यात्तथा भावविपर्यये। विषादमृच्छेद् ग्लानिं वाप्येतमर्थं ब्रवीमि ते ॥१४॥ श्वभूते धृतराष्ट्रस्य समीपं प्राप्य पाण्डव। यतिष्ये प्रशमं कर्त्तुं युष्मदर्थमहापयन् ॥ १५ ॥ शमं चेत्ते करिष्यन्ति ततोऽनन्तं यशो मम। भवताञ्च कृतः कामस्तेषाञ्च श्रेय उत्तमम् ॥ १६ ॥ ते चेदभिनिवेक्ष्यन्ते नाभ्युपैष्यन्ति मे वचः। कुरवो युद्धमेवात्र घोरं कर्म भविष्यति ॥ १७ ॥ अस्मिन् युद्धे भीमसेन त्वयि भारः समाहितः। धूरर्जुनेन धार्य्या स्याद्वोढव्य इतरो जनः ॥ १८ ॥ अहं हि यंता बीभत्सोर्भविता संयुगे सति। धनञ्जयस्यैष कामो न हि युद्धं न कामये॥१९॥ तस्मादाशङ्कमानोऽहं वृकोदरमतिं तव।गदतःक्लीवया वाचा तेजस्ते समदीदिपम्॥२०

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७॥

काम करनेके विषयमें यह अपना निश्चय मैंने तुझे सुना दिया, परन्तु शत्रुओंके साथ युद्ध करते समय हमारी ही विजय होगी यह बात निश्चितरूपसे नहीं कही जासकती ॥१३॥ इस लिये कदाचित् प्रारब्ध कर्म पलटा खाजाय तो उसके कारणसे निस्तेज होकर चित्तमें दुःख नहीं मानना चाहिये, इसबातको जतानेके लिये ही मैं तुझे इस विषय का उपदेश देता हूँ ॥१४॥ हे पाण्डुनन्दन! मैं कलको धृतराष्ट्रके पास जाने वाला हूँ, तहाँ जाकर तुम्हारे कामको हानि न पहुंचाता हुआ दोनोंमें मेल करानेका उद्योग करूँगा ॥ १५ ॥ यदि वह सन्धि करना स्वीकार करलेंगे तो उससे मुझे बड़ाभारी यश मिलेगा तुम्हारी कामना पूरी होगी और कौरवोंका भी उत्तम कल्याण होगा ॥१६॥ परन्तु यदि कौरव मेरा कहना नहीं मानेंगे और हठ करके युद्ध करनेका ही आवेश दिखावेंगे तब तो फिर युद्धरूप घोर काम होगा ही ॥ १७ ॥ हे भीमसेन! यदि यह युद्ध हुआ तो युद्धका सब कामकाज तुझको ही सौंपा जायगा और अर्जुनको युद्धकी धुरी धारण करनी होगी तथा दूसरे पुरुषोंको तो तुम्हें अपनी आज्ञामें चलाना होगा ॥ १८ ॥ यदि युद्ध होगा तो मैं अर्जुनका सारथी बनूँगा यह बात अर्जुनको भी रुचती है मुझे युद्धकी इच्छा नहीं है ऐसा न समझना किंतु मैंभी युद्धको चाहता हूँ ॥१९॥ परन्तु जब तू नपुंसककी सी वाणीसे मेरे साथ बातें करने लगा तब मुझे तेरी बुद्धि पर संदेह हुआ इस कारण ही मैंने अपने वचनोंसे तेरे तेजको उकसाया है ॥ २० ॥ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥

अर्जुन उवाच । उक्तं युधिष्ठिरेणैव यावद्वाच्यं जनार्दन । तव वाक्यं तु मे श्रुत्वा प्रतिभाति परन्तप॥१॥ नैव प्रशममत्रत्वं मन्यसे सुकरं प्रभो लोभाद्वा धृतराष्ट्रस्य दैन्याद्वा समुपस्थितात् ॥२॥ अफलं मन्यसे चापि पुरुषस्य पराक्रमम् । न चान्तरेण कर्माणि पौरुषेण फलोदयः ॥३॥ तदिदं भाषितं वाक्यं तथा च न तथैव तत् । यच्चैतदेवं द्रष्टव्यमसाध्यमपि किंचन॥४॥ किंचैतन्मन्यसे कृच्छ्रमस्माकमवसादकम्। कुर्वंति तेषां कर्माणि येषां नास्ति फलोदयः ॥५॥ सम्पाद्यमानं सम्यक्च स्यात् कार्यं सफलं प्रभो । स तथा कृष्ण वर्तस्व यथा शर्म भवेत् परैः ॥ ६ ॥ पाण्डवानां कुरूणाञ्च भवान्नः प्रथमः सुहृत् । सुराणामसुराणाञ्च यथा वीर प्रजापतिः ॥ ७ ॥ कुरूणां पाण्डवानां च प्रतिपत्स्व निरामयम् अस्मद्धितम-

---

यह सुन कर अर्जुन बोल उठा, कि-हे जनार्दन श्रीकृष्ण ! जो कुछ कहना था वह सब आपसे युधिष्ठिर कह चुके हैं, हे शत्रुतापन ! हे प्रभो ! आपकी बातको सुन कर मुझे प्रतीत होता है, कि--या तो धृतराष्ट्रके लोभके कारणसे अथवा हमारे ऊपर आकर पड़ीहुई विपत्ति के कारणसे मेल होना सहज नहीं है, ऐसा जो आप समझ रहे हैं यह ठीक ही है ॥ १ ॥ और आप जो यह मानते हैं, कि-पुरुषका उद्योग निष्फल जाता है और कर्म किये विना पुरुषार्थसे फलका उदय नहीं होता है ॥ ३ ॥ आपका यह कहना भी सत्य है, परन्तु सदाके लिये यह बात नहीं होसकती कभी २ यह सिद्धांत भी ठीक नहीं बैठता है और आप यह भी न समझ लें, कि—कोई वस्तु असाध्य है, उद्योग करने पर कठिनसे कठिन काम सिद्ध होसकता है ॥ ४ ॥ यह समझ कर कि-हमारी और कौरवोंकी सन्धि नहीं निभसकेगी, आप युद्धको ही स्वीकार करते हैं, क्योंकि—कौरव जो काम करते हैं उसके परिणामका विचार नहीं करते, इस कारण उनके काम सदा शांतिके तोड़ने वाले होते हैं, इस लिये उनके साथ तो दण्डनीतिसे काम लिये विना निर्वाह ही नहीं होसकता ॥ ५ ॥ ऐसा होते हुए भी यदि आप सन्धि करना ही अच्छा समझते हो तो हे प्रभो ! किसी कामको यदि अच्छे प्रकार सम्हाल कर किया जाय तो ही सफल होता है, इस लिये हे कृष्ण ! आप भी इस प्रकारसे इस बातको छेड़ें कि—जिसमें उनके साथ हमारी सन्धि हो ही जाय ॥ ६ ॥ हे वीर ! जैसे प्रजापति देवताओंके और असुरोंके सम्बंधी हैं तैसे ही आप भी कौरवोंके और पाण्डवोंके संबंधी हैं, पर हमारा संबन्ध आपसे पहिला है ॥ ७ ॥ इस

नुष्ठानं मन्ये तव न दुष्करम् ८ एवञ्च कार्यतामेति कार्यं तव जनार्दन गमनादेवमेव त्वं करिष्यसि जनार्दन ॥९॥ चिकीर्षितमथान्यत्ते तस्मिन् वीर दुरात्मनि । भविष्यति च तत् सर्वं यथा तव चिकीर्षितम् ॥१०॥ शर्म तैः सह वा नोऽस्तु तव वा यच्चिकीर्षितम् । विचार्यमाणो यः कामस्तव कृष्ण स नो गुरुः । न स नार्हति दुष्टात्मा वधं ससुतबांधवः११ येन धर्मसुते दृष्टा न सा श्रीरुपमर्पिता । यच्चाप्यपश्यतोपायं धर्मिष्ठं मधुसूदन ॥१२॥ उपायेन नृशंसेन हृता दुर्द्यूतदेविना । कथं हि पुरुषो जातः क्षत्रियेषु धनुर्द्धरः ॥ १३ ॥ समाहूतो निवर्तेत प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते । अधर्मेण जितान् दृष्ट्वा वने प्रव्रजितांस्तथा ॥ १४ ॥ वध्यतां मम वार्ष्णेय निर्गतोऽसौ सुयोधनः । न चैतदद्भुतं कृष्ण मित्रार्थं यच्चिकीर्षसि । क्रिया कथञ्च मुख्या स्यान्मृदुना चेतरेण वा ॥ १५ ॥

लिये आप ऐसा यत्न करिये, कि-जिसमें कौरव और पाण्डव दोनों का कल्याण हो, तिसमें भी हमारे हितके लिये आपको जो काम करना है, उसको करना मेरी समझमें आपके लिये कठिन नहीं है ॥ ८ ॥ हे जनार्दन ! आपका काम ऐसा करने पर ही उचित होगा और तहाँ जाते ही तुम कामको सिद्ध कर सकोगे ॥९॥ हे वीर ! दुष्टात्मा दुर्योधनके विषयमें जो कुछ करनेकी आपकी इच्छा होगी वह सब आप का चाहा हुआ काम भी सिद्ध होगा ॥१०॥ हमारी उनके साथ सन्धि होजाय तैसा करना अथवा आपकी जो कुछ करनेकी इच्छा हो सो करना; हे कृष्ण ! आपने अपने मनमें जो विचार कर लिया होगा वह हमें मान्य है, परन्तु धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीको जो नहीं देख सका था तथा हे मधुसूदन ! धर्मानुकूल उपाय न मिलनेसे जिस ने जुएके खेल सरीखे क्रूरता भरे अधर्मी उपायसे राजलक्ष्मीको छीन लिया है वह दुष्टात्मा दुर्योधन क्या पुत्रों और भाइयों सहित मारनेके योग्य नहा है ? क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुए धनुषधारी पुरुषको, कोई भी बुलावे तो चाहे प्राण जानेका अवसर आजाय परन्तु वह मुख नहीं मोड़ सकता, मेरे भाइयोंको अधर्मसे हरा कर वनमें भेज दिया, यह देख कर हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! मैं दुर्योधनको मार डालनेके योग्य समझता हूँ, हे कृष्ण ! तुम मित्रके लिये जो कुछ काम करना चाहते हो यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, इस उलझनमें कोमल उपायरूप सन्धिसे काम बनेगा या युद्धसे काम सिद्ध होगा, बस यही बात आप आपके विचारनेकी है ॥११-१५॥ अथवा आप कौरवोंका अभी संहार

अथवा मन्यसे ज्यायान् वधस्तेषामनन्तरम्। तदेव क्रियतामाशु न विचार्य्यमतस्त्वया ॥१६॥ जानासि हि यथा तेन द्रौपदी पापबुद्धिना। परिक्लिष्टा सभामध्ये तच्च तस्योपमर्षितम् ॥१७॥ स नाम सम्यग्वर्त्तेत पाण्डवेष्विति माधव। न मे सञ्जायते बुद्धिर्बीजमुप्तमिवोषरे ॥ १८ ॥ तस्माद्यन्मन्यसे युक्तं पाण्डवानां हितञ्च यत्। तदाशु कुरु वार्ष्णेय यन्नः कार्य्यमनन्तरम् ॥ १९ ॥　　छ　　छ

इतिश्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वण्यर्जुनवाक्ये-
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

श्रीभगवानुवाच। एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव। पाण्डवानां कुरूणाञ्च प्रतिपत्स्ये निरामयम् ॥१॥ सर्वं त्विदं ममायत्तं बीभत्सो कर्मणोर्द्वयोः। क्षेत्रं हि रसवच्छुद्धं कर्मणैवोपपादितम् ॥ २ ॥ ऋते वर्षान्न कौन्तेय जातु निर्वर्त्तयेत् फलम्। तत्र वै पौरुषं ब्रूयुरासेकं यत्नकारितम् ॥ ३ ॥ तत्र चापि ध्रुवं पश्येच्छोषणं दैवकारितम् तदिदं

करना अच्छा मानते हो तो ऐसा करनेकी ही शीघ्रता करिये, परंतु अब इस कामको करनेमें विचार (विलम्ब) न करिये ॥ १६ ॥ पापात्मा दुर्योधनने बीच सभामें द्रौपदीका अपमान किया था उसके ऐसे अनर्थको भी हमने सह लिया था, इस बातको आप जानते हो हैं ॥ १७ ॥ हे माधव ! ऐसा दुर्योधन पाण्डवोंके साथ अच्छा वर्त्ताव करे, यह बात मेरी समझमें नहीं आती, जैसे ऊपर (कल्लर) भूमिमें बोया हुआ बीज नहीं उगता है किन्तु जलजाता है, तैसेही तुम्हारा हितकारी वचन दुर्योधनके हृदयमें नहीं जम सकेगा ॥१८॥ इस लिये हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! जिस बातको आप पाण्डवोंके लिये उचित और हितकारी मानते हो और अब आगे हमको जो काम करना आवश्यक हो, उस कामका शीघ्रही आरम्भ करिये१९.अठत्तरवाँ अध्याय समाप्त

भगवान् बोले, कि—हे महाभुज पाण्डव ! तू जो कहता है वह ठीक है, मैं वही काम करूँगा, जिसमें पांडवोंका और कौरवोंका हित होगा ॥ १ ॥ सन्धि और युद्ध इन दोनों कामोंमें हितकारी सन्धिको करनेका भार मेरे आधीन है कोई खेत रसयुक्त हो और उसको जोत कर ठीक भी कर लिया हो तो भी हे कुन्तीनन्दन अर्जुन ! वह वर्षा हुए विना कभी फल नहीं देसकता, क्योंकि न होनेपर परिश्रम करके उसमें जल दिया हो तो भी फल उत्पन्न होजाता है, यह बात कितने ही विद्वान् कहते हैं और पुरुषार्थ करके जल देनेपर भी दैवयोग अनु-

निश्चितं बुद्ध्या पूर्वैरपि महात्मभिः ॥ ४ ॥ दैवे च मानुषे चैव संयुक्तं लोककारणम् । अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः ॥ ५ ॥ दैवन्तु न मया शक्यं कर्म कर्त्तुं कथञ्चन । स हि धर्मञ्च लोकञ्च त्यक्त्वा चरति दुर्मतिः ॥ ६ ॥ न हि सन्तप्यते तेन यथा रूपेण कर्मणा । तथापि बुद्धिं पापिष्ठां वर्द्धयन्त्यस्य मन्त्रिणः ॥ ७ ॥ शकुनिः सूतपुत्रश्च भ्राता दुःशासनस्तथा । स हि त्यागेन राज्यस्य न शमं समुपैष्यति ॥ ८ ॥ अन्तरेण वधं पार्थ सानुबन्धः सुयोधनः । न चापि प्रणिपातेन त्यक्तुमिच्छति धर्मराट् । याच्यमानश्च राज्यं स न प्रदास्यति दुर्मतिः ॥ ९ ॥ न तु मन्ये स तद्वाच्यो यद्युधिष्ठिरशासनम् । उक्तं प्रयोजनं यत्तु धर्मराजेन भारत ॥ १० ॥ तथा पापस्तु तत् सर्वं न करिष्यति कौरवः । तस्मिंश्चाक्रियमाणेऽसौ लोके वध्यो भविष्यति ॥ ११ ॥ मम चापि स वध्यो हि जगतश्चापि भारत । येन कौमारके यूयं सर्वे विप्रकृताः

फूल न हो तो वह अवश्यही सूख जाता है इसलिये दैवी और मानुषी दोनों प्रयत्न इकट्ठे होजाते हैं तब लोगोंका काम सिद्ध होता है, ऐसा पहिले महात्मा पुरुषोंने भी अपनी बुद्धिसे विचार कर निश्चय किया है, इस लिये मैं भी जहाँ तक होसकेगा; उद्योग करके सन्धि करानेके लिये प्रयत्न करूँगा ॥ २-५ ॥ परन्तु प्रारब्ध कर्मको मैं किसी प्रकार भी नहीं पलट सकूँगा, वह दुष्टात्मा दुर्योधन धर्म और लोकलज्जा को त्याग कर चाहे सो करनेको उद्यत होजाता है ॥६॥ तो भी ऐसे नीच कर्मके लिये उसको कभी पछतावा नहीं होता, इस पर भी उस के मन्त्री शकुनि और कर्ण तथा उसका भाई दुःशासन उसकी पाप भरी बुद्धिको और बढ़ाते ही हैं इससे प्रतीत होता है कि-हे अर्जुन ! दुर्योधन अपने परिवारसहित नष्ट हुए विना, आधा राज्य देकर इस विवादकी शांति नहीं करेगा धर्मराज भी नम्र कर राज्यको छोड़ना नहीं चाहते, और वह दुष्टात्मा ऐसा है, कि-कितनी ही याचना करो राज्य देगा ही नहीं ॥ ७-९ ॥ हे भरतवंशी ! राजा युधिष्ठिरने जो पाँच गाँव देनेके लिये सँदेशा कहा है मेरी समझमें यह संदेशा तथा सन्धिकी जो बात कही है वह दुर्योधनसे कहना ठीक नहीं है ॥ १० ॥ क्योंकि-वह पापी दुर्योधन इन सब बातोंको मानेगा नहीं और कहने के अनुसार न करने पर वह जगत्में मारने योग्य होजायगा ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी ! वह मेरा ही नहीं किंतु सब जगत्का वध्य होजायगा तुम्हारी कुमार अवस्थामें वह सदा तुमको छल करके दुःख ही देता

सदा ॥ १२ ॥ विप्रलब्धश्च यो राज्यं नृशंसेन दुरात्मना । न चोपशाम्यते पापः श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ १३ ॥ असकृच्चाप्यहं तेन त्वत्कृते पार्थ भेदितः । न मया तद् गृहीतञ्च पापं तस्य चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ जानासि हि महाबाहो त्वमप्यस्य परं मतम् । प्रियं चिकीर्षमाणञ्च धर्मराजस्य मामपि ॥ १५ ॥ स जानंस्तस्य चात्मानं मम चैव परं मतम् । अजानन्निव मां कस्मादर्जुनाद्याभिशङ्कसे १६ यच्चापि परमं दिव्यं तच्चाप्यनुगतं त्वया । विधानविहितं पार्थ कथं शर्म भवेत् परैः ॥ १७ ॥ यत्तु वाचा मया शक्यं कर्मणा वापि पांडव । करिष्ये तदहं पार्थ न त्वाशंसे शमं परैः ॥ १८ ॥ कथं गो हरणे ब्रूयान्नैतच्छर्म तथा हितम् । याच्यमानो हि भीष्मेण संवत्सरगतेऽध्वनि १९ तदैव ते पराभूता यदा संकल्पितास्त्वया । लवशः क्षणशश्चापि न च

रहा है ॥ १२ ॥ राजा युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीको देखकर वह सह नहीं सका तब क्रूर दुरात्मा दुर्योधनने तुम्हारा राज्य भी छीन लिया १३ हे पार्थ ! तुमको दबानेके लिये उसने अनेकों वार मुझे भी तोड़नेका यत्न किया, परन्तु मैंने उसकी मनचाही पाप भरी बातको नहीं माना ॥ १४ ॥ हे महाबाहु ! तू भी इस दुर्योधनकी सच्ची बातको जानता है और मैं धर्मराजको प्रिय लगने वाला काम करना चाहता हूँ इस बातको भी तू जानता है ॥ १५ ॥ दुर्योधनके मनको और मेरे परमविचारको भी तू जानता है तो भी हे अर्जुन ! तू इस समय मुझ से ऐसा क्यों पूछ रहा है, कि-मानो कुछ जानता ही नहीं १६ भूमिका भार उतारनेके लिये देवता स्वर्गमेंसे पृथ्वी पर अवतरे थे उस दैवी घटनाको भी तू जानता है, फिर हे पार्थ ! शत्रुओंके साथ सन्धि कैसे होसकती है ? १७ हे पांडुनंदन ! तोभी मुझसे वाणी और कर्मसे जो कुछ होसकेगा सो मैं करूँगा, परन्तु मुझे यह आशा नहीं है, कि— शत्रुओंके साथ सन्धि होजाय ॥ १८ ॥ पिछले वर्ष ही राजा विराट की गौओंका हरण करते समय मार्गमें भीष्मजीने दुर्योधनसे हित-कारी कल्याणकी बात कही थी, परन्तु दुर्योधनने उनका कहना क्यों नहीं माना था १९ तूने जबसे कौरवोंको जीतनेका विचार किया है, तबसे ही कौरव मानो हार गए हैं, दुर्योधन तुम्हें क्षण भरको भी जरासा भी राज्यका भाग देनेको राजी नहीं है ॥ २० ॥ तो भी धर्म-राजकी आज्ञाका पालन तो मुझे सर्वथा करना ही चाहिये और दुरा-

तुष्टः दुर्योधनः ॥ २० ॥ सर्वथा तु मया कार्यं धर्मराजस्य शासनम् ।
विमार्ग्यं तस्य भूयश्च कर्म पापं दुरात्मनः ॥ २१ ॥ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

नकुल उवाच । उक्तं बहुविधं वाक्यं धर्मराजेन माधव । धर्मज्ञेन वदान्येन श्रुतञ्चैव हि तत्त्वया ॥ १ ॥ मतमाज्ञाय राज्ञश्च भीमसेनेन माधव । संशमो बाहुवीर्यं च ख्यापितं माधवात्मनः ।२। तथैव फाल्गुनेनापि यदुक्तं तत्त्वया श्रुतम् । आत्मनश्च मतं वीर कथितं भवतासकृत् ॥ ३ ॥ सर्वमेतदतिक्रम्य श्रुत्वा परमतं भवान् । यत् प्राप्तकालं मन्येथास्तत् कुर्याः पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥ तस्मिंस्तस्मिन्निमित्ते हि मतं भवति केशव । प्राप्तकालं मनुष्येण क्षमं कार्य्यमरिन्दम ॥ ५ ॥ अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोऽन्यथा। अनित्यमतयो लोके नराः पुरुषसत्तम ॥ ६ ॥ अन्यथाबुद्धयो ह्यासन्नस्मासु वनवासिषु । अदृश्येष्व-

---

त्मा दुर्योधनके पाप कर्मके ऊपर ध्यान देना ही चाहिए ॥ २१॥ उन्नासीवां अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥

इसके अनन्तर नकुल कहने लगा, कि-हे माधव ! धर्मराजने जो बहुत प्रकारकी बातें कही हैं, वह सब धर्मके ज्ञाता और उदार बुद्धि वाले आपने सुन ही लीं॥१॥धर्मराजका विचार जानलेने पर भीमसेन ने सन्धिके लिए कहा और अपनी भुजाओंका पराक्रम भी आपको सुनाया ॥ २ ॥ तथा अर्जुनने जो कुछ कहा वह भी आपने सुनलिया और हे वीर ! आपने अपना विचार भी अनेकोंबार कहकर सुनाया३ इसलिए हे पुरुषोत्तम ! इन सब बातोंको छोड़कर शत्रुओंका विचार सुननेके पीछे आपको जो कुछ करना उचित प्रतीत हो वही काम करना ॥४॥ हे केशव ! जैसे कारण आजुटते हैं उनके अनुसार लोगों के विचारोंमें अन्तर पड़जाता है अर्थात् युधिष्ठिरका मत तो यह है, कि-कुलका नाश न हो तो अच्छा है, परन्तु केश पकड़कर घसीटी जानेके कारण दुःखित हुई द्रौपदीका मत है, कि-वैरियोंको जड़मूल से नष्ट कर दिया जाय, परन्तु हे अरिंदमन ! मनुष्यको अवसरके अनुसार जो काम करना उचित जँचै वही करना चाहिए ।५। मनुष्य किसी बातका फल कुछ और समझता है परन्तु उसका परिणाम निकलता कुछ और ही है, हे पुरुषोत्तम ! इस संसारमें मनुष्यकी मति सदा एकसी नहीं रहती,किन्तु कभी कुछ और कभी कुछ होता

न्यथा कृष्ण दृश्येषु पुनरन्यथा ॥ ७ ॥ अस्माकमपि वार्ष्णेय वने विचरतां तदा । न तथा प्रणयो राज्ये यथा सम्प्रति वर्त्तते ॥ ८ ॥ निवृत्तवनवासान्नः श्रुत्वा वीर समागताः। अक्षौहिण्यो हि सप्तेमास्त्वत्प्रसादाज्जनार्द्दन ॥ ९ ॥ इमान् हि पुरुषव्याघ्रानचिन्त्यबलपौरुषान् । आत्तशस्त्रान् रणे दृष्ट्वा न व्यथेदिह कः पुमान् ॥ १० ॥ स भवान् कुरुमध्ये तं सान्त्वपूर्वं भयोत्तरम्। ब्रूयाद्वाक्यं यथामन्दो न व्यथेत सुयोधनः ११ युधिष्ठिरं भीमसेनं बीभत्सुञ्चापराजितम् । सहदेवं च मां चैव त्वाञ्च रामञ्च केशव ॥ १२ ॥ सात्यकिं च महावीर्यं विराटञ्च सहात्मजम् । द्रुपदञ्च सहामात्यं धृष्टद्युम्नञ्च माधव ॥ १३ ॥ काशिराजं च विक्रान्तं धृष्टकेतुञ्च चेदिपम् । मांसशोणितभृन्मर्त्यः प्रतियुध्येत को युधि १४ स भवान् गमनादेव साधयिष्यत्यसंशयम् । इष्टमर्थं महाबाहो धर्मराजस्य केवलम्॥१५॥ विदुरश्चैव भीष्मश्च द्रोणश्च सह बाह्लिकः । श्रेयः

है ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ! जब हम वनोंमें रहते थे तब हमारे विचार कुछ और ही थे और जब हम छिपकर रहे थे तब हमारे विचार और ही थे तथा अब हम प्रकट हुए तो हमारा और ही विचार है ॥ ७ ॥ हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! हम जब वनमें विचरते थे उस समय हमको राज्य का ऐसा प्रेम नहीं था जैसा, कि–अब है ॥८॥ हे वीर जनार्दन ! हमें वनवाससे लौटे हुए सुनकर आपकी कृपासे ये सात अक्षौहिणी हमारे पास आयी हैं ॥ ९ ॥ व्याघ्रोंकी समान अचिन्त्य बल तथा पुरुषार्थ वाले इन शस्त्रधारी पुरुषोंको देखकर रणमें कौनसा पुरुष न दहल जायगा ? ॥ १० ॥ सो आप कौरवोंके मध्यमें दुर्योधनसे पहिले मेल होनेकी और फिर भय दिखाने वाली बातें कहना, कि–जिनको सुन कर मन्दबुद्धि दुर्योधन दहल जाय ॥ ११ ॥ हे माधव ! युधिष्ठिर, भीमसेन, किसीसे न जीता जानेवाला अर्जुन, सहदेव, मैं, तुम, बलदेवजी सात्यकी, महापराक्रमी राजा विराट उसका पुत्र उत्तर, अपने मन्त्रियों सहित राजा द्रुपद, धृष्टद्युम्न, पराक्रमी धृष्टकेतु तथा चेदिराज, हे केशव ! जब ये सब राजे रणमें लड़नेको खड़े होंगे तब इनके सामने मांस और रुधिरसे भरा हुआ कौनसा पुरुष लड़नेको खड़ा होसकेगा ? ॥ १२–१४ ॥ हे महाबाहु ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है, कि–तुम वहाँ पहुँचते ही केवल राजा युधिष्ठिरके इष्ट कामको सिद्ध कर सकोगे ॥ १५ ॥ हे निर्दोष श्रीकृष्ण ! विदुर, भीष्म, द्रोण राजा बाह्लीक ये सब तुम्हारे कहनेसे, कौरवोंका कल्याण किस बातमें है,

समर्था विज्ञातुमुच्यमानास्त्वयानघ ॥ १६ ॥ ते चैनमनुनेष्यन्ति धृतराष्ट्रं जनाधिपम् । तं च पापसमाचारं सहामात्यं सुयोधनम् ॥ १७ ॥ श्रोता चार्थस्य विदुरस्त्वं च वक्ता जनार्दन । कमिवार्थं विवर्त्तन्तं स्थापयेतां न वर्त्मनि ॥ १८ ॥

इतिश्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि नकुलवाक्येऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

सहदेव उवाच । तदेतत् कथितं राज्ञा धर्म एष सनातनः । यथा च युद्धमेव स्यात् तथा कार्यमरिन्दम ॥ १ ॥ यदि प्रशममिच्छेयुः कुरवः पाण्डवैःसह । तथापि युद्धं दाशार्ह योजयेथाः सहैव तैः ॥२॥ कथं नु दृष्ट्वा पांचालीं तथा कृष्ण सभागताम् । अवधेन प्रशाम्येत मम मन्युः सुयोधने३यदि भीमार्जुनौ कृष्ण धर्मराजश्च धार्मिकः धर्ममुत्सृज्यते नाहं योद्धुमिच्छामि संयुगे४सात्यकिरुवाच। सत्यमाह महाबाहो सहदेवो महामतिः। दुर्योधनवधे शांतिस्तस्य कोपस्य मे भवेत् ।।५।।न

इसको जान सकेंगे ॥ १६ ॥ और वह राजा धृतराष्ट्रको, पापकर्म करने वाले दुर्योधनको तथा उसके मन्त्रियोंको भी समझावेंगे ॥१७॥ हे जनार्दन ! इस विषयकी वातके वक्ता तुम बनोगे और विदुरजी श्रोता बनेंगे, तो क्या तुम दोनों जने नष्ट होती हुई किसी बातको मार्ग पर नहीं ठहरा सकोगे ? अर्थात् कौरव पाण्डवोंके स्नेहको नष्ट होनेसे रोक नहीं सकोगे ? ॥१८॥ अरसीवाँ अध्याय समाप्त ८०

इसके अनन्तर सहदेवने कहा, कि-हे शत्रुनाशन कृष्ण ! महाराज धर्मराजने जो कुछ कहा है वह सनातनधर्मरूप है, परन्तु आप को तो ऐसी बातें करना चाहिए कि-जिसमें युद्ध अवश्य ही हो ।१। हे दाशार्हवंशी कृष्ण! यदि कौरव पाण्डवोंके साथ मेल करना चाहते हों तो भी तुम उनके साथ युद्ध होनेका ही ढङ्ग रच देना ॥ २ ॥ हे कृष्ण! सभामें पहुँची हुई द्रौपदीकी उस दुर्दशाको देखकर मुझे दुर्योधनके ऊपर जो क्रोध आरहा है वह भला उसका प्राणान्त किये विना कैसे शांत होसकता है ॥ ३ ॥ हे कृष्ण ! भीम, अर्जुन तथा धार्मिक राजा युधिष्ठिर इस विषयमें यदि बाधा डालेंगे तो मैं (भाईकी आज्ञा का पालन करना रूप) अपने धर्मको त्याग कर रणमें उनके साथ लड़ूँगा ॥ ४ ॥ सात्यकीने कहा, कि--हे महाबाहो ! इस परमबुद्धिमान् सहदेवने सच्ची बात कही है, मेरे और इनके कोपकी शांति तो दुर्योधनके मारे जाने पर ही होगी ॥ ५ ॥ क्या आप नहीं जानते, कि

जानासि यथा दृष्ट्वा चीराजिनधरान्वनेतथापि मन्युरुद्भूतो दुःखितान् प्रेक्ष्य पांडवान् ॥ ६ ॥ तस्मान्माद्रीसुतः शूरो यदाह रणकर्कशः। वचनं सर्वयोधानां तन्मतं पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच। एवं वदति वाक्यन्तु युयुधाने महामतौ। सुभीमः सिंहनादोऽभूद्योधानां तत्र सर्वशः ८ सर्वे हि सर्वशो वीरास्तद्वचः प्रत्यपूजयन्। साधु साध्विति शैनेयं हर्षयन्तो युयुत्सवः ॥ ९ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि सहदेव-सात्यकिवाक्य एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

वैशम्पायन उवाच। राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं हितम्। कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्शिता ।१। सुता द्रुपदराजस्य स्वसितायतमूर्द्धजा। सम्पूज्य सहदेवञ्च सात्यकिं च महारथम् ॥ २ ॥ भीमसेनञ्च संशान्तं दृष्ट्वा परमदुर्मनाः। अश्रुपूर्णेक्षणा वाक्यमुवाचेदं मनस्विनी ॥ ३ ॥ विदितं ते महाबाहो धर्मज्ञ मधुसूदन। यथानिकृतिमास्थाय भ्रंशिताः पांडवाः सुखात् ॥४॥ धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सामात्येन

जब पाण्डवोंको वनमें फटे हुए वस्त्र पहिरे और मृगछाला ओढ़ कर फिरते हुए और दुःख पातेहुए देखा था तो तुमको भी क्रोध आगया था ॥ ६ ॥ इस लिये रणमें महाकठोर वीर माद्रीनन्दन सहदेवने जो बात कही है हे पुरुषोत्तम ! सब ही योधाओंका ऐसा ही मत है ॥७॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! परमबुद्धिमान् सात्यकीके ऐसी बात कहने समय तहाँ बैठे हुए सब योधा सिंहकी समान महाभयानक रूपसे गरजने लगे ॥ ८ ॥ तथा युद्ध करनेकी इच्छा वाले वे सब वीर पुरुष,सात्यकीको प्रसन्न करतेहुए बहुत अच्छा कहा बहुत अच्छा कहा, ऐसा कह कर सात्यकीकी बातको सराहने लगे ॥ ९ ॥ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! धर्मराजकी अर्थसे भरी और हितकरने वाली, बातको सुन कर दुःखके कारण दुर्बल हुई, जिसके मस्तक पर श्याम रङ्गके लम्बे केश थे तथा जो भीमसेनको शांत हुआ देख कर मनमें बड़ी ही खिन्न होरही थी वह धैर्यधारिणी द्रौपदी सहदेवकी और महारथी सात्यकीकी सराहना करके रोती २ तहाँ बैठे हुए श्रीकृष्णजीसे इस प्रकार कहने लगी, कि-॥ १-३ ॥ हे महाबाहु जनार्दन कृष्ण ! मन्त्रियों सहित धृतराष्ट्रके पुत्रने कपटके जुए से पाण्डवोंको सुख चैनसे जिस प्रकार भ्रष्ट करदिया यह सब बात

जनार्दन। यथा च सञ्जयो राज्ञा मन्त्रं रहसि श्रावितः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिरस्य दाशार्ह तच्चापि विदितं तव। यथोक्तः सञ्जयश्चैव तच्च सर्वं श्रुतं त्वया ६ पञ्च नस्तात दीयन्तां ग्रामा इति महाद्युते। अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् ॥७॥ अवसाने महाबाहो कंचिदेकञ्च पंचमम्। इति दुर्योधनो वाच्यः सुहृदश्चास्य केशव ॥ ८ ॥ न चापि ह्यकरोद्वाक्यं श्रुत्वा कृष्ण सुयोधनः। युधिष्ठिरस्य दाशार्ह श्रीमतः सन्धिमिच्छतः ॥ ९ ॥ अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः संधिमिच्छेन्न कर्त्तव्यस्तत्र गत्वा कथञ्चन ॥ १० ॥ शक्ष्यन्ति हि महाबाहो पांडवाः सृञ्जयैः सह। धार्त्तराष्ट्रबलं घोरं क्रुद्धं प्रतिसमासितुम् ॥११॥ न हि साम्ना न दानेन शक्यार्थस्तेषु कश्चन। तस्मात्तेषु न कर्त्तव्या कृपा ते मधुसूदन ॥ १२ ॥ साम्ना दानेन वा कृष्ण येन शाम्यन्ति शत्रवः। योक्तव्यस्तेषु दण्डः स्याज्जीवितं परिरक्षता ॥ १३ ॥ तस्मात्तेषु महादण्डः क्षेप्तव्यः क्षिप्रमच्युत। त्वया चैव महाबाहो पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥१४॥ एतत् समर्थं पार्थानां तव चैव यशस्करम्। क्रिय-

---

आप जानते हैं और राजा धृतराष्ट्रने जो सञ्जयको एकांतमें अपना गुप्त विचार सुनाया था उसको भी आप जानते ही हैं, तथा सञ्जयने जो २ बातें कही थीं वह भी सब आपने सुनी ही हैं ॥४-६॥ हे परमकांति वाले महाबाहु केशव! राजा युधिष्ठिरने राजा दुर्योधनसे और उसके सम्बन्धियोंसे यह संदेशा कहलाया है, कि—हे तात ! तुम हमें अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत तथा पाँचवाँ चाहे जौन सा एक ग्राम, इसप्रकार पाँच ग्राम हमें देदो ॥७ ॥ ८॥ हे कृष्ण ! इस संदेशेको कहने पर भी संधि करना चाहने वाले सुहृद् राजा युधिष्ठिरकी बातको दुर्योधन नहीं मानेगा ॥९॥ और यदि राज्यका भाग विना दिये वह सन्धि करना चाहता हो तो तहाँ जाकर किसीप्रकार भी सन्धि न करना ॥ १० ॥ क्योंकि—हे महाबाहो ! पांडव इन सृञ्जयोंके साथ मिल कर दुर्योधनकी भयंकर और क्रोधमें होकर भरीहुई सेना का नाश कर सकते हैं ॥ ११ ॥ हे मधुसूदन ! साम वा दाम किसी प्रकारसे भी दुर्योधनसे राज्य मिलनेकी आशा नहीं है, इसलिये तुम उसके ऊपर दया न करना ॥१२॥ हे कृष्ण ! यदि शत्रु सामसे अथवा दामसे शांत नहीं होय तो अपनीआजीविकाकी रक्षा करनेवालापुरुष ऐसे शत्रुओंके ऊपर दंडसे काम ले ॥१३॥ हे महाभुज केशव ! आपको तो पाण्डव और सृञ्जयोंके साथमें रह कर कौरवोंको शीघ्र ही बड़ा भारी दण्ड देना चाहिये ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! इस करने योग्य कामको

मार्ग भवेत् कृष्ण क्षत्रस्य च सुखावहम् ॥ १५ ॥ क्षत्रियेण हि हन्तव्यः क्षत्रियो लोभमास्थितः । अक्षत्रियो वा दाशार्ह स्वधर्ममनुतिष्ठता १६ अन्यत्र ब्राह्मणात्तात सर्वपापेष्ववस्थितात् । गुरुर्हि सर्ववर्णानां ब्राह्मणः प्रसृताग्रभुक् ॥ १७ ॥ यथाऽवध्ये वध्यमाने भवेद्दोषो जनार्दन । स वध्यस्यावधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ॥ १८ ॥ यथा त्वां न स्पृशेदेष दोषः कृष्ण तथा कुरु । पांडवैः सह दाशार्हैः सृञ्जयैश्च ससैनिकैः १९ पुनरुक्तश्च वक्ष्यामि विश्रम्भेण जनार्दन । का तु सीमन्तिनी मादृक् पृथिव्यामस्ति केशव ।२०। सुता द्रुपदराजस्य वेदिमध्यात् समुत्थिता ॥ धृष्टद्युम्नस्य भगिनी तव कृष्ण प्रिया सखी ॥२१॥ आजमीढकुलं प्राप्ता स्नुषा पांडोर्महात्मनः । महिषी पांडुपुत्राणां पंचेन्द्रसमवर्चसाम् २२ सुता मे पंचभिर्वीरैः पञ्च जाता महारथाः। अभिमन्युर्यथा कृष्ण तथा ते तव धर्मतः ॥ २३ ॥ साहं केशग्रहं प्राप्ता परिक्लिष्टा सभां गता ।

आप कर लेंगे तो आपका और पाण्डवोंका यश होगा तथा क्षत्रियों को सुख मिलेगा ॥ १५॥ हे दाशार्हवंशी कृष्ण ! अपने धर्मका आचरण करनेवाले क्षत्रियको उचित है, कि-वह लोभके वशमें हुए ब्राह्मण को छोड़ कर, क्षत्रियको तथा अन्य जातिके पुरुषको भी मारडाले १६ हे तात ! केवल एक ब्राह्मणको ही न मारे, वह चाहे सकल पापोंमें डूब भी गया हो, क्योंकि-ब्राह्मण सब वर्णोंका गुरु और पूजनीय माना जाता है ॥ १७ ॥ हे जनार्दन ! न मारने योग्यको मारनेसे जो दोष लगता है वही दोष मारने योग्य पुरुषको न मारनेसे भी लगता है धर्मशास्त्रके जानने वाले कहते हैं, यही बात हमने शास्त्रमें लिखी देखी है ॥ १८ ॥ इस कारण हे कृष्ण ! जिस प्रकार आप दोषके भागी न हों उस ही प्रकार पाण्डव, दाशार्ह, सृञ्जय और इनकी सेनाके साथ रह कर काम करिये ॥ १९ ॥ हे जनार्दन कृष्ण ! मैं आपसे विश्वास के साथ फिर पूछती हूँ, कि—क्या इस पृथ्वी पर मुझ सरीखी कोई पति वाली स्त्री है ? । २० । हे कृष्ण ! मैं राजा द्रुपदकी पुत्री हूँ, और यज्ञकी वेदीमेंसे उत्पन्न हुई हूँ, धृष्टद्युम्नकी बहिन लगती हूँ, और आपकी भी प्यारी धर्मबहिन हूँ ॥२१॥ तथा राजा अजमीढके वंशमें महात्मा पाण्डुकी पुत्रवधू बनकर आयी हूँ और पाँच इन्द्रोंकी समान तेजस्वी पाण्डवोंकी पटरानी हूँ ॥ २२ ॥ इन पाँचों वीरोंसे मेरे पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए हैं, जो कि-हे कृष्ण ! आपको धर्मानुसार अभिमन्युकी समान प्यारे हैं ॥ २३ ॥ हे केशव ! ऐसे बड़े २ पुरुषोंके

पश्यतां पांडुपुत्राणां त्वयि जीवति केशव ॥ २४ ॥ जीवत्सु पांडुपुत्रेषु पंचालेष्वथ वृष्णिषु दासीभूतास्मि पापानां सभामध्ये व्यवस्थिता२५ निरमर्षेष्वचेष्टेषु प्रेक्षमाणेषु पाण्डुषु । पाहि मामिति गोविन्द मनसा चिन्तितोऽसि मे ॥ २६ ॥ यत्र मां भगवान् राजा श्वशुरो वाक्यमब्रवीत् । वरं वृणीष्व पांचालि वरार्हासि मता मम ॥ २७ ॥ अदासाः पाण्डवाः सन्तु सरथाः सायुधा इति । मयोक्ते यत्र निर्मुक्ता वनवासाय केशव ॥ २८ ॥ एवंविधानां दुःखानामभिज्ञोऽसि जनार्दन । त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष सभर्तृज्ञातिबान्धवान् २९ नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः । स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात्३० धिक् पार्थस्य धनुष्मत्तां भीमसेनस्य धिग्बलम् । यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्त्तमपि जीवति ।३१। यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि धार्त्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण विधीयताम् ॥ ३२ ॥ वैशम्पायन

संबन्ध वाली भी मैं कौरवोंकी बीच सभामें केश पकड़ कर घसीटी जानेके कष्टको पाकर महादुःखी हुई,सो भी पांडवोंके देखते हुए और आपके शरीरमें प्राण रहते हुए, क्या यह कोई साधारण बात है ? २४ पाण्डव, पाञ्चाल देशके राजे और वृष्णियोंके जीते हुए मैं पापियों की सभामें एक दासीकी समान दुर्दशा भोगती थी ॥ २५ ॥ मेरी इस दुर्दशाको देखते हुए भी जब पांडवोंको क्रोध नहीं चढा और वह जड़ की समान विना हिले डुले खड़े हो रहे तो "हे गोविंद ! मेरी रक्षा करो" इस प्रकार मैंने आपका ध्यान किया था ॥ २६ ॥ उस सभामें मेरे महात्मा श्वसुरजीने मुझसे कहा था, कि–हे द्रौपदी ! मेरी समक्ष में तू मुझसे वर माँगले ॥२७॥ तव मैंने कहा, कि मेरे प्राणपति पांडव दास बननेसे छूटजायँ और उनके रथ तथा शस्त्र उनके पास ही रहैं, मेरे ऐसा कहने पर मेरे पति वनवासके लिये दासभावसे छूट गए २८ हे कमलनयन श्रीकृष्ण ! आप ऐसे २ दुःखोंको जानते हो, इस लिये हे जनार्दन ! तुम ज्ञाति और वान्धवों सहित मेरे पतियोंकी रक्षा करो । २९ । हे कृष्ण ! इसमें जरा संदेह नहीं है, कि–मैं धृतराष्ट्र और भीष्म, पितामहकी धर्मसे पुत्रवधू हूँ, तो भी कौरवोंने मुझे जोरावरी दासी बनाया था॥३०॥हे कृष्ण ! अर्जुनके धनुषधारीपनेको धिक्कार है और भीमसेनके बलको भी धिक्कार है, कि–जिनकी जीवित दशा में दुर्योधन मुहूर्त्त भरको भी जीवित रहा है ॥ ३१ ॥ इस लिए यदि मैं आपके अनुग्रह करने योग्य होऊँ और यदि आपको मेरे ऊपर दया

उवाच। इत्युक्त्वा मृदुसंहारं वृजिनाग्रं सुदर्शनम्। सुनीलमसिता-पाङ्गी सर्वगन्धाधिवासितम्॥ ३३॥ सर्वलक्षणसम्पन्नं महाभुजग-वर्च्चसम्। केशपक्षं वरारोहा गृह्य वामेन पाणिना॥ ३४॥ पद्माक्षी पुण्डरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी। अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनम-ब्रवीत्॥ ३५॥ अयन्ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः। स्मर्त्तव्यः सर्वकार्य्येषु परेषां सन्धिमिच्छता॥ ३६॥ यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ संधिकामुकौ। पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथैः॥३७॥ पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन। अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यंते कुरुभिः सह॥ ३८॥ दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांशुगुण्ठितम्। यद्यहन्तु न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे॥ ३९॥ त्रयोदश हि वर्षाणि प्रतीक्षन्त्या गतानि मे। विधाय हृदये मन्युं प्रदीप्तमिव पाव-कम्॥ ४०॥ विदीर्यते मे हृदयं भीम वाक्शल्यपीडितम्। योऽयमद्य

आती हो तो हे कृष्ण! तुम धृतराष्ट्रके पुत्रोंके ऊपर पूरा२ क्रोध करो ३२ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय! लाल कटाक्षों वाली, कमल-नयनी, गजगामिनी तथा सुन्दर जंघाओं वाली पंचालराजकुमारी द्रौपदी, व्याकुलताके साथ इसप्रकार कहकर, अग्रभागमें कोमल तथा घुंघराले, देखने योग्य श्यामवर्णके, नेत्रोंको आनन्ददायक, सब प्रकार की सुगन्ध बसे हुए, सब प्रकारके उत्तम लक्षणोंसे युक्त बड़े भारी साँपकी समान काले और लम्बे अपने केशपाशको बायें हाथमें लेकर कमलनयन श्रीकृष्णजीके समीप गयी और आँखोंमें आँसु भरकर फिर कहने लगी, कि-हे कमलनयन! तुम शत्रुओंके साथ मेल करना चाहते हो, आपकी इच्छा हो सो करना, परंतु उस समय जिसको दुःशासनने अपने हाथसे पकड़कर खेंचा था ऐसी इस मेरी वेणी (चोटी) को याद रखना ३३-३६ हे कृष्ण! यदि भीमसेन और अर्जुन कायर बन कर संधि करना चाहते हों तो मेरे बूढ़े पिता महारथी पुत्रोंको साथमें लेकर कौरवोंके साथ लड़ेंगे॥ ३७॥ हे मधुसूदन! मेरे महापराक्रमी पाँच पुत्र, अभिमन्युको आगे करके कौरवोंके साथ लड़ेंगे॥ ३८॥ जबतक अपने केशोंको खेंचने वाले दुःशासनके धूलमें लगे हाथको कट कर धूलिमें सना हुआ नहीं देखूँगी तब तक मेरे हृदयको शान्ति कहां मिलेगी?॥ ३९॥ दहकती हुई अग्निकी समान क्रोधको अपने हृदय में धारण करके चित्तमें विचारे हुए कामकी बाट देखते २ मुझे तेरह वर्ष बीत गए हैं॥ ४०॥ हे शत्रुओंको भयदायक कृष्ण! मेरा हृदय

महाबाहुर्धर्ममेवानुपश्यति ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वा बाष्परुद्धेन कण्ठेनाय-तलोचना । रुरोद कृष्णा सोत्कम्पं सस्वरं बाष्पगद्गदम् ॥ ४२ ॥ स्तनौ पीनायतश्रोणी सहितावभिवर्षती । द्रवीभूतमिवात्युष्णं मुञ्चती वारि नेत्रजम् ॥ ४३ ॥ तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन् । अचिरात् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः ॥ ४४ ॥ एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबान्धवाः । हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धासि भामिनि ॥ ४५ ॥ अहञ्च तत् करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह : युधि-ष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात् ॥ ४६ ॥ धार्त्तराष्ट्राः कालपक्का न चेच्छृण्वन्ति मे वचः । शेष्यन्ते निहता भूमौ श्वशृगालादनीकृताः ४७ चलेद्धि हिमवान् शैलो मेदिनी शतधा फलेत् । द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न मे मोघं वचो भवेत् ॥ ४८ ॥ सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो

वैरीके वचनरूपी काँटेसे टुकड़े २ होरहा है, तिस पर भी जो महा-भुज भीमसेन बैठे हैं यह धर्मको ही देख रहे हैं ॥४१ ॥ इतना कहते २ द्रौपदीके नेत्रोंमें आँसू भर आये और कण्ठ रुक गया तथा विशाल-नेत्रा द्रौपदी, गद्गद तथा काँपते हुए कण्ठसे डीख फोड़ कर रोने लगी ॥ ४२ ॥ और मानो स्वयं अग्नि पिघल कर रसरूप होगया हो ऐसे गरम आँसुओंको बरसाती हुई उसने स्थूल और विशाल स्तनों को तथा नितम्बोंको भिगो दिया ॥ ४३ ॥ तब विशाल भुजाओंवाले श्रीकृष्णने द्रौपदीको शान्त करके कहा, कि-हे कृष्णे ! तू शीघ्र ही भरतवंशियोंकी स्त्रियोंको रोती हुई देखेगी ॥ ४४ ॥ अरी भीरु भामिनी ! जिनके ऊपर तू क्रोध कर रही है उन तेरे वैरियोंके जब सम्बन्धी, कुटुम्बी, मित्र और सेनादल मारे जायँगे तो उनकी स्त्रियें भी ऐसे ही रोवेंगी ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिरकी आज्ञासे तथा विधिके रचे हुए दैववशसे मैं भी भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल सहदेवके साथ रह कर शत्रुओंका संहार करूँगा ॥ ३६ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्र कालसे पक गये हैं अर्थात् उनका अन्तकाल आलगा है, इसकारण यदि वह मेरा कहना नहीं मानेंगे तो मेरे हाथसे मर कर रणभूमिमें सोवेंगे और कुत्ते तथा गीदड़ियोंका भोजन बनेंगे ॥ ४७ ॥ चाहे हिमालय हिल जाय, चाहे भूमिके फट कर सैंकड़ों टुकड़े होजायँ और चाहे तारा-गणसहित द्युलोक टूटपड़े,परन्तु मेरी बात कभी मिथ्या नहीं होगी४८ हे द्रौपदी ! तू अपने आँसुओंको रोक,मैं तुझसे सच्ची प्रतिज्ञा करता

निगृह्यताम् । हतामित्रान् श्रिया युक्तानचिराद् द्रक्ष्यसे पतीन् ॥ ४९ ॥
इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि द्रौपदीकृष्णसंवादे
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

अर्जुन उवाच । कुरूणामद्य सर्वेषां भवान् सुहृदनुत्तमः । संबंधी दयितो नित्यमुभयोः पक्षयोरपि ॥ १ ॥ पाण्डवैर्धार्त्तराष्ट्राणां प्रतिपाद्यमनामयम् । समर्थः प्रशमश्चैव कर्त्तुमर्हसि केशव ॥ २ ॥ त्वमितः पुण्डरीकाक्ष सुयोधनममर्षणम् । शान्त्यर्थं भ्रातरं ब्रूया यत्तद् वाच्यममित्रहन् ॥ ३ ॥ त्वया धर्मार्थयुक्तं चेदुक्तं शिवमनामयम् । हितं नादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच । धर्म्यमस्मद्धितञ्चैव कुरूणां यदनामयम् । एष यास्यामि राजानं धृतराष्ट्रमभीप्सया ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततो व्यपेते तमसि सूर्य्ये विमलवद्गते । मैत्रे मुहूर्त्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ॥ ६ ॥ कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे । स्फीतशस्यसुखे काले कल्पः सत्ववतां वरः ॥७॥ मंगल्याः पुण्यनिर्घोषा वाचः शृण्वंश्च सूनृताः । ब्राह्मणानां

हूँ तू शीघ्र ही देखेगी, कि-तेरे पतियोंके शत्रु मारे जायँगे और तेरे पति राजा बने हुए होंगे ॥ ४९ ॥ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८२॥

अर्जुनने कहा, कि-हे कृष्ण ! आप कौरव और पाण्डवोंके परमस्नेही, दोनों ओरके सम्बन्धी तथा सदा प्यारे हो ॥ १ ॥ इस लिए धृतराष्ट्रके पुत्रोंका पाण्डवोंके साथ मेल कराकर आपको उनका कल्याण करना चाहिये, हे केशव ! आप दोनोंमें परस्पर शांति करा सकते हो और तुम दोनोंमें सन्धि भी करा सकते हो ॥ २ ॥ इस कारण हे शत्रुओंका नाश करने वाले कमलनेत्र श्रीकृष्णजी ! आप यहाँसे क्रोधी दुर्योधनके पास जाकर उससे ऐसी बातें करना, कि-जिससे मेल होजाय ॥ ३ ॥ यदि तुम उससे धर्म, अर्थ तथा कल्याण भरे वचन कहोगे तो भी वह मूर्ख तुम्हारी बातको नहीं मानेगा, किन्तु अपने भाग्यके ही वशमें रहेगा ॥ ४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा, कि-मैं वहाँ जाकर तुम्हारा और कौरवोंका कल्याण करनेवाली धर्मकी बात कहूँगा, अब मैं राजा धृतराष्ट्रसे मिलनेकी इच्छासे उनके पास जाता हूँ ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! उस समय शरदृतु समाप्त होकर हेमन्त ऋतुका आरम्भ हुआ था और जिस महीनेमें धानोंके मुख पक कर प्रफुल्लित होते हैं ऐसे कार्तिक मासका भी आरम्भ हुआ था, रेवती नक्षत्र था, अन्धकार दूर होकर

प्रतीतानामृषीणामिव वासवः ॥ ८ ॥ कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः । उपतस्थे विवस्वन्तं पावकञ्च जनार्दनः ॥ ९ ॥ ऋषभं पृष्ठ आलभ्य ब्राह्मणानभिवाद्य च । अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा पश्यन् कल्याणमग्रतः ॥ १० ॥ तत् प्रतिज्ञाय वचनं पाण्डवस्य जनार्दनः । शिनेर्नप्तारमासीनमभ्यभाषत सात्यकिम् ॥११॥ रथ आरोप्यतां शंखश्चक्रञ्च गदया सह । उपासङ्गाश्च शक्त्यश्च सर्वप्रहरणानि च ॥१२॥ दुर्योधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सह सौबलः ।न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा ॥ १३ ॥ ततस्तन्मतमाज्ञाय केशवस्य पुरःसराः । प्रसस्रुर्योजयिष्यन्तो रथं चक्रगदाभृतः ॥१४॥ तं दीप्तमिव कालाग्निमाकाशगमिवाशुगम् । सूर्य्यचन्द्रप्रकाशाभ्यां चक्राभ्यां समलंकृतम् ॥१५॥अर्द्धचन्द्रैश्च चन्द्रैश्च मत्स्यैः समृगपक्षिभिः । पुष्पैश्च विविधैश्चित्रं मणि-

---

स्पष्ट प्रातःकाल होगया था, कोमल किरणों वाले सूर्यका उदय हो चुका था, मुहूर्त्त भी मित्र देवता वाला था, उस समय नीरोग, सुख सम्पत्तिमान् और बलवान् श्रीकृष्णजी ऋषियोंकी पढ़ी हुई स्तुतियों को सुनकर जैसे इन्द्र जागता है तैसे ही सत्य आशीर्वाद वाले ब्राह्मणोंकी मङ्गलकारिणी और सत्य आशीर्वादको सूचित करने वाली पवित्र वाणीको सुन कर जागे फिर स्नान करके पवित्र होनेके अनन्तर प्रातःकालके नित्यकर्मको किया, फिर वस्त्र आदि तथा आभूषण आदि धारण करके सुशोभित हुए और सूर्य तथा अग्निकी उपासना करके बैलकी पीठको छुआ, फिर ब्राह्मणादिको प्रणाम करके अग्निदेवकी प्रदक्षिणा करी तथा सामने आई हुई माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन आदि नित्यकर्म किया,तदनन्तर युधिष्ठिर की कही हुई बातको याद करके सात्यकीसे कहने लगे,कि-॥६-११॥ हे सात्यकी ! मेरे रथमें शंख, चक्र, गदा, भाथे, शक्ति आदि सब शस्त्रोंको रख दे ॥ १२॥ क्योंकि-दुर्योधन, कर्ण और शकुनि दुष्टात्मा हैं, शत्रु चाहे कैसा ही निर्बल हो तो भी बलवान् पुरुष उसको उपेक्षा की दृष्टिसे न देखे ॥ १३ ॥ सुदर्शन चक्र और कौमोदकी गदाको धारण करने वाले कृष्णके विचारको जानकर उनके सेवक रथ जोड़ने के लिये दौड़ पड़े ॥ १४ ॥ प्रलयकालकी अग्निकी समान दमकते हुए प्रकाश वाले, पृथ्वीचारी होकर भी आकाशचारीकी समान शीघ्रतासे चलनेवाले, सूर्य और चन्द्रमाकी समान प्रकाश करनेवाले दो पहियोंसे शोभायमान ॥ १५ ॥ अर्धचन्द्र, चन्द्र, मत्स्य और पशु

रत्नैश्च सर्वशः॥१६॥ तरुणादित्यसंकाशं बृहन्तं चारुदर्शनम्। मणिहेमविचित्राङ्गं सुध्वजं सुपताकिनम् ॥ १७ ॥ सूपस्करमनाधृष्यं वैयाघ्रपरिवारणम्। यशोघ्नं प्रत्यमित्राणां यदूनां नन्दिवर्द्धनम् १८ वाजिभिः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः। स्नातैः सम्पादयामासुः सम्पन्नैः सर्वसम्पदा ॥ १९ ॥ महिमानं तु कृष्णस्य भूय एवाभिवर्द्धयन्। सुघोषः पतगेन्द्रेण ध्वजेन युयुजे रथः ॥ २० ॥ तं मेरुशिखरप्रख्यं मेघदुन्दुभिनिःस्वनम्। आरुरोह रथं शौरिर्विमानमिव कामगम् ॥ २१ ॥ ततः सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तमः। पृथिवीं चान्तरिक्षं च रथघोषेण नादयन्२२व्यपोढाभ्रस्ततः कालः क्षणेन समपद्यत।शिवश्चानुववौ वायुः प्रशांतमभवद्रजः ॥ २३ ॥ प्रदक्षिणानुलोमाश्च मंगल्या मृगपक्षिणः। प्रयाणे वासुदेवस्य बभूवुरनुयायिनः ॥ २४ ॥ मंगल्यार्थपदैः शब्दैरन्व-

पक्षियोंके चित्रोंसे चिते हुए, नानाप्रकारके पुष्पोंसे, मणियोंसे और रत्नोंसे सब ओर शोभायमान किये हुए ॥१६॥ तरुण सूर्यकी समान चमकनेवाले, देखनेमें बड़े सुन्दर, मणि और सोनेसे जड़े हुए, सुन्दर ध्वजा और सुन्दर पताकाओं वाले ॥ १७ ॥ सुन्दर सामग्रीसे भरे, जिसको कोई रोक न सके ऐसे, शेरकी खालसे मढ़े, शत्रुओंके यश का नाश करने वाले, यादवोंके आनन्दका बढ़ाने वाले, ॥१८॥ अनुपम और विशाल रथको सब प्रकारके आभूषणोंसे सजा कर सब प्रकारकी गुण सम्पदासे युक्त जो शैब्य, सुग्रीव, मेघ-पुष्प और वलाहक नामके घोड़े थे उनको न्हवाकर और भोजन खिलाकर उस अनुपम रथमें जोत दिया ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णकी महिमाको बढ़ाने वाले उस सुघोष नामवाले रथकी ध्वजा पताका पर पक्षिराज गरुड़ भी आकर बैठ गये २० फिर विमानोंकी समान इच्छानुसार विहार करने वाले पर्वतके शिखरकी समान कान्तिमान् तथा मेघ और नगाड़ेकी समान गम्भीर शब्द वाले उस रथमें श्रीकृष्णजी बैठे ।२१। और पीछेसे सात्यकीको भी उस रथमें बैठालकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी, रथके शब्दसे पृथ्वी और आकाशको शब्दायमान करते हुए हस्तिनापुरको विदा होगये ॥ २२ ॥ उस समय आकाश बादलोंसे स्वच्छ होगया, शुभ शकुन दिखाने वाला वायु अनुकूल होकर चलने लगा और धूलि उड़ना बन्द होगयी ॥ २३ ॥ मङ्गलकारक पशु पक्षी भी क्रमसे श्रीकृष्णकी यात्राके समय उनको दाईं ओरको आकर यात्रा शुभ बताने लगे ॥२४॥ सारस, शतपत्र और हंस मांग-

वर्त्तन्त सर्वशः । सारसाः शतपत्राश्च हंसाश्च मधुसूदनम् ॥ २५ ॥ मन्त्राहुतिमहाहोमैर्हूयमानश्च पावकः । प्रदक्षिणमुखो भूत्वा विधूमः समपद्यत ॥ २६ ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च भूरिद्युम्नो गयः क्रथः । शुक्र-नारदवाल्मीका मरुतः कुशिको भृगुः ॥२७॥ देवा ब्रह्मर्षयश्चैव कृष्णं यदुसुखावहम् । प्रदक्षिणमवर्त्तन्त सहिता वासवानुजम् ॥ २८ ॥ एव-मेतैर्महाभागैर्महर्षिगणसाधुभिः । पूजितः प्रययौ कृष्णः कुरूणां सदनं प्रति । २९। तं प्रयांतमनुप्रायात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ च पांडवौ ॥३०॥ चेकितानश्च विक्रांतो धृष्टकेतुश्च चेदिपः । द्रुपदः काशिराजश्च शिखण्डी च महारथः ॥ ३१ ॥ धृष्ट-द्युम्नः सपुत्रश्च विराटः केकयैः सह । संसाधनार्थं प्रययुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ ३२ ॥ ततोऽनुव्रज्य गोविंदं धर्मराजो युधिष्ठिरः । राज्ञां सकाशे द्युतिमानुवाचेदं वचस्तदा॥३३। यो वै न कामान्न भयान्न लोभान्नार्थकारणात् । अन्यायमनुवर्त्तेत स्थिरबुद्धिरलोलुपः ॥ ३४ ॥ धर्मज्ञो धृतिमान् प्राज्ञः सर्वभूतेषु केशवः । ईश्वरः भूतानां देवदेवः

लिक पदार्थोंकी प्राप्ति कराने वाले शब्द बोल कर चारों दिशाओंमें मधुसूदन श्रीकृष्णकी यात्रामें सफलता बताने लगे ॥ २५ ॥ जिसमें मंत्र पढ़ कर आहुतियोंके द्वारा बड़े बड़े होम किये गये थे ऐसा अग्नि-देव भी अपनी लपटें दक्षिणकी ओरको फैलाता हुआ धुएँसे रहित होगया ॥ २६ ॥ वसिष्ठ, वामदेव, भूरिद्युम्न, गय, क्रथ शुक्र, नारद, मरुत, कुशिक, भृगु आदि ब्रह्मर्षि और देवर्षि इकट्ठे होकर शुभ शकुन के लिये यदुकुलको सुख देनेवाले, इन्द्रके छोटे भ्राता गोविंदकी दाहिनी ओर खड़े हुए ॥ २७-२८ ॥ इस प्रकार इन सब परोपकारी महाभाग महर्षिगणोंने श्रीकृष्णकी पूजा करी तब श्रीकृष्णजी कौरवोंकी राज-धानी हस्तिनापुरको चल दिये ॥ २९ ॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, भीम, माद्रीनन्दन नकुल, सहदेव, महापराक्रमी चेकितान, चेदिराज, धृष्ट-केतु, महारथी द्रुपद, काशिराज, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, केकय और पुत्रों सहित राजा विराट आदि क्षत्रिय अपना काम सिद्ध करनेके लिये कितनी ही दूर तक क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजीको पहुँचानेके लिये उनके पीछे २ गये ॥ ३०—३२ ॥ फिर परमकांति वाले धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, श्रीकृष्णजीके पीछे २ गये जो कृष्ण कामनासे, भय से लोभसे, या किसी भी प्रयोजनसे अन्यायके मार्गमें नहीं जाते हैं, जो स्थिर बुद्धि वाले, चपलतासे रहित, धर्मज्ञ, धीरजधारी, बुद्धिमान,

सनातनः ॥ ३५ ॥ तं सर्वगुणसम्पन्नं श्रीवत्सकृतलक्षणम्। सम्परिष्वज्य कौन्तेयः सन्देष्टुमुपचक्रमे ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिर उवाच। या सा बाल्यात् प्रभृत्यस्मान् पर्यवर्धयताबला। उपवासतपःशीला सदा स्वस्त्ययने रता ॥३७॥ देवतातिथिपूजासु गुरुशुश्रूषणे रता। वत्सला प्रियपुत्रा च प्रियास्माकं जनार्दन ॥ ३८ ॥ सुयोधनभयाद्या नोऽत्रायतामित्रकर्शन। महतो मृत्युसम्बाधादुत्तरन्नौरिवार्णवात् ॥३९॥ अस्मत्कृते च सततं यया दुःखानि माधव। अनुभूतान्यदुःखार्हा तां स्म पृच्छेरनामयम् ॥ ४० ॥ भृशमाश्वासयेश्चैनां पुत्रशोकपरिप्लुताम्। अभिवाद्य स्वजेथास्त्वं पाण्डवान् परिकीर्तयन् ॥ ४१ ॥ ऊढात् प्रभृति दुःखानि श्वशुराणामरिन्दम। निकारानतदर्हा च पश्यन्ती दुःखमश्नुते ॥४२॥ अपि जातु स कालः स्यात् कृष्ण दुःखविपर्ययः। यदाहं मातरं क्लिष्टां सुखं दद्यामरिन्दम ॥४३॥ प्रव्रजन्तोऽनुधावन्तीं कृपणां

सब प्राणियोंके ईश्वर, देवताओंके भी देव, सनातन पुरुष हैं ३३-३५ उन सकल गुणोंसे युक्त, श्रीवत्सके चिन्हवाले श्रीकृष्णको हृदयसे लगा कर राजा युधिष्ठिरने उनसे सब राजाओंके सामने इसप्रकार कहा ३६ राजा युधिष्ठिर बोले, कि-हमारी जिस अबला माताने हमें बालकपन से पाला है, जो सदा व्रत और तपस्यामें तत्पर रहकर हमारा कल्याण करनेमें लगी रहती है ॥ ३७ ॥ जो देवता और अतिथियोंकी पूजामें तथा गुरुजनोंकी सेवा करनेमें लगी रहती है और जो पुत्रोंके ऊपर वत्सलता रखती है वह कुन्ती माता हे कृष्ण ! हमें बड़ी प्यारी है ॥३८॥ हे शत्रुओंका नाश करनेवाले कृष्ण ! जिसने दुर्योधनके भय से हमारी रक्षा की थी और जैसे नौका महासागरसे पार लगाती है तैसे ही जिसने मृत्युरूपी दुःखसे हमारा उद्धार किया था ।३९। और हे माधव! जो हमारी माता दुःख भोगनेके योग्य नहीं है उसने हमारे लिये नित्य दुःख भोगे हैं, उससे तुम हमारी ओरसे कुशल पूछना।४० तथा बेटोंके वियोगके दुःखमें डूबी हुई हमारी माताको भले प्रकारसे धीरज देना तथा मिलते ही हमारा नाम लेकर हमारा प्रणाम कहना।४१ हे शत्रुनाशक कृष्ण ! जो मेरी माता दुःख भोगनेके अयोग्य है वह विवाह होनेके समयसे ही दुःखोंको तथा श्वशुरोंकी ओरसे होनेवाले अपमानोंको देखती हुई दुःख ही भोग रही है ॥ ४२ ॥ हे अरिन्दम कृष्ण ! क्या किसी दिन वह समय आवेगा, कि-दुःखकी दशा बदली होगी और हम दुःख उठानेवाली माताको सुखी कर सकेंगे ॥ ४३ ॥

पुत्रगृद्धिनीम्। रुदतीमुपहायैनामगच्छाम वयं वनम् ॥ ४४ ॥ न नूनं म्रियते दुःखैः सा चेज्जीवति केशव। तथा पुत्राधिभिर्गाढमार्त्ता ह्यानर्त्तसत्कृत ॥ ४५ ॥ अभिवाद्याथ सा कृष्ण त्वया मद्वचनाद्विभो। धृतराष्ट्रश्च कौरव्यो राजानश्च वयोऽधिकाः ॥ ४६ ॥ भीष्मं द्रोणं कृपञ्चैव महाराजश्च वाह्लिकम्। द्रौणिश्च सोमदत्तञ्च सर्वांश्च भरतान् प्रति ४७ विदुरञ्च महाप्राज्ञं कुरूणां मन्त्रधारिणम्। अगाधबुद्धिं धर्मज्ञं स्वजेथा मधुसूदन ॥४८॥ इत्युक्त्वा केशवं तत्र राजमध्ये युधिष्ठिरः। अनुज्ञातो निववृते कृष्णं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ४९ ॥ प्रव्रजन्नेव बीभत्सुः सखायं पुरुषर्षभम्। अब्रवीत् परवीरघ्नं दाशार्हमपराजितम् ॥ ५० ॥ यदस्माकं विभो वृत्तं पुरा वै मंत्रनिश्चये। अर्द्धराज्यस्य गोविंद विदितं सर्वराजसु ॥ ५१ ॥ तच्चेद्दद्यादसंगेन सत्कृत्यानवमन्य च। प्रियं मे

हम जिस समय वनवासके लिये चले थे उससमयहमारी दयालुऔर पुत्रोंके ऊपर प्रेम रखनेवाली माता रोतीर हमारे पीछे दौड़ी थी परंतु हम अपनी रोती हुई माताको छोड़कर वनको चले गये थे ॥ ४४ ॥ हे केशव ! हे आनर्त्तदेशवालोंसे सत्कार पानेवाले कृष्ण ! हमारी माता यदि दुःखोंकी मारी मर न गयी होगी,किंतु जीती होगी तो भी वह पुत्रोंके वियोगकी पीड़ासे बड़ी ही आतुर होगी ॥४५॥ हे विभो मधुसूदन ! तुम मेरे कहनेसे उस हमारी माताको प्रणाम करना तथा कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र और दूसरे वृद्ध अवस्थाके राजाओंको भी हमारी ओरसे प्रणाम करना४६हे मधुसूदन ! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य महाराज वाल्हीक,अश्वत्थामा,सोमदत्त,भरतवंशके सब राजे कौरवोंके मन्त्री महाबुद्धिमान् अगाधज्ञानी, मर्मको जानने वाले विदुर जीको भी मेरी ओरसे आलिङ्गन करना ॥४७-४८॥ धर्मराज युधिष्ठिरने तहाँ राजाओंके मध्यमें श्रीकृष्णजीसे ऐसा कहकर उनकी प्रदक्षिणा करी और उनकी आज्ञा लेकर लौट आये ॥ ४९ ॥ फिर अर्जुन ने मार्गमें चलतेर दाशार्हवंशी, वीर, शत्रुओंका नाश करनेवाले किसी से न जीतेजानेवाले, अपने मित्र; पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीसे कहा, कि५० हे विभो गोविन्द ! पहिले राज्यके विषयकी बातें चलने पर हमारी ओरसे आधे राज्यकी प्रार्थना कीजाय, यह जो निश्चय हुआ था इस बातको सब राजे जानते हैं ॥ ५१ ॥ इस लिये हे महाबाहु कृष्ण ! यदि अब दुर्योधन किसी प्रकारका अपमान किए बिना, आग्रह छोड़कर सत्कारके साथ हमें राज्यका आधा भाग देदेगा तो मुझे अच्छा

स्यान्महाबाहो मुच्येरन् महतो भयात् ॥ ५२ ॥ अतश्चेदन्यथा कर्ता धार्त्तराष्ट्रोऽनुपायवित् । अन्तं नूनं करिष्यामि क्षत्रियाणां जनार्दन ५३ एवमुक्ते पाण्डवेन समहृष्यद् वृकोदरः । मुहुर्मुहुः क्रोधवशात् प्रावेपत च पाण्डवः ॥५४॥ वेपमानश्च कौन्तेयः प्राक्रोशन्महतो रवान् । धनञ्जयवचः श्रुत्वा हर्षोत्सिक्तमना भृशम् ॥५५॥ तस्य तं निनदं श्रुत्वा सम्प्रावेपन्त धन्विनः । वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।५६। इत्युक्त्वा केशवं तत्र तथा चोक्त्वा विनिश्चयम् । अनुज्ञातो निववृते परिष्वज्य जनार्दनम् ॥ ५७ ॥ तेषु राजसु सर्वेषु निवृत्तेषु जनार्दनः । तूर्णमभ्यगमद्धृष्टः शैब्यसुग्रीववाहनः ॥५८॥ ते हया वासुदेवस्य दारुकेण प्रचोदिताः । पन्थानमाचेमुरिव ग्रसमाना इवाम्बरम् ।५९। अथापश्यन्महाबाहुरृषीनध्वनि केशवः । ब्राह्मया श्रिया दीप्यमानान् स्थितानुभयतः पथि॥६०।सोऽवतीर्य रथात् तूर्णमभिवाद्य जनार्दनः।यथावृत्तानृषीन् सर्वानभ्यभाषत पूजयन्६१ कच्चिल्लोकेषु कुशलं कच्चि-

---

लगेगा और वह सब बड़े भारी भयसे छूटजायँगे ॥५२॥ परन्तु राजनीतिके ज्ञानसे शून्य दुर्योधन यदि ऐसा न करके उलटा काम करेगा अर्थात् यदि हमें आधा राज्य नहीं देगा तो हे कृष्ण ! सब क्षत्रियोंका संहार करूँगा ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–अर्जुनके ऐसा कहने पर भीमसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और वह पाण्डव क्रोधके मारे बारंबार काँपने लगा ॥ ५४ ॥ और उस कुन्तीनन्दन भीमसेनने काँपते काँपते बड़ी जोरसे गर्जनाकी, अर्जुनकी उस बातको सुनकर उसके मनमें मानो हर्षका छिड़काव होगया।५५। उसकी गर्जनाको सुनकर धनुषधारी राजे भी काँप उठे और हाथी घोड़े आदि सब वाहन भी मल मूत्र करनेलगे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार अर्जुन श्रीकृष्णजीसे अपना निश्चय कहकर तथा उनकी आज्ञा ले आलिङ्गनकर पीछेको लौटआया ॥५७॥ तिन सब राजाओंके पीछेको लौटआनेपर प्रसन्न हुए श्रीकृष्णजी, शैब्य सुग्रीव नामके घोड़ोंसे जुतेहुए रथमें बैठकर हस्तिनापुरकी ओर को शीघ्रतासे चल दिए ॥ ५८ श्रीकृष्णके सारथी दारुकने उस समय घोड़ोंको ऐसा हाँका, कि—वह मानो मार्गका आचमन किए जाते थे और मानो आकाशको निगले जाते थे, ऐसे वेगसे मार्गको काटने लगे ॥५९॥ मार्गमें महाबाहु श्रीकृष्णने ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान ऋषियोंको मार्गके दोनों ओर खड़ेहुए देखा ॥ ६० ॥ तब तो तुरन्त ही रथमें से नीचे उतर पड़े और फिर वहाँ खड़ेहुए सब ऋषियोंकी पूजा तथा

धर्मः स्वनिष्ठितः । ब्राह्मणानां त्रयो वर्णाः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने॥६२॥ तेभ्यः प्रयुज्य तां पूजां प्रोवाच मधुसूदनः । भगवन्तः क्व संसिद्धाः का वीथी भवतामिह ॥ ६३ ॥ किं वा कार्यं भगवतामहं किं करवाणि वः । केनार्थेनोपसम्प्राप्ता भगवन्तो महीतलम् ॥ ६४ ॥ तमब्रवीज्जामदग्न्य उपेत्य मधुसूदनम् । परिष्वज्य च गोविन्दं सुरासुरपतेः सखा ॥ ६५ ॥ देवर्षयः पुण्यकृतो ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः । राजर्षयश्च दाशार्ह मानयन्तस्तपस्विनः॥ देवासुरस्य द्रष्टारः पुराणस्य महामतेः ॥ ६६ ॥ समेतं पार्थिवं क्षत्रं दिदृक्षन्तश्च सर्वशः । सभासदश्च राजानस्त्वाञ्च सत्यं जनार्दनम् ॥ ६७ ॥ एतन्महत्प्रेक्षणीयं द्रष्टुं गच्छाम केशव । धर्मार्थसहिता वाचः श्रोतुमिच्छाम माधव ॥ ६८ ॥ त्वयोच्यमानाः कुरुषु राजमध्ये परन्तप । भीष्मद्रोणादयश्चैव विदुरश्च

प्रणाम करके उनके साथ बात चीत करते हुए पूछने लगे कि॥ ६१ ॥ सब लोगोंमें कुशल तो है ? सब लोग धर्मका अनुष्ठान तो भले प्रकार करते हैं ? तथा क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तीनों वर्ण ब्राह्मणोंकी आज्ञामें तो चलते हैं? ६२ ऐसा पूछनेके अनन्तर उन का सत्कार करके फिर श्रीकृष्णजीने पूछा, कि-हे सिद्ध पुरुषों ! तुम कहाँ जाते हो ? तुमने इस लोकमें कौनसा मार्ग अङ्गीकार किया है ? ॥ ६३ ॥ हे भगवन् ! आपको इस जगत्में क्या करनेकी इच्छा है ? मैं तुम्हारा कौनसा काम करूँ ? तुम इस पृथ्वी पर किस लिये आये हो ? ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्णजीके ऐसा पूछने पर देवराज और दैत्यराजके मित्र परशुरामजीने श्रीकृष्णजीके पास आकर उनको छातीसे लगाते हुए कहा, कि-॥ ६५ ॥ हे महामते दाशार्हवंशी कृष्ण ! देवासुरोंकी पुरानी कथाको जाननेवाले ये सब पुण्यात्मा देवर्षि, बहुत पढे हुए ब्राह्मण और महातपस्वी तथा सन्मानके योग्य राजर्षि सब दिशाओंसे आकर इकट्ठे हुए क्षत्रिय राजाओंके समूहको देखनेके लिये हस्तिनापुरको जाते हैं, हे जनार्दन ! जहाँ सब सभासद् बहुतसे राजे और सत्यमूर्ति आप हैं वह स्थान सर्वथा देखने योग्य होजाता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, इस लिये हम इस श्रेष्ठ और देखने योग्य वस्तुको देखनेके लिये जाते हैं, हे परन्तपमाधव ! तुम कौरवों की राजसभामें जो धर्म और अर्थसे भरी बातें कहने वाले हो, उनको हम सुनना चाहता, द्रोणाचार्य आदि महात्मा पुरुष, महाबुद्धिमान् विदुरजी और धनुर्धरोंमें सिंह समान आप, इसप्रकार सबलोग सभा

महामतिः ॥ ६९ ॥ त्वञ्च यादवशार्दूल सभायां वै समेष्यथ । तत्र वाक्यानि दिव्यानि तथा तेषां च माधव ॥ ७० ॥ श्रोतुमिच्छाम गोविन्द सत्यानि च हितानि च । आपृष्टोऽसि महाबाहो पुनर्द्रक्ष्यामहे वयम् ॥ ७१ ॥ याह्यविघ्नेन वै वीर द्रक्ष्यामस्त्वां सभागतम् । आसीनमासने दिव्ये बलतेजःसमाहितम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णप्रस्थाने त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रयांतं देवकीपुत्रं परवीरघ्नो दश । महारथा महाबाहुमन्वयुः शस्त्रपाणयः॥१॥पदातीनां सहस्रं च सादिनां च परन्तप । भोज्यञ्च विपुलं राजन् प्रेष्याश्च शतशो परे ॥ २ ॥ जनमेजय उवाच ।कथं प्रयातो दाशार्हो महात्मा मधुसूदनः । कानि वा व्रजतस्तस्य निमित्तानि महौजसः ॥३॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य प्रयाणे यान्यासन्निमित्तानि महात्मनः तानि मे शृणु सर्वाणि दैवान्यौत्पातिकानि च ॥४ ॥ अनभ्रेऽशनिनिर्घोषः सविद्युत् समजायत । अन्वगेव

में इकट्ठे होंगे, हे गोविंद ! हे माधव ! वहाँ आपके और उनके सत्य, हितकारी तथा मनको आनन्द देनेवाले दिव्य वचनोंको सुननेकी हम को इच्छा हुई है, हे महाबाहो कृष्ण ! अब हम आपसे आज्ञा माँगते हैं, आप सिधारिये हम भी सभामें आकर आपसे फिर मिलेंगे और आपका दर्शन करेंगे ॥ ६६—७१ ॥ हे वीर ! आप निर्विघ्न पधारिये, अब हस्तिनापुरमें बड़े भारी बली तेजस्वी आपको हम सभामें दिव्य सिंहासन पर बैठे हुए देखेंगे ॥ ७२ ॥ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ८३

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे शत्रुओंको ताप देने वाले राजन् ! अब महाबाहु देवकीपुत्र कृष्ण हस्तिनापुरको चले, उस समय शत्रुओं का नाश करने वाले दश शस्त्रधारी महारथी वीर, एक हजार पैदल, एक हजार घुड़सवार, बहुतसी भोजनकी सामग्री तथा और सैकड़ों सेवक भी उनके पीछे २ गये थे ॥१-२॥जनमेजयने कहा, कि-महात्मा दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण किस प्रकार हस्तिनापुरकी ओरको गये थे और उन महातेजस्वी कृष्णको जाते समय मार्गमें कैसे २ शकुन हुए थे ? ३ वैशम्पायन कहते हैं कि- उन महात्मा श्रीकृष्णजीको जाते समय जो उत्पात और दैवी शकुन हुए थे उनको मैं कहता हूँ, सुन ।४।यात्रा के समय बिना ही बादलोंके आकाशमें बड़का घोर शब्द होने लगा, बिजलियें चमकने लगीं तथा बिना घनघटाके आकाशमेंसे बड़ाभारी

च पर्ज्जन्यः प्रावर्षद्विघने भृशम् ॥ ५ ॥ प्रत्यगूहुर्महानद्यः प्राङ्मुखाः सिंधुसत्तमाः । विपरीता दिशः सर्वा न प्राज्ञायत किंचन ॥६॥ प्राज्वलन्नग्नयो राजन् पृथिवी समकम्पत । उदपानाश्च कुम्भाश्च प्रासिञ्चन शतशो जलम् ॥ ७ ॥ तमः संवृतमप्यासीत् सर्वं जगदिदं तथा । न दिशो नादिशो राजन् प्राज्ञायन्ते स्म रेणुना॥८॥प्रादुरासीन्महाञ्छब्दः खे शरीरं न दृश्यते । सर्वेषु राजन् देशेषु तदद्भुतमिवाभवत्॥९॥प्रामथ्नाद्धास्तिनपुरं वातो दक्षिणपश्चिमः । आरुजन् गणशो वृक्षान् परुषोऽशनिनिःस्वनः ॥ १० ॥ यत्र यत्र च वार्ष्णेयो वर्त्तते पथि भारत । तत्र तत्र सुखो वायुः सर्वञ्चासीत् प्रदक्षिणम्॥११॥ ववर्ष पुष्पवर्षं च कमलानि च भूरिशः । समश्च पन्था निर्दुःखो व्यपेतकुशकण्टकः॥१२॥ संस्तुतो ब्राह्मणैर्गीर्भिस्तत्र तत्र सहस्रशः । अर्च्यते मधुपर्कैश्च वसुभिश्च वसुप्रदः ॥ १३ ॥ तं किरन्ति महात्मानं वन्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः स्त्रियः

वर्षा होने लगी ॥ ५ ॥ पूर्वदिशाकी ओर वहने वाली छः महानदियें और सातवाँ सिन्ध ये सब उलटे वहने लगे, सब दिशाओंमें ऐसा विपरीत (अन्धेरा) होगया, कि-कुछ सूझा ही नहीं । ६ । हे राजन् ! फिर अग्नियें धकाधक बलने लगीं, भूमि डगमगाने लगी, सैंकड़ों जलाशयोंमेंसे तथा जलसे भरे सैकड़ों घड़ोंमेंसे चारों ओरको जल वहने लगे ॥ ७ ॥ तथा यह सब जगत् अन्धकारसे छागया, हे राजन् ! धूलिके कारणसे यह नहीं मालूम होता था किधर दिशायें हैं, और किधर कोने हैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! आकाशमें तथा और सब ओर भी बड़े २ शब्द होने लगे, परन्तु शब्द करने वालेका शरीर नहीं दीखता था, इसकारण वह दृश्य बड़ा अद्भुत मालूम होता था९ उस समय नैर्ऋत्य कोणमेंसे सायँ सायँ करके चलने वाले पवनने हस्तिनापुरको शिथिल कर डाला, वज्रकी समान शब्द करने वाले तीक्ष्ण पवनने एक झुण्ड बनाकर खड़ेहुए वृक्षोंको तोड़ कर चूरा कर डाला ॥ १० ॥ हे भारत ! वृष्णिवंशी कृष्ण मार्गमें जहाँ २ चलते थे तहाँ २ सुखदायक वायु चलता था और सब शकुन अच्छे होते थे११ आकाशमेंसे फूल वरसते थे,चारों ओर वहुतसे कमल खिलेहुए दीखते थे, मार्गमें भी कुश और काँटोंसे रहित समतल और सुखदायक प्रदेश आता था ॥१२॥ मार्गमें जहाँ तहाँ सहस्रों ब्राह्मण धन देनेवाले श्रीकृष्णजीकी मङ्गलमयी वाणियोंसे स्तुति करते थे, मधुपर्क तथा अनेकों सुंदर पदार्थोंसे उनका सत्कार करते थे ॥ १३ ॥ स्त्रियोंने भी

पथि समागम्य सर्वभूतहिते रतम् ॥ १४ ॥ सशालिभवनं रम्यं सर्वशस्यसमान्वितम् । सुखं परमधर्मिष्ठमभ्यगाद्भरतर्षभ ॥ १५ ॥ पश्यन् बहुपशून् ग्रामान् रम्यान् हृदयतोषणान् । पुराणि च व्यतिक्रामन् राष्ट्राणि विविधानि च ॥१६॥ नित्यं हृष्टाः सुमनसो भारतैरभिरक्षिताः नोद्विग्नाः परचक्राणां व्यसनानामकोविदाः ॥ १७ ॥ उपप्लव्यादथागम्य जनः पुरनिवासिनः पथ्यतिष्ठन्त सहिता विष्वक्सेनदिदृक्षया १८ ते तु सर्वे समायान्तमग्निमिद्धमिव प्रभुम् । अर्चयामासुरर्च्चार्हं देशातिथिमुपस्थितम् ॥ १९ ॥ वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा । प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति ॥ २० ॥ अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि । रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ॥ २१ ॥ दारुकोऽपि हयान्मुक्त्वा परिचर्य च शास्त्रतः । मुमोच

मार्गमें आकर, सब प्राणियोंको हित करनेमें तत्पर उन महात्मा श्रीकृष्णजीके ऊपर वनमें उत्पन्न हुए सुगन्धित फूलोंको वर्षा की ॥१४॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इस प्रकार मार्गमें सत्कार पाते हुए श्रीकृष्णजी अनेकों प्रकारके पशुओंको और हृदयको संतोष देनेवाले रमणीय ग्रामोंको देखते हुए तथा अनेकों नगरोंको और देशोंको लाँघते हुए सब प्रकारके अन्नोंसे भरपूर, परम धर्मात्मा पुरुषोंसे बसे हुए, सुखकारी रमणीय शालीभवन नामके स्थानमें आपहुँचे ॥ १५ ॥१६ ॥ तहाँके लोग सदा प्रसन्न मन रहनेवाले, और आनन्दी थे, भरतवंशी राजाओंकी रक्षामें रहनेके कारणसे वह परदेशी राजाओंके दुःखोंसे अनजान और प्रसन्न दीखते थे ॥ १७ । वह सब लोग श्रीकृष्णका दर्शन करनेकी इच्छासे गाँवके बाहर निकलकर पंक्तियें बाँधकर मार्ग में खड़े होगये थे ॥ १८ ॥ प्रज्वलित हुए अग्निकी समान प्रकाशमान और पूजा करने योग्य श्रीकृष्ण हमारे अतिथि बन कर आये हैं ऐसा विचार कर उन ग्रामवासियोंने आते हुए प्रभुकी पूजा करी ॥ १९ ॥ वीर शत्रुओंका संहार करने वाले श्रीकृष्णजी, सूर्यकी किरणोंके चारों ओर फैल जाने पर तथा आकाशके लाल २ होजानेके समय वृकस्थल ग्राममें पहुँचे ॥ २० ॥ और रथमेंसे उतर कर शीघ्रताले नियमके अनुसार शौच किया और सारथीको रथ छोड़ देनेकी आज्ञा देकर अपने आप सन्ध्यावन्दन करनेको बैठ गए ॥ २१ ॥ दारुकने भी घोड़ों को छोड़ कर शालिहोत्रमें लिखी रीतिसे उनकी सेवा की अर्थात् उनकी लगाम जोत आदि सब खोल दिया और उनको चुगनेके लिये

सर्वं योक्त्रादि मुक्त्वा चैतानवासृजत् ॥ २२ ॥ अभ्यतीत्य तु तत्सर्वमुवाच मधुसूदनः । युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम् ।२३। तस्य तन्मतमाज्ञाय चक्रुरावसथं नराः । क्षणेन चान्नपानानि गुणवन्ति समार्जयन् ॥ २४ ॥ तस्मिन् ग्रामे प्रधानास्तु य आसन्ब्राह्मणा नृप । आर्याः कुलीना ह्रीमन्तो ब्राह्मीं वृत्तिमनुष्ठिताः ॥ २५ ॥ तेऽभिगम्य महात्मानं हृषीकेशमरिन्दमम् । पूजां चक्रुर्यथान्यायमाशीर्मङ्गलसंयुताम् ॥ २६ ॥ ते पूजयित्वा दाशार्हं सर्वलोकेषु पूजितम् । न्यवेदयन्त वेश्मानि रत्नवन्ति महात्मने ॥ २७ ॥ तान् प्रभुः कृतमित्युक्त्वा सत्कृत्य च यथार्हतः । अभ्येत्य चैषां वेश्मानि पुनरायात् सहैव तैः २८ सुमृष्टं भोजयित्वा च ब्राह्मणांस्तत्र केशवः । भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत्तां क्षपां सुखम् ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णप्रयाणे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

वैशम्पायन उवाच । तथा दूतैः समाज्ञाय प्रयान्तं मधुसूदनम् ।

छोड़ दिया ॥ २२ ॥ मधुसूदन कृष्णने भी सब नित्यकर्मसे निवट कर अपना सत्कार करनेके लिए इकट्ठे हुए वृकस्थलके मनुष्योंसे कहा, कि—हम युधिष्ठिरके कामके लिए आये हैं और एक रात यहाँ ठहरेंगे ॥ २३॥ उनकी ऐसी इच्छाको जानकर तहाँके मनुष्योंने उनके ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया और जरा देरमें बड़ी उत्तम २ खान पान की सामग्रियें लाकर इकट्ठी करदीं ॥ २४ ॥ हे राजन ! इसके अनन्तर उस ग्राममें जो श्रेष्ठ लज्जाशील कुलीन और ब्रह्मवृत्तिसे निर्वाह करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, उन्होंने आशीर्वाद दिया तथा माङ्गलिक वचनोंसे उनकी यथायोग्य पूजा करी ॥ २५ ॥ २६ ॥ सब लोकोंमें पूजनीय, दाशार्हवंशी श्रीकृष्णकी पूजा करनेके अनन्तर उन्होंने अपने २ रत्नोंसे जड़े हुए सुन्दर घरोंको,पधार कर देखनेका महात्मा श्रीकृष्णजीसे निवेदन किया ॥ २७ ॥ प्रभु श्रीकृष्णने उनके कहनेको मानकर योग्यताके अनुसार उनका सन्मान किया, फिर उनके घर गए तथा फिर उनके साथ ही अपने ठहरनेके स्थान पर लौट आये२८ तहाँ ब्राह्मणोंको बड़े स्वादु मिष्टान्न जिमाकर तथा उन सब आगन्तकोंके साथ आप भी भोजन करके उस रातको तहाँ बड़े सुखसे रहे ॥ २९ ॥ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजा जनमेजय ! दूतोंके द्वारा इस

धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्भीष्ममर्चयित्वा महाभुजम् ॥ १ ॥ द्रोणञ्च संजयञ्चैव विदुरञ्च महामतिम् । दुर्योधनं सहामात्यं हृष्टरोमाब्रवीदिदम् ॥ २ ॥ अद्भुतं महदाश्चर्यं श्रूयते कुरुनन्दन । स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च कथयन्ति गृहे गृहे ॥ ३ ॥ सत्कृत्याचक्षते चान्ये तथैवान्ये समागताः । पृथग्वादाश्च वर्त्तन्ते चत्वरेषु सभासु च ॥ ४ ॥ उपयास्यति दाशार्हः पाण्डवार्थे पराक्रमी । स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः ॥ ५ ॥ तस्मिन् हि यात्रा लोकस्य भूतानामीश्वरो हि सः । तस्मिन् धृतिश्च वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे ॥ ६ ॥ स मान्यतां नरश्रेष्ठः स हि धर्मः सनातनः । पूजितो हि सुखाय स्यादसुखः स्यादपूजितः ॥ ७ ॥ स चेत्तुष्यति दाशार्ह उपचारैररिंदमः । कृत्स्नान् सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥ ८ ॥ तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परन्तप । सभाः पथि विधीयन्तां सर्वकामसमन्विताः ॥ ९ ॥ यथा प्रीतिर्महाबाहो त्वयि जायेत

प्रकार आते हुए मधुसूदन कृष्णका समाचार पाकर धृतराष्ट्रके रोमांच खड़े होगये और उसने बड़े आदरके साथ महाभुज भीष्मको द्रोणाचार्य, सञ्जय, परमबुद्धिमान् विदुर, दुर्योधन और उसके मंत्रियों को बुलवाकर इसप्रकार कहा, कि— ॥ १-२ ॥ हे कुरुनन्दन ! एक बात बड़े अचरजकी सुननेमें आयी है, घर२ स्त्रियें बालक और बूढ़े कहते हैं, कि— ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे सन्धि करानेको हस्तिनापुरको आ रहे हैं । कोई उनका सत्कार करनेके लिये उनके विषय की बातें करते हैं, कितने ही उनसे मिलनेके लिए इकट्ठे होरहे हैं, चौराहोंमें, बैठकोंमें अनेकों प्रकारकी बातें होरही हैं ॥ ४ ॥ पांडवोंके लिए यहाँ आनेवाले वह पराक्रमी मधुसूदन कृष्ण हम सबोंके मानने योग्य और पूजने योग्य हैं ॥ ५ ॥ सब लोगोंके व्यवहार उनके आधार से चलते हैं, क्यों कि—वह प्राणियोंके ईश्वर हैं, उन श्रीकृष्णमें धीरज, पराक्रम, बुद्धि और वीरताका बल है ॥ ६ ॥ वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ महात्मा परममान्य हैं, वह निःसन्देह सनातन-धर्मरूप हैं, उनकी पूजा करने वाला सुखी और न करनेवाला दुःखी होता है ॥ ७ ॥ दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण भगवान् यदि हमारे सत्कारसे प्रसन्न होजावेंगे तो हम सब राजाओंके सामने उनसे अपने सब प्रयोजनोंको पाजायेंगे ॥ ८ ॥ इस कारण हे शत्रुओंको दुःख देनेवाले बेटा दुर्योधन ! आज ही उनके सत्कारके लिए सब प्रकारका प्रबंध करो मार्गमें सब आवश्यकताओंके पूरी करनेवाली मनोहर सभायें (ठहरनेके स्थान) बनवाओ ॥ ९ ॥ हे

तस्य च । तथा कुरुष्व गांधारे कथं वा भीष्म मन्यसे ॥ १० ॥ ततो भीष्मादयः सर्वे धृतराष्ट्रं जनाधिपम् । ऊचुः परममित्येवं पूजयन्तोऽस्य तद्वचः ॥ ११ तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा । सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥ ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः । सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः ॥ १३ ॥ आसनानि विचित्राणि युक्तानि विविधैर्गुणैः । स्त्रियो गन्धानलंकारान् सूक्ष्माणि वसनानि च ॥ १४ ॥ गुणवन्त्यन्नपानानि भोज्यानि विविधानि च । माल्यानि च सुगन्धीनि तानि राजा ददौ ततः ॥ १५ ॥ विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले । विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम् ॥१६ ॥ एतद्विधाय वै सर्वं देवार्हमतिमानुषम् । आचख्यौ धृतराष्ट्राय राजा दुर्योधनस्तदा ॥ १७ ॥ ताः सभाः केशवः सर्वा रत्नानि विविधानि च । असमीक्ष्यैव दाशार्ह उपायात्कुरुसद्म तत् ॥ १८ ॥

महाबाहु दुर्योधन! ऐसा कर कि-जिसमें श्रीकृष्ण तुझसे प्रेम करनेलगें और भीष्मजी ! इस विषयमें आपका क्या विचार है? ।१०।उस समय भीष्म आदि सब राजा धृतराष्ट्रकी इस बातकी सराहना करते हुए कहने लगे, कि—आपकी संमति बहुत अच्छी है । ११ । उन भीष्म पितामह आदिकी संमतिको जानकर उससमय राजा दुर्योधनने सुंदर २ ठहरनेके भवन बनवानेका आरम्भ कर दिया ॥१२॥ तदनन्तर दुर्योधनके पुरुषोंने देश देशके सुन्दर स्थानों पर सब प्रकारके उत्तम पदार्थोंसे भरे हुए अनेकों ठहरनेके स्थान बनवा दिये ।१३। तदनंतर राजा दुर्योधनने उन सब स्थानोंको सजानेके लिए अनेकों प्रकारके सुखदायक गुणोंसे युक्त विचित्र आसन (बिस्तर) नेत्रोंको आनन्द देने वाली स्त्रियें, उत्तम सुगन्धियें, उत्तम गहने, सूक्ष्म वस्त्र, खाने पीनेके अनेकों प्रकारके,स्वादिष्ट पदार्थ,तथा सुगन्धित फूलमालायें भेज दीं१४।१५कुरुवंशी राजा दुर्योधनने मार्गमें जहाँ तहाँ ऐसे भवन बनवा दिए थे, तो भी वृकस्थल नामके ग्राममें श्रीकृष्णजीके ठहरनेके लिए विशेष कर उत्तम पदार्थोंसे सजा हुआ एक बड़ा मनोहर सभाभवन बनवाया गया था ।१६। इस प्रकार राजा दुर्योधनने देवताओंके योग्य स्वागतकी अनेकों अलौकिक तयारियें करालीं तब राजा धृतराष्ट्रको सूचित कर दिया । १७ । दाशार्हवंशी केशव इस प्रकारके सभा भवन और नाना प्रकारके उत्तम पदार्थोंकी ओरको दृष्टि भी न करके कुरुराज धृतराष्ट्रके राजभवनको ही चलेगये१८पिचासीवाँ अध्यायसमाप्त

धृतराष्ट्र उवाच । उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपयातो जनार्दनः । वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति ।१। आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम् । महामना महावीर्यो महासत्वो जनार्दनः ॥ २ ॥ स्फीतस्य वृष्णिराष्ट्रस्य भर्त्ता गोप्ता च माधवः । त्रयाणामपि लोकानां भगवान् प्रपितामहः ॥ ३ ॥ वृष्ण्यन्धकाः सुमनसो यस्य प्रज्ञामुपासते आदित्या वसवो रुद्रा यथा बुद्धिं बृहस्पतेः ॥ ४ ॥ तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने । प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तां मे कथयतः शृणु ५ एकवर्णैः सुकल्पाङ्गैर्वाल्हिजातैर्हयोत्तमैः । चतुर्युक्तान् रथांस्तस्मै रौक्मान् दास्यामि षोडश ॥ ६ ॥ नित्यप्रभिन्नान्मातङ्गानीषादन्तान् प्रहारिणः । अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव ॥ ७ ॥ दासीनामप्रजातानां शुभानां रुक्मवर्च्चसाम् । शतमस्मै प्रदास्यामि दासानामपि तावतः ॥ ८ ॥ आविकञ्च सुखस्पर्शं पार्वतीयैरुपाहृतम् । तदप्यस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाष्ट च ॥ ९ ॥ अजिनानां सहस्राणि

राजा धृतराष्ट्रने श्रीकृष्णजीके आनेका समाचार पाकर विदुरजी से कहा, कि-हे विदुर ! आज श्रीकृष्णने वृकस्थलमें निवास किया है, वह प्रातःकाल ही यहाँ आकर पहुचेंगे । १ । श्रीकृष्ण आहुकोंके अधिपति हैं, सकल सात्वतोंके अगुआ है, वह बड़े उदारचित्त, महावीर और बड़े बली हैं २ वह माधव बड़े भारी यादवोंके देशके पोषक और रक्षक हैं, अधिक क्या कहूँ वह भगवान् तीनों लोकोंके रक्षक तथा ब्रह्माजीके भी पिता हैं । ३ । जैसे आदित्य, वसु और रुद्र बृहस्पतिजीकी बुद्धिके अनुसार वर्ताव करते हैं तैसे ही शुद्ध मनवाले वृष्णि और अन्धक आदि यादव श्रीकृष्णकी संमतिमें चलते हैं ।४। हे धर्मज्ञ ! उन दाशार्हवंशी महात्मा श्रीकृष्णका मैं तुम्हारे सामने जो पूजन करूँगा, उसको तुमसे कहता हूँ, सुनो ५ एक रङ्गके दृढ़ शरीर वाले, वाल्हीक देशमें उत्पन्न हुये उत्तम चार२ घोड़ोंसे जुतेहुए सोनेके सोलह रथ मैं श्रीकृष्णको भेट करूँगा । ६ । और हे कुरुवंशी विदुर! नित्य मदको टपकानेवाले, हलके अग्रभागकी समान लम्बे दाँतोंवाले तथा जिनमें हरएकके साथ आठ२ सेवक हैं ऐसे आठ मतवाले हाथी भेट करूँगा ।७। उन कृष्णको, जिनके अभी सन्तानें नहीं हुई हैं सुवर्ण की समान दमकते शरीरवाली उत्तम एकसौ दासियें तथा इतने ही दास दूँगा ॥ ८ ॥ जो पहाड़ी राजाओंने मुझे भेटमें दिये थे और जिन के कोमल शरीरों पर हाथ फेरनेमें बड़ा ही सुख मालूम होता है ऐसे

चीनादेशोद्भवानि च । तान्यप्यस्मै प्रदास्यामि यावदर्हति केशवः १०
दिवा रात्रौ च भात्येषः सुतेजा विमलो मणिः । तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमर्हति हि केशवः ॥ ११ एकेनाभिपतत्यह्ना योजनानि चतुर्दश । यानमश्वतरीयुक्तं दास्ये तस्मै तदप्यहम् ॥१२॥ यावन्ति वाहनान्यस्य यावंतः पुरुषाश्च ते। ततोऽष्टगुणमप्यस्मै भोज्यं दास्याम्यहं सदा१३मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते । प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः ॥ १४ ॥ स्वलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः । वार-मुख्या महाभागं प्रत्युद्यास्यन्ति केशवम् ॥१५॥ नगरादपि याः काश्चिद् गमिष्यन्ति जनार्दनम् । द्रष्टुं कन्याश्च कल्याणयस्ताश्च यास्यन्त्यना-वृताः ॥ १६ ॥ सस्त्रीपुरुषबालश्च नगरं मधुसूदनम् । उदीक्षतां महा-त्मानं भानुमन्तमिव प्रजाः ॥१७॥ महाध्वजपताकाश्च क्रियंतां सर्वतो दिशः । जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चान्वशात्॥१८॥ दुशा-सनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद्वरम् । तदद्य क्रियतां क्षिप्रं सुसंमृष्टमलं-

---

अठारह हजार मेंढ़े श्रीकृष्णको भेट करूँगा ॥ ९ ॥ तथा चीन देशमें उत्पन्न हुए हिरनोंकी जो एक हजार मृगछाला हैं वह भी उनको दूँगा, क्योंकि-पहिले कृष्ण ही उनके पानेके योग्य हैं ॥ १० ॥ यह जो सुंदर तेज वाला निर्मल मणि रात दिन प्रकाश किया करता है, वह भी उनको ही दूँगा, क्योंकि-इसके भी योग्य केशव ही हैं ॥११॥ जो एक ही दिनमें चौदह योजन पहुँच जाता है ऐसा जो खच्चरियोंसे जुतने वाला रथ मेरे पास है यह भी उनको ही दूँगा ॥ १२ ॥ तथा उन कृष्णके साथ जितने वाहन (सवारियें) और जितने पुरुष होंगे प्रतिदिन उनको आठ गुणा भोजनका सामान दिया करूँगा ॥ १३ ॥ दुर्योधनको छोड़कर सजे हुए मेरे सब पुत्र और पोते दमकते हुए रथों में बैठ कर श्रीकृष्णकी अगवानी करनेके लिये जायँगे ॥ १४ ॥ तथा एक सहस्र मुख्य २ वाराङ्गनायें शृङ्गार करके माङ्गलिकरूपसे पैरों २ चल कर महाभाग केशवके सन्मुख जायँगी ॥१५॥ नगरमेंसे जो कोई कन्यायें भी श्रीकृष्णका दर्शन करनेको जायँगी वह भी विना परदेके ही जायँगी ॥ १६ ॥ जैसे सब लोग सूर्यका दर्शन करते हैं तैसे ही मेरे नगरकी स्त्रियें, बालक और बूढ़े भी आनन्दसे महाभाग मधुसूदनका दर्शन करें॥१७॥सब दिशाओंमें बड़ी२ ध्वजा और पताकायें लगादो और श्रीकृष्ण जिस मार्गसे आनेवाले हों उस मार्गको झाड़ बुहारकर छिड़काव करादो ऐसी आज्ञा दी ॥ १८॥ तथा अपने सेवकोंसे कहा

कृतम् ॥१९॥ एतद्धि रुचिराकारैः प्रासादैरुपशोभितम्। शिवञ्च रमणीयञ्च सर्वर्तु सुमहाधनम् ॥ २० ॥ सर्वमस्मिन् गृहे रत्नं मम दुर्योधनस्य च। यद्यदर्हति वार्ष्णेयस्तत्तद्देयमसंशयम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

विदुर उवाच। राजन् बहुमतश्चासि त्रैलोक्यस्यापि सत्तमः। सम्भावितश्च लोकस्य सम्मतश्चासि भारत ॥१॥ यत्त्वमेवं गते ब्रूयाः पश्चिमे वयसि स्थितः। शास्त्राद्वा सुप्रतर्काद्वा सुस्थिरः स्थविरो ह्यसि ॥२॥ लेखा शशिनि भाः सूर्ये महोर्मिरिव सागरे। धर्मस्त्वयि तथा राजन्निति व्यवसिताः प्रजाः ॥ ३ ॥ सदैव भाविता लोका गुणौघैस्तव पार्थिव। गुणानां रक्षणं नित्यं प्रयतस्व सबान्धवः ॥ ४ ॥ आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद्बहुधा नशः राजन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च सुहृदश्चैव सुप्रियान् ॥५

कि—देखो, दुःशासनका जो स्थान दुर्योधनके भवनसे अच्छा है, आज उसको शीघ्र ही पुतवाकर खूब सजवादो ॥ १९ ॥ वह भवन मनोहर आकारके महलोंसे (कमरोंसे) शोभायमान है, बड़ा आराम देने वाला और मनको प्रसन्न करने वाला है, उसमें एक ही समय सब ऋतुओंको आनन्द मिलता है तथा उसमें बहुमूल्य रत्न जड़ेहुए हैं ॥ २० ॥ मेरे और दुर्योधनके जो उत्तम २ रत्नरूप पदार्थ हैं वह सब इस भवनमें रक्खो, उनमेंसे जो२ श्रीकृष्णके योग्य हों वह उनको अवश्य ही देदेना ॥ २१ ॥ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥

विदुरजीने कहा, कि—हे भरतवंशी राजा धृतराष्ट्र ! आप तीनों लोकोंमें बड़े हो मान्य और उत्तम पुरुष माने जाते हो, लोकोंमें प्रतिष्ठित तथा संमत गिने जाते हो ॥१॥ तुम पिछली (वृद्ध) अवस्थामें पहुँचे हुए हो, ऐसे समय तुम जो शास्त्रज्ञानसे अथवा उत्तम युक्तिसे यह बात कहते हो, इससे प्रतीत होता है, कि—हे राजन् ! स्थिर बुद्धि वाले और वृद्ध हो ॥ २ ॥ हे राजन् ! जैसे चन्द्रमामें कला रहती है, जैसे सूर्यमें प्रभा रहती है और जैसे समुद्रमें बड़ी २ तरङ्गें रहती हैं तैसे ही आपके विषें धर्म रहता है, यह सब प्रजाओंका निश्चय है ३ हे राजन् ! तुम्हारे अनेकों गुणोंसे लोग सदा ही तुम्हारे ऊपर प्रसन्न रहते हैं, इस लिये तुम अपने भाई बन्धुओं सहित सदा उन गुणोंकी रक्षा करनेका उद्योग करो ॥ ४ ॥ हे राजन् धृतराष्ट्र ! मुझे आपसे इतना ही कहना है, कि—तुम सरलता रक्खो और मूर्खताके कारण

यत्त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु। एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चार्हति ॥ ६ ॥ न तु त्वं धर्ममुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात्। एतद्दित्ससि कृष्णाय सत्येनात्मानमालभे ७ मायैषा सत्यमेवैतच्छद्मैतद्भूरिदक्षिण। जानामि त्वन्मतं राजन् गूढं बाह्येन कर्मणा ॥ ८ ॥ पंच पंचैव लिप्सन्ति ग्रामकान् पांडवाः नृपान च दित्ससि तेभ्यस्तांस्तच्चमं न करिष्यसि ॥ ९ ॥ अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं जिहीर्षसि। अनेन चाप्युपायेन पाण्डवेभ्यो विभेत्स्यसि ॥ १० ॥ न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया। अन्यो धनञ्जयात् कर्त्तुमेतत्तत्त्वं ब्रवीमि ते ॥११॥ वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदास्य दृढभक्तिताम्। अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनञ्जयम् ॥ १२ ॥ अन्यत् कुम्भादपां पूर्णादन्यत् पादावसेचनात्। अन्यत्कुशलसम्प्रश्नान्नैवेक्ष्यति जनार्दनः ॥ १३ ॥ यत्त्वस्य

से तुम अपना, अपने पुत्रोंका, पौत्रोंका तथा अपने प्यारे संबन्धियोंका नाश न करो ॥ ५ ॥ हे राजन्! तुम अतिथिरूपसे आयेहुए श्रीकृष्ण जीको जो बहुतसा धन देना चाहते हो, यह ठीक है, श्रीकृष्ण तो यह और दूसरे पदार्थ तो क्या, सब पृथ्वीके भी लेनेके योग्य हैं। ६। मैं सत्यभावसे आत्माकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि—तुम धर्म समझ कर अथवा श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेकी इच्छासे उनको यह भेट देना नहीं चाहते हो ॥ ७ ॥ किन्तु हे बहुतसी दक्षिणा देने वाले राजन्! यह तुम्हारी माया है और धोखादेही है, क्योंकि—तुम्हारी बाहरी करतूतसे मैं तुम्हारे हृदयके भावको समझ गया हूँ ॥ ८ ॥ हे राजन्! पाँचों पाण्डव पाँच ही ग्राम लेना चाहते हैं, परन्तु यदि तुम उनको पाँच ग्राम नहीं दोगे तो श्रीकृष्ण कभी भी सन्धि नहीं करेंगे ॥ ९ ॥ तुम धन देकर महाबाहु श्रीकृष्णको अपनी ओरको करना चाहते हो और इस उपायसे उनको पाण्डवोंसे तोड़ना चाहते हो ॥ १० ॥ मैं तुमसे यह तत्त्व कहे देता हूँ, कि—तुम धन देकर उद्योग करके वा पाण्डवोंकी निन्दा करके श्रीकृष्णको अर्जुनसे जुदा नहीं कर सकोगे ॥११॥ मैं श्रीकृष्णकी महिमाको और उनका पांडवों के ऊपर जैसा अटल प्रेम है उसको भी जानता हूँ, वह अर्जुनको अपने प्राणोंकी समान मानते हैं, इस लिये उसको छोड़ ही नहीं सकते॥१२॥ जलसे भरा घड़ा पैर धोनेको जल और कुशल प्रश्नके सिवाय तुम्हारे और पदार्थोंकी ओरको श्रीकृष्ण देखेंगे भी नहीं ॥ १३ ॥ तथापि हे राजन्! सन्मानके योग्य इन महात्मा श्रीकृष्णको अतिथिसत्कार प्यारा

प्रियमाशिष्यं मानार्हस्य महात्मनः। तदस्मै क्रियतां राजन् मानो-र्होऽसौ जनार्दनः ॥ १४ ॥ आशंसमानः कल्याणं कुरूनभ्येति केशवः। येनैव राजन्नर्थेन तदेवास्मा उपाकुरु ॥ १५ ॥ शममिच्छति दाशार्ह-स्तव दुर्योधनस्य च। पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु ॥१६॥ पितासि राजन् पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे। वर्त्तस्व पितृवत्तेषु वर्त्तन्ते ते हि पुत्रवत् ॥ १७ ॥　　ॐ　　ॐ　　ॐ　　ॐ　　ॐ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुरवाक्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

दुर्योधन उवाच। यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत् सत्यमुच्यते। अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान् प्रति जनार्दनः ॥ १ ॥ यत्तत्सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने। अनेकरूपं राजेन्द्र न तद्देयं कदाचन ॥ २ ॥ देशः कालस्तथा युक्तो न हि नार्हति केशवः। मंस्यत्यधोक्षजो राजन् भया-दर्चति मामिति ॥ ३ ॥ अवमानश्च यत्र स्यात् क्षत्रियस्य विशाम्पते।

है, वह अतिथिसत्कार उनका अवश्य करो, क्योंकि-श्रीकृष्ण सन्मान करनेके पात्र हैं ॥ १४ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण दोनों ओरका कल्याण चाहते हुए कौरवोंके पास जिस कामके लिये आरहे हैं, उनके उस कामको तुम पूरा करदो ॥ १५ ॥ हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण तुमसे और दुर्योधनसे पाण्डवोंकी सन्धि कराना चाहते हैं तुम उनकी इस बात को मानलो ॥१६॥ हे राजन्! तुम पिता हो और पाण्डव पुत्र हैं तुम वृद्ध हो और पाण्डव तुम्हारे बालक हैं देखो वह तुम्हारे साथ पुत्रके सा वर्त्ताव करते हैं तो तुमभी उनके साथ पिताकेसा वर्त्ताव करो १७ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥　　ॐ　　ॐ　　ॐ　　ॐ

दुर्योधनने कहा, कि-हे पिताजी! विदुरजीने श्रीकृष्णजीके विषय में जो बात कही है वह ठीक कही है, वास्तवमें श्रीकृष्ण पाण्डवोंके ऊपर प्रेम करते हैं और उनको पाण्डवोंसे तोड़कर अपनेपक्षमें करना बड़ा कठिन है ॥ १ ॥ इसलिये हे राजेन्द्र! तुमने श्रीकृष्णका सत्कार करनेके लिये जो अनेकों प्रकारकी वस्तुएँ और धन भेटमें देनेका विचार किया है वह उनको कभी नहीं देनाचाहिये॥२॥श्रीकृष्ण आदरसत्कार के योग्य नहीं हैं यह बात नहीं है, किन्तु तो भी इस समयका देश काल भेट अर्पण करनेके योग्य नहीं है, क्योंकि-हे राजन्! भेट देनेसे श्रीकृष्ण समझेंगे, कि-वह भयके मारे मेरा सत्कार करते हैं ३ हे राजन्! जिसमें क्षत्रियका अपमान हो ऐसा काम बुद्धिमान् क्षत्रिय

न तत् कुर्याद् बुधः कार्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ४ ॥ स हि पूज्यतमो लोके कृष्णः पृथुललोचनः । त्रयाणामपि लोकानां विदितं मम सर्वथा ॥ ५ ॥ न तु तस्मै प्रदेयं स्यात् तथा कार्यगतिः प्रभो । विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात् ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भीष्मः कुरुपितामहः । वैचित्रवीर्यं राजानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ सत्कृतोऽसत्कृतो वापि न क्रुध्येत जनार्दनः । नालमेनमवज्ञातुं नावक्षेपो हि केशवः ॥ ८ ॥ यत्तु कार्यं महाबाहो मनसा कार्यतां गतम् । सर्वोपायैर्न तच्छक्यं केनचित् कर्तुमन्यथा ॥ ९ ॥ स यद् ब्रूयान्महाबाहुस्तत्कार्यमविशंकया । वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः ॥ १० ॥ धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः । तस्मिन् वाच्याः प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह ॥ ११ ॥ दुर्योधन उवाच । न पर्यायोऽस्ति यद्राजन् श्रियं निष्केवलामहम् । तैः

को कभी नहीं करना चाहिये, यह मेरा निश्चित विचार है ॥४॥ वह विशालनेत्र श्रीकृष्ण अवश्य ही जगत्में तीनों ही लोकोंके परम पूज्य हैं, इस बातको मैं सर्वथा जानता हूँ ॥५॥ परन्तु हे प्रभो ! इस समय कामका जो ढङ्ग चलरहा है वह यही बताता है, कि श्रीकृष्णको कुछ भी भेट न दीजाय, युद्धका आरम्भ तो हो ही गया अब यह विना संग्रामके अर्थात् कृष्णका सत्कार करनेसे शान्त नहीं होसकता ॥६॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय ! दुर्योधनकी इस बातको सुनकर कौरवोंके पितामह भीष्मजीने विचित्रवीर्यके पुत्र राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार कहा, कि-॥ ७ ॥ श्रीकृष्णका सत्कार किया जाय चाहे न किया जाय; इससे श्रीकृष्णको क्रोध नहीं आवेगा, परन्तु तुममें उनका तिरस्कार करनेकी शक्ति नहीं है, इसलिये तुम्हें उनका अपमान कदापि नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ हे महाबाहो ! उन्होंने जो काम अपने मनमें ठानलिया है, उसको कोई अपने सकल उपायोंसे भी नहीं पलटसकता ॥९॥ इसलिये महाबाहु श्रीकृष्ण तुमसे जो कुछ कहें उसको तुम निःशङ्क होकर करना, हे दुर्योधन ! तू श्रीकृष्णरूपी तीर्थके द्वारा पाण्डवोंके साथ सन्धि करनेका उद्योग कर१० श्रीकृष्ण धर्मात्मा हैं, इसलिये वह धर्मकी और व्यवहारकी ही बात कहेंगे, तुम्हें और तुम्हारे संबन्धियोंको उनके साथ प्रिय बातें करनी चाहियें । ११ । दुर्योधनने कहा, कि-हे पितामह ! जबतक मेरे शरीर में प्राण हैं तब तक मुझे यह उचित नहीं नहीं मालूम होता, कि-इस

सहैताभुपाश्नीयां यावज्जीवं पितामह ॥ १२ ॥ इदन्तु सुमहत् कार्यं शृणु मे यत् समर्थितम्। परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम् ॥१३॥ तस्मिन् बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा। पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति ॥ १४ ॥ अत्रोपायान् यथा सम्यङ् न बुध्येत जनार्दनः। न चापायो भवेत् कश्चित्तद्भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा घोरं कृष्णाभिसंहितम्। धृतराष्ट्रः सहामात्यो व्यथितो विमनाभवत् ॥ १६ ॥ ततो दुर्योधनमिदं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः। मैवं वोचः प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः ॥ १७ ॥ दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः। अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति ॥१८॥ भीष्म उवाच। परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः। वृणोत्यनर्थं नैवार्थं याच्यमानः सुहृज्जनैः ॥१९॥ इममुत्पथि वर्त्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम्। वाक्यानि सुहृदां हित्वा

राजलक्ष्मीको बाँटकर पाण्डवोंके साथमें भोगूँ ॥ १२ ॥ इसलिये मैंने जो एक बड़ोभारी काम करनेका विचार कियो है उसको सुनो-मैं पांडवोंके ऊपर प्रेम करनेवाले श्रीकृष्णको कैद करना चाहता हूँ ।१३। उन श्रीकृष्णको कैद करते ही सब यादव, सब पृथ्वी और पांडव मेरे वशमें होजायँगे, वह श्रीकृष्ण कल प्रातःकाल यहाँ आनेवाले हैं ।१४। इस विषयमें जिसप्रकार मेरे किये हुए उपाय श्रीकृष्णको मालूम न होने पावें तथा इसमें कोई हानि भी न उठ खड़ी हो, ऐसी संमति मुझे अच्छेप्रकार विचारकर दीजिये । १५ । वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजन् जनमेजय ! दुर्योधनने जो श्रीकृष्णको कैद करनेके विषयमें भयङ्कर बात कही उसको सुनकर राजा धृतराष्ट्रका और उसके मंत्रियोंका मन बड़ा ही पीड़ित और व्याकुल हुआ । १६ । तदनन्तर धृतराष्ट्रने दुर्योधनसे यह बात कही कि-अरे प्रजाके रक्षक ! तू अपने मुखसे ऐसी बात न निकाल, यह सनातनधर्म नहीं है ॥ १७ ॥ श्रीकृष्ण इस समय पाण्डवोंके दूत बनकर आये हैं, तिसपर भी हमारे सम्बन्धी और प्यारे हैं तथा कौरवोंके साथ आजतक उन्होंने कुछ कपटका व्यवहार नहीं किया है, फिर वह कैद करनेके योग्य कैसे माने जायँ ॥ १८ ॥ भीष्मजी बोले, कि-हे धृतराष्ट्र ! तेरा यह अत्यन्त मन्दबुद्धि वाला पुत्र कालके लपेटमें आगया है, इसकारण ही संबन्धियोंके समझाने पर भी यह हितका काम करना नहीं चाहता किन्तु अनर्थ ही करना चाहता है ॥१९॥ और तुम भी अपने सम्बन्धियोंकी बातों

त्वमस्यस्यानुवर्त्तसे ॥ २० ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्यायं सुदुर्मतिः। तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति ॥ २१ ॥ पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः। नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथञ्चन ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान्। उत्थाय तस्मात् प्रातिष्ठद्भीष्मः सत्यपराक्रमः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधनवाक्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

वैशम्पायन उवाच। प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान् सर्वमाह्निकम्। ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रययौ नगरं प्रति ॥ १ ॥ तं प्रयान्तं महाबाहुमनुज्ञाप्य महाबलम्। पर्य्यवर्त्तन्त ते सर्वे वृकस्थलनिवासिनः २ धार्त्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः स्वलंकृताः। दुर्योधनादृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः ॥ ३ ॥ पौराश्च बहुला राजन् हृषीकेशं दिदृक्षवः। यानैर्बहुविधैरन्ये पद्भिरेव तथापरे ॥ ४ ॥ स वै पथि समागम्य भीष्मेणा-

---

को न मान कर उलटे मार्गमें चलने वाले और पाप कर्म करने वाले इस पापीके ही पिछलगू होरहे हो ॥ २० ॥ यह तुम्हारा महादुष्ट बुद्धि पुत्र और इसके मन्त्री सहजमें ही सब कुछ कर सकने वाले श्रीकृष्णके हाथमें पड़ गये तो क्षण भरमें ही इस लोकमें न होंगे ॥ २१ ॥ इस दुष्टबुद्धि, क्रूर, अपने धर्मका त्याग करने वाले पापी दुर्योधनकी अनर्थसे भरी बातको मैं किसी प्रकार भी नहीं सुनना चाहता ॥२२॥ इस प्रकार कह कर भरतवंशमें श्रेष्ठ सत्यपराक्रमी बूढे भीष्मपितामह बड़े ही क्रोधमें भरे हुए सभामेंसे उठ कर चले गये ॥ २३ ॥ अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय! श्रीकृष्णने प्रातःकाल ही उठ कर स्नान सन्ध्या आदि नित्यकर्म किया और ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये ॥ १ ॥ उस समय वृकस्थलके रहने वाले वह सब लोग जाते हुए उन महाबली महाबाहु श्रीकृष्ण को कुछ दूर पहुँचाने गए और फिर उनसे आज्ञा लेकर लौट आये२ उन आते हुए श्रीकृष्णको लेनेके लिए वस्त्र और आभूषणोंसे सजे हुए धृतराष्ट्रके पुत्र तथा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि सब गये, केवल एक दुर्योधन ही नहीं गया ॥ ३ ॥ हे राजन्! बहुतसे नगरनिवासी भी श्रीकृष्णका दर्शन करनेकी इच्छासे बहुतसी सवारियोंमें बैठ कर तथा कितने ही पैदल ही गये४वह कृष्ण मार्गमें ही सहजमें ही सब काम

क्लिष्टकर्मणा । द्रोणेन धार्त्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ ॥ ५ ॥ कृष्णसम्माननार्थञ्च नगरं समलंकृतम् । बभूव राजमार्गश्च बहुरत्नसमाचितः ॥ ६ ॥ न च कश्चिद् गृहे राजंस्तदासीद्भरतर्षभ । न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७ ॥ राजमार्गे नरास्तस्मिन् संस्तुवन्त्यवनिं गताः । तस्मिन् काले महाराज हृषीकेशप्रवेशने ॥ ८ ॥ आवृतानि वरस्त्रीभिर्गृहाणि सुमहान्त्यपि । प्रचलन्तीव भारेण दृश्यन्ते स्म महीतले ॥९॥ तथा च गतिमन्तस्ते वासुदेवस्य वाजिनः। प्रनष्टगतयोऽभवन् राजमार्गे नरैर्वृते १० स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः । पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम् ॥ ११ ॥ तिस्रः कक्षा व्यतिक्रम्य केशवो राजवेश्मनः । वैचित्रवीर्यं राजानमभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १२ ॥ अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः । सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः ॥ १३ ॥ कृपश्च सोमदत्तश्च महाराजश्च बाह्लिकः ।

कर सकने वाले भीष्मजी, द्रोणाचार्य और धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे मिले तथा उन सबोंसे घिरे हुए हस्तिनापुरको पधारे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णका सन्मान करनेके लिए नगरको सजाया गया था, अनेकों देखने योग्य वस्तुओंसे राजमार्ग खचाखच भर रहा था ॥ ६ ॥ हे भरतवंशी राजन्! जब श्रीकृष्णने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया, उस समय उनका दर्शन करनेकी इच्छासे बालक, स्त्री बूढे कोई भी अपने घरोंमें नहीं रहे थे, किन्तु सब लोग राजमार्गमें आकर खडे होगए थे ॥ ७ ॥ हे महाराज! उस समय ज्यों ही श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया, कि— सब लोग भूमिकी ओर झुक २ कर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ उस समय बड़े २ स्थान भी श्रेष्ठ स्त्रियोंसे भर गए थे और भूमि भारके मारे नीचेको धसकती हुईसी प्रतीत होती थी ॥९॥ भगवान् कृष्णके बड बड़े वेगसे चलने वाले घोड़े भी मनुष्योंसे भरे हुए राजमार्गमें आकर ऐसे होगए मानों उनमें चलनेकी शक्ति ही ही नहीं ॥ १० ॥ शत्रुनाशक कमलनयन श्रीकृष्ण राजमार्गसे चल कर आस पासके राजमहलोंसे शोभायमान धृतराष्ट्रके सफेद पुते हुए राजमहलमें आपहुँचे ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णजी राजभवनकी तीन ड्योढ़ियें लांघकर राजा धृतराष्ट्रके पास पहुँचगये ॥१२॥ यादव वंशी श्रीकृष्णके समीप आते ही महाकीर्ति प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्य सहित उठकर खड़ा होगया ॥१३॥ तथा कृपाचार्य, सोमदत्त और महाराज बाह्लीक इन सबोंने भी अपने २ आसनों परसे

आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम् ॥ १४ ॥ ततो राजानमासाद्य धृतराष्ट्रं यशस्विनम् । स भीष्मं पूजयामास वार्ष्णेयो वाग्भिरञ्जसा ॥ १५ ॥ तेषु धर्मानुपूर्व्यन्तां प्रयुज्य मधुसूदनः । यथावयः समीयाय राजभिः सह माधवः ॥ १६ ॥ अथ द्रोणं सबाह्लीकं सपुत्रञ्च यशस्विनम् । कृपञ्च सोमदत्तञ्च समीयाय जनार्दनः ॥ १७ ॥ तत्रासीदूर्जितं मृष्टं काञ्चनं महदासनम् । शासनाद् धृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः ॥ १८ ॥ अथ गां मधुपर्कञ्चाप्युदकञ्च जनार्दने । उपाजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रपुरोहिताः ॥१९॥ कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान् परिहसन् कुरून् । आस्ते साम्बन्धिकं कुर्वन् कुरुभिः परिवारितः ।२०। सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशाः । राजानं समनुज्ञाप्य निरक्रामदरिन्दमः ॥२१॥ तैः समेत्य यथान्यायं कुरुभिः कुरुसंसदि । विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः ॥ २२ ॥ विदुरः सर्वकल्याणैरभिगम्य जनार्दनम् । अर्च्चयामास दाशार्हं सर्वकामैरुपस्थितम् ॥ २३ ॥

उठकर श्रीकृष्णजीका सन्मान किया ॥ १४ ॥ इधर श्रीकृष्णजीने भी यशस्वी राजा धृतराष्ट्र और भीष्मजीके पासको जाकर तुरन्त ही वाणीसे उनका सत्कार किया ॥ १५ ॥ और क्रमसे धर्मानुसार उनकी पूजा करनेके अनन्तर उन्होंने दूसरे राजाओंका भी उनकी अवस्थाके अनुसार मिलकर सन्मान किया ॥ १६ ॥ द्रोणाचार्य, उनके कीर्तिमान् पुत्र अश्वत्थामा, बाल्हीक कृपाचार्य और सोमदत्तसे मिलनेके अनन्तर श्रीकृष्णजी राजा धृतराष्ट्रके कहनेसे, तहाँ जो एक बड़ा ऊँचा, दमकताहुआ सोनेका बड़ाभारी सिंहासन बिछाहुआ था, उस पर जा विराजे ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस समय धृतराष्ट्रके पुरोहितोंने शास्त्र में लिखी रीतिके अनुसार श्रीकृष्णजीको एक गौ, मधुपर्क और जल अर्पण किया ॥ १९ ॥ इसप्रकार जिनका सत्कार कियागया है ऐसे गोविन्द सब कौरवोंसे घिरकर बैठे और सम्बन्धीपनेका व्यवहार दिखातेहुए सबके साथ हास्य करनेलगे ॥ २० ॥ राजा धृतराष्ट्रने उन महाकीर्तिमान् श्रीकृष्णकी पूजा करके उनका सत्कार किया, फिर शत्रुदमन श्रीकृष्णजी राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर तथा कौरवोंकी राजसभामें बैठेहुए सब कौरवोंसे योग्यताके अनुसार मिलकर विदुरजी के सुन्दर भवनमें चलेगये ॥२१॥२२॥ तहाँ विदुरजी सकल माङ्गलिक पदार्थ लेकर श्रीकृष्णजीके सामने आये और सब कामनायें जिनके पास रहती हैं, ऐसे यदुवंशी श्रीकृष्णजीकी पूजा करी ॥ २३ ॥ और

या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा । सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥ २४ ॥ कृतातिथ्यन्तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित् । कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम् ॥ २५ ॥ प्रीयमाणस्य सुहृदो विदुरो बुद्धिसत्तमः । धर्मार्थनित्यस्य सतो गतरोषस्य धीमतः ॥ २६ ॥ तस्य सर्वं सविस्तारं पाण्डवानां विचेष्टितम् । क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रगृहवेशपूर्वकं श्रीकृष्णस्य विदुरगृहप्रवेशे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः । पितृष्वसारं स पृथामभ्यगच्छदरिन्दमः ॥ १ ॥ स दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम् । कंठे गृहीत्वा प्राक्रोशत् स्मरन्ती तनयान् पृथा ॥ २ ॥ तेषां सत्त्ववतां मध्ये गोविन्दं सहचारिणम् । चिरस्य दृष्ट्वा वार्ष्णेयं बाष्पमाहारयत् पृथा ॥ ३ ॥ साब्रवीत् कृष्णमासीनं कृता-

---

फिर कहनेलगे, कि-हे कमलनयन ! मुझे आपके दर्शनोंसे जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसको मैं तुमसे क्या कहूँ ? तुम तो स्वयं ही सब शरीरधारियोंके अन्तर्यामी हो ॥२४॥ सब धर्मोंको जाननेवाले महाबुद्धिमान् विदुरजीने इसप्रकार बातचीत करके श्रीकृष्णजीका अतिथिसत्कार किया और भगवान् कृष्णसे पाण्डवोंका कुशल पूछा ॥२५॥ सकल वस्तुओंको जाननेवाले यदुपति विदुरजीको पाण्डवोंका सब समाचार विस्तारके साथ कह सुनाया, वह निश्चयके साथ जानते थे, कि-कि-विदुरजी पाण्डवोंके परमस्नेही हैं, पांडवोंके ऊपर उनको क्रोध नहीं है, किन्तु बड़ाभारी प्रेम है और वह बुद्धिमान्, विज्ञानी तथा सदा धर्म और अर्थमें लगे रहते हैं, इस कारण उनको पाण्डवोंका समाचार सुनानेमें कोई हानि नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि हे राजा जनमेजय ! शत्रुदमन श्रीकृष्णजी विदुरजीसे मिलनेके अनन्तर पिछले पहर अपनी बुआ कुन्तीके पास गये ॥ १ ॥ निर्मल सूर्यकी समान तेजस्वी श्रीकृष्णजीको आये हुए देखकर कुन्ती उनके कण्ठसे चिपटगयी और अपने पुत्रोंको याद कर २ के रोने लगी ॥ २ ॥ और अपने महाबली पुत्रोंके साथ विचरने वाले वृष्णिवंशी श्रीकृष्णको बहुत दिनोंमें देखकर आँसू बहाने लगी ॥३॥ योधाओंके पति श्रीकृष्ण भी अपना अतिथिसत्कार होजाने पर विश्राम लेने लगे, तदनन्तर कुन्ती आँसुओंके कारण अटु-

तिर्य्यं युधाम्गतिम् । वाष्पगद्गदपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ॥ ४ ॥ ये ते बाल्यात् प्रभृत्येव गुरुशुश्रूषणे रताः । परस्परस्य सुहृदः सम्मताः समचेतसः । निकृत्या भ्रंशिता राज्याज्जनार्हा निर्जनं गताः ॥५॥ विनीतक्रोधहर्षाश्च ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः । त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदतीमपहाय माम् ॥६॥ अहाषुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं मम । अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पांडवाः ॥ ७ ॥ ऊषुर्महावने तात सिंहव्याघ्रगजाकुले । बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः ॥ ८ ॥ अपश्यन्तश्च पितरौ कथमूषुर्महावने । शंखदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गैर्वेणुनिःस्वनैः ॥ ९ ॥ पाण्डवाः समबोध्यन्त बाल्यात् प्रभृति केशव । ये स्म वारणशब्देन हयानां ह्रेषितेन च ॥१०॥ रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त तदा गृहे । शंखभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना ॥११॥ पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः । वस्त्रै रत्नैरलङ्कारैः पूजयन्तो द्विज-

---

खड़ाते हुए स्वरसे भरे और शोकके कारण सूखे हुए मुखसे कहने लगी, कि–॥४॥ वह मेरे पुत्र बालकपनेसे लेकर आज तक गुरुजनोंकी सेवा करनेमें तत्पर, आपसमें मित्रभाव रखने वाले, सबके मान्य, और सबके ऊपर समभाव रखने वाले थे तो भी वह कपट करके राज्यसे अलग कर दिये गये और जो मनुष्योंके सहवासमें रहने योग्य थे वह निर्जन वनमें घूमते फिरे ॥ ५ ॥ क्रोध और हर्षको वशमें रखने वाले ब्राह्मणोंके रक्षक और सत्यवादी पाण्डव जबसे राज्यसुख और ऐश्वर्य सुखको त्याग कर तथा मुझे रोती हुई छोड़ कर चले गये उस समयसे मैं हृदयशून्य (पगलीसी) होगयी हूँ, हे तात ! वनवासके अयोग्य महात्मा पांडव सिंह बाघ और हाथियोंसे भरे हुए महावनोंमें कैसे रह सके होंगे? वह जब बालक थे और उनके पिता भी परलोकको सिधार गये थे तबसे मैंने उनको बराबर लाड़के साथ पाला था ॥ ६–८ ॥ वह पांडव माता पिताको न देख कर महावनमें कैसे रहे होंगे ?, केशव ! बालक अवस्थासे ही पांडव शंख और नौबतोंके शब्दोंसे, मृदङ्ग और बाँसुरियोंकी ध्वनियोंसे हाथियोंकी चिङ्घारोंसे तथा घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे जगाये जाते थे॥१०यह पांडव जिस समय अपने घर थे तब राजमहलके ऊपरके भागोंमें अतिकोमल रंकु जातिके मृगोंकी मृगछाला जिन पर बिछायी जाती थी ऐसी शय्याओं पर सोते थे और प्रभात कालमें रथके पहियोंकी झनझनाहटसे; शंख और नफीरियोंके शब्दोंसे तथा बजती हुई बाँसुरी और वीणाओंकी ध्वनियोंसे तथा

त्मनः ॥१२॥ गीतैर्मङ्गलयुक्तैश्च ब्राह्मणानां महात्मनाम्। अर्चितं रत्नवासोभिश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः ॥१३॥ प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्कवाजिनशायिनः। क्रूरं स निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने ॥१४॥ न स्मोपयान्ति निद्रां ते न तदर्हा जनार्दन। भेरीमृदङ्गनिनदैः शङ्खवैणवनिःस्वनैः ॥१५॥ स्त्रीणां गीतनिनादैश्च मधुरैर्मधुसूदन। बन्दिमागधसूतैश्च स्तुवद्भिर्बोधिताः कथम् ॥१६॥ महावनेष्वबुध्यन्त श्वापदानां रवेण च। ह्रीमान् सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता ॥१७॥ कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्त्तते। अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च ॥१८॥ भरतस्य दिलीपस्य शिबेरौशीनरस्य च। राजर्षीणां पुराणानां धुरन्धत्ते दुरुद्वहाम् ॥१९॥ शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसंगरः। राजा सर्वगुणोपेतस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत् ॥२०॥ अजातशत्रुर्धर्मात्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः। श्रेष्ठः कुरुषु सर्वेषु धर्मतः श्रुतवृ-

---

ब्राह्मणोंके पुण्याहवाचनके शब्दोंसे जागते थे और जागने पर अनेकों प्रकारके वस्त्र, रत्न तथा गहनोंसे ब्राह्मणोंका सत्कार करते थे, ब्राह्मण भी उनके सत्कारको स्वीकार करके मङ्गलयुक्त स्तुतियोंके द्वारा उनको आशीर्वाद देते थे, उनको घोर वनमें पशुओंकी महाक्रूर और भयानक गर्जनाएँ सुन कर निद्रा नहीं आती होगी, क्योंकि—वह ऐसे क्रूर शब्दोंको सुननेके लिये नहीं जन्मे हैं, हे मधुसूदन! जिनको भेरी, मृदङ्ग, शंख और बाँसुरीके शब्द स्त्रियोंके मधुरगीतोंकी ध्वनि तथा वन्दीजन मागध और सूतोंकी स्तुतियोंको सुन कर जागनेका अभ्यास है, वह पाण्डव महावनमें हिंसक प्राणियोंके समूहोंकी भयानक चीखोंको सुन कर कैसे जागते होंगे?, हे कृष्ण! एक सत्यके ऊपर ही श्रद्धा रखने वाला, लज्जावान्, मनको वशमें रखने वाला, सब प्राणियों के ऊपर एक सी दया रखने वाला, काम क्रोध आदिको वशमें करके सदा महात्माओंके मार्ग पर ही चलने वाला, अम्बरीष, मान्धाता, ययाति, नहुष भरत, दिलीप, उशीनरका पुत्र शिबी आदि पुराने राजाओंको भी जिसका उठाना सहज नहीं है ऐसी राज्यधुरीको उठाने वाला ॥ ११-१९ ॥ शील और सदाचारसे युक्त, धर्मका ज्ञाता, सच्ची प्रतिज्ञा करने वाला, सकल श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त तीनों लोकका राजा होनेके योग्य ॥ २० ॥ अजातशत्रु, धर्मात्मा, शुद्ध सुवर्णकीसी दमकती हुई कान्तिवाला, धर्मशास्त्रके अभ्यास और आचरणमें सब कौरवोंसे श्रेष्ठ, देखनेमें सुन्दर और बड़ी २ भुजाओं वाला मेरा पुत्र

ततः । प्रियदर्शी दीर्घभुजः कथं कृष्ण युधिष्ठिरः ॥२१॥ यः स नागायुतप्राणो वातरंहा महाबलः । सामर्षः पाण्डवो नित्यं प्रियो भ्रातुः प्रियङ्करः॥२२॥ कीचकस्य तु सज्ञातेर्यो हन्ता मधुसूदन । शूरः क्रोधवशानाञ्च हिडिम्बस्य बकस्य च ॥२३॥ पराक्रमे शक्रसमो मातरिश्वसमो बले । महेश्वरसमः क्रोधे भीमः प्रहरतां वरः ॥२४॥ क्रोधं बलममर्षञ्च यो निधाय परन्तपः । जितात्मा पाण्डवोऽमर्षी भ्रातुस्तिष्ठति शासने ॥२५॥ तेजोराशिं महात्मानं वरिष्ठममितौजसम् । भीमं प्रदर्शनेनापि भीमसेनं जनार्दन ॥ २६ ॥ तं समाचक्ष्व वार्ष्णेय कथमद्य वृकोदरः । आस्ते परिघबाहुः स मध्यमः पांडवो बली ॥ २७ ॥ अर्जुनेनार्जुनो यः स कृष्ण बाहुसहस्रिणा । द्विबाहुः स्पर्द्धते नित्यमतीतेनापि केशव ॥२८॥ क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः । इष्वस्त्रे सदृशो राज्ञः कार्त्तवीर्य्यस्य पाण्डवः ॥ २९ ॥ तेजसादित्यसदृशो महर्षिसदृशो दमे । क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः ।३०।

युधिष्ठिर अब कैसा है ? ॥ २१ ॥ हे मधुसूदन कृष्ण ! नित्य क्रोधमें रहनेवाला वायुका समान वेगवान् और महाबली भीमसेन जो दश सहस्र हाथियोंका बल रखता है तथा जो नित्य अपने भाइयोंके प्यारे काम करनेसे उनका प्यारा होगया है ॥ २२ ॥ हे मधुसूदन ! जिसने भाइयों सहित कीचकको, क्रोधवश नामके गणोंको, हिडिम्बासुरको और बकासुरको मारकर अपनी शूरता दिखायी है ॥ २३ ॥ जो पराक्रममें इन्द्रकी समान, बलमें पवनकी समान क्रोधमें महादेवकी समान तथा योधाओंमें नामी होरहा है ॥ २४ ॥ तो भी जो मनको वशमें रखनेवाला क्रोध, बल और असहिष्णुताको अपने वशमें रखकर भाई की आज्ञामें चलता है ॥ २५ ॥ उस तेजके भण्डाररूप, महात्मा श्रेष्ठ, परमप्रतापी और देखनेसे भी भयदायक मालूम होनेवाले भीमसेनको हे जनार्दन मुझे बताओ, हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! वह महाबली, लोहेके दण्डोंकी समान भुजाओंवाला, मेरा बिचला पुत्र भीमसेन इस समय कैसी दशामें है ? ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे कृष्ण ! मेरा अर्जुन जो कि-दो भुजाओंवाला होकर भी, पहिले समयके सहस्रबाहु अर्जुन के साथ सदा स्पर्धा करता है ॥ २८ ॥ जो एक ही सपाटेमें पाँच सौ बाण छोड़ता है तथा जो पाण्डुनन्दन बाणविद्यामें राजा कार्त्तवीर्यकी समान है ॥ २९ ॥ जो तेजसे सूर्यकी समान है, मनको दाबनेमें महर्षियोंकी समान है, क्षमासे पृथिवीकी समान और राजाइन्द्रकी समान

आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं मधुसूदन । आहृतं येन वीर्येण कुरूणां सर्वराजसु ॥ ३१ ॥ यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः पर्युपासते । स सर्वरथिनां श्रेष्ठः पाण्डवः सत्यविक्रमः ॥ ३२ ॥ यं गत्वाभिमुखः संख्ये न जीवन् कश्चिदाव्रजेत् । यो जेता सर्वभूतानामजेयो जिष्णुरच्युत ३३ यो ह्याश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः । स ते भ्राता सखा चैव कथमद्य धनञ्जयः ॥ ३४ ॥ दयावान् सर्वभूतेषु ह्रीनिषेवी महास्त्रवित् मृदुश्च सुकुमारश्च धार्मिकश्च प्रियश्च मे ॥ ३५ ॥ सहदेवो महेष्वासः शूरः समितिशोभनः । भ्रातॄणां कृष्ण शुश्रूषुर्धर्मार्थकुशलो युवा ॥ ३६ ॥ सदैव सहदेवस्य भ्रातरो मधुसूदन । वृत्तं कल्याणवृत्तस्य पूजयन्ति महात्मनः ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठापचायिनं वीरं सहदेवं युधां पतिम् । शुश्रूषुं मम वार्ष्णेय माद्रीपुत्रं प्रचक्ष्व मे ॥ ३८ ॥ सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः । भ्रातॄणाञ्चैव सर्वेषां प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥ ३९ ॥ चित्रयोधी च नकुलो महेष्वासो महाबलः । कच्चित् स कुशली कृष्ण

पराक्रमी है ॥ ३० ॥ हे कृष्ण ! यह जो कौरवोंका राज्य सब राजाओंसे अधिक ऐश्वर्य वाला और बड़ा प्रसिद्ध होरहा है, इसको भी जिसने अपनी वीरतासे बढ़ाया है ॥ ३१ ॥ सब पांडव जिसके बाहुबलका आश्रय लिये रहते हैं, जो सब रथियोंमें उत्तम और श्रेष्ठ पराक्रमी है ३२ रणमें जिसके सामने जाकर कोई भी जीता नहीं लौट सकता, हे अच्युत! जो सब प्राणियोंको जीतने वाला है और जिसको कोई नहीं जीत सकता ॥ ३३ ॥ जैसे देवताओंको इन्द्रका भरोसा है तैसे ही पांडव जिसका भरोसा रखते हैं वह तुम्हारा भाई तथा मित्र अर्जुन अब किस दशामें है ? ॥ ३४ ॥ सब प्राणियोंके ऊपर दया करने वाला, लज्जाशील, अस्त्रशस्त्रका ज्ञाता, कोमलस्वभाव, अत्यन्त सुकुमार, धर्मात्मा, मेरा बड़ा प्यारा ॥ ३५ ॥ महाधनुर्धारी, सभाको शोभा देने वाला, हे कृष्ण ! भाइयोंकी सेवा करनेकी इच्छा करने वाला, धर्म और अर्थमें प्रवीण और युवा सहदेव ॥ ३६ ॥ जिस श्रेष्ठ आचरणवाले महात्मा सहदेवके बर्तावको हे मधुसूदन ! उसके भाई भी सदा प्रशंसा किया करते हैं ॥ ३७ ॥ उस बड़े भाइयोंकी प्रतिष्ठा करने वाले, योधाओंमें श्रेष्ठ, वीर और मेरी सेवा करनेकी इच्छावाले माद्रीकुमार सहदेवकी बात हे कृष्ण ! मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ सुकुमार, युवा, शूर, दर्शनीय सब भाइयोंका बाहर फिरने वाले प्राणकी समान प्यारा, पांडुपुत्र (नकुल) । ३९ । जो चित्रयुद्धकी अनेकों कलाओंको जानने

यत्नो मम सुखैधितः । ४० । सुखोचितमदुःखार्हं सुकुमारं महारथम् । अपि जातु महाबाहो पश्यं नकुलं पुनः ॥ ४१ ॥ पक्ष्मसम्पातजे काले नकुलेन विना कृता। न लभामि धृतिं वीर साद्य जीवामि पश्य माम् ४२ सर्वैः पुत्रैः प्रियतरा द्रौपदी मे जनार्दन । कुलीना रूपसम्पन्ना सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ४३ ॥ पुत्रलोकात् पतिलोकं वृण्वाना सत्यवादिनी प्रियान् पुत्रान् परित्यज्य पाण्डवाननुरुध्यते ।।४४।। महाभिजनसम्पन्ना सर्वकामैः सुपूजिता । ईश्वरी सर्वकल्याणी द्रौपदी कथमच्युत ।४५। पतिभिः पञ्चभिः शूरैरग्निकल्पैः प्रहारिभिः । उपपन्ना महेष्वासैर्द्रौपदी दुःखभागिनी ॥ ४६ ॥ चतुर्दशमिदं वर्षं यन्नापश्यमरिन्दम । पुत्राधिभिः परिद्यूनां द्रौपदीं सत्यवादिनीम् । ४७ । न नूनं कर्मभिः पुण्यैरश्नुते पुरुषः सुखम् । द्रौपदी चेत्तथा वृत्ता नाश्नुते सुखमव्ययम् ४८

वाला, बड़ा धनुषधारी, महाबली तथा सुखमें पला है वह मेरा प्यारा पुत्र नकुल सुखसे तो है ? ४० हे महाबाहु कृष्ण!सुख भोगनेके योग्य दुःखको भोगनेके अयोग्य सुकुमार और महारथी नकुलको मैं फिर किसी दिन देख सकूँगी क्या ? ॥ ४१ ॥ हे वीर ! जो मैं पहले पलक मारनेके समय तक भी नकुलको न देखनेसे अधीर होजाती थी वह मैं आज देखो बरसोंसे नकुलके विना अपने कष्टमय जीवनको विता रही हूँ ॥४२॥ हे जनार्दन ! मेरी प्यारी बहू द्रौपदी; जो कुलीन पिता की पुत्री, रूपवती और सकल गुणोंसे शोभित है वह मुझे अपने सब पुत्रोंसे भी अधिक प्यारी है ॥ ४३ ॥ वह अपने पुत्रोंको छोड़ कर पतियोंके पास रही है, वह सत्य बोलने वाली प्यारे पुत्रोंको भी छोड़ कर वनवासमें पाण्डवोंके साथ रह कर उनकी सेवा करती है ॥४४॥ पाण्डव जिसकी सब कामनायें पूरी करते हैं ऐसी बड़े कुलमें उत्पन्न हुई वह बड़ी समर्थ तथा सब प्रकारके कल्याणको भोगनेवाली द्रौपदी हे अच्युत ! इस समय कैसी है ? ॥४५॥ वह अग्निकी समान तेजस्वी वीर तथा बड़ेभारी धनुषधारी पांच पतियोंको पाकर भी दुःख भोगती है! (दैवकी गति बड़ी विचित्र है) ॥ ४६ ॥ हे शत्रुओंको दबानेवाले कृष्ण ! जो सत्य बोलने वाली द्रौपदी अपने पुत्रोंके वियोगके कारण महादुःखित होरही है, देखो ये चौदह वर्ष बीत गये वह मुझे देखनेको भी नहीं मिली ॥४७॥ मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि पुरुष वास्तव में अपने पुण्यकर्मोंसे भी सुख नहीं पाता है क्योंकि—देखो द्रौपदी पुण्यवती है तो भी निरन्तर सुख नहीं पाती है ॥ ४८ ॥ मैंने जब

न प्रियो मम कृष्णाया बीभत्सुर्न युधिष्ठिरः । भीमसेनो यमौ वापि यदपश्यं सभागताम् ॥४९॥ न मे दुःखतरं किञ्चिद् भूतपूर्वं ततोऽधिकम् । स्त्रीधर्मिणीं द्रौपदीं यच्छ्वशुराणां समीपगाम् ॥ ५० ॥ आनायितामनार्य्येण क्रोधलोभानुवर्त्तिना । सर्वे प्रेक्षन्त कुरवः एकवस्त्रां सभागताम् ॥ ५१ ॥ तत्रैव धृतराष्ट्रश्च महाराजश्च बाह्लिकः । कृपश्च सोमदत्तश्च निर्विण्णाः कुरवस्तथा ॥ ५२ ॥ तस्यां संसदि सर्वेषां क्षत्तारं पूजयाम्यहम् । वृत्तेन हि भवत्यार्य्यो न धनेन न विद्यया ॥५३॥ तस्य कृष्ण महाबुद्धेर्गम्भीरस्य महात्मनः। क्षत्तुः शीलमलङ्कारो लोकान् विष्टभ्य तिष्ठति ॥ ५४ ॥ वैशम्पायन उवाच । स शोकार्त्ता च हृष्टा च दृष्ट्वा गोविन्दमागतम् । नानाविधानि दुःखानि सर्वाण्येवान्वकीर्तयत् ॥५५॥ पूर्वैराचरितं यत्तत् कुराजभिररिन्दम । अक्षद्यूतं मृगवधः कच्चिदेषां सुखावहम् ॥ ५६ ॥ तन्मां दहति यत् कृष्णा सभायां कुरुसन्निधौ ।

कौरवसभामें दुर्दशा भोगती हुई द्रौपदीको देखा था उसका विचार करती हूं तो मुझे अर्जुन, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव इनमेंसे किसीके ऊपर भी प्रीति नहीं होती ॥ ४९ ॥ पहिले मैंने बहुत से दुःख भोगे हैं परन्तु क्रोध और लोभके वशमें हुए नीच दुर्योधन की ओरसे रजोधर्म वाली द्रौपदी एक वस्त्र धारण किये हुए कौरव-सभामें श्वशुरोंके समीपमें लायी गयी थी और सब कौरवोंने भरी सभामें एक वस्त्र पहिरे खड़ी हुई देखा था, उस समयका सा वह महा-दुःख मैंने पहिले कभी अनुभव नहीं किया था ॥ ५०।५१ ॥ उससमय इस बनावको देख कर सभामें बैठे हुए धृतराष्ट्र; महाराज बाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त तथा अनेकों कौरव उदास होगये थे ॥ ५२ ॥ परन्तु उस सभामें बैठे हुए सबोंमेंसे एक विदुरकी ही मैं प्रशंसा करती हूँ, पुरुष अच्छे वर्त्तावसे ही श्रेष्ठ होसकता है केवल धनसे या बहुतसा पढलेनेसे श्रेष्ठ नहीं होसकता ५३ हे कृष्ण ! उन महात्मा, परमबुद्धिमान् और गंभीर विदुरका जो शीलरूपी भूषण है वह सब को दबायेहुए है५४वैशम्पायन कहते हैं,कि-हे राजा जनमेजय! वह कुंती गोविन्दको हस्तिनापुरमें आया हुआ देख कर शोकसे व्याकुल भी हुई और हर्षको भी प्राप्त हुई, उसने श्रीकृष्णसे अपने अनेकों प्रकारके सब ही दुःख कहे ॥ ५५ ॥ वह फिर कहने लगी, कि-हे शत्रुनाशन ! पहिले खोटे राजाओंने जुआ शिकार आदि जो जो खोटे काम किये हैं वह क्या उनको सुखदायक हुआ ? ॥ ५६ ॥ पुत्रवधूने पुत्रोंके बीच

धार्त्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा न कुशलं तथा ॥ ५७ ॥ निर्वासनञ्च नगरात् प्रव्रज्या च परन्तप। नानाविधानां दुःखानामभिज्ञास्मि जनार्द्दन५८ अज्ञातचर्य्या बालानामवरोधश्च माधव । न मे क्लेशतमं तस्मात् पुत्रैः सह परन्तप ॥५९॥ दुर्य्योधनेन निकृता वर्षमद्य चतुर्द्दशम् दुःखादपि सुखं नः स्यात् यदि पुण्यफलक्षयः॥६०॥ न मे विशेषो जात्वासीद्धार्त्तराष्ट्रेषु पाण्डवैः। तेन सत्येन कृष्ण त्वां हतामित्रं श्रिया वृतम् । अस्माद्विमुक्तं संग्रामात् पश्येयं पाण्डवैः सह ॥ ६१॥ नैव शक्याः पराजेतुं सत्वं ह्येषां तथाविधम् । पितरन्त्वेऽव गर्हेयं नात्मानं न सुयोधनम् ॥ ६२ ॥ येनाहं कुन्तिभोजाय धनं वृत्तैरिवार्पिता । बालां मामार्य्यकस्तुभ्यं क्रीडन्तीं कन्दुहस्तिकाम् ॥ ६३ ॥ अदात्तु कुन्तिभोजाय

सभामें कौरवोंके सामने जो द्रौपदीको दुःख दिया था वह मुझे मरण की समान जलाता है ॥ ५७ ॥ हे शत्रुओंको दुःख देनेवाले जनार्दन ! मेरे पुत्रोंको नगरमेंसे निकाला गया और वह वनोंमें भटकते फिरे, मैं ऐसे २ अनेकों दुःखोंको भोगे हुए हूँ ॥ ५८ ॥ हे परन्तप माधव ! मेरे बालक पुत्र जो एक वर्षतक किसीके पहिचाननेमें न आवें इस प्रकार छिपे रहे यह तो मानो उनको राज्य न मिलनेपावे इसका एक उपाय था, मेरे पुत्रोंने और मैंने ऐसा महादुःख कभी नहीं भोगा था ॥ ५९॥ दुर्योधनने जो मेरे पुत्रोंको वनवासके लिये निकाल दिया था उसको अब चौदहवां वर्ष चल रहा है, इसलिये यदि सुख भोग लेनेसे पुण्य फलका क्षय और दुःख भोगनेसे पापका क्षय होता हो तो हमको अब दुःख भोगनेके अनन्तर सुख ही मिलना चाहिये६०मैं।दुर्योधनादि की अपेक्षा पाण्डवोंको अधिक कभी भी नहीं चाहती थी,किंतु दोनों को एक दृष्टिसे देखती थी, उसही सत्यके बलसे हे कृष्ण ! इन कौरव पाण्डवोंके युद्धमेंसे मुक्त हुए और शत्रुओंको मारकर पाण्डवोंके साथ राज्यलक्ष्मीको भोगते हुए तुमको मैं देखूँगी ॥ ६१ ॥ इन पाण्डवोंका सब ही आचरण ऐसा है, कि-शत्रु इनको हरा नहीं सकते, इससमय हमारी जो दशा हो रही है, इस विषयमें न मैं अपनेको ही दोष दे सकती हूँ और न दुर्योधनको ही दोष देना चाहती हूँ, किन्तु केवल अपने पिताकी ही निन्दा करती हूँ ॥६२॥ जैसे दानी नामसे प्रसिद्ध पुरुष सहजमें ही धन देदेते हैं तैसे हो जिस मेरे पिताने मुझे राजा कुन्तिभोजको अर्पण कर दिया, मै हाथमें गेंद लेकर खेलती फिरती थी, उस समय तुम्हारे पितामह (दादा) ने मुझे, अपने पुत्र रहित

सख्या सख्ये महात्मने । साहं पित्रा च निकृता श्वशुरैश्च परन्तप । अत्यन्तदुःखिता कृष्ण किं जीवितफलं मम ॥ ६४ ॥ यन्मां वागब्रवीन्नक्तं सूतके सव्यसाचिनः । पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत् ॥ ६५ ॥ हत्वा कुरून् महाजन्ये राज्यं प्राप्य धनञ्जयः । भ्रातृभिः सह कौन्तेयस्त्रीन् मेधानाहरिष्यति ॥ ६६ ॥ नाहन्तामभ्यसूयामि नमो धर्माय वेधसे । कृष्णाय महते नित्यं धर्मो धारयति प्रजाः ॥ ६७ ॥ धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय यथा वागभ्यभाषत । त्वञ्चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि ॥ ६८ ॥ न मां माधव वैधव्यं नार्थनाशो न वैरता तथा शोकाय दहति यथा पुत्रैर्विना भवः ॥ ६९ ॥ याहं गाण्डीवधन्वानं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । धनञ्जयं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

मित्र महात्मा राजा कुन्तिभोजको अर्पण कर दिया था, हे परन्तप ! इस प्रकार मेरे पिताने तथा भीष्म धृतराष्ट्र आदिने मेरा त्याग करके मुझे दुःखी किया है, इस कारण हे कृष्ण ! मैं बड़ी दुखियारी हूँ अब मेरे जीनेसे भी क्या फल है ? ॥ ६४ ॥ जब अर्जुनका जन्म हुआ था, तब रात्रिके समय सूतकमें जो आकाशवाणीने मुझसे कहा था कि-यह तेरा पुत्र सब पृथिवीको जीतेगा और इसका यश स्वर्ग तक में फैल जायगा ॥ ६५ ॥ यह धनञ्जय महासंग्राममें कौरवोंका संहार करके राज्यको पावेगा तथा अपने भाइयोंके साथ तीन महायज्ञ करेगा ॥ ६६ ॥ उस आकाशवाणीको मैं किसी प्रकारका दोष नहीं देती किन्तु मैं नारायणरूप सबसे बड़े और सबके विधाता धर्मको प्रणाम करती हूँ, सदा धर्म ही सब प्रजाओंको पापमें पड़नेसे बचा कर धारण करता है ॥ ६७ ॥ हे कृष्ण ! यदि धर्म सच्चा है तो आकाशवाणीने जो कुछ कहा है उसके अनुसार ही तुम सब काम सिद्ध कर लोगे ॥ ६८ ॥ हे माधव ! मुझे पुत्रोंका वियोग जैसा जला रहा है, विधवापन भी तैसा दुःख नहीं देता है, निर्धन होना भी तैसा दुःख नहीं देता है तथा रात दिनका वैरभाव भी तैसा दुःख नहीं देता है ॥ ६९ ॥ सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनको न देखनेसे मेरे हृदयको शान्ति कैसे होसकती है ? हे गोविन्द ! आज कल करते करते चौदह वर्ष होगये मैंने युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल और सहदेवको आँखोंसे नहीं देखा, जो लोग मरकर इस लोकमें नहीं रहते हैं, उनके संबन्धी उनको याद करके उनका श्राद्ध तो कर देते हैं, परन्तु हे जनार्दन ! जब पाण्डव मेरे ध्यानमें नहीं आते और मैं

जीवनाशं प्रनष्टानां श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ॥७१॥ अर्थतस्ते मम मृता-स्तेषाञ्चाहं जनार्दन । ब्रूया माधव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ७२ भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः । पराश्रया वासुदेव या जीवति धिगस्तु ताम्७३ वृत्तेः कार्पण्यलब्धाया अप्रतिष्ठैव ज्यायसी । अथो धनञ्जयं ब्रूया नित्योद्युक्तं वृकोदरम् ॥ ७४ ॥ यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः । अस्मिंश्चेदागते काले मिथ्या चातिक्रमिष्यति ॥ ७५ ॥ लोकसम्भाविताः सन्तः सुनृशंसं करिष्यथ । नृशंसेन च वो युक्तांस्त्यजेयं शाश्वतीः समाः ॥ ७६ ॥ काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवनम् । माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा ७७ विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि । विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः ॥ ७८ ॥ मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम। गत्वा ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतांवरम् ॥ ७९ । अर्जुनं पाण्डवं

पाण्डवोंके काममें नही आती तो मेरे जाने वह इस संसारमें नहीं है और उनके जाने मैं मरगयी, हे माधव ! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से जाकर कहदेना, कि—॥ ७०-७२ ॥ तुम्हारे धर्मकी बड़ी हानि होरही है, हे पुत्र ! तू निरर्थक धर्मका नाश न करे, हे कृष्ण ! जो स्त्री दूसरेके आश्रयमें रहकर जीती हो उसको धिक्कार है ॥ ७३ ॥ दीनताके साथ मिली हुई जीविकासे तो मरजाना ही अच्छा है; अब तुम नित्य उद्योग करनेवाले अर्जुन और भीमसेनसे कहना, कि-७४ क्षत्रिया जिस कामके लिए पुत्रको जनती है उस कामको करनेका समय अब आगया, ऐसा अवसर आजाने पर भी यदि तू युद्ध नहीं करेगा तो इस समयको वृथा ही खोवेगा ॥ ७५ ॥ पाण्डवोंकी लोगों में प्रतिष्ठा है और वह श्रेष्ठ माने जाते हैं, वह यदि युद्ध न करके महाबीभत्स काम करेंगे तो मैं उनको सदाके लिये त्याग दूँगी ॥७६॥ समय आजाय तब तो जीवनको भी त्याग देना चाहिये, और तुम सदा क्षत्रिय धर्ममें तत्पर रहनेवाले माद्रीके पुत्रोंसे भी कहना, कि७७ प्राणान्तका अवसर आजाय तो भी तुम्हें पराक्रम करके संसारके ऐश्वर्य प्राप्त करने चाहियें, हे पुरुषोत्तम ! जो मनुष्य क्षत्रियधर्मसे आजीविका करता हो, उस मनुष्यके मनको पराक्रमसे पायेहुए पदार्थ बड़ा आनन्द देते हैं, हे महाबाहु कृष्ण ! तुम सब शास्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके पास जाकर उससे कहना, कि–हे वीर पाण्डव ! तू द्रौपदीके पगपर पग धर अर्थात् उसकी संमतिके अनुसार कामकर तुम जानते

चीरं द्रौपद्याः पश्यतां च वः। विदितौ हि तवात्यन्तं संक्रुद्धौ तौ यथान्तकौ ॥ ८० ॥ भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम्। तयोश्चैतदवज्ञानं यत्सा कृष्णा सभां गता ॥ ८१ ॥ दुःशासनश्च कर्णश्च परुषाण्यवमापताम्। दुर्योधनो भीमसेनमभ्यगच्छन्मनस्विनम् ॥८२॥ पश्यतां कुरुमुख्यानां तस्य द्रक्ष्यति यत्फलम्। न हि वैरं समासाद्य प्रशाम्यति वृकोदरः ॥ ८३ ॥ सुचिरादपि भीमस्य न हि वैरं प्रशाम्यति। यावदन्तं न नयति शात्रवाञ्छत्रुकर्षणः ॥८४॥ न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः। प्रव्राजनन्तु पुत्राणां न मे तद् दुःखकारणम् ॥ ८५॥ यत्तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता। अशृणोत् परुषा वाचः किन्नु दुःखतरं ततः ॥ ८६ ॥ स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा। नाभ्यगच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥८७॥ यस्या मम सपुत्रायास्त्वं नाथो मधुसूदन। रामश्च बलिनां श्रेष्ठः प्रद्यु-

हो कि-भीमसेन और अर्जुन दोनों जब महाक्रोधमें भरजाते हैं तो काल की समान विकराल दीखने लगते हैं और देवताओंका भी नाश कर डालते हैं, द्रौपदीको जो कौरवोंकी सभामें घसीटा गया था, उससे उन दोनों वीरोंका अपमान हुआ है ७८-८१ उस समय सभामें दुःशासनने तथा कर्णने कठोर वचन कहे थे तथा दुर्योधनने मनस्वी भीमसेनका अपमान किया था और वह अपमान भी कुछ एकान्तमें नहीं किया था, किन्तु मुख्य २ कौरवोंके सामने किया था, उस अपमान का जो फल मिलने वाला है वह तो अब देखनेमें आवेगा भीमसेन वैर बँध जाने पर शान्त होने वाला नहीं है ॥ ८२ । ८३ ॥ शत्रुओंका प्राणान्त करने वाला भीमसेन जब तक अपने वैरियोंको मार नहीं डालेगा तब तक चाहे जितने दिन होजायँ वह वैरको भूलने वाला नहीं है ॥ ८४ ॥ शत्रुओंने राज्य छीन लिया इसका मुझे दुःख नहीं है, जुएमें हार होगई इसका भी मुझे दुःख नहीं है मेरे पुत्रोंको वनमें जाना पड़ा, इसका भी मुझे दुःख नहीं है ॥ ८५ ॥ परन्तु वह जो तरुण अवस्थाकी मेरी बड़ी बहूको वस्त्र पहिरे हुए सभामें घसीटा गया था तथा वहाँ मेरी बहूको जो खोटे वचन सुनने पड़े थे उससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ? ॥ ८६ ॥ सुंदराङ्गी सदा क्षत्रियोंके धर्ममें रहने वाली तथा मासिक धर्मसे हुई मेरी बहू द्रौपदी पतियों वाली होकर भी उस समय अनाथ सी होगयी थी ८७ हे पुरुषोत्तम मधुसूदन ! तुम्हारा, बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीका और

म्नश्च महारथः ॥ ८८ ॥ साहमेवं विधं दुःखं सहेयं पुरुषोत्तम । भीमे जीवति दुर्द्धर्षे विजये चापलायिनि ॥ ८९॥ वैशम्पायन उवाच । तत आश्वासयामास पुत्राधिभिरभिप्लुताम् । पितृष्वसारं शोचन्तीं शौरिः पार्थसखः पृथाम् ॥९०॥ वासुदेव उवाच । का नु सीमन्तिनी त्वादृक् लोकेष्वस्ति पितृष्वसः । शूरस्य राज्ञो दुहिता ह्याजमीढकुलं गता॥९१ महाकुलीना भवती ह्रदाद्ध्रदमिवागता । ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥९२॥ वीरसूर्वीरपत्नी त्वं सर्वैः समुदिता गुणैः । सुख-दुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति ॥ ९३ ॥ निद्रातन्द्रे क्रोधहर्षौ क्षुत्-पिपासे हिमातपौ । एतानि पार्था निर्जित्य नित्यं वीरसुखे रताः ॥९४॥ त्यक्तग्रामसुखाः पार्था नित्यं वीरसुखप्रियाः । न तु स्वल्पेन तुष्येयुर्म-होत्साहा महाबलाः ॥ ९५ ॥ अन्तं धीरा निषेवन्ते मध्यं ग्राम्यसुख-

---

महाबली प्रद्युम्नका मुझे तथा मेरे पुत्रोंको आश्रय होने पर भी तथा जो किसीके दबावमें नहीं आसकता ऐसे भीमसेनके और रणमें पीछे को पैर न धरने वाले अर्जुनके जीते हुए भी मैं ऐसा दुःख भोग रही हूँ, बड़े अचरजकी बात है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजा जनमेजय ! तदनन्तर अर्जुनके मित्र, शूरपुत्र, श्रीकृष्णजी, पुत्रोंके दुःखसे दुःखी हुई और उनके लिये शोक करनेवाली अपनी बुआको ढाढस देते हुए कहने लगे ॥ ९० ॥ श्रीकृष्ण बोले, कि-हे बुआजी! तुमसरीखी सौभाग्यवती स्त्री कौनसी है ? अर्थात् कोई नहीं है,तुम राजा शूरकी पुत्री हो और राजा अजमीढ़के कुलमें विवाही गयी हो९१ महासमर्थ बड़ी कुलीन और सब सुखोंकी धाम हो,तुमने बड़ा सत्कार पाया है और जैसे कमलिनी एक सरोवरमेंसे दूसरे सरोवरमें पहुँच जाती हैं, तैसे ही तुम एक महाकुलमेंसे दूसरे महाकुलमें पहुँची हो ॥ ९२ ॥ तुम वीर पुरुषकी पत्नी और सब श्रेष्ठ गुणोंसे शोभायमान हो, हे महाबुद्धिमती बुआ जी ! तुम सरीखी स्त्री ही दुःख सुखको सह सकती हैं ॥९३॥ निद्रा, तन्द्रा, क्रोध, हर्ष, भूख, प्यास, सरदी, गरमी इन सबको जीत कर (सह कर) पाण्डव नित्य वीर मनुष्योंके सुखमें मग्न रहते हैं ॥९४॥ पाण्डवोंने सदा ग्रामीण सुखका त्याग किया है और वह वीरपुरुषों के सुख पर प्रेम रखते हैं, पाण्डव बड़े उत्साही और महाबली हैं वह किसी छोटेसे सुखसे सन्तुष्ट होने वाले नहीं हैं ॥ ९५ ॥ धीरजधारी पण्डित मनुष्य हर एक वस्तुकी पराकाष्ठा (अन्तिम परिणाम) का

भिषा: । उत्तमांश्च परिक्लेशान् भोगांश्चातीवमानुषान् ॥९६॥ अन्तेषु रेमिरे धीरा न ते मध्येषु रेमिरे । अन्तप्राप्तिसुखामाहुर्दुःखमन्तरमेतयोः ॥ ९७ ॥ अभिवादयन्ति भवतीपाण्डवाः सह कृष्णया । आत्मानञ्च कुशलिनं निवेद्याहुरनामयम् ॥ ९८ ॥ अरोगान् सर्वसिद्धार्थान् क्षिप्रन्द्रक्ष्यसि पाण्डवान् । ईश्वरान् सर्वलोकस्य हतामित्रान् श्रिया वृतान् ॥ ९९ ॥ एवमाश्वासिता कुन्ती प्रत्युवाच जनार्दनम् । पुत्राधिभिरभिध्वस्ता निगृह्याबुद्धिजं तमः ॥ १०० ॥ कुन्त्युवाच । यद्यत्तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन । यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा ॥ १०१ ॥ अविलोपेन धर्मस्य अनिकृत्या परन्तप । प्रभावज्ञास्मि ते कृष्ण सत्यस्याभिजनस्य च ॥ १०२ ॥ व्यवस्थायां च

सेवन करते हैं अथवा बड़े२ दुःखोंको सहते हैं और अन्तमें देवताओं केसे अमानुषी ऐश्वर्योंको भोगते हैं, परन्तु ग्राम्यसुखके ऊपर प्रेम रखने वाले मनुष्य तो केवल मध्यम दशाके सुख दुःखको ही चाहते हैं, वह एक साथ उत्तम श्रेणीके सुखको व बड़ेसे बड़े दुःखको नहीं चाहते हैं ॥ ९६ ॥ धीरजधारी पाण्डव भी बड़ेसे बड़े सुखोंमें वा दुःखोंमें मग्न रहते हैं,हर एक वस्तुके अन्तको पा लेना ही सुखदायक होता है परन्तु उसकी मध्यम दशामें रहना दुःखदायक होता है अर्थात् या तो एक साथ दुःखको ही सहना अच्छा है नहीं तो फिर बड़ा भारी राज्य प्राप्त करना चाहिये, परन्तु थोड़ेसे राज्यसे मग्न हुए होना अथवा थोड़ासा दुःख सहना यह मध्यमदशा अच्छी नहीं, क्यों कि-इसमें क्षण २ में दुःख सुख पलटे खाया करते हैं॥९७॥ पाण्डवोंने और द्रौपदीने तुम्हें प्रणाम कहलाया है, और अपना कुशलसमाचार निवेदन करके पूछा है कि--तुम अच्छी तो हो ? ॥ ९८ ॥ तुम अब थोड़े ही समयमें पांडवोंको रोगरहित सब बातोंमें सिद्धि पाये हुए, सब लोगोंके राजा और शत्रुरहित राजलक्ष्मीसे शोभायमान देखोगी श्रीकृष्णजीने कुन्तीको इस प्रकार धीरज देकर शांत किया, तब पुत्रों के दुःखोंसे खिन्न हुई कुन्ती, अज्ञानसे उत्पन्न हुए मोहको दूर करके श्रीकृष्णजीसे कहने लगी ॥१००॥ कुन्ती बोली, कि-हे महाबाहु मधुसूदन कृष्ण! तुमने जो कुछ समझ रक्खा हो और जिसमें पाण्डवोंका हित होता हो वह काम करना १०१ परन्तु हे परन्तप ! उसमें धर्मका लोप न होने पावे और किसीको धोखा भी न देना पड़े, हे कृष्ण ! मैं तुम्हारे सत्य और कुलीनताके प्रभावको जानती हूँ॥१०२॥तुम मित्रोंके

१२-५-२७

मित्रेषु बुद्धिविक्रमयोस्तथा । त्वमेव नः कुलो धर्मस्त्वं सत्यं त्वं तपो महत् ॥ १०३ ॥ त्वं त्राता त्वं महद् ब्रह्म त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । यथैवात्थ तथैवैतत् त्वयि सत्यं भविष्यति ॥ १०४ ॥ वैशम्पायन उवाच । तामामन्त्र्य च गोविन्दः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् । प्रातिष्ठत महाबाहुर्दुर्योधनगृहान् प्रति ॥ १०५ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णकुंतीसम्वादे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

वैशम्पायन उवाच । पृथामामन्त्र्य गोविंदः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिंदमः ॥ १ ॥ लक्ष्म्या परमया युक्तं पुरन्दरगृहोपमम् । विचित्रैरासनैर्युक्तं प्रविवेश जनार्दनः ॥ २ ॥ तस्य कक्ष्या व्यतिक्रम्य तिस्रो द्वाःस्थैरवारितः । ततोऽभ्रघनसंकाशं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥ श्रिया ज्वलन्तं प्रासादमारुरोह महायशाः । तत्र राजसहस्रैश्च कुरुभिश्चाभिसंवृतम् ॥ ४ ॥ धार्त्तराष्ट्रं महाबाहुं ददर्शासीनमासने । दुःशासनञ्च कर्णं च शकुनिञ्चापि सौबलम् ॥५ ॥

कामको ठीक करनेके समय जिस बुद्धि और पराक्रमको दिखाते हो उसको भी मैं जानती हूँ, हमारे कुलमें तुम ही धर्ममूर्त्ति हो तथा तुम ही सत्यमूर्ति हो और तुमही बड़ी भारी तपस्याकी मूर्त्ति हो १०३ पाण्डवोंके रक्षक भी तुम्ही हो, तुम परब्रह्म हो और सब ब्रह्मांड तुम में ही निवास कर रहा है, तुम जो बात कहते हो वह बात अवश्य ही सत्य होती है, इस लिये तुम्हारी कहीहुई बात सत्य होगी ॥ १०४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! फिर महाबाहु भगवान् गोविंद कुन्ती बुआसे आज्ञा ले और उसकी प्रदक्षिणा करके दुर्योधनके राजमहलमें चले गये ॥ १०५ ॥ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! परम कीर्त्ति वाले गोविंद जनार्दन, कुन्तीकी आज्ञा ले उसकी परिक्रमा करके तहाँसे दुर्योधनके राजमहलमें पहुँचनेके लिये चल दिये ॥ १ ॥ जिसमें विचित्र आसन बिछेहुए थे ऐसे परम शोभायमान साक्षात् इन्द्रके राजमहलकी समान दुर्योधनके राजमहलमें जापहुँचे ॥ २ ॥ उस राजमहलकी ड्योढ़ी पर अनेकों द्वारपाल खड़े थे, परन्तु उनको कोई भी नहीं रोक सका भगवान् केशव विना रोकटोक तीन ड्योढ़ियोंको लाँघकर, जल भरे मेघकी समान कान्तिमान् तथा पहाड़के विशाल शिखरकी समान ऊँचे, अपार शोभासे दमकतेहुए राजमहलके ऊपर चढ़ गये ॥ ३-४ ॥

दुर्योधनसमीपे तानासीनान् ददर्श सः। अभ्यागच्छति दाशार्हे धार्तराष्ट्रो महायशाः ॥ ६ ॥ उदतिष्ठत् सहामात्यः पूजयन्मधुसूदनम्। समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः ॥ ७ ॥ राजभिस्तत्र वार्ष्णेयः समागच्छद्यथा वयः। तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम् विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः ॥८॥ तस्मिन् गां मधुपर्कं चाप्युदकञ्च जनार्दने। निवेदयामास तदा गृहान् राज्यञ्च कौरवः ॥९॥ तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम्। उपासाञ्चक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह ॥ १० ॥ ततो दुर्योधनो राजा वार्ष्णेयं जयतां वरम्। न्यमन्त्रयद् भोजनेन नाभ्यनन्दच्च केशवः ॥ ११ ॥ ततो दुर्योधनः कृष्णमब्रवीत् कुरुसंसदि। मृदुपूर्वं शठोदर्कं कर्णमाभाष्य कौरवः १२ कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च। त्वदर्थमुपनीतानि नाग-

और तहाँ घुसकर देखा तो महाबाहु दुर्योधन सब राजा और कौरवों की मंडलीसे घिरकर राजसिंहासन पर बैठा हुआ था, उसके समीप में दुःशासन, कर्ण, और सुबलका पुत्र शकुनि ये भी अपने२ आसनों पर बैठे थे, यदुवंशी मधुसूदन अपने यहाँ अतिथिरूपसे आये हैं यह देखकर महायशवाला धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन उसी समय श्रीकृष्ण-जीका सत्कार करनेके लिये अपने मन्त्रिमण्डल सहित आसन परसे उठ कर खड़ा होगया, भगवान् केशव पहिले दुर्योधनसे और उसके मंत्रियोंसे आलिङ्गन करके मिले फिर तहाँ जितने राजे बैठे थे उनसे भी अवस्थाके अनुसार क्रमसे आलिङ्गन आदि किया, फिर अनेकों प्रकारके बिछौने जिसमें बिछेहुए थे ऐसे अत्यन्त स्वच्छ सोनेके पलंग पर जाबैठे ॥ ५-८ ॥ कुरुराज दुर्योधनने सत्कारके लिये गौ, मधुपर्क जल, अपना राजमहल और अपना राज्य यह सब गोविंदको निवेदन किया ॥९॥ उधर कौरव तथा दूसरे राजे भी प्रसन्नरूप तथा सूर्यकी समान दमकती हुई कांति वाले आसन पर विराजमान श्रीकृष्ण की सेवा करने लगे ॥ १० ॥ तदनन्तर राजा दुर्योधनने विजय पाने वालोंमें श्रेष्ठ यदुपति श्रीकृष्णको भोजनके लिये निमन्त्रण दिया, परन्तु श्रीकृष्णने उसको स्वीकार नहीं किया ॥ ११ ॥ तब कुरुराज दुर्योधनने पुकारकर कर्णका ध्यान अपनी ओरको खेंचते हुए, कौरव-सभामें, परिणाममें शठता भरा परन्तु आरम्भमें कोमलता भरा वचन श्रीकृष्णसे कहा, कि--॥ १२ ॥ हे जनार्दन! तुम्हारे लिये अनेकों प्रकारके भोजन, पीनेके पदार्थ, वस्त्र और शय्या आदि जो

दोऽस्त्वं जनार्दन ॥ १३ ॥ उभयोश्च ददत्साह्यमुभयोश्च हिते रतः । सम्बन्धी दयितश्चासि धृतराष्ट्रस्य माधव ॥ १४ ॥ त्वं हि गोविन्द धर्मार्थौ वेत्थ तत्त्वेन सर्वशः । तत्र कारणमिच्छामि श्रोतुं चक्रगदाधर ॥१५॥ वैशम्पायन उवाच । स एवमुक्तो गोविन्दः प्रत्युवाच महामनाः । उद्यन्मेघस्वनः काले प्रगृह्य विपुलं भुजम् ॥ १६ ॥ अनम्बुकृतमग्रस्तमनिरस्तमसंकुलम् । राजीवनेत्रो राजानं हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् १७ कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह । कृतार्थं मां सहामात्यं समर्चिष्यसि भारत ॥ १८ ॥ एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्त्तराष्ट्रो जनार्दनम् । न युक्तं भवतास्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम् ॥ १९ ॥ कृतार्थं चाकृतार्थं च त्वां वयं मधुसूदन । यतामहे पूजयितुं दाशार्ह न च शक्नुमः ॥२०॥ न च तत्कारणं विद्मो यस्मिन्नो मधुसूदन । पूजां कृतां प्रियमाणैर्नामं-

---

करके रक्खे थे, परन्तु तुमने उसमेंसे कुछ भी स्वीकार नहीं किया इस का क्या कारण है ? ॥ १३ ॥ हे माधव ! तुमने कौरव और पाण्डव दोनोंको सहायता दी है तथा दोनों ओरका हित करनेमें तत्पर रहते हो, तुम हमारे पिता धृतराष्ट्रके प्यारे सम्बन्धी भी हो ॥ १४ ॥ हे गोविन्द ! तुम धर्म और व्यवहारके तत्त्वको पूर्णरीतिसे जानते हो, इसकारण हे चक्र और गदाको धारण करने वाले कृष्ण ! इस सत्कार को ग्रहण न करनेका क्या कारण है, इसको मैं सुनना चाहता हूँ १५ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे राजा जनमेजय ! दुर्योधनने ऐसा कहा, तब उदार मन वाले श्रीकृष्णजी अपनी विशाल दाहिनी भुजाको उठा कर वर्षाकालके मेघकी समान गम्भीर वाणीमें, स्पष्टरूपसे अलग अलग सब अक्षर समझमें आजायँ इस प्रकार उत्तम हेतुभरे तथा उत्तम फल देने वाले वाक्य कहने लगे कि-॥ १६ ॥ १७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यह नियम है, कि-दूत जिस कामके लिये आया हो उस कामको पूरा करनेके अनन्तर भोजन और सत्कारको ग्रहण करे, इस लिये जब मैं अपने काममें सफलता पालूँ तब तुम मेरी और मेरे मन्त्रियोंकी पूजा तथा सत्कार करना ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा, तब दुर्योधन श्रीकृष्णसे कहने लगा, कि-हे मधुसूदन ! आपको हमारे साथ ऐसा अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये आप अपने काममें सफलता पावें या निराश रहें, इस काम को हम कर ही सकेंगे, यह बात नहीं है, तो केवल यदुकुलके संबन्ध को लेकर ही आपका सत्कार करनेको तत्पर हुए हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

स्था पुरुषोत्तम ॥ २१ ॥ वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः। स भवान् प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्त्तराष्ट्रं जनार्दनः। अभिवीक्ष्य सहामात्यं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ २३ ॥ नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात् । न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन ॥ २४ ॥ सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः । न च सम्प्रीयसे राजन् चैवापद्गता वयम् ॥२५॥ अकस्माद् द्वेष्टि वै राजन् जन्मप्रभृति पाण्डवान् । प्रियानुवर्त्तिनो भ्रातॄन् सर्वैः समुदितान् गुणैः ॥ २६ ॥ अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते । धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान् किं वक्तुमर्हति ॥ २७ ॥ यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मा-

---

हे मधुसूदन पुरुषोत्तम ! हम आपको कृतार्थ क्यों नहीं कर सकते ? इसका कारण क्या है सो विचारने पर भी हमारी समझमें नहीं आता, इसलिये हम प्रसन्न होकर जो आपकी पूजा करते हैं, इसका तुम अपमान न करो ॥ २१ ॥ हे गोविन्द ! हमारा आपके साथ वैर नहीं है और आपके साथ हमारी लड़ाई भी नहीं हुई है, इस बात पर अच्छे प्रकार ध्यान देकर आपको ऐसी बातें करना उचित नहीं है२२ वैशम्पायन कहते हैं, कि—दुर्योधनने श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा तब उन्होंने दुर्योधनको और उसके मन्त्रियोंकी ओरको देखकर प्रसन्न मुखसे उत्तर दिया, कि—॥ २३ ॥ मैं कामसे, क्रोधसे, द्वेषसे, धनके लालचसे कपटसे अथवा और किसी लोभसे धर्मको त्यागने वाला नहीं हूँ ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तुम मुझसे भोजन करनेके लिये कहते हो, परन्तु भोजन तो प्रेमसे किया जाता है अथवा कोई आपत्ति आपड़ी हो तब किया जाता है, तुम हमारे साथ प्रेमभाव तो रखते ही नहीं हो और इस समय हमारे ऊपर कोई आपत्ति भी नहीं आपड़ी है,इसलिए हम तुम्हारा अन्न कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? ॥ २५ ॥ हे राजन् ! पाण्डव अपने स्नेहियोंके अनुकूल रहते हैं, तुम्हारे भाई लगते हैं तथा सब गुणोंसे युक्त हैं तो भी तुम जन्मकालसे ही उनके साथ निष्कारण द्वेष करते हो ॥ २६ ॥ पाण्डवोंके साथ विना कारण एक साथ द्वेष करना अनुचित है, पाण्डव अपने धर्ममें स्थिर हैं, फिर कोई उनसे कुछ कह ही कैसे सकता है ? ॥ २७ ॥ जो पुरुष उनके साथ द्वेष करता है वह मेरे साथ द्वेष करता है और जो उनसे मेल रखता है वह मुझसे मेल रखता है, क्योंकि—धर्माचरण करने वाले

मनु । ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ २८ ॥ कामक्रोधानुवर्त्ती हि यो मोहाद्विरुरुत्सति । गुणवन्तञ्च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ २९ ॥ यः कल्याणगुणान ज्ञातीन् मोहाल्लोभाद्दिदृक्षते । सोऽजितात्माऽजितक्रोधो न चिरन्तिष्ठति श्रियम् ॥३१॥ अथ यो गुणसम्पन्नान् हृदयस्याप्रियानपि । प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति ॥ ३१ ॥ सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम् । क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्य्योधनमर्षणम् । निश्चक्राम ततः शुभ्राद्धार्त्तराष्ट्रनिवेशनात् ॥ ३३ ॥ निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः निवेशाय ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥ तमभ्यगच्छद् द्रोणश्च कृपो भीष्मोऽथ बाल्हिकः । कुरवश्च महाबाहुं विदुरस्य गृहे स्थितम् ॥३५॥ त ऊचुर्माधवं वीरं कुरवो मधुसूदनम् । निवेदयामो वार्ष्णेय सरत्नांस्ते गृहान् वयम् ॥३६॥ तानुवाच महातेजाः कौरवान् मधुसूदनः । सर्वे भवन्तो गच्छन्तु सर्वा मेऽ-

---

पांडवोंके साथ मैं एकात्मा होरहा हूँ, इस बातको तुम समझे रहो २८ जो पुरुष काम और क्रोधके वशमें होरहा है तथा मूर्खताके कारणसे गुणवानोंके साथ विरोध करना चाहता है, उनसे द्वेष करता है वह पुरुष अधम कहलाता है ॥ २९ ॥ जो पुरुष लोभसे वा मोहसे अच्छे गुणोंवाले संबन्धियोंकी ओरको कठोर दृष्टिसे देखता है, वह मनको और क्रोधको वशमें न रखनेवाला पुरुष चिरकालतक लक्ष्मीको नहीं भोगता है ॥३१॥ और जो अपने मनको अच्छे न लगनेवाले भी गुणवान् संबन्धियोंको प्रेमसे वशमें करलेता है उसकी प्रशंसा चिरकाल तक रहती है ॥ ३१ ॥ तुम्हारा यह सब अन्न दुष्टोंके संबन्धवाला है इसकारण मेरे ग्रहण करने योग्य नहीं है, मेरी समझमें तो यह आता है, कि-यहाँ केवल एक विदुरका ही अन्न मुझे खाना चाहिये ॥३२॥ महाबाहु श्रीकृष्ण, डाह रखनेवाले दुर्योधनसे ऐसा कहकर दुर्योधनके उस स्वेतमहलमेंसे उठकर चले आये ॥ ३३ ॥ बड़े मनवाले महाबाहु श्रीकृष्णजी ठहरनेके लिये महात्मा विदुरजीके घर चले गये ३४ विदुरजीके घर ठहरे हुए उन महाबाहु श्रीकृष्णजीके पास द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्मजी, वाल्हीक और कितने ही कुरुवंशी मिलनेको गये ३५ उन कौरवोंने मधुसूदन वीर श्रीकृष्णसे कहा, कि-हे वृष्णिवंशी कृष्ण! हम आपको उत्तम २ पदार्थोंसे भरे हुए अनेकों स्थान अर्पण करते हैं आप उनमें चलकर विश्राम करिये ॥ ३६॥ महातेजस्वी श्रीकृष्णने उन

पचितिः कृता ॥ ३७ ॥ यातेषु कुरुषु क्षत्ता दाशार्हमपराजितम् अभ्यर्चयामास तदा सर्वकामैः प्रयत्नवान् ॥ ३८ ॥ ततः क्षत्ताऽन्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च । उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने ॥ ३९ ॥ तैस्तर्पयित्वा प्रथमं ब्राह्मणान्मधुसूदनः । वेदविद्भ्यो ददौ कृष्णः परमं द्रविणान्यपि ॥४०॥ ततोऽनुयायिभिः सार्द्धं मरुद्भिरिव वासवः । विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥ ४१ ॥ ⚘ ⚘ ⚘ ⚘

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्ण-दुर्योधनसम्वादे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

वैशम्पायन उवाच । तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत् नेदं सम्यग्व्यवसितं केशवागमनं तव ॥१॥ अर्थधर्मातिगो मन्दः संरम्भी च जनार्दन । मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः ॥२॥ धर्मशास्त्रातिगो मूढो दुरात्मा प्रग्रहं गतः । अनेयः श्रेयसां मन्दो धार्त्तराष्ट्रो जनार्दन ॥ ३ ॥ कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रध्रुक् सर्वशङ्कितः ।

कौरवोंसे कहा, कि-आप सब लोग जाइये, आपने मेरी सब कुछ पूजा करली ॥३७॥ उन कौरवोंके चलेजानेपर उस समय विदुरजीने किसी से न जीतेजानेवाले श्रीकृष्णकी बड़े प्रयत्नसे पूजा करके उनकी सब कामनायें पूरी करदीं ॥ ३८ ॥ तदनन्तर विदुरजीने महात्मा श्रीकृष्ण जीको पवित्र और गुणोंवाले अनेकों प्रकारके भोजन तथा पीनेके पदार्थ अर्पण किये ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णने उन भोजन और पीनेके पदार्थों से पहिले वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया और उनको दक्षिणामें बहुत सा धन भी दिया ४० फिर जैसे इन्द्र मरुत् देवताओंके साथ बैठकर भोजन करता है तैसे ही श्रीकृष्णने अपने अनुयायियोंके साथ बैठकर विदुरजीके पवित्र और अनेकों प्रकारके भोजनोंको पाया ॥४१॥ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९१ ॥ ⚘ ⚘ ⚘

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! श्रीकृष्णजी जब भोजन करके कुछ आराम करने लगे उस समय विदुरजीने उनसे कहा, कि हे केशव ! आप जो यहाँ आये, यह आपने अच्छे विचारका काम नहीं किया ॥ १ ॥ हे जनार्दन ! दुर्योधन व्यवहार और धर्मकी मर्यादाको लाँघनेवाला, मूढ़, क्रोधी, दूसरोंका मान भङ्ग करनेवाला और अपना मान चाहनेवाला तथा वृद्धोंकी आज्ञा न माननेवाला है ॥२॥ हे जनार्दन! वे दुर्योधन धर्मशास्त्रकी बात न माननेवाला, मूढ़, दुरात्मा, बड़ा हठी, जिसको सुखके मार्गमें लेजाना कठिन है ऐसा अज्ञानी है ॥३॥ वह विषय-

अकर्त्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मा प्रियानृतः। मूढश्चाकृतबुद्धिश्च इन्द्रियाणामनीश्वरः। कामानुसारी कृत्येषु सर्वेष्वकृतनिश्चयः ॥ ५ ॥ एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्दोषैरेव समन्वितः। त्वयोच्यमानः श्रेयोऽपि संरम्भान्न ग्रहीष्यति ॥६॥ भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे जयद्रथे। भूयसीं वर्त्तते वृत्तिं न शमे कुरुते मनः ॥७॥ निश्चितं धार्त्तराष्ट्राणां सकर्णानां जनार्दन। भीष्मद्रोणमुखान् पार्थो न शक्ताः प्रतिवीक्षितुम् ॥८॥ सेनासमुदयं कृत्वा पार्थिवं मधुसूदन। कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः ॥९॥ एकः कर्णः परान् जेतुं समर्थ इति निश्चितम्। धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शमं नोपयास्यति ॥ १० ॥ संविच्च धार्त्तराष्ट्राणां सर्वेषामेव केशव। शमे प्रयतमानस्य तव सौभ्रात्रकांक्षिणः ॥११॥ न पाण्डवानामस्माभिः प्रतिदेयं यथोचितम्। इति व्यवसितास्तेषु वचनं स्या-

भोगोंका कीडा, अपनेको बडा बुद्धिमान् माननेवाला, मित्रोंसे वैर करनेवाला, सबसे शंकित रहने वाला, हर एक काम दूसरोंसे करानेवाला, कृतघ्नी, धर्मको त्यागनेवाला और असत्यसे प्रेम करनेवाला है ४ यह अज्ञानी, बुद्धिहीन, इन्द्रियोंको वशमें न रख सकनेवाला, जीमें आवे सो कर डालनेवाला, और किसी भी कामके परिणामका पहिले विचार न करनेवाला है ॥ ५ ॥ इस दुर्योधनमें ये तथा और भी बहुत से दोष है, तुम इसके भलेकी बात कहोगे तो भी यह क्रोधके कारण उसको मानेगा नहीं ॥ ६ ॥ भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और जयद्रथ, इनके विषयमें इसका यह विचार है, कि-ये सब युद्ध करके मुझे राज्यरूपी बहुतसी आजीविका देदेंगे, इसलिये यह सन्धि करना नहीं चाहता है ॥ ७ ॥ हे कृष्ण! कर्णसहित धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंका निश्चय है, कि-भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य आदिकी ओर को पाण्डव आँख उठाकर भी नहीं देख सकते ॥ ८ ॥ हे मधुसूदन! बुद्धिहीन मूर्ख दुर्योधन, पृथिवी परके सेनाके समूहको इकट्ठा करके अपनेको कृतार्थ मान रहा है ॥९॥ उस दुष्टबुद्धि दुर्योधनको तो यहाँ तक निश्चय है, कि-अकेला कर्ण ही शत्रुओंको जीत सकता है, इस कारण वह सन्धि नहीं करेगा ॥१०॥ हे कृष्ण! तुम सन्धि करानेका उद्योग करते हो और भाइयों भाइयोंमें प्रेम करानेकी इच्छा करते हो, परन्तु धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंने यह प्रतिज्ञा करली है, कि--॥ ११ ॥ पाण्डवोंका जो भाग चाहिये हम उनको वह भी नहीं देंगे; इसलिये ऐसा निश्चय करने वाले उनके सामने आपका कहना निरर्थक

न्निरर्थकम् ॥ ११ ॥ यत्र सूक्तं दुरुक्तञ्च समं स्यान्मधुसूदन । न तत्र प्रलपेत् प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः ॥ १२ ॥ अविजानत्सु मूढेषु निर्मर्यादेषु माधव न त्वं वाक्यं ब्रुवन् युक्तश्चाण्डालेषु द्विजो यथा ॥१३॥ सोऽयं बलस्थ मूढश्च न करिष्यति ते वचः । तस्मिन्निरर्थकं वाक्यमुक्तं सम्पत्स्यते तव ॥१४॥ तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम्। तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते ॥ १६ ॥ दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम्। प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते ॥ १७ ॥ अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रियो दर्पाच्च मोहितः । वयोदर्पादमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति ॥ १८ ॥ बलं बलवदप्यस्य यदि वक्ष्यसि माधव । त्वय्यस्य महती शंका न करिष्यति ते वचः ॥ १९ ॥ नेदमद्य युधा शक्यमिन्द्रेणपि सहामरैः । इति व्यवसिताः सर्वे धार्त्तराष्ट्रा जना-

---

होगा ॥१२॥ हे मधुसूदन ! जहाँ अच्छी बात और खोटी बात एकसी मानी जाती हो तहाँ बुद्धिमान् मनुष्यको कुछ नहीं कहना चाहिये क्यों कि-तहाँ कुछ कहना बहरोंके सामने गानेकी समान वृथा होता है ॥ १३ ॥ हे माधव ! जैसे ब्राह्मणका चांडालोंके साथ बात चीत करना अनुचित मानाजाता है तैसे ही इनअज्ञानी, मूर्ख और मर्यादा को लाँघनेवाले लोगोंके साथ आपका बातें करना उचित नहीं है१४ सो यह दुर्योधन बलवान् भी है और मूढ भी है, इस कारण यह तुम्हारा कहना नहीं करेगा, इसके सामने आपका कहा हुआ वचन निरर्थक हो जायगा॥१५॥हे कृष्ण ! मनमें पाप रखनेवाले ये कौरव जब सब इकट्ठे बैठेहों उस समय तुम इनके बीचमें चलेजाओ तो यह भी इन को अच्छा नहीं लगता है॥१६॥ हे कृष्ण ! ये शिष्टाचारसे शून्य दुष्ट-बुद्धि औरमलिन मनवाले बहुतसे इकट्ठेहोकर बैठे हों औरउससमय तुम इनके बीचमें जाकर इनसे इनके चित्तके प्रतिकूल बात कहो, मुझे तो यह भी अच्छा नहीं मालूम होता ॥१७॥ दुर्योधनने वृद्धोंकी सेवा नहीं की है; और लक्ष्मीके मदमें चूर होरहा है, जवानीका मद चढा हुआ है और उसमें सहनशीलता भी नहीं है इस कारण यह तुम्हारी हितकारी बातको नहीं मानेगा ॥१८॥ हे माधव ! उसकी सेना बल-वान् है और उसको तुम्हारे ऊपर बडी शङ्का है इस कारणसे भी यह तुम्हारा कहना नहीं मानेगा।१९। हे कृष्ण ! सब कौरव मनमें निश्चय कर बैठे हैं, कि-इस समय देवताओं सहित इन्द्र भी हमारे ऊपर चढाई करके हमारे साथ युद्ध करे तो यह हमारे राज्यको नहीं ले

र्द्दन ॥ २० ॥ तेष्वेवमुपपन्नेषु कामक्रोधानुवर्त्तिषु समर्थमपि ते वाक्य-मसमर्थं भविष्यति ॥ २१ मध्ये तिष्ठन् हस्त्यनीकस्य मन्दो रथाश्व-युक्तस्य बलस्य मूढः।दुर्योधनो मन्यते वीतभीतिः कृत्स्ना मयेयं पृथ्वी जितेति ॥ २२ ॥ आशंसते वै धृतराष्ट्रस्य पुत्रो महाराज्यमसपत्नं पृथि-व्याम् । तस्मिन् शमः केवलो नोपलभ्यो बद्धं सन्तं मन्यते लब्धमर्थम्२३ पर्य्यस्तेयं पृथिवी कालपक्वा दुर्य्योधनार्थे पाण्डवान् योद्धुकामाः । समागताः सर्वयोधाः पृथिव्यां राजानश्च क्षितिपालैः समेताः ॥ २४ ॥ सर्वे चैते कृतवैराः पुरस्तात् त्वया राजानो हृतसाराश्च कृष्ण। तवोद्वे-गात् संश्रिता धार्त्तराष्ट्रान् सुसंहताः सह कर्णेन वीराः ॥ २५॥ त्यक्ता-त्मानः सह दुर्योधनेन हृष्टा योद्धुं पाण्डवान् सर्वयोधाः । तेषां मध्ये प्रविशेथा यदि त्वं न तन्मतं मम दाशार्हवीर॥२६॥ तेषां समुपविष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम् । कथं मध्यं प्रपद्येथाः शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ २७ ॥

सकता ।२०। काम और क्रोधके वशमें रहनेवाले कौरव, ऐसा निश्चय कर बैठे हैं, इस कारण यदि तुम्हारा कहना ठीक होगा तो भी उनके सामने निरर्थक होजायगा ॥ २१ ॥ मूढ बुद्धिवाला दुर्योधन जिस समय हाथी, घोड़े और रथोंकी सेनाके बीचमें खड़ा होता है उस समय निर्भय होकर यह समझने लगता है, कि—इस सब पृथिवीको मैंने जीत लिया ॥ २२॥ दुर्योधन पृथिवी परके अपने बड़ेभारी राज्य को शत्रुरहित करना चाहता है,उसके इस स्वार्थमें आपने बाधा डाल दी है तो भी वह समझता है कि–मेरा प्रयोजन अब सिद्ध हुआ, इस कारण उसके साथ केवल सामनीति वर्त्तनेसे काम नहीं चलेगा, किंतु दण्डनीतिकी आवश्यकता है ॥२३॥ दुर्योधनके कारणसे यह विशाल पृथिवी भी अब कालवश परिपक्व होगयी है और इसके विनाशका समय अब आलगा है, क्यों कि-पृथिवी परके सब क्षत्रिय और राजे दुर्योधनका पक्ष लेकर पाण्डवोंके साथ लड़नेकी इच्छासे इकट्ठे हुए हैं ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! जिन राजाओंने पहिले तुम्हारे साथ वैर किया था और इस कारण अपने राज्यको खो बैठे थे वह अब डरके मारे कर्णसे संबन्ध जोड़कर धृतराष्ट्रके पुत्रोंके आश्रयमें आगए हैं ॥ २५ ॥ इतना ही नहीं, किन्तु सब योधा प्रीतिसे दुर्योधनके साथ स्नेह करके प्राणतक देकर पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेको तयार होगए हैं,इसलिए हे दाशार्हवंशी वीर कृष्ण ! आप कौरवोंकी सभामें जायँ इस बातको मैं अच्छा नहीं मानता ॥ २६ ॥ हे शत्रुओंका संहार करनेवाले कृष्ण!

सर्वथा त्वं महाबाहो देवैरपि दुरुत्सहः। प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जानामि तव शत्रुहन् ॥ २८ ॥ या मे प्रीतिः पाण्डवेषु भूयः सा त्वयि माधव। प्रेम्णा च बहुमानाच्च सौहृदाच्च ब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥ या मे प्रीतिः पुष्कराक्ष त्वद्दर्शनसमुद्भवा। सा किमाख्यायते तुभ्यमन्तरात्मासि देहिनाम् ॥ ३० ॥ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्ण विदुरसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

श्रीभगवानुवाच। यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयाद्विचक्षणः। यथा वाच्यस्त्वद्विधेन भवता मद्विधः सुहृत् ॥ १ ॥ धर्मार्थयुक्तं तथ्यञ्च यथा त्वय्युपपद्यते। तथा वचनमुक्तोऽस्मि त्वयैतत् पितृमातृवत् ॥ २ ॥ सत्यमात्तञ्च युक्तं चाप्येवमेव यथात्थ माम्। शृणुष्वागमने हेतुं विदुरावहितो भव ॥ ३ ॥ दौरात्म्यं धार्त्तराष्ट्रस्य क्षत्रिया-

---

यह दुष्टचित्तवाले बहुतसे इकट्ठे होकर बैठे होंगे तुम उन शत्रुओंके बीचमें क्यों जाते हो ? ॥ २७ ॥ परन्तु हे महाबाहु कृष्ण ! आपको तो देवता भी नहीं सहसकते, हे शत्रुओंका संहार करनेवाले कृष्ण ! मैं तुम्हारे प्रभावको, बलको और बुद्धिको जानता हूँ ॥२८॥ हे माधव ! मेरा प्रेम जैसा पाण्डवोंके ऊपर है तैसा ही तुम्हारे ऊपर भी है, इस लिए आज मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ वह तुम्हारे ऊपर प्रेमभाव होनेसे और आपकी ओर सन्मानकी दृष्टि होनेसे तथा मित्रभावसे कहता हूँ ॥ २९ ॥ हे कमलनयन ! आपका दर्शन होनेसे मुझे आपके ऊपर जितना प्रेमभाव उमड़ा है, उसका मैं आपसे क्या वर्णन करूँ ! तुम देहधारियोंके अन्तरात्मा हो, इसकारणसे सब कुछ जानते हो ३० बानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९२ ॥ ❋ ❋

श्रीकृष्ण बोले, कि-हे विदुर जी ! परम बुद्धिमान् पुरुषको जैसा कहना चाहिए, समझदार पुरुषको जैसा कहना चाहिए, और मुझ सरीखे प्रेमपात्रसे आप सरीखे पुरुषको जैसा कहना चाहिए ॥ १ ॥ और धर्म तथा व्यवहारके अनुकूल जो सत्य बात कहना आपको शोभा देसकता है तैसे ही आपने मुझसे माता और पिताकी समान हितकी बात कही है ॥ २ ॥ आपने मुझसे जो सत्य, परम विश्वासके योग्य और उचित बात कही है वह ठीक ही है, हे विदुरजी ! अब तुम सावधान होकर मेरे आनेका कारण सुनो ॥ ३ ॥ हे विदुरजी ! मैं दुर्योधनका दुष्टात्मापन और क्षत्रियोंका वैर इन सब बातोंको जानता

णाञ्च चैरताम् । सर्वमेतदहं जानन् क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान् ॥ ४ ॥ पर्य्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम् । यो मोचयेन्मृत्युपाशात् प्राप्नुयाद्धर्ममुत्तमम् ।५। धर्मकार्य्यं यतन् शक्त्या नो चेत् प्राप्नोति मानवः । प्राप्तो भवति तत् पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः ॥ ६ ॥ मनसा चिन्तयन् पापं कर्मणा नातिरोचयन् । न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ७ ॥ सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्त्तुममायया । कुरूणां सृञ्जयानाञ्च संग्रामे विनशिष्यताम् ॥८॥ सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता । कर्णदुर्योधनकृता सर्वे ह्येते तदन्वयाः ९ व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते । अनर्थाय यथाशक्ति तं नृशंसं विदुर्बुधाः ॥ १० ॥ आकेशग्रहणान्मित्रमकार्य्यात् सन्निवर्त्तयन् । अवाच्यः कस्यचिद्भवति कृतयत्नो यथाबलम् ॥ ११ ॥ तं समर्थं शुभं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् धार्त्तराष्ट्रः सहामात्यो ग्रहीतुं विदुरार्हति १२

हूँ परन्तु इस समय सन्धि करानेके लिए कौरवोंके पास आया हूँ ।४। घोड़े, रथ और हाथियों सहित छिन्न भिन्न हुई सब पृथिवीको जो पुरुष मृत्युकी फाँसीसे छुड़ावे उसको उत्तम धर्म (पुण्य) की प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ जो पुरुष मनुष्यधर्मका काम करनेके लिये यथाशक्ति उद्योग करताहुआ भी उस कार्यको नहीं करसके तो भी उसको उस का पुण्य मिलता है, इस विषयमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ मनमें खोटा कर्म करनेका विचार हो परंतु उसको इन्द्रियादिके द्वारा नहीं करे, तो उस पापका फल नहीं मिलता; ऐसा धर्मको जानने वाले कहते हैं ॥ ७ ॥ हे विदुरजी ! कौरव और सृञ्जयोंका संग्राममें नाश न होजाय, इस लिये मैं दोनोंको निष्कपटभावसे सन्धि करानेके लिये आया हूँ ॥ ८ ॥ यह महाभयानक विपत्ति कौरवोंमेंसे ही खड़ी हुई है और इसको कर्ण तथा शकुनिने उत्पन्न किया है ये सब कौरव दुर्योधन और कर्णके कहनेमें चलते हैं ॥ ९ ॥ जो मित्र दुःखसे पीड़ा पाते हुए अपने मित्रकी शक्तिके अनुसार सहायता नहीं करता है उस क्रूर मित्रको विद्वान् पुरुष अनर्थकारी जानते हैं ॥ १० ॥ मित्र अनुचित काम करता हो तो उसकी चोटी पकड़कर भी अपना वश चले तहाँ तक उसको अनुचित काम करनेसे रोकनेका उद्योग करे तो उस पुरुषको कोई भी निन्दा नहीं कर सकता है ॥ ११ ॥ हे विदुरजी ! दुर्योधनको और उसके मंत्रियोंको मेरी शुभ हितकारी, धर्म और व्यवहारके अनुकूल बात माननी चाहिये ॥१२॥ मैं निष्कपटभावसे ऐसा

हितं हि धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां तथैव च। पृथिव्यां क्षत्रियाणां च यतिष्येऽहममायया ॥ १३ ॥ हिते प्रयतमानं मां शंके दुर्योधनो यदि। हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं च भविष्यति ॥ १४ ॥ ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते सर्वयत्नेन माध्यस्थ्यं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः१५ न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा। शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान् कुरुपाण्डवान् ॥ १६ ॥ उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत। तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥ १७ ॥ मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम्। न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति १८ अहापयन् पांडवार्थं यथावच्छमं कुरूणां यदि चाचरेयम्। पुण्यञ्च मे स्याच्चरितं महात्मन् मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात् ॥१९॥ अपि वाचं भाषमाणस्य काव्यां धर्मारामामर्थवतीमहिंस्राम्। अवेक्षेरन् धार्तराष्ट्राः शमार्थं मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः२०न चापि मम पर्याप्ताः सहिताः सर्वपार्थिवाः। क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं सिंहस्येवेतरे मृगाः २१ वैशम्पा-

---

उद्योग करूँगा, कि-जिसमें पाण्डवोंका, कौरवोंका तथा सब क्षत्रियों का हित हो और हितकारी कामके लिये उद्योग करने पर भी यदि दुर्योधन मेरी बात पर सन्देह करेगा तो मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा और मेरे हृदय परसे ऋणका बोझा उतर जायगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ यदि संबन्धियोंमें आपसमें फूट पड़जाय उस समय जो पुरुष अपने सब प्रकारके उद्योगसे मित्रको सहायता नहीं करता है ऐसे मध्यस्थ पुरुष को विद्वान् मित्र नहीं मानते हैं ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण सन्धि करा सकते थे तो भी उन्होंने क्रोधके आवेशमें आये हुए कौरव पाण्डवोंको रोका नहीं ॥ १६ ॥ यह बात मेरे मूढ अधर्मी शत्रु मुझसे न कहें, इसलिये इन दोनोंमें सन्धि करानेके लिये मैं यहाँ आया हूँ और इस काममें उद्योग करके मैं मनुष्योंमें निर्दोष होजाऊँगा ॥ १७ ॥ मूर्ख दुर्योधन यदि मेरी धर्म और व्यवहारके अनुकूल बातको नहीं मानेगा तो वह अपने भाग्यके अनुसार फल पावेगा ॥ १८ ॥ यदि मैं पाण्डवोंके लाभ को नष्ट न होने देकर कौरव पांडवोंमें संधि करासकूँ तो हे महात्मन्! मुझे पुण्य हो और कौरव मृत्युकी फाँसीमेंसे छूट जायँ ॥१९॥ मैं जब कौरवोंसे धर्म, अर्थ और दयाभरी नीतिको बातें कहना आरम्भ करूँगा उस समय धृतराष्ट्रके पुत्र मेरी ओरको देखेंगे और मैं संधिके लिये आया हूँ, ऐसा समझ कर मेरा सत्कार भी करेंगे ॥ २० ॥ जैसे कोपमें भरेहुए सिंहके सामने पशु खड़े नहीं रहसकते हैं तैसे ही अब

यन उवाच । इत्येवमुक्त्वा वचनं वृष्णीनामृषभस्तदा । शयने सुख-संस्पर्शे शिश्ये यदुसुखावहः ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्ण-वाक्ये त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

वैशम्पायन उवाच । तथा कथयतोरेव तयोर्बुद्धिमतोस्तदा । शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥ धर्मार्थकामयुक्ताश्च विचित्रार्थपदाक्षराः । शृण्वतो विविधा वाचो विदुरस्य महात्मनः २ कथाभिरनुरूपाभिः कृष्णस्यामिततेजसः । अकामस्येव कृष्णस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ ३ ॥ ततस्तु स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः । शंखदुन्दुभिनिर्घोषैः केशवं प्रत्यबोधयन् ॥ ४ ॥ तत उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम् । सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्य्यं जनार्दनः ५ कृतोदकानुजप्यः स हुताग्निः समलंकृतः । ततश्चादित्यमुद्यन्तमुपातिष्ठत माधवः ॥ ६ ॥ अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः । सन्ध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम् ७ आचक्षेतान्तु कृष्णस्य

मैं क्रोधमें भरजाऊँगा उस समय मेरे सामने भी ये इकट्ठेहुए सब राजे खड़े नहीं रहसकेंगे ॥ २१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय ! यादवोंको आनन्द देने वाले तथा वृष्णियोंमें उत्तम श्रीकृष्णजी इस प्रकार विदुरजीसे कहकर जिसको स्पर्श करनेमें सुख मिले ऐसे पलँग पर पौढ रहे ॥ २२ ॥ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९३ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार उन दोनों बुद्धिमानोंको आपसमें बातें करते २ ही वह नक्षत्रों वाली कल्याण-कारिणी रात बीत गई ॥ १ ॥ विचित्र पद, अक्षर और अर्थों वाली धर्म अर्थ तथा कामनामयी अनेकों बातोंको सुननेमें महात्मा विदुर-जीने सब रात बितादी ॥ २ ॥ परमतेजस्वी कामनारहित श्रीकृष्णजी को प्रसङ्गके अनुसार बातें करते २ वह रात बीत गई ॥३॥ तदनन्तर (प्रातःकाल होते ही) मधुर स्वरवाले सूत और मागधोंने स्तुतियों के साथ शंख और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे श्रीकृष्णजीको जगा दिया ४ सकल यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजीने भी उठ कर प्रातःकालके समय समय करने योग्य सब आवश्यक कर्म किया ॥ ५ ॥ माधवने स्नान करके जप किया, फिर उदय होतेहुएसूर्यनारायणका उपस्थान किया और फिर अग्निहोत्र करके चन्दन भूषण आदि धारण किये ॥ ६ ॥ इतनेमें ही जहाँ किसीसे भी न जीते जाने वाले यदुवंशी श्रीकृष्णजी

धृतराष्ट्रं समागतम् । कुरुंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान् ॥ ८ ॥ त्वामर्थयन्ते गोविन्द दिवि शक्रमिवामराः । तावभ्यनन्दद् गोविन्दः साम्ना परमवल्गुना ॥ ९ ॥ ततो विमल आदित्ये ब्राह्मणेभ्यो जनार्दनः ददौ हिरण्यं वासांसि गाश्चाश्वांश्च परन्तपः ॥ १० ॥ विसृज्य बहुरत्नानि दाशार्हमपराजितम् । तिष्ठन्तमुपसंगम्य ववन्दे सारथिस्तदा ॥ ११ ॥ ततो रथेन शुभ्रेण महता किंकिणीकिना । हयोत्तमयुजा शीघ्रमुपातिष्ठत दारुकः ॥ १२ ॥ तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः । महाभ्रघननिर्घोषं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ १३ ॥ अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा ब्राह्मणांश्च जनार्दनः । कौस्तुभं मणिमामुच्य श्रिया परमया ज्वलन् ॥ १४ ॥ कुरुभिः संवृतः कृष्णो वृष्णिभिश्चाभिरक्षितः । आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः ॥ १५ ॥ अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित् । सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वबुद्धिमतां वरम् ॥ १६ ॥

संध्यावंदन कर रहे थे तहाँ दुर्योधन और सुबलके पुत्र शकुनिने आकर ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णजीसे कहा, कि—राजा धृतराष्ट्र, भीष्म आदि कुरुवंशी राजे तथा अन्य सब राजे सभामें आगये हैं ॥ ८ ॥ और हे गोविन्द ! जैसे सब देवता स्वर्गमें बैठे हुए इन्द्रकीबाट देखा करते हैं तैसे ही सब राजे बैठेहुए तुम्हारी बाट देखरहे हैं और उन्होंने प्रार्थना की है कि-आप पधारिए, श्रीकृष्णने भी अतिमिठास भरी शान्तिदायक वाणीमें उन दोनोंसे कहा, कि-बहुत अच्छा ॥ ९ ॥ इतनेमें ही सूर्यदेव स्पष्टरूपसे ऊपरको चढ़ आए, और परन्तप श्रीकृष्णने ब्राह्मणों को सुवर्ण, वस्त्र, गौएँ, घोड़े तथा अनेकोंप्रकारके उत्तम २ पदार्थ दान करके दिये, तदनन्तर निबटकर बैठे ही थे, कि-सारथिने किसी से न जीते जानेवाले यदुवंशी श्रीकृष्णजीके पास आकर उनको प्रणाम किया ॥ १०-११ ॥ और सुन्दर घोड़ोंसे जुताहुआ घंटियोंवाला एक सफेद रङ्गका बड़ाभारी रथ तुरंत उनके समीप लाकर खड़ा कर दिया ॥ १२ ॥ वह रथ देवलोकका था और उसके चलनेमें बड़े भारीमेघके गरजनेकेसा शब्द होता था, वह सब प्रकारके रत्नोंसे दमक रहा था श्रीकृष्णजीने अग्निकी और ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके कण्ठमें कौस्तुभमणिको पहिरा । इस समय उनकी बड़ी भारी शोभा हुई, फिर सकल यादवोंको आनन्द देने वाले श्रीकृष्णजी कौरवोंसे घिरकर वृष्णियोंकी रक्षामें उस दिव्य रथके पास आकर उसमें बैठगए ॥ १३-१५ ॥ सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ और सकल

ततो दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौवलः। द्वितीयेन रथेनैनमन्वयातां परन्तपम् ॥ १७ ॥ सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनाञ्चापरे रथाः। पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं गजैरश्वै रथैरपि ॥ १८ ॥ तेषां हेमपरिष्कारैर्युक्ताः परमवाजिभिः गच्छतां घोषिणश्चित्ररथा राजन् विरेजिरे ॥१९॥ संमृष्टसंसिक्तरजः प्रतिपेदे महापथम्। राजर्षिचरितं काले कृष्णो धीमान् श्रिया ज्वलन् ।२०। ततः प्रयाते दाशार्हे प्रावाद्यन्तैकपुष्कराः। शंखाश्च दध्मिरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च २१ प्रवीराः सर्वलोकस्य युवानः सिंहविक्रमाः। परिवार्य्य रथं शौरेरगच्छन्त परन्तपाः ॥२२॥ ततोऽन्ये बहुसाहस्रा विचित्राद्भुतवाससः। असिप्रासायुधधराः कृष्णस्यासन् पुरः सराः ॥ २३ ॥ गजाः पञ्चशतास्तत्र रथाश्चासन् सहस्रशः। प्रयान्तमन्वयुर्वीरं दाशार्हमपराजितम्। २४। पुरं कुरूणां संवृत्तं द्रष्टुकामं जनार्द्दनम्। सबालवृद्धं सस्त्रीकं रथ्यागतमरिन्दम ॥ २५ ॥वेदि-

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी रथमें बैठे कि—उनके पीछे सकल धर्मोंको जानेवाले विदुरजी भी बैठगए ॥ १६ ॥ दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि दूसरे रथमें बैठकर परन्तप श्रीकृष्णजीके पीछे २ चलदिये१७ सात्यकी, कृतवर्मा तथा और भी वृष्णि राजे रथोंमें बैठ कर, कितने हाथियों पर घोडों पर तथा दूसरी सवारियों पर बैठकर श्रीकृष्णजी के पीछे २ चल दिये ॥ १८ ॥ हे राजन्! उन जानेवालोंके रथ सोनेके पत्तरसे जड़े हुए उत्तमोत्तम घोडोंसे जुते हुए, चलते में घनघनाहट शब्द करनेवाले तथा अनेकों प्रकारके चित्रोंसे सजे हुए होनेके कारण दिपरहे थे ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् और लक्ष्मीसे दिपनेवाले श्रीकृष्णजी, झाड़ बुहारकर छिड़काव करानेसे जिसमेंकी धूलि दवादी गयी है और जिसमें पहिले राजर्षि विचरा करते थे ऐसे राजमार्गमें आपहुँचे ।२०। उस समय तहाँ झाझें बज रहीं थीं, शंखध्वनि होरही थी तथा और भी जो कुछ बाजे थे वह बज रहे थे ॥२१॥ शत्रुओंको दुःख देनेवाले, सिंहकी समान पराक्रमी तरुण अवस्थाके योधा श्रीकृष्णजीके रथको घेरकर चल रहे थे ॥ २२ ॥ इसके सिवाय अनेकों सहस्र योधा नाना प्रकारके अद्भुत वस्त्र पहरकरऔर तलवार भाले आदि हथियार हाथोंमें लेकर श्रीकृष्णजीके आगे २ चल रहे थे ॥ २३ ॥ उस समय जाते हुए दाशार्हवंशी अजित श्रीकृष्णजीके पीछेपाँचसौ हाथी और हजारों रथ चल रहे थे ॥ २४ ॥ हे शत्रुदमन राजन्! श्रीकृष्णजीका दर्शन करनेकी इच्छासे बालक बूढे और स्त्रियों सहित कौरवोंका सारा

कालाश्रिताभिश्च समाक्रान्तान्यनेकशः । प्रचलन्तीव भारेण योषिद्भिर्भवनान्युत ॥ २६ ॥ स पूज्यमानः कुरुभिः संशृण्वन् मधुराः कथाः यथार्हं प्रतिसत्कुर्वन् प्रेक्षमाणः शनैर्ययौ ॥२७॥ ततः सभां समासाद्य केशवस्यानुयायिनः । शङ्खैर्वेणुनिर्घोषैर्दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥२८॥ ततः सा समितिः सर्वा राज्ञाममिततेजसाम् । सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकांक्षया ॥२९॥ ततोऽभ्यासगते कृष्णे समहृष्यन्नराधिपाः श्रुत्वा तं रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् । ३० । आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम् । अवतीर्य रथाच्छौरिः कैलासशिखरोपमात् ३१ नवमेघप्रतीकाशां ज्वलन्तीमिव तेजसा । महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः । ३२ । पाणौ गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः । ज्योतींष्यादित्यवद्राजन् कुरून् प्राच्छादयन् श्रिया ॥ ३३ ॥ अग्रतो वासु-

---

नगर घरोंमेंसे निकल कर गलियोंमें आगया था ॥ २५ ॥ स्त्रियें श्री-कृष्णजीका दर्शन करनेके लिये घरोंकी छतों पर चढ़ गयी थीं, इस कारण मानों उनके बोझसे दबे हुए सब घर डगमगाते हुएसे प्रतीत होते थे ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णजी जहाँ तहाँ कौरवोंसे सन्मान पाते, मीठी मीठी बातें सुनते, उनका यथायोग्य सन्मान करते और आसपासकी सुन्दरता देखतेहुए धीरे २ आगेको बढ़ने लगे ॥ २७ ॥ तदनन्तर श्री-कृष्णजी ज्यों ही कौरवोंके सभाभवनके पास आकर पहुँचे कि-उनके अनुचरोंने शङ्ख और बाँसुरियोंके शब्दोंसे दिशाओंको प्रतिध्वनित करदिया ॥ २८ ॥ बाजोंके शब्दको सुन कर परमतेजस्वी राजाओंकी वह सब सभा, जो श्रीकृष्णजीके आनेकी बाट देख रही थी वह हर्षके वेगसे चल विचल होगयी । २९ । तदनन्तर श्रीकृष्णजी सभाभवनके पास आ पहुँचे और मेघकी गर्जनेकी समान श्रीकृष्णजीके रथकी घरघराहटको सुन कर वह राजे बड़े हर्षमें भर गये ॥ ३० ॥ तदनंतर यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजीका रथ कौरवोंके सभाभवनके द्वार पर आ पहुँचा और श्रीकृष्णजी कैलास पर्वतके शिखरकी समान उस रथमें से नीचे उतर कर ॥ ३१ ॥ नवीन मेघकी समान दीखती हुई, तेजसे दिपनेवाली और राजा इन्द्रके महलकी समान सुन्दर उस कौरवसभा में गये ॥३२॥ जिनका बड़ा भारी यश है ऐसे श्रीकृष्णजी विदुरजीका और सात्यकीका हाथ पकड़ कर राजसभामेंको घुसने लगे उससमय हे राजन् ! जैसे सूर्य अपने तेजसे दूसरे तेजस्वी पदार्थोंको फीका कर देता है तैसे ही उन्होंने अपने शरीरकी कान्तिसे सब कौरवोंको

देवस्य कर्णदुर्योधनावुभौ। वृष्णयः कृतवर्मा चाप्यसन् कृष्णस्य पृष्ठतः धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य भीष्मद्रोणादयस्ततः।आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयंतो जनार्दनम्३५अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः।सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः३६उत्तिष्ठति महाराजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे तानि राजसहस्राणि समुत्तस्थुः समंततः ॥ ३७ ॥ आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम्। कृष्णार्थे कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात् ३८ स्मयमानस्तु राजानं भीष्मद्रोणौ च माधवः। अभ्यभाषत धर्मात्मा राज्ञश्चान्यान् यथावयः ॥ ३९ ॥ तत्र केशवमानर्चुः सम्यगभ्यागतं सभां। राजानः पार्थिवाः सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥४०॥ तत्र तिष्ठन् स दाशार्हो राजमध्ये परन्तपः। अपश्यदन्तरिक्षस्थानृषीन् परपुरञ्जयः ततस्तानभिसम्प्रेक्ष्य नारदप्रमुखानृषीन् ॥ ४१ ॥ अभ्यभाषत दाशार्हो भीष्मं शांतनवं शनैः। पार्थिवीं समितिं द्रष्टुमृषयोऽभ्यागता नृप४२ निमन्त्र्यतामासनैश्च सत्कारेण च भूयसा। नैतेष्वनुपविष्टेषु शक्यं केन-

---

निस्तेज करडाला ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी जिस समय सभामें पहुँचे उस समय कर्ण और दुर्योधन उनके आगे २ चलते थे और कृतवर्मा तथा वृष्णि उनके पीछे २ चलते थे ॥३०॥ श्रीकृष्णजीके मध्य सभामें पहुँच जाने पर भीष्म और द्रोणाचार्य आदि वृद्ध पुरुष धृतराष्ट्रको आगे करके श्रीकृष्णजीका आदर करनेके लिये अपने २ आसनों परसे खड़े होगये, बड़ी कीर्त्तिवाले महाराज धृतराष्ट्र ज्यों ही भीष्म और द्रोणाचार्य सहित अपने आसन परसे खड़े हुए कि, चारों ओरसे और सहस्रों राजे भी खड़े होगये ॥ ३५ ॥ उस सभामें धृतराष्ट्रकी आज्ञासे श्रीकृष्णजीके लिये सुनहरी कामसे सजाया हुआ सर्वतोभद्र नामका सिंहासन लगाया गया था ॥३८॥ परन्तु धर्मात्मा श्रीकृष्ण भगवान्ने उस सिंहासन पर न बैठ कर खड़े २ ही मन्द २ हँस कर राजा धृतराष्ट्र, भीष्मजी, द्रोणाचार्य तथा और भी जो राजे थे उनके साथ अवस्थाके अनुसार बातें करीं ३९ तहाँ सब राजाओंने तथा कौरवों ने सभामें आये हुए श्रीकृष्णजीका अच्छे प्रकारसे पूजन किया४०उस समय परन्तप श्रीकृष्णजीने सभामें खड़े २ ही आकाशमें विराजमान नारदादि ऋषियोंको देख धीरेसे शांतनुनन्दन भीष्मजीसे कहा कि-हे राजन्! ऋषि पृथिवीकी राजसभाको देखनेके लिये आकर अंतरिक्ष में खड़े हैं ॥ ४१-४२ ॥ इस लिये आप उनका पूरा २ सत्कार करके बुलाओ तथा बैठनेके लिये आसन दो क्योंकि उनके बैठे बिना कोई

चिदासितुम् ॥ ४३ ॥ पूजा प्रयुज्यतामाशु मुनीनां भावितात्मनाम् । ऋषीन् शांतनवो दृष्ट्वा सभाद्वारमुपस्थितान् ॥ ४४ ॥ त्वरमाणस्ततो भृत्यानासनानीत्यचोदयत् । आसनान्यथ मृष्टानि महांति विपुलानि च ॥४५॥ मणिकाञ्चनचित्राणि समाजह्रुस्ततस्ततः । तेषु तत्रोपविष्टेषु गृहीतार्घ्येषु भारत ॥ ४६ ॥ निषसादासने कृष्णो राजानश्च यथासनम् । दुःशासनः सात्यकये ददावासनमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ विविंशतिर्ददौ पीठं काञ्चनं कृतवर्मणे । अविदूरे तु कृष्णस्य कर्णदुर्योधनावुभौ ॥ ४८ ॥ एकासने महात्मानौ निषीदतुरमर्षणौ । गान्धारराजः शकुनिर्गान्धारैरभिरक्षितः ॥ ४९ ॥ निषसादासने राजा सहपुत्रो विशाम्पते । विदुरो मणिपीठे तु शुक्लस्पर्ध्याजिनोत्तरे ॥ ५० ॥ संस्पृशन्नासनं शौरेर्महामतिरुपाविशत् । चिरस्य दृष्ट्वा दाशार्हं राजानः सर्व एव ते ॥ ५१ ॥ अमृतस्येव नातृप्यन् प्रेक्षमाणा जनार्दनम् । अतसीपुष्पसङ्काशः पीतवासा जनार्दनः ॥ ५२ ॥ व्यभ्राजत सभामध्ये हेम्नीवोपहितो मणिः ॥ ५३ ॥

भी नहीं बैठ सकेगा॥४३॥इन पवित्र चित्तवाले मुनियोंकी शीघ्र ही पूजा करनी चाहिये, यह सुन कर भीष्मजीने आँख उठा कर देखा तो सब ऋषि सभाके द्वार पर उपस्थित हैं॥४४॥तब तो शीघ्रतासे सेवकोंको आज्ञा दी, कि-आसन लाओ, तब तो सेवक जहाँ तहाँसे मणियें जड़े हुए सोनेके बड़े २ बहुतसे आसन ले आये, उन आसनोंपर तहाँ वह ऋषि जब बैठ गये तो हे भारत ! उनको अर्घ दिया गया ॥४५॥४६॥ तब श्रीकृष्णजी अपने आसन पर बैठे तदनन्तर और राजे भी अपने२ आसनों पर बैठ गए, उस समय दुःशासनने सात्यकीको एक उत्तम आसन दिया ॥ ४७ ॥ विविंशतिने कृतवर्माको सुवर्णका आसन दिया श्रीकृष्णजीसे कुछ एक दूरपर डाह करनेवाले महात्मा कर्ण और दुर्योधन एक आसन पर बैठे, हे राजन् ! गांधार देशका राजा शकुनि, गान्धार देशके पुरुषोंसे सुरक्षित होकर अपने पुत्रोंके साथ एक ऊंचे सिंहासन पर बैठा, महाबुद्धिमान् विदुरजी श्रीकृष्णके आसनके पास ही जिसपर श्वेत रङ्गकी बहुमूल्य मृगछाला बिछीहुई थी ऐसे मणियों से जड़े सिंहासनके ऊपर बैठे, हे राजन् ! सब राजे श्रीकृष्णजीका बहुत दिनोंमें दर्शन करके, जैसे अमृतसे तृप्त नहीं होते हैं तैसे ही उनके दर्शनसे तृप्त नहीं हुए, उस समय श्रीकृष्णजीके शरीरका वर्ण अलसीके फूलकी समान था और शरीर पर पीताम्बर ओढ़े हुए थे, इस कारण मध्यमें सुवर्णसे मँढे हुए मणिकी समान शोभा पाते

ततस्तूर्ष्णी सर्वमासीद् गोविन्दगतमानसम् । न तत्र कश्चित् किंचिद्धा व्यजहार पुमान् क्वचित् ॥ ५४ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्ण-
सभाप्रवेशे चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

वैशम्पायन उवाच। तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु । वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः ॥ १ ॥ जीमूत इव घर्मान्ते सर्वां संश्रावयन् सभाम् । धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः ।२। श्रीभगवानुवाच । कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत । अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥ ३ ॥ राजन्नान्यत् प्रवक्तव्यं तव नैःश्रेयसं वचः । विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिन्दम।४। इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव।श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः।५ कृपानुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यञ्च भारत । तथार्ज्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद्विशिष्यते ॥ ६ ॥ तस्मिन्नेवंविधे राजन् कुले महति तिष्ठति ।

थे।।४८-५३।। उस सभामें सबके मन श्रीकृष्णमें लगे हुए थे,इसकारण सब चुपचाप बैठे हुए थे, कोई भी पुरुष कुछ भी नहीं बोलता था।५४ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९४ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजन् जनमेजय ! जब सभामें सब राजे मौन होकर बैठ गये तब सुन्दर दाँत और दुन्दुभीकी समान गंभीर स्वर वाले श्रीकृष्णजी राजा धृतराष्ट्रकी ओरको देखते हुए जैसे वर्षामें मेघ गरजता है तैसेही गरजकर सब सभाको सुनातेहुए कहने लगे१-२ श्रीभगवान् बोले, कि-हे भरतवंशी राजन् ! वीर पुरुषोंका नाश हुए विना ही कौरव पाण्डवोंमें मेल होजाय, यह प्रार्थना करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ ।।३।। हे शत्रुदमन राजन् ! मुझे इसके सिवाय और कोई हितकारी अपनी बात ओरसे नहीं कहनी है जानने योग्य और सब बातें आपको मालूम ही हैं।।४।। हे राजन् ! इस समय यह कुरुका कुल सब राजाओंमें श्रेष्ठ माना जाता है, शास्त्र और सदाचारसे युक्त है तथा सकल गुणोंसे दिप रहा है ।।५।। हे भारत ! कुरुवंशियोंमें कृपा (औरोंको सुख पहुँचानेके लिये उद्योग करना) अनुकम्पा (दूसरोंको दुःखी देख कर खिन्न होना) करुणा, (दूसरोंके दुःख दूर करनेका उद्योग करना), दयालुता, सरलता, क्षमा और सत्य ये सब गुण औरोंसे विशेष हैं ।।६।। हे राजन् ! ऐसे गुणोंके कारणसे परमप्रतिष्ठा पाये हुए कुरुकुलमें तुम्हारे कारणसे इस समय उलटे गुण देखनेमें आ

त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम् ॥७॥ त्वं हि धारयिता श्रेष्ठः कुरूणां कुरुसत्तम। मिथ्याप्रचरतां तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ॥ ८॥ ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः । धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरंति नृशंसवत् ॥९॥ अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः । स्वेषु बंधुषु मुख्येषु तद्वेत्थ पुरुषर्षभ ॥१०॥ सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता उपेक्ष्यमाणो कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति । ११ । शक्या चेयं शमयितुं न चेदिच्छसि भारत। न दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ१२ त्वय्यधीनः शमो राजन् मयि चैव विशाम्पते। पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् ॥ १३ ॥ आज्ञा तव हि राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहान्वयैः । हितं बलवदप्येषां तिष्ठतो तव शासने ॥ १४ ॥ तव चैव हितं राजन् पाण्डवानामथो हितम् । शमे प्रयतमानस्य तव शासन-

रहे हैं यह उचित नहीं है७हे कौरवोंमें श्रेष्ठ राजन्! जुआ खेलना आदि बाहरी और लाखका भवन बनवाना आदि भीतरी कपटका व्यवहार करने वाले कौरवोंको रोकनेवाले तुम ही हो ॥८॥ हे कुरुवंशी राजन्! यह दुर्योधन आदि तुम्हारे धर्म और व्यवहारकी कुछ परवाह न करके क्रूरकी समान आचरण करते हैं । ९ । हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारे पुत्र अपने मुख्य भाइयोंके साथ ओछेपनका बर्ताव करते हैं, उन्होंने मर्यादाको तोड़ दिया है और लोभके कारणसे उनको उचित अनुचित का कुछ विचार ही नहीं रहा है, इस बातको तुम जानते ही हो ।१०। इसप्रकार कौरवोंमें जो महाघोर आपत्ति उठ खड़ी हुई है,हे कुरुवंशी! यदि तुम इसकी उपेक्षा करोगे तो यह सब राज्यका नाश करडालेगी परन्तु हे भरतवंशी राजन् ! यदि तुम वंशका नाश नहीं करना चाहते हो तो यह आपत्ति शांत की जासकती है तथापि हे भरतवंश में श्रेष्ठ राजन् ! दोनों पक्षमें शांत होनेका काम मेरे समझमें कठिन नहीं है ॥१२॥ हे राजन् ! शांति और मेल करा देना मेरे और आपके वशमें है,हे कुरुवंशी राजन् ! तुम अपने पुत्रोंको समझा कर मर्यादामें रक्खो और मैं पाण्डवोंको समझाकर मर्यादामें रक्खूँगा।१३हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंको अपने पुत्र पौत्रोंसहित आपकी आज्ञा पालनी चाहिये क्योंकि-आपकी आज्ञामें रहनेसे बड़ा भारी हित होगा ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तुम मेरे कहनेके अनुसार पुत्रोंको शिक्षा देनेकी इच्छासे यदि शांति करनेका उद्योग करोगे तो उसमें तुम्हारा भी हित है और पाण्डवोंका भी हित है ॥ १५ ॥ इस कारण हे राजन् ! तुम देशको

कांक्षिणः ॥१५॥ स्वयं निष्फलमालक्ष्य संविधत्स्व विशाम्पते । सहायभूता भरतास्तवैव स्युर्जनेश्वर ॥१६॥ धर्मार्थयोस्तिष्ठ राजन् पांडवैरभिरक्षितः । न हि शक्यास्तथा भूता यत्नादपि नराधिप ॥ १७ ॥ न हि त्वां पाण्डवैर्जेतुं रक्ष्यमाणं महात्मभिः । इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपाः ॥ १८ ॥ यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णो विविंशतिः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ वाल्हिकः १९ सैंधवश्च कलिंगश्च काम्बोजश्च सुदक्षिणः । युधिष्ठिरो भीमसेनः सव्यसाची यमौ तथा२० सात्यकिश्च महातेजा युयुत्सुश्च महारथः । को नु तान् विपरीतात्मा युध्येत भरतर्षभ ॥ २१ ॥ लोकस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहितः कुरुपाण्डवैः२२तस्य ते पृथिवीपालास्त्वत्समाः पृथिवीपते । श्रेयांसश्चैव राजानः सन्धास्यन्ते परंतप॥२३॥ स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा । सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्ष्यसि जीवितुम्।२४।एतानेव पुरोधाय सत्कृत्य च यथा पुरा।अखिलां भोक्ष्यसे सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते ॥ २५ ॥ एतैर्हि सहितः सर्वैः पांडवैः

निष्फल जान कर सन्धि करलो तो सब भरतवंशी राजे तुम्हारे ही सहायक होजायँगे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तुम पाण्डवोंसे रक्षा पाते हुए धर्म और व्यवहारका साधन करो, क्योंकि—उद्योग करने पर भी ऐसे सहायक मिलना कठिन है ॥ १७ ॥ जब महात्मा पाण्डव तुम्हारी रक्षा करेंगे उस समय इन्द्र सहित देवता भी तुम्हें नहीं जीत सकेंगे, फिर और राजाओंकी तो बात ही क्या है ? ॥ १८ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! जहाँ भीष्मजी, द्रोणाचार्य कृपाचार्य, कर्ण विविंशति, अश्वत्थामा विकर्ण, सोमदत्त वाल्हीक; सिंधका राजा, कलिङ्ग, काम्बोज, सुदक्षिण, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन नकुल, सहदेव महातेजस्वी सात्यकी और महारथी युयुत्सु आदि लड़नेके लिये खड़े हों तहाँ कौन मूढ़ पुरुष उनके साथ लड़ सकता है ? ॥ १९--२१ ॥ हे शत्रुओंका नाश करने वाले राजन् ! तुम कौरवोंकी और पांडवोंकी सहायतासे जगत्में बड़ी प्रभुता पाओगे तथा शत्रु तुम्हें नहीं हरासकेंगे हे भूपते ! तुम सरीखे बड़े और उत्तम राजे तुम्हारे साथ संधि कर लेंगे ॥ २३ ॥ और तुम पुत्र, पौत्र, पिता, भाई तथा संबन्धियोंसे रक्षा पाकर सुखसे जीवनका बिताओगे २४ हे पृथ्वीपते ! तुम इन पांडवों को ही आगे लेकर पहिलेकी समान इनका सत्कार करो, ऐसा करने से तुम सब पृथिवीको भोगोगे ॥२५॥ हे भरतवंशी राजन् ! तुम पांडव

स्वैश्च भारत । अन्यान्विजेष्यसे शत्रूनेषः स्वार्थस्तवाखिलः ॥ २६ ॥ तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परन्तप । यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहामात्यैर्नराधिप ॥ २७ ॥ संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान् क्षयः । क्षये चोभयतो राजन् कं धर्ममनुपश्यसि ॥ २८ ॥ पांडवैर्निहतैः संख्ये पुत्रैर्वापि महाबलैः । यद्विन्देथाः सुखं राजंस्तद् ब्रूहि भरतर्षभ ॥ २९ ॥ शूराश्च हि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः । पांडवास्तावकाश्चैव तान्रक्ष महतो भयात् ॥३०॥ न पश्येम कुरून् सर्वान् पांडवांश्चैव संयुगे क्षीणानुभयतः शूरान् रथिनो रथिभिर्हतान् ॥ ३१ ॥ समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम । अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः ॥३२॥ त्राहि राजन्निमं मर्त्यं न नश्येयुरिमाः प्रजाः। त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात् कुरुनन्दन ॥ ३३ ॥ शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्य्याः पुण्याभिजातयः । अन्योऽन्यसचिवा राजंस्तान् पाहि महतो भयात् ॥ ३४ ॥

और कौरवोंके साथ रहनेसे दूसरे शत्रुओंको भी जीत सकोगे और इसमें तुम्हारा सब प्रकारसे स्वार्थ सिद्ध होता है, इस बातको जान लो ॥ २६ ॥ हे परन्तप राजन् ! तुम अपने पुत्र, पाण्डव और मंत्रियोंके साथ संगति रक्खोगे तो पाण्डवोंकी ही जीती हुई पृथिवी पर तुम राज्य करोगे ॥ २७ ॥ और हे महाराज ! मुझे दीखता है, कि--युद्ध करनेसे तो बड़ा भारी प्रलय होजायगा और दोनों पक्ष नाश होनेमें तुम कौनसा धर्म देखते हो ! ॥ २८ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! रणमें महाबली पाण्डवोंका अथवा तुम्हारे पुत्रोंका नाश होजायगा तो तुम क्या सुख पाओगे ? यह मुझे बताओ ॥ २९ ॥ हे राजन् ! पाण्डव और तुम्हारे पुत्र ये सब शूर, अस्त्रविद्यामें प्रवीण तथा युद्ध करनेके अभिलाषी हैं, इनको तुम बड़े भारी भयमेंसे बचाओ ॥ ३० ॥ मैं जब रणके परिणामको विचारता हूँ तो रथियोंसे मारे जाते हुए दोनों ओरके वीर रथियोंको तथा चोट खानेवाले वीर कौरवोंको और पाण्डवोंको नष्ट होतेहुए देखता हूँ ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! इस पृथिवी पर जो २ राजे इकट्ठे हुए हैं वह डाहके वशमें होकर इन प्रजाओंका नाश करेंगे ॥ ३२ ॥ इस लिये हे राजन् ! तुम इस मर्त्यलोककी रक्षा करो और ऐसा उपाय करो, कि-जिसमें प्रजाका नाश न हो हे कुरुनन्दन! तुम सत्त्वगुणको धारण करोगे तो सब बचे रहेंगे ॥३३॥ हे राजन् ! यह राजे सत्त्वगुणी, उदार चित्त वाले, लज्जाशील, आर्य, पवित्र कुलोंमें उत्पन्न हुए और एक दूसरेके सहायक हैं इनको तुम बड़े भारी भयमेंसे

शिवेनेमे भूमिपाला समागम्य परस्परम् । सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ॥ ३५ ॥ सुवाससः स्रग्विणश्च सत्कृता भरतर्षभ अमर्षञ्च निराकृत्य वैराणि च परन्तप ॥३६॥ हार्दं यत् पाण्डवेष्वासीत प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये । तदेव ते भवत्वद्य सन्धत्स्व भरतर्षभ ॥ ३७ ॥ बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः।तान्पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ॥ ३८ ॥ भवतव हि रक्ष्यास्ते व्यसनेषु विशेषतः । मा ते धर्मस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ ॥३९॥ आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च । भवतः शासनाद्दुःखमनुभूतं सहानुगैः ॥ ४० ॥ द्वादशेमानि वर्षाणि वनेषु व्युषितानि नः । त्रयोदशं तथाज्ञातैः सजने परिवत्सरम् ॥ ४१ ॥ स्थाता नः समये तस्मिन् पितेति कृतनिश्चयाः। नाहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः ॥४२॥ तस्मिन् नः समये

रक्षा करो ॥ ३४ ॥ और ऐसा करो, जिसमें ये सब राजे भी आपसमें आनन्दके साथ एक दूसरेसे मिलकर खानपान करें और अपने २ घरोंको लौट जायँ ॥ ३५ ॥ तथा हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन! तुम इनको उत्तम वस्त्र और पुष्पोंकी मालायें देकर इनका सत्कार करो और यह डाह तथा वैरभावको छोड़कर लौट जायँ३६हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! पहिले बालक अवस्थाके समय पाण्डवोंके ऊपर तुम्हारा जैसा प्रेम था वैसी ही प्रीति अब अपने अन्तके समयमें भी करो और पाण्डवोंके साथ संधि करलो ॥ ३७ ॥ हे भरतर्षभ! पाण्डव जिस समय छोटी अवस्थाके थे और उनके पिताका मरण होगया था उस समय उनको तुमने ही पाला पोसा था उन पुत्रोंका इस समय भी उचित रीतिसे पालन करो ॥३८॥ विपत्तिके अवसरोंमें विशेष कर तुमको ही उनका पालन करना चाहिये हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारा धर्म और व्यवहार नष्ट न हो ३९ हे राजन्! पांडवोंने आपको प्रणाम करके आपकी प्रसन्नता चाह कर कहा है, कि-तुम्हारी आज्ञासे ही हमने और हमारे परिवारने दुःख भोगा है॥४०॥हमने निर्जन वनमें रहकर बारह वर्ष बिताये हैं, और तेरहवाँ वर्ष अपने परिवारसहित गुप्तरीतिसे मनुष्योंमें ही रहकर बिताया है ॥ ४१ ॥ और वनवासके लिये जाते समय हमने निश्चय कर लिया था, कि—हम जब वनमेंसे लौटकर आवेंगे उस समय तुम हमारे पिताकी समान हमारे ऊपर स्थित रहोगे, हे तात! हमने अपनी प्रतिज्ञाको नहीं तोड़ा है, इस बातको हमारे साथमें रहनेवाले ब्राह्मण जानते हैं ॥ ४२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ! जब हम अपनी प्रतिज्ञा पर

तिष्ठ स्थितानां भरतानां भरतर्षभ । नित्यं संक्लेशिता राजन् स्वराज्यांशं लभेमहि ॥ ४३ ॥ त्वं धर्ममर्थं संजानन् सम्यङ् नस्त्रातुमर्हसि । गुरुत्वं भवति प्रेक्ष्य बहून् क्लेशान् तितिक्ष्महे ॥४४॥ स भवान् मातृपितृवदस्मासु प्रतिपद्यताम् । गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥ ४५ ॥ वर्तामहे त्वयि च तां त्वञ्च वर्तस्व नस्तथा । पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः ॥४६॥ संस्थापय पथिष्वस्मांस्तिष्ठ धर्मे सुवर्त्मनि । आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ ॥ ४७ ॥ धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम् । यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ॥४८॥ हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः । विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते ॥४९॥ न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः । धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान् ॥ ५० ॥ ते

रहे हैं तो आपको भी जैसा ठहर गया था उसके अनुसार वर्त्ताव करना चाहिए, हे राजन् ! हमने निरन्तर क्लेश पाया है इस कारण अब हमें हमारा राज्यका भाग मिलना चाहिये ॥४३॥ आप धर्म और व्यवहारके स्वरूपको अच्छे प्रकारसे जानते हैं, इस कारण आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए आपके बड़प्पनकी ओरको देखकर हमने बड़े दुःख सहे हैं ॥ ४४ ॥ आप हमारे साथ माता पिताकी समान वर्त्ताव करिए, शिष्यको गुरुके साथ जैसा उत्तम व्यवहार करना चाहिये, तैसे ही उत्तम व्यवहारसे हम आपके साथ वर्त्तते हैं इसलिये तुम भी हमारे साथ तैसा वर्त्ताव करो, हम राज्यभ्रष्ट होनेसे मार्ग भ्रष्ट होगए हैं, इसलिए हमारे पिता समान आपको हमें मार्गमें स्थित करना चाहिए ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ आप हमें मार्ग पर स्थापन करिये और स्वयं भी धर्मके सन्मार्ग पर स्थित हूजिए, यह बात पाण्डवोंने आपके पास कहला कर भेजी है, हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन् ! तुम्हारे उन पुत्रों ने इस सभासे भी कहलाया है, कि–॥ ४७ ॥ धर्मको जाननेवाले सभासदोंमें अनुचित काम होना ठीक नहीं माना जाता, जहाँ अधर्मसे धर्मका नाश होता है और जहाँ असत्यसे सत्यका नाश होता है तथा उसको सब सभासद् देखते रहते हैं तो वह सब सभासद् नष्ट हो जाते हैं अर्थात् धर्मभ्रष्ट होजाते हैं जहाँ अधर्मसे विधा हुआ मनुष्यका धर्म सभासदोंकी शरणमें आता है और उस सभामें बैठे हुए पुरुष उस धर्मके काँटेको नहीं निकालते हैं तो वह सभासद् अधर्मसे छिन्न होते हैं । जैसे नदी किनारे परके उगेहुए वृक्षोंका नाशकर डालती है

धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते। ते सत्यमाहुर्धर्म्यञ्च न्यायं च भरतर्षभ ॥ ५१ ॥ शक्यं किमन्यद्वक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर। ब्रुवन्तु वा महीपालाः सभायां ये समासते ॥ ५२ ॥ धर्मार्थौ सम्प्रधार्यैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम्। प्रमुञ्चेमान्मृत्युपाशात् क्षत्रियान् पुरुषर्षभ ॥ ५३ ॥ प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा मन्युवशमन्वगाः। पित्र्यं तेभ्यः प्रदायांशं पाण्डवेभ्यो यथोचितम् ॥ ५४ ॥ ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुङ्क्ष्व भोगान् परन्तप। अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा ॥५५॥ सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्त्तते यां नराधिप। दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः ॥ ५६ ॥ इन्द्रप्रस्थं त्वयैवासौ सपुत्रेण विवासितः। स तत्र निवसन् सर्वान् वशमानीय पार्थिवान् ॥ ५७ ॥ त्वन्मुखानकरोद्राजन्न च त्वामत्यवर्त्तत। तस्यैवं वर्त्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता ।५८। राष्ट्राणि

जैसे ही धर्म भी सभासदोंका नाशकर देता है ॥४८-५०॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! इस समय पाण्डव धर्मके मुखकी ओरको देखते हुए मौन होकर ध्यान लगाए वैठे हैं, उन्होंने जो बात कही है वह धर्मसे भरी और सत्य तथा न्यायके अनुकूल है ॥ ५१ ॥ हे राजन्! आप पाण्डवोंको राज्य देदीजिए, इसके सिवाय आपसे और क्या कहा जा सकता है ? इस सभामें जो राजे वैठे हैं, उनको यदि कुछ कहना हों तो वह भले ही कहडालें ॥५२ ॥ मैंने यदि धर्म और व्यवहारका विचार करके सत्य बात कही हो तो हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम इन क्षत्रियोंको मृत्युकी फाँसीमेंसे छुटाओ ॥ ५३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! तुम क्रोधके वशमें न जाओ किन्तु शान्तिके साथ पांडवोंको यथोचित रीतिसे उनके पिताके राज्यका भाग देकर कृतार्थ होजाओ तथा पुत्रोंके साथ राज्यके ऐश्वर्योंको भोगो हे परन्तप राजन्! धर्मराज युधिष्ठिर सदा धर्ममार्गमें चलते हैं और तुम्हारे तथा तुम्हारे पुत्रोंके ऊपर कैसा भाव रखते हैं इस बातको तुम जानते ही हो, उन राजा युधिष्ठिरको तुमने राज्यमेंसे निकालकर वनवासके लिए भेजदिया था तथा लाखके भवनमें जलानेका भी उद्योग किया था तो भी वह फिर तुम्हारी ही शरणमें आए हैं ॥५४—५६॥ तुमने और तुम्हारे पुत्रोंने धर्मराजको इन्द्रप्रस्थमें रहनेके लिए भेजदिया था, उन्होंने तहाँ रहकर ही सब राजाओंको वशमें कर लिया था ॥ ५७ ॥ और इन सबोंको तुम्हारे अधीन करदिया था तथा वह स्वयं भी तुम्हारी आज्ञामें रहते थे, ऐसा वर्त्ताव करने पर भी उनका राज्य धन और

धनधान्यैश्च प्रयुक्तः परमोपधिभिः । स तामवस्थां सम्प्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभांगताम् ॥ ५९ ॥ स्वधर्मान्नैवपात्मा नाकम्पत युधिष्ठिरः । अहं तु तव तेषाञ्च श्रेय इच्छामि भारत ॥ ६० ॥ धर्मादर्थात् सुखाच्चैव मा राजन्नीनशः प्रजाः । अनर्थमर्थं मन्वानोऽप्यर्थञ्चानर्थमात्मनः ॥ ६१ ॥ लोभेऽतिप्रसृतान् पुत्रान्निगृह्णीष्व विशाम्पते । स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिन्दमाः । यत्ते पथ्यतमं राजंस्तस्मिंस्तिष्ठ परन्तप ॥६२॥ वैशम्पायन उवाच । तद्वाक्यं पार्थिवाः सर्वे हृदयैः समपूजयन् । न तत्र कश्चिद्वक्तुं हि वाक्यं प्राक्रामदग्रतः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्ण-
वाक्ये पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

वैशम्पायन उवाच । तस्मिन्नभिहिते वाक्ये केशवेन महात्मना । स्तिमिता हृष्टरोमाण आसन् सर्वे सभासदः । १ ॥ कश्चिदुत्तरमेतस्य वक्तुं नोत्सहते पुमान् । इति सर्वे मनोभिस्ते चिंतयन्ति स्म पार्थिवाः२

धान्य छीन लेनेकी इच्छासे शकुनिने जुएरूपी प्रपञ्चको खड़ा किया था तथा राजा युधिष्ठिर शकुनिके कपटजालसे बड़ी दुःख दशामें पड़गये थे और द्रौपदीको कौरवोंकी राजसभामें लायी हुई देखकर भी दृढ चित्तवाले राजा युधिष्ठिर क्षत्रियधर्मसे टिगे नहीं थे, हे भरतवंशी राजन् ! मैं तो तुम्हारा और उनका कल्याण चाहता हूं ५८-६० हे राजन् ! तुम अपनी प्रजाके धर्म, अर्थ और कामका नाश न करो, तुम अपने लिए अनर्थको अर्थ समझ रहे हो तथा अर्थको अनर्थ मान रहे हो ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! अर्थलोभमें फँसे हुए अपने पुत्रोंको तुम वशमें करो, शत्रुओंका दमन करनेवाले पांडव तुम्हारी सेवा करनेको भी तयार हैं तथा युद्ध करनेको भी तयार हैं, इन दोनोंमेंसे जो बात तुम्हें अधिक हितकी मालूम हो उसको स्वीकार करो, ६२ वैशम्पायन कहते हैं,:कि-हे जनमेजय ! श्रीकृष्णकी इस बातकी सब राजाओंने हृदयमें सराहनाकी परन्तु उन राजाओंमेंसे किसी राजाने भी आगे बढ़कर कुछ कहनेका आरंभ नहीं किया ॥६३ ॥ पिचानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे राजन् ! उन महात्मा श्रीकृष्णने ऐसी बात कही तब सब सभासद् रोमाञ्चित और भौंचक्के होकर अपने अपने मनमें विचार करने लगे परन्तु उनमेंसे कोई पुरुष भी उत्तर देनेका साहस नहीं करसका ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकार उन सब राजाओंके

तथा तेषु च सर्वेषु तूष्णींभूतेषु राजसु।जामदग्न्य इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥ ३ ॥ इमां मे सोपमां वाचं शृणु सत्याभिशङ्कितः। तां श्रुत्वा श्रेय आदत्स्व यदि साध्विति मन्यसे ॥ ४ ॥ राजा दम्भोद्भवो नाम सार्वभौमः पुराभवत्। अखिलां बुभुजे सर्वां पृथिवीमिति नः श्रुतम् ५ स स्म नित्यं निशापाये प्रातरुत्थाय वीर्यवान्। ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्चैव पृच्छन्नास्ते महारथः ॥ ६ ॥ अस्ति कश्चिद्विशिष्टो वा मद्विधो वा भवेद्युधि। शूद्रो वैश्यः क्षत्रियो वा ब्राह्मणो वापि शस्त्रभृत् ॥ ७ ॥ इति ब्रुवन्नन्वचरत् स राजापृथिवीमिमाम्।दर्पेणमहता मत्तः कश्चिदन्यमचिन्तयन् ॥ ८ ॥ तं च वैद्या अकृपणा ब्राह्मणाः सर्वतोऽभयाः। प्रत्यषेधन्त राजानं श्लाघमानं पुनः पुनः ॥ ९ ॥ निषिध्यमानोऽप्यसकृत् पृच्छत्येवं स वै द्विजान्। अतिमानं श्रिया मत्तं तमूचुर्ब्राह्मणास्तदा ॥ १० ॥ तपस्विनो महात्मानो वेदप्रत्ययदर्शिनः। उदीर्यमाणं राजानं क्रोधदीप्ता द्विजातयः ॥११॥ अनेकजयिनौ संख्ये यो वै पुरुष-

---

मौन होकर बैठ जाने पर कौरवोंकी सभामें बैठे हुए परशुरामजी यह बात बोले कि-॥३॥ हे राजा धृतराष्ट्र! तू सन्देहको त्याग मेरी उपमा वाली सत्य बातको सुन और तुझे अच्छी लगे तो उस कल्याण करने वाली बातको मानले ॥ ४ ॥ पहिले समयमें एक दम्भोद्भव नामका चक्रवर्ती राजा था, हमने सुना है, कि–वह सकल पृथिवी पर राज्य करता था ॥५॥ वह महारथी और पराक्रमी राजा नित्य प्रातःकालके समय उठ कर ब्राह्मणोंसे और क्षत्रियोंसे पूछा करता करता था, कि क्या कोई भी ऐसा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र है जो युद्धमें मेरी समता करने वाला वा मुझसे वढ़ कर हो ॥६॥७॥ बड़े घमण्डमें मतवाला बना हुआ वह राजा इस प्रकार पूछता २ पृथिवी पर विचरने लगा वह और किसीको कुछ गिनता ही नहीं था ॥ ८ ॥ वह राजा जब वारवार अपनी बड़ाई करने लगा तब वेद पढ़ेहुए उदार मनवाले और सब प्रकारसे निर्भय रहने वाले ब्राह्मणोंने उसको ऐसा करनेसे वारम्बार रोका तो भी वह उन ब्राह्मणोंसे वारम्बार अपनेसे अधिक वा अपनी समान योधाके विषयमें पूछा करता था तब तपस्वी महात्मा; आत्मा और परमात्माको एकरूप देखनेवाले ब्राह्मण क्रोधके मारे लालताल होगए और धनसे मदमत्त हुए महाअभिमानी दम्भोद्भव राजासे कहने लगे, कि–॥ ९—११ ॥ इस पृथ्वी पर दो महात्मा पुरुष ऐसे हैं, कि–उन्होंने रणमें अनेकोंको हराया है, हे राजन्! तू उनकी

सत्तमौ । तयोस्त्वं न समो राजन् भवितासि कदाचन॥१२॥ एवमुक्तः
स राजा तु पुनः पप्रच्छ तान् द्विजान् । क्व तौ वीरौ क्व जन्मानौ किं
कर्माणौ च कौ च तौ॥१३॥ ब्राह्मणा ऊचुः । नरो नारायणश्चैव ताप-
साविति नः श्रुतम् । आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युध्यस्व पार्थिव॥१४
श्रूयते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ । तपो घोरमनिर्देश्यं तप्येते गंध
मादने ॥१५॥ स राजा महतीं सेनां योजयित्वा षडंगिनीम् । अमृष्य-
माणः सम्प्रायाद्यत्र तावपराजितौ ॥ १६ ॥ स गत्वा विषमं घोरं पर्वतं
गन्धमादनम् । मृगयाणोऽन्वगच्छत्तौ तापसौ वनमाश्रितौ ॥ १७ ॥ तौ
दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाभ्यां कृशौ धमनिसंततौ । शीतवातातपैश्चैव कर्शितौ
पुरुषोत्तमौ ॥ १८ ॥ अभिगम्योपसंगृह्य पर्यपृच्छदनामयम् । तमर्चित्वा
फलैर्मूलैरासनेनोदकेन च ॥ १९ ॥ न्यमन्त्रयतां राजानं किं कार्यं क्रिय-
तामिति । ततस्तामानुपूर्वीं स पुनरेवान्वकीर्त्तयत ॥ २० ॥ बाहुभ्यां

समान कभी भी नहीं होसकता ॥१२॥ इस प्रकार उस राजासे कहा
तब उसने उन ब्राह्मणोंसे फिर पूछा, कि—वह वीर पुरुष कहाँ हैं ?
उनका जन्म कहाँ हुआ है वे क्या काम करते हैं, और वह दोनों कौन
हैं ? ॥१३॥ ब्राह्मणोंने कहा, हमारे सुननेमें आया है, कि-वह नर और
नारायण नामके दो तपस्वी हैं, वह अवतार लेकर मनुष्यलोकमें आये
हैं, हे राजन् ! तू इन दोनोंके साथ युद्ध कर ॥१४॥ वह नर नारायण
दोनों महात्मा इस समय गन्धमादन पर्वत पर ऐसा घोर तप करते
हैं, कि-जिसका वर्णन नहीं होसकता ॥ १५ ॥ वह राजा इस बातको
सह नहीं सका इस कारण हाथी, घोड़े, पैदल, रथ, गाड़ी और ऊँट
इन छः अङ्गों वाली बड़ी भारी सेनाको तयार करके जहाँ वह दोनों
किसीके जीतनेमें न आने वाले पुरुष थे तहाँको चल दिया १६ और
उस गन्धमादन नाम वाले ऊँचे नीचे तथा महाभयानक पर्वतके ऊपर
चढ़ कर तहाँ वनमें रहने वाले उन दोनों तपस्वियोंको खोजता हुआ
फिरने लगा ॥ १७ ॥ थोड़ी देरमें दोनों मुनि दीखे वह भूख प्याससे
दुर्बल होरहे थे, उनके शरीर परकी नसें चमक रही थीं और वह दोनों
महापुरुष शीत, धूप और पवनको सहन करनेके कारण दुर्बल होगये
थे ॥ १८ ॥ राजा उनके पास गया और हाथसे उनके चरणोंको छूकर
उनसे कुशल पूछी फिर नर नारायणने भी फल, मूल और आसनसे
राजाका सत्कार किया ॥१९॥ और उससे पूछा, कि-बताओ राजन्!
अब हम आपका कौनसा काम करें ?, इसपर राजाने आरम्भसे लेकर

मे जिता भूमिर्निहताः सर्वशत्रवः। भवद्भ्यां युद्धमाकांक्षन्नुपयातोऽस्मि पर्वतम्॥ २१॥ आतिथ्यं दीयतामेतत् कांक्षितं मे चिरं प्रति। नरनारायणावूचतुः। अपेतक्रोधलोभोऽयमाश्रमो राजसत्तम॥ २२॥ न ह्यस्मिन्नाश्रमे युद्धं कुतः शस्त्रं कुतो मृजुः। अन्यत्र युद्धमाकांक्ष वहवः क्षत्रियः क्षितौ। राम उवाच। उच्यमानस्तथापि स्म भूय एवाभ्यभाषत। पुनः पुनः क्षम्यमाणः सान्त्वमानश्च भारत २४ दंभोद्भवो युद्धमिच्छन्नाह्वयत्येव तापसौ। ततो नरस्त्विषीकाणां मुष्टिमादाय भारत॥ २५॥ अब्रवीदेहि युध्यस्व युद्धकामुक क्षत्रिय। सर्वशस्त्राणि चादत्स्व योजयस्व च वाहिनीम्॥ २६॥ अहं हि ते विनेष्यामि युद्धश्रद्धामितः परम्। दम्भोद्भव उवाच। यद्येतदस्त्रमस्मासु युक्तं तापस मन्यसे॥२७॥एतेनापि त्वया योत्स्ये युद्धार्थी ह्यहमागतः। राम उवाच। इत्युक्त्वा शरवर्षेण सर्वतः समवाकिरत्॥ २८॥ दम्भोद्भवस्तापसन्तं जिघांसुः सहसैनिकः। तस्य तानस्यतो घोरानिषून् परतनुच्छिदः२९

सब बात कह सुनायी। २०। कहा, कि—मैंने अपने बाहुबलसे भूमि जीतली है, सब शत्रु मार डाले हैं अब मैं आपके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे इस पर्वत पर आया हूँ। २१। इस लिये मेरी इस चिरकाल की इच्छाको पूरी करके मेरा अथितिसत्कार करो नर नारायणने कहा कि-हे श्रेष्ठ राजन्! इस आश्रममें काम, क्रोध, लोभका निवास नहीं है। २२। इस आश्रममें युद्ध भी नहीं है, फिर यहाँ शस्त्र और कुटिल पुरुष तो हो ही कैसे सकते हैं? कहीं और जाकर युद्धकी प्रार्थना कर भूमि पर बहुतसे क्षत्रिय हैं। २३। परशुराम कहते हैं, कि—हे भरतवंशी राजन्! नर नारायणने इस प्रकार कहा और वारम्वार उसे क्षमा किया तथा उसको समझाया॥२४॥ तो भी दम्भके पुत्रने वारंवार युद्धकी इच्छासे उन दोनों तपस्वियोंसे युद्ध करनेके लिये आग्रह किया,तब नर भगवान्ने इषीका (सींकों) को एक मुट्ठी भरकर उस उन्मत्त क्षत्रियसे कहा, कि-अरे युद्ध चाहने वाले क्षत्रिय! तू अपने सब शस्त्रोंको ग्रहण कर, अपनी सेनाको भी लड़नेके काम पर लगा और यहाँ आकर युद्ध कर॥ २४-२६॥ अब मैं तेरी युद्धकी श्रद्धाको दूर करूँगा, दम्भके पुत्रने कहा, कि-अरे तपस्वी! यदि इस अस्त्रको मेरे ऊपर छोड़ना उचित समझता हो तो मैं युद्ध करनेको तेरे पास आया हूँ और इस शस्त्रके द्वारा एक तेरे साथ ही लड़ूँगा। परशुराम कहते हैं,कि—हे भरतवंशी राजन्! ऐसा कहकर दम्भोद्भवने तथा उसके

कदर्थीकृत्य स मुनिरिषीकाभिः समार्पयत्। ततोऽस्मा अत्यजन् घोर-मैषीकमपराजितः ।३०। अस्त्रमप्रतिसन्धेयं तदद्भुतमिवाभवत् । तेषा-मक्षीणि कर्णांश्च नासिकाश्चैव मायया ॥ ३१ ॥ निमित्तवेधी स मुनि-रिषीकाभिः समार्पयत्। स दृष्ट्वा श्वेतमाकाशमिषीकाभिः समाचितम्३२ पादयोर्न्यपतद्राजा स्वस्ति मेऽस्त्विति चाब्रवीत् । तमब्रवीन्नरो राजन् शरण्यः शरणैषिणाम्३३ब्रह्मण्यो भव धर्मात्मा मा च स्मैवं पुनः कृथाः॥ नैतादृक् पुरुषो राजन् क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ३४ ॥ मनसा नृपशार्दूल भवेत् परपुरंजयः । मा च दर्पसमाविष्टः क्षेप्सीः कांश्चित् कथञ्चन३५ अणीयांसं विशिष्टं वा तत्ते राजन् समाहितम् । कृतप्रज्ञो वीतलोभो निरहंकार आत्मवान् । ३६ । दांतः क्षांतो मृदुः सौम्यः प्रजाः पालय पार्थिव । मा स्म भूयः क्षिपेः कञ्चिदविदित्वा बलाबलम् ॥३७॥ अनु-

---

योधाओंने नर भगवान्का नाश करनेकी इच्छासे चारों ओरसे उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ करदी, तब नर भगवान्ने शत्रुके शरीरको काट डालने वाले भयानक बाण छोड़ते हुए उस दम्भोद्भव का पराजय करके उसको इषीकाओंसे ढक दिया, फिर अजित नर भगवान्ने कभी निष्फल न जाने वाला एक उत्तम इषीका (सींक) का अस्त्र बनाकर वह भयानक अस्त्र दम्भोद्भवके ऊपर छोड़ा इस समय एक बात बड़े अचरजकी हुई, कि—उन मुनिने मायासे उस दम्भोद्भवकी आँखें कान और नाकको सींकोंकी नुलियोंसे भर दिया तथा सब आकाश भी सफेद सींकोंसे छादिया, इस सब पराक्रमको देखकर राजा दम्भोद्भव नर भगवान्के चरणोंमें गिर पड़ा और कहने लगा, कि–मेरा कल्याण हो (मुझे बचाओ) तब शरण चाहने वालों के रक्षक नर भगवान्ने कहा कि–॥ २७–३३ ॥ हे राजन् ! तू ब्राह्मणों का रक्षक हो, धर्मात्मा हो और ऐसा साहस अब कभी न करना, हे राजाओंमें सिंह समान ! जो क्षत्रियके धर्मको जानने वाला क्षत्रिय जातिका पुरुष शत्रुओंकेनगरोंको जीतता हो उसकोऐसा काम अर्थात् तेरासा घमण्ड मनमें नहीं करना चाहिये, आगेको तू घमण्डमें भरकर कभी किसीका नाश न करना ॥३४॥३५॥ हे राजन् ! अपनेसे छोटा हो या बड़ा हो तू उसका अपमान न करना- इस बातको ध्यानमें रखना हे राजन् ! तू समझदारी, निर्लोभता, निरहङ्कारता, जितेंद्रिय-पना, मनको वशमें रखना, शांति,कोमलता और शांतभावसे राजाओं का पालन करना तथा आगेको किसी मनुष्यके भी बलाबलका वा

प्रातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः । कुशलं ब्राह्मणान् पृच्छेरावयोर्वचनाद्भृशम् ॥३८॥ ततो राजा तयोः पादावभिवाद्य महात्मनोः । प्रत्याजगाम स्वपुरं धर्मं चैवाचरद्भृशम् ॥३९॥ सुमहच्चापि तत् कर्म यन्नरेण कृतं पुरा । ततो गुणैः सुबहुभिः श्रेष्ठो नारायणोऽभवत् ॥४०॥ तस्माद्यावद्धनुःश्रेष्ठे गाण्डीवेऽस्त्रं न युज्यते । तावत् त्वं मानमुत्सृज्य गच्छ राजन् धनञ्जयम् । ४१ । काकुदीकं शुकं नाकमक्षिसन्तर्जनं तथा सन्तानं नर्तकं घोरमास्यमोदकमष्टमम् ॥ ४२ ॥ एतैर्विद्धाः सर्व एव मरणं यान्ति मानवाः । कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमानौ तथैव च ॥४३॥ मात्सर्याहंकृती चैव क्रमादेत उदाहृताः उन्मत्ताश्च विचेष्टन्ते नष्टसंज्ञा

निर्बलताको जाने बिना उसका अपमान न करना ॥ ३६--३७ ॥ मैं तुझे आज्ञा देता हूँ, जा, तेरा कल्याण हो, अब आगेको ऐसा कभी तू न करना, हम दोनोंके कहनेसे जहाँ कहीं भी तुझे ब्राह्मण मिल जायँ उनसे अच्छे प्रकारसे कुशल पूछना ॥३८॥ तदनन्तर राजा उन दोनों महात्माओंके चरणोंमें प्रणाम करके अपने,नगरको लौट गया और भले प्रकार धर्माचरण करने लगा ॥३९॥ पहिले नरने जो काम किया था वह बड़ा भारी था क्योंकि–नारायण भगवान् उसकी अपेक्षा विशेष गुणोंवाले थे ॥ ४० ॥ इसलिये जबतक गाण्डीव नामके श्रेष्ठ धनुषके ऊपर बाण नहीं चढ़ाया जाता है,उससे पहिलेही हे राजन्! तुम अभिमानको छोड़ कर अर्जुनको शरण लो ॥४१॥ काकुदीक, शुक, अक्षिसन्तर्जन, सन्तान, नर्त्तक, घोर और आठवाँ (१) आस्यमोदक ४२ इन बाणोंसे विंधे हुए सब ही मनुष्य मरणको प्राप्त होते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा मद और मान ॥ ४३ ॥ डाह और अहंकार ये आठ दोष क्रमसे कहे हैं, इन दोषोंके वशमें हुए पुरुष उन्मत्त होकर काम करते हैं अचेत होजाते हैं विचार शून्य होजाते हैं,पागल होजाते

(१) जिस बाणसे मनुष्य हाथी घोड़े आदिकी गरदन गिरजाय वह काकुदीक कहलाता है । युद्ध करने वाला पुरुष जिस बाणकी मारसे भयके मारे शुकनलिकाकी समान हाथी घोड़े आदिके पैरोंमें जा चिपटे उसको शुकास्त्र कहते हैं । जिसकी मारसे स्वर्ग दर्शन करता है वह नाकास्त्र है । जिसकी मारके भयसे पुरुषको शौच मूत्र होजाय वह अक्षिसंतर्जन है । जो ऊपर ही ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करे वह सन्तान है । नृत्य करने वाला नर्त्तन, नाश करने वाला घोर और जिसकी मारसे पुरुष मुखमें पत्थर देकर मरे वह आस्यमोदक है ।

विचेतसः ॥४४॥ स्वपंति च प्लवन्ते च छर्दयन्ति च मानवाः । मूत्रयन्ते च सततं रुदन्ति च हसन्ति च ॥ ४५ ॥ निर्माता सर्वलोकानामीश्वरः सर्वकर्मवित् । यस्य नारायणो बन्धुरर्जुनो दुःसहो युधि॥४६॥ कस्तमुत्सहते जेतुं त्रिषु लोकेषु भारत । वानरं ध्वजो जिष्णुं यस्य नास्ति समो युधि ॥ ४७ ॥ असंख्येया गुणाः पार्थे तद्विशिष्टो जनार्दनः त्वमेव भूयो जानासि कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥ ४८ ॥ नरनारायणौ यौ तौ तावेवार्जुनकेशवौ । विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ॥४९॥ यद्येतदेवं जानासि न च मामभिशङ्कसे । आर्यां मतिं समास्थाय शाम्य भारत पाण्डवैः ॥ ५० ॥ अथ चेन्मन्यसे श्रेयो न मे भेदो भवेदिति । प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ मा च युद्धे मनः कृथाः ॥ ५१ ॥ भवतश्च कुरुश्रेष्ठ कुलं बहुमतं भुवि । तत्तथैवास्तु भद्रं ते स्वार्थमेवोपचिन्तय

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दम्भोद्भवोपाख्याने षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

हैं, पड़े हुए सोते रहते हैं, कूदते फिरते हैं, वमन करते हैं, बार २ मूतते हैं, रोते हैं, हँसते हैं ॥ ४४॥४५ ॥ सब जगत्को रचने वाले, सब के प्रभु, सब कर्मोंको जानने वाले ऐसे नारायण जिसके मित्र हैं उस अर्जुनको युद्धमें सहना कठिन होगा ॥४६॥ हे भरतवंशी राजन् ! जिस की ध्वजामें वानर है, युद्ध करनेमें जिसकी समान कोई है ही नहीं ऐसे विजयी वीर अर्जुनको जीतनेके लिये त्रिलोकीमें कौन साहस कर सकता है ? ॥ ४७ ॥ अर्जुनमें असंख्यों गुण हैं और श्रीकृष्णमें उससे भी अधिक गुण हैं और कुन्तीपुत्र अर्जुनको तो तुम ही अनेकों बार जान चुके हो ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! जो नर नारायण थे वही तो ये अर्जुन और श्रीकृष्ण हुए हैं, इन दोनोंको तुम सकल पुरुषोंमें श्रेष्ठ और परम वीर जानो ॥ ४९ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यदि आप मेरा कहना मानना चाहें और यदि आपको मेरे कहनेमें किसी प्रकारका सन्देह न हो तो तुम अपने चित्तमेंसे कपटभावको दूर करके पांडवों के साथ मेल करलो ॥ ५० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यदि तुम समझते होओ कि- संधि करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा और हममें फूट नहीं रहनी चाहिये तो तुम शांति धारण करो और युद्धकी ओर मन न ले जाओ ॥ ५१ ॥ हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! आपका कुल पृथ्वीपर बड़ा प्रतिष्ठित माना जाता है वह कुल अपनी प्रतिष्ठामें रहे और तुम्हारा कल्याण हो, इस प्रकारसे अपने स्वार्थका विचार करो ॥ ५२ ॥

वैशम्पायन उवाच । जामदग्न्यवचः श्रुत्वा कण्वोऽपि भगवानृषिः दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥ १ ॥ कण्व उवाच । अक्षयश्चाऽव्ययश्चैव ब्रह्मा लोकपितामहः । तथैव भगवन्तौ तौ नरनारायणावृषी । २ । आदित्यानां हि सर्वेषां विष्णुरेकः सनातनः । अजय्यश्चाऽव्ययश्चैव शाश्वतः प्रभुरीश्वरः ॥ ३ ॥ निमित्तमरणाश्चान्ये चन्द्रसूर्यौ मही जलम् । वायुरग्निस्तथाकाशं ग्रहास्तारागणास्तथा ॥ ४ ॥ ते च क्षयान्ते जगतो हित्वा लोकत्रयं सदा । क्षयं गच्छन्ति वै सर्वे सृज्यन्ते च पुनः पुनः ॥५॥ मुहूर्त्तमरणास्त्वन्ये मानुषा मृगपक्षिणः । तैर्य्यग्योन्यश्च ये चान्ये जीवलोकचरास्तथा ॥६॥ भूयिष्ठेन तु राजानः श्रियं भुक्त्वायुषः क्षये । तरुणाः प्रतिपद्यन्ते भोक्तुं सुकृतदुष्कृते ॥ ७ ॥ स भवान् धर्म्मपुत्रेण शमं कर्त्तुमिहार्हति । पाण्डवाः कुरवश्चैव पालयन्तु वसुन्धराम् ॥ ८ ॥ बलवानहमित्येव न मन्तव्यं सुयोधन । बलवन्तो बलिभ्यो हि दृश्यंते पुरुषर्षभ ॥ ९ ॥ न बलं बलिनां मध्ये बलं

वैशम्पायन कहने लगे, कि-हे जनमेजय ! परशुरामके कथनको सुन कर, भगवान् कण्व ऋषि भी कौरवोंकी सभामें दुर्योधनसे यह बात कहने लगे ॥ १ ॥ कण्व ऋषि बोले कि-लोकोंके पितामह ब्रह्मा तथा नर नारायण नामके ऋषि अक्षर और विनाशरहित हैं ॥ २ ॥ सब आदित्योंमें केवल विष्णु ही सनातन, अजित, अविनाशी और सदा रहने वाले तथा ईश्वरमूर्त्ति हैं ॥३॥ परन्तु उनको छोड़कर और चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आकाश, ग्रह तथा तारे. आदि सब महाप्रलयके समय नष्ट होजाते हैं ॥ ४ ॥ जगत्के प्रलय होनेके साथ २ ही सब पदार्थ तीनों लोकोंका त्याग करके नाशको प्राप्त हो जाते हैं और फिर सृष्टिकी आदिमें बारम्बार उत्पन्न होते हैं॥५॥परंतु मनुष्य पशु पक्षी तथा मनुष्यलोकमें विचरनेवाले अन्य तिर्यक्योनिके जीव क्षण भरमें मर जाने वाले होते हैं । उनमें राजे तो प्रायः राज्यलक्ष्मीको भोगनेके पीछे आयु समाप्त होने पर पाप तथा पुण्यका फल भोगनेके लिये फिर तरुण होजाते हैं अर्थात् मरणके पीछे फिर उत्पन्न होजाते हैं ॥६-७॥ इस प्रकार सबका विचार कर तुम्हें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके साथ संधि करना उचित है पाण्डव और कौरव (इकट्ठे होकर) पृथ्वीका पालन करें । ८ । हे सुयोधन ! मैं बली हूँ ऐसा तू अपने मनमें न विचारना क्योंकि-हे पुरुषश्रेष्ठ ! बलवानोंसे भी बली पुरुष दिखाई देते हैं । ९ । हे कुरुकुलोत्पन्न ! शूरवीरोंके सामने सेना

भवति कौरव। बलवन्तो हि ते सर्वे पाण्डवा देवविक्रमाः ॥ १० ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। मातलेर्दातुकामस्य कन्यां मृगयतो वरम्॥११॥ मतस्त्रैलोक्यराजस्य मातलिर्नाम सारथिः। तस्यैकैव कुले कन्या रूपतो लोकविश्रुता ॥ १२ ॥ गुणकेशीति विख्याता नाम्ना सा देवरूपिणी। श्रिया च वपुषा चैव स्त्रियोऽन्याः साऽतिरिच्यते ॥१३॥ तस्याः प्रदानसमयं मातलिः सहभार्यया। ज्ञात्वा विममृशे राजंस्तत्परः परिचिन्तयन् ॥१४॥ धिक्खल्वलघुशीलानामुच्छ्रितानां यशस्विनाम्। नराणां मृदुसत्त्वानां कुले कन्याप्ररोहणम् ॥१५॥ मातुः कुलं पितृकुलं यत्र चैव प्रदीयते। कुलत्रयं संशयितं कुरुते कन्यका सताम् ॥ १६ ॥ देवमानुषलोकौ द्वौ मानुषेणैव चक्षुषा। अवगाह्यैव विचितौ न च मे रोचते वरः ॥ १७ ॥ कण्व उवाच। न देवान्नैव दितिजान् गन्धर्वान्न मानुषान्। अरोचयद्वरकृते तथैव बहुलानृषीन्॥१८

की शक्ति कुछ शक्ति नहीं मानी जाती है, सब पाण्डव देवताओंकी समान बली हैं। १० । इस विषयमें, इन्द्रका सारथि मातलि अपनी कन्याके लिये वरको खोजने लिये निकला था; उसका इतिहास इस प्रकार कहा करते हैं कि—।११। भगवान् इन्द्रके मातलि नामक सारथि था उस एकके एक ही कन्या उत्पन्न हुई थी वह अपने रूपके कारण संसारमें प्रसिद्ध थी॥१२॥ उस कन्याका नाम गुणकेशी था, वह रूपमें देवताओंकी समान थी और सुंदरता तथा शरीरके सङ्गठनमें वह अन्य स्त्रियोंसे अधिक सुन्दर थी ॥ १३ ॥ जब मातलिको प्रतीत हुआ कि-अब कन्याके विवाह करनेका समय आगया है तब हे राजन्! मातलि इस कामको करनेके लिये तत्पर हुआ और अपनी स्त्रीके साथ विचार करता हुआ समीपमें खोजते २ कहने लगा कि—। १४ । जो उत्तम प्रकृतिके होते हैं, बड़े गिने जाते हैं, यशवाले होते हैं और कोमल स्वभाव वाले होते हैं उन पुरुषोंके यहाँ यदि कन्या उत्पन्न होजाती है तो बहुत दुःखदायिनी होजाती है। धिक्कार है ऐसे कुलमें कन्याके उत्पन्न होनेको । १५ । कन्या माताके कुलको, पिताके कुलको तथा जिस कुलमें दीजाती है उस कुलको इसप्रकार तीन सज्जन पुरुषोंके कुलको संशयमें डाल देती है।१६। मैंने मानुषीदृष्टिसे ही देवलोक और मनुष्यलोकमें जाकर खोज करी है परन्तु इन लोकोंमें मुझे कोई भी वर अच्छा नहीं लगा ॥ १७ ॥ कण्वजी कहने लगे कि—मातलिको देवता, मनुष्य, दैत्य, गंधर्व तथा ऋषि आदि कोई भी पुरुष वर बनाने

भार्यया तु स संमन्त्र्य सह रात्रौ सुधर्मया। मातलिर्नागलोकाय चकार गमने मतिम् ॥१९॥ न मे देवमनुष्येषु गुणकेश्याः समो वरः। रूपतो दृश्यते कश्चिन्नागेषु भविता ध्रुवम् ॥२०॥ इत्यामन्त्र्य सुधर्मां स कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्। कन्यां शिरस्युपाघ्राय प्रविवेश महीतलम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

कण्व उवाच। मातलिस्तु व्रजन्मार्गे नारदेन महर्षिणा। वरुणं गच्छता द्रष्टुं समागच्छद्यदृच्छया ॥१॥ नारदोऽथाब्रवीदेनं क्व भवान् गन्तुमुद्यतः। स्वेन वा सूत कार्येण शासनाद्वा शतक्रतोः ॥२॥ मातलिर्नारदेनैवं सम्पृष्टः पथि गच्छता। यथावत् सर्वमाचष्ट स्वकार्यं नारदं प्रति ॥ ३ ॥ तमुवाचाथ स मुनिर्गच्छावः सहिताविति। सलिलेशदिदृक्षार्थमहमप्युद्यतो दिवः ॥ ४ ॥ अहन्ते सर्वमाख्यास्ये दर्शयन् वसुधातलम्। दृष्ट्वा तत्र वरं कञ्चिद्रोचयिष्याव मातले ॥५॥ अवगाह्य तु तौ भूमिमुभौ मातलिनारदौ ददृशाते महात्मानौ लोकपालमपाम्प-

के लिये पसन्द नहीं आया ॥ १८ ॥ तब मातलिने अपनी स्त्री सुधर्मा से रातमें बातचीत करनेके पीछे नागलोकमें जानेका विचार किया१९ उसने मनमें विचार किया कि—मेरी गुणकेशीकेसे रूपवाला वर देवताओंमें तथा मनुष्योंमें भी दिखाई नहीं दिया परन्तु नागलोकमें अवश्य ही उसकी समान रूपवाला वर मिलेगा ॥ २० ॥ यह विचार कर सुधर्मासे कह कर कन्याके शिरको सूँघकर वह वर ढूँढनेके लिए नागलोकको चला गया ॥ २१ ॥ सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥९७॥

कण्वजीने कहा कि-हे राजा दुर्योधन! मातलि जारहा था कि-मार्गमें वरुणसे मिलनेके लिये जाते हुए नारदजी एकाएक उसे मिल गए ॥ १ ॥ तब नारदजीने उससे बूझा कि-ओ सूत ! तू कहाँ जारहा है तू अपने कार्यके लिये जारहा है या देवराज इन्द्रकी आज्ञासे जारहा है ? ॥ २ ॥ इस प्रकार मार्गमें चलते हुए नारदजीने उससे बूझा तब मातलिने आरंभसे अन्ततक सब कारण नारदजीको बता दिया ।३। तब उन मुनिने कहा कि-मैं भी वरुणको देखनेकी इच्छासे स्वर्गसे आरहा हूँ अतः चल हम दोनों साथ ही साथ पातालको चलें ।४। हे मातलि ! मैं तुझे पातालको दिखाता हुआ तहाँ की सब बातें बताऊँगा और और तहाँ किसी वरको देखकर हम दोनों उसे पसन्द करलेंगे ।।५।। इसप्रकार बात चीत करके मातलि तथा नारद पाताल

तिम् ॥६॥ तत्र देवर्षिसदृशीं पूजां स प्राप नारदः। महेन्द्रसदृशीं चैव मातलिः प्रत्यपद्यत ॥ ७ ॥ तावुभौ प्रीतमनसौ कार्यवन्तौ निवेद्य ह। वरुणेनाभ्यनुज्ञातौ नागलोकं विचेरतुः ॥ ८ ॥ नारदः सर्वभूतानामन्तर्भूमिनिवासिनाम्। जानंश्चकार व्याख्यानं यन्तुः सर्वमशेषतः ॥ ९ ॥ नारद उवाच। दृष्टस्ते वरुणः सूत पुत्रपौत्रसमावृतः। पश्योदकपतेः स्थानं सर्वतो भद्रमृद्धिमत् १० एष पुत्रो महाप्राज्ञो वरुणस्येह गोपतेः। एष वै शीलवृत्तेन शौचेन च विशिष्यते ॥ ११ ॥ एषोऽस्य पुत्रोऽभिमतः पुष्करः पुष्करेक्षणः। रूपवान् दर्शनीयश्च सोमपुत्र्या वृतः पतिः१२ ज्योत्स्ना कालीति यामाहुर्द्वितीयां रूपतः श्रियम्। अदित्या चैव यः पुत्रो ज्येष्ठः श्रेष्ठः कृतः स्मृतः ॥१३॥ भवनं पश्य वारुण्यं यदेतत् सर्व-

---

में उतरे तहाँ उन्होंने लोकपाल जलके स्वामी वरुणजीके दर्शन किये तहाँ वरुणदेवकी ओरसे नारदजीको देवर्षिकी समान सत्कार मिला और मातलिको इन्द्रकी समान मान मिला ॥ ७ ॥ वे दोनों वरुणसे सत्कार पाने पर मनमें प्रसन्न हुए तदनन्तर वे दोनों जिस कामके लिए आये थे वह बात वरुणजीसे कही, वरुणने उन्हें काम करनेके लिए आज्ञा देदी तदनन्तर नारदजी और मातलि सारथि दोनों वरको ढूढनेके लिए नागलोकमें घूमने लगे ॥ ८ ॥ नारदजी पातालमें रहने वाले सब प्राणियोंको जानते थे अतः वह मातलिसे वहाँ रहने वालों का सब वृतान्त अच्छी प्रकारसे कहने लगे ॥ ९ ॥ नारदजी बोले कि-हे सारथि मातलि! तुमने बेटे पोतों सहित वरुणजीके दर्शन किए अब तू जलके स्वामी वरुणके सम्पत्तिमान् सर्वतोभद्र नामवाले स्थान को देख ॥ १० ॥ यह कहकर उन्होंने उसे वरुणका राजभवन दिखाया और तहाँ रहनेवाले वरुणके पुत्रको दिखाते हुए नारदजी कहने लगे कि—यह जलके स्वामी वरुणका महाबुद्धिमान् पुत्र है। यह शील सदाचार तथा शौचमें दूसरोंसे अधिक है ॥ ११ ॥ इस कमलकी समान नेत्रवाले कुमारका नाम पुष्कर है इसको वरुण बहुत मानता है, यह रूपवान् है, दर्शनीय है और चन्द्रमाकी पुत्रीसे यह विवाहा गया है ॥१२॥ चन्द्रमाकी दूसरी पुत्रीका नाम ज्योत्स्नाकाली है वह रूपमें लक्ष्मीसी कही जाती है, उसने अदितिके पुत्र सूर्यको अपना स्वामी बनाया है ॥ १३ ॥ हे मित्र ! इस वरुणके राजभवनको देख यह भवन निरा सोनेका ही है। हे इन्द्रके मित्र ! इस भवनमें प्रवेश करके सुरों (देवताओं) ने वारुणी अर्थात् सुराको पाया था तबसे

कांचनम् । यत् प्राप्य सुरतां प्राप्ताः सुराः सुरपतेः सखे १४ एतानि हृतराज्यानां दैतेयानां स्म मातले । दीप्यमानानि दृश्यन्ते सर्वप्रहरणान्युत ॥ १५ ॥ अक्षयाणि किलैतानि विवर्त्तन्ते स्म मातले । अनुभावप्रयुक्तानि सुरैरवजितानि ह ॥ १६ ॥ अत्र राक्षसजातयश्च दैत्यजातयश्च मातले । दिव्यप्रहरणाश्चासन् पूर्वदैवतनिर्मिताः ॥ १७ ॥ अग्निरेष महार्चिष्मान् जागर्त्ति वारुणे हृदे। वैष्णवञ्चक्रमाविद्धं विधूमेन हविष्मता ॥ १८ ॥ एष गांडीमयश्चापो लोकसंहारसंभृतः । रक्ष्यते दैवतैर्नित्यं यतस्तद् गांडिवं धनुः ॥ १९ ॥ एष कृत्ये समुत्पन्ने तत्तद्धारयते बलम् । सहस्रशतसंख्येन प्राणेन सततं ध्रुवः ॥ २० ॥ अशास्यानपि शास्त्येष रक्षोबन्धुषु राजसु । सृष्टः प्रथमतश्चण्डो ब्रह्मणा ब्रह्मवादिना ॥२१॥ एतच्छत्रं नरेन्द्राणां महच्चक्रेण भाषितम्। पुत्राः सलिलराजस्य धारयन्ति महोदयम् ॥ २२ ॥ एतत् सलिलराजस्य छत्रं छत्रगृहे स्तिथम् । सर्वतः सलिलं शीतं जीमूत इव वर्षति ॥ २३ ॥

सुर नामको प्राप्त हुए थे तिस वारुणी भवनको तू देख ॥ १४ ॥ और हे मातलि ! यह जो चमकते हुए अस्त्र दीख रहे हैं यह दैत्योंके हैं और वरुणने उन असुरोंको मार कर उनके राज्यको जीत लिया है ॥१५॥ हे मातलि ! यह अस्त्र किसीसे नहीं टूटने वाले और मारनेके पीछे अपना काम करके फिर मारने वालेके हाथमें आजाते हैं इनको बड़ेही मानसिक बलवाला पुरुष चला सकता है और देवताओंको यह विजय करनेमें मिले हैं ॥ १६ ॥ हे मातलि ! यहाँ पहिले देवताओंसे जीते हुए दिव्य अस्त्र शस्त्रोंको धारण करने वाले राक्षसजाति तथा दैत्यजातिके प्राणियोंकी बसती थी ॥ १७ ॥ यह बड़ी २ लपटों वाला अग्नि वरुणके घरमें जल रहा है और इस धुएँ रहित अग्निसे विष्णुका सुदर्शनचक्र बंधा हुआ है ॥ १८ ॥ और यह वज्रकी ग्रन्थि वाला लोकोंका संहार करने वाला गांडीव धनुष है । देवता इसकी सदा रक्षा करते हैं ॥ १९ ॥ इस धनुषमें दश लाख धनुषोंकी बराबर बल है परन्तु जब किसी कामकी आवश्यकता होती है तो उस कार्यके अनुसार अपनेसे अधिक बलको भी धारण करता है ॥ २० ॥ जिनको दण्ड न दिया जासके ऐसे राक्षस राजाओंको भी यह दण्ड देता है । वेदवेत्ता ब्रह्माजीने पहिले इस प्रचण्ड धनुषको बनाया था ॥२१॥ और यह धनुष बड़े २ राजाओंमें महाचक्रके नामसे प्रसिद्ध है, इस बड़ी कीर्तिवाले धनुषको वरुणके पुत्र धारण करते हैं ॥ २२॥

एतच्छत्रात् परिभ्रष्टं सलिलं सोमनिर्मलम्। तमसा मूर्छितं भाति येन नार्च्छति दर्शनम् ॥ २४ ॥ बहून्यद्भुतरूपाणि द्रष्टव्यानीह मातले। तव कार्यविरोधस्तु तस्माद् गच्छाव मा चिरम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणेऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

नारद उवाच । एतत्तु नागलोकस्य नाभिस्थाने स्थितं पुरम्। पातालमिति विख्यातं दैत्यदानवसेवितम् ॥ १ ॥ इदमद्भिः समं प्राप्ता ये केचिद्भुवि जङ्गमाः। प्रविशन्तो महानादं नदन्ति भयपीडिताः ॥२॥ अत्रासुरोऽग्निः सततं दीप्यते वारिभोजनः। व्यापारेण धृतात्मानं निबद्धं समबुध्यत ॥ ३ ॥ अत्रामृतं सुरैः पीत्वा निहितं निहतारिभिः अतः सोमस्य हानिश्च वृद्धिश्चैव प्रदृश्यते ॥४॥ अत्रादित्यो हयशिराः

यह जो दीख रहा है यह वरुणका छत्र है और छत्र भवनमें रक्खा हुआ है, यह मेघकी समान सब ओरसे शीतल जलकी वर्षा किया करता है ॥२३॥ इस छत्र परसे चन्द्रमाकी समान निर्मल जल टपका करता है परन्तु अन्धेरेके कारण वह दीखनेमें नहीं आता है २४ हे मातलि! यहाँ आश्चर्यजनक देखनेके योग्य बहुतसे पदार्थ हैं परन्तु तेरे काम की शीघ्रतासे हम विलम्बन करके पातालको चलते हैं ।२५। अट्ठानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९८ ॥

नारदजीने कहा, कि-हे मातलि ! यह लोक पाताल नामसे प्रसिद्ध है, यह नागलोकके मध्यमें बसा हुआ है और इसमें दैत्य दानव रहते हैं ॥ १ ॥ जो कोई भी जङ्गम प्राणी जलके साथ पृथ्वीपरसे इस लोक में आते हैं वह भयसे दुःख पाकर यहाँ बड़ी बड़ी चीखें मारने लगते हैं ॥ २ ॥ यहाँ जलका भोजन करने वाला वड़वानल निरन्तर जलता रहता है, वह जानता है कि-मुझे देवताओंने यत्नके साथ कैद करके मर्यादामें रक्खा है (नहीं तो शीघ्र ही समुद्रको और लोकोंको भस्म कर डालता) ३ अपने शत्रुओंका नाश करने वाले देवताओंने अमृत को पीकर जो शेष रहा वह यहाँ धर दिया है इस कारण यहाँ चंद्रमा का (१) क्षय और वृद्धि देखनेमें नहीं आते ४ यहां अदितिके पुत्र

(१) सूर्य और चंद्रमा गेंदके आकारके भूगोलकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, जब सूर्यका किसी भूगोलके प्रदेशसे आवरण होजाता है तब सूर्य नहीं दीखता है वही समय रात्रि गिनी जाती है । जो गोल के ऊपर और नीचे रहते हैं वह तो सूर्यादिको सदैव देखा करते हैं

काले पर्वणि पर्वणि । उत्तिष्ठति सुवर्णाख्यं वाग्भिरापूरयन् जगत् । ५ । यस्मादलं समस्तास्ताः पतन्ति जलमूर्त्तयः । तस्मात् पातालमित्येव ख्यायते पुरमुत्तमम् ॥ ६॥ ऐरावतोऽस्मात् सलिलं गृहीत्वा जगतो हितः । मेघेष्वामुञ्चते शीतं यन्महेन्द्रः प्रवर्षति ।७। अत्र नानाविधाकाराः तिमयो नैकरूपिणः । अप्सु सोमप्रभां पीत्वा वसंति जलचारिणः ॥ ८ ॥ अत्र सूर्यांशुभिर्भिन्नाः पातालतलमाश्रिताः । मृताः हि दिवसे सूत पुनर्जीवंति वै निशि ९ उदयन्नित्यशश्चात्र चन्द्रमा रश्मिभिर्बाहुभिः अमृतं स्पृश्य संस्पर्शात सञ्जीवयति देहिनः ॥ १० ॥ अत्र ते धर्म-

हयग्रीव भगवान् विष्णु, वेद पढ़नेवालोंकी वेदध्वनिको बढ़ानेके लिये वेदवाणीके द्वारा सुवर्ण नामक जगत्को भरते हुए हरएक पर्वकालमें बाहर निकलते हैं ५ यहाँ वह चन्द्रमा आदि जलकी सब मूर्त्तियें अलं (परिपूर्ण) भावसे जलका पतन (वर्षा) किया करती हैं, इसकारण यह नगर पाताल नामसे कहा जाता है ॥ ६ ॥ जगत्का हित करने वाला ऐरावत नामका हाथी यहाँसे जल लेकर मेघोंमें डाल देता है और राजा इन्द्र उस शीतल जलको बरसाता है ७ यहाँ अनेकों प्रकार के आकारोंकी और अनेकों रंगकी बड़ी२ मछलियें रहती हैं, वहजल जन्तु जलमें चन्द्रमाकी चाँदनीको पीकर रहते हैं ॥ ८ ॥ हे सूत ! यहाँ पातालतलमें रहने वाले जलचर दिनमें सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे मर जाते हैं और रातमें फिर जीजाते हैं ॥ ९ ॥ उदय होता हुआ चन्द्रमा निरन्तर अपनी किरणोंरूपी हाथोंसे अमृतको छूकर उन अमृतको छूने वाले हाथोंसे प्राणियोंको स्पर्श करके उनको जिला देता है १०

उनमें चन्द्रमण्डल जलमय है वह सूर्यकी तेजस्वी किरणोंसे प्रकाशित होता है, सूर्य और चंद्रमा ज्यों २ दूर होते जाते हैं त्यों२ चंद्रमा विशेष प्रकाश पाता चला जाता है और ज्यों २ सूर्य तथा चन्द्रमा पास पासको आते जाते हैं त्यों २ सूर्यके आगे रहने वाले अग्नि आदि देवताओंसे चन्द्रमा हमारी दृष्टिसे छिपता जाता है, इस ही अभिप्रायसे शास्त्रमें कहा है, कि--पहिली कालको अग्नि पीता है दूसरीको सूर्य पीता है । समीपता होनेके कारण अप्यायन नाम ही पान है । जो पातालके मध्यस्थानमें रहते हैं, उनको मेरुके ऊपर रहने वालोंकी चन्द्रमा सदा पूर्ण दीखतो है, क्योंकि-तहाँ अग्नि आदिका आवरण नहीं होता है, इस कारण तहाँ चन्द्रमाकी क्षय वा वृद्धि नहीं दीखते ।

निरस्ता यद्धाः कालेन पीडिताः । दैवेन निगृहीतास्ते वासवेन हृतश्रियः ॥ ११ ॥ अत्र भूतपतिर्नाम सर्वभूतमहेश्वरः । भूतये सर्वभूतानामचरत्तप उत्तमम् ॥ १२ ॥ अत्र गोव्रतिनो विप्राः स्वाध्यायाम्नायकर्शिताः । त्यक्तप्राणा जितस्वर्गा निवसन्ति महर्षयः ॥ १३ ॥ यत्र तत्र शयो नित्यं येन केनचिदाशितः । येनकेनचिदाच्छन्नः स गोव्रत इहोच्यते १४ ऐरावणो नागराजो वामनः कुमुदोऽञ्जनः । प्रसूताः सुप्रतीकस्य वंशे वारणसत्तमाः ॥ १५ ॥ पश्य यद्यत्र ते कश्चिद्रोचते गुणतो वरः । वरयिष्यामि तं गत्वा यत्नमास्थाय मातले ॥१६॥ अण्डमेतज्जले न्यस्तं दीप्यमानमिव श्रिया । आप्रजानां निसर्गाद्वै नोद्भिद्यति न सर्पति ॥ १७ ॥ नास्य जातिं निसर्गं वा कथ्यमानं शृणोमि वै । पितरं मातरञ्चापि नास्य जानाति कश्चन ॥१८॥ अतः किल महानग्निरन्तकाले समुत्थितः । धक्ष्यते मातले सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १९ ॥

इन्द्रने राज्यलक्ष्मीको छीन कर जिनको कैद कर लिया था वह धर्मपरायण दैत्य समयके अनुसार दुःख भोगते हुए यहाँ कैदी बन कर रहते हैं । ११ । यहाँ भूतोंके स्वामी, सकल प्राणियोंके महेश्वर शङ्कर भगवान् सकल प्राणियोंके कल्याणके लिये बड़ी भारी तपस्या किया करते हैं ॥ १२ ॥ गोव्रत धारण करके नित्य परिश्रमके साथ वेद तथा शास्त्रका अध्ययन करनेके कारण दुर्बलहुए और स्वर्गको जीतनेवाले महर्षि प्राणवायुको वशमें करके यहाँ रहते हैं ॥ १३ ॥ सदा चाहे जहाँ सो रहना, जो कोई कुछ खिला देय उसको खालेना और जो कोई कुछ उढादेय उसको ओढ लेना, इसका नाम गोव्रत है १४ इस नगरमेंके सुप्रतीक नामक हाथीके वंशमें नागराज ऐरावत, वामन, कुमुद और अञ्जन नामके उत्तम हाथी उत्पन्न हुए हैं ॥ १५ ॥ हे मातलि ! तू यहाँ देख, यदि कोई गुणवान् वर तुझे अच्छा लगे तो मैं उसके पास जाकर उद्योग करके उससे विवाह करनेको कहूँगा १६ शोभासे चमकता हुआ यह अण्डा जलमें छोड़ दिया गया है यह प्रजाकी उत्पत्तिसे लेकर आज तक न फूटता है न कहींको हटता है ॥ १७ ॥ इसका जन्म वा स्वभाव कैसा है इस बातको मैंने किसीसे कहते हुए नहीं सुना तथा इसके माता और पिताको भी कोई नहीं जानता है १८ हे मातलि ! ऐसा सुननेमें आता है, कि—प्रलयके समय यहाँसे बड़ा भारी अग्नि बल उठेगा और वह चर अचर सब जगत्को भस्म कर डालेगा ॥ १९ ॥ नारदजीके कथनको सुन कर अब मातलिने कहा,

मातलिस्त्वब्रवीच्छ्रुत्वा नारदस्याथ भाषितम् । न मेऽत्र रोचते कश्चिदन्यतो व्रज मा चिरम् ॥ २० ॥ छ छ छ छ

।इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषण ऊनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

नारद उवाच । हिरण्यपुरमित्येतत् ख्यातं पुरवरं महत् । दैत्यानां दानवानाञ्च मायाशतविचारिणाम् ॥ १ ॥ अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा । मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम् ॥ २ ॥ अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महौजसः। दानवा निवसंति स्म शूरा दत्तवराः पुरा ॥३॥ नैते शक्रेण नान्येन यमेन वरुणेन वा । शक्यन्ते वशमानेतुं तथैव धनदेन च ॥ ४ ॥ असुराः कालखञ्जाश्च तथा विष्णुपदोद्भवाः । नैर्ऋता यातुधानाश्च ब्रह्मपादोद्भवाश्च ये ॥ ५ ॥ दंष्ट्रिणो भीमवेगाश्च वातवेगपराक्रमाः ।मायावीर्योपसम्पन्ना निवसन्त्यत्र मातले६ निवातकवचा नाम दानवा युद्धदुर्मदाः। जानासि च यथा शक्रो नैतान् शक्नोति बाधितुम् ॥ ७ ॥ बहुशो मातले त्वञ्च तव पुत्रश्च गोमुखः ।

कि-मुझे इनमेंसे कोई अच्छा नहीं लगता, अब दूसरी जगहको चलिये देर न करिये ॥ २० ॥ निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९९ ॥ छ

नारदजीने कहा, कि—हे मातलि ! यह जो बड़ा भारी सुन्दर नगर दीख रहा है, यह सैंकड़ों प्रकारकी मायासे विचरने वाले दैत्य, और दानवोंका नगर हिरण्यपुर नामसे प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ इस पाताल नगरको पहिले विश्वकर्माने बड़ा उद्योग करके बनाया था और मय दानवने इसको अपने मनसे सुधारा था ॥ २ ॥ पहिले जिनको ब्रह्माजीने वरदान दिये थे ऐसे महाबली वीर दानव यहाँ रहते हैं और सहस्रों प्रकारकी माया किया करते हैं ॥ ३ ॥ इन दानवोंको इन्द्र, यम वरुण, कुबेर वा दूसरा और कोई भी वशमें नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ तथा हे मातलि ! यहाँ विष्णुके चरणमेंसे उत्पन्न हुए कालखञ्ज नामके असुर और ब्रह्माके चरणोंसे उत्पन्न हुए नैर्ऋत और यातुधान नामके राक्षस भी इस नगरमें रहते हैं, वे सब विशाल दाँत और भयानक वेग वाले तथा वायुके वेगकी समान पराक्रमी तथा मायाका बल रखने वाले हैं ॥ ५—६ ॥ तथा युद्ध करनेमें मदोन्मत्त निवातकवच नामके दानव भी यहाँ रहते हैं, इन्द्र भी इनको वशमें नहीं कर सकता,इस बातको तू जानता ही है॥७॥हे मातलि!तू,तेरा पुत्र गोमुख, शचीपति इन्द्र और उसका पुत्र यहाँसे अनेकों बार हारकर भाग चुके

तथाविधम् । देवर्षे नैव मे कार्य्यं विप्रियं त्रिदिवौकसाम् ॥ १७ ॥ नित्यानुषक्तवैरा हि भ्रातरो देवदानवाः । परपक्षेण सम्बन्धं रोचयिष्याम्यहं कथम् ॥ १८ ॥ अन्यत्र साधु गच्छाव द्रष्टुं नार्हामि दानवान् जानामि तव चात्मानं हिंसात्मकमनं तथा ॥ १९ ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे शततमोऽध्यायः ॥१००॥

नारद उवाच । अयं लोकः सुपर्णानां पक्षिणां पन्नगाशिनाम् विक्रमे गमने भारे नषामस्ति परिश्रमः ॥ १ ॥ वैनतेयसुतैः सूत षड्भिस्ततमिदं कुलम् । सुमुखेन सुनाम्ना च सुनेत्रेण सुवर्चसा ॥ २ ॥ सुरुचा पक्षिराजेन सुबलेन च मातले । वर्द्धितानि प्रसूत्या वै विनताकुलकर्तृभिः ॥३॥ पक्षिराजाभिजात्यानां सहस्राणि शतानि च । कश्यपस्य ततो वंशे जातैर्भूतिविवर्द्धनैः ॥४॥ सर्वे ह्येते श्रिया युक्ताः सर्वे श्रीवत्सलक्षणाः। सर्वे श्रियमभीप्सन्तो धारयन्ति बलान्युत ५ कर्मणा

ताओंको अच्छा नहीं लगेगा वह मैं कभी नहीं करूँगा । १७ । देवता और दानव भाई भाई हैं तो भी उनमें सदाके लिये वैरभाव बँध गया है, इस लिये शत्रुपक्षके साथ सम्बंध कैसे स्वीकार करलूँ ॥ १८ ॥ सम्बन्ध करना तो दूर रहा मैं तो दैत्योंको देखना भी उचित नहीं समझता इस लिये चलो और कहीं चलें, हिंसा करने वाले दैत्योंको तुम प्यारे हो अर्थात् हिंसामें मग्न रहने वाले दैत्य तुम्हारे ऊपर प्रीति करते हैं परन्तु तुम स्वयं अहिंसामें मग्न रहने हो १९ सौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०० ॥ छ छ छ छ

नारदजी कुछ और आगे जाकर कहनेलगे, हे मातलि ! यह नगर सर्पोंका भोजन करने वाले गरुड़ पक्षियोंका है, इनको पराक्रम करने में, चलनेमें, और भार उठानेमें परिश्रम नहीं मालूम होता है । १ । हे सूत ! विनतानन्दन गरुड़के छः पुत्र हैं, सुमुख,सुनाम, सुनेत्र, सुवर्चा सुरूप और पक्षिराज सुबल, इन छः पुत्रोंसे गरुड़का कुल फैल रहा है, हे मातलि ! विनताके कुल तथा उसकी विभूतिको धारण करने वाले कश्यपके वंशमें उत्पन्नहुए मुख्य २ गरुड़जातिकेपक्षियोंने अपनी सन्तानोंकी परम्परासे उत्तम कुलके लाखों वंश उत्पन्न करके उसको बहुत ही बढा दिया है ॥२—४॥ ये सब ही शोभासे युक्त और कण्ठ में श्रीवत्सके चिन्हको धारेहुए हैं तथा सब ही लक्ष्मीकी इच्छा करते हुए बलको धारण करते हैं ॥ ५ ॥ ये गरुड़ कर्मसे क्षत्रिय दयाहीन

क्षत्रियाश्चैव निर्घृणा भोगिभोजिनः। ज्ञातिक्षयकरत्वाच्च ब्राह्मण्यं न लभन्ति वै ॥६॥ नामानि चैषां वक्ष्यामि यथा प्राधान्यतः शृणु। मातले श्लाघ्यमेतद्धि कुलं विष्णुपरिग्रहम् ॥ ७ ॥ दैवतं विष्णुरेतेषां विष्णुरेव परायणम्। हृदि चैषां सदा विष्णुर्विष्णुरेव सदा गतिः ॥ ८ ॥ सुवर्णचूडो नागाशी दारुणश्चण्डतुण्डकः। अनिलश्चानलश्चैव विशालाक्षोऽथ कुण्डली ॥९॥ पङ्कजिद्वज्रविष्कम्भो वैनतेयोऽथ वामनः। वातवेगो दिशाचक्षुर्निमेषोऽनिमिषस्तथा ॥ १० ॥ त्रिरावः सप्तरावश्च वाल्मीकिर्द्वीपकस्तथा। दैत्यद्वीपः सरिद्द्वीपः सारसः पद्मकेतनः ११ सुमुखश्चित्रकेतुश्च चित्रबर्हस्तथानघः। मेघहृत् कुमुदो दक्षः सर्पान्तः सोमभोजनः ॥१२॥ गुरुभारः कपोतश्च सूर्यनेत्रश्चिरान्तकः। विष्णुधर्मा कुमारश्च परिबर्हो हरिस्तथा ॥ १३ ॥ सुस्वरो मधुपर्कश्च हेमवर्णस्तथैव च। मलयो मातरिश्वा च निशाकरदिवाकरौ ॥ १४ ॥ एते प्रदेशमात्रेण मयोक्ता गरुडात्मजाः। प्राधान्यतस्ते यशसा कीर्तिताः प्राणतश्च ये ॥ १५ ॥ यद्यत्र न रुचिः काचिदेहि गच्छाव मातले। तं नयिष्यामि देशं त्वां वरं यत्रोपलप्स्यते ॥ १६ ॥ ॥ १०१ ॥

और सर्पोंका भोजन करनेवाले हैं तथा अपने भाइयोंका (सर्पोंका) नाश करनेके कारण ब्राह्मणपनेको नहीं पाते हैं ॥ ६ ॥ हे मातलि ! इनके मुख्य २ नाम कहता हूँ उनको तू सुन, इस कुलको विष्णुने भी स्वीकार किया है, इस कारण यह बड़ी प्रशंसाके योग्य है ॥ ७ ॥ इन गरुड़ पक्षियोंका देवता विष्णु है और इनके परमरक्षक भी विष्णु ही हैं, इनके हृदयमें सदा विष्णु ही निवास करते हैं और इनकी गतिभी विष्णु ही हैं ॥८॥ अब मैं तुझसे गरुड़के पुत्रोंके नाम कहता हूँ उनको तू सुन-सुवर्णचूड़, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्डक, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डली, पङ्कजित् वज्रविष्कम्भ, वैनतेय, वामन, वातवेग, दिशाचक्षु, निमेष, अनिमिष त्रिराव, सप्तराव वाल्मीकि, द्वीपक, सरद्द्वीप, दैत्यद्वीप, सारस, पद्मकेतन, सुमुख, चित्रबर्ह, चित्रकेतु चित्रबर्ह, मेघहृत् कुमुद, दक्ष, सर्पान्त, सोमभोजन, गुरुभार, कपोत सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्मा, कुमार, परिबर्ह, हरि, सुस्वर, मधुपर्क हेमवर्ण, मलय, मातरिश्वा निशाकर और दिवाकर ॥ ९—१४ ॥ इस प्रकार मैंने गरुड़के मुख्य २ कीर्तिमान् पुत्रोंके नाम तथा अन्य प्राणी संक्षेपमें तुम्हें कहकर सुना दिये ॥ १५ ॥ हे मातलि ! यदि यहां किसीके ऊपर रुचि न हो तो आओ चलें, अब तुम्हें ऐसे स्थान पर लेजाऊँगा, कि-जहां वर मिलजाय ॥ १६ एकसौ एकवां अध्याय

नारद उवाच । इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम् । यत्रास्ते सुरभिर्माता गवाममृतसम्भवा ।१। क्षरन्ति सततं क्षीरं पृथिवी सारसम्भवम् । षण्णां रसानां सारेण रसमेकमनुत्तमम् ॥२॥ अमृतेनाभितृप्तस्य सारमुद्गिरतः पुरा । पितामहस्य वदनादुदतिष्ठदनिन्दिता ३ यस्याः क्षीरस्य धाराया निपतन्त्या महीतले । ह्रदः कृतः क्षीरनिधिः पवित्रं परमुच्यते ४ पुष्पितस्येव फेनेन पर्य्यन्तमनुवेष्टितम् । पिबंतो निवसन्त्यत्र फेनपा मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥ फेनपा नाम ते ख्याताः फेनाहाराश्च मातले । उग्रे तपसि वर्तन्ते येषां बिभ्यति देवताः ॥ ६ ॥ अस्याश्चतस्रो धेन्वोऽन्या दिक्षु सर्वासु मातले । निवसन्ति दिशां पाल्यो धारयन्त्या दिशः स्मृताः ॥ ७ ॥ पूर्वां दिशं धारयते सुरूपा नाम सौरभी । दक्षिणां हंसिका नाम धारयत्यपरां दिशम् ८ पश्चिमा वारुणी दिक् च धार्य्यते वै सुभद्रया । महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया ॥ ९ ॥ सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम् । उत्तरां मातले

नारदजीने कुछ आगे लिवा जाकर कहा, कि-अब हम जिस लोक में आपहुँचे हैं, यह पृथ्वीके नीचे रसातल नामका सातवाँ पाताल है जहाँ अमृतसे उत्पन्न हुई गौओंकी माता सुरभी रहती है ॥ १ ॥ यह सुरभी छहों रसोंमें साररूपसे एक परमोत्तम रस है, पृथिवीके सार अंशसे उत्पन्न हुई और हर समय दूधको टपकाने वाली है, २ पहिले अमृत पीकर तृप्त हुए ब्रह्माजीको डकार आयी, उसमें जो सार ब्रह्माजीके मुखमेंसे बाहरको आया उससे ही श्रेष्ठ गौ उत्पन्न हुई है ॥३॥ पृथ्वीतल पर पड़ती हुई उसके दूधकी धारासे जो कुण्ड होगया, वही परम पवित्र क्षीरसागर कहलाता है ॥४॥ झागोंके कारण खिले हुए फूलों वालेसे प्रतीत होने वाले उस क्षीरसागरकेतट झागोंसे सने हुए रहते हैं, उन झागोंको पीकर जो मुनि यहाँ रहते हैं वह 'फेनपा' कहलाते हैं । ५ ॥ हे मातलि ! जो यहाँ रह कर उग्र तप करते हुए झागोंको आहार करते हैं उन फेनपा नामसे प्रसिद्धि पायेहुए मुनियों से देवता भी डरते हैं ॥ ६ ॥ हे मातलि ! इस सुरभीसे और चार गौएँ उत्पन्न हुई हैं वह चार गौएँ चारों दिशाओंको धारण कर उन का पालन कर रही हैं और वह उन दिशाओंमें ही रहती हैं ७ सुरूपा नाम वाली सुरभीकी पुत्री पूर्वदिशाको धारण कर रही है, हंसिका नाम वाली सुरभीकी पुत्री दक्षिण दिशाको धारण कर रही है ॥ ८ ॥ हे मातलि ! महाप्रभाव वाली विश्वरूपा सुभद्रा वरुणदेवकी पश्चिम-

धर्म्यां तथैवैलविलसंज्ञिताम् ॥१०॥ आसां तु पयसा मिश्रं पयो निर्मथ्य सागरे । मन्थानं मंदरं कृत्वा देवैरसुरसंहितैः ॥ ११ ॥ उद्धृता वारुणी लक्ष्मीरमृतञ्चापि मातले । उच्चैः श्रवाश्चाश्वराजो मणिरत्नञ्च कौस्तुभम् ॥ १२ ॥ सुधाहारेषु च सुधां स्वधाभोजिषु च स्वधाम् । अमृतञ्चामृताशेषु सुरभी क्षरते पयः ॥१३॥ अत्र गाथा पुरा गीता रसातलनिवासिभिः । पौराणी श्रूयते लोके गीयते या मनीषिभिः ॥ १४ ॥ न नागलोके न स्वर्गे न विमाने त्रिविष्टपे । परिवासः सुखस्तादृक् रसातलतले यथा ॥ १५ ॥ ॐ ॐ ॐ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलि-
वरान्वेषणे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

नारद उवाच । इयं भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता यादृशी देवराजस्य पुरीवर्य्यामरावती ॥ १ ॥ एष शेषः स्थितो नागो येनेयं धार्यते सदा । तपसा लोकमुख्येन प्रभावमहिता मही ॥ २ ॥ श्वेताच-

---

दिशाको धारण कर रही है॥९॥ सर्वदुघा नाम वाली सुरभी ऐलविल नामसे प्रसिद्ध धर्ममयी उत्तर दिशाको धारण कर रही है ॥ १० ॥ हे मातलि ! देवता और दैत्योंने इकट्ठे हो मन्दराचल पर्वतको रई बना इन गौओंके दूधसे इकट्ठे समुद्रके जलको मथ कर उसमेंसे वारुणी लक्ष्मी, अमृत, उच्चैःश्रवा घोड़ा और कौस्तुभ नामके मणि आदिको उत्पन्न किया था ॥ ११—१२ ॥ यह सुरभी सुधाका भोजन करने वालोंको सुधा देती है, स्वधाका भोजन करने वालोंको स्वधा देती है और अमृतका भोजन करने वाले देवताओंको अमृत देती है १३ इस विषयमें पहिले रसातलमें रहने वालोंने एक गाथा गायी थी, जो पौराणिक गाथा लोकमें विद्वानोंके द्वारा इस प्रकार गायी जाती है१४ रसातललोकमें रहना जैसा सुखदायक है वैसा सुखदायक नागलोकमें रहना भी नहीं है, विमानका निवास भी नहीं है और स्वर्गका निवास भी नहीं है ॥ १५ ॥ एकसौ दोवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०२ ॥

वहांसे और आगे बढ़कर नारदजीने कहा, कि—हे मातलि ! यह जो दीख रही है, यह भोगवती नामकी पुरी है, वासुकी इसकी रक्षा करता है, जैसी देवराजकी अमरावती है वैसी ही श्रेष्ठ यह भी है। यह देखो इसमें शेषनाग रहते हैं, यह तपके कारण जगत्में मुख्य माने जाने वाले शेषनाग सदा इस प्रभाव शाली पृथिवीको धारण करते हैं ॥ २ ॥ इन महाबली शेषजीका आकार श्वेत पर्वतके समान और

लनिभाकारो दिव्याभरणभूषितः । सहस्रं धारयन्मूर्ध्ना ज्वालाजिह्वो महाबलः ॥ ३ ॥ इह नानाविधाकारा नानाविधविभूषणाः। सुरसायाः सुता नागा निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ४ ॥ मणिस्वस्तिकचक्रांकाः कमण्डलुकलक्षणाः ।सहस्रसंख्या बलिनः सर्वे रौद्राः स्वभावतः ॥ ५ ॥ सहस्रशिरसः केचित् केचित् पञ्चशताननाः। शतशीर्षास्तथा केचित् केचित् त्रिशिरसोऽपि च ॥ ६ ॥ द्विपञ्चशिरसः केचित् केचित् सप्तमुखास्तथा । महाभोगा महाकायाः पर्वताभोगभोगिनः ॥ ७ ॥ बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । नागानामेकवंशानां यथा श्रेष्ठन्तु मे शृणु ॥ ८ ॥ वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ । कालीयो नहुषश्चैव कम्बलाश्वतरावुभौ ९ बाह्यकुण्डो मणिर्नागस्तथैवापूरणः खगः। वामनश्चैलपत्रश्च कुकुरः कुकुणस्तथा ॥१०॥ आर्य्यको नन्दकश्चैव तथा कलशपोतकौ । कैलासकः पिञ्जरको नागश्चैरावतस्तथा ॥११॥ सुमनोमुखो दधिमुखः शंखो नन्दोपनन्दकौ।आप्तः कोटरकश्चैव शिखी निष्ठूरिकस्तथा ।१२। तित्तिरिर्हस्तिभद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः । द्वौ

दिव्य आभूषणोंसे शोभायमान है, मस्तक पर सहस्र फणोंको धारण किये हुए हैं,और उनकी जीभ अग्निकी लपटकी समानहै३यहाँ अनेकों प्रकारके आकारोंवाले और नाना प्रकारके आभूषणोंको धारण किये हुये सुरसाके पुत्र सर्प आनन्दसे रहते हैं ॥ ४ ॥ वह सब नाग मणि, स्वस्तिक और चक्रके चिन्होंवाले तथा कमंडलुकेसे चिन्होंवाले हैं, संख्यामें सहस्रों बड़े बली और सब ही भयानक स्वभाववाले हैं ॥५॥ इनमें कितने ही सहस्र मस्तकोंवाले, कितने ही पाँच सौ मस्तकोंवाले कितने ही सौ शिरोंवाले और कितने ही तीन शिरोंवाले हैं ॥६॥ कितने ही दश शिरोंवाले और कितने ही सात मुखोंवाले हैं ये सब बड़े२ कायावाले, ऊँचे और पहाड़की समान विशाल शरीरवाले हैं७ यहाँ एक ही सर्पके वंशमेंसे उत्पन्न हुए सहस्रों, लक्षों और अर्बों नाग रहते हैं उन श्रेष्ठ नागोंके नाम क्रमसे कहता हूँ, सुनो ८वासुकि तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालीय, नहुष, कंबल, अश्वतर ॥ ९ ॥ वाह्यकुण्ड, मणि, नाग, आपूरण तथा खग, वामन, ऐलपत्र, कुकुर तथा कुकुण ॥ १० ॥ आर्यक, नन्दक, कलश तथा पोतक, कैलासक, पिञ्जरक नाग तथा ऐरावत ॥ ११ ॥ सुमनोमुख, दधिमुख, शङ्ख, नन्द, उपनन्दक, आप्त, कोटरक, शिखी तथा निष्ठूरिका ॥ १२ ॥ तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद, माल्यपिंडक, पद्म नाम वाले दो नाग,

पत्री पुण्डरीकश्च पुष्पो मुद्गरपर्णकः ॥ १३ ॥ करवीरः पीठरकः संवृत्तो वृत्त एव च । पिण्डारो बिल्वपत्रश्च मूषिकादः शिरीषकः ॥ १४ ॥ दिलीपः शंखशीर्षश्च ज्योतिष्कोऽथापराजितः । कौरव्यो धृतराष्ट्रश्च कुहुरः कृशकस्तथा ॥ १५ ॥ विरजा धारणश्चैव सुबाहुर्मुखरो जयः । बधिरान्धौ विशुण्डिश्च विरसः सुरसस्तथा ॥ १६ ॥ एते चान्ये च बहवः कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः । मातले पश्य यद्यत्र कश्चित्ते रोचते वरः ॥ १७ ॥ कण्व उवाच । मातलिस्त्वेकमव्यग्रः सततं संनिरीक्ष्य वै । पप्रच्छ नारदं तत्र प्रीतिमानिव चाभवत् ॥ १८ ॥ मातलिरुवाच । स्थितो य एष पुरतः कौरव्यस्यार्यकस्य तु । द्युतिमान् दर्शनीयश्च कस्यैष कुलनन्दनः ॥ १९ ॥ कः पिता जननी चास्य कतमस्यैष भोगिनः । वंशस्य कस्यैष महान् केतुभूत इव स्थितः ॥ २० ॥ प्रणिधानेन धैर्येण रूपेण वयसा च मे । मनः प्रविष्टो देवर्षे गुणकेश्याः पतिर्वरः ॥ २१ ॥ कण्व उवाच । मातलिं प्रीतिमनसं दृष्ट्वा सुमुखदर्शनात् । निवेदयामास तदा माहात्म्यं जन्म कर्म च ॥ २२ ॥ नारद उवाच । ऐरावतकुले जातः

पुण्डरीक, पुष्प और मुद्गरपर्णक ॥ १३ ॥ करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, बिल्वपत्र, मूषिकाद और शिरीषक ॥ १४ ॥ दिलीप, शंखशीर्ष, ज्योतिष्क, अपराजित, कौरव्य धृतराष्ट्र कुहर तथा कृशक ॥ १५ ॥ विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, बधिर, अन्ध, विशुण्डि, विरस तथा सुरस ॥ १६ ॥ यह कहते हैं तथा कश्यपकी और भी बहुतसी सन्तानें यहाँ रहती हैं, हे मातलि ! देखलो, कदाचित् इनमेंसे कोई वर तुम्हें अच्छा मालूम हो ॥ १७ ॥ कण्व ऋषि कहते हैं, कि-मातलि सावधान होकर उनमेंके इकएकको बार बार देखने लगा और मानो उनके ऊपर प्रसन्न होगया इस प्रकार नारदजीसे पूछने लगा ॥ १८ ॥ मातलिने पूछा, कि-यह महात्मा जो कौरव्य आर्यकके सामने खड़ा है और जो देखने योग्य परम कान्तिमान् है यह किसका कुलनन्दन (पुत्र) है ? ॥ १९ ॥ इसका पिता कौन है ? इसकी माता कौन है ? और यह किस नागके वंशमें ध्वजा केतु-रूप है ? ॥ २० ॥ हे देवर्षे ! यह कुमार उत्तम आकार धीरज, रूप और अवस्थासे मेरे मनको अच्छा लगता है और मैं इसके साथ गुणकेशीका विवाह करना चाहता हूँ ॥ २१ ॥ कण्व कहते हैं, कि-हे दुर्योधन ! सुमुखको देख कर मातलि प्रसन्न हुआ यह देख कर देवर्षि नारदने उसी समय उसका माहात्म्य जन्म और कर्म मातलिसे

सुमुखो नाम नागराट्। आर्यकस्य मतः पौत्रो दौहित्रो वामनस्य च२३
एतस्य हि पिता नागश्चिकुरो नाम मातले। न चिराद्वैनतेयेन पञ्चत्व-
मुपपादितः॥ २४॥ ततोऽब्रवीत् प्रीतमना मातलिर्नारदं वचः। एष
मे रुचितस्तात जामाता भुजगोत्तमः॥२५॥ क्रियतामत्र यत्नो वै प्रीति-
मानस्म्यनेन वै। अस्मै नागाय वै दातुं प्रियां दुहितरं मुने॥२६॥
इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलि-
वरान्वेषणे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

नारद उवाच। सूतोऽयं मातलिर्नाम शक्रस्य दयितः सुहृत्।
शुचिः शीलगुणोपेतस्तेजस्वी वीर्यवान् बली। १। शक्रस्यायं सखा
चैव मन्त्री सारथिरेव च। अल्पान्तरप्रभावश्च वासवेन रणे रणे। २।
अयं हरिसहस्रेण युक्तं जैत्रं रथोत्तमम्। देवासुरेषु युद्धेषु मनसैव
नियच्छति। ३। अनेन विजितानश्वैर्दोर्भ्यां जयति वासवः। अनेन
बलभित् पूर्वं प्रहृते प्रहरत्युत।४। अस्य कन्या वरारोहा रूपेणासदृशी

कहा॥२२॥ नारद बोले कि-हे मातलि! यह सुमुख नाम वाला नाग-
राज ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुआ है, आर्यकका पोता और वामनका
धेवता है॥ २३॥ हे मातले! इसके पिता चिकुरको गरुड़जीने मार
डाला, इस बातको बहुत दिन नहीं हुए हैं॥२४॥ यह सुनकर मातलि
मनमें प्रसन्न हुआ और कहने लगा; कि—हे तात! इस सर्पराजको
जामाता बनानेके लिये मेरा मन चाहता है॥ २५॥ इसलिये तुम यहाँ
ही विवाहके लिये उद्योग करो, इसके ऊपर मेरा मन प्रसन्न होगया है
इसकारण हे मुने! मैं इसके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करना चाहता
हूँ॥ २६॥ एकसौ तीनवाँ अध्याय समाप्त॥ १०३॥ छ छ

नारदजी आर्यकके पास जाकर कहने लगे, कि-हे आर्यक! यह
इन्द्रका प्यारा सारथी है, इसका नाम मातलि है, यह पवित्र, अच्छे
स्वभावका तेजस्वी, वीर्यवान् और बलवान् है॥ १॥ यह इन्द्रका
मित्र, मंत्री और सारथी भी है, यह इन्द्रके साथ रणमें जाता है तो इस
का पराक्रम इन्द्रसे कुछही कम होता है।२।हजार घोड़ोंसे जुते विजयी
और उत्तम रथको देवासुर नामके बड़े २ संग्रामोंमें यह सारथी ही
अपने मनसे हाँका करता है॥ ३॥ जब यह घोड़ोंके द्वारा वैरियोंको
जीत लेता है तब इन्द्र अपनी दो भुजाओंसे उनको हराता है; पहले
यह शत्रुके ऊपर प्रहार करता है उसके पीछे इन्द्र प्रहार करता है।४।
इस मातलिकी गुणकेशी नाम वाली कन्या है वह सुन्दर अङ्गोंवाली

भुवि । सत्यशीलगुणोपेता गुणकेशीति विश्रुता ५ तस्यास्य यत्नाच्चरतस्त्रैलोक्यममरद्युते । सुमुखो भवतः पौत्रो रोचते दुहितुः पतिः ६ यदि ते रोचते सम्यन् भुजगोत्तम मा चिरम् । क्रियतामार्यक क्षिप्रं बुद्धिः कन्यापरिग्रहे ॥ ७ ॥ यथा विष्णुकुले लक्ष्मीर्यथा स्वाहा विभावसोः । कुले तव तथैवास्तु गुणकेशी सुमध्यमा ॥ ८ ॥ पौत्रस्यार्थे भवांस्तस्माद् गुणकेशीं प्रतीच्छतु । सदृशीं प्रतिरूपस्य वासवस्य शचीमिव ॥ ९ ॥ पितृहीनमपि ह्येनं गुणतो वरयामहे । बहुमानाच्च भवतस्तथैवैरावतस्य च ॥ १० ॥ सुमुखस्य गुणैश्चैव शीलशौचदमादिभिः । अभिगम्य स्वयं कन्यामयं दातुं समुद्यतः ११ मातलिस्तस्य सम्मानं कर्तुं मर्हो भवानपि । कण्व उवाच । स तु दीनः प्रहृष्टश्च प्राह नारदमार्यकः ॥ १२ ॥ म्रियमाणे तथा पौत्रे पुत्रे च निधनं गते । कथमिच्छामि देवर्षे गुणकेशीं स्नुषां प्रति ॥ १३ ॥ आर्यक उवाच । न मे

पृथ्वी पर सबसे अधिक रूपवती, सत्य बोलने वाली तथा अच्छे स्वभाव और अनेकों गुणोंसे शोभित है ॥ ५ ॥ हे देवसमान कान्तिवाले नागराज ! यह मातलि अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये उद्योग करके तीनों लोकोंमें घूमता फिरता है, इसने आपके पोते सुमुखको अपनी कन्याका वर बनानेके लिये इच्छा की है । ६ । हे नागोंमें श्रेष्ठ आर्यक ! यदि आपको यह सम्बन्ध अच्छा लगता हो तो तुम इस कन्याके साथ शीघ्र ही विवाह करनेका विचार करो, विलम्ब न करो ७ विष्णुके कुलमें जैसे लक्ष्मी है, और अग्निके कुलमें जैसे स्वाहा है तैसे ही सुन्दर कटिवाली गुणकेशी तुम्हारे कुलमें गौरव पावे ।८। आप अपने पोतेके लिये गुणकेशीको स्वीकार करिये, जैसे इन्द्राणी इन्द्रको प्यारी है तैसे ही यह कन्या भी योग्य वरके योग्य है ॥ ९ ॥ तुम्हारा यह पोता बिना पिताका है, तोभी यह अपने गुणोंके कारण से तथा तुम्हारी और ऐरावतकी प्रतिष्ठाके कारणसे हम इसको वर-रूपसे स्वीकार करना चाहते हैं ॥ १० ॥ सुमुखमें अच्छे गुण हैं, इस का स्वभाव अच्छा है, इसमें पवित्रता है और यह शम दम आदिसे युक्त है, इस कारण मातलि स्वयं आकर इसको कन्या देनेके लिये उद्यत हुआ है, इस कारण तुम्हें इसका सत्कार करना चाहिये, कण्व कहते हैं कि-यह सुन कर आर्यक उदास तथा प्रसन्नसा भी होकर नारदजीसे कहने लगा, कि-॥ ११ ॥ १२ ॥ हे देवर्षे ! आप मेरे पोते की याचना करते हो, परन्तु थोड़े ही दिन हुए कि—मेरा पुत्र मारा

नैतद्बहुमतं महर्षे वचनं तव । सखा शक्रश्च संयुक्तः कस्यायं नेप्सितो भवेत् ॥ १४ ॥ कारणस्य तु दौर्बल्याच्चिन्तयामि महामुने । अस्य देहकरस्तात मम पुत्रो महाद्युते ॥ १५ ॥ भक्षितो वैनतेयेन दुःखार्त्तास्तेन वै वयम् । पुनरेव च तेनोक्तं वैनतेयेन गच्छता । मासेनान्येन सुमुखं भक्षयिष्य इति प्रभो ॥१६॥ ध्रुवं तथा तद्भविता जानीमस्तस्य निश्चयम् । तेन हर्षः प्रनष्टो मे सुपर्णवचनेन वै ॥१७॥ कण्व उवाच । मातलिस्त्वब्रवीदेनं बुद्धिरत्र कृता मया । जामातृभावेन वृतः सुमुखस्तव पुत्रजः ॥१८॥ सोऽयं मया च सहितो नारदेन च पन्नगः । त्रैलोकेशं सुरपतिं गत्वा पश्यतु वासवम् ॥१९॥ शेषेणैवास्य कार्य्येण प्रज्ञास्याम्यहमायुषः । सुपर्णस्य विघाते च प्रयतिष्यामि सत्तम ।२०। सुमुखश्च मया सार्द्धं देवेशमभिगच्छतु । कार्य्यसंसाधनार्थाय स्वस्ति तेऽस्तु भुजङ्गम ॥२१॥ ततस्ते सुमुखं गृह्य सर्व एव महौजसः । ददृशुः शक्र-

गया है, इसलिये मैं गुणकेशीको पुत्रवधूरूपसे कैसे स्वीकार करसकता हूँ आर्यकने इतना कह कर फिर कहा, कि-हे महर्षे ! आपके इस कहने को मैं गौरवके साथ स्वीकार न करूँ, यह नहीं होसकता, क्योंकि-इस इन्द्रके मित्रके साथ संबन्ध करना कौन नहीं चाहेगा ? ।१३॥१४। परन्तु हे महामुने ! जिस कारणसे संबन्धमें दृढ़ता आती है वह कारण निर्बल है, इस लिये मैं विचार करता हूँ, कि-हे महाकांति वाले मुने! हे तात ! इस सुमुखको उत्पन्न करने वाले मेरे पुत्रको गरुड़ खागया है इस कारणसे हम दुःखित होगये हैं और हे प्रभो ! जाते समय उन गरुड़ने फिर भी हमसे कह दिया था, कि-अगले महीनेमें मैं सुमुखको भी खाऊँगा॥१५-१६॥वास्तवमें ऐसा ही होगा, क्योंकि-हम उस गरुड़ के निश्चयको जानते हैं, गरुड़के उस कथनसे मेरा सब हर्ष नष्ट होगया है ॥ १७ ॥ कण्व ऋषि कहते हैं, कि-यह सुनकर मातलिने आर्यकसे कहा, कि-मैंने इस विषयमें यह विचार किया है, कि-जामातारूपसे मेरा स्वीकार किया हुआ तुम्हारा पोता यह सुमुख सर्प, मेरे और नारद जीके साथ त्रिलोकीपति राजा इंद्रके पास जाय और उनका दर्शन करे ॥ १८ ॥ १९ ॥ मैं इसके अन्तिम कामसे ही इसकी आयु कितनी है, इस बातको जानलूँगा और हे महात्मा आर्यक ! गरुडके विचार को निष्फल करनेके लिये भी मैं उद्योग करूँगा ॥ २० ॥ इसलिये यह सुमुख अपना काम साधनेके लिये मेरे साथ जाय और हे महासर्प ! आपका कल्याण हो ॥२१॥ फिर वह सब ही महाबली सुमुखको साथ

मासीनं देवराजं महाद्युतिम् ॥ २२॥ सङ्गत्य तत्र भगवान् विष्णुरासी-द्‌चतुर्भुजः। ततस्तत् सर्वमाचख्यौ नारदो मातलिं प्रति ॥२३॥ वैश-म्पायन उवाच। ततः पुरन्दरं विष्णुरुवाच भुवनेश्वरम्। अमृतं दीय-तामस्मै क्रियताममरैः समः ॥ २४ ॥ मातलिर्नारदश्चैव सुमुखश्चैव वासव। लभंतां भवतः कामात् काममेतं यथेप्सितम् ॥ २५ ॥ पुरन्द-रोऽथ संचिन्त्य वैनतेयपराक्रमम्। विष्णुमेवाब्रवीदेनं भवानेव ददा-त्विति ॥ २६ ॥ विष्णुरुवाच। ईशस्त्वं सर्वलोकानां चराणामचराश्च ये। त्वया दत्तमदत्तं कः कर्त्तुमुत्सहते विभो ॥ २७ ॥ प्रादाच्छक्रस्त-तस्तस्मै पन्नगायायुरुत्तमम्। न त्वेनममृतप्राशं चकार बलवृत्रहा॥२८ लब्ध्वा वरन्तु सुमुखः सुमुखः सम्बभूव ह।कृतदारो यथाकामं जगाम च गृहान् प्रति ॥२९॥ नारदस्त्वार्यकश्चैव कृतकार्यौ मुदा युतौ।अभि-जग्मतुरभ्यर्च्य देवराजं महाद्युतिम् ॥ ३० ॥ ७ ७ ७

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलि-वरान्वेषणे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

लेकर चलदिये और उन्होंने बड़ी कान्तिवाले देवराज इन्द्रको बैठे हुए देखा ॥ २२ ॥ उस समय तहाँ चतुर्भुजधारी विष्णु भगवान् भी मिलनेको आकर बैठे हुए थे, तहाँ नारदजीने मातलिकी सब बात उनके सामने कही ॥ २३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! तदनन्तर विष्णुजीने त्रिभुवनपति इन्द्रसे कहा, कि—तुम्हें इसको अमृत देना और देवताओंकी समान करदेना चाहिये ।२४। हे इन्द्र ! मातलि नारद और सुमुखकी, इच्छा पूरी करनेवाले तुमसे अपनी इच्छानु-सार कामना पावें ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर इन्द्र गरुड़के पराक्रमका विचार करके विष्णु भगवान्से बोले, कि—आप ही इसको अमृत दे दीजिये ॥ २६ ॥ विष्णु बोले कि—हे व्यापक इन्द्रदेव ! स्थावर और जङ्गम जितने भी लोक हैं उनसब ही लोकोंके तुम स्वामी हो,तुम्हारी दी हुई वस्तुको न दी हुई कौन करसकता है? २७तब तो इन्द्रने उस सर्पको उत्तम आयु दी, परन्तु बल और वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने उस को अमृत नहीं पिलाया२८इन्द्रसे वरदान पाकर सुमुखका मुख प्रसन्न होगया और गुणकेशीके साथ विवाहकर अपनी इच्छानुसार अपने घर को चलागया ।२९। नारद और आर्यक इस प्रकार अपना काम करके प्रसन्न हुए और महाकान्ति वाले इन्द्रकी पूजा करके अपने २ स्थान को चलेगये ॥ ३० ॥ एक सौ चारवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०४ ॥

कण्व उवाच । गरुडस्तत्र शुश्राव यथा वृत्तं महाबलः।आयुःप्रदानं शक्रेण कृतं नागस्य भारत ॥ १ ॥ पक्षवातेन महता रुद्ध्वा त्रिभुवनं खगः । सुपर्णः परमक्रुद्धो वासवंसमुपाद्रवत् ॥ २ ॥ गरुड़ उवाच । भगवन् किमवज्ञानाद् वृत्तिः प्रतिहता मम । कामकारवरं दत्त्वा पुनश्चलितवानसि ॥३॥ निसर्गात् सर्वभूतानां सर्वभूतेश्वरेण मे।आहारो विहितो धात्रा किमर्थं वार्य्यते त्वया ४ वृतश्चैव महानागः स्थापितः समयश्च मे।अनेन च मया देव भर्त्तव्यः प्रसवो महान् ॥५॥ एतस्मिंस्तु तथा भूते नान्यं हिंसितुमुत्सहे । क्रीडसे कामकारेण देवराज यथेच्छकम् ॥६॥ सोऽहं प्राणान् विमोक्ष्यामि तथा परिजनो मम।ये च भृत्या मम गृहे प्रीतिमान् भव वासव ॥ ७ ॥ एतच्चैवाहमर्हामि भूयश्च बलवृत्रहन् । त्रैलोक्यस्येश्वरो योऽहं परभृत्यत्वमागतः ॥८॥ त्वयि तिष्ठति देवेश न विष्णुः कारणं मम। त्रैलोक्यराजराज्यं हि त्वयि वासव शाश्व-

---

कण्वने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार इन्द्रने सुमुख नामके नागको आयुका दान दिया है यह सब वृत्तान्त महाबली गरुड़ जीने अपने स्थान पर सुना ॥ १ ॥ इस कारण गरुड़जी बड़े क्रोधमें भरगये और अपने पँखोंकी बड़ी भारी पवनसे त्रिलोकीको भरकर दौड़े २ इन्द्रके पास पहुँचे ॥ २ ॥ और गरुड़ कहने लगे, कि—हे भगवन्!तुमने मेरा तिरस्कार करके मेरी आजीविकाका नाश क्यों किया है ? मुझे इच्छानुसार सर्पोंके खाने का वरदान देकर अब उससे चलायमान क्यों हुए जाते हो ? ॥ ३ ॥ सब प्राणियोंकी आजीविका बांधनेवाले और सब प्राणियोंके ईश्वर ब्रह्माने स्वभावसे ही मेरे लिये सर्पोंका भोजन नियत कर दिया है, उस मेरी आजीविकाको तुम क्यों रोकते हो ? ॥ ४ ॥ हे देव ! मैंने इस महासर्पका भोजन करनेके लिये सङ्कल्प कर लिया है और इसका समय भी नियत हो चुका है तथा इसके द्वारा मुझे अपने बड़े भारी परिवारका पेट भरना है ॥५॥ परन्तु जब यह इसप्रकार अमर होगया तो अबमैं दूसरेको भी मारना नहीं चाहता और हे देवराज ! तुम भी इच्छानुसार चाहे सो क्रीड़ा करते हो ॥ ६ ॥ इस कारण अब मैं और मेरा परिवार तथा मेरे घरमें रहने वाले सब सेवक भी भूखे मर जायँगे, इस लिये हे इन्द्र ! आप मेरे ऊपर प्रसन्नता दिखाइये ॥ ७ ॥ हे बल तथा वृत्रको मारने वाले इन्द्र ! मैं इस दुःखको सहनेके योग्य ही हूँ, क्यों कि-जो मैं त्रिलोकी का राजा था वह मैं अब दूसरेका सेवक होगया हूँ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र !

तम् ॥ ९ ॥ ममापि दक्षस्य सुता जननी कश्यपः पिता । अहमप्युत्सहे लोकान् समन्ताद्वोढुमञ्जसा ॥१०॥ असह्यं सर्वभूतानां ममापि विपुलं बलम् । मयापि सुमहत् कर्म कृतं दैतेयविग्रहे ॥ ११ ॥ श्रुतश्रीः श्रुतसेनश्च विवस्वान् रोचनामुखः । प्रसृतः कालकाक्षश्च मयापि दितिजा हताः ॥ १२ ॥ यत्तु ध्वजस्थानगतो यत्नात् परिचराम्यहम् । वहामि चैवानुजन्ते तेन मामवमन्यसे । १३ ॥ कोऽन्यो भारसहो ह्यस्ति कोऽन्योऽस्ति बलवत्तरः । मया योऽहं विशिष्टः सन् वहामीमं सबान्धवम् ॥ १४ ॥ अवज्ञाय तु यत्तोऽहं भोजनाद् व्यवरोपितः । तेन मे गौरवं नष्टं त्वत्तः सर्पाच्च वासव ॥१५॥ अदित्यां य इमे जाता बलविक्रमशालिनः । त्वमेषां किल सर्वेषां बलेन बलवत्तरः ॥१६॥ सोऽहं पक्षैकदेशेन वहामि त्वां गतक्लमः । विमृश त्वं शनैस्तात कोऽन्वत्र बलवानिति ॥१७॥ कण्व उवाच । स तस्य वचनं श्रुत्वा खगस्योदर्क-

त्रिलोकीका राज्य सदाके लिये तुम्हारे अधीन है इसकारण हे देवेश! तुम्हारे होते हुए मुझे विष्णुसे अपना दुःख निवेदन करनेका कोई कारण नहीं दीखता ॥ ९ ॥ मेरी माता भी दक्षकी पुत्री है और मेरे पिता कश्यपजी हैं और मैं भी सहजमें ही सब प्रकारसे लोकोंके शासनका भार धारण कर सकता हूँ ॥ १० ॥ और मुझमें ऐसा बड़ा भारी बल भी है कि-जिसको सब लोक मिलकर भी नहीं सह सकते मैंने भी दैत्योंके साथ संग्राममें बड़ा भारी पराक्रम दिखाया है ॥११॥ मैंने भी श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान् रोचनामुख, प्रसृत, कालकाक्ष आदि दैत्योंको मारा है ॥ १२ ॥ मैं विष्णुजीकी ध्वजामें रहकर बड़े उद्योगके साथ उनकी सेवा करता हूँ और तुम्हारे छोटे भाई विष्णुको अपनी पीठपर चढ़ाकर तीनों लोकोंमें फिरता हूँ क्या इस कारणसे ही तुम मेरा अपमान करते हो ॥१३॥ मेरे सिवाय दूसरा ऐसा कौन है जो विष्णुके भारको सह सके! और मुझसे अधिक बलवान् भी कौन है मैं ऐसा बड़ा बली हूँ कि-बाँधव सहित विष्णुको अपने कंधे पर चढ़ाकर फिरा करता हूँ ॥ १४ ॥ तुमने जो मेरा तिरस्कार करके भोजनसे हटा दिया है, इस प्रकार हे इन्द्र ! तुमसे और इस सर्पसे मेरा गौरव नष्ट हुआ है ।१५। हे विष्णु ! अदितिसे उत्पन्न हुए ये सब बली और महापराक्रमी हैं उन सबोंमें निःसन्देह तुम बड़े बली हो।१६ परन्तु तुम्हें मैं अपने एक पँख पर ही सहजमें उठाकर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर लेजाता हूँ, इस कारण हे तात ! तुम धीरेसे विचार

दारुणम् । अक्षोभ्यं क्षोभयंस्तार्क्ष्यमुवाच रथचक्रभृत् १८ गरुत्मन्मन्यसेऽऽत्मानं बलवन्तं सुदुर्बल । अलमस्मत्समक्षन्ते स्तोतुमात्मानमण्डज ।१९। त्रैलोक्यमपि मे कृत्स्नमशक्तं देहधारणे । अहमेवात्मनात्मानं वहामि त्वाञ्च धारये ॥ २० ॥ इमं तावन्ममैकं त्वं बाहुं सव्येतरं वह। यद्येनं धारयस्येकं सफलं ते विकत्थितम् ॥२१॥ ततः स भगवांस्तस्य स्कन्धे बाहुं समासजत् । निपपात स भारार्तो विह्वलो नष्टचेतनः २२ यावान् हि भारः कृत्स्नायाः पृथिव्याः पर्वतैः सह । एकस्या देहशाखायास्तावद्भारममन्यत ॥ २३ ॥ न त्वेनं पीडयामास बलेन बलवत्तरः । ततो हि जीवितं तस्य न व्यनीनशदच्युतः ॥ २४ ॥ व्यात्तास्यः स्रस्तकायश्च विचेता विह्वलः खगः । मुमोच पत्राणि तदा गुरुभारप्रपीडितः ॥ २५ ॥ स विष्णुं शिरसा पक्षी प्रणम्य विनतासुतः । विचेता विह्वलो दीनः किञ्चिद्वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ भगवन् लोकसारस्य सदृ-

करो. कि—इन सर्वोमें बलवान् कौन है ? ॥ १७ ॥ कण्व कहते हैं, कि–जिसके भीतर बड़ी दारुणता भरी हुई थी ऐसे गरुड़के वचनको सुनकर चक्रधारी विष्णु क्षोभको प्राप्त न होनेवाले गरुड़जीको क्षोभ दिलाते हुए कहने लगे, कि-। १८ । हे गरुड़ पक्षी ! तू बड़ा ही दुर्बल है तोभी अपनेको बलवान् मानता है, बस अब तू मेरे सामने अपनी प्रशंसा न कर ॥ १९ ॥ मेरे शरीरके भारको तो तीनों लोकभी धारण नहीं कर सकते, मैं स्वयं ही अपने आपको और तुझे धारण करता हूँ ॥ २० ॥ पहले तू मेरे एक दाहिने भुजदण्डको ही धारण कर, यदि इसको धारण कर सकेगा तो तेरी अपनी प्रशंसा करना सफल हो सकेगी ॥ २१ ॥ ऐसा कह कर उन विष्णु भगवान्ने गरुड़के कन्धे पर अपनी भुजा धरदी तब तो गरुड़ भारसे व्याकुल होकर गिर पड़ा और विह्वल होकर मूर्छित होगया ॥ २२ ॥ पहाड़ों सहित तब पृथिवी को जितना भार होसकता है उतना ही भार विष्णुकी एक भुजाका गरुड़को मालूम हुआ ॥ २३ ॥ परम बली विष्णु भगवान्ने अपने बल से गरुडको पीडा देना नहीं चाहा, इसीलिये ही गरुडके प्राणका नाश नहीं हुआ ॥ २४ ॥ बड़े भारी बोझेसे पीड़ित होनेके कारण उससमय गरुडका मुख फल गया, शरीर ढीला पड गया, और विह्वल होकर अचेत होगया तथा शरीर परसे पर झड़ने लगे ॥ २५ ॥ उस अचेत और विह्वलहुए विनतानन्दन गरुडपक्षीने बड़ी दीनताके साथ विष्णु भगवान्को प्रणाम करके बडी कठिनतासे यह बात कही, ॥ २६ ॥ हे

शेन वपुष्मता । भुजेन स्वैरमुक्तेन निष्पिष्टोऽस्मि महीतले ॥२७॥ क्षन्तुमर्हसि मे देव विह्वलस्याल्पचेतसः । बलदाहविदग्धस्य पक्षिणो ध्वजवासिनः ॥२८॥ न हि ज्ञातं बलं देव मया ते परमं विभो। तेन मन्याम्यहं वीर्यमात्मनो न समं परैः ॥ २९ ॥ ततश्चक्रे स भगवान् प्रसादं वै गरुत्मतः। मैवं भूय इति स्नेहात् तदा चैनमुवाच ह ।३०। पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सुमुखं गरुडोरसि । ततः प्रभृति राजेन्द्र सह सर्पेण वर्त्तते ॥ ३१ ॥ एवं विष्णुबलाक्रान्तो गर्वनाशमुपागतः । गरुडो बलवान् राजन् वैनतेयो महायशाः । ३२ । कण्व उवाच । तथा त्वमपि गांधारे यावत् पाण्डुसुतान् रणे। नासादयसि तान् वीरांस्तावज्जीवसि पुत्रक ॥ ३३ ॥ भीमः प्रहरतां श्रेष्ठो वायुपुत्रो महाबलः । धनञ्जयश्चेन्द्रसुतो न हन्यातान्तु कं रणे ॥ ३४ ॥ विष्णुर्वायुश्च शक्रश्च धर्मस्तौ चाश्विनावुभौ । एते देवास्त्वया केन हेतुना वीक्षितुं क्षमाः ॥ ३५ ॥

भगवन् ! आपने सब जगत्भरके बलकी भरी हुई अति उत्तम भुजा अपनी इच्छासे मेरे ऊपर धरदी इसके कारणसे मैं पृथिवी पर गिरा जाता हूँ ॥ २७ ॥ हे देव ! इस समय मैं विह्वल होरहा हूँ और मुझमें बुद्धि कुछ भी नहींरही है, ऐसे मेरे ऊपर आपको क्षमा करनी चाहिये मैं आपकी बलरूप अग्निसे भसमसा होगया हूँ, हे भगवन् ! मैं पक्षी हूँ और आपकी ध्वजामें रहने वाला हूँ ॥ २८ ॥ हे सर्वव्यापी देव ! मैं आपके परमबलको नहीं जानता थो, इस कारणसे मैं अपने बलको दूसरोंकी समान नहीं जानता था, किंतु सबसे अधिक समझता था ॥ २९ ॥ तब विष्णु भगवान्ने गरुड़के ऊपर अनुग्रह किया और उस समय गरुड़से बड़े प्रेमके साथ कहा, कि-अब फिर कभी ऐसा न करना ॥ ३० ॥ और सुमुख नागको पैरके अँगूठेसे उठा कर गरुड़की छाती पर डाल दिया, हे राजेन्द्र ! उस दिनसे गरुड़ उस सर्पके साथ प्रेमसे रहते हैं ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार जिनका बड़ाभारी यश है ऐसे बलवान् गरुड़जीका गर्व विष्णुभगवान्के बलसे दबनेपर नष्ट होगया ॥ ३२ ॥ कण्वऋषि कहते हैं, कि-हे गान्धारीके पुत्र बेटा दुर्योधन ! तैसे हो तू भी जब तक रणमें उन वीर पाण्डवोंके सामने नहीं पहुँचता है तब तक ही जीरहा है ॥ ३३ ॥ प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ महाबली भीमसेन वायुका पुत्र है और अर्जुन इन्द्रका पुत्र है, भला ये दोनों रणमें किसको प्राण लिये विना छोड़ देंगे ? ॥ ३४ ॥ विष्णु, वायु इन्द्र, धर्म और अश्विनीकुमार इन देवताओंके सामने

तद्लन्ने विरोधेन शमं गच्छ नृपात्मज । वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि ॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य नारदोऽयं महातपाः । महात्म्यस्य तदा विष्णोः सोऽयं चक्रगदाधरः ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन उवाच। दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा निःश्वसन् भ्रुकुटीमुखः । राधेयमभिसम्प्रेक्ष्य जहास स्वनवत्तदा ॥३८॥ कदर्थीकृत्य तद्वाक्यमृषेः कण्वस्य दुर्मतिः ऊरुं गजकराकारं ताडयन्निदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ तथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद्भावि या च मे गतिः । तथा महर्षे वर्त्तामि किं प्रलापः करिष्यति४१

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि मातलिवरान्वेषणे पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

जनमेजय उवाच । अनर्थे जातनिर्बन्धं परार्थे लोभमोहितम्।अनार्यकेष्वभिरतं मरणे कृतनिश्चयम् ॥ १ ॥ ज्ञातीनां दुःखकर्त्तारं बन्धूनां शोकवर्धनम् सुहृदां क्लेशदातारं द्विषतां हर्षवर्धनम् ॥ २ ॥ कथं नैनं

युद्ध करना तो एक ओर रहा, इनकी ओरको कोई देख भी नहीं सकता॥३५॥इस कारण हे राजकुमार ! अब तुम विरोध रोको और मेल करो, तुम्हें तो तीर्थकी समान मान्य और तारने वाले श्रीकृष्णजीके द्वारा अपने कुलकी रक्षा करनी चाहिये ॥३६॥ यह महातपस्वी नारद भूत भविष्य सबको प्रत्यक्ष देखने वाले हैं और विष्णुके माहात्म्यको भी जानते हैं तथा चक्र-गदाधारी विष्णु यह कृष्ण ही हैं ३७ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इस बातको सुन कर दुर्योधनकी त्यौरी चढ गयी और वह गहरे श्वास भरने लगा तथा कर्णकी ओर को दृष्टि करके खिलखिला कर हँस पड़ा॥३८॥वह दुष्टात्मा, कण्वऋषि की इस बातको तिरस्कार करके हाथसे हाथीकी सूँडकी समान जाँघ को थपकता हुआ इस प्रकार कहने लगा, कि-॥३९ । हे महर्षे ! आगे को मेरी जो दशा वा गति होगी,उसके अनुसार ही ईश्वरने मुझे रचा है और मैं उसके अनुसार वर्त्ताव करता हूँ इसलिये यह आपका चाहे सो कहना मेरा क्या करसकेगा ? ॥४०॥ एकसौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त

जनमेजय पूछते हैं, कि—हे वैशम्पायन जी ! दुर्योधनका अनर्थ करनेमें बड़ा आग्रह था वह दूसरोंके पदार्थों परलोभसे मोहित होरहा था खोटे पुरुषोंके साथ उसका बड़ा प्रेम था मानो उसने मरनेके लिये निश्चय ही कर लिया था ॥ १ ॥ वह कुटुम्बियोंको दुःख देने वाला, बन्धुओंके शोकको बढानेवाला,मित्रोंको क्लेश देनेवाला और वैरियों के हर्षको बढाने वाला था ॥ २॥ वह उलटे मार्गमें चलता था तो भी

विमार्गस्थं वारयन्तीह बान्धवाः । सौहृदाद्वा सुहृत्स्निग्धो भगवान् वा पितामहः ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । उक्तं भगवता वाक्यमुक्तं भीष्मेण यत् क्षमम् । उक्तं बहुविधञ्चैव नारदेनापि तच्छृणु॥४॥ नारद उवाच । दुर्लभो वै सुहृच्छ्रोता दुर्लभश्च हितः सुहृत् । तिष्ठते हि सुहृद्यत्र न बन्धुस्तत्र तिष्ठते ॥ ५॥ श्रोतव्यमपि पश्यामि सुहृदां कुरुनन्दन । न कर्त्तव्यश्च निर्बन्धो निर्बन्धो हि सुदारुणः ॥६॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यथा निर्बन्धतः प्राप्तो गालवेन पराजयः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रं तपस्यन्तं धर्मो जिज्ञासया पुरा । अभ्यगच्छत् स्वयं भूत्वा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ८ ॥ सप्तर्षीणामन्यतमं वेषमास्थाय भारत । बुभुक्षुः क्षुधितो राजन्नाश्रमं कौशिकस्य तु ॥ ९ ॥ विश्वामित्रोऽथ सम्भ्रान्तः श्रपयामास वै चरुम् । परमान्नस्य यत्नेन न च तं प्रत्यपालयत् ॥१०॥ अन्नं तेन यदा भुक्तमन्यैर्दत्तं तपस्विभिः।

सम्बन्धी लोग उसको क्यों नहीं रोकते थे ! अथवा उसके संबन्धी और उसके ऊपर प्रेम करने वाले पितामह भगवान् वेदव्यासजीने उसको स्नेहभावसे रोका क्यों नहीं ! ॥ ३ ॥ वैशम्पायनने कहा कि-हे जनमेजय ! भगवान् वेदव्यासजीने, भीष्मपितामहने और नारदजीने भी जहाँ तक होसका उपदेशकी अनेकों बातें दुर्योधनसे कही थीं, उसमें नारदजीने जो बात कही थी उसको सुनो ॥ ४ ॥ नारदजीने कहा कि-मित्रकी बातको सुनने वाला श्रोता मिलना कठिन है और हितकी बात कहने वाला मित्र मिलना भी कठिन है, क्योंकि-हितकी बात कहनेवाला मित्र जैसे संकटमें साथ देता है तैसे संकटमें अपना भाई भी साथ नहीं देता ॥ ५॥ हे कुरुनन्दन ! मेरे विचारके अनुसार स्नेहियोंका कहना अवश्य ही मानना चाहिए, किसी बातमें हठ नहीं करनी चाहिए क्योंकि-हठ घोर दुःखदायक होती है ॥ ६ ॥ इस विषयमें भी इस पुरानी कथाका उदाहरण देते हैं, कि-पहिले गालव ऋषिने हठ करनेसे पराजय पाई थी ॥ ७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! पहिले धर्मने तपस्या करते हुए विश्वामित्रकी परीक्षा करनेकी इच्छा से सप्तर्षियोंमेंके साक्षात् भगवान् वशिष्ठऋषिका वेष धारण किया और क्षुधासे पीड़ित भूखेका ढोंग बनाकर विश्वामित्र ऋषिके आश्रम में प्रवेश किया । ८-९ । कुशिकगोत्री विश्वामित्र हर्षमें भर गये, और वशिष्ठजीके लिये उत्तमोत्तम भोजन तयार कराने लगे, परन्तु वशिष्ठरूपधारी धर्मने उनकी बाट नहीं देखी ॥१०॥ किंतु उन्होंने जब और

अथ गृह्यान्नमत्युष्णं विश्वामित्रोऽभ्युपागमत् ॥ ११ ॥ भुक्तं मे तिष्ठ तावत्त्वमित्युक्त्वा भगवान् ययौ। विश्वामित्रस्ततो राजन् स्थित एव महाद्युतिः ॥ १२ ॥ भक्तं प्रगृह्य मूर्ध्ना वै बाहुभ्यां संशितव्रतः। स्थितः स्थाणुरिवाभ्याशे निश्चेष्टो मारुताशनः ॥१३॥ तस्य शुश्रूषणे यत्नमकरोत् गालवो मुनिः गौरवाद्बहुमानाच्च हार्देनप्रियकाम्यया १४ अथ वर्षशते पूर्णे धर्मः पुनरुपागमत्। वासिष्ठं वेषमास्थाय कौशिकं भोजनेप्सया १५ स दृष्ट्वा शिरसा भक्तं ध्रियमाणं महर्षिणा। तिष्ठता वायुभक्षेण विश्वामित्रेण धीमता ॥ १६ ॥ प्रतिगृह्य ततो धर्मस्तथै-वोष्णं तथा नवम्। भुक्त्वा प्रीतोऽस्मि विप्रर्षे तमुक्त्वा स मुनिर्गतः क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः। धर्मस्य वचनात् प्रीतो विश्वा-मित्रस्तथाभवत् ॥१८॥ विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः शुश्रूषया च भक्त्या च प्रीतिमानित्युवाच ह ॥ १९ ॥ अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव। इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम् २०

ऋषियोंका दियाहुआ अन्न जीमलिया, इतमें ही विश्वामित्र भी अति गरम भोजन लेकर वशिष्ठजीके पास आये।११। यह देख कर वशिष्ठ बोले, कि-मैंने तो भोजन कर लिया, परंतु आप जरा देर यहाँ खड़े रहिये, ऐसा कहकर वह तहाँसे चले गये उत्तम व्रत वाले तथा महा-कांतिमान् विश्वामित्रजी,उस रँधेहुए अन्नको दोनों हाथोंसे उठा शिर पर धर कर आश्रमके पास ही वृक्षकी समान खड़े रहे और वायुका भक्षण करतेहुए अपने समयको बितानेलगे१२-१३गालव मुनि विश्वा-मित्रजीका बड़ा गौरव और सन्मान करते थे तथा हृदयसे उनका प्रिय काम करना चाहते थे, इस कारण वह यत्नके साथ उनकी सेवा करने लगे। १४। इसप्रकार सौ वर्ष पूरे होजानेपर धर्म फिर वशिष्ठ का रूप धारण करके भोजन करनेकी इच्छासे विश्वामित्रके पास आया ॥ १५ ॥ उसने देखा, कि-बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रजी शिर पर भोजनको धरे हुए वायुका भक्षण करके समयको बितारहे हैं १६ तब तो धर्मने वह गरम और ताजा भोजन उनकेशिरपरसे उतारकर खालिया और हे विप्रर्षे! मैं प्रसन्न हूँ, ऐसा कह कर वह मुनि तहाँ से चले गये। १७। इस प्रकार प्रसन्न कियेहुए धर्म देवताके वचनसे विश्वामित्रने क्षत्रियपनको छोड़ कर ब्राह्मणपना पाया था ॥ १८ ॥ विश्वामित्रने अपने शिष्य तपस्वी गालवऋषिकी सेवासे तथा भक्ति से प्रसन्न होकर उनसे यह कहा था, कि-॥ १९ ॥ हे बेटा गालव!

प्रीतो मधुरया वाचा विश्वामित्रं महाद्युतिम् । दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुणकर्मणि ॥ २१ ॥ दक्षिणाभिरुपेतं हि कर्म सिध्यति मानद । दक्षिणानां हि दाता वै अपवर्गेण युज्यते ॥२२॥ स्वर्गे क्रतुफलं तद्धि दक्षिणा शांतिरुच्यते किमाहरामि गुर्वर्थं ब्रवीतु भगवानिति ॥ २३ ॥ जानानस्तेन भगवान् जितः शुश्रूषेण वै । विश्वामित्रस्तमसकृद् गच्छ गच्छेत्यचोदयत् २४ असकृद् गच्छ गच्छेति विश्वामित्रेण भाषितः । किं ददानीति बहुशो गालवः प्रत्यभाषितः ॥२५॥ निर्बन्धतस्तु बहुशो गालवस्य तपस्विनः । किञ्चिदागतसंरम्भो विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम्२६ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् । अष्टौ शतानि मे देहि गच्छ गालव मा चिरम् ॥ २७ ॥ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

नारद उवाच । एवमुक्तस्तदा तेन विश्वामित्रेण धीमता । नास्ते

अब मैं तुझे आज्ञा देता हूँ, कि-जहाँ जानेकी तेरी इच्छा हो तहाँ तू चला जा, तब गालवने प्रसन्न होकर मीठी वाणीमें महाकांति वाले विश्वामित्रजीसे कहा, कि-महाराज ! मैं आपको गुरुदक्षिणामें क्या दूँ ? ॥ २०-२१ ॥ हे सन्मान देने वाले गुरुजी ! दक्षिणा देनेसे कर्म सिद्ध होता है और दक्षिणाओंका देने वाला मुक्तिको पाजाता है २२ यज्ञका फल जो स्वर्ग वह भी दक्षिणा देनेसे मिलता है, दक्षिणा देने से उपद्रवोंको नष्ट करनेवाली शांति प्राप्त होती है, विना दक्षिणा यज्ञ निष्फल जाता है, ऐसा स्मृति कहती है, इस लिये मैं गुरुदक्षिणामें आपको क्या दूँ ? यह आप मुझसे कहिये । २३ । विश्वामित्र जानते थे, कि-इसने सेवा करके मुझे जीत लिया है, इस लिये वह मुनि दक्षिणाका नाम भी न लेकर बारम्बार कहने लगे, कि-जा ! जा !!२४ विश्वामित्रने बारम्बार जा जा, इस प्रकार कहा, तो भी गालव बारंबार पूछते ही रहे कि-मैं गुरुदक्षिणामें क्या दूँ ? २५ तपस्वी गालव के इस प्रकार बड़ा भारी आग्रह करनेसे विश्वामित्रजीको कुछ एक क्रोध आगया और वह कहने लगे, कि—। २६ । हे गालव तू शीघ्रही जा और दक्षिणामें एक ओर काले कानके चन्द्रमाकी समान सफेद आठ सौ घोडे लाकर दे, इसमें विलम्ब न कर ॥२७॥ एकसौछःवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०६ ॥ ❀ ❀

नारदजी कहते हैं, कि—अब उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने इस

न शेते नाहारं कुरुते गालवस्तदा ॥ १ ॥ त्वगस्थिभूतो हरिणश्चिन्ताशोकपरायणः । शोचमानोऽतिमात्रं स दह्यमानश्च मन्युना । गालवो दुःखितो दुःखाद्विललाप सुयोधन २ कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थाः सञ्चयः कुतः । हयानाञ्चन्द्रशुभ्राणां शतान्यष्टौ कुतो मम ॥ ३ ॥ कुतो मे भोजने श्रद्धा सुखश्रद्धा कुतश्च मे।श्रद्धा मे जीवितस्यापि छिन्ना किं जीवितेन मे४अहं पारे समुद्रस्य पृथिव्यां वा परं परात् । गत्वात्मानं विमुञ्चामि किं फलं जीवितेन मे५अधनस्याकृतार्थस्य त्यक्तस्य विविधैः फलैः । ऋणं धारयमाणस्य कुतः सुखमनीहया ॥ ६ ॥ सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम् । प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम्७प्रतिश्रुत्य करिष्येति कर्तव्यं तदकुर्वतः।मिथ्यावचनदग्धस्य इष्टापूर्तं प्रणश्यति ॥ ८ ॥ न रूपमनृतस्यास्ति नानृतस्यास्ति संततिः

प्रकार कहा तबसे गालव ऋषि न बैठते हैं, न सोते हैं और न भोजन करते हैं१किंतु चिन्ता और शोकके कारण उनके शरीरमें चमड़ा और हाड़ ही दीखने लगे तथा शरीरका रङ्ग फीका पड़गया वह परमशोक में भर कर क्रोधाग्निसे जलने लगे और हे दुर्योधन ! दुःखसे खिन्न होकर वह विलाप करने लगे, कि-॥ २ ॥ ओः ! मेरे धनी मित्र कहाँ हैं ? मेरे पास धन कहाँ है ? धनको संग्रह भी कहाँ है ? चन्द्रमाको समान श्वेत रङ्गके आठ सौ घोड़े मेरे पास कहाँसे आये ? ॥३॥ इस दशामें भोजनमें मुझे श्रद्धा कैसे होसकती है ? और मेरी सुखमें श्रद्धा भी कैसे होसकती है ? मेरी तो जीवनकी श्रद्धा भी नष्ट होगयी और अब मुझे जीवित रहकर करना भी क्या है ? । ४ । अब तो मैं समुद्र के परले पार जाकर अथवा पृथिवीके छोर पर जाकर प्राणोंको त्याग दूँगा, अब मेरे जीनेसे फल ही क्या है? ॥ ५ ॥ धनहीन, प्रयोजनको सिद्ध न कर सकने वाले और नाना प्रकारके फलोंसे वञ्चित तथा गुरुदक्षिणाके ऋणसे दबे हुए पुरुषको उद्योगके विना कैसे सुख मिल सकता है ? ॥ ६ ॥ जो पुरुष संबन्धियोंके धनको खाकर 'मैं देदूँगा' ऐसा विश्वास उपजा लेता है और फिर वह धन दे नहीं सकता है ऐसे पुरुषका जीनेसे मरना ही अच्छा है ॥ ७ ॥ मैं तुम्हारा काम कर दूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके जो उस कामको नहीं करता है उस मिथ्याभाषणसे जले हुए पुरुषके यज्ञ और कूप खुदाना आदि शुभ कर्म निष्फल होजाते हैं॥८॥ मिथ्या बोलने वाले पुरुषका शरीर भी निस्तेज होजाता है, असत्य बोलने वालेकी सन्तानका भी नाश होजाता है

नानृतस्याधिपत्यञ्च कुत एव गतिः शुभा ॥ ९ ॥ कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् । अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ १० ॥ न जीवत्यधनः पापः कुतः पापस्य तन्त्रणम् । पापो ध्रुवमवाप्नोति विनाशं नाशयन् कृतम्॥११॥सोऽहं पापः कृतघ्नश्च कृपणश्चानृतोऽपि च। गुरोर्यः कृतकार्यः संस्तत् करोमि नाभाषितम्॥१२॥सोऽहं प्राणान् विमोक्ष्यामि कृत्वा यत्नमनुत्तमम् । अर्थिता न मया काचित् कृतपूर्वा दिवौकसाम् ॥१३॥मानयन्ति च मां सर्वे त्रिदशा यज्ञसंस्तरे । अहन्तु विबुधश्रेष्ठं देवं त्रिभुवनेश्वरम्॥१४॥विष्णुं गच्छाम्यहं कृष्णं गतिं गतिमतां वरम् । भोगा यस्मात् प्रतिष्ठन्ते व्याप्य सर्वान् सुरासुरान् । प्रणतो द्रष्टुमिच्छामि कृष्णं योगिनमव्ययम् ॥ १५ ॥ एवमुक्ते सखा तस्य गरुडो विनतात्मजः । दर्शयामास तं प्राह संहृष्टः प्रियकाम्यया॥१६ सुहृद्भवान् मम मतः सुहृदाञ्च मतः सुहृत् । ईप्सितेनाभिलाषेण यो-

---

तथा उसकी प्रभुता भी नष्ट होजाती है, फिर उसकी शुभ गति तो होगी ही कहाँसे ? ॥ ९॥ कृतघ्नी पुरुषको यश कहाँसे मिल सकता है? अच्छा स्थान और सुख कहाँसे मिलसकता है? कृतघ्नी पुरुष विश्वास करने योग्य नहीं होता तथा कृतघ्नीके पापका प्रायश्चित्त ही नहीं निर्धन पापी पुरुष अपनी आजीविका भी नहीं कर सकता तथा अपने कुटुम्बका पालन भी नहीं कर सकता, किन्तु वह पापी पुरुष कृतघ्नी होकर अवश्य ही नाशको प्राप्त होजाता है ॥ ११ ॥ मैं स्वयं भी पापी कृतघ्नी, कृपण और मिथ्यावादी हूँ, क्योंकि-मैं गुरुसे कृतकार्य नहीं हुआ हूँ, अर्थात् विद्या पढ़कर सफल हुआ हूँ तो भी गुरुके कहे हुए कामको नहीं कर रहा हूँ ॥ १२ ॥ अब तो मैं गलेमें फाँसी लगा कर अथवा विष खाकर अपने प्राणोंका नाश करूँगा, सब देवता यज्ञभूमि में मेरा सन्मान करते हैं, परन्तु मैंने कभी भी उनसे कुछ माँगा नहीं है, इसलिए देवताओंमें उत्तम त्रिभुवनपति, गति वालोंकी भी गति-रूप श्रीकृष्ण भगवान्की मैं शरण लेता हूँ ॥ १३ ॥ १४ ॥ क्योंकि-देव और दानव सब विष्णुसे ही सब प्रकारके ऐश्वर्य पाते हैं, ऐसा विचार कर गालव मुनि गरुडजीके पास गए और कहने लगे, कि-मैं आपको प्रणाम करता हूँ तथा मैं योगी और अविनाशी श्रीकृष्णजीका दर्शन करना चाहता हूँ१५गालवमुनिके इसप्रकार कहने पर उनके मित्र विनताके पुत्र गरुडजीने अच्छेप्रकार प्रसन्न होकर गालव मुनिको दर्शन दिया और उनको प्रसन्न करनेके लिये कहा, कि-॥ १६ ॥ तुम मेरे मित्र

कार्यो विभवे सति ॥१७॥ विभवश्चास्ति मे विप्र वासवावरजो द्विज। पूर्वमुक्तस्त्वदर्थश्च कृतः कामश्च तेन मे ॥ १८ ॥ स भवानेतु गच्छाव नयिष्ये त्वां यथासुखम्। देशं पारं पृथिव्या वा गच्छ गालवमा चिरम्॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालव-
चरिते सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

सुपर्ण उवाच । अनुशिष्टोऽस्मि देवेन गालव ज्ञानयोनिना। ब्रूहि कामन्तु कां यामि द्रष्टुं प्रथमतो दिशम् ॥ १ ॥ पूर्वां वा दक्षिणां वाऽ-मथवा पश्चिमां दिशम् । उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतो गच्छामि गालव २ यस्यामुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः। सविता यत्र सन्ध्यायां साध्यानां वर्त्तते तपः ॥ ३॥ यस्यां पूर्वं मतिर्याता यया व्याप्तमिदं जगत् । चक्षुषी यत्र धर्मस्य यत्र चैव प्रतिष्ठिते ॥ ४ ॥ कृतं यतो हुतं हव्यं सर्पते सर्वतो दिशम् । एतद् द्वारं द्विजश्रेष्ठ दिवसस्य तथाध्वनः ॥ ५ ॥ अत्र पूर्वं

हो और मेरे मित्रोंके भी स्नेही हो, यदि अपने पास धन सम्पदा हो तो स्नेहियोंको स्नेहियोंकी मनचाही अभिलाषा अवश्य ही पूरी करनी चाहिये ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण ! मेरे पास वह विष्णुरूपी वैभव है और मैंने तुम्हारे लिये उनसे पहिले प्रार्थना भी करी थी और उन्होंने मुझसे मेरी कामना पूरी कर देनेको भी कह दिया था ॥ १८ ॥ इस लिये तुम मेरे साथ विष्णुके पास चलो, मैं तुम्हें विष्णुभगवान्के पास सुखसे लेजाऊँगा, हे गालव ! पातालमें अथवा समुद्रके तट पर जहाँ तुम्हारी इच्छा हो तहाँ चलो, विलम्ब न करो ॥ १९ ॥ एकसौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०७ ॥

गरुड़जीने कहा, कि-हे गालव ! ज्ञानकी खान श्रीविष्णु भगवान्ने मुझे आज्ञा दी है, उसके अनुसार मैं तुमसे पूछता हूँ कि-कहो पहिले तुम अपनी इच्छासे किस दिशाको देखना चाहते हो मैं आपको तहाँ लेकर चलूँ ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ गालव ! पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण इन दिशाओंमेंसे पहिले किस दिशामेंको चलूँ ॥ २ ॥ जिस दिशामें सब लोकोंको प्रकाशित करने वाले सूर्यनारायणका पहिले उदय होता है, जिस दिशामें सन्ध्याके समय साध्य नाम वाले देवताओंका तप होता है ॥ ३ ॥ जिस दिशामें जगत्में व्यापक गायत्री देवीकी उपासना करनेसे बुद्धिकी प्राप्ति होती है, जिस दिशामें धर्मके नेत्ररूप सूर्य चन्द्रमा तथा स्वयं धर्म भी निवास करते हैं ॥ ४ ॥ जिस दिशामें यज्ञमें होते हुए हवनके पदार्थ चारों दिशाओंमेंको फैलजाते हैं,

प्रसूता वै दाक्षायण्यः प्रजाः स्त्रियः । यस्यां दिशि प्रवृद्धाश्च कश्यपस्यात्मसम्भवाः ॥ ६ ॥ अतो मूलं सुराणां श्रीरत्र शक्रोऽभ्यषिच्यत । सुरराज्येन विप्रर्षे देवैश्चात्र तपश्चितम् ॥ ७ ॥ एतस्मात् कारणाद् ब्रह्मन् पूर्वेत्येषा दिगुच्यते । यस्मात् पूर्वतरे काले पूर्वमेवावृता सुरैः ॥८॥ अत एव च पूर्वेषां पूर्वामाशां प्रचक्षते । पूर्वं सर्वाणि कार्याणि दैवानि सुखमीप्सता ॥ ९ ॥ अत्र वेदान् जगौ पूर्वं भगवान् लोकभावनः । अत्रैवोक्ता सवित्रासीत् सावित्री ब्रह्मवादिषु ॥ १० ॥ अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम । अत्र लब्धवरः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते ॥ ११ ॥ अत्र तृप्ता हुतवहाः स्वां योनिमुपभुञ्जते । अत्र पातालमाश्रित्य वरुणः श्रियमाप च ॥१२॥ अत्र पूर्वं वसिष्ठस्य पौराणस्य द्विजर्षभ । सूतिश्च प्रतिष्ठा च निधनञ्च प्रकाशते ॥ १३ ॥ ओङ्कारस्यात्र जायन्ते सूतयो

हे द्विजश्रेष्ठ ! यह पूर्व दिशा दिनका और कालका द्वार है ॥ ५ ॥ इस दिशामें पहिले दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंने प्रजाओंको उत्पन्न किया था, इस दिशामें ही कश्यपके पुत्र पल कर बड़े हुए थे ॥६॥ यह दिशा ही देवताओंकी उत्पत्तिका स्थान है, यहाँ ही इन्द्रका देवताओंके राज-सिंहासन पर अभिषेक किया गया था, हे विप्रर्षे ! इस दिशामें देवताओंने पहिले तप किया था ॥ ७ ॥ इस ही कारणसे हे ब्राह्मण ! इस दिशाको पूर्वदिशा कहते हैं, बहुत ही पुराने कालमें देवता पहिले इस ही दिशामें आकर रहे थे ॥ ८॥ इस कारण सब दिशाओंमें यह दिशा पूर्व दिशा कहलाती है, सुख चाहने वाले देवताओंने सुखकी आशामें पहिले सब काम इस दिशामें ही किये थे ॥९॥ लोकोंका उत्पन्न करने वाले भगवान् ब्रह्माजीने भी पहिले इस दिशामें ही बैठकर वेदोंका गान किया था, सूर्यने भी यहाँ ही ब्रह्मज्ञानियोंको सावित्री मंत्रका उपदेश किया था ॥ १० ॥ हे द्विजसत्तम ! सूर्यने याज्ञवल्क्यको यजुर्वेद के मंत्र यहाँ ही दिये थे, वर पाने वाले सोमको भी देवताओंने इस दिशामें ही बैठकर पिया था ॥ ११ ॥ अग्नि भी तृप्ति होने तक इस दिशामें ही सोम घृत आदिका भक्षण किया करता है जलका स्वामी वरुण देवता भी यहाँसे ही पातालमें प्रवेश करके अपनी सम्पत्तियोंको पानेके लिये सौभाग्यशाली हुआ था ॥१२॥ हे द्विजवर ! पहिले मित्रा-वरुणके यज्ञके समय यहाँ ही पुरातन वसिष्ठ ऋषिका जन्म, पालन और नाश हुआ था ॥ १३ ॥ ओंकारके जो सहस्रों शाखें हैं, उन शाखों के भेद भी यहाँ ही प्रकट हुए थे, धूमको पीने वाले मुनि भी यहाँ ही

दशतोद्दिश । पिबन्ति मुनयो यत्र हविर्धूमं स्म धूमपाः ॥१४॥ प्रोक्षिता यत्र बहवो वराहाद्या मृगा वने । शक्रेण यज्ञभागार्थं दैवतेषु प्रकल्पिताः ॥ १५ ॥ अत्राहिता कृतघ्नाश्च मानुषाश्चासुराश्च ये । उदयंस्तान् हि सर्वान् वै क्रोधाद्धन्ति विभावसुः ॥ १६ ॥ एतद् द्वारं त्रिलोकस्य स्वर्गस्य च सुखस्य च । एष पूर्वो दिशां भागो विशावोऽत्र यदीच्छसि १७ प्रियं कार्यं हि मे तस्य यस्यास्मि वचने स्थितः । ब्रूहि गालव यास्यामि शृणु चाप्यपरां दिशम् ॥ १८ ॥ ❀ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालव-चरितेऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

सुपर्ण उवाच । इयं विवस्वता पूर्वं श्रौतेन विधिना किल । गुरवे दक्षिणा दत्ता दक्षिणेत्युच्यते च दिक् ॥ १ ॥ अत्र लोकत्रयस्याथ पितृपक्षः प्रतिष्ठितः । अत्रोष्मपाणां देवानां निवासः श्रूयते द्विज ।२। अत्र विश्वे सदा देवाः पितृभिः सार्द्धमासते इज्यमानाः स्म लोकेषु सम्प्राप्तास्तुल्यभागताम् ॥ ३ ॥ एतद् द्वितीयं धर्मस्य द्वारमाचक्षते द्विज ।

हविके धूएको पिया करते हैं इन्द्रने भी यहांही यज्ञमें देवताओंके लिये भागरूपसे कल्पना किये हुए वराह मृग आदि वनके अनेकों पशुओं का प्रोक्षण किया था१५सूर्यनारायण भी इस दिशामें ही उदित होकर अहित करने वाले तथा कृतघ्नी मनुष्योंको और असुरोंका क्रोधसे नाश करते हैं ॥१६॥ यह पूर्वदिशा तीनों लोकोंका स्वर्गका और सुख का द्वार है, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इस दिशामें चलें ॥ १७ ॥ हे गालव ! मैं जिनकी आज्ञामें चलता हूँ, मुझे उनका प्रिय काम करना ही चाहिये, इसलिये बताओ कि-अब किस दशामेंको चलूँ, यदि इस में आनेकी इच्छा न हो तो मैं दूसरी दिशाका वर्णन करता हूँ उसको सुनो ॥ १८ ॥ एकसौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥ ❀

गरुड़जी दक्षिण दिशाकी ओरको मुख करके कहने लगे, कि-पहिले सूर्यने वेदकी विधिसे यह दिशा गुरुको गुरुदक्षिणामें देदी थी, इस कारण यह दक्षिणदिशा कहलाती है ॥१॥ हे ब्राह्मण ! इस दिशा में तीनों लोकोंके पितरोंका समूह रहता है तथा सुननेमें आता है कि उष्ण जल पीने वाले देवता भी यहाँ ही रहते हैं ॥ २ ॥ यहाँ पितरों सहित तेरह विश्वेदेवा भी रहते हैं और वह जगत्में यज्ञ करते हुए पितरोंकी समानताको प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मण ! यह स्थान धर्मका दूसरा द्वार कहलाता है, वह धर्म कालरूप है और उसका त्रुटि

त्रुटिशो लवशश्चापि गण्यते कालनिश्चयः ॥ ४ ॥ अत्र देवर्षयो नित्यं पितृलोकर्षयस्तथा । तथा राजर्षयः सर्वे निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ५ ॥ अत्र धर्मश्च सत्यञ्च कर्म चात्र निशाम्यते । गतिरेषा द्विजश्रेष्ठ कर्मणामवसायिनाम् ॥ ६ ॥ एषा दिक् सा द्विजश्रेष्ठ यां सर्वः प्रतिपद्यते । वृता त्वनवबोधेन न सुखं तेन गम्यते ॥ ७ ॥ नैर्ऋतानां सहस्राणि बहून्यत्र द्विजर्षभ । सृष्टानि प्रतिकूलानि द्रष्टव्यान्यकृतात्मभिः ॥ ८ ॥ अत्र मन्दरकुञ्जेषु विप्रर्षिसदनेषु च । गायन्ति गाथा गन्धर्वाश्चित्तबुद्धिहरा द्विज ॥ ९ ॥ अत्र सामानि गाथाभिः श्रुत्वा गीतानि रैवतः । गतदारो गतामात्यो गतराज्यो वनं गतः ॥ १० ॥ अत्र सावर्णिना चैव यवक्रीतात्मजेन च । मर्यादा स्थापिता ब्रह्मन् यां सूर्यो नातिवर्तते ॥ ११ ॥ अत्र राक्षसराजेन पौलस्त्येन महात्मना । रावणेन तपश्चीर्त्वा सुरेभ्योऽमरता वृता ॥ १२ ॥ अत्र वृत्तेन वृत्रोऽपि शक्रशत्रुत्वमीयिवान् । अत्र सर्वासवः

से तथा लवसे भी प्रमाण होसकता है ॥ ४ ॥ यहां देवर्षि, पितृलोक के ऋषि तथा राजऋषि ये सब आनन्दसे रहते हैं ॥ ५ ॥ इस दिशामें रहनेवाले चित्रगुप्तजी, धर्म सत्य तथा पुण्य पाप आदि कर्मोंको सुनाते हैं तथा हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! मरणको प्राप्त हुए प्राणियोंकी भले बुरे कर्म के अनुसार यहां गति होती है ॥ ६ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! इस दिशामें सब प्राणियोंको जाना पड़ता है, परन्तु यह दिशा अन्धकारसे भरी हुई है इस कारण इस दिशामें सुखसे जाना नहीं बनता है ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठ द्विज ! इस दिशामें सहस्रों राक्षस रहते हैं, यह सब विरोधी बुद्धि अपने मन को वशमें न रख सकने वाले पापी पुरुषोंको देखने पड़ते हैं ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षे ! यहां मन्दिरोंकी कुञ्ज गलियोंमें तथा विप्रर्षियोंके मन्दिरों में गन्धर्व चित्त तथा मनको हरने वाली गाथायें गाया करते हैं ॥ ९ ॥ एक रैवत नामका राजा था, वह पहिले गाथायें तथा सामके गान सुननेके लिये यहां गया था, वह राजा उन गानको सुनकर [illegible] में गया तो उसने अपनी रानियोंको और अपने मन्त्रियोंको मरे हुए पाया और अपने राज्यको भी दूसरेके हाथमें गया हुआ देखा, इस कारण वह वनमें चला गया ॥ १० ॥ हे मुनि ब्राह्मण ! यहां सावर्णि मुनिने तथा यवक्रीतके पुत्रने मर्यादा बांधी है कि—जिस मर्यादाको सूर्य भी नहीं लांघता है ॥ ११ ॥ यहां राक्षसोंके राजा महात्मा पुलस्त्य के पुत्र रावणने तपस्या करके देवताओंसे अमरपना मांगलिया था और इस ही दिशामें वृत्रासुरने कोई वर्त्तावसे इन्द्रके साथ शत्रुता बांधली

प्राणाः पुनर्गच्छन्ति पञ्चधा ॥ १३ ॥ अत्र दुष्कृतकर्माणो नराः पच्यंति गालव । अत्र वैतरणी नाम नदी वितरणैर्वृता ॥ १४ ॥ अत्र गत्वा सुखस्यान्तं दुःखस्यान्तं प्रपद्यते । अत्रावृत्तो दिनकरः सरसं क्षरते पयः १५ काष्ठाञ्चासाद्य वासिष्ठीं हिममुत्सृजते पुनः । अत्राहं गालव पुरा क्षुधार्त्तः परिचिन्तयन् ॥ १६ ॥ लब्धवान् युध्यमानौ द्वौ बृहन्तौ गजकच्छपौ । अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः ।१७। विदुर्यं कपिलं देवं येनार्त्ताः सगरात्मजाः । अत्र सिद्धाः शिवा नाम ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥१८॥ अधीत्य सकलान् वेदाँल्लेभिरे मोक्षमक्षयम् । अत्र भोगवती नाम पुरी वासुकिपालिता ॥ १९ ॥ तक्षकेण च नागेन तथैवैरावतेन च । अत्र निर्याणकालेऽपि तमः सम्प्राप्यते महत् ॥ २० ॥

थी, यहाँ सब प्राण आते हैं और वह फिर प्राण अपान आदि पाँच रूपों में अलग अलग होजाते हैं ॥ १३ ॥ हे गालव ! यहाँ खोटे काम करने वाले मनुष्य नरकमें पड़ कर दुःख भोगते हैं, यहाँ वैतरणी नामकी नदी है, जो पापियोंसे भरी रहती है ॥१४॥ प्राणी यहाँ आकर अपने कर्मके अनुसार स्वर्गके सुखको अथवा नरकके दुःखको पाते हैं, यहाँ सूर्य भी कर्क राशिका होकर मीठे जलकी वर्षा करता है ॥ १५ ॥ वह सूर्य जब उत्तर दिशाकी ओरको जाता है तो फिर बरफको बरसाता है, हे गालव ! पहिले एक समय में इस दिशामें भूखसे व्याकुल हो कर चिन्ता कररहा था ॥ १६ ॥ इतनेमें ही आपसमें लड़ते हुए एक बड़ा भारी कछुआ और एक बड़ा भारी हाथी मेरे हाथमें आगया, उनसे मैंने अपनी भूखको शान्त किया था, यहां चक्रधनु नामका एक बड़ा भारी ऋषि सूर्यसे उत्पन्न हुआ था ॥ १७ ॥ जिसको कपिलदेव नामसे सब जानते हैं, उस मुनिने पहिले यहां सगरके पुत्रोंको जलाकर भस्म कर दिया था, यहाँ ही शिवनाम वाले वेदके पारङ्गत सिद्ध ब्राह्मण रहते थे ॥ १८ ॥ जिन्होंने वेदका पार पाकर अविनाशी मोक्ष पद पाया था, इस दिशामें ही भोगवती नामकी एक नगरी है और उस नगरीकी रक्षा वासुकी, तक्षक तथा ऐरावत करता है, मरणके अनन्तर इस दिशामेंको यात्रा करते समय घोर अंधकारमें फँसना पड़ता है ॥ १९-२० ॥ उस अंधकारको सूर्य अथवा साक्षात् अग्नि भी नहीं दूर कर सकता है गालव ! इस दक्षिण दिशाके मार्गमेंको जाना चाहो तो मुझसे कहो, इस दक्षिण दिशाका मार्ग भी तुम्हारे जानेके

अभेद्यं भास्करेणापि स्वयं वा कृष्णवर्त्मना॥ एष तस्यापि ते मार्गः परिचार्य्यस्य गालव। ब्रूहि मे यदि गन्तव्यं प्रतीचीं शृणु चापराम् ॥२१॥
इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

सुपर्ण उवाच। इयं दिग् दयिता राज्ञो वरुणस्य तु गोपतेः। सदा सलिलराजस्य प्रतिष्ठा चादिरेव च ॥ १ ॥ अत्र पश्चादहः सूर्यो विसर्जयति गाः स्वयम्। पश्चिमेत्यभिविख्याता दिगियं द्विजसत्तम ॥२॥ यादसामत्र राज्येन सलिलस्य च गुप्तये। कश्यपो भगवान् देवो वरुणं स्माभ्यषेचयत् ॥ ३॥ अत्र पीत्वा समस्तान् वै वरुणस्य रसांस्तु षट्। जायते तरुणः सोमः शुक्लस्यादौ तमिस्रहा ॥ ४ ॥ अत्र पश्चात् कृता दैत्या वायुना संयतास्तदा। निःश्वसन्तो महावातैरर्दिताः सुषुपुर्द्विज ॥५॥ अत्र सूर्यं प्रणयिनं प्रतिगृह्णाति पर्वतः। अस्तो नाम यतः सन्ध्या पश्चिमा प्रतिसर्पति ॥६॥ अतो रात्रिश्च निद्रा च निर्गता दिवसक्षये। जायते जीवलोकस्य हर्तुमर्धमिवायुषः ॥७॥ अत्र देवीं दितिं सुप्ता-

योग्य है अब मैं तुमसे पश्चिम दिशाका समाचार कहता हूँ, उसको सुनो ॥ २१ ॥ एक सौ नौवाँ अध्याय समाप्त ॥ १०९ ॥ छ

गरुड़जी पश्चिम दिशाकी ओरको मुख करके कहने लगे कि- यह पश्चिम दिशा जलके देवता राजा वरुणकी प्यारी है उनका जन्म स्थान तथा निवास इस ही दिशामें है तथा सूर्य भी इस ही दिशामें विश्राम करते हैं ॥ १ ॥ सूर्य नारायण अपने आप प्रतिदिन सायंकाल के समय इस दिशामें अपनी किरणोंको फैंकते हैं, तिससे हे ब्राह्मण ! यह दिशा पश्चिम नामसे प्रसिद्ध है ।२। भगवान् कश्यपजीने जलकी रक्षाके लिये वरुणदेवका, जलचरोंके राजा रूपसे इस दिशामें अभिषेक किया है ।३। अंधकारका नाश करने वाला चन्द्रमा इस दिशामें शुक्लपक्षके आरम्भमें जलके छः रसोंको पीकर तरुण होता है ॥४॥ हे ब्राह्मण ! पहिले इस दिशामें वायुके प्रचण्डवेगसे दैत्योंने हारकर दुःख पाया था और बन्दी होकर श्वास छोड़ते हुए मृत्युशय्या पर सोये थे ॥५॥ जिससे पश्चिम सन्ध्या उत्पन्न होती है वह अस्ताचल पर्वत भी इस दिशामें प्रेमपात्र सूर्यको प्रतिदिन मानपूर्वक सत्कार करके आश्रय देता है ॥ ६ ॥ सायङ्कालके समय इस दिशामेंसे ही रात्रि और निद्रादेवी संसारी जीवोंकी आधी आयुको छीनती हुईसी निकलती हैं ॥ ७ ॥ अदितिदेवी वायुओंको गर्भमें धारण करके इस दिशामें ही

मात्मप्रसवधारिणीम् । विगर्भामकरोच्छक्रो यत्र जातो मरुद्गणः ।८। अत्र मूलं हिमवतो मन्दरं याति शाश्वतम्।अपि वर्षसहस्रेण न चास्यान्तोऽधिगम्यते ॥ ९ ॥ अत्र काञ्चनशैलस्य काञ्चनाम्बुरुहस्य च । उदधेस्तीरमासाद्य सुरभिः क्षरते पयः ॥१०॥ अत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते । स्वर्भानोः सूर्यकल्पस्य सोमसूर्यौ जिघांसतः ॥ ११ ॥ सुवर्णशिरसोऽप्यत्र हरिरोम्णः प्रगायतः । अदृश्यस्याप्रमेयस्य श्रूयते विपुलो ध्वनिः॥१२॥ अत्र ध्वजवती नाम कुमारी हरिमेधसः। आकाशे तिष्ठ तिष्ठेति तस्थौ सूर्यस्य शासनात् ॥ १३॥ अत्र वायुस्तथा वह्निरापः खञ्चापि गालव । आह्निकञ्चैव नैशञ्च दुःखस्पर्शं विमुञ्चति १४ अतः प्रभृति सूर्यस्य तिर्यगावर्तते गतिः । अत्र ज्योतींषि सर्वाणि विशन्त्यादित्यमण्डलम्॥१५॥अष्टाविंशतिरात्रञ्च चक्रम्य सह भानुना॥ निष्पतन्ति पुनः सूर्यात् सोमसंयोगयोगतः ॥ १६ ॥ अत्र नित्यं र व-

---

सोयी थी, उस समय इन्द्रने डाहसे उसके गर्भके उनञ्चास टुकड़े कर दिये थे और उनमेंसे वायुके गणोंकी उत्पत्ति हुई थी ॥ ८ ॥ पर्वतोंके राजा हिमालयकी विस्तारवाली जड़ भी यहाँ ही पुराने मन्दराचल के साथ सदा चिपटी रहती है और सहस्रों वर्षतक घूमकर खोजनेपर भी उसकी जड़का छोर देखनेमें नहीं आता ॥९॥ सुरभि गौ भी इस दिशामें सोनेके कमलोंसे भरे हुए और सोनेके पहाड़ोंसे घिरे हुए सागरकी समान लम्बे सरोवरके तटपर खड़ी होकर दूधकी वर्षा किया करती है ॥१०॥ चन्द्रमा और सूर्यकी हिंसा करना चाहने वाले और सूर्यकी समान तेजस्वी राहु दैत्यका मस्तक रहित धड़ भी यहाँ के समुद्रमें नित्य दीखा करता है ॥११॥ अपारवली श्याम केशोंवाले अर्थात् स्थिर और युवा अवस्था वाले सुवर्णशिरा नामके महामुनि अदृश्य रहकर इस दिशामें वेदोंका गान किया करते हैं, उसकी बड़ी भारी ध्वनि यहां नित्य सुनायी आती है ॥ १२ ॥ हरिमेधस मुनिकी कुमारी ध्वजवती "खड़ी रह, खड़ी रह" ऐसी सूर्यकी आज्ञाके अनुसार इस दिशामें आकाशमें खड़ी रहती है ॥ १३ ॥ हे गालव! इस दिशामें दिनमें और रातमें पवन अग्नि, जल और आकाश सदा सुख दिया करते हैं ॥१४॥ सूर्यकी चाल भी इस दिशा तक तिरछी चलती है, सब नक्षत्र भी इस दिशामें आकर सूर्यके मण्डलमें प्रवेश करजाते हैं ॥ १५ ॥ वह अट्ठाईसों नक्षत्र रात्रि तक सूर्यके साथ फिरकर फिर चन्द्रमाके साथ फिरनेके लिये सूर्यमेंसे बाहर निकल आते हैं ॥ १६ ॥

न्तीनां प्रभवः सागरोदयः। अत्र लोकत्रयस्यापस्तिष्ठन्ति वरुणालये ॥१७॥ अत्र पन्नगराजस्याप्यनन्तस्य निवेशनम्। अनादिनिधनस्यात्र विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥१८॥ अत्रानलसखस्यापि पवनस्य निवेशनम्। महर्षेः कश्यपस्यात्र मारीचस्य निवेशनम् ॥१९॥ एष ते पश्चिमो मार्गो दिग्द्वारेण प्रकीर्तितः। ब्रूहि गालव गच्छावो बुद्धिः का द्विजसत्तम ॥२०॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

सुपर्ण उवाच। यस्मादुत्तार्यते पापाद्यस्मान्निःश्रेयसोऽश्नुते। अस्मादुत्तारणबलादुत्तरेत्युच्यते द्विज ॥ १ ॥ उत्तरस्य हिरण्यस्य परिवापश्च गालव। मार्गः पश्चिमपूर्वाभ्यां दिग्भ्यां वै मध्यमः स्मृतः ॥ २ ॥ अस्यां दिशि वरिष्ठायामुत्तरायां द्विजर्षभ। नासौम्यो नाविधेयात्मा नाधर्म्यो वसते जनः ॥३॥ अत्र नारायणः कृष्णो जिष्णुश्चैव नरोत्तमः बदर्यामाश्रमपदे तथा ब्रह्म च शाश्वतः ॥ ४ ॥ अत्र वै हिमवत्पृष्ठे नित्य-

---

जिससे समुद्रका रूप प्रकट होता है वह सब नदियोंका उत्पत्तिस्थान भी सदा इस पश्चिम दिशामें ही है, ऐसा कहते हैं, और तीनोंलोकों में जितना जल है उतना सब यहाँ वरुणके भवनमें रहता है ॥ १७ ॥ इस दिशामें सर्पोंके राजा अनन्त भगवान निवास करते हैं तथा आदि और अन्तरहित विष्णुजीका सर्वोत्तम स्थानभी इस दिशामें ही है १८ अग्निके मित्र पवनका स्थान भी इस दिशामें ही है तथा महर्षि कश्यप का और भगवान् मारीचका स्थान भी इस ही दिशामें है ॥१९॥ यह मैंने तुमसे पश्चिम दिशाका मार्ग संक्षेपमें कह दिया है, हे द्विजवर गालव ! बता अब तेरा क्या विचार है ? यदि इच्छा हो तो हम दोनों जने इस दिशामें चलें ॥ २० ॥ एक सौ दशवां अध्याय समाप्त ११०

तदनन्तर गरुड़ने उत्तर दिशाकी ओरको मुख करके कहा, कि-हे ब्राह्मण ! यह दिशा मनुष्योंको पापसे छुड़ाकर मुक्ति देती है, ऐसा उद्धार करनेकी शक्ति होनेसे ही यह उत्तर नामसे कही जाती है ॥१॥ हे गालव ! यह दिशा सुवर्णकी खान कहलाती है और पूर्व तथा पश्चिमकी ओरका इसकी परिधि जानेके कारण यह दिशा मध्यम देश कहलाती है ॥ २ ॥ हे द्विजवर ! इस उत्तम उत्तर दिशामें अशान्त; उद्धत और अधर्मी पुरुष नहीं रहते हैं ॥ ३ ॥ किन्तु इस दिशामेंके बदरिकाश्रममें विजयी नर नारायण तथा सनातन देव ब्रह्माजी रहते हैं४ इस दिशामेंके हिमालय पर्वत पर प्रलय कालके अग्निकी समान कांति

मास्ते महेश्वरः । प्रकृत्या पुरुषः सार्द्धं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५ ॥ न स दृश्यो मुनिगणैस्तथा देवैः सवासवैः । गन्धर्वयक्षसिद्धैर्वा नरनारायणावृते ॥ ६ ॥ अत्र विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रचरणोऽव्ययः । सहस्रशिरसः श्रीमानेकः पश्यति मायया ॥ ७ ॥ अत्र राज्येन विप्राणां चन्द्रमाश्चाभ्यषिच्यत । अत्र गङ्गां महादेवः पतन्तीं गगनाच्च्युताम् ॥ ८ ॥ प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम । अत्र देव्या तपस्तप्तं महेश्वरपरीप्सया ९ अत्र कामश्च रोषश्च शैलश्चोमा च सम्बभुः अत्र राक्षसयक्षाणां गंधर्वाणाञ्च गालव ॥ १० ॥ आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः । अत्र चैत्ररथं रम्यमत्र वैखानसाश्रमः ॥ ११ ॥ अत्र मन्दाकिनी चैव मंदरश्च द्विजर्षभ । अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतैरपि रक्ष्यते १२ शाड्वलं कदलीस्कन्धमत्र संतानका नगाः । अत्र संयमनित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम् ॥१३॥ विमानान्यनुरूपाणि कामभोग्यानि गालव । अत्र ते ऋषयः

वाले महादेवजी सदा पार्वतीके साथ रहते हैं ॥ ५ ॥ उस महेश्वरको मुनि, देवता, इन्द्र, गंधर्व, यक्ष और सिद्ध नहीं देख सकते, केवल नरनारायण ही उनको देख सकते हैं ॥ ६ ॥ इस उत्तर दिशामें हजारों नेत्रों वाले और हजारों चरणों वाले तथा हजारों मस्तकों वाले अविनाशी एक श्रीमान् विष्णुदेव ही मायाके साथ रहने वाले श्रीमहादेवजीका दर्शन करते हैं ॥ ७ ॥ यहाँ ही चंद्रमाको ब्राह्मणोंका राजा बना कर अभिषेक किया गया था तथा आकाशमेंसे नीचेको गिरती हुई गङ्गाजीको भी महादेवजीने इस दिशामें ही अपने मस्तकपर लेकर उसको मनुष्यलोकमें दिया था, हे श्रेष्ठब्रह्मज्ञानी! देवी पार्वतीने भी शङ्करको वररूपसे पानेके लिये यहाँ तप किया था । ८ ।९। कामदेव, शङ्करका क्रोध, पर्वत, और पार्वती भी एक समय यहाँ ही शोभायमान हुए थे और हे गालव ! इस दिशामें ही कैलास पर्वतपर राक्षस, यक्ष और गंधर्वोंके राजाके पद पर कुबेरका अभिषेक किया गया था, इस दिशामें ही चैत्ररथ नामका रमणीय वन है, वैखानसका आश्रम है, मन्दाकिनी गङ्गा वहती है मन्दर नामका पर्वत है, सौगन्धिक नामका कुबेरका वन है और राक्षस उस वनकी रातदिन रक्षा किया करते हैं ॥ १०-१२ ॥ यहाँ हरी २ घास वाला कदली वन है, कल्पतरुके वृक्ष हैं, हे गालव ! यहाँ नित्य जितेंद्रियपनेकी रक्षा करने वाले और इच्छाके अनुसार विहार करनेवाले सिद्ध पुरुषोंके मनचाही रीतिसे भोगने योग्य भोगों वाले जैसे चाहियें तैसे विमान रहते हैं

सम देवी चारुन्धती तथा॥१४॥ अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्रास्या उदयः स्मृतः। अत्र यज्ञं समासाद्य ध्रुवं स्थाता पितामहः॥ १५ ॥ ज्योतींषि चन्द्रसूर्यौ च परिवर्तन्ति नित्यशः। अत्र गङ्गामहाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तम॥ १६ ॥धामानाम महात्मानो मुनयः सत्यवादिनः। न तेषां ज्ञायते मूर्तिर्नाकृतिर्न तपश्चितम॥ १७ ॥ परिवर्त्तः सहस्राणि कामभोज्यानि गालव। यथा यथा प्रविशति तस्मात् परतरं नरः॥ १८ ॥ तथा तथा द्विजश्रेष्ठ प्रविलीयति गालव। नैतत् केनचिदन्येन गतपूर्वं द्विजर्षभ॥१९॥ ऋते नारायणं देवं नरं वा जिष्णुमव्ययम्। अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत्॥२०॥ अत्र विद्युत्प्रभा नाम जज्ञिरेऽप्सरसो दश। अत्र विष्णुपदं नाम क्रामता विष्णुना कृतम्॥२१॥ त्रिलोकविक्रमे ब्रह्मन्नुत्तरां दिशमाश्रितम्। अत्र राज्ञा मरुत्तेन यज्ञेनेष्टं द्विजोत्तम॥ २२ ॥ उशीरबीजे विप्रर्षे यत्र जाम्बूनदं सरः। जीमूतस्यात्र विप्रर्षेरुपतस्थे महात्मनः॥२३॥ साक्षाद्धैमवतः पुण्यो विमलः कमलाकरः। ब्राह्मणेषु

तथा इस दिशामें ही प्रसिद्ध ऋषि और अरुन्धती देवीका निवास है॥ १३—१४ ॥ स्वाति नक्षत्र भी इस दिशामें ही रहता है, उसका उदय भी इस दिशामें ही कहा है, पितामह भी इस दिशामें ही यज्ञका आश्रय लेकर अपना निश्चल निवास कर रहे हैं॥ १५ ॥ हे द्विजवर! नक्षत्र, चन्द्रमा और सूर्य सदा इस दिशाकी परिक्रमा किया करते हैं, सत्यवादी और महात्मा धामा नामके मुनि इस दिशामें गङ्गाद्वार नामके स्थानकी रक्षा करते हैं, परंतु उनकी मूर्ति,आकार और इकट्ठा किया हुआ तप, इनमेंसे कुछ भी जाननेमें नहीं आता है॥ १६—१७ ॥ हे गालव! इच्छाको पूरी करनेवाले भोजनोंसे भरे हुए हजारों पात्र यहीं आया जाया करते हैं, परंतु उन सबोंको मेरी दृष्टि वाला नहीं देख सकता है द्विजवर गालव! पुरुष जैसे २ हिमालयके प्रदेशोंमें आगेको प्रवेश करता है तैसे वह पुरुष बरफमें गल कर नाशको प्राप्त होजाता है, हे द्विजवर!अविनाशी भगवान् नारायण तथा विजयी नरके सिवाय उस दिशामें पहिले कोई भी पुरुष नहीं गया है, इस दिशामें एक स्थान कुबेरके रहनेका है, उसको कैलास नामसे कहते हैं॥१८—२०॥ इस दिशामें विद्युत्प्रभा नामकी दश अप्सरा उत्पन्न हुई थीं, हे ब्राह्मण! वामनरूप विष्णुने तीन चरणसे तीन लोकोंको नापते समय इस दिशामें एक चरण रख कर विष्णुपद नामका तीर्थ बना दिया है हे द्विजवर! मरुत्त नामके एक राजाने इस उत्तर दिशामें जिस स्थान पर

च यत्कृत्स्नं स्वयं तं कृत्वा धनं महत् ॥ २४ ॥ यत्र धनं महर्षिः स जैमूतं तद्धनं ततः । अत्र नित्यं दिशां पाला सायं प्रातर्द्विजर्षभ ॥२५॥ कस्य कार्य्यं किमिति वै परिक्रोशन्ति गालव । एवमेषा द्विजश्रेष्ठ गुणैरन्यै-र्दिगुत्तरा ।२६। उत्तरेति परिख्याता सर्वकर्मसु चोत्तरा । एता विस्तर-शस्तात तव संकीर्त्तिता दिशः ॥ २७ ॥ चतस्रः क्रमयोगेन कामा-शाङ्गन्तुमिच्छसि । उद्यतोऽहं द्विजश्रेष्ठ तव दर्शयितुं दिशः । पृथिवी-ञ्चाखिलां ब्रह्मंस्तस्मादारोह मां द्विज ॥ २८ ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालव-चरित एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

गालव उवाच । गरुत्मन्भुजगेन्द्रारे सुपर्ण विनतात्मज । नय मां तार्क्ष्य पूर्वेण यत्र धर्मस्य चक्षुषी ॥ १ ॥ पूर्वामेतां दिशं गच्छ या पूर्वं परिकीर्त्तिता । देवतानां हि सान्निध्यमत्र कीर्तितवानसि ॥ २ ॥

जांबूनद नामका सोनेका सरोवर था तहाँके उशीरबीज नामके स्थान में एक महायज्ञ किया था, और इस दिशामें एक जीमूत नामके महात्मा विप्रर्षिको हिमालयकी अत्यन्त निर्मल और शुद्ध साक्षात् सोनेकी खान मिलगयी थी, उन महर्षिने वह महाधनका बड़ाभारी सब भण्डार ब्राह्मणोंको दान करके देदिया था और उसको अपने नामसे प्रसिद्ध करनेकी इच्छासे उन्होंने ब्राह्मणोंसे प्रार्थनाकी थी, इसकारण वह धन जैमूत नामसे प्रसिद्ध हुआ था और हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! यहाँ दिक्पाल नित्य प्रातःकाल और सायंकालके समय पुकार कर कहते हैं कि-किसका क्या काम है सो कहो ? हे द्विजवर गालव ! इसप्रकार यह दिशा इन गुणोंके कारणसे तथा सब कामोंमें उत्तर होनेके कारण से उत्तर नामसे कहीजाती है; हे तात ! मैंने चारों दिशाओंका वर्णन तुम्हें क्रमसे सुना दिया, बताओ अब तुम कौनसी दिशामें जाना चाहते हो ? हे द्विजवर ! मैं तुम्हें दिशायें और सब पृथिवी दिखाने को उद्यत हुआ हूँ, इस लिये तुम मेरी पीठ पर चढ़जाओ ।२१-२८। एकसौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १११ ॥ छ छ

गालवने कहा, कि-हे सर्पराजके शत्रु गरुड़ ! हे विनताके पुत्र गरुड़ ! मुझसे पहिले जिस दिशाका वर्णन किया था, जिस दिशामें धर्मके दो नेत्र सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं, उस पूर्वदिशाकी ओर मुझे ले चलो, क्योंकि-तुम मुझसे कह चुके हो, कि-उस दिशामें देवता रहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ और तुमने मुझसे स्पष्ट कहा था, कि-इस दिशा

अत्र सत्यं च धर्मश्च त्वया सम्यक्प्रकीर्तितः । इच्छेयं तु समागन्तुं समस्तैर्दैवतैरहम् । भूयश्च तान्सुरान् द्रष्टुमिच्छेयमरुणानुज ॥ ३ ॥ नारद उवाच । तमाह विनतासूनुरारोहस्वेति वै द्विजम् । आरुरोहाथ स मुनिर्गरुडं गालवस्तदा ॥ ४ ॥ गालव उवाच । क्रममाणस्य ते रूपं दृश्यते पन्नगाशन । भास्करस्येव पूर्वाह्णे सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥५॥ पक्षवातप्रणुन्नानां वृक्षाणामनुगामिनाम् । प्रस्थितानामिव समं पश्यामीह गतिं खग ॥ ६ ॥ ससागरवनामुर्वीं सशैलवनकाननाम् । आकर्षन्निव चाभासि पक्षवातेन खेचर ॥ ७ ॥ समीननागनक्रं च खमिवारोप्यते जलम् । वायुना चैव महता पक्षवातेन चानिशम् ॥ ८ ॥ तुल्यरूपाननान्मत्स्यांस्तथा तिमितिमिङ्गिलान् । नागांश्च नररूपांश्च पश्याम्युन्मथितानिव ॥ ९ ॥ महार्णवस्य च रवैः श्रोत्रे मे बधिरे कृते । न शृणोमि न पश्यामि नात्मनो वेद्मि कारणम् ॥ १० ॥ शनैः स तु

में सत्य तथा धर्म भी रहता है, इसलिये मैं सब देवताओंके साथ मिलना चाहता हूँ और हे अरुणके छोटे भाई ! फिर उनका दर्शन भी करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥ नारदजी कहते हैं, कि फिर विनताके पुत्र गरुड़ने गालव मुनिसे कहा, कि–तुम मेरे ऊपर चढ़जाओ तब गालव मुनि गरुड़जीकी पीठ पर चढ़गये ॥ ४ ॥ तदनन्तर गालवने कहा, कि–हे सर्पोंको खाने वाले गरुड़ ! तुम उड़ते हो तब तुम्हारा रूप, उदय होते हुए हजारों किरणों वाले सूर्यकैसा प्रतीत होता है ॥ ५ ॥ हे आकाशचारी गरुड़जी ! जब तुम चलते हो तो तुम्हारे पंखोंकी पवनसे चलायमान हुए वृक्ष उड़कर तुम्हारे पीछे २ चलते हुएसे प्रतीत होते हैं ॥ ६ ॥ हे आकाशचारी गरुड़ ! जब तुम उड़ते हो तो अपने पंखोंकी पवनसे समुद्र वन, पहाड़ तथा बड़े २ वनोंवाली पृथिवीको खेंचकर लियेजाते हुएसे प्रतीत होते हो ॥ ७ ॥ जब तुम उड़ते हो तब तुम्हारे पंखोंके बड़े भारी पवनसे मछलियें, सर्प और मगरमच्छोंसे भराहुआ जल चलायमान होकर सदा आकाशमेंको उड़ताहुआ सा प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ तथा जब तुम उड़ते हो उस समय तुम्हारे वेगसे समुद्रवासी एकसमान रूपवाली और एकसे मुखवाली छोटी २ मछलियों, बड़ी मछलियों तथा उनसे भी बड़ी मछलियोंको, और हाथी घोड़े तथा मनुष्यको समान मुखवाले जल-जन्तुओंको मानों तुम मथे डालते हो, ऐसे प्रतीत होते हो ॥ ९ ॥ तुम्हारे उड़नेकी झड़पसे महासागरमें बड़ी गर्जना होती है इसकारण

भवान् यातु ब्रह्मवध्यामनुस्मरम् । न दृश्यते रविस्तात न दिशो न च खं खग ॥११॥ तम एव तु पश्यामि शरीरं तेन लक्षये । मणीव जात्यौ पश्यामि चक्षुषी तेऽहमण्डज ।१२। शरीरन्तु न पश्यामि तव चैवात्मनश्च ह । पदे पदे तु पश्यामि शरीरादग्निमुत्थितम् ॥ १३ ॥ स मे निर्वाप्य सहसा चक्षुषी शाम्यते पुनः । तन्नियच्छ महावेगं गमने विनतात्मज ॥१४॥ न मे प्रयोजनं किञ्चिद् गमने पन्नगाशन । सन्निवर्त्त महाभाग न वेगं विषहामि ते ॥१५॥ गुरवे संश्रुतानीह शतान्यष्टौ हि वाजिनाम् । एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां चन्द्रवर्चसाम् ॥१६॥ तेषाञ्चैवापवर्गाय मार्गं पश्यामि नाण्डज । ततोऽयं जीवितत्यागे दृष्टो मार्गो मयात्मनः ॥ १७ ॥ नैव मेऽस्ति धनं किञ्चिन्न धनेनान्वितः सुहृत् । न चार्थेनापि महता शक्यमेतद्व्यपोहितुम् ॥ १८ ॥ नारद उवाच । एवं बहु च दीनञ्च ब्रुवाणं गालवं तदा । प्रत्युवाच व्रजन्नेव

मेरे दोनों कान बहरे होरहे हैं, मैं न कुछ सुनसकता हूँ, न कुछ देख सकता हूँ तथा इस शब्दके होनेका क्या कारण है, यह बात मेरी समझमें नहीं आती ॥१०॥ इसलिये आप, कहीं ब्रह्महत्या न होजाय, इस बातका ध्यान रखकर धीरे २ उड़िये, हे तात गरुड़ ! सूर्य नहीं दीखता, दिशायें नहीं सूझतीं तथा आकाश भी नहीं दीखता है ।११। केवल अन्धकार ही अन्धकार देखरहा हूँ, मुझे आपका शरीर भी नहीं सूझता, हे गरुड़ ! मुझे केवल उत्तम मणियोंकी समान चमकती हुई आपकी दो आँखे ही दीखती हैं ॥१२॥ मुझे न आपका शरीर ही दीखता है न अपना ही शरीर दीखता है, केवल पग २ पर आपके शरीरमेंसे निकलता हुआ अग्निही दीखता है ॥१३॥ वह अग्नि एकायकी मेरे दोनों नेत्रोंको चौंधाकर फिर शान्त होजाता है, इसलिये हे गरुड़ ! चलनेमें अपने महावेगको रोकिये ॥ १४ ॥ हे सर्पोंका भोजन करनेवाले गरुड ! मुझे अब आगे जानेका कुछ प्रयोजन नहीं है, हे महाभाग ! आप पीछेको लौटिये अब मुझसे आपका वेग नहीं सहा जाता ॥ १५ ॥ मैंने एक ओर काले कानोंवाले चन्द्रमाकी समान श्वेत वर्णके आठ सौ घोडे अपने गुरुको गुरुदक्षिणामें देनेकी प्रतिज्ञा करी थी, परन्तु हे गरुड ! उस ऋणमेंसे छूटनेका मार्ग मुझे नहीं दीखता, मुझे तो केवल अब अपने प्राणोंको त्यागदेनेका ही मार्ग दीखता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ मेरे पास कुछ नहीं है, मेरा कोई मित्र ऐसा धनवान् नहीं है तथा बहुतसे धनसे यह प्रतिज्ञा पूरी होजाय, यह भी

प्रहसन् विनतात्मजः ॥ १९ ॥ नातिप्रज्ञोऽसि विप्रर्षे योऽत्मानं त्यक्तुमिच्छसि । न चापि कृत्रिमः कालः कालो हि परमेश्वरः ॥२०॥ किमहं पूर्वमेवेह भवता नाभिचोदितः। उपायोऽत्र महानस्ति येनैतदुपपद्यते२१ तदेष ऋषभो नाम पर्वतः सागरान्तिके । अत्र विश्रम्य भुक्त्वा च निवर्त्तिष्याव गालव ॥ २२ ॥ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२॥

नारद उवाच । ऋषभस्य ततः शृंगं निपत्य द्विजपक्षिणौ । शांडिलीं ब्राह्मणीं तत्र ददृशाते तपोऽन्विताम् ॥ १ ॥ अभिवाद्य सुपर्णस्तु गालवश्चाभिपूज्य ताम् । तया च स्वागतेनोक्तौ विष्टरे सन्निषीदतुः ॥ २ ॥ सिद्धमन्नं तया दत्तं बलिमन्त्रोपबृंहितम्। भुक्त्वा तृप्तावुभौ भूमौ सुप्तौ तावनुमोहितौ३ मुहूर्त्तात् प्रतिबुद्धस्तु सुपर्णो गमनेप्सया। अथ भ्रष्टतनू-

आशा नहीं है ॥ १८ ॥ नारदजी कहते हैं, कि-जब उस समय गालव दीनताके साथ बहुत ही कहने लगे तब गरुड़जीने उड़ते २ ही खूब हँसकर गालवसे कहा, कि-॥१९॥ हे विप्रर्ष ! तुम मुझे अधिक बुद्धिमान् नहीं मालूम होते, क्यों कि--तुम अपने प्राण त्यागना चाहते हो, काल कोई बनावटी वस्तु नहीं है, वह तो परमात्माका स्वरूप है २० यदि तुम ऐसे डरपोक थे तो तुमने यह बात मुझसे पहिले ही क्यों नहीं कहदी थी, अच्छा एक बड़ाभारी उपाय है,जिससे तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध होजावगा ॥ २१ ॥ हे गालव ! समुद्रके समीपमें यह ऋषभ नामका बड़ा भारी पर्वत खड़ा है, तुम इसके ऊपर विश्राम लेकर भोजन करलो, फिर हम दोनों जने पीछेको लौट चलेंगे ॥ २२ ॥ एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११२॥ ❀ ❀

नारदजी कहते हैं, कि-ब्राह्मण गालव और गरुड़ने ऋषभ पर्वत के शिखर पर उतर कर तहाँ शाण्डिली नामकी तपस्विनी ब्राह्मणीको देखा ॥ १ ॥ गरुडने उसको प्रणाम किया और गालवने उसकी पूजा करी तब उस तपस्विनीने उन दोनोंका स्वागत करके विराजनेको कहा, तब वह दोनों आसन पर बैठ गये ॥२॥ उस तपस्विनीने बलिवैश्वदेव करके मन्त्रसे संस्कार किया हुआ भोजन दोनोंको परोसा दोनोंजने उसको जीम कर तृप्त होगये और फिर पृथ्वी पर सोये, कि निद्रादेवीसे मोहित होगये ॥ ३ ॥ कुछ देरके अनन्तर गरुड़जी आगे को जानेकी इच्छासे जागे और देखा कि--उनके पंख शरीर परसे

अङ्गमात्मानं ददृशे खगः ॥४॥ मांसपिण्डोपमोऽभूत्स मुखपादान्वितः खगः। गालवस्तं तथा दृष्ट्वा विमनाः पर्य्यपृच्छत ॥ ५ ॥ किमिदं भवता प्राप्तमिहागमनजं फलम्। वासोऽयमिह कालं तु कियन्तं नौ भविष्यति॥६॥ किन्नु ते मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम्। न ह्ययं भवतः स्वल्पो व्यभिचारो भविष्यति ॥७॥ सुपर्णोऽथाब्रवीद् विप्रं प्रध्यातं वै मया द्विज। इमां सिद्धामितो नेतुं तत्र यत्र प्रजापतिः ॥ ८ ॥ यत्र देवो महादेवो यत्र विष्णुः सनातनः। यत्र धर्मश्च यज्ञश्च तत्रेयं निवसेदिति ॥९॥ सोऽहं भगवतीं याचे प्रणतः प्रियकाम्यया। मयैतन्नाम प्रध्यातं मनसा शोचता किल ॥१०॥ तदेवं बहुमानात्ते मयेहानीप्सितं कृतम्। सुकृतं दुष्कृतं वा त्वं माहात्म्यात् क्षन्तुमर्हसि ॥ ११ ॥ सा तौ तदाब्रवीत्तुष्टा पतगेन्द्र-द्विजर्षभौ। न भेतव्यं सुपर्णोऽसि सुपर्ण त्यज सम्भ्रमम् ॥१२॥ निन्दितास्मि त्वया वत्स न च निन्दां क्षमाम्यहम्। लोकेभ्यः सपदि भ्रश्येयो

उखड़े पड़े थे ॥ ४ ॥ वह गरुड़जी मुख और पैरोंसे युक्त मांसका पिंड से होगये, ऐसी दशाको प्राप्त हुए गरुड़जीको देख कर गालव मुनि मनमें दुःख मानते हुए गरुड़जीसे बोले, कि-॥ ५ ॥ आपने यहाँ आने का यह क्या फल पाया ? अब यहाँ हम दोनोंको कितने दिनों तक रहना पड़ेगा ? ॥६॥ आपने धर्मको दूषण लगाने वाला कौनसा खोटा विचार अपने मनमें किया था आपका यह पाप कोई छोटासा नहीं होसकता ॥ ७ ॥ इस पर गरुड़जीने कहा, कि-हे ब्राह्मण ! मैंने अपने मनमें इस सिद्धाको जहाँ प्रजापति हैं तहाँ लेजानेका विचार किया था ॥८॥ मैंने चाहा था, कि-जहाँ देवता महादेवजी हैं, जहाँ सनातन विष्णु भगवान् हैं और जहाँ धर्म तथा यज्ञ भी है तहाँ ही यह सिद्धा स्त्री भी रहे तो अच्छा है॥९॥इसलिये अब मैं भगवती देवीको प्रसन्न करने की इच्छासे प्रणाम करके प्रार्थना करता हूँ, कि-मुझे क्षमा करो, तुम यहाँ किस लिये रहती हो ? ऐसा विचार कर मैंने तुम्हें उठा कर ले जानेका खोटा विचार किया था ॥१०॥ सो मैंने जो इसप्रकार तुम्हारे चित्तको अच्छा न लगने वाला काम किया है इसमें भी तुम्हारा बड़ा मान रक्खा है, अथवा मुझसे भला वा बुरा जो कुछभी काम बनगया है वह तुम्हें अपने बड़प्पनकी ओर ध्यान देकर क्षमा कर देना चाहिये ॥ ११ ॥ वह सिद्धा उस समय प्रसन्न होकर गरुडसे तथा उत्तम ब्राह्मण गालवसे कहने लगी, कि-हे गरुड़ ! तू डर मत, तू घबराहटको त्याग दे, तेरे पंख अच्छे होजायँगे ॥ १२ ॥ हे बेटा ! तूने मेरी

मां निन्देत पापकृत् ॥१३॥ हीनयाऽलक्षणैः सर्वैस्तथाऽनिन्दितया मया। आचारं प्रतिगृह्णन्त्या सिद्धिः प्राप्तेयमुत्तमा ॥ १४ ॥ आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् । आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१५॥ तदायुष्मन् खगपते यथेष्टं गम्यतामितः । न च ते गर्हणीयाऽहं गर्हितव्याः स्त्रियः क्वचित् ॥ १६ ॥ भवितासि यथा पूर्वं बलवीर्यसमन्वितः । बभूवतुस्ततस्तस्य पक्षौ द्रविणवत्तरौ ॥ १७ ॥ अनुज्ञातस्तु शाण्डिल्या यथागतमुपागमत । नैव चासादयामास तथा रूपांस्तुरङ्गमान् ॥ १८ ॥ विश्वामित्रोऽथ तं दृष्ट्वा गालवञ्चाध्वनि स्थितः । उवाच वदतां श्रेष्ठो वैनतेयस्य सन्निधौ ॥ १९ ॥ यस्त्वया स्वयमेवार्थः प्रतिज्ञातो मम द्विज । तस्य कालोऽपवर्गस्य यथा वा मन्यते भवान् २० प्रतीक्षिष्याम्यहं कालमेतावन्तं तथापरम् । यथा संसिध्यते विप्र स मार्गस्तु निशम्यताम् ॥२१॥ सुपर्णोऽथाब्रवीद्दीनं गालवं भृशदुःखितम्।

निन्दा करता था परन्तु मैं निन्दाको सह नहीं सकती पापी मेरी निन्दा करता है वह तुरन्त ही पवित्र लोकोंमेंसे गिरजाता है ॥ १३ ॥ मैं सब ही कुलक्षणोंसे रहित हूँ पापरहित हूँ तथा सदाचरणको ग्रहण करनेसे मैंने यह गति पायी है ।१४। आचार धर्मरूपी फलको देता है, आचार धनरूपी फलको देता है,आचारसे पुरुष लक्ष्मीको पाता है और आचार कुलक्षणोंका नाश करता है ॥ १५ ॥ इस लिये हे आयुष्मन् पक्षिराज! अब तू यहाँ से तेरी इच्छा हो तहाँको चलाजा, तू मेरी निन्दा न करना क्यों कि-स्त्रियें तो कदाचित् ही निन्दाकी पात्र होती हैं॥१६॥ तू पहिले की समान ही बल और वीरतासे युक्त होजायगा, इतना कहनेके साथ ही उनके दोनों पँख महाबलवान् होगये ॥ १७ ॥ फिर शाण्डिली नाम वाली तपस्विनी ब्राह्मणीके आज्ञा देनेपर वह जैसे आये थे तैसे ही वेग से फिर आकाशमार्गमें उड़ने लगे, परन्तु विश्वामित्रके कहनेके अनुसार रूपवाले घोड़े नहीं पाये ॥ १८ ॥ इतनेमें ही बोलने वालोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी मार्गमें खड़े थे उन्होंने गरुड़जीके सामने गालव मुनिसे कहा, कि-॥ १९ ॥ हे ब्राह्मण ! तूने अपने आप ही मुझे जो वस्तु देने की प्रतिज्ञाकी थी उसके देनेका अब समय आलगा है, अथवा तू जैसा समझे तैसा कर ॥ २० ॥ मैंने जैसे इतने समय तक बाट देखी है तैसे मैं और आगेको भी बाट देखता रहूँगा हे ब्राह्मण ! जिसप्रकार काम सिद्ध होय, उस प्रकारका कोई मार्ग तो तू खोजकर निकाल २१। यह सुन कर गालव बड़ा दुःखी और दीन होगया, तब गरुड़ने गालव

प्रत्यक्षं खल्विदानीं मे विश्वामित्रो यदुक्तवान् ॥ २२ ॥ तदागच्छ द्विजश्रेष्ठ मन्त्रयिष्याव गालव। नादत्त्वा गुरवे शक्यं कृत्स्नमर्थं त्वयासितुम्

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

नारद उवाच । अथाह गालवं दीनं सुपर्णः पततां वरः । निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा । यस्माद्धिरण्मयं सर्वं हिरण्यन्तेन चोच्यते ॥१॥ धत्ते धारयते चेदमेतस्मात् कारणाद्धनम् । तदेतत् त्रिषु लोकेषु धनं तिष्ठति शाश्वतम् ॥ २ ॥ नित्यं प्रोष्ठपदाभ्याञ्च शुक्रे धनपतौ तथा । मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् ॥ ३ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यै रक्ष्यते धनदेन च । एवं न शक्यते लब्धुमलब्धव्यं द्विजर्षभ । ऋते च धनमश्वानां नावाप्तिर्विद्यते तव ॥ ४ ॥ स त्वं याचात्र राजानं कञ्चिद्राजर्षिवंशजम् । अपीडय राजा पौरान् हि यो नौ कुर्यात्

से कहा, कि-हे गालव ! विश्वामित्रजीने पहिले तुझसे जो बात कही थी, वही बात इस समय इन्होंने मेरे सामने भी तुझसे कही है ॥ २२॥ इस लिये हे द्विजवर गालव ! आओ हम दोनोंजने घोड़ोंके लिये विचार करें गुरुको सब घोड़े बिना दिये तू बैठ नहीं सकेगा ॥ २३ ॥ एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११३ ॥ छ छ

नारदजी कहते हैं, कि—इसके अनन्तर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़जी दीनतावाले गालव मुनिसे कहने लगे, कि—सोनेको अग्नि उत्पन्न किया है उसका उत्पत्तिस्थान भूमि है और वायुने उसको शुद्ध किया है, यह सब जगत् सुवर्णमय है, इस लिये हिरण्मय कहलाता है ॥१॥ और यह हिरण्य इस जगत्को जिवाता है और इसका पोषण करता है इस लिये धन कहलाता है और यह धन आजसे नहीं किन्तु अनादि कालसे तीनों लोकोंमें रहता है ॥ २ ॥ पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपद नक्षत्र तथा शुक्रवारका योग होता है उस समय अग्निदेवताका अन्तःकरणसे उत्पन्न किया हुआ धन कुबेरकी वृद्धिके लिये मनुष्योंको दिया जाता है, तात्पर्य यह है, कि—धन चाहनेवाला पुरुष, याग आदिके द्वारा अग्निकी प्रार्थना करे,यह धन याग आदिके द्वारा अथवा पृथिवीको खोदना आदि कर्मोंके द्वारा कुबेरके पास पहुँचता है ॥३॥ इस धनकी एक चरणवाला अज, अहिर्बुध्न्य तथा कुबेर रक्षा करता है, हे उत्तम ब्राह्मण ! इस प्रकार यह धन दुर्लभ है; मिल नहीं सकता और धनके बिना तुझे घोड़े नहीं मिलेंगे ॥४॥ इस कारण तू किसी राजर्षि

कृतार्थिनौ ॥५॥ अस्ति सोमान्वयाये मे जातः कश्चिन्नृपः सखा॥अभि-गच्छावहे तं वै तस्यास्ति विभवो भुवि ॥ ६ ॥ ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः सत्यविक्रमः । स दास्यति मया चोक्तो भवता चार्थितः स्वयम्॥७॥ विभवश्चास्य सुमहानासीद्धनपतेरिव । एवं गुरुधनं विद्वन् दानेनैव विशोधय ॥ ८॥ तथा तौ कथयन्तौ च चिन्तयन्तौ च यत्क्षमम् । प्रतिष्ठाने नरपतिं ययातिं प्रत्युपस्थितौ ॥ ९ ॥ प्रतिगृह्य च सत्कारैरर्घ्यपाद्यादिकं वरम् । पृष्टश्चागमने हेतुमुवाच विनतासुतः ॥ १० ॥ अयं मे नाहुष सखा गालवस्तपसो निधिः । विश्वामित्रस्य शिष्योऽभूद्वर्षाण्ययुतशो नृप ॥११॥ सोऽयं तेनाभ्यनुज्ञात उपकारेप्सया द्विजः । तमाह भगवान् काले ददानि गुरुदक्षिणाम्॥१२॥असकृत्तेन चोक्तेन किञ्चिदागतमन्युना । अयमुक्तः प्रयच्छेति जानता विभवं लघु ॥१३ एकतः श्यामकर्णानां शुभ्राणां शुद्धजन्मनाम् । अष्टौ शतानि मे देहि हयानां चन्द्रवर्च-

के वंशमें उत्पन्न हुए राजाकी प्रार्थना कर, कि-जो राजा अपने नगर की प्रजाको कर आदिसे कष्ट दिये विना हम दोनोंको कृतार्थ करें ।५। चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुआ एक राजा मेरा मित्र है, चलो हम दोनों उस के पास चलें, पृथ्वी पर उसका बड़ा भारी वैभव है ॥६॥ नहुषके वंश में उत्पन्न हुए उस राजाका नाम ययाति है और वह सत्यपराक्रमी है तू स्वयं उससे घोड़े माँगना और मैं भी उससे कहूँगा तो वह घोड़े दे देगा ॥ ७ ॥ उस राजाके पास कुबेरकी समान बड़ाभारी धन भण्डार है, हे विद्वन ! तू इस प्रकार राजासे गुरुको देनेका धन पाकर गुरुको दे और गुरुके ऋणसे छूट जा ॥ ८ ॥ इस प्रकार वह दोनोंजने उस हो सकने योग्य कामका विचार करके प्रतिष्ठान नामक नगरमें राजा ययातिके पास गए ॥ ९ ॥ राजाने उन दोनोंका अर्घ पाद्य आदिसे अच्छा सत्कार किया, उसको उन दोनोंने ग्रहण किया तब राजाने उनके आनेका कारण पूछा और गरुडजीने कहा, कि-॥१०॥ हे नहुषवंशी ! यह मेरा प्यारा मित्र गालव बड़ा तपस्वी है और लाखों वर्षोंसे विश्वामित्रका शिष्य है ॥ ११ ॥ इस गालवने गुरुका उपकार करनेकी इच्छासे विश्वामित्रजीसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिए कहा, तब विश्वामित्रने गालवसे कहा,कि-तू किसी समय मुझे गुरुदक्षिणा दे देना।ऐसा भी गालवने उनसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिए बार बार कहा तब गुरुको जरा क्रोध आगया और शिष्यके पास थोड़ासा धन है,इस बातको जानते हुए भी गुरुने शिष्यसे कहा, कि-एक ओर काले कानवाले, चंद्रमाकी

साम् ।१४। गुर्वर्थो दीयतामेष यदि गालव मन्यसे । इत्येवमाह संक्रुद्धो विश्वामित्रस्तपोधनः १५ सोऽयं शोकेन महता तप्यमानो द्विजर्षभः । असक्तः प्रतिकर्त्तुं तद् भवन्तं शरणं गतः ॥ १६ ॥ प्रतिगृह्य नरव्याघ्र त्वत्तो भिक्षां गतव्यथः । कृत्वापवर्गं गुरवे चरिष्यति महत्तपः ॥ १७ ॥ तपसः संविभागेन भवन्तमपि योक्ष्यते । स्वेन राजर्षितपसा पूर्णं त्वां पूरयिष्यति ॥ १८ ॥ यावन्ति रोमाणि हये भवन्तीह नरेश्वर । तावतो वाजिनो लोकान् प्राप्नुवन्ति महीपते ॥ १९ ॥ पात्रं प्रतिग्रहस्यायं दातुं पात्रं तथा भवान् । शंखे क्षीरमिवासक्तं भवत्वेतत्तथोपमम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालव-
चरिते चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४ ॥

नारद उवाच । एवमुक्तः सुपर्णेन तथ्यं वचनमुत्तमम् । विमृश्या-वहितो राजा निश्चित्य च पुनः पुनः ॥ १ ॥ यष्टा क्रतुसहस्राणां दाता दानपतिः प्रभुः । ययातिः सर्वकाशीश इदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वा

समान उज्वल रङ्गके शुद्धजातिमें उत्पन्न हुए आठसौ घोड़े गुरुदक्षिणा में दे १३-१४ हे गालव ! यदि तेरा विचार गुरुदक्षिणा देनेका हो तो मुझे यही गुरुदक्षिणा दे,तपोधन विश्वामित्रने क्रोधमें आकर इस प्रकार कहा ॥ १५ ॥ इस कारण यह श्रेष्ठ ब्राह्मण गालव बड़ेभारी शोकसे जला करता है और यह ऐसी गुरुदक्षिणा देनेमें असमर्थ होनेके कारण ,तुम्हारी शरणमें आया है ॥ १६ ॥ हे नरव्याघ्र ! आपसे धनरूपी भिक्षाका प्रतिग्रह करके इस चिन्तासे छूट जायगा और गुरु को दक्षिणा देनेके अनन्तर बड़ी भारी तपस्या करेगा ॥१७॥ और उस समय अपने तपमेंसे तुम्हें भी उचित भाग देगा और राजर्षिपनेके तपसे परिपूर्ण हुए तुमको तपसे भर देगा॥१८॥ हे नरेन्द्र ! इस लोकमें घोड़े के शरीरमें जितने रोम होते हैं उतने ही लोक घोड़ेकी दान देनेवाले मनुष्यको मिलते हैं॥१९॥यह ब्राह्मण दान लेनेका पात्र है और तुम दान देनेके पात्र हो, स्वयं शंख हो और तिस पर भी वह दूधसे भरा हो, ऐसा ही यह काम भी होगा॥२०॥एकसौ चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥११४॥

नारदजी कहते हैं, कि-इस प्रकार गरुड़जीने उत्तम और हितकी बात कही,तब हजारों यज्ञ करने वाला, दाता, दाताओंका स्वामी तथा काशीप्रान्तका स्वामी राजा ययाति सावधान होकर उनके कहने पर बार २ विचार करने लगा और कुछ निश्चय करके-यह मेरा प्यारा मित्र गरुड़ है, गालव श्रेष्ठ ब्राह्मण है, इसने बड़ा भारी तप किया है,

प्रियसखं तार्क्ष्यं गालवञ्च द्विजर्षभम्। निदर्शनञ्च तपसो भिक्षां श्लाघ्याञ्च कीर्तिताम् ॥ ३ ॥ अतीत्य च नृपानन्यानादित्यकुलसम्भवान्। मत्सकाशमनुप्राप्तावेतौ बुद्धिमवेक्ष्य च ॥४॥ अद्य मे सफलं जन्म तारितञ्चाद्य मे कुलम्। अद्यायं तारितो देशो मम तार्क्ष्य त्वयानघ ॥ ५ ॥ वक्तुमिच्छामि तु सखे यथा जानासि मां पुरा। न तथा वित्तवानस्मि क्षीणं वित्तञ्च मे सखे ॥ ६ ॥ न च शक्तोऽस्मि ते कर्तुं मोघमागमनं खग। न चाशामस्य विप्रर्षेर्वितथीकर्तुमुत्सहे ॥ ७ ॥ तत्तु दास्यामि यत् कार्य्यमिदं सम्पादयिष्यति। अभिगम्य हताशो हि निवृत्तो दहते कुलम् ॥ ८ ॥ नातः परं वैनतेय किञ्चित् पापिष्ठमुच्यते। यथाशानाशनं लोके देहि नास्तीति वा वचः॥९॥ हताशो ह्यकृतार्थः सन् हतः सम्भावितो नरः। हिनस्ति तस्य पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुर्वतो हितम्॥१०॥ तस्माच्चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुता मम। इयं सुरसुतप्रख्या सर्व-

---

इसने सराहने योग्य उत्तम भिक्षा मांगी है तथा ये दोनों और सब सूर्य-वंशी राजाओंको छोड़ कर मेरे पास आये हैं इत्यादि बहुतसी बातोंको अपने मनमें सोच कर उन अतिथियोंकी ओरको देखता हुआ वह राजा ययाति कहने लगा, कि—॥ १—४ ॥ हे पापरहित गरुड़ ! आज मेरा जन्म सफल है, आज तुमने मेरे कुलको तार दिया तथा आज तुमने मेरे देशको भी तार दिया है ॥ ५ ॥ परन्तु हे सखे ! मैं तुमसे इतना कहना चाहता हूँ, कि—तुम मुझे जैसा धनवान् पहिले जानते थे, तैसा धनवान् मैं इस समय नहीं हूँ, हे मित्र ! अब मेरा धन नष्ट होगया है ॥६॥ परन्तु हे गरुड़ ! मैं तुम्हारे आगमनको निष्फल नहीं कर सकता तथा इन विप्रर्षिकी आशाको भी निष्फल करनेको मेरा चित्त नहीं चाहता ॥७॥ तुम्हारा जो काम होगा उसको मैं पूरा करूँगा और तुम्हें धन भी दूँगा,क्योंकि-धनकी आशासे आयाहुआ अतिथि यदि निराश होकर लौट जाता है तो वह कुलको जला कर भस्म कर डालता है ॥ ८ ॥ हे गरुड़ ! इस संसारमें कोई 'दीजिये' ऐसा कहकर याचना करे उससे 'नहीं है' ऐसा वचन कहना तथा उसकी आशाको भङ्ग करना, इससे बढ़कर दूसरा और कोई पाप नहीं है ॥ ९ ॥ कोई प्रतिष्ठित पुरुष हो और उसकी आशाको भङ्ग कर दिया जाय तथा वह अपने विचारे हुए काममें निष्फल होजाय तो वह उसका हित न करके मनुष्योंके पुत्र पौत्रोंका नाश कर देता है ॥ १० ॥ मेरे यह पुत्री है और यह भविष्यमें चार वंशोंको स्थिर रख सकेगी, यह देवकन्या

धर्मोपचायिनी ॥११॥ सदा देवमनुष्याणामसुराणां च गालव। कांक्षिता रूपतो बाला सुता मे प्रतिगृह्यताम् ॥ १२ ॥ अस्याः शुल्कं प्रदास्यन्ति नृपा राज्यमपि ध्रुवम्। किं पुनः श्यामकर्णानां हयानां द्वे चतुःशते १३ स भवान् प्रतिगृह्णातु ममेतां माधवीं सुताम्। अहं दौहित्रवान् स्यां वै वर एष मम प्रभो ॥१४॥ प्रतिगृह्य च तां कन्यां गालवः सह पक्षिणा पुनर्द्रक्ष्याव इत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १५ ॥ उपलब्धमिदं द्वारमश्वानामिति चाण्डजः। उक्त्वा गालवमापृच्छ्य जगाम भवनं स्वकम्१६ गते पतगराजे तु गालवः सह कन्यया। चिन्तयानः क्षमं दाने राज्ञां वै शुल्कतोऽगमत् ॥ १७ ॥ सोऽगच्छन्मनसेक्ष्वाकुं हर्यश्वं राजसत्तमम्। अयोध्यायां महावीर्यं चतुरङ्गबलान्वितम् ॥१८॥ कोशधान्यबलोपेतं प्रियपौरं द्विजप्रियम्। प्रजाभिकामं शाम्यन्तं कुर्वाणं तप उत्तमम् १९ तमुपागम्य विप्रः स हर्य्यश्वं गालवोऽब्रवीत्। कन्येयं मम राजेन्द्र

की समान और सकल धर्मोकी वृद्धि करने वाली है हे गालव ! देवता, असुर और मनुष्य उसके रूपके कारण उसको चाहते हैं, मेरी इस पुत्रीको तुम ग्रहण करो ॥ ११ ॥ १२ ॥ राजे इस कन्याके साथ विवाह करनेके लिये निःसन्देह अपना राज्य तक देनेको तयार होजायँगे, फिर श्यामकर्ण आठ सौ घोड़ोंकी तो बात ही क्या है ? ॥१३॥ सो तुम मेरी इस माधवी नामकी कन्याको ले जाओ, और हे प्रभो ! मुझे यह वर दो कि-मैं इस कन्यासे धेवतेवाला होजाऊँ ॥ १४ ॥ तदनन्तर गालव मुनि गरुड़के साथ उस कन्याको लेकर और अब हम आपसे फिर मिलेंगे, यह बात राजा ययातिसे कह कर तहाँसे चले गए ॥१५॥ आगे चल कर गरुड़ने गालवसे कहा, कि—अब तुमने घोड़े पानेका यह कन्यारूपी द्वार पा लिया, इस लिये अब मैं जाता हूँ, ऐसा गालवसे पूछ कर गरुड़जी अपने भवनको चले गए ॥ १६ ॥ गरुड़के चले जाने पर गालव उस कन्याको साथमें लिये हुए विचार करने लगे, कि—राजाओंमें कौनसा राजा इस कन्याका इतना मूल्य देसकेगा ॥ १७ ॥ विचार करते २ ध्यानमें आया, कि-इक्ष्वाकुवंशी अयोध्याका महाराज हर्यश्व ऐसा है, वह बड़ा पराक्रमी है, उसके पास चतुरंगिनी सेना है ॥१८॥ खजाना, अन्नभण्डार और सेनासे युक्त, नगरनिवासियोंसे प्यार करने वाले, ब्राह्मणोंके प्रेमी, शान्तिधारी, उत्तम तप करने वाले और सन्तानके अभिलाषी उस राजा हर्यश्वके पास जाकर ब्राह्मण गालवने कहा, कि-हे राजेन्द्र ! यह मेरी कन्या सन्तानोंके द्वारा कुल

प्रसवैः कुलवर्धिनी ॥ २० ॥ इयं शुल्केन भार्यार्थे हर्यश्व प्रतिगृह्यताम् । शुल्कं ते कीर्तयिष्यामि तच्छ्रुत्वा सम्प्रधार्यताम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

नारद उवाच । हर्य्यश्वस्त्वब्रवीद्राजा विचिन्त्य बहुधा ततः । दीर्घमुष्णञ्च निःश्वस्य प्रजाहेतोर्नृपोत्तमः ॥१॥ उन्नतेषून्नता षट्सु सूक्ष्मा सूक्ष्मेषु सप्तसु । गम्भीरा त्रिषु गम्भीरेष्वियं रक्ता च पञ्चसु ॥२॥ बहुदेवासुरालोका बहुगन्धर्वदर्शना । बहुलक्षणसंपन्ना बहुप्रसवधारिणी ३ समर्थेयं जनयितुं चक्रवर्तिनमात्मजम् । ब्रूहि शुल्कं द्विजश्रेष्ठ समीक्ष्य विभवं मम ॥ ४ ॥ गालव उवाच । एकतः श्यामकर्णानां शतान्यष्टौ प्रयच्छ मे । हयानां चन्द्रशुभ्राणां देशजानां वपुष्मताम् । ५ । ततस्तव भवित्रीयं पुत्राणां जननी शुभा । अरणीव हुताशानां योनिरायतलोचना॥६॥ नारद उवाच । एतच्छ्रुत्वा वचो राजा हर्यश्वः काममोहितः ।

को बढ़ाने वाली है ॥ १९ ॥ २० ॥ हे हर्यश्व ! इसको तुम स्त्री बनानेके लिये मूल्य देकर लेलो, मैं मूल्य तुम्हें बताता हूँ, उसको सुन कर विचार कर लो ॥ २१ ॥ एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११५ ॥

नारदजी कहते हैं; कि-महाराज हर्यश्व बहुत कुछ विचार करने के अनन्तर गहरा श्वास लेकर सन्तान उत्पन्न करनेके लिये कहने लगा, कि- ॥ १ ॥ इस कन्याका वक्षःस्थल, पेट, केश, कंधे, हाथ और पैर यह स्थान ऊँचे और देखने योग्य हैं, शरीरका चर्म, केश, दाँत, हाथोंकी अंगुलियें, पैरोंकी अंगुलियें और इनके पर्व ये सात स्थान अतिसूक्ष्म हैं, स्वर, सत्त्व (आत्मबल) और नाभि यह तीन स्थान गम्भीर हैं तथा हाथोंकी हथेलियें, नेत्रोंके कोये, तालुआ, जीभ और होठ यह पाँच स्थान लाल हैं ॥ २ ॥ यह कन्या अनेकों देवता और असुरोंकी दृष्टि पड़ने योग्य, बहुतसे गंधर्वोंके दर्शन करने योग्य, अनेकों शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा संतानोंको उत्पन्न करने वाली है ३ यह चक्रवर्त्ती पुत्रको भी उत्पन्न करसकती है, हे उत्तम ब्राह्मण ! मेरे ऐश्वर्यको देख कर तू इस कन्याका मूल्य मुझसे कथन कर, ॥ ४ ॥ गालवने कहा, कि-हे महाराज ! तुम इस कन्याके मूल्यरूपसे मुझे एक ओर काले कानों वाले चन्द्रमाकी समान श्वेत वर्णके, देशमें उत्पन्न हुए और पुष्ट शरीरके आठसौ घोड़े दीजिये ॥ ५ ॥ तब जैसे अरणी अग्नियोंको उत्पन्न करती है तैसे ही विशालनयनी शुभ कन्या भी

उवाच गालवं दीनो राजर्षिर्द्विजसत्तमम्॥ ७ ॥ द्वे मे शते सन्निहिते हयानां यद्विधास्तव । एतद्विधाः शतशस्त्वन्ये चरन्ति मम वाजिनः ८ सोऽहमेकमपत्यं वै जनयिष्यामि गालव । अस्यामेतं भवान् कामं सम्पादयतु मे वरम्॥ ९ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु सा कन्या गालवं वाक्यमब्रवीत् । मम दत्तो वरः कश्चित् केनचिद्ब्रह्मवादिना ॥ १० ॥ प्रसूत्यन्ते प्रसूत्यन्ते कन्यैव त्वं भविष्यसि । स त्वं ददस्व मां राज्ञे प्रतिगृह्य हयोत्तमान् ॥ ११ ॥ नृपेभ्यो हि चतुर्भ्यस्ते पूर्णान्यष्टौ शतानि मे । भविष्यन्ति तथा पुत्रा मम चत्वार एव च ॥ १२ ॥ क्रियतामुपसंहारो गुर्वर्थो द्विजसत्तम । एषा तावन्मम प्रज्ञा यथा यथा वा मन्यसे द्विज॥१३॥एवमुक्तस्तु स मुनिः कन्यया गालवस्तदा । हर्यश्वं पृथिवीपालमिदं वचनमब्रवीत्॥ १४ ॥ इयं कन्या नरश्रेष्ठ हर्यश्व प्रतिगृह्यताम् । चतुर्भागेन शुल्कस्य जनयस्वैकमात्मजम् ॥ १५ ॥ प्रतिगृह्य स तां कन्यां गालवं प्रतिनन्द्य च । समये देशकाले च लब्धवान्सुतमीप्सितम् ॥ १६॥ ततो

तुम्हारे यहाँ पुत्रोंको उत्पन्न करेगी ॥ ६ ॥ नारदजी कहते हैं, कि–यह सुन कर कामसे मोहित हुआ राजर्षि राजा हर्यश्व श्रेष्ठ ऋषि गालवसे दीनताके साथ कहने लगा, कि–॥ ७ ॥ मेरे पास जैसे तुमने कहे तैसे तो दोसौ ही घोड़े हैं, इनके सिवाय और सैंकड़ों घोड़े मेरे यहाँ बँधे हुए खाते हैं, उनमेंसे तुम देख लो ॥ ८ ॥ हे गालव ! मैं इस कन्यामें एक ही पुत्रको उत्पन्न करूँगा, तुम मेरी इस उत्तम कामनाको पूरी करो ॥९॥ यह सुन कर उस कन्याने गालव ऋषिसे कहा, कि-किन्ही एक ब्रह्मज्ञानी महात्माने मुझे एक वरदान दिया था, कि—॥ १० ॥ तू सन्तानको उत्पन्न कर करके फिर कन्या होजाया करेगी, इस लिये तुम इन दोसौ घोड़ोंको लेकर मुझे राजाके हाथमें सौंप दो ॥११॥ इस प्रकार तुम्हें चार राजाओंसे आठ सौ घोड़े मिल जायँगे और मेरे चार पुत्र होजायँगे, तुम मुझे अलग २ चार राजाओंके साथ विवाह देना१२ हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! तुम गुरुके लिये घोड़े ग्रहण करो,मेरी समझमें तो ऐसा ही आता है, आगे आपकी जैसी इच्छा है तैसा करो॥१३॥उस कन्याने गालव मुनिसे इस प्रकार कहा, तब गालवने राजा हर्यश्वसे यह बात कही, कि–॥ १४ ॥ हे राजन् ! हर्यश्व ! तुम इस कन्याको ग्रहण करो और इसके मूल्यका चौथा भाग देकर इसमें एक पुत्रको उत्पन्न करलो ॥ १५ ॥ राजाने उस कन्याको लेकर और गालवके विचारकी सराहना करके, समय आनेपर योग्य काल और योग्य स्थानमें अपना

वसुमना नाम वसुभ्यो वसुमत्तरः।वसुप्रख्यो नरपतिः स बभूव वसुप्रदः ॥ १७ ॥ अथ काले पुनर्धीमान् गालवः प्रत्युपस्थितः। उपसङ्गम्य चोवाच हर्य्यश्वं प्रीतमानसम्।१८।जातो नृप सुतस्तेऽयं बालो भास्करसन्निभः। कालो गन्तुं नरश्रेष्ठ भिक्षार्थमपरं नृपम् ॥ १९ ॥ हर्य्यश्वः सत्यवचने स्थितः स्थित्वा च पौरुषे। दुर्लभत्वाद्धयानाञ्च प्रददौ माधवीं पुनः ।२०। माधवी च पुनर्दीप्तां परित्यज्य नृपश्रियम्। कुमारी कामतो भूत्वा गालवं पृष्ठतोऽन्वगात् ॥२१॥ त्वय्येव तावत्तिष्ठन्तु हया इत्युक्तवान् द्विजः। प्रययौ कन्यया सार्द्धं दिवोदासं प्रजेश्वरम्। २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

गालव उवाच। महावीर्य्यो महीपालः काशीनामीश्वरः प्रभुः। दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिर्नराधिपः ॥ १ ॥ तत्र गच्छावहे भद्रे शनैरागच्छ मा शुचः। धार्मिकः संयमे युक्तः सत्ये चैव जनेश्वरः ।२।

इच्छाके अनुसार पुत्र पाया ॥ १६ ॥ उस पुत्रका नाम वसुमना रक्खा गया, वह धनमें आठ वसुओंसे भी बढ़ा हुआ था, वह वसुओंकी समान और दूसरोंको धन देनेवाला था ॥ १७ ॥ इस प्रकार हर्यश्वके पुत्र होजाने पर बुद्धिमान् गालव ऋषि तहाँ आपहुँचा और उसने प्रसन्नचित्त राजा हर्यश्वसे मिलकर कहा, कि-॥१८॥ हे महाराज! तुम्हारे यहाँ सूर्यकी समान तेजस्वी बालक उत्पन्न होगया और मेरा अब भिक्षा माँगनेके लिये दूसरे राजाके पास जानेका समय आगया, अतः यह कन्या मुझे लौटा दीजिये ॥ १९ ॥ राजा हर्यश्व सत्यवादी था, उसने बहुत पुरुषार्थ किया परन्तु गालवके कहनेके अनुसार और घोड़े मिलना कठिन थे,इसकारण उसने माधवी कन्या गालवको लौटादी।२० माधवी भी राजाकी दमकती हुई राजलक्ष्मीका त्याग कर योगबलसे फिर कुमारी होगई और गालवके पीछे २ चलदी ॥ २१ ॥ तब गालवने राजा हर्यश्वसे कहा, कि-इन घोड़ोंको अभी आप अपने पास रखिये तथा उस कन्याको साथ लिये हुए राजा दिवोदासके पास गया ॥२२॥ एकसौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११६ ॥

गालवने कहा, कि-हे कल्याणी कन्या! भीमसेनका पुत्र काशीका राजा दिवोदास बड़ा पराक्रमी और बड़ाभारी राजा है उसके यहाँ चलते हैं, तू धीरे२ चली आ, चिन्ता न कर, वह राजा धर्मात्मा, संयमी और सत्यवादी है ॥ १-२ ॥ नारदजी कहते हैं, कि--वह गालव मुनि उस

नुप्राते वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ निर्यातयतु मे कन्यां भवांस्तिष्ठन्तु वाजिनः । यावदन्यत्र गच्छामि शुल्कार्थं पृथिवीपते ॥ २० ॥ दिवोदासोऽथ धर्मात्मा समये गालवस्य ताम् । कन्यां निर्यातयामास स्थितः सत्ये महीपतिः ॥ २१ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

नारद उवाच । तथैव तां श्रियं त्यक्त्वा कन्या भूत्वा यशस्विनी । माधवी गालवं विप्रमभ्ययात्सत्यसङ्गरा ॥१॥ गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यगतमानसः । जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनरं नृपम् ॥ २ ॥ तमुवाचाथ गत्वाऽस नृपतिं सत्यविक्रमम् । इयं कन्या सुतौ द्वौ ते जनयिष्यति पार्थिवौ ॥ ३ ॥ अस्यां भवानवाप्तार्थो भविता प्रेत्य चेह च सोमार्कप्रतिसङ्काशौ जनयित्वा सुतौ नृप ४ शुल्कन्तु सर्वधर्मज्ञ हयानामिन्दुवर्चसाम् । एकतः श्यामकर्णानां देयं मह्यं चतुःशतम् ॥५॥ गुर्वर्थोऽयं समारम्भो न हयैः कृत्यमस्ति मे । यदि शक्यं महाराज

पास गये और उससे यह बात बोले, कि—॥ १९ ॥ हे राजन् ! तुम मुझे कन्या लौटा दो, और मैं इस कन्याके मूल्यके लिये दूसरी जगह जा लौट कर आऊँ तब तक इन घोड़ोंको अपने पास ही रहने दो२० सत्यवादी और धर्मात्मा राजा दिवोदासने ठहरावके अनुसार वह कन्या फिर गालवको सौंप दी।२१॥ एकसौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त

नारद कहते हैं, कि–हे कुरुवंशी राजन् ! सत्यप्रतिज्ञा वाली और यशस्विनी माधवी, दिवोदासकी भी राजलक्ष्मीको त्याग कर फिर जैसीकी तैसी कन्या होगयी और गालव मुनिके साथ चलदी ॥ १ ॥ जिनका मन अपने काममें ही लगरहा था ऐसे गालव मुनि फिर उशीनर राजासे मिलनेके लिये भोज नामक नगरमें गये ॥ २ ॥ सत्यपराक्रमी भोज राजाके पास जाकर उन्होंने कहा, कि—यह राजकन्या तुम्हारे लिये दो पुत्र उत्पन्न करेगी३हे राजन् ! तुम इस कन्यासे चन्द्रमा और सूर्यकी समान दो पुत्रोंको उत्पन्न करके इस लोकमें और परलोकमें सब कामनाओंको पाओगे४हे सकल धर्मोंको जानने वाले ! जिनके कान एक ओरसे कालेहों और जिनके शरीर चन्द्रमाकी समान उज्वल हों ऐसे चारसौ घोड़े इस कन्याके मूल्यरूपसे आपको मुझे अवश्य देने पड़ेंगे ॥ ५ ॥ मेरा यह उद्योग गुरुदक्षिणा देनेके लिये है, मुझे घोड़ोंकी और कुछ आवश्यकता नहीं है, हे राजन् ! यदि तुमसे बन

क्रियतामविचारितम् ॥ ६ ॥ अनपत्योऽसि राजर्षे पुत्रौ जनय पार्थिव । पितॄन् पुत्रप्लवेन त्वमात्मानं चैव तारय ॥ ७ ॥ न पुत्रफलभोक्ता हि राजर्षे पात्यते दिवः । न याति नरकं घोरं यथा गच्छन्त्यनात्मजाः ८ एतच्चान्यच्च विविधं श्रुत्वा गालवभाषितम् । उशीनरः प्रतिवचो ददौ तस्य नराधिपः ॥ ९ ॥ श्रुतवानस्मि ते वाक्यं यथा वदसि गालव । विधिस्तु बलवान्ब्रह्मन् प्रवणं हि मनो मम ॥१०॥ शते द्वे तु ममाश्वानामीदृशानां द्विजोत्तम । इतरेषां सहस्राणि सुबहूनि चरन्ति मे ॥ ११ ॥ अहमप्येकमेवास्यां जनयिष्यामि गालव । पुत्रं द्विज गतं मार्गं गमिष्यामि परैरहम् ॥ १२ ॥ मूल्येनापि समं कुर्यां तवाहं द्विजसत्तम । पौरजानपदार्थं तु ममार्थो नात्मभोगतः ॥ १३ ॥ कामतो हि धनं राजा पारक्यं यः प्रयच्छति । न स धर्मेण धर्मात्मन् युज्यते यशसा न च १४ सोऽहं प्रतिगृहीष्यामि ददात्वेतां भवान्मम । कुमारीं देवगर्भाभामेकपुत्रभवाय मे ॥ १५ ॥ तथा तु बहुधा कन्यामुक्तवन्तं नराधिपम् । उशी-

सके तो तुम इस कामको विना विचारे कर डालो ॥ ६ ॥ हे राजन्! तुम्हारे पुत्र नहीं है, इस कारण इस कन्यासे दो पुत्र उत्पन्न करो और पुत्ररूपी नौकासे पितरोंका तथा अपना उद्धार करो ॥७॥ हे राजर्षि! पुत्रका फल भोगनेवाला स्वर्गसे नहीं गिराया जाता है, पुत्रहीन जैसे नरकमें पड़ते हैं तैसे पुत्रवाला नहीं पड़ता है ॥ ८ ॥ यह तथा और भी बहुत प्रकारकी गालवकी बातोंको सुनकर राजा उशीनरने गालवको उत्तर दिया कि—॥ ९ ॥ हे गालव! मैंने तुम्हारी बातको ठीक २ सुनलिया, हे ब्रह्मन्! यद्यपि प्रारब्ध बलवान् है परन्तु मेरा मन तो ऐसा करनेको चाहता है ॥ १० ॥ हे द्विजवर! ऐसे घोड़े तो मेरे पास दो सौ ही हैं, हां और प्रकारके घोड़े मेरे यहां लाखों बँधे हुए चरते हैं ॥ ११ ॥ हे गालव! मैं भी इसमें एक ही पुत्र उत्पन्न करलूंगा, हे ब्रह्मन्! जिस मार्गसे दूसरोंने काम लिया है उसी प्रकारसे मैं भी चलूँगा ॥१२॥ हे उत्तम ब्राह्मण! मैं जितना इस कन्यासे काम लूंगा उतना ही मूल्य तुमको दूंगा, क्योंकि मेरा धनभण्डार, मेरे नगर और देशको सुख प्राप्त होनेके लिये है, अपने सुखके लिये नहीं है १३ जो राजा अपनी इच्छाके अनुसार पराया (प्रजाके सुखका साधन) धन दूसरोंको देदेता है उसको धर्म या यश नहीं मिलता है ॥१४॥ मैं तुमसे कन्याको लेना चाहता हूं, तुम मुझे पुत्र उत्पन्न करनेके लिये देवाङ्गनाकी समान यह कन्या दो ॥ १५ ॥ इस प्रकार कन्याके लिये

नरं द्विजश्रेष्ठो गालवः प्रत्यपूजयत् ॥ १६ ॥ उशीनरं प्रतिग्राह्य गालवः प्रययौ वनम् । रेमे स तां समासाद्य कृतपुण्य इव श्रियम् ॥१७॥ कन्दरेषु च शैलानां नदीनां निर्झरेषु च । उद्यानेषु विचित्रेषु वनेषूपवनेषु च ॥१८ हर्म्येषु रमणीयेषु प्रासादशिखरेषु च । वातायनविमानेषु तथा गर्भगृहेषु च ॥१९॥ ततोऽस्य समये जज्ञे पुत्रो बालरविप्रभः । शिबिर्नाम्नाभिविख्यातो यः स पार्थिवसत्तम ॥ २० ॥ उपस्थाय स तं विप्रो गालवः प्रतिगृह्य च । कन्यां प्रयातस्तां राजन् दृष्टवान् विनतात्मजम् २१

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरितेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

नारद उवाच । गालवं वैनतेयोऽथ प्रहसन्निदमब्रवीत् । दिष्ट्या कृतार्थं पश्यामि भवन्तमिह वै द्विज ॥ १ ॥ गालवस्तु वचः श्रुत्वा वैनतेयेन भाषितम् । चतुर्भागावशिष्टन्तदाचख्यौ कार्यमस्य हि ॥ २ ॥ सुपर्णस्त्वब्रवीदेनं गालवं वदतां वरः । प्रयत्नस्ते न कर्तव्यो नैष सम्पत्स्यते तव ॥ ३ ॥ पुरा हि कान्यकुब्जे वै गाधेः सत्यवतीं सुताम् ।

राजा उशीनरने गालव मुनिसे बहुत २ कहा, तब द्विजवर गालवने उशीनरको कन्या देकर उसका गौरव रक्खा ॥ १६ ॥ गालव उशीनरको कन्या देकर वनको चलागया, जैसे पुण्यवान् लक्ष्मीको भोगता है तैसे उशीनरने उस कन्याके साथ पर्वतोंकी गुफाओंमें, नदियोंके प्रवाहोंमें, विचित्र पुष्पवाटिका वन और बगीचोंमें, रमणीय महलोंमें, राजभवनोंकी अटारियोंमें, झरोखोंमें, विमानोंमें और घरके भीतरी कमरोंमें अनेकों प्रकारका विलास किया ॥ १७—१९ ॥ तदनन्तर अवसर आने पर इस राजाके प्रातःकालके सूर्यकी समान कान्तिवाला पुत्र उत्पन्न हुआ, जो शिबि नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ महाराज हुआ ॥२०॥ हे राजन्! नियत किये हुए समय पर गालव मुनि भी उस राजाके पास आये और उस कन्याको लेकर गरुडजीके यहाँ चले गये ॥ २१ ॥ एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११८ ॥ छ छ

नारदजी कहते हैं, कि—हे कुरुराज! गरुडजी गालवको देख कर हँसने २ कहनेलगे, कि—हे द्विज! तुम्हें सिद्धकाम देखकर मैं प्रसन्न हूँ, बहुत अच्छा हुआ ॥ १ ॥ गरुडकी बातको सुनकर गालव ने कहा, कि—इस काममें अभी तो चौथाई शेष है ॥ २ ॥ बोलने वालोंमें श्रेष्ठ गरुडने गालवसे कहा, कि-अब तुम और उद्योग न करना, तुम्हारा काम इससे अधिक नहीं बनेगा ॥ ३ ॥ पहिले

भार्यार्थेऽवरयत् कन्यामृचीकस्तेन भाषितः॥४॥एकतः श्यामकर्णानां हयानाञ्चन्द्रवर्चसाम् । भगवन्दीयतां मह्यं सहस्रमिति गालव ॥ ५ ॥ ऋचीकस्तु तथेत्युक्त्वा वरुणस्यालयं गतः । अश्वतीर्थे हयाँल्लब्ध्वा दत्तवान्पार्थिवाय वै ॥ ६ ॥ इष्ट्वा ते पुण्डरीकेण दत्ता राज्ञा द्विजातिषु । तेभ्यो द्वे द्वे शते क्रीत्वा प्राप्ते तैः पार्थिवैः सदा ॥ ७ ॥ अपराण्यपि चत्वारि शतानि द्विजसत्तम । नीयमानानि सन्तारे हृतान्यासन्वितस्तया ॥८॥ एवं न शक्यमप्राप्यं प्राप्तुं गालव कर्हिचित् । इमामश्वशताभ्यां वै द्वाभ्यां तस्मै निवेदय ॥९॥ विश्वामित्राय धर्मात्मन् षड्भिरश्वशतैः सह । ततोऽसि गतसम्मोहः कृतकृत्यो द्विजोत्तम ॥१०॥ गालवस्तं तथेत्युक्त्वा सुपर्णसहितस्ततः । आदायाश्वांश्च कन्याञ्च विश्वामित्रमुपागमत् ॥११॥ अश्वानां काङ्क्षितार्थानां षडिमानि शतानि वै । शतद्वयेन कन्येयं भवता प्रतिगृह्यताम् ॥ १२ ॥ अस्यां राजर्षिभिः पुत्रा जाता वै धार्मिकास्त्रयः । चतुर्थं जनयत्वेकं भवानपि नरोत्तमम् १३

कान्यकुब्ज नगरमें ऋचीकने स्त्रीके लिये गाधि राजाके पास आकर कहा था, कि—तुम अपनी सत्यवती नामकी पुत्री मुझे विवाह दो ४ हे गालव ! राजाने उत्तर दिया, कि—हे भगवन् ! एक ओर काले कानवाले चन्द्रमाकी समान श्वेत वर्णके एकहजार घोड़े मुझे दो ।५। ऋचीक राजासे 'बहुत अच्छा' कहकर, वरुणके स्थान पर पहुँचे और वहाँ घोड़ोंकी खानमेंसे श्यामकर्ण घोड़े लेलिये और वह लाकर राजा गाधिको देदिये ॥ ६ ॥ गाधि राजाने पुण्डरीक नामका यज्ञ करके वह घोड़े ब्राह्मणोंको देदिये, उन ब्राह्मणोंसे हर्यश्व, दिवोदास और राजा उशीनरने दो दो सौ घोड़े खरीद लिये थे ॥ ७ ॥और शेष रहे चार सौ घोड़ोंको वह बेचनेके लिये लेजारहे थे सो मार्गमें वितस्ता नदीने वह घोड़े बहा लिये ॥ ८ ॥ जो वस्तु दुर्लभ होती है वह कभी मिल ही नहीं सकती इस लिये हे धर्मात्मन् ! तुम दो सौ घोड़ोंके बदलेमें यह कन्या और छः सौ घोड़े मुनि विश्वामित्रको दे आओ, हे द्विजवर ! ऐसा करनेसे तुम्हारी घबड़ाहट दूर होगी और तुम सिद्धकाम होजाओगे ॥ ९॥१० ॥ तब गालव ।बहुत अच्छा कह कर गरुड़के साथ ही उस कन्याको और घोड़ोंको लेकर तहाँसे विश्वामित्रके पास गये ११और बोले कि हे मुने ! आप जैसे चाहते थे तैसे यह छः सौ घोड़े लीजिये और दो सौ घोड़ोंके बदलेमें आप इस कन्याको लेलीजिये ॥ १२ ॥ राजर्षियोंने इस कन्यासेही तीन धर्मात्मा

पूर्णान्येवं शतान्यष्टौ तुरगाणां भवन्तु वै । भवतो ह्यनृणो भूत्वा तपः कुर्यां यथासुखम् ॥ १४ ॥ विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा गालवं सह पक्षिणा। कन्यां च तां वरारोहामिदमित्यब्रवीद्वचः ॥ १५ ॥ किमियं पूर्वमेवेह न दत्ता मम गालव । पुत्रा ममैव चत्वारो भवेयुः कुलभावनाः ॥ १६ ॥ प्रतिगृह्णामि ते कन्यामेकपुत्रफलाय वै । अश्वाश्चाश्रममासाद्य चरन्तु मम सर्वशः ॥ १७ ॥ स तया रममाणोऽथ विश्वामित्रो महाद्युतिः । आत्मजं जनयामास माधवीपुत्रमष्टकम् ॥ १८ ॥ जातमात्रं सुतं तञ्च विश्वामित्रो महामुनिः।संयोज्यार्थैस्तथा धर्मैरश्वैस्तैः समयोजयत्१९ अथाष्टकः पुरं प्रायात् तदा सोमपुरप्रभम् । निर्यात्य कन्यां शिष्याय कौशिकोऽपि वनं ययौ ॥ २० ॥ गालवोऽपि सुपर्णेन सह निर्यात्य दक्षिणाम् । मनसातिप्रतीतेन कन्यामिदमुवाच ह ॥२१॥ जातो दानपतिः पुत्रस्त्वया शूरस्तथापरः। सत्यधर्मरतश्चान्यो यज्वा चापि तथापरः ॥ २२ ॥ तदागच्छ वरारोहे तारितस्ते पिता सुतैः । चत्वारश्चैव

पुत्र उत्पन्न किये हैं अब आप भी एक चौथा श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न कर लीजिये ॥१३॥ ऐसा करनेसे आपके आठसौ घोड़े पूरे होजायँगे और मैं आपके ऋणसे मुक्त होकर सुखसे तपस्या करूँगा ॥ १४ ॥ विश्वामित्र पक्षी गरुड़के साथ गालवको और उस सुन्दर अङ्गों वाली कन्या को देख कर यह बात बोले, कि-॥१५॥हे गालव ! यदि ऐसा था तो पहिले ही यह कन्या तूने मुझे क्यों नहीं देदी ? मेरे ही वंशको बढ़ाने वाले चार पुत्र होजाते ॥ १६ ॥ अच्छा एक पुत्ररूप फलके लिये मैं तेरी कन्याको ग्रहण करता हूँ और घोड़े मेरे आश्रममें रह कर चाहे तहाँ चुगते फिरा करें ॥ १७ ॥ वह परमतेजस्वी विश्वामित्रजी उस माधवीके साथ रमण करने लगे और उसमें अष्टक नामका पुत्र उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ महामुनि विश्वामित्रने उस पुत्रको उत्पन्न होते ही धर्मात्मा बनाया और उसको बहुत सा धन तथा घोड़े देदिये ॥१९॥ उसके अनन्तर अष्टक चन्द्रमाके नगरकीसी कांति वाले एक नगरमें चला गया और विश्वामित्र भी वह कन्या अपने शिष्य गालवको लौटा कर वनको चले गये ॥ २० ॥ और गालव भी गरुड़के साथ गुरुको गुरुदक्षिणा देकर मनमें बड़े प्रसन्न हुए तथा उस कन्यासे कहा, कि-॥२१॥ तेरे चार पुत्र हुए हैं उनमें एक दानी है, दूसरा शूर है, तीसरा सत्य और धर्मका प्रेमी है तथा चौथा यज्ञ करने वाला है ॥ २२ ॥ इस लिये हे सुन्दराङ्गी ! हे सुन्दर कमर वाली ! इन तेरे

राजानस्तथा चाहं सुमध्यमे ॥ २३ ॥ गालवस्त्वथ तमनुज्ञाप्य सुपर्णं पन्नगाशनम् । पितुर्निर्यात्य तां कन्यां प्रययौ वनमेव ह ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

नारद उवाच। स तु राजा पुनस्तस्याः कर्तुकामः स्वयंवरम् । उपगम्याश्रमपदं गङ्गायमुनसंगमे ॥१॥ गृहीतमाल्यदामान्तां रथमारोप्य माधवीम् । पूरुर्यदुश्च भगिनीमाश्रमे पर्यधावताम् ॥ २ ॥ नागयक्षमनुष्याणां गन्धर्वमृगपक्षिणाम् । शैलद्रुमवनौकानामासीत्तत्र समागमः ॥ ३ ॥ नानापुरुषदेशानामीश्वरैश्च समाकुलम् । ऋषिभिर्ब्रह्मकल्पैश्च समन्तादावृतं वनम् ॥ ४ ॥ निर्दिश्यमानेषु तु सा वरेषु वरवर्णिनी । वरानुत्क्रम्य सर्वांस्तान् वरं वृतवती वनम् ॥ ५ ॥ अवतीर्य रथात्कन्या नमस्कृत्य च बन्धुषु । उपगम्य वनं पुण्यं तपस्तेपे ययातिजा ।६। उपवासैश्च विविधैर्दीक्षाभिर्नियमैस्तथा । आत्मनो लघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ॥ ७ ॥ वैदूर्याङ्कुरकल्पानि मृदूनि हरितानि

पुत्रोंने तेरे पिताको, चार राजाओंको और मुझे भी तार दिया है ॥ २३ तदनन्तर गालव सांपोंको खाने वाले गरुड़से आज्ञा लेकर और उस कन्याको उसके पिताके पास पहुंचा कर वनको चला गया ॥ २४ ॥ एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११९ ॥

नारदजी कहते हैं, कि—तदनन्तर राजा ययाति उस कन्याका स्वयंवर करनेकी इच्छासे गंगा यमुनाके संगम पर एक आश्रममें गया ॥ १ ॥ पीछेसे पुरु और यदु भी जिसने स्वयंवरके लिये पुष्प माला हाथमें ली ऐसी अपनी बहनको रथमें बैठाल कर आश्रममें आ पहुँचे ॥ २ ॥ उस आश्रममें नाग, यक्ष, मनुष्य, गंधर्व, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष तथा वनवासी पुरुषोंका बड़ा समूह इकट्ठा हुआ था ॥३॥ यह वन अनेकों देशोंके राजाओंसे भर गया था और ब्रह्माकी समान ऋषियोंसे छागया था ॥ ४ ॥ स्वयंवरका समय होने पर कन्याको वह सब आये हुए राजे बताये गये, परंतु उस सुंदरांगी कन्याने उन सब वरोंको त्याग कर वनको वरा अर्थात् वनवास स्वीकार किया। राजा ययातिकी कन्या रथमेंसे उतर पड़ी और सब संबंधियोंको प्रणाम कर वनमें जाकर तपस्या करने लगी ॥ ६ ॥ यह नानाप्रकारके उपवास और व्रतोंकी दीक्षा ले नियमोंका पालती हुई अपने मनको राग द्वेषसे रहित करके पशुओंके साथ विचरने लगी ॥ ७ ॥ वनमें

च । चरन्ती श्लक्ष्णशष्पाणि तिक्तानि मधुराणि च ॥८॥ स्रवन्तीनां च पुण्यानां सुरसानि शुचीनि च। पिबन्ती वारिमुख्यानि शीतानि विमलानि च ॥ ९ ॥ वनेषु मृगराजेषु व्याघ्रविप्रोषितेषु च । दावाग्निविप्रमुक्तेषु शून्येषु गहनेषु च ॥१०॥ चरन्ती हरिणैः सार्द्धं मृगीव वनचारिणी । चचार विपुलं धर्मं ब्रह्मचर्य्येण संवृतम् ॥ ११ ॥ ययातिरपि पूर्वेषां राज्ञां वृत्तमनुष्ठितः । बहुवर्षसहस्रायुर्युयुजे कालधर्मणा ॥१२॥ पूरुर्यदुश्च द्वौ वंशे वर्द्धमानौ नरोत्तमौ । ताभ्यां प्रतिष्ठितो लोके परलोके च नाहुषः ॥ १३ ॥ महीपते नरपतिर्ययातिः स्वर्गमास्थितः । महर्षिकल्पो नृपतिः स्वर्गाग्र्यफलभुग्विभुः ॥ १४ ॥ बहुवर्षसहस्राख्ये काले बहुगुणे गते । राजर्षिषु निषण्णेषु महीपः सुमहर्षिषु ॥ १५ ॥ अवमेने नरान् सर्वान् देवानृषिगणांस्तथा । ययातिर्मूढविज्ञानो विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १६ ॥ ततस्तं बुबुधे देवः शक्रो बलनिषूदनः । ते च राजर्षयः सर्वे धिग्धिगित्येवमब्रुवन् ॥ १७ ॥ विचारश्च समुत्पन्नो

वैदूर्यमणिकी किरणोंकी समान हरी कोमल चिकनी चरपरी और मीठी घासोंको खाकर रहती थी ॥ ८ ॥ पवित्र नदियोंके सुन्दर रस वाले पवित्र शीतल और निर्मलजलोंको पीती थी ॥९॥ व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक प्राणियोंसे रहित, दावानलशून्य और मृगोंकी टोलियों से भरे हुए गहन वनोंमें मृगीकी समान हिरनोंके साथ फिरती थी और ब्रह्मचर्य व्रतसे रक्षा पाये हुए महान् धर्मकाआचरण करती थी ॥ १० ॥ ११ ॥ राजा ययातिने भी पहिले राजाओंके आचरणके अनुसार वर्त्ताव करके लाखों वर्षकी आयुको भोगा और अन्तमें मरण को प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ उसके वंशमें पुरु और यदु नामके दो श्रेष्ठ पुरुष हुए, उन्होंने इस लोकमें ययातिकी प्रतिष्ठा बढ़ाई और परलोक में भी उसको सुखसे भेजा॥१३॥ हे राजन् ! राजा ययाति एक महर्षि की समान,स्वर्गके सब सुखोंको भोगने वाला और सर्वत्र प्रसिद्ध था, वह राजा ययाति जब स्वर्गमें गया तो तहाँ उसने लाखों वर्ष तक स्वर्गके उत्तम सुख भोगे थे एक समय महाऐश्वर्य वाले बड़े २ राजर्षि स्वर्गमें आसनों पर बैठे थे, राजा ययाति तहाँ आकर बड़े अचरजमें पड़ गया अपने गर्व भरे मनसे सब मनुष्योंका, देवताओंका और ऋषिमण्डलीका अपमान किया ॥ १४-१६ ॥ बल दैत्यका नाश करने वाला इंद्र राजा ययातिके मनके खोटे अभिप्रायको जान गया और देवसभामें बैठे हुए सब राजर्षि 'इस राजाको धिक्कार है, धिक्कार

निरीक्ष्य नहुषात्मजम्। को न्वयं कस्य वा राज्ञः कथं वा स्वर्गमागतः ॥ १८ ॥ कर्मणा केन सिद्धोऽयं क्व वानेन तपश्चितम्। कथं वा ज्ञायते स्वर्गे केन वा ज्ञायतेऽप्युत ॥ १९ ॥ एवं विचारयन्तस्ते राजानं स्वर्गवासिनः। दृष्ट्वा पप्रच्छुरन्योऽन्यं ययातिं नृपतिं प्रति ॥ २० ॥ विमानपाला शतशः स्वर्गद्वाराभिरक्षिणः। पृष्टा आसनपालाश्च न जानीमेत्यथाब्रुवन् ॥ २१ ॥ सर्वे ते ह्यावृतज्ञाना नाभ्यजानंत तं नृपम्। स मुहूर्त्तादथ नृपो हतौजाअभवत्तदा ॥२२॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते ययातिमोहे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

नारद उवाच। अथ प्रचलितः स्थानादासनाच्च परिच्युतः। कम्पितेनैव मनसा धर्षितः शोकवह्निना ॥ १ ॥ म्लानस्रग्भ्रष्टविज्ञानः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः। विघूर्णन् स्रस्तसर्वांगः प्रभ्रष्टाभरणाम्बरः २ अदृश्यमानस्तान्पश्यन्नपश्यंश्च पुनः पुनः। शून्यः शून्येन मनसा प्रपति-

हैं' ऐसा कहने लगे ॥१७॥ तब स्वर्गवासी राजा नहुषके पुत्र ययाति को देख कर कहने लगे, कि-यह कौन है ? किस राजाका पुत्र है और यहाँ स्वर्गमें कैसे आगया ? ॥ १८ ॥ यह किस कर्मसे सिद्ध होगया, इसने कहाँ तप किया है, यह स्वर्गमें कैसे पहिचाना गया और इसको किसने पहिचाना है ? ॥ १९ ॥ वह स्वर्गवासी राजा ययातिको देख कर आपसमें इस प्रकार विचार करते हुए पूछने लगे ।२०। फिर उन स्वर्गवासियोंने सैंकड़ों विमानरक्षकोंसे सैंकड़ों स्वर्गके द्वारपालोंसे और सैंकड़ों इंद्रासनके रक्षकोंसे इस राजाके विषयमें पूछा, तब उन्होंने उत्तर दिया, कि-हम इसको नहीं पहिचानते ॥ २१ ॥ इस प्रकार उन सबों का ज्ञान ढकगया था इस कारण वह उस राजाको पहिचान भी नहीं सके, दो घड़ीके बाद राजा ययाति भी निस्तेज होगया ॥२२॥ एकसौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२० ॥ छ छ छ

नारदजी कहते हैं, कि--इसके अनंतर राजा ययाति अपने स्थान से चलायमान होकर आसन परसे नीचे गिर पड़ा और काँपते हुए मनसे तथा शोकाग्निसे अपमानित होगया ॥ १ ॥ कण्ठमें पहिनी हुई उसकी फूलोंकी माला कुम्हलागयी, ज्ञान नष्ट होगया, माथे परका मुकुट और बाजूबंद ढीले पड़ गये, वह चक्कर खाने लगा, उसके सब अङ्ग ढीले पड़ गये, गहने और वस्त्र शरीर परसे खसकने लगे ॥ २ ॥ वह बारबार देवताओंको देखने लगा तो भी वह उसको न दीखे

स्यन्महीतलम् ॥ ३॥ किं मया मनसा ध्यातमशुभं धर्मदूषणम् । येनाहं चलितः स्थानादिति राजा व्यचिन्तयत ॥ ४ ॥ ते तु तत्रैव राजानः सिद्धाश्चाप्सरसस्तथा । अपश्यन्त निरालम्बं तं ययातिं परिच्युतम् ५ अथैत्य पुरुषः कश्चित् क्षीणपुण्यनिपातकः । ययातिमब्रवीद्राजन् देवराजस्य शासनात् ॥६ अतीवमदमत्तस्त्वं न कंचिन्नावमन्यसे । मानेन भ्रष्टः स्वर्गस्ते नार्हस्त्वं पार्थिवात्मज ७ न च प्रज्ञायसे गच्छ पतस्वेति तमब्रवीत् । पतेयं सत्स्विति वचस्त्रिरुक्त्वा नहुषात्मजः ॥ ८ ॥ पतिष्यंश्चिन्तयामास गतिं गतिमतां वरः । एतस्मिन्नेव काले तु नैमिषे पार्थिवर्षभान् ॥९ ॥ चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपात ह । प्रतर्दनो वसुमनाः शिविरौशीनरोऽष्टकः ॥ १० ॥ वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयन्ति सुरेश्वरम् । तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ११ ॥ ययातिरुप-

तथा दूसरे भी उसको नहीं दीखते थे,वह पृथ्वी पर गिरनेवाला था, इस लिये अचेत होगया उसकी आकृति भी खिन्न होगयी थी ३ उस समय राजा अपने मनमें विचार करने लगा कि-मैंने अपने मनमें धर्म को दूषण लगाने वाली कौनसी अशुभ बातोंका विचार किया था ? कि-जिसके कारणसे मैं इस स्वर्गरूप स्थानमेंसे गिरनेके लिये डगमगा रहा हूँ४कुछ देरमें जो राजे तहाँ थे उन्होंने, सिद्धोंने और अप्सराओं ने निराधार राजा ययातिको नीचे गिरते हुए देखा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जिस समय राजा ययातिके स्वर्गमेंसे नीचे गिरनेकी तयारी हुई उस समय एक देवदूत, कि—जो पुण्यक्षीण जीवको स्वर्गमेंसे निकाल देनेका काम किया करता था, उसने इन्द्रकी आज्ञासे आकर राजा ययातिसे कहा, कि-तू बड़ा मदमत्त होगया है, तू किसीका अपमान न करता हो ऐसा नहीं है, किन्तु सबका अपमान किया करता है, इस लिये हे राजपुत्र ! तू अभिमानके कारण स्वर्गमेंसे भ्रष्ट हुआ है तथा तू स्वर्गमें रहनेके योग्य नहीं है ॥ ६ ॥ ७ ॥ तू निस्तेज होगया है, इस कारण तुझे यहाँका कोई नहीं पहचानता है, जा यहाँसे पृथ्वी पर गिरजा, इस प्रकार कहते ही 'मैं सत्पुरुषोंमें गिरूँ' ऐसे तीन वार कह कर, स्वर्गगति पाने वालोंमें श्रेष्ठ राजा ययाति, पृथ्वी पर कहाँ पड़ूँ, ऐसा विचार करने लगा, इतनेमें ही उसने नैमिषारण्यमें चार राजर्षियोंको बैठे हुए देखा, यह राजे प्रतर्दन, वसुमना, उशीनर का पुत्र शिवि और अष्टक थे उन राजाओंके बीचमें राजा ययातिने गिरनेका विचार किया; वह राजे वाजपेय यज्ञसे देवताओंके स्वामी

शिखन वै निपपात महीं प्रति । भूमौ स्वर्गे च सम्बद्धां नदीं धूममयीमिव । गङ्गां गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य जगतीपतिः ॥ १२ ॥ श्रीमत्स्ववभृताग्र्येषु चतुर्षु प्रतिबंधुषु । मध्ये निपतितो राजा लोकपालोपमेषु सः १३ चतुर्षु हुतकल्पेषु राजसिंहमहाग्निषु । पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्यसंक्षये ॥ १४ ॥ तमाहुः पार्थिवाः सर्वे दीप्यमानमिव श्रिया को भवान् कस्य वा बन्धुर्देशस्य नगरस्य वा ॥ १५ ॥ यक्षो वाप्यथवा देवो गंधर्वो राक्षसोऽपि वा । न हि मानुषरूपोऽसि को वार्थः कांक्ष्यते त्वया ॥ १६ ॥ ययातिरुवाच । ययातिरस्मि राजर्षिः क्षीणपुण्यश्च्युतो दिवः । पतेयं सत्स्विति ध्यायन् भवत्सु पतितस्ततः ॥ १७ ॥ राजान ऊचुः। सत्यमेतद्भवतु ते कांक्षितं पुरुषर्षभाः सर्वेषां नः क्रतुफलं धर्मश्च प्रतिगृह्यताम् ॥१८॥ ययातिरुवाच । नाहं प्रतिग्रहधनो ब्राह्मणः क्षत्रियो

इन्द्रको तृप्त कररहे थे और उनके यज्ञका धुआं स्वर्गके द्वार तक आपहुँचा था ॥ ८—११ ॥ स्वर्गमेंसे पृथिवी पर उतरती हुई गङ्गा की समान और पृथ्वी तथा स्वर्गके साथ अच्छे प्रकार सम्बन्ध रखने वाली, धुएँकी नदीको समान दीखती हुई उस यज्ञके धुएंकी शिखा को उसने नासिकाके द्वारा पहिचान लिया और उस धुएँकी नदीका सहारा लेकर राजा ययाति पृथ्वी पर उतर आया ॥ १२ ॥ पुण्यका क्षय होनेके कारण राजा ययाति इस प्रकार उज्वल कांति वाले अग्नि की समान शोभायमान तथा लोकपालोंके तुल्य और बड़े भारी अग्निपुञ्ज सरीखे तथा यज्ञके अन्तका अवभृथ स्नान करनेसे श्रेष्ठ प्रतीत होने वाले अपने दौहित्र (धेवते) चार राजसिंहों के मध्यमें आपड़ा ॥ १३-१४ ॥ उस समय चारों राजे, राजलक्ष्मीसे तेजस्वी प्रतीत होते हुए ययातिको देख कर पूछने लगे, कि-तुम कौन हो ? किसके संबंधी हो, किस देश वा किस नगरके राजा हो ? ॥ १५ ॥ यक्ष हो ? या देवता हो ? गंधर्व हो अथवा राक्षस हो ? तुम्हारा रूप मनुष्योंकासा तो प्रतीत नहीं होता, तुम क्या वस्तु चाहते हो ? ॥ १६ ॥ ययाति बोला, कि—मैं ययाति नामका राजर्षि हूँ और मेरे पुण्य क्षीण होगये इस लिये स्वर्गमेंसे नीचे गिर पड़ा हूँ गिरते समय मैंने विचार किया कि-मैं सत्पुरुषोंके बीचमें गिरूँ तो अच्छा हो, इस कारण मैं तुम्हारे बीचमें गिरा हूँ ॥ १७ ॥ राजा बोले, कि-हे महापुरुष ! तुम्हारा कहना ठीक है और तुम्हारी इच्छा पूरी हो, तुम हम सबोंके यज्ञके फलको तथा धर्मको ग्रहण करो ॥१८॥ ययातिने कहा, कि-मैं प्रतिग्रह करके

ऽहम् । न च मे प्रवणा बुद्धिः परपुण्यविनाशने ॥ १९ ॥ नारद उवाच एतस्मिन्नेव काले तु मृगचर्य्याक्रमागताम् । माधवीं प्रेक्ष्य राजानस्तेऽभिवाद्येदमब्रुवन् ॥ २० ॥ किमागमनकृत्यं ते किं कुर्मः शासनं तव । आज्ञाप्या हि वयं सर्वे तव पुत्रास्तपोधने ॥२१॥ तेषां तद्भाषितं श्रुत्वा माधवी परया मुदा । पितरं समुपागच्छद्ययातिं सा ववन्द च ॥२२॥ स्पृष्ट्वा मूर्द्धनि तान् पुत्रांस्तापसी वाक्यमब्रवीत् । दौहित्रास्तव राजेन्द्र मम पुत्रा न ते पराः ॥ २३ ॥ इमे त्वां तारयिष्यन्ति दृष्टमेतत् पुरातने । अहं ते दुहिता राजन् माधवी मृगचारिणी ॥ २४ ॥ मयाप्युपचितो धर्मस्ततोऽर्द्धं प्रतिगृह्यताम् । यस्माद्राजन् नराः सर्वे अपत्यफलभागिनः ॥ २५ ॥ तस्मादिच्छंति दौहित्रान् यथा त्वं वसुधाधिप । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥२६॥ अभिवाद्य नमस्कृत्य

धन लेने वाला ब्राह्मण नहीं हूँ किन्तु क्षत्रिय हूँ तथा मेरी बुद्धि दूसरों के पुण्यका नाश करनेमें लगने वाली नहीं है ॥ १९ ॥ नारदजी कहते हैं, कि-ययाति और वह चारों राजे इस प्रकार बातें कर रहे थे, इतने में ही माधवी मृगीकी समान विचरती २ तहाँ आपहुँची, वह राजे उसको देखते ही प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे, कि-॥२०॥ तुम यहाँ किस कामके लिये आई हो ? हम तुम्हारी किस आज्ञा पालन करें ? हे तपोधने ! हम सब तुम्हारे पुत्र हैं, इस लिये हम आज्ञा पाने के योग्य हैं ॥ २१ ॥ उनकी इस बातको सुन कर माधवीने बड़े हर्षके साथ अपने पिता ययातिके पास जा उनको प्रणाम किया ॥ २२ ॥ और वह तापसी उन राजाओंके शिरपर हाथ फेरकर ययातिसे कहने लगी; कि-हे राजेंद्र ! ये तुम्हारे धेवते तथा मेरे पुत्र हैं और कोई नहीं हैं ॥ २३ ॥ वह पुत्र तुम्हें तारदेंगे यह बात मैंने प्राचीन कालसे चले आते हुए वेदशास्त्रोंसे जानी है, हे राजन् ! मैं तुम्हारी माधवी नाम की पुत्री हूँ और वनमें मृगीकी समान विचरा करती हूँ ॥ २४ ॥ मैंने भी धर्मका संग्रह किया है, उसमेंसे तुम आधा लेलो, क्यों कि—हे राजन् ! सब मनुष्य अपनी संतानोंके पुण्यफलके भागी माने जाते हैं ॥ २५ ॥ और इस ही कारणसे 'हमारे धेवते हों' ऐसा चाहते हैं, हे राजन् ! इस ही लिये तुमने भी धेवतोंकी इच्छा की थी, तदनन्तर उन सब राजाओंने उस समय अपनी माता माधवीको शिरसे प्रणाम करके अपने नानाको प्रणाम किया और स्वर्गमेंसे गिरे हुए नानाको तारने वाले उन चारों राजाओंने पहले जो बात कही थी वही बात

मातामह्यामुपवन् । उच्चैरनुपमैः स्निग्धैः स्वरैरापूर्य मेदिनीम् ॥२७॥ मातामहं नृपतयस्तारयन्तो दिवश्च्युतम् । अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् । तपसो मेऽष्टभागेन स्वर्गमारोहतां भवान् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि ययाति-स्वर्गभ्रंशे एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

नारद उवाच । प्रत्यभिज्ञातमात्रोऽथ सद्भिस्तैर्नरपुङ्गवः । समारुरोह नृपतिरस्पृशन् वसुधातलम् । ययातिर्दिव्यसंस्थानो बभूव विगतज्वरः ॥ १ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः । दिव्यगन्धगुणोपेतो न पृथ्वीमस्पृशत् पदा ॥२॥ ततो वसुमनाः पूर्वमुच्चैरुच्चारयन् वचः । ख्यातो दानपतिर्लोके व्याजहार नृपं तदा ३ प्राप्तवानस्मि यल्लोके सर्ववर्णेष्वगर्हणा । तदप्यथ च दास्यामि तेन संयुज्यतां भवान् ॥४॥ यत् फलं दानशीलस्य क्षमाशीलस्य यत् फलम् यच्च मे फलमाधाने तेन संयुज्यतां भवान् ॥ ५ ॥ ततः प्रतर्दनोऽप्याह वाक्यं क्षत्रियपुङ्गवः । यथाधर्मरतिर्नित्यं नित्यं युद्धपरायणः ६ प्राप्तवा-

---

फिर स्नेह भरी उत्तम और ऊँचे स्वरोंसे पृथिवीको गुंजारते हुए अपने नानाको सुनायी, इतनेमें गालव मुनि भी तहाँ आपहुँचे, उन्होंने राजा ययातिसे कहा, कि- मैं तुम्हें अपने तपका आठवाँ भाग देता हूँ, उस से तुम स्वर्गमें जाओ ॥ २६-२८ ॥ एकसौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त

नारदजी कहते हैं, कि-उन चार महात्माओंने ज्यों ही मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा ययातिको पहिचाना, उसी समय वह सब पीड़ाओंसे छूट गया, दिव्य फूलोंकी माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषणोंसे उसका शरीर दिप निकला, उसके शरीरमेंसे दिव्य सुगन्ध निकलने लगी, उसके चरण अब तक पृथ्वीसे लगे हुए थे, अब वह ऊपरको उठे और राजा ययाति स्वर्गमेंको चढ़ने लगा ॥ १ ॥ २ ॥ उस समय जगत् में दानपति नामसे प्रसिद्ध हुए राजा वसुमनाने पहिली पहिल पुकार कर उससे कहा, कि-मैंने इस लोकमें सदाचरणसे सब वर्णोंमें जो प्रसिद्धि और पुण्य पाया है उस पुण्यका फल मैं आपको देता हूँ, आप उस पुण्यके भागी हूजिये ॥३॥४॥ दानी स्वभाव वालेको जो फल मिलता है, क्षमाशीलको जो फल मिलता है और अग्निहोत्रके हुते जो फल मिला है वह पुण्यफल आपको मिलजाय ॥ ५ ॥ फिर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ प्रतर्दन भी यह बात बोला, कि-मैं जिस प्रकार धर्म पर प्रेम रखता हूँ और जिस प्रकार सदा युद्धमें परायण रहता हूँ ॥ ६ ॥ तथा जिस

नस्मि यल्लोके क्षत्रवंशोद्भवं यशः । वीरशब्दफलञ्चैव तेन संयुज्यतां भवान् ॥७॥ शिविरौशीनरो धीमानुवाच मधुरां गिरम् । यथा बालेषु नारीषु वैहार्येषु तथैव च ॥ ८ ॥ सङ्गरेषु निपातेषु तथापद्व्यसनेषु च । अनृतं नोक्तपूर्वं मे तेन सत्येन खं व्रज ॥९॥ यथा प्राणांश्च राज्यंच राजन् कामसुखानि च । त्यजेयं न पुनः सत्यं तेन सत्येन खं व्रज १० यथा सत्येन मे धर्मो यथा सत्येन पावकः । प्रीतः शतक्रतुश्चैव तेन सत्येन खं व्रज ॥ ११ ॥ अष्टकस्त्वथ राजर्षिः कौशिको माधवीसुतः । अनेकशतयज्वानं नाहुषं प्राप्य धर्मवित् ॥ १२ ॥ शतशः पुण्डरीका मे गोसवाश्चरिताः प्रभो । क्रतवो वाजपेयाश्च तेषां फलमवाप्नुहि १३ न मे रत्नानि न धनं न तथाऽन्ये परिच्छदाः । क्रतुष्वनुपयुक्तानि तेन सत्येन खं व्रज ॥ १४ ॥ यथा यथा हि जल्पन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् । तथा तथा वसुमतीं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ ॥ १५ ॥ एवं सर्वे समस्तैस्ते राजानः सुकृतैस्तदा । ययातिं स्वर्गतो भ्रष्टं तारयामासु-

---

प्रकार मैंने जगत्में क्षत्रियोंके वंशसे उत्पन्न हुआ यश पाया है और मैंने वीर नामका जो फल पाया है उस पुण्यफलको आप पाइये ॥७॥ फिर उशीनरके पुत्र बुद्धिमान् शिविने मधुर वाणीमें कहा कि—मैंने पहिले बालकोंसे (खेलनेमें) स्त्रियोंसे (रतिक्रीड़ामें), पाठशाला आदिकी हास्यकी वार्तोंमें, युद्धोंमें, मार काटोंमें, आपत्तियोंमें तथा जुए आदिमें कभी भी मिथ्या नहीं बोला है इस सत्यके प्रतापसे आप स्वर्गमें जाइये ॥८॥९॥ और हे राजन्! मैं अपने प्राण,राज्य और कामनाओंके सुखोंको त्याग सकता हूँ,परन्तु सत्यको नहीं त्याग सकता, उस सत्यके प्रभावसे आप स्वर्गमें जाइये ॥ १० ॥ यदि मेरे सत्यसे धर्म प्रसन्न हो, यदि मेरे सत्यसे अग्नि प्रसन्न हो और यदि मेरे सत्य से इन्द्र भी प्रसन्न हो तो उस सत्यसे आप स्वर्गमें जाइये ॥ ११ ॥ फिर कुशिकवंशी, धर्मानुष्ठानमें प्रवीण माधवीका पुत्र राजर्षि अष्टक अनेकों यज्ञ करनेवाले राजा ययातिके पास जाकर कहने लगा, कि१२ हे प्रभो ! मैंने सैंकड़ों पुण्डरीक यज्ञ किये हैं सैंकड़ों गोसव किये हैं तथा वाजपेय यज्ञ भी किये हैं, आप उनके फलको पाकर स्वर्गमें जाइये ॥ १३ ॥ अपने घरमेंके श्रेष्ठ पदार्थ धन तथा और सब सामग्री मैंने यज्ञमें दान करके देदी हैं उस सत्यवादीपनेके प्रभावसे तुम स्वर्ग में जाओ ॥ १४ ॥ धेवते उस राजाको ज्यों २ अपने पुण्य देने लगे त्यों २ वह राजा पृथ्वीको त्याग कर स्वर्गकी ओरको जाने लगा १५

रञ्जसा ॥ १६ ॥ दौहित्राः स्वेन धर्मेण यज्ञदानकृतेन वै । चतुर्षु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्द्धनाः। मातामहं महाप्राज्ञं दिवमारोपयन्त ते॥१७ राजान ऊचुः । राजधर्मगुणोपेताः सर्वधर्मगुणान्विताः । दौहित्रास्ते वयं राजन् दिवमारोह पार्थिव ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि ययातिस्वर्गारोहणे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

नारद उवाच । सद्भिरारोपितः स्वर्गं पार्थिवैर्भूरिदक्षिणैः अभ्यनुज्ञाय दौहित्रान् ययातिर्दिवमास्थितः ॥१॥ अभिवृष्टश्च वर्षेण नानापुष्पसुगन्धिना । परिष्वक्तश्च पुण्येन वायुना पुण्यगंधिना ।२। अचलं स्थानमासाद्य दौहित्रफलनिर्जितम् । कर्मभिः स्वैरुपचितो जज्वाल परया श्रिया ॥ ३ ॥ उपगीतोपनृत्तश्च गंधर्वाप्सरसां गणैः । प्रीत्या प्रतिगृहीतश्च स्वर्गे दुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ४ ॥ अभिष्टुतश्च विविधैर्देवराजर्षिचारणैः । अर्चितश्चोत्तमार्घ्येण दैवतैरभिनन्दितः ॥ ५ ॥ प्राप्तः

इस प्रकार उन सब राजाओंने अपने पुण्योंसे स्वर्गमेंसे गिरेहुए राजा ययातिको बिना परिश्रमके ही तार दिया था ॥ १६ ॥ राजाओंके वंश में उत्पन्न हुए और कुलकी वृद्धि करने वाले उन चार धेवतोंने,यज्ञोंसे और दानोंसे प्राप्त करेहुए अपने श्रेष्ठ धर्मसे महाबुद्धिमान् अपने नाना को स्वर्गमें भेज दिया था ॥१७॥ और उस समय वह राजे इस प्रकार कहने लगे थे, कि--हे राजन् ! हम तुम्हारे धेवते हैं तथा राजाओंके सब धर्म और सकल गुणोंसे युक्त हैं, हे राजन् ! तुम हमारे पुण्यसे स्वर्गमें चढ़ जाओ ॥ १८ ॥ एकसौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त १२२

नारदजी कहते हैं, कि--यज्ञमें बड़ी २ दक्षिणायें देने वाले उन महात्मा राजाओंने राजा ययातिको स्वर्गमें भेज दिया और राजा ययाति भी विदा होकर स्वर्गको चला गया ॥ १ ॥ उस समय उसके ऊपर अनेकों प्रकारके सुगन्धित फूलोंकी वर्षा हुई और सुगन्धित तथा पवित्र पवन उसकी सेवा करने लगे ॥ २ ॥ धेवतोंके पुण्यफल से उसने अचल स्वर्गलोकको जीतकर उसमें निवास किया था और और वहाँ अपने पुण्य कर्मोंसे वह वृद्धिको प्राप्त होकर उत्तम शोभासे दिपने लगा था ॥ ३ ॥ स्वर्गमें गंधर्व और अप्सरा उसके पास आकर गाने नाचने लगे, शंख और दुन्दुभियोंके शब्दोंने उसका प्रेमसे स्वागत किया ॥४॥ अनेकों देवर्षि, राजर्षि और चारणोंने उसकी स्तुति की तथा उत्तम अर्घोंसे उसकी पूजाकी और देवताओंने उसका सत्-

स्वर्गफलं चैव समुवाच पितामहः । निर्वृतं शांतमनसं वचोभिस्तर्पयन्निव ॥ ६ ॥ चतुष्पादस्त्वया धर्मश्चितो लोक्येन कर्मणा । अक्षयस्तव लोकोऽयं कीर्तिश्चैवाक्षया दिवि ७ पुनस्त्वयैव राजर्षे सुकृतेन विघातितम् । आवृतं तमसा चेतः सर्वेषां स्वर्गवासिनाम् ८ येन त्वां नाभिजानंति ततोऽज्ञातोऽसि पातितः । प्रीत्यैव चासि दौहित्रैस्तारितस्त्वमिहागतः ॥९॥ स्थानञ्च प्रतिपन्नोसि कर्मणा स्वेन निर्जितम् अचलं शाश्वतं पुण्यमुत्तमं ध्रुवमव्ययम् ॥१०॥ ययातिरुवाच । भगवन्संशयो मेऽस्ति कश्चित्तं छेत्तुमर्हसि । न ह्यन्यमहमर्हामि प्रष्टुं लोकपितामह ॥११॥ बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्द्धितम् । अनेकक्रतुदानौघैरर्जितं मे महत्फलम् ॥ १२ ॥ कथं तदल्पकालेन क्षीणं येनास्मि

हुता की ॥ ५ ॥ इस प्रकार राजा ययातिने स्वर्गका फल पाया, फिर निवृत्तिके सुखको पाकर जिसका मन शांत होगया था ऐसे उस राजा को स्वर्गमें ब्रह्माजी अपने वचनोंसे तृप्त करते हुए कहने लगे, कि-६ तूने लौकिक कर्मसे तप, यज्ञ, ज्ञान और दान तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) तथा अनृणोपता (किसीका ऋण न रखना) इस चार प्रकारके धर्मका संग्रह किया था और अक्षय स्वर्गलोकको भी पालिया था तथा स्वर्गमें कीर्त्तिको भी अक्षय कर लिया था ७ परन्तु हे राजर्षि! मेरी समान धर्माचरण करने वाला दूसरा कोई है ही नहीं ऐसे अभिमानसे तूने अपने आप ही उस उत्तम कर्मोंसे प्राप्त करे हुए स्वर्गका नाश कर लिया था, उस तेरे अभिमानको देख कर सब स्वर्गवासियोंका मन क्रोधसे छागया था ॥ ८ ॥ और वह तुझे पहचान नहीं सके थे तथा इसकारण ही उन्होंने तेरा अपमान करके तुझे स्वर्गमेंसे गिरा दिया था, परन्तु तेरे धेवतोंने प्रसन्नताके साथ तुझे फिर तार दिया है और तू यहाँ आगया ॥ ९ ॥ तू अपने पुण्य कर्मसे इस अविनाशी, सनातन, अटल और अक्षय पवित्र स्थानको जीत कर यहाँ आया है ॥१०॥ राजा ययातिने कहा, कि-हे भगवन्! ब्रह्माजी! मुझे एक सन्देह है, हे सकल लोकके पितामह! यह सन्देह मुझे दूसरेसे पूछना, उचित नहीं मालूम होता इस लिये आप उसको दूर कर दीजिये ॥ ११ ॥ मैंने लाखों वर्ष तक प्रजाका पालन करके और अनेकों यज्ञ तथा दान करके पुण्यका बड़ा भारी फल पाया था ॥ १२ ॥ वह पुण्यका फल थोड़े ही समयमें कैसे क्षीण होगया? कि-जिससे मुझे स्वर्गमें से नीचे गिराया गया, हे महाराज! मैंने

पातितः । भगवन्वेत्थ लोकांश्च शाश्वतान् मम निर्मितान् । कथं नु मम तत्सर्वं विप्रणष्टं महाद्युते । पितामह उवाच । चतुर्वर्षसहस्रान्तं प्रजापालनवर्द्धितम् । अनेकक्रतुदानौघैर्यत्त्वयोपार्जितं फलम् ॥ १४ ॥ तदनेनैव दोषेण क्षीणं येनासि पातितः । अभिमानेन राजेन्द्र धिक्कृतः स्वर्गवासिभिः ।१५। नायं मानेन राजर्षे न बलेन न हिंसया । न शाठ्येन न मायाभिर्लोको भवति शाश्वतः ॥१६॥ नावमान्यास्त्वया राजन्नधमोत्कृष्टमध्यमाः । न हि मानप्रदग्धानां कश्चिदस्ति समः क्वचित् १७ पतनारोहणमिदं कथयिष्यन्ति ये नराः । विषमाण्यपि ते प्राप्तास्तरिष्यन्ति न संशयः ॥१८॥ नारद उवाच । एष दोषोऽभिमानेन पुरा प्राप्तो ययातिना । निर्बन्धादतिमात्रञ्च गालवेन महीपते ॥१९॥ श्रोतव्यं हितकामानां सुहृदां हितमिच्छता । न कर्त्तव्यो हि निर्बन्धो निर्बन्धो हि क्षयोदयः२० तस्मात्त्वमपि गान्धारे मानं क्रोधञ्च वर्जय । सन्धत्स्व पाण्डवै-

---

पुण्यसे सदा रहने वाले पवित्र लोकोंको पाया था इस बातको आप जानते हैं हे महाकान्तिवान् ब्रह्माजी ! मेरे वह सब लोक किस कारणसे नष्ट होगए ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले, कि—तूने लाखों वर्षोंतक प्रजाका पालन करके तथा अनेकों यज्ञ और दान करके जो पुण्यका फल पाया था १४ वह सब तेरे अपने अभिमानसे ही नष्ट होगया था और इसीसे तुझे स्वर्गमेंसे नीचे गिरा दिया गया था और हे राजेन्द्र! स्वर्गवासियोंने तेरे अभिमानसे तुझे धिक्कार दिया था ॥ १५ ॥ हे राजर्षे ! यह अविनाशी स्वर्गलोक न अभिमानसे मिलता है, न बलसे मिलता है, न हिंसासे मिलता है, न शठतासे मिलता है और कपटसे भी नहीं मिलता ॥ १६ ॥ हे राजन ! तुझे अधम, मध्यम और उत्तम किसीका अपमान नहीं करना चाहिये, अभिमानसे जलनेवालों को कभी भी किसी प्रकारकी शान्ति नहीं मिलती ॥ १७ ॥ जो मनुष्य स्वर्गमेंसे गिरनेके और फिर स्वर्गमें जानेके इस इतिहासको गावेंगे वह संकटोंमें पड़कर भी निःसन्देह उनसे पार होजायँगे ॥ १८ ॥ नारदजी कहते हैं, कि—हे राजन् ! पहिले राजा ययातिको अभिमानसे यह दोष लगा था तथा गालवको भी अतिहठ करनेके कारण ऐसा कष्ट उठाना पड़ा था ॥१९॥ इस लिये अपने हितैषी और हित करना चाहनेवाले संबन्धियोंकी बात तुझे सुननी चाहिये, आग्रह नहीं करना चाहिये, आग्रहका परिणाम नाश होता है ॥ २० ॥ हे वीर राजा दुर्योधन ! तू भी अभिमान और क्रोधको त्यागकर पाण्डवोंके साथ सन्धि

धीर संरम्भं त्यज पार्थिव॥२१॥ददाति यत्पार्थिव यत् करोति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति। न तस्य नाशोऽस्ति न चापकर्षो नान्यस्तदश्नाति स एव कर्ता ॥ २२ ॥ इदं महाख्यानमनुत्तमं हितं बहुश्रुतानां गतरोषरागिणाम्। समीक्ष्य लोके बहुधा प्रधारितं त्रिवर्गदृष्टिः पृथिवीमुपाश्नुते

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गालवचरिते त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच। भगवन्नेवमेवैतद्यथा वदसि नारद। इच्छामि चाहमप्येवं न त्वीशो भगवन्नहम्॥१॥ वैशम्पायन उवाच। एवमुक्त्वा ततः कृष्णमभ्यभाषत कौरवः। स्वर्ग्यं लोक्यञ्च मामात्थ धर्म्यं न्याय्यञ्च केशव ॥२॥ न त्वहं स्ववशस्तात क्रियमाणं न ते प्रियम्। अंग दुर्योधनं कृष्ण मन्दं शास्त्रातिगं मम ॥ ३ ॥ अनुनेतुं महाबाहो यतस्व पुरुषोत्तम। न शृणोति महाबाहो वचनं साधु भाषितम् ॥ ४ ॥ गान्धा-

---

कर और हठको छोडदे ॥ २१ ॥ हे राजन्! मनुष्य जो दान देता है, धर्मानुष्ठान करता है, तपस्या करता है तथा होम करता है, उसका नाश नहीं होता और उसमें कमी भी नहीं आती है तथा उसके फल को दूसरा भी नहीं भोगता है, किंतु करनेवाला पुरुष ही भोगता है२२ यह बड़ाभारी आख्यान सब आख्यानोंसे श्रेष्ठ, काम क्रोधसे रहित विद्वानोंका स्वीकार किया हुआ तथा इस जगत्में अनेकों प्रकारके विचार करके शास्त्रोंमेंसे खोजकर निकाला गया है, जो पुरुष इस आख्यानमें कही हुई बातोंको ध्यानमें रखकर धर्म अर्थ और काम इस त्रिवर्गकी ओरको दृष्टि रखता है अर्थात् धर्म अर्थ और कामका अविरुद्ध रीतिसे सेवन करता है वह सब पृथिवीको भोगता है ॥२३॥ एक सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२३ ॥ छ छ

धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे भगवन् नारदजी! आप जैसा कहते हैं, ऐसा ही है और मैं भी ऐसा ही करना चाहता हूँ, परन्तु हे भगवन्! मैं ऐसा करनेको समर्थ नहीं हूँ ॥ १ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! ऐसा कहलेके अनन्तर धृतराष्ट्र श्रीकृष्णजीसे कहने लगे, कि–हे केशव! तुम मुझसे स्वर्ग देनेवाली, लोकोंकी हितकारी, धर्मभरी और न्यायकी बात कहते हो ॥ २ ॥ परन्तु हे तात! मैं अपने वश में नहीं हूँ और यह दुर्योधन मुझे प्रिय लगने वाला काम नहीं करता इसलिये हे कृष्ण! हे महाबाहु पुरुषोत्तम! तुम, शास्त्रका उल्लङ्घन करने वाले मेरे मूढ़ पुत्र दुर्योधनको ही समझानेका उद्योग करो, क्यों कि-

र्याश्च हृषीकेश विदुरस्य च धीमतः अन्येषाञ्चैव सुहृदां भीष्मादीनां हितैषिणाम् ॥५॥ स त्वं पापमतिं क्रूरं पापचित्तमचेतनम् । अनुशाधि दुरात्मानं स्वयं दुर्य्योधनं नृपम् ॥६॥ सुहृत्कार्यन्तु सुमहत्कृतन्ते स्याज्जनार्दन । ततोऽभ्यावृत्य वार्ष्णेयो दुर्य्योधनममर्षणम् ॥ ७ ॥ अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित् । दुर्य्योधन निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम ॥ ८ ॥ धर्मार्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत । महाप्राज्ञकुले जातः साध्वेतत्कर्त्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः सर्वैः समुदितो गुणैः । दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपत्रपाः ॥ १० ॥ त एतदीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे । धर्मार्थयुक्ता लोकेऽस्मिन् प्रवृत्तिर्लक्ष्यते सताम् ॥ ११ ॥ असतां विपरीता तु लक्ष्यते भरतर्षभ । विपरीता त्वियं वृत्तिरसकृल्लक्ष्यते त्वयि ॥ १२ ॥ अधर्मश्चानुबन्धोऽत्र घोरः प्राणहरो महान् । अनिष्टश्चानिमित्तश्च न च शक्यश्च भारत ॥ १३ ॥ तमनर्थं

हे महाबाहो ! यह मेरी हितकारी बातको नहीं सुनता है ॥ ३—४ ॥ हे हृषीकेश ! यह गांधारीकी, बुद्धिमान् विदुरकी और भीष्म आदि दूसरे हितैषी संबन्धियोंकी हितकी बातको भी नहीं सुनता है ॥ ५ ॥ इस पाप बुद्धिवाले, क्रूर, मनमें पाप रखनेवाले दुष्टात्मा और अचेत रहने वाले राजा दुर्योधनको तुम स्वयं ही शिक्षा दो ॥ ६ ॥ हे जनार्दन ! इस कामको करनेसे मानो आप हम संबंधियोंका एक बड़ाभारी काम करदेंगे, यह सुनकर सकल धर्म और व्यवहारके तत्त्वको जानने वाले श्रीकृष्णजी बार बार क्रोधी दुर्योधनसे मधुर वाणीमें कहने लगे, कि- हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! मेरी इस बातको सुन ॥ ७-८ ॥ हे भरतवंशी मेरा कहना तेरे परिवार सहित सबोंका विशेषकर हित करने वाला है, हे महाबुद्धिमान् ! तू उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ है इस लिये तुझे यह उत्तम काम करना चाहिये ॥९॥ तू शास्त्र पढ़ा है सदाचारी है तुझमें सब गुण हैं. जो लोग दुष्टकुलमें जन्मे, दुष्टात्मा, निर्दयी और निर्लज्ज होते हैं ॥ १० ॥ हे तात ! ऐसा काम वह ही करते हैं, जैसा कि-काम तू करना चाहता है, इस जगत्में सत्पुरुषोंकी प्रवृत्तिको तो धर्म वाला वा अर्थवाला देखते हैं । ११ । हे भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन! दुष्टोंका वर्त्ताव इसके विपरीत देखनेमें आता है अरे ! ऐसा विपरीत वर्त्ताव तुझमें क्षण २ में देखनेमें आरहा है ॥१२॥ हे भरतवंशी राजन्! इस विषयमें जो तेरी हठ है वह अधर्मरूप है, बड़ा भयङ्कर है, मौतको बुलानेवाली और अनिष्टरूप है, निष्प्रयोजन है और वह किसी प्रकार

परिहरन्नात्मश्रेयः करिष्यसि भ्रातॄणामथ भृत्यानां मित्राणाञ्च परंतप॥१४ अधर्म्यादयशस्याच्च कर्मणस्त्वं प्रमोक्ष्यसे। प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः ॥१५॥ सन्धत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ। तद्धितञ्च प्रियञ्चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः॥ १६॥ पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः। कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः॥१७॥ अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य सञ्जयस्य विविंशतेः। ज्ञातीनाञ्चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परन्तप॥ १८॥ शमे शर्म भवेत्तात सर्वस्य जगतस्तथा। ह्रीमानसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान्। तिष्ठ तात पितुः शास्त्रे मातुश्च भरतर्षभ॥ १९॥ एतत् श्रेयो हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत। उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम्॥ २०॥ रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह सङ्गमः। सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत्तुभ्यं तात रोचताम् २१ श्रुत्वा यः सुहृदां शास्त्रं मर्त्यो न प्रतिपद्यते। विपाकान्ते दहत्येनं

सफल नहीं होसकती॥ १३॥ इसलिये हे परन्तप! तू ऐसे अनर्थको त्याग देगा तब ही तेरा, तेरे भाइयोंका, पोषण करने योग्य माता पिताका, सेवकोंका और मित्रोंका कल्याण होसकेगा॥ १४॥ तू आप अधर्म तथा अपयश करने वाले कर्मोंसे छूटजायगा, इसलिये हे पुरुषव्याघ्र! हे भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन! तू बुद्धिमान् शूर, बड़े उत्साह वाले, बहुत पढ़े हुए और आत्मज्ञानी पाण्डवोंके साथ सन्धि करले, यह काम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रका, पितामह भीष्मजीका, द्रोणाचार्यका, परमबुद्धिमान् विदुरजीका, कृपाचार्यका, सोमदत्तका, बुद्धिमान् बाल्हीकका अश्वत्थामाका, विकर्णका, सञ्जयका, विविंशतिका तथा संबन्धियों और मित्रोंका हितकारी तथा मनचाहा होगा॥ १५-१८॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन! सन्धि करनेमें सब जगत्का कल्याण होगा, हे तात! तू लज्जाशील, अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ, शास्त्रको जाननेवाला और दयालु है, इसकारण तू माता पिताकी आज्ञामें चल॥ १९॥ हे भरतवंशी! पिता जो शिक्षा देता है, उसको सब लोग कल्याणकारी मानते हैं, संसारमें बड़ी भारी आपत्तिमें पड़ेहुए सब ही पुरुष अपने पिताकी शिक्षाको याद किया करते हैं॥ २०॥ हे कुरुवंशी! तेरे पिताको पाण्डवोंसे सन्धि करलेना अच्छा लगता है तथा उनके मंत्री भी इस बातको ही उत्तम मानते हैं, अतः हे तात! तू भी इसको ही स्वीकार कर॥ २१॥ जो पुरुष संबन्धियोंकी शिक्षाको सुनकर उसको स्वीकार नहीं करता है

किम्पाकमिव भक्षितम् ॥ २२ ॥ यस्तु निःश्रेयसं वाक्यं मोहान्न प्रतिपद्यते । स दीर्घसूत्री हीनार्थः पश्चात्तापेन युज्यते ॥ २३ ॥ यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा प्राक्तदेवाभिपद्यते । आत्मनो मतमुत्सृज्य स लोके सुखमेधते ॥ २४ ॥ योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यं न मृष्यते । शृणोति प्रतिकूलानि द्विषतां वशमेति सः ॥२५॥ सतां नातिक्रमेत यो सतां वर्त्तते मते । शोचन्ते व्यसने तस्य सुहृदो न चिरादिव २६ मुख्यानमात्यानुत्सृज्य यो हि हीनान्निषेवते । स घोरामापदं प्राप्य नोत्तारमधिगच्छति ॥ २७ ॥ योऽसत्सेवी वृथाचारो न श्रोता सुहृदां सताम् । परान् वृणीते स्वान् द्वेष्टि तं गौस्त्यजति भारत ।२८। स त्वं विरुध्य तैर्वीरैरन्येभ्यस्त्राणमिच्छसि । अशिष्टेभ्योऽसमर्थेभ्यो मूढेभ्यो भरतर्षभ ॥ २९ ॥ को हि शक्रसमान् ज्ञातीनतिक्रम्य महारथान् । अन्येभ्यस्त्राणमाशंसेत्त्वदन्यो भुवि मानवः ॥ ३० ॥ जन्मप्रभृति

उसको अपने कर्मका परिपाक होने पर खायेहुए महाकालके फल (विष) की समान वह परिपाक जलाकर भस्म करदेता है ॥ २२ ॥ जो पुरुष मूर्खतासे कल्याण करनेवाली बातको नहीं मानता है वह दीर्घसूत्री पुरुष जब अपने काममें कुछ फल नहीं पाता है अथवा दुःखदायक फल पाता है तब पछताता है ॥ २३ ॥ परन्तु जो मनुष्य हितकी बात सुनकर अपने मतको छोड़ पहिले उसके अनुसार ही वर्त्ताव करता है वह मनुष्य इस लोकमें सुख पाता है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य प्रतिकूल बनकर हितैषीकी बातको नहीं सुनता है, किन्तु उलटी बातोंको ही सुनता है वह वैरियोंके वशमें पड़ जाता है ॥२५॥ जो मनुष्य सत्पुरुषोंकी संमतिको न मानकर खोटे पुरुषोंकी संमतिमें चलता है, उसके कुटुम्बी उसको थोड़े ही समयमें विपत्तिमें पड़ा हुआ देखकर शोक करते हैं ।२६। जो पुरुष मुख्य मंत्रियोंको छोड़कर अधम पुरुषोंके चक्रमें पड़जाता है वह भयानक आपत्तिमें पड़जाता है और फिर उसमेंसे कभी नहीं छूटसकता है ॥ २७ ॥ दुष्टोंके साथ रहनेवाला जो दुराचरणी पुरुष श्रेष्ठ मित्रोंकी बात नहीं सुनता है, दूसरोंसे प्रेम और अपनोंसे द्वेष करता है हे भरतवंशी ! उसको भूमि भी त्याग देती है अर्थात् वह इस लोकसे उठजाता है ॥ २८ ॥ सो हे भरतर्षभ ! तू वीर पाण्डवोंके साथ वैर करके दूसरे नीच, शक्तिहीन और मूढ पुरुषोंसे अपनी रक्षा चाहता है ? ॥ २९ ॥ इन्द्रकी समान बली और महारथी संबन्धियोंको छोड़कर इस भूतल पर तेरे सिवाय

कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया । न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥ ३१ ॥ मिथ्योपचरितास्तात जन्मप्रभृति बान्धवाः । त्वयि सम्यङ्महाबाहो प्रतिपन्ना यशस्विनः ॥ ३२ ॥ त्वयापि प्रतिपत्तव्यं तथैव भरतर्षभ । स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु मा मन्युवशमन्वगाः ३३ त्रिवर्गयुक्तः प्राज्ञानामारम्भो भरतर्षभ । धर्मार्थावनुरुध्यन्ते त्रिवर्गासम्भवे नराः ॥ ३४ ॥ पृथक् च विनिविष्टानां धर्मं धीरोऽनुरुध्यते । मध्यमोऽर्थं कलिं बालः काममेवानुरुध्यते ॥ ३५ ॥ इन्द्रियैः प्राकृतो लोभाद्धर्मं विप्रजहाति यः । कामार्थावनुपायेन लिप्समानो विनश्यति ३६ कामार्थौ लिप्समानस्तु धर्ममेवादितश्चरेत् । न हि धर्मादपैत्यर्थः कामो वापि कदाचन ॥३७॥ उपायं धर्ममेवाहुस्त्रिवर्गस्य विशाम्पते । लिप्समानो हि तेनाशु कक्षेऽग्निरिव वर्द्धते ॥ ३८ ॥ स त्वं तातानुपायेन

और कौन पुरुष दूसरोंसे अपनी रक्षाकी आशा रक्खेगा ॥३०॥ तूने जन्मसे लेकर कुन्तीके पुत्रोंको नित्य दुःख ही दिया है तो भी उन धर्मात्मा पांडवोंने तेरे ऊपर कभी कोप नहीं किया ॥ ३१ ॥ हे तात ! तूने जन्मसे ही भाइयोंको कपट करके धोखा दिया है तो भी हे महाबाहु ! उन कीर्त्तिमान् पाण्डवोंने तेरे साथ अच्छा ही बर्त्ताव किया है ॥ ३२ ॥ हे भरतर्षभ ! तुझे भी उनके साथ तैसा ही सज्जनताका वर्त्ताव करना चाहिये; तुझे अपने साक्षात् चचेरे भाइयोंके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! बुद्धिमान पुरुष ऐसे कामका आरम्भ करते हैं, कि-जिससे धर्म, अर्थ तथा कामकी सिद्धि हो और यदि ये तीन वस्तु सिद्ध न होती हों तो वह धर्म और अर्थ के ही अनुकूल रहते हैं ॥ ३४ ॥ धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग जुदा जुदा है, इनमेंसे धीर पुरुष धर्मके अनुकूल रहते हैं मध्यम पुरुष अर्थ (व्यवहार) के अनुकूल रहते हैं और बालक कलह तथा कामका ही सेवन करते हैं ॥३५॥ परन्तु इन्द्रियोंके वशमें हुआ जो मूढ पुरुष लोभके कारण धर्मको त्यागकर नीच उपायोंसे काम तथा अर्थको सिद्ध करना चाहता है वह मनुष्य नष्ट होजाता है ३६ इसलिये जो पुरुष अर्थ और कामको पाना चाहे उसको आरम्भसे धर्मका ही आचरण करना चाहिये ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! धर्म आदि त्रिवर्गको प्राप्त करानेवाला उपाय एक धर्म ही है ऐसा विद्वान् कहते हैं, जो पुरुष त्रिवर्गको पाना चाहता हो उसको आरम्भसे ही धर्मका आचरण करना चाहिये, जैसे तृणोंके ढेरमें आग एकसाथ बढजाती

लिप्ससे भरतर्षभ । आधिराज्यं महद्दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ ३९ ॥ आत्मानं तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा । यः सम्यग्वर्त्तमानेषु मिथ्या राजन् प्रवर्त्तते । न तस्य हि मतिं छिन्द्यात् यस्य नेच्छेत् पराभवम् ४० अविच्छिन्नमतेरस्य कल्याणे धीयते मतिः । आत्मवान्नावमन्येत त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ४१ ॥ अप्यन्यं प्राकृतं किञ्चित् किमु तान् पाण्डवर्षभान् । अमर्षवशमापन्नो न किञ्चिद् बुध्यते जनः ॥ ४२ ॥ छिद्यते ह्याततं सर्वं प्रमाणं पश्य भारत । श्रेयस्ते दुर्जनात्तात पाण्डवैः सह सङ्गमम् ॥ ४३॥ तैर्हि संप्रीयमाणस्त्वं सर्वान् कामानवाप्स्यसि । पाण्डवैर्निर्जितां भूमिं भुञ्जानो राजसत्तम ॥ ४४ ॥ पांडवान् पृष्ठतः कृत्वा त्राणमाशंससेऽन्यतः। दुःशासने दुर्विषहे कर्णे चापि ससौबले ४५ एते ष्वैश्वर्यमाधाय भूमिमिच्छसि भारत । न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने

है तैसे ही धर्माचरण करनेसे त्रिवर्ग भी शीघ्र ही बढ़जाता है ॥३८॥ परन्तु हे भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! तू भी सब राजाओंमें प्रसिद्धि पायेहुए बड़े प्रकाश वाले कुरुवंशके साम्राज्यको नीच उपायोंसे लेना चाहता है ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जो अपने साथ अच्छा बर्त्ताव करते हों उनके साथ जो पुरुष कपटका बर्त्ताव करता है वह फरसेसे वन को काटनेकी समान आप ही अपना नाश करता है, नीतिमें कहा है, कि-जिसका निरस्कार करना न चाहे उसकी बुद्धिको लोभ आदि से भ्रष्ट कदापि न करे ॥ ४० ॥ जिसकी बुद्धि दूषित नहीं होती है, किन्तु स्थिर होती है उसकी बुद्धि कल्याणकारी कामोंकी ओरको झुकती है और स्थिर बुद्धिवाला ज्ञानी पुरुष, महात्मा पाण्डवोंका तो कहना ही क्या ? त्रिलोकीमें साधारण पुरुषोंका भी अपमान नहीं करता है, परन्तु जो मनुष्य क्रोधके वशमें होजाता है वह हित अहित कुछ जान ही नहीं सकता ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तथा हे भरतवंशी राजन् ! लोक और वेदमें प्रसिद्ध बड़े २ सब प्रमाण भी उसके सामने छिन्नभिन्न होजाते हैं हे तात ! दुर्जनोंकी अपेक्षा पांडवों के साथ मेल करेगा तो तेरा कल्याण होगा ॥ ४३ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! तुम पाण्डवोंके साथ प्रेम करने पर पाण्डवोंकी जीती हुई भूमिको भोगते हुए अपने सफल मनोरथोंको पाजाओगे ॥४४॥ हे भरतवंशी राजन् ! तू पाण्डवोंकी ओरको पीठ करके दूसरोंसे अपनी रक्षाकी आशा करता है ? दुःसह दुःशासन, कर्ण और शकुनि इनको अपना ऐश्वर्य सौंपकर तू अपना कल्याण चाहता है ? ध्यान रख यह तुझे

धर्मार्थयोस्तथा ॥४६॥ विक्रमे चाप्यपर्याप्ताः पाण्डवान् प्रति भारत । न हीमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया ॥ ४७ ॥ क्रुद्धस्य भीमसेनस्य प्रेक्षितुं मुखमाहवे।इदं सन्निहितं तात समग्रं पार्थिवं बलम्॥४८ अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णश्चायं तथा कृपः । भूरिश्रवाः सौमदत्तिरश्वत्थामा जयद्रथः ॥ ४९ ॥ अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनञ्जयम् । अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये सर्वैरपि सुरासुरैः । मानुषैरपि गन्धर्वैर्मा युद्धे चेत आधिथाः ॥५०॥ दृश्यतां वा पुमान् कश्चित् समग्रे पार्थिवे बले । योऽर्जुनं समरे प्राप्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहान् ॥ ५१ ॥ किन्ते जनक्षयेणेह कृतेन भरतर्षभ। यस्मिन् जिते जितं तत्स्यात् पुमानेकः स दृश्यताम् ॥ ५२ ॥ यः सदेवान् सगन्धर्वान् सयक्षासुरपन्नगान् । अजयत् खाण्डवप्रस्थे कस्तं युध्येत मानवः ॥ ५३ ॥ तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम् । एकस्य च बहूनाञ्च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ५४ ॥ युद्धे येन महादेवः साक्षात् सन्तोषितः शिवः । तमजेयमनाधृष्यं विजेतुं

ज्ञान, धर्म और अर्थ नहीं देसकते ॥४५-४६॥ हे भारत ! यह पांडवों के सामने कुछ पराक्रम नहीं कर सकते, तुझे साथमें लेकर ये सब राजे पाण्डवोंकी टक्कर नहीं झेल सकते ॥४७॥ हे तात ! यह जो सब राजाओंकी सेना तेरे पास आकर इकट्ठी हुई है यह तो संग्राममें क्रोध में भरे हुए भीमसेनके मुखकी ओर को आँख उठाकर भी नहीं देख सकेगी ॥ ४८ ॥ यह भीष्म तथा द्रोणाचार्य, यह कर्ण तथा कृपाचार्य, भूरिश्रवा, सोमदत्तका पुत्र, अश्वत्थामा और जयद्रथ ॥ ४९ ॥ ये सब ही अर्जुनके साथ लड़नेमें असमर्थ हैं, संग्राममें अर्जुनको तो सकल सुर, असुर, मनुष्य और गन्धर्व भी मिलकर नहीं जीतसकते, इसलिए तू लड़ाईमें अपने चित्तको न लगा ॥५०॥ इस सब राजाओंकी सेना में कोई ऐसा पुरुष खोजकर दिखा तो सही, जो संग्राममें अर्जुनके सामने पहुँच कर कुशलके साथ अपने घरको लौटकर आसके ॥५१॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! इस हठमें मनुष्योंका नाश करनेसे तुझे क्या मिल जायगा ? इनमेंसे एक पुरुष तो खोजकर ऐसा निकालकि-जो अर्जुन को जीतसके और तेरी विजय होजाय ॥५२॥ जिस अर्जुनने खाण्डवप्रस्थमें देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुर और सर्पोंको हराया था उस अर्जुन के साथ कौनसा मनुष्य लड़ सकता है ॥ ५३ ॥ तथा विराट नगरमें भी जो एक अर्जुनका बहुतसे योधाओंके साथ युद्ध करना रूप बड़े अचरजका चरित्र सुननेमें आता है, वह दृष्टान्त ही बहुत है ॥ ५४ ॥

जिष्णुमच्युतम् । आशंससीह समरे वीरमर्जुनमूर्जितम् ॥ ५५ ॥ मद्-द्वितीयं पुनः पार्थं कः प्रार्थयितुमर्हति। युद्धे प्रतीपमायांतमपि साक्षात् पुरन्दरः ॥ ५६ ॥ बाहुभ्यामुद्धरेद्भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः । पातयेत् त्रिदिवाद्देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ५७ ॥ पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातॄन् ज्ञातीन् सम्बन्धिनस्तथा । त्वत्कृते न विनश्येयुरिमे भरतसत्तमाः ५८ अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम् । कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप ॥५९॥ त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः। महाराज्येऽपि च पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ६० ॥ मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम् । अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ ६१ ॥ पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः । संप्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि ॥ ६२ ॥

जिस अर्जुनने युद्धमें साक्षात् महादेव शंकरको भी प्रसन्न कर लिया था ऐसे अजित किसीसे न दबने वाले, विजयी, दृढ़ प्रतिज्ञावाले वीर और तेजस्वी अर्जुनको तू रणभूमिमें जीतनेकी आशा रखता है क्या ? ॥५५॥ फिर जिसकी सहायता मैं करता हूँ ऐसे रणमें शत्रुरूप से सामने आते हुए अर्जुनसे साक्षात् इन्द्र अथवा दूसरा कौनसा पुरुष लड़नेकी प्रार्थना कर सकता है ॥ ५६ ॥ जो पुरुष रणमें अर्जुन को जीत सकेगा वह दोनों हाथोंसे पृथिवीको उखाड़ सकेगा क्रोधमें भरकर इन प्रजाओंको भस्म कर सकेगा तथा स्वर्गमेंसे देवताओंको भी नीचे गिरा सकेगा ॥५७॥ तू अपने पुत्रोंको, भाइयोंको, जातिवालों को और संबन्धियोंको देख ऐसा कर कि—जिसमें यह भरतवंशमें उत्पन्न हुए उत्तम क्षत्रिय तेरे लिए मारे न जायँ॥५८॥ हे राजन् ! ऐसा कर कि-जिसमें कौरवोंका कुल नष्ट होनेसे बचजाय, यह कुल किसी से तिरस्कार न पावे, तू कुलका नाशक न कहलावे और तेरे यशका नाश न हो ॥५९॥ महारथी पांडव युवराजके पद पर तुझको ही और महाराजके पद पर तेरे पिता राजा धृतराष्ट्रको ही स्थापित करेंगे ६० हे तात ! भले प्रकार उद्यत होकर अपने सामने आती हुई लक्ष्मीका तिरस्कार न कर, किन्तु आधा राज्य पांडवोंको देकर बड़ी भारी राज्यलक्ष्मीको प्राप्त कर ॥ ६१ ॥ तू पांडवोंके साथ सन्धि कर, अपने संबन्धियोंकी बात मानकर और अपने मित्रोंके साथ प्रेमका व्यवहार रखकर चिरकाल तक सुखोंको भोगेगा ॥ ६२ ॥ एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः शान्तनवो भीष्मो दुर्योधनममर्षणम् । केशवस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच भरतर्षभ ॥ १ ॥ कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता । अन्वपद्यस्व तत्तात मा मन्युवशमन्वगाः ॥ २ ॥ अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः । श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि ॥ ३ ॥ धर्म्यमर्थ्यं महाबाहुराह त्वां तात केशवः । तदर्थमभिपद्यस्व मा राजन्नीनशः प्रजाः ॥४॥ ज्वलितां त्वमिमां लक्ष्मीं भारतीं सर्वराजसु । जीवतो धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याद् भ्रंशयिष्यसि ॥५ आत्मानञ्च सहामात्यं सपुत्रभ्रातृबान्धवम् । अहमित्यनया बुद्ध्या जीवितात् भ्रंशयिष्यसि ॥ ६ ॥ अतिक्रामन् केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत् । पितुश्च भरतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः ॥ ७ ॥ मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथङ्गमः । मातरं पितरञ्चैव मा मज्जीः शोकसागरे ॥८॥ अथ द्रोणोऽब्रवीत्तत्र दुर्योधनमिदं वचः। अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ॥९॥ धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः । तथा भीष्मः

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे भरतवंशमें श्रेष्ठ जनमेजय ! इसके अनन्तर शन्तनुके पुत्र भीष्मजीने श्रीकृष्णकी बात सुनकर अधर्मी दुर्योधनसे कहा, कि—॥ १ ॥ हे तात ! श्रीकृष्णने संबन्धियोंमें मेल रहे, इस इच्छासे तुझसे जो बात कही है, तू इस संमतिको मानले और क्रोधके वशमें न हो ॥ २ ॥ हे तात ! तू महात्मा कृष्णका कहना नहीं करेगा तो कभी भी श्रेय, सुख और कल्याण नहीं पासकेगा ३ हे तात ! महाबाहु श्रीकृष्णने तुझसे धर्मकी और नीतिकी बात कही है, हे राजन् ! तू उनकी कही हुई नीति पर चल और इन प्रजाओंका नाश मत करे ॥ ४ ॥ तू राजा धृतराष्ट्रकी जीवितदशामें ही अपनी दुष्टताके कारणसे इस दमदमाती हुई और सब राजाओंमें प्रसिद्ध, भरतवंशी राजाओंकी राज्यलक्ष्मीका नाश ही करेगा॥५॥और मैं ऐसी अभिमानकी बुद्धिसे अपने मन्त्रियोंका, पुत्रोंका, भाइयोंका संबन्धियों का तथा अपने प्राणों तकका नाश करलेगा॥६॥हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! तू श्रीकृष्णकी; अपने पिताकी और बुद्धिमान् विदुरकी सच्ची और नीतिके विषयकी बातका उल्लंघन करके ॥ ७ ॥ कुल-नाशक, खोटा पुरुष, दुष्टबुद्धि और कुमार्गगामी न बन अपने माता पिताको शोकसमुद्रमें न डुबा ॥ ८ ॥ यह सुन कर क्रोधमें भरे हुए और बारम्बार श्वास लेते हुए दुर्योधनसे तहाँ अब द्रोणाचार्य यह बात बोले, कि-॥ ९ ॥ हे तात ! श्रीकृष्णने तथा शान्तनुनन्दन भीष्म

शांतवत्तच्छृणुष्व नराधिप ॥ १० ॥ प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ । आहतुस्त्वां हितं वाक्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ११ ॥ अनुतिष्ठ महाप्राज्ञ कृष्णभीष्मौ यदूचतुः । माधवं बुद्धिमोहेन मावमंस्थाः परन्तप ॥ १२ ॥ ये त्वां प्रोत्साहयन्त्येते नैते कृत्याय कर्हिचित् । वैरं परेषां ग्रीवायां प्रतिमोक्ष्यन्ति संयुगे ॥ १३ ॥ मा जीघनः प्रजाः सर्वाः पुत्रान् भ्रातॄंस्तथैव च । वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्ध्यजेयानलं हि तान् १४ एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः । यदि नादास्यसे तात पश्चात्तप्स्यसि भारत १५ यथोक्तं जामदग्न्येन भूयानेष ततोऽर्जुनः कृष्णो हि देवकीपुत्रो देवैरपि सुदुःसहः ॥ १६ ॥ किन्ते सुखप्रियेणेह प्रोक्तेन भरतर्षभ । एतत्ते सर्वमाख्यातं यथेच्छसि तथा कुरु । न हि त्वामुत्सहे वक्तुं भूयो भरतसत्तम ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । तस्मिन् वाक्यान्तरे वाक्यं क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत् । दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य

जीने तुझसे धर्म और नीतिके अनुकूल बात कही है, हे राजन् ! तू इनका कहना मानले ॥ १० ॥ हे राजन् ! विद्वान् बुद्धिमान्, जितेंद्रिय न्यायको चाहने वाले और शास्त्रके पारगामी श्रीकृष्ण और भीष्मजी ने तुझसे जो हितकी बात कही है उसको मानले ॥ ११ ॥ हे अपनेको बड़ा बुद्धिमान् मानने वाले दुर्योधन ! श्रीकृष्ण और भीष्मजीने तुझ से जो बात कही है उसके अनुसार ही काम कर और हे परन्तप ! अपनी बुद्धिके अज्ञानसे श्रीकृष्णका अपमान न कर ॥ १२ ॥ ये जो लोग तुझे युद्ध करनेके लिये उसका रहे हैं सो ये विजय कभी नहीं करासकेंगे, किंतु ये रणमें वैरका घण्टा हमारे गलेमें बाँध जाएँगे १३ तू सब प्रजाओंका, पुत्रोंका तथा भ्राताओंका नाश न कर, जिस पक्ष में श्रीकृष्ण और अर्जुन होंगे उस पक्षके वीरोंको तू किसी प्रकार नहीं जीत सकेगा, इस बातको समझे रहना ॥ १४ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! हितकारी श्रीकृष्ण और भीष्मजीकी यह संमति ठीक ही है, हे तात ! यदि तू इनका कहना नहीं मानेगा तो पीछे पछतावेगा ॥ १५ ॥ परशुरामजीने जैसा कहा है अर्जुन उससे भी अधिक बलवान् है तथा देवकीनन्दन श्रीकृष्णजीके बलको देवता भी नहीं सहसकते हे भरतवंशश्रेष्ठ ! तुझसे हितकारी और न्यायकी बात कहनेसे क्या फल है ? ॥ १६ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन् ! यह तुझसे सब कुछ कह दिया अब तेरी जैसी इच्छा हो वैसा कर, अब फिर मैं तुझसे कुछ कहना नहीं चाहता ॥ १७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-इन दो बातोंके बीचमें

धार्त्तराष्ट्रममर्षणम् १८ दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ । इमौ तु वृद्धौ शोचामि गांधारीं पितरञ्च ते ॥१९॥ यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा । हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविवाण्डजौ २० भिक्षुकौ विचरिष्यंते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम् । कुलघ्नमीदृशं पापं जनयित्वा कुपूरुषम् ॥ २१ ॥ अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत । आसीनं भ्रातृभि सार्द्धं राजभिः परिवारितम् ॥२२॥ दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना । आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम् ॥ २३ ॥ अनेन हि सहायेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा । इष्टान्सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु ॥२४॥ सुसंहतः केशवेन तात गच्छ युधिष्ठिरम् चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं भरतानामनामयम्॥२५॥वासुदेवेन तीर्थेन तात गच्छ स्वसंशमम् । कालप्राप्तमिदं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः २६

क्षत्ता विदुरजीने भी धृतराष्ट्रके पुत्र क्रोधी दुर्योधनकी ओरको देख कर यह बात कही, कि-॥ १८ ॥ हे भरतसत्तम ! मुझे तेरा तो शोक नहीं है, परन्तु तेरे इन बूढ़े माता पिताका मुझे बड़ा शोक है ॥ १९ ॥ क्योंकि-तुझ जैसे दुष्टचित्त मनुष्यको अपना नाथ बना कर यह दोनों मित्र और सम्बन्धियोंके मारे जानेपर पंख कटेहुए पक्षियोंकी समान अनाथ होकर भटकते फिरेंगे ॥ २० ॥ यह ऐसे कुलनाशक पापी खोटे पुरुषको उत्पन्न करनेके कारणसे भिक्षुक बनकर भटकते फिरेंगे और इस भूमि (राज्य) के लिये शोक करेंगे ॥२१॥ इसके अनन्तर राजाओंके बीचमें भाइयोंके साथ बैठे हुए दुर्योधनसे राजा धृतराष्ट्र ने कहा, कि-॥२२॥ अरे दुर्योधन ! महात्मा श्रीकृष्णने जो बात कही है, इसको परमकल्याणरूप योग क्षेम करने वाली और अवश्य होने वाली समझ और मानले ॥ २३ ॥ उत्तम चरित्र वाले इन श्रीकृष्णकी सहायता पाकर हम सब राजाओंसे मन चाहे पदार्थ पासकेंगे २४ इस लिये हे तात दुर्योधन ! तू श्रीकृष्णके साथ भले प्रकारसे संमति करके राजा युधिष्ठिरके पास जा और उन सकल कामोंको कर कि-जिनसे भरतवंशके राजाओंका कल्याण हो ॥ २५॥ हे बेटा दुर्योधन! तू श्रीकृष्णरूपी पार लगाने वाले महात्माके द्वारा पांडवोंके साथ संधि करले मेरी समझमें यह अवसर सन्धि करलेनेका ही है इस लिये तू इनकी बातको न टाल ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण तुझसे सन्धि करनेके लिये प्रार्थना कर रहे हैं और तेरे हितकी कहते हैं, यदि तू इनकी बातका

शमं चेद्याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम्। त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवास्त्यपराभवः ॥ २७ ॥ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मादि-
वाक्ये पंचविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

वैशम्पायन उवाच। धृतराष्ट्रवचः श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ समव्यथौ। दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम्१ यावत्कृष्णावसन्नद्धौ याव-त्तिष्ठति गांडिवम्। यावद्धौम्यो न मेधाग्नौ जुहोतीह द्विषद्बलम् ॥२॥ यावन्न प्रेक्षते क्रुद्धः सेनां तव युधिष्ठिरः। ह्रीनिषेधो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥३॥यावन्न दृश्यते पार्थः स्वेऽप्यनीके व्यवस्थितः। भीमसेनो महेष्वासस्तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ४ ॥ यावन्न चरते मार्गान् पृतनामभिधर्षयन्। भीमसेनो गदापाणिस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः५यावन्न शातयत्याजौ शिरांसि गजयोधिनाम्। गदया वीर-घातिन्या फलानीव वनस्पतेः॥६॥ कालेन परिपक्वानि तावच्छाम्यतु

तिरस्कार करेगा तो कभी भी तेरी विजय नहीं होगी ॥२७॥ एकसौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२५ ॥ ❀ ❀

वैशम्पायन कहते हैं, कि जिनको इस कलहके परिणामपर ध्यान देनेसे एकसा दुःख था ऐसे भीष्म और द्रोणाचार्य राजा धृतराष्ट्रकी इस बातको सुन कर कहना न मानने वाले दुर्योधनने यह बात बोले कि-जब तक श्रीकृष्ण और अर्जुन लड़नेके लिये तयार होते हैं, जब तक गाण्डीव उठाया नहीं जाता है और जब तक धौम्य मुनि इस अवसर पर रणाग्निमें शत्रुके दलरूपी बलिको नहीं होमते हैं२और जब तक लज्जा शील महाधनुषधारी राजा युधिष्ठिर क्रोधमें भरकर तेरी सेनाको ओरको नहीं देखते हैं उससे पहिले ही यह भयानक संहार होना रुकजाय तो अच्छा है॥३॥ जब तक अर्जुन तथा महाधनुषधारी भीमसेन अपनी सेनाओंमें आकर खड़ा हुआ नहीं दीखता है, उससे पहिले ही यह मारकाट रुक जानी चाहिये४जब तक भीमसेन हाथमें गदा लेकर हमारी सेनाको ललकारता हुआ सेनामें प्रवेश करनेके मार्गोंमेंको नहीं घूमता है, उससे पहिले ही पांडवोंके साथ सन्धि करले ॥ ५ ॥ जब तक भीमसेन वीर पुरुषोंका नाश करनेवाली गदा से समय पर पके हुए बड़े भारी वृक्षके फलोंकी समान हाथियों पर चढकर लड़नेवाले योधाओंके शिरोंको रणभूमिमें काटकर नहीं गिराता है उससे पहिले ही यह हत्याकाण्ड रुक जाना चाहिये ॥६॥

वैशसम् । नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः७ विराटश्च शिखंडी च शैशुपालिश्च दंशितः । यावन्न प्रविशन्त्येते नक्रा इव महार्णवम् ।८। कृतास्त्राः क्षिप्रमस्यन्तस्तावच्छाम्यतु वैशसम् । यावन्न सुकुमारेषु शरीरेषु महीक्षिताम् ॥ ९ ॥ गार्ध्रपत्राः पतन्त्युग्रास्तावच्छाम्यतु वैशसम् । चन्दनागुरुदिग्धेषु हारनिष्कधरेषु च । नोरःसु यावद्योधानां महेष्वासैर्महेषवः ॥ १० ॥ कृतास्त्रैः क्षिप्रमस्यद्भिर्दूरपातिभिरायसैः । अभिलक्ष्यैर्निपात्यन्ते तावच्छाम्यतु वैशसम् ॥ ११ ॥ अभिवादयमानं त्वां शिरसा राजकुञ्जरः । पाणिभ्यां प्रतिगृह्णातु धर्मराजो युधिष्ठिरः१२ ध्वजांकुशपताकांकं दक्षिणं ते सुदक्षिणः । स्कन्धे निक्षिपतां बाहुं शान्तये भरतर्षभ ॥ १३ ॥ रत्नौषधिसमेतेन रत्नांगुलितलेन च । उपविष्टस्य पृष्ठन्ते पाणिना परिमार्ज्जतु ॥ १४ ॥ शालस्कंधो महाबाहुस्त्वां

जैसे मगर मच्छ महासागरमें प्रवेश करते हैं तैसे ही, नकुल, सहदेव, पृषत्का पुत्र धृष्टद्युम्न, विराट, शिखंडी और शिशुपालका पुत्र ये जब तक सेनामें प्रवेश नहीं करते हैं और शस्त्रविद्यामें पारगामी ये लोग जबतक शीघ्रतासे शस्त्रोंकी वर्षा नहीं करते हैं उससे पहिले ही यह संहारलीला रुकजानी चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ जबतक राजाओंके कोमल शरीरों पर गिद्ध पक्षियोंके परोंवाले उग्र बाण नहीं पड़ते हैं उससे पहिले ही यह संहारलीला रुक जानी चाहिये ॥ ९ ॥ शस्त्रविद्यामें प्रवीण, शीघ्रतासे बाणोंकी मार चलाने वाले, बड़ी दूरतक बाण फेंकने वाले और लक्ष्यको ठीक बींधनेवाले बड़े २ धनुषधारी जबतक चन्दन और अगरसे लिप्त हुई, हार और हमेल धारण करनेवाली योद्धाओं की छातियों पर लोहेके बड़े २ बाण नहीं मारते हैं उससे पहिले ही यह हत्याकांड रुक जाना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥ तू भी ऐसा होनेसे पहिले ही राजा युधिष्ठिरके सामने शिर झुकाकर प्रणाम कर और राजकुञ्जर धर्मराज युधिष्ठिर तुझे दोनों हाथोंसे उठा कर छातीसे लगावें ॥ १२ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! उत्तम दक्षिणा देने वाले राजा युधिष्ठिर ध्वजा, अंकुश और पताकाके चिन्हों वाला तेरा दाहिना हाथ वैरकी शांतिके लिये अपने कन्धे पर लेजाकर रक्खें १३ तू बैठा हो उस समय राजा युधिष्ठिर अपने रत्न और औषधियों वाले तथा पुखराजकी समान लाल २ अंगुलियों और तलुओं वाले हाथसे तेरी पीठको सैलावें ॥ १४ ॥ हे भरतसत्तम ! शालके वृक्षकी समान कंधोंवाला महाबाहु भीमसेन भी तुझे छातीसे लगाताहुआ वैरको

स्वजानो वृकोदरः । सान्त्वाऽभिवदतास्त्वापि शान्तये भरतर्षभ ॥१५॥ अर्जुनेन यमाभ्यां च त्रिभिस्तैरभिवादितः । मूर्ध्नि तान्समुपाघ्राय प्रेम्णाभिवद पार्थिव ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा त्वां पाण्डवैर्वीरैर्भ्रातृभिः सह सङ्गतम् । यावदानन्दजाश्रूणि प्रमुञ्चन्तु नराधिपाः ॥ १७ ॥ घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्नमहीक्षिताम् । पृथिवी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव ॥ १८ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये षड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि । प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम् । प्रसमीक्ष्य भवानेतद्वक्तुमर्हति केशव । मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे ॥ २ ॥ भक्तिवादेन पार्थानामकस्मान्मधुसूदन । भवान्गर्हयते नित्यं किं समीक्ष्य बलाबलम् ॥ ३ ॥ भवान्क्षत्ता च राजा वाप्याचार्यो वा पितामहः । मामेव परिगर्हन्ते नान्यं कञ्चन पार्थिवम् ॥ ४ ॥ न चाहं लक्षये कञ्चिद्व्यभिचारमिहात्मनः । अथ सर्वे भवन्तो मां विद्विषन्ति सराजकाः ॥५ ॥

शांतिके लिये तेरे साथ शांतिसे बातें करे ॥१५॥ हे राजन्! अर्जुन, नकुल और सहदेव इन तीनोंके प्रणाम करने पर तू इनके मस्तकको सूँघकर प्रेमसे बात कर ॥ १६ ॥ सब राजे तुझे वीर भाई पांडवोंके साथ मिलाहुआ देखकर आनंदके आसुओंका बहावें ॥ १७ ॥ तू सब राजाओंकी राजधानियोंमें अपनी प्रीतिकी सब बात ढँढोरा पिटवा कर प्रसिद्ध करादे और दुःखरहित होकर भाईपनेके प्रेमसे पृथिवीका भोग ॥ १८ ॥ एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२६ ॥ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-दुर्योधन कौरवोंकी सभामें श्रीकृष्णकी कडवी बात सुनकर कीर्तिमान् महाबाहु श्रीकृष्णसे कहने लगा, कि-१ हे केशव! तुम्हें विचार करके ऐसा कहना उचित था, परंतु हे मधुसूदन! तुम तो पाण्डवोंके ऊपर प्रेम होनेके कारण विशेष कर मुझे ही कठोर शब्द कहकर मेरी निन्दा करते हो, भला बताओ तो सही, क्या तुम बलाबल देखकर सदा मेरी निन्दा करते हो? ॥ २ ॥ ३ ॥ तुम, विदुर, राजा धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य और पितामह भीष्मजी केवल मेरी ही निन्दा करते हैं और किसी राजाकी निन्दा नहीं करते ॥ ४ ॥ विचार करने पर इन कामोंमें मैं अपना कुछ भी अन्याय नहीं देखता हूँ, तो भी तुम सब मुझे बुरा कहते हो और बहुतसे राजे मुझसे द्वेष

न चाहं कञ्चिदत्यर्थमपराधमरिंदम । विचिन्तयन्प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव ॥ ६ ॥ प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन । जिताः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम् ॥ ७ ॥ यत् पुनर्द्रविणं किंचित्तत्राजीयन्त पांडवाः । तेभ्य एवाभ्यनुज्ञातं तत्तदा मधुसूदन ॥८॥ अपराधो न चास्माकं यत्ते ह्यक्षैः पराजिताः । अजेया जयतां श्रेष्ठ पार्थाः प्रव्राजिता वनम् ॥ ९ ॥ केन वाप्यवादेन विरुध्यन्त्यरिभिः सह । अशक्ताः पांडवाः कृष्ण प्रहृष्टाः प्रत्यमित्रवत् ॥ १० ॥ किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिन्वा पुनरागसि । धार्त्तराष्ट्रान् जिघांसन्ति पांडवाः सृञ्जयैः सह ॥ ११ ॥ न चापि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा । प्रभ्रष्टाः प्रणमामेह भयादपि शतक्रतुम् ॥ १२ ॥ न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम् । उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण ॥ १३ ॥ न हि भीष्मकृपद्रोणाः सकर्णा मधुसूदन । देवैरपि युधा जेतुं शक्याः किमुत

करते हैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुदमन केशव ! मैं विचार करता हूँ तो भी मुझे अपना कोई बड़ाभारी अपराध वा छोटेसे छोटा अपराध भी नहीं दीखता ॥ ६ ॥ हे केशव ! पाण्डवोंने अपनी राजीसे जुआ खेला था और उसमें शकुनिने उनको जीतकर उनका राज्य लेलिया इसमें मेरा क्या अपराध है ? ॥७॥ हे मधुसूदन ! उस जुएमें पाण्डव थोडा बहुत जो कुछ द्रव्य जीते थे वह उनको लौटा देनेके लिये मैंने उसी समय आज्ञा देदी थी ॥ ८ ॥ हे विजय पाने वालोंमें श्रेष्ठ कृष्ण ! किसीके जीतनेमें न आने वाले पाण्डव जुआ खेलनेमें हार गये थे, इस कारण वनमें भेजे गये थे, इसमें हमारा अपराध नहीं है ॥ ९ ॥ तब पाण्डव हमारे किस अपराधके कारणसे हमें वैरी मानते हुए इससे विरोध रखते हैं ? हे कृष्ण ! पाण्डव असमर्थहोने पर भी मानो बड़े शक्तिमान् हैं, इसप्रकार प्रसन्न होकर शत्रुकी समान औंधा वर्त्ताव करके हमारे साथ विरोध क्यों करते हैं ? ॥१०॥ हमने उनका क्या किया है ? और किस अपराधके कारणसे पाण्डव शत्रुओंके साथ मिलकर कौरवोंका संहार करना चाहते हैं ? ॥ ११ ॥ हम पांडवोंके उग्र कामोंको देखकर अथवा उनकी डरावनी बातोंसे भयभीत होकर पांडवोंसे तो क्या इन्द्रसे भी नमने वाले नहीं हैं ॥ १२ ॥ हे शत्रुओंका संहार करने वाले श्रीकृष्ण ! ऐसा मैं किसी भी क्षत्रियके धर्ममें रहने वाले क्षत्रियको नहीं देखता हूँ कि-जो युद्धमें हमको जीतनेका हौंसला रखता हो ! ॥ १३ ॥ हे मधुसूदन ! भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य

पाण्डवैः ॥१४॥ स्वधर्ममनुपश्यन्तो यदि माधव संयुगे । अस्त्रेण निधनं काले प्राप्स्याम स्वर्ग्यमेव तत् ॥१५॥ मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन । यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम् ॥ १६ ॥ ते वयं वीरशयनं प्राप्स्यामो यदि संयुगे । अप्रणम्यैव शत्रूणां न नस्तप्स्यति माधव ॥ १७॥ कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्त्तयन् । भयाद्वृत्ति समीक्ष्यैव प्रणमेदिह कर्हिचित् ॥ १८ ॥ उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम् । अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित् ॥१९॥ इति मातंग-वचनं परीप्सन्ति हितेप्सवः । धर्माय चैव प्रणमेद् ब्राह्मणेभ्यश्च मद्विधः ॥ २० ॥ अचिन्तयन्कञ्चिदन्यं यावज्जीवन्तथाचरेत् । एष धर्मः क्षत्रियाणां मतमेतच्च मे सदा ॥ २१ ॥ राज्यांशश्चाभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराभवत् । न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव२२ यावच्च राजा ध्रियते धृतराष्ट्रो जनार्दनः । न्यस्तशस्त्रा वयं ते वाप्युप-जीवाम माधव । अप्रदेयं पुरा दत्तं राज्यं परवतो मम ॥ २३ ॥ अज्ञा-

द्रोणाचार्य और कर्णको रणमें देवता भी नहीं जीतसकते, फिर पाण्डवों की तो बात ही क्या है ? ॥१४॥ हे कृष्ण ! कदाचित् हम रणमें क्षत्रिय धर्मका पालन करते हुए समय आजाने पर शस्त्रसे मारे भी जायँगे तो हमको उससे भी स्वर्ग ही मिलेगा ॥ १५ ॥ हे जनार्दन ! यदि हम संग्राममें शरशय्या पर गिर कर सदाको सो भी गये (मारे गये) तो यह तो हम क्षत्रियोंका मुख्य धर्म ही है ॥ १६ ॥ सो यदि हम शत्रुओं के सामने नमे बिना वीरशय्या (मरण) को पा भी जायँगे तो हमको पछतावा नहीं होगा ॥ १७ ॥ क्षत्रियकुलमें क्षत्रियधर्मका पालन करने वाला ऐसा कौनसा पुरुष हुआ है कि—जो आजीविकाका विचार करके भयके मारे इस प्रकार नम जाय ? ॥ १८ ॥ उद्योग ही करे, नमे नहीं, क्योंकि—उद्योग करना ही पुरुषपन है, बांसकी गांठ चाहे टूट जाय परन्तु टेढी होकर नमेगी नहीं ॥ १९ ॥ अपना हित चाहने वाले मतङ्ग मुनिके इस वचन पर चलते हैं तो भी मुझसरीखा पुरुष धर्मके लिये ब्राह्मणोंको प्रणाम करता है ॥२०॥ और जब तक जीवन है तब तक दूसरे किसीको भी कुछ नहीं गिनना, यही क्षत्रियोंका धर्म है और यही सदाका मेरा मत है ॥ २१ ॥ हे केशव ! मेरे पिताने पहिले मुझे जो राज्यका भाग दिया है उसको जब तक मैं जीता हूं तब तक मुझसे कोई नहीं लेसकता ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! जबतक राजा धृतराष्ट्र जीवित हैं तबतक या तो हम या पाण्डव शस्त्र नीचे डालकर भिक्षुक

नाद्य भयाद्वापि मयि बाले जनार्दन। न तदद्य पुनर्लभ्यं पांडवैर्वृष्णि-नन्दन २४ ध्रियमाणे महाबाहो मयि सम्प्रति केशव। यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव। तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पांडवान्प्रति

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि दुर्योधन-वाक्ये सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः प्रहस्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः। दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि ॥१॥ लप्स्यसे वीरशयनं काम-मेतदवाप्स्यसि। स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान् २ यच्चैव मन्यसे मूढ न मे कश्चिद् व्यतिक्रमः। पाण्डवेष्विति तत्सर्वं निबोधत नराधिपाः ॥३॥ श्रिया सन्तप्यमानेन पाण्डवानां महात्म-नाम्। त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत ॥ ४ ॥ कथं च ज्ञात-यस्तात श्रेयांसः साधुसम्मताः। अथान्याय्यमुपस्थातुं जिह्मेनाजिह्म-

---

की समान किसीके तयार किये हुए भोजन पर निर्वाह करेंगे, मुझे पहिले जो राज्य दिया गया है उसको मैं लौटा कर नहीं दे सकता, क्योंकि-मैं पराधीन हूँ ॥ २३ ॥ हे वृष्णिनन्दन कृष्ण ! मेरे बालकपन में मेरे अनजान होनेके कारण अथवा भयके कारणसे पाण्डवों को जो राज्य मिल गया था वह अब दुसराकर नहीं मिलसकता २४ क्योंकि-हे केशव ! अब तो बड़ी २ भुजाओंवाला मैं बैठा हूँ हे केशव! सूक्ष्म सूईकी नोकसे जितना भाग विध सके उतना भी भूमिका भाग मैं पाण्डवोंको नहीं दूँगा ॥ २५ ॥ एकसौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं, कि—इस प्रकार दुर्योधनके कहनेसे क्रोधके मारे जिनकी त्यौरी चढ गयी थी ऐसे कृष्णने अग एक विचार करके कौरवोंकी सभामें दुर्योधनसे यह बात कही, कि-॥१॥ यदि तू वीर-शय्याकी बात कहता है तो तुझे वीरशय्या मिलेगी और तेरी कामना पूरी होगी, तू अपने मन्त्रियोंके सहित धीरज रख, ध्यान रख कि—बड़ा भारी संहार होगा ॥ २ ॥ अरे मूढ ! तू यह समझता है, कि-मुझे कोई जीत ही नहीं सकता, परन्तु हे राजाओं ! तुम सुन लो कि-पाण्डवोंमें ऐसा करनेकी पूरी २ शक्ति है ॥ ३ ॥ अरे भरतवंशी दुर्योधन ! महात्मा पाण्डवोंकी राज्यलक्ष्मीको न देखसकने वाले तूने और शकुनिने जुआ खेलनेका खोटा विचार किया था ॥४॥ हे तात! तेरे चाचाके पुत्र, जो सदाचारी, सत्पुरुषोंके मान्य और सरल आच-रण वाले हैं वह क्या कपटसे अन्याय करनेको तयार हुए थे ? ॥५॥

चारिणः ॥५॥ असद्द्यूतं महाप्राज्ञ सतांमतिविनाशनम् । असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च ॥ ६ ॥ तदिदं व्यसनं घोरं त्वया द्यूतमुखं कृतम् । असमीक्ष्य सदाचारैः सार्द्धं पापानुबन्धनैः ॥७॥ कश्चान्यो भ्रातृभार्यां वै विप्रकर्तुं तथार्हति । आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया ॥ ८ ॥ कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया ॥ ९ ॥ जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि । दुःशासनेन कौन्तेयाः प्रव्रजन्त परंतपाः १० सम्यग्वृत्तेष्वलुब्धेषु सततं धर्मचारिषु । स्वेषु बन्धुषु कः साधुश्चरेदेवमसाम्प्रतम् ।११॥नृशंसानामनार्याणां परुषाणां च भाषणम् । कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम् ॥१२॥सह मात्रा प्रदग्धुं तान् बालकान् वारणावते । आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं तत्तव ॥१३॥ ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा । मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने १४ विषेण सर्पबन्धैश्च यतिताः पाण्डवास्त्वया ।

अरे बड़ा बुद्धिमान् बनने वाले दुर्योधन ! जुआ सत्पुरुषोंकी बुद्धिका नाश करता है और दुष्ट जुआ खेलतेमें कलह कर बैठते हैं तथा अनेकों दुःख पाते हैं सो सदाचारी पुरुषोंकी संमति लिये बिना पाप से भरे दुराचारी पुरुषोंसे मिलकर तूने जिसका जुआ द्वार है ऐसा बड़ाभारी दुःख खड़ा कर दिया था ॥ ७ ॥ और तूने अपनी भाभी द्रौपदीको कौरवोंकी सभामें स्पष्टरूपसे (खुल्लमखुल्ला) बुलवा कर जैसी बातें कहकर उसको अपमान किया था, क्या कोई दूसरा पुरुष ऐसा अनुचित काम कर सकता है ? ॥८॥ कुलीन, शीलवती पांडुके पुत्रोंको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी महारानी द्रौपदीका तूने अपमान किया है ।९। परन्तप पाण्डव जब वनको जारहे थे उस समय कौरवों की सभामें दुःशासनने जो २ वचन कहे थे उनको सब कुरुवंशी राजे जानते हैं ॥ १०॥ अपने भाई सदाचारी, उदारचित्त और नित्य धर्माचरण करनेवाले हों तो कौन भला पुरुष उनके साथ ऐसा बर्ताव करेगा ।११। कर्णने, दुःशासनने और तूने क्रूर और नीच पुरुषोंकेसी बहुतसी बातें कही थी ॥१२॥ जब पाण्डव बालक थे उस समय तूने वारणावत नगरमें उनको माता सहित भस्म करडालनेके लिये बड़ा भारी उद्योग किया था, परन्तु तेरा वह उद्योग सफल नहीं होसकता था ॥ १३ ॥ तेरे उस खोटे विचारसे पाण्डव उस समय अपनी माता सहित बहुत दिनों तक छिपे २ एकचक्रानगरीमें एक ब्राह्मणके घर

सर्वोपायैर्विनाशाय न समृद्धं तत्तव ॥ १५ ॥ एवं बुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान्। कथन्ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १६ ॥ यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि। तच्च पाप प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः॥ १७ ॥ कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत्। मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नद्य विप्रतिपद्यसे॥१८॥ मात्रा पित्रा च भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च। शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव १९ शमे हि सुमहाँल्लाभस्तव पार्थस्य चोभयोः। न च रोचयसे राजन् किमन्यत बुद्धिलाघवात् ॥२०॥ न शर्म प्राप्स्यसे राजन्नुत्क्रम्य सुहृदां वचः। अधर्म्यमयशस्यञ्च क्रियते पार्थिव त्वया२१ वैशम्पायन उवाच। एवं ब्रुवति दाशार्हे दुर्य्योधनममर्षणम्। दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत्कुरुसंसदि ॥२२॥ न चेत्सन्धास्यसे राजन् स्वेन कामेन पाण्डवैः। बद्ध्वा किल त्वां दास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः२३

रहे थे ॥१४॥ इसके सिवाय विष देना, साँपोंसे बाँधदेना ऐसे अनेकों उपायोंसे पाण्डवोंको मारडालनेके लिये षड्यन्त्र रचेथे परन्तु वह तेरे उद्योग सफल नहीं हुएथे॥१५॥इसप्रकार तूने सदा चालाकीसे पांडवों के साथ कपटका वर्ताव किया है, फिर यह कैसे कहता है कि-मैंने महात्मा पाण्डवोंका कुछ अपराध नहीं किया ॥१६॥ यदि तू पांडवों को उनके पिताका भाग नहीं देगा सो अरे पापी! तू राज्यके ऐश्वर्यको खोदेगा और उनको सब राज्य दे बैठेगा ॥१७॥ तूने पाण्डवोंके साथ क्रूर बनकर अनेकों न करने योग्य काम किये हैं तथा अब भी दुष्टता ही करता है और नीचसा बनकर माता आदिके साथ कलह करता है ॥ १८ ॥ हे राजन्! तेरी माताने, पिताने, भीष्मजीने, द्रोणाचार्यने और विदुरजीने तुझे बार २ समझाया है कि—तू सन्धि करले, फिर भी तू सन्धि क्यों नहीं करता है ॥ १९ ॥ मेल करलेनेमें तुझे और पाण्डवोंको बड़ाभारी लाभ है, परन्तु हे राजन! तुझे यह बात अच्छी नहीं लगती, इसमें तेरी ओछी बुद्धिके सिवाय और क्या कारण है२० हे राजन्! सगे संबन्धियोंकी बातको न माननेसे तुझे सुख नहीं मिलेगा, हे राजन्! तू जो भी काम करता है वही काम अधर्मका और अपजसका करता है ॥ २१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं,कि-यदुवंशी श्रीकृष्ण इस प्रकार कहरहे थे, इतनेमें ही दुःशासनने क्रोधी स्वभाव वाले दुर्योधनसे कौरवोंकी सभाके बीचमें कहा,कि-॥२२॥हे राजन्! तुम अपनी इच्छासे पाण्डवोंके साथ सन्धि नहीं करोगे तो कौरव

वैकर्त्तनं त्वाञ्च मां च भीष्मद्रोणमनुजर्षभ। पाण्डवेभ्यः प्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते ॥२४॥ भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा धार्त्तराष्ट्रः सुयोधनः। क्रुद्धो प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन् ॥२५॥ विदुरं धृतराष्ट्रञ्च महाराजञ्च बाह्लिकम्। कृपञ्च सोमदत्तञ्च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम् ॥ २६ ॥ सर्वानेताननादृत्य दुर्मतिर्निरपत्रपः। अशिष्टवदमर्यादो मानी मान्यावमानिता ॥ २७ ॥ तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभम्। अनुजग्मुः सहामात्या राजानश्चापि सर्वशः ॥ २८ ॥ सभायामुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह। दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥२९॥ धर्मार्थावभिसंत्यज्य संरम्भं योऽनुमन्यते। हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो न चिरादिव ॥ ३० ॥ दुरात्मा राजपुत्रोऽयं धार्त्तराष्ट्रोऽनुपायकृत्। मिथ्याभिमानी राज्यस्य क्रोधलोभवशानुगः ॥३१॥ कालपक्वमिदं मन्ये सर्वक्षत्रं जनार्दन। सर्वे ह्यनुसृता मोहात् पार्थिवाः सह मंत्रिभिः ॥ ३२ ॥ भीष्मस्याथ वचः श्रुत्वा दाशार्हः पुष्करेक्षणः।

स्वयं आपको बाँधकर धर्मराजको सौंपदेंगे ॥२३॥ हे राजन्! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और हमारे पिताजी आपको मुझे और कर्णको अर्थात् हम तीनोंको कैद करके पाण्डवोंके हाथमें सौंपने वाले हैं ॥२४॥ उस समय धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन जो कि-दुष्टबुद्धि, निर्लज्ज, अभिमानी और मान्य पुरुषोंका अनादर करनेवाला था, वह अपने भाई दुःशासनकी इस बातको सुनकर कोपमें भरगया और नीच पुरुषकी समान मर्यादासे बाहर हो सभामें बैठे हुए विदुर, महाराज धृतराष्ट्र, राजा बाह्लीक, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य सोमदत्त, भीष्मजी और श्रीकृष्णजी इन सबोंका अनादर करके, बड़ेभारी साँपकी समान फुँकारें भरता हुआ सभामेंसे उठकर जानेलगा ॥ २५—२७ ॥ उसको सभामें से जाता हुआ देखकर उसके भाई, मंत्री और सब राजे भी उसके पीछे २ चलेगये२८क्रोधमें भरेहुए राजा दुर्योधनको भाई और मंत्रियोंके साथ सभामेंसे उठकर जाते हुए देखकर शान्तनुनन्दन भीष्मजी कहने लगे, कि-॥२९॥ जो मनुष्य धर्म और नीतिको त्यागकर क्रोधके वश में होजाता है उसके शत्रु थोड़े समयमें ही उसको आपत्तिमें फँसा हुआ देखकर हँसते हैं ॥ ३० ॥ यह राजकुमार दुर्योधन दुष्टात्मा है, खोटे उपायोंसे काम लेता है इसको राज्यका मिथ्या अभिमान है और यह क्रोध तथा लोभके वशमें होगया है ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण! मेरी समझमें इस सब क्षत्रियमण्डलका काल आपहुँचा है, क्यों कि-सब

भीष्मद्रोणमुखान्सर्वानभ्यभाषत वीर्यवान् ॥ ३३॥ सर्वेषां कुरुवृद्धानां महानयमतिक्रमः । प्रसह्य मन्दमैश्वर्यें न नियच्छत यन्नृपम् ॥३४॥तत्र कार्यमहं मन्ये कालप्राप्तमरिन्दमाः । क्रियमाणे भवेच्छ्रेयस्तत्सर्वं शृणुतानघाः॥३५॥प्रत्यक्षमेतद् भवतां यद् वक्ष्यामि हितं वचः । भवतामानुकूल्येन यदि रोचेत भारताः ॥ ३६ ॥ भोजराजस्य वृद्धस्य दुराचारो ह्यनात्मवान् । जीवतः पितुरैश्वर्यं हृत्वा मृत्युवशङ्गतः ॥३७॥ उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बांधवैः । ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महामृधे ॥३८॥ आहुकः पुनरस्माभिर्ज्ञातिभिश्चापि सत्कृतः । उग्रसेनः कृतो राजा भोजराजन्यवर्द्धनः॥३९॥ कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः । सम्भूय सुखमेधन्ते भारतान्धकवृष्णयः ॥ ४० ॥ अपि चाप्यवदद्राजन् परमेष्ठी प्रजापतिः । व्यूढे देवासुरे युद्धेऽभ्युद्यतेष्वायु-

---

राजे अपने मंत्रियोंके सहित दुर्योधनके पिछलगू होरहे हैं ।३२। भीष्म जीकी इस बातको सुनकर कमलकी समान नेत्रोंवाले पराक्रमी श्री कृष्णने भीष्म, द्रोणाचार्य आदि सब राजाओंसे कहा, कि—॥ ३३ ॥ सब वृद्ध कौरवोंने बड़ी भारी भूल करी है, क्यों कि-इन्होंने ऐश्वर्यके कारणसे मूढ़ हुए दुर्योधनको जोरावरी कैद नहीं किया ॥ ३४ ॥ हे शत्रुओंका दमन करनेवाले राजाओं ! इस विषयमें अब इस समय मैं जो काम करने योग्य देखता हूँ तथा समझता हूँ और जिस कामको करनेसे कल्याण होगा, उस सब कामको हे निर्दोष राजाओं ! तुम सुनो ॥ ३५ ॥ मुझे जो बात हितकी मालूम होती है वह मैं आपसे प्रत्यक्ष कहे देता हूँ, हे भरतवंशी राजाओं ! वह बात यदि तुम्हें अनुकूल मालूम हो और अच्छी लगे तो करना॥३६॥ वृद्ध राजा भोजका पुत्र कंस दुराचारी और मूर्ख था उसने पिताके जीते हुए ही उनसे राज्य छीन लिया था उससे वह अपने प्राणोंको खो ही बैठा था ।३७। उस उग्रसेनके पुत्र कंसको उसके संबंधियोंने त्याग दिया था और जाति वालोंका हित करनेकी इच्छासे मैंने महासंग्राममें उसको मार डाला था ॥ ३८ ॥ और फिर हम सब संबन्धियोंने राजा भोजके वंश की वृद्धि करने वाले राजा उग्रसेनको सत्कारके साथ उसके राजसिंहासन पर बैठाल दिया था॥३९॥हे भरतवंशी राजन् ! सब यादवों ने, अन्धकोंने और वृष्णियोंने इकट्ठे होकर कुलकी रक्षाके लिये एक कंसको त्याग दिया था और अब वह सुखसे अपने समयको बिताते हैं ॥ ४० ॥ और हे राजन् ! जब देवासुर संग्राम चल रहा था और

धेषु च ॥ ४१ ॥ द्वैधीभूतेषु लोकेषु विनदत्सु च भारत । अब्रवीद्भूतिमान्देवो भगवान् लोकभावनः ॥ ४२ ॥ पराभविष्यन्त्यसुरा दैतेया दानवैः सह । आदित्या वसवो रुद्रा भविष्यन्ति दिवौकसः ॥४३॥ देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः । अस्मिन्युद्धे सुसंक्रुद्धा हनिष्यन्ति परस्परम् ॥ ४४ ॥ इति मत्वाब्रवीद्धर्मं परमेष्ठी प्रजापतिः । वरुणाय प्रयच्छैतान् बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४५ ॥ एवमुक्तस्ततो धर्मो नियोगात्परमेष्ठिनः । वरुणाय ददौ सर्वान् बद्ध्वा दैतेयदानवान् ॥ ४६ ॥ तान्बद्ध्वा धर्मपाशैश्च स्वैश्च पाशैर्जलेश्वरः । वरुणः सागरे यत्तो नित्यं रक्षति दानवान् ॥४७॥ तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिञ्चापि सौबलम् । बद्ध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छ च ॥४८॥ त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं

युद्धमें सब देव दानव शस्त्र उठा कर खड़े हुए थे लोगोंमें मार काट होने लगी थी और जब दोनों ओरका बड़ा भारी संहार होने लगा था उस समय जगत्का कल्याण करने वाले सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्माजीने कहा था, कि—असुर, दैत्य और दानव हार जायँगे तथा आदित्य, वसु, और रुद्र स्वर्गमें निवास करेंगे ॥ ४१-४३ ॥ देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प और राक्षस इस युद्धमें अतिकोपमें भर कर आपसका संहार करने लगेंगे; जब परमेष्ठी ब्रह्माजीने ऐसा जाना तब उन्होंने धर्मसे कहा, कि—तुम इन दैत्य दानवोंको बाँधकर वरुण देवताको सौंप दो ॥ ४४॥४५ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीके कहने पर धर्मने परमेष्ठी प्रजापतिकी आज्ञासे सब दैत्य और दानवोंको कैद करके वरुणको सौंप दिया ॥४६ । जलेश्वर वरुण उन सब दैत्य और दानवों को धर्मकी फाँसोंसे तथा अपनी फाँसोंसे बाँधकर सदा सावधानी के साथ समुद्रमें उनकी रखवाली करता है ॥ ४७ ॥ तैसे ही तुम भी दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और दुःशासनको बाँधकर पाण्डवों को सौंप दो ॥ ४८ ॥ कुलकी रक्षाके लिए एक मनुष्यको त्याग देय, ग्रामकी रक्षाके लिए कुलको त्याग देय, देशकी रक्षाके लिए ग्रामको त्याग देय; और अपनी रक्षाके लिये पृथिवीको त्याग देय ॥ ४९ ॥ इस कारण हे राजन्! तुम दुर्योधनको कैद करके पाण्डवोंके साथ सन्धि करलो और हे श्रेष्ठ क्षत्रिय! तुम्हारे कारणसे इन क्षत्रियोंका

त्यजेत् ॥ ४९ ॥ राजन्दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः । त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ५० ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्णवाक्येऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

वैशम्पायन उवाच । कृष्णस्य तु वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥ गच्छ तात महाप्राज्ञीं गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम् । आनयेह तया सार्द्धमनुनेष्यामि दुर्मतिम् ॥२॥ यदि सापि दुरात्मानं शमयेद् दुष्टचेतसम् । अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम् ॥ ३ ॥ अपि लोभाभिभूतस्य पन्थानमनुदर्शयेत् । दुर्बुद्धेर्दुःसहायस्य शमार्थं ब्रुवती वचः ॥ ४ ॥ अपि नो व्यसनं घोरं दुर्योधनकृतं महत् । शमयेच्चिररात्राय योगक्षेमवदव्ययम् ॥ ५ ॥ राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम् । आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः । ऐश्वर्य्यलोभादैश्वर्य्यं जीवितञ्च प्रहास्यति ॥७॥

नाश नहीं होना चाहिये ॥ ५० ॥ एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र श्रीकृष्णकी बातको सुनकर शीघ्रतासे सकल धर्मोंको जाननेवाले विदुरजीसे कहने लगा, कि--॥ १ ॥ हे तात विदुर ! तुम दीर्घ दृष्टिवाली और परमबुद्धिमती गान्धारीके पास जाओ और उसको लिवालाओ उसके साथ मैं उस दुष्टात्मा दुर्योधनको समझाऊँगा ॥ २॥ यदि गांधारी भी उस पापी मनवाले दुष्टात्मा दुर्योधनको समझा सकेगी तो हम अपने संबन्धी श्रीकृष्णके कहनेके अनुसार सन्धि करलेंगे ॥३ ॥ कदाचित् गांधारी सन्धिके लिए उपदेशकी बातें कहकर, लोभसे हार माने हुए दुष्टबुद्धि, बालक और दुष्टोंको सहायतावाले दुर्योधनको सन्धिका मार्ग बतासके ॥४ ॥ कदाचित् वह दुर्योधनके उत्पन्न किये हमारे ऊपर आपडे हुए महाभयानक दुःखको शान्त करसके तो उससे हम चिरकाल तक अविनाशी सुखको पानेके लिये और पायेहुए सुखकी रक्षा करनेके लिये समर्थ होसकेंगे ॥ ५ ॥ राजा धृतराष्ट्रकी बात सुनकर उनकी आज्ञासे विदुरजी दीर्घदर्शिनी गान्धारीको तहाँ लिवा लाये ॥ ६ ॥ धृतराष्ट्रने कहा, कि–अरी गान्धारी ! यह तेरा दुष्टात्मा पुत्र मेरी आज्ञाको नहीं मानता है, यह ऐश्वर्यके लोभसे ऐश्वर्यको और अपने प्राणोंको भी खो बैठेगा ॥ ७ ॥ अरी ! यह अशिष्ट पुरुष

अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मवान्। सभायाः निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच । सा भर्तृवचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी । अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९॥ गान्धार्युवाच । आनाय्य सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम् । न हि राज्यमशिष्टेन शक्यं धर्मार्थलोपिना ॥ १० ॥ आप्तं मासं तथा-पीदमविनीतेन सर्वथा । त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रिय ११ यो जानन् पापतामस्य तत् प्रज्ञामनुवर्तसे । स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः ॥ १२ ॥ अशक्यो यत्त्वया राजन् विनिवर्तयितुं बलात् । राष्ट्रप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः ॥१३॥ दुःसहायस्य लुब्धस्य धृतराष्ट्रोऽश्नुते फलम् । कथं हि स्वजने भेदमुपेक्षेत महीपतिः १४ भिन्नं हि स्वजनेन त्वां प्रहसिष्यन्ति शत्रवः । या हि शक्या महाराज साम्ना भेदेन वा पुनः । निस्तर्तुमापदः स्वेषु दण्डं कस्तत्र पातयेत् १५

को समान मर्यादासे बाहर होरहा है और यह दुष्टात्मा पापी पुरुषों के साथ रहता है, यह मूढ अपने संबन्धियोंकी बात न मानकर सभामेंसे उठकर चला गया ॥ ८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! यशस्विनी राजपुत्री गान्धारी अपने पतिकी बात सुनकर परम कल्याणको चाहती हुई यह बात बोली ॥ ९ ॥ गान्धारीने कहा कि-हे राजन् ! राज्य चाहनेवाले और राज्यके लिए बड़ा आतुर रहनेवाले अपने पुत्रको आप बुलवाइये, धर्म और अर्थका नाश करनेवाला अशिष्ट पुरुष कभी भी राज्यको नहीं पासकता है ॥ १० ॥ तो भी तुम्हारे इस अविनयी पुत्रने सब प्रकारसे राज्य पालिया है, हे राजन् धृतराष्ट्र ! इसके लिए पुत्रके ऊपर प्रेम रखने वाले तुम ही सब प्रकारसे निन्दाके पात्र हो ॥ ११ ॥ क्योंकि-तुम इसके पापको जानते हुए भी इसके ही कहनेमें चला करते हो, हे राजन् ! यह दुर्योधन काम, क्रोध और लोभ के वशमें होरहा है ॥१२॥ हे राजन् ! अब तुम इसको बलात्कार करके भी इस मार्गसे नहीं लौटा सकोगे, मूढ, अविवेकी, दुरात्मा, दुष्ट सहायकों वाले और लोभी पुत्रको राज्य देकर अब उसका फल, तुम भोग रहे हो, तुम, अपने कुटुम्बियोंके क्लेशकी ओरको क्यों नहीं देखते हो ? तुम जब कुटुम्बियोंके साथ क्लेश करके उनसे जुदे हो जाओगे, तब शत्रु तुम्हारी हँसी करेंगे ॥१३-१४॥ हे महाराज ! यदि आपत्तियें शान्तिके उपायसे अथवा भेदसे टल सकती हों तो उनके लिए कौन पुरुष अपने मनुष्यों पर दण्डरूप उपायसे काम लेगा ॥१५॥

वैशम्पायन उवाच । शासनाद् धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम् । मातुश्च वचनात् क्षत्ता सभां प्रावेशयत् पुनः ।१६। स मातुर्वचनाकांक्षी प्रविवेश पुनः सभाम् । अभिताम्रेक्षणः क्रोधान्निःश्वसन्निव पन्नगः १७ तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रमुत्पथमास्थितम् । विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥ दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक । हितं ते सानुबन्धस्य तथायत्यां सुखोदयम् ॥१९॥ दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम । भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद्वचः ।२०। भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचितिः कृता । भवेद् द्रोणमुखानाञ्च सुहृदां शाम्यता त्वया २१ न हि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते । अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं भरतसत्तम ॥२२॥ न ह्यवश्येन्द्रियो राज्यमश्नीयाद्दीर्घमन्तरम् विजितात्मा तु मेधावी स राज्यमभिपालयेत् २३ कामक्रोधौ हि पुरुषमर्थेभ्यो व्यपकर्षतः । तौ तु शत्रू विनिर्जित्य राजा

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे और गान्धारीके कहनेसे विदुरजी दूसरेकी उन्नतिको न सहसकने वाले दुर्योधनको फिर राजसभामें लिवालाये ॥ १६ ॥ जिसकी आँखें चारों ओरसे ताँबेकी समान लाल २ हो रही थीं ऐसा दुर्योधन माता की बात सुननेकी इच्छासे क्रोधके कारण साँपकी समान फुँकारें भरता २ फिर सभामें आगया ॥ १७ ॥ उल्टे मार्गमें चलने वाले उस पुत्रको सभामें आया हुआ देखकर गान्धारी उसको ललकारती हुई शान्ति और सन्धि करनेके लिए उससे कहने लगी कि—॥ १८ ॥ अरे दुर्योधन ! तू मेरी यह बात सुन, हे बेटा ! उसमें तेरा और तेरे परिवारका हित है तथा आगेको भी तुझे सुख मिलेगा ॥ १९ ॥ हे भरतसत्तम दुर्योधन ! तेरे पिताने भीष्म पितामहने, द्रोणाचार्यने, कृपाचार्यने और विदुरजीने तुझसे जो बात कही है, इन हितैषियोंके उस कहनेको तू मानले ॥ २० ॥ तू शान्त होकर पाण्डवोंके साथ सन्धि करलेगा तो माना भीष्मजीकी, पिता धृतराष्ट्रकी, मेरी और द्रोणाचार्य आदि अपने हितैषियोंकी तू भले प्रकार पूजा करेगा ॥ २१ ॥ हे महाबुद्धिमान् भरतसत्तम ! अपनी चाहनासे राज्य नहीं मिलसकता है तथा उसकी रक्षा वा भोग भी नहीं होसकता है ।२२। तथा इंद्रियों के वशमें हुआ पुरुष भी चिरकाल तक राज्यको नहीं भोगसकता है, किन्तु जो जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् होता है वही राज्यकी रक्षा कर सकता है ॥ २३ ॥ काम और क्रोध पुरुषको अर्थरहित करडालते हैं,

त्रिजयते महीम् ॥२४॥ लोकेश्वरप्रभुत्वं हि महदेतद् दुरात्मभिः । राज्यं नामेप्सितं स्थानं न शक्यमभिरक्षितुम् ।२५। इन्द्रियाणि महत्प्रेप्सुर्नियच्छेदर्थधर्मयोः । इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्द्धतेऽग्निरिवेन्धनैः ॥२६ ॥ अविधेयानि हीमानि व्यापादयितुमप्यलम् । अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥ २७ ॥ अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते । अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥ २८ ॥ आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत् । ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥ २९ ॥ वश्येन्द्रियं जितामात्यं धृतदण्डं विकारिषु । परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यर्थं श्रीर्निषेवते३० क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपि हिताबुभौ । कामक्रोधशरीरस्थौ प्रज्ञानन्तौ प्रलुम्पतः॥३१॥यास्यां हि देवा

इस लिए राजा इन दो शत्रुओंको जीतनेसे पृथिवीको जीत सकता है ॥ २४ ॥ दुष्टात्मा, पुरुष, जिसमें लोकपालकी प्रभुता है ऐसे बड़े भारी राज्यासनकी इच्छा तो करते हैं परन्तु मिलजाने पर वह उस की रक्षा नहीं कर सकते हैं ॥ २५ ॥ बड़े भारी राज्यकी इच्छा करने वाले पुरुषको अपनी इंद्रियें धर्ममें वा धर्मानुकूल अर्थमें लगानी चाहियें क्यों कि—इन्द्रियोंको नियममें रखनेसे बुद्धि ऐसे बढ़ती है जैसे ईंधन डालनेसे अग्नि बढती है ॥२६ ॥ और यदि इन इन्द्रियोंको वशमें नहीं रक्खाजाय तो ये नाश करनेके लिये भी बहुत हैं, जैसे कि विना शिक्षा दिये हुए घोड़े मार्गमें मूर्ख सारथीका नाश कर डालते हैं ॥ २७ ॥ जो पुरुष अपने आपेको वशमें किये विना अपने मंत्रियों को वशमें रखना चाहता है और मन्त्रियोंको वशमें किए विना शत्रुओं को जीतना चाहता है वह राजा दूसरोंके वशमें होकर आप ही अपना नाश करलेता है ॥ २८ ॥ परन्तु जो पुरुष पहिले अपने आत्माको शत्रु रूप मानकर उसको जीतलेता है वह इसके अनन्तर मन्त्रियोंको जीत लेता है और फिर शत्रुओंको भी जीतलेता है तथा वह मनुष्य अपनी विजयकी इच्छामें निष्फल नहीं होता है ॥२९ ॥ जो पुरुष इन्द्रियोंको जीत लेता है, अपने मनको वशमें रखता है अपराध करने वालोंको दण्ड देता है हरएक कामको विचार करनेके अनन्तर करता है और धीरज रखता है, लक्ष्मी चिरकाल तक उसकी सेवा करती है ॥३०॥ जैसे छोटे २ छिद्रोंवाले जालमें दो मछलियें फँसजाती हैं और उसमें से बाहर नहीं निकल सकती हैं वैसे ही काम और क्रोध भी शरीरमें घुसकर अपना घर बनालेते हैं और मनुष्यकी बुद्धिका नाश करडालते

स्वर्यानः स्वर्गस्यापि दधुर्मुखम् । विभ्यतोऽनुपरागस्य कामक्रोधौ स्म वर्द्धितौ ॥ ३२ ॥ कामं क्रोधञ्च लोभञ्च दम्भं दर्पं च भूमिपः । सम्यग्विजेतुं यो वेद स महीमभिजायते ॥ ३३ ॥ सततं निग्रहे युक्त इन्द्रियाणां भवेन्नृपः । ईप्सन्नर्थञ्च धर्मं च द्विषतां च पराभवम् ॥३४॥ कामाभिभूतः क्रोधाद्वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते । स्वेषु चान्येषु वा तस्य न सहाया भवन्त्युत ॥ ३५ ॥ एकी भूतैर्महाप्राज्ञैः शूरैररिनिबर्हणैः । पाण्डवैः पृथिवीं तात भोक्ष्यसे सहितः सुखी ॥३६॥ यथा भीष्मः शांतनवो द्रोणश्चापि महारथः । आहतुस्तात तत् सत्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ३७ प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् । प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयोरेव केशवः ॥३८॥ सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः ॥३९॥ न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम् । न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आ-

---

हैं ॥३१॥ मनुष्य संसारसे उदासीन भी होगया हो परन्तु उसके काम और क्रोध बढ गये हों तो देवता उससे डरकर स्वर्गमें जानेकी इच्छा वाले उस मनुष्यके स्वर्गके द्वारको बन्द कर देते हैं ॥ ३२ ॥ इस लिए जो राजा काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और अभिमानको अच्छे प्रकारसे जीतना जानता है वही राजा पृथिवीका राज्य कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता ॥ ३३ ॥ जो राजा धर्म तथा अर्थकी इच्छा करता हो तथा शत्रुओंकी जीतना भी चाहता हो उस राजाको नित्य इन्द्रियोंका निग्रह करना चाहिये ॥३४॥ परन्तु जो राजा कामार्थी होकर अथवा क्रोधके वशमें होकर निरर्थक काममें लगा रहता है, उसका अपनोंमें वा परायोंमें कोई भी सहायक नहीं होता है॥३५॥इस कारण हे तात! यदि तू एकरूप हुए महाबुद्धिमान्, शत्रुओंका नाश करने वाले वीर पाण्डवोंके साथ सन्धि कर लेगा तो सुखसे पृथिवीके राज्यको भोगेगा॥३६॥हे तात ! शन्तनुनन्दन भीष्मजीने और महारथी द्रोणाचार्यजीने जैसा कहा सो वास्तवमें ठीक ही है, श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता ॥ ३७ ॥ इस लिये अब तू महाबाहु और उत्तम कर्म करने वाले श्रीकृष्णकी शरण ले, केशव भगवान् प्रसन्न होजायँगे तो दोनों ओरका कल्याण करेंगे ॥ ३८ ॥ जो पुरुष अर्थकी वृद्धि चाहनेवाले विद्यावान् और बुद्धिमान् संबन्धियोंकी आज्ञामें नहीं चलता है वह मनुष्य मानो शत्रुको प्रसन्न करता है ॥ ३९ ॥ हे तात! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है, न धर्म और अर्थ ही है, फिर सुख तो

धिष्ठाः ॥ ४० ॥ भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्लिकेन च । दत्तोंऽशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद्भीतैररिन्दम ॥ ४१ ॥ तस्य चैतत् प्रदानस्य फलमद्यानुपश्यसि । यद्भुंक्षे पृथिवीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम् ॥ ४२ ॥ प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिंदम। यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्द्धं प्रदीयताम् ॥४३॥ अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम्। सुहृदां वचने तिष्ठन् यशः प्राप्स्यसि भारत ४४ श्रीमद्भिरात्मवद्भिस्तैर्बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः।पांडवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात ॥४५॥ निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम् । स्वमंशं पाण्डुपुत्रेभ्यः प्रदाय भरतर्षभ ॥ ४६ ॥ अलमङ्ग विकारोऽयं त्रयोदशसमाः कृतः। शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम् ॥ ४७ ॥ न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि । सूतपुत्रो दृढक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते॥४८॥

होगा हो कहाँसे ? तथा युद्धमें सदा विजय ही हो यह बात भी नहीं है, इस लिये लड़ाईमें मन न लगा ॥४०॥ हे महाबुद्धिमान् शत्रुओंको दबाने वाले दुर्योधन ! भीष्मजीने, तेरे पिताने और बाह्लीकने संबन्धियोंमें फूट पड़ जानेके भयसे पांडवोंको राज्यका भाग दिया था४१ उनको राज्यका भाग देनेका फल इस समय तू अपनी दृष्टिसे देख रहा है, कि-जो तू उन वीरोंसे शत्रुरहित की हुई पृथ्वी पर इससमय राज्य कर रहा है ॥ ४२ ॥ हे शत्रुनाशन ! यदि अपने मंत्रियोंके साथ राज्यको भोगना चाहता हो तो पाण्डवोंको, जो कि-उनका न्यायके अनुसार चाहिये वह आधा राज्य देदे ॥ ४३ ॥ आधी भूमि मंत्रियों सहित तेरे निर्वाहके लिये बहुत है, हे भरतवंशी ! तू संबन्धियोंके कहनेमें रहेगा तो तेरा यश होगा ॥ ४४ ॥ परन्तु हे तात ! यदि तू श्रीमान्, आत्मज्ञानी, बुद्धिमान्, और जितेन्द्रिय पांडवोंके साथ लड़ाई करेगा तो वह तुझे सकल सुखसे भ्रष्ट कर देंगे ॥४५॥ इसलिये हे भरतसत्तम राजन् ! पांडवोंका भाग पांडवोंको देकर संबन्धियोंके क्रोधको शान्त कर और उचित रीतिसे तू अपने आधे राज्यको सुख के साथ भोग ॥ ४६ ॥ हे प्यारे पुत्र ! पांडवोंको तेरह वर्ष तकका वनवास दिया था, यह भी तूने बड़ा भारी अपराध किया, इस लिये हे परमबुद्धिमान् बेटा ! अब तू काम और क्रोधसे बढ़ते हुए इस बड़े भारी कलहको शान्त कर ॥ ४७ ॥ तू पाण्डवोंका राज्य पचाना चाहता है परन्तु तुझमें इतनी शक्ति नहीं है, तथा दृढ़ क्रोध वाला सूतपुत्र कर्ण और तेरा भाई दुःशासन भी इसको नहीं पचा सकते॥४८

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनञ्जये। धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम् ॥ ४९ ॥ अमर्षवशमापन्नो मा कुरूंस्तात जीवनः। एषा हि पृथिवी कृत्स्ना मा गमत्त्वत्कृते वधम् ॥ ५० ॥ यच्च त्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोणकृपादयः। योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतदद्योपपद्यते ॥ ५१ ॥ समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानं हि विदितात्मनाम्। पाण्डवेष्वथ युष्मोसु धर्मस्त्वभ्यधिकस्ततः ॥ ५२ ॥ राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम्। न हि शक्ष्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम् ॥ ५३ ॥ न लोभादर्थसम्पत्तिर्नराणामिह दृश्यते। तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ ॥ ५४ ॥ ॥ ※ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि गांधारिवाक्य ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

वैशम्पायन उवाच। तत्तु वाक्यमनादृत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम्। पुनः प्रतस्थे संरंभात्सकाशमकृतात्मनाम् ॥ १ ॥ ततः सभायाः निर्गम्य मंत्रयामास कौरवः। सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह ॥ २ ॥

इसमेंसे उलटा ही फल निकलेगा, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न ये सब जब क्रोधमें भरजायँगे तब सब प्रजाका नाश होजायगा तो तू किसके ऊपर राज्य करेगा? ॥४९॥ हे तात! तू क्रोधके वशमें होकर कौरवोंका नाश न करा और इस सब पृथिवीका भी तेरे कारणसे नाश नहीं होना चाहिये ॥ ५० ॥ अरे मूढ़! कदाचित् तू समझता होगा, कि-भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि सब योधा पूर्णशक्तिसे मेरे लिये लड़ेंगे तो ऐसा होना असम्भव है ॥ ५१ ॥ क्योंकि-आत्मस्वरूपको जानने वाले ये लोग तेरे और पाण्डवोंके राज्यको प्रेम तथा संबन्धके कारणसे एकसा मानते हैं और धर्मको उससे भी प्रबल मानते हैं ॥ ५२ ॥ ये कदाचित् राज्यके खाये हुए अन्नके भयसे प्राण दे दें, परन्तु युधिष्ठिरके सामने को क्रोधभरी दृष्टिसे नहीं देख सकेंगे ॥ ५३ ॥ हे भरतसत्तम राजन्! लोभसे मनुष्योंको धन संपदा मिलती हो यह बात कहीं भी देखनेमें नहीं आती इस लिए हे तात! अब लोभ करना छोड़ दे और सन्धि कर ले ॥ ५४ ॥ एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२९ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-वह राजा दुर्योधन अपनी माताकी उस नीतिभरी बातका अनादर करके क्रोधके मारे अपने अज्ञानी मंत्रियोंके पास चला गया ॥ १ ॥ वह कुरुवंशी दुर्योधन उस सभामेंसे निकल

दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च । दुःशासनचतुर्थानामिदमासीद्विचेष्टितम् ॥ ३ ॥ पुरायमस्मान् गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः । सहितो धृतराष्ट्रेण राजा शान्तनवेन च ॥ ४ ॥ वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव । प्रसह्य पुरुषव्याघ्रमिन्द्रो वैरोचनिं यथा ॥ ५ ॥ श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः । निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ॥ ६ ॥ अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च । अस्मिन् गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम् ॥ ७ ॥ निरुद्यमा भविष्यन्ति पांडवाः सोमकैः सह । तस्माद्वयमिहैवैनं केशवं क्षिप्रकारिणम् ॥ ८ ॥ क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून् । तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम् ॥ ९ ॥ इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुध्यत सात्यकिः । तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहास्थितः ॥ १० ॥ अब्रवीत् कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम् । व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः ११

कर सुबलके पुत्र बड़े ज्वारी राजा शकुनिसे मिला और उसके साथ विचार करने लगा ॥२॥ अन्तमें दुर्योधन, कर्ण, सुबलका पुत्र शकुनि और दुःशासन इन चारोंने यह करनेका विचार किया कि—॥ ३ ॥ हरएक काममें शीघ्रता करने वाला यह कृष्ण राजा धृतराष्ट्र और भीष्म पितामहके साथ मिलकर पहिले हमें कैद करना चाहता है ।४। परन्तु जैसे पहिले इन्द्रने विरोचनके पुत्र महाराज बलिको जोरावरी कैद करलिया था तैसे ही हम भी इस कृष्णको जोरावरी कैद करलेंगे हैं ॥ ५ । श्रीकृष्णको कैद हुआ सुनकर पाण्डवोंका मन मरजायगा और डाढ़ तोड़ेहुए सर्पोंकी समान उनका सब उत्साह नष्ट होजायगा६ यह महाबाहु कृष्ण सब पाण्डवोंका सुख देनेवाला और उनका कवच (बख्तर) रूप है, इस लिए सब यादवोंमें श्रेष्ठ और पाण्डवोंको वर देनेवाले कृष्णको कैद करलेने पर सब पाण्डव सोमक राजाओं सहित उत्साहहीन होजायँगे ॥ ७ ॥ इस कारण हम इस शीघ्रतासे काम करने वाले कृष्णको यहाँ ही कैद करके शत्रुओंके साथ लड़ेंगे,राजा धृतराष्ट्र तो ऐसे बकबकाया ही करेंगे ॥ ८ ॥ दूसरोंके मनकी बातको इङ्गित (इशारे) से परख लेनेवाले विद्वान् सात्यकीने उन दुष्टचित्त पापियों के पाप भरे अभिप्रायको झट जान लिया ॥ ९ ॥ और इस दुष्ट अभिप्रायको जानते ही सभामेंसे बाहर निकलकर हृदीकके पुत्र कृतवर्मासे मिलकर उससे कहा, कि—तुम शीघ्रही सेनाको तयार करो ॥ १० ॥ जबतक मैं उत्तम कर्म करनेवाले श्रीकृष्णसे यह समाचार कहूँ इतनेमें

यावदाख्याम्यहं चैतत् कृष्णायाक्लिष्टकारिणे । स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव ॥ १२ ॥ आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने । धृतराष्ट्रन्ततश्चैव विदुरञ्चान्वभाषत ॥ १३ ॥ तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव । धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म्म साधुविगर्हितम् ॥१४॥ मन्दाः कर्त्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथञ्चन । पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ॥ १५ ॥ धर्षिताः काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः । इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः ॥१६॥ पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः । सात्यकेस्तद्वचः श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ॥ १७ ॥ धृतराष्ट्रं महाबाहुमब्रवीत् कुरुसंसदि । राजन् परीतकालास्ते पुत्राः सर्वे परन्तप ॥ १८ ॥ अशक्यमयशस्यञ्च कर्त्तुं कर्म समुद्यताः । इमं हि पुण्डरीकाक्षमभिभूय प्रसह्य च॥१९॥गृहीतुं हि किलेच्छन्ति सहिता वासवानुजम् । इमं पुरुषशार्दूलमप्रधृष्यं दुरास-

---

ही तुम सेनाको व्यूहकी रीतिसे लगाकर और स्वयं कवच पहरकर सभाके द्वारपर आजाओ ॥११॥ जैसे सिंह गुफामें घुसता है तैसे ही उस वीरने सभामें घुसकर महात्मा श्रीकृष्णजीसे उनका वह अभिप्राय कहा ॥ १२ ॥ और तदनन्तर धृतराष्ट्र तथा विदुरजीसे बातें करने लगा और मुसकुराते हुए उनके ऐसे अभिप्रायको भी कहा कि—१३ जो काम (दूतको कैद करना) धर्म अर्थ और कामके विरुद्ध तथा श्रेष्ठ पुरुषोंमें निन्दित है उस कामको ये मूर्ख यहाँ करना चाहते हैं परन्तु इस कामको ये कभी भी नहीं कर सकेंगे॥१४॥ स्वार्थ और वैरभावसे दबेहुए तथा क्रोध लोभके वशमें हुए ये पापात्मा मूर्ख इकट्ठे होकर पहिले ही कलह करनेको उद्यत होगए हैं ॥ १५ ॥ जैसे बालक और मूढ जलते हुए अग्निको वस्त्रमें बाँधे तैसे ही ये क्षुद्र चित्तवाले इन पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णको बाँधना चाहते हैं ॥१६॥ सात्यकीको इस बातको सुनकर दूरकी बातको समझने वाले विदुरजीने कौरवोंकी सभामें महाबाहु राजा धृतराष्ट्रसे कहा,कि—॥१७॥ हे शत्रुतापी राजन्! तुम्हारे पुत्रोंको कालने घेर लिया है, तभी तो यह न होसकने वाला और अपयश देनेवाला काम करनेको उद्यत हुए हैं ॥ १८ ॥ सुना है, कि—यह इकट्ठे होकर इन पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णका तिरस्कार करके इन इन्द्रके भ्राताको जोरावरी कैद करना चाहते हैं ॥ १९ ॥ परन्तु पुरुषोंमें सिंहकी समान और जिनका कोई भी तिरस्कार न करसके ऐसे श्रीकृष्णके पास पहुँचते ही जैसे अग्निके पास आकर पतङ्ग नष्ट

दम् ॥२०॥ आसाद्य न भविष्यन्ति पतङ्गा इव पावकम् । अयमिच्छन् हि तान् सर्वान् युध्यमानान् जनार्दनः ॥ २१ ॥ सिंहो नागानिव क्रुद्धो गमयेद्यमसादनम् । न त्वयं निन्दितं कर्म कुर्यान् पापं कथञ्चन ।२२। न च धर्मादपक्रामेदच्युतः पुरुषोत्तमः ।विदुरेणैवमुक्ते तु केशवो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ धृतराष्ट्रमभिसम्प्रेक्ष्य सुहृदां शृण्वतां मिथः । राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा ॥२४॥ एते वा मामहं चैनाननुजानीहि पार्थिव । एतान् हि सर्वान् संरब्धान्नियन्तुमहमुत्सहे ॥२५॥ न त्वहं निन्दितं कर्म कुर्यां पापं कथञ्चन । पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थान् हास्यन्ति ते सुताः ॥ २६ ॥ एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः । अद्यैव ह्यहमेतांश्च ये चैतानतु भारत ॥ २७ ॥ निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत् । इदन्तु न प्रवर्त्तेयं निन्दितं कर्म भारत ॥ २८ ॥ सन्निधौ ते महाराज क्रोधजं पापबुद्धिजम् । एष

होजाते हैं तैसे ही यह भी नष्ट होजायँगे ॥ २० ॥ यह जनार्दन कृष्ण क्रोधमें भरते ही यदि चाहें तो जैसे क्रोधमें भरा हुआ सिंह हाथियों को यमपुरीमें पहुँचा देता है तैसे ही इन युद्ध करते हुए सबोंको यम के घर पहुँचा सकते हैं ॥ २१ ॥ परन्तु यह अटल स्वभाव वाले श्रीकृष्ण निन्दा कराने वाला पापका काम कभी नहीं करेंगे तथा धर्मकी मर्यादासे भी नहीं डिग सकते ॥ २२ ॥ विदुरजीके ऐसा कहने पर केशव कृष्णने राजा धृतराष्ट्रकी ओरको देखा, तब तो जितने संबंधी बैठे थे वे सब एक दूसरेकी ओरको देखकर सुनने लगे, उस समय श्रीकृष्णने कहा, कि-॥ २३ ॥ हे राजन् ! जब कि-यह क्रोधमें भरकर मुझे जोरावरी कैद करना ही चाहते हैं तो हे महाराज ! आप आज्ञा दीजिए और देखिए कि-यह मुझे कैद करते हैं या मैं इनको बाँधे लेता हूं ॥२४॥ मेरे चित्तमें तो यह उभार आता है, कि-इन क्रोधमें भरे हुए सबोंको पकड़कर बाँध लूँ, परन्तु क्या करूँ निंदा करानेवाले पापकर्म को किसी प्रकार भी नहीं करसकता ॥२५॥ तुम्हारे यह पुत्र पांडवोंके धनको पचाजानेका लोभ करते हुए अपने भी धनको खो बैठेंगे यदि यह ऐसा करना चाहते हैं तो समझ लो, कि-युधिष्ठिरका काम सिद्ध होगया२६ हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! यदि मैं इसी समय इनको और जो इनके साथी हैं उनको भी कैद करके पांडवोंको सौंपदूँ तो क्या कोई मेरे इस कामको दुष्कर्म बतावेगा२७परंतु हे भरतवंशी महाराज ! मैं तुम्हारे समीपमें क्रोधसे तथा पापबुद्धिसे उत्पन्न हुए इस निंदित काम

दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथास्तु तत् ॥ २९ ॥ अहन्तु सर्वांस्तन-याननुजानामि ते नृप । एतच्छ्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥ क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम् ॥३०॥ सह मित्रं सहामात्यं सहोदर्यं सहानुगम् । शक्नुयां यदि पन्थानमवतारयितुं पुनः ॥३१॥ ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत् सभाम् । अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम् ॥ ३२ ॥ अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्य-भाषत । कर्णदुःशासनाभ्याञ्च राजभिश्चाभिसंवृतम् ॥ ३३ ॥ नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान् । पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकी-र्षसि ॥ ३४ ॥ अशक्यमयशस्यञ्च सद्भिश्चापि विगर्हितम् । यथा त्वादृशको मूढो व्यवस्येत् कुलपांसनः ॥ ३५ ॥ त्वमिमं पुण्डरीकाक्ष-मप्रधृष्यं दुरासदम् । पापैः सहायैः संहत्य निगृहीतुं किलेच्छसि॥३६॥ यो न शक्यो बलात् कर्तुं देवैरपि सवासवैः । तं त्वं प्रार्थयसे मन्द

को करनेमें प्रवृत्त नहीं होऊँगा॥२८॥हे राजन्! यह दुर्योधन जैसा करना चाहता है तैसा काम भलेही होय! हे राजन्! मैं स्वयं तुम्हारे पुत्रोंको ऐसा करनेकी आज्ञा देता हूँ॥२९॥यह सुनकर धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा, कि-तुम राज्यके लोभी पापी दुर्योधनको शीघ्र ही लिवा लाओ ॥३०॥ कदाचित् मैं फिर भी मंत्रियों, मित्रों, भाइयों तथा अनुयायियों सहित उसको मार्ग पर लासकूँ ॥३१॥ तदनन्तर विदुरजी दुर्योधनके पास गए वह आना नहीं चाहता था तो भी उसको फिर सभामें लिवा लाये उस समय उसके सब भाई साथमें थे और अनेकों राजे चारों ओरसे घेरे हुए थे ॥३२॥ तब कर्ण दुःशासन और अनेकों राजाओंसे घिरे हुए दुर्योधनसे राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि-॥ ३३ ॥ अरे नृशंस! महापापी! क्षुद्र कर्मवालोंकी सहायता वाले दुर्योधन! तू अपने सहा-यक पापियोंके साथ मिल कर पापकर्म करना चाहता है ? ॥ ३४ ॥ तुझ सरीखा कुलकलङ्क मूर्ख पुरुष जो कुछ भी करनेका विचार करेगा, वह कभी सिद्ध नहीं होसकेगा और उससे उलटा अपयश ही मिलेगा तथा सत्पुरुष सदा उस कामकी निन्दा ही करेंगे ॥ ३५ ॥ इन कमलनयन श्रीकृष्णका तिरस्कार करना तो दूर रहा, खोटे विचारसे कोई इनके पास तक भी नहीं पहुँच सकता, इन श्रीकृष्णको मैंने सुना है, कि—तू अपने पापी सहायकोंके साथ मिल कर कैद करना चाहता है ? ॥ ३६ ॥ अरे मूढ! जिनके ऊपर जोरावरी इन्द्र सहित देवता भी नहीं कर सकते उनको तू पकड़ना चाहता है, यह

बालश्चन्द्रमसं यथा ॥३७॥ देवैर्मनुष्यैर्गन्धर्वैरसुरैरुरगैश्च यः। न सोढुं समरे शक्यस्तं न बुध्यसि केशवम् ॥ ३८ ॥ दुर्ग्राह्यः पाणिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी। दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्ग्राह्यः केशवो बलात् ॥ ३९॥ इत्युक्ते धृतराष्ट्रेण क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत्। दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम् ॥ ४० ॥ विदुर उवाच ॥ दुर्योधन निबोधेदं वचनं मम साम्प्रतम्। सौभद्वारे वानरेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः। शिलावर्षेण महताच्छादयामास केशवम् ॥४१॥ ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम्। ग्रहीतुं नाशकच्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥४२॥ प्राग्ज्योतिषगतं शौरिं नरकः सह दानवैः। ग्रहीतुं नाशकत्तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४३ ॥ अनेकयुगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृधे। नीत्वा कन्यासहस्राणि उपयेमे यथाविधि ॥४४॥ निर्मोचने षट्सहस्राः पाशैर्बद्धा महासुराः। गृहीतुं नाशकंश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४५ ॥

तेरा साहस ऐसा है, जैसे बालक चन्द्रमाको पकड़ना चाहे ॥ ३७ ॥ अरे ! जिनको संग्राममें देवता, मनुष्य, गन्धर्व असुर और नाग कोई भी नहीं सह सकते उन केशवके प्रभावको तू नहीं जानता है ॥ ३८ ॥ पवन हाथसे नहीं पकड़ा जासकता, चन्द्रमा हाथसे नहीं छुआ जा सकता, पृथ्वी शिर पर नहीं धरी जा सकती तैसे ही श्रीकृष्ण चाहे जितने बलसे भी कैद नहीं किये जासकते ॥ ३९ ॥ इस प्रकार धृतराष्ट्रके कह चुकने पर विदुरजी भी क्रोधी दुर्योधनकी ओरको देख कर कहने लगे, ॥ ४० ॥ विदुरजी बोले, कि हे दुर्योधन ! अब तू मेरी इस बातको सुन ले, कि-सौभ नगरके द्वार पर एक द्विविद नामका बड़ा भारी वानर रहता था, उसने पत्थरोंको बड़ी भारी मार देकर श्रीकृष्णको ढक दिया था ॥४१ ॥ और जब नगरके [illegible] प्रयत्न करके इन कृष्णको कैद करना चाहा था, परन्तु वह इनको कैद कर नहीं सका, उन कृष्णको तू बलात्कारसे कैद करना चाहता है ? ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण प्राग्ज्योतिष नामके नगरमें गये थे तहाँ दानवोंको साथमें लिये हुए नरकासुरने श्रीकृष्णको कैद करनेका विचार किया था, परन्तु वह भी इनको कैद नहीं कर सका था, ऐसे कृष्णको तू बलात्कारसे कैद करना चाहता है ? ॥४३॥ अनेकों युगोंके वर्षोंकी आयु वाले श्रीकृष्णने वहाँ नरकासुरका नाश करके उसके अन्तःपुरमेंसे सहस्रों कन्याओंको लाकर उनके साथ शास्त्रकी विधिसे विवाह किया था ॥ ४४ ॥ इन श्रीकृष्णने निर्मोचन नामके नगरमें छः सहस्र बड़े २ असुरोंको पाशियों

अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा। गोवर्द्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥ ४६ ॥ अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः। अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन् ॥४७॥ जरासन्धश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्य्यवान्। बाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः ४८ वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा। पारिजातञ्च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः ॥४९॥ एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ। जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः ॥ ५० ॥ अयं कर्त्ता न क्रियते कारणञ्चापि पौरुषे। यद्यदिच्छेदयं शौरिस्तत्तत् कुर्यादयत्नतः ॥५१॥ तं न बुध्यसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम्। आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम् ॥ ५२ ॥ प्रधर्षयन्महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्। पतङ्गोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यसि ॥ ५३ ॥

से कैद कर लिया था, परन्तु वह असुर केशवको कैद नहीं कर सके थे उन कृष्णको तू बलात्कारसे कैद करना चाहता है ॥ ४५ ॥ हे भरतसत्तम राजन्! इन श्रीकृष्णने बालकपनमें पूतना और बकासुरको मार डाला था, गौओंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्धनको हाथ पर धर लिया था॥४६॥ और अपनेको दुःख देनेकी चेष्टा करते हुए वृषभासुर धेनुकासुर, महाबली चाणूर, केशी और कंसको भी इन्होंने मार डाला था ॥ ४७ ॥ जरासन्ध, दन्तवक्त्र, पराक्रमी शिशुपाल और बाणासुरको भी मार डाला था तथा इन्होंने संग्राममें अनेकों राजाओंका भी संहार किया है ॥ ४८ ॥ और अपारबली इन श्रीकृष्णने राजा वरुणको जीत लिया था, अग्निको भी जीत लिया था तथा पारिजातक हरण करते समय साक्षात् इंद्रको भी जीत लिया था॥ ४९ ॥ और इन ही केशवने एकाकार हुए महासागरमें शयन करते समय मधु कैटभ नामके असुरोंको मारा था और दूसरे जन्ममें वेदोंका हरण करने वाले हयग्रीव नामके दैत्यको भी मारा था ॥ ५० ॥ यह श्रीकृष्ण सब कार्योंके कर्त्ता हैं, परन्तु यह किसीके वशमें रह कर कुछ नहीं करते हैं तथा यह सकल पुरुषार्थमें कारणरूप होकर भी जो जो काम करना चाहते हैं उस कामको बिना ही प्रयत्नके कर लेते हैं ॥५१॥ तूने अभी गोविन्दको पहिचाना नहीं है यह कोपमें भरे हुए विषधर सर्पकी समान भयानक पराक्रम करने वाले दृढ़प्रतिज्ञ, तेजके ढेररूप और शुद्धचरित्र हैं ॥५२॥ तू यदि उत्तम कर्म करने वाले महाबाहु श्रीकृष्णका अपमान करेगा तो जैसे पतङ्गे अग्निमें गिर कर मर जाते हैं तैसे ही तू भी अपने मंत्रियों सहित इस संसारसे उठ जायगा ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच । विदुरेणैवमुक्तस्तु केशवः शत्रुपूगहा । दुर्य्योधनं धार्त्तराष्ट्रमभ्यभाषत वीर्य्यवान् ॥१॥ एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन । परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मा चिकीर्षसि ॥ २ ॥ इहैव पाण्डवाः सर्वे तथैवान्धकवृष्णयः । इहादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः ॥ ३ ॥ एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा । तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः ॥४॥ अङ्गुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः । अस्य ब्रह्मा ललाटस्थो रुद्रो वक्षसि चाभवत् ॥५॥ लोकपाला भुजेष्वासन्नग्निरास्यादजायत । आदित्याश्चैव साध्याश्च वसवोऽथाश्विनावपि ॥६॥ मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवास्तथैव च । बभूवुश्चैकरूपाणि यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥७॥ प्रादुरास्तां तथा दोर्भ्यां सङ्कर्षणधनञ्जयौ । दक्षिणेऽथार्जुनो धन्वी हली रामश्च सव्यतः ॥ ८ ॥ भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः । अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमु-

---

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! विदुरजीने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा, तब शत्रुमण्डलका संहार करने वाले पराक्रमी केशवने धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा, कि-॥१॥ अरे महादुष्टबुद्धि दुर्योधन ! तू अज्ञानके कारण यह समझ रहा है, कि-मैं अकेला हूँ और इस कारण मेरा पराजय करके मुझे कैद करना चाहता है ?॥२॥ परन्तु तुझे मालूम नहीं है, कि—सब पाण्डव, सब अन्धक और सब वृष्णि यहाँ ही हैं तथा आदित्य देवता रुद्र, वसु और सब महर्षि भी यहाँ ही हैं ॥ ३ ॥ ऐसा कह कर शत्रुओंका संहार करने वाले श्रीकृष्णजी ज्यों ही खिलखिला कर हँसने लगे, कि-उन महात्माके सब अङ्गोंमें बिजलीकी समान चमकती हुई कांति वाले ब्रह्मादिक सब देवता दीखने लगे उन सब देवताओंकी काया अँगूठेकी समान थी वह अपने शरीरोंमेंसे अग्निकीसी चिनगारियें छोड़रहे थे ब्रह्मा उनके ललाटमें और रुद्र वक्षःस्थलमें थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ भुजाओंमेंसे लोकपाल हुए मुख मेंसे अग्नि प्रकट हुआ, आदित्य, साध्य, वसु और अश्वनीकुमार हुए ॥ ६ ॥ इन्द्र सहित उनंचास पवन, सब देवता, विश्वेदेवा, यक्ष, गंधर्व, किन्नर और राक्षस ये सब अपना २ रूप धारण करके श्रीकृष्णके जुदे २ अङ्गोंमें दीखने लगे ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णकी दोनों भुजाओंमें से बलदेवजी तथा अर्जुन प्रकट होगये, उनमेंसे अर्जुन धनुषको धारण किये श्रीकृष्णके दाहनी ओर तथा बलदेवजी हल लियेहुए बाईं ओर खड़े होगए ॥ ८ ॥ भीमसेन युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न आदि

खास्ततः ॥ ९ ॥ अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः । शंखचक्र-गदाशक्तिशार्ङ्गलाङ्गलनन्दकाः ॥ १० ॥ अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च । नानाबाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः॥११॥ नेत्राभ्यां नस्ततश्चैव श्रोत्राभ्याञ्च समन्ततः । प्रादुरासन्महारौद्राः सधूमाः पावकार्चिषः ॥ १२ ॥ रोमकूपेषु च तथा सूर्यस्येव मरीचयः । तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः ॥ १३ ॥ न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः । ऋते द्रोणंच भीष्मञ्च विदुरञ्च महामतिम् १४ सञ्जयञ्च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान् । प्रादात्तेषां स भगवान् दिव्यञ्चक्षुर्जनार्दनः ॥१५॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं माधवस्य सभातले । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षं पपात च ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्र उवाच । त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हितः । तस्मात् त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्त्तुमर्हसि ॥ १७ ॥ भगवन्मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः । भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि नान्यं द्रष्टुमिहोत्सहे ॥ १८ ॥ ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृत-

अन्धक राजे और वृष्णि श्रीकृष्णको पीठमेंसे उत्पन्न होगये ९ तथा वह अपने अस्त्र शस्त्र उठाकर श्रीकृष्णके आगे खड़े होगये, शङ्ख, चक्र, गदा शक्ति, शार्ङ्ग धनुष, हल और नन्दक खड्ग आदि सब दमकते हुए अस्त्र भी उस समय श्रीकृष्णके सहस्रों हाथोंमें उठे हुएसे दीखने लगे ॥ १०-११ ॥ और श्रीकृष्णके दोनों नेत्रोंमेंसे, नासिकाके छिद्रोंमें से और कानोंके छिद्रोंमेंसे इसी प्रकार चारों ओरके छिद्रोंमेंसे धुएँ वाले महाभयानक अग्निकी लपटें प्रकट होने लगीं तथा रोमकूपोंमेंसे सूर्यकी किरणें निकलने लगीं महात्मा कृष्णके ऐसे भयानक रूपको देख कर ॥ १२-१३ ॥ सब राजे भयके मारे मनमें घबड़ा गये, और उन्होंने अपनी २ आँखें मूँद लीं, परन्तु द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, महाबुद्धिमान् विदुरजी महाभाग सञ्जय और तपको ही धन मानने वाले ऋषियोंकी ऐसी दशा नहीं हुई, क्योंकि—उनको भगवान् कृष्ण ने दिव्य दृष्टि देदी थी ॥ १४—१५ ॥ सभामें महात्मा श्रीकृष्णके ऐसे महाआश्चर्यकारी कर्मको देख कर देवताओंकी दुन्दुभी बजने लगीं और आकाशमेंसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ १६ ॥ उस समय राजा धृतराष्ट्रने कहा, कि—हे पुण्डरीकाक्ष ! तुम ही सकल जगत्का हित करने वाले हो, इस लिये हे यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण ! आपको मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! आप मुझे दिव्य नेत्र दीजिये उन नेत्रोंसे मैं केवल आपका ही दर्शन करना चाहता हूँ और किसी

राष्ट्रं जनार्दनः । अदृश्यमाने नेत्रे द्वे भवेतां कुरुनन्दन ॥१९॥ तत्राद्भुतं महाराज धृतराष्ट्रस्य चक्षुषी । लब्धवान् वासुदेवाच्च विश्वरूपदिदृक्षया २० लब्धचक्षुषमासीनं धृतराष्ट्रं नराधिपाः । विस्मिता ऋषिभिः सार्धं तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ २१ ॥ चचाल च मही कृत्स्ना सागरश्चापि चुक्षुभे । विस्मयं परमं जग्मुः पार्थिवा भरतर्षभ ॥ २२ ॥ ततःस पुरुषव्याघ्रः सञ्जहार वपुः स्वकम् । तां दिव्यामद्भुतां चित्रामृद्धिमत्तामरिंदमः ॥ २३ ॥ ततः सात्यकिमादाय पाणौ हार्दिक्यमेव च । ऋषिभिस्तैरनुज्ञातो निर्ययौ मधुसूदनः ॥ २४ ॥ ऋषयोऽन्तर्हिताः जग्मुस्ततस्ते नारदादयः । तस्मिन् कोलाहले वृत्ते तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥ तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य कौरवाः सह राजभिः । अनुजग्मुर्नरव्याघ्रं देवा इव शतक्रतुम् २६अचिंतयन्नमेयात्मा सर्वं तद्राजमण्डलम् । निश्चक्राम

को नहीं देखना चाहता इसलिये आप मेरे उन नेत्रोंको फिर अंतर्धान करदेना, यह मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ ॥ १८ ॥ यह सुन कर महाबाहु श्रीकृष्णने धृतराष्ट्रसे कहा, कि—हे कुरुनन्दन ! ठीक है, तुम्हारे दो नेत्र हों और वह किसीको दीखें नहीं ॥ १९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार धृतराष्ट्रने श्रीकृष्णका विश्वरूप देखनेकी इच्छासे श्रीकृष्णजीसे दो नेत्र पाये थे, उस सभामें यह बड़े अचरजकी बात हुई थी २० नेत्र पाकर सभामें बैठे हुए धृतराष्ट्रको देख कर ऋषियों सहित सब राजे बड़े अचरजमें हुए श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे थे ॥ २१ ॥ हे भरतसत्तम ! उस समय पृथिवी डगमगा गयी और समुद्र खलभला उठा यह देख कर सब राजे सब बड़े अचरजमें पड़ गए ॥ २२ ॥ तदनन्तर पुरुषसिंह शत्रुदमन श्रीकृष्णने अपने दिव्य—शरीरको तथा दिव्य, अद्भुत और चित्र विचित्र अपनी प्रभुताको समेट लिया और ऋषियोंकी आज्ञा लेकर श्रीकृष्णजी सात्यकी और कृतवर्माका हाथ पकड़ेहुए सभाभवनमेंसे उठकर चले गये।२४। नारदादि ऋषि भी तत्काल उस सभामें ही अन्तर्धान होगये, इस कोलाहलके होते समय वहाँ एक बात बड़े आश्चर्यमें डालने वाली हुई थी॥२५॥ ज्यों ही श्रीकृष्ण उस सभामेंसे उठ कर चले, कि—जैसे देवताओंकी मण्डली इंद्रके पीछे २ जाती है तैसे ही सब कौरव भी आगन्तुक राजाओंके साथ उठकर श्रीकृष्णजीके पीछे२ आने लगे ॥ २६ ॥ परंतु धुएँ वाले अग्निकी समान दीखतेहुए और जिनके स्वरूपका पार नहीं पाया जाता ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् उस सब राजमण्डलीकी ओरको

ततः शौरिः सधूम इव पावकः २७ ततो रथेन शुभ्रेण महता किंकिणी- किना।हेमजालविचित्रेण लघुना मेघनादिना२८सूपस्करेण शुभ्रे ण वैया- घ्रे ण वरूथिना। शैब्यसुग्रीवयुक्तेन प्रत्यदृश्यत दारुकः ॥ २९ ॥ तथैव रथमास्थाय कृतवर्मा महारथः। वृष्णीनां सम्मतो वीरो हार्दिक्यः समदृश्यत ॥३०॥ उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिन्दमम्। धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत ॥३१॥ यावद्बलं मे पुत्रेषु पश्यतस्ते जना- र्दन। प्रत्यक्षन्ते न ते किञ्चित् परोक्षं शत्रुकर्शन ॥ ३२ ॥ कुरूणां शम- मिच्छन्तं यतमानञ्च केशव। विदित्वैतामवस्थां मे नाभिशंकितुमर्हसि३३ न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान् प्रति केशव। ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः३४ जानन्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः।

दृष्टि भी न करके उस सभाभवनमेंसे बाहर निकल आये २७ तदनं- तर दारुक नामका सारथी दिव्य रथको लेकर श्रीकृष्णके पास खड़ा हुआ दीखने लगा, वह रथ स्वेत रंगका था, उसके चारों ओर घंटियें और सोनेकी झालरें लटकादी गयीं थीं, इस कारण वह बड़ा ही विचित्र दीखता था, वह रथ तोलमें हलका था परन्तु चलते में उसकी ध्वनि मेघके गरजनेकीसी होती थी, सब प्रकारकी युद्धकी सामग्रियें उसमें भरी हुई थीं, उसके ऊपर सिंहकी खाल मढी हुई थी उस रथकी चारों ओरसे रक्षाकी हुई थी और शैब्य सुग्रीव आदि नामके चार घोडे उसमें जुड़े हुए थे, ऐसे उत्तम रथमें श्रीकृष्णजी बैठ गये ॥ २८—२९ ॥ तथा वृष्णियोंका मान्य, हृदीकका पुत्र वीर और महारथी कृतवर्मा भी अपने रथ पर चढता हुआ देखनेमें आया ।३०। शत्रुओंका दमन करने वाले शूरवंशी श्रीकृष्ण रथमें बैठकर ज्योंही जानेको तयार हुए कि-महाराज धृतराष्ट्र उनसे फिर कहने लगे कि-३१ हे जनार्दन ! मेरा अपने पुत्रोंके ऊपर कितना जोर चलता है,इस बात को आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया,हे शत्रुओंका संहार करनेवाले कृष्ण! आपसे कोई बात छिपी नहीं है ॥ ३२ ॥ हे केशव ! मैं चाहता हूँ, कि- कौरव और पाण्डवोंमें मेल होजाय और इसके लिए उद्योग भी करता हूँ, परन्तु मेरी इस दशाको देखकर अब आपको मेरे ऊपर सन्देह नहीं करना चाहिए। ३३ । हे केशव ! मेरा पाण्डवोंकी ओरको पापी विचार नहीं है इस विषयमें मैंने दुर्योधनसे जो हितकी बात कही है उसको आप जानते ही हैं ॥ ३४ ॥ हे माधव ! मैं सब प्रकारके उद्योग से कौरव पाण्डवोंमें सन्धि करानेका उद्योग करता हूँ उसको सब

शमे प्रयत मानं मां सर्वयत्नेन माधव ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः । द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम् ॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षमेतद्भवतां यद्वृत्तं कुरुसंसदि । यथा चाशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः ॥३७॥ वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः । आपृच्छे भवतः सर्वान् गमिष्यामि युधिष्ठिरम् ॥३८॥ आमन्त्र्य प्रस्थितं शौरिं रथस्थं पुरुषर्षभ । अनुजग्मुर्महेष्वासाः प्रवीरा भरतर्षभाः ॥३९॥ भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता धृतराष्ट्रोऽथ बाह्लिकः । अश्वत्थामा विकर्णश्च युयुत्सुश्च महारथः ॥ ४० ॥ ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना । कुरूणां पश्यतां प्रायाद् पृथां द्रष्टुं पितृष्वसाम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विश्वरूप-
दर्शन एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च । आचख्यौ तत् समासेन यद् वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १ ॥ वासुदेव उवाच ।

कौरव तथा राजे जानते हैं । ३५ । वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनंतर महाबाहु श्रीकृष्णने धृतराष्ट्र द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, विदुर राजा बाह्लीक और कृपाचार्यसे कहा कि—॥ ३६ ॥ मूर्ख दुर्योधनको कौरवों की सभामें समझाया था, तो भी वह नीच मनुष्यकी समान क्रोधके मारे आज सभामेंसे उठकर चला गया तथा और जो कुछ घटना हुई वह सब आप लोगोंने प्रत्यक्ष देखी है ॥३७॥ और यह राजा धृतराष्ट्र कहते हैं कि—इस विषयमें मेरी कुछ चलती ही नहीं, इस बातको भी आप सुन ही रहे हैं, इस लिए अब मैं आप सब लोगोंकी आज्ञा लेकर राजा युधिष्ठिरके पास जाऊँगा ॥ ३८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ राजन् ! श्रीकृष्ण जो सबकी आज्ञा ले रथमें बैठकर चले ही थे, कि—महाधनुषधारी और वीर भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर, धृतराष्ट्र, बाल्हीक, अश्वत्थामा, विकर्ण और महारथ युयुत्सु आदि भरतवंशके बड़े २ योधा श्रीकृष्णजीके पीछे २ उनका मान रखनेके लिए थोड़ी दूर तक गए ॥ ३९—४० ॥ और श्रीकृष्ण भी उन सब वीर कौरवोंके देखते हुए घुँघुरुओं वाले श्वेत रङ्गके बड़े भारी रथमें बैठकर अपनी बुआ कुन्तीसे मिलनेके लिए उसके राजमहलमें गए ॥ ४१ ॥ एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३१ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! श्रीकृष्णजी कुन्तीके घर गए और उनके चरणोंमें प्रणाम करके कौरवोंकी सभामें जो बात हुई

उक्तं बहुविधं वाक्यं ग्रहणीयं सहेतुकम् । ऋषिभिश्चैव च मया न चासौ तद् गृहीतवान् ॥२॥ कालपक्वमिदं सर्वं सुयोधन वशानुगम् । आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान् प्रति ॥३॥ किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया । तद् ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव ॥ ४ ॥ कुन्त्युवाच । ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ ५ ॥ श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः । अनुवाकहता बुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते ।६। अङ्गावेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयम्भुवा । बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः ७ क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने । शृणु चात्रोपमामेकां या वृद्धेभ्यः श्रुता मया ॥८॥ मुचुकुन्दस्य राजर्षेरददत् पृथिवीमिमाम् । पुरा वै श्रवणः प्रीतो न चासौ तद् गृहीतवान् ॥ ९ ॥

थी, उसको संक्षेपमें कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण बोले, कि–हे कुन्तीजी! मैंने तथा ऋषियोंने दृष्टान्तोंसे युक्ति और मानने योग्य अनेकों बातें कहीं, परन्तु दुर्योधनने उनको नहीं माना ॥२॥ इसलिए मुझे मालूम होता है कि दुर्योधनके अनुयायी इन सब लोगोंको कालने घेर लिया है, इस कारण ये हितकी बातोंको नहीं सुनते हैं, अब मैं आपसे आज्ञा माँगूँगा और तुरन्त पाण्डवोंके पास जाऊँगा ॥ ३ ॥ मुझे तुम्हारे कहनेके अनुसार पाण्डवोंसे क्या कहना चाहिए ? हे महाबुद्धिमती ! यह तुम मुझसे कहो, मैं तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ कुंती बोली कि–हे केशव ! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे कहना, कि–तुम्हारा पृथिवीकी रक्षा करना रूप बड़ाभारी क्षत्रियका धर्म दिन पर दिन नष्ट होता चला जाता है, इस लिए हे बेटा ! तू क्षत्रियधर्मको वृथा न जाने दे ॥५॥ हे राजन् ! जैसे अर्थके ज्ञानसे हीन मूर्ख वेदपाठी की बुद्धि वेदके अक्षरोंकी अत्यन्त आवृत्ति करनेसे टकराकर एक धर्मको ही देखती है, ऐसे ही तुम्हारी बुद्धि भी केवल एक धर्मको ही देखती है ॥ ६ ॥ हे पुत्र ! ब्रह्माने तुझे जिस कामके लिए उत्पन्न किया है, तू अपने उस धर्मकी ओरको देख, ब्रह्माने क्षत्रियको अपने दोनों भुजदण्डोंसे उत्पन्न किया है, इसलिये क्षत्रिय अपने बाहुबलसे अपनी आजीविका करता है ॥७॥ उसमें भी प्रजाओंका पालन करनेमें प्रायः क्रूरकर्म ही करना पड़ता है, इस विषयमें वृद्धोंके मुखसे एक बात सुनी है, उसको तू सुन ॥ ८ ॥ पहिले कुबेरने प्रसन्न होकर राजर्षि मुचुकुन्दको सब पृथ्वी दे डाली; परन्तु उस राजाने वह ली नहीं ॥९॥

बाहुवीर्यार्जितं राज्यमश्नीयामिति कामये। ततो वैश्रवणः प्रीतो विस्मितः समपद्यत ॥ १० ॥ मुचुकुन्दस्ततो राजा सोऽन्वशासद्वसुन्धराम्। बाहुवीर्यार्जितां सम्यक् क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ११ ॥ यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः। चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा विन्दति भारत ॥१२॥ राजा चरति चेद्धर्मं देवत्वायैव कल्पते। स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति ॥ १३ ॥ दण्डनीतिश्च धर्मेभ्यश्चातुर्वर्ण्यं नियच्छति। प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यश्च यच्छति ॥ १४ ॥ दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कात्स्न्र्येन वर्तते। तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्त्तते ॥ १५ ॥ कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्। इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥१६॥ राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च। युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् ॥ १७ ॥ कृतस्य करणाद्राजा स्वर्गमत्यन्तमश्नुते। त्रेतायाः करणाद्राजा स्वर्गं नात्यन्तमश्नुते ॥ १८ ॥ प्रवर्त्तनाद् द्वापरस्य यथा-

---

और कहा, कि--मैं अपने बाहुबलसे जीते हुये राज्यसे आजीविका करना चाहता हूँ, परन्तु किसीकी दी हुई पृथ्वीसे आजीविका करने की मेरी इच्छा नहीं है यह सुनकर कुबेर प्रसन्न हुआ और आश्चर्य को प्राप्त हुआ ॥१०॥ इस मुचुकुन्द राजाने अपने बाहुबलसे क्षत्रिय धर्ममें तत्पर रहकर पृथ्वीका राज्य पाया और उसका पालन करने लगा ॥११॥ हे भरतवंशी! जिस राजासे भले प्रकार रक्षाकी हुई प्रजा जितना धर्माचरण करती है, उस धर्ममेंसे एक चौथा भाग राजाको मिलता है ॥ १२ ॥ यदि राजा स्वयं भी धर्माचरण करता है तो वह साक्षात् देवता ही होता है और यदि अधर्माचरण करता है तो वह नरकमें जा पड़ता है ॥१३॥ यदि राजा दण्डनीतिका भले प्रकार और पूर्णरीतिसे उपयोग करता है तो वह दण्डनीति चारों वर्णके मनुष्यों को अधर्ममें पड़नेसे रोककर उनको धर्मके मार्गमें लेजाती है ॥ १४ ॥ जब राजा दण्डनीतिमें भले प्रकार पूर्णरीतिसे प्रवृत्त होता है तब सत्ययुग नामका उत्तम समय वर्त्तने लगता है ॥१५॥ काल राजाको उलट पलट सकता है अथवा राजा कालको उलट पलट सकता है, इस विषयमें तुम सन्देह न करो राजाही कालका उलट पलट कर सकता है ॥ १६ ॥ सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुगको प्रवृत्त करने वाला राजा ही है १७ राजा सत्ययुगको प्रवृत्त करने पर पूर्णरीतिसे स्वर्गको पाता है परंतु त्रेतायुगको प्रवृत्त करनेसे पूर्णरीति

भागमुपाश्नुते । कलेः प्रवर्त्तनाद्राजा पापमत्यन्तमश्नुते ॥ १९ ॥ ततो वसति दुष्कर्मा नरके शाश्वतीः समाः । राजदोषेण हि जगत् स्पृश्यते जगतः स च ॥ २० ॥ राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान् । नैतद्राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि ॥ २१ ॥ नहि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्यव्यवस्थितः । प्रजापालनसंभूतं फलं किंचन लब्धवान् २२ अह्येनामाशिषं पाण्डुर्न चाहं न पितामहः । प्रयुक्तवन्तः पूर्वन्ते यया चरसि मेधया ॥ २३ ॥ यज्ञो दानं तपः शौर्यं प्रज्ञा सन्तानमेव च । माहात्म्यं बलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया ॥२४॥ नित्यं स्वाहा स्वधा नित्यं दद्युर्मानुषदेवताः । दीर्घमायुर्धनं पुत्रान् सम्यगाराधिताः शुभाः२५ पुत्रेष्वाशासते नित्यं पितरो दैवतानि च। दानमध्ययनं यज्ञः प्रजानां परिपालनम् ॥ २६ ॥ एतद्धर्ममधर्मं वा जन्म नैवाभ्यजायथाः

से स्वर्गको नहीं भोगता है१८द्वापरयुगको प्रवृत्त करनेसे स्वर्गका थोड़ा सा भाग पाता है और कलियुगको प्रवृत्त करनेसे तो महापापका भागी होता है १९ और फिर खोटे कर्म करनेवाला राजा अनन्त वर्षों तक नरकमें निवास करता है राजाका दोष जगत्‌को लगता है और जगत्‌का दोष राजाको लगता है ॥ २० ॥ इस लिये तू अपने बाप दादाके योग्य राजधर्मोंकी ओरको देख तू जिस आचरण पर रहता है वह राजर्षियोंका आचरण नहीं है ॥ २१ ॥ जो राजा विकलताको प्राप्त होकर दयाधर्ममें स्थित रहा है उस राजाने प्रजापालनसे मिलने वाले फलको कभी नहीं पाया है ॥ २२ ॥ तू इस समय जिस बुद्धिसे सन्तोषको पकड़ बैठा है, ऐसी बुद्धिके लिये पहिले राजा पाण्डुने तुझे आशीर्वाद नहीं दिया था, ऐसी बुद्धि मैंने भी नहीं सिखायी थी और पितामह व्यासजीने भी नहीं सिखायीथी२३मैंनेतोतुझे सदा यज्ञ,दान, तप, शूरता, प्रज्ञा, सन्तानकी उत्पत्ति, माहात्म्य, बल और आत्मबल प्राप्त करना ही सिखाया था और सदा उसका ही आशीर्वाद देती थी ॥ २४ ॥ उत्तम देवता और श्रेष्ठ मनुष्योंकी आराधना कीजाय तो वह बड़ाभारी आयु, धन और पुत्र देते हैं तथा परलोकके साधन स्वाहाकारके काम औरपितरोंके स्वधाकार्योंका उपदेश देते हैं ॥२५॥ और पितर तथा देवता नित्य क्षत्रिय पुत्रोंसे दान देना, वेदको पढना यज्ञ करना और प्रजाको पालन करना इतनी वस्तुओंकी इच्छा रखते हैं ॥ २६ ॥ यह धर्म हो चाहे अधर्म हो, परन्तु जबसे क्षत्रियके कुलमें तेरा जन्म हुआ है तबसे ही तू इन कर्मोंको करनेमें बँधा हुआ है, हे

ते तु वैद्यः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः ॥ २७ ॥ यत्र दानपतिं शूरं क्षुधिताः पृथिवीचराः । प्राप्य तुष्टाः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः ॥२८॥ दानेनान्यं बलेनान्यं तथा सूनृतया परम् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्राज्यं प्राप्येह धार्मिकः ॥२९॥ ब्राह्मणः प्रचरेद्भैक्षं क्षत्रियः परिपालयेत् । वैश्यो धनार्जनं कुर्याच्छूद्रः परिचरेच्च तान् ॥३०॥ भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते । क्षत्रियोऽसि क्षतात् त्राता बाहुवीर्योपजीविता ॥३१॥ पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर । साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाथ नयेन वा ॥ ३२ ॥ इतो दुःखतरं किन्तु यदहं हीनबान्धवा । परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वामित्रनन्दन ॥ ३३ ॥ युध्यस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान्।मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम् ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

तात कृष्ण ! मेरे पुत्र पाण्डव विद्वान् हैं और कुलीन हैं तो भी आजीविकाके विना पीड़ा करते हैं ॥ २७ ॥ जिसमें भूखे मनुष्य और राजा शरणमें आकर सन्तुष्ट होजायँ उस धर्मकी अपेक्षा दूसरा कौनसा धर्म श्रेष्ठ हो सकता है ? ॥ २८ ॥ धर्मात्मा पुरुष राज्य पाकर किसी को दानसे, किसीको बलसे और किसीको सत्य वाणीसे इस प्रकार सबको वशमें करे, ॥ २९ ॥ भिक्षा माँगना ब्राह्मणका धर्म है, क्षत्रिय प्रजाका पालन करे, वैश्य व्यापार करके धन इकट्ठा करे और शूद्र उन तीनों वर्णोंकी सेवा करे, ॥३०॥ भिक्षा माँगना तेरे लिए निषिद्ध है, खेती करना वैश्यका धर्म है इस कारण वह भी तुझे शोभा नहीं देसकता, तू तो क्षत्रिय है, तू तो प्रजाकी भयसे रक्षा करने वाला है और भुजाके बलसे आजीविका करनेवाला है ॥ ३१ ॥ हे महाबाहु ! तेरे पिताके राज्यका जो भाग शत्रुओंने हड़प लिया है उसको तू साम, दान, दण्ड, भेद इनमेंसे चाहे जिस उपायसे प्राप्त कर ॥ ३२ ॥ हे शत्रुओंको आनन्द देनेवाले पुत्र ! तुझ सरीखे पुत्रको उत्पन्न करने वाली और दीन कुटुम्बवाली मैं दूसरेके अन्नकी ओरको मुख उठाये देखती रहती हूँ इससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ? ॥ ३३ ॥ तू क्षत्रियके धर्मके अनुसार युद्ध कर, अपने पितामहोंको नरकमें न डाल तथा अपने भाइयों सहित पुण्यहीन होकर पापियोंकी गतिको प्राप्त न हो ॥ ३४ ॥ एकसौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३२ ॥

कुन्त्युवाच । अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । विदुलायाश्च संवादं पुत्रस्य च परन्तप ॥ १ ॥ ततः श्रेयश्च भूयश्च यथावद्वक्तुमर्हसि । यशस्विनी मन्युमती कुले जाता विभावरी ॥२॥ क्षत्रधर्मरता दान्ता विदुला दीर्घदर्शिनी । विश्रुता राजसंसत्सु श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ ३ ॥ विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् । निर्जितं सिन्धुराजेन शयानं दीनचेतसम् ॥ ४ ॥ विदुलोवाच । अनन्दन मया जातः द्विषतां हर्षवर्द्धन । न मया त्वं च पित्रा च जातः क्वाभ्यागतः ह्यसि ॥ ५ ॥ निर्मन्युश्चाप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीवसाधनः । यावज्जीवं निराशोसि कल्याणाय धुरं वह ॥ ६ ॥ मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः । मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंहर ॥ ७ ॥ उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः । अमित्रान्नन्दयन्सर्वान्निर्मानो बन्धुशो-

कुन्तीने कहा, कि-हे परन्तप कृष्ण ! इस विषयमें मैं तुम्हें विदुला नामकी एक क्षत्रियाणी और उसके पुत्रका संवादरूप एक पुराना इतिहास सुनाती हूँ जिसको पुराने लोग कहा करते है ॥ १ ॥ उसमें से जो बात युधिष्ठिरके हितकी हो वह उससे वार २ समझा कर कह देना, एक विदुला नामकी क्षत्रियाणी थी, वह बड़ी कीर्त्तिमती, दीनता रखनेवाली, क्रोधिनी, कुलीन टेढ़े स्वभावकी, क्षत्रिय धर्ममें तत्पर, जितेन्द्रिय, दूरकी बात समझ लेने वाली राजसभामें प्रसिद्ध, विद्या पढी और अनेकों शास्त्रोंको जानने वाली थी ॥ २—३ ॥ एक समय वह विदुला नामवाली क्षत्रियाणी सिन्धु देशके राजासे हारेहुए और इसी कारण मनमें खिन्न होकर सोये हुए अपने पेटके पुत्रको निन्दा करती हुई कहने लगी ॥४॥ विदुला बोली, कि-हे शत्रुओंके आनन्दको बढाने वाले और मुझे दुःख देने वाले पुत्र ! मुझे प्रतीत होता है कि तू मुझसे और अपने पितासे उत्पन्न नहीं हुआ है ! फिर तू आ कहाँ से गया ? ॥ ५ ॥ क्रोधहीन होनेके कारण तू क्षत्रियोंमें गिननेके योग्य नहीं है, तेरे भुजा आदि सब नपुंसकोंकेसे हैं, अरे ! जब तक शरीरमें प्राण हैं तब तक तू आशाको छोड़ बैठा, यह ठीक नहीं है, किन्तु तू कल्याणकारी कर्मके भारको उठा ॥ ६ ॥ अरे ! तू अपने आत्माका अपमान न कर और तू छोटी तथा तुच्छ वस्तुसे अपना निर्वाह न कर, तू अपने मनमें अच्छे कल्याणकी इच्छा रखकर भय न कर किंतु भयको त्याग दे ॥ ७ ॥ अरे कायर ! उठ कर खड़ा होजा, तू हारकर इस प्रकार शयन न कर, ऐसा करनेसे तू सब शत्रुओंको आनन्द दे

करः ॥ ८ ॥ सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः । सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति ॥ ९ ॥ अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज । अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेपि पराक्रमेः ॥१०॥ अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन् । विनदन् वाथवा तूर्ष्णीं व्योम्नीवापरिशङ्कितः ॥ ११ ॥ त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद्वज्रहतो यथा । उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा स्वाप्सीः शत्रुनिर्जितः ॥ १२ ॥ मास्तंगमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणो । मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माधो भूस्तिष्ठ गर्जितः। अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्त्तमपि हि ज्वल । मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥१४॥ मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् । मा ह स्म कस्यचिद् गेहे जनी राज्ञः खरो मृदुः ॥ १५ ॥ कृत्वा मानु-

---

रहा है और प्रतिष्ठाको खानेसे कुटुम्बियोंको दुःखमें डालरहा है ॥८॥ छोटी नदी थोड़ेसे ही जलसे भर जाती है, चूहेकी अञ्जली थोड़ेसे पदार्थसे ही भर जाती है और कायर पुरुष भी थोड़ी वस्तुसे ही सन्तोष मान लेता है, वे तीनों थोड़ी वस्तुसे ही सन्तोष मानने वाले होते हैं ॥ ९ ॥ जैसे कोई साँपका दाढ़ तोड़नेका उद्योग करता करता मरणको प्राप्त होजाय तैसे ही तू भी युद्ध करता हुआ मरणको प्राप्त होजाय तो अच्छा है परन्तु कुत्तेकी मौतसे मरना अच्छा नहीं है चाहे प्राण जानेका सन्देह हो तो भी तू पराक्रम करनेमें न चूक १० जैसे बाज पक्षी निःशङ्क होकर आकाशमें विचरता है तैसे ही तू भी निर्भय होकर रणभूमिमें विचर और पराक्रम करके दिखा अथवा चुप चाप बैठा हुआ शत्रुओंके छिद्र देखा कर ॥ ११ ॥ परन्तु जैसे कोई वज्रसे घायल हुआ पुरुष मुरदेकी समान पड़ा सोता हो तैसे तू मुर्दा बन कर क्यों सोरहा है ? अरे कायर पुरुष उठ खड़ा हो, शत्रुओंसे हार खाकर सोता न रह ॥ १२ ॥ अरे तू कृपण बनकर अस्त न होजा किन्तु अपने पराक्रमसे प्रसिद्ध हो, साम और भेद यह दो उपाय मध्यम और अधम माने जाते हैं, इनके ऊपर भरोसा न रख, दान भी अधोगतिमें डालने वाला है इस कारण इसकी भी प्रतीक्षा न कर, किन्तु दण्ड ही सबसे श्रेष्ठ है, इस कारण खड़ा होजा और शत्रुके सामने गर्जना कर ॥ १३ ॥ तिन्दुककी लकड़ीके अङ्गारोंकी समान दो घड़ीको तो पराक्रम करके प्रज्वलित हो, उठ, परन्तु भूसीकी अग्नि की समान विना प्रकाशके धुआँ न कर, क्या तू ऐसी दशामें जीना चाहता है ? ॥ १४ ॥ दो घड़ीके लिये बड़ी २ लपटोंके साथ

ध्यक कर्म सुजत्यांजि यावदुत्तमम् । धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते ॥ १६ ॥ अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डितः । आनन्तर्य्यञ्चारभते न प्राणानां धनायते ॥ १७ ॥ उद्भावयस्व वीर्य्यं वा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम् । धर्मं पुत्राग्रतः कृत्वा किं निमित्तं हि जीवसि ।१८। इष्टापूर्त्तं हि ते क्लीब कीर्त्तिश्च सकला हता । विच्छिन्नं भोगमूलं ते किं निमित्तं हि जीवसि ॥ १९ ॥ शत्रुर्निमज्जता ग्राह्यो जंघायां प्रपतिष्यता । विपरिच्छिन्नमूलोऽपि न विषीदेत् कथञ्चन२० उद्यम्य धुरमुत्कर्षेदाजानेयकृतं स्मरन् । कुरु सत्वंच मानञ्च विद्धि पौरुषमात्मनः ॥ २१ ॥ उद्भावय कुलं मग्नं त्वत्कृते स्वयमेव हि यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम् ॥ २२ ॥ राशिवर्द्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् । दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चारितं यशः २३

प्रज्वलित हो उठना अच्छा है परंतु चिरकाल तक धुआँ करना अच्छा नहीं, किसी राजाके घर अत्यंत कठोर स्वभावके वा अत्यंत कोमल स्वभावके पुरुषका जन्म न हो ॥१५॥ रणचतुर वीरपुरुष ही रणभूमि में जाकर मनुष्यसे हो सकने योग्य उत्तम पराक्रम करके अपने धर्मके ऋणसे छूटता है परंतु अपनी निंदा नहीं कराता है ॥ १६ ॥ पण्डित पुरुष निरंतर कार्य किया करता है, पीछे उसका फल मिले चाहे न मिले इसकी वह कुछ चिंता नहीं करता है तथा पराक्रम करते समय प्राणोंकी वा धनकी ओरको नहीं देखता है ॥ १७ ॥ इसलिये या तो तू पराक्रमको बढ़ा कर युद्ध कर, नहीं तो मरजा, हे पुत्र ! तू अपने क्षत्रियधर्मका अनादर करके क्यों जीरहा है ? ॥ १८ ॥ अरे नपुंसक ! अपने यज्ञ याग आदिके फल, बावड़ी कुआ आदि खुदानेके फल और अपनी संपूर्ण कीर्त्ति भी तूने नष्ट करली है तथा अपने सुख भोगनेके कारणरूप राज्यको तूने नष्ट करदिया फिर अब क्यों जीरहा है ? १९ मल्लयुद्धके समय तथा जलमें डुबाते समय पुरुष डूबता हो वा भूमि पर गिरता हो उस समय शत्रुकी टांग पकड़ कर गिरा देय और ऐसा करतेमें अपने नाशका अवसर आजाय तो भी उसका दुःख न करे२० कुलीन घोड़ोंके कामको याद करके पुरुषको उद्योगके साथ कामका भार उठाना चाहिये इसलिये तू अपने पुरुषार्थको जान और बल दिखा कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर ॥ २१ ॥ अरे ! यह कुल तेरे कारणसे ही डूबा जाता है, इसका तू उद्धार कर, मनुष्य जिस पुरुषके अद्भुत और बड़े भारी चरित्रको नहीं गाते हैं, वह मनुष्य पुरुष वा स्त्री कुछ भी नहीं

विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥ श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा ॥ २४ ॥ जनान् योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि स वै पुमान्। न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ॥२५॥ नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् । यमेनमभिनन्देयुरमित्राः पुरुषं कृशम् ॥ २६ ॥ लोकस्य समवज्ञातं निहीनाशनवाससम् । अहो लाभकरं हीनमल्पजीवनमल्पकम् ॥ २७ ॥ नेदृशं बन्धुमासाद्य बान्धवः सुखमेधते । अवृत्त्यैव विपत्स्यामो वयं राष्ट्रात् प्रवासिताः ॥ २८ ॥ सर्वकामरसैर्हीनाः स्थानभ्रष्टा अकिञ्चनाः । अवल्गुकारिणं सत्सु कुलवंशस्य नाशनम् ॥ २९ ॥ कलिं पुत्रप्रवादेन सञ्जय त्वामजीजनम् । निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ॥ ३० ॥ मास्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम् । मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान् ॥ ३१ ॥ ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् । एतावानेव

गिना जाता है, किन्तु केवल मनुष्यके ढेरको बढ़ाता है तथा जिस मनुष्यका दान, तप, सत्य, विद्या और धनकी प्राप्तिके विषयमें यश नहीं गाया जाता है वह केवल अपनी माताका विष्ठा ही है और जो पुरुष शास्त्रका पढ़ना, तपस्या, धन या पराक्रम इनमेंकी हर एक वस्तुको पाकर उसके द्वारा मनुष्योंका पराजय करता है निःसंदेह वह ही पुरुष है तू खोटी भिक्षावृत्ति करनेके योग्य नहीं है ॥ २२-२५ ॥ क्योंकि—वह वृत्ति क्रूर, अपयश देने वाली दुःख दायिनी और कायर पुरुषोंके ही योग्य है, शत्रु जिस दुर्बल और कायर पुरुषकी प्रशंसा करें, लोग जिसकी निन्दा करें, जिसको भोजन और वस्त्रकी भी कमी हो, जो थोड़े लाभको भी बड़ा लाभ मानता हो, जो हीन, थोड़े उत्साह वाला, और क्षुद्र हो ऐसे पुरुषको संबन्धी रूपसे पाकर संबन्धी भी सुख नहीं पाते हैं, हमको देशमेंसे और घरमेंसे निकाल दिया है, हम सब प्रकारके सुखोंसे भ्रष्ट होगये हैं, हमारे पास किसी प्रकारका भी साधन नहीं है,इस कारण हम आजीविकाके बिना ही मर जायँगे, हे सञ्जय पुत्र! कुल और वंशका नाश करने वाले तथा सत्पुरुषोंका अमङ्गल करने वाले कलियुगको ही मैंने पुत्र नामसे उत्पन्न किया है ? अरे ! क्रोध, उत्साह और पराक्रमसे शून्य तथा शत्रुओंको आनन्द देने वाले पुत्रको कोई भी भाग्यवती स्त्री न उत्पन्न करे, तू धुआँ न कर, किन्तु एक साथ प्रज्वलित हो उठ और पराक्रम करके एक साथ शत्रुओंका नाश कर डाल ॥ २६-३१ ॥ एक क्षणमें या दो घड़ीमें

पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ॥ ३२ ॥ क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्। सन्तोषो वै श्रियं हन्ति तथानुक्रोश एव च ॥३३॥ अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत्। एभ्यो निकृतिपापेभ्यः प्रमुञ्चात्मानमात्मना ॥ ३४ ॥ आयसं हृदयं कृत्वा मृगयस्व पुनः स्वकम्। परं विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते॥३५॥ तमाहुर्व्यर्थनामानं स्त्रीवद्य इह जीवति । शूरस्योर्जितसत्त्वस्य सिंहविक्रान्तचारिणः ॥ ३६ ॥ दिष्टभावं गतस्यापि विषये मोदते प्रजा । य आत्मनः प्रियसुखे हित्वा मृगयते श्रियम् ॥ ३७ ॥ अमात्यानामथो हर्षमादधात्यचिरेण सः ॥ ३८ ॥ पुत्र उवाच । किं नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया । किमाभरणकृत्यन्ते किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३९ ॥ मातोवाच । किमद्यकानां ये लोका द्विषन्तस्तानवाप्नुयुः । ये त्वादृतात्मनां लोकाः सुहृदस्तान्

शत्रुओंके मस्तक पर दमकने लगे, जो शत्रुके तिरस्कारको न सहना है और जो शत्रुके ऊपर क्षमा नहीं करना है यही तो पुरुषपना है ३२ परन्तु जो क्षमाशील और क्रोधरहित है वह न पुरुष ही माना जाता है, न स्त्री ही माना जाता है, सन्तोष और दयालुपना लक्ष्मीका नाश कर डालता है ॥ ३३ ॥ शत्रुके ऊपर चढ़ाई न करना और भयभीत होकर बैठ रहना भी लक्ष्मीका नाश करता है, जो पुरुष इच्छारहित होता है वह प्रतिष्ठा नहीं पाता है, इस लिये पराजय कराने वाले इन दोषोंसे तू अपना उद्धार अपने आप कर ॥३४॥ अपने हृदयको लोहेका करके अपने राज्य और धन आदिकी खोज कर जो राज्य आदि कार्योंके भारको उठा सकता है, वह ही पुरुष कहलाता है॥३५॥ परन्तु इस जगत्में जो स्त्रीकी समान व्यवहार करके अपनी आजीविका मात्र कर लेता है उसका पुरुष नाम धराना वृथा है, ऐसा कहते हैं वीर, तेजस्वी, वली और सिंहकी समान पराक्रम करने वाला राजा यदि मरण पाजाता है तो भी उसके देशकी प्रजा प्रसन्न होती है और जो राजा अपने पुत्रादिका तथा सुखका त्याग करके राज्यलक्ष्मीको खोजता है वह थोड़े ही समयमें अपने मंत्रियोंके हर्षको बढ़ाता है ॥ ३६-३८ ॥ पुत्रने कहा, कि-मेरा मरण होजाने पर तू मेरे मुखको नहीं देखेगी तो तुझे सकल पृथ्वीका राज्य क्या सुख देगा ? तथा आभूषणोंसे भी तुझे क्या सुख होगा ऐश्वर्य भी किस कामके होंगे ? और फिर जीकर भी तुझे क्या करना है ॥ ३९ ॥ माता बोली कि-आज हम क्या खायँगे ? जिनके यह चिन्ता रहती है ऐसे निर्धन

प्रजन्तु नः ॥ ४० ॥ भृत्यैर्विहीयमानानां परपिण्डोपजीविनाम् । कृपणानामसत्त्वानां मा वृत्तिमनुवर्त्तिथाः ॥४१॥ अनु त्वां तात जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा । पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ॥ ४२ ॥ यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय । पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत् ॥ ४३ ॥ यस्य शूरस्य विक्रान्तैरेधन्ते बान्धवाः सुखम् । त्रिदशा इव शक्रस्य साधु तस्येह जीवितम् ॥ ४४ ॥ स्वबाहुबलमाश्रित्य योऽभ्युज्जीवति मानवः । स लोके लभते कीर्त्तिं परत्र च शुभां गतिम् ॥ इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

विदुलोवाच । अथैतस्यामवस्थायां पौरुषं हातुमिच्छसि । निहीनसेवितं मार्गं गमिष्यस्यचिरादिव ॥ १ ॥ यो हि तेजो यथाशक्ति न दर्शयति विक्रमात् । क्षत्रियो जीविताकांक्षी स्तेन इत्येव तं विदुः २

पुरुषोंके जो लोक हैं उनको तेरे शत्रु पावें और जो लोक प्रतिष्ठित आत्मवालोंको मिलते हैं उन लोकोंको हमारे स्नेही प्राप्त हों ॥ ४० ॥ सेवकोंसे हीन, दूसरोंके दिये हुए अन्नसे निर्वाह करने वाले और बलहीन पुरुषोंकी वृत्तिको तू धारण न कर किन्तु महान् पुरुषोंकी वृत्तिको धारण कर ॥ ४१ ॥ जैसे प्राणी मेघके ऊपर अपनी आजीविकाका भरोसा रखता है, जैसे देवता इन्द्रके ऊपर अपनी आजीविकाका भरोसा रखते हैं, तैसे ही हे तात ! ब्राह्मण और स्नेही तेरे आधारसे आजीविका करें ॥ ४२ ॥ हे सञ्जय ! जैसे सब प्राणी पके हुए फलों वाले वृक्षकी शरणमें आकर उसके ऊपर अपनी आजीविका करते हैं तैसे ही सब प्राणी जिस पुरुषके भरोसे पर अपनी आजीविका करते हैं उसका जीवन सार्थक गिना जाता है ॥ ४३ ॥ जैसे देवता इन्द्रके पराक्रमसे वृद्धि पाते हैं तैसे ही सम्बन्धी जिस वीरके पराक्रमसे सुखमें वृद्धि पाते हैं उस पुरुषका जीवन ही इस जगत्में श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य अपने भुजबलके भरोसेपर अपनी आजीविका करता है वह इस लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें शुभगति पाता है ॥ ४५ ॥ एकसौ तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३३ ॥

विदुला बोली, कि हे बेटा ! तू इस अवस्थामें पुरुषार्थको त्यागना चाहता है ? तब तो तू थोड़े ही समयमें नीच मनुष्योंके सेवन किये हुए मार्गमें आ पहुँचेगा ॥ १ ॥ जो क्षत्रिय अपने प्राण बचानेकी इच्छासे यथाशक्ति पराक्रम करके अपने तेजको नहीं दिखाता है उसको विद्वान्

अर्थवन्त्युपपन्नानि वाक्यानि गुणवन्ति च । नैव सम्प्राप्नुवन्ति त्वां मुमूर्षुमिव भेषजम् ॥३॥ सन्ति वै सिन्धुराजस्य सन्तुष्टा न तथा जनाः दौर्बल्यादासते मूढा व्यसनौघप्रतीक्षिणः ॥ ४ ॥ सहायोपचितिं कृत्वा व्यवसाय्य ततस्ततः । अनुदुष्येयुरपरे पश्यन्तस्तव पौरुषम् ॥ ५ ॥ तैः कृत्वा सह संघातं गिरिदुर्गालयश्चर । काले व्यसनमाकांक्ष नैवायमजरामरः ॥ ६ ॥ सञ्जयो नामतश्च त्वं न च पश्यामि तत् त्वयि । अन्वर्थनामा भव मे पुत्र मा व्यर्थनामकः ॥ ७ ॥ सम्यग्दृष्टिर्महाप्राज्ञो बालं त्वां ब्राह्मणोऽब्रवीत् । अयं प्राप्य महत्कृच्छ्रं पुनर्वृद्धिं गमिष्यति ॥८॥ तस्य स्मरन्ती वचनमाशंसे विजयं तव । तस्मात्तात ब्रवीमि त्वां वक्ष्यामि च पुनः पुनः ॥९॥ यस्य ह्यर्थाभिनिर्वृत्तौ भवन्त्याप्यायिताः परे । तस्यार्थसिद्धिर्नियता नयेष्वर्थानुसारिणः १० समृद्धि-

पुरुष चोर समझते हैं ॥ २ ॥ मरनेको तयार हुए पुरुषको जैसे औषधियें गुण नहीं करती हैं तैसे ही तेरे ऊपर मेरे नीति भरे और गुणदायक सिद्धवाक्य प्रभाव नहीं डालते हैं ॥३॥ इस समय सिंधुदेशके राजाके पास जो मनुष्य रहते हैं वह जैसे तेरे पास सन्तुष्ट रहते थे तैसे सन्तुष्ट तहाँ नहीं रहते हैं; किन्तु वह अपनी दुर्बलताके कारण तथा शत्रुके हाथमेंसे छूटनेके उपायको न समझ सकनेके कारण सिंधुराज कब दुःखके प्रवाहमें आकर पड़े ? इस बातकी बाट देखा करते हैं ॥४॥ इसके सिवाय जो दूसरे पुरुष रणभूमिविषै सिन्धुराजके साथ वैरभाव रखते हैं वह भी तेरे पुरुषार्थको देखकर प्रयत्नके साथ अपने अपने पक्षमेंसे सहाय आदिकी सम्पत्तिको पाकर तेरे पक्षमें मिल जायँगे और उसके सामने युद्ध करनेको तयार होंगे॥५॥इस कारण तू उन सब लोगोंके साथ मेल करके अब पहाड़ी किलेके स्थानमें निवास कर और शत्रुके ऊपर आपड़ने वाले दुःखके समयकी बाट देख; यह सिन्धुराज कहीं अजर अमर थोड़े ही है ॥ ६ ॥ हे बेटा ! तेरा नाम सञ्जय है, परन्तु मैं तुझमें ऐसा कोई गुण नहीं देखती, सो हे बेटा ! तू अपने नामको व्यर्थ न कर किन्तु सार्थक कर ॥ ७ ॥ पहिले एक एक महाबुद्धिमान् भविष्यत्को जाननेवाले ब्राह्मणने बालकपनमें तुझे देख कर मुझसे कहा था कि-यह बालक बड़े भारी दुःखको भोगनेके पीछे फिर उन्नति पावेगा ॥ ८ ॥ मैं उस ब्राह्मणके वचनको याद करके तेरी विजयकी आशा करती हूँ और इस लिये ही हे तात!तुझसे बार २ विजय करनेके लिये कहती हूँ ॥९॥ जिसके कामकी सिद्ध

रसमृद्धिर्वा पूर्वेषां मम सञ्जय । एवं विद्वान् युद्धमना भव मा प्रत्युपाहर ॥ ११ ॥ नातः पापीयसीं काञ्चिदवस्थां शम्बरोऽब्रवीत् ॥ यत्र नैवाद्य न प्रातर्भोजनं प्रतिदृश्यते ॥ १२ ॥ पतिपुत्रवधादेतत् परमं दुःखमब्रवीत् । दारिद्र्यमिति यत् प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत् ॥ १३ ॥ अहं महाकुले जाता ह्रदाद्ध्रदमिवागता । ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता ॥१४॥ महार्हमाल्याभरणां सुमृष्टाम्बरवाससम् । पुरा हृष्टः सुहृद्वर्गो मामपश्यत् सुदुर्गताम् ॥ १५ ॥ यदा मां चैव भार्यां च द्रष्टासि भृशदुर्बलाम् । न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सञ्जय १६ दासकर्मकरान् भृत्यानाचार्यर्त्विक्पुरोहितान् । अवृत्त्यास्मान् प्रजहतो दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥१७॥ यदि कृत्यं न पश्यामि तवाद्याहं यथा पुरा

होनेसे दूसरे स्नेही सम्बन्धियोंकी भी उन्नति होती है अर्थके अनुसार बर्ताव करनेवाले उस पुरुषकी नीतियोंमें अवश्य ही कार्यसिद्धि होती है ॥ १० ॥ हे सञ्जय ! इस विषयमें युद्ध करनेसे मुझे और मेरे पूर्व पुरुषोंको लाभ या हानि होनी ही है ऐसा समझ कर तू युद्ध करनेका विचार कर, किन्तु युद्धके विचारको त्यागे मत ११ शम्बर मुनि कह गये हैं, कि जिस दशामें आज प्रातःकालके लिये भोजन नहीं है तथा कलको क्या होगा ? इसप्रकारकी चिन्ता रहा करती है, इस से बढ़ कर पापी अवस्था और कोई नहीं है ॥ १२ ॥ दरिद्रता के दुःखको पति और पुत्रके मरणसे भी अधिक दुःख कहा है दरिद्रताको मरणका दूसरा नाम ही कहा है ॥ १३ ॥ मैं बड़े कुलमें उत्पन्न हुई हूँ, और जैसे कमलिनी एक सरोवरमेंसे दूसरे सरोवरमें जाती है तैसे ही मैं भी एक महाकुलमेंसे दूसरे महाकुलमें विवाही गयी थी, समर्थ थी सुखोंकी पात्र थी और मेरे पति मेरा बड़ा आदर करते थे ॥१४॥ पहिले मैं बहुमूल्य फूलोंके हार, आभूषण तथा स्वच्छ और सूक्ष्म वस्त्र धारण करके अपने सम्बन्धियोंमें रहती थी सम्बन्धी मुझे देख कर प्रसन्न होते थे ॥ १५ ॥ हे सञ्जय ! जब तू मुझे और अपनी स्त्रीको अतिदुर्बल हुई देखेगा तब क्या तेरा चित्त जीवित रहने को चाहेगा? १६दास, कामकाज करने वाले, भृत्य आचार्य, ऋत्विज और पुरोहित जब आजीविका बन्द होजानेके कारण हमें त्याग देंगे, ऐसी दशा देख कर तेरा जीवित रहना किस कामका होगा ? ॥१७॥ तूने पहिले जैसा प्रशंसाके योग्य यश देने वाला पराक्रम किया था तैसे तेरे पराक्रमको यदि इस समय न देखूँ तो मेरे हृदयको शांति

श्लाघनीयं यशस्यं च का शांतिर्हृदयस्य मे॥ १८ ॥ नेति चेद् ब्राह्मणं ब्रूयां दीर्य्येत हृदयं मम। न ह्यहं न च मे भर्त्ता नेति ब्राह्मणमुक्तवान् ॥१९॥ वयमाश्रयणीयाः स्म न श्रोतारः परस्य च समृद्धिंसान्यमासाद्य जीवन्ती परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ २०॥ अपारे भव नः पारमप्लवे भव नः प्लवः। कुरुष्व स्थानमस्थाने मृतान् सञ्जीवयस्व नः ॥ २१ ॥ सर्वे ते शत्रवः शक्या न चेज्जीवितुमर्हसि। अथ चेदीदृशीं वृत्तिं क्लीबामभ्युपपद्यसे ॥ २२ ॥ निर्विण्णात्मा हतमना मुञ्चैतां पापजीविकाम्। एकशत्रुवधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ॥ २३ ॥ इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत। माहेन्द्रं च ग्रहं लेभे लोकानाञ्चेश्वरोऽभवत् ॥ २४ ॥ नाम विश्राव्य वै संख्ये शत्रूनाहूय दंशितान्। सेनाग्रञ्चापि विद्राव्य हत्वा वा पुरुषं वरम् ॥ २५ ॥ यदैव लभते वीरः सुयुद्धेन महद्यशः। तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥ २६ ॥

कैसे मिल सकती है ? ॥ १८ ॥ पहिले मैंने अथवा तेरे पतिने माँगनेको आये हुए ब्राह्मणसे 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा था, ऐसी मैं यदि आज ब्राह्मणसे 'नहीं है' ऐसा कहूँ तो मेरा हृदय फट जाय ॥ १९ ॥ हम दूसरोंको आश्रय देने वाले हैं दूसरोंके आज्ञा बजाने वाले नहीं हैं, परन्तु अब यदि मुझे दूसरेके भरोसे पर आजीविका करनी पडेगी तो मैं अपने प्राणोंको त्याग दूँगी ॥ २० ॥ तू हमें अपार दुःखमेंसे पार लगाने वाला हो, नौकाशून्य दुःखसागर में हमारे लिये नौकारूप हो, ऐसा करनेमें तुझे अस्थानमें स्थान करना पड़े अर्थात् महाभयानक दुःखमें पड़ना पड़े तो भी तू उसको सहन कर तथा मरे हुएकी समान हुए हमको जीवित कर ॥ २१ ॥ यदि तू जीवनका मोह नहीं करेगा तो सब शत्रुओंको जीत सकेगा, परन्तु यदि तुझे ऐसी नपुंसकोंकेसी वृत्ति स्वीकार करनी हो, और यदि मनमें उदास तथा खिन्न रहना हो तो इस पापी आजीविको त्याग दे, शूर पुरुष तो एक शत्रुका नाश करनेसे ही प्रसिद्धिको पाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इन्द्र वृत्रासुरको मारनेसे ही महेन्द्र होगया था, महेन्द्रके भवनको पागया था और लोकोंका ईश्वर हुआ था ॥ २४ ॥ शूर पुरुष रणमें अपना नाम सुना कर शत्रुओंको लड़नेके लिये पुकार कर, सेनाके अग्रभागमें भागड़ डाल कर और सेनाके स्वामीको मार कर जब बड़ा भारी यश प्राप्त करता है तब ही इसके शत्रु उदास होते हैं और पास आकर प्रणाम करते हैं ॥ २५॥२६ ॥ परन्तु पराधीन हुए

त्यक्त्वात्मानं रणे दक्षं शूरं कापुरुषा जनाः । अवशास्तर्पयन्ति स्म सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २७ ॥ राज्यञ्चाप्युग्रभ्रंशं संशयो जीवितस्य वा । न लब्धस्य हि शत्रोर्वै शेषं कुर्वन्ति साधवः ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वारोपमं राज्यमथवाप्यमृतोपमम् । रुद्धमेकायनं मत्वा पतोल्मुक इवारिषु ॥२९॥ जहि शत्रून् रणे राजन् स्वधर्ममनुपालय । मा त्वादर्शं सुकृपणं शत्रूणां भयवर्धनम् ॥ ३० ॥ अस्मदीयैश्च शोचद्भिर्नदद्भिश्च परैर्वृतम् । अपि त्वां नानुपश्येयं दीनाद्दीनमिवास्थितम् ॥ ३१ ॥ हृष्य सौवीरकन्याभिः श्लाघस्व स्वार्थैर्यथा पुरा । मा च सैन्धवकन्यानामवसन्नो वशाङ्गमः ॥३२ युवा रूपेण सम्पन्नो विद्ययाभिजनेन च । यस्त्वादृशो विकुर्वीत यशस्वी लोकविश्रुतः ॥ ३३ ॥ अधुर्यवच्च वोढव्ये मन्ये मरणमेव तत् । यदि त्वामनुपश्यामि परस्य प्रियवादिनम् ॥ ३४ ॥ पृष्ठतोऽनुव्रजन्तं वा का

कायर पुरुष रणभूमिमें मरण पाकर वीर और युद्ध करनेमें चतुर पुरुषको सब कामनाओंसे तथा समृद्धिसे तृप्त करते हैं ॥ २७ ॥ राज्य का घोर नाश हो जाय अथवा अपने प्राणोंके जानेका सन्देह होवे तो भी महात्मा पुरुष हाथमें आये हुए शत्रुका निःशेषरूपसे नाश किये विना नहीं छोड़ते हैं ॥ २८ ॥ स्वर्गके द्वारकी समान अथवा अमृतकी समान हमारा राज्य शत्रुने ले लिया है इस कारण तू स्वर्गको अथवा राज्यको एक ही मार्गरूप जान कर जलते हुए अङ्गारेकी समान शत्रुओंके ऊपर गिर अर्थात् रणमें जूझ कर या तो स्वर्गको चलाजा, नहीं तो राज्यको प्राप्त कर ॥ २९ ॥ हे राजन् ! रणमें शत्रुओंका संहार कर और अपने धर्मका पालन कर तथा ऐसा कर कि-जिससे मैं तुझे शत्रुओंका भय दूर करने वाली दीन दशामें न देखूँ ॥ ३० ॥ हमारे पुरुष शोक करते हुए तेरे पास खड़े हों और शत्रु गरज २ कर तुझे घेर रहे हों तथा तू दीन गौकी समान खड़ा हो, ऐसी दशामें मैं तुझे न देखूँ ऐसा कर ॥ ३१ ॥ हे पुत्र ! तू पहिलेकी समान प्रसन्न हो, सौवीर देशकी कन्याओंके साथ पहिलेकी समान अपनी सम्पदाओंको पाकर प्रशंसाका पात्र हो, परन्तु शिथिल होकर सिन्धुदेशकी कन्याओंके वशमें न हो ॥ ३२ ॥ तू युवा है, तुझमें रूप और विद्या है, तू कुलीन है, तुझ सरीखा कीर्तिमान् और जगत् प्रसिद्ध पुरुष बेनथे बैलकी समान भारको उठाते समय भाग जाय या बैठ रहे तो इसको मैं मरण ही मानती हूँ, मैं तुझे शत्रुके साथ प्यारी बातें करता हुआ तथा शत्रुके पीछे २ जाता हुआ देखूँ तो मेरे हृदयको कैसे शान्ति मिल

शांतिर्हृदयस्य मे। नास्मिन् जातु कुले जाता गच्छेद्योऽन्यस्य पृष्ठतः ३५
न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमर्हसि। अहं हि क्षत्रहृदयं वेद यत्
परिशाश्वतम् ॥ ३६ ॥ पूर्वैः पूर्वतरैः प्रोक्तं परैः परतरैरपि। शाश्वत-
श्चाव्ययञ्चैव प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ ३७ ॥ यो वै कश्चिदिहाजातः
क्षत्रियः क्षत्रकर्मवित्। भयाद् वृत्तिसमीक्षो वा न नमेदिह कस्यचित् ३८
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्। अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह
कस्यचित् ॥३९॥ मातङ्गो मत्त इव च परीयात् स महामनाः। ब्राह्म-
णेभ्यो नमेन्नित्यं धर्मायैव च सञ्जय ॥ ४० ॥ नियच्छन्नितरान् वर्णान्
विनिघ्नन् सर्वदुष्कृतः। ससहायोऽसहायो वा यावज्जीवं तथा भवेत्
इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासने
चतुर्स्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

पुत्र उवाच। कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम्। मम मात-

सकती है ? इस कुलमें ऐसा कोई भी पुरुष नहीं जन्मा है, कि—जो
शत्रुके पीछे२ घसिटता फिरे ॥ ३३—३५ ॥ हे तात ! तुझ सरीखे
पुरुषोंको शत्रुके सेवक बन कर जीवित रहना योग्य नहीं है। मैं
क्षत्रियोंके एक रूपसे रहतेहुए धर्मको जानती हूँ वह कर्तव्य पूर्व पुरुषोंके
उनके वृद्धोंके तथा उनके भी वृद्धोंके और दूसरोंके भी किये हुए हैं।
ये धर्म अविनाशी और प्राचीन कालसे चले आते हैं और प्रजापतिके
रचे हुए हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो पुरुष क्षत्रियकुलमें जन्म लेता है और
क्षत्रियोंके धर्मको जानता है वह भयसे अथवा आजीविकाकी इच्छासे
किसीसे नमता नहीं है ॥३८॥ क्षत्रियका बेटा उद्योग करता है परन्तु
किसीसे नमता नहीं है क्योंकि-उद्योग यह ही पुरुषार्थ है। पेड़ जैसे
अपनी गाँठ वाले भागमें सीधा नहीं होता है परन्तु टूट जाता है तैसे
ही क्षत्रिय भी मर जाता है परन्तु किसीसे दबता नहीं है ॥ ३९ ॥
महामन वाला क्षत्रिय मदमत्त हाथीकी समान युद्धमें घूमता है और
हे सञ्जय ! धर्मके लिये ही ब्राह्मणसे नित्य नमता है ॥ ४० ॥ क्षत्रिय
सहायता वाला हो अथवा असहाय हो परन्तु वह जीते रहने तक
ब्राह्मणके सिवाय और सब जातियोंको अपने आधीन रखता है तथा
कुकर्म करने वालोंका संहार करता है ॥ ४१ ॥ एक सौ चौतीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १३४ ॥ छ ॥ छ

पुत्रने कहा कि–हे धीरबुद्धि वाली होने पर भी क्रोधी मा ! तेरा
चित्त मानो लोहा ठोक २ कर गढ़ा गया है ऐसा प्रतीत होता है।१।

स्वयकरणे वीरप्रज्ञे समर्पणे ॥ १ ॥ अहो क्षत्रसमाचारो यत्र मामितरं यथा । नियोजयसि युद्धाय परमातेव मान्तथा ॥ २ ॥ ईदृशं वचनं ब्रूयाद् भवती पुत्रमेकजम् । किन्नु ते मामपश्यन्त्याः पृथिव्या अपि सर्वया ॥ ३॥ किमाभरणकृत्येन किम्भोगैर्जीवितेन वा । मयि वा संगरहते प्रियपुत्रे विशेषतः ॥४॥ मातोवाच । सर्वावस्था हि विदुषां तात धर्मार्थकारणात् । तावेवाभिसमीक्ष्याहं सञ्जय त्वामचूचुदम् ॥ ५ ॥ स समीक्ष्य क्रमोपेतो मुख्यः कालोऽयमागतः । अस्मिश्चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे ॥६॥ असम्भावितरूपस्त्वमानृशंस्यं करिष्यसि । तं त्वामयशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि सञ्जय ॥ ७ ॥ खरीवात्सल्यमाहुस्तन्निःसामर्थ्यमहैतुकम् । सद्भिर्विगर्हितं मार्गं त्यज मूर्खनिषेवितम् ८ अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिताः प्रजाः । तव स्याद्यदि सद्वृत्तं तेन मे त्वं प्रियो भवेः ॥९॥ धर्मार्थगुणयुक्तेन नेतरेण कथञ्चन । दैवमा-

---

धिक्कार पड़े क्षत्रियके धर्म पर कि-जहाँ अपनी मा दूसरेकी माकी समान अथवा दूसरेसे कहती हो इस प्रकार मुझे युद्ध करनेके लिये प्रेरित करती है ॥ २ ॥ क्योंकि-मैं अकेलीका अकेला ही पुत्र हूँ इसने तू "लड़" ऐसी बात कहती है परन्तु हे मा ! जब तुझे मेरा वियोग होगा और तू मुझे देखेगी नहीं तब इस सम्पूर्ण पृथिवीका, गहनोंका, वैभवोंका और जीवनका तू क्या करेगी ? जो मैं तेरा अतीव प्रिय पुत्र हूँ वह तो मैं युद्धमें माराजाऊँगा ॥ ३—४ ॥ माता बोली कि-हे तात ! विद्वान् सब कार्योंका आरम्भ धर्म और अर्थके लिए किया करते हैं उन दोनोंकी ओर देखकर हे सञ्जय ! मैं तुझे युद्ध करनेके लिए उकसाती हूँ ॥ ५ ॥ अतः तेरे दिखाने योग्य पराक्रम कर दिखाने का यह मुख्य समय आलगा है, इस आये हुए समयमें यदि तू पराक्रम नहीं करेगा और अपने शरीर तथा शत्रुके ऊपर दया करेगा तो तेरा अपमान ही होगा । हे सञ्जय ! तेरी बदनामी होनेका अवसर आवे उस समय मैं तुझसे तेरे हितकी बात नहीं कहूँ तो मेरा प्रेम गधीके प्रेमकी समान शक्तिहीन तथा निष्कारण कहलावेगा, इसलिए तू सत्पुरुषोंके निन्दा किये हुए और मूर्खोंके स्वीकार किये हुए मार्गको त्याग दे ॥ ६—८ ॥ यह बड़ीभारी अविद्या है कि—जिसका आश्रय सब प्रजा लिये हुए है, इसकारण ही शरीरको आत्मा मानकर उसकी रक्षाके लिये उद्योग किया करती है, परन्तु ऐसा करना व्यर्थ है, यदि तेरा सदाचरण होगा तो तू उससे मुझे बड़ा प्यारा लगेगा ॥ ९ ॥

नुपयुक्तेन सद्भिराचरितेन च ॥ १० ॥ यो ह्येवमवनीतेन रमते पुत्र-नप्तृणा । अनुत्थानवता चापि दुर्विनीतेन दुर्धिया ॥११ ॥ रमते यस्तु पुत्रेण मोघं तस्य प्रजाफलम् । अकुर्वन्तो हि कर्माणि कुर्वन्तो निन्दि-तानि च॥१२॥ सुखं नैवेह नामुत्र लभन्ते पुरुषाधमाः। युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः सञ्जयेह जयाय च ॥ १३ ॥ जयन् वा वध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्र-सलोकताम् । न शक्रभवने पुण्ये दिवि तद्विद्यते सुखम् । यदमित्रान् वशे कृत्वा क्षत्रियः सुखमेधते ॥ १४ ॥ मन्युना दह्यमानेन पुरुषेण मन-स्विना । निकृतेनेह बहुशः शत्रून्प्रति जिगीषया ॥ १५ ॥ आत्मानं वा परित्यज्य शत्रुं वा विनिपात्य च । अतोऽन्येन प्रकारेण शांतिरस्य कुतो भवेत् ॥ १६ ॥ इह प्राज्ञो हि पुरुषः स्वल्पमप्रियमिच्छति । यस्य स्वल्पं प्रियं लोके ध्रुवं तस्याल्पमप्रियम् ॥ १७ ॥ प्रियाभावाच्च पुरुषो नैव प्राप्नोति शोभनम् । ध्रुवञ्चाभावमभ्येति गत्वा गङ्गेव सागरम्१८

उपाय करने वाले और अच्छे मनुष्योंके आचारको समान आचरण करनेवाले पुरुषसे आनन्द प्राप्त होता है,परन्तु इसके विरुद्ध गुणोंवाले पुरुषसे किसी प्रकार भी आनन्द प्राप्त नहीं होता है॥१०॥जो मनुष्य विनयहीन, शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई न करनेवाले, खोटे स्वभावके और दुष्ट बुद्धिवाले पुत्रोंको तथा पौत्रोंको उत्पन्न करता है,उसको संतान उत्पन्न करनेका फल नहीं मिलता है, कर्त्तव्य कर्मोंको न करने वाले तथा निन्दित काम करनेवाले अधम पुरुष इसलोकमें और परलोकमें सुख नहीं पाते हैं, हे सञ्जय ! प्रजापतिने क्षत्रियोंको युद्ध करने और विजय पानेके लिये रचा है ॥ ११—१३ ॥ क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता हुआ अथवा मरणको प्राप्त होता हुआ इन्द्रलोकको पाता है, क्षत्रिय अपने शत्रुओंको वशमें करके जो सुख पाता है, वह सुख स्वर्ग में इन्द्रके पवित्र राजभवनमें भी नहीं है ॥१४॥ समझदार पुरुष क्रोध से जलता और अनेकोंवार शत्रुसे हारगया हो तो भी विजय पानेकी इच्छासे शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करता ही है ॥१५॥ या तो वह रणमें अपने प्राण देकर शांति पाता है अथवा शत्रुको मारकर शांति पाता है, इसके सिवाय और किसी प्रकारसे भी उसके हृदयको शान्ति नहीं होसकती ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् पुरुष इस लोकमें थोड़ीसी वस्तुको अच्छी नहीं मानता, इस लोकमें जिसको थोड़ीसी वस्तु प्रिय होती है वह परिणाममें उसको दुःख देती है ॥ १७ ॥ मनचाही वस्तु न मिलनेसे पुरुषको सुख नहीं मिलता,किन्तु जैसे गङ्गा समुद्रमें जाकर

पुत्र उवाच । नेयं मतिस्त्वया वाच्या मातः पुत्रे विशेषतः । कारुण्यमेवात्र पश्य भूत्वेह जडमूकवत् ॥ १९ ॥ मातोवाच । अतो मे भूयसी नन्दिर्यदेवमनुपश्यसि । चोद्यं मां चोदयस्येतद् भृशं वै चोदयामि ते॥२० अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्वसैन्धवम् । अहं पश्यामि विजयं कृत्स्नाधिगतमेव ते ॥ २१ ॥ पुत्र उवाच । अकोशस्यासहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम । इत्यवस्थां विदित्वैतामात्मनात्मनि दारुणाम् ।२२। राज्याद् भावो निवृत्तो मे त्रिदिवादिव दुष्कृतः । ईदृशं भवती कञ्चिदुपायमनुपश्यति॥२३॥तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक् प्रब्रूहि पृच्छते । करिष्यामि हि तत् सर्वं यथावदनुशासनम् ॥२४॥ मातोवाच । पुत्र नात्मावमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः । अभूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे । अमर्षेणैव चाप्यर्था नारब्धव्याः सुबालिशैः ॥ २५ ॥ सर्वेषां

लीन होजाती है तैसे ही यह भी अन्तमें अवश्य ही नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १८ ॥ पुत्रने कहा, कि—हे माताजी ! तुम्हें ऐसा विचार नहीं दिखाना चाहिए, तिसपर भी मुझ पुत्रसे तो ऐसी बात कहनी ही नहीं चाहिए, तुम तो जड़ और गूँगेकी समान होकर दयाकी दृष्टिसे ही देखो ॥ १९ ॥ माताने उत्तर दिया, कि-तू जो अपने शरीर पर ऐसी दया करता है, इससे मुझे बड़ा ही आनन्द होता है तथा तू मुझे मेरा कर्त्तव्य करनेके लिए कहता है, इससे ही मैं भी तुझे तेरा कर्त्तव्य करनेकी प्रेरणा आग्रहके साथ करती हूँ ॥२०॥ तू सिन्धु देश के सब योद्धाओंको मारकर कपटसे विजय पावेगा, इस बातको जब मैं देखूँगी तब तेरी बड़ी प्रशंसा करूँगी२१पुत्रने कहा,कि-मेरे पास न खजाना ही है,न मुझे किसीकी सहायता ही है, फिर मेरे कामकी सिद्धि या विजय कैसे होसकती है ? इस प्रकारकी अपनी दारुण अवस्थाको अपने आप विचार कर जैसे पापी स्वर्ग पानेकी आशाको छोड़ बैठता है, तैसे ही मैं राज्य पानेकी आशाको हृदयसे हटा देता हूँ,हे परन्तु बुद्धिमती माताजी ! तुम यदि इसका कोई उपाय जानती होओ तो उसको मैं तुमसे पूछता हूँ, वह उपाय मुझे बताओ, मैं तुम्हारी आज्ञाके अनुसार उस उपायको करूँगा ॥ २२–२४ ॥ माताने उत्तर दिया कि-हे पुत्र ! यदि पहिले अपने पास धनसम्पत्ति न हो तो उनके लिए अपने आत्माको धिक्कार न देय, धन पहिले नहीं होते और पीछे आजाते हैं तथा कितने ही धन आकर भी फिर नष्ट होजाते हैं, इस लिए पुरुषोंको डाहके कारण अधर्मसे धन प्राप्त

कर्मणां तात फले नित्यमनित्यता । अनित्यमिति जानन्तो न भवन्ति भवन्ति च ॥ २६ ॥ अथ येनैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते । ऐकगुण्यमनीहायामभावः कर्मणां फलम् ॥२७॥ अथ द्वैगुण्यमीहायां फलं भवति वा न वा । यस्य प्रागेव विदिता सर्वार्था नाम नित्यता ॥२८॥ नुदेद्वृद्धिसमृद्धी स प्रतिकूले नृपात्मज । उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ॥ २९ ॥ भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः । मङ्गलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह ॥३०॥ प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिर्भवति पुत्रक । अभिवर्त्तति लक्ष्मीस्तं प्राचीमिव दिवाकरः ॥ ३१ ॥ निदर्शनान्युपायांश्च बहून्युद्धर्षणानि च । अनुदर्शितरूपोऽसि पश्यामि कुरु पौरुषम् ॥ ३२ ॥ पुरुषार्थमभिप्रेतं समाहर्त्तुमिहार्हसि । क्रुद्धान्

करनेका उद्योग नहीं करना चाहिए, किन्तु बुद्धिमानोंको आदरके साथ धर्माचरणसे धन पानेका उद्योग करना चाहिए ॥ २५ ॥ हे तात ! सब ही कर्मोंके फल सदा अनित्यतासे भरे हुए हैं, इस अनित्यताको जानते हुए भी पण्डित पुरुष कर्मोंको किया ही करते हैं हैं, उन कर्मोंका फल उनको कभी मिलता है और कभी नहीं भी मिलता है ॥ २६ ॥ परन्तु जो कर्म करते ही नहीं उनको कभी फल मिलता ही नहीं, क्रिया न करनेमें एक ही प्रकारका फल समाया हुआ है, वह यह कि-कर्म न करने वालेकी मनचाही बातें सिद्ध नहीं होती हैं ॥ २७ ॥ परन्तु कर्म करनेमें दो प्रकारका गुण है, वह यह कि-फल मिलता भी है और नहीं भी मिलता है, हे राजकुमार ! जो काम करना होता है उससे पहिले ही सब पदार्थोंकी अनित्यताको कार्य करने वाला जानता है; परन्तु कार्य करनेके अनन्तर वह मनुष्य अपनेसे प्रतिकूल वृद्धि वा समृद्धिको पाता है, इस लिये प्रत्येक मनुष्योंको अपने मनमें "मेरा विचारा हुआ काम सिद्ध होगा" ऐसा निश्चय करके मनमें दुःख न मानते हुए सदा कर्म करनेको उठना चाहिये, जाग जाना चाहिये तथा ऐश्वर्य प्राप्तिके कामोंमें लग जाना चाहिये, हे पुत्र ! ऐसे काम करते समय मांगलिक कर्म करे, ब्राह्मण और देवताओंका पूजन करे, ऐसा करनेसे बुद्धिमान् राजाकी शीघ्र ही वृद्धि होती है तथा जैसे सूर्य पूर्वदिशाकी ओर उदय होजाता है तैसे ही राज्यलक्ष्मी उसकी ओरको झुकती है ॥२८-३१॥ मैंने तुझसे बहुतसे उपाय और उत्तेजना देने वाले अनेकों दृष्टान्त कहे हैं इस कारण मैं देखती हूँ कि-तू अब मुझे पुरुषार्थ करके दिखावेगा, मैं तुझे

ऋधान् परिक्षीणानवलितान् विमानितान् ॥ ३३ ॥ स्पर्धिनश्चैव ये
चित्तान् युक्त उपधारय। एतेन त्वं प्रकारेण महतो भेत्स्यते गणान्३४
हावेग इवोद्भूतो मातरिश्वा बलाहकान् । तेषामग्रप्रदायी स्याः
कल्योत्थायी प्रियंवदः । ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरोधास्यन्ति च
ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ यदैव शत्रुर्जानीयात् सपत्नं त्यक्तजीवितम् । तदैवा-
मादुद्विजते सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥ ३६ ॥ तं विदित्वा पराक्रांतं वशे न
कुर्यात् यदि । निर्वादैर्निर्वदेदेनमन्ततस्तद् भविष्यति ॥ ३७ ॥ निर्वादा-
ास्पदं लब्ध्वा धनवृद्धिर्भविष्यति । धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्र-
न्ति च ॥ ३८ ॥ स्खलितार्थं पुनस्तानि संत्यजन्ति च बांधवाः ।
प्यस्मिन्नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम् ॥ ३९ ॥ शत्रुं कृत्वा

रा स्वरूप भी सुनाती हूँ ॥ ३२ ॥ अब तुझे मेरी इच्छाके अनुसार
पुरुषार्थ करके ही दिखाना ही चाहिये, इस लिये जो पुरुष क्रोधी,
लोभी शत्रुओंसे अत्यन्त क्षीण हुए, घमंडी शत्रुओंसे अपमान पाये
हुए और शत्रुओंसे डाह करने वाले हों उनको तू अपने पक्षमें लेले
था युद्धकी सामग्रीको तयार कर, ऐसा करने पर तू, जैसे बड़े
गसे चलने वाला पवन बादलोंको तित्तर बित्तर कर डालता है
से ही तू भी शत्रुओंके बड़े भारी मण्डलको अवश्य ही नष्ट भ्रष्ट कर
ालेगा, तू अपने सहायकोंको पहिलेसे ही भोजन वेतन देकर सन्तोष
, प्रातःकाल ही उठा कर और सबके साथ प्यारा बोल ऐसा करने
र अवश्य ही वह तेरे मनचीते कामको सिद्ध कर देंगे और निःसन्देह
ुझे अपना अगुआ बनाये रहेंगे ॥ ३३ ॥ जब शत्रु जान लेता है, कि-
त्रु रणमें प्राण देने तक युद्ध करेगा तो जैसे सर्प वाले घरसे घरका
वामी घबड़ा जाता है तैसे ही वह भी संग्रामसे घबड़ाने लगता
॥३६॥ शत्रुको पराक्रमी जान लेने पर उसको वशमें करनेका उद्योग
रे, यदि वह वशमें न होय तो चतुर दूतोंके द्वारा सन्धि करके या
कुछ भेंट देकर वशमें करे, अन्तमें इस उपायसे शत्रु वशमें हो ही
ायगा ॥ ३७ ॥ शत्रुको वशमें कर लेनेसे राज्य मिलता है, धनकी
ृद्धि होगी, धनवान्का ही मित्र आश्रय लेते हैं और सेवा करते हैं३८
रन्तु जब मनुष्य अपनी धनसम्पदाको खो बैठता है तो उसको सब
ान्धव त्याग देते हैं तथा विश्वास नहीं करते, किन्तु उलटी निन्दा
करने लगते हैं ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य शत्रुको अपना सहायक बना कर
सका विश्वास करता है उसको राज्य मिलेगा, इस बातमें केवल

यः सहायं विश्वासमुपगच्छति । अतः सम्भाव्यमेवैतद्राज्यं प्राप्नुयादिति ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुला-
पुत्रानुशासने पंचत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

मातोवाच । नैव राज्ञः दरः कार्यो जातु कस्याञ्चिदापदि । अथ चेदपि दीर्णः स्यान्नैव वर्त्तेत दीर्णवत् ॥१॥ दीर्णं हि दृष्ट्वा राजानं सर्वमेवानुदीर्य्यते । राष्ट्रं बलममात्याश्च पृथक् कुर्वन्ति ते मतीः ॥ २ ॥ शत्रूनेके प्रपद्यन्ते प्रजहत्यपरे पुनः । अन्ये तु प्रजिहीर्षन्ति ये पुरस्ताद्विमानिताः ॥ ३ ॥ य एवात्यन्तसुहृदस्त एनं पर्य्युपासते । अशक्तयः स्वस्तिकामा बद्धवत्सा इला इव ॥ ४ ॥ शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बांधवान् । अपि ते पूजिताः पूर्वमपि ते सुहृदो मताः ॥ ५ ॥ ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राज्ञो व्यसनमीयुषः । मा दीदरस्त्वं सुहृदो मा त्वां

सन्देह ही रहता है अर्थात् शत्रुकी सेवा करने वालेको कभी राज्य मिल ही नहीं सकता॥४०॥ एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३५॥

माता विदुला कहने लगी, कि-राजाको किसी भी आपत्तिके समय कभी भी भय नहीं करना चाहिये और कदाचित् चित्तमें भय बैठ भी जाय तो भयभीतके सा वर्त्ताव न करे ॥१॥ क्योंकि-राजाको भयभीत हुआ देख .कर उसकी प्रजा सेना तथा मंत्रिमण्डली भी भयभीत होकर अपने विचारोंको बदल देती है ॥ २ ॥ भयभीत हुए राजाके मनुष्योंमेंसे कितने ही तो शत्रुकी ओर जा मिलते हैं, कितने ही उस राजाको छोड़ कर कहीं औरको चले जाते हैं और जिन लोगोंका पहिले अपमान किया होता है वह उसका राज्य ही छीनने की इच्छा करने लगते हैं ॥ ३ ॥ जो बड़े ही भारी मित्र होते हैं वह ही उस समय इसके पास रहते हैं, वह राजाका भला करना तो चाहते हैं परन्तु शक्तिहीन होनेके कारण कुछ कर भी नहीं सकते और जिनके बछड़े बँधे हों ऐसी गौओंकी समान उसको छोड़ कर भी कहीं नहीं जाते हैं ॥ ४ ॥ किन्तु दुःखी बान्धवोंकी समान दुःखशोकमें पड़े हुए राजाके लिये शोक करते हैं, तूने पहिले जिनका सत्कार किया था तथा जिनको तू अपना स्नेही मानता था और जो दुःखमें पड़े हुए राजाके राज्यको अपना राज्य मान कर उसका उद्धार करनेका अभिमान रखते हैं, उन स्नेहियोंके मनमें तू भय उत्पन्न न कर और भयभीत हुए तुझको वह भी न त्यागें ऐसा कर ॥ ५ ॥ ६ ॥ तेरे प्रभाव,

दीर्णं महासिपुः ॥ ६ ॥ प्रभावं पौरुषं बुद्धिं जिज्ञासन्त्या मया तव । विदधत्या समाश्वासमुक्तं तेजोविवृद्धये ॥ ७ ॥ यद्येतत् संविजानासि यदि सम्यग् ब्रवीम्यहम् । कृत्वा सौम्य मिवात्मानं जयायोत्तिष्ठ सञ्जय ॥ अस्ति नः कोषनिचयो महान् हि विदितस्तव । तमहं वेद नान्यस्त-मुपसम्पादयामि ते ॥ ९ ॥ सन्ति नैकशता भूयः सुहृदस्तव सञ्जय । सुखदुःखसहा वीर शतार्हा ह्यनुवर्त्तिनः ॥ १० ॥ तादृशा हि सहाया वै पुरुषस्य बुभूषतः । इष्टं जिहीर्षतः किञ्चित् सचिवाः शत्रुकर्शन ११ तस्यास्त्वीदृशकं वाक्यं श्रुत्वापि स्वल्पचेतसः । तमस्त्वपागमत्तस्य सुचित्रार्थपदाक्षरम् ॥ १२ ॥ पुत्र उवाच । उदके भूरियं धार्या मर्त्तव्यं प्रवणे मया । यस्य मे भवती नेत्री भविष्यद्भूतिदर्शिनी ॥ १३ ॥ अहं हि वचनं त्वत्तः शुश्रूषुरपरापरम् । किञ्चित् किञ्चित् प्रतिवदंस्तूष्णी-मासं मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥ अतृप्यन्नमृतस्येव कृच्छ्राल्लब्धस्य बान्धवात् ।

पुरुषार्थ और बुद्धिबलको जाननेकी इच्छा करनेवाली मैंने तेरे तेजको बढ़ानेके लिये तुझसे यह धीरज बँधानेकी बातें कही हैं ॥ ७ ॥ इस लिये हे सञ्जय ! अब मैंने तुझसे जो कुछ कहा है उसको भले प्रकार समझ ले और अपने मनको प्रचण्ड करके विजय करनेके लिये खड़ा होजा ॥ ८ ॥ हमारे पास बड़ा भारी धनभण्डार है, यह तुझे मालूम ही है, परन्तु उसका पता मैं ही जानती हूँ, दूसरा कोई नहीं जानता वह मैं तुझे सौंपती हूँ ॥ ९ ॥ हे सञ्जय ! तेरे हितैषी भी बहुतसे हैं, हे वीर ! वह सब दुःख और सुखको सहने वाले तथा संग्रामसे पीछे को न हटने वाले हैं ॥ १० ॥ हे शत्रुनाशन ! विजय चाहने वाले और किसीप्रकारकी वस्तुको हरण करना चाहने वाले पुरुषको तैसे सहा-यक मंत्रीरूप होजाते हैं ॥११॥ राजा सञ्जय छोटे मनका था, तो भी माताके सुन्दर और विचित्र अर्थ, पद तथा अक्षरों वाले वचनोंको सुन कर उसका अज्ञान दूर होगया, अर्थात् सञ्जय निर्भय होकर युद्ध करनेको तयार होगया ॥ १२ ॥ पुत्रने कहा, कि-मेरा राज्य शत्रुरूप जलमें डूब गया है, मैं उसका उद्धार करूँगा नहीं तो रणमें अपने प्राणोंको त्याग दूँगा, क्योंकि-तुम सरीखी माता मुझे प्रेरणा करने वाली और मेरी भविष्यकी सम्पदाको दिखाने वाली है ॥ १३ ॥ मैं तेरे वचनोंको बराबर सुनना चाहता था, इस कारण मैं बीच २ में कुछ २ उत्तर दे २ कर वार २ मौन धारण कर लेता था ॥ १४ ॥ बड़ी कठिनतासे मिले हुए अमृतकी समान तुम्हारे वचनोंको सुन कर मेरे

उद्यच्छाम्येष शत्रूणां नियमार्थं जयाय च ॥ १५ ॥ कुन्त्युवाच । सदश्व इव स क्षिप्तः प्रणुन्नो वाक्यसायकैः । तच्चकार तथा सर्वं यथावदनुशासनम् ॥ १६ ॥ इदमुद्धर्षणं भीमं तेजोवर्द्धनमुत्तमम् । राजानं श्रावयेन्मन्त्री सीदन्तं शत्रुपीडितम् ॥ १७ ॥ जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा । महीं विजयते क्षिप्रं श्रुत्वा शत्रूंश्च मर्दति ॥ १८ ॥ इदं पुंसवनञ्चैव वीराजननमेव च । अभीक्ष्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते ॥ १९ ॥ विद्याशूरं तपोशूरं दानशूरं तपस्विनम् । ब्राह्म्या श्रिया दीप्यमानं साधुवादे च सम्मतम् ॥ २० ॥ अर्चिष्मन्तं बलोपेतं महाभागं महारथम् । धृतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम् ॥ २१ ॥ नियन्तारमसाधूनां गोप्तारं धर्मचारिणाम् । ईदृशं क्षत्रियं सूते वीरं सत्यपराक्रमम् ॥ २२ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि विदुलापुत्रानुशासनसमाप्तौ षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

मनको तृप्ति नहीं होती थी, अब मैं बान्धवोंकी सहायता पाकर शत्रुओंको दबानेके लिये तथा विजय पानेके लिये चढ़ाई करता हूँ १५ कुन्ती कहती है कि–हे कृष्ण ! जब माताने वाक्यरूपी बाणोंसे पुत्रको बींध डाला तब प्रहार किये हुए तेज घोड़ेकी समान सञ्जयने भी माताके हितकारी उपदेशके अनुसार सब काम किया॥१६॥राजा जब शत्रुसे पीड़ा पाता हो और दुःखी होता हो तब मंत्री राजाको यह उत्तेजक भयानक तथा तेजको बढ़ाने वाला उत्तम आख्यान सुनावे ॥ १७ ॥ और विजय पानेकी इच्छा वाला राजा भी इस विजय देने वाले इतिहासको सुने क्योंकि—इस विजयदायक इतिहास को सुन कर राजा तुरन्त शत्रुओंका संहार करके पृथ्वीको जीत लेता है ॥ १८ ॥ यह महात्म्य पुत्र देनेवाला तथा शूर वीर बालकोंको जन्म देनेवाला है, गर्भवती स्त्री सदा इस इतिहास को सुन कर वीरपुत्रको उत्पन्न करती है १९ ॥ जो क्षत्रियकी स्त्री इस इतिहासको सुनती है तो विद्याशूर, तपस्याशूर, दानशूर, तपस्वी ब्राह्मी शोभासे दिपते हुए, साधुओंके प्रसङ्गमें माननीय, तेजस्वी, बली, महाभागा महारथी, धैर्यवान्, किसीसे तिरस्कार न पानेवाले, विजयशील, किसीसे जीते न जाने वाले, दुष्टोंका दमन करने वाले, धर्माचरण करनेवालोंके रक्षक, वीर और सत्यपराक्रमी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ २०-२२ ॥ एकसौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३६ ॥

कुन्त्युवाच । अर्जुनं केशव ब्रूयास्त्वयि जाते स्म सूतके । उपोपविष्टा नारीभिराश्रमे परिवारिता ॥१॥ अथान्तरिक्षे वागासीद् दिव्यरूपा मनोरमा । सहस्राक्षसमः कुन्ति भविष्यत्येष ते सुतः ॥ २ ॥ एष जेष्यति संग्रामे कुरून् सर्वान् समागतान् । भीमसेनद्वितीयश्च लोकमुद्वर्तयिष्यति ॥ ३ ॥ पुत्रस्ते पृथिवीं जेता यशश्चास्य दिवं स्पृशेत् । हत्वा कुरूंश्च संग्रामे वासुदेवसहायवान् ॥ ४ ॥ पित्र्यमंशं प्रनष्टञ्च पुनरप्युद्धरिष्यति । भ्रातृभिः सहितः श्रीमांस्त्रीन् मेधानाहरिष्यति ५ स सत्यसन्धो बीभत्सुः सव्यसाची यथाच्युत । तथा त्वमेव जानासि बलवन्तं दुरासदम् ॥६॥ तथा तदस्तु दाशार्ह यथा वागभ्यभाषत । धर्मश्चेदस्ति वार्ष्णेय तथा सत्यं भविष्यति ॥ ७ ॥ त्वञ्चापि तत्तथा कृष्ण सर्वं सम्पादयिष्यसि । नाहं तदभ्यसूयामि यथा वागभ्यभाषत८ नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः । एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः९एतदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः । न हि वैरं

कुन्ती बोली, कि-हे केशव ! तुम अर्जुनसे कहना, कि-जब तू मेरे पेटसे उत्पन्न हुआ था तब मैं आश्रममें सब स्त्रियोंसे घिरी हुई बैठी थी ॥ १ ॥ उस समय यह दिव्यस्वरूप वाली मनोहर आकाशवाणी हुई थी, कि-हे कुन्ती ! तेरा यह पुत्र इन्द्रकी समान पराक्रमी है ॥ २ ॥ यह अपने भाई भीमसेनके साथ रह कर युद्धमें इकट्ठे हुए सब कौरवोंको जीत लेगा और शत्रुओंको व्याकुल कर डालेगा ॥३॥ और यह तेरा पुत्र सब पृथ्वीको भी जीतलेगा, इसका यश स्वर्ग तक पहुँच जायगा, यह वासुदेवकी सहायतासे युद्धमें सब कौरवोंको मार डालेगा ॥ ४ ॥ नष्टहुए अपने पिताके राज्यको फिर अपने हाथमें कर लेगा तथा अपने भाइयोंके साथ तीन अश्वमेध यज्ञोंको करेगा ५ हे अच्युत ! यह अर्जुन जैसा सत्यप्रतिज्ञ और शत्रुओंको नाश करने वाला है उसको तुम जानते ही हो, यह महाबली है और इसको कोई कठिनाई उठा कर भी नहीं जीत सकता ॥ ६ ॥ हे कृष्ण ! आकाशवाणीने जैसा कहा है वैसा ही हो, यह मेरी इच्छा है, हे यदुवंशी ! यदि धर्म सत्य है तो ऐसा अवश्य ही होगा ॥ ७॥ हे कृष्ण ! तुम भी सब काम तिस प्रकार ही करोगे ऐसा कह कर आकाशवाणीने जो कुछ कहा है उसकी मैं निंदा नहीं करती हूँ ॥ ८ ॥ मैं महात्मा धर्म को प्रणाम करती हूँ क्योंकि—यह सब प्रजाको धारण कर रहा है, तुम अर्जुनसे तथा नित्य उद्योग करने वाले भीमसेनसे कहना कि-९

समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः ॥ १० विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति । यावदन्तं न कुरुते शत्रूणां शत्रुकर्शन ॥ ११ ॥ सर्वधर्मविशेषज्ञां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः । ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम् ॥ १२ ॥ युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि । यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत्त्वमवर्तिथाः ॥१३॥ माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ । विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि ॥१४॥ विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः । मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥१५॥ यच्च वा प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनाम् पञ्चाली परुषाण्युक्ता को नु तत् क्षन्तुमर्हति ॥ १६ ॥ न राज्यहरणं दुःखं द्यूते चापि पराजयः । प्रव्राजनं सुतानां वा न मे तद् दुःखकारणम् ॥ १७ ॥ यत्र सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा । अश्रौषीत् परुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं महत् १८ स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा । नाध्य-

---

क्षत्राणियें अपने पुत्रोंको जिस कामको करनेके लिये उत्पन्न करती है उस कामको करनेका समय आपहुँचा है, श्रेष्ठ पुरुष किसीसे वैरभाव होनेपर दुःख नहीं उठाते हैं ॥ १० ॥ तुम भीमसेनकी बुद्धिको जानते ही हो, हे शत्रुनाशक कृष्ण ! वह जब तक शत्रुओंका संहार नहीं कर लेगा तबतक उसका चित्त शांत नहीं होगा ॥११॥ हे मधुवंशी कृष्ण! महात्मा पांडुकी पुत्रवधू जो सब धर्मोंमें निपुण, कल्याणकारी गुणोंवाली और यशस्विनी है उस द्रौपदीसे तुम मेरी ओरसे कहना, कि ॥१२॥ हे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई महाभागा द्रौपदी तूने मेरे सब पुत्रोंके साथ धर्मके अनुसार बर्त्ताव किया यह तूने योग्य काम किया है १३ और तुम मेरे कहनेसे क्षत्रिय धर्ममें प्रीति रखने वाले माद्रीके दोनों पुत्रोंसे कहना, कि-तुम प्राण देकर भी पराक्रमसे उत्तम ऐश्वर्योंको प्राप्त करना ॥ १४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! क्षत्रियधर्मसे आजीविका करने वाले मनुष्यको पराक्रमसे जो पदार्थ मिलते हैं वह पदार्थ उसके चित्तको सदा प्रसन्न करते हैं ॥ १५ ॥ सकल धर्मोंको बढाने वाले तुम सबों की आँखोंके सामने दुर्योधनने द्रौपदीसे कठोर वचन कहे थे उनको कौन सह सकता है ? ॥ १६॥ राज्य छिन गया, इस बातका मुझे दुःख नहीं है. जुएमें हमारी हार हुई इस बातका दुःख नहीं है और मेरे पुत्रोंको वनवास देदिया यह बात भी मेरे दुःखका कारण नहीं है॥ १७ ॥ परन्तु कौरवोंकी सभामें उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई तरुणी द्रौपदीने जो रोते २ दुर्योधनके कठोर वचन सुने थे उससे मेरे मनको

गच्छत्तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती ॥ १९ ॥ तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम् । अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्या पदवीञ्चर ॥ २० ॥ विदितं हि तवात्यन्तं क्रुद्धाविव यमान्तकौ । भीमार्जुनौ नयेतां हि देवानपि परां गतिम् ॥ २१ ॥ तयोश्चैतद्वज्ञानं यत् सा कृष्णा सभां गता । दुःशासनश्च यद्भीमं कटुकान्यभ्यभाषत ॥ २२ ॥ पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संस्मारयेः पुनः । पांडवान् कुशलं पृच्छेः सपुत्रान् कृष्णया सह ॥२३॥ मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन । अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान्मे प्रतिपालय ॥ २४ ॥ वैशम्पायन उवाच । अभिवाद्याथ तां कृष्णः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः॥२५॥ ततो विसर्ज्जयामास भीष्मादीन् कुरुपुङ्गवान् । आरोप्याथ रथे कर्णं प्रायात् सात्यकिना सह ॥ २६ ॥ ततः प्रयाते दाशार्हे

बड़ा दुःख होता है ॥ १८ ॥ सदा क्षत्रियधर्ममें प्रीति रखने वाली, पतिव्रता, सुन्दराङ्गी, मेरे पुत्रोंकी बहू पतिव्रता द्रौपदी उस समय रजस्वला थी तो भी उसकी किसीने रक्षा न की ॥ १९ ॥ हे महाबाहु कृष्ण ! तुम सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और पुरुषोंमें व्याघ्रसमान अर्जुन से कहना कि--तू द्रौपदीकी संमतिके अनुसार वर्त्ताव कर अर्थात् शत्रुओंका नाश कर ॥ २० ॥ भीमसेन और अर्जुन कोपमें भरे हुए सर्पोंकी समान हैं और वह देवताओंको भी परमपदमें पहुँचा सकते हैं, इस बातको तुम भले प्रकार जानते ही हो ॥२१॥ हे कृष्ण ! कौरवों की सभामें सब वीर कौरवोंके सामने दुःशासनने सभामें खड़ी हुई द्रौपदीसे अपानरूपसे जो तीखे वचन कहे थे, वह भीमसेन और अर्जुनका अपमान करने वाले थे, उन वचनोंकी फिर याद दिला देना और पाण्डवोंसे उनके पुत्रोंसे तथा द्रौपदीसे मेरी ओरसे कुशल पूछना ॥ २२ ॥ २३ ॥ और हे जनार्दन ! उनसे वारम्वार मेरा कुशल समाचार कहना, तथा तुम निर्विघ्न रीतिसे मार्गको लाँघ कर जाना और मेरे पुत्रोंकी रक्षा करना ॥ २४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर क्रीड़ा करते हुए सिंहकी समान चलने वाले महाबाहु श्रीकृष्ण जीने कुन्तीको प्रणाम किया और फिर प्रदक्षिणा करके उस स्थानमेंसे बाहर निकल आये ॥ २५ ॥ और फिर भीष्मपितामह आदि बड़े २ कौरवोंको घर जानेके लिये विदा कर दिया और कर्ण तथा सात्यकी के साथ रथमें बैठकर चलदिये ॥ २६ ॥ यदुवंशी श्रीकृष्णके चले जाने पर सब कौरव इकट्ठे होकर अपनी २ मण्डलीमें श्रीकृष्णजीके विषय

कुन्वः सङ्गता मिथः । जजल्पुर्मद्दाश्चर्यं केशवे परमाद्भुतम् ॥ २७ ॥ प्रमूढा पृथिवी सर्वा मृत्युपाशवशी कृता । दुर्योधनस्य बालिश्यान्नैत-दस्तीति चाब्रुवन् ॥ २८ ॥ ततो निर्याय नगरात् प्रययौ पुरुषोत्तमः । मन्त्रयामास च तदा कर्णेन सुचिरं सह ॥ २९ ॥ विसर्ज्जयित्वा राधेयं सर्वयादवनन्दनः । ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत् ॥ ३० ॥ ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिताः । हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुत-रंहसः ३१ ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगाः । उच्चैर्जग्मुरु-पप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीवाक्ये सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

वैशम्पायन उवाच । कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ दुर्य्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम् ॥ १ ॥ श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुंत्याः कृष्णस्य सन्निधौ । वाक्यमर्थवदत्युग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम् २ तत्

की महा आश्चर्य भरी हुई परम अद्भुत बातें इस प्रकार कहने लगे, कि-॥ २७ ॥ यह सब पृथिवी अत्यन्त अज्ञानसे छाजानेके कारण मृत्यु की फाँसीमें बँधी हुईसी प्रतीत होती है और यह देश दुर्योधनकी मूर्खताके कारण नष्ट होजायगा ऐसी बातें करने लगे ॥२८॥ पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी नगरमेंसे बाहर निकल कर आगेको चल दिये उन्होंने कुछ दूर जाकर कर्णके साथ बहुत देर तक राजकाज संबन्धी गुप्त विचार की बातें करीं, फिर सब यादवोंको आनन्द देने वाले श्रीकृष्णने कर्ण को विदा करके तुरन्त घोड़ोंको हाँक दिया ॥ २९ ॥ ३० ॥ कृष्णजीके रथके बड़े वेग वाले घोड़े पवन तथा मनकी समान शीघ्रगामी थे, उन को दारुकने ज्यों हो हाँका, कि-वह ऐसे वेगसे दौड़ने लगे, कि-मानो आकाशको पीरहे हैं ॥३१॥ और शीघ्रतासे उडनेवाले बाज पक्षियोंकी समान शीघ्र ही बड़े भारी मार्गको तय करके शार्ङ्ग धनुषको धारण करने वाले श्रीकृष्णजीके लिये हुए उपप्लव्य नामक (जहाँ पाण्डवों की छावनी थी) उस स्थानमें पहुँच गये ॥ ३२ ॥ एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३७ ॥ छ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि--महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य कुन्ती के संदेशेको सुनकर आज्ञा न माननेवाले दुर्योधनसे कहने लगे कि १ हे पुरुषोंमें सिंह समान दुर्योधन! कुन्तीने श्रीकृष्णके सामने जो वाक्य कहे हैं उन वाक्योंको तूने सुना ? वह वाक्य धर्म और अर्थ भरे अति

करिष्यन्ति कौन्तेया वासुदेवस्य सम्मतम् । न हि ते जातु शाम्येरन्नृते राज्येन कौरव ॥ ३ ॥ क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा । सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव ॥ ४ ॥ कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्चयम् । गाण्डीवञ्चेषुधी चैव रथञ्च ध्वजमेव च ॥ ५ ॥ नकुलं सहदेवञ्च बलवीर्य्यसमन्वितौ । सहायं वासुदेवञ्च न क्षंस्यति युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षन्ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता । विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः ॥७॥ दानवा घोरकर्माणो निवातकवचा युधि । रौद्रमस्त्रं समादाय दग्धा वानरकेतुना ॥ ८ ॥ कर्णप्रभृतयश्चेमे त्वञ्चापि कवची रथी । मोक्षितो घोषयात्रायां पर्य्याप्तं तन्निदर्शनम् । प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ ९ ॥ रक्षेमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दंष्ट्रान्तरङ्गताम् । ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक् कविः ॥ १० ॥ तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम् । दृष्टश्च त्वं

उत्तम तथा बड़े ही उग्र हैं ॥ २ ॥ हे कौरवो ! अब पाण्डव श्रीकृष्णकी सम्मतिसे वैसा ही करेंगे, वह राज्य लिये विना कभी भी शांत होने वाले नहीं हैं ॥ ३ ॥ पाण्डव जब धर्मकी पाशमें बँधे थे उस समय तूने उनको बड़ा ही दुःख दिया था तथा सभामें द्रौपदीको भी दुःख दिया था, यह सब तेरा अपराध उन्होंने सह लिया था ॥ ४ ॥ परन्तु इस समय अस्त्रविद्यामें चतुर अर्जुनको, दृढ़ निश्चयवाले भीमसेनको गांडीव धनुषको, जिनमेंके बाण कभी कम न हों ऐसे दो हाथोंको, रथको ध्वजाको, बली और वीर नकुलको, सहदेवको तथा श्रीकृष्णजीको सहायकरूपसे पाकर राजा युधिष्ठिर तुझे क्षमा नहीं करेंगे ॥५-६ ॥ हे महाबाहु दुर्योधन ! पहिले विराट नगरमें गोहरणके समय युद्ध होने पर बुद्धिमान् अर्जुनने जैसे हम सबोंको हरा दिया था सो तूने प्रत्यक्ष देखा ही था ॥ ७ ॥ जिसकी ध्वजामें वानर है ऐसे अर्जुनने रुद्रास्त्र को हाथमें लेकर, युद्धमें भयानक कर्म करनेवाले निवातकवच नामके दानवोंको भी भस्म कर डाला था ॥ ८ ॥ घोषयात्रामें इन कर्ण आदि वीर पुरुषोंको तथा कवच पहर कर रथमें बैठे हुए तुझको भी पांडवों ने गन्धर्वोंके हाथसे छुड़ाया था, यह दृष्टांत भी हमको पूरा २ याद है, इस लिये हे भरतवंशी राजन् ! तू पाण्डव भाइयोंके साथ सन्धि कर ले ॥ ९ ॥ यह सब पृथिवी मृत्युकी डाढ़ तले पहुँच गयी है, तू इसकी रक्षा कर, तेरा बड़ा भाई धर्मराज धर्मका प्रेमी मधुरभाषी और विद्वान् है ॥ १० ॥ इस लिये तू अपने पापी विचारको दूर करके पुरुषोंमें सिंह

पांडवेन व्यपनीतशरासनः ॥११॥ प्रशान्तभ्रकुटिः श्रीमान् कृता शांतिः कुलस्य नः । तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम् ॥१२॥ अभिवाद्य राजानं यथापूर्वमरिन्दम । अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः ॥ १३ ॥ प्रतिगृह्णातु सौहार्दात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः ॥१४॥ परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः । कम्बुग्रीवो गुडाकेशस्ततस्त्वं पुष्करेक्षणः ॥ १५ ॥ अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः॥१६॥ आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि । तौ च त्वां गुरुवत् प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम् ॥ १७ ॥ मुञ्चन्त्वानन्दजाश्रूणि दाशार्हप्रमुखा नृपाः । संगच्छ भ्रातृभिः सार्द्धं मानं सन्त्यज्य पार्थिव ।१८।प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्त्वं भ्रातृभिः सह । समालिंग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम् ॥ १९ ॥ अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु कारणम् । ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां

समान राजा युधिष्ठिरके पास जा और उनसे मिल, जब राजा युधिष्ठिर तुझे धनुषरहित, शांत भ्रकुटि वाला और सुन्दर आकार वाला देखेंगे उस ही समय अपने कुरुकुलकी शांति हुई समझेंगे, इस लिये हे शत्रुनाशन ! तू अपने मन्त्रियों सहित राजा युधिष्ठिरके पास जा और पहिलेकी समान ही उनको प्रणाम तथा आलिङ्गन कर तो भीमसेनके बड़े भाई, सिंहकी समान गर्दनवाले, विशाल बाहु गोल और विशाल बड़ी२ भुजाओंवाले,कुंतीनंदन राजा युधिष्ठिर प्रणाम करते हुए तुझको दोनों हाथोंसे पृथ्वी परसे उठाकर खड़ा करेंगे११-१४महायोधा भीमसेन दोनों हाथोंसे तुझे आलिंगन करे शंखकी समान गोल गरदन वाला और कमलकी समान नेत्रोंवाला कुन्तीपुत्र निरालस अर्जुन तुझे प्रणाम करे, भूमण्डल पर अनुपम रूपवाले मनुष्योंमें सिंहसमान अश्विनीकुमारके पुत्र सहदेव तुझे गुरुकी समान मानकर प्रेमके साथ तेरा सत्कार करें ॥ १६ ॥ १७ ॥ दाशार्ह आदि राजे यह देखकर आनन्दसे आँसू बहावें, हे राजन् ! तू अभिमानको त्यागकर अपने भाइयोंके साथ मेल करले ॥ १८ ॥ तदनन्तर तू अपने भाइयों के साथ अब पृथिवीका राज्य कर और युद्ध करनेके लिये आये हुए राजे परस्पर प्रेमके साथ आलिंगन करके अपने २ घरोंको जायँ ।१९। हे राजेन्द्र ! अब तू युद्ध करनेका विचार छोड़दे और सम्बन्धी तुझे युद्ध करनेसे रोकते हैं उनकी बात सुन, युद्धमें अवश्य ही क्षत्रियों का नाश होगा, यह बात प्रत्यक्ष दीख रही है ॥ २० ॥ नक्षत्र प्रति-

प्रकाशते ॥ २० ॥ ज्योतींषि प्रतिकूलानि दारुणा मृगपक्षिणः । उत्पाता विविधा वीर दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥२१॥ विशेषत इहास्माकं निमित्तानि विनाशने । उल्काभिर्हि प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव ॥२२॥ वाहनान्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते । गृध्रास्ते पर्युपासन्ते सैन्यानि च समन्ततः ॥ २३ ॥ नगरं न यथा पूर्वं तथा राजनिवेशनम् । शिवाश्चाशिवनिर्घोषा दीप्तां सेवन्ति वै दिशम् ॥ २४ ॥ कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम् । त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च ॥ २५ ॥ न चेत् करिष्यसि वचः सुहृदामरिकर्षण । तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् ॥ २६ ॥ भीमस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे । श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निस्वनम् । यद्येतदपसव्यं ते वचो मम भविष्यति ॥ २७ ॥ ❋

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्येऽष्टत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः । संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किञ्चिद् व्याजहार ह ॥ १ ॥ तं वै विमनसं

कूल होरहे हैं, पशु पक्षी बड़े भयावनेसे दीखते हैं और हे वीर! क्षत्रियोंके नाशको सूचित करनेवाले अनेकों उत्पात दीख रहे हैं ॥२१ ॥ यहाँ हमारे नगरमें तो बहुत ही कुशकुन होरहे हैं, अनेकों उल्कापातोंसे तेरी सेना पीड़ा पाती है ॥२२॥ हे राजन्! हाथी घोड़े आदि वाहन उदास और रोते हुएसे दीखते हैं और गिद्ध तेरी सेनाके चारों ओर आकर उड़ते हैं ॥ २३ ॥ नगर और राजभवन पहिलेकी समान आनन्दमय नहीं दीखते, गीदड़ियें जलती हुई दिशाओंकी ओरको मुख करके अमंगलसे भराहुआ शब्द करती हैं ॥ २४ ॥ इसलिये तू अपने माता पिताके और हम हितैषियोंके कहनेको मान ले हे महाबाहु दुर्योधन! सन्धि करना अथवा युद्ध करना यह तेरे ही हाथमें है ॥ २५ ॥ हे शत्रुनाशन! यदि तू सम्बन्धियोंका कहना नहीं मानेगा तो जब तू अपनी सेनाको अर्जुनके बाणोंसे पीड़ा पाती हुई देखेगा उस समय पछतावेगा ॥ २६ ॥ यदि तुझे मेरा यह कहना अच्छा नहीं लगेगा तो रणमें बलवान् भीमसेनकी बड़ी भारी गर्जनाको सुनकर तथा गाण्डीव धनुषकी टङ्कारको सुन कर तुझे मेरी बात याद आवेगी ॥ २९ ॥ एकसौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३८ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-अब भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यने

दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्यान्योऽन्यमन्तिकात् । पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ ॥ २ ॥ भीष्म उवाच । शुश्रूषुमनसूयुञ्च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम् । प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम् ॥ ३ ॥ द्रोण उवाच । अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनंजये । बहुमानः परो राजन् समाम्नातश्च कपिध्वजे ॥ ४ ॥ तञ्च पुत्रात् प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनञ्जयम् । क्षात्रधर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५ ॥ यस्य लोके समो नास्ति कश्चिदन्यो धनुर्द्धरैः । मत्प्रसादात् स बीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः ॥ ६ ॥ मित्रध्रुग् दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः । न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः ॥ ७ ॥ वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति । चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति ॥ ८ ॥ मिथ्योपचरिता ह्येते वर्त्तमाना ह्यनः

ऐसा कहा तब दुर्योधन मनमें उदास होगया, दृष्टि नीचेको करली, भ्रकुटिके मध्यभागको सकोड़ लिया और कुछ भी उत्तर नहीं दिया१ दुर्योधनको उदास देखकर महात्मा भीष्म द्रोणाचार्य एक दूसरेके मुखकी ओरको देखकर फिर उत्तररूपसे वाक्य कहने लगे ॥ २ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-सेवा करना चाहने वाले ईर्षारहित, ब्रह्मवादी और सत्यवादी अर्जुनके साथ हमें युद्ध करना पड़ेगा, इससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ? ॥ ३ ॥ द्रोणाचार्यने कहा, कि-हे राजन् ! मुझे अपने पुत्र अश्वत्थामाके ऊपर जितना प्रेम है, अर्जुनके ऊपर उससे भी अधिक प्रेम है, वह मेरा बड़ाभारी सन्मान करता है तथा अर्जुनमें विनय भी बड़ीभारी है ॥ ४ ॥ धिक्कार है क्षत्रियके धर्मको, कि-जिस धर्मका आश्रय लेनेसे मुझे पुत्रसे भी अधिक प्यारे अर्जुनके साथ युद्ध करना पड़ेगा ॥ ५ ॥ इस लोकमें जिस अर्जुनकी समान धनुषधारी दूसरा कोई नहीं है, वह अर्जुन और धनुषधारियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ मेरे ही अनुग्रहसे है ॥ ६ ॥ जैसे यज्ञमें आयाहुआ मूर्ख सत्कार नहीं पाता है तैसे ही मित्रका द्रोही, दुष्ट स्वभाव वाला नास्तिक कुटिल और शठ मनुष्य सत्पुरुषोंमें प्रतिष्ठा नहीं पाता है७ पापात्मा पुरुषको पापोंके करनेसे रोका जाय तो भी वह पाप करनेकी ही इच्छा करता है और जो पुण्यात्मा है उसको पापी पुरुष बहकावें तो भी वह उनको न मानकर पुण्यकर्म ही करता है ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! तूने कपट करके पांडवोंको दुःख दिया है तो भी वह तेरा हित करनेमें ही लगे रहते हैं, परन्तु तेरे दोष तेरे अहित

विषे। अहितत्वाय कल्पन्ते दोषाः भरतसत्तम ॥ ९ ॥ त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च। वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाभिमन्यसे ॥१०॥ अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि। सग्राहनक्रमकरं गंगावेगमिवोल्बणं ॥ ११ ॥ वासस्यैव यथा हि त्वं प्रावृण्वानोऽभिमन्यसे। स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद्यौधिष्ठिरीं श्रियम्॥ १२॥ द्रौपदीसहितं पार्थं सायुधैर्भ्रातृभिर्वृतम्। वनस्थमपि राजस्थः पाण्डवं को विजेष्यसि ॥ १३ ॥ निदेशे यस्य राजानः सर्वे तिष्ठन्ति किंकराः। तमैलविलमासाद्य धर्मराजो व्यराजत ॥ १४ ॥ कुबेरसदनं प्राप्य ततो रत्नान्यवाप्य च। स्फीतमाक्रम्य ते राष्ट्रं राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः १५ दत्तं हुतमधीतञ्च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः। आवयोर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ ॥१६॥ त्वन्तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च। विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद्व्यसनमाप्स्यसि ॥ १७ ॥ द्रौपदी यस्य चाशास्ते विजयं सत्यवादिनी। तपोधारव्रता देवी कथं जेष्यसि पाण्ड-

---

कारी होरहे हैं ॥ ९ ॥ तुझे कुरुवंशके वृद्ध पुरुषोंने, मैंने विदुरने और श्रीकृष्णने समझाया, परन्तु तू कल्याणकी बातको मानता ही नहीं१० मेरे पास सेना है ऐसा विचार कर तू एकायकी वर्षाकालमें नाके मगर मच्छ और ग्राहोंसे भरी हुई गंगाके वेगको तरना चाहता है ११ तू अपने शरीरको वस्त्र ढककर समझता है कि मैं चारों ओरसे ढका हुआ हूँ अब मुझे कौन मार सकता है, किसीकी फेंकी हुई पुष्पमाला को लेकर जैसे मनुष्य समझता है, कि-यह मेरी है तैसे ही तू भी लोभसे राजा युधिष्ठिरकी राज्यलक्ष्मीको लेकर अपनी कैसे मान बैठा है ? ॥ १२ ॥ अरे ! राजा युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ तथा शस्त्रधारी भाइयोंके साथ वनमें रहते हैं तो भी राज्यमें रहनेवाला कौनसा पुरुष उनका पराजय करसकता है ॥ १३ ॥ सब राजे किंकरकी समान बनकर जिनकी आज्ञामें रहते हैं उन राजा कुबेरके साथ रण में भेटा करके धर्मराजने बडी शोभा पायी थी ॥ १४ ॥ और कुबेरके राजभवनमें जाकर तहाँसे रत्न लाये थे, वह पांडव अब तेरे सम्पदा से चमकते हुए देशपर चढाई करके तेरे राज्यको लेना चाहते हैं ॥१५॥ हम दोनोंने दान दिया है, होम किये हैं, वेदशास्त्र पढे हैं, ब्राह्मणों को धन देकर सन्तुष्ट किया है और अब हम दोनोंकी आयु भी पूरी होनेको आगयी है, इस लिये तू हमें कृतकृत्य जान ॥ १६ ॥ परन्तु तू तो पाण्डवोंके साथ कलह करके सुख, राज्य, मित्र और धनको खो

१९-१२-२७

वम् ॥ १८ ॥ मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनञ्जयः । सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ १९ ॥ सहाया ब्राह्मणा यस्य धृतिमन्तो जितेन्द्रियाः । तमुग्रतपसं वीरं कथं जेष्यसि पाण्डवम् ॥ २० ॥ पुनरुक्तञ्च वक्ष्यामि यत् कार्य्यं भूतिमिच्छता । सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे ॥२१॥ अलं युद्धेन तैर्वीरैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये । मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च पराभवम् ॥ २२ ॥　　छ　　छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भीष्मद्रोणवाक्ये एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच । राजपुत्रैः परिवृतस्तथा भृत्यैश्च सञ्जय । उपारोप्य रथे कर्णं निर्यातो मधुसूदनः ॥ १ ॥ किमब्रवीदमेयात्मा राधेयं परवीरहा । कानि सान्त्वानि गोविन्दः सूतपुत्रे प्रयुक्तवान् ॥२॥ उद्यन् मेघस्वनः काले कृष्ण कर्णमथाब्रवीत् । मृदु वा यदि वा तीक्ष्णं तन्ममाचक्ष्व सञ्जय॥३॥ सञ्जय उवाच । आनुपूर्व्येण वाक्यानि तीक्ष्णानि

बैठेगा तथा बड़ाभारी दुःख पावेगा ॥ १७ ॥ भयानक तप और व्रत करनेवाली सत्यवादिनी द्रौपदी, जिस युधिष्ठिरकी सदा विजय चाहती है ऐसे पाण्डवको तू किसप्रकार जीतसकेगा ? ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण जिसके मन्त्री हैं, सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन जिसका भाई है उस धर्मराजको तू कैसे जीतसकेगा ? ॥ १९ ॥ धैर्यधारी और जितेन्द्रिय ब्राह्मण जिन धर्मराजके सहायक हैं उन उग्र तपस्यावाले वीर युधिष्ठिरको तू कैसे जीतसकेगा ? ॥ २० ॥ संबन्धी और मित्र दुःखरूपी समुद्रमें डूबने लगें उस समय उनका कल्याण चाहनेवाले पुरुषको जो काम करना चाहिये, वह काम मैं तुझसे फिर कहता हूँ ॥२१॥ हे दुर्योधन ! तू वीर पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेका विचार छोड़कर कौरवोंकी वृद्धिके लिये वीर पाण्डवोंके साथ सन्धि करले और पुत्र कार्यकर्त्ता तथा सेनाके साथ अपना तिरस्कार न करा २२ एकसौ उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३९ ॥　　छ　　छ

धृतराष्ट्रने पूछा, कि-हे सञ्जय ! श्रीकृष्ण सब राजकुमारोंसे तथा सेवकोंसे घिर कर कर्णको अपने रथमें बैठाए हुए हस्तिनापुरमेंसे निकले थे उन महामना और शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णने उस समय मार्गमें कर्णसे क्या कहा था ? तथा समझानेकी कौन सी बातें कही थीं ॥ १ ॥ २ ॥ हे सञ्जय ! ऊँचे चढे हुए मेघमण्डलकी समान गर्जना करते हुए श्रीकृष्णजीने कर्णसे उससमय

च मृदूनि च । प्रियाणि धर्मयुक्तानि सत्यानि च हितानि च ॥ ४ ॥ हृदयग्रहणीयानि राधेयं मधुसूदनः । यान्यब्रवीदमेयात्मा तानि मे शृणु भारत ॥ ५ ॥ वासुदेव उवाच । उपासितास्ते राधेय ब्राह्मणा वेदपारगाः । तत्त्वार्थं परिपृष्टाश्च नियतेनानसूयया ॥ ६ ॥ त्वमेव कर्णजानासि वेदवादान् सनातनान् । त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः ॥ ७ ॥ कानीनश्च सहोढश्च कन्यायां यश्च जायते । वोढारं पितरं तस्य प्राहुः शास्त्रविदो जनाः ॥ ८ ॥ सोऽसि कर्ण तथा जातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः । निग्रहाद्धर्मशास्त्राणामेहि राजा भविष्यसि ॥ ९ ॥ पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः । द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुषर्षभ ॥१०॥ मया सार्द्धमितो यातमद्य त्वां तात पाण्डवाः । अभिजानन्तु कौन्तेयं पूर्वजातं युधिष्ठिरात् ॥ ११ ॥

कोमल तथा तीखे जो २ वचन कहे हों वह वचन तू मुझे सुना ॥३॥ सञ्जयने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! जिनके मनका पार नहीं मिल सकता ऐसे मधुसूदन श्रीकृष्णने कर्णसे तीखे कोमल, प्रिय, धर्मसे भरे, सच्चे हितकारी तथा हृदयको मोहित करने वाले जो जो वचन क्रमसे कहे थे वह वचन मैं आपसे कहता हूँ उनको सुनिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ वासुदेवने कहा, कि—हे कर्ण ! तूने वेदके पारगामी ब्राह्मणोंकी उपासना करी है और परब्रह्मका स्वरूप जाननेके लिये ईर्षारहित होकर तूने नियमके साथ ब्राह्मणोंसे प्रश्न पूछे हैं ६ हे कर्ण ! तू ही सनातन वैदिकवादोंको जानता है, सूक्ष्म धर्मशास्त्रों में भी तू ही प्रवीण है ॥ ७ ॥ कानीन कहिये कन्याका पुत्र दो प्रकार का होता है जो कन्याका विवाह होनेसे पहिले कन्यासे उत्पन्न हो वह पहिला कानीन है और विवाह होनेके अनन्तर पतिके घर पहुँचने से पहिले परपुरुषके समागमसे जो उत्पन्न हो वह दूसरा सहोढ नाम से कहा जाता है,कन्यासे उत्पन्न हुए यह कानीन और सहोढ नामके पुत्र उस कन्याको विवाहनेवाले पुरुषके पुत्र माने जाते हैं, ऐसा शास्त्र के ज्ञाता पुरुष कहते हैं ॥ ८ ॥ हे कर्ण ! तू भी इस ही प्रकार उत्पन्न हुआ है और तू धर्मके अनुसार पाण्डुका पुत्र है, इसलिये तू धर्मशास्त्रकी आज्ञाके अनुसार राजा होगा. आ मेरे साथ चल ॥ ९ ॥ पाण्डव तेरे पिताके पक्षके हैं और यादव तेरी माताके पक्षके हैं, हे महापुरुष ! ये दोनों पक्ष तेरे अपने हैं इस बातको तू जान ले ॥१०॥ अब तू यहाँसे मेरे साथ चलेगा तो सब पांडव तुझे अपने बड़े भाई

पादौ तव ग्रहीष्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः । द्रौपदेयास्तथा पञ्च सौभद्रश्चापराजितः ॥ १२ ॥ राजानो राजपुत्राश्च पाण्डवार्थे समागताः । पादौ तव ग्रहीष्यन्ति सर्वे चान्धकवृष्णयः ॥ १३ ॥ हिरण्मयांश्च ते कुम्भान् राजतान् पार्थिवांस्तथा । ओषध्यः सर्वबीजानि सर्वरत्नानि वीरुधः ॥ १४ ॥ राजन्या राजकन्याश्चाप्यानयन्त्वाभिषेचनम् । षष्ठे त्वाञ्च तथा काले द्रौपद्युपगमिष्यति ॥ १५ ॥ अग्निं जुहोतु ते धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः । अद्य त्वामभिषिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ॥ १६ ॥ पुरोहितः पाण्डवानां ब्रह्मकर्मण्यवस्थितः । यथैव भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ १७ ॥ द्रौपदेयास्तथा पञ्च पञ्चालाश्चेदयस्तथा । अहं च त्वाभिषेक्ष्यामि राजानं पृथिवीपतिम् ॥ १८ ॥ युवराजस्तु ते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । गृहीत्वा व्यजनं श्वेतं धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ १९ ॥ उपान्वारोहतु रथं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । छत्रञ्च ते महाश्वेतं भीमसेनो महाबलः ॥२०
अभिषिक्तस्य कौन्तेयो धारयिष्यति मूर्द्धनि । किङ्किणीशतनिर्घोषं

क्षा समान मानेंगे ॥ ११ ॥ और पाँचों पाण्डव भाई तेरे चरणको अपने हाथसे स्पर्श करेंगे, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और किसीसे न जीता जानेवाला सुभद्राका पुत्र ये सब तेरे चरण छुएँगे ॥ १२ ॥ पांडवोंके लिये इकट्ठे हुए राजे तथा राजकुमार और सब अन्धक वृष्णिकुलके यादव भी तुम्हारे चरण छुएँगे ॥ १३ ॥ राजे तथा राजकन्यायें सोनेके चाँदीके और मट्टीके घड़ोंमें सब तीर्थोंका जल लाकर उसमें सब प्रकारकी औषधि सब प्रकारके बीज सब प्रकारके रत्न और लताओंको डालकर उस जलसे तुझे स्नान करावेंगे और छठे २ दिन द्रौपदी तेरी सेवामें उपस्थित हुआ करेगी ॥ १४ ॥ १५ ॥ उत्तम मनवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण धौम्य मुनि आज ही तेरे अभिषेकके लिये अग्निमें होम करें, चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण आज तेरा अभिषेक करें, ऐसी मेरी इच्छा है ॥ १६ ॥ वैदिक कर्ममें लगे रहने वाले पाण्डवोंके पुरोहित धौम्यमुनि, पुरुषोंमें श्रेष्ठ पाँचों भाई पाण्डव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र पांचाल देशके राजे, चेदिदेशके राजे और मैं आज ही तुझे पृथ्वीपरका राजा मानकर अभिषेक करेंगे धर्मात्मा उत्तम आचरण वाले कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर तेरे युवराज होकर श्वेत चँवर हाथमें लिये हुए तेरे पीछे बैठेंगे, महाबली भीमसेन बड़ा भारी श्वेत छत्र लेकर ॥ १७-२० ॥ अभिषेक किये हुए तेरे मस्तक पर लगाकर खड़

वैयाघ्रपरिवारणम् ॥ २१ ॥ रथं श्वेतहयैर्युक्तमर्जुनो वाहयिष्यति । अभिमन्युश्च ते नित्यं प्रत्यासन्नो भविष्यति ॥ २२ ॥ नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च पञ्च ये । पञ्चालाश्चानुयास्यन्ति शिखण्डी च महारथः ॥२३॥ अहञ्च त्वानुयास्यामि सर्वे चान्धकवृष्णयः । दाशार्हाः परिवारास्ते दशार्णाश्च विशाम्पते २४ भुंक्ष्व राज्यं महाबाहो भ्रातृभिः सह पाण्डवैः । जपैर्होमैश्च संयुक्तो मंगलैश्च पृथग्विधैः२५ पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सह कुन्तलैः । अन्धास्तालचराश्चैव चूचुपा वेणुपास्तथा ॥ २६ ॥ स्तुवन्तु त्वाञ्च बहुभिः स्तुतिभिः सूतमागधाः । विजयं वसुषेणस्य घोषयन्तु च पाण्डवाः ॥२७॥ स त्वं परिवृतः पार्थैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः । प्रशाधि राज्यं कौन्तेय कुन्तीञ्च प्रतिनन्दय॥२८॥ मित्राणि ते प्रहृष्यन्तु व्यथन्तु रिपवस्तथा । सौभ्रात्रञ्चैव तेऽद्याऽस्तु भ्रातृभिः सह पाण्डवैः ॥ २९ ॥ ० ०

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये चत्वारिंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

होगा सैंकड़ों बंदियोंसे शब्दायमान, सिंहकी खालसे चारों ओरसे मँढे हुए और जिसमें स्वेत घोड़े जोड़े जाते हैं ऐसे रथमें तुझे बैठाल कर तेरे रथको अर्जुन स्वयं हाँकेगा, अभिमन्यु सदा तेरे पास रहेगा॥ २१ ॥ २२ ॥ नकुल, सहदेव,द्रौपदीके पाँच पुत्र,पांचाल और महारथी शिखण्डी तेरे पीछे २ चला करेंगे२३ हे राजन् ! मैं तथा सब अन्धक वंशके राजे,वृष्णिवंशके राजे तथा दाशार्ह और दशार्ण वंशके राजे तेरा परिवार हो जायँगे तथा मैं भी तेरे पीछे२ चला करूँगा २४ हे महाबाहु कर्ण! तू अपने भाई पांडवोंके साथ रहकर राज्यको भोग तथा जप,होम और अनेकों प्रकारके मङ्गल कार्योंको कर २५ कुन्तल-देशके राजाओंके साथ, द्रविड़ देशके राजे तथा आंध्र, तालचर, चूचुप और वेणुप वंशके राजे तेरे आगे आगे चलेंगे ॥२६॥ सूत तथा मागधजातिके लोग तेरी स्तुति करेंगे और पाण्डव तुझ वसुषेणकी स्तुति गाया करेंगे ॥ २७ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! जैसे चन्द्रमा नक्षत्रोंसे घिरा रहता है तैसे ही तू पांडवोंसे घिरकर राज्य कर और कुन्तीको आनन्द दे ॥ २८ ॥ तेरे मित्र प्रसन्न हों, शत्रु दुःखित हों और आजसे पांडव भाइयोंके साथ तेरी प्रीति हो ॥ २९ ॥ एकसौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४० ॥ ० ० ०

कर्ण उवाच । असंशयं सौहृदान्मे प्रणयाच्चात्थ केशव । सख्येन चैव वार्ष्णेय श्रेयस्कामतयैव च ॥ १ ॥ सर्वं चैवाभिजानामि पाण्डोः पुत्रोऽस्मि धर्मतः । निग्रहाद्धर्मशास्त्राणां यथा त्वं कृष्ण मन्यसे । कन्या गर्भं समाधत्त भास्करान्मां जनार्दन । आदित्यवचनाच्चैव जातं मां सा व्यसर्जयत् ॥ ३ ॥ सोऽस्मि कृष्ण तथा जातः पाण्डो पुत्रोऽस्मि धर्मतः । कुन्त्या त्वहमपाकीर्णो यथा न कुशलं तथा ॥ ४ ॥ सूतो हि मामधिरथो दृष्ट्वैवाभ्यनयद् गृहान् । राधायाश्चैव मां प्रादात् सौहार्दान्मधुसूदन ॥ ५ ॥ मत्स्नेहाच्चैव राधायाः सद्यः क्षीरमवातरत् । सा मे मूत्रं पुरीषञ्च प्रतिजग्राह माधव ॥ ६ ॥ तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम् । धर्मविद्धर्मशास्त्राणां श्रवणे सततं रतः ॥ ७ ॥ तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम् । पितरञ्चाभिजानामि तमहं सौहृदात् सदा ॥८॥ स हि मे जातकर्मादि

कर्णने कहा; कि—हे यदुवंशी कृष्ण ! आपने मुझसे स्नेहसे, प्रणयसे मित्रतासे तथा मेरे कल्याणकी कामनासे जो कुछ कहा सो सब सत्य है ॥ १ ॥ मैं धर्मानुसार पाण्डुका पुत्र हूँ, इस सब बातको मैं जानता हूँ और हे कृष्ण ! धर्मशास्त्रकी आज्ञाके अनुसार भी जैसा आप समझ रहे हैं ऐसा ही है ॥ २ ॥ हे जनार्दन ! मेरी माता कुन्ती कन्या थी तब उसने सूर्यसे मुझे गर्भमें धारण किया था और सूर्यके कहनेसे ही उसने जन्म होते ही मुझे त्याग दिया था ॥३॥ हे कृष्ण ! इस बातको मैं स्वयं जानता हूँ और धर्मके अनुसार पाण्डुसे ही उत्पन्न हुआ हूँ परन्तु कुन्तीने मुझे इसप्रकार त्याग दिया था, कि-जिसमें मैं जीता भी न रहूँ ॥ ४ ॥ तदनन्तर अधिरथ नाम वाला सूतवंशका राजा मुझे देखकर अपने घर लेगया और हे मधुसूदन ! उसने मुझे प्रेमके साथ अपनी दासी राधाको सौंप दिया ॥ ५ ॥ मेरे ऊपर स्नेह आजानेके कारण उसी समय राधा दासीके स्तनोंमें दूध आगया और हे माधव ! वह मेरा मल मूत्र उठाने लगी ॥ ६ ॥ इस लिये धर्मको जाननेवाला और सदा धर्मशास्त्रको सुननेमें प्रीति रखने वाला मुझ सरीखा पुरुष उस राधादासीके पिण्डका लोप कैसे करसकता है ? ॥ ७ ॥ अधिरथ नाम वाला सूत मुझे अपने पेटके पुत्रकी समान समझता है और मैं भी सदा उसको प्रेमके साथ अपने पिताकी समान समझता हूँ, हे माधव ! उसने ही मेरे जातकर्म आदि सब संस्कार किये हैं और हे कृष्ण ! वह सब संस्कार उसने

कारयामास माधव । शास्त्रदृष्टेन विधिना पुत्रप्रीत्या जनार्दन ॥ ९ ॥ नाम वै वसुषेणेति कारयामास वै द्विजैः । भार्याश्चोढा मम प्राप्ते यौवने तत्परिग्रहात् ॥ १० ॥ तासु पुत्राश्च पौत्राश्च मम जाता जनार्दन । तासु मे हृदयं कृष्ण सञ्जातं कामबन्धनम् ॥ ११ ॥ न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः । हर्षाद्भयाद्वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ॥ १२ ॥ धृतराष्ट्रकुले कृष्ण दुर्योधनसमाश्रयात् । मया त्रयोदशसमा भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ १३ ॥ इष्टं च बहुभिर्यज्ञैः सह सूतैर्मयाऽसकृत् । अविवाहाश्च विवाहाश्च सह सूतैर्मया कृताः ॥ १४ ॥ मां च कृष्ण समासाद्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः । दुर्योधनेन वार्ष्णेय विग्रहश्चापि पांडवैः ॥ १५ ॥ तस्माद्रणे द्वैरथे मां प्रत्युद्यातारमच्युत । वृतवान् परमं हृष्टः प्रतीपं सव्यसाचिनः ॥ १६ ॥ वधाद् बन्धाद्भयाद्वापि लोभाद्वापि जनार्दन । अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १७ ॥ यदि ह्यद्य न गच्छेयं द्वैरथं सव्यसाचिना । अकीर्तिः स्याद्धृषीकेश

वेदमें कही हुई रीति और पुत्रकी समान प्रीतिसे किये हैं ॥ ८-९ ॥ तथा ब्राह्मणोंके कहनेसे और प्रीतिसे मेरा नाम वसुषेण रक्खा है, जब मैं जवानीमें आया तो उसने सूतके कुलोंमेंसे कितनी ही स्त्रियों के साथ विवाह भी करदिया था ॥ १० ॥ उन स्त्रियोंसे मेरे पुत्र और पौत्र भी होगये हैं और हे कृष्ण ! मेरा हृदय उन स्त्रियोंमें प्रेमके साथ बँधाहुआ है हे गोविन्द ! मैं उन संबंधियोंको सम्पूर्ण पृथ्वी तथा सुवर्णके ढेर मिलें तो भी तथा हर्षसे वा भयसे कभी नहीं त्यागसकता ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! मैंने धृतराष्ट्रके कुलमें दुर्योधनके आश्रयसे तेरह वर्ष पर्यन्त निष्कण्टक राज्य भोगा है ॥ १३ ॥ और मैंने सूतोंके साथ रहकर बारम्बार अनेकों यज्ञ किये हैं तथा मैंने सूतोंके साथ रहकर अनेकों कुलधर्म और विवाह भी किये हैं ॥१४॥ हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! मुझे पाकर ही दुर्योधनने युद्धका बड़ाभारी उत्साह किया है तथा पाण्डवोंके साथ कलह करना आरम्भ करदिया है ॥ १५ ॥ हे दृढ स्वभाव वाले कृष्ण ! इस कारण रणमें अर्जुनका शत्रु जो मैं तिसको अर्जुनके साथ द्विरथ युद्ध करनेके लिए वरण किया गया है ॥१६॥ मैं मरणसे भयभीत होकर, वैरके डरसे अथवा लोभके कारणसे हे जनार्दन ! बुद्धिमान् धृतराष्ट्रकुमार दुर्योधनको धोखा नहीं दे सकता ।१७। हे हृषीकेश ! यदि अब मैं अर्जुनके साथ द्वन्द्वयुद्ध नहीं करूँगा तो मेरी और अर्जुन दोनोंकी जगत्में अपकीर्त्ति

मम पार्थस्य चोभयोः ॥ १८ ॥ असंशयं हि पार्थाय त्वयास्तवं मधसूदन । सर्वेऽत्र पाण्डवा धर्म्मुमत्वद्वशिवाऽन संशयः ॥ १९ ॥ मन्त्रस्य नियमं कुर्य्यास्त्वमत्र मधुसूदन।एतदत्राहितं मन्ये सर्व यादवनन्दन॥२०
यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः । कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ॥२१॥ प्राप्य चापि महद्राज्यं तदहं मधुसूदन । स्फीत दुर्य्योधनायैव सम्प्रदद्यामनिन्दम ॥ २२ ॥ स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तु युधिष्ठिरः । नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जय ॥२३॥ पृथिवी तस्य राष्ट्रञ्च यस्य भीमो महारथः । नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च माधव ॥ २४ ॥ धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः । उत्तमौजा युधामन्युः सत्यधर्मा च सौमकः ॥ २५ ॥ चैद्यश्च चेकितानश्च शिखण्डी चापराजितः। इन्द्रगोपकवर्णाश्च केकया भ्रातरस्तथा । इन्द्रायुधसवर्णश्च कुन्तीभोजो महामनाः ॥ २६ ॥ मातुलो

होगी ॥ १८ ॥ हे मधुसूदन ! तुम यह बात पाण्डवोंके हितके लिए उनसे अवश्य ही कहदेना, पाण्डव तुम्हारे वशमें हैं, इस लिए तुम उनसे जैसा कहोगे वह वैसा ही करेंगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ परन्तु हे मधुसूदन ! हे यादवनन्दन ! यह एक बात मेरी भी मानलेना, कि–मेरे तुम्हारे मध्यमें जो गुप्तबात हुई है, इसको तुम किसीसे भी न कहना, मैं इसमें ही सबका कल्याण समझता हूँ ।२०। यदि धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर मुझे कुन्तीका प्रथम पुत्र जानलेंगे तो फिर राज्यको ग्रहण नहीं करेंगे ॥ २१ ॥ और हे मधुसूदन ! हे शत्रुओं को दमन करनेवाले कृष्ण ! यदि मैं उस समृद्धिवाले राज्यको पाजाऊँगा तो वह मैं दुर्योधनको दे दूँगा, यह ही उचित है ॥२२॥ परन्तु मैं चाहता हूँ कि-जिनके नेता श्रीकृष्ण हैं और अर्जुन जिनका योधा है ऐसे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ही सदाके लिए हस्तिनापुरके राजा हों ॥ २३ ॥ राजा युधिष्ठिरको यह सब पृथ्वी एक देशकी समान है, क्यों कि—महारथी भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँच पुत्र राजा द्रुपदका पुत्र धृष्टद्युम्न, महारथी सात्यकी, उत्तमौजा, युधामन्यु सत्यधर्मवाला सोमदत्तका पुत्र, चेदिदेशका राजा, चेकितान, किसीके जीतनेमें न आनेवाला शिखण्डी, इन्द्रगोप जातिके जीवोंकी समान लाल वर्णके पाँच केकयभ्राता, इन्द्रधनुषकी समान वर्णवाला उदारचित्त कुन्तिभोज, भीमका मामा महारथी श्येनजित्, विराटका पुत्र शंख, और सब कामनाओंका पूर्ण करने वाले भण्डाररूप आप

भीमसेनस्य श्येनजिच्च महारथः । शंखः पुत्रो विराटस्य निधिस्त्वञ्च जनार्दनः ॥ २७ ॥ महानयं कृष्ण कृतः क्षत्रस्य समुदानयः । राज्यं प्राप्तमिदं दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु ॥ २८ ॥ धार्त्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्रयज्ञो भविष्यति । अस्य यज्ञस्य वेत्ता त्वं भविष्यसि जनार्दन ॥२९॥ आध्वर्यवञ्च ते कृष्ण क्रतावस्मिन् भविष्यति । होता चैवात्र बीभत्सुः सन्नद्धः स कपिध्वजः ॥३०॥ गाण्डीवं स्रुक् तथा चाज्यं वीर्यं पुंसां भविष्यति । ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं स्थूणाकर्णञ्च माधव । मन्त्रास्तत्र भविष्यन्ति प्रयुक्ताः सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥ अनुयातश्च पितरमधिको वा पराक्रमे । गीतं स्तोत्रं स सौभद्रः सम्यक् तत्र भविष्यति ॥ ३२ ॥ उद्गातात्र पुनर्भीमः प्रस्तोता सुमहाबलः । विनदन् स नरव्याघ्रो नागानीकान्तकृद्रणे ॥ ३३ ॥ स चैव तत्र धर्मात्मा शश्वद्राजा युधिष्ठिरः । जपैर्होमैश्च संयुक्तो ब्रह्मत्वं कारयिष्यति ॥ ३४ ॥ शंखशब्दाः समुरजा भेर्यश्च मधुसूदन । उत्कृष्टः सिंहनादश्च सुब्रह्मण्यो भवि-

इसप्रकार हे जनार्दन कृष्ण ! क्षत्रियोंका यह समूह इकट्ठा किया है, हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! यद्यपि दुर्योधनने सब राजाओंमें परम दिपता हुआ और प्रसिद्ध राज्य पाया है, परन्तु उसको शस्त्रयज्ञ करना पड़ेगा और हे जनार्दन ! आपको इस यज्ञका उपद्रष्टा (ऊँच नीचका देखनेवाला) बनना होगा ॥ २४—२९ ॥ और हे कृष्ण ! आपको इस यज्ञमें अध्वर्युका काम भी करना होगा, सामग्रियें इकट्ठी करके कवच पहर कर तयार हुआ कपिध्वज अर्जुन इस रणयज्ञमें होता होगा ३० उसका गाण्डीव धनुष स्रुवा होगा, पुरुषोंका वीर्यही घृतरूप होगा और हे माधव ! इस रणमें सव्यसाची अर्जुन ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म तथा स्थूणाकर्ण आदि दिव्यअस्त्रोंसे काम लेगा, वह सब अस्त्र इस रणयज्ञमें मंत्ररूप होंगे ॥ ३१ ॥ जो पराक्रममें अपने पिता अर्जुनकी समान अथवा पितासे भी अधिक है वह सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु भलेप्रकार वेदके गीत अथवा स्तोत्ररूप होगा (उद्गाताका काम करेगा) ॥३२॥ रणमें हाथियोंकी सेनाका संहार करनेवाला मनुष्योंमें सिंहसमान महाबली भीमसेन जो गर्जनायें करेगा वही मानों सामवेदी उद्गाता और प्रस्तोताका काम करेगा ॥३३॥ नित्य जप और होम में लगे रहनेवाले धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर उस यज्ञमें ब्रह्माका काम करेंगे ॥ ३४ ॥ और हे मधुसूदन ! शंखोंके शब्द, मुरज और भेरियों की ध्वनियें तथा उत्तम सिंह वीरोंके नाद सुब्रह्मण्य कहिये भोजनके

ष्यति ॥ ३५ ॥ नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ यशस्विनौ। शामित्रं तौ महावीर्यौ सम्यक् तत्र भविष्यतः ॥ ३६ ॥ कल्माषदण्डा गोविन्द विमला रथपंक्तयः। यूपाः समुपकल्प्यन्तामस्मिन् यज्ञे जनार्दन ३७ कर्णिनालीकनाराचा वत्सदन्तोपबृंहणाः। तोमराः सोमकलशाः पवित्राणि धनूंषि च ॥ ३८ ॥ असयोऽत्र कपालानि पुरोडाशाः शिरांसि च। हविस्तु रुधिरं कृष्ण यस्मिन् यज्ञे भविष्यति ॥ ३९ ॥ इध्मः परिधयश्चैव शक्तयो विमला गदाः। सदस्या द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ ४० ॥ इषवोऽत्र परिस्तोमा मुक्ता गाण्डीवधन्वना। महारथप्रयुक्ताश्च द्रोणद्रौणिप्रचोदिताः ॥ ४१ ॥ प्रतिप्रास्थानिकं कर्म सात्यकिस्तु करिष्यति। दीक्षितो धार्तराष्ट्रोऽत्र पत्नी चास्य महाचमूः ॥ ४२ ॥ घटोत्कचोऽत्र शामित्रं करिष्यति महाबलः।

लिये कालका आवाहन करनेवाले मंत्र होंगे ॥३५॥ महापराक्रमी और यशवाले माद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव उस यज्ञमें उत्तम शामित्र-रूप होंगे अर्थात् वह रणमें क्षत्रियरूप पशुओंका संहार करनेका काम करेंगे ॥ ३६ ॥ हे गोविन्द ! हे जनार्दन ! विचित्रप्रकारके दण्डोंवाले रथोंकी निर्मल पंक्तियें इस रणयज्ञमें यज्ञके खम्भोंका काम करेंगी ३७ हे कृष्ण ! इस यज्ञमें कर्णी नालीक और नाराच आदि सब अस्त्र दन्त और उपबृंहण अर्थात् सोमकी आहुतिके साधन जो चमस आदि तिनका काम करेंगे, तोमर सोमरसके कलशोंका काम देंगे, सब धनुष सोमोत्पवनका काम देंगे, तलवारोंका समूह कपालोंका काम देगा, कपाल पुरोडाश पकानेके पात्रोंका काम देंगे और रुधिर उस यज्ञमें हविका काम देगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ शक्तियोंके ढेर यज्ञके काष्ठोंका काम देंगे, गदायें परिधि कहिये आहुतियोंकी रक्षाके लिये अग्निके दोनों और खडे किये हुए काठोंका काम देंगे, द्रोणाचार्य और शरद्वतके पुत्र कृपाचार्यके शिष्य सभासदोंका काम करेंगे ॥४०॥ गाण्डीव धनुषको धारण करनेवाला अर्जुन, द्रोणाचार्य तथा अश्वत्थामा आदि महारथियोंके छोडे हुए बाण इस रणयज्ञमें परि-स्तोम कहिये सोम चमस आदिका काम देंगे ॥ ४१ ॥ सात्यकी प्रति-प्रास्थानिक कहिये अध्वर्युके साथ योग्य मन्त्र पढनेका काम देगा तथा राजा दुर्योधनने इस यज्ञमें दीक्षा ली है और उसकी पत्नीका काम उसकी बडीभारी सेना करेगी ॥ ४२ ॥ हे महाबाहु कृष्ण ! इस विस्तार वाले यज्ञके अतिरात्र नामक यज्ञमें मध्यरात्रिके समय महा-

अतिरात्रं महाबाहो विततं यज्ञकर्मणि ॥ ४३ ॥ दक्षिणा त्वस्य यज्ञस्य धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्। वैतानिके कर्ममुखे जातो यः कृष्ण पावकात्॥४४॥ यदब्रुवमहं कृष्ण कटुकानि स्म पाण्डवान्। प्रियार्थं धार्त्तराष्ट्रस्य तेन तप्ये ह्यकर्मणा ॥ ४५ ॥ यदा द्रक्ष्यसि मां कृष्ण निहतं सव्यसाचिना। पुनश्चितिस्तदा चास्य यज्ञस्याथ भविष्यति ॥ ४६ ॥ दुःशासनस्य रुधिरं यदा पास्यति पांडवः। आनर्द्द नर्दतः सम्यक् तदा सुत्यं भविष्यति ॥४७॥ यदा द्रोणञ्च भीष्मञ्च पांचाल्यौ पातयिष्यतः। तदा यज्ञावसानं तद्भविष्यति जनार्द्दन ॥४८॥ दुर्य्योधनं यदा हन्ता भीमसेनो महाबलः। तदा समाप्स्यते यज्ञो धार्त्तराष्ट्रस्य माधव ॥ ४९ ॥ स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य संगताः। हतेश्वरा नष्टपुत्रा हतनाथाश्च केशव॥५०॥ रुदन्त्यः सह गान्धार्या श्वगृध्रकुररा कुले। स यज्ञेऽस्मिन्नवभृथो भविष्यति जनार्द्दन ॥ ५१ ॥ विद्यावृद्धा वयोवृद्धा क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ। वृथा मृत्युं न कुर्वीरंस्त्वत्कृते मधुसूदन ॥ ५२ ॥ शस्त्रेण

बली यथोक्त शामित्र नामका कर्म अर्थात् योधाओंरूपी पशुओंको मारनेका काम करेगा ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण ! प्रतापी धृष्टद्युम्न, जो राजा द्रुपदके यज्ञसे कर्मके आरंभमें अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ है वह इस यज्ञमें दक्षिणारूप होगा ॥ ४४ ॥ हे कृष्ण ! मैंने दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये पाण्डवोंसे जो कटु वचन कहे हैं, उस कामसे मुझे पछतावा होता है ॥ ४५ ॥ हे कृष्ण ! आप मुझे जब अर्जुनके हाथसे मराहुआ देखोगे उस समय इस रणयज्ञको तुम चयनयज्ञ हुआ देखोगे ॥४६॥ तथा भीमसेन जब दुःशासनके रुधिरको पीकर बडीभारी गर्जना करेगा उस समय इस रणयज्ञमें सोमरसके पानका काम सिद्ध हुआ गिना जायगा ॥ ४७ ॥ हे जनार्दन ! पांचालराजके पुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और भीष्मजीको रणमें मारडालेंगे तब ही इस रणयज्ञकी समाप्ति होगी ॥ ४८ ॥ हे माधव ! जब महाबली भीमसेन दुर्योधनको मारडालेगा तब ही यह दुर्योधनका रणयज्ञ समाप्त होगा ॥ ४९ ॥ हे जनार्दन ! राजा धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी बहुएँ और पोतों की बहुएँ अपने पोते और पुत्रोंके मरजानेसे निराधार होकर गांधारी के साथ कुत्ते गीदड और टटीरियोंसे भरेहुए इस रणयज्ञमें आकर रोवेंगी तथा उन मरेहुओंके निमित्तसे स्नान करेंगी वही इस रणयज्ञका अवभृथ स्नान होगा ॥ ५०॥५१ ॥ परन्तु हे क्षत्रियकुलमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! विद्याके वृद्ध और अवस्थाके वृद्ध क्षत्रिय तुम्हारे लिये वृथा

निधनं गच्छेत् समृद्धं क्षत्रमंडलम्। कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे त्रैलोक्यस्यापि केशव ॥ ५३ ॥ तत्र पुंडरीकाक्ष विधत्स्व यदभीप्सितम्। यथा कार्त्स्न्येन वार्ष्णेय क्षत्रं स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च जनार्दन। तावत् कीर्त्तिभवः शब्दः शाश्वतोऽयं भविष्यति ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणाः कथयिष्यन्ति महाभारतमाहवम्। समागमेषु वार्ष्णेय क्षत्रियाणां यशोधनम् ॥५६॥ समुपानय कौन्तेयं युद्धाय मम केशव। मन्त्रसंवरणं कुर्वन्नित्यमेव परन्तप ॥ ५७ ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णसंवादे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

सञ्जय उवाच। कर्णस्य वचनं श्रुत्वा केशवः परवीरहा। उवाच प्रहसन् वाक्यं स्मितपूर्वमिदं यथा ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच। अपि त्वां न लभेत्कर्ण राज्यलम्भोपपादनम्। मया दत्तां हि पृथिवीं न प्रशासितुमिच्छसि ॥ २ ॥ ध्रुवो जयः पांडवानामितीदं न संशयः कश्चन

नहीं मारे जाने चाहियें ॥ ५२ ॥ हे केशव! तीनों लोकोंमें महापवित्र माने जाने वाले कुरुक्षेत्रमें बड़े २ ऐश्वर्यवान् क्षत्रियोंका मण्डल शस्त्रों से लड़कर मरजायगा ॥ ५३ ॥ हे वृष्णिवंशी कमलनयन कृष्ण! इस विषयमें तुम्हें जो अच्छा लगे सो तुम करो, परन्तु एक बात करना कि-यह सब क्षत्रियोंका मण्डल मरणके पीछे स्वर्गमें पहुँचजाय ॥५४॥ हे जनार्दन! जबतक पर्वत टिके रहेंगे और नदियें बहती रहेंगी तब तक यह कीर्त्तिकी ध्वनि भी सदा गुञ्जारती रहेगी ॥ ५५ ॥ हे वृष्णिवंशी कृष्ण! ब्राह्मण इस महाभारतके युद्धको नित्य गाया करेंगे, युद्ध में यश कहिये विजय पाना अथवा योग्य पराक्रम दिखाकर मर जाना यह क्षत्रियोंका धर्म माना जाता है ॥ ५६ ॥ इसलिये हे शत्रुनाशन केशव! हमारे इस विचारको सदा छुपा रखकर ही आप अर्जुनको मेरे साथ युद्ध करनेके लिये लिवाकर आइये ॥ ५७ ॥ एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४१ ॥ छ छ

सञ्जय कहता है, कि—हे धृतराष्ट्र! कर्णकी इस बातको सुन कर वीर शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीकृष्णजी मुख मटका कर हंसते २ कर्णसे यह कहनेलगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले, कि-हे कर्ण! क्या तुझे राज्य पानेका लोभ नहीं है? जो तू मेरी दी हुई भी भूमिको लेना नहीं चाहता ॥ २ ॥ इससे सिद्ध होता है, कि—पाण्डवोंकी विजय अवश्य ही होगी, इसमें किसीप्रकारका सन्देह नहीं है, जिसमें उग्र

विद्यतेऽत्र। अयध्वजो दृश्यते पांडवस्य समुच्छ्रितो वानरराज उग्रः ।३। दिव्या माया विहिता भौमनेन समुच्छ्रिता इन्द्रकेतुप्रकाशा। दिव्यानि भूतानि जयावहानि दृश्यंति चैवात्र भयानकानि ॥ ४ ॥ न सज्यते शैलवनस्पतिभ्य ऊर्ध्वं तिर्यग्योजनमात्ररूपः। श्रीमान् ध्वजः कर्ण धनंजयस्य समुच्छ्रितः पावकतुल्यरूपः ॥ ५ ॥ यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्। ऐन्द्रमस्त्रं विकुर्वाणमुभे चाप्यग्निमारुते ।६। गाण्डीवस्य च निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः। न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥७॥ यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्। जपहोमसमायुक्तं स्वां रक्षन्तं महाचमूम् ॥ ८ ॥ आदित्यमिव दुर्धर्षं तपन्तं शत्रुवाहिनीम्। न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥९॥

वानरराज बैठा है ऐसी अर्जुनकी विजयपताका भी ऊँची दीखरही है ॥३॥ विश्वकर्माने इस ध्वजाको इंद्रध्वजाकी समान प्रकाशवान् और दिव्य मायावाली बनाया है, इस ध्वजामें दिव्य और भयंकर भूत रहते हैं और वह विजय करनेवाले प्रतीत होते हैं ॥ ४ ॥ हे कर्ण! अर्जुन के रथकी ध्वजा चार कोस ऊँची तथा आड़ी फैली हुई शोभा पा रही है और अग्निकी समान दमक रही है यह ध्वजा ऊँची होनेपर भी विश्वकर्माने ऐसी बनाई है कि-यह पर्वतोंमें और बड़े २ वृक्षोंमें अटकता नहीं है ॥५॥ और, जब तू संग्राममें, जिसका सारथी मैं हूँ और जिसमें श्वेत घोड़े जुते हुए हैं ऐसे अर्जुनके रथको देखेगा तथा ऐंद्र,आग्नेय और वायव्य अस्त्रोंको छोड़तेहुए अर्जुनको देखेगा उस समय तथा वज्रकी समान टङ्कार शब्दको करते हुए गाण्डीव धनुषकी ध्वनिको सुनेगा तब तुझे त्रेता, सत्ययुग और द्वापरका फल नहीं मिलेगा अर्थात् सत्ययुगमें मोक्ष मिलना लिखा है उससे तू भ्रष्ट होजायगा, त्रेतामें धर्म मुख्य मानाजाता है, अर्थ और काम गौण गिने जाते हैं वह फल भी तुझे नहीं मिलेगा और द्वापरमें अर्थ तथा काम मुख्य माने जाते हैं और धर्म उनका अङ्ग माना जाता है वह भी तुझे नहीं मिलेगा, किन्तु तेरा मरण ही होजायगा ॥६-७॥ और जिस समय तू कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको संग्राममें जप,होम करते हुए तथा अपनी सेनाकी रक्षा भी करते हुए देखेगा ॥ ८ ॥ तथा सूर्यकी समान जिनका तिरस्कार नहीं किया जा सकता उन शत्रुकी सेनाके चित्तमें भय उपजाने वाले राजा युधिष्ठिरको देखेगा उस समय तुझे सत्य, त्रेता और द्वापरयुगका फल नहीं मिलेगा किन्तु कलियुगका फल

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे भीमसेनं महाबलम् । दुःशासनस्य रुधिरं पीत्वा नृत्यन्तमाहवे ॥१०॥ प्रभिन्नमिव मातंगं प्रतिद्विरदघातिनम् । न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ ११ ॥ यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे द्रोणं शान्तनवं कृपम् । सुयोधनञ्च राजानं सैन्धवञ्च जयद्रथम् ॥ १२ ॥ युद्धायापततस्तूर्णं वारितान् सव्यसाचिना । न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १३ ॥ यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे माद्रीपुत्रौ महाबलौ । वाहिनीं धार्त्तराष्ट्राणां क्षोभयन्तौ गजाविव ॥ १४ ॥ विगाढे शस्त्रसम्पाते परवीररथारुजौ । न तदा भविता त्रेता न कृतं द्वापरं न च ॥ १५ ॥ ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम् । सौम्योऽयं वर्त्तते मासः सुप्रापयवसेन्धनः ॥ १६ ॥ सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः । निष्पंको रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः ॥ १७ ॥ सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति । संग्रामो

मिलेगा अर्थात् तू मरणको प्राप्त होजायगा ॥ ९ ॥ जब तू महाबली भीमसेनको रणभूमिमें दुःशासनका रुधिर पीकर मदमत्त हो नाचते हुए तथा शत्रुरूप हाथीका नाश करनेवाले मदमत्त हाथीकी समान देखेगा तब तुझे सत्य,त्रेता और द्वापरयुगका फल नहीं मिलेगा१०-११ और जब तू संग्राममें द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, राजा दुर्योधन और सिन्धुदेशके राजा जयद्रथको तुरन्त युद्ध करनेकेलिए चढ आने पर भी अर्जुनके रोके हुए देखेगा तब तुझे सत्य, त्रेता और द्वापरयुग का फल नहीं मिलेगा अर्थात् तू मरणको प्राप्त होजायगा ॥ १२-१३॥ जब संग्राममें अति कठोररूपसे शस्त्रोंकी मारामार चलेगी तब महाबली माद्रीके पुत्रोंको हाथियोंकी समान कौरवोंकी सेनाको रोकते हुए और शत्रुपक्षके शूरोंके रथोंका नाश करते हुए देखेगा उससमय तुझे सत्य त्रेता और द्वापरयुगका फल नहीं मिलेगा किन्तु तू मारा जायगा ॥ १४॥१५ ॥ हे कर्ण ! अब तू यहाँसे हस्तिनापुरमें जाकर द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह और कृपाचार्यसे कहना कि—यह महीना उत्तम है इसमें भुस और लकड़ियें सुभीतेसे मिल सकती हैं ॥ १६॥ इस समय वन सब प्रकारकी औषधियोंसे शोभायमान होरहे हैं, वृक्षों पर फल लगे हुए हैं, मक्खियें कम हैं, कीच सूख गयी है, जल में स्वाद आगया है, न अधिक गरम है और न अधिक ठंडा है किंतु सुखदायक है ॥ १७ ॥ आजसे सातवें दिन अमावस होगी, उसदिन संग्राम करनेका निश्चय करो, पण्डित कहते हैं कि—उस तिथिका

युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदैवताम् ॥ १८ ॥ तथा राज्ञो वदेः सर्वान् ये युद्धायाभ्युपागताः । युद्धो मनीषितं तद्वै सर्वं सम्पादयाम्यहम् १९ राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः। प्राप्य शस्त्रेण निधनं प्राप्स्यन्ति गतिमुत्तमाम् ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिषादे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

सञ्जय उवाच । केशवस्य तु तद्वाक्यं कर्णः श्रुत्वा हितः शुभम् । अब्रवीदभिसंपूज्य कृष्णं तं मधुसूदनम् ॥ १ ॥ जानन्मां किं महाबाहो संमोहयितुमिच्छसि । योऽयं पृथिव्याः कात्स्न्र्येन विनाशः समुपस्थितः ॥ २ ॥ निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा । दुर्योधनश्च नृपतिर्धृतराष्ट्रसुतोऽभवत् ॥ ३॥ असंशयमिदं कृष्ण महद्युद्धमुपस्थितम् । पाण्डवानां कुरूणां च घोरं रुधिरकर्दमम् ॥ ४ ॥ राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः । रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥ ५ ॥ स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन । निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः ॥ ६॥ पराजयं धार्त्तराष्ट्रे विजयञ्च

देवता इन्द्र है ॥ १८ ॥ यह सन्देशा जो जो राजे युद्ध करनेको आये हैं उन सबोंसे कहना, तेरी जो इच्छा है उस सबको मैं अभी पूर्ण करता हूँ ॥ १९ ॥ दुर्योधनका साथ देनेवाले सब राजे और राजकुमार शस्त्रोंसे मरण पाकर उत्तम गतिको पावेंगे ॥ २० ॥ एकसौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४२ ॥

सञ्जय कहता है, कि-हे राजन् धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णके शुभ वचनको सुनकर दुर्योधनका हितकारी शत्रु कर्ण मधुसूदन कृष्णका पूजन करके यह बोला, कि-॥ १ ॥ हे महाबाहो ! आप सब कुछ जानतेहुए मुझे मोहमें डालना क्यों चाहते हो ? इस पृथिवीका तो सब प्रकारसे विनाशकाल आ ही पहुँचा है ॥ २ ॥ और इस विनाशमें कारण मैं, शकुनि, दुःशासन तथा धृतराष्ट्रका पुत्र राजा दुर्योधन है ॥ ३ ॥ हे कृष्ण ! वास्तवमें पांडव और कौरवोंमें रुधिरकी कीच करने वाला भयदायक बड़ा भारी युद्ध होनेका समय पास ही आलगा है ॥ ४ ॥ दुर्योधनके वशमें होकर उसको साथ देनेवाले राजे और राजकुमार रणमें शस्त्रोंको आगसे भस्म होते हुए यमलोकमें पहुँचेंगे ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! इस जगत्‌में बड़े भयानक स्वप्न दीखते हैं, तथा भयंकर शकुन और उत्पात भी देखनेमें आते हैं ॥ ६ ॥ हे वृष्णिवंशी कृष्ण !

युधिष्ठिरे । दृश्यन्त इव वार्ष्णेय विविधा रोमहर्षणाः ॥७॥ प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः । शनैश्चरः पीडयति पीडयन् प्राणिनोऽधिकम् ॥८॥ कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठाया मधुसूदन। अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संशमयन्निव ॥९॥ नूनं महद्भयं कृष्ण कुरूणां समुपस्थितम् । विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः ॥१०॥ सोमस्य लक्ष्म व्यावृत्तं राहुरर्कमुपेति च । दिवश्चोल्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः ॥ ११ ॥ निष्टनन्ति च मातङ्गा मुञ्चन्त्यश्रूणि वाजिनः । पानीयं यवसञ्चापि नाभिनन्दति माधव ॥ १२ ॥ प्रादुर्भूतेषु चैतेषु भयमाहुरुपस्थितम् । निमित्तेषु महाबाहो दारुणं प्राणिनाशनम् ॥ १३॥ अल्पभुक्ते पुरीषञ्च प्रभूतमिह दृश्यते । वाजिनां वारणानाञ्च मनुष्याणां च केशव॥१४॥ धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्येषु सर्वेषु मधुसूदन। पराभवस्य तल्लिङ्गमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥१५॥ प्रहृष्टं वाहनं कृष्ण पाण्डवानां प्रचक्षते ।

धृतराष्ट्रके पुत्रकी हार और युधिष्ठिरकी जीत बतानेवाले अनेकों प्रकारके रोमाञ्च शरीरमें होते हैं ॥ ७ ॥ तीक्ष्ण और महाकांतिवाला शनि नामका ग्रह प्राणियोंको अधिक पीड़ा देताहुआ रोहिणी नक्षत्रको पीडित करने लगा ॥ ८ ॥ मंगल वक्र आकारसे ज्येष्ठा नक्षत्रकी प्रदक्षिणा करके मित्रोंके कुलका संहार करनेके लिए मित्र देवतावाले अनुराधा नक्षत्रके साथ संगम करनेकी प्रार्थना करता है ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! इससमय राहु ग्रह चित्राको विशेषरूपसे पीडा देता है इससे प्रतीत होता है, कि—कौरवोंके ऊपर विशेषकर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है ॥ १० ॥ चन्द्रमाके भीतरका चिह्न अपने स्थान परसे चलायमान होगया है और राहु निरन्तर सूर्यके समीपको जाने लगा है, आकाशमेंसे गर्जना करते और काँपते हुए उल्का गिरते हैं ॥ ११ ॥ हाथी वारम्बार अशुभसूचक चिंघाड़नेके शब्द करते हैं, घोड़े आँसू बहाते हैं और हे माधव ! वह जल नहीं पीते और घासको भी रुचिके साथ नहीं खाते हैं ॥ १२ ॥ हे महाबाहो कृष्ण ! शकुनको जानने वाले कहते हैं कि—जब ऐसे भयानक निमित्त प्रकट होने लगते हैं तब प्राणियोंका नाश करने वाला घोर भय आने वाला है, ऐसा समझना चाहिये ॥ १३ ॥ हे केशव ! दुर्योधनकी सब सेनामें हाथी, घोड़े और मनुष्योंको थोड़ा भोजन करने पर भी बहुतसा पुरीष (पाखाना) आता हुआ दीखता है, हे मधुसूदन ! विद्वान् कहते हैं, कि—यह पराजय होनेका चिन्ह है ॥१४-१५॥ हे कृष्ण ! कहते हैं, कि—पांडवों

दक्षिणा मृगाश्चैव तत्तेषां जयलक्षणम् ॥ १६ ॥ अपसव्या मृगाः सर्वे धार्त्तराष्ट्रस्य केशव । वाचश्चाप्यशरीरिण्यस्तत् पराभवलक्षणम् १७ मयूराः पुण्यशकुना हंससारसचातकाः । जीवजीवकसंघाश्चाप्यनुगच्छन्ति पाण्डवान् ॥ १८ ॥ गृध्राः कङ्का बकाः श्येना यातुधानास्तथा वृकाः । मक्षिकाणाञ्च संघाता अनुधावन्ति कौरवान् ॥१९॥ धार्त्त-राष्ट्रस्य सैन्येषु भेरीणां नास्ति निःस्वनः । अनाहताः पाण्डवानां नन्दंति पटहाः किल ॥ २० ॥ उदपानाश्च नर्दन्ति यथा गोवृषभा-स्तथा । धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्येषु तत् पराभवलक्षणम् ॥ २१ ॥ मांस-शोणितवर्षञ्च वृष्टं देवेन माधव । तथा गन्धर्वनगरं भानुमत् समु-पस्थितम् ॥ २२ ॥ सप्राकारं सपरिखं सवप्रञ्चारुतोरणम् । कृष्णश्च परिघस्तत्र भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ २३ ॥ उदयास्तमने सन्ध्ये वेदयन्ती महद्भयम् । शिवा च वाशते घोरं तत्पराभवलक्षणम् ॥२४॥ एकपक्षा-

के हाथी घोड़े आदि वाहन हर समय प्रसन्न रहते हैं, मृग उनके दाहिने होकर जाते हैं, यह उनकी विजयका लक्षण है ॥ १६ ॥ और हे केशव ! सब मृग दुर्योधनके वाम होकर जाते हैं और क्षण २ में विना ही मनुष्योंके बातें होती हुई प्रतीत होती हैं यह पराजय होने का लक्षण है ॥ १७ ॥ मोर, हंस, सारस, चातक तथा जीवजीवक नामके पक्षी शुभ शकुन सूचित करतेहुए पांडवोंके पीछे २ उड़ा करते हैं ॥ १८ ॥ गिज्ज, कौए, बगले, बाज, राक्षस, नाहर और मक्खियोंके छत्ते अमंगल सूचित करते हुए कौरवोंके पीछे २ उड़ा करते हैं ॥ १९ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाओंमें भेरियोंका शब्द नहीं होता है,परन्तु पांडवोंके ढोल विना बजाये ही शब्द किया करते हैं २० धृतराष्ट्रके पुत्रकी सेनाओंमें तथा कूप आदि जलाशयोंमें नित्य बैलके शब्दकी समान गर्जना हुआ करती है ॥ २१ ॥ हे माधव ! इन्द्रदेवता आकाशमेंसे मांस और रुधिरकी वर्षा करता है और घन-घटनाओंसे घिरेहुए आकाशमें गन्धर्वनगर दीखने हैं उनके आसपास किले और किलोंके आसपास जलसे भरी खाइयें दीखती हैं, किलेके शिखर दीखते हैं, और मनोहर द्वार दीखते हैं, ऐसी गन्धर्वनगरी के ऊपर आकाशमें सूर्य दीखता है,उस सूर्यके आसपास काले रंगका मंडल दीखता है,जो कि-उस सूर्यको घेरे रहता है२२॥२३सूर्यके उदय तथा अस्तके समय गीदड़ियें बड़भारी भयको सूचित करतीहुई घोर शब्द करती हैं,यह पराजय होनेका लक्षण है ॥ २४ ॥ हे मधुसूदन !

च्छिचरणा पक्षिणो मधुसूदन । उत्सृजंति महद् घोरं तत्पराभवलक्षणम् ॥ २५ ॥ कृष्णग्रीवाश्च शकुना रक्तपादा भयानकाः । सन्ध्यामभिमुखा यान्ति तत्पराभवलक्षणम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि गुरूंश्च मधुसूदन । भृत्यानभक्तिमतश्चापि तत्पराभवलक्षणम् ॥ २७ ॥ पूर्वा दिग्लोहिताकारा शस्त्रवर्णा च दक्षिणा । आमपात्रप्रतीकाशा पश्चिमा मधुसूदन ॥ उत्तरा शंखवर्णाभा दिशां वर्णा उदाहृताः ॥२८॥ प्रदीप्ताश्च दिशः सर्वा धार्त्तराष्ट्रस्य माधव । महद्भयं वेदयन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने ॥ २९ ॥ सहस्रपादं प्रासादं स्वप्नान्ते स्म युधिष्ठिर । अधिरोहन्मया दृष्टः सह भ्रातृभिरच्युत ॥ ३० ॥ श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे वै शुक्लवाससः । आसनानि च शुभ्राणि सर्वेषामुपलक्षये ॥ ३१॥ तव चापि मया कृष्ण स्वप्नान्ते रुधिराविला । अन्त्रेण पृथिवी दृष्टा परिक्षिप्ता जनार्दन ॥ ३२ ॥ अस्थिसञ्चयमारूढश्चामितौजा युधिष्ठिरः । सुवर्णपात्र्यां संहृष्टो भुक्तवान् घृतपायसम् ३३

एक पंख, एक आँख और एक चरणवाले पक्षी बड़े भयानक रूपसे मल मूत्र करते हैं, यह पराजयका लक्षण है ॥ २५ ॥ जिन पक्षियोंकी गरदन काली और पैर लाल होते हैं वह भयानक पक्षी सायंकालके समय दुर्योधनके सन्मुखको उड़ते हैं यह तिरस्कार होनेका लक्षण है ॥२६॥ हे मधुसूदन ! वह दुर्योधन पहिले तो ब्राह्मण और गुरुजनों से द्वेष करता है फिर भक्ति करनेवाले सेवकोंसे भी द्वेषभाव रखता है, यह भी तिरस्कार होनेका लक्षण है ॥ २७ ॥ पूर्वदिशा लाल वर्ण की दक्षिण दिशा शस्त्रकेसे वर्णकी, पश्चिम दिशा कच्चे पात्रकीसी और उत्तर दिशा शंखके वर्णकीसी होती है, यह दिशाओंके वर्ण हैं२८ हे माधव ! ऊपर कहीं सब दिशायें दुर्योधनको जलती हुईसी दीखती हैं, इन उत्पातोंको देखनेसे बड़ाभारी भय आनेवाला है, इस बात को वह दिशायें सूचित करती हैं ॥ २९ ॥ हे अच्युत ! भाइयों सहित राजा युधिष्ठिरको मैंने स्वप्नमें सहस्र खम्भों वाले महल पर चढ़ते हुए देखा है ॥ ३० ॥ सब पांडव श्वेत पगड़ी बाँधे और श्वेत वस्त्रों वाले दीखते हैं तथा इन सबोंके आसनोंको भी श्वेत ही देखता हूँ३१ और हे जनार्दन ! मैंने स्वप्नमें ऐसा ही देखा है, कि-मानो तुम लोहूलुहान हुई पृथ्वीको आँतोंमें लपेटे लेते हो ॥ ३२ ॥ मैंने स्वप्नमें महाबली राजा युधिष्ठिरको हड्डियोंके ढेर पर बैठकर प्रसन्न होते होते सोनेकी थालीमें घी और खीर खाते हुए देखा है ॥ ३३ ॥ और

युधिष्ठिरो मया दृष्टो ग्रसमानो वसुन्धराम्। त्वया दत्तामिमां व्यक्तं भोक्ष्यते स वसुन्धराम् ॥ ३४ ॥ उच्चं पर्वतमारूढो भीमकर्मा वृकोदरः। गदापाणिर्नरव्याघ्रो ग्रसन्निव महीमिमाम् ॥ ३५ ॥ क्षपयिष्यति नः सर्वान् स सुव्यक्तं महारणे। विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः ॥३६॥ पांडुरं गजमारूढो गांडीवी स धनञ्जयः। त्वया सार्द्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३७ ॥ यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नास्ति संशयः। पार्थिवान् समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान्॥३८॥ नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः। शुक्लकेयूरकंठत्रा शुक्लमाल्याम्बरावृताः॥३९॥ अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम्। त्रय एते मया दृष्टाः पांडुरच्छत्रवाससः ॥४०॥ श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एते जनार्दन। धार्त्तराष्ट्रेषु सैन्येषु तान्विजानीहि केशव ॥४१॥ अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः। रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः॥४२

युधिष्ठिरको मैंने इस पृथिवीको निगलते हुए भी देखा है, इससे सिद्ध होता है, कि-राजा युधिष्ठिर तुम्हारी दीहुई इस पृथिवीको प्रकटरूपसे भोगेंगे३४और भयानक काम करनेवाला भीमसेन हाथमें गदा लेकर बड़ेभारी पर्वतके ऊपर बैठकर इस पृथिवीको निगलता हुआ सा मेरे देखनेमें आया है ॥ ३५ ॥ इससे प्रसिद्धरूपसे प्रतीत होता है, कि-भीमसेन महासंग्राममें हम सबोंका नाश करेगा, हे इन्द्रियोंके प्रेरक कृष्ण ! मुझे यह मालूम है कि-जहाँ धर्म होता है तहाँ ही विजय होती है ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण ! मैंने स्वप्नमें उस गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनको तुम्हारे साथ पांडुर वर्णके हाथी पर बैठाहुआ और राज्यलक्ष्मीसे दमकता हुआ देखा है ॥ ३७ ॥ हे कृष्ण ! तुम सब रणमें दुर्योधन आदि सब राजाओंका नाश करोगे इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकी इन तीनोंको मैंने स्वप्नमें मोती और मणियों से जडे हुए बाजूबन्दोंवाले, कण्ठमें कण्ठे वाले, श्वेत पुष्पोंकी माला वाले, स्वेत वस्त्रपहिने और उत्तम पालकीकी सवारियों पर बैठे हुए देखा था, उनके ऊपर श्वेत छत्र लगे थे तथा वह स्वेत वस्त्र पहरे हुए थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे जनार्दन ! यह तीनों जने स्वेत पगड़ी वाले देखे थे हे केशव ! अब मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाके मनुष्योंका वर्णन करता हूँ उसको तुम सुनो ॥ ४१ ॥ हे माधव ! अश्वत्थामा, कृपाचार्य, सात्वतवंशी कृतवर्मा तथा दूसरे सब राजे लाल पगड़ियें

उष्ट्रप्रयुक्तमारूढौ भीष्मद्रोणौ महारथौ । मया सार्द्धं महाबाहो धार्त्तराष्ट्रेण वा विभो ॥ ४३ ॥ अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन । अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम् ॥ ४४ ॥ अहञ्चान्ये च राजानो यच्च तत् क्षत्रमण्डलम् । गांडीवाग्निं प्रवेक्ष्यामो इति मे नास्ति संशयः ॥ ४५ ॥ कृष्ण उवाच । उपस्थितविनाशेयं नूनमद्य वसुन्धरा । यथा हि मे वचः कर्ण नोपैति हृदयं तव ॥ ४६ ॥ सर्वेषां तात भूतानां विनाशे प्रत्युपस्थिते । अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ४७ ॥ कर्ण उवाच । अपि त्वां कृष्ण पश्याम जीवन्तोऽस्मान् महारणात् । समुत्तीर्णा महाबाहो वीरक्षत्रविनाशनात् ॥४८॥ अथवा संगमः कृष्ण स्वर्गे नो भविता ध्रुवम् । तत्रेदानीं समेष्यामः पुनः सार्द्धं त्वयानघ ॥४९॥ सञ्जय उवाच । इत्युक्त्वा माधवं कर्णः परिष्वज्य च पीडितम् । विसर्जितः केशवेन रथोपस्थादवातरत् ॥ ५० ॥ ततः स्वरथमास्थाय जांबूनदविभूषितम् । सहास्माभिर्निववृते राधेयो

बाँधेहुए दीखते थे ॥ ४२ ॥ हे महाबाहु कृष्ण ! महारथी भीष्म तथा द्रोणाचार्य मेरे और दुर्योधनके साथ ऊँटोंसे जुड़े हुए रथमें बैठे थे४३ हे जनार्दन ! वह अगस्त्यकी शासनकी हुई (दक्षिण) दिशाकी ओरको जाते हुए दीखे थे, इससे प्रतीत होता है, कि—हम सब थोड़े ही दिनोंमें यमलोकमें पहुँच जायँगे ॥ ४४ ॥ मैं दूसरे राजे और क्षत्रियोंका मण्डल ये सब गांडीव धनुषकी अग्निमें प्रवेश करेंगे, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि—निःसन्देह इस पृथिवीका विनाश अब समीप ही आलगा है इसी कारण हे कर्ण ! तेरा हृदय मेरी बातको स्वीकार नहीं करता है ४६ हे तात ! जब सब प्राणियोंका विनाशकाल समीप आजाता है तब अन्याय भी न्यायसा प्रतीत होता है और हृदयमेंसे दूर नहीं होता है ॥ ४७ ॥ कर्णने कहा, कि—हे महाबाहु कृष्ण ! यदि हम इस घोर क्षत्रियोंका संहार करनेवाले बड़े भारी रणमेंसे बचजायँगे तो फिर तुम्हारा दर्शन करेंगे ॥ ४८ ॥ अथवा हे कृष्ण ! अब हमारा तुम्हारा मिलना स्वर्गमें तो अवश्य ही होगा, और इतने समयमें भी हे निष्पाप कृष्ण ! अभी हम तयारीके साथ फिरभी मिलेंगे ॥४९॥ सञ्जय कहता है, कि—कर्णने श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर उनको चिपटाकर छातीसे लगाया, फिर श्रीकृष्णने जानेकी आज्ञादी तब कर्ण रथके भीतरसे नीचे उतरपड़ा ॥ ५० ॥ और फिर सुवर्णसे शोभायमान

दीनमानसः ॥ ५१ ॥ ततः शीघ्रतरं प्रायात् केशवः सहसात्यकिः पुनरुच्चारयन् वाणीं याहि याहीति सारथिम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कर्णोपनिवादे- कृष्णकर्णसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

वैशम्पायन उवाच । असिद्धानुनये कृष्णे कुरुभ्यः पाण्डवा- गते । अभिगम्य पृथां क्षत्ता शनैः शोचन्निवाब्रवीत् ॥ १ ॥ जानासि मे जीवपुत्रि भावं नित्यमविग्रहे । क्रोशतो न च गृह्णीते वचनं सुयोधनः ॥ २ ॥ उपपन्नो ह्यसौ राजा चेदिपाञ्चालकेकयैः । भीमा- र्जुनाभ्यां कृष्णेन युयुधानयमैरपि ॥ ३ ॥ उपप्लव्ये निविष्टोऽपि धर्म- मेव युधिष्ठिरः । कांक्षते ज्ञातिसौहार्दाद् बलवान् दुर्बलो यथा ॥ ४ राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति । मत्तः पुत्रमदेनैव विध- पथि वर्तते ॥ ५ ॥ जयद्रथस्य कर्णस्य तथा दुःशासनस्य च सौबलस्य च दुर्बुद्ध्या मिथो भेदः प्रपत्स्यते । अधर्मेण हि धर्मि-

---

अपने रथमें बैठकर उदास मनसे हमारे साथ लौट आया ।५१। उध- श्रीकृष्ण भी सात्यकीके सहित 'चलो चलो' इसप्रकार बारंबा- सारथीसे कहते हुए शीघ्रताके साथ चलदिये ॥ ५२ ॥ एक सौ तैंत- लीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४३ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि–जिन्होंने समझानेपर कुछ फल न- पाया था ऐसे श्रीकृष्णजीके कौरवोंके पाससे लौटकर पाण्डवों- पासको चलेजाने पर विदुरजी कुन्तीके पास आकर खेद करते हु- से धीरे २ कहनेलगे, कि–॥ १ ॥ हे कुन्तिभोजकी पुत्री ! तू जानत- है, कि–मेरा मत सदा युद्ध न करनेके पक्षमें है, मैं बहुतेरा चिल्ला- कर कहता हूँ,परन्तु दुर्योधन मेरी एक बात भी नहीं मानता है ॥२ राजा युधिष्ठिर चेदि, पाञ्चाल, केकय आदि राजाओंसे तथा भीम- अर्जुन, श्रीकृष्ण, युयुधान और नकुल सहदेवसे युक्त हैं ॥ ३ ॥ उप- प्लव्यमें आकर रहे हैं, बलवान् हैं, तो भी संबन्धियोंके ऊपर स्ने- होनेसे दुर्बल पुरुषकी समान धर्माचरण ही करना चाहते हैं ॥ ४ परन्तु यह राजा धृतराष्ट्र बूढी अवस्थाके होगये तो भी शान्त न- होते, पुत्रके मदसे मतवाले होकर अधर्मके मार्गमें चला करते हैं ॥५ जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन और शकुनिकी दुष्टबुद्धिके कारणसे कौर- पाण्डवोंमें परस्पर कलह हो पड़ा रहेगा ॥ ६ ॥ अधर्मसे कियाहुआ और विकार उत्पन्न करने वाला वैर जिनको धर्मयुक्त भासता

क्रूरं च कार्यमीदृशम्। येषां तेषामयं धर्मः सानुबन्धो भविष्यति ॥७॥ क्रियमाणे बलाद्धर्मे कुरुभिः को न संज्वरेत्। असाम्ना केशवे याते समुद्योक्ष्यन्ति पाण्डवाः ॥८॥ ततः कुरूणामनयो भविता वीरनाशनः। चिन्तयन्न लभे निद्रामहःसु च निशासु च ॥ ९ ॥ श्रुत्वा तु कुन्ती तद्वाक्यमर्थकामेन भाषितम्। सा निःश्वसन्ती दुःखार्त्ता मनसा विममर्श ह ॥ १० ॥ धिगस्त्वर्थं यत्कृतेयं महान् ज्ञातिवधः कृतः। वर्त्स्यते सुहृदाञ्चैव युद्धेऽस्मिन् वै पराभवः ॥ ११ ॥ पांडवाश्चेदिपांचाला यादवाश्च समागताः। भारतैः सह योत्स्यन्ति किन्नु दुःखमतः परम् १२ पश्ये दोषं ध्रुवं युद्धे तथाऽयुद्धे पराभवम्। अधनस्य मृतं श्रेयो न हि ज्ञातिक्षयो जयः ॥ १३ ॥ इति मे चिन्तयन्त्या वै हृदि दुःखं प्रवर्त्तते। पितामहः शान्तनव आचार्य्यश्च युधाम्पतिः ॥ १४ ॥ कर्णश्च

उनको यह विकारभरा धर्म फल देगा अर्थात् नाश करदेगा ॥ ७ ॥ कौरवोंने बलात्कारसे धर्मके मर्मका छेदन किया है यह देख कर किसके चित्तको दुःख न होगा ? श्रीकृष्ण यहाँ आकर उद्योग करने पर भी सन्धि न करासके किन्तु हताश होकर लौटगये; इसकारण अब पाण्डव युद्ध करनेका उद्योग करेंगे ॥ ८ ॥ अतः यह कौरवोंकी अनीति वीरोंका नाश करने वाली होगी, इस बातकी चिन्ता करते हुए मुझे न दिनमें चैन पडता है और न रातमें नींद आती है ॥ ९ ॥ कौरवोंका हित चाहनेवाले विदुरजीकी कही हुई इस बातको सुनकर दुःखसे व्याकुल होती हुई कुन्ती लंबा श्वास लेकर अपने मनमें विचारने लगी कि-१० इस धनको धिक्कार है, कि-जिसके कारणसे संबंधियों का बड़ाभारी संहार करना पडेगा, तिसपर भी इस युद्धमें सब सम्बन्धियोंका तिरस्कार ही होगा ॥११॥ पाण्डव, चेदि देशके राजे पांचाल देशके राजे और यादव इकट्ठे होकर भरतवंशी राजाओंके साथ साथ लड़ेंगे, इससे अधिक और कौनसा दुःख होगा ॥ १२ ॥ युद्ध करनेमें निःसन्देह कुटुम्बके नाशका दोष देखती हूँ, परन्तु युद्ध न करनेमें भी अपना तिरस्कार होता दीखता है, एक ओर तो निर्धन होनेकी अपेक्षा मरजाना अच्छा है, परन्तु दूसरी ओरको देखती हूँ तो कुटुम्बियोंका नाश होना भी विजय नहीं है ॥ १३ ॥ ऐसा विचार करनेसे मेरे हृदयमें दुःख होता है और शान्तनुनन्दन, योधाओंके पति भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण दुर्योधनका पक्ष लेकर मेरे हृदयमें भय उत्पन्न करते हैं, परन्तु मुझे प्रतीत होता है, कि-द्रोणा-

धार्त्तराष्ट्रार्थं हर्षयन्ति भयं मम । नाचार्यः कामवान् शिष्यैर्द्रोणो युध्येत जातुचित् ॥१५॥ पाण्डवेषु कथं हार्दं कुर्यान्न च पितामहः । अयमेको वृथाहष्टिर्धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ १६ ॥ मोहानुवर्त्ती सततं पापो द्वेष्टि च पाण्डवान् । महत्यनर्थे निर्बन्धी बलवांश्च विशेषतः१७ कर्णः सदा पाण्डवानां तन्मे दहति सम्प्रति । आशंसे त्वद्य कर्णस्य मनोऽहं पाण्डवान् प्रति ॥ १८ ॥ प्रसादयितुमासाद्य दर्शयन्ती यथातथम् । तोषितो भगवान् यत्र दुर्वासा मे वरं ददौ ॥ १९ ॥ आह्वानं मन्त्रसंयुक्तं वसन्त्याः पितृवेश्मनि । साहमन्तःपुरे राज्ञः कुन्तिभोजपुरस्कृता ॥ २० ॥ चिन्तयन्ती बहुविधं हृदयेन विदूयता । बलाबलञ्च मन्त्राणां ब्राह्मणस्य च वाग्बलम् ॥ २१ ॥ स्त्रीभावाद् बालभावाच्च चिन्तयन्ती पुनः पुनः । धात्र्या विश्रब्धया गुप्ता सखीजनवृता तदा ॥२२॥ दोषं परिहरन्ती च पितुश्चारित्ररक्षिणी । कथन्नु सुकृतं

चार्य कभी भी चित्तसे चाहकर अपने शिष्योंके साथ युद्ध नहीं करेंगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ और यह पितामह भीष्म भी पाण्डवोंके ऊपर स्नेह क्यों नहीं करेंगे ? अब कर्णकी चिंता है सो यह तो बड़े खोटे विचारका पुरुष है, यह तो सदा दुष्टबुद्धि दुर्योधनके ही मोहमें मग्न रहता है, पापी है और बड़ाभारी अनर्थ करनेका आग्रह ले बैठा है तथा यह सदा पांडवोंसे द्वेष किया करता है यह बात इस समय मेरे मनको जलाये देती है, आज मैं कर्णके पास जाकर गुप्तरीतिसे उससे सब बात कहती हूँ और कर्णका मन जिसप्रकार पांडवोंके ऊपर प्रसन्न होजाय वही प्रयत्न करती हूँ और जिसप्रकार उसका जन्म हुआ है वह भी उसको सुनाये देती हूँ, पहिले मैं राजा कुन्तिभोजके रणवासमें बड़े सत्कारके साथ रहती थी, तहाँ मेरी सेवासे प्रसन्न हुए दुर्वासामुनिने मुझे वर दिया था और देवताओंके आवाहनका मंत्र देकर उन्होंने कहा था कि-तू संतानकी इच्छासे जिस देवताको अपने पास बुलाना चाहेगी बुलासकेगी ॥ १६-२० ॥ ऐसा वर पाकर स्त्रीजातिके स्वभावके कारण तथा बालकपनेकी चपलताके कारण मैं चंचल चित्तसे वारम्वार अनेकों प्रकारके विचार करने लगी, मंत्रके बलाबल और ब्राह्मणके वाक्यबलकी परीक्षा करनेका मुझे बड़ा कुतूहल होने लगा, उस समय विश्वासपात्र धाई मेरी रक्षा किया करती थी, अनेकों सखियें मुझे घेरे रहती थीं, इसलिये मेरे मनमें विचार उठा, कि-मैं अपने दोषको कैसे दूर करूँ ? पिताकी

से स्यामापराधवती कथम् ॥ २३ ॥ मन्त्रेयमिति सञ्चिन्त्य ब्राह्मणं तं नमस्य च । कौतूहलात्तु तं लब्ध्वा बालिश्याऽऽचरन्तदा । कन्या सती देवमर्कमासादयमहन्ततः ॥ २४ ॥ योऽसौ कानीनगर्भो मे पुत्रवत् परिरक्षितः । कस्मान्न कुर्याद्वचनं पथ्यं भ्रातृहितं तथा ॥ २५ ॥ इति कुन्ती विनिश्चित्य कार्यनिश्चयमुत्तमम् । कार्यार्थमभिनिश्चित्य ययौ भागीरथीं प्रति ॥२६॥ आत्मजस्य ततस्तस्य घृणिनः सत्यसंगिनः । गङ्गातीरे पृथाऽश्रौषीद्वेदाध्ययननिःस्वनम् ॥२७॥ प्राङ्मुखस्योर्ध्वबाहोः सा पर्यतिष्ठत पृष्ठतः । जप्यावसानं कार्यार्थं प्रतीक्षन्ती तपस्विनी२८ अतिष्ठत् सूर्यतापार्ता कर्णस्योत्तरवाससि । कौरव्यपत्नी वार्ष्णेयी पद्ममालेव शुष्यती ॥ २९ ॥ आपृष्ठतापाज्जप्त्वा स परिवृत्य यतव्रतः । दृष्ट्वा कुन्तीमुपातिष्ठदभिवाद्य कृताञ्जलि ॥ ३० ॥ यथान्यायं महातेजाः मानी धर्मभृतां वरः । उत्स्मयन् प्रणतः प्राह कुन्तीं वैकर्तनो वृषः ३१

प्रतिष्ठा निर्मल कैसे रहे ? मेरा यह काम उत्तम कैसे कहलावे ? और मैं किस उपायसे निरपराध रहूँ ? ऐसे विचारसे व्याकुल होकर और धीरे २ ऊपरके संकल्पोंको त्यागकर कुतुहलके कारण एकांतमें जा दुर्वासामुनिको प्रणाम करके मूर्खतावश उस समय बालकपनमें ही दुर्वासाके दियेहुए मंत्रको पढ़कर सूर्यदेवको बुलाने लगी और वह आगये॥२१-२४॥ उनसे मेरे गर्भ रहगया, उस कन्या अवस्थाके गर्भको भी मैंने पुत्रकी समान पाला था, इस सब बातको सुनकर वह अपने भाइयोंका हित क्यों नहीं करेगा ? ॥ २५ ॥ कुन्ती इस प्रकार उत्तम कार्यका तथा प्रयोजनका निश्चयपूर्वक विचार करके कर्णसे मिलने के लिये भागीरथीके तट पर गयी ॥ २६ ॥ उस समय दयालु सत्यधारी कर्ण ऊँची भुजा कर पूर्वदिशाकी ओरको मुख करके वेदके मंत्रोंका उच्चारण करता हुआ जप कर रहा था, तपस्विनी कुंती उसके वेदाध्ययनकी ध्वनिको सुनकर अपने कामके लिये उसका जप समाप्त होनेकी बाट देखती हुई उसके पीछेकी ओर जाकर खड़ी हो गयी॥२७॥२८॥ और वृष्णिवंशकी राजकुमारी तथा कौरववंशके राजाकी रानी कुन्ती कुमलाती हुई कमल मालाकी समान सूर्यकी धूपसे घबड़ानेके कारण कर्णके ओढ़ेहुए वस्त्रकी छायामें खड़ी रही ॥ २९ ॥ व्रतधारी कर्ण जब तक पीठ पर धूप आयी तबतक अर्थात् मध्याह्न काल तक जप करके ज्यों ही पीछेको फिरा कि—कुन्तीको खड़ी देखकर आश्चर्यमें होगया और महातेजस्वी मानी तथा परमधर्मात्मा सूर्यपुत्र कर्ण दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करके कुन्तीसे कहनेलगा३०।३१

कर्ण उवाच । राधेयोऽहमाधिरथिः कर्णस्त्वामभिवादये । प्राप्ता किमर्थं भवति ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १ ॥ कुन्त्युवाच । कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता । नासि सूतकुले जातः कर्ण तद्विद्धि मे वचः ॥२॥ कानीनस्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः । कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ॥ ३ ॥ प्रकाशकर्मा तपनो योऽयं देवो विरोचनः । अजीजनत् त्वां मय्येष कर्ण शस्त्रभृतां वरम् ॥ ४ ॥ कुण्डली बद्धकवचो देवगर्भः श्रिया वृतः । जातस्त्वमसि दुर्धर्ष मया पुत्र पितुर्गृहे ॥ ५ ॥ स त्वं भ्रातॄनसम्बुध्य मोहाद्यदुपसेवसे । धार्त्तराष्ट्रान्न तद्युक्तं त्वयि पुत्र विशेषतः ॥ ६ ॥ एतद्धर्मफलं पुत्र नराणां धर्मनिश्चये । यत्तुष्यन्त्यस्य पितरो माता चाप्येकदर्शिनी ॥७॥ अर्जुनेनार्जितां पूर्वं हृतां लोभादसाधुभिः । आच्छिद्य धार्त्तराष्ट्रेभ्यो भुंक्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम् ॥ ८ ॥ अद्य पश्यन्तु कुरवः कर्णार्जुनसमा-

कर्ण बोला, कि—मैं अधिरथका पुत्र कर्ण हूँ और मेरी माताका नाम राधा है, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ, तुम यहाँ क्यों आयी हो ? कहो मैं तुम्हारा कौनसा काम करूँ ? ॥ १ ॥ कुन्तीने कहा, कि—तू राधाका पुत्र नहीं है, किन्तु कुंतीका है. तथा हे कर्ण ! तू अधिरथका पुत्र नहीं है और सूतकुलमें उत्पन्न भी नहीं है किंतु तेरे जन्मके विषय में मैं तुझसे जो कुछ कहती हूँ उसको सुन ॥ २ ॥ हे पुत्र ! मैंने तुझे कन्या अवस्थामें उत्पन्न किया था इस कारण तू कानीन है, मैंने राजा कुन्तिभोजके भवनमें तुझे अपनी कोखमें धारण किया था, और उत्पन्न किया था, तू राधाका पुत्र नहीं है, किंतु मेरा पुत्र है ।३। हे कर्ण ! प्रकाश करने वाले सूर्य नारायणने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तुझको मेरे पेटसे उत्पन्न किया है, ॥ ४ ॥ हे दुर्धर्ष ! पुत्र ! मैंने जब अपने पिताके घर तुझे उत्पन्न किया था उस समय तू कानोंमें कुण्डल पहरे हुए था, शरीर पर कवच पहरे हुए था और तेरा शरीर दिव्य था ॥ ५ ॥ परंतु हे पुत्र ! तू अपने भाइयोंको पहिचाने बिना अज्ञानसे जो कौरवोंका पक्ष ले जारहा है, वह तुझे विशेष कर योग्य नहीं है ॥ ६ ॥ हे पुत्र ! जिस धर्माचरणको करनेसे धर्माचरण करने वालेके पितर और पुत्रके ऊपर ही प्रेम करनेवाली उसकी माता प्रसन्न हो यही उस धर्माचरणका फल है, यह बात मनुष्योंके धर्मका निर्णय करते समय सिद्ध होचुकी है ।७। पहिले अर्जुनने जो राज्यलक्ष्मी इकट्ठीकी थी, उसको दुष्ट कौरवोंने छीनलिया है, सो तू उस

गवम् । सौभ्रात्रेण समालक्ष्य सन्नमन्तामसाधवः ॥ ९ ॥ कर्णार्जुनौ वै भवेतां यथा रामजनार्दनौ । असाध्यं किन्नु लोके स्याद्युवयोः संहितात्मनोः ॥ १० ॥ कर्ण शोभिष्यसे नूनं पञ्चभिर्भ्रातृभिर्वृतः । देवैः परिवृतो ब्रह्मा वेदामिव महाध्वरे ॥ ११ ॥ उपपन्नो गुणैः सर्वैं ज्येष्ठः श्रेष्ठेषु बन्धुषु । सूतपुत्रेति मा शब्दः पार्थस्त्वमसि वीर्यवान् ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुन्तीकर्णसमागमे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः सूर्यान्निश्चरितां कर्णः शुश्राव भारतीम् । दुरत्ययां प्रणयिनीं पितृवद् भास्करेरिताम् ॥ १ ॥ सत्यमाह पृथा वाक्यं कर्ण मातृवचः कुरु । श्रेयस्ते स्यान्नरव्याघ्र सर्वमाचरतस्तथा ॥ २ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्य मात्रा च स्वयं पित्रा च भानुना । चचाल नैव कर्णस्य मतिः सत्यधृतेस्तदा ॥ ३ ॥ कर्ण उवाच । न चेदं श्रद्दधे वाक्यं क्षत्रिये भाषितं त्वया । धर्म्मद्वारं ममैतत् स्यान्नियोग-

---

युधिष्ठिरकी राज्यलक्ष्मीको कौरवोंके पाससे छीन कर उसको फिर भोगनेवाले हुए कौरव आज कर्ण और अर्जुनका मेल देखकर तथा तुम्हारी उत्तमप्रकारकी बन्धुभावकी प्रीतिको देखकर तुम्हें प्रणाम करें ॥९॥ जैसे बलदेव और कृष्ण हैं तैसे ही कर्ण और अर्जुन भी हों, यदि तुम दोनों जने मिलजाओ तो संसारमें कौन वस्तु असाध्य रह जाय ? १० हे कर्ण ! जैसे महायज्ञमें देवताओंसे घिरेहुए ब्रह्मा वेदीमें शोभा पाते हैं तैसे ही तू भी पाँचों भाइयोंसे घिरकर शोभा पावेगा ॥ ११ ॥ तू सकल गुणोंसे युक्त है, सब श्रेष्ठ भाइयोंमें तू बडा भाई है, कुंतीका पुत्र और बलवान् है, तू अपनेको सूतपुत्रके नामसे न कहा कर ॥१२॥ एकसौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४५ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-इसप्रकार कुंतीके कहने पर जिसका उल्लंघन न होसके ऐसी स्नेहसे भरी और पिताकी वाणीकी समान हितकी बात सूर्यमण्डलमेंसे कर्णने सुनी ॥ १ ॥ उस वाणीने कर्णको पुकारकर कहा, कि-हे कर्ण ! कुंतीने सच्ची बात कही है, तू अपनी माताकी बात मान ले, हे नरव्याघ्र ! यदि तू माताके कहनेके अनुसार सब काम करेगा तो तेरा कल्याण होगा ॥ २ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-इसप्रकार स्वयं माताने और पिता सूर्यने कर्णसे कहा तो भी सच्चेधीरज वाले कर्णकी बुद्धि उस समय चलायमान नहीं हुई ॥३॥ कर्णने उत्तर दिया, कि-हे क्षत्रिये ! तूने मुझसे जो कुछ कहा,

करणं तव ॥ ४ ॥ अकरोन्मयि यत् पापं भवती सुमहात्ययम् । अपकीर्णोऽस्मि यन्मातस्तद्यशः कीर्त्तिनाशनम् ॥ ५ ॥ अहञ्चेत् क्षत्रियो जातो न प्राप्तः क्षत्रसत्क्रियाम् । त्वत्कृते किन्नु पापीयः शत्रुः कुर्यान्ममाहितम् ॥ ६ ॥ क्रियाकाले त्वनुक्रोशमकृत्वा त्वमिमं मम । हीनसंस्कारसमयमद्य मां समचूचुदः ॥ ७ ॥ न वै मम हितं पूर्वं मातृवच्चेष्टितं त्वया । सा त्वां सम्बोधयस्यद्य केवलात्महितैषिणी ॥८॥ कृष्णेन सहितात् को वै न व्यथेत धनञ्जयात् । कोऽद्य भीतं न मां विद्यात् पार्थानां समितिं गतम् ॥ ९ ॥ अभ्राता विदितः पूर्वं युद्धकाले प्रकाशितः । पाण्डवान् यदि गच्छामि किं मां क्षत्रं वदिष्यति ॥ १० ॥ सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च यथासुखम् । अहं वै धार्त्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ॥११॥ उपनह्य परैर्वैरं ये मां नित्य-

---

इसके ऊपर मेरा विश्वास नहीं है, क्योंकि-यदि इस समय मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँ तो यह काम मेरे धर्मके द्वारका बाधक होगा ॥ ५ ॥ तूने मेरे विषयमें जो अनुचित काम किया है उससे तूने जातिनाशरूप मेरा नाश करडाला है, क्योंकि-हे मातः ! तेरे उस कामसे मेरी क्षत्रिय जातिका नाश होगया है तूने जो मुझे फेंकदिया उससे मुझे न किसीने जाना और न किसीने मेरा गुणगान किया ॥ ५ ॥ मैं क्षत्रियजातिमें उत्पन्न हुआ था तो भी तुम्हारे कारणसे मेरा क्षत्रियजातिके योग्य कोई उत्तम संस्कार नहीं हुआ तुमसे अधिक मेरा और कौन शत्रु होगा, जो मेरा ऐसा अहित करे॥६॥जब मेरे क्षत्रिय जातिके योग्य संस्कार करनेका समय था तब तो तुमने मेरे ऊपर दया करी नहीं और अब जब कि-मेरा संस्कारका समय बीत गया है तब तुम आज मुझे अपना काम करनेके लिये प्रेरणा करती हो॥७॥ तुमने पहिले ही माताकी समान मेरा हित नहीं किया और अब आज केवल अपने हितकी इच्छासे मुझे समझा रही हो ॥ ८ ॥ परन्तु श्रीकृष्णके साथ रहनेवाले अर्जुनसे कौन नहीं डरता है ? अब यदि मैं पाण्डवोंकी सभामें चला जाऊँ तो मुझे कौन डरपोक नहीं कहेगा ? ॥९॥ मैं पहिले तो पाण्डवोंका भाई कहलाया नहीं और अब युद्धके समय यदि अपनेको उनका भाई कह कर प्रकाशित करूँ और उनसे मिल जाऊँ तो क्षत्रियमण्डल मुझे क्या कहेगा? ॥१०॥धृतराष्ट्रके पुत्रोंने मुझे सब ऐश्वर्य भोगनेको दिये और सत्कार करके मुझे बड़ा सुख दिया फिर मैं उनके इस उपकारको निष्फल कैसे करूँ॥११

नुपासते। नमस्कुर्वन्ति च सदा वसवो वासवं यथा ॥१२॥ मम प्राणेन ये शत्रून् शक्ताः प्रतिसमासितुम्। मन्यन्ते ते कथं तेषामहं छिन्द्यां मनोरथम् ॥ १३ ॥ मया प्लवेन संग्रामं तितीर्षन्ति दुरत्ययम्। अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ॥१४॥ अयं हि कालः सम्प्राप्तो धार्त्तराष्ट्रोपजीविनाम्। निर्वेष्टव्यं मया तत्र प्राणानपरिरक्षता॥१५॥कृतार्थाः सुभृता ये हि कृत्यकाले ह्युपस्थिते। अनवेक्ष्य कृतं पापा विकुर्वन्त्यनवस्थिताः॥ राजकिल्बिषिणां तेषां भर्तृपिंडापहारिणाम्। नैवायं न परो लोको विद्यते पापकर्मणाम्१७धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामर्थे योत्स्यामि ते सुतैः। बलञ्च शक्तिं चास्थाय न वै त्वय्यनृतं वदे ॥१८॥ आनृशंस्यमथो वृत्तं रक्षन् सत्पुरुषोचितम्। अतोऽर्थकरमप्येतन्न करोम्यद्य ते वचः ॥ १९ ॥ न च तेऽयं समारम्भो मातर्मोघो भविष्यति। वध्यान् विषह्यान् संग्रामे न

जो शत्रुओंके साथ वैर बाँध कर नित्य मेरी सेवा करते हैं और वसु इन्द्रको नमस्कार करते हैं वैसे ही सदा मुझे प्रणाम करते हैं१२और जो मेरे बलसे शत्रुओंको जीतनेको समर्थ हुए हैं तथा मुझे अपना करके मानते हैं उनके मनोरथोंको मैं कैसे तोड़ दूँ? ॥१३॥ पार पानेकी इच्छा वाले जो पुरुष मुझे नौका बना कर कठिनसे तरने योग्य संग्रामरूपी समुद्रको तरना चाहते हैं उनको मैं कैसे त्याग दूँ? ॥ १४ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदिके सेवकोंका यह मरणका समय आपहुँचा है ऐसे अवसर पर मुझे अपने प्राण देकर भी उनके खाये हुए अन्नका बदला चुका देना चाहिये ॥ १५ ॥ जिन लोगोंने जिनका भले प्रकार पोषण किया होता है वह उनका समय पड़नेपर काम करते हैं तबही कृतार्थ कहलाते हैं, परन्तु जो चञ्चल चित्त वाले पापी पुरुष कामका अवसर आने पर स्वामीके कियेहुए उपकारकी ओर दृष्टि नहीं देते हैं॥१६॥उन को राजाका अपराधी, राजाके अन्नको खराब करने वाला तथा पापी जानो, ऐसे लोगोंको यह लोक तथा परलोक नहीं मिलता है अर्थात् उनकी इस लोकमें अपकीर्त्ति होती है और मरनेके पीछे नरकमें पड़ते हैं ॥ १७ ॥ मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये तुम्हारे पुत्रोंके साथ अपने बल और शक्तिके अनुसार युद्ध करूँगा, तुम्हारे सामने मैं मिथ्या नहीं कहता हूँ ॥ १८ ॥ मैं सत्पुरुषोंके योग्य और क्रूरतारहित धर्मका आचरण करूँगा, परन्तु तुम्हारे लिये अब मैं अपने प्रयोजनको साधनेवाला वचन भी स्वीकार नहीं करूँगा ॥ १९ ॥ और तुमने जो यह मुझसे मिलनेका उद्योग किया है यह भी निष्फल नहीं होगा तुम्हारे पुत्र मारने

हनिष्यामि ते सुतान् ॥ २० ॥ युधिष्ठिरञ्च भीमञ्च यमौ चैवार्जुनादृते अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले ॥ २१ ॥ अर्जुनं हि निहत्याजौ सम्प्राप्तं स्यात् फलं मया । यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना २२ न ते जातु नशिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनी । निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि २३इति कर्णवचः श्रुत्वा कुन्ती दुःखात् प्रवेपती । उवाच पुत्रमाश्लिष्य कर्णं धैर्यादकंपनम् २४एवं वै भाव्यमेतेन क्षयं यास्यन्ति कौरवाः । यथा त्वं भाषसे कर्ण दैवन्तु बलावत्तरम् २५ त्वया चतुर्णां भ्रातॄणामभयं शत्रुकर्शन । दत्तं तत् प्रतिजानीहि सङ्गरप्रतिमोचनम् ॥ २६ ॥ अनामयं स्वस्ति चेति पृथाथो कर्णमब्रवीत् । तां कर्णोऽथ तथेत्युक्त्वा ततस्तौ जग्मतुः पृथक् ॥ २७ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कुंतीकर्णसमागमे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

वैशम्पायन उवाच । आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिन्दमः । पाण्डवानां यथा वृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान् ॥१॥ संभाष्य सुचिरं काले

योग्य हैं और मैं उनको मार सकता हूँ तो भी मैं उनको नहीं मारूँगा॥२०॥मैं युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेवके साथ युद्ध नहीं करूँगा युधिष्ठिरकी सेनामें केवल एक अर्जुनके साथ ही युद्ध करूँगा ॥ २१ ॥ क्योंकि—यदि मैं रणमें अर्जुनको मार कर विजय पाऊँगा तो जगत्में मेरा यश होगा अथवा अर्जुन मुझे मारकर विजय पालेगा तो जगत्में उसका यश होगा ॥ २२ ॥ हे यश वाली माताजी! तुम्हारे पाँच पुत्र शेष न रहें ऐसा कभी नहीं होगा, यदि अर्जुन मारा गया तो पाँचवाँ मैं जीता रहूँगा और यदि मैं मारा गया तो पाँचवाँ अर्जुन ही है ॥ २३ ॥ कर्णके ऐसे वचनको सुन कर कुन्ती दुःखसे काँपती हुई कुछ एक धीरज धर पुत्र कर्णको हृदयसे लगा कर कहने लगी, कि—॥२४॥ हे कर्ण ! तू जैसा कहता है ऐसी ही होनी है, कौरवोंका नाश हो जायगा, क्योंकि—दैव बड़ा बलवान् है ॥ २५ ॥ हे शत्रुनाशक ! तूने जो चार भाइयोंको अभयदान दिया है, इस अपनी प्रतिज्ञाका तू पालन करना ॥ २६ ॥ फिर कुंतीने कर्णसे कहा, कि तेरा निर्विघ्न कल्याण हो कर्णने इसके उत्तरमें तथास्तु कहा, फिर वह दोनों अपने २ मार्गसे चले गये ॥ २७ ॥ १४६ वाँ समाप्त ॥ १४६ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—शत्रुको दमन करने वाले श्रीकृष्णजी हस्तिनापुरसे उपप्लव्य नामके स्थानमें आये और जो कुछ बातें हुईं

मन्त्रयित्वा पुनः पुनः । स्वमेव भवनं शौरिर्विश्रामार्थं जगाम ह ॥ २ ॥ विसृज्य सर्वान्नृपतीन् विराटप्रमुखांस्तदा । पांडवा भ्रातरः पंच भानावस्तं गते सति ३ संध्यामुपास्य ध्यायंतस्तमेव गतमानसाः आनाय्य कृष्णं दाशार्हं पुनर्मंत्रममंत्रयन् ४ युधिष्ठिर उवाच । त्वया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः । किमुक्तः पुण्डरीकाक्ष तन्नः शंसितुमर्हसि ॥ ५ ॥ वासुदेव उवाच । मया नागपुरं गत्वा सभायां धृतराष्ट्रजः । तथ्यं पथ्यं हितश्चोक्तो न च गृह्णाति दुर्मतिः ॥६॥ युधिष्ठिर उवाच । तस्मिन्नुत्पथमापन्ने कुरुवृद्धः पितामहः । किमुक्तवान् हृषीकेश दुर्योधनममर्षणम् ॥ ७ ॥ आचार्यो वा महाभाग भारद्वाजः किमब्रवीत् पितरौ धृतराष्ट्रस्तं गांधारी वा किमब्रवीत् ॥८॥ पिता यवीयानस्माकं क्षत्ता धर्मविदां वरः । पुत्रशोकाभिसंतप्तः किमाह धृतराष्ट्रजम् ॥९ ॥ किञ्च सर्वे नृपतयः सभायां ये समासते । उक्तवंतो यथातत्त्वं तद् ब्रूहि त्वं

थीं सो सब पाण्डवोंको सुनायीं ॥ १ ॥ बहुत समयतक आपसमें बातें करके बारम्बार गुप्त विचार किये, फिर श्रीकृष्णजी थक जानेके कारण विश्राम करनेके लिये अपने भवनमें चले गये ॥ २ ॥ कुछ देर पीछे सायंकालका समय हुआ और सूर्य अस्त होगया तब पाँचों पाण्डवोंने विराट आदि सब राजाओंको अपने २ स्थानको जानेकी आज्ञा दी और सायंकालकी सन्ध्या करके श्रीकृष्णमें मन लगा उनका ही ध्यान करने लगे और फिर दाशार्हवंशी श्रीकृष्णको बुलवाकर उनके साथ फिर युद्धके विषयमें गुप्त विचार करने लगे ३।४ राजा युधिष्ठिरने पूछा कि हे कमलदलनयन कृष्ण ! आपने हस्तिनापुरमें जाकर सभामें दुर्योधनसे क्या कहा था ? वह हमें सुनाना चाहिये ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण बोले, कि–मैंने हस्तिनापुरमें जाकर राजसभामें दुर्योधनसे न्याययुक्त, हितकारी तथा दोनों ओरका कल्याण करने वाली बात कही, परन्तु दुष्टबुद्धि दुर्योधनने मानी नहीं ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरने पूछा, कि–हे हृषीकेश ! जब दुष्टबुद्धि दुर्योधनने आपका कहना नहीं माना, तब कुरुओंमें वृद्ध भीष्मपितामहने डाह करनेवाले दुर्योधनसे क्या कहा ? ॥७॥ और हे महाभाग ! द्रोणाचार्यने दुर्योधनसे क्या कहा ? पिता धृतराष्ट्रने उससे क्या कहा और गांधारीने उससे क्या कहा, वह मुझे सुनाओ ॥ ८ ॥ और हमारे चचा धर्मको जानने वाले विदुरजीने, जो पुत्रोंके दुःखसे बड़े ही दुःखी रहते हैं उन्होंने दुर्योधनसे क्या कहा ? ॥९॥ तथा हे जनार्दन ! सभामें बैठे हुए सब राजाओंने दुर्यो-

जनार्दन ॥ १० ॥ उक्तवान् हि भवान् सर्वं वचनं कुरुमुख्ययोः । धार्त्त-राष्ट्रस्य तेषां हि वचनं कुरुसंसदि ॥११॥ कामलोभाभिभूतस्य मंदस्य प्राज्ञमानिनः । अप्रियं हृदये मह्यं तन्न तिष्ठति केशव ॥ १२ ॥ तेषां वाक्यानि गोविन्द श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो। यथा च नाभिपद्येत काल-स्तात तथा कुरु । भवान् हि नो गतिः कृष्ण भवान्नाथो भवान् गुरुः वासुदेव उवाच । शृणु राजन् यथा वाक्यमुक्तो राजा सुयोधनः । मध्ये कुरूणां राजेन्द्र सभायां तन्निबोध मे ॥ १४ ॥ मया विश्राविते वाक्ये जहास धृतराष्ट्रजः । अथ भीष्मः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् दुर्योधन निबोधेदं कुलार्थे यद् ब्रवीमि ते । तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल स्व-कुलस्य हितं कुरु ॥१६॥ मम तात पिता राजन् शान्तनुर्लोकविश्रुतः। तस्याहमेक एवासं पुत्रः पुत्रवतां वरः ॥ १७ ॥ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना द्वितीयः स्यात् कथं सुतः। एकं पुत्रमपुत्रं वै प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१८॥

धनसे क्या कहा, यह मुझे यथावत् सुनाइये ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! कुरु-श्रेष्ठ भीष्मजी और धृतराष्ट्र तथा अन्य सभासदोंने सभामें काम और लोभसे दबेहुए, बुद्धिहीन होकर भी बुद्धिमान्‌पनेका अभिमान रखनेवाले दुर्योधनसे उसको बुरी लगनेवाली जो बातें कहीं थी वह सब बातें आपने हमें स्पष्टरूपसे कह कर सुनादी हैं परन्तु वह बातें इस समय मेरे चित्त परसे हटगयी हैं, इसलिये हे विभु गोविन्द ! उन सब बातोंको मैं फिर सुनना चाहता हूँ. इस लिये हे तात कृष्ण ! जिस प्रकार आपका समय वृथा न जाय तिस प्रकार कहो, आप हमारे आधार, नाथ और गुरु हैं ॥ ११—१३ ॥ श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि–हे राजेन्द्र युधिष्ठिर ! कौरवोंकी सभामें राजा दुर्योधनसे जैसे वचन कहे गये हैं उनको तुम मुझसे सुनो और समझो ॥ १४ ॥ मुझे जो कुछ कहना था वह जब मैं दुर्योधनको सुना चुका तो वह हँसने लगा, इस पर भीष्मजी क्रोधमें भर कर उससे यों कहने लगे ॥१५॥ कि—हे दुर्योधन ! सुन, मैं तुझसे जो कुछ कहता हूँ सो अपने लिये नहीं कहता हूँ, किन्तु तेरे कुटुम्बभरके कल्याणके लिये कहता हूँ, हे राजसिंह तू उसको सुनकर अपने कुटुम्बका हित कर ॥१६॥ हे तात राजन् ! मेरे पिता राजा शन्तनु संसारमें प्रसिद्ध थे, उनके एक मैं ही उत्तम पुत्र था ॥१७॥ इस लिये उनके मनमें विचार उठा, कि—मेरा दूसरा पुत्र कैसे हो? क्योंकि–विद्वान् पुरुष एक पुत्रवालेको पुत्रहीनकी समान कहते हैं ॥ १८ ॥ इसलिए मेरा कुल कहीं नष्ट न होजाय?

न चोच्छेदं कुलं यायाद् विस्तीर्येत कथं यशः । तस्याहमीप्सितं बुद्ध्वा काली मातरमावहम् ॥ १९ ॥ प्रतिज्ञां दुष्करां कृत्वा पितुरर्थे कुलस्य च । अराजा चोर्ध्वरेताश्च यथा सुविदितं तव । प्रतीतो निवसाम्येष प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ २० ॥ तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रीमान् कुरुकुलोद्वहः । विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कनीयान्मम पार्थिव ॥ २१ ॥ स्वर्यातेऽहं पितरि वै स्वराज्ये संन्यवेशयम् । विचित्रवीर्यं राजानं भृत्यो भूत्वा ह्यधश्चरः ॥ २२ ॥ तस्याहं सदृशान् दारान् राजेन्द्र समुपाहरम् । जित्वा पार्थिवसंघातमपि ते बहुशः श्रुतम् ॥ २३ ॥ ततो रामेण समरे द्वन्द्वयुद्धमुपागमम् । स हि रामभयादेभिर्नागरैर्विप्रवासितः ॥ २४ ॥ दारेष्वतिसक्तश्च यक्ष्माणं समपद्यत । तदा त्वराजके राष्ट्रे न ववर्ष सुरेश्वरः। तदाभ्यधावन्मामेव प्रजाः क्षुद्भयपीडिताः २५

तथा मेरा यश संसारमें कैसे फैले ? इस बातका विचार करने लगे, मैंने अपने पिताकी इच्छाको जान लिया और मैं अपने पिता और कुलके हितके लिए आजन्म ब्रह्मचर्यकी कठिन प्रतिज्ञा करता हुआ माता सत्यवतीको अपने पिताके लिए लाया था, जिसके साथ मेरे पिताने विवाह कर लिया तथा मैं राज्यको त्याग कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके अब तक अपनी प्रतिज्ञा पर जमा हुआ हूँ और जो कुछ मिल जाता है उसमें ही सन्तोष मानकर इस राज्यमें रहता हूँ इस बातको तू भले प्रकार जानता है ॥ १९ ॥ २० ॥ हे राजा दुर्योधन ! उस सत्यवतीके धर्मात्मा, महाबाहु, कुरुके कुलको बढ़ानेवाला श्रीमान् विचित्रवीर्य नामका पुत्र हुआ जो मेरा छोटा भाई लगता था ॥ २१ ॥ मेरे पिताका स्वर्गवास होजाने पर मैंने विचित्रवीर्यको राजसिंहासन पर बिठलाया और मैं उसका सेवक बन कर राजसिंहासनके आगे खड़ा रहने लगा ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! जब उसके विवाहका समय आया तो मैं राजाओंके मण्डलको जीत कर उसके योग्य स्त्रियोंको हर लाया यह बात तूने अनेकों बार सुनी है ॥ २३ ॥ तदनन्तर मेरा परशुरामके साथ रणभूमिमें द्वन्द्वयुद्ध हुआ था, परन्तु उस समय विचित्रवीर्य परशुरामके भयसे नगरवासियोंके साथमें भाग गया था ॥ २४ ॥ स्त्रियोंके साथ अधिक भोग विलास करनेके कारण अन्तमें उसको क्षय रोग होगया था और इससे वह मर गया तब यह देश राजासे सूना होगया, वर्षा भी नहीं हुई तब भूखसे दुःख पाती हुई प्रजा दौड़ी हुई मेरे पास आकर मुझसे कहने लगी ॥ २५ ॥

प्रजा ऊचुः। उपक्षीणाः प्रजाः सर्वा राजा भव भवाय नः। ईतीः प्रणुद भद्रन्ते शान्तनोः कुलवर्द्धन ॥ २६ ॥ पीड्यन्ते ते प्रजाः सर्वा व्याधिभिर्भृशदारुणैः। अल्पावशिष्टा गांगेय ताः परित्रातुमर्हसि २७ व्याधीन् प्रणुद वीर त्वं प्रजा धर्मेण पालय। त्वयि जीवति मा राष्ट्रं विनाशमुपगच्छतु ॥२८॥ भीष्म उवाच। प्रजानां क्रोशतीनां वै नैवाक्षुभ्यत मे मनः। प्रतिज्ञां रक्षमाणस्य सद्वृत्तं स्मरतस्तथा। ततः पौरा महाराज माता काली च मे शुभा २९ भृत्य पुरोहिताचार्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः। मामूचुर्भृशसन्तप्ता भव राजेति सन्ततम् ॥३०॥ प्रतीपरक्षितं राष्ट्रं त्वां प्राप्य विनशिष्यति। स त्वमस्मद्धितार्थं वै राजा भव महामते ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः प्रांजलिर्भूत्वा दुःखितो भृशमातुरः। तेभ्यो न्यवेदयं तत्र प्रतिज्ञां पितृगौरवात् ॥३२॥ ऊर्ध्वरेता ह्यराजा च कुल-

प्रजाके लोगोंने प्रार्थना करी कि-हे शन्तनुके कुलकी वृद्धि करने वाले राजन्! सब प्रजा नष्ट हुई जाती है, इसलिये आप ऐसा उपाय करिये, कि-जिसमें हमारा कल्याण हो, वर्षा न होना आदि छः प्रकारकी ईतियोंको दूर करिये, आपका कल्याण हो ॥ २६ ॥ हे गङ्गाके पुत्र! आपकी यह प्रजा अतिदारुण व्याधियोंसे पीड़ा पारही है, जो थोड़ी सी बच रही है उसकी आपको रक्षा करनी चाहिये ॥ २७ ॥ हे वीर! तुम व्याधियोंका नाश करो और धर्मसे प्रजाका पालन करो, आपके जीवित रहते हुए इस प्रजाका नाश नहीं होना चाहिये ॥ २८ ॥ भीष्म जीने कहा, कि-हे दुर्योधन! ऐसा कह कर सब प्रजा रोने लगी तो भी मेरे मनको क्षोभ नहीं हुआ, क्योंकि-मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करता था और अपने सदाचारका स्मरण रखता था, हे महाराज,! नगरवासी, मेरी उत्तम माता सत्यवती, चाकर, पुरोहित, आचार्य और बड़े २ ब्राह्मण अति दुःखी मान कर मुझसे बारम्बार कहने लगे, कि-तुम राजा बन कर राज्यकी रक्षा करो ॥ २९-३० ॥ चिरकालसे प्रतीपवंशी राजाओंसे रक्षा कियाहुआ यह राज्य तुम्हारे हाथमें आकर नष्ट हुआ जाता है, इस कारण हे परमबुद्धिमान्! आप हमारे हितके लिये राजा बन जाइये ॥ ३१ ॥ उन्होंने इस प्रकार मुझसे कहा तब दोनों हाथ जोड़ अत्यन्त दुःखी तथा परम आतुर होकर अपने पिता का गौरव जतानेके लिये उनको अपनी प्रतिज्ञा सुनाते हुए मैंने कहा, कि-॥ ३२ ॥ मैं इस भरतकुलके लिये ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता हूँ और मैंने राज्यके अधिकारको त्याग दिया है, तिसमें भी आपके लिए

स्यार्थे पुनः पुनः। विशेषतस्त्वदर्थे च धुरि मा मां नियोजयः ॥ ३३ ॥ ततोऽहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मातरं समप्रसादयम्। नाम्ब शांतनुना जातः कौरवं वंशमुद्वहन् ॥३४॥ प्रतिज्ञां वितथां कुर्यामिति राजन् पुनः पुनः विशेषतस्त्वदर्थे वै प्रतिज्ञां कृतवानहम् ३५ अहं प्रेष्यश्च दासश्च तवाद्य सुतवत्सले। एवं तामनुनीयाहं मातरं जनमेव च ॥३६॥ अयाचं भ्रातृदारेषु तदा व्यासं महामुनिम्। सह मात्रा महाराज प्रसाद्य तमृषिं तदा ॥३७॥ अपत्यार्थं महाराज प्रसादं कृतवांश्च सः। त्रीन् स पुत्रानजनयत् तदा भरतसत्तम ॥ ३८ ॥ अन्धः करणहीनत्वान्न वै राजा पिता तव। राजा तु पाण्डुरभवन्महात्मा लोकविश्रुतः ॥३९॥ स राजा तस्य ते पुत्राः पितुर्दायाद्यहारिणः। मा तात कलहं कार्षी राज्यस्यार्धं प्रदीयताम् ॥४०॥ मयि जीवति राज्यं कः संप्रशासेत् पुमानिह। मावमंस्था वचो मह्यं शममिच्छामि वः सदा ॥ ४१ ॥ न विशेषोऽस्ति मे

मैंने विशेष कर राज्यके अधिकारको त्याग दिया है इस लिये तुम राज्यका जुआ मेरे गले पर न धरो ॥ ३३ ॥ तदनन्तर मैंने दोनों हाथ जोड़कर अपनी माताको प्रसन्न करते हुए कहा, कि-हे माता जी! मैं शान्तनुसे उत्पन्न हुआ उनका औरस पुत्र हूँ और कौरवकुल को उठाने वाला हूँ परन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा करली है उसको मैं मिथ्या नहीं करूँगा, हे राजन्! इस प्रकार मैंने वारम्वार अपनी मातासे कहा और फिर कहा, विशेष करके यह प्रतिज्ञा मैंने तुम्हारे ही लिये की है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे पुत्रके ऊपर प्रीति रखने वाली माताजी! इस समय मैं तुम्हारा एक सेवक हूँ, इस प्रकार माताको और प्रजाको समझा कर मैंने भाइयोंकी रानियोंके विषैं पुत्र उत्पन्न करनेके लिये महामुनि वेदव्यासजीको प्रसन्न किया, हे भरतसत्तम! महामुनि व्यासजीने भी उस ही समय प्रसन्न होकर तीन पुत्र उत्पन्न करदिये थे ॥ ३६-३८ ॥ उनमेंसे तेरा पिता अन्धा होनेके कारण राजा नहीं हो सका था, किन्तु जगत्प्रसिद्ध महात्मा पाण्डु राजा हुआ था ॥३९॥ इस कारण उसके पुत्र पाण्डव पिताके राज्यको पानेके अधिकारी हैं इस कारण हे तात! तू कलह न कर किन्तु राज्यका आधा भाग उनको देदे ॥ ४० ॥ मैं जब तक जीता हूँ तबतक यहाँ कौन पुरुष राज्य कर सकता है? मैं सदा तुम्हारा कल्याण चाहता हूँ, इस कारण तुझे मेरे वचनका अपमान नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥ हे राजपुत्र! मेरे लिये तुझमें और उनमें कुछ भेद नहीं है यही विचार तेरे पिताका, गांधारी

पुत्र त्वयि तेषु च पार्थिव । मतमेतत् पितुस्तुभ्यं गान्धार्या । विदुरस्य च ॥ ४२ ॥ श्रोतव्यं खलु वृद्धानां मामिशंकीर्वचोमम । नाशयिष्यसि मा सर्वमात्मानं पृथिवीं तथा ॥ ४३ ॥　　　　छ　　　　छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि भगवद्वाक्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

वासुदेव उवाच । भीष्मेणोक्ते ततो द्रोणो दुर्योधनमभाषत । मध्ये नृपाणां भद्रन्ते वचनं वचनक्षमः ॥१॥ द्रोण उवाच । प्रातीपः शांतनुस्तात कुलस्यार्थे यथास्थितः । यथा देवव्रतो भीष्मः कुलस्यार्थे स्थितोऽभवत् ॥ २ ॥ तथा पाण्डुर्नरपतिः सत्यसंधो जितेन्द्रियः । राजा कुरूणां धर्मात्मा सुव्रतः सुसमाहितः ॥३ ज्येष्ठाय राज्यमददू धृतराष्ट्राय धीमते । यवीयसे तदा क्षत्रे कुरूणां वंशवर्द्धनः ॥४ ततः सिंहासने राजन् स्थापयित्वैनमच्युतम् । वनं जगाम कौरव्यो भार्याभ्यां सहितो नृपः ॥५ नीचैः स्थित्वा तु विदुर उपास्ते स्म विनीतवत् । प्रेष्यवत् पुरुषव्याघ्रो बालव्यजनमुत्क्षिपन् ॥ ६ ॥ ततः । सर्वाः प्रजास्तात धृतराष्ट्रं

का और विदुरका भी है ॥ ४२ ॥ तुझे वृद्धोंका कहना मानना चाहिये तू मेरे कहनेपर संदेह न कर और तू अपने सब राज्यका तथा सकल पृथ्वीका नाश न कर ॥४३॥ एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त १४७

श्रीकृष्णजी कहते हैं, कि—इस प्रकार भीष्मजीके कह चुकने पर बोलनेकी शक्तिवाले द्रोणाचार्यजी दुर्योधनसे राजाओंके बीचमें कहने लगे, कि-तेरा कल्याण हो ॥१॥ हे तात ! प्रतीपके पुत्र राजा शान्तनु जिस प्रकार इस कुलकी रक्षाके लिये तत्पर हुए थे तथा भगवान् भीष्मपितामह भी इस समय जिस प्रकार कुलकी रक्षाके लिये तत्पर रहते हैं, तिसी प्रकार सत्यप्रतिज्ञा वाले, जितेन्द्रिय और सदाचारी कौरवोंके राजा महात्मा पाण्डु भी कुलके लिये भले प्रकार सावधान रहते थे ॥२॥३॥ राजा धृतराष्ट्र अन्धे होनेके कारण राज्यके अयोग्य थे और विदुर दासीसुत होनेके कारण राज्यके अयोग्य थे तोभी कुरुकुल की वृद्धि करने वाले राजा पाण्डुने बुद्धिमान् बड़े भाई धृतराष्ट्रको और छोटे भाई विदुरको राज्य सौंप दिया था ४ और हे राजन्! दृढ मनवाले धृतराष्ट्रको सिंहासन पर बैठाल कर अपनी दोनों रानियोंके साथ राजा पांडु वनमें चले गये ५ उस समय मनुष्योंमें सिंहसमान विदुर विनयवान् सेवककी समान राजसिंहासनके नीचे बैठ कर धृतराष्ट्रके ऊपर चँवरसे पवन डुलाया करते थे ॥ ६ ॥ इस प्रकार धृत-

जनेश्वरम् । अन्वपद्यन्त विधिवद्यथा पाण्डुं जनाधिपम् ॥७॥ विसृज्य धृतराष्ट्राय राज्यं स विदुराय च । चचार पृथिवीं पाण्डुः सर्वां परपुरञ्जयः ॥ ८ ॥ कोशसंवनने दाने भृत्यानाञ्चान्ववेक्षणे । भरणे चैव सर्वस्य विदुरः सत्यसंगरः ॥ ९ ॥ सन्धिविग्रहसंयुक्तो राज्ञां संवाहनक्रियाः । अवैक्षत महातेजा भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १० ॥ सिंहासनस्थो नृपतिर्धृतराष्ट्रो महाबलः । अन्वास्यमानः सततं विदुरेण महात्मना ११ कथं तस्य कुले जातः कुलभेदं व्यवस्यसि । सम्भूय भ्रातृभिः सार्धं भुङ्क्ष्व भोगान् जनाधिप ॥ १२ ॥ ब्रवीम्यहं न कार्पण्यान् नार्थहेतोः कथञ्चन । भीष्मेण दत्तमिच्छामि न त्वया राजसत्तम ॥ १३ ॥ नाहं त्वत्तोऽभिकांक्षिष्ये वृत्त्युपायं जनाधिप । यतो भीष्मस्ततो द्रोणो यद्भीष्मस्त्वाह तद् कुरु ॥ १४ ॥ दीयतां पाण्डुपुत्रेभ्यो राज्यार्धमरिकर्शन । समामाचार्यकं तात तव तेषाञ्च मे सदा ॥ १५ ॥ अश्वत्थामा

राष्ट्रको राजसिंहासन पर बैठानेके अनन्तर सब प्रजा जैसे राजा पांडुकी सेवा करती थी तैसे ही राजा धृतराष्ट्रकी सेवा करनेलगी ७ शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाला महात्मा राजा पांडु धृतराष्ट्र और विदुरको इसप्रकार राज्य सौंप कर सकल भूमण्डल पर विचरनेलगा।८ सत्य प्रतिज्ञा वाले विदुरको धनका संग्रह करने पर, दान देने पर सब नौकरोंकी देखभाल पर तथा सबका पोषण करनेके काम पर नियत किया था॥९॥ और शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले महातेजस्वी भीष्मपितामहको राजाओंसे सन्धिविग्रह करने तथा राजाओंकी धनादि देने लेनेकी देखभालका काम सौंपागया था ॥१०॥ महात्मा विदुरजी सदा सिंहासन पर बैठे हुए महाबली राजा धृतराष्ट्रकी सेवा किया करते थे ॥ ११ ॥ उस धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न हुआ तू कुलमें भेद डालनेका उद्योग क्यों कररहा है ? हे राजन् ! तू भाइयोंके साथ मेल रखकर उनके साथ भोगोंको भोग ॥ १२ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ सो तुझसे भयसे नहीं कहता हूँ, तथा धनके लिये भी नहीं कहता हूँ, मैं तो भीष्मजीका ही दियाहुआ लेना चाहता हूँ मुझे तुझसे धन आदि लेनेकी इच्छा नहीं है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मैं तुझसे आजीविकाके उपायकी आशा नहीं रखता हूँ, क्योंकि–इस बातको तुम समझे रहना, कि-जहाँ भीष्म हैं तहाँ द्रोण हैं, इसलिये भीष्मपितामह तुझसे जैसा कहते हैं तैसा कर हे शत्रुओंका नाश करने वाले ! तू पाण्डुके पुत्रोंको आधा राज्य दे दे, हे तात !

यथा मह्यं तथा श्वेतहयो मम । बहुना किं प्रलापेन यतो धर्म्मस्ततो जयः ॥ १६ ॥ वासुदेव उवाच । एवमुक्ते महाराज द्रोणेनामिततेजसा । व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसंगरः । पितुर्वदनमन्वीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित् ॥ १७ ॥ विदुर उवाच । देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषतः । प्रनष्टः कौरवो वंशस्त्वयाऽयं पुनरुद्धृतः । तन्मे विलपमानस्य वचनं समुपेक्षसे । कोऽयं दुर्योधनो नाम कुलेऽस्मिन् कुलपांसनः ॥ १९ ॥ यस्य लोभाभिभूतस्य मतिं समनुवर्त्तसे । अनार्यस्याकृतज्ञस्य लोभेन हृतचेतसः ॥ २० ॥ अतिक्रामति यः शास्त्रं पितुर्धर्म्मार्थदर्शिनः । एते नश्यन्ति कुरवो दुर्योधनकृतेन वै ॥ २१ ॥ यथा ते न प्रणश्येयुर्महाराज तथा कुरु । माञ्चैव धृतराष्ट्रञ्च पूर्वमेव महामते ॥ २२ ॥ चित्रकार इवालेख्यं कृत्वा स्थापितवानसि । प्रजापतिः

मैं सदा उनका और तेरा एक समान ही गुरु हूँ, मेरे लिये कुछ भेद नहीं है ॥ १५ ॥ मैं जितना प्रेम अश्वत्थामाके ऊपर करता हूँ उतना ही प्रेम मैं अर्जुनके ऊपर भी करता हूँ, मैं अधिक बकवाद नहीं करना चाहता, जिस पक्षमें धर्म है उस ही पक्षमें विजय है ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण कहते हैं, कि-हे महाराज ! अपारतेजस्वी द्रोणाचार्यने इस प्रकार कहा तब सत्यप्रतिज्ञा करने और धर्मको जाननेवाले विदुरजी पीठ फेरकर भीष्मपितामहके मुखकी ओर देखकर कहने लगे, ।१७। विदुरजी बोले, कि-हे भीष्मपितामह ! अब मैं जो कुछ कहता हूँ उसको सुनो, कौरवोंका वंश नष्ट होगया था, उसका तुमने फिर उद्धार किया है ॥ १८ ॥ इस बातके लिये मैं विलाप कररहा हूँ, परन्तु तुम उसकी उपेक्षा ही किया करते हो, कुलको कलंक लगानेवाले दुर्योधनका अब इस कुलके साथ क्या सम्बन्ध है ? १९ तुम जिसकी बुद्धिके ऊपर चलते हो वह तो लोभके वशमें होरहा है, अनार्य हो गया है, कृतघ्नी और उसका मन लोभसे नष्टसा होगया है ॥ २० ॥ यह धर्मका तथा अर्थका विचार करने वाले पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, इस कारण दुर्योधनके कामसे ये कौरव नष्ट ही होजायँगे ॥ २१ ॥ परन्तु हे महाराज ! तुम ऐसा करो, कि-जिसमें इन सब कौरवोंका नाश न हो, हे परमबुद्धिमान् भीष्मजी ! तुमने मुझे और राजा धृतराष्ट्रको जैसे चित्रकार चित्र बनाकर एक स्थान पर टाँग देता है, तैसे ही राजसिंहासन पर स्थापन कर दिया है और जैसे प्रजा प्रजाको रचकर उसका नाश करता है तैसे ही तुम

प्रजाः सृष्ट्वा यथा संहरते तथा ॥ २३ ॥ नोपेक्षस्व महाबाहो पश्यमानः कुलक्षयम् । अयं तेऽद्य मतिर्नष्टा विनाशे प्रत्युपस्थिते२४वनं गच्छ मया सार्धं धृतराष्ट्रेण चैव हा। बद्ध्वा वा निकृतिप्रज्ञं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम्२५ शाधीदं राज्यमद्याशु पाण्डवैरभिरक्षितम् । प्रसीद राजशार्दूल विनाशो दृश्यते महान् ॥ २६ ॥ पाण्डवानां कुरूणाञ्च राज्ञाममित-तेजसाम् । विररामैव मुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः । प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २७ ॥ ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता । दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात् ॥ २८ ॥ ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये । शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवापराधं पापस्य सामात्यपरि-च्छदस्य ॥ २९ ॥ राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोज्यं क्रमागतो नः कुलधर्म्म एषः । त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मन् राज्यं कुरूणामनयाद्विहंसि ॥३०॥

भी हमें राजसिंहासन पर बैठाल कर हमारा संहार करोगे, ऐसा प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे महाबाहु भीष्मजी ! तुम कुलका नाश होतेहुए देखकर उसकी उपेक्षा न करो, परन्तु मुझे प्रतीत होता है, कि-कौरवोंका नाश समीप ही आलगा है, इसकारण इस समय तुम्हारी बुद्धि भी नष्ट होगयी है ॥ २४ ॥ या तो आप मेरे और धृतराष्ट्र के साथ वनको चलिये, नहीं तो कपट करनेमें चतुर और दुष्ट बुद्धि वाले दुर्योधनको कैद करके ॥ २५ ॥ शीघ्र ही पाण्डवोंसे रक्षा करे हुए इस राज्यको इसी समय रक्षा करिये, हे राजसिंह ! आप कृपा करिये क्योंकि-मुझे ऐसा दीख रहा है, कि-महातेजस्वी कौरव पाण्डवोंका बड़ाभारी संहार होगा, ऐसा कहकर वारम्वार श्वास लेते हुए तथा जो शोक कर रहे थे और साँसें खेंचरहे थे ऐसे दुःखित मन वाले विदुरजी बोलते २ चुप होगये ॥ २६ ॥ २७ ॥ फिर राजा सुबलकी पुत्री गान्धारी कुलका नाश होनेके भयसे क्रोधमें भर कर पापबुद्धिवाले क्रूर दुर्योधनसे राजाओंके सामने धर्म और नीति की बात कहनेलगी कि-॥ २८ ॥ इस सभामें जो राजे ब्राह्मण और दूसरे सभासद् इकट्ठेहुए हैं वह सब सुनें मैं तेरे मन्त्रियोंके दूसरे अनु-चरोंके तथा तुझ पापीके अपराधोंको गिनाती हूँ ॥२९॥ इस कौरवों के राज्यको कौरव राजे क्रमसे भोगते आये हैं, और यह हमारे कुल का परम्परागत धर्म है, परन्तु हे पाप बुद्धि वाले महाक्रूरकर्मा दुर्योधन ! तू अन्यायसे कौरवोंके राज्यका नाश करेगा ॥ ३० ॥ इस

राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषी तस्यानुजो विदुरो दीर्घदर्शी। एतावतिक्रम्य कथं नृप त्वं दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात् ॥२१॥ राजा च क्षत्ता च महानुभावौ भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम्। अयन्तु धर्मज्ञतया महात्मा न कामयेद्यो नृवरो नदीजः ॥ २२ ॥ राज्यन्तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यं तस्याद्य पुत्राः प्रभवन्ति नान्ये। राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि ॥२३॥ यद्वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा देवव्रतः सत्यसंधो मनीषी। सर्वं तदस्माभिरहत्य कार्य्यं राज्यं स्वधर्मान् परिपालयद्भिः ॥ २४ ॥ अनुज्ञया चाथ महाव्रतस्य ब्रूयान्नृपोऽयं विदुरस्तथैव। कार्यं भवेत्तत् सुहृद्भिर्नियोज्यं धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम् २५ न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः। प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव ॥ २६ ॥ छ छ

राज्यमें बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र और उनके छोटे भाई दीर्घदृष्टि वाले विदुरजी ये दोनों जने राजसिंहासन पर विराजे हुए हैं हे राजा दुर्योधन! तू इन दोनोंका अपमान करके मूर्खतासे इस समय किस प्रकार राज्य लेनेकी इच्छा करता है ? ॥ २१ ॥ विदुर और राजा धृतराष्ट्र, यह दोनों महानुभाव भी जब भीष्मपितामहके सामने राज्यके विषयमें पराधीन हैं (तो तू कौन है ?), गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मपितामह धर्मको जानते हैं, इस कारण वह अपनी प्रतिज्ञाको पालनेके लिये राज्यकी इच्छा नहीं रखते हैं ॥२२॥ जिसको कोईभी नहीं छीनसकता ऐसा यह राज्य महात्मा राजा पांडुका है और उनके पुत्र इस राज्यको लेसकते हैं, दूसरा कोई नहीं लेसकता। पुत्र और पौत्रोंको पहुँचनेवाला बाप दादाओंसे चलाआता हुआ यह सब राज्य पाण्डवोंका है ॥२३॥ इस लिये कौरवोंमें मुख्य देवव्रत, सत्यप्रतिज्ञवाले, बुद्धिमान् महात्मा भीष्मपितामह जो बात हमसे कहते हैं उस बातका जरा भी खंडन न करके हमें मानलेना चाहिये और अपने धर्मका पालन करके हमें पाण्डवोंको राज्य देदेना चाहिये ॥ २४ ॥ देवव्रत भीष्मपितामहकी आज्ञासे राजा धृतराष्ट्र और विदुरजी जो काम करनेको कहते हैं वह काम भी हमारे सम्बन्धियोंको धर्मकी ओर ध्यान देकर चिरकालतक करना चाहिये ॥ २५ ॥ इसलिये राजा धृतराष्ट्रके कहनेसे और भीष्म पितामहके आग्रहसे धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर न्यायसे मिले हुए इस कौरवोंके राज्यका अवश्य ही शासन करें ॥ २६ ॥ एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४८ ॥ छ छ छ

वासुदेव उवाच । एवमुक्ते तु गान्धार्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः। दुर्योधनमुवाचेदं राजमध्ये जनाधिप ॥ १ ॥ दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक । तथा तत् कुरु भद्रन्ते यद्यस्ति पितृगौरवम् ॥ २ ॥ सोमः प्रजापतिः पूर्वं कुरूणां वंशवर्धनः । सोमाद्बभूव षष्ठोऽयं ययातिर्नहुषात्मजः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च राजर्षिसत्तमाः । तेषां यदुर्महातेजा ज्येष्ठः समभवत् प्रभुः ॥४॥ पूरुर्यवीयांश्च ततो योऽस्माकं वंशवर्धनः । शर्मिष्ठायां संप्रसूतो दुहिता वृषपर्वणः ॥ ५ ॥ यदुश्च भरतश्रेष्ठ देवयान्याः सुतोऽभवत् । दौहित्रस्तात शुक्रस्य काव्यस्यामिततेजसः ॥ ६ ॥ यादवानां कुलकरो बलवान् वीर्यसम्मतः । अवमेने स तु क्षत्रं दर्पपूर्णः सुमन्दधीः ॥ ७ ॥ न चातिष्ठत् पितुः शास्त्रे बलदर्पविमोहितः । अवमेने च पितरं भ्रातॄंश्चाप्यपराजितः ॥ ८ ॥ पृथिव्यां चतुरन्तायां यदुरेवाभवद्बली । वशे कृत्वा स नृपतीन् न्यवसन्नागसाह्वये ॥ ९ ॥ तं पिता परमक्रुद्धो ययातिर्नहुषात्मजः । शशाप

श्रीकृष्णने कहा, कि–हे राजन् ! इस प्रकार गान्धारी कह चुकी तब धृतराष्ट्रने सब राजाओंके बीचमें दुर्योधनसे इसप्रकार कहा, कि १ हे बेटा दुर्योधन ! यदि तू अपने पिताको गौरवकी दृष्टिसे देखता हो तो मैं तुझसे जो कुछ कहता हूँ उसपर ध्यान दे और उसके अनुसार ही वर्ताव कर तो तेरा कल्याण होगा ॥२॥ पहिले कौरववंशकी वृद्धि करने वाला एक सोम नामका प्रजापति था, इस सोमसे छठा पुरुष ययाति नामका राजा हुआ, यह ययाति नहुषका पुत्र था ॥ ३ ॥ इस के पाँच पुत्र हुए जो बड़े राजर्षि थे, उनमें यदु महातेजस्वी, समर्थ और बड़ा था ॥ ४ ॥ पुरु सबसे छोटा था, जो कि–हमारे वंशको बढ़ानेवाला हुआ है, यह वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठासे उत्पन्न हुआ था५ हे भरतसत्तम ! यदु देवयानीका पुत्र और परमतेजस्वी कवि शुक्राचार्यका धेवता था ॥६॥ यादवोंके वंशको बढ़ानेवाला यह यदु बली, पराक्रमी, गर्वीला, और महामूढ था, तथा क्षत्रियोंका अपमान किया करता था ॥ ७ ॥ किसीसे न दबने वाला वह कुमार बलसे और गर्व से मोहित होकर पिताकी आज्ञामें नहीं रहता था, किन्तु वह पिता का और भाइयोंका अपमान करता था ॥ ८ ॥ इस चार खूँट वाली भूमि पर राजा यदु ही बलवान् था, वह सब क्षत्रियोंको अपने वशमें करके हस्तिनापुरमें रहने लगा॥९॥नहुषका पुत्र राजा ययाति जो उस का पिता था वह अपने पुत्रके ऊपर बड़ा कुपित हुआ और हे बेटा!

पुत्रं गान्धारे राज्याच्चापि व्यरोपयत् ॥१०॥ ये चैनमन्ववर्त्तन्त भ्रातरो बलदर्पिताः। शशाप तानपि क्रुद्धो ययातिस्तनयानथ ॥ ११ ॥ यवीयांसं ततः पूरुं पुत्रं स्ववशवर्त्तिनम्। राज्ये निवेशयामास विधेयं नृपसत्तमः ॥ १२ ॥ एवं ज्येष्ठोऽप्यथोत्सिक्तो न राज्यमभिजायते। यवीयांसोऽपि जायन्ते राज्यं वृद्धोपसेवया ॥ १३ ॥ तथैव सर्वधर्मज्ञः पितुर्मम पितामहः। प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १४ ॥ तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः। त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्रा देवकल्पा यशस्विनः ॥ १५ ॥ देवापिरभवज्ज्येष्ठो बाह्लीकस्तदनन्तरम्। तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान् मे पितामहः ॥ १६ ॥ देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः। धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः ॥ १७ ॥ पौरजानपदानां च सम्मतः साधुसत्कृतः। सर्वेषां बालवृद्धानां देवापिर्हृदयंगमः ॥ १८ ॥ वदान्यः सत्यसन्धश्च सर्वभूतहिते रतः। वर्त्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानां तथैव च ॥१९॥

उसने अपने पुत्रको शाप दिया और उसको राजसिंहासन परसे भी उतार दिया ॥ १० ॥ और जो भाई बलका घमण्ड करके उसका पक्ष लेते थे उन पुत्रोंको भी राजा ययातिने कोपमें भर कर शाप दिया॥११॥ और फिर राजा ययातिने अपना कहना माननेवाले तथा अपना काम करने वाले पुरु नामके छोटे पुत्रको राजसिंहासनपर बैठा दिया ॥ १२ ॥ इस लिये बड़ा पुत्र भी यदि अभिमानी हो तो राज्यको नहीं पाता है। किन्तु छोटे पुत्र भी बड़ोंकी सेवा करनेसे राज्यको पा जाते हैं ॥ १३ ॥ ऐसे ही मेरे प्रपितामह राजा प्रतीप भी सकल धर्मोंको जानने वाले और परम प्रसिद्ध थे ॥ १४ ॥ धर्मके अनुसार राज्य करने वाले और राजाओंमें सिंहसमान उन पराक्रमी राजा प्रतीपके देवताओंकी समान तीन यशस्वी पुत्र थे ॥ १५ ॥ सबसे बड़ेका नाम देवापी था, उससे छोटा बाह्लीक था और तीसरे पुत्रका नाम शान्तनु था, हे तात ! शान्तनु धैर्यवान् और मेरा पितामह था ॥ १६ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ राजा देवापि बड़ा तेजस्वी धर्मात्मा सत्यवादी, पिताकी सेवा करनेमें तत्पर, नगरनिवासियोंमें और देशके लोगोंमें प्रतिष्ठा तथा महात्माओंमें सत्कार पाया हुआ और सब बालवृद्धोंके चित्तोंको आनन्द देनेवाला था परन्तु उसमें दोष एक यह था कि-उसके शरीरमें कोढ़ था ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसके सिवाय वह उदार, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला सब प्राणियोंके हितमें प्रीति रखने वाला तथा पिताका और ब्राह्मणोंकी आज्ञामें रहनेवाला था ॥ १९ ॥

बाह्लीकस्य प्रियो भ्राता शान्तनोश्च महात्मनः। सौभ्रात्रञ्च परं तेषां सहितानां महात्मनाम् ॥२०॥ अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः। सम्भारानभिषेकार्थं कारयामास शास्त्रतः ॥ २१ ॥ कारयामास सर्वाणि मंगलार्थानि चै विभुः। तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौरजानपदैः सह ॥२२॥ सर्वे निवारयामासुर्देवापेरभिषेचनम्। स तच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकनिवारणम्। अश्रुकण्ठोऽभवद्राजा पर्यशोचत चात्मजम् ॥ २३ ॥ एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च सोऽभवत्। प्रियः प्रजानामपि संस्त्वग्दोषेण प्रदूषितः ॥ २४ ॥ हीनांगं पृथिवीपालं नाभिनन्दन्ति देवताः। इति कृत्वा नृपश्रेष्ठं प्रत्यषेधन् द्विजर्षभाः ॥२५॥ ततः प्रव्यथितांगोऽसौ पुत्रशोकसमन्वितः निवारितं नृपं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ।२६। बाह्लीको मातुलकुलं त्यक्त्वा राज्यं समाश्रितः। पितृभ्रातॄन् परित्यज्य प्राप्तवान् परमर्द्धिमत्२७बाह्लीकेन त्वनुज्ञातः शान्तनुर्लोकविश्रुतः। पितर्युपरते राजन् राजा राज्यमकारयत्२८तथैवाहं मतिमता परिचिन्त्येह

महात्मा बाह्लीक शान्तनुका प्रीतिपात्र भाई था और उन तीनों महात्माओंमें उत्तम प्रकारका भ्रातृभाव था ॥ २० ॥ कितना ही समय बीतजाने पर महाराज प्रतीप बूढ़े होगये तब उन्होंने देवापीका शास्त्र की विधिसे अभिषेक करनेके लिये सब सामग्रियें तयार करायीं और सब माङ्गलिक पदार्थ भी तयार कराये, परंतु उस समय सब वृद्ध ब्राह्मणोंने तथा नगरनिवासियोंने एकमत होकर देवापीका राज्याभिषेक करनेसे निषेध किया, राजा प्रतीप पुत्रका राज्याभिषेक होनेमें बाधाको सुनकर नेत्रोंमें आँसू भरलाया और पुत्रके लिये शोक करने लगा ॥२१–२३॥ इस प्रकार राजा देवापी यद्यपि उदार, धर्मज्ञ, सत्य प्रतिज्ञा वाला और प्रजाका प्रेमपात्र था तो भी कुष्ठरोगके कारणसे राजसिंहासनके लिये अयोग्य मानागया था ॥ २४ ॥ देवता भी हीन अङ्गवाले राजाकी सराहना नहीं करते हैं, ऐसा विचार कर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने पुत्रका राज्याभिषेक करनेसे महाराजको रोका था ॥ २५ ॥ राजा प्रतीपका पुत्रके लिये होने वाले शोकके कारणसे शरीरमें सन्ताप होने लगा, देवापी अपने पिताको अपने राज्याभिषेकके लिये रोका हुआ देखकर वनमें चला गया ॥२६॥ उससे छोटा भाई राजा बाल्हीक भी परम समृद्धि वाले राज्यको, पिताको और भाइयोंको त्याग मामाके आश्रयमें जाकर रहने लगा ॥ २७ ॥ और हे राजन्! पिताके मरजाने पर बाल्हीककी आज्ञासे लोकमें प्रसिद्ध राजा शान्तनु राज्य करने

पांडुना ज्येष्ठः प्रभ्रंशितो राज्याद्धीनांग इति भारत २९ पांडुस्तु राज्यं संप्राप्तः कनीयानपि सन्नृपः। विनाशे तस्य पुत्राणामिदं राज्यमरिंदम ३० मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि। अराजपुत्रो ह्यस्वामी परस्वं हर्तुमिच्छसि ॥ ३१ ॥ युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा न्यायागतं राज्यमिदञ्च तस्य। स कौरवस्यास्य कुलस्य भर्त्ता प्रशासिता चैव महानुभावः ॥३२॥ स सत्यसंधः स तथाऽप्रमत्तः शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः॥ प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्त्ता ॥ ३३ ॥ क्षमा तितिक्षा दम आर्जवञ्च सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः। भूतानुकम्पा ह्यनुशासनञ्च युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्तः ॥ ३४ ॥ अराजपुत्रस्त्वमनार्य्यवृत्तो लुब्धः सदा बन्धुषु पापबुद्धिः। क्रमागतं राज्यमिदं परेषां हर्तुं कथं शक्ष्यसि दुर्विनीत ॥ ३५ ॥ प्रयच्छ राज्या-

---

लगे ॥ २८ ॥ हे भरतवंशी दुर्योधन! बुद्धिमान् पांडुने भी ऐसा ही विचार करके इस राज्यको मुझे सौंप दिया था, मैं बड़ा था तो भी नेत्रोंसे हीन होनेके कारण राजसिंहासन पानेका अधिकार नहीं था२९ और राजा पांडु मुझसे छोटा था तोभी उसको यह राज्य मिलगया था, इसलिये हे शत्रुदमन! उसके मरणके अनन्तर यह राज्य उसके पुत्रों का ही मानाजाता है ॥ ३० ॥ मैं राज्यका भाग लेनेका अधिकारी नहीं हूँ तो भी तू किसप्रकार राज्य लेना चाहता है? तू न राजाका पुत्र ही है और न राज्यका स्वामी ही है तो भी हे बेटा! तू दूसरेका राज्य लेनेकी इच्छा क्यों करता है? ॥ ३१ ॥ महात्मा युधिष्ठिर तो इसको पानेका अधिकारी राजपुत्र है, इस कारण यह राज्य न्यायके अनुसार उसको ही मिलना चाहिये,और वह महाप्रतापी पुरुष इस कौरवकुलका पोषण करनेवाला और शासन करनेवाला,है३२ सत्यप्रतिज्ञ सावधान रहनेवाला भाइयोंका कहना माननेवाला और सत्पुरुष है,प्रजाओंका प्रीतिपात्र,संबन्धियोंके ऊपर दया करनेवाला,जितेन्द्रिय और साधुपुरुषोंका पोषण करनेवाला है३३ क्षमा, तितिक्षा, दम, सरलता, सत्यवादीपना, शास्त्रका अभ्यास, सावधानी,सब प्राणियोंके ऊपर दया और सबोंको हितकारी उपदेश देना यह राजाके सब गुण युधिष्ठिरमें हैं ॥ ३४ ॥ अरे विनयहीन! तू नीच पुरुषोंकेसे आचरण करता है, लोभी और कुटुम्बियोंके ऊपर सदा पापबुद्धि रखनेवाला है तथा राजाका पुत्र भी नहीं है, इसलिये! परम्परासे आतेहुए दूसरोंके राज्यको तू कैसे छीनसकेगा? ॥ ३५ ॥ हे राजन्! यदि तुझे अपने भाइयोंके साथ कुछ

धर्मपेतमोहः खवाहनं त्वं सपरिच्छदश्च । ततोऽवशेषं तव जीवितस्य सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र ॥ ३६ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्य-कथन एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

वासुदेव उवाच । एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च । गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न वै मन्दोऽन्वबुध्यत ॥ १ ॥ अवधूयोत्थितो मन्दः क्रोध-संरक्तलोचनः । अन्वद्रवन्त तं पश्चात् राजानस्त्यक्तजीविताः ॥ २ ॥ आज्ञापयच्च राज्ञस्तान् पार्थिवान् नष्टचेतसः । प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥३॥ ततस्ते पृथिवीपालाः प्रययुः सहसैनिकाः । भीष्मं सेनापतिं कृत्वा संहृष्टाः कालचोदिताः ॥ ४ ॥ अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणां समागताः । तासां प्रमुखतो भीष्मस्तालकेतुर्व्यरोचत ॥ ५ ॥ यदत्र युक्तं प्राप्तञ्च तद्विधत्स्व विशाम्पते । उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च ॥६॥ गान्धार्या धृतराष्ट्रेण समक्षं मम भारत । एतत्ते कथितं राजन् यद्वृत्तं कुरुसंसदि ॥ ७ ॥ साम्यमादौ प्रयुक्तं मे राजन् सौभ्रात्र-

---

दितो जीवित रहनेकी इच्छा हो तो तू मोहको छोड़कर वाहन और दूसरी सामग्रियों सहित राज्यका आधा भाग पाण्डुके पुत्रोंको देदे ३६

एकसौ उञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४९ ॥ छ छ

श्रीकृष्णजी कहते हैं, कि—इस प्रकार भीष्म, द्रोण, विदुर गान्धारी तथा धृतराष्ट्रने समझाया तो भी मूर्ख दुर्योधनने नहीं माना ॥ ११ ॥ परन्तु उन सबोंके वचनोंका तिरस्कार करके क्रोधसे लाल २ नेत्र कर तहाँसे उठ कर चलने लगा, उस समय मरनेको तयार हुए राजे भी उसके पीछे २ गये ॥ २ ॥ दुर्योधनने अपने राजभवनमें जाकर अपने पीछे आये हुए चेतनाशून्य राजाओंसे वारंवार कहा कि—आज पुष्य नक्षत्र है इस लिये तुम सब कुरुक्षेत्रमें जाओ ॥ ३ ॥ दुर्योधनके कहनेसे कालके प्रेरणा किये हुए वह सब राजे अपनी २ सेनाके साथ भीष्म-पितामहको सेनापति बना कर लड़नेके लिये कुरुक्षेत्रकी ओरको गये हैं ॥ ४ ॥ कौरवोंकी ओरसे ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई है और उन सब सेनाओंके जुटाने पर जिनकी ध्वजामें तालका चिन्ह है ऐसे भीष्मपितामह शोभा पा रहे हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अब इस समय तुम्हें जो काम करना उचित मालूम हो उसको करो हे भरतवंशी राजन् युधिष्ठिर ! भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर, गांधारी और धृतराष्ट्रने मेरे सामने जो वाक्य कहे थे और कौरवोंकी सभामें जो वृत्तान्त हुआ था

मिच्छता । अभेदायास्य वंशस्य प्रजानां च विवृद्धये ॥ ८ ॥ पुनर्भेदश्च मे युक्तो यदा साम न गृह्यते । कर्मानुकीर्तनञ्चैव देवमानुषसंहितम् ९ यदा नाद्रियते वाक्यं सामपूर्वं सुयोधनः । तदा मया समानीय भेदिताः सर्वपार्थिवाः ॥१०॥ अद्भुतानि च घोराणि दारुणानि च भारत । अमानुषाणि कर्माणि दर्शितानि मया विभो ॥ ११ ॥ निर्भर्त्सयित्वा राज्ञस्तांस्तृणीकृत्य सुयोधनम् । राधेयं भीषयित्वा च सौबलञ्च पुनः पुनः १२ द्यूनते धार्तराष्ट्राणां निन्दां कृत्वा तथा पुनः । भेदयित्वा नृपान् सर्वान् वाग्भिर्मन्त्रेण चासकृत्॥१३॥पुनः सामाभिसंयुक्तं सम्प्रदानमथाब्रुवम् । अभेदात् कुरुवंशस्य कार्ययोगात्तथैव च ॥ १४ ॥ ते शूरा धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य विदुरस्य च ॥तिष्ठेयुः पाण्डवाः सर्वे हित्वा मानमधश्चराः१५ प्रयच्छन्तु च ते राज्यमनीशास्ते भवन्तु च । यथाह राजा गांगेयो विदु-

---

वह हे राजन् ! मैंने तुम्हें सुना दिया ॥६॥७॥ हे राजन ! मैंने आरम्भमें भाइयों २ में प्रेम करानेकी इच्छासे तथा कौरववंशमें भेद न पड़े इसके लिये तथा प्रजाकी वृद्धिके लिये सामका प्रयोग किया था ॥८॥ परन्तु जब वह समझानेसे नहीं समझे तब मैंने कर्णसे मिल कर भेदका उपाय आरम्भ किया और उसमें तुम्हारे दैवी तथा मानुषी सब कर्म भी उससे कहे थे ॥९॥ जब दुर्योधनने मेरी साम (शान्ति) की बात नहीं मानी तब मैंने सब राजाओंको इकट्ठे करके उनको तोड़नेका उपाय भी किया था तथा हे समर्थ राजन ! भेदके उपाय दिखाते समय मैंने सब राजाओंको भयंकर दारुण और अद्भुत तुम्हारे अमानुषी कर्म भी सुनाये थे ॥ १० ॥ ११ ॥ ऐसा करनेके अनन्तर सब राजाओंका तिरस्कार किया था, दुर्योधनको तिनकेकी समान कर डाला था, कर्ण तथा शकुनिको बारम्बार भय दिखाया था ॥ १२ ॥ और फिर जुआ खेलनेके लिये दुर्योधन आदिकी बारम्बार निन्दा करके बातचीतोंसे तथा छुपे विचारोंसे सब राजाओंके मनमें कौरवोंकी ओरसे भेद डाला था ॥ १३ ॥ तथा फिर कुरुवंशमें भेद न पड़े और विचारा हुआ काम पूरा हो जाय इसके लिये सामके साथ दामके वचन भी कहे थे ॥१४॥ दामके वचन कहते समय दुर्योधनसे कहा, कि-युधिष्ठिर आदि सब वीर पाण्डव अभिमानको त्याग कर धृतराष्ट्र, विदुर और भीष्मजीके सिंहासनके नीचे खड़े रहेंगे ॥ १५ ॥ और राज्य तुम्हें सौंप देंगे तथा स्वयं तुम्हारे सेवक बन कर रहेंगे, इस लिये राजा धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह और विदुरजीने जो तुमसे हितकी बात कही है, तू इसके

रर्थं हितं तव ॥ १६ ॥ सर्वं भवतु ते राज्यं पञ्च ग्रामान विसर्जय।
अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम ॥ १७ ॥ एवमुक्तोऽपि दुष्टात्मा
नैव भागं व्यमुञ्चत। दण्डञ्चतुर्थं पश्यामि तेषु पापेषु नान्यथा ॥ १८ ॥
निर्याताश्च विनाशाय कुरुक्षेत्रं नराधिपाः। एतत्ते कथितं राजन् यद्
वृत्तं कुरुसंसदि ॥ १९ ॥ न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव।
विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि भगवद्यानपर्वणि कृष्ण-
वाक्ये पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

समाप्तञ्च भगवद्यान पर्व ॥

॥ अथ सैन्यनिर्याणपर्व ॥

वैशम्पायन उवाच। जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
भ्रातॄनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह ॥ १ ॥ श्रुतं भवद्भिर्यद् वृत्तं
सभायां कुरुसंसदि केशवस्यापि यद्वाक्यं तत् सर्वमवधारितम् ॥ २ ॥
तस्मात् सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः। अक्षौहिण्यश्च सप्तैताः
समेता विजयाय वै॥३॥ तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान्निबोधत।

अनुसार ही काम कर ॥ १६ ॥ सब राज्य भले ही तेरे पास रहे, परंतु
तू पाण्डवोंको केवल पाँच ग्राम देदे हे महाराज ! तेरे पिताको अवश्य
ही पाण्डवोंका भरण पोषण करना चाहिये ॥१७॥ इस प्रकार समझाने
पर भी दुष्टात्मा दुर्योधनने राज्यका भाग देनेको हाँ करी ही नहीं, मेरे
विचारमें तो उस पापीको दण्ड देना ही चाहिये, दण्डके सिवाय
और उपायसे वह समझने वाला नहीं है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! दुर्योधन
की ओरके राजे नष्ट होनेके लिये कुरुक्षेत्रकी ओरको विदा हो चुके हैं
कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था वह तुम्हें सुना दिया ॥ १९ ॥
हे पाण्डवो ! कौरव युद्धके बिना राज्य नहीं देंगे, क्योंकि-सब कौरव
विनाशका कारण होचुके हैं और उनके मरणका समय भी समीप ही
आलगा है ॥ २० ॥ एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥

सैन्यनिर्याणपर्व

वैशम्पायन कहते हैं कि—धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णजीकी बात
सुन कर श्रीकृष्णजीके सामने ही अपने भाइयोंसे कहा, कि—॥ १ ॥
कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ वह तुम सर्वांग सुन लिया और श्री-
कृष्णने जो बात कही वह भी तुम सर्वांग अपने मनमें समझली होगी २
हे महापुरुषो ! अब तुम मेरी सेनाके भी जुदे २ विभाग कर डालो,

द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ४ ॥ सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान् । एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः ॥ ५ ॥ सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः । ह्रीमन्तो नीतिमन्तश्च सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ६ ॥ इष्वस्त्रकुशलाः सर्वे तथा सर्वास्त्रयोधिनः । सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित् ॥ ७ ॥ यः सहेत रणे भीष्मं शरार्चिः पावकोपमम् । तन्त्वायत् सहदेवात्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन । स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः ८ सहदेव उवाच । संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः । यं समाश्रित्य धर्मज्ञं स्वमंशमनुयुञ्ज्महे ॥९॥ मत्स्यो विराटो बलवान् कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः । प्रसहिष्यति संग्रामे भीष्मं तांश्च महारथान्॥१०॥ वैशम्पायन उवाच । तथोक्तः सहदेवेन वाक्ये र्वाक्यविशारदः । नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे ॥ ११ ॥

हमारी विजयके लिये यह सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हुई है ॥ ३ ॥ उनके जो सात प्रसिद्ध सेनापति हैं उनके नाम सुनो-द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी ॥ ४ ॥ सात्यकी, चेकितान और पराक्रमी भीमसेन, ये सेनाकी रचना करने वाले सब वीर अपने प्राणान्त तक लड़ेंगे ॥५॥ ये सब सेनापति वेदके ज्ञाता, शूर, उत्तम प्रकारसे व्रतोंको करने वाले, लज्जाशील, नीतिमान् और सब ही युद्ध करनेमें चतुर हैं ॥६॥ ये सब बाण आदि अस्त्रोंको छोड़नेमें प्रवीण और सब प्रकारके अस्त्रोंसे युद्ध करना जानते हैं, परंतु हे कुरुनन्दन सहदेव ! जो इन सातों सेनादलोंका अधिपति होसके, सेनाके विभाग करनेमें चतुर हो तथा रणभूमिमें जिसकी बाणरूपी लपटें हैं ऐसे भीष्मरूप अग्निको जो सह सके, ऐसा कौन पुरुष है ? उसका नाम मुझे बता, हे पुरुषसिंह ! हमारे यहाँ सेनापति बननेकी योग्यता किसमें है ? इस विषय में अपनी सम्मति दे ॥ ७ ॥ ८ ॥ सहदेवने कहा, कि-मेरे विचारमें तो मत्स्य देशपति महाराज विराट सेनापति बनाये जायँ तो ठीक हो, यह हमारे सम्बन्धी हैं, हमारे दुःखको अपना दुःख मानते हैं, बली हैं और हम इनके आश्रयमें आकर ही अपने राज्यका भाग लेनेके लिये उद्योग कररहे हैं ॥ ९ ॥ यह मत्स्यराज विराट बलवान्, धनुष विद्यामें चतुर और युद्ध करनेमें बड़े दुर्मद हैं, यह भीष्म पितामह तथा दूसरे राजाओंको रणमें सहसकेंगे ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-बातके तत्त्वको जाननेमें चतुर जनमेजय ! सहदेवके ऐसा कह चुकने पर नकुलने कहा, कि-॥ ११ ॥ अवस्था, शास्त्रका ज्ञान, धीरज, कुल

वयसा शास्त्रतो धैर्यात् कुलेनाभिजनेन च । ह्रीमान् बलान्वितः श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ॥१२॥ वेद चास्त्रं भरद्वाजाद् दुर्धर्षः सत्यसंगरः । यो नित्यं स्पर्धते द्रोणं भीष्मञ्चैव महाबलम् ॥ १३ ॥ श्लाघ्यः पार्थिववंशस्य प्रमुखे वाहिनीपतिः । पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव द्रुमः १४ यस्तताप तपो घोरं सदारः पृथिवीपतिः । रोषाद् द्रोणविनाशाय वीरः समितिशोभनः ॥ १५ ॥ पितेवास्मान् समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः । श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षतु ॥ १६ ॥ स द्रोणभीष्मावायातौ सहेदिति मतिर्मम । सहि दिव्यास्त्रविद्राजा सखा चाङ्गिरसो नृपः ॥१७॥ माद्रीसुताभ्यामुक्ते तु स्वमते कुरुनन्दनः । वासविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥ योऽयं तपःप्रभावेन ऋषिसन्तोषणेन च । दिव्यः पुरुष उत्पन्नो ज्वालावर्णो महाभुजः ॥ १९ ॥ धनुष्मान् कवची

और बहुतसे कुटम्बियोंके कारणसे राजा द्रुपद सेनापति बननेके योग्य हैं, यह लज्जाशील, बली, श्रीमान् और सब शास्त्रोंमें प्रवीण हैं तथा इन्होंने भरद्वाजजीसे अस्त्र विद्या सीखी है, यह किसीसे दबते नहीं हैं, सत्य प्रतिज्ञा करते हैं तथा महाबली भीष्मजी और द्रोणाचार्यसे इनकी सदा अनबन रहती है ॥ १२॥१३ ॥ यह ही राजाओंकी सेनाके अग्रभागमें सेनापति बन कर खड़े रहनेके योग्य हैं, सैकड़ों शाखा वाले एक बड़े भारी वृक्षकी समान यह पुत्र और पौत्रोंसे घिर कर रणके मुहाने पर खड़े होंगे वीर और युद्धमें शोभा पाने वाले जिस राजाने क्रोधमें आकर द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये अपनी रानीको साथमें लेकर भयानक तपस्याकी थी ॥ १५ ॥ जो महाराज पिताकी समान हमारी सुध लिया करते हैं और जो हमारे श्वसुर लगते हैं ऐसे राजा द्रुपद ही हमारे मुख्य सेनापति बनें ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह हमारे ऊपर चढ़ाई करके आवेंगे तो उनको राजा द्रुपद ही सह सकेंगे यह मेरा विचार है, क्योंकि-यह दिव्य अस्त्रोंको छोड़ना जानते हैं और द्रोणाचार्यके मित्र लगते हैं ॥१७॥ माद्रीके दोनों पुत्रोंके अपनी संपति कह चुकने पर इन्द्रसी समान बलवान् इन्द्रका पुत्र अर्जुन बोला कि-॥ १८ ॥ अग्निकी लपटकी समान दमकती हुई कान्ति वाला यह जो महाबाहु दिव्यपुरुष तपके प्रभावसे और ऋषियोंके सन्तुष्ट होनेसे उत्पन्न हुआ है, तिस पर भी धनुष, कवच तलवार धारण कर दिव्य घोड़ोंसे जुते रथमें बैठ कर रथकी झनकारके कारणसे बड़े भारी मेघमण्डलकी समान गर्जना करता हुआ सा अग्निके कुण्डमेंसे

खड्गी रथमारुह्य दंशितः। दिव्यैर्हयवरैर्युक्तमग्निकुण्डात् समुत्थितः२० गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान्। सिंहसंहननो वीरः सिंहतुल्यपराक्रमः॥ २१॥ सिंहोरस्कः सिंहभुजः सिंहवक्षा महाबलः। सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः॥ २२॥ सुभ्रूः सुदंष्ट्रः सुहनुः सुबाहुः सुमुखोऽकृशः। सुजत्रुः सुविशालाक्षः सुपादः सुप्रतिष्ठितः२३ अभेद्यः सर्वशस्त्राणां प्रभिन्न इव वारणः।जज्ञे द्रोणविनाशाय सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ २४॥ धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सहेद्भीष्मस्य सायकान्। वज्राशनिसमस्पर्शान् दीप्तास्यानुरगानिव ॥२५॥ यमदूतसमान् वेगे निपाते पावकोपमान्। रामेणाजौ विषहितान् वज्रनिष्पेषदारुणान् ॥ २६॥ पुरुषं तं न पश्यामि यः सहेत् महाव्रतम्। धृष्टद्युम्नमृते राजन्निति मे धीयते मतिः ॥२७॥ क्षिप्रहस्तश्चित्रयोधी मतः सेनापतिर्मम। अभेद्यकवचः श्रीमान् मातङ्ग इव यूथपः॥ २८॥ भीमसेन उवाच। वधार्थं यः समुत्पन्नः शिखण्डी द्रुपदात्मजः। वदन्ति सिद्धा राजेन्द्र ऋषयश्च

मेघमण्डलकी समान गर्जना करता हुआसा अग्निके कुण्डमेंसे उत्पन्न हुआ है, जिसकी मूर्त्ति, वक्षःस्थल, दोनों भुजायें, दोनों कन्धे, गर्जना तथा पराक्रम सिंहकी समान है,जिसकी दोनों भृकुटि,दाँत,मुख दोनों कपोलोंके ऊपरके भाग, बाहु, कन्धोंके जोड़, विशाल नेत्र और चरण बड़े ही सुन्दर हैं,जो महाबली,परमकांतिमान्, परम प्रतिष्ठित,गठेहुए शरीर वाला, सब शस्त्रोंसे अभेद्य, मतवाले हाथीकी समान, अथाह वीरता भरा, सत्यवादी और जितेन्द्रिय है, जिस जितेन्द्रिय पुरुषने द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये जन्म धारण किया है, मेरे विचारमें वह धृष्टद्युम्न भीष्मजीके, वज्रकी समान मार लगाने वाले, धधकते हुए मुख वाले, सर्पोंकी समान (विष भरे) वेगमें यमदूतोंकी समान ऊपर गिरनेमें अग्निकी समान, युद्धमें परशुरामजीके सहेहुए, वज्रोंके आपसमें टकरानेकी समान दारुण सब बाणोंको युद्धमें सह सकेगा॥ १९-२६॥ हे राजन्! मैं तो धृष्टद्युम्नके सिवाय ऐसे किसी पुरुषको देखता नहीं जो महाव्रतधारी भीष्मजीको रणमें सहसके २७ इस लिये मैं तो शीघ्र२ बाण छोड़नेवाले, जिसका हाथ सधा हुआ है और जो अनेकों प्रकारसे युद्ध करनेमें जानकार है, जिसके कवचको कोई नहीं फोड़सकता ऐसे मदमत्त हाथीकी समान सेनाके समूहोंकी रक्षा करनेवाले धृष्टद्युम्नको ही सेनापति बननेके योग्य समझता हूँ२८ भीमसेनने कहा, कि-हे राजेन्द्र! हमारे यहाँ इकट्ठे होकर आये हुए

समागताः ॥ २९ ॥ यस्य संग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वतः । रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः ॥ ३० ॥ न तं युद्धे प्रपश्यामि यो भिन्द्यात्तु शिखण्डिनम् । शस्त्रेण समरे राजन् सन्नद्धं स्यन्दने स्थितम् ॥ ३१ ॥ द्वैरथे समरे चान्यो भीष्मं हन्यान्महाव्रतम् । शिखण्डिनमृते वीरं स मे सेनापतिर्मतः । युधिष्ठिर उवाच । सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम् । सर्वं जानाति धर्मात्मा मतमेषाञ्च केशवः ३३ यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु सेनापतिर्मम । कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा ॥३४॥ एष नो विजये मूलमेव तात विपर्य्यये । अत्र प्राणाश्च राज्यञ्च भावाभावौ सुखासुखे ॥ ३५ ॥ एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता । यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो वाहिनीपतिः ॥३६॥ ब्रवीतु वदतां श्रेष्ठो निशा समभिवर्तते । ततः सेनापतिं कृत्वा कृष्णस्य वशवर्त्तिनः ३७ रात्रेः शेषे व्यतिक्रान्ते प्रयास्यामो रणा-

---

सिद्ध तथा ऋषि कहते हैं, कि—द्रुपदका पुत्र शिखण्डी भीष्मजीको नाश करनेके लिये जन्मा है ॥ २९ ॥ जिस समय शिखण्डी संग्राममें दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगेगा उस समय उसका स्वरूप मनुष्योंको महात्मा परशुरामकेसा दीखेगा ॥ ३० ॥ और हे राजन् ! लड़नेके लिये तयार होकर रथमें बैठे हुए शिखंडीको युद्धमें शस्त्रसे घायल कर सके, ऐसा कोई पुरुष मुझे तो दीखता नहीं ॥ ३१ ॥ द्वन्द्वयुद्धमें वीर शिखण्डीके सिवाय दूसरा कौनसा पुरुष महाव्रतधारी भीष्मपितामहको जीत सकता है ? मैं तो उसको ही सेनापति बनानेकी संमति देता हूँ ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि–हे तात ! धर्मात्मा श्रीकृष्णजी सब जगत्के सार, असार, बल, अबल तथा उनके अभिप्रायको जानते हैं ॥ ३३ ॥ इस लिये दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण जिसको सेनापति बनानेके लिये कहेंगे उसको मैं अपना सेनापति बनाऊँगा, वह अस्त्रविद्यामें चतुर हो या न हो, जवान् हो चाहे बूढ़ा हो ॥ ३४ ॥ हे तात ! हमारी विजय और पराजयका कारण यह श्रीकृष्ण ही हैं, हमारे प्राण, राज्य, भाव, अभाव सुख और दुःख सब इन श्रीकृष्णके ही भरोसे पर हैं ॥३५॥ हमारे धाता विधाता यही हैं, कामकी सिद्धिका भार इनके ही ऊपर है, इसलिये श्रीकृष्णजी जिसको सेनापति बनानेके लिये कहें उसको ही हम सेनापति बनावेंगे ॥३६॥ इससमय रात्रि होगयी है, इसलिये बोलने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी सेनापतिका नाम बतावें तो श्रीकृष्णजीके वशमें रहने वाले हम, उसको सेनापतिके पद

शिरम्। अधिवासितशस्त्राश्च कृतकौतुकमङ्गलाः ॥३८॥ वैशम्पायन उवाच। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः। अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥३९॥ ममाप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः। नेतारस्तव सेनायां मता विक्रान्तयोधिनः ॥ ४० ॥ सर्व एव समर्था हि तव शत्रुं प्रबाधितुम्। इन्द्रस्यापि भयं ह्येते जनयेयुर्महाहवे ॥४१॥ किं पुनर्धार्त्तराष्ट्राणां लुब्धानां पापचेतसाम्। मयापि हि महाबाहो त्वत्प्रियार्थं महाहवे ॥ ४२ ॥ कृतो यत्नो महांस्तत्र शमः स्यादिति भारत। धर्मस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ॥४३॥ कृतास्त्रं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः। धार्त्तराष्ट्रो बलस्थञ्च पश्यत्यात्मानमातुरः ॥ ४४ ॥ युज्यतां वाहिनी साधु वधसाध्या हि मे मताः। न धार्त्तराष्ट्राः शक्ष्यन्ति स्थातुं दृष्ट्वा धनञ्जयम् ॥४५॥ भीमसेनञ्च संक्रुद्धं

पर अभिषेक करके रात्रिका शेष भाग बीत जाने पर प्रातःकालके समय सब शस्त्रोंका गन्ध, अक्षत, फूल आदिसे पूजन करके तथा योधाओंको रक्षाबन्धन और स्वस्तिवाचन कराकर रणभूमिकी ओर को यात्रा करें ॥ ३७-३८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-बुद्धिमान् धर्मराजकी इस बातको सुन कर कमलनयन श्रीकृष्णजी अर्जुनकी ओर को देखते हुए कहने लगे, कि-॥ ३९ ॥ हे महाराज ! तुम्हारी सेनाके अधिपतिके विषयमें जो नाम लिये गये हैं इन महाबली योधाओंको सेनापति बनाना मैं भी उचित समझता हूँ ॥४०॥ ये सब ही तुम्हारे शत्रुओंका पराजय करसकते हैं, ये लोग यदि महासंग्राम करने लगें तो इन्द्रको भी भयभीत करडालें ॥ ४१ ॥ फिर मनमें पाप रखनेवाले लोभी धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी तो गिनती ही क्या है ? हे महाबाहु भरतवंशी राजन् ! मैंनेभी तुम्हारा हित करनेके लिये और यह होनहार महायुद्ध रुकजाय इस इच्छासे बड़ा उद्योग किया था, परन्तु वह रुकाही नहीं मैं तो उद्योग करके धर्मके ऋणसे छूट गया और जो लोग दोष देते उनके निन्दावादसे भी छूटगया ॥४२-४३॥ अब धृतराष्ट्रका बालककी समान बुद्धिहीन पुत्र दुर्योधन अपनेको अस्त्रविद्या में चतुर समझता है और घबड़ा जाने पर भी अपनेको बलवान् समझता है ॥ ४४ ॥ इस लिये तुम लड़नेके लिये सेनाको भले प्रकार तयार करो, क्योंकि—वह मारकाटसे ही वशमें होंगे, धृतराष्ट्रके पुत्र अर्जुनको, क्रोधमें भरेहुए भीमसेनको यमराजकी समान भयंकर नकुल सहदेवको और क्रोधमें भरेहुए युयुधान सहित धृष्टद्युम्नको देखकर

धर्मा चापि यमोपमौ । युयुधानद्वितीयञ्च धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ४६ ॥ अभिमन्युं द्रौपदेयान् विराटद्रुपदावपि । अक्षौहिणीपतींश्चान्यान् नरेन्द्रान् भीमविक्रमान् ॥ ४७ ॥ सारवद् बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम् । धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः ॥ ४८ ॥ धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिन्दम । वैशम्पायन उवाच । एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्रहृष्टा नरोत्तमाः ॥ ४९ ॥ तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान् । योग इत्यथ सैन्यानां त्वरतां संप्रधावताम् ॥५०॥ हयवारणशब्दाश्च नेमिघोषाश्च सर्वतः । शंखदुन्दुभिघोषाश्च तुमुलाः सर्वतोऽभवन् ॥५१॥ तदुग्रं सागरनिभं क्षुब्धं बलसमागमम् । रथपत्तिगजोदग्रं महोर्मिभिरिवाकुलम् ॥ ५२ ॥ धावतामाह्वयानानां तनुत्राणि च बध्नताम् प्रयास्यतां पाण्डवानां ससैन्यानां समन्ततः ॥ ५३ ॥ गङ्गेव पूर्णा दुर्धर्षा समदृश्यत वाहिनी । अग्रानीके भीमसेनो माद्रीपुत्रौ च

रणमें खड़े नहीं रह सकेंगे ॥४५-४६॥ अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँचों पुत्र राजा विराट, राजा द्रुपद और अक्षौहिणी सेनाओंके नायक,भयानक दूसरे पराक्रमी राजाओंको भी देखकर रणमें खड़े न रह सकेंगे॥४७॥ हमारी सेना भी बड़ी बलवती है, इसको न कोई दबासकता है और न कोई इसको अपने वशमें कर सकता है, यह निःसंदेह रणमें दुर्योधनकी सेनाका नाश कर डालेगी ॥ ४८ ॥ हे शत्रुदमन युधिष्ठिर ! मेरी संमतिमें भी धृष्टद्युम्नको ही सेनापति बनाना ठीक है, वैशम्पायन कहते हैं, कि-श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वह महापुरुष पांडव बड़े प्रसन्न हुए ॥४९॥ प्रसन्न मन वाले राजाओंमें बड़ा हर्षनाद होने लगा युद्धके लिये शीघ्रता करते हुए और तयारीके लिये जिधर तिधरको दौड़तेहुए योधाओंका, 'युद्धके लिये तयार होजाओ' ऐसा कोलाहल हाथियोंकी चिंघाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, चारों ओर घूमते हुए रथोंके पहियोंकी घनघनाट तथा शङ्ख और दुन्दुभियोंके तुमुल शब्द चारों ओर होने लगे ॥ ५०॥५१॥ सेनाको तयार करनेके लिये इधर उधरको दौड़ते, दूसरोंको बुलाते तथा शरीरों पर कवच धारण करते हुए पाण्डव सेनाके साथ यात्रा करनेकी तयारी करने लगे,उससमय उनकी भयङ्कर सेनाका समागम खलभलाये हुए महासागरकी समान प्रतीत होता था, रथ पैदल और हाथियोंके कारण ऊँचा दीखता था, पाण्डवोंकी सेना बड़ीभारी तरंगोंसे व्याकुल हुए समुद्रसी मालूम होती थी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ युद्धकी तयारीके समय पाण्डवोंकी

दंशिती ॥ ५४ ॥ सौभद्रो द्रौपदेयाश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः । प्रभद्रकाश्च पञ्चाला भीमसेनमुखा ययुः ॥ ५५ ॥ ततः शब्दः समभवत् समुद्रस्येव पर्वणि । हृष्टानां सम्प्रयातानां घोषो दिवमिवास्पृशत् ५६ प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५७॥ शकटापणवेशाश्च यानयुग्यञ्च सर्वशः । कोशं यन्त्रायुधञ्चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः ॥ ५८ ॥ फल्गु यच्च बलं किञ्चिद्यच्चापि कृशदुर्बलम् । तत् संगृह्य ययौ राजा ये चापि परिचारकाः ॥५९ ॥ उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी सत्यवादिनी । सह स्त्रीभिर्निववृते दासीदाससमन्विता ॥ ६० ॥ कृत्वा मूलप्रतीकारं गुल्मैः स्थावरजंगमैः । स्कन्धावारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥ ६१ ॥ ददतो गां हिरण्यञ्च ब्राह्मणैरभिसंवृताः । स्तूयमाना ययू राजन् रथैर्मणिविभूषितैः ॥ ६२ ॥ केकयो धृष्टकेतुश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभुः । श्रेणिमान् वसुदानश्च शिखण्डी चापराजितः ॥६३ ॥ हृष्टास्तुष्टाः कव-

---

सेना जलसे भरीहुई गंगा नदीकी समान अगम्य दीखती थी, सेना के अग्रभागमें भीमसेन, कवचधारी नकुल तथा सहदेव, सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र और द्रुपदका पुत्र धृष्टद्युम्न यह सब चलते थे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ जैसे पर्व (अमावास्या और पूर्णिमा) के दिन समुद्र गर्जना करता है तैसे ही युद्धमें कूँच करनेवाले संतोषी योधाओंकी की हुई गर्जना स्वर्ग तक पहुँचती थी ॥५६ ॥ शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाले योधा शरीरों पर कवच पहर कर प्रसन्न होते हुए चलेआते थे, उनके बीचमें राजा युधिष्ठिर मालकी गाड़ियें, बाजारका उपयोगी सामान, तम्बू, पालकी आदि यान वाहन धनके भण्डार, गोले फैंकनेके यन्त्र,आयुर्वेदको जाननेवाले अस्त्रचिकित्सक, परिवारके लोग तथा असार, दुवले और कृश इन सबोंके साथ लेकर चलने लगे ५८॥५९॥ धर्मराजको पहुँचानेके लिये आयी हुई पाञ्चालराजकुमारी सत्यवादिनी, द्रौपदी दासदासियोंसे घिरकर उपप्लव्य में पहुँचनेके लिये लौट आयी ॥ ६० ॥ हे राजन् ! पाण्डवोंने एकस्थान पर स्थिर रहने वाले और फिरते फिरने वाले सिपाहियोंके द्वारा धन स्त्री आदिकी रक्षाका प्रबन्ध कर दिया था, फिर गौ सुवर्ण आदिका दान दे ब्राह्मणोंसे घिरे हुए उनके साथ शोभायमान रथोंमें बैठ कर बड़े भारी सेनादलके साथ कुरुक्षेत्रकी ओरको कूचकर दिया६१-६२ पांचों केकय राजकुमार, धृष्टकेतु,काशीराजका पुत्र अभिभू श्रेणिमान्

न्विनः सशस्त्राः समलंकृताः । राजानमन्वयुः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ६४ ॥ जघनार्धे विराटश्च याज्ञसेनिश्च सौमकिः । सुधर्मा कुन्तिभोजश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ॥६५॥ रथायुतानि चत्वारि हयाः पञ्चगुणास्तथा । पत्तिसैन्यं दशगुणं गजानामयुतानि षट् ॥ ६६ ॥ अनाधृष्टिश्चेकितानो धृष्टकेतुश्च सात्यकिः। परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६७ ॥ आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः । पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव ॥६८॥ तेवगाह्य कुरुक्षेत्रं शंखान् दध्मुररिन्दमाः । तथैव दध्मतुः शंखं वासुदेवधनञ्जयौ ॥ ६९ ॥ पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः। निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः ॥ ७० ॥ शंखदुन्दुभिसंह्रादः सिंहनादस्तरस्विनाम् । पृथिवीञ्चान्तरिक्षञ्च सागरांश्चान्वनादयत् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि कुरुक्षेत्रप्रवेशे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो देशे समे स्निग्धे प्रभूतयवसेन्धने । निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ परिहृत्य श्मशानानि

वसुदान अपराजित शिखण्डी आदि सब हृष्ट पुष्ट राजे कवच शस्त्र और युद्धके आभूषणोंसे सजकर राजा युधिष्ठिरको घेरे हुए उनके पीछे २ चलने लगे॥ ६३-६४ ॥ सेनाके पिछले भागमें राजा विराट, सोमकवंशी यज्ञसेनका पुत्र धृष्टद्युम्न, सुधर्मा, कुन्तिभोज, धृष्टद्युम्न के पुत्र ॥ ६५ ॥ चालीस हजार रथ, दो लाख घोड़े साठ हजार हाथी और बीसलाख पैदलोंकी सेना लेकर चलते थे ॥ ६६ ॥ अनाधृष्टि, चेकितान, चेदिका राजा और सात्यकी यह सब श्रीकृष्ण और अर्जुनको घेरकर चले ॥६७॥ गर्जना करते हुए बैलोंकी समान दीखनेवाले पाण्डवयोधा व्यूहरचनामें युधकर कुरुक्षेत्रमें पहुँचगये ॥ ६८ ॥ शत्रुओंका दमन करने वाले पाण्डव वहाँ पहुँच कर शंख बजानेलगे, दूसरी ओरसे श्रीकृष्ण और अर्जुनने भी शंख बजाये ॥ ६९ ॥ वज्रकी गर्जनाकी समान पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनिको सुनकर संपूर्ण सेनाके रोंगटे खड़े होगये ॥ ७० ॥ उत्साही योधाओंके सिंहनादने शंख और दुन्दुभियोंके शब्दके साथ मिलकर पृथिवी, आकाश और समुद्रोंको भी प्रतिध्वनित कर दिया ॥ ७१॥ एकसौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं, कि-तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने जहाँ बहुत सी घास और ईंधन था ऐसी नेत्रोंको सुखदायक कुरुक्षेत्रकी समतल

देवतायननानि च । आश्रमांश्च महर्षीणां तीर्थान्यायतनानि च ॥२॥ मधुरानूपरे देशे शुचौ पुण्ये महामतिः । निवेशं कारयामास कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ ततश्च पुनरुत्थाय सुखी विश्रान्तवाहनः । प्रययौ पृथिवीपालैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ ४ ॥ विद्राव्य शतशो गुल्मान् धार्त्तराष्ट्रस्य सैनिकान् । पर्य्यक्रामत् समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः ॥ ५ ॥ शिविरं मापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः। सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानश्च वीर्य्यवान् ॥६॥ आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम् । सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम् ॥७॥ खानयामास परिखां केशवस्तत्र भारत । गुप्त्यर्थमपि चादिश्य बलं तत्र न्यवेशयत् ॥ ८ ॥ विधिर्यः शिविरस्यासीत् पाण्डवानां महात्मनाम् । तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः ॥ ९ ॥ प्रभूततरकाष्ठानि दुराधर्षतराणि च । भक्ष्यभोज्यान्नपानानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥ शिविराणि महार्हाणि राज्ञां तत्र पृथक् पृथक् । विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि

भूमिमें सेनाका पड़ाव किया ॥ १ ॥ श्मशान, देवमंदिर, महर्षियोंके आश्रम, तीर्थ तथा देवमन्दिरोंको छोड़कर मनोहर रसमय पवित्र और पुण्यस्थानमें परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरने अपना पड़ाव डाला॥२॥३ अपने वाहनोंको विश्राम देकर स्वयं भी विश्राम करने लगे, थकन दूर होनेपर वहाँसे उठकर सहस्रों राजाओंसे घिरे हुए इधर उधर विचरने लगे ॥ ४॥ दूसरी ओर अर्जुनके साथमें श्रीकृष्णजी दुर्योधन के सैंकड़ों रक्षकोंको भगाते हुए चारों ओर फिरते थे ॥ ५ ॥ राजा द्रुपदका पुत्र धृष्टद्युम्न, महारथी पराक्रमी सात्यकी और युयुधान छावनी डालनेके लिए भूमिका नाप कराने लगे ॥ ६ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! श्रीकृष्णजीने कुरुक्षेत्रमें रहती हुई निर्मल जलसे भरी, कंकर और कीचसे रहित, उत्तम किनारे वाली पवित्र हिरण्यवती नदीके समीपमें जाकर अपनी रक्षाके लिये एक खाई खुदवाई और रक्षाके लिये आज्ञा देकर वहाँ एक लश्करी थाना बना दिया ।७-८। श्रीकृष्णजीने जिस प्रकारसे महात्मा पाण्डवोंकी छावनियें तयार कराई थीं, तिसी प्रकार दूसरे राजाओंके लिये भी छावनियें तयार करादी थीं ॥ ९ ॥ इन राजाओंकी सैंकड़ों हजारों छावनियें बड़े ही मूल्यकी थीं भक्ष्य, भोज्य, बहुतसा काठ और अन्नपानसे भरपूर थीं, हे राजेन्द्र ! पृथ्वी पर दूर २ डाली हुई वह परम अगम्य छावनियें पृथ्वीपर पड़ेहुए विमानोंकी समान दीखती थीं ॥ १०-११ ॥ वन

महीतले ॥ ११ ॥ तत्रासन् शिल्पिनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः । सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः ॥१२॥ ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषोः । ससर्ज्जरसपांशूनां राशयः पर्वतोपमाः॥१३॥बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम्।शिबिरे शिबिरे राजा सञ्चकार युधिष्ठिरः॥१४ महायन्त्राणि नाराचास्तोमराणि परश्वधाः । धनूंषि कवचादीनि ऋष्टयस्तूणसंयुताः ॥ १४ ॥ गजाः कंटकसन्नाहा लोहवर्मोत्तरच्छदः । दृश्यन्ते तत्र गिर्य्याभाः सहस्रशतयोधिनः ॥ १६ ॥ निविष्टान् पांडवांस्तत्र ज्ञात्वा मित्राणि भारत । अभिसस्रुर्यथादेशं सबलाः सह वाहनाः ॥१७॥ चरितब्रह्मचर्यास्ते सोमपा भूरिदक्षिणाः । जयाय पांडुपुत्राणां समाजग्मुर्महीक्षितः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि शिबिराधिनिर्माणे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

जनमेजय उवाच। युधिष्ठिरं सहानीकमुपायान्तं युयुत्सया। सन्निविष्टं कुरुक्षेत्रे वासुदेवेन पालितम्॥१॥ विराटद्रुपदाभ्यां च सपुत्राभ्यां समन्वितम् । केकयैर्वृष्णिभिश्चैव पार्थिवैः शतशो वृतम् ॥ २ ॥ महे-

---

छावनियोंमें सैंकड़ों बुद्धिमान् शिल्पियोंको और शास्त्रके जानने वाले वैद्योंको सब प्रकारकी सामग्रियोंके साथ वेतन देकर नियत कर दिया था॥ १२ ॥ राजा युधिष्ठिरने प्रत्येक छावनीमें बड़े २ यन्त्र, धनुषकी डोरियें, कवच, शस्त्र, भाले, तोमर, फरसे, ऋष्टि, शहद, घी, जल, घास, भूसी, अग्नि, लाखकी बुकनी आदि वस्तुओंके पहाड़ोंकी समान ढेरकर दिये थे ॥ १३-१५ ॥ काँटेदार बख्तरोंको धारण करने वाले तथा ऊपरके भागमें लोहेके बख्तरवाले सैंकड़ों और सहस्रोंके साथ युद्ध करने वाले हाथी तहाँ खड़ेकर दिये थे जो कि-पहाड़ोंके समान दीखते थे ॥ १६ ॥ हे भरतवंशी राजन्! पाण्डव कुरुक्षेत्रमें आ पहुँचे हैं यह जानकर उनसे स्नेह करनेवाले राजे सेना,और वाहनों के साथ पाण्डवोंके पड़ावकी ओरको आने लगे ॥ १७॥ ब्रह्मचर्यधारी सोमरसको पीनेवाले यज्ञोंके समय तथा अन्य अवसरोंमें बड़ी बड़ी दक्षिणायें देनेवाले वे राजे पाण्डवोंकी विजयके लिये उनकी छावनियों में आने लगे ॥ १८॥ एकसौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥

जनमेजयने पूछा, कि-हे वैशम्पायन! श्रीकृष्णजीने जिनकी रक्षा का भार लिया था ऐसे, राजा विराट और पद उनके पुत्र केकय देश के राजे वृष्णिवंशके राजा तथा और भी सैंकड़ों राजाओंसे घिरे हुए

न्द्रमिव चादित्यैरभिगुप्तं महारथैः । श्रुत्वा दुर्योधनो राजा किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महामते । सम्भ्रमे तुमुले तस्मिन् यदासीत् कुरुजांगले ॥ ४ ॥ व्यथयेयुरिमे देवान् सेन्द्रानपि समागमे । पाण्डवा वासुदेवश्च विराटद्रुपदौ तथा ५ धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः । युधामन्युश्च विक्रान्तो देवैरपि दुरासदः ॥६॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन । कुरूणां पाण्डवानां च यद्यदासीद्विचेष्टितम् ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच । प्रतियाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा । कर्णं दुःशासनञ्चैव शकुनिञ्चाब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥ अकृतेनैव कार्य्येण गतः पार्थानधोक्षजः । स एनान्मन्युनाविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम् ॥ ९ ॥ इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः । भीमासेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ ॥ १० ॥ अजातशत्रुरत्यर्थं भीमसेनवशानुगः । निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः

जैसे आदित्य इन्द्रकी रक्षा करते हैं, तैसे ही महारथी चारों ओरसे जिनकी रक्षा कररहे थे ऐसे राजा युधिष्ठिर युद्ध करनेकी इच्छासे सेनाके सहित कुरुक्षेत्रमें आगये हैं, इस समाचारको पाकरराजा दुर्योधनन क्या २ काम करना आरम्भ किया था ॥ १-३ ॥ हे महामति वैशम्पायनजी ! उस घोर घबड़ाहटके समय कुरु जांगल देशमें जो घटना हुई थी उसका वृत्तान्त मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ ४ पाण्डव श्रीकृष्ण, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और युधामन्यु आदि सब अतुलपराक्रमी महारथी ऐसे थे, कि-यदि युद्ध करन लगेंगे तो इन्द्रसहित देवताओंको भी हरादें, देवता भी उनके सामने आनेका उत्साह नहीं करसकते थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ इसलिये हे तपोधन ! कौरवोंने और पाण्डवोंने जो २ कर्म कुरुक्षेत्रमें किये हों उनको मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! दाशार्हवंशी श्रीकृष्णके उपप्लव्यमें पहुँचजाने पर राजा दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन और शकुनिसे इसप्रकार कहा, कि-॥८॥ श्रीकृष्णजी जो काम करनेको आये थे उस कामको किये विना ही पांडवोंके पासको लौट गये हैं, इसलिये वह क्रोधमें भर कर अवश्य ही पांडवोंको लड़नेके लिये उभारेंगे ॥ ९ ॥ हम पांडवोंके साथ युद्ध करें यह बात श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुकूल है औरभीमसेन तथा अर्जुन श्रीकृष्णके कहनेमें चलते हैं ॥ १० ॥ तथा अजातशत्रु युधिष्ठिर विशेष कर भीमसेनके अनुकूल चलते हैं और पहिले जुआ खेलते समय सब

सोदरैः ॥ ११ ॥ विराटद्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह । तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ ॥१२॥ भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः । तस्मात् सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः ॥ १३ ॥ शिबिराणि कुरुक्षेत्रे क्रियन्तां वसुधाधिपाः । सुपर्याप्तावकाशानि दुरादेयानि शत्रुभिः ॥ १४ ॥ आसन्नजलकाष्ठानि शतशोऽथ सहस्रशः । अच्छेद्याहारमार्गाणि बन्धोच्छ्रयचितानि च ॥१५॥ विविधायुधपूर्णानि पताकाध्वजवन्ति च । समाश्च तेषां पन्थानः क्रियन्तां नगराद्बहिः १६ प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम् । ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा ॥ १७ ॥ हृष्टरूपा महात्मानो निवासाय महीक्षिताम् । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम् ॥ १८ ॥ आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः । बाहून् परिघसंकाशान् संस्पृशन्तः शनैः

सहोदर भाइयों सहित युधिष्ठिरका मैंने अपमान भी किया है ॥११॥ द्रुपद और विराट भी मेरे साथ पहिलेसे ही वैर करते हैं और अनुमान होता है वह श्रीकृष्णके कहनेमें चलनेके कारण पांडवोंके सेनापति बनेंगे ॥ १२ ॥ इसलिये यह युद्ध रोमाञ्च खड़े करनेवाला बड़ा घोर होगा, अब तुम सावधान होकर युद्धकी सब सामग्री ठीक कराओ ॥ १३ ॥ हे राजाओ ! तुम सावधान होकर संग्रामकी सब तयारियें कराओ, कुरुक्षेत्रमें बहुतसा अवकाश (मैदान) लेकर जल और काष्ठसे भरपूर, जिनका छीनना शत्रुओंको महाकठिन पड़े ऐसी सैंकड़ों हजारों छावनियें बनवाओ, उनके मार्ग ऐसे बनवाओ कि-जिनमें लाई जानेवाली वस्तुओंको शत्रु रोक न सकें और छावनियों की समीपकी भूमियोंको टीले बनवाकर ऊँची करादो ॥ १४ ॥ १५ ॥ उन छावनियोंमें नाना प्रकारके शस्त्र, पताका, ध्वजा आदि लगवादो, छावनीके मार्ग हमारे नगरसे छावनी तक सूधे रक्खो ॥ १६ ॥ और आज ढँढोरा पिटवादो, कि-कलको युद्धके लिये चढ़ाई कीजायगी, उसके लिये विलम्ब न करो, महात्मा शिल्पयोंने, आज्ञा पाकर प्रसन्न होते हुए कहा 'जो आज्ञा' और उन्होंने दूसरे दिन राजाओंके निवास लिये छावनियें बनादीं तथा युद्धकी सब सामग्रियें तयार करदीं, क्रोधमें भरेहुए सब राजे भी दुर्योधनकी कूच करनेकी आज्ञाको सुन कर बहुमूल्य सिंहासनों परसे उठकर खड़े होगये और जिन भुजदंडों पर सुवर्णके बाजूबन्द पहर रहे थे और जो चन्दन तथा अगरके लेपसे शोभायमान किये हुए थे उन लोहेके दण्डोंकी समान बाहुओंको धारे

शनैः ॥ १९ ॥ कांचनांगदकेयूरांश्च चन्दनागुरुभूषितान्। उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः। अन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणानि च सर्वशः ॥ २० ॥ ते रथान् रथिनः श्रेष्ठा हयांश्च हयकोविदाः। सज्जयन्ति स्म नागांश्च नागशिक्षास्वनुष्ठिताः ॥२१॥ अथ वर्माणि चित्राणि कांचनानि बहूनि च। विविधानि च शस्त्राणि चक्रुः सर्वाणि सर्वशः ॥२२॥ पदातयश्च पुरुषाः शस्त्राणि विविधानि च। उपाजह्रुः शरीरेषु हेमचित्राण्यनेकशः ॥ २३ ॥ तदुत्सव इवोदग्रं सम्प्रहृष्टनरावृतम्। नगरं धार्त्तराष्ट्रस्य भारतासीत् समाकुलम् ॥ २४ ॥ जनौघसलिलावर्त्तो रथनागाश्वमीनवान्। शंखदुन्दुभिनिर्घोषः कोषसंचयरत्नवान् ॥ २५ ॥ चित्राभरणवर्मोर्मिः शस्त्रनिर्मलफेनवान्। प्रासादमालाद्रिवृतो रथ्यापणमहाह्रदः ॥ २६ ॥ योधचन्द्रोदयोद्भूतः कुरुराजमहार्णवः। व्यदृश्यत तदा राजंश्चन्द्रोदय इवोदधिः ॥ २७ ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधनसैन्यसज्जीकरणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

धीरे २ स्पर्श करनेलगे, फिर कमलकी समान हाथोंसे शिरपरकी पगड़ियोंको पहरने और ओढनेके वस्त्रोंको तथा युद्धके सब आभूषणों को धारण करनेमें लगगये ॥ १७-२० ॥ तथा रथोंमें सब सामग्री रख कर तयार होगये, अश्वशास्त्रमें चतुर पुरुष घोड़ों पर साज चढाकर उनको तयार करने लगे, हाथियोंकी शिक्षामें चतुर पुरुष हाथियों पर साज चढाकर उनको तयार करने लगे ॥ २१ ॥ सब पैदल अनेकों प्रकारके सोनेके कवच तथा नाना प्रकारके शस्त्र और सुवर्णके भाँति२ के आभूषण शरीरों पर धारण करनेलगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! उस समय धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी राजधानीमेंके मनुष्य बड़े हर्षमें भर गये और मानों कोई उत्सव होरहा है, इसप्रकार नगर चारोंओरसे हर्षमें मग्न और शोभायमान होरहा था ॥ २४ ॥ हे राजन्! उस समय योधारूपी चन्द्रमाके उदयसे उमड़ाहुआ कौरवराजरूपी महासागर बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था, कुरुराजरूपी महासागरमें मनुष्योंके समूहरूपी जलके भँवर दीख रहे थे, रथ हाथी और घोड़ेरूप मछलियें थीं शंख और दुंदुभियोंकी ध्वनिरूप गर्जना होरही थी, धनके भंडाररूप रत्नोंसे भरपूर था, भाँति२ के आभूषण और कवचरूपी तरंगे उठरही थीं, शस्त्रोंरूप निर्मल झागोंसे भराहुआ था डेरोंकी पंक्तिरूप पहाड़ोंसे घिराहुआ था और उसमें गलियें तथा बाजाररूपी बड़े २ कुंड थे ॥ २५-२७ ॥ एकसौ तरेपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥

वैशम्पायन उवाच । वासुदेवस्य तद्वाक्यमनुस्मृत्य युधिष्ठिरः । पुनः पप्रच्छ वार्ष्णेयं कथं मन्दोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥ अस्मिन्नभ्यागते काले किंच नः क्षमच्युत । कथं च वर्तमाना वै स्वधर्मान्न च्यवेमहि ॥ २ ॥ दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च । वासुदेवमतज्ञोऽसि मम सभ्रातृकस्य च ॥३॥ विदुरस्यापि तद्वाक्यं श्रुतं भीष्मस्य चाभयोः । कुन्त्याश्च विपुलप्रज्ञ प्रज्ञा कार्त्स्न्येन ते श्रुता ॥ ४ ॥ सर्वमेतदतिक्रम्य विचार्य च पुनः पुनः । क्षमं यन्नो महाबाहो तद् ब्रवीह्यविचारयन् ॥ ५ ॥ श्रुत्वैतद् धर्मराजस्य धर्मार्थसहितं वचः । मेघदुन्दुभिनिर्घोषः कृष्णो वाक्यमथाब्रवीत् ॥६॥ कृष्ण उवाच । उक्तवानस्मि यद्वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् । न तु तन्निकृतिप्रज्ञे कौरव्ये प्रतितिष्ठति ॥ ७ ॥ न च भीष्मस्य दुर्मेधाः शृणोति विदुरस्य वा । मम वा भाषितं किञ्चित् सर्वमेवातिवर्त्तते ॥ ८ ॥ नैष कामयते धर्मं नैष कामयते यशः । जितं स मन्यते सर्वं दुरात्मा कर्णमाश्रितः ॥ ९ ॥ बन्धमा-

---

वैशम्पायन कहते हैं, कि-युधिष्ठिर श्रीकृष्णजी बात सुन कर फिर श्रीकृष्णजीसे पूछने लगे, कि—मूर्ख दुर्योधनने ऐसा क्यों कहा था ? यह कहिये ॥ १ ॥ हे अच्युत ! ऐसा अवसर आगया, अब हमें क्या करना चाहिये, ऐसा वर्त्ताव किस प्रकार करें कि--जिसमें हम अपने धर्मसे न गिरें ? ॥ २ ॥ हे श्रीकृष्ण ! आप दुर्योधनके, कर्णके, सुबलपुत्र शकुनिके और मेरे भाइयोंके तथा मेरे अभिप्रायको जानते हैं ॥३॥ हे महाबुद्धिमान् ! विदुर; भीष्म और कुन्तीका विचार भी आपसे पूरा २ सुन लिया है ॥ ४ ॥ इस धृतराष्ट्रने जो कुछ कहा, उसको तुमने सुन ही लिया इसलिए आप उन सब बातोंका विचार करना छोड़कर अब हमको जो कुछ करना उचित हो उसको हे महाबाहु ! बार २ विचार कर निःशङ्क होकर कहिये ॥ ५ ॥ धर्मराजकी धर्म तथा नीतिकी बातको सुनकर श्रीकृष्णजी मेघ तथा दुन्दुभीकी समान गंभीर वाणीमें कहने लगे ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णजी बोले, कि-मैंने कौरवोंसे धर्म और न्यायकी बात कही थी, उसको कपट करनेमें प्रवीण दुर्योधनने स्थिरचित्त होकर नहीं माना ॥ ७ ॥ दुष्टबुद्धि दुर्योधनने भीष्मजीकी विदुरकी तथा मेरी बात जरा भी नहीं सुनी, किन्तु सबकी बातका उल्लंघन ही किया ॥ ८ ॥ यह दुरात्मा कर्णका सहारा लेकर न धर्मको चाहता है, न यशको चाहता है, किन्तु यह समझ रहा है, कि—मैंने सबोंको अब जीता ॥ ९ ॥ पापकी बातोंका

आपयामास मम चापि सुयोधनः । न च तं लब्धवान् कामं दुरात्मा पापनिश्चयः ॥ १० ॥ न च भीष्मो न च द्रोणो युक्तं तत्राहतुर्वचः । सर्वे तमनुवर्त्तन्ते ऋते विदुरमच्युत ॥ ११ ॥ शकुनिः सौबलश्चैव कर्णदुःशासनावपि । त्वय्ययुक्तान्यभाषन्त मूढा मूढममर्षणम् ॥१२॥ किं च तेन मयोक्तेन यान्यभाषत कौरवः । संक्षेपेण दुरात्मासौ न युक्तं त्वयि वर्त्तते ॥१३॥ पार्थिवेषु न सर्वेषु य इमे तव सैनिकाः । यत् पापं यन्न कल्याणं सर्वं तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥ १४ ॥ न चापि वयमत्यर्थं परित्यागेन कर्हिचित् । कौरवैः शममिच्छामस्तत्र युद्धमनन्तरम् ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच । तच्छ्रुत्वा पार्थिवाः सर्वे वासुदेवस्य भाषितम् । अब्रुवन्तो मुखं राज्ञः समुदैक्षन्त भारत ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरस्त्वभिप्रायमभिलक्ष्य महीक्षिताम् । योगमाज्ञापयामास भीमार्जुनयमैः सह ॥ १७ ॥ ततः किलकिलाभूतमनीकं पाण्डवस्य ह । आज्ञापिते तदा योगे समहृष्यन्त सैनिकाः ॥ १८ ॥ अवध्यानां वधं पश्यन्

विचार करने वाले दुरात्मा दुर्योधनने मुझे भी कैद करलेनेकी आज्ञा देदी थी, परन्तु वह अपनी कामनाको पूरी नहीं करसका ॥ १० ॥ हे दृढ़ विचार वाले राजन् ! भीष्मजीने अथवा द्रोणाचार्यने दुर्योधनसे ठीक २ हितकी बात नहीं कही, एक विदुरको छोड़कर सब ही उस के अनुकूल रहते हैं ॥११॥ सुबलका पुत्र शकुनि, कर्ण और दुःशासन ये सब मूढ़ हैं और वह मूढ तथा क्रोधी दुर्योधनके पास तुम्हारे विषयमें अनुचित बातें किया करते हैं दुर्योधनने तुम्हारे विषयमें जो जो वचन कहे थे, उनको मैं कहूँ तो क्यालाभ होगा? संक्षेपमें इतना ही कहे देता हूँ कि-वह दुरात्मा तुम्हारे विषयमें उचित बर्ताव नहीं करता है ॥ १३ ॥ जिन सब राजाओंसे यह तुम्हारा सेनादल बना है उनमें जो पाप और अमङ्गल नहीं है वह सब अकेले उस दुर्योधनमें भरा हुआ है ॥ १४ ॥ हम तो अपने भागरूप राज्यको खोकर किसी प्रकार भी कौरवोंके साथ सन्धि करना नहीं चाहते, इस लिये अब आगेको युद्ध करना ही शेष रहा है ॥ १५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि हे भरतवंशी राजन् ! श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर सब राजे कुछ भी न बोलकर राजा युधिष्ठिरके मुखकी ओरको देखने लगे ॥ १६ ॥ राजा युधिष्ठिरने सब राजाओंके अभिप्रायको समझकर भीम, अर्जुन नकुल, और सहदेवके साथ संमति करके युद्ध करनेकी आज्ञा देदी१७ आज्ञा देनेके अनन्तर पाण्डवोंकी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा,

धर्मराजो युधिष्ठिरः । निःश्वसन् भीमसेनञ्च विजयञ्चेदमब्रवीत् १९ यदर्थं वनवासश्च प्राप्तं दुःखञ्च यन्मया । सोऽयमस्मानुपैत्येव परोऽनर्थः प्रयत्नतः ॥२०॥ तस्मिन् यत्नः कृतोऽस्माभिः स नो हीनः प्रयत्नतः । अकृते तु प्रयत्नेऽस्मानुपावृत्तः कलिर्महान् ॥२१॥ कथं ह्यवध्यैः संग्रामः कार्यः सह भविष्यति । कथं हत्वा गुरून् वृद्धान् विजयो नो भविष्यति ॥२२॥ तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्य सव्यसाची परन्तपः । यदुक्तं वासुदेवेन श्रावयामास तद्वचः ॥ २३ ॥ उक्तवान् देवकीपुत्रः कुन्त्याश्च विदुरस्य च । वचनं तत्त्वया राजन् निखिलेनावधारितम् ॥ २४ ॥ न च तौ वक्ष्यतोऽधर्ममिति मे नैष्ठिकी मतिः । नापि युक्तञ्च कौन्तेय निवर्त्तितुमयुध्यतः ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽपि सव्यसाचिवचस्तदा । स्मयमानोऽब्रवीद्वाक्यं पार्थमेवमिति ब्रुवन् ॥ २६ ॥ ततस्ते धृतसं-

युद्धकी आज्ञा मिलते ही सब योधा हर्षमें भरगये ॥ १८ ॥ परन्तु 'न मारने योग्य पुरुषोंका नाश होगा' ऐसा विचार कर राजा युधिष्ठिर लम्बे २ श्वास लेतेहुए भीमसेन और अर्जुनसे इस प्रकार कहने लगे, कि—॥ १९ ॥ जिस कारणसे मैं वनवासको गया और मैंने बड़ाभारी दुःख भोगा, परन्तु फिर भी वह बड़ाभारी अनर्थ बलात्कारसे हमारे ऊपर आपड़ा ॥ २० ॥ युद्ध न हो इसके लिए मैंने उद्योग किया था, परन्तु मेरा वह अभिप्राय प्रयत्न करने पर भी सिद्ध नहीं हुआ, और विना प्रयत्न किये ही बड़ाभारी क्लेश हमारे पास आकर खड़ा हो गया है२१जिनको मारना किसी प्रकार भी उचित नहीं है ऐसे मान्य पुरुषोंके साथ युद्ध कैसे किया जायगा ? वृद्ध गुरुजनोंको मारकर हमारी विजय कैसे होगी ? ॥२२॥ शत्रुओंको ताप देनेवाला अर्जुन धर्मराजकी इस बातको सुनकर श्रीकृष्णजीने जो बात कही थी वह युधिष्ठिरको सुनाने लगा२३हे राजन्! देवकीनन्दनने माता कुंती और विदुरजीको जो बातें तुम्हें सुनायी हैं उन बातोंपर आपने भलेप्रकारसे ध्यान देलिया?२४मुझे पक्का निश्चय है, कि कुंती और विदुर कभी अधर्म की बात नहीं कहेंगे, तथा हे कुन्तीनन्दन ! हम युद्ध न करके उससे पीछेको हटें यह भी उचित नहीं है ॥ २५ ॥ इस प्रकार अर्जुनकी बात सुनकर वासुदेव जरा एक हँसे और अर्जुनसे कहा, कि—यह बात ठीक है ॥ २६ ॥ हे महाराज ! इसके अनन्तर पाण्डवोंने इसके

कल्पा युद्धाय सहसैनिकाः । पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुख
वसन् ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि युधिष्ठिरार्जु
नसम्वादे चतुःपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

वैशम्पायन उवाच । व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्त
व्यभजत्तान्यनीकानि दश चैकञ्च भारत ॥ १ ॥ नरहस्तिरथाश्व
सारं मध्यं च फल्गु च । सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु सन्दिदेश नराधिपः ॥
सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः । सोपासङ्गाः सशक्ती
सनिषङ्गाः सहृष्टयः ॥ ३॥ सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोम
रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिच्छदाः ॥ ४ ॥ सकचग्रह
क्षेपाः सतैलगुडवालुकाः । साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसव
सघण्टफलकाः सर्वे सायोगुडजलोपलाः । सशालभिन्दिपालाश्च स

लिये निश्चय करके सेनाके साथ वह रात बड़े सुखमें बितायी ॥२
एकसौ चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५४ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे भरतवंशी राजन् ! रात बीत
प्रातःकाल होगया,राजा दुर्योधनने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना
नियमके अनुसार अलग २ बाँट दिया१मनुष्य,हाथी, रथ और घो
मेंसे उत्तम, मध्यम और अलग २ निकाल कर उनको सेनाके अ
मध्यमें और पीछेके भागमें रहनेकी आज्ञा दी ॥ २ ॥ अनुकर्ष (युः
मारामारके समय टूटे हुए रथके किसी अवयवको जोड़नेके लि
रथके नीचे बाँधा हुआ काष्ठ) तूणीर (रथके बाहर बँधे हुए बड़े
भाथे) वरूथ (रथको ढकनेके लिये बाघ आदिका चमड़ा) तो
(हाथसे फेंकनेके काँटेदार दण्डे), उपासंग (जिनको घोड़े हा
आदि उठाकर लेजासकें ऐसे भाथे), शक्ति निषङ्ग (पैदलोंसे उ
योग्य भाथे), ऋष्टि (एक प्रकारकी बड़ी भारी लाठी), ध्व
पताका, धनुष, तोमर (धनुष पर चढ़ाकर फेंकनेके काँटेदार दण्डे
अनेकों प्रकारकी रस्सियें, पाश (वैरोंके गलेमें डालनेकी फाँसियें
विस्तर आदि समान, कचग्रहविक्षेप (शत्रुओंके केश पकड़कर गिर
के लिए उनकी ओरको फेंकने की तीक्ष्ण नोकदार लकड़ी),तेल,गु
वालुका, विषधर, साँपोंसे भरे हुए घड़े रालका रस और चूरा, घण्
फलक (घुँघुरुओं वाला धारदार शस्त्र), अयस् (तलवार छुर
आदि) औटा हुआ गुड़का जल, साल, भिन्दिपाल, मोम चुपड़े

धृनिघ्नमुद्गराः ॥ ६ ॥ सकाण्डदण्डकाः सर्वे ससीरविषतोमराः । सशूर्पपिटकाः सर्वे सदात्राङ्कुशतोमराः ॥ ७ ॥ सकीलकवचाः सर्वे वाशीवृक्षादनान्विताः । व्याघ्रचर्मपरीवारा द्वीपिचर्मावृताश्च ते ॥ ८ ॥ सर्षपः सश्टङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः । सकुठाराः सकुद्दालाः सतैलक्षौमसर्पिषः ॥ ९ ॥ रुक्मजालप्रतिच्छन्ना नानामणिविभूषिताः । चित्रानीकाः सुवपुषो ज्वलिता इव पावकाः ॥ १० ॥ तथा कवचिनः शूराः शस्त्रेषु कृतनिश्चयाः । कुलीना हययोनिज्ञाः सारथ्ये विनिवेशिताः ॥ ११ ॥ बद्धारिष्टा बद्धकक्षा बद्धध्वजपताकिनः बद्धाभरणनिर्यूहा बद्धचर्मासिपट्टिशाः ॥ १२ ॥ चतुर्युजो रथाः सर्वे सर्वे चोत्तमवाजिनः । सप्रासऋष्टिकाः सर्वे सर्वे शतशरासनाः ॥ १३ ॥

मुग्दर, लोहेके काँटोवाली गदायें, हल, विष चुपडेहुए तोमर विष भरी पिचकारियें, दस्लोके बडे २ टोकरे फावडे आदि भूमि खोदनेके शस्त्र, अंकुशके आकारके तोमर, दण्डे लगे हुए दराँते, वृक्षादन (लोहे के काँटे कील आदि) बाघ और गैंडेकी चर्मसे मँढे हुए रथ, ऋष्टि (हाथसे फेकनेके चक्राकार काटके टुकडे) सींग, भाले आदि अनेकों प्रकारके शस्त्र कुल्हाडे, कुदाली, घावों पर लगानेके लिये तेलमें डूबे हुए रेशमी वस्त्र (जिनकी राख युद्धमें घायल हुए योधाओंके घावों पर लगायी जाती है) पुराना घी आदि युद्धकी सकल सामग्रियोंको साथ लेगये थे, अनेकों प्रकारके सुन्दर शरीरों वाले योधा सोनेके आभूषण तथा अनेकों प्रकारके रत्नोंसे सजे हुए थे इस कारण वह जलती हुई अग्निकी समान दीखते थे ॥ ३-१० ॥ कवचोंको धारण किये, शस्त्रविद्यामें भले प्रकार शिक्षा पाये हुए, घोडोंकी विद्यामें प्रवीण अच्छे कुलोंमें उत्पन्न हुए शूर पुरुषोंको सारथियोंके पदों पर नियत किया था ॥ ११ ॥ सब रथोंमें उत्तम जातिके चार २ घोडे जोते गये थे, अशुभ निवारणके लिये उनमें पत्र और औषधियें रक्खी गयी थीं रथोंके ऊपर ध्वजा और पताकायें चढ़ायी गयीं, रथोंके घोडोंके मस्तकों पर घूँघुरो मालायें मोतियोंके गुच्छे आदि शूरताको प्रकाशित करने वाले चिन्ह लटकाये गये थे रथोंको भी वस्त्र और कँगूरोंसे सजाया गया था उन रथोंमें ढाल तलवारें, पट्टिश प्रास, ऋष्टियें आदि युद्धकी, सामग्रियें रक्खी गयी थीं, और हर एक रथमें रक्खी गयी थीं, और हरएक रथमें सौ सौ बाण रक्खे गये थे दो २ घोडों पर एक २ सारथि रक्खा गया था था और रथके पहियोंके

धुर्य्ययोर्हययोरेकस्तथान्यौ पार्ष्णिसारथी । तौ चापि रथिनां श्रेष्ठौ रथी च हयवित्तथा ॥ १४ ॥ नगराणीव गुप्तानि दुराधर्षाणि शत्रुभिः। आसन् रथसहस्राणि हेममालीनि सर्वशः ॥ १५ ॥ यथा रथास्तथा नागा बद्धकक्षाः स्वलंकृताः । बभूवुः सप्त पुरुषा रत्नवन्त इवाद्रयः१६ द्वावंकुशधरौ तत्र द्वावुत्तमधनुर्धरौ । द्वौ वरासिधरौ राजन्नेकः शक्ति-पिनाकधृत् ॥१७॥ गजैर्मत्तैः समाकीर्णं सर्वमायुधकोशकैः । तद् बभूव बलं राजन् कौरव्यस्य महात्मनः ॥१८॥ आमुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः स्वलंकृतैः । सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चायुतशो हयाः ॥ १९ ॥ असंग्राहा सुसम्पन्ना हेमभांडपरिच्छदाः । अनेकशतसाहस्राः सर्वे सादिवशे स्थिताः२० नानारूपविकाराश्च नानाकवचशस्त्रिणः । पदा-तिनो नरास्तत्र बभूवुर्हेममालिनः ।२१। रथस्यासन् दश गजा गजस्य

पासके पिछले घोड़ों पर दो दो सारथी रक्खे गये थे, वह दोनों सारथी रथियोंमें श्रेष्ठ थे और रथी भी अश्वविद्यामें चतुर थे ॥१४॥ इस प्रकार नगरोंकी समान रक्षा किये हुए, शत्रुओंके अजय और सुवर्णकी मालाओंसे शोभायमान हजारों रथ कौरवोंकी सेनामें थे१५ जिसप्रकार रथोंको सजाया गया था तिसी प्रकार हाथियोंको भी सजाया गया था उनके ऊपर सात २ पुरुष बैठाले गये थे, वह रत्नों वाले पर्वतसे दीखते थे ॥१६ ॥ हे राजन् ! उन हाथियोंके ऊपर दो २ हाथीवान् अंकुश लेकर बैठे थे दो २ उत्तम धनुषधारी योधा दो २ तलवार धारण करने वाले और एक २ शक्ति तथा त्रिशूल धारण करनेवाला बैठा था ॥१७॥ हे राजन् ! महात्मा दुर्योधनकी वह सेना कवच और भाथोंसे लदेहुए मतवाले हाथियोंसे भररही थी ॥ १८ ॥ नाना प्रकारके कवचोंको धारण करनेवाले, पताकाधारी, उत्तम प्रकारसे सजेहुए, और शिक्षा पायेहुए घुड़सवारोंसे शोभायमान लाखों घोड़े उस सेनामें थे ॥ १९ ॥ जो कि-अगले पैरोंसे उछलना आदि दोषोंसे रहित उत्तम प्रकारसे सिखाये हुए और आभूषणोंसे तथा काठी आदिसे सजे हुए थे, ऐसे लाखों घोड़े थे और वह सब घुड़सवारोंके वशमें रहते थे ॥ २० ॥ अनेकों आकारके, अनेकों रंगके तथा अनेकों जातिके कवच और शस्त्रोंको धारण करनेवाले तथा सोनेकी मालायें पहरे हुए सहस्रों पैदल भी सेनामें तयार हुए थे २१ एक २ रथके पीछे दश २ हाथी, एक २ हाथीके पीछे दश २ घोड़े और एक २ घोड़ेके पीछे दश २ पैदलोंको पादरक्षकरूपसे चारों

दश वाजिनः। नरा दश हयस्यासन् पादरक्षाः समन्ततः ॥२२॥ रथस्य नागाः पञ्चाशन्नागस्यासन् शतं हयाः। हयस्य पुरुषाः सप्त भिन्नसन्धानकारिणः ॥ २३ ॥ सेना पञ्चशतं नागा रथास्तावन्त एव च। दशसेना च पृतना पृतना च दशवाहिनी २४ सेना च वाहिनी चैव पृतना ध्वजिनी चमूः। अक्षौहिणीति पर्यायैर्निरुक्ता च वरूथिनी२५ एवं व्यूढान्यनीकानि कौरवेयेण धीमता। अक्षौहिण्यो दशैका च संख्याताः सप्त चैव ह ॥ २६ ॥ अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पांडवानामभूद् बलम्। अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद् बलम् ॥२७॥ नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते। सेनामुखञ्च तिस्रस्ता गुल्म इत्यभिशब्दितम् ॥२८॥ त्रयो गुल्मा गणस्त्वासीद् गणास्त्वयुतशोऽभवन्। दुर्योधनस्य सेनासु योत्स्यमानाः प्रहारिणः ॥ २९ ॥ तत्र दुर्योधनो राजा शूरान् बुद्धिमतो नरान्। प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतीं

और लगाया गया था अर्थात् दश हाथी, सौ घोड़े और हजार पैदल एक रथका परिवार मानाजाता था ॥ २२ ॥ सेनामें अलग २ टुकड़ियें और उन सबको एक २ शृंखला करनेके लिये एक रथके पीछे पाँच हाथियोंकी, एक हाथीके पीछे सौ घोड़ोंकी और एक घोड़ेके पीछे सात पुरुषोंकी योजनाकी गयी थी अर्थात् पचास हाथी, पाँच हजार घोड़े और पैंतीस हजार पैदल एक रथका परिवार माना जाता था ॥२३॥ पाँचसौ रथ और पाँचसौ ही हाथियोंकी एक सेना होती है, दश सेनाकी एक पृतना होती है और दश पृतनाओंकी एक वाहिनी होती है ॥ २४ ॥ सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू और वरूथिनी यह अक्षौहिणीके नाम हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार बुद्धिमान् दुर्योधनकी व्यूहरचनासे गूंथी हुई ग्यारह अक्षौहिणी सेना तथा दूसरी सात अक्षौहिणी सेना मिलकर अठारह अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्रमें इकट्ठी हुई थी ॥ २६ ॥ पांडवोंका सेनादल सात अक्षौहिणी और कौरवोंका सेनादल ग्यारह अक्षौहिणी था ॥ २७ ॥ ढाईसौ मनुष्योंकी एक पत्ति कहलाती है, तीन पत्तियोंका एक सेनामुख अथवा गुल्म कहलाता है ॥ २८ ॥ तीन गुल्मका एक गण होता है, दुर्योधनकी सेनामें ऐसे युद्ध करनेवाले लाखों गण युद्धकी इच्छासे आये थे ॥ २९ ॥ महाबाहु राजा दुर्योधनने युद्धका आरम्भ करनेसे पहिले बुद्धिमान् और वीर मनुष्योंकी परीक्षा करके उनको सेनापति के पद पर उस समय नियत किया था ॥३०॥ कृपाचार्य, द्रोणाचार्य,

स्तदा ॥ ३० पृथगक्षौहिणीनाञ्च प्रणेतृन्नरसत्तमान्। विधिवत् पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यषेचयत् ॥३१॥ कृपं द्रोणञ्च शल्यञ्च सैन्धवं च जयद्रथम्। सुदक्षिणञ्च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥ ३२ ॥ द्रोणपुत्रञ्च कर्णञ्च भूरिश्रवसमेव च।शकुनिं सौबलञ्चैव बाल्हीकञ्च महाबलम् ३३ दिवसे दिवसे तेषां प्रतिवेलञ्च भारत। चक्रे स विविधाः पूजाः प्रत्यक्षञ्च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥ तथा विनियताः सर्वे ये च तेषां पदानुगाः। बभूवुः सैनिका राज्ञां प्रियं राज्ञश्चिकीर्षवः ॥ ३५ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि दुर्योधन-सैन्यविभागे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिर्धृतराष्ट्रजः। सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ऋते सेनाप्रणेतारं पृतना सुमहत्यपि। दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा ॥२॥ न हि जातु द्वयोर्बुद्धिः समा भवति कर्हिचित्। शौर्यञ्च बलनेतॄणां स्पर्धते च परस्परम् ॥ ३ ॥ श्रूयते च महाप्राज्ञ हैहयानमितौजसः। अभ्ययु-

---

शल्य, सिंधुदेशका राजा जयद्रथ, कांबोजका राजा सुदक्षिण, कृतवर्मा, द्रोणका पुत्र अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलका पुत्र शकुनि महाबली बाल्हीक इतने महाराजाओंको जुदी २ अक्षौहिणियोंका सेनापति नियत किया और शास्त्रोक्त विधिसे अग्रभागमें लाकर दुर्योधनने उनके साथ बातचीतकी ३१-३३तथा हे भरतवंशी राजन्! राजा दुर्योधन प्रतिदिन राजाओंके सामने उन सेनापतियोंको अनेकों प्रकारसे पूजा करता था ॥ ३४ ॥ तथा जिनको सेनापतियों के पदों पर नियत किया था, उनके पीछे चलने वाले योधा भी उन राजाओंका तथा दुर्योधनका चित्तसे हित करना चाहते थे ॥ ३५ ॥ एकसौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय! फिर दुर्योधनने दोनों हाथ जोड़कर सब राजाओंको साथमें लियेहुए भीष्मपितामहसे इस प्रकार कहा कि-॥ १ ॥ सेना बहुत बड़ी हो तो भी वह सेनापतिके बिना युद्धके मैदानमें आने हो चींटियोंकी पंक्तिकी समान टुकड़े २ होकर नष्ट भ्रष्ट होजाती है ॥ २ ॥ दो पुरुषोंकी बुद्धि कभी भी एक से विचारकी नहीं होती है तथा सेनाके अधिपतियोंकी वीरता भी परस्पर स्पर्धा किया करती है ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धिमान्! इस विषय में एक पुरानी कथा इसप्रकार सुननेमें आती है कि-बहुतसे ब्राह्मण

ब्राह्मणाः सर्वे समुच्छ्रितकुशध्वजाः॥४॥ तान्समभ्ययुस्तदा वैश्याः शूद्राश्चैव पितामह। एकतस्तु त्रयो वर्णा एकतः क्षत्रियर्षभाः॥५॥ ततो युद्धेष्वभज्यन्त त्रयो वर्णाः पुनः पुनः। क्षत्रियास्तु जयन्त्येव बहुलं चैकतो बलम्॥६॥ ततस्ते क्षत्रियानेव पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः। तेभ्यः शशंसुर्धर्मज्ञा याथातथ्यं पितामह॥७॥ वयमेकस्य शृण्वाना महाबुद्धिमतो रणे। भवन्तस्तु पृथक् सर्वे स्वबुद्धिवशवर्तिनः॥८॥ ततस्ते ब्राह्मणाश्चक्रुरेकं सेनापतिं द्विजम्। नये सुकुशलं शूरमजयन् क्षत्रियांस्ततः॥९॥ एवं ये कुशलं शूरं हितेप्सितमकल्मषम्। सेनापतिं प्रकुर्वन्ति ते जयन्ति रणे रिपून्॥१०॥ भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम। असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव॥११॥ रश्मिवतामिवादित्यो वीरुधामिव चन्द्रमाः। कुबेर इव यक्षाणां देवानामिव वासवः॥१२॥

कुशरूपी ध्वजाको फहराते हुए अपारबली हैहय वंशके राजाओंके ऊपर युद्ध करनेको चढ आये थे॥४॥ हे पितामह! उस समय वैश्य और शूद्र भी ब्राह्मणोंके पीछे २ गये थे एक ओर ब्राह्मण वैश्य और शूद्र इकट्ठे हुए थे तथा दूसरी ओर उत्तम २ क्षत्रिय इकट्ठे हुए॥५॥ तदनंतर जब युद्ध होने लगा तब ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र तीनों वर्णोंमें बारम्बार भागड़ पड़नेलगी और क्षत्रिये एकमत होकर दूसरे पक्षकी बडी भारी सेनाको जीतने लगे॥६॥ यह देखकर उन ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे अपनी पराजय होनेका कारण पूछा तब हे पितामह! धर्मके ज्ञाता क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंसे सच्ची बात कहदी, कि-॥७॥ हम रणभूमिमें एक महाबुद्धिमान् पुरुषकी आज्ञाको मानते हैं और तुम सब रणभूमिमें आकर अलग२ अपनी२ बुद्धिके अनुसार काम करते हो॥८॥ यह सुनकर ब्राह्मणोंने एक न्यायकुशल वीर ब्राह्मणको सेनापति बनाकर युद्ध आरम्भ किया और क्षत्रियोंका पराजय कर दिया॥९॥ इस प्रकार जो पुरुष किसी एक, काम करनेमें चतुर, हितकारी, निष्कपट वीर पुरुषको सेनापति बनालेते हैं तो वह अवश्य ही शत्रुओंको जीतते हैं॥१०॥ तुम शुक्राचार्यकी समान नीतिको जानने वाले और सदा मेरे हितैषी हो, आपको काल भी नहीं मार सकता और सदा अपने धर्ममें तत्पर रहते हो, इस कारण आप मेरे सेनापति बन जाइये॥११॥ जैसे यक्षोंमें कुबेर, जैसे देवताओंमें इन्द्र, जैसे पर्वतोंमें मेरु, जैसे पक्षियोंमें गरुड़, जैसे देवताओंमें स्वामिकार्तिकेय और जैसे किरणवालोंमें सूर्य, जैसे लताओंमें चन्द्रमा,

पर्वतानां यथा मेरुः सुपर्णः पक्षिणां यथा। कुमार इव देवानां वसूनामिव हव्यवाट् ॥१३॥ भवता हि वयं गुप्ता शक्रेणेव दिवौकसः। अनाधृष्या भविष्यामस्त्रिदशानामपि ध्रुवम् ॥१४॥ प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः। वयं त्वामनुयास्यामः सौरभेया इवर्षभम् ॥१५॥ भीष्म उवाच। एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत। यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः ॥१६॥ अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप। संयोद्धव्यं तवार्थाय यथा मे समयः कृतः ॥ १७ ॥ न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि। ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात् कुन्तीपुत्राद् धनञ्जयात् ॥ १८ ॥ स हि वेद महाबुद्धिर्दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः। न तु मां विवृतो युद्धे जातु युध्येत पाण्डवः ॥१९॥ अहं चैव क्षणेनैव निर्मनुष्यमिदं जगत्। कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम् ॥ २० ॥ न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप। तस्माद्योधान् हनिष्यामि

जैसे वसुओंमें अग्नि अधिपति माना जाता है तैसे ही तुम भी हमारे मुख्य अधिपति हो ॥ १२॥१३ ॥ जैसे इन्द्रसे देवताओंकी रक्षा होती है तैसेही आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए ऐसा होनेपर देवता भी हमारा पराजय नहीं कर सकेंगे यह बात अटल है ॥१४॥ जैसे स्वामि कार्त्तिकेय देवताओंके आगे चलता है तैसे ही आप हमारे आगे चलिए और जैसे एक बड़े बैलके पीछे और बैल चलते हैं तैसे ही हम सब आपके पीछे २ चलेंगे ॥ १५ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे महाबाहु भरतवंशी राजन् ! तेरा कहना सत्य है जैसे तुम मुझे प्यारे हो तैसेही पाण्डव भी मुझे प्यारे हैं ॥ १६ ॥ इस लिए पाण्डवोंसे मुझे उनके कल्याणकी बात कहनी चाहिए तथा तेरे लिए भी मैंने जैसी प्रतिज्ञा की है उसके अनुसार युद्ध करना ही चाहिए ॥ १७ ॥ परन्तु मुझे एक बड़ी भारी अड़चन आपड़ी है, मनुष्योंमें सिंहसमान कुन्तीनन्दन अर्जुनके सिवाय और किसीको भी मैं भूमण्डल पर अपनी समान योधा नहीं देखता हूँ, कि-जिसके साथ में युद्ध करूँ ॥ १८ ॥ महाबुद्धिमान् अर्जुन अनेकों दिव्य अस्त्रोंको जानता है, परन्तु वह प्रकट रूपसे मेरे साथ युद्ध कभी नहीं करेगा ॥ १९ ॥ मैं चाहूँ तो एक ही क्षणमें शस्त्रके बलसे देवता, दैत्य और राक्षसोंसे भरे हुये इस जगत्को मनुष्योंसे शून्य कर डालूँ ॥२०॥ परन्तु मैं पाण्डुके पुत्रोंको किसी प्रकार भी नहीं मार सकता तो भी मैं प्रतिदिन शस्त्र छोड़कर दश हजार योधाओंको मारा करूँगा ॥ २१ ॥ हे कुरुनन्दन ! वह रणभूमि

प्रयोगेनायुतं सदा ॥ २१ ॥ एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन । न चेत्ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे ॥ २२ ॥ सेनापतिस्त्वहं राजन् समयेनापरेण ते । भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहार्हसि ॥ २३ ॥ कर्णो वा युध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते । स्पर्धते हि सदात्यर्थं सूतः पुत्रो मया रणे ॥२४॥ कर्ण उवाच । नाहं जीवति गांगेये राजन् योत्स्ये कथंचन । हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना ॥२५॥ वैशम्पायन उवाच । ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद् भूरिदक्षिणम् । धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तो व्यरोचत ॥२६॥ ततो भेरीश्च शंखांश्च शतशोऽथ सहस्रशः । वादयामासुरव्यग्रा वादका राजशासनात् ॥२७॥ सिंहनादाश्च विविधा वाहनानां च निःस्वनाः । प्रादुरासन्ननभ्रे च वर्षं रुधिरकर्दमम् ॥२८॥ निर्घाताः पृथिवीकम्पा गजबृंहितनिःस्वनाः । आसंश्च सर्वयोधानां पातयन्तो मनांस्युत २९ वाचश्चाप्यशरीरिण्यो दिवश्चोल्काः प्रपेदिरे । शिवाश्च भयवेदिन्यो नेदुर्दीप्ततरा भृशम् ३०

में मेरे ऊपर पहिले प्रहार नहीं किया करेंगे तो भी मैं अपने कहनेके अनुसार उनका संहार किया करूँगा ॥ २२ ॥ हे राजन् ! मैं एक नियमसे तेरा सेनापति बनना चाहता हूँ उस नियमको तुम सुनो२३ हे राजन् ! या तो कर्ण ही पहिले युद्ध करे या मैं ही पहिले युद्ध करूँ, क्यों कि-सूतपुत्र कर्ण सदा युद्धमें मेरेसाथ बड़ी स्पर्धा करता है ॥२४॥भीष्मजीकी इस बातको सुनकर कर्णने कहा कि-हे राजन् ! भीष्मजीके जीवित रहतेहुवे मैं कभी भी युद्ध नहीं करूँगा, भीष्मजीके मारेजानेपर ही मैं अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा२५ वैशम्पायन कहते हैं कि-इसप्रकार बातें होजाने पर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने बड़ी दक्षिणा देनेवाले भीष्मजीका शास्त्रकी विधिसे सेनापतिके पदपर अभिषेक किया और भीष्म पितामह बड़े शोभायमान होनेलगे २६ राजाकी आज्ञासे उस समय बाजे बजानेवाले सैंकड़ों और हजारों भेरी तथा शंखोंको शान्त मनसे बजाने लगे ॥ २७ ॥ नाना प्रकारके सिंहनाद और हाथी घोड़े आदि वाहनोंके शब्द होने लगे तथा वर्षाकालके बिना ही रुधिरकी वर्षा बरस कर कीच होगयी ॥ २८ ॥ सब योधाओंके मनोंको मूर्छित कर डालने वाले वज्रोंके धड़ाके भूकम्प और हाथियोंकी चिंघाड़ें होने लगीं ॥ २९ ॥ बिना ही मनुष्योंके बातें कानों सुनाई आने लगीं आकाशमेंसे अङ्गारे गिरने लगे और भयकी सूचना देने वाली गीदड़ियें भी बारम्बार भयङ्कर शब्द करने लगीं३०

सैनापत्ये यदा राजा गाङ्गेयमभिषिक्तवान्। तदैतान्युग्ररूपाणि बभूवुः शतशो नृप ॥३१॥ ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम्। वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान् गोभिर्निष्कैश्च भूरिशः ॥ ३२ ॥ वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः। आपगेयं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा ३३ स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह ॥ ३४ ॥ परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः। शिबिरं मापयामास समे देशे जनाधिपः ॥ ३५ ॥ मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने। यथैव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमाबभौ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि भीष्मसैनापत्ये षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

जनमेजय उवाच। आपगेयं महात्मानं भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्। पितामहं भारतानां ध्वजं सर्वमहीक्षिताम् ॥१॥ बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया पृथिवीसमम्। समुद्रमिव गाम्भीर्ये हिमवन्तमिव स्थिरम् २ प्रजापतिमिवौदार्ये तेजसा भास्करोपमम्। महेन्द्रमिव शत्रूणां ध्वंसनं शरवृष्टिभिः ॥ ३ ॥ रणयज्ञे प्रवितते सुभीमे लोमहर्षणे। दीक्षितं चिर-

---

हे राजन्! जब दुर्योधनने गङ्गापुत्र भीष्मजीका सेनापतिके पद पर अभिषेक किया उस समय इस प्रकार सैंकड़ों भयानक घटनायें होने लगीं ॥३१॥ शत्रुकी सेनाका संहार करने वाले भीष्मजीका सेनापतिके पद पर अभिषेक कर देने पर कुरुराजकुमार दुर्योधनने बहुत सी गौयें और सोनेकी मुहरें देकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उनके जयकार आशीर्वादोंसे वृद्धि पाता हुआ दुर्योधन सेनापतियोंके और भाइयोंके साथ गङ्गानन्दन भीष्मजीको आगे करके बडी भारी छावनीके साथ कुरुक्षेत्रमें पहुँच गया॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कुरुक्षेत्रमें पहुँच जाने पर हे राजन्! दुर्योधनने कर्णके साथ सब कुरुक्षेत्रमें फिर कर सपाट मैदानमें छावनी डाली ॥ ३५॥ छावनीके लिये उत्तम समझा हुआ स्थान मधुर, रसमय और बहुतसे भुस तथा ईंधनवाला था, जैसी शोभा हस्तिनापुरकी थी तैसी ही शोभा उस छावनीकी थी३६ एकसौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥

जनमेजयने पूछा, कि—हे वैशम्पायनजी! गङ्गाके पुत्र, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, भरतवंशी राजाओंके पितामह, सब राजाओंकी पताका रूप, बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान, क्षमामें पृथिवीकी समान, गंभीरतामें समुद्रकी समान, स्थिरतामें हिमालयकी समान, उदारता में ब्रह्माजीकी समान, तेजमें सूर्यकी समान और बाणोंकी वर्षासे

राजाय श्रुत्वा तत्र युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥ किमब्रवीन्महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः । भीमसेनार्जुनौ वापि कृष्णो वा प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच । आपद्धर्मार्थकुशलो महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः । सर्वान् भ्रातॄन् समानीय वासुदेवं च शाश्वतम् ॥ ६ ॥ उवाच वदतां श्रेष्ठः सान्त्वपूर्वमिदं वचः । पर्याक्रामत सैन्यानि यत्तास्तिष्ठत दंशिताः ७ पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति । तस्मात् सप्तसु सेनासु प्रणेतॄन्मम पश्यत ॥ ८ ॥ कृष्ण उवाच । यथार्हति भवान् वक्तुमस्मिन् काल उपस्थिते । तथेदमर्थवद्वाक्यमुक्तं ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥ रोचते मे महाबाहो क्रियतां यदनन्तरम् । नायकास्तव सेनायां क्रियन्तामिह सप्त वै ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच । ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम् । धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं धृष्टकेतुं च पार्थिव ॥ ११ ॥ शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं सहदेवञ्च मागधम् । एतान् सप्त महाभागान् वीरान् युद्धाभिकांक्षिणः ॥ १२ ॥ सेनाप्रणेतॄन् विधिवदभ्यषिञ्चद्युधिष्ठिरः । सर्वसेना-

---

शत्रुओंका नाश करनेमें महेन्द्रकी समान महात्मा भीष्मपितामहको रोमांच उत्पन्न करने वाले, महाभयानक तथा चिरकाल तक चलने वाले महारणयज्ञमें बहुत दिनोंके लिए दीक्षित हुआ जान कर, सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु युधिष्ठिर, भीमसेन तथा अर्जुनने क्या कहा? और श्रीकृष्णने क्या उत्तर दिया था सो कहो? ॥१-५॥ वैश० कहते हैं, कि—आपद्धर्ममें प्रवीण, वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने सब भाइयोंको और सनातन श्रीकृष्णको अपने पास बुलाकर समझाते हुये कहा, कि—तुम कवच पहर कर तयार होजाओ और सेनाओंमें घूमते रहो तथा भलेप्रकार सावधान रहो।६।७क्योंकि—तुम्हें पहिले ही भीष्मपितामहके साथ युद्ध करना पड़ेगा, तुम पहिले तो मेरी सात अक्षौहिणी सेनाके सात सेनापतियोंको नियत करो ।८। श्रीकृष्णजी बोले कि—हे भरतसत्तम राजन्! ऐसे समय पर आप सरीखे पुरुषको जैसी बात कहनी चाहिये वैसी ही प्रयोजनकी बात आपने कही है ॥ ९ ॥ हे महाबाहु राजन्! मुझे भी यह बात रुचती है, इसलिये अब तुम अपनी सेनामें सात सेनापतियोंको नियत करो ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर राजा युधिष्ठिरने द्रुपद, विराट सात्यकी पंचालराजका पुत्र धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, शिखण्डी और मगधदेशका राजा सहदेव, इन युद्धकी इच्छा करनेवाले सात महाभाग्यशाली वीरों

सेनापतिं चात्र धृष्टद्युम्नञ्चकार ह ॥ १३ ॥ द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्धाज्जातवेदसः । सर्वेषामेव तेषां तु समस्तानां महात्मनाम् ॥ १४ ॥ सेनापतिपतिं चक्रे गुडाकेशं धनञ्जयम् । अर्जुनस्यापि नेता च संयंता चैव वाजिनाम् ॥ १५ ॥ संकर्षणानुजः श्रीमान्महाबुद्धिर्जनार्दनः । तद् दृष्ट्वोपस्थितं युद्धं समासन्नं महात्ययम् ॥ १६ ॥ प्राविशद्भवनं राजन् पाण्डवानां हलायुधः । सहाक्रूरप्रभृतिभिर्गदसाम्बोद्धवादिभिः ॥१७॥ रौक्मिणेयाहुकसुतैश्चारुदेष्णपुरोगमैः ॥ वृष्णिमुख्यैरधिगतैर्व्याघ्रैरिव बलोत्कटैः ॥ १८ ॥ अभिगुप्तो महाबाहुर्मरुद्भिरिव वासवः । नील-कौशेयवसनः कैलासशिखरोपमः ॥ १९ ॥ सिंहखेलगतिः श्रीमान् मद-रक्तान्तलोचनः । तं दृष्ट्वा धर्मराजश्च केशवश्च महाद्युतिः ॥ २० ॥ उदतिष्ठत्ततः पार्थो भीमकर्मा वृकोदरः ॥ गाण्डीवधन्वा ये चान्ये राजानस्तत्र केचन ॥ २१ ॥ पूजयांचक्रिरे ते वै समायान्तं हलायु-धम् । ततस्तं पाण्डवो राजा करे पस्पर्श पाणिना ॥२२॥ वासुदेवपुरो-

---

को अपने सामने बुलाकर शास्त्रकी विधिके अनुसार इनका सेनापति के पदों पर अभिषेक कर दिया और इन सब सेनापतियोंके अधि-पतिरूपसे धृष्टद्युम्नका अभिषेक कर दिया ॥ ११—१३ ॥ क्योंकि— वह द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिए धकधकाते हुए अग्निमेंसे उत्पन्न हुआ था, सब सेनापतियोंके ऊपर अधिपतिका काम गुडाकेश अर्जुन को दिया गया था, अर्जुनके भी आज्ञादाता तथा उसके रथके घोड़ोंको अपने वशमें रखनेवाले बलदेवजीके छोटे भाई महाबुद्धिमान श्रीमान् जनार्दन थे, हे महाराज ! महासंहार करनेवाला युद्ध समीपमें आ लगा है, यह देखकर श्याम वर्णके चिकने वस्त्र धारण करने वाले कैलास पर्वतके शिखरकी समान ऊँचे मदके कारण ही जिनकी आँखों के कोये लाल रहते थे, क्रीड़ा करते हुएसे सिंहकी समान चाल वाले महाबाहु श्रीमान् हलधारी बलदेवजी जैसे देवता इन्द्रकी रक्षा करते हैं तैसे ही व्याघ्रकी समान उत्कटबली अक्रूर, उद्धव, गद, साम्ब, आहुकके पुत्र और चारुदेष्ण आदि जिनमें आगे थे ऐसे वृष्णिवंशके मुख्य २ पुरुषोंसे रक्षा पाते हुए पाण्डवोंकी छावनीमें आपहुँचे, बल-देवजीको आते हुए देखकर महाकान्ति वाले युधिष्ठिर कृष्ण गांडीव धनुषधारी अर्जुन, भयानक कर्म करनेवाला भीमसेन तथा जो राजे वहाँ उपस्थित थे वह सब खड़े होगए और उन्होंने हलायुध बलदेव जीका सत्कार किया, राजा युधिष्ठिरने बलदेवजीसे हाथसे हाथ

गास्तं सर्वं एवाभ्यवादयन् । विराटद्रुपदौ वृद्धावभिवाद्य हलायुधः ॥२३॥ युधिष्ठिरेण सहित उपाविशदरिन्दमः । ततस्तेषूपविष्टेषु पार्थिवेषु समन्ततः । वासुदेवमभिप्रेक्ष्य रौहिणेयोऽभ्यभाषत ॥२४॥ भवितायं महारौद्रो दारुणः पुरुषक्षयः । दिष्टमेतत् ध्रुवं मन्ये न शक्यमतिवर्त्तितुम् ॥ २५ ॥ तस्माद् युद्धात् समुत्तीर्णानपि वः ससुहृज्जनान् । अरोगानक्षतैर्देहैर्द्रष्टास्मीति मतिर्मम ॥ २६ ॥ समेतं पार्थिवं क्षत्रं कालपक्वमसंशयम् । विमर्दश्च महान् भावी मांसशोणितकर्दमः ॥ २७ ॥ उक्तो मया वासुदेवः पुनः पुनरुपह्वरे । सम्बन्धिषु समां वृत्तिं वर्त्तस्व मधुसूदन ॥ २८ ॥ पाण्डवा हि यथास्माकं तथा दुर्योधनो नृपः । तस्यापि क्रियतां साह्यं स पर्येति पुनः पुनः ॥ २९ ॥ तच्च मे नाकरोद्वाक्यं त्वदर्थे मधुसूदनः । निर्विष्टः सर्वभावेन धनञ्जयमवेक्ष्य ह ॥३०॥ ध्रुवो जयः पाण्डवानामिति मे निश्चिता मतिः । तथा ह्यभि-

---

मिलाया ॥ १४—२२ ॥ और श्रीकृष्ण आदि सब पुरुषोंने बलदेवजी को प्रणाम किया, शत्रुका दमन करनेवाले बलदेवजी बूढे राजा द्रुपद और विराटको प्रणाम करके राजा युधिष्ठिरके साथ आसन पर बैठ गए तब और राजे भी चारों ओरसे बैठ गए; तदनन्तर रोहिणीपुत्र बलदेवजी श्रीकृष्णजीकी ओरको देखकर कहने लगे, कि-॥२३॥२४॥ अब महाभयानक और दारुणयुद्ध होगा, उसमें असंख्यों मनुष्योंका नाश होगा, इसको मैं निःसन्देह दैवी लीला समझता हूँ और इसको कोई भी हटा नहीं सकता॥२५॥ मैं तुम सम्बन्धियोंको युद्धमें विजय पाये हुए, नीरोग तथा घावरहित शरीरोंवाले फिर भी देखना चाहता हूँ ॥ २६ ॥ परन्तु इन इकट्ठे हुए क्षत्रियोंका काल आगया है, इस युद्ध में बड़ा भारी संहार होगा तथा मांस और लोहूकी कीच उठ आवेगी ॥ २७ ॥ इतना कह कर उन्होंने कहा, कि—मैंने बारंबार श्रीकृष्णसे एकान्तमें कहा, कि—हे मधुसूदन ! तुम सम्बन्धियोंसे एकसा वर्त्ताव करना ॥ २८ ॥ हमारे जैसे पाण्डव सम्बन्धी हैं तैसे ही राजा दुर्योधन भी हमारा संबन्धी है, इस लिये तुम दुर्योधनकी भी सहायता करो, क्योंकि—वह भी बारम्बार सहायता माँगता है ॥२९॥ परन्तु तुम्हारे लिये श्रीकृष्णने मेरा कहना नहीं माना और इस बातका कारण अर्जुन है, श्रीकृष्ण अर्जुनको देखते ही सब प्रकारसे अर्जुनके ऊपर मोहित होजाते हैं ॥ ३० ॥ मैं निःशङ्क होकर मानता हूँ, कि-युद्धमें पाण्डवोंकी विजय होगी और हे भरत-

निवेशोऽयं वासुदेवस्य भारत ॥ ३१ ॥ न चाहमुत्सहे कृष्णमृते लोकमुदीक्षितुम् । ततोऽहमनुवर्त्तामि केशवस्य चिकीर्षितम् ॥ ३२ ॥ उभौ शिष्यौ हि मे वीरौ गदायुद्धविशारदौ । तुल्यस्नेहोऽस्म्यतो भीमे तथा दुर्योधने नृपे ॥३३॥ तस्माद्यास्यामि तीर्थानि सरस्वत्या निषेवितुम् । न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम् ॥३४॥ एवमुक्त्वा महाबाहुरनुज्ञातश्च पाण्डवैः । तीर्थयात्रां ययौ रामो निवर्त्य मधुसूदनम् ३५

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि बलरामतीर्थयात्रागमने सप्तपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

वैशम्पायन उवाच । एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मकस्य महात्मनः । हिरण्यरोम्णो नृपतेः साक्षादिन्द्रसखस्य वै ॥ १ ॥ आकृतीनामधिपतिर्भोजस्यातियशस्विनः । दक्षिणात्यपतेः पुत्रो दिक्षु रुक्मीति विश्रुतः२ यः किंपुरुषसिंहस्य गन्धमादनवासिनः । कृत्स्नं शिष्यो धनुर्वेदं चतुष्पादमवाप्तवान् ॥ ३ ॥ यो माहेन्द्रं धनुर्लेभे तुल्यं गाण्डीवतेजसा । शार्ङ्गेण च महाबाहुः सम्मितं दिव्यलक्षणम् ॥ ४ ॥ त्रीण्येवैतानि

वंशी राजन् ! श्रीकृष्णका विचार भी ऐसा ही है ॥ ३१ ॥ मैं श्रीकृष्णके बिना इस लोकको देखना नहीं चाहता और इस कारणसे ही श्रीकृष्ण जो कुछ करना चाहते हैं उसके ही अनुसार मैं भी चला करता हूँ ॥ ३२ ॥ गदायुद्धमें चतुर दोनों वीर पुरुष मेरे शिष्य हैं, उन भीमसेन और राजा दुर्योधनके ऊपर मेरा प्रेम एक समान है ॥३३॥ परन्तु कौरवोंका नाश हो और मैं उपेक्षा करूँ, यह मुझसे नहीं होसकता, इस लिये मैं सरस्वतीके तीर्थोंका सेवन करनेको चला जाऊँगा ३४ इस प्रकार महाबुद्धिमान् बलदेवजीके कहनेपर पाण्डवोंने उनको जानेकी आज्ञा देदी तब बलदेवजी अपनेको पहुँचाने आये हुये मधुसूदन श्रीकृष्णको पीछेको लौटाकर तीर्थयात्रा करनेको चलेगये ॥३५॥ एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५७ ॥ छ छ

वैशम्पायन कहतेहैं, कि—हे जनमेजय ! बलदेवजी यात्रा करनेको गये, इसी समय साक्षात् इन्द्रका मित्र दक्षिणके देशका स्वामी, बड़े यश वाला, सुवर्णकी समान जिसके रोंगटे थे ऐसा भोजपति महात्मा भीष्मक राजाका पुत्र, सत्यसङ्कल्प करने वाला तथा जो सब दिशाओंमें रुक्मी नामसे प्रसिद्ध था वह बड़ी २ भुजाओंवाला राजा मेघकी समान गर्जना करता हुआ, विजय पाने वाले धनुषको धारण करके सब जगत्को भयभीत करता २ पाण्डवोंके पास आनेके लिये

दिव्यानि धनूंषि दिविचारिणाम्।वारुणं गाण्डिवं तत्र माहेन्द्रं विजयं धनुः। शार्ङ्गं तु वैष्णवं प्राहुर्दिव्यं तेजोमयं धनुः ५ धारयामास तत् कृष्णः परसेनाभयावहम्। गाण्डीवं पावकाल्लेभे खाण्डवे पाकशासनिः ॥ ६ ॥ द्रुमाद्रुक्मी महातेजा विजयं प्रत्यपद्यत। संच्छिद्य मौरवान् पाशान् निहत्य मुरमोजसा ॥ ७ ॥ निर्जित्य नरकं भौममाहृत्य मणिकुण्डले। षोडशस्त्रीसहस्राणि रत्नानि विविधानि च ॥८॥ प्रतिपेदे हृषीकेशः शार्ङ्गं च धनुरुत्तमम्। रुक्मी तु विजयं लब्ध्वा धनुर्मेघनिभस्वनम् ॥ ९॥ विभीषन्निव जगत् सर्वं पाण्डवानभ्यवर्त्तत। नामृष्यत पुरा योऽसौ स्वबाहुबलगर्वितः॥ १० ॥ रुक्मिण्या हरणं वीरो वासुदेवेन धीमता। कृत्वा प्रतिज्ञां नाहत्वा निवर्त्तिष्ये जनार्दनम् ।११। ततोऽन्वधावद्वार्ष्णेयं सर्वशस्त्रभृतां वरः। सेनया चतुरंगिण्या महत्या दूरपातया॥१२॥विचित्रायुधवर्मिण्या गंगयेव प्रवृद्धया। स समासाद्य

बड़ी सेनाके साथ चलपड़ा, वह गन्धमादन पहाड़ पर रहनेवाले किंपुरुष सिंहद्रुमका शिष्य था और उससे धनुर्वेदकी चारों प्रकारकी विद्याको पूर्ण रीतिसे सीखा था, उसने तेजमें गाण्डीव और शार्ङ्ग धनुषकी समान, दिव्य लक्षणों वाला विजय नामका महेन्द्रका धनुष भी पालिया था, देवताओंमें वरुणका गांडीव महेन्द्रका विजय और विष्णुका शार्ङ्ग धनुष दिव्य और परम तेजस्वी कहलाता है, शत्रुकी सेनाको भय देनेवाले शार्ङ्ग नामके धनुषको श्रीकृष्ण धारण करते हैं, इन्द्रपुत्र अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निसे गांडीव धनुष पाया था और महातेजस्वी रुक्मीने द्रुमसे विजय नामका धनुष पाया था, श्रीकृष्ण ने मुरदैत्यकी फैंकीहुई आँतोंकी सब फाँसियोंको काटकर बलात्कार से उस दैत्यको मारडाला था और पृथ्वीके पुत्र नरकासुरको जीतकर अदितिके मणिजड़े दोनों कुंडल, सोलह हजार स्त्रियें, नानाप्रकारके रत्न और शार्ङ्ग नामका उत्तम धनुष यह सब पाये थे। पहिले अपने बाहुबलसे गर्वीला बनकर वीरवर रुक्मी, बुद्धिमान् श्रीकृष्णके किये हुये रुक्मिणीहरणको नहीं सहसका था, मैं श्रीकृष्णका प्राणान्त किये विना पीछेको नहीं लौटूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके, जलसे वृद्धिको प्राप्त हुई गंगा नदीकी समान बहुत ही दूर तक फैली हुई विचित्र प्रकारके शस्त्र और कवचोंवाली बड़ी भारी चतुरंगिनी सेनाको साथ लेकर सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजीके पीछे दौड़ा था परंतु दुर्जियंजी योगेश्वर श्रीकृष्णका सामना होते ही वह हारगया था,

वार्ष्णेयं योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥१३॥ ध्वंसितो व्रीडितो राजन् नाजगाम स कुण्डिनम्। यत्रैव कृष्णेन रणे निर्जितः परवीरहा ॥१४॥ तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम्। सैन्येन महता तेन प्रभूतगजवाजिना ॥१५॥ पुरं तद् भुवि विख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप। स भोजराजः सैन्येन महता परिवारितः ॥ १६ ॥ अक्षौहिण्या महावीर्यः पांडवान् क्षिप्रमागमत्। ततः स कवची धन्वी तली खड्गी शरासनी ७ ध्वजेनादित्यवर्णेन प्रविवेश महाचमूम्। विदितः पाण्डवेयानां वासुदेवप्रियेप्सया ॥१८॥ युधिष्ठिरस्तु तं राजा प्रत्युद्गम्याभ्यपूजयत्। स पूजितः पाण्डुपुत्रैर्यथान्यायं सुसंस्तुतः॥१९॥प्रतिगृह्य तु तान् सर्वान् विश्रान्तः सहसैनिकः। उवाच मध्ये वीराणां कुंतीपुत्रं धनञ्जयम् ।२०। सहायोऽस्मिन् स्थितो युद्धे यदि भीतोऽसि पांडव। करिष्यामि रणे साह्यमसह्यं तव शत्रुभिः ॥ २१ ॥ न हि मे विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन। हनिष्यामि रणे भागं यन्मे दास्यसि पांडव ॥२१॥ अपि

तथा लज्जाका मारा कुण्डिनपुरमें नहीं घुसा था, किन्तु जिस स्थान पर शत्रुओंका नाश करने वाले उस वीरको श्रीकृष्णजीने हराया था तहाँ ही भोजकट नामका एक उत्तम नगर बसालिया, हे महाराज! बहुतसे हाथी घोड़ोंवाली बड़ीभारी सेनासे भरा हुआ वह नगर इस समय भी पृथ्वीपर भोजकट नामसे प्रसिद्ध है, उस नगरका राजा बड़ा शक्तिमान् भोजराज, बड़ीभारी सेनासे घिरकर एक अक्षौहिणी सेनाके साथ तुरन्त पाण्डवोंके पास आपहुँचा उसने कवच, धनुष, चमड़ेके मोजे, तलवार; बाण आदि धारण किये थे, और पांडव उस को जानते थे, रुक्मी श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये सूर्यकी समान चमकती हुई ध्वजाके साथ पांडवोंकी महासेनामें आपहुँचा ॥१-१८॥ दूरसे ही उसको आते हुए देखकर राजा युधिष्ठिर उसके सामने गए और उसका यथायोग्य सत्कार किया, पांडुके और पुत्रोंने भी रीति के अनुसार उसकी पूजा तथा स्तुति की ॥ १९ ॥ रुक्मीभी उसी समय उन सबोंकी पूजा करके सेनाके सहित विश्राम लेनेलगा, विश्राम लेनेके अनन्तर वीरोंके बीचमें बैठेहुए कुंतीपुत्र अर्जुनसे उसने कहा, कि-२०हे पांडव ! यदि तुझे रणमें भय लगता हो तो मैं सहायक बन कर खड़ा हूँ, मैं रणमें तुझे ऐसी सहायता दूँगा, कि- जिसको सहना शत्रुओंको कठिन होजायगा ॥२१॥ इस लोकमें मेरी समान पराक्रमी कोई भी पुरुष नहीं है, इसलिये हे पाण्डव ! तू मुझे

द्रोणकृपौ वीरौ भीष्मकर्णावथो पुनः । अथवा सर्वे एवैते तिष्ठन्तु वसुधाधिपाः ॥२३॥ निहत्य समरे शत्रूंस्तव दास्यामि मेदिनीम् । इत्युक्तो धर्मराजस्य केशवस्य च सन्निधौ ॥ २४ ॥ शृण्वतां पार्थिवेन्द्राणामन्येषां चैव सर्वशः । वासुदेवमभिप्रेक्ष्य धर्मराजञ्च पाण्डवम् ॥ २५ ॥ उवाच धीमान् कौन्तेयः प्रहस्य सखिपूर्वकम् । कौरवाणां कुले जातः पांडोः पुत्रो विशेषतः ॥ २६ ॥ द्रोणं व्यपदिशन् शिष्यो वासुदेवसहायवान् । भीतोऽस्मीति कथं ब्रूयां दधानो गाण्डिवं धनुः ॥ २७ ॥ युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः । सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत् सखा मम ॥ २८ ॥ यथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले । खाण्डवे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥ २९ ॥ निवातकवचैर्युद्धे कालकेयैश्च दानवैः । तत्र मे युध्यमानस्य कः सहायस्तदाभवत् ॥३० ॥ तथा विराटनगरे कुरुभिः सह संगरे । युध्यतो बहुभिस्तत्र कः सहायोऽभवन्मम ॥ ३१ ॥ उपजीव्य रणे रुद्रं शक्रं वैश्रवणं यमम् । वरुणं

सेनाका जौनसा भाग लड़नेके लिये देगा, उस ही भागका मैं रणमें नाश करडालूँगा ॥ २२ ॥ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्मजी वा कर्ण चाहे जो वीर होगा उसका मैं नाश कर सकूँगा, अथवा ये सब राजे इकट्ठे होकर मेरे सामने आजायँगे तो भी देखलूँगा ॥ २३ ॥ मैं युद्ध में शत्रुओंका संहार कर पृथ्वी जीतकर तुझे देदूँगा, इसप्रकार श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरके समीपमें दूसरे राजाओंके सुनते हुए रुक्मीने अर्जुन से कहा, तब धीमान् अर्जुन श्रीकृष्ण और धर्मराजके मुखकी ओरको देख अच्छे प्रकारसे हँसकर शान्तभावसे कहनेलगा, कि-मैंने कौरवों के कुलमें जन्म लिया है, तिसपर भी पाण्डुका पुत्र हूँ द्रोणाचार्यका शिष्य कहलाता हूँ, श्रीकृष्ण मुझे सहायता देरहे हैं और गाण्डीव धनुष मेरे पास है, फिर मैं यह कैसे कहसकता हूँ, कि-मैं डरगया ।२४-२७। हे वीर ! मैं जब महाबली गन्धर्वोंके साथ घोषयात्रामें लड़ता था उस समय वहाँ मेरा सहायक कौन था ? ॥ २८ ॥ तैसे ही देवता और दानवोंसे भरेहुए, सामनेसे देखते ही भय देनेवाले खाण्डववनमें युद्ध करता था तब मेरा सहायक कौन था ? ॥ २९ ॥ जब मेरा निवातकवच और कालकेय नामवाले दानवोंके साथ युद्ध हुआ था तहाँ लड़ते हुए मेरा उस समय कौन सहायक हुआ था ॥ ३० ॥ तथा विराटनगर में अनेकों कौरवोंके साथ युद्ध हुआ था तो उस समय मेरी सहायता किसने करी थी ? ॥ ३१ ॥ मैंने रणमें शंकर, इन्द्र, वरुण, यमराज,

पावकञ्चैव कृपं द्रोणञ्च माधवम् ॥ ३२ ॥ धारयन् गांडिवं दिव्यं धनुस्तेजोमयं दृढम् । अक्षय्यशरसंयुक्तो दिव्यास्त्रपरिबृंहितः ॥३३॥ कथमस्मद्विधो ब्रूयाद्भीतोऽस्मीति यशोहरम् । वचनं नरशार्दूल वज्रायुधमपि स्वयम् ॥ ३४ ॥ नास्मि भीतो महाबाहो सहायार्थश्च नास्ति मे । यथाकामं यथायोगं गच्छ वान्यत्र तिष्ठ वा ॥३५॥ विनिवर्त्य ततो रुक्मी सेनां सागरसन्निभाम् । दुर्योधनमुपागच्छत्तथैव भरतर्षभ ३६ तथैव चाभिगम्यैनमुवाच वसुधाधिपः । प्रत्याख्यातश्च तेनापि स तदा शूरमानिना ॥ ३७ ॥ द्वावेव तु महाराज तस्मात् युद्धादपेयतुः । रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिपः ॥ ३८ ॥ गते रामे तीर्थयात्रां भीष्मकस्य सुते तथा । उपाविशन् पांडवेया मन्त्राय पुनरेव च ३९

कुबेर, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और बलदेवजीकी उपासना करी है ॥ ३२ ॥ उनके प्रतापसे तेजभरा और दृढ़, गाण्डीव धनुष, अक्षय बाण तथा दिव्य शस्त्र मुझे मिले हैं ॥ ३३ ॥ मैं युद्धसे डरता हूँ, ऐसी यशका नाश करने वाली बात मुझसरीखा पुरुष कैसे कहसकता है ? हे पुरुषसिंह ! मुझसरीखा पुरुष तो वज्रधारी इन्द्रके सामने भी ऐसी बात नहीं कहसकता फिर औरोंके सामने तो कहना ही क्या ? ॥३४॥ हे महाबाहु ! मैं युद्धसे नहीं डरता हूँ तथा मुझे सहायकोंकी भी आवश्यकता नहीं है इसलिये तुम्हारी इच्छाके अनुसार और अवकाशके अनुसार तुम्हें यहाँ रहना हो तो यहाँ रहजाओ और दूसरी जगह जाना हो तो भले ही चलेजाओ ॥३५॥ हे भरतसत्तम ! अर्जुनकी इस बातको सुनकर रुक्मी सागरकी समान बडी भारी सेनाको पीछेको लौटाकर जैसे आया था तैसे ही दुर्योधनके पास चलागया ३६ और उससे भी इसीप्रकार कहा तब शूरताका अभिमान रखनेवाले दुर्योधनने भी उसी समय उसकी सहायता लेनेके विषयमें निषेध कर दिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! रोहिणीपुत्र बलदेवजी और रुक्मी ये दो भारतके युद्धमेंसे निकल कर चलेगये थे ॥ ३८ ॥ बलदेवजी तीर्थयात्रा करनेको चलेगये और रुक्मी अपने घरको लौटगया, तदनन्तर फिर पांडव युद्धके विषयका विचार करनेके लिये एकान्तमें जा बैठे ३९ हे भरतवंशी राजन् ! उस समय अनेकों राजाओंसे भरी धर्मराजकी सभा जैसे तारोंसे चित्रविचित्र हुआ आकाश चन्द्रमासे शोभा पाता है

समितिर्धर्मराजस्य सा पार्थिवसमाकुला। शुशुभे तारकैश्चित्रा द्यौर्नभस्येव भारत ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि रुक्मिप्रत्याख्यानेऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

जनमेजय उवाच। तथा व्यूढेष्वनीकेषु कुरुक्षेत्रे द्विजर्षभ। किमकुर्वंश्च कुरवः कालेनाभिप्रचोदिताः ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच। तथा व्यूढेष्वनीकेषु यत्तेषु भरतर्षभ। धृतराष्ट्रो महाराज सञ्जयं वाक्यमब्रवीत ॥ २ ॥ एहि सञ्जय सर्वं मे आचक्ष्वानवशेषतः। सेनानिवेशे यद्वृत्तं कुरुपांडवसेनयोः ॥३॥ दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषञ्चाप्यनर्थकम्। यदहं बुध्यमानोऽपि युद्धदोषान् क्षयोदयान् ॥ ४ ॥ तथापि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम्। न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्त्तुं वा हितमात्मनः ॥५॥ भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी। दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्त्तते ६ एवं गते वै यद् भावि तद्भविष्यति सञ्जय। क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागो हि पूजितः॥ ७ ॥ सञ्जय उवाच। त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथेच्छसि। न तु दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ८

तैसे ही शोभायमान थी ॥४०॥ एकसौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त१५८

जनमेजयने पूछा, कि–हे ब्राह्मणश्रेष्ठ वैशम्पायन! कुरुक्षेत्रमें सेनायें व्यूहरचनामें गूँथीजाने पर कालके प्रेरणा किये हुए कौरवों ने क्या २ किया था सो कहो? ॥ १ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–हे भरतसत्तम! जब सेनायें व्यूहरचनासे चुनी जाकर तयार होगयीं तब धृतराष्ट्रने सञ्जयसे कहा, कि–॥ २ ॥ हे सञ्जय! यहाँ आ और कौरव पांडवोंकी सेनाके पड़ावमें जो कुछ वृत्तान्त हुआ हो सो मुझे सुना ॥ ३ ॥ मैं भाग्यको ही मुख्य मानता हूँ और पुरुषार्थको निरर्थक समझता हूँ, मैं युद्धके दोषोंको जानता हूँ कि–उसमें परिणाममें नाश ही होता है॥४॥तो भी मैं कपटसे प्रेम करनेवाले दुष्ट और जुआ खेलनेवाले पुत्रको वशमें करनेको अथवा अपना हित करनेको समर्थ नहीं हूँ ॥ ५ ॥ हे सूत! मेरी बुद्धि दोषोंको जानती है; परन्तु दुर्योधनसे मिलने पर फिर पलटजाती है ॥ ६ ॥ हे सञ्जय! इस दशामें जो कुछ होना है सो हो रहेगा, जिसमें रणके विषें शरीरको त्यागना पड़ता है ऐसा क्षत्रियका धर्म वास्तवमें पूजनीय है ॥ ७ ॥ सञ्जय बोला, कि–हे राजन्! तुम जो चाहते हो उसके अनुसार ही यह तुम्हारा प्रश्न है, इस दोषको तुम दुर्योधनके शिर नहीं मढ़ सकते ।८

शृणुष्वानवशेषेण वदतो मम पार्थिव । य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः। न स कालं न वा देवानेनसा गंतुमर्हति ॥ ९ ॥ महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् । स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ १० ॥ निकारा मनुजश्रेष्ठ पांडवैस्त्वत्प्रतीक्षया । अनुभूताः सहामात्यैर्निकृतैरधिदेवने ॥ ११ ॥ हयानाञ्च गजानाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् । वैशसं समरे वृत्तं यत्तन्मे शृणु सर्वशः ॥ १२ ॥ स्थिरो भूत्वा महाप्राज्ञ सर्वलोकक्षयोदयम् यथाभूतं महायुद्धे श्रुत्वा चैकमना भव ॥१३॥ न ह्येव कर्त्ता पुरुषः कर्मणो शुभपापयोः । अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥१४॥ केचिदीश्वरनिर्दिष्टाः केचि-

---

हे राजन् ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ उसको तुम पूर्ण रीतिसे सुनो, जो पुरुष अपने दुराचरणसे अशुभफल पाता है वह अपने दुराचरणके कारण कालको अथवा देवताओंको दोष नहीं देसकता ॥ ९ ॥ हे महाराज ! मनुष्योंमें जो पुरुष सबसे निन्दित कर्म किया करता है वह पुरुष अधम काम करनेके कारण सब लोगोंसे मारनेके योग्य हो जाता है ॥१०॥ हे महाराज ! पांडव जुएमें हारजानेके अनन्तर केवल तुम्हारे मुखकी लज्जाके कारण मंत्रियों सहित अपमानको सहन कर लिया करते थे ॥ ११ ॥ अब जो यह हाथी, घोड़े और परम तेजस्वी राजाओंके संहारका समय आरम्भ हुआ है, उस बातको तुम मुझसे पूर्णरीतिसे सुनो ॥ १२ ॥ हे महाबुद्धिमान् राजन् ! महायुद्धमें सब लोगोंके संहारका ठीक २ वृत्तांत तुम मनको स्थिर करके सुनो ।१३। और फिर तुम अपने मनमें निश्चय करो कि-पाप और पुण्य कर्मका करने वाला पुरुष नहीं है, किन्तु पुरुष स्वयं तो पराधीन है परन्तु लकड़ीके यन्त्र वाले एक पुतलेकी समान दूसरेकी प्रेरणासे स्वयं कर्म करता है ॥१४॥ शुभ अशुभ करनेमें तीन प्रकारके मत देखनेमें आते हैं, कोई कहते हैं, कि-प्राणी ईश्वरकी आज्ञासे शुभ अशुभ कर्म करता है, कितने ही कहते हैं, कि-प्राणी दैवकी इच्छासे शुभ अशुभ कर्म करता है तो दूसरे कितने ही कहते हैं, कि—प्राणी पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके अनुसार इस लोकमें शुभ अशुभ कर्म करता है, इसप्रकार तीन मत देखनेमें आते हैं इसलिये तुम ऊपर कहे तीनोंमेंसे किसी एक कारणवश अनर्थमें आपड़े हो, सो अब मनको स्थिर

दैव यदृच्छया । पूर्वकर्मनिरुद्धन्ते त्वेवमेतत् प्रदृश्यते । तस्मादनर्थ-
मापन्नः स्थिरो भूत्वा निशामय ॥ १५ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि सैन्यनिर्याणपर्वणि सञ्जय-
वाक्ये ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

समाप्तञ्च सैन्यनिर्याणपर्व

अथ उलूकदूतागमनपर्व ।

सञ्जय उवाच । हिरण्वत्यां निविष्टेषु पांडवेषु महात्मसु । न्यवि-
शन्त महाराज कौरवेया यथाविधि ॥ १ ॥ तत्र दुर्योधनो राजा
निवेश्य बलमोजसा । संमानयित्वा नृपतीन् न्यस्य गुल्मांस्तथैव च २
आरक्षस्य विधिं कृत्वा योधानां तत्र भारत । कर्णं दुःशासनञ्चैव
शकुनिञ्चापि सौबलम् ॥ ३ ॥ आनाय्य नृपतिस्तत्र मन्त्रयामास भारत ।
तत्र दुर्योधनो राजा कर्णेन सह भारत । सम्भाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा
दुःशासनेन च । सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ ॥ ५ ॥ आहू-
योपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत् । उलूक गच्छ कैतव्य पांडवान् सह-
सोमकान् ॥ ६ ॥ गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः । इदं तत्

करके मैं जो कहता हूँ उसको सुनो ॥ १५ ॥ एक सौ उनसठवाँ
अध्याय समाप्त ॥ १५९ ॥ छ छ छ छ छ

❀ उलूकदूतागमनपर्व ❀

सञ्जय कहता है, कि—हे महाराज! महात्मा पाण्डवोंने हिरण्वती
नदीके किनारे पर छावनी डालकर निवास किया, उसी समय
कौरवोंने भी शास्त्रोक्त विधिसे दूसरे स्थानमें अपना पड़ाव डाल
दिया ॥ १ ॥ फिर राजा दुर्योधनने बलसे सेनाको योग्य स्थानों पर
ठहराकर आयेहुए राजाओंका बड़ा ही सत्कार किया तथा सेनाकी
टुकड़ियोंको अलग २ स्थानों पर चुन दिया ॥ २ ॥ हे भारत ! तद-
नन्तर वहाँ योधाओंकी रक्षा योग्य वस्तुओंकी चारों ओरसे रक्षा
का प्रबन्ध करके कर्ण, दुःशासन और सुबलपुत्र शकुनिको बुलवाया,
और हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ भरतवंशी राजन् ! फिर राजा दुर्योधनने वहाँ
कर्णके साथ बातें करके कर्ण, भाई दुःशासन तथा सुबलपुत्र शकुनि
के साथ कुछ गुप्त विचार किया ॥ ३-५ ॥ फिर एकान्तमें उलूकको
बुलाकर उससे कहा, कि—हे जुआरीके पुत्र उलूक ! तू पाण्डवोंके
और सोमक राजाओंके पास जा ॥ ६ ॥ वहाँ श्रीकृष्ण सुनते इस
प्रकार उनको मेरी ओरसे यह बात सुनाना, कि—जिसको तुम वर्षों

समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ॥ ७ ॥ पांडवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयंकरम्। यदेतत् कत्थनावाक्यं सञ्जयो महदब्रवीत् ॥ ८ ॥ वासुदेवसहायस्य गर्जतः सानुजस्य ते। मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः ॥९॥ यथा वः सम्प्रतिज्ञातं तत् सर्वं क्रियतामिति ज्येष्ठं तथैव कौन्तेयं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम। ॥ १० ॥ भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः। कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः ॥ ११ ॥ य इच्छसि जगत् सर्वं नश्यमानं नृशंसवत्। अभयं सर्वभूतेभ्यो दाता त्वमिति मे मतिः ॥ १२ ॥ श्रूयते हि पुरा गीतः श्लोकोऽयं भरतर्षभ। प्रह्लादेनाथ भद्रन्ते हृते राज्ये तु दैवतैः ॥ १३ ॥ यस्य धर्मध्वजो नित्यं सुरा ध्वज इवोच्छ्रितः। प्रच्छन्नानि च पापानि वैडालं नाम तद् व्रतम् ॥ १४ ॥ अत्र ते वर्त्तयिष्यामि आख्यानमिदमुत्तमम्। कथितं नारदेनेह पितुर्मम नराधिप ॥ १५ ॥ मार्जारः किल

से विचारा करते थे वह युद्ध सो अब आगया ॥ ७ ॥ पाण्डव और कौरवोंमें होनेवाला युद्ध लोगोंको भय उत्पन्न करने वाला है, हे अर्जुन! तूने श्रीकृष्णकी सहायतासे अपने भाइयोंके साथ रहकर गर्जना करते हुए अपने विषयमें जो महाप्रशंसाके वाक्य सुनाये थे सञ्जयने आकर वह वाक्य कौरवोंकी सभामें प्रकटरूपसे कहे थे उन को सच्चे करके दिखानेका भी अब समय आगया है ॥८॥९॥ तुमने जिसप्रकार प्रतिज्ञाकी थी वह सब पूरे करके दिखाओ, और हे उलूक! भाइयोंके तथा सोमक वंशके, और केकय वंशके राजाओंके साथ बैठेहुए कुन्तीके बड़े पुत्र युधिष्ठिरसे भी मेरे कहनेके अनुसार तू कहना कि-तू प्रसिद्ध धर्मात्मा होकर अधर्मके काममें मनको क्यों लगाता है ? ॥ १० ॥ ११ ॥ तू क्रूर पुरुषकी समान इस सब जगत् का नाश करना क्यों चाहता है ? मेरे विचारके अनुसार तो तुम इस सब जगत्को अभय देनेवाले हो ? ॥१२॥ हे भरतसत्तम राजन्! सुननेमें आया है, कि-पहिले जब देवताओंने राज्य छीन लिया था तब प्रह्लादने इस प्रकार एक श्लोक कहा था, कि-॥ १३ ॥ हे देवताओं! जिनका धर्म-चिन्ह ऊँची उठीहुई ध्वजाकी समान सदा प्रकाशित रहता है और सब पाप छुपे हुए होते हैं उनके इस व्यवहारको वैडालव्रत कहते हैं ॥१४॥ हे राजन्! इस विषयमें नारदजीने मेरे पितासे एक उत्तम कथा कही थी वह मैं तुमसे कहता हूँ उसको सुन ॥१५॥ हे राजन्! किसी एक समय कोई एक दुष्टात्मा बिलाव

दुष्टात्मा निश्चेष्टः सर्वकर्मसु । ऊर्ध्वबाहुः स्थितो राजन् गंगातीरे कदाचन । १६। स वै कृत्वा मनःशुद्धिं प्रत्ययार्थं शरीरिणाम् । करोमि धर्ममित्याह सर्वानेव शरीरिणः ॥ १७ ॥ तस्य कालेन महता विश्रम्भं जग्मुरण्डजाः। समेत्य च प्रशंसन्ति मार्ज्जारं तं विशाम्पते। पूज्यमानस्तु तैः सर्वैः पक्षिभिः पक्षिभोजनः । आत्मकार्य्यं कृतं मेने चर्यायाश्च कृतं फलम् ॥ १९ ॥ अथ दीर्घस्य कालस्य तं देशं मूषिका ययुः । ददृशुस्तञ्च ते तत्र धार्मिकं व्रतचारिणम् ॥२०॥ कार्येण महता युक्तं दम्भयुक्तेन भारत । तेषां मतिरियं राजन्नासीत्तत्र विनिश्चये ॥ २१ ॥ बहुमित्रा वयं सर्वे तेषां नो मातुलो ह्ययम् । रक्षां करोतु सततं वृद्धबालस्य सर्वशः ॥ २२ ॥ उपगम्य तु ते सर्वे बिडालमिदमब्रुवन् । भवत्प्रसादादिच्छामश्चर्त्तुञ्चैव यथासुखम् ॥ २३ ॥ भवान्नो गतिरव्यग्रो भवान्नः परमः सुहृत् । ते वयं सहिताः सर्वे भवन्तं शरणङ्गताः ।२४। भवान् धर्मपरो नित्यं भवान् धर्मे व्यवस्थितः । स नो रक्ष महाप्रज्ञ

सब काम काज करनेकी शक्तिसे हीन होजानेके कारण गङ्गानदीके तटपर जा ऊँचा हाथ करके खड़ा होगया ॥ १६ ॥ सब प्राणियोंके मनमें अपना विश्वास बैठालनेके लिये वह सब प्राणियोंसे कहनेलगा कि मैं धर्माचरण करता हूँ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार बहुतसा समय बीतजाने पर प्राणियोंको उस पर विश्वास आगया और बिलावके पास जाकर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १८ ॥ सब पक्षी जब पक्षियोंका भोजन करनेवाले बिलावकी पूजा करने लगे तब वह बिलाव मनमें समझने लगा, कि–इतने दिनोंमें मेरा काम सिद्ध हुआ और तपस्याका फल मिला ॥ १९॥ इसके अनन्तर बहुत दिनोंमें चूहे उस स्थान पर गये और उन्होंने तहाँ जाकर उसको व्रतधारी धर्मात्मा देखा ॥ २० ॥ हे भरतवंशी राजन् । वह बिलाव उस समय दम्भसे भरे हुए बड़े भारी काममें लगा हुआ था, उसको देखकर चूहोंके मनमें निश्चयके साथ यह विचार उठा, कि—हमासबोंके शत्रु बहुतसे हैं, इस लिए हम ऐसा करें कि—यह बिलाव हमारा मामा बनकर नित्य हमारे बालक बूढे सबोंकी रक्षा किया करै ॥ २१–२२ ॥ और वह सब उस बिलावके पास जाकर यह कहने लगे, कि–यदि आप अनुग्रह करें तो हम आनन्दके साथ घूमना चाहते हैं ॥ २३ ॥ आप हमारी उत्तम गति और परमस्नेही हैं, इस लिए हम सब इकट्ठे होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २४ ॥ आप सदा धर्माचरणमें लगे रहते हैं

त्रिदशानिव वज्रभृत् ॥ २५ ॥ एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्मूषिकैः स विशाम्पते । प्रत्युवाच ततः सर्वान्मूषिकान्मूषिकान्तकृत् ॥ २६ ॥ द्वयोर्योगं न पश्यामि तपसो रक्षणस्य च । अवश्यन्तु मया कार्यं वचनं भवतां हितम् ॥ २७ ॥ युष्माभिरपि कर्त्तव्यं वचनं मम नित्यशः । तपसास्मि परिश्रान्तो दृढं नियममास्थितः ॥ २८ ॥ न चापि गमने शक्तिं काञ्चित् पश्यामि चिन्तयन् । सोऽस्मि नेयः सदा तात नदीकूलमितः परम् २९ तथेति तं प्रतिज्ञाय मूषिका भरतर्षभ । वृद्धबालमथो सर्वं मार्जाराय न्यवेदयन् ॥ ३० ॥ ततः स पापो दुष्टात्मा मूषिकानथ भक्षयन् । पीवरश्च सुवर्णश्च दृढबन्धश्च जायते ॥ ३१ ॥ मूषिकाणां गणश्चात्र भृशं संक्षीयतेऽथ सः । मार्जारो वर्धते चापि तेजोबलसमन्वितः ॥ ३२ ॥ ततस्ते मूषिकाः सर्वे समेत्यान्योऽन्यमब्रुवन् । मातुलो वर्धते नित्यं वयं क्षीयामहे भृशम् ॥ ३३ ॥ ततः प्राज्ञतमः कश्चिड्डिण्डिको नाम

आपकी धर्ममें निष्ठा है, इस लिए हे महाबुद्धिमान् ! जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करता है तैसे ही आप हमारी रक्षा करिये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जब उन सब चूहोंने ऐसा कहा तब चूहोंका नाश करनेवाले उस बिलावने सब चूहोंसे कहा कि—॥ २६ ॥ मैं तप भी करूँ और तुम्हारी रक्षा भी करूँ इन दोनों कामोंका एक साथ करना मुझसे नहीं बन सकता तो भी तुम्हारा हित करनेके लिए मुझे तुम्हारा कहना करनो ही चाहिये ॥ २७ ॥ ऐसे ही तुम्हें भी सदा मेरा कहनो करना चाहिये, मैं कठिन परिश्रमकी तपस्या करके थक गया हूँ ।२८। मैं विचार करता हूँ तो अपनेमें चलने फिरने तककी शक्ति भी नहीं देखता हूँ, सो हे तात ! आजसे तुम मुझे नदीके किनारे पर पहुँचा दिया करना ॥२९॥ हे भरतवंशी राजन् ! चूहोंने 'बहुत अच्छा' कहकर इस बातको मान लिया और बालक बूढ़े आदि सब परिवार उसको सौंपदिया ॥ ३० ॥ फिर वह पापी दुष्टात्मा बिलाव उन चूहों का भक्षण करके शरीरमें मोटा,सुन्दर रूपवाला और दृढ जोड़ोंवाला होगया॥३१॥इधर चूहोंका समूह बहुत ही कम होनेलगा और बिलाव तेज तथा बलसे युक्त होकर बढने लगा ॥ ३२॥ तब सब चूहे इकट्ठे होकर आपसमें कहने लगे, कि-हमारे मामाजी नित्य बढते जाते हैं और हम बहुत ही घटते जाते हैं, इसका क्या कारण है ? ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उनमें कोई एक बड़ा बुद्धिमान् डिंडिक नामका चूहा था वह सब चूहोंकी इसबातको सुनकर चूहोंके बडेभारी समूह

मूषिकः। अब्रवीद्वचनं राजन् मूषिकाणां महागणम् ॥ ३४ ॥ गच्छतां वो नदीतीरं सहितानां विशेषतः। पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि सहैव मातुलेन तु ॥ ३५ साधु साध्विति ते सर्वे पूजयाञ्चक्रिरे तदा। चक्रुश्चैव यथान्यायं डिण्डिकस्य वचोऽर्थवत् ॥ ३६ ॥ अविज्ञानात्ततः सोऽथ डिण्डिकं ह्युपभुक्तवान्। ततस्ते सहिताः सर्वे मन्त्रयामासुरञ्जसा ३७ तत्र वृद्धतमः कश्चित् कोलिको नाम मूषिकः। अब्रवीद्वचनं राजन् ज्ञातिमध्ये यथातथम् ३८ न मातुलो धर्मकामश्छद्ममात्रं कृता शिखा। न मूलफलभक्षस्य विष्ठा भवति लोमशा ॥३९॥ अस्य गात्राणि वर्धते गणश्च परिहीयते। अद्य सप्ताष्टदिवसान् डिण्डिकोऽपि न दृश्यते४० एतच्छ्रुत्वा वचः सर्वे मूषिका विप्रदुद्रुवुः। बिडालोऽपि स दुष्टात्मा जगामैव यथागतम् ॥ ४१ ॥ तथा त्वमपि दुष्टात्मन् वैडालं व्रतमास्थितः। चरसि ज्ञातिषु सदा बिडालो मूषिकेष्विव ॥ ४२ ॥ अन्यथा किल ते वाक्यमन्यथा कर्म दृश्यते। दंभनार्थाय लोकस्य वेदाश्चोप-

से कहने लगा, कि-॥ ३४ ॥ तुम सब विशेषरूपसे इकट्ठे होकर नदी के किनारेपर जाओ और मैं बिलाव मामाके साथ पीछेसे आता हूँ ३५ तब चूहोंने उस समय ठीकठीक कहकर उस डिंडिक चूहेका सत्कार किया और उसका लाभदायक बातके अनुसार ही वर्ताव किया ३६ वह बिलाव चूहोंके इस संकेतको नहीं समझ सका था इस कारण वह और २ दिनकी समान आज डिंडिकको खागया, तब सब चूहे तुरन्त इकट्ठे होकर विचार करने लगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! उस समय उनकी मण्डलीमें एक कोलिक नामका बड़ा ही बूढा चूहा था, उसने अपनी जातिवालोंके बीचमें स्पष्टरूपसे कहा, कि-॥३८॥ हमारे मामा को धर्मकी इच्छा नहीं है, किन्तु उन्होंने कपटभावसे हमारे साथ मित्रता की है, जो प्राणी फल मूल खाया करता है उसकी विष्ठामें बाल कभी नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ इस बिलावके अङ्ग बढते चले जारहे हैं और हमारा समूह घटता जाता है, इसके सिवाय सात आठ दिन होगये, डिंडिक भी नहीं दीखता है ॥४०॥ यह सुनकर सब चूहे तहाँ से भागगये और दुष्टात्मा बिलाव भी जैसे आया था तैसे ही लौट गया४१हे दुष्टात्मा! तिसी प्रकार तूने भी बिडालव्रत धारण किया है और जैसे चूहोंके बीचमें वह बिलाव धर्माचरण करता था तैसे ही तू भी संबंधियोंके मध्यमें रहकर धर्माचरण करता है ४२ तेरी बातें और प्रकारकी देखनेमें आती हैं और तेरा काम कुछ और ही प्रकार

शमस्य ते ॥४३॥ त्वपत्था छद्म तिवदं राजन् क्षत्रधर्मं समाश्रितः । कुरु कार्याणि सर्वाणि धर्मिष्ठोऽसि नरर्षभ४४बाहुवीर्येण पृथिवीं लब्ध्वा भरतसत्तम । देहि दानं द्विजातिभ्यः पितृभ्यश्च यथोचितम् ॥ ४५ ॥ क्लिष्टाया वर्षपूगांश्च मातुर्मातृहिते स्थितः। प्रमार्ज्जाश्रून् रणे जित्वा संमानं परमावह ॥ ४६ ॥ पञ्च ग्रामा वृता यत्नान्नास्माभिरपवर्जिताः । युध्यामहे कथं संख्ये कोपयेम च पाण्डवान् ॥ ४७ ॥ त्वत्कृते दुष्टभावस्य सन्त्यागो विदुरस्य च । जातुषे च गृहे दाहं स्मर तं पुरुषो भव ॥ ४८ ॥ यच्च कृष्णमवोचस्त्वमायान्तं कुरुसंसदि । अयमस्मि स्थितो राजन् शमाय समराय च ॥ ४९ ॥ तस्यायमागतः कालः समरस्य नराधिप । एतदर्थं मया सर्वं कृतमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५० ॥ किं नु युद्धात् परं लाभं क्षत्रियो बहु मन्यते । किं च त्वं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथितो भुवि ॥ ५१ ॥ द्रोणादस्त्राणि सम्प्राप्य कृपाच्च भरतर्षभ ।

का देखनेमें आता है, तूने लोगोंको धोखा देनेके लिये वेदका अभ्यास किया है, तथा शान्तभाव दिखाता है ४३ हे राजन् ! यदि तू क्षत्रिय के धर्ममें श्रद्धा रखता है तो 'मैं अजातशत्रु हूँ' ऐसे पाखण्डको छोड़कर सब कामोंको कर क्यों कि—तू धर्मनिष्ठ है ॥४४॥ हे भरत-सत्तम ! तू भुजदंडोंके पराक्रमसे पृथ्वीको जीतकर ब्राह्मणोंको दान दे और पितरोंके लिये भी यथोचित रीतिसे पिंडदान कर ।४५। तथा बहुत दिन होगये तेरी माता दुःख पारही है, उसके हितमें लगा रहकर उसके आंसुओंको पोंछ और रणमें शत्रुओंको जीत कर सन्मान प्राप्त कर ॥ ४६ ॥ तूने हमसे पांच ग्राम माँगनेके लिये उद्योग किया था, परन्तु हम रणमें किस प्रकार लड़ें और पाण्डवोंको कैसे कुपित करें ? ऐसा विचार कर तुझे वह ग्राम नहीं दिए थे ४७ इसी कारणसे तो मैंने दुष्टहृदय वाले विदुरको त्याग दिया था और तेरे कुटुम्बके सहित तुझे लाखके भवनमें भस्म कर देनेका उद्योग भी किया था, उसको याद कर और पुरुष बन जा ॥ ४८ ॥ और जब कृष्ण संदेशा लेकर कौरवसभामें आया था तब तूने कहलाकर भेजा था, कि—हे राजन् ! मैं सन्धि करनेके लिए और युद्ध करनेके लिए भी तयार बैठा हूँ ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! अब युद्ध करनेका समय आलगा है और हे युधिष्ठिर ! मैंने भी यह सब काम इसलिए ही किया है५० क्षत्रिय युद्धसे बढ़कर और कौनसे लाभको बड़ा मानता है ? तू क्षत्रियके कुलमें उत्पन्न हुआ है और पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ है ५१

तुल्ययोनी समबले वासुदेवं समाश्रितः ॥ ५२ ॥ ब्रूयास्त्वं वासुदेवं च पाण्डवानां समीपतः । आत्मार्थं पाण्डवार्थञ्च यत्तो मां प्रतियोधय ॥ ५३ ॥ सभामध्ये च यद्रूपं मायया कृतवानसि । तत्तथैव पुनः कृत्वा सार्जुनो मामभिद्रव ॥५४॥ इन्द्रजालञ्च मायां वै कुहका चापि भीषणाः । आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ५५ ॥ वयमप्युत्सहे नद्यां खञ्च गच्छेम मायया । रसातलं विशामोऽपि ऐन्द्रं वा पुरमेव तु ॥५६॥ दर्शयेम च रूपाणि स्वशरीरे बहून्यपि । न तु पर्यायतः सिद्धिर्बुद्धिमाप्नोति मानुषीम् ॥ ५७ ॥ मनसैव हि भूतानि धातैव कुरुते वशे । यद् ब्रवीषि च वार्ष्णेय धार्त्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ५८ ॥ घातयित्वा प्रदास्यामि पार्थेभ्यो राज्यमुत्तमम् । आचचक्षे च मे सर्वं संजयस्तव भाषितम् ॥ ५९ ॥ मद्द्वितीयेन पार्थेन वैरं वः सव्यसाचिना । स सत्यसङ्गरो भूत्वा पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥६०॥ युध्यस्वाद्य रणे यत्तः

तूने द्रोणाचार्यसे और कृपाचार्यसे अस्त्रविद्या प्राप्त करी है और तू मेरी समान ही जन्म और बलवाला होनेपर भी श्रीकृष्णका आश्रय लेकर क्यों बैठा है ? ॥५२॥ और हे दूत ! पांडवोंके समीपमें बैठे हुए श्रीकृष्णसे भी कहना, कि—तुम अपने लिए और पाण्डवोंके लिए तयार होकर हमारे साथ युद्ध करना ॥ ५३ ॥ तुमने सभामें मायाके द्वारा जैसा रूप धारण किया था तैसा ही रूप फिर धारण करके अर्जुनके साथ मेरे ऊपर चढाई करके आना ॥ ५४ ॥ इन्द्रजाल, माया या अनेक प्रकारके कपट महाभयानक होते हैं, परन्तु संग्राममें शस्त्रधारी पुरुषको क्रोधके सिवाय और कुछ नहीं कर सकते हैं ॥ ५५ ॥ हम भी यदि चाहैं तो स्वर्गमें पहुँच सकते हैं, मायासे आकाशमें भी उड़ सकते हैं, रसातल पातालमें भी प्रवेश कर सकते हैं, इन्द्रलोकमें भी जासकते हैं ॥ ५६ ॥ तथा हम शरीरके बहुतसे रूप भी दिखा सकते हैं, परन्तु इस प्रकार करनेसे अपने कामकी सिद्धि नहीं होती है तथा प्रतिपक्षीको ऐसे करनेसे भय भी नहीं होता है ॥५७॥ क्यों कि- एक विधाता ही मनसे प्राणियोंको वशमें कर सकता है दूसरा कोई भी प्राणियोंको वशमें नहीं कर सकता और हे वृष्णिवंशी कृष्ण तुमने सञ्जयके द्वारा कहलाकर भेजा था, कि-मैं रणमें कौरवोंका संहार करके पांडवोंको उत्तम राज्य दिलवाऊँगा यह तुम्हारी कही सब बातें सञ्जयने मुझसे कही थी ॥ ५८-५९ ॥ फिर तुमने कहा था कि-मेरे और सव्यसाची अर्जुनके साथ तुम्हारा वैर है, ऐसा कहने

पश्चातः पुरुषो भव । यस्तु शत्रुमभिज्ञाय शुद्धं पौरुषमास्थितः ॥ ६१ ॥ करोति द्विषतां शोकं स जीवति सुजीवितम् । अकस्माच्चैव ते कृष्ण ख्यातं लोके महद्यशः ॥ ६२ ॥ अद्य ज्ञातो विज्ञातास्मः सन्ति षण्ढाः सश्मश्रुकाः । मद्विधो नापि नृपतिस्त्वयि युक्तः कथंचन ॥६३॥ सन्नाहं संयुगे कर्तुं कंसभृत्ये विशेषतः । तञ्च तूवरकं बालं बह्वाशिनमविद्यकम् ॥ ६४ ॥ उलूक मद्वचो ब्रूहि असकृत् भीमसेनकम् । विराटनगरे पार्थ यस्त्वं सूदो ह्यभूः पुरा ॥ ६५ ॥ वल्लवो नाम विख्यातस्तन्ममैव हि पौरुषम् । प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा ॥६॥ दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते । यद्ब्रवीषि च कौन्तेय धार्त्तराष्ट्रानहं रणे ॥ ६७ ॥ निहनिष्यामि तरसा तस्य कालोऽयमागतः । त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्या भक्ष्ये पेये च भारत ॥ ६ ॥ क युद्धं क सभा-

---

वाले तुम अब प्रतिज्ञाको सत्य करो और पांडवोंके लिए पराक्रमकर के दिखाओ ॥ ६० ॥ तुम अब सावधान होकर रणभूमिमें युद्ध करो पुरुष बनजाओ; हम देखते हैं, कि-तुम युद्धमें कैसे पराक्रम करोगे ? जो पुरुष शत्रुके स्वरूपको जानकर शुद्ध पुरुषार्थका सहारा लेताहुआ शत्रुके मनमें शोक उपजा देता है उसका ही जीवन उत्तम कहलाता है, हे कृष्ण ! तुम्हारा बड़ाभारी यश जगत्में अचानक ही फैलगया है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ परन्तु आज हमारे जाननेमें आया है, कि-तुम्हारी शूरता जिन लोगोंमें फैल गयी है वह डाढ़ी मूँछों वाले नपुंसक पुरुष हैं, परन्तु मुझसरीखे राजाके साथ तुमसरीखे कंसके एक सेवकको युद्धमें कभी भी खास चढ़ायी करनेका अवसर नहीं पड़ा है हे उलूक ! तू बिना डाढ़ी मूछके मूर्ख, बहुतसा भोजन करनेवाले और विद्याहीन, भीमसेनसे मेरा संदेशा वारंवार कहना, कि-अरे भीम ! तू पहिले विराट नगरमें वल्लव नामका रसोइया बनकर रहा था, वह सब मेरा ही पराक्रम था, पहिले तूने बीच सभामें प्रतिज्ञाकी थी उस प्रतिज्ञाको तू मिथ्या न करना ॥ ६३-६६ ॥ तुझसे बनसके तो तू दुःशासनके रुधिरको पीना और हे कुन्तीनन्दन ! तू जो कहता था, कि-मैं रणमें एक साथ कौरवोंको मारडालूँगा सो अब उसका भी समय आपहुँचा है हे भरतवंशी भीम ! तुझे खाने पीनेके पदार्थोंका उपभोग करनेके काममें ही आगे बढ़ाना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ कहाँ युद्ध और कहाँ भोजन ? अच्छा अब तू पुरुष बन जा और युद्ध कर, हे भरतवंशी ! तू मेरे हाथसे माराजायगा और गदाको छातीसे चिपटा

मध्ये वल्गितं ते वृकोदर । उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत ७० युध्यस्वाद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम् । युधिष्ठिरानुरागं च द्वेषञ्च मयि भारत । कृष्णायाश्च परिक्लेशं स्मरेदानीं यथातथम् ७१ ब्रूयास्त्वं सहदेवञ्च राजमध्ये वचो मम । युद्धयेदानीं रणे यत्तः क्लेशान् स्मर च पाण्डव ७२ विराटद्रुपदौ चोभौ ब्रूयास्त्वं वचनान्मम । न दृष्टपूर्वा भर्त्तारो भृत्यैरपि महागुणैः ॥ ७३ ॥ तथार्थपतिभिर्भृत्या यतः सृष्टाः प्रजास्ततः । अश्लाघ्योऽयं नरपतिर्युवयोरिति चागतम् ७४ ते यूयं संहता भूत्वा तद्वधार्थं ममापि च । आत्मार्थं पांडवार्थं च प्रयुध्यध्वं मया सह ॥ ७५ ॥ धृष्टद्युम्नञ्च पाञ्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम । एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयापि सः ॥७६॥ द्रोणमासाद्य समरे ज्ञास्यसे हितमुत्तमम् । युध्यस्व ससुहृत् पापं कुरु कर्म सुदुष्करम् ७७ शिखंडिनमथो ब्रूहि उलूक वचनान्मम । स्त्रीति मत्वा महाबाहुर्न

कर भूमि पर सोवेगा ॥ ६९ ॥ हे वृकोदर ! सभामें जो तूने वक्र दिया था वह वृथा वात थी और हे उलूक ! तू मेरे कहनेके अनुसार नकुल से भी कहना, कि-हे भारत !॥७०॥ तू अब स्थिर होकर युद्ध करना, हम तेरे पुरुषार्थको देखेंगे, हे नकुल ! तू युधिष्ठिरके प्रेम, मेरे द्वेष और द्रौपदीके ऊपर पड़ेहुए दुःखोंको वारम्वार स्मरण करना ॥ ७१ ॥ और हे उलूक ! तू राजाओंके वीचमें सहदेवसे भी मेरे वचन कहना कि-हे सहदेव ! तू अपने ऊपर पड़ेहुए दुःखोंको याद करके सावधान होजा और अब रणभूमिमें आकर युद्ध कर ॥ ७२ ॥ विराट और द्रुपद इन दोनोंसे भी मेरे कहनेसे कहना, कि-जबसे प्रजाकी उत्पत्ति हुई है तबसे महागुणी सेवकोंने राजाके गुणोंकी ओरको विशेष दृष्टि से नहीं देखा है, ऐसे ही राजाओंने भी सेवकोंके गुणोंकी ओरको विशेष दृष्टि नहींकी है अर्थात् तुम दोनों मूर्ख हो इसीसे यह राजा दुर्योधन प्रशंसा करनेके योग्य नहीं है, ऐसा मान कर तुम दोनों मेरे साथ लड़नेको आये हो ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ तुम सब मुझे मारनेके लिये इकट्ठे होकर आना और तुम अपने लिये तथा पांडवोंके लिये मेरे साथ युद्ध करना ॥ ७५ ॥ और हे उलूक ! तू मेरे कहनेसे पाञ्चालके पुत्र धृष्टद्युम्नसे भी कहना, कि तुझे जिस समयको पानेकी इच्छा थी वह समय तेरे लिये अब आगया है ॥ ७६ ॥ रणमें द्रोणाचार्यका सामना होने पर तुझे मालूम होगा, कि-मेरा उत्तम हित काहेमें है ! तू अपने मित्रोंको साथमें लेकर युद्ध कर और महा कठिन पापी कर्म

हनिष्यति कौरवः ॥ ७८ ॥ गांगेयो धन्विनां श्रेष्ठो युध्येदानीं हुनिभंगः । कुरु कार्यं रणे यत्तः पश्यामः पौरुषं तव ॥७९॥ एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत् । धनंजयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः॥८० अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् । अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शयिष्यसि ॥ ८१ ॥ राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासञ्च पाण्डव । कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ॥ ८२ ॥ यदर्थं क्षत्रिया सूते सर्वं तदिदमागतम् । बलं वीर्यञ्च शौर्यञ्च परञ्चाप्यस्त्रलाघवम् ॥ ८३ ॥ पौरुषं दर्शयन् युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम् । परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालोषितस्य च । हृदयं कस्य न स्फोटेदैश्वर्याद् भ्रंशितस्य च ॥ ८४ ॥ कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेष्वगृध्यतः । आस्थितं राज्यमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत् ॥ ८५ ॥ यत्तदुक्तं महद्वाक्यं कर्मणा तद्विभाव्यताम् । अकर्मणा कथितेन सन्तः कुपुरुषं

भी कर ॥ ७७ ॥ हे उलूक ! फिर तू मेरे कहनेसे शिखंडीसे कहना, कि—हे शिखण्डी ! महाबाहु और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ गङ्गापुत्र भीष्मजी तुझे स्त्री समझकर रणमें मारेंगे नहीं, इसलिये तू अब भले प्रकार निर्भय होकर युद्ध करना और सावधान होकर रणमें अपना काम करना, हम भी तेरा पराक्रम देखेंगे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ऐसा कहनेके अनन्तर राजा दुर्योधनने खूब हँसकर उलूकसे कहा, कि—हे उलूक ! तू श्रीकृष्णके सुननेमें अर्जुनसे फिर भी कहना, कि—या तो तू हमारा पराजय करके इस पृथिवीका शासन कर, अथवा हे वीर ! हम ही तुझे जीतेंगे और तू पृथिवी पर सोवेगा ॥ ८१ ॥ हे अर्जुन ! देशनिकालेका दुःख और द्रौपदीका दुःख इन सब दुःखोंकी याद करके अब तू पुरुष बनजा ॥ ८२ ॥ क्षत्रियाणी जिस कामके लिये पुत्रको जनती है, उस सब कामके करनेका समय अब आपहुँचा है, अब तू युद्धमें बल वीरता, शूरता, उत्तम प्रकारका अस्त्रका लाघव तथा पुरुषार्थ दिखा करके अपने क्रोधकी शान्ति कर, ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हुए चिरकाल तक देशसे बाहर पड़े रहनेवाले, अत्यन्त दुःखी होकर दीनभावको प्राप्त हुए किस पुरुषका हृदय विदीर्ण नहीं होजाता है?८३-८४ कौनसा पुरुष कुलीन, वीर, पराये धनकी इच्छा करनेवाले और परम्परासे राज्य भोगते हुए पुरुषका राज्य दबाकर उसके कोपको उद्दीपित नहीं करता है ? ॥ ८५ ॥ तूने जो अपने मुखसे बड़ीभारी बात कही है उसको अब करके दिखाना, जो पुरुष करता कुछ नहीं

विदुः ॥८६॥ अमित्राणां वशे स्थानं राज्यस्य पुनरुद्धर। द्वावर्थौ युद्धकामस्य तस्मात्तत्कुरु पौरुषम् ॥८७॥ पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम्। शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना॥८८॥ द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासितः। संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः ॥ ८९ ॥ राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासञ्च पांडव। कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन्पुरुषो भव ॥९०॥ अप्रियाणां च वचनं,प्रब्रुवत्सु पुनः पुनः। अमर्षं दर्शयस्व त्वममर्षो ह्येव पौरुषम् ॥ ९१॥ क्रोधो बलं तथा वीर्यं ज्ञानयोगोऽस्त्रलाघवम्। इह ते दृश्यतां पार्थ युध्यस्व पुरुषो भव ॥ ९२ ॥ लोहाभिहारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्। पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥९३॥ असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे। आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ९४ ॥ एवं

और केवल मुखसे ही बड़बड़ाया करता है उसको सत्पुरुष खोटा पुरुष कहते हैं ॥ ८६ ॥ तेरा स्थान और राज्य दोनों तेरे शत्रुओंके हाथमें हैं, उनको अब तू लौटा कर के युद्धकी कामना वाले पुरुषको यह दो वस्तुएँ प्राप्त करनेकी होती हैं, एक तो स्थिति और दूसरा राज्य इन दोनों वस्तुओंका तू उद्धार कर और पुरुषार्थ दिखा ॥ ८७ ॥ तू जुआ खेलतेमें हारगया था, उस समय हम द्रौपदीको सभामें लेआये थे ऐसे कामसे पुरुषपनेका अभिमान् रखने वाले हर एक पुरुषोंको अवश्य ही क्रोधआना चाहिये८८ देश निकाला होनेके अनन्तर बारह वर्ष तकतू वनमें रहा था और एक वर्षतक विराट राजाके घर सेवक बन कर रहा था८९इस लिये अरे पाण्डव ! देशनिकालेके, वनवासके और द्रोपदीके दुःखको याद करके तू पुरुष बनजा ॥ ९० ॥ आज तुझे तथा तेरे भाइयोंको वारम्वार कटुवचन कहनेवालोंके ऊपर तू अपना क्रोध दिखा, क्यों कि—क्रोध करना ही पुरुषार्थ कहलाता है ॥ ९१ ॥ हे पार्थ! क्रोध,बल, वीरता,ज्ञान, योग और अस्त्रकी लघुता (फुरती) इन सब करतूतोंको यहाँ आकर दिखा और पुरुष बनकर युद्ध कर९२ वेदमंत्रोंसे शस्त्रोंमें देवताओंका आवाहन हो चुका है, कुरुक्षेत्र भी कीचसे रहित होकर युद्धके योग्य होगया है, तेरे घोड़े भी पुष्ट हैं और तूने योधाओंको भी भृति (तनख्वाह) देदी है, इसलिए अब कलको कृष्णको साथमें लेकर युद्ध करनेके लिए आ ॥९३॥ जैसे कोई निर्बल पुरुष गन्धमादन पर्वतपर चढना चाहता हो, परन्तु उसके ऊपर चढ़े विना ही अपनी बड़ाई करता हो तैसे ही तू भी भीष्मके साथ युद्धमें

कत्थसि कौन्तेय अकुर्वन् पुरुषो भव। सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यञ्च बलिनां वरम् ॥ ९५ ॥ द्रोणञ्च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि। अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ९६ ब्राह्मे धनुषि चाचार्य वेदयोरन्तगं द्वयोः। युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम्॥९७॥द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा। न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥९८॥ अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वापि निपतेन्महीम्। युगं वा परिवर्त्तेत यद्येवं स्याद्यथात्थ माम् ॥ ९९ ॥ को ह्यस्ति जीविताकांक्षो प्राप्येममरिमर्दनम्। पार्थो वा इतरो वापि कोऽन्यो स्वस्ति गृहान् व्रजेत् ॥१००॥ कथमाभ्यामभिध्यातः संस्पृष्टो दारुणेन वा। रणे जीवन् प्रमुच्येत पदा भूमिमुपस्पृशन्। ॥ १०१ ॥ किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां न बुध्यसे राजचमूं समेताम्। दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ १०२॥ प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यैरुदी-

---

सामना किये बिना ही अपनी बड़ाई क्यों करता है ॥ ९४ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! तू ऐसी जो बकवाद करता है, इसको बन्द करके पुरुषार्थ दिखा, दुराधर्ष कर्णको, महाबली शल्यको और परम बलवान् तथा युद्धमें इन्द्रके समान द्रोणाचार्यको रणमें जीते बिना हे पार्थ ! तू राज्य लेना कैसे चाहता है ॥९५-९६॥ हे पार्थ ! वेद और धनुषविद्या के आचार्य, वेद और धनुर्वेदके पारगामी, रणमें आगे रहनेवाले,किसी से भी क्षोभ न पानेवाले और जिनका विचार दृढ है,ऐसे सेनामें घूमते हुए कान्तिमान् द्रोणाचार्यको तू जीतना चाहता है, यह तेरा मनोरथ मिथ्या है, हमने तो आज तक यह बात सुनी नहीं, कि—वायुने मेरु पर्वतको उखाड़ डाला हो ॥९७॥९८॥ यदि पवन मेरु पर्वतको उखाड़ डाले, यदि द्युलोक टूट कर भूमिपर आ पड़े और यदि कालचक्र भी पलट जाय तब ही जैसा तू कहता है तैसा हो सकता है ॥ ९९ ॥ शत्रुओंका मान भंजन करनेवाले द्रोणाचार्यसे भेटा होनेपर जीवित रहनेकी इच्छावाला अर्जुन हो चाहें और कोई हो वह क्षेम कुशलसे अपने घर कैसे आसकता है १०० द्रोणाचार्य और भीष्मजी जिसको मारडालनेका विचार करलें अथवा जिसके शरीरको उनके दारुण शस्त्रोंका स्पर्श होजाय ऐसा कौनसा मरणधर्मा पुरुष रणमें जीवित रह सकता है ? कोई नहीं रह सकता १०१ अरे मन्दमति ! तू कुएमें रहनेवाले मेंडककी समान मूर्ख है, तभी तो देवताओंसे रक्षा की हुई स्वर्गपुरीकी समान,पूर्व, पश्चिम,दक्षिण और उत्तरके,कांबोज देशके,

शकाम्बाजशकैः खशैश्च शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमध्यदेश्यैर्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥ १०३॥ नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम्। मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे ॥ १०४॥ अक्षय्याविषुधी चैव अग्निदत्तश्च ते रथम्। जानीमो हि रणे पार्थ केतुं दिव्यञ्च भारत १०५ अकत्थमानो युध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु। पर्यायात् सिद्धिरेतस्य नैतत् सिध्यति कत्थनात् १०६ यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनञ्जय। सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः ॥ १०७ ॥ जानामि ते वासुदेवं सहायं जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम्। जानाम्यहं त्वादृशो नास्ति योद्धा जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि ॥ १०८ ॥ न तु पर्यायधर्मेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः। मनसैवानुकूलानि धातैव कुरुते वशे ॥ १०९ ॥ त्रयोदशसमा भुक्तं

शक, खस, शाल्व, मत्स्य और कुरुमध्य देशके राजे म्लेच्छ राजे पुलिन्द द्रविड़, आन्ध्र और कांची देशके भील आदि असंख्यों राजाओंसे रक्षा की हुई देवसेनाकी समान बड़ी अगम्य इकट्ठे हुए राजाओंकी इस सेनाको क्या तू पहिचानता नहीं है ॥१०२॥१०३॥ अरे बुद्धिहीन मूढ! जिसके पार पहुँचना कठिन हो ऐसे गङ्गाके वेगकी समान अच्छे प्रकारसे चढ़ेहुए अनेकों प्रकारके असंख्यों योधाओंके समूहके साथ हाथियोंकी सेनाके मध्यमें खड़े हुए मेरे साथ क्या तू युद्ध करना चाहता है ? ॥ १०४ ॥ इतनी बात धर्मराजसे कहकर हे उलूक ! फिर तू अर्जुनसे कहना, कि—हे भरतवंशी राजन् ! तेरे पास दो अक्षय भाथे, अग्नि देवताका दिया हुआ रथ और दिव्य ध्वजा ये वस्तुएँ हैं इस बातको हम जानते हैं ॥ १०५ ॥ इस लिये हे अर्जुन ! तू बकवाद न करके युद्ध कर बहुतसी बकवाद क्यों करता है ? युद्ध करनेसे काम सिद्ध होता है, केवल बकवाद करनेसे कुछ काम सिद्ध नहीं होता है ॥ १०६ ॥ हे अर्जुन ! यदि बकवाद करनेसे काम सिद्ध होता हो तो फिर सबके ही काम सिद्ध होजाने चाहियें, बकवाद करने में कौन कमी करता है ? ॥ १०७ ॥ मैं जानता हूँ, कि–तुझे वासुदेव की सहायता है, मैं जानता हूँ, कि–तेरा गाण्डीव ताल समान (छः हाथ लम्बा) है तथा तेरी समान कोई योधा नहीं है, इस बातको भी मैं जानता हूँ तो भी मैंने तेरे राज्यको छीन लिया है ॥ १०८॥ मनुष्य कुछ कुलके गुणोंसे ही विजय नहीं पाता है केवल एक विधाता ही अपने मनसे दूसरोंको अनुकूल कर सकता है ॥ १०९ ॥ तेरह वर्षतक

राज्यं विलपनस्तव । भूयश्चैव प्रशास्मिष्ये त्वां निहत्य सबान्धवम् ११०
क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद्यत्त्वं दासपणैर्जितः । क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥ १११ ॥ सगदाद् भीमसेनाच्च फाल्गुनाच्च सगाण्डिवात् । न वै मोक्षस्तदा वोऽभूद्विना कृष्णामनिन्दिताम् ११२
सा वो दास्ये समापन्नान् मोचयामास पार्षती । अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान् ॥ ११३ ॥ अवोचं यत् षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत् । धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा॥११४॥ सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे। भीमसेनेन कौन्तेय यत्तु तन्मम पौरुषम् ॥ ११५ ॥ एवमेव सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः । वेणीं कृत्वा षण्ढवेषः कन्यां नर्तितवानसि ॥ ११६ ॥ न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन । राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युध्यस्व सहकेशवः ।११७।
न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वापि भीषणा । आत्तशस्त्रस्य संग्रामे वहन्ति प्रतिगर्जनाः ॥ ११८ ॥ वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि

तू विलाप करता रहा और मैंने राज्यको भोगा है और अब आगेको भी तुझे और तेरे भाइयोंको मार कर राज्य करूँगा ॥ ११० ॥ अरे दास ! जब तुझे जुएके पणमें जीता था तब तेरा गाण्डीव धनुष कहाँ गया था ? और उस समय हे अर्जुन ! भीमसेनका बल भी कहाँ चला गया था ? ॥ १११ ॥ उस समय गदाधारी भीमसेनसे और गाण्डीवधारी अर्जुनसे जो मुक्ति नहीं मिली थी वह मुक्ति पवित्र द्रौपदीने दिलवायी थी ॥ ११२ ॥ द्रौपदीने दासपनेमें पड़े हुए तुम्हें छुड़ाया था सेवकभावको प्राप्त हुए और दासपनेके काममें पड़े हुए तुम्हें मैंने पंढतिल नामसे पुकारा था यह भी ठीक ही था, हे अर्जुन ! विराट नगरमें रहते समय तूने अपने मस्तक पर चोटा रक्खा था, भीमसेन राजा विराटके भोजनभवनमें रसोई बनाते २ थक जाता था यह मेरा ही पुरुषार्थ था ॥ ११३-११५ ॥ क्षत्रिय क्षत्रियोंको सदा ऐसा ही दण्ड देते हैं, तू माथे पर चोटा रख पंढ (हीजड़े) का वेष धरकर कन्याओंको नाचना सिखाता था यह भी मेरा ही पुरुषार्थ था ॥ ११६ ॥ हे अर्जुन ! तेरे अथवा श्रीकृष्णके भयसे मैं तुझे राज्य लौटाकर नहीं दूँगा, भले ही तू श्रीकृष्णको साथमें लेकर मेरे साथ युद्ध कर ॥ ११७ ॥ माया, इन्द्रजाल और भयानक कपट, शस्त्रधारण करनेवाले पुरुषको संग्राममें डरा नहीं सकते, किन्तु और कुपित कर देते हैं ॥ ११८ ॥ जिस समय मेरे अमोघ बाण छूटेंगे उस समय सहस्रों

वा । आसाद्य मानमोघेषु द्रविष्यन्ति दिशो दश॥११९॥ संयुगं गच्छ भीष्मेण भिंधि वा शिरसा गिरिम् । तरस्व वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम्॥१२०॥शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम् । बृहद्बलमहोद्वेल सौमदत्तितिमिंगिलम् ॥ १२१ ॥ भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासगम् । कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम् ॥ १२२ ॥ दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं सुषेणचित्रायुधनागनक्रम् । जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ १२३ ॥ शस्त्रौघमक्षय्यमभिप्रवृद्धं यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः । भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धवस्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥ १२४ ॥ तदा मनस्ते त्रिदिवादिवाशुचेर्निवर्त्तिता पार्थ महीप्रशासनात् । प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्लभं त्वया बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना ॥ १२५ ॥ छ छ छ छ

कृष्ण और सैंकड़ों अर्जुन भी उनके सामनेसे दशों दिशाओंमेंको भागने लगेंगे ॥ ११९ ॥ भीष्मजीके साथ युद्ध करना माथेसे पर्वतको तोडने की समान और भुजाओंसे महा अगाध पुरुषरूपी महासागरको तरनेकी समान महाकठिन है ॥ १२० ॥ इस पुरुषरूपी महासागरमें कृपाचार्यरूपी बड़ीभारी मच्छी है, विविंशतिरूपी महासर्प है, बृहद्बलरूपी बड़ा भारी ज्वारभाटा है, सौमदत्तिरूपी बड़ाभारी मत्स्य है ॥ १२१ ॥ भीष्मरूपी अनन्त वेग है, वह द्रोणरूपी ग्राहसे दुर्गम है, इसमें कर्ण और शल्यरूपी मत्स्य और भँवर हैं, कम्बोजराजरूपी वड़वानल अग्नि है ॥ १२२ ॥ दुःशासनरूपी भल्ला है, शल और शल्यरूप मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुधरूप सर्प तथा नाके हैं, जयद्रथरूप टापू है, पुरुमित्ररूप गहराई है, दुर्मर्षणरूपी जलसे भरा है और शकुनिरूप उसका प्रपात है ॥ १२३ ॥ इस शस्त्रोंके समूहवाले, अक्षय और चारों ओरसे जिसमें प्रवाह बढ़ता चला आरहा है ऐसे पुरुषरूप सागरमें जब तू प्रवेश करेगा और परिश्रमके कारणसे तेरा चित्त अचेत होजायगा, तथा तेरे भाई और सब सम्बन्धी मारेजायँगे, तब तेरे मनमें पछतावा होगा और अपवित्र पुरुषका मन जैसे स्वर्ग मिलनेकी आशाको छोड़देता है तैसे ही तेरा मन भी पृथिवीका राज्य करनेमें निराश होजायगा, इसलिये हे पार्थ ! तू शान्त हो तपोहीन पुरुष जैसे स्वर्गकी इच्छा करता है परन्तु उसको स्वर्ग मिलना बड़ा ही कठिन होता है, तैसे ही तुझे राज मिलना बड़ा ही कठिन है॥१२४॥१२५॥ एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६० ॥

सञ्जय उवाच । सेनानिवेशं संप्राप्तः कैतव्यः पाण्डवस्य ह । समागतः पाण्डवैर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १ ॥ अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम । दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच । उलूक न भयन्तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः । यन्मतं धार्त्तराष्ट्रस्य लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥ ३ ॥ ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम् । सृञ्जयानाञ्च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः ४ द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ । भूमिपानाञ्च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह ॥ ५ ॥ उलूक उवाच । इदं त्वामब्रवीद्राजा धार्त्तराष्ट्रो महात्मनाः । शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ६ ॥ पराजितोऽसि द्यूतेन कृष्णा चानायिता सभाम् । शक्योऽमर्षो मनुष्येण कर्तुं पुरुषमानिना ।७। द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद्विवासिताः । सम्वत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषिताः।।८।।अमर्षं राज्यहरणं वनवासञ्च पाण्डव । द्रौपद्याश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव ।९। अश-

---

सञ्जय कहता है, कि-हे धृतराष्ट्र ! दुर्योधनका सन्देशा लेकर उलूक पाण्डवोंकी छावनीमें जापहुँचा, पाण्डवोंसे मिलकर वह युधिष्ठिरसे कहनेलगा कि-॥ १ ॥ आप दूतोंकी बातोंको जानते हैं, इस लिये मैं आपसे दुर्योधनका संदेशा कहता हूँ, उसको सुनकर आप मेरे ऊपर क्रोध न करना ॥ २ ॥ युधिष्ठिरने कहा, कि-हे उलूक ! तुझे भय नहीं है तू निर्भय होकर लोभी और तुच्छदृष्टि वाले दुर्योधनका जो विचार हो वह मुझसे कह ॥ ३ ॥ इस प्रकार धर्मराजके अभयका वचन देने पर कान्तिमान् पाण्डव सृंजय राजे, मत्स्य देशके राजे, यशस्वी श्रीकृष्णजी, पुत्रों सहित बैठेहुए राजा द्रुपद, राजा विराट तथा अन्य सब राजाओंके बीचमें दुर्योधनका दूत उलूक उनसे सन्देशा कहनेलगा ॥ ३-५॥ उलूकने कहा, कि-हे राजन् युधिष्ठिर ! वीर कौरवोंको सुनाकर उदारचित्त दुर्योधनने आपके पास जो सन्देशा कहलाकर भेजा है, उसको तुम सुनो ॥ ६ ॥ तुम जुआ खेलते समय हारगये थे तब हम द्रौपदीको खेंच सभामें लाये थे, इस काम से पुरुषपनेका अभिमान रखनेवाले हर एक पुरुषको अवश्य ही क्रोध आना चाहिये ॥ ७ ॥ देशनिकाला हो जाने पर तू बारह वर्ष तक वनमें रहा था और एक वर्ष तक राजा विराटके घर सेवक बन कर रहा था ॥ ८ ॥ इसलिये हे पाण्डव ! क्रोध राज्यहरण वनवास और द्रौपदीके दुःखको याद करके तू पुरुष बनजा ।९। और असमर्थ

केन च यत्कृतं भीमसेनेन पाण्डव। दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते ॥१०॥ लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्। समः पन्था भृतास्तेऽश्वाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥ ११ ॥ असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे। आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम् ॥ १२॥ एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन् पुरुषो भव। सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यञ्च बलिनां वरम्। द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि। अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि ॥१४॥ ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः। युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम् ॥१५॥ द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा। न हि शुश्रुम वातेन मेरुमुन्मथितं गिरिम् ॥ १६ ॥ अनिलो वा वहेन्मेरुं द्यौर्वापि निपतेन्महीम्। युगं वा परिवर्त्तेत यद्येवं स्याद्यथात्थ माम् ॥ १७ ॥ को ह्यस्ति जीवितकांक्षी

भीमसेनने शपथकी थी, कि-मैं दुःशासनका रुधिर पीऊँगा, इसलिये अब यदि उसमें शक्ति होय तो वह भले ही उसका रुधिर पिये ॥१०॥ वेदमन्त्रोंसे शस्त्रोंमें देवताओंका आवाहन आदि हो चुका है, कुरुक्षेत्र भी कीचसे रहित होगया है मार्ग भी एकसमान होगया है और तेरे घोड़े भी पुष्ट हैं, इसलिये तू कल श्रीकृष्णको साथ लेकर युद्धके लिये आना ॥ ११ ॥ जैसे कोई निर्बल पुरुष गन्धमादन पर्वत पर चढ़नेकी इच्छा करता हो परन्तु चढ़ेविना पहिले ही बड़बड़ाट करता हो तैसे ही तू भी भीष्मजीके साथ रणमें सामना किए विना केवल बड़ २ दर्पों करता है ॥ १२ ॥ तेरी बड़बड़ाट गन्धमादन पर्वत पर चढ़नेकी इच्छावाले निर्बल पुरुषकी समान है, इसलिए हे कुन्तीनन्दन! तू बड़बड़ाटको छोड़कर पुरुष बनजा, दुष्प्रधर्ष कर्णको, महाबलवान् शल्यको और महाबली तथा युद्धमें इन्द्रकी समान द्रोणाचार्यको रण में जीते विना हे पार्थ ! तू किस प्रकार राज्य लेनेकी इच्छा करता है ॥ १३—१४ ॥ हे पार्थ ! वेद और धनुषविद्याके आचार्य, वेद और धनुर्वेदके पारको जाननेवाले, युद्धके समय सबके आगे रहने वाले, किसीसे न दबनेवाले, सेनामें घूमनेवाले, दृढविश्वासी, परम कान्तिमान् द्रोणाचार्यको तू जीतनेकी इच्छा करता है यह तेरा मनोरथ तो मिथ्या ही है, पवनने मेरु पर्वतको उखाड़ डाला हो, यह बात मैंने तो सुनी नहीं ॥ १५-१६ ॥ परन्तु तू मुझसे जैसा कहता है यदि ऐसाही होजाय तो तू फिर समझलेना कि-पवन मेरु पर्वतको उखाड़े डालता है, स्वर्ग पृथिवी पर गिरा पड़ता है और कालचक्र भी लौटा जाता

प्राप्येममरिमर्दनम्। गजो वाजी रथो वापि पुनः स्वस्ति गृहा
व्रजेत् ॥१८॥ कश्च भीष्माभिध्याता संस्पृष्टो दारुणेन वा । रणे जीव
न्विमुच्येत यदा भूमिमुपस्पृशन् ॥ १९॥ किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां
न बुध्यसे राजचमूं समेताम्। दुराधर्षां देवचमूप्रकाशां गुप्तां नरेन्द्रै
स्त्रिदशैरिव द्याम् ॥ २० ॥ प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यैरुदीच्य
काम्बोजशकैः खशैश्च। शाल्वैः समात्स्यैः कुरुमध्यदेश्यैर्म्लेच्छैः पुलि
न्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः ॥ २१ ॥ नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं गाङ्गं यथा
वेगमपारणीयम्। मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये युयुत्ससे मन्द किम
ल्पबुद्धे ॥ २२ ॥ इत्येवमुक्त्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्। अभ्याभा
पुनर्जिष्णुमुद्धतः प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥ अकत्थमानो युध्यस्व कत्थसेऽ
र्जुन किं बहु । पर्यायात् सिद्धिरेतस्य नैतत् सिध्यति कत्थनाद् य
यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनञ्जय । सर्वे भवेयुः सिद्धार्था

है ॥१७॥ शत्रुका मानभङ्ग करनेवाले द्रोणाचार्यसे भेंट होनेपर जीवि
त रहनेकी इच्छा करनेवाला कौनसा हाथी, घोड़ा वा रथ है जो क्षे
मकुशलसे अपने घरको लौट जायगा ? ॥१८॥ भीष्मने और द्रोण
ने जिसको मारडालनेका निश्चय कर लिया हो अथवा जो उनके दारुण
शस्त्रोंसे छू भी गया हो ऐसा कौनसा मरणके स्वभाव वाला पुरु
ष रणमें जीवित रह सकता है ? ॥ १९ ॥ अरे मन्दमति ! तू कूपमें रह
नेवाले मेंढककी समान मूढ है, इस कारण ही देवताओंके मण्डलों
से रक्षाकी हुई स्वर्गपुरीकी समान पूर्वके पश्चिमके, दक्षिणके, उत्तरके
कांबोज देशके, शक, खस, शाल्व, मत्स्य तथा कुरुमध्य देशके राजे
म्लेच्छ देशोंके राजे पुलिन्द, द्रविड़ आँध्र और काँची देशके असंख्य
राजाओंसे रक्षाकी हुई साक्षात् देवसेनाकी समान महादुराधर्ष इक
ट्ठे हुए राजाओंकी इस सेनाको तू पहिचान नहीं सका है ॥ २०-२१
अरे अल्पबुद्धि ! जिसके पार पहुँचना कठिन हो ऐसे गङ्गाके वेगकी
समान अच्छे प्रकारसे बढे हुए अनेकों प्रकारके असंख्यों योधाओं
सहित हाथियोंकी सेनाके मध्यमें स्थित मेरे साथ क्यों तू युद्ध करना
चाहता है ? ॥२२॥ इस प्रकार धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे कहकर उद्धत
ने फिर मुख फेर कर अर्जुनसे कहा, कि-॥ २३ ॥ हे अर्जुन ! तू बक
वाद न करके युद्ध कर, इतनी बकवाद क्यों करता है ? युद्ध करने
से काम सिद्ध होता है केवल बकवाद करनेसे काम सिद्ध नहीं होता
है ॥ २४ ॥ हे अर्जुन ! यदि बकवाद करनेसे काम सिद्ध होता हो तो

कत्थने को हि दुर्नतः ॥ २५ ॥ जानामि ते वासुदेवं सहायं जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम् । जानाम्येतत् त्वादृशो नास्ति योद्धा जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि ॥ २६ ॥ न तु पर्यायधर्मेण राज्यं प्राप्नोति मानुषः । मनसैवानुकूलानि विधाता कुरुते वशे ॥ २७ ॥ त्रयोदशसमा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव । भूयश्चैव प्रशासिष्ये निहत्य त्वां सबान्धवम् २८ क तदा गाण्डिवं तेऽभूद्यत्त्वं दासपणैर्जितः । क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन ॥ २९ ॥ सगदाद्भीमसेनाद्वा पार्थाद्वापि सगाण्डिवात् । न वै मोक्षस्तदा वोभूद्विना कृष्णामनिन्दिताम् ॥ ३० ॥ सा वो दास्ये समापन्नान् मोक्षयामास पार्षती । अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान् ॥ ३१ ॥ अवोचं यत् षंढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत् । धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा ॥ ३२ ॥ सूदकर्मणि च श्रान्तं विराटस्य महानसे । भीमसेनेन कौन्तेय यच्च तन्मम पौरुषम् ३३ एवमेतत् सदा दण्डं क्षत्रियाः क्षत्रिये दधुः । वेणीं कृत्वा षंढवेषः कन्यां

सबके हो काम सिद्ध होजाने चाहिये बकवाद करनेमें कौन कमी करता है ? ॥२५॥ मैं जानता हूँ कि-तुझे श्रीकृष्णकी सहायता है, मैं जानता हूँ कि-तालके (छः हाथ लम्बे) प्रमाणका तेरा गाण्डीव धनुष है और यह भी जानता हूँ, कि-तेरे समान कोई योधा नहीं है तो भी मैंने तेरा राज्य छीन लिया है ॥ २६ ॥ मनुष्य केवल कुलके गुणोंसे ही विजय नहीं पाता है केवल एक विधाता ही अपने मनसे दूसरोंको अनुकूल कर सकता है ॥२७॥ अरे ! तू विलपता रहा और मैंने तेरह वर्षतक राज्य भोगा है और अब आगेको भी तुझे और तेरे भाइयोंको मारकर मैं राज्य भोगूँगा ॥ २८ ॥ अरे दास ! जब तुझे जुएके दाँवमें जीता था उस समय तेरा गाण्डीव धनुष कहाँ गया था ? और हे अर्जुन ! उस समय भीमसेनका बल भी कहाँ चला गया था ? ।२९। उस समय गदाधारी भीमसेनसे और गाण्डीवधारी अर्जुनसे जो मुक्ति नहीं मिली थी वह मुक्ति पवित्र द्रौपदीने दिलवायी थी ॥३०॥ दासपनेमें पड़े हुए और सेवाके काममें बँधेहुए तुम्हें द्रौपदीने छुटाया था॥३१॥और दासपनेको प्राप्तहुए तुम्हारा मैंने जो षंढतिल नाम धरा था वहभी ठीकही था हे अर्जुन!विराट नगरमें रहते समय तूने अपने माथे पर चोटा रक्खा था भीमसेन राजा विराटके भोजन भवनमें रसोई बनानेर थक जाता था यह मेरा ही पुरुषार्थ था ॥ ३२॥३३ ॥ क्षत्रिय क्षत्रियोंको सदा ऐसा ही दण्ड देते हैं, तू माथे पर चोटा

नर्तितवानस्मि ॥३४॥ न भयाद्वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन । राज्यं प्रतिप्रदास्यामि युध्यस्व सहकेशवः ॥३५॥ न माया हीन्द्रजालं वा कुहका वा विभीषणाः आत्तशस्त्रस्य मे युद्धे वहन्ति प्रतिगर्ज्जनाः ॥ ३६ ॥ वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा । आसाद्य माममोघेषुं द्रविष्यन्ति दिशो दश ॥३७॥ संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम् । तरेमं वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम् ॥३८॥शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम्। बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम् ३९ भीष्मवेगमपर्य्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम् कर्णशल्यझषावर्त्तं कांबोजवडवामुखम् ॥ ४० ॥ दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं सुषेणचित्रायुधनागनक्रम । जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम् ॥ ४१ ॥ अक्षोव्यमक्षय्यमतिप्रवृद्धं यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः । भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धवस्तदा मनस्ते परितापमेष्यति ॥४२॥ तदा मनस्ते त्रिदि-

---

रख होजड़ेका भेष धरकर कन्याओंको नाचनेका काम सिखाता था, यह मेरा ही पुरुषार्थ था ॥ ३४ ॥ हे अर्जुन ! मैं तेरे या श्रीकृष्णके भयसे तुझे राज्य लौटा कर नहीं दूँगा भले ही तू श्रीकृष्णको साथ लेकर मेरे साथ युद्ध कर ॥ ३५ ॥ माया, इन्द्रजाल वा भयानक कपट शस्त्रधारी पुरुषको संग्राममें भय नहीं देसकते, किन्तु और कुपित करते हैं ॥ ३६ ॥ जब मेरे अमोघबाण छूटने लगेंगे उस समय हजारों कृष्ण और सैंकड़ों अर्जुन मेरे सामने से दशों दिशाओंमेंको भागजायँगे ॥ ३७ ॥ भीष्मजीके सामने युद्ध करना, मस्तकसे पहाड़को तोड़नेकी समान अथवा दोनों भुजाओंसे अगाध, कुरुरूप महासागरको तरनेकी समान कठिन काम है ॥३८॥ इस पुरुषरूपी महासागरमें कृपाचार्यरूप बड़ीभारी मीन है, विविंशति रूप महासर्प है, बृहद्बलरूप बड़ा भारी उफान है, सोमदत्त रूप बड़ा भारी मत्स्य है ॥ ३९ ॥ भीष्मरूप अनन्त वेग है, द्रोणरूप ग्राहसे दुर्गम है, कर्ण और शल्यरूप मगर और भँवर हैं काम्बोजराजरूप वड़वानल अग्नि है ॥ ४० ॥ दुःशासनरूप ओघ है, शल तथा शल्यरूप मत्स्य हैं, सुषेण और चित्रायुध रूप सर्प तथा नाके हैं, जयद्रथरूप टापू है, पुरुमित्ररूप गहराई है, दुर्मर्षणरूप जलसे भरा है और शकुनि ही इसका किनारा है ॥ ४१ ॥ ऐसे इस शस्त्रोंके समूहवाले, अक्षय और जिसमें चारों ओरसे ज्वारभाटा उठता है, ऐसे इस पुरुषरूप महासागरमें तू जब प्रवेश करेगा तो परिश्रमके मारे तेरा

यादिवाग्गुवेर्न्निवर्त्तितो पार्थ महीप्रशानात् । प्रशाम्य राज्यं हि सुदुर्ल्लभं त्वया बुभूषितः स्वर्ग इवातपस्विना ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्युलूकदूतागमनपर्वण्युलूक-
वाक्य एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

सञ्जय उवाच । उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् । आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया ॥ १० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रुषिताः पांडवा भृशम् । प्रागेव भृशसंक्रुद्धाः कैतव्येनापि धर्षिताः ॥ २ ॥ आसनेषूदतिष्ठन्त बाहूंश्चैव प्रचिक्षिपुः । आशीविषा इव क्रुद्धा वीक्षाञ्चक्रुः परस्परम् ॥ ३ ॥ अवाक्शिरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम् । नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन् ॥४॥ आर्तं वातात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाभिहतं भृशम् । उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥ प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोध-

मन अचेत होजायगा तथा तेरे भाई और सब सम्बन्धी मारेजायँगे तब तेरे चित्तको सन्ताप होगा और जैसे अपवित्र पुरुषका मन स्वर्ग पानेकी आशाको छोड़देता है तैसे ही तेरा मन भी पृथ्वीका राज्य करनेके लिये निराश होजायगा, इसलिये हे पार्थ ! तू शान्त होजा तपोहीन पुरुष जैसे स्वर्गकी इच्छा करता है, परन्तु उसको स्वर्ग मिलना कठिन होता है तैसे ही तुझे यह राज्य मिलना बड़ा ही कठिन है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ एकसौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६१ ॥

सञ्जय बोला, कि–हे धृतराष्ट्र ! उलूकने फिर अर्जुनसे दुर्योधनके वचन कहना आरम्भ किये उस समय विषधर सर्पकी समान कोपमें भरेहुए अर्जुनके मर्मस्थानमें वाक्यरूपी शलाकाके प्रहारसे पीड़ा होनेलगी ॥ १ ॥ पाण्डव पहिलेसे ही बड़ेभारी क्रोधमें भररहे थे, कौरवोंने कपटका जुआ खेलकर उनको बड़ा भारी तिरस्कार किया था वह अब उलूककी बातें सुनकर और भी क्रोधमें भरगये २ अपने आसनों परसे खड़े होगये और भुजाओंको फटकारते हुए विषधर सर्पोंकी समान क्रोधमें भर कर एक दूसरेके मुखको देखने लगे३ भीमसेन नीचेको मुख किये हुए विषधर सर्पकी समान श्वास लेता हुआ लाल २ कोये वाली आँखोंसे श्रीकृष्णकी ओरको देखनेलगा ४ पवननन्दन भीमसेनको आतुर और क्रोधसे अत्यन्त पीड़ित हुआ देख दाशार्हवंशी श्रीकृष्णने जराएक हँसकर उलूकसे कहा, कि–॥५॥ अरे कितवपुत्र ! तू अब शीघ्र ही दुर्योधनके पास जाकर कहना,

मत् । श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथाऽस्तु तत् ॥ ६ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुः केशवो राजसत्तम । पुनरेव महाप्राज्ञं युधिष्ठिरमुदैक्षत ॥ ७ ॥ सृञ्जयानाञ्च सर्वेषां कृष्णस्य च यशस्विनः । द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च सन्निधौ ॥ ८ ॥ भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह । उलूकोऽप्यर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥९॥ आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया । कृष्णादींश्चैव तान् सर्वान् यथोक्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ उलूकस्य तु तद्वाक्यं पापं दारुणमीरितम् । श्रुत्वा विचुक्षुभे पार्थो ललाटञ्चाप्यमार्जयत् ॥ ११ ॥ तदवस्थं तदा दृष्ट्वा पार्थं सा समितिर्नृप । नामृष्यन्त महाराज पांडवानां महारथाः ॥ १२ ॥ अधिक्षेपेण कृष्णस्य पार्थस्य च महात्मनः । श्रुत्वा ते पुरुषव्याघ्राः क्रोधाज्जज्वलुरच्युत॥१३॥ धृष्टद्युम्नः शिखंडी च सात्यकिश्च महारथः। केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः१४ द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः । भीमसेनश्च विक्रान्तो

कि-तेरी बात सुनली और उसका अर्थ भी समझ लिया अच्छा अब जो तेरा विचार है, उसके अनुसार ही सब काम होगा ॥६॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! महाबाहु श्रीकृष्ण ऐसा कहकर महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर के मुखकी ओरको देखनेलगे ॥ ७ ॥ इसके पीछे सब सृञ्जय यश पानेवाले श्रीकृष्ण, पुत्रसहित राजा द्रुपद राजा विराट तथा अन्य सब राजाओंके बीचमें उलूक फिर अर्जुनसे दुर्योधनके वाक्य कहने लगा ॥ ८ ॥ अर्जुन विषधर सांपकी समान क्रोधमें भराहुआ था, उसको वाक्यरूप शलाकासे प्रहार करता हुआ, जो कृष्ण आदि तहाँ बैठे थे उन सबोंसे भी जैसा दुर्योधनने कहा था वह सुनाने लगा ॥ १० ॥ उलूकके कहेहुए दारुण और पापी वचनोंको सुनकर अर्जुन खलभला उठा और उसके मस्तक पर पसीना आगया उसको अर्जुनने पोंछ डाला ॥११॥ हे महाराज ! उस समय तहाँ बैठेहुए राजे और पाण्डवोंके महारथी, अर्जुनकी ऐसी दशा देखकर इसको सह नहींसके१२परन्तु हे दृढ मनवाले राजन् ! महात्मा श्रीकृष्णका और अर्जुनका तिरस्कार हुआ देखकर तहाँ बैठेहुए पुरुषसिंह क्रोधके मारे खलभला उठे।१३।धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, महारथी सात्यकी केकय नाम वाले पाँचों भाई, घटोत्कच राक्षस, द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, राजा धृष्टकेतु, पराक्रमी भीमसेन महारथी, नकुल, सहदेव आदि सब क्रोधके कारण लाल २ नेत्र करके लाल चन्दनसे चर्चित और

गमजौ च महारथौ ॥ १५ ॥ उत्पेतुरासनात् सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः। बाहून् प्रगृह्य रुचिरान् रक्तचन्दनरूषितान् । अङ्गदैः परिहार्यैश्च केयूरैश्च विभूषितान् ॥१६॥ दन्तान् दन्तेषु निष्पिष्य सृक्किणी परिसंलिहन् । तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ १७ ॥ उदतिष्ठत् सवेगेन क्रोधेन प्रज्वलन्निव । उद्वृत्य सहसा नेत्रे दन्तान् कटकटाय्य च ॥ १८ ॥ हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत् अशक्तानामिवास्माकं प्रोत्साहननिमित्तकम् ॥ १९ ॥ श्रुतं ते वचनं मूर्ख यत्त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत् । तन्मे कथयतो मन्द शृणु वाक्यं दुरासदम् ॥२०॥ सर्वक्षत्रस्य मध्ये त्वं यद्वक्ष्यसि सुयोधनम् । शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च त्वं दुरात्मनः ॥ २१ ॥ अस्माभिः प्रीतिकामैस्तु भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः । मर्षितं ते दुराचार तत्त्वं न बहु मन्यसे ॥ २२ ॥ प्रेषितश्च हृषीकेशः शमाकांक्षी कुरून् प्रति । कुलस्य हितकामेन धर्मराजेन धीमता ॥ २३ ॥ त्वं कालचोदितो नूनं गन्तुकामो यमक्षयम् । गच्छ-

---

नोंनगे बाजूबन्द तथा केयूरोंसे सजेहुए अपने बाहुदण्डोंको ऊँचे करके आसनों परसे छलाँगे मार खड़े होगये ॥ १४-१६ ॥ भीमसेन उनके आचार तथा भावको जानकर क्रोधके मारे जल उठा, वह दाँतोंसे दाँतोंको पीसकर दोनों जावड़ोंको चाटता हुआ वेगसे उठकर खड़ा होगया और एकायकी दोनों आँखोंको फाड़कर अपने हाथसे हाथको मसलनेलगा तथा सब दाँतोंको कड़कड़ाकर उलूक से कहने लगा, कि–अरे मूर्ख ! दुर्योधनने जो वचन कहलाये हैं वह असमर्थ पुरुषोंकी समान उत्साह दिखानेको कहलाये हैं उसको मैंने सुनलिया, अब हे मूर्ख ! मैं तुझसे जो दुरासद (कठिनसे समझने योग्य) बात कहता हूँ उसको तू सुन ॥१७-२०॥ मैं जो बात कहता हूँ वह तू सब क्षत्रियोंके बीचमें दुष्टात्मा कर्ण तथा अपने पिता दुष्टात्मा शकुनिको सुनाकर दुर्योधनसे कहना, कि–॥२१॥ अरे दुराचारी दुर्योधन ! हम सदा अपने बड़े भाई युधिष्ठिरको प्रसन्न रखने की इच्छासे तेरे अपराधोंको सहलिया करते थे, प्रतीत होता है, कि–तू इस बातका बड़ाभारी उपकार नहीं मानता ॥२२॥ बुद्धिमान् धर्मराजने कुलका हित करनेकी इच्छासे मेल कराना चाहने वाले कृष्णको कौरवोंके पास भेजा था ॥ २३ ॥ परन्तु कालके प्रेरणा कियेहुए तुझे वास्तवमें यमलोकको पधारनेकी इच्छा है, ऐसा अनुमान होता है, अच्छा तो तू हमारे सामने आकर युद्ध कलको अवश्य

स्याद्वधमस्माभिस्तच्च श्वो भविता ध्रुवम् ॥ २४ ॥ मयापि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते । स तथा भविता पाप नात्र कार्या विचारणा ॥ २५ ॥ वेलामतिक्रमेत् सद्यः सागरो वरुणालयः । पर्वताश्च विशीर्य्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत् ॥ २६ ॥ सहायस्ते यदि यमः कुबेरो रुद्र एव वा । यथाप्रतिज्ञं दुर्बुद्धे प्रकरिष्यन्ति पाण्डवाः । दुःशासनस्य रुधिरं पाता चास्मि यथेप्सितम् ॥ २७ ॥ यश्चेह प्रतिसंरब्धः क्षत्रियो माभियास्यति । अपि भीष्मं पुरस्कृत्य तं नेष्यामि यमक्षयम् २८ यच्चैतदुक्तं वचनं मया क्षत्रस्य संसदि । यथैतद्भविता सत्यं तथैवात्मानमालभे ॥ २९ ॥ भीमसेनवचः श्रुत्वा सहदेवोऽप्यमर्षणः । क्रोधसंरक्तनयनस्ततो वाक्यमुवाच ह ॥ ३० ॥ शौटीरशूरसदृशमनीकजनसंसदि । शृणु पाप वचो मह्यं यद्वाच्यो हि पिता त्वया ॥ ३१ ॥ नास्माकं भविता भेदः कदाचित् कुरुभिः सह । धृतराष्ट्रस्य सम्बन्धो यदि न स्यात् त्वया सह ॥३२॥ त्वन्तु लोकविनाशाय धृतराष्ट्रकुलस्य

ही होगा ॥ २४ ॥ अरे पापी ! मैंने भी तुझे और तेरे भाइयोंको मार डालनेका निश्चय कर लिया है और ऐसा ही होगा भी, इसमें विचार करनेकी कुछ भी बात नहीं है ॥ २५ ॥ वरुणका भवनरूप समुद्र चाहे अचानक अपनी मर्यादाको लांघजाय, और चाहे पर्वत भी फटकर बिखरजायँ, परन्तु मेरा कहना मिथ्या नहीं होसकता ॥ २६ ॥ अरे दुर्बुद्धि ! यदि यम, कुबेर और रुद्र भी आकर तेरी सहायता करेंगे तो भी पाण्डव अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करेंगे और मैं भी अपनी इच्छा के अनुसार दुःशासनका रुधिर पीऊँगा ॥ २७ ॥ उस समय चाहे कोई भी क्षत्रिय मेरे ऊपर क्रोध करके भीष्मजीको आगे कियेहुए चढ़ कर आवेगा तो उसको मैं यमलोकमें पहुँचाऊँगा ॥ २८ ॥ मैं इस क्षत्रियोंकी सभामें जो बात कहता हूँ वह सत्य ही होगी इसके लिए मैं अपने आत्माकी शपथ खाता हूँ ॥ २९ ॥ भीमसेनकी बातको सुन कर क्रोधी सहदेवकी आँखें भी लाल लाल होगयीं, वह भी क्रोधमें भराहुआ और जो शूरवीर पुरुषोंको अच्छा लगे ऐसा वचन योधाओं की सभामें कहने लगा कि-अरे पापी उलूक ! तू मेरी बात सुन और अपने पितासे जाकर कहना कि-॥ ३०-३१ ॥ यदि राजा धृतराष्ट्रके साथ तेरा संबन्ध नहीं हुआ होता तो हमारा कौरवोंके साथ कभी भेद होता ही नहीं ॥ ३२ ॥ परन्तु तू तो लोकोंका तथा धृतराष्ट्रके कुलका नाश करनेके लिए ही उत्पन्न हुआ है, तू वैरकी मूर्त्ति, पापके

च । उत्पन्नो वैरपुरुषः स्वकुलघ्नश्च पापकृत् ॥ ३३ ॥ जन्मप्रभृति चास्माकं पिता ते पापपूरुषः । अहितानि नृशंसानि नित्यशः कर्तुमिच्छति ॥ ३४ ॥ तस्य वैरानुबन्धस्य गन्तास्म्यन्तं सुदुर्गमम् । अहमादौ निहत्य त्वां शकुनेः सम्प्रपश्यतः ॥ ३५ ॥ ततोऽस्मि शकुनिं हन्ता मिषतां सर्वधन्विनाम् । भीमस्य वचनं श्रुत्वा सहदेवस्य चोभयोः ३६ उवाच फाल्गुनो वाक्यं भीमसेनं स्मयन्निव । भीमसेन न ते सन्ति येषां वैरं त्वया सह ॥३७॥ मन्दा गृहेषु सुखिनो मृत्युपाशवशङ्गताः । उलूकश्च न ते वाच्यः परुषं पुरुषोत्तम ॥ ३८ ॥ दूताः किमपराध्यन्ते यथोक्तस्यानुभाषिणः । एवमुक्त्वा महाबाहुर्भीमं भीमपराक्रमम् ।३९। धृष्टद्युम्नमुखान् वीरान् सुहृदः समभाषत । श्रुतं वस्तस्य पापस्य धार्त्तराष्ट्रस्य भाषितम् ॥ ४० ॥ कुत्सनं वासुदेवस्य मम चैव विशेषतः। श्रुत्वा भवन्तः संरब्धा अस्माकं हितकाम्यया ॥ ४१ ॥ प्रभावाद्वासुदेवस्य भवताञ्च प्रयत्नतः । समग्रं पार्थिवं क्षत्रं सर्वं न गणयाम्यहम्४२

काम करने वाला तथा अपने भी कुलका नाश करने वाला है ॥३३॥ पापी पुरुष तेरा पिता जन्मसे ही नित्य हमारा अहित करनेवाले क्रूर काम करनेकी इच्छा किया करता है ॥३४ ॥ इसलिए उस शकुनिकी आँखोंके सामने पहिले मैं तेरा ही प्राणांत करके कौरव पाण्डवोंके वैर के उस अन्तको पाऊँगा जिसको और कोई नहीं पासकता ॥ ३५ ॥ और फिर सब धनुषधारियोंकी आँखोंके सामने शकुनिको मारडालूँगा; भीमसेन और सहदेव दोनोंकी इस बातको सुनकर ॥ ३६ ॥ अर्जुन मुसकुराता हुआसा भीमसेनसे कहने लगा कि—हे भैया ! तेरे साथ जिनका वैर है उनको तो तू समझले कि-वह अब संसारमें हैं ही नहीं ॥ ३७ ॥ वह मूर्ख इस समय सुखसे अपने घरमें बैठे हैं तोभी तू उनको मौतकी फाँसीमें फँसा हुआ समझ, हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस उलूकसे तुझे कोई कठोर बात नहीं कहनी चाहिए ॥ ३८ ॥ दूतोंका भला क्या अपराध है ? उनसे तो स्वामी जैसा कह देते हैं वह आकर तैसी ही बात सुना देते हैं, इसप्रकार महाबाहु अर्जुनने भयानक पराक्रम करनेवाले भीमसेनसे कहकर धृष्टद्युम्न आदि अपने वीर संबंधियोंसे कहा, कि—तुमने पापी दुर्योधनकी बात सुनली ३९,४० तुम श्रीकृष्णकी और मेरी बड़ीभारी निन्दाको सुनकर मेरे हितकी इच्छासे क्रोधमें भरगए थे ॥४१॥ तथा मैं भी श्रीकृष्णके और तुम्हारे प्रतापके कारणसे सब क्षत्रिय राजाओंके मण्डलको कुछ भी नहीं गिनता हूँ॥४२

भवद्भिः समनुज्ञातो वाक्यमस्य यदुत्तरम्। उलूके प्रापयिष्यामि यद्वक्ष्यति सुयोधनम्॥ ४३॥ श्वो भूते कत्थितस्यास्य प्रतिवाक्यं चमूमुखे। गाण्डीवेनाभिधास्यामि क्लीवा हि वचनोत्तराः॥ ४४॥ ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रशशंसुर्धनञ्जयम्। तेन वाक्योपचारेण विस्मिता राजसत्तमाः॥ ४५॥ अनुनीय च तान् सर्वान् यथामान्यं यथावयः। धर्मराजस्तदा प्राज्ञं तत् प्राप्यं प्रत्यभाषत॥ ४६॥ आत्मानमवमन्वानो न हि स्यात् पार्थिवोत्तमः। तत्रोत्तरं प्रवक्ष्यामि तव शुश्रूषणे रतः॥४७॥ उलूकं भरतश्रेष्ठ सामपूर्वमथोर्जितम्। दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः॥ ४८॥ अतिलोहितनेत्राभ्यामाशीविष इव श्वसन्। स्मयमान इव क्रोधात् सृक्किणी परिसंलिहन्॥ ४९॥ जनार्दनमभिप्रेक्ष्य भ्रातृंश्चैवेदमब्रवीत्। अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम्॥ ५०॥ उलूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम्। कृतघ्नं वैरपुरुषं दुर्मतिं कुलपांसनम्॥ ५१॥ पाण्डवेषु सदा पाप

इस लिए अब आप सब यदि मुझे दुर्योधनके सन्देशेका उत्तर देनेकी आज्ञा दें तो मैं उलूकको उत्तर देदूँ, यह जाकर दुर्योधनको सुनादेगा॥ ४३॥ यदि ऐसी संमति न हो तो मैं कलको सेनाके मुहानेपर उसकी इस वकवादका उत्तर अपने गाण्डीव धनुषके द्वारा ही देदूँगा क्यों कि-बातोंमें उत्तर देना तो नपुँसकों (हीजों) का काम है।४४। अर्जुनकी इस बातको सुनकर सब राजे उसकी प्रशंसा करने लगे और अर्जुनको तत्काल ऐसा उत्तर देनेकी बुद्धिको देखकर सब राजे चकित होगए।४५। फिर धर्मराजने उन सब राजाओंकी प्रतिष्ठा और अवस्थाओंके अनुसार सत्कार किया और दुर्योधनको जो सन्देशा भेजना था वह उलूकको सुनाते हुए कहनेलगे कि-।४६। कोई भी श्रेष्ठ राजा शान्तभावसे अपने अपमानको नहीं सह सकता, मैंने तेरी बात सावधानीके साथ सुनली है और उसका उत्तर मैं देता हूँ उसको तू सुन॥ ४७॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ! भरतवंशी राजा युधिष्ठिर दुर्योधनकी बात सुननेके अनन्तर लाल लाल आँखें करके विषधर साँपकी समान फुँकारें भरनेलगे और गर्वमें भरकर क्रोधके मारे दोनोंजबाड़ोंको चाटनेलगे और श्रीकृष्ण तथा भाइयोंकी ओरको देख अपनी बड़ी भुजाको भूमिपर टेककर जुआरीके पुत्र उलूकसे कहनेलगे, कि-हे तात तू कुलका नाश करनेवाले,वैरकी मूर्त्ति दुर्बुद्धि और कुलकलङ्क दुर्योधनके पास जाकर उससे कहना, कि-।४८-५१। अरे पापी! तू सदा

नित्यं जिह्मं प्रवर्तसे । स्ववीर्याद्यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान् । अभीतः पूरयन् वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान् ॥ ५२ ॥ स पापः क्षत्रियो भूत्वा अस्मानाहूय संयुगे । मान्यामान्यान् पुरस्कृत्य युद्धं मा गाः कुलाधम ॥ ५३ ॥ आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यञ्च कौरव । आह्वयस्व रणे पार्थान् सर्वथा क्षत्रियो भव ॥५४॥परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् । अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम् ॥ ५५ ॥ स त्वं परेषां वीर्येण आत्मानं बहु मन्यसे। कथमेवमशक्तस्त्वमस्मान् समभिगर्जसि५६ कृष्ण उवाच । मद्वचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः । श्व इदानीं प्रपद्येथाः पुरुषो भव दुर्मते ॥ ५७॥ मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः । सारथ्येन वृतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च ॥५८॥ जघन्य-कालमप्येतन्न भवेत् सर्वपार्थिवान् । निर्दहेयमहं क्रोधात् तृणानीव

पांडवोंके साथ कपटका व्यवहार करता है, परन्तु तुझे जानलेना चाहिए कि-जो पुरुष अपने बलसे पराक्रम करके शत्रुओंको युद्ध करनेके लिये बुलाता है और निर्भय होकर अपनी कहीहुई बातको पूरी करके भी दिखा देता है निःसन्देह वह पुरुष ही क्षत्रिय है ॥५२॥ अरे कुलाधम दुर्योधन ! तू बड़ा पापी है अरे क्षत्रिय जातिका होकर तथा हमें युद्धके लिये निमन्त्रण देकर अब युद्धके समय मान्य भीष्म आदिको और प्रेमपात्र पुत्र लक्ष्मण आदिको आगे करके हमारे साथ युद्ध न करना ॥ ५३ ॥ किन्तु हे कौरव ! अपनी वीरता और अपने सेवकोंकी वीरताका आश्रय लेकर रणमें पांडवोंको युद्धके लिये बुला और सर्वथा क्षत्रिय बन ॥ ५५ ॥ जो पुरुष दूसरोंके बलका सहारा लेकर शत्रुओंको लड़नेके लिये बुलाता है और अपने आप शत्रुओंको वशमें करनेकी शक्ति नहीं रखता है उसको ही नपुंसक कहते हैं ५५ तू भी कर्ण आदि दूसरोंके बलसे अपनेको बड़ा मान बैठा है. सो तू असमर्थ होकर भी हमारे साथ ऐसी बकवाद क्यों करता है? ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णने कहा, कि-हे उलूक ! तू मेरा संदेशा भी दुर्योधनको सुना देना, कि-अरे दुर्बुद्धि ! अब कलको प्रभात होनेवाला है इसलिये तू पुरुष बनजा ॥ ५७ ॥ अरे मूढ ! पाण्डवोंने कृष्णसे सारथी बननेको कहा है इसकारण वह उनका सारथी बनेगा, परन्तु लड़ेगा नहीं, इस बातका विचार कर तू डरता नहीं है ॥५८॥ परन्तु अन्तके समयमें यह कुछ भी नहीं रहेगा, जैसे अग्नि घासको जला डालती है तैसे मैं भी क्रोधाग्निसे सब राजाओंको जलाकर भस्म करडालूँगा ॥५९॥ तथापि

हुताशनः ॥ ५९ ॥ युधिष्ठिरनियोगात्तु फाल्गुनस्य महात्मनः । करिष्ये युध्यमानस्य सारथ्यं विजितात्मनः ॥ ६० ॥ यद्युत्पतसि लोकांस्त्रीन् यद्याविशसि भूतलम् । तत्र तत्रार्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसे पुनः ॥ ६१ ॥ यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघभाषितम् । दुःशासनस्य रुधिरं पीतमद्यावधारय ॥ ६२ ॥ न त्वां समीक्ष्यते पार्थो नापि राजा युधिष्ठिरः । न भीमसेनो न यमौ प्रतिकूलप्रभाषिणम् ॥ ६३ ॥　　　　छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्युलूकदूतागमनपर्वणि कृष्णादिवाक्ये द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

सञ्जय उवाच । दुर्योधनस्य तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभ । नेत्राभ्यामतिताम्राभ्यां कैतव्यं समुदैक्षत ॥ १ ॥ स केशवमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशाः । अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम् । स्ववीर्यं यः समाश्रित्य समाह्वयति वै परान् । अभीतो युध्यते शत्रून् स वै पुरुष उच्यते ३ परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान् । क्षत्रबन्धुरशक्तत्वाल्लोके स पुरुषाधमः ॥ ४ ॥ स त्वं परेषां वीर्येण मन्यसे वीर्यमात्मनः स्वयं

इस समय तो युधिष्ठिरकी आज्ञासे तथा युद्ध करते हुए महात्मा जितेन्द्रिय अर्जुनकी आज्ञासे मैं उसके सारथीका काम करूँगा ॥६०॥ तू तीनों लोकोंमेंसे चाहे तहाँ उड़कर चला जायगा अथवा भूमिके भीतर घुस जायगा अर्थात् जहाँ कहीं भी तू जायगा तहाँ ही प्रातःकाल के समय तू अर्जुनके रथको देखेगा ॥ ६१ ॥ और भीमसेनकी कही हुई बातको तू मिथ्या मानता है, परन्तु तू समझ ले कि-भीमसेनने आज ही दुःशासनका रुधिर पीलिया है ॥ ६२ ॥ धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, सहदेव और नकुल तुझ सरीखे उलटी बातें करनेवालेको कुछ भी नहीं गिनते हैं ॥ ६३ ॥ एकसौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥

सञ्जयने कहा, कि-हे भरतसत्तम राजा धृतराष्ट्र ! महायशस्वी धनञ्जय (अर्जुन) दुर्योधनकी बातको सुनकर, श्रीकृष्णके मुखकी ओरको देखकर लाल लाल आँखोंसे उलूककी ओरको देखता हुआ अपनी बड़ी भुजाको ऊँची करके कहनेलगा कि-॥ १ ॥ २ ॥ जो पुरुष अपने बलके भरोसे पर शत्रुओंको युद्ध करनेके लिये बुलाता है और अपने आप निर्भय होकर शत्रुओंके साथ लड़ता है वह ही पुरुष कहलाता है ॥३॥ परन्तु जो पुरुष दूसरेके बल पर भरोसा रखकर युद्धके लिये शत्रुओंको बुलाता है वह असमर्थ होनेके कारण जगत्में अधम पुरुष कहलाता है और उसको केवल क्षत्रियोंका भाई बन्धु ही

कापुरुषो मूढ परांश्च क्षेप्तुमिच्छसि ॥५॥ यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हित-बुद्धिं जितेन्द्रियम्। मरणाय महाप्रज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे ।६। भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन। न हनिष्यति गांगेयं पाण्डवो घृणयेति हि ॥७॥ यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्त्तराष्ट्र विकत्थसे। हन्तास्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ८ ॥ कैतव्य गत्वा भरतान् समेत्य सुयोधनं धार्त्तराष्ट्रं वदस्व। तथेत्युवाचार्जुनः सव्यसाची निशाव्यपाये भविता विमर्दः ९ यद्वाब्रवीद्वाक्यमदीनसत्त्वो मध्ये कुरून् हर्षयन् सत्यसन्धः। अहं हन्ता सृञ्जयानामनीकं शाल्वेयकांश्चेति ममैष भारः ॥ १० ॥ हन्यामहं द्रोणमृतेऽपि लोकं न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः। ततो हि ते लब्धतमं च राज्यमापद्गताः पाण्डवाश्चेति भावः ॥ ११ ॥ स दर्पपूर्णो न समीक्षसे त्वमनर्थमात्मन्यपि वर्त्तमानम्।

जानना चाहिये ॥ ४ ॥ तू भी दूसरेके बलसे अपनेको बलवान् मानता है, परन्तु तू अपने आप तो डरपोक है तो भी अरे मूढ ! शत्रुओंका तिरस्कार करना चाहता है ॥५॥ अरे कुबुद्धि ! सब राजाओंमें वृद्ध, हित करनेकी बुद्धिवाले, जितेन्द्रिय और परम बुद्धिमान् भीष्मजीको मरणके लिये दीक्षा देकर तू वृथा डींग मारता है ॥ ६ ॥ अरे कुलको कलङ्क लगाने वाले दुर्बुद्धि ! हम तेरे अभिप्रायको समझगये हैं, तूने समझा है, कि-पाण्डव दयालु होकर रणमें गङ्गानन्दन भीष्मजीको मारेंगे नहीं परन्तु हे दुर्योधन ! तू जिनके बलका भरोसा करके बकवाद करता है उन भीष्मजीको तो मैं सब राजाओंके देखतेहुए पहिले ही मारडालूँगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ अरे जुआ खेलनेवालेके पुत्र ! तू भरतवंशी राजाओंके पास जा, तू धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनसे मिलकर कहना, अर्जुनने तुझसे कहलाकर भेजा है, कि-रात बीतजाने पर कल प्रातःकालके समय बड़े भारी संहारका आरम्भ होगा ॥९॥ उदार बलवान् और सत्य प्रतिज्ञावाले भीष्मजीने राजाओंके बीचमें कौरवों को प्रसन्न करते हुए कहा था, कि-मैं सृञ्जयोंकी और शाल्वकी सेनाको मारडालूँगा, मैं द्रोणाचार्यके सिवाय इस सब जगत्का संहार करना चाहूं तो कर डालूँ, इसलिये हे दुर्योधन ! तू पाण्डवों से डरना नहीं, इससे तू अपने मनमें यह विचार कर बैठा है कि-मैंने राज्य ले लिया, और पाण्डव आपत्तिमें पड़गये ॥ १० ॥ ११ ॥ और इसकारण ही तू घमण्डमें भरगया है और तेरे मनमें जो अनर्थ समा रहा है उसको तू देखता ही नहीं है, इसलिये मैं पहिले तो तेरे

तस्मादहं ते प्रथमं समूहे हन्ता समक्षं कुरुवृद्धमेव ॥ १२ ॥ सूर्योदये युक्तसेनः प्रतीक्ष्य ध्वजी रथी रक्षत सत्यसन्धम्। अहं हि वः पश्यतां द्वीपमेनं भीष्मं रथात् पातयिष्यामि बाणैः ॥ १३ ॥ श्वो भूते कत्थनावाक्यं विज्ञास्यति सुयोधनः। आर्चितं शरजालेन मया दृष्ट्वा पितामहम् ॥ १४ ॥ यदुक्तश्च सभामध्ये पुरुषो ह्रस्वदर्शनः। क्रुद्धेन भीमसेनेन भ्राता दुःशासनस्तव ॥ १५ ॥ अधर्मज्ञो नित्यवैरी पापबुद्धिर्नृशंसवत्। सत्यां प्रतिज्ञामचिराद् द्रक्ष्यसे तां सुयोधनः ॥१६॥ अभिमानस्य दर्पस्य क्रोधपारुष्ययोस्तथा। नैष्ठुर्य्यस्यावलेपस्य आत्मसम्भावनस्य च ॥ १७ ॥ नृशंसतायास्तैक्ष्ण्यस्य धर्मविद्वेषणस्य च। अधर्मस्यातिवादस्य वृद्धातिक्रमणस्य च ॥ १८ ॥ दर्शनस्य च वक्रस्य कृत्स्नस्यापनयस्य च। द्रक्ष्यसि त्वं फलं तीव्रमचिरेण सुयोधनः ॥१९॥ वासुदेवद्वितीये हि मयि क्रुद्धे नराधम। आशा ते जीविते मूढ राज्ये वा केन हेतुना ॥ २० ॥ शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते

देखतेहुए योधाओंके समूहमें खड़े हुए कुरुकुलमें वृद्ध भीष्मजीका ही प्राणान्त करूँगा ॥ १० ॥ इसलिये तू सूर्योदयके समय ध्वजावाले रथ में बैठकर और सेनाको तयार करके भीष्मजीकी रक्षा करना, मैं तुम सबोंके देखते हुए दुःखमें डूबते हुओंके आधाररूप भीष्मजीको बाण मारकर रथमेंसे नीचे लुढ़का दूँगा ॥ १३ ॥ और बाणोंके समूहसे ढके हुए भीष्मजीको देखकर अरे दुर्योधन ! तू मेरी कही हुई बातको सच्ची मानेगा ॥ १४ ॥ तुच्छ विचारवाले, अधर्मी, सदा वैरभाव रखनेवाले क्रूरकी समान पाप बुद्धिवाले तेरे भाई दुःशासनके लिये कुरुवंशी राजाओंकी सभामें भीमसेनने क्रोधमें भरकर जो प्रतिज्ञा की थी, उस प्रतिज्ञाको भी हे दुर्योधन ! तू थोड़े ही समयमें सत्य हुई देखेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ अरे दुर्योधन ! अभिमान, दर्प, क्रोध, कठोरता, निष्ठुरता, अहंकार, अपनेको सबसे प्रतिष्ठित मानना क्रूरता, तीक्ष्णता, धर्मसे द्वेष करना, अधर्मपर कमर कसना, बढ़ २ कर बातें करना, वृद्धोंकी बात न मानना, अधर्म पर कमर कसना, वृद्धोंकी बात न मानना कर्ण आदिकी विजयका निश्चय कर बैठना, बहुतसी सेना इकट्ठी करना और सब प्रकारकी अनीति करना इन सब बातोंका तीव्र फल तू शीघ्र ही पावेगा, ॥ १७-१९ ॥ अरे अधम मूढ़ पुरुष ! मैं और श्रीकृष्ण जब क्रोधमें भर जाँयगे, उस समय तू अपने जीवन या राज्यकी आशा करे इसका मैं कोई कारण नहीं

निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि ॥ २१ ॥ भ्रातॄणां निधनं श्रुत्वा पुत्राणाञ्च सुयोधन। भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि॥२२ न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिजानामि कैतव। सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत् सर्वं सत्यं भविष्यति ॥२३॥ युधिष्ठिरोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत्। उलूक मद्वचो ब्रूहि गत्वा तात सुयोधनम् ॥ २४ ॥ स्वेन वृत्तेन मे वृत्तं नाधिगन्तुं त्वमर्हसि। उभयोरन्तरं वेद सूनृतानृतयोरपि ॥२५॥ न चाहं कामये पापमपि कीटपिपीलयोः किं पुनर्ज्ञातिषु वधं कामयेयं कथञ्चन ॥२६॥ एतदर्थं मया तात पञ्च ग्रामा वृताः पुरा। कथं तव सुदुर्बुद्धे न प्रेक्षे व्यसनं महत् ॥ २७ ॥ स त्वं कामपरीतात्मा मूढभावाच्च कत्थसे। तथैव वासुदेवस्य न गृह्णासि हितं वचः॥ २८ ॥ किञ्चेदानीं बहूक्तेन युध्यस्व सह बान्धवैः। मम विप्रियकर्त्तारं कैतव्य ब्रूहि कौरवम् ॥२९॥ श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत्ते तथास्तु तत्।

देखता ॥ २० ॥ जब भीष्मजी द्रोणाचार्य और कर्ण मारे जायँगे तब तू जीवन, राज्य और पुत्रोंसे निराश होजायगा ॥ २१ ॥ हे दुर्योधन! तू भाइयोंके और पुत्रोंके मरणका समाचार सुनेगा और भीमसेन जब तुझे मारेगा तब ही तू अपने कुकर्मोंको याद करेगा ॥२२॥ हे जुआरीके पुत्र ? मैं दूसरी प्रतिज्ञा नहीं करता हूँ, किन्तु मैं सत्य बात कहता हूँ, कि-यह सब सत्य ही होगा ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरने भी शकुनिके पुत्र उलूकसे इस प्रकार कहा कि—हे तात उलूक ? तू दुर्योधनके पास जाकर उससे मेरा यह सन्देशा कहना, कि-॥२४॥ तू अपने आचरणसे मेरे आचरणकी परीक्षा नहीं करसकता, मैं सत्य और असत्य दोनोंके अन्तरको जानता हूँ ॥ २५ ॥ मैं तो कीड़े और चींटियों तकका अहित करना नहीं चाहता फिर क्या मैं किसी प्रकार भी कुटुम्बियोंके नाशकी इच्छा कर सकता हूँ ॥ २६ ॥ हे खोटी बुद्धिवाले भाई सुयोधन ! तुझे बड़ा भारी दुःख होगा तो वह मुझे क्यों नहीं देखनो पड़ेगा अर्थात् अवश्य ही देखना पड़ेगा, इसीकारणसे तो मैंने पहिले ही पाँच ग्राम माँगे थे ! ॥ २७ ॥ परन्तु तेरे मनमें तृष्णा भरी हुई है और तू मूढ है, इसलिए चाहे सो बका करता है और देख तूने श्रीकृष्णकी हितकारी बात भी नहीं मानी ! ॥ २८ ॥ अब अधिक कहनेसे क्या फल है ? तू भाइयोंके साथ भले ही युद्ध कर, इसके पीछे हे कितवपुत्र ! मेरा अहित करनेवाले कौरवसे कहना, कि-तूने जो कुछ कहा वह सुन लिया और उसका तात्पर्य भी समझ लिया अब जो

भीमसेनस्ततो वाक्यं भूप आह नृपात्मजम् ।३०। उलूक मद्वचो ब्रूहि दुर्मतिं पापपूरुषम् । शठं नैकृतिकं पापं दुराचारं सुयोधनम् ॥ ३१ ॥ गृध्रोदरे वा वस्तव्यं पुरे वा नागसाह्वये । प्रतिज्ञातं मया यच्च सभामध्ये नराधम ॥३२॥ कर्त्ताहं तद्वचः सत्यं सत्येनैव शपामि ते । दुःशासनस्य रुधिरं हत्वा पास्याम्यहं मृधे ।३३। सक्थिनी तव भंक्त्वैव हत्वा हि तव सोदरान् । सर्वेषां धार्त्तराष्ट्राणामहं मृत्युः सुयोधन ।३४। सर्वेषां राजपुत्राणामभिमन्युरसंशयम् । कर्मणा तोषयिष्यामि भूयश्चैव वचः शृणु ॥ ३५ ॥ हत्वा सुयोधन त्वां वै सहितं सर्वसोदरैः । आक्रमिष्ये पदा मूर्ध्नि धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥ नकुलस्तु ततो वाक्यमिदमाह महीपते । उलूक ब्रूहि कौरव्यं धार्त्तराष्ट्रं सुयोधनम्३७ श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेव यथातथम् । तथा कर्त्तास्मि कौरव्य यथा त्वमनुशासि माम्३८सहदेवोऽपि नृपते इदमाह वचोऽर्थवत् सुयोधन

तुझे अच्छा लगता है, वही होगा, इसके अनन्तर फिर राजपुत्र उलूक से भीमसेनने कहा, कि-॥२९-३०॥ अरे उलूक ! तू मेरे कहनेसे दुष्ट-बुद्धिवाले, पापी, शठ, कपटी और दुराचारी दुर्योधनसे कहना, कि-॥ ३१ ॥ या तो अब गिद्ध पक्षियोंके पेटमें निवास करना अच्छा है, नहीं तो फिर हस्तिनापुरमें भी निवास करना होगा, अरे नराधम ! मैंने जो सभामें प्रतिज्ञा की थी उसको मैं सच्ची करूँगा और तुझसे मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, कि-मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार युद्धमें दुःशासनको मारकर उसके रुधिरको अवश्य ही पीऊँगा ३२-३३ और तेरी दोनों जाँघोंको गदासे तोड़ डालूँगा, तेरे सब भाइयोंको मार डालूँगा, हे दुर्योधन ! मैं धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंका कालरूप हूँ ॥ ३४ ॥ अभिमन्यु सब राजपुत्रोंका काल है, मैं प्रतिज्ञा करे हुए कामको पूरा करके सबको सन्तोष दूँगा. तू मेरी एक बात और भी सुन ॥ ३५ ॥ हे दुर्योधन ! मैं तुझे तेरे सब भाइयोंके साथ यमलोकमें पहुँचा कर तेरे शिरपर पैर धरकर खड़ा होऊँगा इसबात को युधिष्ठिर अपनी आँखोंसे देखेंगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! फिर नकुल ने भी यह वचन कहा, कि-हे उलूक ! तू धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनसे कहना, कि-॥ ३७ ॥ तूने जो बात कही उसको यथावत् सुन लिया, हे कुरुवंशी ! तू हमें जैसी आज्ञा देता है हम ऐसा ही करेंगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! फिर सहदेवने भी अर्थभरी हुई यह बात कही, कि-हे सुयोधन ! तेरी बुद्धिमें जो कुछ समा रहा है, यह सब वृथा

मतियां ते पृथैषा ते भविष्यति ३९ शोचिष्यसे महाराज सपुत्रज्ञातिबान्धवः। इमञ्च क्लेशमस्माकं हृष्टो यत् त्वं विकत्थसे ॥ ४० ॥ विराटद्रुपदौ वृद्धावुलूकमिदमूचतुः। दासभावं नियच्छेव साधोरिति मतिः सदा। तौ च दासावदासौ वा पौरुषं यस्य यादृशम् ॥ ४१ ॥ शिखण्डी तु ततो वाक्यमुलूकमिदमब्रवीत्। वक्तव्यो भवता राजा पापेष्वभिरतः सदा ॥ ४२॥ पश्य त्वं मां रणे राजन् कुर्वाणं कर्म दारुणम्। यस्य वीर्यं समासाद्य मन्यसे विजयं युधि ॥ ४३ ॥ तमहं पातयिष्यामि रथात्तव पितामहम्। अहं भीष्मवधात् सृष्टो नूनं धात्रा महात्मना ॥ ४४ ॥ सोऽहं भीष्मं हनिष्यामि मिषतां सर्वधन्विनाम्। धृष्टद्युम्नोऽपि कौन्तेयमुलूकमिदमब्रवीत् ॥ ४५ ॥ सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः। अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम् ॥४६॥ अवश्यं च मया कार्यं पूर्वेषां चरितं महत्। कर्ता चाहं तथा कर्म यथा नान्यः करिष्यति ॥ ४७ ॥ तमब्रवीद्धर्मराजः कारुण्यार्थं वचो महत्।

होगा ॥ ३९ ॥ तू हमारे दुःखको देखता हुआ प्रसन्न हो २ कर डींगे मारता है, परंतु हे महाराज! तुझे तेरे पुत्रोंको तेरे सम्बन्धियोंको और तेरे भाइयों को भी शोक करना पड़ेगा ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर वृद्ध अवस्थावाले राजा विराट और राजा द्रुपदने भी उलूक से कहा, कि-तू अपने राजासे हमारा भी सन्देशा कहना, कि-हम सत्पुरुषोंके दास बनना चाहते हैं, यही हमारा स्वतंत्र विचार है, परंतु हम दोनों दास हैं या प्रभु हैं तथा किसमें कैसा पुरुषार्थ है यह कल प्रातःकाल देखा जायगा ॥ ४१ ॥ फिर शिखण्डीने भी उलूकसे कहा कि-तू सदा पापमें लगे रहनेवाले राजा दुर्योधनसे कहना, कि—हे राजन्! तू रणमें मुझे दारुण काम करते हुए देखेगा और मेरे शरीरके बलको भी देखने पर युद्धमें मेरी विजयको स्वीकार करलेगा ४२-४३ निःसन्देह विधाताने मुझे भीष्मजीका संहार करनेके लिए ही उत्पन्न किया है, इस लिए मैं तेरे पितामहको रथमेंसे नीचे गिरा दूँगा ॥४४॥ और मैं सब धनुषधारियोंके देखते हुए ही भीष्मजीको मार डालूँगा फिर धृष्टद्युम्नने भी जुआरी शकुनिके पुत्र उलूकसे यह बात कही कि—॥ ४५ ॥ तू राजकुमार दुर्योधनसे मेरा यह सन्देशा कहना, कि मैं द्रोणाचार्य को उनके कुटुम्बियों और स्नेहियोंके सहित मार डालूँगा ॥ ४६ ॥ मुझे अपने पूर्व पुरुषोंका बड़ाभारी चरित्र अवश्य करके दिखलाना है, मैं रणमें ऐसा पराक्रम करके दिखाऊँगा, जैसा

नाहं ज्ञातिवधं राजन् कामयेयं कथञ्चन ॥ ४८ ॥ तवैव दोषाद् दुर्बुद्धे सर्वमेतत्त्वनागतम्। स गच्छ मा चिरं तात उलूक यदि मन्यसे ।४९। इहवा तिष्ठ भद्रं ते वयं हि तव बान्धवाः। उलूकस्तु ततो राजन् धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥ आमन्त्र्य प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः। उलूकस्तत्र आगम्य दुर्योधनममर्षणम् ॥ ५१ ॥ अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत्। वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम् ॥५२॥ नकुलस्य विराटस्य द्रुपदस्य च भारत। सहदेवस्य च वचो धृष्टद्युम्न-शिखण्डिनोः। केशवार्जुनयोर्वाक्यं यथोक्तं सर्वमब्रवीत् ५३ कैतव्यस्य तु तद्वाक्यं निशम्य भरतर्षभः। दुःशासनञ्च कर्णं च शकुनिं चापि भारत ॥ ५४ ॥ आज्ञापयत राज्ञश्च बलं मित्रबलं तथा। तथा प्रागुदयात् सर्वे युक्तास्तिष्ठन्त्वनीकिनः ॥ ५५ ॥ ततः कर्णसमादिष्टा दूता संत्वरिता रथैः। उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः ॥५६॥ तूर्णं

पराक्रम कोई दूसरा कर ही नहीं सकेगा ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर धर्मराजने दयाभावके कारण उलूकके द्वारा दुर्योधनसे कहलाया, कि हे राजन्! मैं किसी प्रकार भी कुटुम्बियोंका वध करना नहीं चाहता ॥ ४८ ॥ परन्तु यह सब हे दुर्बुद्धि! तेरे ही दोषसे होता है और यह बात खुल भी गयी है, हे तात उलूक! तेरा कल्याण हो, अब यदि तू चाहे तो शीघ्र चला जा और न चाहे तो यहीं रह हमभी तेरे बांधव ही हैं तदनंतर उलूक राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर जहाँ राजा दुर्योधन था तहाँ पहुँच गया, उसने क्रोधी दुर्योधनसे अर्जुनका संदेशा, जैसा कि-उसने कहा था कहकर सुना दिया, श्रीकृष्ण भीमसेन और धर्मराजका पराक्रम कहकर सुना दिया नकुल, सहदेव, विराट द्रुपद, धृष्टद्युम्न और शिखण्डीके वचन कहकर सुना दिये तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका सन्देशा भी जैसा उन्होंने कहा था तैसा ही ही सुनादिया ॥ ५१-५३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! शकुनिकुमार उलूक की सब बात सुनकर भरतसत्तम दुर्योधनने दुःशासन, कर्ण और शकुनिसे कहा, कि-॥ ५४ ॥ तुम राजाओंको अपनी सेनाको और मित्रोंकी सेनाको आज्ञा देदो, कि-कल सूर्योदय होनेसे पहिले सब सेनापति युद्धको तयारी करके रणभूमिमें पहुँच जायँ ॥ ५५ ॥ तद-नन्तर कर्णकी आज्ञासे कोई दूत रथोंमें बैठकर कोई दूत ऊँटों पर चढकर, कोई दूत खच्चरों पर चढ़कर और कोई दूत बड़े वेगवाले उत्तम घोड़ोंपर सवार होकर शीघ्रतासे सब सेनामें घूमनेलगे और सब

परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात् ।आज्ञापयन्तो राज्ञस्तु योगः प्रागुदयादिति ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्युलूकदूतागमनपर्वण्युलूकापयाने
पष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३॥

सञ्जय उवाच । उलूकस्य वचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । सेनां निर्यापयामास धृष्टद्युम्नपुरोगमाम् ॥ १ ॥ पदातिनीं नागवतीं रथिनीमश्ववृन्दिनीम् । चतुर्विधबलां भीमामकम्प्यां पृथिवीमिव ॥२॥ भीमसेनादिभिर्गुप्तां साजुर्नैश्च महारथैः । धृष्टद्युम्नवशां दुर्गां सागरस्तिमितोपमाम् ॥ ३ ॥ तस्यास्त्वग्रे महेष्वासः पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः । द्रोणप्रेप्सुरनीकानि धृष्टद्युम्नो व्यकर्षत ॥४ यथाबलं यथोत्साहं रथिनः समुपादिशत् । अर्जुनं सूतपुत्राय भीमं दुर्योधनाय च ॥ ५ ॥ धृष्टकेतुश्च शल्याय गौतमायोत्तमौजसम् । अश्वत्थाम्ने च नकुलं शैव्यञ्च कृतवर्मणे ॥ ६॥ सैन्धवाय च वार्ष्णेयं युयुधानं समादिशत् ।

राजाओंको राजाकी आज्ञा सुनादी कि-कलको सब लोग सूर्योदयसे पहिले युद्धके लिये सेनाको तयार कर रखना ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ एक सौ तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६३॥

सञ्जय कहता है, कि-हे धृतराष्ट्र ! कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने उलूककी बात सुननेके अनन्तर धृष्टद्युम्नको अग्रणी बनाकर हाथी घोड़े, रथ और पैदल इन चार अङ्गों वाली और जिसको देखते ही सचलसे ऐसी अकम्पित पृथिवी समान सेनाको युद्धके लिये चलती करदिया ॥ १ ॥ २ ॥ महारथी भीमसेन आदि तथा अर्जुन आदि चारों ओरसे उसकी रक्षा करते चलते थे, वह धृष्टद्युम्नके वशमें थी, वह महासागरकी समान निश्चल तथा अगम्य थी ॥ ३ ॥ उस सेना के आगे २ द्रोणाचार्यको पकड़नेकी इच्छावाला, युद्धदुर्मद, पाञ्चालराजकुमार; महाधनुषधारी धृष्टद्युम्न चलता था, मानो वह उन सेनाओंको खैंचे लिये चलाजाता था ॥४॥ जिस २ रथी वीरके पास जैसी २ सेना थी और जिस २ का जैसा २ उत्साह था उसके अनुसार ही उनको युद्ध करनेकी आज्ञा दी, अर्जुनको सूतपुत्र कर्णके साथ युद्ध करनेकी और भीमसेनको दुर्योधनके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ ५ ॥ धृष्टद्युम्नको शल्यके साथ, उत्तमौजाको कृपाचार्यके साथ, नकुलको अश्वत्थामाके साथ, और शैब्यको कृतवर्माके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ ६ ॥ वृष्णिवंशी युयुधानको जयद्रथके साथ,

शिखण्डिनञ्च भीष्माय प्रमुखे समकल्पयत् ॥ ७ ॥ सहदेवं शकुनये चेकितानं शलाय च । द्रौपदेयांस्तथा पञ्च त्रिगर्त्तेभ्यः समादिशत् ८ वृषसेनाय सौभद्रं शेषाणाञ्च महीक्षिताम् । स समर्थं हि तं मेने पार्थाऽभ्यधिकं रणे ॥ ९ ॥ एवं विभज्य योधांस्तान् पृथक् च सह चैव ह । ज्वालावर्णो महेष्वासो द्रोणमंशमकल्पयत् ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्नो महेष्वासः सेनापतिपतिस्ततः । विधिवद् व्यूह्य मेधावी युद्धाय धृतमानसः ॥ ११ ॥ यथोद्दिष्टानि सैन्यानि पाण्डवानामयोजयत् । जयाय पाण्डुपुत्राणां यत्तस्तस्थौ रणाजिरे ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्युलूकदूतागमनपर्वणि सेनापतिनियोगे चतुष्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

समाप्तश्चोलूकदूतागमनपर्व ॥

* अथ रथातिरथसंख्यानपर्व *

धृतराष्ट्र उवाच । प्रतिज्ञाते फाल्गुनेन वधे भीष्मस्य संयुगे । किमकुर्वत मे मन्दाः पुत्रा दुर्योधनादयः ॥ १ ॥ हतमेव हि पश्यामि

और शिखण्डीको भीष्मजीके सामने जाकर युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ ७ ॥ सहदेवको शकुनिके साथ, चेकितानको शलके साथ तथा द्रौपदीके पाँच पुत्रोंको त्रिगर्त्तोंके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥८॥ सुभद्राके पुत्र अभिमन्युको वृषसेन और शेष सब राजाओंके साथ युद्ध करनेकी आज्ञादी, क्योंकि-वह युद्ध करनेमें अभिमन्युको अर्जुनसे भी अधिक शक्तिमान् समझता था ॥९॥ इसप्रकार सब राजाओंको अलग २ और एक साथ योजना करके सेनापतियोंके पति बुद्धिमान् अग्निकी समान लाल २ दमकते हुए और महाधनुषधारी धृष्टद्युम्नने अपनेको द्रोणाचार्यके साथ लड़नेको नियत किया, फिर जिसने युद्ध करनेकी मनमें ठान ली थी ऐसे धृष्टद्युम्नने विधिपूर्वक सेनाकी व्यूहरचनामें चुनदिया ॥ १० ॥ ११ ॥ इसप्रकार पाण्डवोंकी सेनाकी योजना करके अपने आप भी पाण्डवोंकी विजयके लिये तयार हो रणके मैदानमें आकर खड़ा होगया ॥ १२ ॥ एकसौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६४ ॥

* अथ रथातिरथसंख्यानपर्व *

राजा धृतराष्ट्र पूछता है कि-हे सञ्जय ! अर्जुनके रणमें भीष्मका नाश करनेकी प्रतिज्ञा करने पर मेरे दुर्योधन आदि मूर्ख पुत्रोंने क्या

गाङ्गेयं पितरं रणे। वासुदेवसहायेन पार्थेन दृढधन्वना ॥ २ ॥ स चापरिमितप्रज्ञस्तच्छ्रुत्वा पार्थभाषितम्। किमुक्तवान् महेष्वासो भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ ३॥ सैनापत्यञ्च सम्प्राप्य कौरवाणां धुरन्धरः। किमचेष्टत गांगेयो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच। ततस्तत् सञ्जयस्तस्मै सर्वमेव न्यवेदयत्। यथोक्तं कुरुवृद्धेन भीष्मेणामिततेजसा ॥५॥ सञ्जय उवाच। सैनापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप। दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव ॥ ६ ॥ नमस्कृत्य कुमाराय सेनान्ये शक्तिपाणये। अहं सेनापतिस्तेऽद्य भविष्यामि न संशयः ॥७॥ सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च। कर्म कारयितुञ्चैव भृतानभृतांस्तथा ॥ ८ ॥ यात्रायाने च युद्धे च तथा प्रशमनेषु च। भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः ॥ ९ ॥ व्यूहानां च समारम्भान् दैवगा-

किया था ॥ १ ॥ मैं तो मानो दृढ़ धनुष धारण करने वाले तथा श्रीकृष्णकी सहायतावाले अर्जुनने भीष्म पितामहको रणमें मारडाला है, ऐसा देखरहा हूँ ॥ २ ॥ और बड़े २ धनुषधारी योधाओंमें श्रेष्ठ तथा परमबुद्धिमान् भीष्मपितामहने अर्जुनके कथनको सुनकर उसके उत्तरमें क्या कहा था सो मुझे सुनाओ ॥ ३ ॥ तथा महाबुद्धिमान् परम पराक्रमी तथा कौरवोंमें धुरन्धर भीष्मजीके सेनापतिके पदको स्वीकार कर लेने पर उन्होंने कैसा पराक्रम किया था ? यह भी मुझे सुनाओ ॥ ४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! इसके अनंतर अपार तेजवाले और कौरवोंमें वृद्ध भीष्मजीने दुर्योधनसे जो कुछ कहा था वैसा ही सञ्जयने सब धृतराष्ट्रको सुनादिया ॥ ५ ॥ सञ्जयने कहा, कि-हे राजन् ! शन्तनुके पुत्र भीष्मपितामह, सेनापतिके पदको प्राप्त करलेने पर दुर्योधनको हर्ष प्राप्त कराते हुए कहनेलगे, कि-॥ ६ ॥ मैं हाथमें शक्ति धारण करने वाले स्वामिकार्त्तिकेयको प्रणाम करके आज तेरा सेनापति बनूँगा, इसमें अब तू सन्देह न करना ।७। मैं सेनाके कामोंको तथा नाना प्रकारकी व्यूहरचना करनेके कामको जानता हूँ तथा वेतन पानेवालोंसे और वेतन न पानेवाले अर्थात् मित्रताके कारण सहायता देनेको आयेहुए लोगोंसे किसप्रकार काम कराना चाहिए इन बातोंको भी जानता हूँ ॥ ८ ॥ हे महाराज ! शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करना युद्ध करना तथा शत्रुओंकी शस्त्रवर्षाको रोक देना इन कामोंको मैं बृहस्पतिजीकी नीतिके अनुसार अच्छे प्रकारसे जानता हूँ ॥ ९ ॥ देवताओंके, गन्धर्वोंके और मनुष्योंके व्यूह

न्धर्ममानुषान्। तैरहं मोहयिष्यामि पाण्डवान् व्येतु ते ज्वरः ॥ १० ॥ सोऽहं यास्यामि सत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम्। यथावच्छास्त्रतो राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ११ ॥ दुर्योधन उवाच। विद्यते मे न गाङ्गेय भयं देवासुरेष्वपि। समस्तेषु महाबाहो सत्यमेतद् ब्रवीमि ते १२ किं पुनस्त्वयि दुर्धर्षे सैनापत्ये व्यवस्थिते। द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि ॥ १३ ॥ भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजयो मम। न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम् ॥ १४ ॥ रथसंख्यान्तु कार्त्स्न्येन परेषामात्मनस्तथा। तथैवातिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव ॥१५॥ पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा। श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥ १६ ॥ भीष्म उवाच। गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले। ये रथाः पृथिवीपाल तथैवातिरथाश्च ये१७ बहूनीह सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। रथानां तव सेनायां यथा-

रचनेमें भी मैं प्रवीण हूँ, उन रचनाओंसे मैं पाण्डवोंको चकित कर दूँगा, तुम अपने चित्तकी चिन्ताको दूर करदो ।१०। और मैं तुम्हारी सेनाकी रक्षा करूँगा और शास्त्रमें कही हुई रीतिके अनुसार निष्कपटभावसे पाण्डवोंके साथ लडूँगा, हे राजन् ! तू अपने मनके भय को दूरकर ॥ ११ ॥ दुर्योधनने कहा, कि-हे पितामह भीष्मजी ! हे महाबाहो ! यह युद्ध तो क्या देवासुरोंके सकल युद्धोंमें भी मुझे भय नहीं लगता है, यह बात मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥१२॥ जब मैं देवासुर संग्रामसे भी नहीं डरता तो फिर जहाँ आप सरीखे किसीके वश में न आनेवाले सेनापति प्रबन्ध कर रहे हों तथा युद्धका उत्साह देने वालोंमें सिंह समान द्रोणाचार्यजी जहाँ खड़े हों तहाँ मुझे काहेका भय ? ॥ १३ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जहाँ आप सरीखे दो महापुरुष रणके मुहाने पर खड़े हों तहाँ मेरी विजय ही होगी, अधिक क्या कहूँ आप की सहायतासे मुझे देवताओंका राज्य मिलना भी दुर्लभ नहीं है १४ तो भी हे कौरव! मैं अब आपके और शत्रुओंके रथियोंकी तथा महारथियोंकी पूरी संख्या आपसे जानना चाहता हूँ॥१५॥ आप पितामह ही अपने तथा शत्रुओंके योधाओंकी संख्या जाननेमें प्रवीण हैं इस कारण मैं इन सब राजाओंके सहित रथी अतिरथी और महारथियोंकी संख्या सुनना चाहता हूँ ॥१६॥ भीष्मजी कहने लगे, कि-हे गान्धारी के पुत्र राजेन्द्र ! तेरी सेनामें कितने रथी, कितने अतिरथी और कितने महारथी हैं उनको तू सुन ॥ १७ ॥ हे दुर्योधन ? तेरी सेनामें

मुख्यन्तु मे शृणु ॥ १८ ॥ भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः । दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसम्मितैः ॥ १९ ॥ सर्वे कृतप्रहरणाश्छेदभेदविशारदाः । रथोपस्थे गजस्कन्धे गदाप्रासासिचर्मणि ॥ २० ॥ संयन्तारः प्रहर्त्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः । इष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः ॥ २१॥ एते हनिष्यन्ति रणे पञ्चालान् युद्धदुर्मदान् । कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्त्तराष्ट्रा मनस्विनः ॥ २२ ॥ तथाहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव । शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पांडवम् ॥२३॥ न त्वात्मनो गुणान् वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते । कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः ॥ २४ ॥ अर्थसिद्धिं तव रणे करिष्यति न संशयः । शस्त्रवद्भिरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः ॥२५॥ हनिष्यति चमूं तेषां महेन्द्रो दानवानिव । मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः ॥२६॥ स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे । भागि-

करोड़ों और अर्बों रथी हैं, उनमेंसे मुख्य २ रथियोंके नाम तू मुझसे सुन ॥१८॥ पहिले तो दुःशासन आदि गिनतीमें सौ सब अपने सहोदर भाइयों सहित तू महारथी है ॥ १९ ॥ तुम सब युद्ध करनेमें चतुर और छेदने भेदनेमें भी प्रवीण हो रथके अग्रभाग पर बैठकर अथवा हाथीके कन्धे पर बैठकर युद्ध करना जानते हो गदा, प्रास, तलवार और ढालसे लड़नेमें भी चतुर हो ॥ २० ॥ रथको चलानेमें शस्त्र छोड़नेमें अस्त्रोंकी विद्यामें प्रवीण; बोझा उठानेमें कुशल और धनुष तथा बाणकी विद्यामें द्रोणाचार्य और शरद्वतके पुत्र, कृपाचार्यके शिष्य हो ॥ २१ ॥ बड़े उत्साही तुमने पाण्डवोंके साथ कलह ठाना है, इस कारण तुम युद्धमें उन्मत्त हुए पाञ्चालोंका रणभूमिमें नाश करोगे ॥ २२॥ और हे भरतसत्तम ! मैं तुम्हारा महासेनापति हूँ इस कारण मैं भी पाण्डवोंका अपमान करके शत्रुओंका संहार करूँगा २३ मैं अपने गुण तेरे सामने गाऊँ इस बातको मैं उचित नहीं समझता, क्यों कि-तू मुझे जानता ही है, तेरी सेनामें शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भोज वंशी कृतवर्मा अतिरथी है ।२४। वह रणमें तेरे कामको सिद्ध करेगा, इसमें सन्देह नहीं है वह शस्त्रधारियोंसे दबनेवाला नहीं है, वह दूर ही शत्रुओंको मार गिराने वाला है, उसके शस्त्र बड़े दृढ हैं ॥ २५॥ जैसे महेन्द्र दैत्योंका नाश करता है तैसे ही यह राजा पाण्डवोंकी सेनाका नाश करेगा, मद्रदेशके राजा शल्यको भी मैं बड़ा धनुषधारी और प्रतिष्ठित मानता हूँ । २६ । जो मद्रराज प्रत्येक युद्धमें सदा श्री-

नेषाग्निजांस्त्यक्त्वा शल्यस्तेतिरथो मतः। एष योत्स्यति संग्रामे पाण्डवांश्च महारथान् ॥२७॥ सागरोर्मिसमैर्बाणैः प्लावयन्निव शात्रवान्। भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत् ॥ २८ ॥ सोमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः। बलक्षयममित्राणां सुमहान्तं करिष्यति ॥ २९ ॥ सिंधुराजो महाराज मतो मे द्विगुणो रथः। योत्स्यते समरे राजन् विक्रांतो रथसत्तमः ॥ द्रौपदीहरणे राजन् परिक्लिष्टश्च पाण्डवैः। संस्मरंस्तं परिक्लेशं योत्स्यते परवीरहा ॥ ३१ ॥ एतेन हि तदा राजंस्तप आस्थाय दारुणम्। सुदुर्लभो वरो लब्धः पाण्डवान् योद्धुमाहवे ॥ ३२ ॥ स एष रथशार्दूलस्तद्वैरं संस्मरन् रणे। योत्स्यते पाण्डवैस्तात प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥३३॥ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

भीष्म उवाच। सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो मतः। तथा-

कृष्णके साथ स्पर्धा किया करता है, मेरी समझमें यह भी महारथी है और वह अपने भानजे नकुल तथा सहदेवको छोड़कर महारथी पांडवोंके साथ संग्राममें युद्ध करेगा ॥ २७ ॥ उस समय समुद्रकी तरङ्गोंकी समान बाणोंसे शत्रुकी ओरके योधाओंको रणसागरमें डुबाता हुआसा रणभूमिमें लड़ेगा और अस्त्रविद्यामें चतुर, तेरा हित करनेवाला तथा महाधनुषधारी रथयूथपतियोंका भी अधिपति सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा भी शत्रुओंकी सेनामें बड़ा संहार करेगा २८-२९ हे महाराज! मैं जयद्रथको भी द्विरथी समझता हूँ वह पराक्रमी महारथी भी रणमें युद्ध करेगा ॥ ३० ॥ हे राजन्! जयद्रथने वनमें द्रौपदीका हरण किया था उससमय पाण्डवोंने उसको बहुत ही पीट कर दुःख दिया था, इस कारण शत्रुओंका संहार करनेवाला जयद्रथ भी उस दुःखको याद करके युद्ध करेगा ॥ ३१ ॥ हे राजन्! पाण्डवों ने जयद्रथको दुःख दिया था, इस कारण उसने महाभयानक तपस्या करके रणमें पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेके लिये परम दुर्लभ वरदान पालिया है ॥ ३२ ॥ हे तात! रथियोंमें सिंहकी समान बलवान वह जयद्रथ पाण्डवोंके वैरको याद करके रणमें जिनको त्यागना बड़ा कठिन होता है ऐसे प्राणोंको भी त्यागकर पाण्डवोंके साथ लड़ेगा ३३

एकसौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६५ ॥

भीष्मजीने कहा, कि-हे श्रेष्ठ राजन्! काम्बोज देशका राजा सुद-

र्थसिद्धिमाकांक्षन् योत्स्यते समरे परैः ॥१॥ एतस्य रथसिंहस्य तवार्थे राजसत्तम । पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यंति कुरवो युधि ॥ २ ॥ एतस्य रथवंशो हि तिग्मवेगप्रहारिणः । काम्बोजानां महाराज शलभानामिवायतिः ॥३॥ नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मा रथस्तव । रथवंशेन कदनं शत्रूणां वै करिष्यति ॥४॥ कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन मा रिप। योत्स्यते सततं राजंस्तवार्थे कुरुनन्दन५विन्दानुविन्दावावन्त्यौ संमतौ रथसत्तमौ । कृतिनौ समरे तात दृढवीर्यपराक्रमौ ॥६॥ एतौ तौ पुरुषव्याघ्र रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः । गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च करच्युतैः॥७॥ युद्धाभिकामौ समरेक्रीडन्ताविव यूथपौ । यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत् ॥८॥ त्रिगर्त्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम । कृतवैराश्च पार्थैस्ते विराटनगरे तदा ॥ ९ ॥ मकरा इव राजेन्द्र समुद्धततरङ्गिणीम् । गङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि वाहिनीम् १०

क्षिण एकगुणा रथी है, वह तेरे कामको सिद्ध करनेकी इच्छासे शत्रुओं के साथ रणमें युद्ध करेगा ॥ १ ॥ और रथियोंमें सिंहकी समान इस राजाके पराक्रमको युद्धमें कौरव भी देखेंगे ॥२॥ हे महाराज ! तीक्ष्ण वेगसे प्रहार करनेवाले इस राजाके रथियोंके समूहमें टीड्डियोंके दलकी समान काम्बोज देशके राजाओंका समूह भी आकर मिल जायगा ३ माहिष्मती नगरीका निवासी श्यामवर्णके कवचको धारण करनेवाला राजा नील भी रथी है, वह रथोंके समूहके सहित रणमें चढ़ाई करके तेरे शत्रुओंका संहार करेगा ॥ ४ ॥ हे कुरुनन्दन ! पहिले माहिष्मती के राजाने सहदेवके साथ वैरभाव कर लिया था इस कारण वह तेरे लिए पाण्डवोंके साथ बराबर लड़ेगा ॥ ५ ॥ और हे तात ! अवन्तीके राजा विन्द और अनुविंद भी श्रेष्ठ रथी कहलाते हैं, वह युद्धमें काम करनेवाले, वीरतामें दृढ़ और पराक्रमी हैं ॥ ६ ॥ यह दोनों सिंहकी समान वीर पुरुष हाथसे गदा, प्रास, तलवार, बाण, और तोमरोंके प्रहार करके शत्रुकी सेनाको भस्म कर डालेंगे ॥ ७ ॥ हे महाराज ! ये दोनों युद्धकी कामनावाले यूथपति युद्धके समय क्रीड़ा करते हुएसे सेनामण्डलमें कालकी समान घूमेंगे ॥ ८ ॥ त्रिगर्त्तके पाँचों भाइयोंको भी मैं उत्तम रथी मानता हूँ, विराट नगरकी चढ़ाईके समय उनका भी पाण्डवोंके साथ वैरभाव होगया था ॥ ९ ॥ हे महाराज ! जैसे उछलती हुई तरङ्गों वाली गङ्गाको मगरमच्छ क्षुभित कर डालते हैं तैसे ही वह पाण्डवोंकी सेनाको रणभूमिमें नष्ट भ्रष्ट कर डालेंगे ॥१०॥

ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम् । एते योत्स्यन्ति संग्रामे संस्मरन्तः पुरा कृतम् ॥ ११ ॥ व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनार्जुनेन च । विग्रो विजयता राजन् श्वेतवाहेन भारत १२ ते हनिष्यन्ति पार्थानां तानासाद्य महारथान् । वरान् वरान् महेष्वासान् क्षत्रियाणां धुरन्धरान् ॥१३॥ लक्ष्मणस्तव पुत्रश्च तथा दुःशासनस्य च । उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ संग्रामेष्वपलायिनौ ॥ १४ ॥ तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ । युद्धानाञ्च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः ॥ १५ ॥ रथौ तौ कुरुशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ । क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत्कर्म करिष्यतः ॥ १६ ॥ दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभ । योत्स्यते तव संग्रामे स्वेन सैन्येन पालितः ॥ १७ ॥ बृहद्बलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः । रथो मम मतस्तात महावेगपराक्रमः ॥१८॥ एष योत्स्यति संग्रामे स्वान् बन्धून् सम्प्रहर्षयन् । उग्रायुधो महेष्वासो धार्त्तराष्ट्रहिते रतः ॥ १९ ॥ कृपः शारद्वतो राजन् रथयूथपयूथपः । प्रियान् प्राणान्

हे राजेन्द्र ! इन पांचों महारथियोंमें सत्यरथ मुख्य है और ये पाँचों महारथी संग्राममें पहिलेके वैरभावको याद करके शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इन पाँचों भाइयोंका भीमसेनके साथ तथा उसके छोटे भाई अर्जुनके साथ दिग्विजयके समय विरोध होगया था ॥ १२ ॥ इस कारण वह पाण्डवोंके उत्तम२ क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ महारथियोंको सामना करके उनका संहार कर डालेंगे ॥१३॥ तेरा पुत्र लक्ष्मण तथा दुःशासनका पुत्र भी पुरुषोंमें सिंह समान है और रणमें से भागनेवाला नहीं है, ये दोनों अवस्थामें तरुण और सुकुमार हैं तो भी बड़े वेगवाले (फुर्तीले) और युद्धकी सब बातोंको जाननेवाले हैं तथा सर्वत्र उत्तम नेतारूपसे काम करने वाले हैं ॥१४-१५॥ हे राजसिंह ! मैं उन दोनोंको उत्तम रथी समझता हूँ, क्षत्रियधर्ममें प्रवीण वह दोनों वीर पुरुष भी रणमें बड़े २ काम करेंगे । १६ । हे नरोत्तम ! दण्डधार नामका रथी राजा भी अपनी सेनाकी रक्षामें रहकर रणमें लड़ेगा ॥ १७ ॥ हे तात ! राजा बृहद्बल और महारथी कौशल्य जो बड़े वेगवाला और पराक्रमी है इनको भी मैं रथी मानता हूँ ॥ १८ ॥ उग्र शस्त्र और बड़ेभारी धनुषवाला कौरवोंका हितचिंतक यह राजा संग्राममें अपने भाइयोंको प्रसन्न करता हुआ युद्ध करेगा ॥ १९ ॥ हे राजन् ! शरद्वत्के पुत्र कृपाचार्य भी रथीपतियोंके अधिपति हैं और वह अपने प्यारे प्राणोंको भी त्याग कर तेरे शत्रुओंको भस्म कर

परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव ॥ २० ॥ गौतमस्य महर्षेर्य आचार्यस्य शरद्वतः । कार्त्तिकेय इवाजेयः शरस्तंबात् सुतोऽभवत् ॥ २१ ॥ एष सेनाः सुबहुला विविधायुधकार्मुकाः। अग्निवत् समरे तात चरिष्यति विनिर्दहन् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि षट्पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

भीष्म उवाच । शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप । प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ एतस्य सेना दुर्धर्षा समरे प्रतियायिनः । विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे ॥ २ ॥ द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वानेवातिधन्विनः । समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः ॥३॥ एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः । शरासनविनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः ॥४॥ नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः । निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महारथः ॥ ५ ॥

डालेंगे॥२०॥जैसे कुशाके झूँडमेंसे प्रकट हुए स्वामीकार्त्तिकेयको कोई नहीं जीत सकता था ऐसे ही गौतमवंशके महर्षि शरद्वत नामके आचार्य से उत्पन्न हुए कृपाचार्यको भी नहीं नहीं जीत सकता ॥२१॥ हे तात दुर्योधन ! यह कृपाचार्य भी भांति २ के आयुधोंको और धनुषोंको धारण करने वाली बड़ी भारी सेनाओंका रणमें अग्निकी समान घूम कर संहार करेंगे ॥२२॥ एकसौ छियासठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६६॥

भीष्मपितामहने कहा, कि—हे राजन् ! तेरा मामा शकुनि भी एक रथी है और वह भी पाण्डवोंके साथ घोर युद्ध करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ शकुनिकी सेना भी युद्धमें किसीसे न दबने वाली और सामने जाकर युद्ध करने वाली, अनेकों भयानक शस्त्रों वाली और वेगमें वायुकी समान है ॥ २ ॥ द्रोणाचार्यका पुत्र महाधनुषधारी रणमें विचित्र प्रकारसे युद्ध करने वाला और दृढ़ अस्त्रोंको धारण करनेवाला अश्वत्थामा भी महारथी है, इसलिये वह सकल बड़े २ धनुषधारियोंके सामने विचित्र प्रकारसे लड़ेगा ॥ ३ ॥ हे महाराज ! जिसप्रकार अर्जुनके गाण्डीव धनुषमेंसे छोड़ेहुए बाण एकके पीछे एक निरन्तर छूटते हैं तैसे ही अश्वत्थामा के बाण भी मानो सबके सब एक साथ चढाये गये हैं इसप्रकार धनुष मेंसे निरन्तर छूटते हैं ॥४॥ इस महावीर और उत्तम महारथीके पराक्रमकी मुझसे गिनती नहीं हो सकती क्योंकि-यह महारथी चाहे

क्रोधस्तेजश्च तपसा संभृतोऽऽश्रमवासिनाम्‌ द्रोणेनानुगृहीतश्च दिव्यै-रस्त्रैरुदारधीः ॥६॥ दोषस्त्वस्य महानेको येनैष भरतर्षभ। न मे रथो नातिरथो मतः पार्थिवसत्तम ॥ ७॥ जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः। न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि ॥ ८ ॥ हन्या-देकरथेनैव देवानामपि वाहिनीम्‌ । वपुष्मांस्तलघोषेण स्फोटयेदपि पर्वतान्‌ ॥ ९ ॥ असंख्येयगुणो वीरः प्रहन्ता दारुणद्युतिः। दण्डपाणि-रिवासह्यः कालवत्‌ प्रचरिष्यति ॥ १० ॥ युगान्ताग्निसमः क्रोधात्‌ सिंहग्रीवो महाद्युतिः। एष भारत युद्धस्य पृष्ठं संशमयिष्यति ॥ ११ ॥ पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः। रणे कर्म महत्‌ कर्त्ता अत्र मे नास्ति संशयः ॥ १२ ॥ अस्त्रवेगानिलोद्धूतः सेनाकक्षेन्ध-नोत्थितः। पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति रणे धृतः ॥ १३ ॥ रथ-

---

तो तीनों लोकोंको जलाकर भस्म करसकता है ॥ ५ ॥ इस महारथीने तपस्या करके आश्रममें रहनेवाले ऋषियोंके क्रोधका तथा तेजका संग्रह किया था और इसके पिता द्रोणाचार्यने दिव्य अस्त्र सिखाकर इसके ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है इसकारण इसकी बुद्धि भी उदार है ॥ ६ ॥ तो भी हे भरतसत्तम राजन्‌ ! इसमें बड़ा दोष है उस दोष के कारणसे मैं इसको रथी भी नहीं मानता हूँ और महारथी भी नहीं मानता हूँ ॥ ७ ॥ वह दोष यह है, कि-इसको अपने प्राण बडे प्यारे हैं. ब्राह्मण सदा आयुको चाहा करता है, नहीं तो उसकी समान योधा तो दोनों सेनाओंमें कोई है ही नहीं ॥८॥ उसमें इतनी शक्ति है, कि-वह केवल अपने एक रथसे ही देवताओंकी सेनाओंका भी नाश कर सकता है और अपने हाथोंकी तालीके शब्दसे पर्वतोंको फोड़ सकता है ॥ ९ ॥ उस वीर पुरुषमें असंख्यों गुण हैं, शत्रुओंका संहार करने वाला और दारुण कांतिमान् वह महारथी भी हाथमें दण्ड लेकर फिरते हुए असह्य यमराजकी समान हमारी सेनामें घूमेगा ॥ १० ॥ यह क्रोध करता है तो प्रलयके अग्निकी समान होजाता है, उस महा-तेजस्वीकी ग्रीवा सिंहकी समान है, मैं जानता हूँ, कि-महाभारतके युद्धमें जो कोई बचसकेगा उसको वह पुरुष मारडालेगा ॥११॥ इसके पिता द्रोणाचार्य यद्यपि बूढे हैं तो भी तरुण वीर पुरुषोंसे चढ़े बढ़े हैं वह रणमें निःसंदेह बडाभारी पराक्रम करेंगे ॥ १२ ॥ सेनारूपी घास और लकड़ियोंमें सुलगा हुआ, अस्त्रोंके वेगरूप पवनसे वृद्धिको प्राप्त हुआ द्रोणरूपी महा अग्नि युद्धमें स्थिर होकर पाण्डुके पुत्रोंकी सेनाको

यूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः । भरद्वाजात्मजो कर्त्ता कर्म तीव्रं हितं तव ॥१४॥ सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्य्यः स्थविरो गुरुः । गच्छेदन्तं सृञ्जयानां प्रियस्त्वस्य धनञ्जयः ॥ १५ ॥ नैव जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम् । हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम् १६ श्लाघते यं सदा वीर पार्थस्य गुणविस्तरैः । पुत्रादभ्यधिकञ्चैनं भारद्वाजोऽनुपश्यति ॥ १७ ॥ हन्यादेकरथेनैव देवगन्धर्वमानुषान् । एकीभूतानपि रणे दिव्यैरस्त्रैः प्रतापवान् ॥ १८ ॥ पौरवो राजशार्दूलस्तव राजन् महारथः । मतो मम रथोदारः परवीररथारुजः ॥ १९ ॥ स्वेन सैन्येन महता प्रतपन् शत्रुवाहिनीम् । प्रधक्ष्यति स पञ्चालान् कक्षमग्निगतिर्यथा ॥ २० ॥ सत्यश्रवा रथस्त्वेको राजपुत्रो बृहद्बलः । तव राजन् रिपुबले कालवत् प्रचरिष्यति ॥ २१ ॥ एतस्य योधा राजेन्द्र विचित्रकवचायुधाः । विचरिष्यन्ति संग्रामे निघ्नन्तं शात्रवांस्तव २१

जलाकर भस्म करडालेगा ॥१३॥ रथोंके समूहोंके अधिपतियोंके मंडलके पति महात्मा भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्य युद्धमें भयानक पराक्रम करेंगे ॥ १४॥ यह वृद्ध द्रोणाचार्य राजतिलक पानेवाले सब राजाओंके गुरु और आचार्य हैं, इसकारण यह सब सृञ्जयोंके वंशका नाश करेंगे, परन्तु अर्जुन उनको प्यारा है ॥ १५ ॥ इसकारण यह महाधनुषधारी द्रोणाचार्य अपने गुणोंसे पायेहुए सर्वत्र प्रसिद्ध आचार्यपनेको याद करके उत्तम कर्म करनेवाले अर्जुनको कभी भी नहीं मारेंगे ॥ १६ ॥ और इसलिये ही हे वीर ! वह सदा अर्जुनके जहाँ तहाँ फैलेहुए गुणोंको गाकर उसकी प्रशंसा किया करते हैं, अधिक क्या कहूँ वह तो अर्जुनको अपने पुत्र अश्वत्थामासे अधिक मानते हैं ॥ १७ ॥ वह ऐसे प्रतापी हैं, कि-स्वयं अकेले ही एक रथमें सवार होकर रणमें चढकर आयेहुए देवता, गंधर्व और मनुष्योंको भी दिव्य अस्त्रोंसे मारडालते हैं ॥ १८ ॥ हे राजन ! राजाओंमें सिंहकी समान तुम्हारे पौरव राजाको भी मैं महारथी समझता हूँ और वह भी शत्रुके वीर रथियोंका संहार करनेवाला है ॥ १९ ॥ वह अपनी बडीभारी सेनासे शत्रुकी सेनाको दुःख देकर जैसे अग्नि फूँसके ढेरको बालकर राख कर देता है तैसे ही पांचाल देशके वीरोंको जलाकर भस्म कर डालेगा ॥२०॥ और हे राजन् ! सच्ची कीर्त्तिवाला एकरथी राजकुमार बृहद्बल भी साक्षात् कालकी समान तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाके बीचमें घूमेगा ॥ २१ ॥ और हे राजेन्द्र ! इसके विचित्र आयुध और कवच

वृषसेनो रथस्तेऽग्र्य कर्णपुत्रो महारथः। प्रधक्ष्यति रिपूणान्ते बलन्तु बलिनां वरः ॥ २३ ॥ जलसन्धो महातेजा राजन् रथवरस्तव। त्यक्ष्यते समरे प्राणान्माधवः परवीरहा ॥ २४ ॥ एष योत्स्यति संग्रामे गजः स्कन्धविशारदः। रथेन वा महाबाहुः क्षपयन् शत्रुवाहिनीम् ॥ २५ ॥ रथ एष महाराज मतो मे राजसत्तम। त्वदर्थे त्यक्ष्यते प्राणान् सहसैन्यो महारणे ॥ २६ ॥ एष विक्रान्तयोधी च चित्रयोधी च संगरे। वीतभीश्चापि ते राजन् शत्रुभिः सह योत्स्यते ॥ २७ ॥ वाल्हीकोऽतिरथश्चैव समरे चानिवर्त्तनः। मम राजन्मतो युद्धे शूरो वैवस्वतोपमः ॥ २८ ॥ न ह्येष समरं प्राप्य निवर्त्तेत कथञ्चन। यथा सततगो राजन् स हि हन्यात् परान् रणे ॥ २९ ॥ सेनापतिर्महाराज सत्यवांस्ते महारथः। रणेष्वद्भुतकर्मा च रथी पररथारुजः ॥ ३० ॥ एतस्य समरं दृष्ट्वा न व्यथास्ति कथञ्चन। उत्स्मयन्नुत्पतत्येष परान् रथपथे स्थि-

धारण करनेवाले योधा भी संग्राममें घूमकर तेरे शत्रुओंका संहार करेंगे ॥ २२ ॥ कर्णका पुत्र महारथी वृषसेन भी तेरा मुख्य रथी है, वह महाबली भी तेरे शत्रुओंकी सेनाको जलाकर भस्म कर डालेगा२३ हे राजन्! मधुवंशी महातेजस्वी राजा जरासन्ध भी शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाला है वह भी युद्धमें तेरे लिये अपने प्राण देदेगा, यह योधा हाथी पर बैठनेमें चतुर है, परन्तु वह रथमें बैठकर शत्रुकी सेनाका नाश करता हुआ संग्राममें युद्ध करेगा२४।२५ हे राजसत्तम! मेरे विचारके अनुसार यह रथी है और तेरे लिये वह अपनी सेनाके साथ महारणमें लड़नेको फैल पड़ेगा और अपने प्राणोंको भी त्याग करदेगा ॥ २६ ॥ और हे राजन्! यह बड़ा भयानक योधा और रणमें अनेकों प्रकारसे लड़ना जानता है, यह रणभूमिमें निडर होकर तेरे वैरियोंके साथ लडेगा ॥ २७ ॥ हे राजन्! युद्धमेंसे कभी भी पीछेको नहीं लौटने वाला राजा वाल्हीक भी अतिरथी है और मैं उसको युद्धमें वीर यमराजकी समान मानता हूँ ॥ २८ ॥ हे राजन्! वह रणमें आगे बढकर फिर पीछेको हटता ही नहीं है वह वेगके साथ रणमें जा पहुँचता है और शत्रुओंका संहार करता है ॥ २९ ॥ हे महाराज! तेरा सेनापति सत्यवान् भी महारथी है वह अद्भुत कर्म करेगा और रथमें बैठकर शत्रुओंके रथियोंका नाश करेगा ॥ ३० ॥ यह युद्धको देखकर कभी भी डरता नहीं है, किन्तु वैरियोंको रथों पर चढ़ा हुआ देखकर बड़े हर्षसे छलाँगे मारता हुआ उनके पास जा पहुँचता

तान् ॥३१॥ एष चारिषु विक्रान्तः कर्म सत्पुरुषोचितम्। कर्ता विमर्दे सुमहत्त्वदर्थे पुरुषोत्तमः ३२ अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महारथः। हनिष्यति परान् राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ ३३ ॥ एष राक्षससैन्यानां सर्वेषां रथसत्तमः। मायावी दृढवैरश्च समरे विचरिष्यति ॥ ३४ ॥ प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान्। गजांकुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः॥ ३५ ॥ एतेन युद्धमभवत् पुरा गाण्डीवधन्वना। दिवसान् सुबहून् राजन्नुभयोर्जयगृद्धिनोः॥ ३६ ॥ ततः सखायं गान्धारे मानयन् पाकशासनम्। अकरोत् सम्विदं तेन पांडवेन महात्मना॥३७॥ एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः। ऐरावतगतो राजा देवानामिव वासवः॥ ३८ ॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६७ ॥

भीष्म उवाच। अचलो वृषकश्चैव सहितौ भ्रातरावुभौ। रथौ तत्र दुराधर्षौ शत्रून् विध्वंसयिष्यतः॥ १ ॥ बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढ-

---

है ॥३१॥ और वैरियोंमें महापराक्रम करता है, वह महापुरुष भी तेरे लिये युद्धमें सत्पुरुषोंके योग्य महापराक्रमका काम करके दिखावेगा३२ और हे राजन्! कर्म महाक्रूर करनेवाला अलंबुष नामका राक्षस राजा भी मेरे विचारमें महारथी है, हे राजन्! वह पहिले वैरको याद करके रणमें वैरियोंका संहार करेगा॥ ३३ ॥ यह राक्षसराज सब रथियोंकी सेनामें महारथी, मायावी और पाण्डवोंका अटूट वैरी है इस कारण यह चारों ओरको घूमेगा॥ ३४ ॥ और प्राग्ज्योतिषपुरको स्वामी राजा भगदत्त भी बड़ा वीर और बड़ा प्रतापी है, वह रथ पर चढ़नेमें चतुर और हाथी पर चढ़कर युद्ध करने वालोंमें श्रेष्ठ माना जाता है॥ ३५ ॥ इस भगदत्तके साथ एक समय गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनका बहुत दिनों तक युद्ध हुआ था और वे दोनों ही अपनी २ विजय चाहते थे॥ ३६ ॥ परन्तु हे गांधारीके पुत्र! अन्तमें उसने इन्द्रको मित्र मान अर्जुनके साथ भी मित्रता करली थी ॥३७॥ हाथी पर बैठनेमें चतुर यह राजा भगदत्त, जैसे देवताओंके साथमें हाथी पर बैठा हुआ इन्द्र युद्ध करता है तैसे ही हमारे साथ रहकर रणभूमिमें लड़ेगा ॥३८॥ एक सौ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६७॥

भीष्मजी बोले, कि हे राजा दुर्योधन! गान्धारोंमें श्रेष्ठ, तरुण, देखने योग्य, महाबली, पराक्रमी दृढ़ क्रोध करने वाले, दुराधर्ष

क्रोधौ प्रहारिणौ। गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ ॥ २ ॥ सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः। उत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥ पुरुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव। मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः ॥ ४ ॥ एष नैव रथः कर्णो न चाप्यतिरथो रणे। वियुक्तः कवचेनैष सहजेन विचेतनः ॥५॥ कुण्डलाभ्याञ्च दिव्याभ्यां वियुक्तः सततं घृणी। अभिशापाच्च रामस्य ब्राह्मणस्य च भाषणात् ॥६॥ करणानां वियोगाच्च तेन मेऽर्धरथो मतः। नैष फाल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन् विमोक्ष्यते ॥ ७ ॥ ततोऽब्रवीत् पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः। एवमेतद्यथात्थ त्वं न मिथ्यास्ति कदाचन ॥ ८ ॥ रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते। घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥ ९ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फाल्य लोचने। उवाच भीष्मं राधेयस्तुदन्वाग्भिः प्रतोदवत् ॥१०॥ पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि। अनागसं सदा द्वेषादेवमेव

तथा मनुष्योंमें सिंहसमान अचल और वृषक नामवाले दोनों भाई भी रथी हैं और यह इकट्ठे होकर तेरे शत्रुओंका संहार करेंगे ॥१-२॥ हे भरतवंशी राजन्! तेरा प्यारा मित्र, मंत्री, नेता और बन्धु यह कर्ण अभिमानी, बड़ा ऊँचा, अपनी प्रशंसा करनेवाला, नित्य रणमें बड़ा कर्कश और नीच है तथा तुझे सदा पाण्डवोंके साथ लड़नेको उत्तेजना दिया करता है, यह रथी या अतिरथी कुछ भी नहीं है, यह मूर्ख और सदा दयालु होनेके कारण, जन्मसे ही शरीर पर चिपटे हुए दिव्य कवचको और दिव्य कुण्डलोंको परशुरामजीके शापके कारण तथा ब्राह्मणके कहनेसे खो बैठा है, उन दिव्य कवच और कुण्डल आदि उत्तम पदार्थोंको खो बैठनेके कारणसे मैं इसको आधा रथी समझता हूँ, यह यदि अर्जुनके साथ युद्ध करनेको जायगा तो फिर जीताहुआ छूटकर नहीं आवेगा ॥३-७॥ यह सुनकर सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य फिर कहनेलगे, कि-हे भीष्मजी! तुम जैसा कहते हो सो ठीक ही है,यह बात कभी मिथ्या नहीं होसकती८ इस कर्णको हरएक संग्रामके समय अभिमान करते हुए और फिर वहाँसे उलटा भागते हुए ही देखा है, इसलिये दयालु और प्रमादी कर्णको मैं भी अर्धरथी ही मानता हूँ ॥९॥ राधाका पुत्र कर्ण भीष्मजी की बातको सुन क्रोधके मारे दोनों आँखोंको फाड़ कर कोड़ेकी समान बातोंसे भीष्मजीके ऊपर प्रहार करता हुआ कहनेलगा कि-१०

पदे पदे ॥ ११ ॥ मर्षयामि च तत्सर्वं दुर्योधनकृतेन वै। त्वन्तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा ॥ १२ ॥ भवानर्धरथो मह्यं मतो वै नात्र संशयः। सर्वस्य जगतश्चैव गाङ्गेयो न मृषा वदेत् ॥ १३ ॥ कुरूणामहितो नित्यं न च राजावबुध्यते। को हि नाम समानेषु राजसूदारकर्मसु ॥ १४ ॥ तेजोवधमिदं कुर्याद् विभेदयिषुराहवे। यथा त्वं गुणविद् द्वेषादपरागं चिकीर्षसि॥१५॥ न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः। महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव ॥१६॥ बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः। धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः ॥ १७ ॥ यथेच्छकं स्वयं ब्रूया रथानतिरथांस्तथा। कामद्वेषसमायुक्तो मोहात् प्रकुरुते भवान् ॥ १८ ॥ दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम्। त्यज्यतां दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्बिषकृत्तव ॥ १९ ॥ भिन्ना हि सेना नृपते दुःसन्धेया भवत्युत।

हे पितामह ! तुम नित्य बात २ पर मुझ निरपराधीको द्वेषके कारण जीमें आवे तैसी वाणीरूप बाणोंसे छेदा करते हो ॥ ११ ॥ परन्तु उन सब बातोंको मैं दुर्योधनके कारणसे सह लिया करता हूँ और जैसे कोई कायरपुरुषको मूढ़ मानता हो तैसे ही तुम मुझे भी मूढ़ समझते हो ॥ १२ ॥ तुम कहते हो, कि मैं कर्णको अर्धरथी मानता हूँ, इससे सब जगत् भी मुझे अर्धरथी मानने लगेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि-सबको विश्वास है, कि-भीष्मजी झूठ बोलते ही नहीं हैं ॥ १३ ॥ परन्तु ऐसा कहनेसे तुम मुझे सदा कौरवोंके शत्रु प्रतीत होते हो, तो भी राजा दुर्योधन इस बातको समझता ही नहीं है, तुम गुणोंके द्वेषी हो इसकारण मुझसे द्वेष रखते हो, उत्तम कर्म करनेवाले एकसमान राजाओंमें भेद डलवानेकी इच्छासे कौनसा पुरुष रणमें इसप्रकार दूसरेके तेजकी हत्या करेगा ? ॥ १४-१५ ॥ हे कौरव ! अधिक वर्षोंकी अवस्था, केश पकजाना, धन अथवा बहुतसे कुटुम्बवाला होना, इनमेंसे किसी बातके कारणसे भी भीष्मजीको महारथी नहीं कहा जासकता ॥ १६ ॥ क्षत्रिय बलसे श्रेष्ठ माने जाते हैं, ब्राह्मण वेदमंत्रोंके ज्ञानसे श्रेष्ठ माने जाते हैं, वैश्य धन और धान्यसे श्रेष्ठ मानेजाते हैं और शूद्र अवस्थामें अधिक होनेसे श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ १७ ॥ तुम काम तथा द्वेषसे भरे हुए हो इसलिये मोहवश अपनी इच्छानुसार रथी अतिरथियोंके भेद किया करते हो ॥ १८ ॥ अरे महाबाहु दुर्योधन ! तू जरा एक विचार कर और दुष्टभाव वाले

मौला हि पुरुषव्याघ्र किमु नाना समुत्थिताः २० एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत । तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः ॥२१॥ रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः । अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् ॥२२॥ आसाद्य मामभोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश । पाण्डवाः सह पञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव ॥२३॥ क्व च युद्धं विमर्दो वा मन्त्रे सुव्याहृतानि च । क्व च भीष्मो गतवयो मन्दात्मा कालचोदितः ॥ २४ ॥ एकाकी स्पर्धते नित्यं सर्वेण जगता सह । न चान्यं पुरुषं कश्चिन्मन्यते मोघदर्शनः ॥ २५ ॥ श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम् । न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः ॥ २६ ॥ अहमेको हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम् । सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति ॥ २७ ॥ कृतः सेनापतिस्त्वेष

तथा मेरा अहित करनेवाले इन भीष्मजीको तू त्याग दे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! मौलिक (घरकी) सेना भी यदि भेदभाव रखने लगे तो उस को फिर अपने मेलकी बनाना कठिन होजाता है तब हे पुरुषव्याघ्र ! एक कामको सिद्ध करनेके लिये इकट्ठी हुई भिन्न २ स्थानोंकी सेना यदि फिर बैठे तो उसको वशमें रखना तो बन ही कैसे सकता है २० हे भरतवंशी ! इन सब राजाओंके सामने भीष्मजीने मेरे पराक्रमकी बड़ी निन्दाकी है, इसकारण इन योधाओंके मनमें दुचित्तापन होगया है ॥ २१ ॥ कहाँ तो रथियोंका ज्ञान और कहाँ यह अल्पबुद्धिवाले भीष्म ? मैं अकेला ही पाण्डवोंकी सेनाको उलटी भगा दूँगा ॥ २२ ॥ जैसे बैल सिंहके समीप पहुँचते ही दशों दिशाओंमेंको भागने लगते हैं तैसे पाञ्चालोंके सहित पाण्डव भी मेरे साथ लड़नेमें मेरे अमोघ बाणोंकी मारसे दशों दिशाओंमेंको भाग जायँगे२३कहाँ तो युद्ध बड़ा भारी संहार और गुप्त विचारके समय कहनेके सुन्दर वचन और कहाँ यह कालका प्रेरणा किया हुआ मूढबुद्धि बूढा भीष्म ॥ २४ ॥ जिसके विचार किसी कामके नहीं होते ऐसा यह बूढा और किसी पुरुषको भी कुछ नहीं गिनता है और अकेला ही सदा सब जगत्के साथ डाह किया करता है ॥ २५ ॥ शास्त्रकी आज्ञा है, कि-बूढेकी बात माननी चाहिये परन्तु अतिबूढोंकी बात कभी नहीं सुननी चाहिये, क्योंकि-वह बालकोंकी समान माने गये हैं ॥ २६ ॥ हे राजसिंह ! मैं अकेला ही युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश करूँगा परन्तु उसका यश भीष्मको मिलेगा ॥ २७ ॥ हे राजन् ! तुमने भीष्मको सेनापति

त्वया भीष्मो नराधिप । सेनापतौ यशो गन्ता न तु योधान् कथञ्चन ॥ २८ ॥ नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन् कथञ्चन । हते भीष्मे तु योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः ॥ २९ ॥ भीष्म उवाच । समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान् सागरोपमः । धार्त्तराष्ट्रस्य संग्रामे वर्षपूगाभिचिन्तितः ३० तस्मिन्नभ्यागते काले प्रतप्ते लोमहर्षणे । मिथो भेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज ॥ ३१ ॥ न ह्यहं त्वद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव । युद्धश्रद्धामहं छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज ॥३२॥ जामदग्न्येन रामेण महास्त्राणि विमुञ्चता । न मे व्यथा कृता काचित् त्वन्तु मे किं करिष्यसि ॥ ३३ ॥ कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम् । वक्ष्यामि तु त्वां सन्तप्तो निहीनकुलपांसन ॥ ३४ ॥ समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराजस्वयम्वरे । निर्जित्यैकरथेनैव याः कन्यास्तरसा हृताः ॥ ३५ ॥ ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः । मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे ॥ ३६ ॥ त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणा-

बना लिया है, इसलिये यश सेनापतियोंको ही मिलेगा और योधाओं को कुछ यश नहीं मिलेगा २८ हे राजन् ! भीष्म जबतक जीवित हैं तब तक मैं कभी नहीं लड़ूँगा परन्तु जब भीष्म मारे जायँगे तब मैं सब महारथियोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ २९ ॥ भीष्मजीने कहा कि— बहुत वर्षोंसे मैं जिस महासागर समान युद्धके भारका विचार किया करता था वह दुर्योधनके महासंग्रामका बड़ा भारी भार इस समय मेरे ऊपर आपड़ा है ॥३०॥ और ऐसे रोमाञ्च खड़े करने वाला तीक्ष्ण समय आजानेके कारणसे ही हे सूतपुत्र ? मैं आपसमें भेद कराना नहीं चाहता, इसीसे तू जी रहा है ॥३१॥ हे सूतपुत्र कर्ण ! मैं बूढा हूँ तो भी तुझ सरीखे बालकके सामने पराक्रम करके तेरी युद्धकी श्रद्धा को और जीनेकी आशाको नहीं तोड़ता हूँ ॥३२॥ जमदग्निके पुत्र परशुराम भी बड़े २ अस्त्र मारकर मुझे किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं देसके थे फिर तू तो मेरा कर ही क्या सकेगा ? ।३३। अरे नीच कुलकलङ्क ! सत्पुरुष अपने बलकी कीर्त्तिकी प्रशंसा कभी नहीं करते हैं तोभी चित्त दुखनेके कारणसे मुझे तेरे सामने अपनी कीर्त्तिकी प्रशंसा करनी पड़ती है ।३४। काशीके राजाके घर स्वयम्वर हुआ था तब उसमें जो क्षत्रिय राजे इकट्ठे हुए थे उनको एक रथकी सहायतासे ही जीतकर मैंने बड़े वेगके साथ काशिराजकी सब कन्याओंका हरण किया था ॥३५॥ और रणभूमिमें साधारण तथा उनसे भी बड़े चढे हुए हजारों राजाओंको

मनयो महान् । उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव ।३७। युध्यस्व समरे पार्थं येन विस्पर्धसे सह । द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद्युद्धात् सुदुर्मते ॥ ३८ ॥ तमुवाच ततो राजा धार्त्तराष्ट्रः प्रतापवान् । मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ ३९ ॥ चिन्त्यतामिदमेकाग्रं मम निःश्रेयसं परम् । उभावपि भवन्तौ मे महत् कर्म करिष्यतः ॥ ४० ॥ भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान् ये चैवातिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः ॥ ४१ ॥ बलाबलममित्राणां श्रोतुमिच्छामि कौरव । प्रभातायां रजन्यां वै इदं युद्धं भविष्यति ॥ ४२ ॥ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि भीष्मकर्णसंवादेऽष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

भीष्म उवाच। एते रथास्तवाख्यातास्तथैवातिरथा नृप। ये चाप्यर्धरथा राजन् पाडवानामतः शृणु ॥१॥ यदि कौतूहलं तेऽद्य पाण्डवानां बले नृप । रथसंख्यां शृणुष्व त्वं सहैभिर्वसुधाधिपैः ॥२॥ स्वयं राजा

सेनाके सहित मैंने अकेले ही हरा दिया था ॥३६॥ तुम सबीके वैरकी मूर्त्तिको पाजानेके कारणसे कौरवोंके ऊपर भी बड़ाभारी अन्याय आ पड़ा है, इस लिए अब तू पुरुष बनजा और अपने नाशके लिए उद्योग कर ॥३७॥ और हे परमदुष्ट बुद्धि वाले ! तू जिस अर्जुनके साथ सदा डाह किया करता है, उस अर्जुनके साथ अब तू रणमें युद्ध कर और मैं तुझे इस युद्धमेंसे मुक्त हुआ देखूँ ॥ ३८ ॥ फिर प्रतापी राजा दुर्योधनने भीष्मजीसे कहा, कि हे गंगाके पुत्र ! आप मेरी ओरको देखिये, आपको बड़ाभारी काम करना है ॥ ३९ ॥ इसलिए जो करनेसे मेरा कल्याण हो, वह उपाय आप उद्योग करके सोजिए, मैं समझ रहा हूँ, कि-आप दोनों ही जने मेरा बड़ाभारी काम करेंगे ॥ ४० ॥ अब मैं फिर शत्रुओंके श्रेष्ठ रथी, अतिरथी तथा जो रथियोंके समूहोंके भी अधिपति हों उनकी संख्या सुनना चाहता हूँ ॥४१॥ तथा हे कुरुवंशी राजन् ! शत्रुओंके बलको और निर्बलपनेको भी सुनना चाहता हूँ, क्यों कि-आजकी रात बीतकर ज्यों ही प्रभात होगा, कि इस युद्धका आरम्भ हो जायगा ॥ ४२ ॥ एक सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त १६८

भीष्मपितामह बोले, कि-हे राजन्! तुम्हारी सेनाके जो रथी अतिरथी और अर्धरथी थे वह तो तुम्हें कहकर सुना दिए, अब तुम पाण्डवोंकी सेनाके रथियोंका वर्णन सुनो । १ । हे राजन् ! यदि तुझे पाण्डवोंकी सेनाके रथी आदिकोंको सुननेकी उत्कण्ठा होय तो तू इन

रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः । अग्निवत् समरे तात चरिष्यति न संशयः ॥ ३ ॥ भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः । न तस्यास्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि ॥४॥ नागायुतबलो मानी तेजसा न स मानुषः । माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ ॥ ५ ॥ अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ । एते चमूमुखगताः स्मरन्तः क्लेशमुत्तमम् ॥६ ॥रुद्रवत् प्रचरिष्यन्ति तत्र मे नास्ति संशयः । सर्व एव महात्मानः शालस्तम्भा इवोद्गताः ॥ ७ ॥ प्रादेशेनाधिकाः पुंभिरन्यैस्ते च प्रमाणतः । सिंहसंहननाः सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः ॥ ८ ॥ चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे तात तपस्विनः । ह्रीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः ॥९॥ जवे प्रहारे संमर्दे सर्व एवातिमानुषाः । सर्वैर्जिता महीपाला दिग्जये भरतर्षभ ॥ १०॥ न चैषां पुरुषाः केचिदायुधानि गदाः शरान् । विषहन्ति सदा कर्तुमधिज्यान्यपि कौरव ॥ ११ ॥ उद्यतां वा

राजाओंके साथ बैठकर सुन ॥ २ ॥ हे तात ! पहिले तो राजा युधिष्ठिर अपने आप ही महारथी है, इस कारण वह निःसन्देह रणभूमिमें अग्निकी समान चारों ओरको घूमेगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! भीमसेन तो आठगुणा रथी है, क्योंकि-गदायुद्धमें और बाणयुद्धमें उसकी बराबरी करने वाला कोई योधा है ही नहीं ।४। भीमसेनमें दश हजार हाथियों का बल है,वह बड़ा अभिमानी और तेजस्वी है;इसकारण वह मनुष्य नहीं है किन्तु देवताकी समान है और माद्रीके दोनों महात्मा पुत्र भी रथी हैं ॥ ५ ॥ वह दोनों रूप और तेजमें अश्विनीकुमारकी समान हैं, जब पांडव सेनाके आगे खड़े होकर अपने ऊपर पड़ेहुए दुःखोंको याद करेंगे उससमय रणमें इन्द्रकी समान घूमेंगे इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है, वह सब महात्मा और सालके लट्ठोंकी समान ऊँचे हैं ॥६-७॥ वह पाण्डुके पुत्र और सब पुरुषोंकी अपेक्षा नापमें एक बिलस्त ऊँचे, सिंहोंकी समान दृढ शरीर वाले और महाबली हैं ॥८॥ हे तात ! वह सब ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करने वाले, तपस्वी, लज्जाशील, पुरुषोंमें बाघकी समान और सिंहकी समान भयंकर बलवाले हैं ॥ ९ ॥ वह दौड़नेमें, शस्त्रोंके प्रहार करनेमें और कुचल डालनेमें भी अलौकिक पुरुष हैं हे भरतसत्तम ! उन्होंने पहिले दिग्विजयके समय सब राजाओं को हरादिया था ॥ १० ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! उन पाण्डवोंके आयुध और बाण ऐसे हैं, कि-किसीसे सहे ही नहीं जाते तथा उनके धनुषों पर भी कोई प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सकता ॥ ११ ॥ तथा उनकी भारी

गदा गुर्वीः शरान् वा क्षेप्तुमाहवे । जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे१२बालैरपि भवन्तस्तैः सर्व एव विशेषिताः । एतत् सैन्यं समासाद्य सर्व एव बलोत्कटाः ॥ १३ ॥ विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः । एकैकशस्ते संमर्दे हन्युः सर्वान् महीक्षितः । १४ । प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र राजसूये यथाभवत् । द्रौपद्याश्च परिक्लेशं द्यूते च परुषा गिरः ॥१५॥ ते स्मरन्तश्च संग्रामे चरिष्यन्ति च रुद्रवत् । लोहिताक्षो गुडाकेशो नारायणसहायवान् १६ उभयोः सेनयोर्वीरो रथी नास्तीति तादृशः । न हि देवेषु वा पूर्वं मनुष्येषूरगेषु च ॥ १७ ॥ राक्षसेष्वथ यक्षेषु नरेषु कुत एव तु । भूतोऽथवा भविष्यो वा रथः कश्चिन्मया श्रुतः ॥ १८ ॥ समायुक्तो महाराज रथः पार्थस्य धीमतः । वासुदेवश्च संयन्ता योद्धा चैव धनञ्जयः ॥ १९ ॥ गाण्डीवश्च धनुर्दिव्यं ते चाश्वा वातरंहसः । अभेद्यं कवचं दिव्यमक्षय्यौ च महेषुधी ॥ २० ॥ अस्त्रग्रा-

---

गदाओंको उछालनेकी तथा रणमें उनके बाणोंको फेंकनेकी भी किसी में शक्ति नहीं है. वह जब छोटी अवस्थाके थे तब ही तुम सबोंकी अपेक्षा वेगसे दौड़नेमें, लक्ष्य (निशाने) को बींधनेमें मर्मस्थानमें पीड़ा देनेमें,भूमिमें डालकर घसीटनेमें तथा पृथिवी पर(?)कर मुष्टियुद्ध करनेमें बढ़े चढ़े थे वह पाण्डव अपनी सेनाके सहित रणभूमिमें आते ही हमारी सेनाका संहार कर डालेंगे इस लिए उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये वह युद्धमें एक एक राजाको खोजकर मार डालेंगे हे राजेन्द्र ! राजसूय यज्ञमें जो कुछ हुआ था वह सो प्रत्यक्ष ही देखा है उस द्रौपदीको दियेहुए दुःखको,तथा जुआ खेलते समय कहेहुए तीखे वचनोंको याद करके पाण्डव संग्राममें रुद्रोंकी समान घूमेंगे और लाल लाल नेत्रोंवाले अर्जुनको तो कृष्णकी सहायता है ॥ १२-१६ ॥ उसकी समान रथी दोनों सेनाओंमें कोई है हो नहीं और पहिले भी देवताओंमें, नागोंमें, राक्षसोंमें, तथा यक्षोंमें भी उसकी समान रथी कोई भी नहीं था, फिर मनुष्योंमें तो होगा ही कहाँसे?और मैंने सुना है, कि-अब आगेको भी ऐसा रथी कोई नहीं होगा ॥ १७-१८ ॥ हे महाराज!बुद्धिमान् अर्जुनका रथ सब सामग्रियोंसे भरपूर है, श्रीकृष्ण उसके सारथी हैं वह स्वयं बड़ाभारी योधा है, गाण्डीव जैसा उसका दिव्य धनुष है पवनकी समान वेगवाले घोड़े हैं उसके पास दिव्य कवच ऐसा है कि-उसको कोई फोड़ ही नहीं सकता और जिनमेंके बाण कम नहीं होने पाते ऐसे दो भाथे हैं ।१९-२०। महेन्द्र, रुद्र, कुबेर,

मश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौवेर एव च । याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः २१ ॥ वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि च । दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् २२ हतान्येकरथेनाजौ कस्तस्य सदृशो रथः । एष हन्याद्धि संरम्भी बलवान् सत्यविक्रमः ॥ २३ ॥ तव सेनां महाबाहुः स्वाञ्चैव परिपालयन् । अहञ्चैनं प्रत्युदियामाचार्य्यो वा धनञ्जयम् ॥ २४ ॥ न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि । य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद्रथी ॥ २५ ॥ जीमूत इव घर्मान्ते महावात समीरितः । समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान् । तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावामुभावपि ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु भीष्मस्य राज्ञां दध्वंसिरे तदा । काञ्चनाङ्गदिनः पीना भुजाश्चन्दनरूषिताः ॥ २७ ॥ मनोभिः सह संवेगैः संस्मृत्य च पुरातनम् । सामर्थ्यं पाण्डवेयानां यथा प्रत्यक्षदर्शनात् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि पांडवरथातिरथसंख्यायामूनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६९॥

यम और वरुणके दियेहुए अस्त्रोंका उसके पास बड़ाभारी समूह है और दीखनेमें भय देनेवाली गदायें हैं ॥ २१ ॥ तथा वज्र आदि मुख्य२ अनेकों प्रकारके शस्त्र हैं, इस अर्जुनने पहिले केवल एक ही रथकी सहायतासे हिरण्यपुरके दैत्योंका संहार करडाला था, उसकी समान दूसरा कौनसा रथी है ? वह महाबाहु बली और सत्यपराक्रमी है, यदि वह क्रोध करेगा तो तेरी सेनाका नाश करडालेगा और अपनी सेनाकी रक्षा भी कर लेगा, हे राजेन्द्र!दोनों सेनाओंमें बाणोंकी वर्षा करनेवाले अर्जुनके सामने युद्धके लिए चढ़ाई करके जानेवाला यदि कोई रथी है तो एक मैं ही हूँ कि-जो उसके ऊपर चढ़ाई कर सकता हूँ अथवा दूसरे यह द्रोणाचार्य चढ़ाई कर सकते हैं, तीसरा कोई भी नहीं है ॥ २२-२५ ॥ जैसे ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें बड़ी भारी पवनकी प्रेरणासे मेघमण्डल चढ़ आता है तैसे ही श्रीकृष्णकी सहायतावाला अर्जुन भी सकल सामग्रीके साथ हमारे ऊपर चढ़ आवेगा, परन्तु वह अवस्थामें तरुण तथा काम करनेमें चतुर है और हम दोनों बूढे हैं२६ वैशम्पायन कहते हैं, कि-भीष्मजीके वचन सुनकर उस समय पांडवों के पहिले पराक्रमको मानो प्रत्यक्ष देखरहे हों इसप्रकार याद आजाने से राजाओंके चञ्चल मनोंके साथ सुवर्णके बाजूबन्दवाली और चंदन से चर्चित हुई मोटी २ भुजायें भी ढीली पड़ गयीं ॥ २७ ॥ २८ ॥ एकसौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६९ ॥

भीष्म उवाच । द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः । वैराटि-रुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम ॥१॥ अभिमन्युर्महाबाहू रथयूथपयूथपः । समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चारिहा ॥ २ ॥ लघ्वोऽस्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः । संस्मरन् वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति ॥ ३ ॥ सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जित-साध्वसः ॥ ४ ॥ उत्तमौजास्तथा राजन् रथोदारो मतो मम । युधा-मन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम ॥ ५ ॥ एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा । योत्स्यन्ते ते तनूं त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया ॥६॥ पांडवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत । अग्निमारुतवद्राजन्नाह्वयन्तः परस्परम् ॥ ७ ॥ अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदौ तथा । महारथौ महा-वीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ ॥ ८ ॥ वयोवृद्धावपि हि तौ क्षत्रधर्मपरायणौ । यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि ॥ ९ ॥ सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यबलान्वयात् । आर्य्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहवीर्यसितावुभौ १०

भीष्मजी बोले, कि-हे महाराज ! द्रौपदीके पाँचों पुत्र महारथी हैं और विराटका पुत्र उत्तर भी मेरे विचारमें श्रेष्ठ रथी है ॥ १ ॥ अभि-मन्यु भी रथयूथपतियोंका यूथपति है और युद्ध करनेमें अर्जुन और श्रीकृष्णकी समान तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है ॥ २ ॥ शीघ्रता से अस्त्र छोड़नेवाला, विचित्र युद्ध करने वाला, मनस्वी और दृढ़ व्रत करने वाला है, वह महावीर भी अपने ऊपर पड़ेहुए दुःखोंको याद करके रणमें पराक्रम करेगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! वृष्णिवंशके वीर-मण्डलमें बड़ाभारी क्रोधी, निर्भय और सात्यकी भी रथयूथपतियोंका भी यूथपति है, उत्तमौजाको और पराक्रमी अभिमन्युको भी मैं उत्तम रथी मानता हूँ ॥ ४-५ ॥ हे भारत ! उनकी सेनामें भी लाखों रथ, हाथी और घोड़े हैं, वह कुन्तीनन्दनका प्रिय करनेकी इच्छासे शरीर-पात होने तक युद्ध करेंगे ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! वह अग्नि और पवनकी समान एक दूसरेको बुलाकर पाण्डवोंके साथ तेरी सेनामें घुसपड़ेंगे७ युद्धमें अजित वृद्धा राजा विराट और राजा द्रुपद भी महापुरुष हैं, इन दोनोंको भी मैं महापराक्रमी और महारथी मानता हूँ ॥ ८ ॥ ये दोनों वृद्ध हैं तो भी क्षत्रियके धर्ममें प्रेम रखते हैं, पाण्डवोंके सम्बन्धी वीर तथा बली हैं, बडे धनुषधारी, आर्य धर्मका आचरण करनेवाले, स्नेह तथा वीरताके भण्डार हैं इसकारण वह शूरोंके नियमानुसार रणमार्गमें लड़े होकर अपनी शक्तिके अनुसार पूरा प्रयत्न करेंगे ॥ ९ ॥ १० ॥ हे

कारणं प्राप्य तु नराः सर्व एव महाभुजाः । शूरा वा कातरा वापि भवन्ति कुरुपुङ्गव ॥ ११ ॥ एकायनगतावेतौ पार्थिवौ दृढधन्विनौ । प्राणांस्त्यक्त्वा परं शक्त्या घट्टितारौ परन्तप ॥ १२ ॥ पृथगक्षौहिणीभ्यान्तावुभौ संयति दारुणौ । सम्बन्धिभावं रक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः ॥१३॥ लोकवीरौ महेष्वासौ त्यक्तात्मानौ च भारत । प्रत्ययं परिरक्षन्तौ महत्कर्म करिष्यतः ॥ १४ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वणि सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

भीष्म उवाच । पञ्चालराजस्य सुतो राजन् परपुरञ्जयः । शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत ॥ १ ॥ एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन् पूर्वसंस्थितम् । परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत ॥ २ ॥ एतस्य बहुलाः सेनाः पाञ्चालश्च प्रभद्रकाः । तेनासौ रथवंशेन महत्कर्म करिष्यति ॥ ३ ॥ धृष्टद्युम्नश्च सेनानी सर्वसेनासु भारत । मतो मेऽतिरथो राजन द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ४ ॥ एष योत्स्यति संग्रामे

कुरुसत्तम ! बड़ी २ भुजाओं वाले सकल वीर पुरुष भी किसी न किसी कारणको पाकर बडेभारी शूर अथवा कायर बनजाते हैं ॥ ११ ॥ हे शत्रुओंको दुःख देनेवाले राजन् ! ये दोनों बड़े धनुषधारी राजे मरणकालके समीप तो आही लगे हैं, इस कारणसे प्राणान्त पर्यन्त पूरी २ शक्ति लगाकर घमसान मचावेंगे ॥ १२ ॥ ये दोनों युद्धके समय बड़े दारुण होजाते हैं, यह सम्बन्धीपना दिखानेके लिये अलग अलग अक्षौहिणी सेनाके साथ रणमें बड़ाभारी पराक्रम करके दिखावेंगे १३ हे भारत ! लोकोंमें वीर और बड़े धनुषधारी ये राजा विराट और द्रुपद दिये हुए विश्वासका पालन करनेके लिये अपने शरीरको त्याग कर भी रणमें महापराक्रम करेंगे ॥१४॥ एकसौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त

भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजन् ! शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले पाञ्चाल राजाके पुत्र शिखण्डीको भी मैं युधिष्ठिरकी ओर महारथी समझता हूँ ॥ १ ॥ यह पुरुष अपने पहिले जन्मके स्त्रीभावको त्यागकर अर्थात् पुरुषार्थ दिखाकर संग्राममें युद्ध करेगा और तेरी सेनामें उत्तम यश फैलावेगा ॥ २ ॥ शिखण्डीके पास पांचाल और प्रभद्रकोंकी बड़ीभारी सेना है तथा रथियोंकी टोलीको साथमें लेकर यह शिखण्डी बड़ाभारी काम करेगा ॥ ३ ॥ हे भारत ! द्रोणाचार्यके शिष्य धृष्टद्युम्नको भी मैं महारथी और अतिरथी मानता हूँ

द्रवन् वै परान् रणे। भगवानिव संक्रुद्धः पिनाकी युगसंक्षये ॥ ५ ॥ एतस्य तद्रथानीकं कथयन्ति रणप्रियाः। बहुत्वात् सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे ॥ ६ ॥ क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप। धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नातिकृतश्रमः ॥ ७ ॥ शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः। धृष्टकेतुर्महेष्वासः संबंधी पाण्डवस्य ह ॥ ८ ॥ एष चेदिपतिः शूरः सह पुत्रेण भारत। महारथानां सुकरं महत् कर्म करिष्यति ॥ ९ ॥ क्षत्रधर्मरथो मह्यं मतः परपुरञ्जयः। क्षत्रदेवस्तु राजेंद्र पाण्डवेषु रथोत्तमः ॥ १० ॥ जयंतश्चामितौजाश्च सत्यजिच्च महारथः। महारथाः महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः ॥ ११ ॥ योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः। अजो भोजश्च विक्रांतौ पाण्डवार्थे महारथौ ॥१२॥ योत्स्येते बलिनौ शूरौ परं शक्त्या क्षयिष्यतः। शीघ्रास्त्रश्चित्रयोद्धारः कृतिनो दृढविक्रमाः ।१३। केकयाः पञ्च राजेंद्र भ्रातरो

और वह भी पाण्डवोंकी सब सेनाका अधिपति है ॥ ४ ॥ जैसे युगके प्रलयके समय भगवान् पिनाकपाणि शंकर महाक्रोधमें भरकर संसार का संहार करते हैं तैसे ही यह भी युद्ध करते समय रणमें क्रोध करके वैरियोंका संहार करेगा ॥ ५ ॥ धृष्टद्युम्नकी रथसेना देवताओंकी रथसेनाकी समान असंख्य है इसकारण रणमें प्रेम रखने वाले योधा उसको सागरकी समान कहते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! धृष्टद्युम्नके पुत्र क्षत्रधर्माको मैं अर्धरथी मानता हूँ, क्योंकि उसने बालक अवस्थाके कारण अस्त्रविद्यामें अधिक परिश्रम नहीं किया है ॥ ७ ॥ शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु भी वीर, महारथी, बड़ा धनुषधारी और पांडवों का सम्बन्धी लगता है ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन्! यह चेदिदेश का वीर राजा भी अपने पुत्रको साथ लेकर जिसको महारथी सहजमें कर सकैं ऐसा पराक्रम करके दिखावेगा ॥ ९ ॥ हे राजेंद्र! क्षत्रियधर्ममें प्रेम रखनेवाला और शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाला राजा क्षत्रदेव भी पांडवोंकी ओरका महारथी है, ऐसा मेरा मत है ॥ १० ॥ जयंत, अमितौजा और सत्यजित् ये पांचालके महात्मा पुत्र भी महारथी हैं ॥ ११ ॥ हे तात! यह रणमें कोपमें भरेहुए हाथियोंकी समान युद्ध करेंगे और अज तथा भोज भी बड़े पराक्रमी और महारथी हैं ॥ १२ ॥ यह वीर और बलवान् योधा भी पाण्डवोंके लिये अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करके शत्रुओंका संहार करेंगे हे राजेन्द्र! युद्धमें दुर्मद पाँचों केकय

दृढविक्रमाः । सर्वे चैव रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः ॥१४॥ कौशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चापरो नृप । सूर्यदत्तश्च शंखश्च मदिराश्वश्च नामतः ॥ १५ ॥ सर्व एव रथोदाराः सर्वे चाहवलक्षणाः । सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम ॥ १६ ॥ वार्धक्षेमिर्महाराज मतो मम महारथः । चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः ॥१७॥ स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः । चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ । द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम ॥ १८ ॥ व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चंद्रसेनश्च भारत । मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः ॥ १९ ॥ सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः । यः समो वासुदेवेन भीमसेनेन वा विभो ॥२०॥ स योत्स्यति हि विक्रम्य समरे तव सैनिकैः । मां च द्रोणं कृपं चैव यथा संमन्यते भवान् ॥२१॥ तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः । काश्यः परमशीघ्रास्त्रः श्लाघनीयो नरोत्तमः ॥२२॥ रथ एकगुणो मह्यं ज्ञेयः परपुरञ्जयः । अयञ्च

भाई भी बड़ी शीघ्रता से अस्त्र चलाने वाले अनेकों प्रकार के युद्धमें प्रवीण, दृढ पराक्रमी और महारथी हैं, उनकी ध्वजा लाल रङ्गकी है ॥ १४ ॥ कौशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख तथा मदिराश्व नामके सब योधा भी महारथी हैं वह युद्ध विद्याको जाननेवाले, सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें प्रवीण और महात्मा हैं,ऐसा मेरा मत है ॥१५-१६॥ हे महाराज ! वार्धक्षेमी राजाको और चित्रायुध राजाको भी मैं उत्तम रथी मानता हूँ ॥१७॥ यह चित्रायुध राजा संग्राममें शोभा देनेवाला और अर्जुनका भक्त भी है तथा चेकितान और सत्यधृति नामवाले सिंहकी समान बलवान् राजाओंको भी मैं पाण्डवोंका उदार रथी मानता हूँ,और हे भरतवंशी राजेन्द्र ! मैं व्याघ्रदत्त राजाको भी पाण्डवोंका उदार रथी मानता हूँ इसमें जरा सन्देह नहीं है ॥ १८-१९ ॥ और हे व्यापक राजेन्द्र ! सेनाबिंदु तथा क्रोधहन्त नामका वीर पुरुष भी श्रीकृष्ण और भीमसेनकी समान ही बलवान् है ॥ २० ॥ वह भी रणमें तेरे सैनिकोंके साथ पराक्रमके साथ युद्ध करेगा, तू जैसे मुझे द्रोणाचार्यको और कृपाचार्यको महारथी समझता है, तैसे ही तुझे युद्धमें प्रशंसा करने योग्य उस राजाको भी महारथी मानना चाहिए । प्रशंसा करने योग्य बड़ी ही शीघ्रतासे अस्त्रोंको छोड़ने वाला और शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाला काशीका राजा भी मेरे विचारमें एक गुणा रथी है, राजा द्रुपदका तरुण पुत्र

युधि विक्रांतो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः ॥ २३ ॥ सत्यजित् समरश्लाघी द्रुपदस्यात्मजो युवा । गतः सोतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन सम्मितः ॥२४॥ पाण्डवानां यशस्कामः परं कर्म करिष्यति । अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान् ॥ २५ ॥ पाण्ड्यराजो महावीर्यः पाण्डवानां धुरंधरः । दृढधन्वा महेष्वासः पाण्डवानां महारथः ॥ २६ ॥ श्रेणिमान् कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः । उभावेतावतिरथौ मतौ परपुरञ्जयौ ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि रथातिरथसंख्यानपर्वण्येकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

भीष्म उवाच । रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः । योत्स्यतेऽमरवत् संख्ये परसैन्येषु भारत ॥ १ ॥ पुरुजित् कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः । मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः ॥ २ ॥ एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह । चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुङ्गवः ॥ ३॥ स योत्स्यति हि विक्रम्य मघवानिव दानवैः । योधा ये चास्य विख्याताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥ भागिनेयकृते

सत्यजित् जो युद्धमें पराक्रम दिखानेवाला तथा प्रशंसाके योग्य काम करनेवाला है वह आठगुणा रथी है, धृष्टद्युम्नकी समान अतिरथीपनेको पाया हुआ है ॥२१-२४॥ वह यशकी इच्छासे रणमें बड़ा पराक्रम करके दिखावेगा पाण्डवोंकी सेनामें एक पाण्ड्य नामका राजा है,जो पाण्डवोंके ऊपर प्रेम करनेवाला, वीर पराक्रमी धुरन्धर तथा बड़े दृढ धनुषको धारण करनेवाला है, वह भी उनका महारथी है ॥२५-२६॥ इसके उपरान्त हे कुरुश्रेष्ठ ! शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले श्रेणीमान् तथा वसुदान नामके राजाओंको भी मैं अतिरथी मानता हूँ ॥ २७ ॥ एकसौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७१ ॥ ❀ ❀

भीष्मपितामह बोले, कि-हे भरतवंशी राजन् ! राजा रोचमान भी पाण्डवोंकी सेनामें एक महारथी हैं वह रणमें शत्रुकी सेनाके सामने देवताकी समान युद्ध करेगा ॥ १ ॥पुरुजित् कुन्तिभोज भी बड़ा धनुषधारी और महाबली है, वह भीमसेनका मामा लगता है, उसको भी मैं अतिरथी मानता हूँ ॥ २ ॥ यह कुन्तिभोज वीर, बड़ा धनुषधारी, कृतकृत्य, चतुर नाना प्रकारकी युद्ध कलाओंको जानने वाला समर्थ और श्रेष्ठ रथी है ऐसा मेरा मत है ॥ ३ ॥ जैसे इन्द्र दानवोंके साथ युद्ध करता है तैसे ही वह कुन्तिभोज पराक्रम करके तेरी सेनाके साथ युद्ध करेगा, इस राजाके सब योधा भी प्रसिद्ध

वीरः स करिष्यति सङ्गरे । सुमहत् कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते रतः ५ भैमसैनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः । मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः ॥६। योत्स्यते समरे तात मायावी समरप्रियः । ये चास्य राक्षसा वीराः सचिवा वशवर्त्तिनः ॥ ७ ॥ एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः । समेताः पाण्डवस्यार्थे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ८ ॥ एते प्राधान्यतो राजन् पाण्डवस्य महात्मनः । रथाश्चातिरथाश्चैव ये चान्येऽर्धरथा नृप ॥९॥ नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप । महेन्द्रेणेव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना ॥१०॥ तैरहं समरे वीर मायाविद्भिर्जयैषिभिः । योत्स्यामि जयमाकांक्षन्नथवा निधनं रणे ॥ ११ ॥ वासुदेवञ्च पार्थञ्च चक्रगाण्डीवधारिणौ । सन्ध्यागताविवार्केन्दू समेष्येते रथोत्तमौ ॥ १२ ॥ ये चैव ते रथोदाराः पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः । सहसैन्यानहं तांश्च प्रतीयां रणमूर्धनि ॥ १३ ॥ एते रथाश्चातिरथाश्च तुभ्यं यथाप्रधानं नृप कीर्त्तिता मया । तथा परे येऽर्धरथाश्च केचित्तथैव

और लड़नेमें चतुर हैं ॥४॥ वह वीर राजा पाण्डवोंका प्रिय और हित करनेमें लगा रहता है वह अपने मानओंके लिये बड़ा काम करेगा॥५॥ हे महाराज ! भीमसेनका पुत्र हिडिम्बासे उत्पन्न हुआ राक्षसराज घटोत्कच भी रथियोंके मण्डलका महाअधिपति है तथा मेरी समझमें वह बड़ा मायावी है।६।हे तात ! उस मायावी घटोत्कचका भी युद्धके ऊपर बड़ा प्रेम है वह रणमें शत्रुओंके साथ लड़ेगा इसके सिवाय उसके वीर और वशमें रहनेवाले राक्षस मंत्री तथा अनेकों देशोंके और बहुत से राजे भी इकट्ठे होंगे और श्रीकृष्णजीको आगे करकेयुद्ध करेंगे ७।८ हे राजन् ! महात्मा युधिष्ठिरके यह मुख्य २ रथी तथा अतिरथी महेन्द्रको समान किरीटधारी अर्जुनसे रक्षाकी हुई युधिष्ठिरकी भयदायिनी सेनाको रणभूमिमें लाकर हमारे साथ लड़ेंगे ॥ ९ ॥ १० ॥ हे वीर राजन् ! मैं उन मायाको जानने वाले और विजय चाहने वाले पुरुषोंके साथ विजय पानेकी इच्छासे लड़ूँगा, फिर रणमें विजय हो चाहे मरण हो ॥११॥ चक्र तथा गाण्डीव धनुषको धारण करने वाले महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुन सन्ध्याके समय इकट्ठे होकर जिस समय युद्धमें पहुँचेगे, उस समय तेरे लिये मुझे उनके साथ प्रतिपक्षी बनकर युद्ध करना होगा ॥१२॥ तथा पाण्डवोंके जो महारथी सेनापति सेनाके साथ चढ़कर आवेंगे उन सेनापतियोंके साथ भी मुझे रणके मुहाने पर चढ़ाई करनी पड़ेगी ॥१३॥ हे कुरुवंशी राजन् ! मैंने

तेषामपि कौरवेन्द्र ॥१४॥ अर्जुनं वासुदेवञ्च ये चान्ये तत्र पार्थिवाः । सर्वांस्तान् वारयिष्यामि यावद् द्रक्ष्यामि भारत ॥ १५ ॥ पाञ्चाल्यन्तुं महाबाहो नाहं हन्यां शिखण्डिनम् । उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा प्रतियुध्यन्तमाहवे ॥ १६ ॥ लोकस्तं वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया । प्राप्तं राज्यं परित्यज्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः १७ चित्राङ्गदं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् । विचित्रवीर्यञ्च शिशुं यौवराज्येऽभ्यषेचयम्१८ देवव्रतत्वं विख्याप्य पृथिव्यां सर्वराजसु । नैव हन्यां स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कदाचन ॥ १९ ॥ स हि स्त्रीपूर्वको राजन् शिखण्डी यदि ते श्रुतः । कन्या भूत्वा पुमान् जातो न योत्स्ये तेन भारत २० सर्वांस्त्वन्यान् हनिष्यामि पार्थिवान् भरतर्षभ । यान् समेष्यामि समरे न तु कुन्तीसुतान्नृपः ॥ २१ ॥ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

समाप्तञ्च रथातिरथसंख्यानपर्व ॥

तुझे पांडवोंके रथी, अतिरथी और अर्धरथी प्रधानताके अनुसार कहकर सुनादिये ॥१४॥ हे भरतवंशी राजन् ! जहाँतक देख पाऊँगा तहाँतक तो मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण और दूसरे राजाओंको आगे बढ़नेसे रोकूँगा ॥ १५ ॥ परन्तु हे महाबाहु राजन् ! पाञ्चालराजका पुत्र शिखण्डी बाण उठाकर रणमें लड़नेको आवेगा तो उसको देखकर भी मैं नहीं मारूँगा ॥ १६ ॥ पिताका मन प्रसन्न रखनेकी इच्छासे मैंने अधिकारके अनुसार मिलते हुए राज्यको त्याग कर ब्रह्मचर्यका पालन किया था और राजा चित्राङ्गदको कौरवोंके राजसिंहासन पर बैठाल दिया था तदनन्तर बालक विचित्रवीर्यका युवराजके पद पर अभिषेक कर दिया था इस बातको सब जानते हैं ॥ १७-१८ ॥ पृथिवी पर सब राजाओंके सामने ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेकी प्रतिज्ञा करनेके अनन्तर मैं कभी भी स्त्रीको अथवा जो पहिले जन्ममें स्त्री हो ऐसे पुरुषके सामने जाकर उसकी हत्या नहीं करता हूँ और आगेको भी नहीं करूँगा॥१९॥ हे राजन् ! यदि तेरे सुननेमें आया हो तो तू याद करले कि-शिखण्डी पहिले जन्ममें स्त्री था, वह पहिले कन्याके रूपमें उत्पन्न हुआ था, परन्तु अब वह पुरुष है, इस कारण हे भरतवंशी राजन् ! मैं इसके साथ युद्ध नहीं करूँगा ॥२०॥ इतना ही नहीं किन्तु हे भरतवंशी राजन् ! रणमें और सब राजाओं में जिन २ राजाओंसे सामना होगा, उन २ सब राजाओंके साथ युद्ध करूँगा परन्तु कुन्तीके पुत्र पाँचों पाण्डवोंके साथ नहीं लडूँगा ॥२१॥

* अथाम्बोपाख्यानपर्व *

दुर्योधन उवाच। किमर्थं भरतश्रेष्ठ नैव हन्याः शिखण्डिनम्। उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा समरेष्वाततायिनम् ॥ १ ॥ पूर्वमुक्त्वा महाबाहो पञ्चालान् सह सोमकैः। हनिष्यामीति गांगेय तन्मे ब्रूहि पितामह २ भीष्म उवाच। शृणु दुर्योधन कथां सहैभिर्वसुधाधिपैः। यदर्थं युधि-सम्प्रेक्ष्य नाहं हन्यां शिखण्डिनम् ॥ ३ ॥ महाराजो मम पिता शान्त-नुर्लोकविश्रुतः। दिष्टान्तमाप धर्मात्मा समये भरतर्षभ ॥ ४ ॥ ततो-ऽहं भरतश्रेष्ठ प्रतिज्ञां परिपालयन्। चित्राङ्गदं भ्रातरं वै महाराज्ये-ऽभ्यषेचयम् ॥ ५ ॥ तस्मिंश्च निधनं प्राप्ते सत्यवत्या मते स्थितः। विचित्रवीर्यं राजानमभ्यषिंचं यथा विधि ॥ ६ ॥ मयाभिषिक्तो राजेन्द्र यवीयानपि धर्मतः। विचित्रवीर्यो धर्मात्मा मामेव समुदैक्षत ॥ ७ ॥ तस्य दारक्रियान्तात चिकीर्षुरहमच्युत। अनुरूपादिव कुलादित्येव

* अम्बोपाख्यान पर्व *

दुर्योधनने कहा, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहजी! तुम आततायी शिखण्डीको रणमें हथियार उठाकर सामने लड़नेके लिये आता हुआ देखकर भी क्यों नहीं मारोगे? ॥ १ ॥ आपने तो पहिले प्रतिज्ञाकी है, कि-मैं युद्धमें पाञ्चालवंशके सब राजाओंका नाश करूँगा, परन्तु अब तो तुम पञ्चालवंशी शिखण्डीको मारनेसे बचते हो इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ॥२॥ भीष्मजी बोले, कि-हे दुर्योधन! मैं युद्धमें शिखण्डीको देख लेनेपर भी जो नहीं मारूँगा, इसका कारण तू राजाओंके साथ सुन ॥३॥ मेरे लोकप्रसिद्ध धर्मात्मा पिता महाराज शान्तनु आयु पूरी होजाने पर स्वर्गवासी होगये ।४। तब हे महाराज! मैंने अपनी प्रतिज्ञाका पालन करके चित्राङ्गद नाम के अपने भाईका इस बड़ेभारी राज्यके ऊपर अभिषेक कर दिया था५ फिर जब वह चित्राङ्गद भी मर गया तो मैंने अपनी माता सत्यवती की सम्मतिसे विचित्रवीर्यका विधिपूर्वक राजसिंहासन पर अभि-षेक कर दिया ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र! विचित्रवीर्य छोटी अवस्थाका था तो भी मैंने धर्मके अनुसार उसको राजतिलक कर दियो था, वह महात्मा विचित्रवीर्य भी मेरी ही ओरको देखा करता था अर्थात् मेरी सम्मतिसे ही सब कामकाज करता था ॥ ७ ॥ हे तात! फिर मैं भी योग्य कुलमेंसे कोई कन्या लाकर उसका विवाह करनेका

च मनो दधे ॥ ८ ॥ तथाऽश्रौषं महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वयम्वराः रूपेणाप्रतिमाः सर्वाः काशिराजसुतास्तदा । अम्बां चैवाम्बिकां चैव तथैवाम्बालिकामपि ॥ ९ ॥ राजानश्च समाहूता पृथिव्यां भरतर्षभ । अम्बा ज्येष्ठाभवत्तासामम्बिका त्वथ मध्यमा ॥ १० ॥ अम्बालिका च राजेन्द्र राजकन्या यवीयसी । सोऽहमेकरथेनैव गतः काशिपतेः पुरीम् ॥ ११ ॥ अपश्यं ता महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः । राज्ञश्चैव समाहूतान् पार्थिवान् पृथिवीपते॥१२॥ ततोऽहन्तान्नृपान् सर्वानाहूय समरे स्थितान् । रथमारोपयांचक्रे कन्यास्ता भरतर्षभ ॥ १३ ॥ वीर्यशुल्काश्च ता ज्ञात्वा समारोप्य रथं तदा । अवोचं पार्थिवान् सर्वानहं तत्र समागतान् । भीष्मः शांतनवः कन्या हरतीति पुनः पुनः १४ ते यतध्वं परं शक्त्या सर्वे मोक्षाय पार्थिवाः। प्रसह्य हि हराम्येष मिषतां वो नरर्षभाः ॥ १५ ॥ ततस्ते पृथिवीपाला समुत्पेतुरुदायुधाः । योगो योग इति क्रुद्धाः सारथीनभ्यचोदयन् ॥१६॥ ते रथैर्गजसंकाशैर्गजैश्च

विचार करने लगा ॥ ८ ॥ हे महाबाहु राजन् ! इतनेमें ही मेरे सुननेमें आया, कि-काशीराजकी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामकी अनुपम रूपवती तीन कन्याओंका स्वयंवर होनेवाला है ॥ ९ ॥ और उस स्वयंवरमें पृथिवीके सब राजाओंको बुलाया गया था, उन कन्याओंमें अम्बा सबसे बड़ी, अम्बिका बिचली और अम्बालिका सबसे छोटी थी, उससमय मैं अकेला ही रथमें बैठकर काशीराजकी नगरीमें चला गया ॥१०-११॥ और हे राजन् ! मैंने स्वयंवरके मंडप में शृङ्गार करके खड़ी हुई तीनों कन्याओंको और बुलाये हुए बहुतसे भूपति राजाओंको देखा ॥१२॥ हे भरतवंशी राजन् ! तहाँ मेरे जानने में आया, कि-जो पराक्रम करे वह इनतीनों कन्याओंका विवाह कर लेजाय ऐसी प्रतिज्ञा की गई है तब तो उन तीनों कन्याओंको अपने रथमें बैठालकर और तहाँ युद्ध करनेके लिए इकट्ठे हुए सब राजाओं को बुलाकर मैंने उनसे बारम्बार कहा, कि—शान्तनुका पुत्र भीष्म इन कन्याओंको हरकर लिये जाता है, हे राजाओ ! तुम्हारे सबोंके देखते हुए बलात्कारसे इन कन्याओंका मैं हरण करता हूँ, इस लिए तुम सब इन कन्याओंको छुटानेके लिए अपनी पूरी २ शक्ति दिखाने का उद्योग करो ॥ १३—१५ ॥ मेरी बातको सुनकर सब राजे क्रोधमें भरकर अपने२ शस्त्र उठातेहुए मेरे ऊपर टूटपड़े और अपने सारथियों से कहने लगे, कि-रथोंको तयार करो तयार करो ॥ १६ ॥ तदनन्तर

गजयोधिनः । पुष्टैश्चाश्वैर्महीपालाः समुत्पेतुरुदायुधाः॥१७॥ ततस्ते मां महीपालाः सर्व एव विशाम्पते । रथव्रातेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ १८ ॥ तानहं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयम् । सर्वान् नृपांश्चाप्यजयं देवराडिव दानवान् ॥१९॥ अपातयं शरैर्दीप्तैः प्रहसन् भरतर्षभ । तेषामापततां चित्रान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान् ॥ २० ॥ एकैकेन हि वाणेन भूमौ पातितवानहम् । हयांस्तेषां गजांश्चैव सारथींश्चाप्यहं रणे ॥२१ ॥ ते निवृत्ताश्च भग्नाश्च दृष्ट्वा तल्लाघवं मम । अथाहं हास्तिनपुरमायां जित्वा महीक्षितः॥२२॥ततोऽहं ताश्च कन्या वै भ्रातुरर्थाय भारत । तच्च कर्म महाबाहो सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि कन्याहरणे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

भीष्म उवाच । ततोऽहं भरतश्रेष्ठ मातरं वीरमातरम् । अभिगम्योपसंगृह्य दाशेयीमिदमब्रुवम् १ इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य

रथी हाथियोंकी समान रथोंके साथ, हाथियोंकेयोधा हाथियोंके साथ और हृष्टपुष्ट घुड़सवार घोड़ोंके साथ हथियार उठा २ कर मेरे ऊपर टूटपड़े और रथियोंके मंडलसे मुझे चारों ओरसे घेर लिया ।१७-१८। परन्तु जैसे इन्द्र बाणोंकी वर्षासे दानवोंको घेर लेता है तैसे ही मैंने भी बाणोंकी मारसे सब राजाओंको चारों ओरसे घेर लिया और उनको हरादिया ।।१९।। हे भरतसत्तम राजन् ! मैंने हँसते २ ही अपने ऊपर चढ़कर आये हुए उन राजाओंकी विचित्र प्रकारकी सुनहरी किनारी वाली ध्वजाओंको तीखे बाण मारकर पृथ्वीपर गिरादिया२० इतना ही नहीं किया; किन्तु एकएक बाण मारकर शत्रुओंके घोड़ोंको हाथियोंको और सारथियोंको भी रणभूमिमें गिरा दिया ।२१। बाणोंका प्रहार करनेकी मेरी झड़प (फुरती) को देखकर चढ़कर आये हुए राजाओंकी सेनामें भागड़ पड़गयी और वह रणभूमि परसे भागगए, मैंभी इसप्रकार उन राजाओंको जीतकर हस्तिनापुरमें चलाआया२२ और हे महाबाहु भरतवंशी राजन् ! मैं भाईके लिए जिन कन्याओंको लाया था उनको लेजाकर सत्यवतीके पास खड़ी कर दिया और उस अवसरमें मुझे जो युद्ध करना पड़ा था उसका समाचार भी सत्यवतीको सुनादिया ।।२३।। एकसौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७३।।

भीष्मजी कहते हैं, कि-हे भरतसत्तम ! तदनन्तर मैं वीर पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाली कैवर्त्तकुमारी अपनी माता सत्यवतीके पास जाकर

पार्थिवान्। विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का हृता इति ॥ २ ॥ ततो मूर्धन्युपाघ्राय पर्यश्रुनयना नृप। आह सत्यवती हृष्टा दिष्ट्या पुत्र जितं त्वया ॥३॥ सत्यवत्यास्त्वनुमते विवाहे समुपस्थिते। उवाच वाक्यं सव्रीडा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता ॥ ४ ॥ भीष्म त्वमसि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः। श्रुत्वा च वचनं धर्म्यं मह्यं कर्तुमिहार्हसि ॥ ५ ॥ मया शाल्वपतिः पूर्वं मनसाभिवृतो वरः। तेन चास्मि वृता पूर्वं रहस्यविदितं पितुः ॥ ६ ॥ कथं मामन्यकामां त्वं राजधर्ममतीत्य वै। वासयेथा गृहे भीष्म कौरवः सन् विशेषतः ॥ ७ ॥ एतद् बुद्ध्या विनिश्चित्य मनसा भरतर्षभ। यत् क्षमन्ते महाबाहो तदिहारब्धुमर्हसि ॥ ८॥ स मां प्रतीक्षते व्यक्तं शाल्वराजो विशाम्पते। तस्मान्मां त्वं कुरुश्रेष्ठ समनुज्ञा-

---

उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार कहने लगा, कि—।१। हे माता जी ! स्वयम्वरमें आयेहुए राजाओंको जीतकर जिनका मूल्य पराक्रम ही है ऐसी इन कन्याओंको विचित्रवीर्यके लिए मैं हरकर लाया हूँ २ हे राजन् ! मेरी माता सत्यवतीने मेरी बात सुनकर मेरा मस्तक चूमा तथा हर्षके आँसू बहाने लगी और प्रसन्न होकर कहा, कि-हे बेटा ! तूने विजयकी, यह बहुत अच्छा किया ।।३।। फिर सत्यवतीके संमति देनेपर विवाहकी तयारी होने लगी उस समय काशीराजकी बड़ी पुत्रीने लज्जित होतेहुए यह बात कही, कि-।। ४ ।। हे भीष्मजी! तुम धर्मको जानने वाले और सब शास्त्रोंमें चतुर हो, इस लिए मेरी धर्मकी बात सुनकर आपको उसके अनुसार ही कामकरना चाहिए५ पहिलेसे ही मैं अपने अन्तःकरणसे राजा शाल्वको वर चुकी हूँ, और वह भी मेरे पिताकी अनजानमें मेरे साथ एकान्तमें विवाह कर चुका है ।। ६ ।। हे भीष्मजी ! दूसरे राजाकी इच्छा करने वाली मुझे आप कुरुवंशी होते हुए राजधर्मका उल्लंघन करके अपने नगरमें कैसे रख लेंगे ? ।। ७ ।। हे महाबाहु भरतसत्तम राजन् ! इस बातका अपने मन में बुद्धिसे विचार करके जो काम करने योग्य हो उसका ही आरम्भ करना चाहिए ।।८।। हे राजन् ! वह राजा शाल्व स्पष्टरूपसे मेरी बाट देख रहा है इस लिए हे कुरुसत्तम ! आपको मुझे उसके पास जानेकी आज्ञा देनी चाहिए ।।९।। हे बड़ी २ भुजाओं वाले तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजन् हे वीर!तुम इस पृथिवी पर नित्य ब्रह्मचर्य व्रतका पालन

तुमर्हसि ॥ ९ ॥ कृपां कुरु महाबाहो मयि धर्मभृतां वर । त्वं हि सत्यव्रतो वीर पृथिव्यामिति नः श्रुतम् ॥ १० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वण्यम्बावाक्ये चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

भीष्म उवाच । ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं गन्धवतीं तदा । मन्त्रिणश्चर्त्विजश्चैव तथैव च पुरोहितान् ॥१॥ समनुज्ञासिषं कन्यामम्बां ज्येष्ठां नराधिप । अनुज्ञाता ययौ सा तु कन्या शाल्वपतेः पुरम्॥२ वृद्धैर्द्विजातिभिर्गुप्ता धात्र्या चानुगता तदा । अतीत्य च तमध्वानमासाद्य नृपतिं तथा ॥३॥ सा समासाद्य राजानं शाल्वं वचनमब्रवीत् । आगताहं महाबाहो त्वामुद्दिश्य महामते ॥ ४ ॥ तामब्रवीच्छाल्वपतिः स्मयन्निव विशाम्पते । त्वयान्यपूर्वया नाहं भार्यार्थी वरवर्णिनि ॥५॥ गच्छ भद्रे पुनस्तत्र सकाशं भीष्मकस्य वै । नाहमिच्छामि भीष्मेण गृहीतां त्वां प्रसह्य वै॥६॥त्वं हि भीष्मेण निर्जित्य नीता प्रीतिमती तदा परामृश्य महायुद्धे निर्जित्य पृथिवीपतीन् ॥७॥ नाहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि । कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥

करते हो, यह बात मैंने सुनी है, इस लिए आप अपने बड़प्पन पर ध्यान देकर मेरे ऊपर कृपाकरिए१०एकसौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

भीष्मजी कहते हैं, कि-हे राजन्! इसके पीछे मैंने सत्यवतीको मंत्रियोंकी, ऋत्विजोंकी और पुरोहितोंको आज्ञा लेकर काशीराजकी बड़ी पुत्री अम्बाको जानेकी आज्ञा दी, वह कन्या भी आज्ञा मिलते ही राजा शाल्वके नगरमें चलीगयी ॥ १ ॥ २ ॥ बूढे ब्राह्मण और धाई रक्षा करनेके लिये उसके साथ भेजदिये गये थे, अम्बा मार्गको पूरा करके राजा शाल्वके पास गयी और उसने कहा, कि हे महाबाहु बुद्धिमान् राजन्! मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुई हूँ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह सुन राजा शाल्व जरा एक हँसकर कहनेलगा, कि-हे सुन्दर कान्ति वाली! मैं दूसरेकी वरी हुई स्त्रीको अपनी भार्या नहीं बनाना चाहता५ हे कल्याणि! तू फिर भीष्मजीके पासको ही लौट जा, भीष्मजीने तुझे बलात्कारसे हरलिया है, इसलिये मुझे तेरे साथ विवाह करनेकी इच्छा नहीं है ॥ ६ ॥ भीष्मजी महायुद्धमें सब राजाओंको जीत प्रीति करनेवाली तेरा हाथ पकड़कर लेगये थे, इसकारण तू दूसरेकी स्त्री होचुकी है, हे सुन्दरकान्तिवाली ! अब मैं तुझे स्त्रीरूपसे स्वीकार नहीं करूँगा, मुझसरीखा दूसरोंको धर्मका उपदेश देनेवाला राजा

नारीं विदितविज्ञानः परेषां धर्ममादिशन्। यथेष्टं गम्यतां भद्रे मा त्वा कालोऽत्यगादयम् ॥ ९ ॥ अम्बा तमब्रवीद्राजन्ननंगशरपीडिता। नैवं वद महीपाल नैतदेवं कथंचन ॥ १० ॥ नास्मि प्रीतिमती नीता भीष्मेणामित्रकर्षण। बलान्नीतास्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन् ११ भजस्व मां शाल्वपते भक्तां बालामनागसम्। भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ १२ ॥ साहमामंत्र्य गांगेयं समरेष्वनिवर्त्तिनम्। अनुज्ञाता च तेनैव ततोऽहं भृशमागता ॥ १३ ॥ न स भीष्मो महाबाहुर्मामिच्छति विशांपते। भ्रातृहेतोः समारम्भो भीष्मस्येति श्रुतं मया ॥ १४ ॥ भगिन्यौ मम ये नीते अम्बिकांबालिके नृप। प्रादाद्विचित्रवीर्याय गाङ्गेयो हि यवीयसे ॥ १५ ॥ यथा शाल्वपते नान्यं वरं ध्यामि कथंचन। त्वामृते पुरुषव्याघ्र तथा मूर्धानमालभे ॥ १६ ॥ न चान्यपूर्वा राजेन्द्र त्वामहं समुपस्थिता। सत्यं ब्रवीमि शाल्वैतत्सत्ये-

---

सब समाचार जानताहुआ परपूर्वा (दूसरेके साथ विवाही हुई) स्त्री को अपने घरमें कैसे रखसकता है? हे कल्याणी! तेरी इच्छा आवे तहाँ चलीजा, ऐसा न कर जिसमें तेरा समय वृथा बीतजाय, हे राजन्! अम्बाने शाल्वसे कहा, कि-मैं कामके बाणसे पीड़ा पारही हूँ, आप मुझसे लौट जानेको न कहिये, जैसा आप कह रहे हैं ऐसा कभी हुआ ही नहीं ॥८-१०॥ हे शत्रुनाशन! भीष्मजी मेरी प्रसन्नता से मुझे नहीं लेगये थे, किन्तु वह सब राजाओंको हराकर इस रोती विलपती हुईको बलात्कारसे हरकर लेगये थे ॥११॥ हे शाल्व राजन्! राजन्! इस निरपराधिनी अपनी दासी बालाको आप सेवामें लीजिये भक्तोंको त्यागना धर्मशास्त्रमें प्रशंसाकी बात नहीं कही है ॥ १२ ॥ मैं युद्धमें पीछेको पैर न धरने वाले भीष्मजीकी आज्ञा लेकर उनके ही जानेके लिये कहने पर तुरन्त ही तुम्हारे पास चली आयी हूँ ॥ १३ ॥ हे राजन्! महाबाहु भीष्मजीने मेरी इच्छा नहीं की थी उन्होंने तो अपने भाईके लिये ही यह काम किया था, ऐसा मैंने सुना है ॥१४॥ हे राजन्! मेरी छोटी दोनों बहिनें अम्बिका और अंबालिकाका भीष्मजी ने हरण किया था, सो उन दोनोंका भीष्मजीने अपने छोटे भाईके साथ विवाह कर लिया है ॥१५॥ हे शाल्वपति पुरुषव्याघ्र! मैं अपने शिरकी शपथ खाकर तुमसे कहती हूँ कि-मैं तुम्हारे सिवाय दूसरे किसीके साथ विवाह करना नहीं चाहती ॥१६॥ हे राजेन्द्र! पहिले किसीकी स्त्री होकर फिर मैं तुम्हारे पास नहीं आयी हूँ हे शाल्व!

नात्मानमालभे १७ भजस्व मां विशालाक्ष स्वयं कन्यामुपस्थिताम्। अनन्यपूर्वां राजेन्द्र त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणीम् ॥ १८ ॥ तामेवं भाषमाणां तु शाल्वः काशिपतेः सुताम्। अत्यजद्भरतश्रेष्ठ जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ १९ ॥ एवं बहुविधैर्वाक्यैर्याच्यमानस्तया नृपः। नाश्रद्दधच्छाल्वपतिः कन्यायां भरतर्षभ ॥ २० ॥ ततः स मन्युनाविष्टा ज्येष्ठा काशिपतेः सुता। अब्रवीत्साश्रुनयना बाष्पविप्लुतया गिरा ॥ २१ ॥ त्वया त्यक्ता गमिष्यामि यत्र यत्र विशाम्पते। तत्र मे गतयः सन्तु सन्तः सत्यं यथा ध्रुवम् ॥ २२ ॥ एवं तां भाषमाणान्तु कन्यां शाल्वपतिस्तदा। परितत्याज कौरव्य करुणं परिदेवतीम्॥२३॥गच्छ गच्छेति तां शाल्वः पुनः पुनरभाषत। बिभेमि भीष्मात् सुश्रोणि त्वञ्च भीष्मपरिग्रहः ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वा तु सा तेन शाल्वेनादीर्घदर्शिना। निश्चक्राम पुराद्दीना रुदती कुररी यथा ॥२५॥ भीष्म उवाच। निष्क्रामन्ती

मैं सच्ची बात कहती हूँ और वास्तवमें मैं अपने आत्माकी शपथ खाती हूँ ॥१७॥ हे विशालनेत्र राजेन्द्र ! मैंने अबतक किसीके साथ विवाह नहीं किया है किन्तु मैं कन्या हूँ और अपने आप तुम्हारे पास आकर उपस्थित हुई हूँ तथा अनुग्रहको चाहती हूँ ॥ १८ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन् ! काशीराजकी पुत्रीके ऐसा कहने पर भी जैसे साँप अपनी केंचलीको त्याग देता है तैसे ही राजा शाल्वने काशीराजकी पुत्री अम्बाको त्याग दिया ॥ १९ ॥ हे भरतसत्तम ! अम्बाने अनेकों प्रकार के वाक्योंसे राजा शाल्वसे प्रार्थना करी तो भी राजाने उस कन्या के ऊपर विश्वास नहीं किया ॥ २० ॥ तब काशीराजकी बड़ी पुत्री अम्बा क्रोधमें आकर आँखोंमें आँसू भर लायी और अड़खड़ाती हुई वाणीमें कहनेलगी कि-॥ २१ ॥ हे राजन् ! आप तो मुझे त्यागे ही देते हैं परन्तु मैं जहाँ जहाँ जाऊँगी तहाँ २ महात्मा पुरुष मेरी रक्षा करेंगे, क्योंकि-सत्य सदा अविचल रहता है ॥ २२ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! इसप्रकार वह कन्या कह रही थी और ऐसा विलाप कररही थी कि जिसको देखकर दया आजाय, तो भी राजा शाल्वने उसको त्यागदिया ॥ २३ ॥ और उससे बार २ कहने लगा कि-अरी सुन्दर नितम्बों वाली ! तू भीष्मजीकी ग्रहणकी हुई है, इसकारण मैं भीष्मजीसे डरता हूँ, अतः तू यहाँसे चलीजा, चलीजा ॥२४॥ थोड़ी बुद्धि वाले राजा शाल्वके ऐसा कहने पर दीन अम्बा टटीहरीकी समान विलाप करती हुई उसके नगरमेंसे बाहर निकल आयी ॥२५॥

तु नगरान्निष्क्रान्त यामासदुःखिता । पृथिव्यां नास्ति युवतिर्विषमस्थ-
तरा मया ॥ २६ ॥ बन्धुभिर्विप्रहीनास्मि शाल्वेन च निराकृता । न च
शक्यं पुनर्गन्तुं मया वारणसाह्वयम् ॥ २७ ॥ अनुज्ञाता तु भीष्मेण
शाल्वमुद्दिश्य कारणम् । किन्तु गर्हाम्यथात्मानमथ भीष्मं दुरासदम् २८
अथवा पितरं मूढं यो मेऽकार्षीत् स्वयम्वरम् । ममायं स्वकृतो दोषो
याहं भीष्मरथात्तदा ॥ २९ ॥ प्रवृत्ते दारुणे युद्धे शाल्वार्थं नापतं पुरा ।
तस्येयं फलनिर्वृत्तिर्यदापन्नास्मि मूढवत् ॥३०॥ धिग् भीष्मं धिक् च
मे मन्दं पितरं मूढचेतसम् । येनाहं वीर्यशुल्केन पण्यस्त्रीव प्रचोदिता ३१
धिङ् मां धिङ् शाल्वराजानं धिग्धातारमथापि वा । येषां दुर्नीतभा-
वेन प्राप्तास्म्यापदमुत्तमाम् ।३२। सर्वथा भागधेयानि स्वानि प्राप्नोति
मानवः । अनयस्यास्य तु मुखं भीष्मः शान्तनवो मम ॥३३॥ सा भीष्मे

भीष्मपितामह कहते हैं, कि-दुःखिनी अम्बाने नगरमेंसे बाहर निकलते
समय विचार किया कि-इस पृथिवी पर मेरी समान महादुःख पाने
वाली कोई स्त्री नहीं होगी ॥ २६ ॥ मैं कुटुम्बियोंसे बिछुड़गयी हूँ,
राजा शाल्वने मुझे त्यागदिया है और अब फिर मैं हस्तिनापुरको भी
लौटकर नहीं जासकती ॥२७॥ मैंने भीष्मजीके सामने शाल्वको अपने
ऊपर प्रीति दिखायी, तब उन्होंने मुझे शाल्वके पास जानेकी आज्ञा
देदी तो क्या मैं अब अपनेको दोष दूँ या महावीर भीष्मजीको
दोष दूँ ॥२८॥ अथवा जिसने मेरा स्वयम्वर किया था उस मूढ पिता
को दोष दूँ, इसमें और किसीका दोष नहीं है, किन्तु मेरा अपना ही
दोष है, यह सब मैंने अपने आप ही किया है, जब दूसरे राजाओंमें
दारुण युद्ध चल रहा था, उस समय मैं शाल्वके लिये भीष्मजीके रथ
परसे नीचे नहीं कूद पड़ी किन्तु मूढकी समान उनके रथपर ही बैठी
रही थी इससे ही मुझे यह फल मिला है ॥ २९-३० ॥ भीष्मजीको
धिक्कार है तथा मन्द और मूढ मनवाले मेरे पिताको भी धिक्कार
है कि-जिसने पराक्रम रूपी मूल्यसे एक वेश्याकी समान मुझे स्वय-
म्वरमें घरसे निकाल दिया ॥ ३१ ॥ नहीं२ मुझे अपनेको ही धिक्कार
है, राजा शाल्वको धिक्कार है और विधाताको भी धिक्कार है कि-
जिसके अन्यायके कारण मैं ऐसी आपत्तिमें आपड़ी हूँ ॥३२॥ मनुष्य
सर्वथा अपने भाग्यको ही भोगता है, परन्तु मेरी इस आपत्तिका
कारण तो शन्तनुका पुत्र भीष्म ही है ३३ इसलिये अब तपसे अथवा
युद्धसे अपने इस वैरका बदला तो भीष्मजीसे लेना चाहिये, इस

प्रतिकर्त्तव्यमहं पश्यामि साम्प्रतम् । तपसा वा युधा वापि दुःखहेतुः स मे मतः ॥ ३४ ॥ को नु भीष्मं युधा जेतुमुत्सहेत महीपतिः । एवं स परिनिश्चित्य जगाम नगराद् बहिः ॥ ३५ ॥ आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् । ततस्तामवसद्रात्रिं तापसैः परिवारिता ॥ ३६ ॥ आचख्यौ च यथा वृत्तं सर्वमात्मनि भारत । विस्तरेण महाबाहो निखिलेन शुचिस्मिता । हरणञ्च विसर्गञ्च शाल्वेन च विसर्ज्जनम् ॥ ३७ ॥ ततस्तत्र महानासीद् ब्राह्मणः संशितव्रतः । शैखावत्यस्तपोवृद्धः शास्त्रे चारण्यके गुरुः ॥ ३८ ॥ आर्त्तान्तामाह स मुनिः शैखावत्यो महातपाः । निःश्वसन्तीं सतीं बालां दुःखशोकपरायणाम् ॥३९॥ एवं गते तु किं भद्रे शक्यं कर्त्तुं तपस्विभिः । आश्रमस्थैर्महाभागे तपोयुक्तैर्महात्मभिः॥४० सा त्वेनमब्रवीद्राजन् क्रियतां मदनुग्रहः । प्राव्राज्यमहमिच्छामि तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ॥ ४१ ॥ मयैव यानि कर्माणि पूर्वदेहे तु मूढया ।

समय मुझे यह उचित दीखता है क्यों कि—मेरी समझमें वही मेरे दुःखका कारण हैं ॥ ३४ ॥ परन्तु किस राजाकी शक्ति है जो युद्धमें भीष्मजीको हरानेका साहस भी करसके?वह कन्या अपने मनमें ऐसा निश्चय करके नगरमेंसे बाहर निकली ॥ ३५ ॥ और पवित्र स्वभाव वाले महात्मा तपस्वियोंके आश्रममें गयी तहाँ तपस्वियोंके बीचमें बैठकर वह रात उस आश्रममें ही बितायी॥३६॥हे भरतसत्तम राजन्! दूसरे दिन उस पवित्र हास्यवाली कन्याने अपने ऊपर जो कुछ बीती थी वह सब विस्तारके साथ तपस्वियोंको सुनातेहुये कहा,कि—भीष्म जीने स्वयम्वरमेंसे मेरा हरण किया था और पीछेसे मेरा त्याग कर दिया है, फिर मैं राजा शाल्वके पास गयी तो उन्होंने भी मेरा त्याग करदिया है, इसप्रकार अम्बाने ऋषियोंको अपना वृत्तान्त सुनाया३७ उस आश्रममें उत्तम व्रतधारी वेद और स्मृतियोंमें लिखे कर्म करनेमें लगा हुआ, जिसका बड़ाभारी तप था ऐसा शास्त्र तथा उपनिषदोंमें सबका गुरु एक महात्मा मुनि रहता था, उस परमतेजस्वी और वैदिक तथा स्मार्त्त कर्मोंमें प्रवीण मुनिने आतुर होकर श्वासें छोड़ती हुई तथा दुःख और शोकमें डूबी हुई उस बालासे कहा कि-३८॥३९ हे महाभागा ! हे कल्याणी कन्या ! तेरी जो ऐसी दशा हुई है उसमें हम आश्रमवासी तपस्वी महात्मा क्या कर सकते हैं ? ॥ ४० ॥ हे राजन्! यह सुनकर उस कन्याने मुनिसे कहा, कि—आप मेरे ऊपर अनुग्रह करिये; मैं संन्यासधर्मका पालन करना चाहती हूँ, मैं कठिन

कृतानि नूनं पापानि तेषामेतत् फलं ध्रुवम् ॥४२॥ नोत्सहे तु पुनर्गन्तुं स्वजनं प्रति तापसाः। प्रत्याख्याता निरानन्दा शाल्वेन च निराकृता ४३ उपदिष्टमिहेच्छामि तापस्यं वीतकल्मषाः। युष्माभिर्देवसंकाशैः कृपा भवतु वो मयि ॥ ४४ ॥ स तामाश्वासयत् कन्यां दृष्टान्तागमहेतुभिः। सान्त्वयामास कार्यञ्च प्रतिजज्ञे द्विजैः सह ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि शैखावत्याम्बा-संवादे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

भीष्म उवाच। ततस्ते तापसाः सर्वे कार्य्यवन्तोऽभवंस्तदा। तां कन्यां चिन्तयन्तस्ते किङ्कार्य्यमिति धर्मिणः ॥१॥ केचिदाहुः पितुर्वेश्म नीयतामिति तापसाः। केचिदस्मदुपालम्भे मतिञ्चक्रुर्हि तापसाः॥२॥ केचिच्छाल्वपतिं गत्वा नियोज्यमिति मेनिरे। नेति केचिद् व्यवस्यन्ति

तपस्या करूँगी॥४१॥ मुझ मूढाने पहिले जन्ममें जो पापकर्म किये हैं, निःसन्देह यह उनका ही फल है ॥४२॥ हे तपस्वियों ! मैं अब अपने कुटुम्बियोंके पास जाना नहीं चाहती क्यों कि—राजा शाल्वने मेरा अपमान करके मुझे निकाल दिया है ॥ ४३ ॥ हे पापरहित तपस्वियों ! मैं तुमसे तपस्यामें हितकारी धर्मका उपदेश लेना चाहती हूँ, इसलिये हे देवताओंकी समान तपस्वियों ! तुम मुझे उपदेश दो मेरे ऊपर आपकी कृपा होनी चाहिये ॥४४॥ तदनन्तर महात्मा और कर्मकांडमें कुशल उस ब्राह्मणने संसारके दृष्टान्तोंसे वेदके वचनोंसे तथा युक्तियों से उस कन्याको इस बातका उपदेश देकर शांत किया, कि-प्रारब्ध कर्मोंका भोगके विना क्षय नहीं होता है तथा उस कन्यासे यह भी प्रतिज्ञा करी कि-मैं, और आश्रमके सब ब्राह्मण तुझे तपस्या करनेमें सहायता देंगे ॥ ४५ ॥ एकसौ पिचत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७५ ॥

भीष्मपितामह कहते हैं, कि-इसके पीछे उस कन्याका काम करने को उद्यत हुये वह सब इस बातका विचार करने लगे, कि-इस कन्या के लिये अब क्या करना चाहिये ॥१॥ कितने ही कहने लगे, कि-इस को इसके पिताके घर पहुँचा देना चाहिये और कितने ही मेरे पास आकर मुझे समझानेका विचार करने लगे ॥२॥ कितनोंहीने यह बात अच्छी बतायी, कि-हम शाल्व राजाके पास चलकर इसका विवाह करवादें और कितनोंहीने यह निश्चय किया, कि-शाल्वने इस कन्या का तिरस्कार किया है, इसलिये उसके यहाँ इस कन्याको पहुँचाना तो अनुचित ही है ॥३॥ इस प्रकार आपसमें वादविवाद करके उन

प्रत्याख्याता हि तेन स्मा३एवं गते तु किं शक्यं भद्रे कर्तुं मनीषिभिः पुनरूचुश्च तां सर्वे तापसाः संशितव्रताः ॥४॥ अलं प्रव्रजितेनेह भद्रे शृणु हितं वचः। इतो गच्छस्व भद्रं ते पितुरेव निवेशनम् ।५। प्रतिपत्स्यति राजा स पिता ते यदनन्तरम्। तत्र वत्स्यसि कल्याणि सुखं सर्वगुणान्विता।६।न च तेऽन्या गतिर्न्याय्या भवेत् भद्रे यथा पिता। पतिर्वापि गतिर्नार्य्याः पिता वा वरवर्णिनि ।७। गतिः पतिः समस्थाया विषमे च पिता गतिः। प्रव्रज्या हि सुदुःखेयं सुकुमार्य्या विशेषतः ।८। राजपुत्र्याः प्रकृत्या च कुमार्य्यास्तव भामिनि। भद्रे दोषा हि विद्यन्ते बहवो वरवर्णिनि९आश्रमे वै वसन्त्यास्ते न भवेयुः पितुर्गृहे।ततस्त्वन्येऽब्रुवन् वाक्यं तापसास्तां तपस्विनीम् ॥१०॥ त्वामिहैकाकिनीं दृष्ट्वा निर्जने गहने वने। प्रार्थयिष्यन्ति राजानस्तस्मान्मैवं मनः कृथाः ।११।

विद्वान् तपस्वियोंने उस कन्यासे कहा, कि–जब ऐसी दशा होचुकी है तो इसमें हम व्रतधारी क्या कर सकते हैं ? ॥ ४ ॥ हे कल्याणी ! संन्यास धारण करनेकी हठको तो तू छोड़दे, हमारी हितकारी बात को सुनकर यहाँ से तू अपने पिताके ही घर जा और तहाँ तेरा कल्याण होगा॥५॥हे भद्रे ! तेरा पिता काशीराज तुझे अपने यहाँ रख लेगा, और तहाँ सब गुणोंसे युक्त तू सुखसे रहना ॥६॥ हे भद्रे ! तेरे लिये पिताके आश्रयमें रहना जैसे उचित प्रतीत होता है तैसा दूसरे का आश्रय उचित नहीं मालूम होता,क्योंकि-हे सुन्दर वर्णवाली ! स्त्री स्त्रीको या तो पतिके आश्रयमें रहना चाहिये नहीं तो पिताके घर रहना चाहिये ॥७॥ इसमें भी स्त्री जहाँतक समानभावमें रहकर पति की सेवा करती है और उसकी आज्ञामें रहती है तहाँतक उसका आश्रय पति ही मानाजाता है, परन्तु जब दुःखमें आपड़े तो उसको पिताके घर रहना चाहिये, संन्यास तो बड़ा दुःखदायक है और कुमारी कन्याको तो बड़ा ही दुःखदायक होता है ॥८॥ तिसमें भी हे भामिनी ! तू राजपुत्री है, स्वभावसे ही कोमल है, इसलिये तुझे बड़ा ही दुःख मालूम होगा, हे सुन्दर अङ्गोंवाली कल्याणी ! संन्यास आश्रम में बहुतसे दोष हैं ।९। वह दोष आश्रममें रहनेसे तुझे कष्ट देंगे, परन्तु पिताके घर रहनेमें-तुझे कुछ कष्ट नहीं होगा तदनन्तर और तपस्वी भी उस तपस्विनी कन्याको उपदेश देनेलगे, कि–॥ १० ॥ तुझे इस निर्जन और गहन वनमें अकेली देखकर राजे विवाह करनेके लिये तुझसे याचना करेंगे, इसलिये तू इस वनमें रहनेका विचार न कर११

अम्बोवाच। न शक्यं काशिनगरं पुनर्गन्तुं पितुर्गृहान्। अवज्ञाता भविष्यामि बान्धवानां न संशयः॥१२॥ उषितास्मि तथा बाल्ये पितुर्वेश्मनि तापसाः। नाहं गमिष्ये भद्रं वस्तत्र यत्र पिता मम। तपस्तप्तुमभीप्सामि तापसैः परिरक्षिता॥१३॥ यथा परेऽपि मे लोके न स्यादेवं महात्ययः। दौर्भाग्यं तापसश्रेष्ठास्तस्मात्तप्स्याम्यहं तपः १४ भीष्म उवाच। इत्येवं तेषु विप्रेषु चिन्तयत्सु यथातथम्। राजर्षिस्तद्वनं प्राप्तस्तपस्वी होत्रवाहनः॥१५॥ ततस्ते तापसाः सर्वे पूजयन्ति स्म तं नृपम्। पूजाभिः स्वागताद्याभिरासनेनोदकेन च॥१६॥ तस्योपविष्टस्य सतो विश्रान्तस्योपशृण्वतः। पुनरेव कथाञ्चक्रुः कन्यां प्रति वनौकसः॥१७॥ अम्बायास्तां कथां श्रुत्वा काशिराज्ञश्च भारत। राजर्षिः स महातेजा बभूवोद्विग्नमानसः॥१८॥ तां तथावादिनीं श्रुत्वा दृष्ट्वा च स महातपाः। राजर्षिः कृपयाविष्टो महात्मा होत्रवाहनः१९ स वेपमान उत्थाय मातुस्तस्याः पिता तदा। तां कन्यामङ्कमारोप्य

अम्बाने कहा, कि-अब मैं लौटकर काशीपुरीमें अपने पिताके घर जाऊँ, यह नहीं होसकता, क्योंकि-तहाँ जानेपर मेरे बान्धव मेरा अपमान करेंगे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है१२हे तपस्वियो ! मैं बालकपनमें पिताके घर रही हूँ,परन्तु अब मैं जहाँ मेरे पिता रहते हैं तहाँ नहीं जाऊँगी१३हे श्रेष्ठ तपस्वियो! अब अगले जन्ममें ऐसी बड़ी भारी आपत्तिमें डालनेवाला मेरा दुर्भाग्य न हो इसके लिये मैं अब तपस्या ही करूँगी॥१४॥ भीष्मजी कहते हैं, कि-वह ब्राह्मण उस कन्याके विषयमें इसप्रकार अनेकों विचार कररहे थे, इतनेमें ही होत्रवाहन नामका तपस्वी राजर्षि उस वनमें आपहुँचा॥१५॥ तब तो उन सब तपस्वियोंने कुशलपूर्वक आगमनका प्रश्न करके उस राजाका आसन और जल आदिसे सत्कार किया॥१६॥ तदनन्तर वह राजा बैठ कर विश्राम लेनेलगा तथा ऋषियोंसे कहा, कि-आप क्या बातें कर रहे थे उनको मैं भी सुनना चाहता हूँ, तब वह वनवासी मुनि फिर उस कन्याके विषयकी बातें करने लगे॥१७॥ वह महातेजस्वी राजा अंबाकी और काशिराजकी उस कथाको सुन कर अपने मनमें बड़ा ही दुखी हुआ॥१८॥ कन्याके मुखसे ऐसी बातें सुनकर तथा उसकी भोली अवस्थाको देखकर परम तपस्वी महात्मा राजर्षि होत्रवाहनके मनमें दया आगयी॥१९॥ हे राजा युधिष्ठिर ! वह होत्रवाहन उस कन्याकी माताका पिता अर्थात् उस कन्या

पर्य्यश्वासयत् प्रभो॥२०॥ सा तामपृच्छत् कात्स्न्येन व्यसनोत्पत्तिमादितः। सा च तस्मै यथावृत्तं विस्तरेण न्यवेदयत् ॥ २१ ॥ ततः स राजर्षिरभूद् दुःखशोकसमन्वितः। कार्यञ्च प्रतिपेदे तन्मनसा सुमहातपाः॥२२ अब्रवीद्वेपमानश्च कन्यामार्त्तां सुदुःखितः। मा गाः पितुर्गृहं भद्रे मातुस्ते जनको ह्यहम् ॥ २३ ॥ दुःखं छिन्द्यामहं ते वै मयि वर्त्तस्व पुत्रिके। पर्य्याप्तं ते मनो वत्से यदेवं परिशुष्यसि ॥ २४ ॥ गच्छ मद्वचनाद्रामं जामदग्न्यं तपस्विनम्। रामस्ते सुमहद् दुःखं शोकञ्चैवापनेष्यति ।२५। हनिष्यति रणे भीष्मं न करिष्यति चेद्वचः। तं गच्छ भार्गवश्रेष्ठं कालाग्निसमतेजसम् ॥ २६ ॥ प्रतिष्ठापयिता स त्वां समे पथि महातपाः। ततस्तु सुस्वरं वाष्पमुत्सृजन्ती पुनः पुनः ॥ २७। अब्रवीत् पितरं मातुः सा तदा होत्रवाहनम्। अभिवादयित्वा शिरसा गमिष्ये तव

का नाना लगता था, इस कारण उसने काँपते २ उस कन्या को उठा कर अपनी गोदीमें बैठाल लिया और उसको धीरज देनेलगा ॥२०॥ उस राजाने कन्यासे उसको दुःख प्राप्त होनेका आदि से सब वृत्तान्त पूछा तब उसने जो कुछ हुआ था सब विस्तारसे कहकर सुनादिया ।२१। उस बातको सुनकर महातपस्वी उस राजर्षि के मनमें दुःख और शोक हुआ तथा उसने उसका काम करदेना स्वीकार किया ॥ २२ ॥ अत्यन्त दुःखी हुए उस राजर्षिने काँपते २ उस दुःखिनी कन्यासे कहा, कि-हे भद्रे ! मैं तेरा नाना लगता हूँ इस कारण तू अब पिताके घर न जाकर मेरे पास रहा कर ॥ २३ ॥ हे बेटी ! मैं तेरे दुःखको दूर करूँगा तू मेरे पास रहना, हे बेटी ! मेरा शरीर जो ऐसा सूख गया है, उससे प्रतीत होता है कि-तेरे मनमें बड़ाभारी दुःख है ॥ २४ ॥ हे बेटी ! तू मेरे कहनेसे जमदग्निके पुत्र तपस्वी परशुरामके पास जा, वह ऋषि तेरे बड़ेभारी दुःख और शोक को दूर करदेंगे।॥२५॥ तू परशुरामजीकी शरणमें पहुँचकर भीष्मजीके पास कहला कर भेजना, यदि भीष्मजी परशुरामका कहना नहीं मानेंगे तो वह रणमें भीष्मजीको मारडालेंगे इसलिए तू भृगुवंशमें श्रेष्ठ प्रलयकालकी अग्निकी समान तेजस्वी परशुरामजीके पासजा२६ वह महातपस्वी तुझे सीधे मार्ग पर लेजावेंगे, यह सुनकर वह कन्या आँसू बहातीहुई अपने नाना राजा होत्रवाहनसे मोटे स्वरमें कहनेलगी, कि-हे नानाजी ! मैं आपको मस्तक झुकाकर प्रणाम करती हूँ और आपकी आज्ञासे तहाँ जाऊँगी ॥ २७ ॥ २८ ॥ आज ही उन जगत्में

शासनात् ॥२८॥ अपि नामाद्य पश्येयमार्यन्तं लोकविश्रुतम्। कथञ्च तीव्रं दुःखं मे नाशयिष्यति भार्गवः। एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं यथा यास्यामि तत्र वै ॥ २९ ॥ होत्रवाहन उवाच। रामं द्रक्ष्यसि भद्रे त्वं जामदग्न्यं महावने। उग्रे तपसि वर्त्तन्तं सत्यसन्धं महाबलम् ॥३०॥ महेन्द्रं वै गिरिश्रेष्ठं रामो नित्यमुपास्ति ह। ऋषयो वेदविद्वांसो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥३१॥ तत्र गच्छस्व भद्रन्ते ब्रूयाश्चैनं वचो मम। अभिवाद्यश्च तं मूर्ध्ना तपोवृद्धं दृढव्रतम् ॥ ३२ ॥ ब्रूयाश्चैनं पुन-र्भद्रे यत्ते कार्यमभीप्सितम्। मयि सङ्कीर्तिते रामः सर्व तत्तं करिष्यति ॥ ३३ ॥ मम रामः सखा वत्से प्रीतियुक्तः सुहृच्च मे। जगदग्नि-सुतो वीरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥३४॥ एवं ब्रुवति कन्यान्तु पार्थिवे होत्र-वाहने। अकृतव्रणः प्रादुरासीद्रामस्यानुचरः प्रियः ॥३५॥ ततस्ते मुनयः सर्वे समुत्तस्थुः सहस्रशः। स च राजा वयोवृद्धः सृञ्जयो होत्रवाहनः ३६ ततो दृष्ट्वा कृतातिथ्यमन्योऽन्यं ते वनौकसः। सहिता भरतश्रेष्ठ निषेदुः परिवार्य्य तम् ॥ ३७ ॥ ततस्ते कथयामासुः कथास्तास्ता मनोरमाः।

प्रसिद्ध आर्य परशुरामजीके दर्शन करूँगी परन्तु भृगुवंशी परशुराम मेरे तीव्र दुःखको कैसे दूर करेंगे और मैं उनके पास कैसे जाऊँ, यह बात मैं जानना चाहती हूँ बताइये ॥ २९ ॥ होत्रवाहनने कहा, कि-हे भद्रे ! तुझे बड़ेभारी वनमें जमदग्निके पुत्र परशुरामजीका दर्शन होगा वह सत्यप्रतिज्ञा वाले महाबली ऋषि इस समय उग्र तपस्या करनेमें लगेहुए हैं ॥३०॥ भगवान् परशुरामजी वेदको जाननेवाले ऋषि और अप्सराओंसे सेवित पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर सदा रहते हैं ३१ तहाँ जाकर उनसे मेरी बतायीहुई बात कहना हे भद्रे ! तेरा कल्याण हो, तू तपस्यामें वृद्ध दृढ़व्रतधारी उन मुनिको शिरसे प्रणाम करके अपने मनसे जो काम करना चाहै वह उनसे निवेदन करदेना, मुनि परशु-रामजी मेरा नाम लेनेपर तेरा सब काम कर देंगे ॥३२-३३॥ हे प्यारी बेटी ! परशुराम मेरे प्रीतिपात्र स्नेही मित्र हैं और वह भी सब शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३४ ॥ राजा होत्रवाहन कन्यासे इसप्रकार कहरहा था, कि-इतनेमें ही परशुरामजीका प्यारा सेवक अकृतव्रण तहाँ आ पहुँचा ॥३५॥ तब तो वह सहस्रों मुनि तथा अवस्थामें वृद्ध वह सृञ्ज-यवंशी राजा होत्रवाहन भी यह सब खड़े होगये ॥३६॥ हे भरतसत्तम! उन सब वनवासियोंने अकृतव्रणका अतिथिसत्कार किया अकृतव्रणने मुनियोंके उस सत्कारको ग्रहण कर लिया तब वह सब मुनि अकृतव्रण

धन्या दिव्याश्च राजेंद्र प्रीतिहर्षमुदा युताः ॥ ३८ ॥ ततः कथान्ते राजर्षिर्महात्मा होत्रवाहनः । रामं श्रेष्ठं महर्षीणामपृच्छदकृतव्रणम् ॥ ३९ ॥ क्व सम्प्रति महाबाहो जामदग्न्यः प्रतापवान् । अकृतव्रण शक्यो वै द्रष्टुं वेदविदां वरः ॥४०॥ अकृतव्रण उवाच । भवन्तमेव सततं रामः कीर्तयति प्रभो । सृञ्जयो मे प्रियसखो राजर्षिरिति पार्थिव ॥ ४१ ॥ इह रामः प्रभाते श्वो भवितेति मतिर्मम । द्रष्टास्येनमिहायान्तं तव दर्शनकांक्षया ॥४२॥ इयञ्च कन्या राजर्षे किमर्थं वनमागता । कस्य चेयं तव च का भवतीच्छामि वेदितुम् ॥ ४३ ॥ होत्रवाहन उवाच । दौहित्रीयं मम विभो काशिराजसुता प्रिया । ज्येष्ठा स्वयम्वरे तस्थौ भगिनीभ्यां सहानघ ॥ ४४ ॥ इयमम्बेति विख्याता ज्येष्ठा काशिपतेः सुता । अम्बिकाम्बालिके कन्ये कनीयस्यौ तपोधन ॥ ४५ ॥ समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्य्यां ततोऽभवत् । कन्यानिमित्तं विप्रर्षे तत्रासीदुत्सवो महान् ॥ ४६ ॥ ततः किल महावीर्य्यो भीष्मः शांतनवो नृपान् । अधिक्षिप्य महातेजा-

---

को घेरकर बैठगये ॥३७॥ और हे राजेंद्र! प्रीति हर्ष तथा मोदमें आकर मनोहर, कार्यसाधक और हितकी अनेकों बातें करने लगे ॥३८॥ बातें होजाने पर राजर्षि महात्मा होत्रवाहन अकृतव्रणसे महर्षियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीका समाचार पूछने लगे, कि-॥ ३९ ॥ हे महाबाहु अकृतव्रण ! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अकृतव्रण ! जमदग्निके पुत्र प्रतापी परशुरामजी इस समय कहाँ हैं ? क्या उनका दर्शन मिल सकेगा ॥ ४० ॥ अकृतव्रणने कहा, कि-हे महाराज ! परशुरामजी सदा आपकी बातें करते हुए कहा करते हैं कि-राजर्षि सृञ्जय मेरा प्यारा मित्र है ॥४१॥ परशुरामजी कलको प्रातःकालके समय आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आवेंगे तब आप भी उनका दर्शन करना ॥४२॥ हे राजर्षि ! यह कन्या किस लिये वनमें आई है ? किसकी पुत्री है ? और यह तुम्हारी क्या लगती है ? इस बातको मैं जानना चाहता हूँ ॥४३॥ होत्रवाहनने कहा कि—हे निर्दोष प्रभो ! यह मेरी धेवती और काशिराजकी प्यारी बड़ी पुत्री है, यह स्वयम्वरमें दोनों बहनोंके साथ विवाहके लिये खड़ी थी ॥४४॥ हे तपोधन ! अम्बा नामकी काशीराजकी जो प्रसिद्ध पुत्री थी वह यही है तथा अम्बिका और अम्बालिका नामवाली दो कन्यायें इससे छोटी थीं ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मणर्षि ! उस समय कन्याओंके लिये काशीपुरीमें क्षत्रिय राजाओंका बड़ा समूह इकट्ठा हुआ था, और तहाँ बड़ाभारी उत्सव हुआ था ॥ ४६ ॥ तहाँ महापराक्रमी और महातेजस्वी

स्तिस्रः कन्या जहार ताः ॥ ४७ ॥ निर्जित्य पृथिवीपालानथ भीष्मे गजाह्वयम् । आजगाम विशुद्धात्मा कन्याभिः सह भारत ॥ ४८ ॥ सत्य वत्यै निवेद्याथ विवाहं समनन्तरम् । भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य समाज्ञापय प्रभुः ॥ ४९ ॥ तन्तु वैवाहिकं दृष्ट्वा कन्येयं समुपार्जितम् । अब्रवीत्त गांगेयं मन्त्रिमध्ये द्विजर्षभ ॥ ५० ॥ मया शाल्वपतिर्वीरो मनसाभिवृत पतिः । न मामर्हसि धर्मज्ञ दातुं भ्रात्रेऽन्यमानसाम् ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्व वचनं भीष्मः सम्मन्त्र्य सह मंत्रिभिः । निश्चित्य विससर्जेमां सत्यव त्या मते स्थितः ॥ ५२ ॥ अनुज्ञाता तु भीष्मेण शाल्वं सौभपतिं ततः कन्येयं मुदिता तत्र काले वचनमब्रवीत् ॥५३॥ विसर्जितास्मि भीष्मे धर्मं मां प्रतिपादय । मनसाभिवृतः पूर्वं मया त्वं पार्थिवर्षभ॥५४॥प्रत्य चख्यौ च शाल्वोऽस्याश्चारित्रस्याभिशङ्कितः । सेयं तपोधनं प्रा तापस्येऽभिरता भृशम् ॥ ५५॥ मया च प्रत्यभिज्ञाता वंशस्य परिकीर्त्त

शन्तनुके पुत्र भीष्मजीने सब राजाओंको हराकर काशीराजकी तीन कन्याओंको हरलिया था ॥ ४७ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! शुद्ध मनवा भीष्मजी सब राजाओंको हरकर कन्याओंको लिये हुए हस्तिनापुर पहुँच गये ॥ ४८ ॥ और सत्यवतीको सब बात निवेदन करी, फि समर्थ भीष्मजीने अपने भाई विचित्रवीर्यके साथ उनतीनों कन्याओं विवाह होनेकी आज्ञा दी ॥ ४९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उस विचित्रवीर्यके विवाहके निमित्त उबटना कङ्कण बन्धन आदि कियेहुए देखकर इस मंत्रियोंके मध्यमें बैठे हुए भीष्मजीसे कहा, कि—॥ ५० ॥ मैं तो अप मनसे वीर शाल्व राजाको पतिरूपसे स्वीकार करचुकी हूँ इस लि जिसका मन दूसरे पुरुषमें लगाहुआ है ऐसी मुझे हे धर्मज्ञ भीष्मजी अपने भाईके साथ विवाह देना आपको उचित नहीं है ॥ ५१ ॥ कन्य की इस बातको सुनकर भीष्मजीने मंत्रियोंके साथ विचार किया औ निश्चय करके सत्यवतीके विचारके अनुसार इस कन्याको जानेक आज्ञा देदी थी ॥ ५२ ॥ भीष्मजीके आज्ञा देनेपर यह कन्या प्रसन्न हु और सौभपति राजा शाल्वके पास जाकर उससे समयानुसार कह लगी, कि—॥ ५३ ॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! भीष्मने मुझे छोड़ दिया है, इ लिये तुम मुझे धर्मके अनुसार स्वीकार करो मैं पहिलेसे ही अपने मन आपको वरचुकी हूँ ॥ ५४ ॥ परन्तु राजा शाल्वको इस कन्याके चरि के विषयमें शंका होगई अतः उसने इसका तिरस्कार कर दिया इ कारण यह कन्या तपोवनमें आकर रही है और तपस्यामें मग्न रहत

नात्। अस्य दुःखस्य चोत्पत्तिं भीष्ममेवेह मन्यते ॥ ५६ ॥ अम्बोवाच। भगवन्नेवमेवेह यथाह पृथिवीपतिः। शरीरकर्त्ता मातुर्मे सृञ्जयो होत्रवाहनः ॥५७॥ न ह्युत्सहे स्वनगरं प्रतियातुं तपोधन। अपमानभयाच्चैव व्रीडया च महामुने ॥ ५८ ॥ यत्तु मां भगवान्रामो वक्ष्यति द्विजसत्तम। तन्मे कार्य्यतमं कार्य्यमिति मे भगवन्मतिः ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि होत्रवाहनाम्बासंवादे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

अकृतव्रण उवाच। दुःखद्वयमिदं भद्रे कतरस्य चिकीर्षसि। प्रतिकर्त्तव्यमबले तत्त्वं वत्से वदस्व मे ॥१॥ यदि सौभपतिर्भद्रे नियोक्तव्यो मतस्तव। नियोक्ष्यति महात्मा स रामस्त्वद्धितकाम्यया ॥ २ ॥ अथापगेयं भीष्मं त्वं रामेणेच्छसि धीमता। रणे विनिर्जितं द्रष्टुं कुर्यात्तदपि भार्गवः ॥ ३ ॥ सृञ्जयस्य वचः श्रुत्वा तव चैव शुचिस्मिते। यदत्र ते भृशं कार्यं तदद्यैव विचिन्त्यताम् ॥ ४ ॥ अम्बोवाच। अपनी-

---

है ॥ ५५ ॥ इस कन्याने अपना वंश बताया तो उससे मैंने इसको पहचान लिया है, यह समझ रही है कि-मेरे दुःखका कारण भीष्म ही है ॥ ५६ ॥ इसके पीछे अंबा कहने लगी, कि-हे भगवन्! जैसा राजा ने कहा सो ठीक ही है यह मेरी माताके पिता सृञ्जयवंशी राजा होत्रवाहन हैं॥५७॥हे तपोधन ! अब मैं लौटकर अपनी नगरीमें जाना नहीं चाहती, क्योंकि-हे महामुने! ऐसा करनेमें मुझे अपमानका भयलगता है और लज्जा भी लगती है। ५८। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! अब परशुरामजी मुझसे जो महान् काम करनेको कहेंगे मैं वही काम करूँगी, हे भगवन्! यही मेरा विचार है ॥ ५९ ॥ एकसौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त १७६

अकृतव्रणने कहा कि, कि—हे भद्रे ! तेरे ऊपर दो प्रकारका दुःख आपड़ा है,एक तो कन्याजीवनको बितानेका और दूसरा शत्रुका नाश करनेका इन दोनों दुःखोंमेंसे कौनसे दुःखका उपाय करना चाहतीहै, हे अबला हे बेटी ! यह तू ठीक २ बता ? ॥ १ ॥ हे भद्रे ! यदि तुझे सौभपति राजा शाल्वके साथ विवाह करनेकी इच्छा हो तो तेरा हित करनेकी इच्छासे महात्मा परशुरामजी उसके साथ तेरा विवाह करा देंगे ॥ २ ॥ और यदि तू बुद्धिमान् परशुरामजी से गङ्गापुत्र भीष्मको रणमें हारा हुआ देखना चाहती हो तो भृगुवंशी राम इस कामको भी कर सकते हैं ॥ ३ ॥ हे पवित्रहास्यवाली ! सृञ्जयके और तेरे कहनेको सुन कर इनमेंसे जो काम करना उचित होगा उसका आज

तास्मि भीष्मेण भगवन्नविजानता । नाभिजानाति मे भीष्मो ब्रह्मन् शाल्वगतं मनः ॥५॥ एतद्विचार्य मनसा भवानेतद्विनिश्चयम् । विचिनोतु यथा न्यायं विधानं क्रियतां तथा ॥ ६ ॥ भीष्मे वा कुरुशार्दूले शाल्वराजेऽथ वा पुनः । उभयोरेव वा ब्रह्मन् युक्तं यत्तत् समाचर॥७ निवेदितं मया ह्येतद् दुःखमूलं यथातथम् । विधानं तत्र भगवन् कर्त्तुमर्हसि युक्तितः ॥ ८ ॥ अकृतव्रण उवाच । उपपन्नमिदं भद्रे यदेवं वरवर्णिनि । धर्मं प्रतिवचो भूयः शृणु चेदं वचो मम ॥ ९ ॥ यदित्वामापगेयो वै न नयेद् गजसाह्वयम् । शाल्वस्त्वां शिरसा भीरु गृह्णीयाद्रामचोदितः ॥ १० ॥ तेन त्वं निर्जिता भद्रे यस्मान्नीतासि भाविनि । संशयः शाल्वराजस्य तेन त्वयि सुमध्यमे ॥ ११ ॥ भीष्मः पुरुषमानी च जितकाशी तथैव च । तस्मात् प्रतिक्रिया युक्ता भीष्मे कारयितुं तव ॥ १२ ॥ अम्बोवाच । ममाप्येष सदा ब्रह्मन् हृदि कामोऽभिवर्त्तते । घातयेयं यदि रणे भीष्ममित्येव नित्यदा ॥१३॥ भीष्मं वा

हो विचार किया जायगा॥४॥अम्बाने कहा कि-हे भगवन् ! भीष्मजी मेरे अभिप्रायको समझे विना मुझे हरकर लेगये थे, मेरा मन राजा शाल्वके ऊपर आसक्त है इस बातको वह नहीं जानते थे ॥ ५॥ आप इस बातका अपने मनसे विचार करके जो करना उचित हो उसका न्यायके अनुकूल निर्णय करिये और उसका उपाय करिये।६।कुरुकुलमें सिंहकी समान भीष्मजीके विषयमें वा राजा शाल्वके विषयमें अथवा इन दोनोंके विषयमेंजो काम करना उचित मालूम हो उसको करिये७मैंने अपने दुःखका यह मूलकारण आपसे यथावत् कहदिया हे भगवन् ! अब इस विषयमें जो उपाय करना हो उसको युक्तिके साथ करिये८ अकृतव्रणने कहा, कि-हे भद्रे ! हे वरवर्णिनी ! तूने जो इसप्रकार धर्मके अनुकूल बात कही यह ठीक ही है, अब तू मेरी इस बातको सुन कि-॥ ९ ॥ यदि तुझे भीष्म हस्तिनापुरको नहीं लेजाता तो हे भीरु ! राजा शाल्व परशुरामजीके कहने पर मस्तक नवाकर तुझे लेजाता१० परन्तु हे कल्याणि ! हे भामिनि ! भीष्मजीने तुझे जीतलिया था और वह हरकर लेगया था, इसकारण हे कृशोदरी ! शाल्वको तेरे ऊपर सन्देह होगया है ॥११॥ भीष्मको अपने पुरुषपनेका अभिमान है और वह काशीको जीत चुका है, इसलिये तुझे भीष्मसे ही बदला लेना चाहिये ॥ १२ ॥ अम्बाने कहा कि-हे ब्राह्मण ! हरसमय यही बात समायी रहती है कि-मैं रणमें भीष्मका संहार करूँ तो मेरे जीको

२०-१-२८

शाल्व राजं वा यं वा दोषेण गच्छसि। प्रशाधि तं महाबाहो यत्कृतेऽहं सुदुःखिता ॥ १४ ॥ भीष्म उवाच। एवं कथयतामेव तेषां स दिवसो गतः। रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ सुखशीतोष्णमारुता ॥१५॥ ततो रामः प्रादुरासीत् प्रज्वलन्निव तेजसा। शिष्यैः परिवृतो राजन् जटाचीरधरो मुनिः ॥ १६ ॥ धनुष्पाणिरदीनात्मा खड्गं बिभ्रत् परश्वधी। विरजा राजशार्दूल सृञ्जयं सोऽभ्ययान्नृपम् ॥१७॥ ततस्तं तापसा दृष्ट्वा स च राजा महातपः। तस्थुः प्राञ्जलयो राजन् सा च कन्या तपस्विनी १८ पूजयामासुरव्यग्रा मधुपर्केण भार्गवम्। अर्चितश्च यथान्यायं निषसाद सहैव तैः ॥ १९ ॥ ततः पूर्वव्यतीतानि कथयन्तौ स्म तावुभौ। आसातां जमदग्न्यश्च सृञ्जयश्चैव भारत ॥२०॥ तथा कथान्ते राजर्षिर्भृगुश्रेष्ठं महाबलम्। उवाच मधुरं काले रामं वचनमर्थवत् ॥ २१ ॥ रामेयं मम दौहित्री काशिराजसुता प्रभो। अस्याः शृणु यथातत्त्वं

शान्ति हो ॥ १३ ॥ हे महाबाहु ! भीष्मको अथवा राजा शाल्वको इन दोनोंमेंसे जिसका दोष समझते हो उसको मुझे बताओ, क्योंकि मैं इस बातको जाननेके लिये ही दुःखी होरही हूँ ॥ १४ ॥ भीष्मपितामह कहते हैं, कि–हे भरतसत्तम दुर्योधन ! इसप्रकार बातें करते २ उनको दिनभर बीतगया तथा जिसमें सरदी गरमी और पवन सुखदायक थे ऐसी रात्रि भी बीतगयी॥१५॥हे राजन्! दूसरे दिन प्रातःकालके समय तेजसे दमकते हुए जटा और कौपीनधारी भगवान् परशुरामजी मुनियोंसे और शिष्योंसे घिरेहुए पधारे ॥ १६ ॥ हे राजसिंह ! उन निष्पाप मुनिके हाथमें धनुष था, उनका मन उदार था, दूसरे हाथमें तलवार और फरसा था, वह मुनि सृञ्जय राजासे मिलनेके लिये तहाँ पधारे थे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! सब तपस्वी, महातपस्वी राजा होत्रवाहन और वह तपस्विनी कन्या ये सब परशुरामजीको देखते ही हाथ जोड़कर खड़े होगये ॥ १८ ॥ और उन्होंने शान्तिके साथ मधुपर्कसे परशुरामजीकी पूजा करी, शास्त्रकी विधिके अनुसार पूजा होजाने पर परशुरामजी उन तपोधनोंके साथ ही बैठ गये ॥ १९ ॥ और हे भरतवंशी राजन् ! परशुरामजी और राजा होत्रवाहन ये दोनों जने पीछे बीतीहुई बातें करने लगे ॥ २० ॥ पुरानी कथायें होजाने पर राजर्षि होत्रवाहनने भृगुकुलमें श्रेष्ठ महाबली परशुरामसे समय पर प्रयोजन की मधुर बात कहना आरम्भ की कि–॥२१॥हे कामसाधनोंमें प्रवीण प्रभो परशुरामजी ! यह काशीराजकी पुत्री है इसकी प्रार्थनाको आप

कार्यं कार्यविशारद ।२२। परमं कथ्यतांऽवेति तां रामः प्रत्यभाषत । ततः साऽब्रवद्रामं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥२३॥ ततोऽभिवाद्य चरणौ रामस्य शिरसा शुभौ । स्पृष्ट्वा पद्मदलाभाभ्यां पाणिभ्यामग्रतः स्थिता२४ रुरोद सा शोकवती बाष्पव्याकुललोचना । प्रपेदे शरणञ्चैव शरण्यं भृगुनन्दनम् ॥ २५ ॥ राम उवाच । यथा त्वं सृञ्जयस्यास्य तथा मे त्वं नृपात्मजे । ब्रूहि यत्ते मनोदुःखं करिष्ये वचनं तव ॥२६॥ अम्बोवाच । भगवन् शरणं त्वाद्यप्रपन्नास्मि महाव्रतम् । शोकपंकार्णवान्मग्नां घोरादुद्धर मां विभो ॥ २७ ॥ भीष्म उवाच । तस्याश्च दृष्ट्वा रूपञ्च वपुश्चाभिनवं पुनः । सौकुमार्यं परञ्चैव रामश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ २८ ॥ किमियं वक्ष्यतीत्येवं विममर्श भृगूद्वहः । इति दध्यौ चिरं रामः कृपयाभिपरिप्लुतः ॥ २९ ॥ कथ्यतामिति सा भूयो रामेणोक्ता शुचिस्मिता । सर्वमेव यथातत्त्वं कथयामास भार्गवे३० तच्छ्रुत्वा जामदग्न्यस्तु

ठीक २ सुनिये ॥ २२ ॥ यह सुन कर परशुरामजीने उस कन्यासे कहा कि-तू जो कुछ कहना चाहती है मुझसे कथन कर तब तो वह कन्या दहकते हुए अग्निकी समान प्रकाशवाले परशुरामजीसे कहने लगी२३ कहनेसे पहिले उसने अपने मस्तकसे उनके कल्याणदायक दोनों चरणों में प्रणाम करके तथा कमलके पत्तोंकी समान कोमल दोनों हाथोंसे उनके दोनों चरणोंको छूकर उनके चरणोंके आगे बैठगयी ॥२४॥ और आँसुओंसे जिसकी दोनों आँखें भरगयी थीं ऐसी शोकसे व्याकुल हुई वह कन्या रोनेलगी और शरणलेने योग्य भृगुनन्दन परशुरामजी की शरणमें गयी ॥ २५ ॥ परशुरामजी बोले, कि-हे राजकन्या ! तू जैसे इस सृञ्जयकी धेवती लगती है तैसे ही मेरी भी धेवती है, तेरे मनमें जो दुःख हो वह मुझे सुना, मैं तेरे कहनेके अनुसार काम करूँगा ॥ २६॥ अम्बा बोली, कि-हे भगवन् ! आज मैं महाव्रतधारी आपकी शरणमें आयी हूँ, हे व्यापक प्रभो ! मैं शोकरूप समुद्रमें डूब गयी हूँ, उसमेंसे आप मुझे निकाल दीजिये ॥ २७ ॥ भीष्मजी कहते हैं, कि—तदनन्तर उस कन्याके नये रूप नये शरीर और उत्तम सुकुमारताको देखकर परशुरामजीको बड़ी भारी चिन्ता होनेलगी२८ भृगुवंशी परशुरामजी विचारने लगे, कि-यह कन्या न जाने क्या कहेगी ? और कृपासे परिपूर्ण होकर बहुत देरतक विचार करते रहे ॥ २९ ॥ फिर परशुरामजीने उस पवित्र मुस्कुरावाली कन्यासे कहा कि-तेरे ऊपर बीतीहुई जो बात हो वह मुझे कहकर सुना, इस पर

राजपुत्र्या वचस्तदा । उवाच तां वरारोहां निश्चित्यार्थविनिश्चयम् ३१ राम उवाच । प्रेषयिष्यामि भीष्माय कुरुश्रेष्ठाय भाविनि । करिष्यति वचो मह्यं श्रुत्वा च स नराधिपः ॥३२॥ न चेत् करिष्यति वचो मयोक्तं जाह्नवीसुतः । धक्ष्याम्यहं रणे भद्रे सामात्यं शस्त्रतेजसा ॥ ३३ ॥ अथवा ते मतिस्तत्र राजपुत्रि निवर्त्तते । यावच्छाल्वपतिं वीरं योजयाम्यत्र कर्मणि ॥ ३४ ॥ अम्बोवाच । विसर्जिताहं भीष्मेण श्रुत्वैव भृगुनन्दन । शाल्वराजगतं भावं मम पूर्वं मनीषितम् ॥ ३५ ॥ सौभराजमुपेत्याहमवोचं दुर्वचं वचः । न च मां प्रत्यगृह्णात् स चारित्र्यपरिशङ्कितः ॥३६॥ एतत् सर्वं विनिश्चित्य स्वबुद्ध्या भृगुनन्दन । यदत्रौपयिकं कार्यं तच्चिन्तयितुमर्हसि ॥ ३७ ॥ मम तु व्यसनस्यास्य भीष्मो मूलं महाव्रतः । येनाहं वशमानीता समुत्क्षिप्य बलात् तदा ३८ भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम् । प्राप्ताहं भृगुशार्दूल चरा-

---

उसने जो बात जैसी हुई थी वह तैसे ही कहकर सुनादी ॥३०॥ राजकुमारी अम्बाकी बात सुनकर परशुरामजीने उस समय उसकी बात का निश्चय किया और फिर उस सुन्दराङ्गी कन्यासे कहने लगे॥३१॥ परशुरामजी बोले, कि-हे सुन्दरी ! मैं तुझे कुरुकुलमें श्रेष्ठ भीष्मजी के पास फिर भेज दूँगा.वह राजा मेरे कहनेको सुनकर उसके अनुसार ही काम करेगा ॥ ३२ ॥ हे भद्रे ! यदि भीष्म मेरी कही हुई बातको नहीं करेंगे तो मैं रणमें शस्त्रके तेजसे मन्त्रियोंसहित भीष्मजीको भस्म कर डालूँगा ॥ ३३ ॥ अथवा हे राजकुमारी ! यदि तेरी इच्छा भीष्म के ऊपर न हो तो वीर राजा शाल्वको तेरे साथ विवाह करनेके लिये समझा दूँगा ॥ ३४ ॥ अम्बाने कहा, कि-हे भृगुनन्दन ! पहिले भीष्म जीने, शाल्व राजाके ऊपर मेरी श्रद्धा और प्रीति है ऐसा सुन कर मुझे राजा शाल्वके पास भेज दिया था ॥३५॥ मैंने भीष्मजीकी आज्ञा मिल जानेसे राजा शाल्वके पास जाकर उससे न कहने योग्य वाक्य कहे थे परन्तु उसने मेरे चरित्रके ऊपर शंका होजानेके कारणसे मुझे स्वीकार नहीं किया ॥ ३६ ॥ हे भृगुनन्दन ! आप अपनी बुद्धिसे इन सब बातोंका निश्चय करके इस काममें जो उपाय अवश्य करनेका होय उसका आप निर्णय कर सकते हैं ॥ ३७ ॥ मेरे इस दुःखका मूल कारण तो ब्रह्मचारी भीष्मजी ही हैं,उन्होंने ही हरण करते समय मुझे बलात्कारसे उठा कर वशमें कर लिया था ॥ ३८ ॥ हे महाबाहु भृगुकुलसिंह ! जिनके कारणसे मैं ऐसा दुःख पारही हूँ और महाकष्ट

स्यमिषमुत्तमम् ॥३९॥ स हि लुब्धश्च नीचश्च जितकाशी च भार्गव । तस्मात् प्रतिक्रियां कर्त्तुं युक्ता तस्मै त्वयानघ ॥ ४० ॥ एष मे क्रियमाणाया भारतेन तदा विभो । अभवद्धृदि सङ्कल्पो घातयेयं महाव्रतम् ॥ ४१॥ तस्मात् कामं ममाद्येमं राम सम्पादयानघ । जहि भीष्मं महाबाहो यथा वृत्रं पुरन्दरः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि रामाम्बासम्वादे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

भीष्म उवाच । एवमुक्तस्तदा रामो जहि भीष्ममिति प्रभो । उवाच रुदतीं कन्यां चोदयन्तीं पुनः पुनः ॥१ ॥ काश्ये न कामं गृह्णामि शस्त्रं वै वरवर्णिनि । ऋते ब्रह्मविदां हेतोः किमन्यत् करवाणि ते ॥२॥ वाचा भीष्मश्च शाल्वश्च मम राज्ञि वशानुगौ । भविष्येतेऽनवद्याङ्गि तत् करिष्यामि मा शुचः ॥३॥ न तु शस्त्रं ग्रहीष्यामि कथञ्चिदपि भामिनि । ऋते

भोगती हुई भटकती फिरती हूँ उन भीष्मजीका तुम नाश करो ३९ हे भृगुवंशमें उत्पन्न हुए निर्दोष परशुरामजी ! वह मेरा हरण करनेमें लोभी हुए थे परन्तु मेरा हरण करनेपर भी उन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया इसकारण वह नीच हैं, वह विजयके कारण आपेसे बाहर होगये हैं इसकारण आप उनको उनके कर्मका बदला दें यही उचित है॥४०॥ हे विभो ! जिस समय भीष्मजीने बलात्कारसे हरण करके मेरा जो दुखाया था उस समय ही मेरे हृदयमें यह विचार उठा था कि—मैं महाव्रतधारी भीष्मपितामहका नाश करूँ ? ॥४१॥ इसलिये हे निर्दोष राम ! अब आप मेरी इस कामनाको पूरी करिये और हे महाबाहु ! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरका नाश किया था तैसे ही आप भीष्मजीका नाश करिये ॥ ४२ ॥ एकसौ सतत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७७ ॥

भीष्मजी कहते हैं कि—हे राजा दुर्योधन ! 'भीष्मजीको मार डालो' यह बात उस कन्याने परशुरामजीसे कही अर्थात् भीष्मजीको मारनेके लिए बारंबार प्रेरणा करने लगी, तब रोती हुई उस कन्यासे परशुरामजीने कहा, कि-हे सुन्दर वर्णवाली काशीराजकी पुत्री ! जब तक ब्रह्मज्ञानियोंका कोई काम नहीं होता तब तक मैं अपनी इच्छासे शस्त्र नहीं उठाता हूँ, इस कारण इस बातको छोड़ और जो बात तू कहे उसको करनेके लिये मैं तयार हूँ ॥ १ ॥ २ ॥ हे निर्दोष अङ्गोंवाली राजकन्या ! भीष्म और शाल्व ये दोनों मेरी बातके वशमें होकर रहेंगे, इसलिये तू शोक न कर मैं तेरा काम सिद्ध

नियोगाद्विप्राणामेष मे समयः कृतः ॥४॥ अम्बोवाच । मम दुःखं भगवता व्यपनेयं यतस्ततः । तच्च भीष्मप्रसूतं मे तं जहीश्वर मा चिरम्॥५ राम उवाच । काशिकन्ये पुनर्ब्रूहि भीष्मस्ते चरणावुभौ । शिरसा वन्दनार्होऽपि ग्रहीष्यति गिरा मम ॥६॥ अम्बोवाच । जहि भीष्मं रणे राम गर्जन्तमसुरं यथा । समाहूतो रणे राम मम चेदिच्छसि प्रियम् । प्रतिश्रुतञ्च यदपि तत् सत्यं कर्तुमर्हसि ॥ ७ ॥ भीष्म उवाच । तयोः संवदतोरेवं राजन् रामाम्बयोस्तदा । ऋषिः परमधर्मात्मा इदं वचनमब्रवीत् ।८। शरणागतां महाबाहो कन्यां न त्यक्तुमर्हसि । यदि भीष्मो रणे राम समाहूतस्त्वया मृधे ॥ ९ ॥ निर्जितोऽस्मीति वा ब्रूयात् कुर्याद्वा वचनं तव । कृतमस्या भवेत् कार्यं कन्यया भृगुनन्दन ॥१०॥ वाक्यं सत्यञ्च ते वीर भविष्यति कृतं विभो । इयं चापि प्रतिज्ञा ते तदा राम महामुने ॥ ११ ॥ जित्वा वै क्षत्रियान् सर्वान् ब्राह्मणेषु प्रति-

---

करदूँगा ॥३॥ परन्तु हे कल्याणी ! ब्राह्मणोंकी आज्ञाके बिना मैं किसी प्रकार भी शस्त्रको ग्रहण नहीं करूँगा, क्योंकि मैंने ऐसा नियम कर लिया है ॥ ४ ॥ अम्बाने कहा, कि-हे प्रभो ! किसी न किसी उपायसे आपको मेरा दुःख दूर करना चाहिये, वह दुःख भीष्मजीसे उत्पन्न हुआ है इस कारण उनको आप शीघ्र ही मारडालिये ।५। परशुरामजी ने कहा, कि-हे काशीराजकी पुत्री ! तू विचार करके फिर वर माँग, भीष्मपितामह तेरे प्रणाम करने योग्य हैं तो भी मेरे कहनेसे वह तेरे दोनों चरणोंमें शिरसे प्रणाम करेंगे ॥६॥ अम्बाने कहा, कि-हे परशुरामजी ! आप यदि मेरा हित करना चाहते हैं तो रणमें गर्जना करते हुए असुरसमान भीष्मजीके साथ युद्ध करनेके लिये बुलाये हुए तुम भीष्मजीको मारडालो और आपने जो प्रतिज्ञा करी है वह भी तो आपको पूरी करनी चाहिये ॥ ७ ॥ भीष्मजी बोले, कि-हे राजन् ! परशुराम और अम्बा इसप्रकार आपसमें बातें कररहे थे, उस समय एक परमधर्मात्मा ऋषिने यह बातकही, कि-हे महाबाहु परशुरामजी ! तुम्हारी शरणमें आयीहुई इस कन्याका त्याग करना आपको उचित नहीं है, हे परशुरामजी ! आप रणमें भीष्मजीको बुलायें ॥८-९॥ और उस समय भीष्मजी आपके पास आकर यह बात कहदें, कि-तुमने मुझे हरादिया अथवा वह तुम्हारे कहनेके अनुसार काम करें ऐसा करने पर इस कन्याका काम सिद्ध हुआ मानाजायगा ॥ १० ॥ और आपका वचन भी सत्य होजायगा और हे महामुनि परशुरामजी !

श्रुता । ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव रणे यदि॥१२॥ब्रह्मद्विड् भविता तं वै हनिष्यामिति भार्गव । स एवं विजयी राम भीष्मः कुरुकुलोद्वहः। तेन युध्यस्व संग्रामे समेत्य भृगुनन्दन ॥ १५ ॥ राम उवाच । स्मराम्यहं पूर्वकृतां प्रतिज्ञामृषिसत्तम । तथैव च करिष्यामि यथा साम्नैव लप्स्यते ॥ १६ ॥ कार्यमेतन्महद् ब्रह्मन् काशिकन्यामनोगतम्। गमिष्यामि स्वयं तत्र कन्यामादाय यत्र सः ॥ १७ ॥ यदि भीष्मो रणश्लाघी न करिष्यति मे वचः। हनिष्याम्येनमुद्रिक्तमिति मे निश्चिता मतिः ॥१८॥ न हि बाणा मयोत्सृष्टाः सज्जन्तीह शरीरिणाम् । कायेषु विदितं तुभ्यं पुरा क्षत्रियसंगरे ॥ १९ ॥ एवमुक्त्वा ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः । प्रयाणाय मतिं कृत्वा समुत्तस्थौ महातपाः ॥ २० ॥ ततस्ते तामुषित्वा तु रजनीं तत्र तापसाः। हुताग्नयो जप्तजप्याः प्रत-

---

तुम्हारी दूसरी एक और भी प्रतिज्ञा है॥११तुमने सब क्षत्रियोंको जीत कर ब्राह्मणोंके सामने रणभूमिमेंप्रतिज्ञा करी थी, कि-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र चाहे कोई भी वीर पुरुष ब्राह्मणोंसे द्वेष करेगा तो उसको मैं मारडालूँगा, तथा शरणमें आयेहुए, भयभीत हुए और शरणकी इच्छावाले लोगोंको मैं जब तक शरीरमें प्राण रहेंगे तबतक किसीप्रकार भी नहीं त्यागूँगा और हे भृगुनन्दन ! आपने यह भी प्रतिज्ञा करी थी कि-जो क्षत्रिय रणमें सामने आयेहुए सब क्षत्रियोंको जीतलेगा उस तेजस्वी क्षत्रियका भी मैं रणमें नाश करूँगा सो हे परशुरामजी ! कुरुवंशी भीष्म आपके कहनेके अनुसार विजय पारहे हैं सो हे भृगुवंशी ! आप संग्राममें भीष्मजीका सामना करके युद्ध करिये ॥१२॥१५॥ परशुरामने कहा, कि-हे श्रेष्ठ ऋषि ! मुझे अपनी पहिले की हुई प्रतिज्ञा याद है और जिस प्रकार समझानेसे काम पूरा हो मैं तैसा ही उपाय करूँगा ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मण ! काशीराजकी कन्याके मनमें यह बड़ाभारी काम करनेका विचार उठा है तोमैं अपने आप ही इस कन्याको लेकर जहाँ भीष्मजी हैं तहाँ जाऊँगा ॥ १७ ॥ रणमें प्रशंसा पानेवाला भीष्म यदि मेरा कहना नहीं करेगा तो निःसन्देह मैं उस घमण्डीको मारडालूँगा यह मेरा पक्का विचार है ।१८। इस लोकमें मेरे मारे हुये बाणोंको प्राणी शरीरों पर सह नहीं सकते, इस बातको आप पहिले क्षत्रियोंके साथ संग्राम होने पर जान ही चुके हो१९ऐसा कहकर महातपस्वी परशुरामजी ब्रह्मज्ञानी मुनियोंके सहित भीष्मजीके पास जानेका विचार करके तयारी करने लगे ॥ २० ॥ वह

स्तुर्मे जिघांसया॥२१॥अभ्यागच्छत्ततो रामः सह तैर्ब्रह्मवादिभिः। कुरुक्षेत्रं महाराज कन्यया सह भारत ॥ २२ ॥ न्यविशन्त ततः सर्वे परिगृह्य सरस्वतीम्। तापसास्ते महात्मानो भृगुश्रेष्ठपुरस्कृताः ॥ २३ ॥ भीष्म उवाच। ततस्तृतीये दिवसे सन्दिदेश व्यवस्थितः। कुरु प्रियं स मे राजन् प्राप्तोऽस्मीति महाव्रतः ॥ २४ ॥ तमागतमहं श्रुत्वा विषयान्ते महाबलम्। अभ्यगच्छं जवेनाशु प्रीत्या तेजोनिधिं प्रभुम् ॥२५॥ गां पुरस्कृत्य राजेन्द्र ब्राह्मणैः परिवारितः। ऋत्विग्भिर्देवकल्पैश्च तथैव च पुरोहितैः ॥२६॥ स मामभिगतं दृष्ट्वा जामदग्न्यः प्रतापवान्। प्रतिजग्राह तां पूजां वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ राम उवाच। भीष्म कां बुद्धिमास्थाय काशिराजसुता तदा। अकामेन त्वया नीता पुनश्चैव विसर्जिता ॥२८॥ विभ्रंशिता त्वया हीयं धर्मादास्ते यशस्विनी। परामृष्टां त्वया हीमां को हि गन्तुमिहार्हति ॥ २९ ॥ प्रत्याख्याता हि

सब तपस्वी उस रातको तो तहाँ ही रहे और दूसरे दिन अग्निमें होम और जप करके मुझे मारनेकी इच्छासे चलपड़े ॥ २१ ॥ और हे भरतवंशी महाराज ! परशुरामजी ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके साथ उस कन्याको लेकर तिस आश्रममें कुरुक्षेत्रमेंसे आपहुँचे ॥ २२ ॥ जिनमें परशुरामजी मुख्य हैं ऐसे वह महात्मा तपस्वी सरस्वतीके किनारे पर आकर ठहर गये ॥२३॥ भीष्मजी कहते हैं, कि–हे राजन् ! तीसरे दिन महाव्रतधारी परशुरामजीने सब व्यवस्था करके मेरे पास कहलाकर भेजा कि–हे राजन् ! मैं तेरे पास एक कामसे आया हूँ, तू मेरा प्रिय कामकर ॥ २४ ॥ महाबली और तेजके भण्डाररूप परशुरामजीको अपने देशमें आया हुआ सुनकर मैं प्रेमके साथ बड़ी शीघ्रतासे उनके पास गया ॥२५॥ हे राजेंद्र ! उनके पासको जाते समय ब्राह्मण, देवताओंकी समान ऋत्विज और पुरोहितोंसे घिरकर उनके पास गया था और उनका सत्कार करनेके लिये एक गौको भी अपने आगे करके लेगया था ॥ २६ ॥ प्रतापी परशुरामजीने मुझे अपने समीप आया हुआ देखकर मेरी उस पूजाको स्वीकार किया और मुझसे यह बात कहने लगे ॥ २७ ॥ परशुरामजी बोले, कि–हे भीष्म ! तुम्हें विवाह करनेकी इच्छा नहीं थी तो भी तुम इस काशीराजकी पुत्रीको किस विचारसे हरलाये थे और फिर इसको त्याग क्यों दिया था ॥ २८ ॥ तुमने इस यशस्विनी कन्याको स्पर्श करके स्त्री धर्मसे भ्रष्ट कर दिया है, तुम्हारी स्पर्श की हुई इसको अब कौन स्वीकार करे ? ॥ २९ ॥

शाल्वेन त्वया नीतेति भारत । तस्मादिमामन्नियोगात् प्रतिगृह्णीष्व भारत ॥३०॥ स्वधर्मं पुरुषव्याघ्र राजपुत्री लभत्वियम् । न युक्तमव-मानोऽयं राज्ञां कर्त्तुं त्वयानघ ॥ ३१ ॥ ततस्तं वै विमनसमुदीक्ष्या-मथाऽब्रुवम् । नाहमेनां पुनर्दद्यां ब्रह्मन् भ्रात्रे कथञ्चन ॥३२॥ शाल्व-स्याहमिति प्राह पुरा मामेव भार्गव । मया चैवाभ्यनुज्ञाता गतेयं नगरं प्रति ॥ ३३ ॥ न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थलोभान्न काम्यया क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥ ३४ ॥ अथ मामब्रवीद्रामः क्रोध-पर्य्याकुलेक्षणः । न करिष्यसि चेदेतद्वाक्यं मे नरपुंगव ॥ ३५ ॥ हनि-ष्यामि सहामात्यं त्वामद्येति पुनः पुनः॥ संरम्भादब्रवीद्रामः क्रोधपर्य्या-कुलेक्षणः ॥३६॥ तमहं गीर्भिरिष्टाभिः पुनः पुनररिन्दम । अयाचं भृगु-शार्दूलं न चैव प्रशशाम सः ॥३७॥ प्रणम्य तमहं मूर्ध्ना भूयो ब्राह्मण-

हे भरतवंशी ! तुमने इसका हरण किया था इसकारणसे राजा शाल्वने इसको स्वीकार नहीं किया है, अतः हे भारत ! अब तुम मेरी आज्ञासे इस कन्याको स्वीकार करलो ॥ ३० ॥ और हे पुरुष-व्याघ्र ! मैं चाहता हूँ कि-यह राजपुत्री भी अपने धर्मको प्राप्त करे, हे निष्पाप भीष्म ! तुम्हें राजाओंका अपमान करना उचित नहीं है ३१ तदनन्तर परशुरामजीको उदास हुआ देखकर मैंने उनसे कहा, कि-हे ब्राह्मण ! अब मैं अपने भाईके साथ इस कन्याका विवाह किसी प्रकार भी नहीं करसकता ॥ ३२ ॥ क्योंकि-हे भृगुवंशी राम ! इस कन्याने पहिले मुझसे कहा था, कि-मेरी शाल्वके ऊपर प्रीति है, इस पर मैंने इसको शाल्वके पास जानेकी आज्ञा देदी और यह भी शाल्वके नगरको चली गयी थी ॥३३॥ हे ब्राह्मण ! मैं भयसे; निन्दा से, धनके लोभसे अथवा कामनासे अपने क्षत्रियधर्मको त्यागने वाला नहीं हूँ क्योंकि-मैंने यह व्रत धारण किया है ॥ ३४ ॥ मेरी बातको सुनते ही परशुराम क्रोधसे आँखे फेरकर मुझसे कहने लगे, कि-हे नरेन्द्र ! यदि तू मेरे कहनेके अनुसार काम नहीं करेगा तो मैं आज तुझे और तेरे मंत्रियोंको भी मारडालूँगा यह बात परशुरामजीने क्रोधसे आँखे फेरकर मुझसे वारवार कही ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे शत्रुओं को दबानेवाले ! उस समय अच्छी लगनेवाली मधुरवाणीमें भृगुकुलमें सिंहसमान परशुरामजीसे मैंने बार २ प्रार्थना करी, परन्तु वह शान्त पड़े ही नहीं ॥ ३७ ॥ तदनन्तर मैंने फिर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ परशुरामजी को मस्तकसे प्रणाम करके पूछा कि तुम मेरे साथ युद्ध करना चाहते

सत्तमम् । अब्रुवं कारणं किन्तद्यत्त्वं युद्धं मयेच्छसि ॥ ३८ ॥ इष्वस्त्रं मम बालस्य भवतैव चतुर्विधम् । उपदिष्टं महाबाहो शिष्योऽस्मि तव भार्गव ॥ ३९ ॥ ततो मामब्रवीद्रामः क्रोधसंरक्तलोचनः । जानीषे मां गुरुं भीष्मं गृह्णासीमां न चैव ह ॥ ४० ॥ सुतां काश्यस्य कौरव्य मत्प्रियार्थं महामते । न हि ते विद्यते शान्तिरन्यथा कुरुनन्दन ॥ ४१ ॥ गृहाणेमां महाबाहो रक्षस्व कुलमात्मनः । त्वया विभ्रंशिता हीयं भर्त्तारं नाधिगच्छति॥४२॥तथा ब्रुवन्तं तमहं रामं परपुरञ्जयम् । नैतदेवं पुनर्भावि ब्रह्मर्षे किं श्रमेण ते ॥ ४३॥ गुरुत्वं त्वयि सम्प्रेक्ष्य जामदग्न्य पुरातनम् । प्रसादये त्वां भगवंस्त्यक्ता तु पुरा मया ॥ ४४ ॥ को जातु परभावां हि नारीं व्यालीमिव स्थिताम् । वासयेत गृहे जानन् स्त्रीणां दोषो महात्ययः ॥४५॥ न भयाद्वासवस्यापि धर्मं जह्यां

हो इसका क्या कारण है ॥ ३८ ॥ हे भृगुनन्दन ! मैं बालक था उस समय तुमने ही मुझे चार प्रकारकी धनुषविद्या सिखायी थी इस कारण हे महाबाहु परशुरामजी ! मैं तो आपका शिष्य हूँ॥३९॥परशुराम क्रोधके मारे लालताल।आँखे करके मुझसे कहनेलगे कि-अरे कुरुवंशी महामति भीष्म ! तू मुझे गुरु जानता है परन्तु मुझे प्रसन्न करनेके लिये इस काशीराजकी कन्याको ग्रहण नहीं करता है ! यह ठीक नहीं है, यह काम किये विना मुझे शान्ति नहीं मिलसकती ॥४०-४१॥ हे महाबाहु भीष्म ! तूने इस कन्याका स्पर्श करके इसको स्त्रीधर्मसे भ्रष्टकरदिया है, इस कारण अब इसको इसका भर्त्ता स्वीकार नहीं करता है, इसलिये तू अब इस कन्याको ग्रहण करके अपने कुलका उद्धार कर ॥४२॥ इसप्रकार कहते हुए शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले परशुरामजीसे मैंने कहा, कि-हे ब्रह्मर्षि ! आप किस लिए परिश्रम करते हैं ? ऐसा तो कभी होगा ही नहीं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् परशुराम जी ! आपमें जो पहिली मेरी गुरुभक्ति है, उसकी ओरको देखकर मैं आपको प्रसन्न करता हूँ, मैं पहिले इस कन्याका त्याग कर चुका हूँ अब इसको मैं ग्रहण नहीं कर सकता ॥ ४४ ॥ कौनसा पुरुष नागिन की समान हत्यारी और परपुरुषके ऊपर प्रीति करने वाली स्त्रीको विना पहचाने एक दिनको भी अपने घरमें रख सकता है ? स्त्रियोंमें यह एक दोष होता है, कि-यह महासंहार करवा देती हैं ॥ ४५ ॥ हे महाव्रतधारी परशुरामजी ! मैं इन्द्रके भयसे भी अपने धर्मको त्यागने वाला नहीं हूँ इसलिए आपको प्रसन्न होना हो तो प्रसन्न हूजिए और

महाव्रत । क्रुद्धो वा यदि ते कार्यं तत् कुरुष्वा चिरम् ॥ ४६ ॥ अयञ्चापि विशुद्धात्मन् पुराणे श्रूयते विभो । मरुत्तेन महाबुद्धे गीतः श्लोको महात्मना ॥ ४७ ॥ गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ ४८॥ स त्वं गुरुरिति प्रेम्णा मया सम्मानितो भृशम् । गुरुवृत्तिं न जानीषे तस्माद्योत्स्यामि वै त्वया ॥ ४९ ॥ गुरुं न हन्यां समरे ब्राह्मणं च विशेषतः । विशेषतस्तपोवृद्धमेवं क्षान्तं मया तव ॥ ५०॥ उद्यतेषुमथो दृष्ट्वा ब्राह्मणं क्षत्रबन्धुवत् । यो हन्यात् समरे क्रुद्धं युध्यन्तमपलायिनम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्महत्या न तस्य स्यादिति धर्मेषु निश्चयः । क्षत्रियाणां स्थितो धर्मे क्षत्रियोऽस्मि तपोधन ॥ ५२ ॥ यो यथा वर्त्तते यस्मिंस्तस्मिन्नेव प्रवर्त्तयन् । नाधर्मं समवाप्नोति न चाश्रेयश्च विन्दति ॥ ५३ ॥ अर्थे वा यदि वा धर्मे समर्थो देशकालवित् । अर्थसंशयमापन्नः श्रेयान्निःसंशयो

कोप करना हो तो कुपित होजाइये आपको जो कुछ भी करना हो भले ही करिये विलम्ब न लगाइये ॥४६ ॥ हे महापवित्र मनवाले परम बुद्धिमान् परशुरामजी ! महात्मा मरुत्त नामके देवताने एक श्लोक कहा है, वह श्लोक पुराणोंमें इस प्रकार सुननेमें आता है ॥ ४७ ॥ (उसका तात्पर्य है, कि-) यदि गुरु भी घमण्डी, क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए इस बातको न जाननेवाला और उल्टे मार्गसे चलाने वाला हो तो ऐसे गुरुका भी त्याग देना शास्त्रमें कहा है ४८ आप मेरे गुरु लगते हैं इसलिए मैंने प्रेमके साथ आपका अच्छे प्रकार से सन्मान किया है तो भी तुम गुरुओंकेसा वर्त्ताव करना नहीं जानते इसलिए मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा ४९ मैं समरमें गुरुको और विशेष कर ब्राह्मणको नहीं मारता हूँ तथा जो तपोवृद्ध हो उसको तो और भी विशेष कर नहीं मारता हूँ इसकारण ही मैं अब तक क्षमा कररहा था ५० और यदि नीच क्षत्रियकी समान ब्राह्मण भी हथियार उठाकर लड़नेको आवें और मेरे सामनेसे भाग न जाय किन्तु क्रोध करने लगे तो उसको मैं रणभूमिमें विना मारे नहीं छोड़ता हूँ ५१ ऐसेको मारने से मारनेवालेको ब्रह्महत्या नहीं लगती है यह शास्त्रका निश्चय है, हे तपोधन ! मैं क्षत्रिय हूँ और क्षत्रियके धर्मके अनुकूल ही वर्त्ताव करता हूँ ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य जिसके साथ जैसा वर्त्ताव करता हो उसके साथ तैसा ही वर्त्ताव करनेसे अधर्म नहीं लगता है तथा उसका अमङ्गल भी नहीं होता है ॥ ५३ ॥ धर्मका और नीतिका विचार

नरः ॥ ५४ ॥ यस्मात् संशयितेऽप्यर्थेऽयथान्यायं प्रवर्त्तसे। तस्माद्योत्स्यामि सहितस्त्वया राम महाहवे ॥ ५५ ॥ पश्य मे बाहुवीर्यं च विक्रमं चातिमानुषम् । एवं गतेऽपि तु मया यच्छक्यं भृगुनन्दन ॥ ५६ ॥ तत् करिष्ये कुरुक्षेत्रे योत्स्ये विप्र त्वया सह । द्वन्द्वे राम यथेष्टं मे सज्जो भव महाद्युते ॥ ५७ ॥ तत्र त्वं निहतो राम मया शरशतार्दितः । प्राप्स्यसे निर्जितांल्लोकान् शस्त्रपूतो महारणे ॥५८॥ स गच्छ विनिवर्त्तस्व कुरुक्षेत्रं रणप्रियम् । तत्रैष्यामि महाबाहो युद्धाय त्वां तपोधन ॥ ५९ ॥ अपि यत्र त्वया राम कृतं शौचं पुरा पितुः । तत्राहमपि हत्वा त्वां शौचं कर्त्तास्मि भार्गव ॥ ६० ॥ तत्र राम समागच्छ त्वरितं युद्धदुर्मद। व्यपनेष्यामि ते दर्पं पौराणं ब्राह्मण ध्रुवम्६१

करनेमें समर्थ पुरुषको तथा देश कालके जानने वाले पुरुषको धर्मके विषयमें अथवा अर्थके विषयमें सन्देह उत्पन्न होय तो तो वह कार्यसाधन कभी नहीं कर सकता है, जो निःसंशयरूप से धर्मानुष्ठान कर सके उसको ही श्रेष्ठ जानो ॥५४॥ तुम्हें इस विषय में सन्देह था तो भी तुम अन्यायका वर्ताव करते हो, इस कारण हे राम ! मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा ॥ ५५॥ तुम मेरी भुजाकी वीरता और अमानुषी पराक्रमको देखो, हे भृगुनन्दन ! मैं ऐसी दशामें हूँ तो भी मुझसे जो कुछ होसकेगा वह कुरुक्षेत्रमें करके दिखाऊँगा, हे विप्र ! मैं तुम्हारे साथ युद्ध करनेको तयार हूँ, इसलिए हे परमकान्ति वाले राम ! तुम मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करनेको इच्छानुसार तयार हो जाओ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे राम ! तुम रणभूमिमें मेरे सैकड़ों बाणोंसे विधकर पवित्र होजाओगे और रणभूमिमें मरकर जीते हुए देवलोक को पाओगे ॥ ५८ ॥ हे संग्रामके प्रेमी महाबाहु तपोधन राम ! अब तुम लौट जाओ और कुरुक्षेत्रमें आना, मैं भी तुम्हारे साथ लड़नेको कुरुक्षेत्रमें आऊँगा ॥ ५९॥ हे भृगुवंशी परशुराम ! तुमने पहिले जिस कुरुक्षेत्रमें क्षत्रियोंके रुधिरसे अपने पिताको अञ्जलि देकर प्रसन्न करते हुए शुद्धिके लिये स्नान किया था, उस ही प्रकार मैं भी अपने गुरुरूप आपको मारकर आपके रुधिरसे क्षत्रियोंको तृप्त करूँगा और दशरात्रिके बाद शुद्ध होऊँगा, क्योंकि-पिता और गुरुके मरणमें पुत्र वा शिष्य दश दिन बीतने पर शुद्ध होता है ॥ ६०॥ इसलिए हे युद्धदुर्मद राम ! तुम विलम्ब न करके युद्ध करनेको आना, तुम नामके ही ब्राह्मण हो, इसकारण मैं तुम्हारा पुराना घमण्ड दूर करूँगा ॥६१॥

यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिवत्सरे। निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु ॥ ६२ ॥ न तदा जातवान् भीष्मः क्षत्रियो वापि मद्विधः। पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया ॥ ६३ ॥ यस्ते युद्धमयं दर्पं कामञ्च व्यपनाशयेत्। सोऽहं जातो महाबाहो भीष्मः परपुरञ्जयः। व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः ॥ ६४ ॥ भीष्म उवाच। ततो मामब्रवीद्रामः प्रहसन्निव भारत। दिष्ट्या भीष्म मया सार्धं योद्धुमिच्छसि सङ्गरे ॥ ६५ ॥ अयं गच्छामि कौरव्य कुरुक्षेत्रं त्वया सह। भाषितं ते करिष्यामि तत्रागच्छ परन्तप ॥ ६६ ॥ तत्र त्वां निहतं माता मया शरशताचितम्। जाह्नवी पश्यतां भीष्म गृध्रकङ्कबलाशनम् ॥ ६७ ॥ कृपणं त्वामभिप्रेक्ष्य सिद्धचारणसेविता। मया विनिहतं देवी रोदतामद्य पार्थिव ॥ ६८ ॥ अतदर्हा महाभागा भगीरथसुतानघा। या त्वामजीजनन्मन्दं युद्धकामुकमातुरम् ॥ ६९ ॥ एहि गच्छ

हे परशुरामजी! आप बहुत दिनोंसे अपनी प्रशंसा बघारा करते हैं कि-मैंने अकेले ही इस जगत्में बहुतसे क्षत्रियोंका नाश किया है, उसका उत्तर मैं आपको देता हूँ, सुनिए ॥ ६२ ॥ उस समय यह भीष्म अथवा मुझसा कोई क्षत्रिय उत्पन्न नहीं हुआ था और आपने भी तिनुकोंके ऊपर पराक्रम करके उनको जला डाला था ॥६३॥ परन्तु हे महाबाहु! आपके युद्ध करनेके घमण्डका और युद्धकी इच्छाका नाश करनेवाला तथा शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाला भीष्म अब ही जन्मा है, वह अब युद्धमें तुम्हारे घमण्डको उतार देगा, इसमें तुम जरा भी सन्देह न करना ॥ ६४॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे भरतवंशी राजा दुर्योधन! फिर परशुरामजी हँसते हुए मुझसे कहने लगे, कि-हे भीष्म! बड़े ही आनन्दकी बात है जो तू मेरे साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ६५ ॥ हे कुरुवंशी शत्रुतापन! मैं भी तेरे साथ कुरुक्षेत्रमें युद्ध करूँगा और तेरे कहनेके अनुसार ही वर्त्ताव करूँगा, तू कुरुक्षेत्रमें आना ॥ ६६ ॥ हे भीष्म! तहाँ मैं सैंकड़ों बाण मारकर तुझे मारडालूँगा और गिद्ध, कङ्क तथा कौए तेरे शरीरको खायँगे, इस बातको तेरी माता गङ्गादेवी देखेगी ॥ ६७ ॥ हे राजन्! सिद्ध और चारण जिसकी सेवा करते हैं ऐसी गङ्गादेवी मेरे हाथसे मरणको प्राप्त हुए तुझ कृपणको देखकर आज भले ही रोवे ।६८। निर्दोष महाभागा भगीरथकी पुत्री गङ्गादेवीने तुझ सरीखे युद्धकी इच्छा रखनेवाले मूर्ख और उतावले पुत्रको उत्पन्न किया है, इस कारण वह रोनेके योग्य न

मया भीष्म युद्धकामुक दुर्मद । गृहाण सर्वं कौरव्य रथादि भरतर्षभ ७० इति ब्रुवाणं तमहं रामं परपुरञ्जयम् । प्रणम्य शिरसा राममेवमस्त्वित्यथाब्रुवम् ॥ ७१ ॥ एवमुक्त्वा ययौ रामः कुरुक्षेत्रं युयुत्सया । प्रविश्य नगरं चाहं सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥ ७२ ॥ ततः कृतस्वस्त्ययनो मात्रा च प्रतिनन्दितः । द्विजातीन् वाच्य पुण्याहं स्वस्ति चैव महाद्युते ॥ ७३ ॥ रथमास्थाय रुचिरं राजतं पाण्डुरैर्हयैः । सूपस्करं स्वधिष्ठानं वैयाघ्रपरिवारणम् ॥७४ ॥ उपपन्नं महाशस्त्रैः सर्वोपकरणान्वितम् । तत्कुलीनेन वीरेण हयशास्त्रविदा रणे ॥७५॥ युक्तं सूतेन शिष्टेन बहुशो दृष्टकर्मणा । दंशितः पाण्डुरेणाहं कवचेन वपुष्मता ॥ ७६ ॥ पांडुरं कार्मुकं गृह्य प्रायां भरतसत्तम। पांडुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि ७७ पांडुरैश्चापि व्यजनैर्वीज्यमानो नराधिप। शुक्लवासाः सितोष्णीषः सर्वशुक्लविभूषणः ॥७८॥ स्तूयमानो जयाशीर्भिर्निष्क्रम्य गजसाह्वयात् । कुरुक्षेत्रं रण-

होकर भी रोवेगी ।६९। इसके अनन्तर फिर परशुरामजीने मुझे पुकार कर कहा, कि–अरे मदमत्त भरतसत्तम भीष्म ! रथ आदि युद्धकी सब सामग्री लेकर कुरुक्षेत्रमें मेरे साथ चल ॥ ७० ॥ वैरियोंके नगर जीतने वाले परशुरामजीने इस प्रकार कहा तब मैंने उनको शिर झुका कर प्रणाम किया और कहदिया कि-बहुत अच्छा ॥ ७१ ॥ फिर युद्ध करने की इच्छासे परशुरामजी कुरुक्षेत्रमें गये और मैंने हस्तिनापुरमें जाकर यह समाचार सत्यवतीसे कहा ॥ ७२ ॥ हे परम कान्तिमान् राजन् ! मेरी माताने सुन कर कहा बहुत अच्छी बात है और मुझे आशीर्वाद दिया तदनन्तर मैंने ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन और स्वस्तिवाचन कराया ॥ ७३ ॥ फिर मैं चाँदीके एक मनोहर रथमें बैठा, उस रथमें स्वेत रङ्गके घोड़े जुते हुए थे, उसमें उत्तम प्रकारकी सब सामग्री भरी हुई थी, उसके ऊपर व्याघ्रकी खाल मढ़ी हुई थी ॥ ७४ ॥ बड़े बड़े शस्त्र और युद्धकी सब सामग्रियें उसमें भरी हुई थीं, कुलीन, वीर अश्वशास्त्रको जाननेवाला, रणमें सावधान रहने वाला शिर और अनेकों बार युद्धके कामोंको दृष्टिसे देखने वाला मेरा सारथी उस रथ पर हाँकनेको बैठा था, मैंने अपने शरीरपर स्वेत रङ्गका दृढ़ कवच पहर लिया था ॥ ७५-७६ ॥ और हे भरतसत्तम ! मैंने हाथमें भी स्वेत रङ्ग का ही धनुष लिया था और मेरे शिरपर छत्र भी स्वेत रङ्गका ही लगा हुआ था ॥ ७७ ॥ हे राजन् ! स्वेत रङ्गके चँवरोंसे मेरी हवा होरही थी मेरे वस्त्र स्वेत थे, पगड़ी स्वेत थी और सब गहने भी स्वेत ही थे ७८

क्षेत्रमुपायां भरतर्षभ ॥ ७९ ॥ ते हयाश्चोदितास्तेन सूतेन परमाहवे । अवहन्मां भृशं राजन् मनोमारुतरंहसः ॥ ८० ॥ गत्वाहन्तत् कुरुक्षेत्रं स च रामः प्रतापवान् । युद्धाय सहसा राजन् पराक्रांतो परस्परम् ॥ ८१ ॥ ततः संदर्शने तिष्ठन् रामस्यातितपस्विनः । प्रगृह्य शंखप्रवरं ततः प्राधमम् उत्तमम् ॥ ८२ ॥ ततस्तत्र द्विजा राजंस्तापसाश्च वनौकसः । अपश्यंत रणं दिव्यं देवाः सेन्द्रगणास्तदा ॥ ८३ ॥ ततो दिव्यानि माल्यानि प्रादुरासंस्ततस्ततः । वादित्राणि च दिव्यानि मेघवृन्दानि चैव ह ॥ ८४ ॥ ततस्ते तापसाः सर्वे भार्गवस्यानुयायिनः । प्रेक्षकाः समपद्यन्त परिवार्य रणाजिरम् ॥ ८५ ॥ ततो मामब्रवीद्देवी सर्वभूतहितैषिणी । मातास्वरूपिणी राजन् किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ८६ ॥ गत्वाहं जामदग्न्यन्तु प्रयाचिष्ये कुरूद्वह । भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति पुनः पुनः ॥ ८७ मा मैवं पुत्र निर्बन्धं कुरु विप्रेण पार्थिव । जामदग्न्येन समरे योद्धुमित्यवभर्त्सयत ॥ ८८ ॥ किन्न वै क्षत्रियहणो हरतुल्यपराक्रमः । विदितः

हे भरतसत्तम ! जिस समय मैं हस्तिनापुरमेंसे निकला तो सब लोग जयजयकार करके आशीर्वाद देते हुए मेरी स्तुति करने लगे और मैं हस्तिनापुरमेंसे रणक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें चला गया ॥ ७९ ॥ हे राजन् ! मेरे सारथिने ज्योंही घोड़ोंको रणभूमिकी ओरको हाँका कि-वह मन और पवनकी समान वेगसे मुझे लेकर कुरुक्षेत्रकी ओरको चल दिये ॥ ८० ॥ कुरुक्षेत्रमें पहुँच कर प्रतापी परशुराम और मैं दोनों जने युद्धके लिये आपसमें पराक्रम करनेलगे ॥ ८१ ॥ मैंने युद्ध करनेसे पहिले परशुरामके सामने रणमें खड़े होकर अपना बड़ा भारी शंख बजाया उस समय ब्राह्मण वनवासी तपस्वी देवता तथा इंद्र उस दिव्य युद्धको देखनेके लिये इकट्ठे हुए ८२ ॥ ८३ आकाशमेंसे दिव्य फूलोंकी वर्षा होनेलगी, दिव्य बाजे बजने लगे और मेघमण्डल गरजने लगे ॥ ८४ ॥ परशुरामके साथ जो तपस्वी आये थे वह सब रणभूमिको घेरकर देखनेको खड़े होगये ८५ हे राजन् ! तदनन्तर उस समय तहाँ सब प्राणियोंका हित चाहनेवाली गंगामाता मूर्त्तिमती होकर मेरे पास आयी उसने मुझसे कहा, कि— हे बेटा ! तू यह क्या करना चाहता है ? ॥ ८६ ॥ हे कुरुवंशी ! मैं जमदग्निके पुत्रके पास जाकर उससे बारम्बार याचना करूँगी कि—तुम अपने शिष्य भीष्मके साथ युद्ध न करो ॥ ८७ ॥ हे पुत्र ! तू ब्राह्मण परशुरामके साथ युद्ध करनेकी हठ मत करे, ऐसा कह कर उसने मुझे ललकारा ॥ ८८ ॥ और मुझसे कहा, कि-हे बेटा ! परशुराम क्षत्रियोंके

पुत्र रामस्ते यतस्त्वं योद्धुमिच्छसि ॥८९॥ ततोऽहमब्रुवं देवीमभिवाद्य कृताञ्जलिः। सर्वं तद्भरतश्रेष्ठ यथावृत्तं स्वयम्वरे ॥ ९० ॥ यथा च रामो राजेंद्र मया पूर्वं प्रचोदितः। काशिराजसुतायाश्च यथा कर्म पुरातनम् ॥ ९१ ॥ ततः सा राममभ्येत्य जननी मे महानदी। मदर्थं तमृषिं वीक्ष्य क्षमयामास भार्गवम् ॥ ९२ ॥ भीष्मेण सह मा योत्सीः शिष्येणेति वचोऽब्रवीत। स च तामाह याचन्तीं भीष्ममेव निवर्त्तय। न च मे कुरुते काममित्यहन्तमुपागमम् ॥९३॥ वैशम्पायन उवाच। ततो गङ्गा सुतस्नेहाद् भीष्मं पुनरुपागमत्। न चास्याश्चाकरोद्वाक्यं क्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ॥ ९४ ॥ अथादृश्यत धर्मात्मा भृगुश्रेष्ठो महातपाः। आह्वयामास च तदा युद्धाय द्विजसत्तमः ॥ ९५॥ छ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि रामकुरुक्षेत्रप्रतावष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

भीष्म उवाच। तमहं स्मयन्निव रणे प्रतिभाषं व्यवस्थितम्।

संहार करने वाला और महादेवकी समान पराक्रमी है, क्या उसको तू पहिचानता नहीं है जो उसके साथ युद्ध करना चाहता है? ॥८९॥ तब मैंने दोनों हाथ जोड़ कर स्वयम्वरमें जैसा वृत्तांत हुआ था वह सब अपनी माता गंगादेवीको सुना दिया ॥ ९० ॥ तथा हे राजेंद्र! मैंने पहिले परशुरामजीसे जो कुछ कहा था तथा काशीराजकी पुत्रीकी जो कुछ पहिली करतूत थी वह सब सुनादी ॥ ९१ ॥ तब मेरी माता महानदी गंगादेवी भृगुकुलमें श्रेष्ठ परशुरामके पास गयी और उन ऋषिके दर्शन करके उनसे क्षमा मांगतीहुई कहने लगी, कि-तुम अपने शिष्य भीष्मके साथ युद्ध न करो, इस पर परशुरामने प्रार्थना करके मेरी मातासे कहा, कि-तुम भीष्मको ही रणभूमिसे लौटाओ, क्योंकि-वह मेरी इच्छाके अनुसार काम नहीं करता है, इस कारण ही मैं उसके साथ युद्ध करनेको आया हूँ ॥ ९२-९३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय! तब तो गङ्गा पुत्रके प्रेम वश फिर भीष्मके पास गयी, परन्तु क्रोधके मारे जिसकी आँखें व्याकुल होरही थीं ऐसे भीष्मने गंगाका कहना नहीं माना ॥ ९४ ॥ तब धर्मात्मा भृगुवंशमें श्रेष्ठ महातपस्वी परशुरामने रणभूमिमें दर्शन दिया और उससमय उन्होंने मुझे युद्धके लिये पुकारा ॥ ९५ ॥ एकसौ अठत्तरवाँ अध्याय समाप्त

भीष्मपिताने कहा, कि-हे राजन् दुर्योधन! तदनन्तर मैंने मुसकुरा कर रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीसे कहा, कि मैं भूमि पर

भूमिष्ठं नोत्सहे योद्धुं भवन्तं रथमास्थितः ॥ १ ॥ आरोह स्यन्दनं वीर कवचञ्च महाभुजम् । बधान समरे राम यदि योद्धुं मयेच्छसि ॥ २ ॥ ततो मामब्रवीद्रामः स्मयमानो रणाजिरे । रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत् । सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः । सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन ॥ ४ ॥ एवं ब्रुवाणो गान्धारे रामो मां सत्यविक्रमः । शरव्रातेन महता सर्वतः प्रत्यवारयत् ॥ ५ ॥ ततोऽपश्यं जामदग्न्यं रथमध्ये व्यवस्थितम् । सर्वायुधवरे श्रीमत्यद्भुतोपमदर्शने ६ मनसा विहिते पुण्ये विस्तीर्णे नगरोपमे । दिव्याश्वयुजि सन्नद्धे काञ्चनेन विभूषिते ॥ ७ ॥ कवचेन महाबाहो सोमार्ककृतलक्ष्मणा । धनुर्धरो बद्धतूणो बद्धगोधांगुलित्रवान् ॥ ८ ॥ सारथ्यं कृतवांस्तत्र युयुत्सोरकृतव्रणः । सखा वेदविदत्यन्तं दयितो भार्गवस्य ह ॥ ९ ॥ आह्वयानः

पैदल खड़ेहुए आपके साथ रथमें बैठकर युद्ध करना नहीं चाहता ।१। इसलिये हे महाबाहु वीर राम ! यदि तुम्हें मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा हो तो शरीर पर कवच धारण करो और रथ पर सवार हो जाओ ॥ २ ॥ परन्तु परशुरामजीने भी मुसकुरा कर रणभूमिमें मुझसे कहा, कि-हे भीष्म ! पृथिवी ही मेरा रथ है, वेद मेरे उत्तम घोड़े हैं ३ पवन मेरा सारथी है और वेदमाता गायत्री तथा सरस्वती सावित्री ही मेरा कवच है, हे कुरुनन्दन ! मैं उनसे ही शरीरको ढककर तेरे साथ रणमें लडूँगा ॥ ४ ॥ हे गांधारीके पुत्र ! इसप्रकार मुझसे कहकर सच्चा पराक्रम करने वाले परशुरामजीने बाणोंकी बड़ीभारी वर्षा बरसाकर मुझे चारों ओरसे ढकदिया ॥५॥ और मैंने उसी समय परशुरामजीको रथमें बैठेहुए देखा, इस रथको परशुरामजीने अपने मनमेंसे उत्पन्न किया था उनमें सब उत्तम शस्त्र भरेहुए थे और वह रथ देखनेमें अनुपम तथा अद्भुत था, यह रथ पवित्र, बड़ा लम्बा, नगरके आकारका, दिव्य घोड़ोंसे जुता, चारों ओरसे चमड़ेसे मढ़ा और सोनेसे सजाया हुआ था ॥ ६॥ ॥ हे महाबाहु राजन् ! इस समय परशुरामजी शरीर पर चन्द्रमा तथा सूर्यके विचित्र चिन्हों वाले कवच को धारण कियेहुए थे, हाथमें धनुष लिये और पीठपर दो भाथे बाँधे हुए थे, हाथोंमें गोहके चमड़ेके मोजे पहर रहे थे और उँगलियोंमें लोहे की कड़ियें पहररहे थे ॥८॥ युद्धकी इच्छा वाले परशुरामके सारथी का काम वेदवेत्ता अकृतव्रण कररहा था, वह परशुरामका परमप्यारा और वेदवेत्ता शिष्य था९तदनन्तर परशुराम रणमें मेरे मनको प्रसन्न

स मां युद्धे मनो हर्षयतीव मे । पुनः पुनरभिक्रोशन्नभियाहीति भार्गवः ॥१०॥ तमादित्यमिवोद्यन्तमनाधृष्यं महाबलम् । क्षत्रियान्तकरं राममेकमेकः समासदम् ॥ ११ ॥ ततोऽहं बाणपातेषु त्रिषु वाहान्निगृह्य वै । अवतीर्य धनुर्न्यस्य पदातिरृषिसत्तमम् । अभ्यागच्छं तदा राममर्चिष्यन् द्विजसत्तमम् । अभिवाद्य चैनं विधिवदब्रुवं वाक्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥ योत्स्ये त्वया रणे राम सदृशेनाधिकेन वा । गुरुणा धर्मशीलेन जयमाशास्व मे विभो ॥१४ ॥ राम उवाच । एवमेतत् कुरुश्रेष्ठ कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता । धर्मो ह्येष महाबाहो विशिष्टैः सह युध्यताम् ॥ १५ ॥ शपेयं त्वां न चेदेवमागच्छेथा विशाम्पते । युध्यस्व त्वं रणे यत्तो धैर्य्यमालम्ब्य कौरव ॥१६॥ न तु ते जयमाशासे त्वां विजेतुमहं स्थितः । गच्छ युद्धस्व धर्मेण भीतोऽस्मि चरितेन ते ॥ १७ ॥ ततोऽहं तं नमस्कृत्य रथमारुह्य सत्वरः । प्राध्मापयं रणे शंखं पुनर्हेम-

---

करते हुएसे मुझे बुलाने लगे और बार २ चिल्लाकर कहने लगे, कि-आओ सामने आओ ॥ १० ॥ उदय होते हुए सूर्यकी समान तेजस्वी, जिनका तिरस्कार कोई नहीं करसकता ऐसे महाबलवान् और क्षत्रियों का नाश करनेवाले परशुरामजीके सामने लड़नेको मैं अकेला ही गया था ॥ ११ ॥ पहिले ही परशुरामने मेरे तीन बाण मारे तब मैं अपने घोड़ोंको आगे बढ़ानेसे रोककर रथमेंसे नीचे उतर पड़ा अपने धनुष को नीचे डाल दिया और पैदल ही ऋषिवर परशुरामजीके पास गया और उन उत्तम ब्राह्मण परशुरामजीकी पूजा करनेके लिये शास्त्र में कही हुई रीतिसे उनको प्रणाम करके उत्तम वचनोंसे कहने लगा, कि-॥ १२-१३ ॥ हे व्यापक राम ! तुम मेरी समान हो अथवा मुझसे अधिक हो तो भी धर्म पर श्रद्धा रखने वाले गुरुरूप आपके साथ रण में मैं युद्ध करता हूँ उसमें मेरी विजय हो ऐसा आशीर्वाद मुझे दीजिये ॥१४॥ परशुरामने कहा, कि-हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! कल्याण चाहने वाले पुरुषको इसप्रकार ही विनय करना चाहिये तथा हे महाबाहु भीष्म ! गुरुजनोंके साथ युद्ध करने वालोंका यही धर्म है ॥ १५ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! तू धीरज धरे हुए सावधान होकर रणमें युद्ध करना हे राजन् ! यदि तू मेरे पास नहीं आया होता तो मैं तुझे शाप देदेता ॥ १६ ॥ तो भी मैं तुझे आशीर्वाद नहीं देसकता, अब तू जा और मेरे साथ युद्ध कर, मैं तेरे बर्तावसे प्रसन्न होगया हूँ ॥ १७ ॥ तदनन्तर मैं परशुरामजीको प्रणाम करके तुरन्त अपने रथ पर चढ़

परिष्कृतम् ॥ १८ ॥ ततो युद्धं समभवन्मम तस्य च भारत । दिवसान् सुबहून् राजन् परस्परजिगीषया ॥ १९ ॥ स मे तस्मिन् रणे पूर्वं प्राहरत् कङ्कपत्रिभिः । षष्ट्या शतैश्च नवभिः शराणां नतपर्वणाम् ॥२०॥ चत्वारस्तेन मे वाहाः सूतश्चैव विशाम्पते । प्रतिरुद्धास्तथैवाहं समरे दंशितः स्थितः ॥ २० ॥ नमस्कृत्य च देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः । तमहं स्मयन्निव रणे प्रत्यभाषं व्यवस्थितम् ॥२२॥ आचार्यता मानिता मे निर्मर्यादे ह्यपि त्वयि । भूयश्च शृणु मे ब्रह्मन् सम्पदं धर्मसंग्रहे ।२३। ये ते वेदाः शरीरस्था ब्राह्मण्यं यच्च ते महत् । तपश्च ते महत्तप्तं न तेभ्यः प्रहराम्यहम् ॥ २४ ॥ प्रहारे क्षत्रधर्मस्य यं त्वं राम समाश्रितः । ब्राह्मणः क्षत्रियत्वं हि याति शस्त्रसमुद्यमात् ॥ २५ ॥ पश्य मे धनुषो वीर्यं पश्य बाह्वोर्बलं मम । एष ते कार्मुकं वीर छिनद्मि निशितेषुणा२६ तस्याहं निशितं भल्लं चिक्षिपे भरतर्षभ । तेनास्य धनुषः कोटिं छित्त्वा

बैठा और सुवर्णसे जड़े हुए अपने शंखको मैंने रणभूमिमें फिर बजाया ॥ १८ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उनका और मेरा बहुत दिनों तक आपसमें विजयकी इच्छासे युद्ध होता रहा था इस युद्धमें पहिले परशुरामने मेरे ऊपर नमे हुए जोड़वाले और कंक पक्षियोंके पर लगे हुए एकसौ उनहत्तर (१६९) बाण मारे थे ॥ २० ॥ हे राजन् ! उन बाणोंसे मेरे चारों घोडे और सारथि ढकगये थे मैं तो भी कवच पहरकर रणमें खड़ा ही रहा॥२१॥फिर मैंने देवताओंको तथा बाणोंको नमस्कार करके रणमें खड़ेहुए परशुरामजीसे ज़रा एक हँसकर कहा, कि-॥ २२ ॥ हे ब्राह्मण देवता ! यद्यपि आपने मर्यादाका भङ्ग किया है तो भी मैंने आपके आचार्यपनेकी प्रतिष्ठाकी है, धर्मका संग्रह करनेमें मेरी जो सम्पत्ति है उसको आप फिर सुन लीजिये ॥ २३ ॥ आपके शरीरमें जो वेद रहते हैं आपमें जो बड़ाभारी ब्राह्मणत्व है तथा आपने जो बड़ाभारी तप किया है उस सबके ऊपर मैं प्रहार नहीं करता हूँ ॥ २४ ॥ परन्तु हे राम ! तुमने क्षत्रियके धर्मको स्वीकार किया है उस क्षत्रियधर्मके ऊपर ही मैं प्रहार करता हूँ क्योंकि- ब्राह्मण शस्त्रधारण करनेसे क्षत्रियपनेको पाता है ॥ २५ ॥ अब तुम मेरे धनुषका पराक्रम देखो और मेरी भुजाओंका बल भी देखो हे वीर ! मैं तेज़ कियेहुए बाणसे तुम्हारे धनुषको अभी काटे डालता हूँ।२६। हे भरतसत्तम ! ऐसा कहकर मैंने उनके ऊपर तेज़ कियाहुआ भालेकी जातिका एक ही बाण मार उनके धनुषकी कोटिको फाड़कर

भूमाववपातयम् ।२७। तथैव च पृषत्कानां शतानि नतपर्वणाम् । चिक्षेप कंकपत्राणां जामदग्न्यरथं प्रति ॥२८॥ काये विषक्तास्तु तदा वायुना समुदीरिताः । चेलुः क्षरन्तो रुधिरं नागा इव च ते शराः ॥ २९ ॥ क्षतजोक्षितसर्वाङ्गः क्षरन् स रुधिरं रणे । बभौ रामस्तदा राजन् मेरुर्धातुमिवोत्सृजन् ॥३०॥हेमान्तान्तेऽशोक इव रक्तस्तबकमण्डितः। बभौ रामस्तदा राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ ३१ ॥ ततोऽन्यद्धनुरादाय रामः क्रोधसमन्वितः। हेमपुंखान् सुनिशितान् शरांस्तान् हि ववर्ष सः ॥ ३२ ॥ ते समासाद्य मां रौद्रा बहुधा मर्मभेदिनः। अकम्पयन् महावेगाः सर्पानलविषोपमाः ॥ ३३ ॥ तमहं समवष्टभ्य पुनरात्मानमाहवे । शतसंख्यैः शरैः क्रुद्धस्तदा राममवाकिरम् ॥ ३४ ॥ स तैरग्न्यर्कसंकाशैः शरैराशीविषोपमैः । शितैरभ्यर्दितो रामो मन्दचेता इवाभवत् ॥ ३५ ॥ ततोऽहं कृपयाविष्टो विष्टभ्यात्मानमात्मना । धिग्

पृथिवी पर गिरा दिया ।२७। तथा नमे हुए पर्व वाले और कंकपक्षीके परोंवाले सौ बाण उनके रथपर मारे ।२८। वह बाण उस समय उनके शरीरमें घुस गये और पवनसे हिलकर साँपोंकी समान लोहू टपकाते २ वहाँसे पीछेको लौट आये ॥२९॥ इस समय रणभूमिमें परशुरामजीका सब शरीर रुधिरसे भरगया था तथा उनके शरीरमें लोहू टपकने लगा था, इसकारण हे राजन् ! उस समय परशुराम गेरु आदि लाल रङ्गकी धातुको टपकाने वाले मेरुपर्वतकी समान शोभा पारहे थे ॥३०॥और हे राजन् ! उस समय लोहूलुहान हुए परशुराम शिशिर ऋतुमें लाल २ गुच्छोंसे शोभायमान अशोकके वृक्षके समान शोभा पारहे थे और वसन्त ऋतुमें प्रफुल्लित हुए ढाकके वृक्षकी समान शोभा पारहे थे ॥३१॥ तदनन्तर परशुरामजीने क्रोधमें भरकर दूसरा धनुष लिया और उससे सुवर्णके पंखवाले तथा बहुत ही तेज किये हुए अनेकों बाणोंकी मेरे ऊपर वर्षा करनी आरम्भ करदी ॥ ३२ ॥ वह बाण बड़े वेग वाले बहुधा मर्मस्थानोंको फोड़ने वाले तथा साँप आग और विषकी समान भयंकर थे, वह बाण मेरी ओरको आकर मुझे कम्पायमान करने लगे ॥ ३३॥ इस समय मैंने रणमें अपने शरीरको धीरजसे टिका रक्खा था और मैं भी क्रोधमें भर कर परशुरामजीके ऊपर सैंकड़ों बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३४॥ अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी और विषधर सर्पोंकी समान विषैले और सानपर धरे हुए उन बाणोंकी मारसे पीड़ा पाकर परशुरामजी मनमें

[ध]िगस्त्वथ युधं गुरुं क्षत्रधर्मं च भारत॥ ३६ ॥ असकृच्चाब्रुवं राजन् [श]ोकवेगपरिप्लुतः । अहोबत कृतं पापं मयेदं क्षत्रधर्मणा ॥३७॥ गुरु-र्द्विजातिर्धर्मात्मा यदेवं पीडितः शरैः । ततो न प्राहरं भूयो जामद-ग्न्याय भारत ॥ ३८ ॥ अथावताप्य पृथिवीं पूषा दिवससंक्षये । जगा-मास्तं सहस्रांशुस्ततो युद्धमुपारमत् ॥ ३९ ॥
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मरामयुद्धे भीष्मपश्चात्ताप एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

भीष्म उवाच । आत्मनस्तु ततः सूतो हयानां च विशाम्पते । मम चापनयामास शल्यान् कुशलसम्मतः ॥ १ ॥ स्नातोपवृत्तैस्तुरगैर्लब्ध-[त]ोयैरविह्वलैः । प्रभाते चोदिते सूर्ये ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥ दृष्ट्वा मां [त]ूर्णमायान्तं दंशितं स्यन्दने स्थितम् । अकरोद्रथमत्यर्थं रामः सज्जं

[व्]याकुलसे होगए ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! तब तो मेरे मनमें दया आगयी और मैंने अपने मनको धीरजसे स्थिर करके कहा, कि—युद्ध और क्षत्रियोंका धर्म इन दोनोंको धिक्कार है ॥ ३६ ॥ फिर हे राजन् ! शोकके वेगसे भरा हुआ मैं बारम्बार कहने लगा, कि-ओः ! बड़े दुःखकी बात है क्षत्रियधर्मका पालन करनेवाले मैंने यह,बड़ा भारी पाप किया है कि-॥३७॥ जो गुरु ! ब्राह्मण !! तिस पर भी धर्मात्मा!!! पुरुषको बाणोंसे ऐसी पीड़ा दी है? हे भरतवंशी ! ऐसा विचार आने पर फिर मैंने जमदग्निके पुत्र रामके ऊपर बाण नहीं मारे॥३८॥ लड़ते लड़ते सायंकाल होगया, सूर्यदेव पृथिवीको तपाकर अस्ताचलको चले गये तब हमारा युद्ध भी बन्द होगया ॥ ३९॥ एकसौ उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७९ ॥

भीष्म पितामह बोले, कि-हे राजन् ! फिर चतुर पुरुषोंमें प्रतिष्ठा पाये हुए मेरे सारथीने अपने शरीरमें,घोड़ोंके शरीरमें और मेरे शरीर में घुसे हुए बाणोंको निकाला ॥ १ ॥ और घोड़ोंको भी रथमेंसे खोल दिया तब वह अच्छे प्रकारसे भूमिमें लोटने लगे फिर उनको जलसे स्नान कराया गया तथा वह कुछ जल पीकर सावधान हुए दूसरे दिन प्रभातके समय सूर्योदय होते ही फिर घोड़ोंको रथमें जोड़कर मैं रणभूमिमें पहुँचा और तहाँ हम दोनोंमें युद्ध होने लगा ॥ २ ॥ मुझे शरीर पर कवच धारण कर रथमें बैठ शीघ्रतासे रणभूमिमें आते हुए देखकर प्रतापी परशुरामने भी तुरन्त ही अपने रथको तयार किया और सामने आगये ॥ ३ ॥ तब तो युद्धकी इच्छावाले भृगुनन्दन

प्रतापवान् ॥ ३ ॥ ततोऽहं राममायान्तं दृष्ट्वा समरकांक्षिणम् । धनुःश्रेष्ठं समुत्सृज्य सहसावतरत् रथात् ॥ ४ ॥ अभिवाद्य तथैवाहं रथमारुह्य भारत । युयुत्सुर्जामदग्न्यस्य प्रमुखे वीतभीः स्थितः ॥ ५ ॥ ततोऽहं शरवर्षेण महता समवाकिरम् । स च मां शरवर्षेण वर्षन्तं समवाकिरत् ॥ ६ ॥ संक्रुद्धो जामदग्न्यस्तु पुनरेव सुतेजितान् । संप्रैषीन्मे शरान् घोरान् दीप्तास्यानुरगानिव ॥७॥ ततोऽहं निशितैर्भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः । अच्छिदं सहसा राजन्नन्तरिक्षे पुनः पुनः ॥८॥ ततस्त्वस्त्राणि दिव्यानि जामदग्न्यः प्रतापवान् । मयि प्रयोजयामास तान्यहं प्रत्यषेधयम् ९ अस्त्रैरेव महाबाहो चिकीर्षन्नधिकां क्रियाम् । ततो दिवि महान्नादः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥ १० ॥ ततोऽहमस्त्रं वायव्यं जामदग्न्ये प्रयुक्तवान् । प्रत्याजघ्ने च तद्रामो गुह्यकास्त्रेण भारत ॥ ११ ॥ ततोऽहमस्त्रमाग्नेयमनुमन्त्र्य प्रयुक्तवान् । वारुणेनैव तद्रामो वारयामास मे विभुः ॥ १२ ॥ एवमस्त्राणि दिव्यानि रामस्या-

---

आतेहुए देखते ही मैं उत्तम धनुषको नीचे डाल एकायकी रथमेंसे उतर पड़ा ॥ ४ ॥ और हे भरतवंशी दुर्योधन ! परशुरामजीको प्रणाम करके फिर तैसे ही अपने रथ पर चढ़ बैठा, मैं लड़नेकी इच्छासे निर्भय होकर परशुरामजीके सामने खड़ा रहा था ॥ ५ ॥ फिर मैं उन रामके ऊपर बाणोंकी बड़ीभारी वर्षा करनेलगा और वह भी बाण बरसाने वाले मेरे ऊपर बहुतसे बाण बरसाने लगे ॥६॥ परशुरामजी उस समय क्रोधमें भरगये, उन्होंने फिर भी बड़े ही तेज, भयानक और सर्पकी समान धकधकाते हुए मुखवाले बाण मेरे ऊपर छोड़ना आरम्भ करदिये ॥ ७ ॥ और हे राजन् ! मैंने भी तेज किये हुए भाले मारकर आकाशमें ही उन उड़ते हुए सैंकड़ों और सहस्रों बाणोंके बारंबार टुकड़े करडाले ॥ ८ ॥ तब प्रतापी रामने मेरे ऊपर दूसरे दिव्य अस्त्र फैंकना आरम्भ किये मैंने सामनेसे बाण मारकर उनको भी रोक दिया ॥ ९ ॥ और हे महाबाहु राजन् ! मैंने भी अपनी बाणोंकी बड़ी भारी क्रिया दिखायी, उस समय आकाशमें चारों ओरसे बड़ी गर्जना होनेलगी ॥ १० ॥ हे भरतवंशी ! फिर मैंने परशुरामके ऊपर वायव्य अस्त्र छोड़ा तो उन्होंने गुह्यकास्त्र छोड़कर उसका नाश कर दिया ॥ ११ ॥ तब मैंने मन्त्र पढ़कर आग्नेयास्त्र छोड़ा उसका वारण विभु रामने वरुण देवताके अस्त्रसे करदिया ॥ १२ ॥ इसप्रकार मैंने परशुरामके दिव्यअस्त्रोंको रोका था और शत्रुओंका दमन करनेवाले

हमवारयम् । रामश्च मम तेजस्वी दिव्यास्त्रविदरिन्दमः ॥ १३ ॥ ततो मां सव्यतो राजन् रामः कुर्वन् द्विजोत्तमः । उरस्यविध्यत् संक्रुद्धो जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥१४॥ ततोऽहं भरतश्रेष्ठ सन्न्यपीदं रथोत्तमे । ततो मां कश्मलाविष्टं सूतस्तूर्णमुदावहत् ।१५।ग्लायंतं भरतश्रेष्ठ रामबाणप्रपीडितम् । ततो मामपयान्तं वै भृशं विस्मचेतसम् ॥१६॥ रामस्यानुचरा हृष्टाः सर्वे दृष्ट्वा विचुक्रुशुः । अकृतव्रणप्रभृतयः काशिकन्या च भारत ॥ १७ ॥ ततस्तु लब्धसंज्ञोऽहं ज्ञात्वा सूतमथाब्रुवम् । याहि सूत यतो रामः सज्जोऽहं गतवेदनः ।१८। ततो मामवहत् सूतो हयैः परमशोभितैः । नृत्यद्भिरिव कौरव्य मारुतप्रतिमैर्गतौ १९ ततोऽहं राममासाद्य बाणवर्षैश्च कौरव । अवाकिरं सुसंरब्धः संरब्धञ्च जिगीषया ॥२०॥ तानापतत एवासौ रामो बाणानजिह्मगान् । बाणैरेवाच्छि-

तेजस्वी परशुरामने मेरे अस्त्रोंको रोका था ॥ १३ ॥ हे राजन् ! फिर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ प्रतापी परशुराम मेरे दाहिनी ओरको होकर निकले और उन्होंने कोपमें भरकर बाणसे मेरी छातीको बींध दिया ॥ १४ ॥ हे भरतसत्तम! उससे मुझे मूर्छा आगयी और मैं उत्तम रथमें नीचेको गिरपड़ा तब मेरा सारथी तुरन्त ही मेरे रथको रणभूमिमेंसे दूर ले गया ॥१५॥ हे भरतश्रेष्ठ ! मैं परशुरामके बाणके प्रहारसे पीड़ा पाकर मुरझा गया था और बाण गहरा घुसजानेके कारण मूर्छित होगया था तथा मेरा सारथी मुझे वहाँसे हटाकर लेगया था, यह देखकर हे राजन् ! अकृतव्रण आदि परशुरामके सेवक तथा काशीराजकी कन्या ये सब अपने मनमें बड़े ही प्रसन्न होकर कोलाहल मचाने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ थोड़ी देरमें जब मुझे चेतना हुई और सब बात को समझा तो मैंने सारथिसे कहा, कि—अरे सारथी ! अब मेरी पीड़ा दूर होगयी है और मैं तयार होगया हूँ, इसलिये जहाँ परशुराम हों वहाँ ही मुझे लेचल ॥ १८ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! जो चलने में पवनकी समान थे ऐसे नाचते हुएसे चलनेवाले परम शोभायमान घोड़ोंके द्वारा मेरा सारथी मुझे लेकर चल दिया ॥ १९ ॥ हे कुरुवंशी दुर्योधन ! तदनन्तर मैं परशुरामके सामने पहुँच गया और बड़े क्रोध में भरकर विजयकी इच्छासे क्रोधमें भरे हुए परशुरामके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा ॥२०॥ बस युद्धमें सीधे जानेवाले मेरे बाण ज्यों ज्यों उनकी ओरको जाने लगे त्यों२ परशुरामजी तुरन्त ताक २ कर तीन २ बाण मारने लगे और मेरे एक २ बाणके रणमें शीघ्रतासे तीन

मसूर्णमेकैकं त्रिमिराहवे ॥२१॥ ततस्ते मुदिताः सर्वे मम बाणाः सुसंशिताः। रामबाणैर्द्विधाच्छिन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२२॥ ततः पुनः शरं दीप्तं सुभद्रं कालसम्मितम्। असृजं जामदग्न्याय रामायाहं जिघांसया ॥२३॥ तेन त्वभिहतो गाढं बाणवेगवशंगतः। मुमोह समरे रामो भूमौ च निपपात ह ॥ २४ ॥ ततो हाहाकृतं सर्वं रामे भूतलमाश्रिते। जगत् भारत सम्विग्नं यथार्कपतने भवेत् ॥२५॥ तत एनं समुद्विग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः। तपोधनास्ते सहसा काश्या च कुरुनन्दन ॥ २६ ॥ तत एनं परिष्वज्य शनैराश्वासयंस्तदा। पाणिभिर्जलशीतैश्च जयाशीर्भिश्च कौरव ॥२७॥ ततः स विह्वलं वाक्यं राम उत्थाय चाब्रवीत्। तिष्ठ भीष्म हतोऽसीति बाणं सन्धाय कार्मुके ॥ २८ ॥ स मुक्तो न्यपसूर्ण सव्ये पार्श्वे महाहवे। येनाहं भृशमुद्विग्नो व्याघूर्णित इव द्रुमः२९ हत्वा हयांस्ततो रामः शीघ्रास्त्रेण महाहवे। अवाकिरन्मां विश्रब्धो बाणैस्तैर्लोमवाहिभिः ॥ ३० ॥ ततोऽहमपि शीघ्रास्त्रं समरप्रतिवार-

---

तीन टुकड़े करने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार परशुरामजीने मेरे सैंकड़ों और हजारों उत्तम बाणोंके दो २ टुकड़े कर डाले ।२२। फिर मैंने परशुरामजीको मारनेकी इच्छासे दमकता हुआ तेजदार और कालकी समान एक बाण उन जमदग्निकुमार रामके मारा ॥ २३ ॥ उस बाण के गहरे प्रहारसे परशुराम उसके वेगके वशमें हो रणमें मूर्छा खाकर अचेत होगये और भूमिपर ढहपड़े ॥२४॥ हे भरतवंशी राजन् ! जिस समय परशुरामजी ढहकर भूमि पर गिरे उस समय जैसे सूर्यके गिरने से सब जगत् घबड़ाहटमें पड़जाय तैसे ही सब लोग घबड़ाहटमें पड़ गये और हाहाकार करने लगे ॥२५॥ और हे कुरुनन्दन ! सब तपस्वी तथा काशीराजकी पुत्री भी घबड़ा गयी और सब परशुरामजीकी ओरको दौड़कर गये ॥२६॥ और उनको आलिंगन करके जलसे ठण्डे किये हुए हाथोंसे उनको धीरे २ सैंठाने लगे और विजयी होनेके लिये आशीर्वाद देने लगे ।२७॥ चेतनता आने पर परशुरामजीने खड़े होकर धनुष पर बाण चढ़ाया और विह्वल वाणीमें कहने लगे, कि-अरे भीष्म ! खड़ा रह मैं धनुष पर बाण चढ़ाकर तेरा नाश करता हूँ ॥ २८ ॥ तदनन्तर उन्होंने उस महासंग्राममें मेरे दाहिने कन्धे पर तुरन्त ही बाण मारा, उसके प्रहारसे मैं झोके खातेहुए वृक्षकी समान बड़ी घबड़ाहटमें पड़गया॥२९॥फिर परशुरामने बड़ी शीघ्रतासे अस्त्र छोड़कर मेरे घोड़ोंको मारडाला और धीरज धरकर ऊपर पंखोंसे

गम् । अत्रासृजं महाबाहो तेऽन्तराधिष्ठिताः शराः ॥ ३१ ॥ रामस्य मम चैवाशु व्योमावृत्य समन्ततः । न स्म सूर्य्यः प्रतपति शरजाल-समावृतः ॥ ३२ ॥ मातरिश्वा ततस्तस्मिन् मेघरुद्ध इवाभवत् । ततो वायोः प्रकम्पाच्च सूर्यस्य च मभस्तिभिः ॥३३॥ अभिघातप्रभावाच्च पावकः समजायत । ते शराः स्वसमुत्थेन प्रदीप्ताश्चित्रभानुना ॥३४॥ भूमौ सर्वे तदा राजन् भस्मभूताः प्रपेदिरे । तदा शतसहस्राणि प्रयुता-न्यर्बुदानि च ॥३५॥ अयुतान्यथ खर्वाणि निखर्वाणि च कौरव । रामः शराणां संक्रुद्धो मयि तूर्णं न्यपातयत् ॥३६॥ ततोऽहं तानपि रणे शरै-राशीविषोपमैः । संच्छिद्य भूमौ नृपते पातयेयं नगानिव ॥ ३७ ॥ एवं तदभवद् युद्धं तदा भरतसत्तम । सन्ध्याकाले व्यतीते तु व्यपायात् स च मे गुरुः ॥ ३८ ॥ ॐ ॐ ॐ ॐ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मरामयुद्धे-ऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

भीष्म उवाच । समागतस्य रामेण पुनरेवातिदारुणम् । अन्येद्यु-

उड़कर आने वाले बाण छोड़े ॥३०॥ हे महाबाहु राजन् ! मैं भी परशु-रामजीकी ओरको युद्धको रोकनेवाले तथा शीघ्र गतिवाले बाण छोड़ने लगा और वह बाण आकाशमें ही रहगये ॥ ३१ ॥ इसप्रकार परशुरामके और मेरे बाणोंने चारों ओरसे आकाशको घेरलिया, बाणों के समूहसे ढक जानेके कारण पृथिवी पर सूर्यकी धूप पड़ना बन्द हो गयी ॥३२॥ आकाशमें चलनेवाला पवन भी मानो मेघमण्डलसे रुक गया हो इसप्रकार बाणोंके समूहसे रुकगया और पवनके काँपनेसे तथा सूर्यकी किरणोंके साथ बाणोंके टकरानेसे अग्नि उत्पन्न होगया और अपनेमेंसे उत्पन्न हुए अग्निके कारणसे वह बाण जलने लगे ।३३-३४। हे राजन् ! इसप्रकार लाखों करोड़ों और अब्जों जलते हुए बाण पृथिवी पर गिरने लगे ॥ ३५ ॥ फिर परशुरामजीने कोपमें भरकर अयुत, खर्व, निखर्व तथा असंख्यों बाणोंकी मेरे ऊपर वर्षा करना आरम्भ करदी ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! मैंने भी रणमें विषधर सर्पों की समान बाण मारकर पर्वतकी समान परशुरामके बाण काट कर पृथिवी पर गिरा दिये थे ।३७। हे भरतवंशश्रेष्ठ ! कुरुक्षेत्रमें इसप्रकार युद्ध हुआ था और मेरे गुरु परशुरामजी सायङ्कालके समय रणभूमिमें से चलेगये थे ॥ ३८ ॥ एकसौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८०॥

भीष्मजी कहते हैं, कि-हे भरतवंशश्रेष्ठ राजन् ! फिर दूसरे दिन भी

स्तुमुलं युद्धं तदा भरतसत्तम ॥ १ ॥ ततो दिव्यास्त्रविद्रूरो दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः । अयोजयत् स धर्मात्मा दिवसे दिवसे विभुः ॥२॥ तान्यहं तत् प्रतीघातैरस्त्रैरस्त्राणि भारत । व्यधमन्तुमुले युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् ॥ ३ ॥ अस्त्रैरस्त्रेषु बहुधा हतेष्वेव च भारत । अक्रुध्यत महातेजास्त्यक्तप्राणः स संयुगे ॥ ४ ॥ ततः शक्तिं प्राहिणोद् घोररूपामस्त्रे रुद्धे जामदग्न्यो महात्मा । कालोत्सृष्टां प्रज्वलितामिवोल्कां सन्दीप्ताग्रां तेजसा व्याप्य लोकम् ॥ ५ ॥ ततोऽहन्तामिषुभिर्दीप्यमानां समायान्तीमन्तकालार्कदीप्ताम् । छित्वा त्रिधा पातयामास भूमौ ततो ववौ पवनः पुण्यगन्धिः॥६॥ तस्यां छिन्नायां क्रोधदीप्तोऽथ रामः शक्तीर्घोराः प्राहिणोद् द्वादशान्याः । तासां रूपं भारत नोत शक्यं तेजस्वित्वाल्लाघवाच्चैव वक्तुम् ॥ ७ ॥ किन्त्वेवाहं विह्वलः सम्प्रदृश्य दिग्भ्यः सर्वास्ता महोल्का इवाग्नेः । नानारूपास्तेजसो-

---

परशुरामजीके साथ मेरा भेंटा हुआ और हम दोनोंमें महाभयंकर युद्ध होता रहा॥१॥ घोर तथा धर्मात्मा परशुरामजी दिव्य अस्त्रोंकी विद्या में प्रवीण थे वह दिन प्रतिदिन मेरे ऊपर अनेकों दिव्य अस्त्र छोड़ने लगे ॥ २ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! जिनको त्यागनेमें बड़ा ही कष्ट होता है ऐसे प्राणोंको भी कुछ न गिनकर मैंने तुमुल युद्धमें उनके सामने अस्त्रोंका प्रहार करके उनके अस्त्रोंको काटडाला था ॥३॥ हे भरतवंशी राजन् ! अस्त्र मारकर परशुरामके बड़े उत्तम अस्त्रोंको मैंने काटडाला तब महातेजस्वी राम बड़े ही कोपमें भरगए और प्राणोंकी बाजी लगाकर रणभूमिमें लड़नेलगे ॥४॥ जब उनके सब अस्त्र रुकगये तब उन महात्माने मेरे ऊपर महाभयंकर कालकी भेजी हुईसी अङ्गारे की समान धधकती हुई और अग्रभागमें दमकती हुई एक गदा फेंकी वह गदा अपने तेजसे सब जगत्में फैलकर मेरी ओरको आनेलगी ५ प्रातःकालके सूर्यकी समान प्रचण्ड प्रकाशवाली धधकती हुई वह गदा मेरी ओरको आने लगी तब मैंने भी बाणोंके प्रहार करके उसके तीन टुकड़े करडाले और उसको भूमि पर गिरा दिया, उस समय पवित्र सुगन्धवाला पवन चलने लगा ॥ ६ ॥ उस शक्तिके काटडालने पर महात्मा परशुराम क्रोधसे वल उठे और उन्होंने फिर मेरे ऊपर भयंकर शक्तियें फेंकीं, हे भरतवंशी राजन् ! वह शक्तियें ऐसी तेजस्वी और हलकी थी, कि-उनके रूपका वर्णन ही नहीं होसकता ॥७॥ जैसे लोकोंके संहारके समय बारह आदित्य प्रचण्ड तेजसे दमकते हुए

ग्रेण दीप्ता यथादित्या द्वादश लोकसंक्षये ॥ ८ ॥ ततो जालं बाणमयं विवृत्तं सन्दृश्य भित्त्वा शरजालेन राजन् । द्वादशेषून् प्राहिणवं रणेऽहं ततः शक्तीरध्यधमं घोररूपाः ॥ ९ ॥ ततो राजन् जामदग्न्यो महात्मा शक्तीर्घोरा व्याक्षिपद्धेमदण्डाः । विचित्रिताः काञ्चनपट्टनद्धा यथा महोल्का ज्वलितास्तथा ताः ॥ १० ॥ तास्त्वाप्युग्राश्चर्मणा वारयित्वा खड्गेनाजौ पातयित्वा नरेन्द्र । बाणैर्दिव्यैर्जामदग्न्यस्य संख्ये दिव्यानश्वानभ्यवर्षं ससूतान् ॥११॥ निर्मुक्तानां पन्नगानां सरूपा दृष्ट्वा शक्तीर्हेमचित्रा निकृत्ताः । प्रादुश्चक्रे दिव्यमस्त्रं महात्मा क्रोधाविष्टो हैहयेशप्रमाथी ॥ १२ ॥ ततः श्रेण्यः शलभानामिवोग्राः समापेतुर्विशिखानां प्रदीप्ताः । समाचिनोच्चापि भृशं शरीरं हयान् सूतं सरथं चापि मह्यम् १३ रथः शरैर्मे निचितः सर्वतोऽभूत्तथा वाहाः सारथिश्चैव राजन् । युगं रथेषां च तथैव चक्रे तथैवाक्षः शरकृत्तोऽथ भग्नः ॥१४॥ ततस्तस्मिन्

प्रकाशित होते हैं तैसे ही प्रचण्ड तेजसे प्रकाशवान् अनेक रूपधारी अग्निके पड़े भारी अङ्गारकी समान उन बारह शक्तियोंको दिशाओंमें से अपनी ओरको आते हुए देखकर मैं घबड़ा गया ॥ ८ ॥ और फिर हे राजन् ! मैंने धीरजके साथ परशुरामके बाणोंको देख कर अपने बाणोंके समूहसे उस जालको काटडाला और बारह बाण मारकर उनकी भयंकर शक्तियोंके भी टुकड़े करडाले ॥ ९ ॥ हे राजन् ! फिर महात्मा परशुराम सोनेके दण्डोंवाली और भयानक शक्तियें मेरे ऊपर फेंकने लगे, वह सब विचित्र रङ्गकी सोनेकी पत्तरोंसे जड़ीहुई बलती हुई बड़े २ उल्काओंकी समान दीखती थीं ॥ १० ॥ हे नरेन्द्र ! उन शक्तियोंके सामनेको ढाल करके मैंने उन शक्तियोंको भी रोक दिया तथा तलवारके प्रहारसे काटकर भूमिपर गिरादिया और फिर मैंने परशुरामजीके दिव्य घोड़ोंके ऊपर और उनके सारथीके ऊपर दिव्य बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदी ॥ ११ ॥ जब केंचुलीमेंसे बाहर निकले हुए सर्पोंकी समान और सर २ करके मेरे ऊपरको आती हुई तथा सोनेकी पट्टियोंसे विचित्र दीखनेवाली शक्तियोंको मैंने काट डाला तब सहस्रार्जुनका नाश करनेवाले महात्मा परशुरामने क्रोधमें भरकर एक दिव्य अस्त्र प्रकट किया ॥ १२ ॥ और मेरे ऊपर टीड़ियों की पंक्तियोंकी समान दमकते हुए बाणोंकी पंक्तियें गिरने लगीं और उन पंक्तियोंने मेरे शरीरको; घोड़ोंको सारथीको तथा रथको चारों ओरसे अच्छे प्रकारसे घेर लिया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मेरा रथ घोड़े

धानवर्षं व्यसीते शरौघेण प्रववर्ष गुरुन्तम् । स विक्षतो मार्गणैर्ब्रह्मराशिर्देहादसृक्कं मुमुचे भूरि रक्तम् ॥ १५ ॥ यथा रामो बाणजालाभितप्तस्तथैवाहं सुभृशं गाढविद्धः। ततो युद्धं व्यारमच्चापराह्णे भानावस्तं प्रतियाते महीध्रम् ॥ १६ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे त्र्यक्तिप्रक्षेप एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

भीष्म उवाच । ततः प्रभाते राजेंद्र सूर्ये विमलतां गते । भार्गवस्य मया सार्धं पुनर्युद्धमवर्त्तत ॥१॥ ततो भ्रान्ते रथे तिष्ठन् रामः प्रहरतां वरः । ववर्ष शरजालानि मयि मेघ इवाचले ॥२॥ ततः सूतो मम सुहृच्छरवर्षेण ताडितः । अपयातो रथोपस्थान्मनो मम विषादयन् ॥ ३ ॥ ततः सूतं ममात्यर्थं कश्मलं प्राविशन्महत् । पृथिव्यां च शराघातान् निपपात मुमोच ह ॥४॥ ततः सूतोऽजहात् प्राणान् राम-

---

और सारथी चारों ओरसे बाणोंके द्वारा ढकगए रथका जुआ, ईषा, पहिए और धुरी बाणोंसे कटकर गिरपड़ी ॥ १४ ॥ इसप्रकार गुरुकी ओरसे होनेवाली बाणोंकी वर्षा बन्द होजानेपर मैं अपने गुरु परशुरामजीके ऊपर बाणोंका समूह वर्षानेलगा, वेदके ढेररूप वह ऋषिराज मेरे बाणोंसे छिधगए और उनके पवित्र शरीरमेंसे रुधिरकी बड़ीभारी धार बहने लगी ॥ १५ ॥ जिस प्रकार परशुरामजी युद्धमें मेरे बाणोंके समूहसे विधजानेके कारण व्याकुल होगए थे तैसे ही मैं भी बाणोंके समूहसे बहुत ही विधजानेके कारण सन्तप्त होगया था सायंकालके समय जब सूर्यनारायण अस्ताचलको गए तब हमारा युद्ध भी बन्द होगया ॥ १६ ॥ एकसौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८१ ॥

भीष्मपितामह कहते हैं, कि-हे राजेन्द्र ! जब प्रातःकाल होकर सूर्यका उदय हुआ तब परशुरामजी मेरे साथ फिर युद्ध करने लगे १ चारों ओर फिरते हुए रथमें बैठकर योधाओंमें श्रेष्ठ परशुरामजी जैसे मेघ, पर्वतके ऊपर जलकी मार मारता है तैसे ही मेरे ऊपर बाणोंकी मार मारने लगे ॥ २ ॥ परशुरामजीने बाणोंकी वर्षा करके मेरे स्नेही सारथीके ऊपर प्रहार करना आरम्भ करदिया, तब मेरा सारथी मेरे मनको खिन्न करता हुआ रथकी बैठक परसे नीचे गिर पड़ा ॥ ३ ॥ मेरे सारथीको उनके बाणोंकी मारसे बड़ी पीड़ा हुई और मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥ ४ ॥ इतना ही नहीं किन्तु उसने परशुरामजीके बाणोंसे दुःखी होकर दो घड़ीमें ही प्राण त्यागदिये,

बाणप्रपीडितः । मुहूर्तादिव राजेन्द्र मां च भीराविशत्तदा ॥५॥ ततः सूते हते तस्मिन् क्षिपतस्तस्य मे शरान् । प्रमत्तमनसो रामः प्राहिणोन्मृत्युसम्मितम् ॥ ६ ॥ ततः सूतव्यसनिनं विप्लुतं मां स भार्गवः । शरेणाभ्यहनत् गाढं विकृष्य बलवद्धनुः ७ स मे भुजांतरे राजन् निपत्य रुधिराशनः । मयैव सह राजेन्द्र जगाम वसुधातलम् ॥ ८ ॥ मत्वा तु निहतं रामस्ततो मां भरतर्षभ । मेघवद्विननादोच्चैर्जहृषे च पुनः पुनः ॥ ९ ॥ तथा तु पतिते राजन् मयि रामो मुदा युतः । उदक्रोशन्महानादं सह तैरनुयायिभिः ।१०। मम तत्राभवन् ये तु कुरवः पार्श्वतः स्थिताः । आगता अपि युद्धं तज्जनास्तत्र दिदृक्षवः । आर्त्तिं परमिकां जग्मुस्ते तदा पतिते मयि ॥ ११ ॥ ततोऽपश्यं पतितो राजसिंह द्विजानष्टौ सूर्यहुताशनाभान् । ते मां समन्तात् परिवार्य तस्थुः स्वबाहुभिः परिवार्याजिमध्ये ॥ १२ ॥ रक्ष्यमाणश्च तैर्विप्रैर्नाहं भूमिमुपास्पृशम् । अन्तरिक्षे धृतो ह्यस्मि तैर्विप्रैर्बान्धवैरिव ।१३। श्वसन्निवान्तरिक्षे च जलबिन्दुभिरुक्षितः । ततस्ते ब्राह्मणा राजन्न-

---

हे राजेन्द्र ! उस समय मैं घबड़ाहटमें पड़गया ॥ ५ ॥ उस सारथीके मारे जानेसे मैं पागल सा होगया और परशुरामके ऊपर बाणोंकी मार करनेलगा, तब उन्होंने मेरे मृत्युकी समान एक बाण मारा ॥६॥ सारथीके मरणसे मुझे दुःखी हुआ तथा बाण छोड़नेमें न लगा हुआ देखकर परशुरामने धनुषको दृढ़तासे खैंचकर उससे मेरे ऊपर बाणों का बड़ा कठोर प्रहार किया७हे राजेन्द्र! वह रुधिरको पीनेवाला बाण आकर मेरी छातीमें लगा और मुझे लेकर भूमिपर गिरपड़ा८हे भरत-वंशश्रेष्ठ! उस समय परशुराम मुझे मरा हुआ जानकर वारंवार मेघकी समान ऊँचे स्वरसे गरजने लगे और प्रसन्न हुए ॥ ९ ॥ हे राजन् ! मैं जिस समय पृथ्वी पर गिरा था उस समयपरशुरामने प्रसन्न होकर अपने साथियोंको लेकर बड़ो गर्जनाकी ॥ १० ॥ दूसरी ओर मेरे साथ युद्ध देखनेको आये हुए जो कौरव मेरे पास खड़े थे वह मुझे भूमि पर पड़ा हुआ देखकर खिन्न होगये ॥ ११ ॥ हे राजसिंह ! अन-न्तर मैंने उस रणभूमिमें उस समय सूर्य और अग्निकी समान तेजस्वी आठ वसुओंको ब्राह्मणोंके रूपमें देखा, वह चारों ओरसे मुझे घेरे खड़े थे और उन्होंने रणभूमिमें मुझे अपनी भुजाओंसे उठा लिया था१२ यह ब्राह्मण मुझे बांधवोंकी समान हाथोंसे अधर उठाये हुए थे इस कारण मैं पृथिवीको नहीं छूरहा था, किंतु अंतरिक्षमें ही था ॥ १३ ॥

ब्रुवन् परिगृह्य माम् ॥ १४ ॥ मा भैरिति समं सर्वे स्वस्ति तेऽस्त्विति चासकृत् । ततस्तेषामहं वाग्भिस्तर्पितः सहसोत्थितः । मातरं सरितां श्रेष्ठमपश्यं रथमास्थिताम् ॥१५॥ हयाश्च मे संगृहीतास्तया ह्यासन् महानद्या संयति कौरवेन्द्र । पादौ जनन्याः प्रतिगृह्य चाहं तथा पितॄणां रथमभ्यरोहम् ॥१६॥ ररक्ष सा मां सरथं हयांश्चोपस्कराणि च । तामहं प्राञ्जलिर्भूत्वा पुनरेव व्यसर्जयम् ॥ १७ ॥ ततोऽहं स्वयमुद्यम्य हयांस्तान् वातरंहसः । अयुध्यं जामदग्न्येन निवृत्तेऽहनि भारत ॥ १८ ॥ ततोऽहं भरतश्रेष्ठ वेगवन्तं महाबलम् । अमुञ्चं समरे बाणं रामाय हृदयच्छिदम् ॥ १९ ॥ ततो जगाम वसुधां मम बाणप्रपीडितः । जानुभ्यां धनुरुत्सृज्य रामो मोहवशं गतः ॥ २० ॥ ततस्तस्मिन्निपतिते रामे भूरिसहस्रदे । आवव्रुर्जलदा व्योम क्षरन्तो रुधिरं बहु ॥ २१ ॥ उल्काश्च शतशः पेतुः सनिर्घाताः सकम्पनाः । अर्कञ्च सहसा दीप्तं स्वर्भानुरभि-

फिर मुझे मालूम हुआ कि-मानो मैं अंतरिक्षमें ही श्वास लेरहा हूँ, फिर उन ब्राह्मणोंने मुझे सावधान करनेके लिये मेरे ऊपर जलके छींटे दिये और एकसाथ मुझे हाथोंसे पकड़े रहकर कहा, कि-तू घबड़ावे मत, तेरा कल्याण हो, मैं भी उन ब्राह्मणोंकी बातसे संतुष्ट हुआ और एकायकी खड़ा होकर देखता हूँ तो मेरे सामने रथ पर बैठीहुई गङ्गा माता दर्शन देरही हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे कुरुवंशी राजन् ! वह महानदी गङ्गा युद्धमें मेरे रथके घोड़ोंको पकड़ रही थी, फिर मैंने अपने हाथोंसे माताजीके चरणका स्पर्श किया और फिर रथ पर चढ़ बैठा ॥ १६ ॥ मेरी माता खड़ी हुई मेरे रथकी मेरे घोड़ोंकी और सामग्रीकी रक्षाकर रही थीं, उनको मैंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनको तहाँसे फिर उनके स्थान पर पहुँचा दिया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! थोड़ा ही दिन बाकी रहा था उस समय मैं आप ही अपने पवनकी समान वेगवाले घोड़ोंको हाँककर फिर रणभूमिमें लेगया और परशुरामके साथ युद्ध करनेलगा ॥१८॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! उस युद्धमें मैंने वेगवाला महाबली और हृदयको चीर डालने वाला बाण परशुरामके मारा ॥ १९ ॥ मेरे उस बाणसे परशुरामके बड़ी पीड़ा होने लगी, और वह एकायकी भूमि पर ढह पड़े तथा हाथमेंसे धनुषको दूर फेंककर मूर्छित होगये२० हजारों सुवर्णकी मुहरोंका दान देनेवाले परशुरामजी ज्यों ही भूमिपर ढहकर गिरे, कि-मेघमण्डलोंने बहुतसा रुधिर बरसातेहुए आकाशको चारों ओरसे घेरलिया२१सैंकड़ों उल्का गड़गड़ाहट करती हुई बिजली

संवृणोत् ॥२२॥ ववुश्च वाताः पुरुषाश्चलिता च वसुन्धरा गृध्रा बलाश्च कंकाश्च परिपेतुर्मुदा युताः ॥२३॥ दीप्तायां दिशि गोमायुर्दारुणं मुहुरुन्नदत्। अनाहता दुन्दुभयो विनेदुर्भृशनिःस्वनाः ॥२४॥ एतदौत्पातिकं सर्वं घोरमासीद्भयंकरम्। विसंज्ञकल्पे धरणीं गते रामे महात्मनि२५ ततो वै सहसोत्थाय रामो मामभ्यवर्त्तत। पुनर्युद्धाय कौरव्य विह्वलः क्रोधमूर्च्छितः ॥ २६ ॥ आददानो महाबाहुः कार्मुकं यलसन्निभम्। ततो मय्यादधानन्तं राममेव न्यवारयन् २७ महर्षयः कृपायुक्ताः क्रोधाविष्टोऽथ भार्गवः। स मेऽहरदमेयात्मा शरं कालानलोपमम् ॥२८॥ ततो रविर्मन्दमरीचिमण्डलो जगामास्तं पांशुपुञ्जावगूढः। निशा व्यगाहत् सुखशीतमारुता ततो युद्धं प्रत्यवहारयावः ॥ २९ ॥ एवं राजन्नवहारो बभूव ततः पुनर्विमलेऽभूत् सुघोरम्। कल्यं कल्यं विंशति वै दिनानि तथैव चान्यानि दिनानि त्रीणि ॥३०॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

भीष्म उवाच। ततोऽहं निशि राजेंद्र प्रणम्य शिरसा तदा। ब्राह्म-

के साथ पृथिवी पर गिरनेलगीं, एकायकी प्रकाशवान् सूर्य ग्रहणसे ढक गया ॥२२॥ तीक्ष्ण पवन चलने लगे, पृथिवी काँपने लगी, गिद्ध कौए और बगले हर्षमें भरकर चारों ओरसे रणभूमिमें आकर बैठने लगे २३ दिशाओंमें आगसी लगउठी, गीदड़ियें बारंबार दिशाओंमें गरजने लगीं, दुंदुभि नगाडे विना बजाये ही अपने आप जोरसे बजने लगे२४ इसप्रकार महात्मा परशुराम अचेत होकर भूमि पर गिरपड़े तब यह सब भयदायक उत्पात होने लगे ।२५। फिर हे कुरुवंशी राजन् ! परशुरामजी विह्वल होकर क्रोधमें भरगये और फिर एकायकी खड़े होकर लडनेके लिये मेरे ऊपर चढ आये ॥२६॥ वह महाभुज गंधकके रस की समान तीखा बाण मेरे मारनेके लिये लेनेलगे. परन्तु उस समय दयालु महर्षियोंने परशुरामको रोका तब क्रोधमें भरेहुए उन उदार मन वाले मुनिने प्रलयकालकी अग्निकी समान वह बाण मेरे ऊपर छोडने से रोक लिया२७॥२८ इतनेमें ही मन्दमय किरणोंरूप मंडलसे शोभायमान धूलिके ढेरसे धूसर हुए भगवान् सूर्यदेव अस्त होगये. रात्रिका समय होगया और सुखकारी शीतल पवन चलने लगा, इसलिये हम दोनोंने युद्ध बन्द करदिया ॥ २९ ॥ एकसौ बयासिवाँ अध्याय समाप्त

भीष्म पितामह कहते हैं, कि-हे राजेंद्र ! तदनन्तर उस रातमें

णानां पितॄणां च देवतानां च सर्वशः ॥ १ ॥ नक्तञ्चराणां भूतानां राजन्यानां विशाम्पते । शयनं प्राप्य रहिते मनसा समचिन्तयम् ॥२॥ जामदग्न्येन मे युद्धमिदं परमदारुणम्। अहानि च बहून्यद्य वर्त्तते सुमहात्ययम् ॥३॥ न च रामं महावीर्य्यं शक्नोमि रणमूर्धनि। विजेतुं समरे विप्रं जामदग्न्यं महाबलम् ॥ ४ ॥ यदि शक्यो मया जेतुं जामदग्न्यः प्रतापवान् । दैवतानि प्रसन्नानि दर्शयन्तु निशां मम ॥५॥ ततो निशि च राजेंद्र प्रसुतः शरविक्षतः । दक्षिणेनेह पार्श्वेन प्रभातसमये तदा॥६॥ ततोऽहं विप्रमुख्यैस्तैर्यैरस्मि पतितो रथात् । उत्थापितो धृतश्चैव माभैरिति च सान्त्वितः ॥७॥ त एव मा महाराज स्वप्ने दर्शनमेत्य वै । परिवार्याब्रुवन् वाक्यं तन्निबोध कुरूद्वह ॥ ८ ॥ उत्तिष्ठ मा भैर्गाङ्गेय न भयं तेऽस्ति किञ्चन । रक्षामहे त्वां कौरव्य स्वशरीरं हि नो भवान् ।९। न त्वां रामो रणे जेता जामदग्न्यः कथञ्चन । त्वमेव समरे रामं विजेता भरतर्षभ ॥ १० ॥ इदमस्त्रं सुदयितं प्रत्यभिज्ञास्यते भवान् । विदितं हि तवाप्येतत् पूर्वस्मिन् देहधारणे ॥ ११ ॥ प्राजापत्यं विश्व-

---

ब्राह्मण, सकल, पितर, देवता, रातमें फिरनेवाले राक्षस और सब क्षत्रियोंको शिरसे प्रणाम करके एकांतमें बिछीहुई शय्या पर सोया हुआ मैं अपने मनमें विचार करने लगा, कि-॥ १॥२ ॥ मेरा परशुराम के साथ बडा दारुण युद्ध आरम्भ होगया है और उसको आज कई दिन भी होगये इसका अंत होने तक तो बडा संहार होजायगा ॥ ३ ॥ महापराक्रमी और महाबली ब्राह्मण परशुरामको तो रणभूमिमें मैं जीत नहा सकता? ॥ ४ ॥ यदि प्रतापी परशुरामको जीतना मेरे शक्य हो तो आजकी रातमें देवता मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दें ॥ ५ ॥ हे राजेन्द्र! इसप्रकार विचार करते २ बाणोंसे घायल हुआ मैं दाहिनी करवटसे सोगया और ज्योंही पिछली रात्रि हुई कि-मैं रथमेंसे नीचे गिरपडा और उन ब्राह्मणोंने मुझे भूमिमेंसे उठाकर हाथोंमें बठा लिया और मुझसे डरै मत' ऐसा कहकर धीरज दिया, हे महाराज! उन ही ब्राह्मणोंने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया और चारों ओरसे घेरकर उन्होंने जो वाक्य कहे थे उनको हे कुरुवंशी तू सुन॥७॥८॥ हे गङ्गापुत्र! खडा हो जा, डरै मत, तुझे कुछ भय नहीं है, हे कुरुवंशी! हम तेरी रक्षा करेंगे क्योंकि-तू हमारा अपना शरीर है ॥ ९ ॥ परशुराम तुझे रणमें कभी नहीं जीत सकेंगे, किंतु हे भरतवंशश्रेष्ठ! तू ही रणमें परशुराम को जीतेगा ॥ १० ॥ तू इस अति प्यारे अस्त्रको जानजायगा, क्योंकि-

कृतं प्रस्वापं नाम भारत। न हीदं वेद रामोऽपि पृथिव्यां वा पुमान् क्वचित् ॥ १२ ॥ तत् स्मरस्व महाबाहो भृशं संयोजयस्व च। उपस्थास्यति राजेन्द्र स्वयमेव तवानघ ॥ १३ ॥ येन सर्वान् महावीर्यान् प्रशास्यिसि कौरव। न च रामः क्षयं गन्ता तेनास्त्रेण नराधिप १४ एनसा न तु संयोगं प्राप्स्यसे जातु मानद। स्वप्स्यते जामदग्न्योऽसौ त्वद्बाणबलपीडितः ॥ १५ ॥ ततो जित्वा त्वमेवैनं पुनरुत्थापयिष्यसि। अस्त्रेण दयितेनाजौ भीष्म सम्बोधनेन वै ॥ १६ ॥ एवं कुरुष्व कौरव्य प्रभाते रथमास्थितः। प्रसुप्तं वा मृतं वेति तुल्यं मन्यामहे वयम् १७ न च रामेण मर्तव्यं कदाचिदपि पार्थिव। ततः समुत्पन्नमिदं प्रस्वापं युज्यतामिति ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हिता राजन् सर्व एव द्विजोत्तमाः। अष्टौ सदृशरूपास्ते सर्वे भास्वरमूर्तयः ॥ १९ ॥

अपने पहिले शरीरमें तू इसअस्त्रको जानता था॥११॥हे भरतवंशी राजन्! इस अस्त्रका नाम प्रस्वाप है, इसका देवता प्रजापति है और यह विश्वकर्माका बनाया हुआ है, इस अस्त्रको परशुराम भी नहीं जानते हैं तथा भूतल पर और कोई दूसरा पुरुष भी नहीं जानता है ॥ १२ ॥ इसलिये हे महाबाहु निर्दोष भीष्म! उस अस्त्रको तू याद करेगा तो यह तेरे पास आजायगा तब तू उसको सावधानीसे धनुष पर चढ़ाना और उससे युद्ध करना हे निर्दोष राजेन्द्र! तू उसका स्मरण करेगा, कि—तत्काल वह अस्त्र तेरे पास अपने आप ही आ जायगा ॥ १३ ॥ हे कुरुवंशी राजन्! तू उस बाणसे सब राजाओंको हरादेगा, परन्तु उस अस्त्रसे परशुरामकी मृत्यु नहीं होगी ॥ १४ ॥ इस कारण हे बड़ोंका मान करनेवाले राजन्! तुझे कुछ भी पातक नहीं लगेगा, परशुराम तेरा बाण लगनेसे पीड़ा पाकर निद्राके वशमें होजायँगे ॥१५॥ हे भीष्म! उनका पराजय करके फिर तू अपने प्यारे संबोधन नामके अस्त्रसे उनको उठाकर सचेत (होशमें) कर देना१६ हे कुरुवंशी राजन्! तू कल प्रातःकालके समय रथमें बैठकर ऐसा करना हम सोता हुआ और मरा हुआ दोनोंको एक समान मानते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन्! परशुराम तो कभी मर ही नहीं सकते क्योंकि-वह अमर हैं और इस लिये ही वह प्रस्वाप अस्त्र उत्पन्न हुआ है, इस कारण तू इससे काम लेना ॥ १८ ॥ हे राजा दुर्योधन! वह आठों ब्राह्मण समानरूपधारी और समान ही तेजस्वी थे मुझसे ऐसा कह कर वह सब अन्तर्धान होगये १९ एकसौ निरानवेवाँ अध्याय समाप्त

भीष्म उवाच । ततो रात्र्यां व्यतीतायां प्रतिबुद्धोऽस्मि भारत । ततः सञ्चिन्त्य वै स्वप्नमवापं हर्षमुत्तमम् ॥ १ ॥ ततः समभवद्युद्धं मम तस्य च भारत । तुमुलं सर्वभूतानां लोमहर्षणमद्भुतम् ॥२॥ ततो बाणमयं वर्षं ववर्ष मयि भार्गवः। न्यवारयमहं तच्च शरजालेन भारत ३ ततः परमसंक्रुद्धः पुनरेव महातपाः । ह्यस्तनेन च कोपेन शक्तिं वै प्राहिणोन्मयि ॥४॥ इंद्राशनिसमस्पर्शां यमदण्डसमप्रभाम् । ज्वलन्तीमग्निवत् संख्ये लेलिहानां समन्ततः ॥ ५ ॥ ततो भरतशार्दूल धिष्ण्यमाकाशगं यथा । सा मामभ्यवधीत्तूर्णं जत्रुदेशे कुरूद्वह ॥ ६ ॥ अथासृगस्रवद् घोरं गिरेर्गैरिकधातुवत् । रामेण सुमहाबाहो क्षतस्य क्षतजेक्षण ।७। ततोऽहं जामदग्न्याय भृशं क्रोधसमन्वितः । चिक्षेप मृत्युसंकाशं बाणं सर्पविषोपमम् ॥८॥ स तेनाभिहतो वीरो ललाटे द्विजसत्तमः । अशोभत महाराज सशृङ्ग इव पर्वतः ॥९॥ स संरब्धः समा-

भीष्म पितामह कहते हैं, कि-हे भरतवंशी राजन् ! वह पिछली रात बीत गयी और प्रातःकाल हुआ तो मैं जागा तथा अपने स्वप्न को याद करके बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥१॥ हे भरतवंशीराजन् ! उनका और मेरा महाभयानक युद्ध फिर होने लगा, वह युद्ध सब प्राणियोंके रोमाञ्च खड़े करने वाला और बड़ा ही अद्भुत था ॥ २ ॥ परशुराम मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे तब हे भरतवंशी राजन् ! मैं भी उनके ऊपर बाणोंका प्रहार करके उनके बाण पीछेको हटाने लगा ।३। इससे महातपस्वी परशुराम फिर कोपमें भरगये और उन्होंने पहिले दिनके कोपको याद करके मेरे ऊपर शक्तिका प्रहार किया ॥ ४ ॥ वह शक्ति इन्द्रके वज्रकी समान तीक्ष्ण प्रहार करने वाली, यमके दण्डकी समान, कान्तिवाली, अग्निकी समान रणमें धक २ बलती हुई तथा चारों ओरसे सबको निगले जाती थी ॥ ५ ॥ हे लाल २ नेत्रोंवाले कुरुवंशी महाबाहु भरतवंशसिंह! आकाशमेंके नक्षत्रकी समान प्रतीत होती हुई उस शक्तिने मेरे गलेकी हसली पर एकसाथ बड़ा भारी प्रहार किया, तब तो इन्द्रके भयानक प्रहारसे जैसे पहाड़ ऊपरसे गेरू आदि धातुओंको बहाने लगता है तैसे ही मेरे घावमेंसे रुधिरकी भयानक धार बहने लगी ॥६-७॥ तब तो मुझे परशुरामके ऊपर बड़ा ही क्रोध आया और मैंने भी साँपके विषकी समान तथा मृत्युकी समान एक बाण भृगुवंशी रामके मारा ॥ ९ ॥ वह बाण उनके ललाट को फोड़कर भीतर घुसगया इस कारण परशुराम उस समय शिखर

पृत्य शरं कालान्तकोपमम्। संदधे बलवत् कृष्य घोरं शत्रुनिबर्हणम्॥१०॥ स वक्षसि पपातोग्रः शरो व्याल इव श्वसन्। मही राजंस्ततश्चाहमगमं रुधिराविलः ॥ ११ ॥ संप्राप्य तु पुनः संज्ञां जामदग्न्याय धीमते। प्राहिण्वं विमलां शक्तिं ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ १२ ॥ सा तस्य द्विजमुख्यस्य निपपात भुजान्तरे। विह्वलश्चाभवद्राजन् वेपथुश्चैनमाविशत् ॥ १३ ॥ तत एनं परिष्वज्य सखा विप्रो महातपाः। अकृतव्रणः शुभैर्वाक्यैराश्वासयदनेकधा ॥ १४ ॥ समाश्वस्तस्ततो रामः क्रोधामर्षसमन्वितः। प्रादुश्चक्रे तदा ब्राह्मं परमास्त्रं महाव्रतः ॥ १५॥ ततस्तत्प्रतिघातार्थं ब्राह्ममेवास्त्रमुत्तमम्। मया प्रयुक्तं जज्वाल युगान्तमिव दर्शयत् ॥ १६ ॥ तयोर्ब्रह्मास्त्रयोरासीदन्तरा वै समागमः। असम्प्राप्यैव रामञ्च मां च भरतसत्तम॥१७॥ ततो व्योम्नि प्रादुरभूत्तेज एव हि केवलम्। भूतानि चैव सर्वाणि जग्मुरार्त्तिं विशाम्पते ॥१८॥ ऋष-

---

वाले पर्वतकी समान शोभा पाने लगे ॥९॥ फिर परशुरामने भी क्रोधमें भरकर महाकालकी समान भयानक और शत्रुका प्राणलेवा बाण धनुष पर चढ़ा जोरसे खेंचकर मेरे ऊपर मारा ॥१०॥ साँपकी समान फुङ्कारें भरता हुआ वह भयानक बाण आकर मेरी छातीमें लगा, कि मैं लोहूलुहान होकर भूमिपर गिरपड़ा ॥ ११ ॥ परन्तु फिर मुझे चेत हुआ तो मैंने वज्रकी समान बलती हुई एक निर्मल शक्ति बुद्धिमान् परशुरामके ऊपर फैंकी ॥ १२ ॥ वह शक्ति ब्राह्मणश्रेष्ठ परशुरामकी छातीमें जाकर लगी और हे राजन्! उससे वह बेहाल होकर काँपने लगे ॥ १३ ॥ तब उन मुनिका मित्र परमतपस्वी अकृतव्रण नामका ब्राह्मण मीठे वचन कहकर परशुरामजीको अनेकों प्रकारसे आश्वासन देनेलगा १४ परशुराम फिर सावधानहुए और उन महाव्रतधारी मुनिने क्रोध तथा अमर्षमें आकर मेरेऊपर ब्रह्मास्त्र नामका एक बड़ा भारी अस्त्र छोड़ा१५तब मैंने भी ब्रह्मास्त्रका नाश करनेके लिए उसके सामनेको एक उत्तम ब्रह्मास्त्र होंमारा मेरा छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र प्रलयकाल दिखाता हुआसा ज्वलित हो उठा ॥ १६ ॥ और हे भरतवंशी राजाओंमें उत्तम दुर्योधन! वह दोनों ब्रह्मास्त्र परशुराम और मेरे पास न पहुँचकर बीचमें ही एक दूसरेके टक्करें लगानेलगे ॥१७॥ उससे आकाशमें श्रेष्ठ तेज प्रकट होगया, हे राजन्! उसको देखकर सब प्राणी दुःखी होनेलगे ॥ १८ ॥ तथा हे राजन्! ऋषि, गन्धर्व और

यक्षच सगन्धर्वा देवताश्चैव भारत। संतापं परमं जग्मुरस्त्रतेजोभि-पीडिताः ॥१९॥ ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा। सन्तप्तानि च भूतानि विषादं जग्मुरुत्तमम् ॥ २० ॥ प्रजज्वाल नभो राजन् धूमायन्ते दिशो दश। न स्थातुमन्तरिक्षे च शेकुराकाशगास्तदा ॥२१॥ ततो हा हा कृते लोके सदेवासुरराक्षसे। इदमन्तरमित्येवं मोक्तुकामोऽस्मि भारत ॥ २२॥ प्रस्वापमस्त्रं त्वरितो वचनाद् ब्रह्मवादिनाम् विचित्रञ्च तदस्त्रं मे मनसि प्रत्यभात्तदा ॥ २३ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धे परस्परब्रह्मास्त्रप्रयोगे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

भीष्म उवाच। ततो हलहलाशब्दो दिवि राजन् महानभूत्। प्रस्वापं भीष्म मा स्राक्षीरिति कौरवनन्दन ॥ १ ॥ अयुञ्जमेव चैवाहं तदस्त्रं भृगुनन्दने। प्रस्वापं मां प्रयुञ्जानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥२॥ एते वियति कौरव्य दिवि देवगणाः स्थिताः। ते त्वां निवारयन्त्यद्य प्रस्वापं मा प्रयोजय ॥ ३ ॥ रामस्तपस्वी ब्रह्मण्यो ब्राह्मणश्च गुरुश्च

देवता भी ब्रह्मास्त्रके तेजसे पीड़ा पाकर परमदुःखी होने लगे ॥१९॥ पहाड, वन और पेड़ों सहित पृथिवी डगमगाने लगी, सब प्राणी सन्ताप पाकर बड़ा खेद करने लगे ॥ २० ॥ आकाशमें आग बलने लगी, दशों दिशायें धूलिके रंगकी होगयीं और आकाशचारी प्राणी उस समय आकाशमें उडनेको भी अशक्त होगये ॥ २१ ॥ देवता, असुर और राक्षसों सहित सब लोग हाहाकार करने लगे, हे भरत-वंशी राजन्! यह अवसर ठीक है, ब्रह्मवादियोंके ऐसा कहनेसे मैंने तुरन्त प्रस्वाप नामका अस्त्र परशुरामके मारनेकी इच्छा करी कि-उसी समय वह विचित्र अस्त्र मेरे मनमें प्रकट होगया ॥ २२ ॥ २३ ॥ एकसौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८४ ॥ छ छ

भीष्मजी कहते हैं, कि-ज्यों ही मैंने प्रस्वाप नामका अस्त्र हाथ में लिया, कि-आकाशमें बडाभारी कोलाहल होनेलगा और देवताओं ने मुझसे कहा, कि-हे कुरुवंशी भीष्म! तुम परशुरामके ऊपर प्रस्वाप नामका अस्त्र न छोडना ॥ १ ॥ मैंने आप ही वह अस्त्र परशुरामके ऊपर छोडनेका विचार किया था और मैं ज्यों ही उसको परशु-रामके ऊपरको छोडने लगा, कि-उस समय नारदजीने मुझसे कहा, कि-॥ २ ॥ हे कुरुवंशी! यह देवताओंके गण आकाशमें खड़े हैं यह आज तुम्हें रोकते हुए कहते हैं कि-तुम परशुरामके ऊपर प्रस्वाप

ते । तस्यावमानं कौरव्य मा स्म कार्षीः कथञ्चन॥४॥ततोऽपश्यं दिविष्ठान् वै तानष्टौ ब्रह्मवादिनः । ते मां स्मयन्तो राजेन्द्र शनकैरिदमब्रुवन्॥५॥ यथाह भरतश्रेष्ठ नारदस्तत्तथा कुरु । एतद्धि परमं श्रेय लोकानां भरतर्षभ ॥६॥ततश्च प्रतिसंहृत्य तदस्त्रं स्वापनं महत् । ब्रह्मास्त्रं दीपयाञ्चक्रे तस्मिन् युधि यथाविधि ॥ ७ ॥ ततो रामो हृषितो राजसिंह दृष्ट्वा तदस्त्रं विनिवर्त्तितं वै । जितोऽस्मि भीष्मेण सुमन्दबुद्धिरित्येव वाक्यं सहसा व्यमुञ्चत् ॥८॥ ततोऽपश्यत् पितरं जामदग्न्यः पितृस्तथा पितरञ्चास्य मान्यम् । ते तत्र चैनं परिवार्य्य तस्थुरूचुश्चैनं सान्त्वपूर्वं तदानीम् ॥९॥ पितर ऊचुः । मा स्मैवं साहसं तात पुनः कार्षीः कथञ्चन । भीष्मेण संयुगं गन्तुं क्षत्रियेण विशेषतः ॥ १० ॥ क्षत्रियस्य तु धर्मोऽयं यद्युद्धं भृगुनन्दन । स्वाध्यायो व्रतचर्य्या च

नामका अस्त्र मत छोडो ॥ ३ ॥ हे कुरुवंशी भीष्मजी ! परशुराम तपस्वी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण और तुम्हारे गुरु हैं इसलिये किसी प्रकार भी तुम्हें इनका अपमान नहीं करना चाहिये ४ इसप्रकार नारदजी कह रहे थे कि-इतनेमें ही मैंने उन आठ ब्रह्मवादियोंको आकाशमें खड़े हुए देखा हे राजेंद्र ! उन्होंने मुसकुरा कर मुझसे धीरे २ कहा, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! नारदजीने तुमसे जैसा कहा है इसप्रकार ही करो, हे भरतसत्तम ! नारदजीका कहना लोकोंका परमकल्याणकारी है ॥ ६ ॥ यह सुनकर मैंने प्रस्वाप नामवाला बड़ाभारी अस्त्र धनुष परसे उतार लिया और विधिके अनुसार फिर ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया॥७॥हे राजाओंमें सिंहसमान दुर्योधन ! मैंने प्रस्वाप नाम के अस्त्रको पीछेको खेंचलिया, यह देख कर परशुराम प्रसन्न होकर एक साथ कह उठे, कि-मैं जड़बुद्धि हूँ और भीष्मने मेरा पराजय कर दिया है ॥ ८ ॥इतनेमें ही परशुरामने अपने पिता जमदग्निको तथा पितामहको स्वर्गमेंसे अपने पास आये हुए देखा, जो कि-परशुरामके मान्य थे, वह रणभूमिमें आकर चारों ओरसे परशुरामको घेर कर खड़े होगये और उस समय परशुरामको समझा कर कहने लगे ।९। पितर बोले कि-हे तात ! अब फिर तुम्हें ऐसा साहसका काम नहीं करना चाहिये, भीष्मके साथ तिस पर भी विशेष कर एक क्षत्रियके साथ लड़नेके लिये तयार होना, यह एक अनुचित साहस है ॥१०॥ हे भृगुकुलनन्दन ! युद्ध करना तो क्षत्रियोंका कुलधर्म है ब्राह्मणोंका परम धन तो वेदका अध्ययन और व्रतोंका आचरण ही मानाजाता

ब्राह्मणानां परं धनम्॥११॥इदं निमित्ते कस्मिंश्चिदस्माभिः प्रागुदाहृतम्। शस्त्रधारणमत्युग्रं तच्चाकार्यं कृतं त्वया१२ वत्स पर्याप्तमेतावद् भीष्मेण सहसंयुगे। विमर्दस्ते महाबाहो व्यपयाहि रणादितः १३ पर्याप्तमेतत् भद्रन्ते तव कार्मुकधारणम्। विसर्जयैतद् दुर्धर्ष तपस्तप्यस्व भार्गव ॥ १४ ॥ एष भीष्मः शान्तनवो देवैः सर्वैर्निवारितः। निवर्त्तस्व रणादस्मादिति चैव प्रसादितः १५ रामेण सह मा योत्सी गुरुणेति पुनः पुनः। न हि रामो रणे जेतुं त्वया न्याय्यः कुरूद्वह १६ मानं कुरुष्व गांगेय ब्राह्मणस्य रणाजिरे। वयन्तु गुरवस्तुभ्यं तस्मात् त्वां वारयामहे ॥१७॥ भीष्मो वसूनामन्यतमो दिष्ट्या जीवसि पुत्रक। गाङ्गेयः शान्तनोः पुत्रो वसुरेष महायशाः॥१८॥कथं शक्यस्त्वया जेतुं निवर्त्तस्वेह भार्गव। अर्जुनः पाण्डवश्रेष्ठः पुरन्दरसुतो बली ॥ १९ ॥ नरः प्रजापतिर्वीरः पूर्वदेवः सनातनः। सव्यसाचीति विख्यातस्त्रिषु

है ॥ ११ ॥ यह बात पहिले किसी निमित्तसे हम तुझे सुना चुके हैं, कि-शस्त्र धारण करना एक अतिउग्र काम है और वह अकाज तूने किया है ॥ १२ ॥ हे बेटा ! भीष्मके साथ इतना ही युद्ध करना बहुत है, हे महाबाहु परशुराम ! इस युद्धमें तेरा अपमान होगा, इस लिये अब तू इस रणभूमिमेंसे चला जा॥१३॥हे राम ! तेरा कल्याण हो तूने जो धनुष धारण किया है वह आज सफल होगया, हे दुराधर्ष ! अब तू इस धनुषको त्याग कर तपस्या कर ॥ १४ ॥ इन शान्तनुनन्दन भीष्मको सब देवताओंने युद्ध करनेसे रोका है और तुम रणमेंसे लौट जाओ ऐसा कहकर इनको प्रसन्न किया है ॥१५॥ और उन्होंने भीष्मजीसे बारम्बार कहा, कि-हे कुरुकुलका भार उठानेवाले भीष्म ! परशुराम तेरे गुरु हैं इसकारण तू अपने गुरुके साथ युद्ध न कर, इसलिये हे कुरुवंशी भीष्म ! तुझे रणमें परशुरामको जीतना उचित नहीं है ॥१६॥ हे गङ्गाके पुत्र भीष्म ! तू रणभूमिमें ब्राह्मणका सत्कार कर हम तेरे बड़े हैं, इसलिये तुझे ब्राह्मणके साथ लड़नेसे रोकते हैं१७ हे बेटा ! तू जी रहा है, यह बड़े आनन्दकी बात है, भीष्म वसुओंमें का एक वसु था, वह बड़े यशवाला वसु इस समय शंतनुका पुत्र भीष्म होकर उत्पन्न हुआ है॥१८॥हे भृगुवंशी ! उसको तू कैसे जीत सकेगा ? इसलिये युद्धमेंसे पीछेको लौट, अर्जुन पाण्डवोंमें उत्तम, बली, इन्द्रका पुत्र ॥ १९ ॥ वीर, प्रजापति, नरका अवतार पूर्वजन्म का देवता, तीनों लोकोंमें सव्यसाची नामसे प्रसिद्ध और पराक्रमी

लोकेषु वीर्यवान् । भीष्ममृत्युर्यथाकालं विहितो वै स्वयम्भुवा ॥२०॥ भीष्म उवाच । एवमुक्तः स पितृभिः पितॄन् रामोऽब्रवीदिदम् । नाहं युधि निवर्त्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ॥२१॥ न निवर्त्तितपूर्वश्च कदाचिद् रणमूर्धनि । निवर्त्यतामापगेयः कामं युद्धात् पितामहाः ॥ २२ ॥ न त्वहं विनिवर्त्तिष्ये युद्धादस्मात् कथञ्चन । ततस्ते मुनयो राजन्नृचीकप्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥ नारदेनैव सहिताः समागम्येदमब्रुवन् । निवर्त्तस्व रणात्तात मानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ २४ ॥ इत्यवोचमहन्तांश्च क्षत्रधर्मव्यपेक्षया । मम व्रतमिदं लोके नाहं युद्धात् कदाचन ॥ २५ ॥ विमुखो विनिवर्त्तेयं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः । नाहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नार्थकारणात् २६ त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः । ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप ॥ २७ ॥ भागीरथी च मे माता रणमध्यं प्रपेदिरे । तथैवात्तशरो धन्वी तथैव दृढनिश्चयः । स्थिरोऽहमाहवे योद्धुं ततस्ते राममब्रुवन् ॥२८॥समेत्य सहिता भूयः

है स्वयं ब्रह्माजीने इसके हाथ भीष्मकी मृत्युका निर्माण किया है ।२०। भीष्मजी कहते हैं कि-इसप्रकार पितरोंने परशुरामसे कहा, तब राम ने पितरोंसे कहा कि-मैं युद्धमेंसे पीछेको कभी भी नहीं हटूँगा, यह मैंने व्रत धारण कर लिया है ॥ २१ ॥ मैंने पहिले कभी भी रणभूमिमें पहुँचकर पीठ नहीं फेरी है, किन्तु हे पितामहो ! भीष्मको इस युद्ध मेंसे लौटजाना हो तो वह भले ही लौटजाय ॥ २२ ॥ परन्तु मैं तो इस रणमेंसे किसीप्रकार भी पीछेको पैर नहीं धरूँगा, तदनन्तर हे राजन् ! उस समय ऋचीक आदि मुनि नारदजीको साथ लेकर मेरे पास आये और मुझसे कहने लगे, कि-हे तात ! तुम ब्राह्मणोंमें उत्तम परशुरामका सम्मान करो और अब युद्ध करना बन्द कर दो।२३-२४। मैंने भी अपने क्षत्रिय धर्मका विचार करके उन लोगोंको उत्तर दिया कि-इस जगत्में मेरा यह व्रत है कि-मेरी पीठ पर पीछेसे बाणोंकी मारामार होती हो तोभी कभी युद्धमेंसे पीछेको पैर नहीं धरना,लोभ से कृपणतासे, भयसे,अथवा धनके कारणसे सनातनधर्मका त्याग न करना यह मेरा पक्का विचार,है हे।राजन् ! तदनन्तर नारद आदि;सब मुनि और मेरी माता भागीरथी ये सब रणभूमिमें आये, मैं भी उस समय उसी प्रकार धनुष बाण लिये हुए खड़ा था और लड़नेके लिये मेरा दृढ़ निश्चय था तथा मैं रणभूमिमें लड़नेके लिये स्थिर होकर खड़ा था तदनन्तर वह सब रणभूमिमें इकट्ठे होकर फिर परशुराम

समरे भृगुनन्दनम् । नाविनीतं हि हृदयं विप्राणां शाम्य भार्गव ॥२९॥ राम राम निवर्तस्व युद्धादस्माद् द्विजोत्तम । अवध्यो वै त्वया भीष्मस्त्वं च भीष्मस्य भार्गव ॥ ३० ॥ एवं ब्रुवंतस्ते सर्वे प्रतिरुध्य रणाजिरम् । न्यासयाञ्चक्रिरे शस्त्रं पितरो भृगुनन्दनम् ॥ ३१ ॥ ततोऽहं पुनरेवाथ तानष्टौ ब्रह्मवादिनः । अद्राक्षं दीप्यमानान् वै ग्रहानष्टानिवोदितान् ॥ ३२ ॥ ते मां सप्रणयं वाक्यमब्रुवन् समरे स्थितम् । प्रैहि राम महाबाहो कुरु लोकहितं कुरु ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा निवर्तितं रामं सुहृद्वाक्येन तेन वै । लोकानां च हितं कुर्वन्नहमप्याददे वचः ॥ ३४ ॥ ततोऽहं राममासाद्य ववन्दे भृशविक्षतः । रामश्चाभ्युत्स्मयन् प्रेम्णा मामुवाच महातपाः ॥ ३५ ॥ त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रियः पृथिवीचरः । गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया ॥३६॥ मम चैव समक्षं तां कन्यामाहूय भार्गवः । उक्तवान् दीनया वाचा मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥ ३७ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि रामभीष्मयुद्धनिवृत्तौ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

से कहने लगे, कि हे भृगुवंशी ! ब्राह्मणोंका हृदय विनयसे सूना नहीं होता है इसलिये अब तुम शान्त होजाओ ॥ २५-२९ ॥ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ परशुरामजी ! तुम युद्ध करना बन्द करो तुमको भीष्मको मार डालना उचित नहीं है और भीष्मजीको तुम्हारा मार डालना उचित नहीं है ॥ ३० ॥ इस प्रकार वह सब रणभूमिको घेर कर परशुरामसे कहने लगे, और उनके पितरोंने परशुरामसे शस्त्र रखवा दिया ॥३१॥ तदनन्तर उदय हुए आठ ग्रहोंकी समान तेजस्वी उन आठ ब्राह्मणोंको मैंने फिर देखा ॥ ३२ ॥ उन्होंने युद्धमें खड़े हुए मुझसे विनयके साथ कहा, कि-हे महाबाहु भीष्म ! तू अपने गुरु परशुरामके पास जा और लोकोंका हित कर ॥३३॥ तदनन्तर सम्बन्धियोंके कहनेसे परशुराम युद्ध करनेसे रुकगये थे यह देखकर मैंने भी लोकोंका हित करनेके लिये सम्बन्धियोंका कहना मान लिया ॥३४॥ और अत्यन्त ही घायल हुए परशुरामजीके पास जाकर मैंने उनको प्रणाम किया तब महातपस्वी परशुरामने मुस्कुरा कर प्रेमके साथ मुझसे कहा, कि-॥३५॥ हे भीष्म ! तेरी समान दूसरा कोई भी क्षत्रिय इस पृथ्वी पर नहीं है, तूने इस युद्धमें मुझे भले प्रकार प्रसन्न कर लिया है अब तू जा ।३६। तदनन्तर परशुराम मेरे सामने उस कन्याको बुलाकर सब महात्माओंके बीचमें उससे दीन वाणीमें कहनेलगे ॥ ३७ ॥ १८५वाँ अध्याय समाप्त

राम उवाच। प्रत्यक्षमेतल्लोकानां सर्वेषामेव भाविनि। यथा शक्त्या मया युद्धं कृतं वै पौरुषं परम्॥१॥ न चैवमपि शक्नोमि भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्। विशेषयितुमत्यर्थमुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ॥ २ ॥ एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम्। यथेष्टं गम्यतां भद्रे किमन्यद्वा करोमि ते ॥३॥ भीष्ममेव प्रपद्यस्व न तेऽन्या विद्यते गतिः। निर्जितो ह्यस्मि भीष्मेण महास्त्राणि प्रमुञ्चता ॥४॥ एवमुक्त्वा ततो रामो विनिःश्वस्य महामनाः। तूष्णीमासीत्ततः कन्या प्रोवाच भृगुनन्दनम् ॥ ५ ॥ भगवन्नेवमेवैतद्यथाह भगवांस्तथा। अजेयो युधि भीष्मोऽयमपि देवैरुदारधीः ॥ ६ ॥ यथाशक्ति यथोत्साहं मम कार्य्यं कृतं त्वया। अनिवार्य्यं रणे वीर्य्यमस्त्राणि विविधानि च ॥७॥ न चैव शक्यते युद्धे विशेषयितुमन्ततः। न चाहमेनं यास्यामि पुनर्भीष्मं कथञ्चन ॥ ८ ॥ गमिष्यामि तु तत्राहं यत्र भीष्मं तपोधन। समरे पातयिष्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ॥९॥ एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोषव्याकुललोचना। तापस्ये

परशुरामने कहा, कि-हे भद्रे! इन सब लोगोंके सामने मैंने अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करके अपना परमपुरुषार्थ दिखा दिया है।१। मैं शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ इन भीष्मसे बड़े२ शस्त्र धारण करके भी इनकी अपेक्षा अधिक किसी प्रकार भी नहीं बढ़सकता ॥ २ ॥ हे भद्रे! मेरी इतनी ही बड़ी शक्ति है और इतना ही बड़ा बल है, जो कि-मैंने आज तुझे दिखाया है, इसलिये अब तेरी इच्छामें आवे तहाँ जा, इसके सिवाय मैं तेरा और क्या काम करूँ? बता? ३। तू अब भीष्मकी शरणमें जा, इसके सिवाय अब तेरी और गति नहीं है, भीष्मने मेरे ऊपर बड़े २ अस्त्र चलाकर मुझे रणमें हरादिया है ॥ ४ ॥ ऐसा कहकर उदार मनवाले परशुरामजी चुप होगये और लम्बे साँस भरने लगे, तब उस कन्याने परशुरामसे कहा, कि-॥ ५ ॥ हे भगवन्! आपने जैसा कहा, ऐसा ही है, इन उदार बुद्धिवाले भीष्मजीको देवता भी नहीं जीतसकते ॥६॥ आपने अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार मेरा काम किया और रणमें शरीरका अनिवार्य बल भी दिखाया तथा अनेकों प्रकारके अस्त्रोंसे भी काम लिया ॥७॥ परन्तु अन्तमें आप युद्धमें भीष्मजीसे बढ़ नहीं सके, अब मैं फिर भीष्मजीके पास किसीप्रकार भी नहीं जाऊँगी ।८। किन्तु हे भृगुवंशी तपोधन! अब तो मैं तहाँ जाऊँगी, कि-जहाँ रहने से मैं अपने आपही भीष्मजीका नाश करसकूँगी ॥ ९ ॥ जिसका मन क्रोधके मारे व्याकुल होरहा था ऐसी वह कन्या इस प्रकार कहकर मेरे

कृतसंकल्पा सा मे चिन्तयती वधम् ॥ १० ॥ ततो महेन्द्रं सह तैर्मुनि-भिर्भृगुसत्तमः । यथागतं तथा सोऽगान्मामुपामन्त्र्य भारत ॥ ११ ॥ ततो रथं समारुह्य स्तूयमानो द्विजातिभिः । प्रविश्य नगरं मात्रे सत्यवत्यै न्यवेदयम् ॥१२॥ यथावृत्तं महाराज सा च मां प्रत्यनन्दत । पुरुषांश्चादिशं प्राज्ञान् कन्यावृत्तान्तकर्मणि ॥ १३ ॥ दिवसे दिवसे ह्यस्या गतिजल्पितचेष्टितम् । प्रत्याहरंश्च मे युक्ताः स्थिताः प्रियहिते सदा१४ यदैव हि वनं प्रायात् सा कन्या तपसे धृता । तदैव व्यथितो दीनो गतचेता इवाभवम् ।१५। न हि मां क्षत्रियः कश्चिद् वीर्येण व्यजयत् युधि । ऋते ब्रह्मविदस्तात तपसा संशितव्रतात् ॥१६॥ अपि चैतन्मया राजन्नारदेऽपि निवेदितम् । व्यासे चैव तथा कार्य्यं तौ चोभौ मामवोचताम्१७ न विषादस्त्वया कार्य्यो भीष्म काशिसुतां प्रति । दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ॥ १८ ॥ सा कन्या तु महाराज प्रविश्याश्रममण्डलम् ।

नाशके लिये तपस्या करनेका विचार करती हुई तहाँसे चलीगई ।१०। हे भरतवंशी राजन्! फिर भृगुकुलमें श्रेष्ठ परशुरामजी मुझसे कह कर सब मुनियोंसे घिरेहुए जैसे आये थे तैसे ही महेन्द्राचलको लौट गये११तदनन्तर मैं भी रथ पर सवार होगया, चारों ओरसे ब्राह्मण मेरी प्रशंसा करने लगे तथा हस्तिनापुरमें पहुँचकर यह सब वृत्तांत मैंने अपनी माता सत्यवतीसे निवेदन किया ॥ १२ ॥ उस पर हे महाराज! सत्यवतीने मेरा अभिनन्दन (सत्कार) किया, फिर मैंने उस कन्याका समाचार जाननेके लिये उस काम पर बुद्धिमान् पुरुषों को नियत किया ॥ १३ ॥ मेरे प्रिय और हितमें नित्य लगे रहने वाले वह दूत प्रतिदिन उसकी चेष्टा, बातें और आचरणका समाचार मेरे पास लाने लगे ॥ १४ ॥ जिस समय वह कन्या तप करनेके लिये वनमें गयी थी उस ही समय मुझे दुःख हुआ था, मैं दीन और अचेत सो होगया था ॥१५॥ हे तात! तपके कारण उत्तम व्रतोंको धारण करने वाले ब्रह्मज्ञानी परशुरामजीके सिवाय दूसरे किसी क्षत्रियने मुझे युद्धमें नहीं हराया है ॥१६॥ हे राजन्! मैंने भगवान् नारदजीसे और भगवान् व्यासजीसे, इस विषयकी बात कही, उस समय उन दोनों जनोंने मुझसे कहा, कि–॥ १७ ॥ हे भीष्म! तुम काशिराजकी पुत्रीके लिये शोक न करो, ऐसा कौनसा पुरुष है जो अपने पुरुषार्थसे दैव (होनहार) को टालसके? ॥१८॥ हे राजन्! तदनन्तर काशीराजकी कन्या यमुना नदीके किनारे एक आश्रममें चलीगयी और तहाँ अलौकिक

यमुनातीरमाश्रित्य तपस्तेपेऽतिमानुषम् ॥ १९ ॥ निराहारा कृशा रूक्षा जटिला मलपंकिनी। षण्मासान् वायुभक्षा च स्थाणुभूता तपोधना॥ २० यमुनाजलमाश्रित्य सम्वत्सरमथापरम्। उदवासं निराहारा धारयामास भाविनी॥२१॥शीर्णपत्रेण चैकेन पारयामास सा परम्। सम्वत्सरं तीव्रकोपा पादांगुष्ठाग्रधिष्ठिता २२ एवं द्वादश वर्षाणि तापयामास रोदसी। निवर्त्यमानापि च सा ज्ञातिभिर्नैव शक्यते ॥ २३ ॥ ततोऽगमद् वत्सभूमिं सिद्धचारणसेविताम्। आश्रमं पुण्यशीलानां तापसानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥ तत्र पुण्येषु तीर्थेषु सा प्लुतांगी दिवानिशम्। व्यचरत् काशिकन्या सा यथाकामविचारिणी ॥ २५ ॥ नन्दाश्रमे महाराज तथोलूकाश्रमे शुभे। च्यवनस्याश्रमे चैव ब्रह्मणः स्थान एव च २६ प्रयागे देवयजने देवारण्येषु चैव ह। भोगवत्यां महाराज कौशिक-

---

तप करने लगी ॥ १९ ॥ पहिले तो तपको धन माननेवाली वह कन्या छः महीने तक काठकी समान खडी रहकर पवनका भोजन करती हुई तप करती रही उस समय वह कन्या, कुछ भोजन नहीं करती थी इसकारण उसका शरीर दुबला होगया और सूखगया, शिरके केशोंकी लटें बटगयीं और उसके देहपर मैल चढ़गया ॥ २० ॥ तदनंतर उस सुन्दर अंगोंवाली कन्याने एक वर्ष तक रात दिन यमुनाके जलमें रहकर तपस्या की ॥ २१ ॥ फिर उस कन्याने बडे भारी कोपमें भरकर अपने आप वृक्षमेंसे झड़ कर गिरे हुए एक २ पत्तेको खाकर और पैरके अँगूठों पर खडी रहकर एक वर्षतक तपस्या की ॥ २२ ॥ इसप्रकार उस कन्याने बारह वर्षतक तपस्या करके उससे आकाश और पृथिवीको तपा दिया, यह देखकर उस कन्याके सम्बन्धी उसको तप करनेसे रोकने लगे, परन्तु वह उसको रोक नहीं सके ॥ २३ ॥ हे बेटा! फिर वह कन्या यमुनाके तटको छोड़कर जहाँ सिद्ध और चारण रहते थे ऐसी पवित्र भूमियोंमें तथा पवित्र स्वभाव वाले महात्मा तपस्वियोंके आश्रममें फिरने लगी ॥ २४ ॥ और रातदिन अनेकों तीर्थोंमें स्नान करती हुई वह काशीराजकी कन्या अपनी इच्छाके अनुसार फिरने लगी ॥ २५ ॥ हे महाराज! वह कन्या नन्दके आश्रममें तथा उलूक ऋषिके सुन्दर आश्रममें और च्यवन ऋषिके आश्रममें और तहाँसे ब्रह्माजीके स्थान ब्रह्मावर्त्त में गयी २६ तहाँसे देवताओंके निमित्त यज्ञ होनेके स्थान रूप प्रयागमें, तहाँसे देवारण्य नामके तीर्थमें, भोगवती नामके तीर्थमें तथा हे महाराज! कौशिक ऋषिके आश्रममें

स्याश्रमे तथा ॥ २७॥ माण्डव्यस्याश्रमे राजन् दिलीपस्याश्रमे तथा । रामह्रदे च कौरव्य पैलगर्गस्य चाश्रमे ।२८। एतेषु तीर्थेषु तदा काशिकन्या विशाम्पते । आप्लावयत गात्राणि व्रतमास्थाय दुष्करम् ।२९। तामब्रवीच्च कौरव्य मम माता जले स्थिता । किमर्थं क्लिश्यसे भद्रे तथ्यमेव वदस्व मे ॥३०॥ सैनामथाब्रवीद्राजन् कृत्वाञ्जलिमनिन्दिता । भीष्मेण समरे रामो निर्जितश्चारुलोचने ॥ ३१ ॥ कोऽन्यस्तमुत्सहेज्जेतुमुद्यतेषु महीपतिः । साहं भीष्मविनाशाय तपस्तप्स्ये सुदारुणम्३२ विचरामि महीं देवि यथा हन्यामहं नृपम् । एतद् व्रतफलं देवि परस्मिन् तथा हि मे॥३३॥ ततोऽब्रवीत् सागरगा जिह्मञ्चरसि भाविनि। नैष कामोऽनवद्याङ्गि शक्यः प्राप्तुं त्वयाऽबले ॥ ३४ ॥ यदि भीष्मविनाशाय काश्ये चरसि वै व्रतम् । व्रतस्था च शरीरं त्वं यदि नाम वियोक्ष्यसि ३५ नदी भविष्यसि शुभे कुटिला वार्षिकोदका । दुस्तीर्था

गयी ॥२७॥ तहाँसे हे राजन् ! माण्डव्य ऋषिके आश्रममें तथा दिलीप के आश्रममें गयी तथा हे कुरुवंशी ! तहाँसे परशुरामके कुण्डपर और गर्ग ऋषिके आश्रममें गयी ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार काशीराज की पुत्री अम्बाने अनेकों व्रत करके ऊपर कहे हुए तीर्थोंमें स्नान किया ॥ २९ ॥ हे कुरुवंशी ! तदनन्तर जलमें रहनेवाली मेरी माताने उस कन्यासे कहा, कि–अरी भद्रे ! तू किस लिए दुःखी होरही है मुझे ठीक २ बतादे ॥ ३० ॥ तब हे राजन् ! उस निर्दोष काशीराजकुमारी ने दोनों हाथ जोड़कर मेरी मातासे कहा, कि–हे मधुर नेत्रोंवाली गङ्गा! भीष्मने युद्धमें परशुरामको जीत लिया है ॥ ३१ ॥ भीष्म जब धनुष उठाकर खड़ा होजाता है तो उसको जीतनेका उत्साह कौन राजा रख सकता है ? इसलिये मैं भीष्मका नाश करनेके निमित्त महादारुण तप करूँगी ॥ ३२ ॥ हे देवी ! मैं भीष्मका नाश किसप्रकार करूँ इस का उपाय खोजनेके लिए पृथिवी पर भटकती फिरती हूँ हे देवी ! मेरे इस व्रतका फल भी यही है ॥ ३३ ॥ यह सुनकर गङ्गाने कहा, कि हे सुन्दराङ्गी! तू कपटका आचरण करती है, अरी निर्दोष अङ्गोंवाली अबला ! तुझसे यह कामना पूरी नहीं होसकेगी ॥३४॥ हे काशीराज की पुत्री! तू जो भीष्मका नाश करनेके लिए व्रत कर रही है यदि इस व्रतको करते २ ही तेरा शरीरपात होगया तो ॥३५॥ हे भद्रे ! तू एक कुटिल नदीका जन्म पावेगी, तुझमें आठमास जल नहीं रहा करेगा, केवल चौमासेमें चार महीने ही जल रहा करेगा और तू जगत्में एक

न तु विज्ञेया वार्षिकी नाष्टमासिकी ॥३६॥ भीमग्राहवती घोरा सर्वभूतभयंकरी । एवमुक्त्वा ततो राजन् काशिकन्यां न्यववर्तत ॥ ३७ ॥ माता मम महाभागा स्मयमानेव भाविनी । कदाचिदष्टमे मासि कदाचिद्दशमे तथा ॥ ३८ ॥ न प्राश्नीतोदकमपि पुनः सा वरवर्णिनी । स वत्सभूमिं कौरव्य तीर्थलोभात्ततस्ततः । पतिता परिधावन्ती पुनः काशिपतेः सुता ॥ ३९ ॥ सा नदी वत्सभूम्यान्तु प्रथिताम्बेति भारत । वार्षिकी ग्राहबहुला दुस्तीर्था कुटिला तथा ॥ ४० ॥ सा कन्या तपसा तेन देहार्धेन व्यजायत । नदी च राजन् वत्सेषु कन्या चैवाभवत्तदा ॥४१

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वण्यम्बातपस्यायां षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

भीष्म उवाच । ततस्ते तापसाः सर्वे तपसे धृतनिश्चयाम् । दृष्ट्वा न्यवर्तयंस्तात किं कार्य्यमिति चाब्रुवन् ॥१॥ तानुवाच ततः कन्या तपोवृद्धानृषींस्तदा । निराकृतास्मि भीष्मेण भ्रंशिता पतिधर्मतः ॥२॥

दुष्ट तीर्थरूपसे रहेगी तथा तुझे जगत्में कोई जानेगा भी नहीं ॥३६॥ उस नदीमें भयानक ग्राह रहेंगे और वह नदी सब प्राणियोंको भयानक दीखेगी, इस प्रकार काशीराजकी कन्यासे कहकर मेरी माता महाभागा सुन्दराङ्गी गङ्गा तहाँसे अपने स्थानको चली गयी, फिर वह काशीराजकी मनोहर अङ्गोंवाली कन्या कभी आठवें महीने और कभी दशवें महीने केवल जल ही पीकर निर्वाह करने लगी ।३७-३८। हे कुरुवंशी बेटा दुर्योधन ! काशीराजकी पुत्री अम्बा तीर्थके लोभसे चारों ओर घूमती २ वत्सदेशमें आपहुँची ३९ और तहाँ वह कन्या अपने तपसे आधे शरीरमेंसे अम्बा नामकी नदीके रूपमें प्रकट होगई इस नदीमें चौमासेमें ही जल रहता था, उसमें अनेकों ग्राह रहते थे, उसके किनारे टूटेफूटे रहनेके कारण वह दुस्तर तीर्थ होगयी थी तथा टेढे आकारमें बहती थी, हे भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार तपस्याके द्वारा आधे भागसे नदी होगयी और दूसरे आधे भागसे वत्सदेशमें उस समयके राजाकी पुत्रीरूपसे उत्पन्न होगयी ॥ ४०-४१ ॥ एकसौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८६ ॥ ❁ ❁

भीष्मजी कहते हैं, कि-हे राजन् ! उस जन्ममें भी उस कन्याने फिर तप करनेका निश्चय किया, उस कन्याके तपके निश्चयको देखकर सब तपस्वियोंने उसको तप करनेसे रोका और उससे कहा, कि तुझे क्या करना है ? ॥ १ ॥ इसपर उस समय कन्याने उन तपोवृद्ध

यथार्थं तस्य दीक्षा मे न लोकार्थं तपोधनाः। निहत्य भीष्मं गच्छेयं शान्तिमित्येव निश्चयः ॥ ३ ॥ यत्कृते दुःखवसतिमिमां प्राप्तास्मि शाश्वतीम्। पतिलोकाद्विहीना च नैव स्त्री न पुमानिह ॥ ४ ॥ नाहत्वा युधि गाङ्गेयं निवर्तिष्ये तपोधनाः। एष मे हृदि संकल्पो यदिदं कथितं मया ॥५॥ स्त्रीभावे परिनिर्विण्णा पुंस्त्वार्थे कृतनिश्चया। भीष्मे प्रतिचिकीर्षामि नास्मि वार्येति वै पुनः ॥ ६ ॥ तां देवो दर्शयामास शूलपाणिरुमापतिः। मध्ये तेषां महर्षीणां स्वेन रूपेण तापसीम् ॥ ७ ॥ छन्द्यमाना वरेणाथ सा वव्रे मत्पराजयम्। हनिष्यसीति तां देवः प्रत्युवाच मनस्विनीम् ॥ ८ ॥ ततः सा पुनरेवाथ कन्या रुद्रमुवाच ह। उपपद्यत कथं देव स्त्रिया युधि जयो मम ॥ ९ ॥ स्त्रीभावेन च मे गाढं मनः शान्तमुमापते। प्रतिश्रुतश्च भूतेश त्वया भीष्मपरा-

ऋषियोंसे कहा, कि-भीष्मने मेरा अपमान किया है और मुझे पति धर्मसे भ्रष्ट कर दिया है ॥ २ ॥ इस कारण हे तपोधनो ! मैंने उन भीष्मको मारनेके लिए दीक्षा ली है, किसी सांसारिक सुखके लिए दीक्षा नहीं ली है, इस कारण भीष्मको मारकर ही मैं शान्ति पाऊँगी यह मेरा निश्चय है ॥३॥ मैं जिस भीष्मके कारणसे ऐसे सदासे दुःख में आपड़ी हूँ,स्वर्गरूप पतिलोकसे भ्रष्ट हुई हूँ और इस लोकमें न स्त्री ही रही हूँ, न पुरुष ही हुई हूँ अर्थात् मेरा जन्म व्यर्थ गया है ॥ ५ ॥ इस लिए हे तपोधनो ! मैं युद्धमें भीष्मको बिनामारे व्रत करनेसे नहीं रुकूँगी, मैंने जो तुम्हारे सामने यह बात कही है यह मेरे हृदयका सङ्कल्प है ॥ ५ ॥ मैं इस प्रकार निष्फल होनेके कारण स्त्रीपनेसे उकतागयी हूँ और मैंने पुरुष जन्म पालेनेका निश्चय कर लिया है, मैं भीष्मसे अपने वैरका बदला लूँगी, इसकारण अब तुम मुझे तप करने से न रोकना ॥ ६ ॥ फिर उन महर्षियोंकी सभाके बीचमें त्रिशूलधारी उमापति भगवान् शङ्करने तप करतीहुई काशीराजकी कन्याको अपने स्वरूपका दर्शन दिया ॥ ७ ॥ और उस कन्यासे कहा, कि-वर माँग, इस पर उस कन्याने मेरा पराजय करनेके लिए वर माँगा, तब भगवान् शिवने उत्तर दिया, कि—तू युद्धमें भीष्मका नाश करेगी ॥८॥ इस पर कन्याने रुद्रभगवान्से फिर पूछा कि-हे महाराज ! मैं स्त्री हूँ इस कारण युद्धमें मेरी विजय कैसे होगी ॥ ९ ॥ हे उमापति ! स्त्री होनेके कारण मेरा हृदय शूरतासे रहित है और हे भूतेश ! तुम मुझ से कहते हो, कि-तू भीष्मका पराजय करेगी ॥ १० ॥ इस लिए हे

अन्यः ॥ १० ॥ यथा स सत्यो भवति तथा कुरु वृषध्वज । यथा हन्या समागम्य भीष्मं शान्तनवं युधि॥११॥तामुवाच महादेवः कन्यां किल वृषध्वजः । न मे वागनृतं प्राह सत्यं भद्रे भविष्यति ॥१२॥हनिष्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे।स्मरिष्यसि च तत् सर्वं देहमन्यं गता सती ॥ १३ ॥ द्रुपदस्य कुले जाता भविष्यसि महारथः । शीघ्रास्त्रश्चित्रयोधी च भविष्यसि सुसम्मतः ॥ १४ ॥ यथोक्तमेव कल्याणि सर्वमेतद् भविष्यति । भविष्यसि पुमान् पश्चात् कस्माच्चित् कालपर्ययात् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा महादेवः कपर्दी वृषभध्वजः । पश्यतामेव विप्राणां तत्रैवान्तरधीयत ॥१६॥ ततः सा पश्यतां तेषां महर्षीणामनिन्दिता । समाहृत्य वनात्तस्मात् काष्ठानि वरवर्णिनी ॥ १७ ॥ चितां कृत्वा सुमहतीं प्रदाय च हुताशनम् । प्रदीप्तेऽग्नौ महाराज रोषदीप्तेन

वृषभध्वज शङ्कर ! जिस प्रकार आपका वरदान सच्चा हो वही उपाय करिये और ऐसा करिए, कि--जिसमें मैं युद्धमें शान्तनुके पुत्र भीष्मका सामना करके उनका नाश करसकूँ ॥ ११ ॥ तदनन्तर जिसकी ध्वजामें वृषभका चिन्ह है ऐसे शङ्करने उस कन्यासे कहा, कि मेरी वाणीसे असत्य बात नहीं निकलती है, हे भद्रे ! मेरा कहना सत्य होगा॥१२॥तू पुरुषपनेको पाकर रणमें भीष्मका नाश करेगी और दूसरे शरीरको पाने पर भी इन सब बातोंको भूलेगी नहीं, किन्तु इन सब बातोंको याद रक्खेगी ॥ १३ ॥ तू राजा द्रुपदके घर उसके पुत्ररूपसे उत्पन्न होगी और अस्त्र चलानेका ज्ञान रखने वाली, अनेकों कलाकी जानकार युद्धकलामें प्रवीण तथा बड़े पुरुषोंमें माननीय और महारथी होगी ॥ १४ ॥ हे भद्रे ! मैंने जैसा कहा है सब बात ऐसी ही होगी अब तू उत्पन्न होकर कुछ दिनों पीछे पुरुष होगी॥१५॥ ऐसा कह कर जिसकी ध्वजामें वृषभका चिह्न है ऐसे जटाधारी भगवान् शङ्कर सब ब्राह्मणों के देखते हुए तहाँ अन्तर्धान होगये ॥१६॥ फिर निर्दोष अङ्गोंवाली काशीराजकी बड़ी पुत्री सुन्दराङ्गी अम्बाने तहाँके महर्षियों के सामने ही वनमेंसे लकड़िये लाकर इकट्ठी करीं ॥ १७ ॥ और हे राजन् ! यमुना नदीके टापूमें एक बड़ी चिता चिनकर उसमें आग लगादी, जब वह आग प्रज्वलित हो उठी तब हे महाराज! काशीराज की बड़ी पुत्री अम्बाने भीष्मका नाश करनेके लिये कोपमें भरेहुए मन के साथ' मैं भीष्मका नाश करनेके लिये इस अग्निमें प्रवेश करती हूँ,

चेतसा ॥ १८ ॥ उक्त्वा भीष्मवधायेति प्रविवेश हुताशनम् । ज्येष्ठा काशिपुत्रा राजन् यमुनामभितो नदीम् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वण्यम्बाहुताशन-
प्रवेशे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

दुर्योधन उवाच । कथं शिखण्डी गाङ्गेय कन्या भूत्वा पुरा तदा पुरुषोऽभूद्युधिश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥ भीष्म उवाच । भार्या तु तस्य राजेन्द्र द्रुपदस्य महीपतेः । महिषी दयिता ह्यासीदपुत्रा च विशाम्पते ॥२॥ एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदो वै महीपतिः । अपत्यार्थं महाराज तोषयामास शंकरम् ॥ ३ ॥ अस्मद्वधार्थं निश्चित्य तपो घोरं समास्थितः । कन्यां कन्यां महादेव पुत्रो मे स्यादिति ब्रुवन् ॥४॥ भगवन् पुत्रमिच्छामि भीष्मं प्रति चिकीर्षया । इत्युक्तो देवदेवेन स्त्रीपुमांस्ते भविष्यति ॥ ५ ॥ निवर्त्तस्व महीपाल नैतज्जात्वन्यथा भवेत् । स तु गत्वा च नगरं भार्यामिदमुवाच ह ॥ ६ ॥ कृतो यत्नो महादेवस्तपसाराधितो मया । कन्या भूत्वा पुमान् भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना ७

ऐसा कह कर चिताकी धकधकाती हुई अग्निमें प्रवेश किया १८-१९ एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८७ ॥ छ छ

दुर्योधनने कहा, कि-हे गङ्गानन्दन भीष्मजी ! हे युद्ध करनेमें श्रेष्ठ पितामह ! मुझे यह तो बताओ कि-जो शिखण्डी पहिले कन्या था वह पीछे पुरुष कैसे होगया ? ॥१॥ भीष्मजी बोले कि-हे राजेंद्र ! द्रुपद राजाकी प्यारी पटरानीके पहिले पुत्र नहीं था॥२॥इसकारण राजा द्रुपदने भी उसीसमय पुत्र पानेके लिये तप करके महादेवजीको प्रसन्न किया था ॥३॥ राजा द्रुपद भी मेरा नाश करनेके लिये निश्चय करके भयंकर तपस्या कररहा था और कहता था कि-हे शंकर ! ऐसी कृपा करिये, कि-मेरे कन्या न हो किन्तु पुत्र हो॥४॥हे भगवन् ! मेरा भीष्म के साथ वैर होगया है उसका बदला लेनेके लिये पुत्रको चाहता हूँ राजा द्रुपदकी प्रार्थनाको सुन कर देवोंके देव शंकरने उस राजासे कहा, कि-तेरे ऐसा पुत्र होगा पहिले स्त्रीजातिका होगा परन्तु पीछे से पुरुष होजायगा ॥ ५ ॥ हे महीपाल ! अब तू तपको बन्द करके अपने घर जा मेरा यह कहना कभी भी मिथ्या नहीं होगा, इसप्रकार राजा द्रुपद महादेवजीसे वरदान पाकर नगरमें आया और रानीसे कहने लगा; कि-॥६॥ मैंने पुत्रके लिये उद्योग किया है और तप करके महादेवजीकी आराधना की है इस पर शङ्करने मुझसे कहा, कि-तेरे

पुनः पुनर्याच्यमानो दिष्टमित्यब्रवीच्छिवः । न तदन्यच्च भविता भवितव्यं हि तत्तथा ॥ ८ ॥ ततः सा नियता भूत्वा ऋतुकाले मनस्विनी । पत्नी द्रुपदराजस्य द्रुपदं प्रविवेश ह ॥ ९ ॥ लेभे गर्भं यथाकालं विधिदृष्टेन कर्मणा । पार्षतस्य महीपाल यथा मां नारदोऽब्रवीत् ॥१०॥ ततो दधार सा देवी गर्भं राजीवलोचना । तां स राजा प्रियां भार्य्यां द्रुपदः कुरुनन्दन ॥११॥ पुत्रस्नेहान्महाबाहुः सुखं पर्य्यचरत्तदा । सर्वानभिप्रायकृतान् भार्यालभत कौरव ॥ १२ ॥ अपुत्रस्य सतो राज्ञो द्रुपदस्य महीपतेः । यथाकालन्तु सा देवी महिषी द्रुपदस्य ह ॥ १३ ॥ कन्यां प्रवररूपान्तु प्राजायत नराधिप । अपुत्रस्य तु राज्ञः सा द्रुपदस्य मनस्विनी॥१४॥ ख्यापयामास राजेन्द्र पुत्रो ह्येष ममेति वै । ततः स राजा द्रुपदः प्रच्छन्नाया नराधिप ॥ १५ ॥ पुत्रवत् पुत्रकार्य्याणि सर्वाणि समकारयत् । रक्षणञ्चैव मन्त्रस्य महिषी द्रुपदस्य सा॥१६॥चकार सर्वयत्नेन ब्रुवाणा पुत्र इत्युत । न च तां वेद नगरे वा

यहाँ एक कन्याका जन्म होगा ॥ ७ ॥ और वह कन्या पीछेसे पुरुष होजायगी, यह सुन कर मैंने शंकरसे वारंवार पुत्रके लिये प्रार्थना करी तब शंकर कहने लगे, कि-तेरे प्रारब्धमें ऐसा ही है, अब वह पलट नहीं सकता, मैंने जैसा कहा है ऐसा ही होगा ॥ ८ ॥ फिर ऋतुकाल आने पर उत्साह वाली राजा द्रुपदकी रानीने नियमपूर्वक तयार होकर राजा द्रुपदके साथ समागम किया॥९॥और समय पर शास्त्रमें कहेहुए कर्मके अनुसार रानीने राजा द्रुपदके वीर्यसे गर्भ धारण किया यह समाचार मुझे नारदजीने सुनाया था ॥ १० ॥ तदनन्तर कमल की समान नेत्रों वाली राजा द्रुपदकी रानीने गर्भ धारण किया तब हे कुरुनन्दन ! महाबाहु राजा द्रुपद पुत्र उत्पन्न होनेकी इच्छासे अपनी प्यारी रानीकी इसप्रकार सेवा करने लगा, कि-जिसमें उसको सुख प्राप्त हो और हे कुरुवंशी दुर्योधन ! उसकी रानी भी अपनी इच्छाके अनुसार गर्भकालकी सब इच्छाओंको पूरी करनेलगी॥११।१२। हे राजन् ! फिर राजा द्रुपदकी धैर्यधारिणी पटरानीने दशवें महीने एक उत्तम रूपवती कन्याको उत्पन्न किया परन्तु उस पुत्ररहित राजाकी बुद्धिमती रानीने लोगोंमें यह प्रसिद्ध किया, कि-मेरे पुत्र हुआ है, और राजा द्रुपदने भी पुत्रीको छिपो रखकर उसके सब संस्कार पुत्रकी समान करवाये, पण्डिता पटरानी द्रुपदपत्नीने भी, मेरे पुत्र हुआ है ऐसा कहकर द्रुपदको गुप्त बातको सब प्रकारसे

कश्चिदन्यत्र पार्षतात् ॥ १७ ॥ श्रद्दधानो हि तद्वाक्यं देवस्याच्युततेजसः । छादयामास तां कन्यां पुमानिति च सोऽब्रवीत् ॥१८॥ जातकर्माणि सर्वाणि कारयामास पार्थिवः । पुंवद्विधानयुक्तानि शिखण्डीति च तां विदुः ॥१९॥ अहमेकस्तु चारेण वचनान्नारदस्य ह । ज्ञातवान् देववाक्येन अम्बायास्तपसा तथा ॥ २० ॥ ॐ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्ड्युत्पत्तावष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

भीष्म उवाच । चकार यत्नं द्रुपदः सुतायाः सर्वकर्मसु । ततो लेख्यादिषु तथा शिल्पेषु च परन्तप ॥१॥ इष्वस्त्रे चैव राजेन्द्र द्रोणशिष्यो बभूव ह । तस्य माता महाराज राजानं वरवर्णिनी ॥२॥ चोदयामास भार्यार्थं कन्यायाः पुत्रवत्तदा । ततस्तां पार्षतो दृष्ट्वा कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम् । स्त्रियं मत्वा ततश्चिन्तां प्रपेदे सह भार्यया ॥ ३ ॥ द्रुपद उवाच । कन्या ममेयं सम्प्राप्ता यौवनं शोकवर्धिनी । मया प्रच्छादिता चेयं वचनाच्छूलपाणिनः ॥४॥भार्योवाच। न तन्मिथ्या महाराज

छुपी हुई रखनेका प्रयत्न किया,उस नगरमें द्रुपदके सिवाय इस बात को और कोई नहीं जानता था ॥१३-१७॥ राजा द्रुपदने अटल तेज वाले महादेवजीकी बातपर विश्वास रक्खा और यह पुरुष है, ऐसा कहकर उस कन्याको छुपानेलगा ॥१८॥ और उस कन्याके सब जातकर्म लड़केकी समान विधिविधानसे करवाये तथा उसको सब लोग भी शिखण्डी नामसे जानने लगे ॥१९॥ केवल एक मैं ही दूतके द्वारा समाचार मँगवानेसे नारदजीके कहनेसे, देवताओंके वाक्यसे तथा अम्बाकी तपस्याके द्वारा 'यह कन्या है' इस बातको जानता था एकसौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८८ ॥ ॐ

भीष्मजी कहते हैं, कि-हे परंतप ! फिर राजा द्रुपद अपनी पुत्री को सब प्रकारके काम सिखानेका, लिखना आदि कला सिखानेका तथा शिल्पविद्याओंके सिखानेका प्रयत्न करने लगा ॥१॥ हे राजेंद्र ! यह शिखण्डी धनुषविद्या सीखनेके लिये द्रोणाचार्यका शिष्य हुआ था, हे महाराज ! फिर उस राजाकी सुन्दराङ्गी महारानी अपनी कन्याका पुत्रकी समान वेष बनानेके लिये राजा द्रुपदको प्रेरणा करने लगी, परन्तु राजा द्रुपद उस कन्याको यौवनमें आयीहुई देखकर अपनी रानीके साथ विचार करने लगा ॥२॥३॥ राजा द्रुपदने कहा, कि-मेरी यह कन्या यौवन अवस्थामें आजानेके कारण मेरे शोकको

भविष्यति कथञ्चन । त्रैलोक्यकर्त्ता कस्माद्धि मृषा वक्तुमिहार्हति ॥५॥ यदि ते रोचते राजन् वक्ष्यामि शृणु मे वचः । श्रुत्वेदानीं प्रपद्येथा स्वां मतिं पृषतात्मज ॥६॥ क्रियतामस्य यत्नेन विधिवद्दारसंग्रहः । भविता तद्वचः सत्यमिति मे निश्चिता मतिः ॥ ७ ॥ ततस्तौ निश्चयं कृत्वा तस्मिन् कार्येऽथ दम्पती । वरयाञ्चक्रतुः कन्यां दशार्णाधिपतेः सुताम् ॥८॥ ततो राजा द्रुपदो राजसिंहः सर्वान् राज्ञः कुलतः सन्निशम्य । दाशार्णकस्य नृपतेस्तनूजां शिखण्डिने वरयामास दारान् ॥९॥ हिरण्यवर्मेति नृपो योऽसौ दाशार्णकः स्मृतः । स चाप्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखण्डिने ॥ १० ॥ स च राजा दशार्णेषु महानासीत् सुदुर्जयः । हिरण्यवर्मा दुर्धर्षो महासेनो महामनाः॥११॥ कृते विवाहे तु तदा सा कन्या राजसत्तम। यौवनं समनुप्राप्ता सा च कन्या शिखण्डिनी ॥ १२ ॥ कृतदारः शिखण्डी च काम्पिल्यं पुनरागमत् ।

बढारही है और भगवान् शिवजीके कहनेसे इसके कन्यापनको छुपाया है ॥ ४ ॥ रानीने कहा कि-हे महादेवजी ! महाराजकी कही हुई बात कभी भी मिथ्या नहीं होगी क्योंकि-त्रिलोकीको रचने वाले भगवान् मिथ्या क्यों बोलेंगे ? ॥५॥ हे महाराज ! यदि आपको मेरी संमति अच्छी लगे तो मैं कहूँ मेरी बात सुनिये और हे पृषत्के पुत्र ! उसको सुनकर आपके जीमें आवे सो करना ॥ ६ ॥ आप शास्त्रमें कहीहुई विधिके अनुसार इस कुमारका यत्न करके किसी कन्याके साथ विवाह करदो क्योंकि-शिवजीकी बात सच्ची होगी इस बात का मुझे पक्का निश्चय है॥७॥इन स्त्री पुरुषोंने इसप्रकार काम करने का निश्चय करके अपनी पुत्रीका दशार्ण देशके राजाकी पुत्रीके साथ सगाई करनेका निश्चय किया ॥ ८ ॥ और राजाओंमें सिंह समान द्रुपदने सब राजाओंके पूर्वपुरुषोंके चरित्र और कुलके विषैंकी कहानियें सुनाकर उनसे दाशार्णक राजाको प्रसन्न किया और उस राजा की पुत्रीके साथ अपने पुत्र शिखण्डीका सम्बंध पक्का किया ॥ ९ ॥ दाशार्णदेशमें हिरण्यवर्मा नामका राजा राज्य करता था वह बड़ा पराक्रमी था उसने अपनी कन्याका शिखण्डीके साथ वरण करदिया १० वह राजा दशार्ण देशमें बड़ा और महादुर्जय गिनाजाता था तथा दुर्धर्ष बड़ी सेना वाला और चित्तका उदार था ॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठ राजन्! विवाह होजाने पर वह कन्या और द्रुपदकी पुत्री शिखण्डिनी धीरे २ तरुण अवस्थामें आगये ॥ १२ ॥ शिखण्डी विवाह करनेके

ततः सा वेद तां कन्यां कश्चित् कालं स्त्रियं किल। हिरण्यवर्मणः कन्या ज्ञात्वा तान्तु शिखण्डिनीम् ॥१३॥ धात्रीणाञ्च सखीनां च व्रीडमाना न्यवेदयत्। कन्यां पांचालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम् ॥१४॥ ततस्ता राजशार्दूल धात्र्यो दाशार्णिकास्तदा। जग्मुरार्त्तिं परां प्रेष्याः प्रेषयामासुरेव च॥१५॥ततो दशार्णाधिपतेः प्रेष्याः सर्वा न्यवेदयन्। विप्रलम्भं यथावृत्तं स च चुक्रोध पार्थिवः ॥१६॥ शिखण्ड्यपि महाराज पुंवद्राजकुले तदा। विजहार मुदा युक्तः स्त्रीत्वं नैवातिगोपयन् ॥१७॥ ततः कतिपयाहस्य तच्छ्रुत्वा भरतर्षभ। हिरण्यवर्मा राजेन्द्र रोषादार्त्तिं जगाम ह ॥ १८ ॥ ततो दाशार्णको राजा तीव्रकोपसमन्वितः। दूतं प्रस्थापयामास द्रुपदस्य निवेशनम् ॥१९॥ ततो द्रुपदमासाद्य दूतः कांचनवर्मणः। एक एकान्तमुत्सार्य रहो वचनमब्रवीत् ॥२०॥ दाशार्णराजो राजंस्त्वामिदं वचनमब्रवीत्। अभिषंकात् प्रकुपितो विप्रलब्धस्त्वयानघ ॥ २१ ॥ अवमन्यसे मां नृपते नूनं दुर्मन्त्रितं तव। यन्मे

अनंतर कांपिल्य नगरमें आकर रहा कुछ दिनोंके बाद उस कन्याको यह मालूम होगया, कि–शिखण्डी स्त्री है हिरण्यवर्माकी कन्याने उस को कन्या जानकर लज्जाके मारे मुख नीचेको किये हुए धाई और सखियोंसे पांचाल राजाकी कन्याके स्वरूपका वृत्तांत कहा ।१३।१४। हे राजसिंह ! उस वृत्तान्तको सुनकर दाशार्णके राजाकी धाइयें बड़ी ही दुःखित हुईं और उन्होंने अपने राजाके पास वह वृत्तान्त कहलाने के लिए अपनी दूतियें भेजीं ॥ १५ ॥ दाशार्ण राजाके साथ जो कुछ धोखेका वर्त्ताव किया गया था, यह सब वृत्तान्त उन दासियोंने कहा उससे राजाको बड़ा क्रोध आया ॥ १६ ॥ हे महाराज ! उस समय शिखण्डी भी अपने स्त्रीपनेको अत्यन्त छुपाकर आनन्दके साथ राजमहलमें विहार किया करती थी, हे भरतवंशी राजेन्द्र ! राजा हिरण्यवर्मा कितनेही दिनों बाद यह वृत्तान्त सुनकर क्रोधके मारे खिन्न होने लगा ॥१८॥ और उस दाशार्णक राजाने बड़ाभारी कोप करके राजा द्रुपदके घर एक दूत भेजा ॥१९॥ वह हिरण्यवर्माका दूत राजा द्रुपद के पास गया और राजाको एकान्तमें लेजाकर उससे गुप्तबात कहता हुआ बोला, कि–॥२०॥ हे निर्दोष राजन् ! तुमने दाशार्ह देशके राजा को धोखादिया है वह तुमसे तिरस्कार पाकर कोपमें भरगया है और उसने तुमसे यह कहलाकर भेजा है, कि–॥ २१ ॥ हे राजन् ! तू मेरा अपमान करता है, तेरा काम वास्तवमें कपटसे भरा हुआ है, क्यों

कन्यां स्वकन्यार्थे मोहाद्याचितवानसि ॥ २२ ॥ तस्याद्य विप्रलम्भस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते । एष त्वां सजनामात्यमुद्धरामि स्थिरो भव ॥२३॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि हिरण्यवर्मदूतप्रेषण एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

भीष्म उवाच । एवमुक्तस्य दूतेन द्रुपदस्य तदा नृप । चोरस्येव गृहीतस्य न प्रावर्त्तत भारती ॥ १ ॥ स यत्नमकरोत् तीव्रं सम्बन्धिष्वनुसानने । दूतैर्मधुरसम्भाषैर्नैतदस्तीति सन्दिशन् ॥ २ ॥ स राजा भूय एवाथ ज्ञात्वा तत्त्वमथागमत् । कन्येति पांचालसुतां त्वरमाणो विनिर्ययौ ॥ ३ ॥ ततः संप्रेषयामास मित्राणाममितौजसाम् । दुहितुर्विप्रलम्भं तं धात्रीणां वचनात्तदा ॥ ४ ॥ ततः समुदयं कृत्वा बलानां राजसत्तमः । अभियाने मतिञ्चक्रे द्रुपदं प्रति भारत ५ ततः सम्मंत्रयामास मन्त्रिभिः स महीपतिः । हिरण्यवर्मा राजेन्द्र पाञ्चाल्यं पार्थिवं प्रति ॥ ६ ॥ तत्र वै निश्चितं तेषामभूद्राज्ञां महात्म-

---

कि-तूने मूर्खतासे अपनी कन्याका विवाह करनेके लिए मेरी कन्याको माँग लिया था ॥२२॥ इस लिए हे दुष्टबुद्धि वाले राजन्! अब आज तू अपने उस कपटका फल भोग, मैं तेरे कुटुम्बी, तेरा परिवार और मंत्रियोंके सहित तेरा नाश करडालूँगा तू तयार होकर बैठा रहना२३ एकसौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८९ ॥ छ छ

भीष्मजीने कहा, कि-हे राजन्! दूतने इस प्रकार राजा द्रुपदसे कहा, तब कैद किए हुए चोरकी समान राजा द्रुपदके मुखमेंसे एक बात भी नहीं निकलसकी ॥ १ ॥ फिर उसने मीठा बोलने वाले दूतों के द्वारा 'तुम्हारे विचारके अनुसार नहीं है, इस प्रकारका सन्देशा भेजकर समधीको प्रसन्न करनेके लिए बड़ा यत्न किया ॥ २ ॥ परन्तु राजा हिरण्यवर्माने फिर पता लगाकर पक्की रीतिसे जान लिया, कि-यह तो पाञ्चालराजकी कन्या ही है और इसकारणसे फिर उस ने राजा द्रुपदके ऊपर शीघ्रतासे चढ़ाई करनेका विचार किया ॥३॥ और उस राजाने धाइयोंके कहनेके अनुसार 'मेरी पुत्रीको ठग लिया' यह बात बड़े २ बलवान् अपने मित्रोंको भी कहला भेजी ॥ ४ ॥ और हे भरतवंशी राजन्! उस श्रेष्ठ राजाने सेनाओंका बड़ाभारी समूह इकट्ठा करके राजा द्रुपदके ऊपर चढाई करनेका विचार किया ॥५॥ हे राजेंद्र! हिरण्यवर्माने पांचालराजके ऊपर चढ़ाई करनेसे पहिले मंत्रियोंके साथ इस विषयमें विचार किया ॥ ६ ॥ उस समय महात्मा

नाम् । तथ्यं भवति चेदेतत् कन्या राजन् शिखण्डिनी ॥ ७ ॥ बद्ध्वा पञ्चालराजानमानयिष्यामहे गृहम् । अन्यं राजानमाधाय पाञ्चालेषु नरेश्वरम् ॥ ८ ॥ घातयिष्यामि नृपतिं पाञ्चालं सशिखण्डिनम् ॥९॥ तत्तदा तु मामाज्ञाय पुनर्दूतान्नराधिपः । प्रास्थापयत् पार्षताय निहन्मीति स्थिरो भव ॥ १० ॥ भीष्म उवाच । स हि प्रकृत्या वै भीतः किल्बिषी च नराधिपः । भयन्तीव्रमनुप्राप्तो द्रुपदः पृथिवीपतिः ॥११॥ विसृज्य दूतान् दाशार्णे द्रुपदः शोकमूर्च्छितः । समेत्य भार्य्यां रहिते वाक्यमाह नराधिपः ॥ १२ ॥ भयेन महताविष्टो हृदि शोकेन चाहतः । पाञ्चालराजो दयितां मातरञ्च शिखण्डिनः ॥१३॥ अभियास्यति मां कोपात् सम्बन्धी सुमहाबलः । हिरण्यवर्मा नृपतिः कर्षमाणो वरूथिनीम् ॥ १४ ॥ किमिदानीं करिष्यावो मूढौ कन्यामिमां प्रति । शिखण्डी किल पुत्रस्ते कन्येति परिशंकितः॥१५॥इति संचिन्त्य यत्नेन समित्रः

राजाओंने ऐसा निश्चय किया, कि--हे राजन् ! पाञ्चाल राजाका जो शिखण्डी है वह कन्या है, 'यह बात यदि सच्ची हो ॥ ७ ॥ तो हम पाञ्चालराजको कैद करके अपने यहाँ लायेंगे और पांचालदेशमें दूसरे राजाको बैठाल देंगे८तथा पाञ्चालराजको उसकी पुत्री शिखंडिनीके सहित मारडालेंगे९ इसके अनन्तर राजा हिरण्यवर्माने राजा द्रुपदके कपटको अच्छे प्रकारसे जानकर उसके पास फिर दूतको भेजा और उससे कहलाया कि-तू स्थिर रहना अब मैं तेरा नाश करता हूँ ।१०। भीष्मजी कहते हैं कि-हे राजन् ! पृथिवीपति राजा द्रुपद डरपोक स्वभावका था, तिसपर भी उसने अपराध किया था, इस कारण वह बड़ा ही भयभीत होगया ॥ ११ ॥ दाशार्णक राजाके पास दूत भेजनेके अनन्तर शोकसे मूर्छितहुआ राजा द्रुपद एकांतमें अपनी स्त्री के पास जाकर कहने लगा ॥१२ ॥ बड़ेभारी भयसे भरा और शोकके कारण जिसके हृदय पर चोट लग रही है ऐसा द्रुपद शिखण्डीकी माता अपनी प्रियासे कहने लगा, कि-॥१३॥ कोपमें भरा हुआ महाबली मेरा समधी राजा हिरण्यवर्मा बड़ीभारी सेनाको लिए हुए मेरे ऊपर चढाई करके आरहा है ॥१४॥ इस कन्याके विषयमें हम दोनोंने बड़ी मूढता की है, अब हम क्या करेंगे, क्यों कि--हे प्रिये ! जिस शिखण्डीको तूने पुत्र प्रसिद्ध किया था, वह कन्या है, इस बातको हिरण्यवर्माको पूरी२ शंका होगयी है१५तब उसने इस विषयमें बड़ा उद्योग करके इसके कन्या होनेका निश्चय करलिया और यह समझ

सबलानुगः। वंचितोऽस्मीति मन्वानो मां किलोद्धर्तुमिच्छति ।१६। किमत्र तथ्यं सुश्रोणि मिथ्या किं ब्रूहि शोभने। श्रुत्वा त्वत्तः शुभे वाक्यं संविधास्याम्यहं तथा ॥ १७ ॥ अहं हि संशयं प्राप्तो बाला चेयं शिखण्डिनी। त्वञ्च राज्ञि महत् कृच्छ्रं सम्प्राप्ता वरवर्णिनि ॥ १८ ॥ सा त्वं सर्वविमोक्षाय तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः। तथा विदध्यां सुश्रोणि कृत्यमाशु शुचिस्मिते ॥ १९ ॥ शिखण्डिनि च मा भैस्त्वं विधास्ये तत्र तत्त्वतः। कृपयाहं वरारोहे वञ्चितः पुत्रधर्मतः ॥ २० ॥ मया दाशार्णको राजा वञ्चितः स महीपतिः। तदाचक्ष्व महाभागे विधास्ये तत्र यद्धितम् ॥ २१ ॥ जानता हि नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै। प्रकाशं चोदिता देवी प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि द्रुपदप्रश्ने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

भीष्म उवाच। ततः शिखण्डिनीमाता यथा तत्त्वं नराधिप ।

कर कि-इस विषयमें द्रुपदने मुझे धोखा दिया है, अपने मित्र और सेनाको साथमें लियेहुए आरहा है और मेरा नाश करना चाहता है१६ हे सुंदर कमर वाली सुंदरी ! इस विषयमें कितनी वात सच्ची है, और झूठी है, यह बता, तुझसे ठीक बात सुनकर मैं उसके अनुसार ही काम करूँगा मैं बड़े संदेहमें पड़ गया हूँ, और हे रानी ! इस बालक शिखण्डिनी और तेरे ऊपर भी इस समय बड़ा ही कष्ट पड़ने वाला है ॥१८॥ इसलिए तू सबोंको भयसे छुटानेके लिये ठीकर बात बता, हे पवित्र हास्यवाली सुन्दरी ! तेरे कहनेके अनुसार ही कर्त्तव्य कामको करूँगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! यह पुत्र नहीं है और तूने इस शिखण्डीके विषयमें मुझसे झूठ बोला है, इसके लिए तू भयभीत न हो, इस विषयमें मैं कृपाभावसे तत्त्व बातको प्रकाशित करके तुम दोनोंका भरण पोषण करूँगा ॥ २० ॥ मैंने उस दाशार्ण देशके राजा को धोखा दिया है, अतः अब इस विषयमें जो हितकी बात समझती हो वह बता, हे महाभागे ! मैं उसके अनुसार ही काम करूँगा ॥२१॥ यद्यपि राजा द्रुपद इस सब बातको जानता था तो भी उसने दूसरों के सामने भेद खोलनेके लिये सबके सामने रानीसे इसप्रकार पूछा२२ एकसौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९० ॥

भीष्मजी कहते हैं, कि—हे महाबाहु राजा दुर्योधन ! तब तो शिखंडीकी माताने अपने पतिसे सच्ची बात कहदी कि-यह शिखंडी

आचचक्षे महाबाहो भर्त्रे कन्यां शिखण्डिनीम् ॥ १ ॥ अपुत्रया मया राजन् सपत्नीनां भयादिदम् । कन्या शिखण्डिनी जाता पुरुषो वै निवेदिता ॥ २ ॥ त्वया चैव नरश्रेष्ठ तन्मे प्रीत्यानुमोदितम् । पुत्रकर्म कृतञ्चैव कन्यायाः पार्थिवर्षभ ॥३॥ भार्या चोढा त्वया राजन् दशार्णाधिपतेः सुता । मया च प्रत्यभिहितं देववाक्यार्थदर्शनात् । कन्या भूत्वा पुमान् भावीत्येवं चैतदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ एतच्छ्रुत्वा द्रुपदो यज्ञसेनः सर्वं तत्वं मन्त्रविद्भ्यो निवेद्य । मन्त्रं राजा मन्त्रयामास राजन् यथायुक्तं रक्षणे वै प्रजानाम् ॥ ५ ॥ सम्बन्धकं चैव समर्थ्य तस्मिन् दाशार्णके वै नृपतौ नरेन्द्रः । स्वयं कृत्वा विप्रलम्भं यथावन्मन्त्रैकाग्रो निश्चयं वै जगाम ॥ ६ ॥ स्वभावगुप्तं नगरमापत्काले तु भारत । गोपयामास राजेन्द्र सर्वतः समलंकृतम् ॥ ७ ॥ आर्तिञ्च परमां राजा जगाम सह भार्यया । दशार्णपतिना सार्धं विरोधे भरतर्षभ ॥ ८ ॥ कथं सम्बन्धिना सार्धं न मे स्याद् विग्रहो महान् । इति संचिन्त्य

कन्या है ॥१॥ हे राजन् ! मेरे कोई पुत्र नहीं था, सो सपत्नियोंके भय से मैंने कन्या शिखण्डिनीको जन्मके समय पुत्र कह दिया था ॥ २ ॥ और हे राजन् ! आपने भी इस बातका प्रसन्नतासे अनुमोदन किया था और हे राजेन्द्र ! आपने इस कन्याके सब संस्कार पुत्रकी समान किये थे ॥ ३ ॥ और हे राजन् ! दशार्णपतिकी कन्याके साथ आपने इसका विवाह कर दिया और मैंने भी यह बात महादेवजीकी बातके अनुसार कही थी, क्योंकि—भगवान् शंकरने कहा था, कि—यह कन्यारूपसे जन्म लेकर पीछे पुरुष हो जायगा इसलिए इसके कन्याभाव पर ध्यान नहीं दिया था ॥४॥ हे राजन् ! द्रुपद नामसे प्रसिद्ध राजा यज्ञसेनने यह बात सुन कर सच्चा २ सब समाचार अपने मन्त्रियोंसे कहा और प्रजाओंकी ठीक २ रक्षा करनेके लिए उन मंत्रियोंके साथ विचार करने लगा ॥ ५ ॥ हे नरेन्द्र दुर्योधन ! जिस दशार्णपतिको पूरा२ धोखा दिया था उसके विषयमें एकाग्रताके साथ संमति करके यह निश्चय किया, कि—उससे कहा जाय कि—आप तो हमारे सम्बन्धी हैं हमने आपको धोखा नहीं दिया है ॥६॥ हे राजेंद्र ! फिर सब प्रकारसे सजे हुए और स्वभावसे ही सुरक्षित अपने नगर की उस आपत्तिके समय और भी रक्षाका प्रबन्ध किया ॥ ७ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! दशार्णपतिके साथ विरोध होने पर अपनी स्त्रीके सहित राजा द्रुपदने बड़ा ही दुःख माना ॥ ८ ॥ कौनसा

मनसा देवतामर्च्चयत् तदा ॥ ९ ॥ तन्तु दृष्ट्वा तदा राजन् देवी देव परन्तदा । अर्च्चां प्रयुञ्जानमथो भार्या वचनमब्रवीत् ॥१०॥ देवानां प्रतिपत्तिश्च सत्यं साधमता सताम्। किमु दुःखार्णवं प्राप्य तस्मादर्च्चयतां गुरून् ॥११॥ दैवतानि च सर्वाणि पूज्यन्तां भूरिदक्षिणम् । अग्नयश्चापि हूयन्तां दाशार्णप्रतिषेधने ॥१२॥ अयुद्धेन निवृत्तिञ्च मनसा चिन्तय प्रभो । देवतानां प्रसादेन सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १३ ॥ मन्त्रिभिर्मन्त्रितं सार्धं त्वया पृथुललोचन । पुरस्यास्याविनाशाय यच्च राजंस्तथा कुरु ॥ १४ ॥ दैवं हि मानुषोपेतं भृशं सिध्यति पार्थिव । परस्परविरोधाद्धि सिद्धिरस्ति न चैतयोः ॥ १५ ॥ तस्माद्विधाय नगरे विधानं सचिवैः सह । अर्च्चयस्व यथाकामं दैवतानि विशाम्पते १६ एवं सम्भाषमाणौ तु दृष्ट्वा शोकपरायणौ । शिखंडिनी तदा कन्या

उपाय किया जाय कि-जिसमें समधीके साथ यह बड़ाभारी विरोध न होनेपावे अपने मनमें ऐसी चिंता करके उस समय उसने देवपूजन का आरम्भ कर दिया ॥९॥ हे राजन् ! उस समय तिस राजा द्रुपद को देवताकी परमभक्तिके साथ पूजा करतेहुए देखकर उसकी स्त्रीने यह बात कही, कि-॥ १० ॥ हे नाथ ! सुखी पुरुषको भी नित्य देवपूजन करना चाहिये यह सत्पुरुषोंका सिद्धांत है फिर दुःखसागरमें पड़कर देवपूजा करनेके विषयमें तो कहना ही क्या है ? इसलिये आप देवपूजनके निमित्त ब्राह्मणोंका पूजन करिये ॥ ११ ॥ इस दशार्णपति के लौटालनेके लिये बहुतसी दक्षिणायें देकर सकल देवताओंकी पूजा करो और अग्नियोंमें हवन करो ॥१२॥ और हे प्रभो ! मनमें यह ध्यान करो, कि-दशार्णपति विना युद्ध किये ही लौटजाय देवताओंके अनुग्रहसे यह सब काम सिद्ध होजायगा ॥१३॥ हे विशाललोचन ! तुमने अपने मन्त्रियोंके साथ जो सम्मति की है उसके अनुसार ऐसा उपाय करो कि-जिसमें इस नगरका नाश न हो ॥ १४ ॥ हे राजन् ! देवता का अनुग्रह प्राप्त हो और मनुष्य साथमें अपना पुरुषार्थ करे तो काम अच्छे प्रकार सिद्ध होजाता है और यदि इन दोनों बातोंमें परस्पर विरोध हो अर्थात् पुरुषार्थ करो और परमात्मामें विश्वास न करो अथवा केवल परमात्माके शिर धर कर अपने आप निकम्मे पड़े रहो तो काम सिद्ध नहीं होता है ।१५। इसकारण हे राजन् ! आप मंत्रियों के द्वारा नगरकी रक्षाका प्रबन्ध करके इच्छानुसार देवताओंकी पूजा करिये ॥ १६ ॥ इसप्रकार बातें करते हुए और शोकसे व्याकुल हुए

व्रीडितेव तपस्विनी ॥ १७ ॥ ततः सा चिंतयामास मत्कृते दुःखितावुभौ । इमाविति ततश्चक्रे मतिं प्राणविनाशने ॥१८॥ एवं सा निश्चयं कृत्वा भृशं शोकपरायणा । निर्जगाम गृहं त्यक्त्वा गहनं निर्जनं वनम् ॥ १९ ॥ यक्षेणर्द्धिमता राजन् स्थूणाकर्णेन पालितम् । तद्भयादेव च जनो विसर्ज्जयति तद्वनम् ॥ २० ॥ तत्र च स्थूणभवनं सुधामृत्तिकलेपनम् । लाजोल्लापिकधूमाढ्यमुच्चप्राकारतोरणम् ॥ २१ ॥ तत् प्रविश्य शिखंडी सा द्रुपदस्यात्मजा नृप । अनश्नाना बहुतिथं शरीरमुपशोषयत् ॥२२॥ दर्शयामास तां यक्षः स्थूणो मार्द्दवसंयुतः । किमर्थोऽयं तवारम्भः करिष्ये ब्रूहि मा चिरम् ॥ २३ ॥ अशक्यमिति सा यक्षं पुनः पुनरुवाच ह । करिष्यामीति वै क्षिप्रं प्रत्युवाचाथ गुह्यकः ॥ २४ ॥ धनेश्वरस्यानुचरो वरदोऽस्मि नृपात्मजे । अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥२५॥ ततः शिखंडी तत् सर्वमखि-

अपने माता पिताको देखकर उस समय वह तपस्विनी शिखण्डिनी कन्या लज्जितसी होगयी ॥ १७ ॥ और वह चिन्ता करने लगी, कि-यह दोनों मेरे कारणसे दुःखी होरहे हैं, इसकारणसे तदनन्तर उसने अपने प्राण खोदेनेका निश्चय किया ॥१८॥ ऐसा निश्चय करके बड़े भारी शोकमें भरीहुई वह कन्या घरको त्यागकर घोर निर्जन वनमें चली गयी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! वह वन बड़ी सम्पत्तिवाले स्थूणाकर्ण नामवाले यक्षके द्वारा रक्षा किया हुआ था, उसके डरके मारे कोई भी पुरुष उस वनमें नहीं जाता था ॥ २० ॥ तहाँ उस स्थूणाकर्णका एक भवन बना हुआ था जो कि-चूनेके गारेसे लिपाहुआ था,उसका परकोटा और छज्जे बड़े ऊँचे थे तथा उसमेंसे खसकी सुगन्धवाला धुआँ निकल रहा था ॥ २१ ॥ हे राजन् ! वह द्रुपदकी पुत्री शिखंडी उसमें ही घुस गयी और तहाँ बहुत समय तक भोजन न करके उसने अपने शरीरको सुखादिया ॥ २२ ॥ तब एक दिन बड़े कोमल स्वभाववाले उस स्थूण यक्षने शिखण्डिनीको दर्शन दिया और बोला, कि-अरी कन्या ! तू यह अनुष्ठान किसलिये कररही है, तू शीघ्र ही बता, मैं तेरे मनकी कामनाको पूरी करूँगा ॥२३॥ शिखंडीने उस यक्षसे वारंवार यही कहा, कि-मेरा काम तुझसे नहीं होसकेगा, परन्तु उस यक्षने उत्तर दिया कि-मैं तेरे कामको जरा देरमें सिद्ध करदूँगा ॥ २४ ॥ हे राजकुमारी ! मैं वरदान देनेकी शक्तिवाला कुवेरका अनुचर हूँ, मैं न देने योग्य वस्तु भी तुझे दूँगा, बता तेरी क्या अभिलाषा है ॥ २५ ॥

लैन न्यवेदयत्। तस्मै यक्षप्रधानाय स्थूणाकर्णाय भारत ॥२६॥ शिखण्डुयुवाच। अपुत्रो मे पिता यक्ष न चिरान्नाशमेष्यति अभियास्यति सक्रोधो दशार्णाधिपतिर्हि तम ॥ २७ ॥ महाबलो महोत्साहः स हेमकवचो नृपः। तस्माद्रक्षस्व मां यक्ष मातरं पितरञ्च मे ॥ २८ ॥ प्रतिज्ञातो हि भवता दुःखप्रतिशमो मम। भवेयं पुरुषो यक्ष त्वत्प्रसादादनिन्दितः ॥ २९ ॥ यावदेव स राजा वै नोपयाति पुरं मम। तावदेव महायक्ष प्रसादं कुरु गुह्यक ॥ ३० ॥ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि शिखण्डयुपाख्याने एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

भीष्म उवाच। शिखण्डिवाक्यं श्रुत्वाथ स यक्षो भरतर्षभ। प्रोवाच मनसा चिन्त्य दैवेनोपनिपीडितः॥१॥भवितव्यं तथा तद्धि मम दुःखाय कौरव। भद्रे कामं करिष्यामि समयन्तु निबोध मे २ किंचित् कालांतरं दास्ये पुल्लिंगं स्वमिदं तव। आगन्तव्यं त्वया काले सत्यञ्चैव वदस्व मे ॥ ३॥ प्रभुः संकल्पसिद्धोऽस्मि कामचारी विहङ्गमः। मत्प्र-

---

हे भरतवंशी ! तब तो शिखंडीने उस यक्षोंके प्रधान स्थूणाकर्णसे अपना सब वृत्तान्त कहा ॥ २६ ॥ शिखंडी बोली कि-हे यक्ष ! मेरे पिताके कोई पुत्र नहीं है और वह शीघ्र ही मरणको प्राप्त होजायगा क्योंकि-दाशार्ण देशका राजा क्रोधमें भराहुआ उसके ऊपर चढ़ायी करके आरहा है ॥ २७ ॥ वह राजा बड़ा बलवान्, महा उत्साही और सोनेका कवच पहरे हुए है, हे यक्ष ! मेरी और मेरे माता, पिताकी उससे रक्षा कर ॥२८॥ हे यक्ष ! तूने मुझसे मेरा दुःख दूर करदेनेकी प्रतिज्ञा की है, इसलिये ऐसा कर कि-मैं तेरे अनुग्रहसे परम सुन्दर पुरुष बनजाऊँ॥ २९ ॥ हे गुह्यक जातिके महायक्ष ! जबतक वह राजा मेरे नगरके समीप आकर न पहुँचे उससे पहिले ही मेरे ऊपर अनुग्रह कर ॥ ३० ॥ एकसौ इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९१ ॥ ❀

भीष्मजी कहते हैं, कि-हे भरतवंशमें श्रेष्ठ दुर्योधन ! प्रारब्धका मारा वह यक्ष शिखंडीकी बात सुनकर मनमें कुछ विचारने लगा और फिर शिखंडीसे बोला ॥ १ ॥ हे कुरुवंशी ! उसने कहा कि हे भद्रे ! तेरा यह काम ऐसे ही होजायगा, परन्तु इसमें मुझे दुःख उठाना पड़ेगा,परन्तु इस विषयमें मैं एक नियम करता हूँ,उसको सुन२ कुछ समयके लिये मैं अपना यह पुरुषत्व तुझे दूँगा परन्तु तू नियत समय पर पुरुषत्व लौटानेके लिये आजाना इस बातको मुझसे सत्य

साद्यात् पुरं चैव त्राहि बन्धूंश्च केवलम् ॥४॥ स्त्रीलिंगं धारयिष्यामि तदेवं पार्थिवात्मजे। सत्यं मे प्रतिजानीहि करिष्यामि प्रियं तव ॥५॥ शिखण्ड्युवाच। प्रति दास्यामि भगवन् पुंलिंगं तव सुव्रत। किंचित् कालान्तरं स्त्रीत्वं धारयस्व निशाचर ॥६॥ प्रतियाते दशार्णे तु पार्थिवे हेमवर्मणि। कन्यैव हि भविष्यामि पुरुषस्त्वं भविष्यसि ॥७॥ भीष्म उवाच। इत्युक्त्वा समयं तत्र चक्राते तावुभौ नृप। अन्योऽन्यस्याभिसन्देहे तौ संक्रामयतां ततः ॥८॥ स्त्रीलिङ्गं धारयामास स्थूणो यक्षोऽथ भारत। यक्षरूपञ्च तद्दीप्तं शिखंडी प्रत्यपद्यत ॥९॥ ततः शिखंडी पाञ्चाल्यः पुंस्त्वमासाद्य पार्थिव। विवेश नगरं हृष्टः पितरञ्च समासदत् ॥१०॥ यथावृत्तन्तु तत् सर्वमाचख्यौ द्रुपदस्य तत्। द्रुपदस्तस्य तच्छ्रुत्वा हर्षमाहारयत्परम् ॥११॥ सभार्य्यस्तच्च सस्मार महेश्वरवचस्तदा। ततः सम्प्रेषयामास दशार्णाधिपतेर्नृपः ॥१२॥

कह जा ॥३॥ मैं समर्थ, जो जीमें आवे उस कामको सिद्ध करनेवाला, चाहे तहाँ विचरनेवाला और विशेषकर आकाशमें विहार करनेवाला हूँ तू मेरे अनुग्रहसे केवल अपने नगर और परिवारकी रक्षा कर ॥४॥ हे राजकुमारी! मैं तेरे इस स्त्रीरूपको धारण करूँगा, मुझसे तू सच्ची प्रतिज्ञा कर तो मैं यह तेरा प्रिय काम करूँगा ॥५॥ शिखंडीने कहा, कि-हे सुव्रत निशाचर! मैं कुछ समयके अनंतर तेरा पुरुषरूप तुझे लौटादूँगी, तू कुछ कालके लिये मेरे स्त्रीरूपको धारण करले ॥६॥ दाशार्ण देशके राजा हिरण्यवर्माके लौट जाने पर मैं कन्या ही बन जाऊँगी और तुम पुरुष बनजाना ॥७॥ भीष्मजी कहते हैं कि-तहाँ ऐसा कहकर उन दोनोंने प्रतिज्ञा कर ली और जब परस्पर शरीरको बदला तो शिखंडीमें पुरुषपना आगया और उस यक्षमें स्त्रीभाव आगया ॥८॥ तदनन्तर कुछ दिनोंके लिये स्थूण यक्षने स्त्रीके चिन्ह को धारण किया और शिखंडीने स्पष्टरूपसे उस यक्षके प्रचण्ड पुरुषरूपको धारण किया ॥९॥ हे राजन्! तदनन्तर पुरुषत्वको पाकर पंचालराजका पुत्र बनाहुआ शिखंडी बड़ा प्रसन्न होता हुआ नगरमें घुसा और अपने पिताके पास जापहुँचा ॥१०॥ और वह घटना जिस प्रकार हुई थी सो सब राजा द्रुपदको कहकर सुनाई, राजा द्रुपद शिखण्डीकी उस बातको सुन कर बड़े हर्षको प्राप्त हुआ ॥११॥ उस समय राजा द्रुपदको और उसकी स्त्रीको भगवान् शिवके वह वचन याद आये और दाशार्ण देशके राजाके पास दूत भेजकर कह-

पुरुषोऽयं मम सुतः श्रद्धत्तां मे भवानिति। अथ दाशार्णको राजा सहसाभ्यागमत्तदा ॥ १३॥ पाञ्चालराजं द्रुपदं दुःखशोकसमन्वितः। ततः काम्पिल्यमासाद्य दशार्णाधिपतिस्ततः॥१४॥ प्रेषयामास सत्कृत्य दूतं ब्रह्मविदां वरम्। ब्रूहि मद्वचनाद् दूत पाञ्चाल्यं तं नृपाधमम्॥१५॥ यन्मे कन्यां स्वकन्यार्थे वृतवानसि दुर्मते। फलं तस्यावलेपस्य द्रक्ष्यस्यद्य न संशयः॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तु तेनासौ ब्राह्मणो राजसत्तम। दूतः प्रयातो नगरं दशार्णनृपचोदितः ॥ १७ ॥ तत आसादयामास पुरोधा द्रुपदं पुरे। तस्मै पांचालको राजा गामर्घ्यं च सुसत्कृतम् १८ प्रापयामास राजेन्द्र सह तेन शिखंडिना। ।तां पूजां नाभ्यनन्दत् स वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥ १९ ॥ यदुक्तं तेन वीरेण राज्ञा कांचनवर्मणा। यत्तेऽहमधमाचार दुहित्रास्म्यभिवञ्चितः ॥२०॥ तस्य पापस्य करणात् फलं प्राप्नुहि दुर्मते। देहि युद्धं नरपते ममाद्य रणमूर्धनि ॥२१॥ उद्धरिष्यामि ते सद्यः सामात्यसुतबान्धवम्।तदुपालंभसंयुक्तं श्रावितः

लाया, कि—॥ १२ ॥ मेरा पुत्र पुरुष है, मेरी इस बातका तुम विश्वास कर लो,दाशार्णपति उस समय दुःख और शोकमें डूबा हुआ था, वह द्रुपदका सन्देशा मिलते ही तुरन्त काम्पिल्य देश पर चढ आया और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एक दूतका सत्कार कर उसको पांचालराज द्रुपद के पास भेजा और भेजते समय कह दिया कि—हे दूत ! तू मेरे कहनेके अनुसार पांचालके नीच राजासे कहना, कि—।१३-१५। अरे दुष्टबुद्धि! तूने जो अपनी कन्याके लिये मेरी कन्याका विवाह कर लिया है आज तू निःसन्देह इस मदका फल देखेगा ॥१६॥ हे राजसत्तम ! इसप्रकार दाशार्णपतिने उस ब्राह्मण दूतसे कहा और फिर उसको पांचालराज के पास भेज दिया ॥ १७॥ वह दूत पांचालराजके नगरमें पहुँचा और राजा द्रुपदके पास गया पांचालराज द्रुपदने और उसके पुत्र शिखंडी ने दूत बनकर आयेहुए उस दशार्णपतिके पुरोहितको अर्घ देकर एक बैल भेंट किया और उसका बड़ा उत्तम सत्कार करने लगे परन्तु दूतने उस पूजाको लेना स्वीकार नहीं किया और यह बात कहने लगा; कि—॥ १८ ॥ १९ ॥ उस वीर राजा हिरण्यवर्माने कहा है, कि— अरे अधम बुद्धिवाले ! तूने अपनी पुत्रीके साथ मेरी पुत्रीका विवाह करके मुझे धोखा दिया है ॥ २० ॥ अरे नीच कर्म करनेवाले राजन् ! इस पापके करनेका फल तू अब पाले, आज रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करनेको तयार होजा ॥ २१ ॥ मैं तेरे मन्त्री, पुत्र और बान्धवों सहित

किल पार्थिवः ॥ २२ ॥ दशार्णपतिना चोक्तो मन्त्रिमध्ये पुरोधसा। अब्रवीद् भरतश्रेष्ठ द्रुपदः प्रणयानतः ॥ २३ ॥ यदाह मां भवान् ब्रह्मन् सम्बन्धिवचनाद्वचः। अस्योत्तरं प्रतिवचो दूतो राज्ञे वदिष्यति २४ ततः संप्रेषयामास द्रुपदोऽपि महात्मने। हिरण्यवर्मणे दूतं ब्राह्मणं वेदपारगम् २५ समागम्य तु राजानं दशार्णाधिपतिं तदा। तद्वाक्यमाददे राजन् यदुक्तं द्रुपदेन ह २६ आगमः क्रियतां व्यक्तः कुमारोऽयं सुतो मम मिथ्यैतदुक्तं केनापि तदश्रद्धेयमित्युत ॥ २७ ॥ ततः स राजा द्रुपदस्य श्रुत्वा विमर्शयुक्तो युवतीर्वरिष्ठाः। सम्प्रेषयामास सुचारुरूपाः शिखण्डिनं स्त्री पुमान् वेति वेत्तुम् ॥ २८ ॥ ताः प्रेषितास्तत्त्वभावं विदित्वा प्रीत्या राज्ञे तच्छशंसुर्हि सर्वम्। शिखण्डिनं पुरुषं कौरवेन्द्र दशार्णराजाय महानुभावम् ॥ २९ ॥ ततः कृत्वा तु राजा स आगमं प्रीतिमा-

---

तेरा क्षणभरमें नाश कर डालूँगा, यह बात उस दूतने राजा द्रुपदको बड़े उपालंभ (धमकी) के साथ सुनायी ॥ २२ ॥ हे भरतसत्तम! उस पुरोहितने जिस समय मन्त्रियोंके बीचमें बैठेहुए राजा द्रुपदसे दशार्णपतिका यह सन्देशा कहा तब द्रुपदने प्रेमके साथ नवकर कहा, कि-॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन्! तुमने मुझसे मेरे समधीके कहनेके अनुसार जो बात कही है इसका उत्तर मेरा दूत जाकर तुम्हारे राजासे कह आवेगा ॥ २४ ॥ ऐसा कहनेके अनन्तर राजा द्रुपदने वेदविद्यामें पारंगत एक ब्राह्मणको दूत बनाकर महात्मा हिरण्यवर्माके पास भेज दिया ॥ २५ ॥ हे राजन्! उस ब्राह्मण दूतने दशार्ण देशके राजाके पास आकर जो बात राजा द्रुपदने कही थी वह कह कर सुनाई ॥२६॥ आप स्पष्टरूपसे मेरे यहाँ आइये और देख लीजिये कि-मेरा पुत्र पुरुष है और मेरे पुत्रके विषयमें किसीने जो यह मिथ्या बात कह दी है उस पर आपको विश्वास नहीं करना चाहिए ॥२७॥ क्रोध में भरे हुए दशार्ण देशके राजाने राजा द्रुपदके सन्देसेको सुनकर सुंदर रूपवती श्रेष्ठ युवतियोंको (शिखण्डिनी स्त्री है या पुरुष है?) इसकी परीक्षा करनेके लिए भेजा ॥२८॥ हे कुरुदेशके राजा दुर्योधन! हिरण्यवर्माकी भेजी हुई वह स्त्रियें शिखण्डीके ठीक स्वरूपकी परीक्षा करके दशार्ण देशके राजा हिरण्यवर्माके पास गयीं और उससे महाप्रतापी शिखंडीके पुरुषपनेके सब लक्षण प्रीतिके साथ विस्तारसे कहे २९ इससमाचारको सुनकर दशार्ण देशका राजा हिरण्यवर्मा प्रसन्न हुआ और राजा द्रुपदकी राजधानीमें जाकर अपने समधी राजा द्रुपदसे

नथ । सम्बन्धिना समागम्य हृष्टो वासमुवास ह ॥ ३० ॥ शिखण्डिने च मुदितः प्रादाद्वित्तं जनेश्वरः । हस्तिनोऽश्वांश्च गाश्चैव दास्योऽथ बहुशास्तथा ॥३१॥ पूजितश्च प्रतिययौ निर्भर्त्स्य तनयां किल । विनीतक्रिसपे प्रीते हेमवर्मणि पार्थिवे ॥३२॥ प्रतियाते दशार्णे तु हृष्टरूपा शिखण्डिनी । कस्यचित्त्वथ कालस्य कुबेरो नरवाहनः । लोकयात्रां प्रकुर्वाणः स्थूणस्यागान्निवेशनम् ॥ ३३ ॥ स तद्गृहस्योपरिवर्त्तमान आलोकयामास धनाधिगोप्ता । स्थूणस्य यक्षस्य विशेषवेश्म स्वलंकृतं माल्यगुणैर्विचित्रैः ॥ ३४ ॥ लाजैश्च गन्धैश्च तथा वितानैरभ्यर्चितं धूपनधूपितञ्च । ध्वजैः पताकाभिरलंकृतञ्च भक्ष्यान्नपेयामिषदत्तहोमम् ॥ ३५ ॥ तत् स्थानं तस्य दृष्ट्वा तु सर्वतः समलंकृतम् । मणिरत्नसुवर्णानां मालाभिः परिपूरितम् ॥ ३६ ॥ नानाकुसुमगन्धाढ्यं सिक्त-

मिलकर प्रसन्न हुआ और तहाँ ठहर गया ॥ ३० ॥ उस राजाने शिखण्डीको प्रसन्न चित्तसे धन, हाथी, घोड़े, गौएँ तथा बहुतसी दासियें भेटमें दीं ॥ ३१ ॥ राजा द्रुपदने हिरण्यवर्माका सत्कार किया, राजा हिरण्यवर्मा भी अपना सन्देह दूर होजानेके कारण प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्रीको ललकार कर अपने नगरकी ओरको विदा होगया शिखण्डिनी जो कि-कन्यासे पुरुष होगयी थी वह भी प्रसन्न हुई, एक दिन देवताओंके धनरक्षक और यक्षोंके राजा भगवान् कुबेर मनुष्यके वाहन पर बैठकर लोकोंमें विचरनेको निकले, वह फिरते २ स्थूणाकर्ण यक्षके स्थान पर आपहुँचे ॥ ३२—३३ ॥ उस समय तिस स्थूणाकर्णके घरको अनेकों रत्नोंसे तथा सुगन्धिवाले पुष्पोंसे सजा हुआ देखकर उसके भीतर चले गये ॥ ३४ ॥ इस यक्षके घरमें खसकी सुगन्ध फैलरही थी, उस मन्दिरको चन्दोवोंसे शोभायमान कियागया था, धूपोंसे सुवासित किया गया था, ध्वजा पताकाओंसे सजाया गया था भक्ष्य कहिये कुतर कर खानेके भोज्य कहिये निगलकर खानेके चोष्य कहिये चूसनेके और पेय कहिये पीनेके इत्यादि अनेकों प्रकारके भोजनके पदार्थ तथा मांसके पदार्थोंसे भी वह घर भराहुआ था ३५ उस यक्षका घर चारों ओरसे सजाया हुआ तथा मणिरत्न और सोनेकी मालाओंसे भरपूर था तहाँ अनेकों प्रकारके फूलोंकी सुगन्ध महक रही थी उस घरको चारों ओरसे झाड़ बुहार कर स्वच्छ करके उसमें जलका छिड़काव किया गया था इस कारण वह बड़ा ही शोभायमान होरहा था, ऐसे सुन्दर यक्षके मन्दिरको देखकर यक्षोंका राजा

संमृष्टशोभितम् । अथाब्रवीद्यक्षपतिस्तान् यक्षाननुगांस्तदा॥३७॥स्वलंकृतमिदं वेश्म स्थूणस्यामितविक्रमाः । नोपसर्पति मां चैव कस्मादद्य स मन्दधीः ।३८। यस्माज्जानन् स मन्दात्मा मामसौ नोपसर्पति। तस्मात्तस्मै महादंडो धार्य्यः स्यादिति मे मतिः ॥ ३९ ॥ यक्षा ऊचुः । द्रुपदस्य सुता राजन् राज्ञो जाता शिखण्डिनी । तस्यै निमित्ते कस्मिंश्चित् प्रादात् पुरुषलक्षणम् ॥ ४०॥ अग्रहील्लक्षणं स्त्रीणां स्त्रीभूतो तिष्ठते गृहे । नोपसर्पति तेनासौ सव्रीडस्त्रीसरुपवान् ॥ ४१ ॥ एतस्मात् कारणाद्राजन् स्थूणो न त्वाद्य सर्पति । श्रुत्वा कुरु यथान्यायं विमानमिह तिष्ठताम् ॥४२ ॥ आनीयतां स्थूण इति ततो यक्षाधिपोऽब्रवीत् । कर्त्तास्मि निग्रहं तस्य प्रत्युवाच पुनः पुनः४३सोऽभ्यगच्छत यक्षेन्द्रमाहूतः पृथिवीपते । स्त्रीस्वरूपो महाराज तस्थौ व्रीडासमन्वितः ॥ ४४ ॥ तं शशापाथ संक्रुद्धो धनदः कुरुनन्दन । एवमेव प्रपद्यस्व स्त्रीत्वं पापस्य गुह्यकः ॥४५॥ ततोऽब्रवीत् यक्षपतिर्महात्मा

कुवेर उस मन्दिरके समीपमें आपहुँचा और उसने उसी समय सब यक्षोंसे कहा कि—॥ ३६-३७ ॥ अरे अपार पराक्रम वाले यक्षों ! यह स्थूणाकर्णका सजा हुआ मन्दिर है और हम इस मन्दिरके पास आ पहुंचे हैं तो भी मन्द बुद्धिवाला स्थूणाकर्ण अभी तक मेरे पास आकर उपस्थित क्यों नहीं होता है ? ॥ ३८ ॥ वह मन्दबुद्धिवाला यक्ष मुझे अपने यहाँ आया हुआ जानता है तो भी वह मेरे पास नहीं आता है, इस कारण मैं उसको बड़ाभारी दण्ड देना उचित समझता हूँ ॥३९॥ यक्षोंने कहा,कि-हे महाराज कुवेरजी ! राजा द्रुपदके घर एक शिखण्डिनी नामकी कन्या उत्पन्नहुई थी उस कन्याको स्थूणाकर्णने किसी कारणसे अपना पुरुषचिह्न दे दिया है ॥ ४० ॥ और स्वयं उसने स्त्रीके चिह्नोंको धारण कर लिया है, इस कारण इस समय वह स्त्री वन कर घरमें वैठा है, इस लिये लज्जित होता है ॥४१॥ और इसीसे आपके पास नहीं आता है, इस वातको सुनकर आप न्यायानुसार जो कुछ उचित समझें सो करिए और विमानको यहाँ ही खड़ा रखिए४२ तव तो यक्षपति कुवेरने वार २ कहा कि-हे यक्षो ! तुम स्थूणाकर्णको लाओ, मैं उसको दण्ड दूँगा ॥४३॥ हे महाराज दुर्योधन ! इस प्रकार कुवेरने स्थूणाकर्णको वुलवाया तव स्त्रीरूपधारी स्थूणाकर्ण लज्जित होताहुआ यक्षपति कुवेरके पास आकर खड़ा हो गया ॥४४॥ हे कुरुनन्दन ! उस समय कुवेरने क्रोधमें भरकर स्थूणाकर्णको शाप दिय

यस्माद्दारास्त्वमवमन्येह यक्षान्। शिखण्डिनो लक्षणं पापबुद्धे स्त्रीलक्षणं चाग्रहीः पापकर्मन् ॥ ४६ ॥ अप्रवृत्तं सुदुर्बुद्धे यस्मादेतत् त्वया कृतम्। तस्मादद्य प्रभृत्येव स्त्री त्वं सा पुरुषस्तथा ॥ ४७ ॥ ततः प्रसादयामासुर्यक्षा वैश्रवणं किल। स्थूणस्यार्थे कुरुष्वान्तं शापस्येति पुनः पुनः ४८ ततो महात्मा यक्षेन्द्रः प्रत्युवाचानुगामिनः। सर्वान् यक्षगणांस्तात शापस्यांतचिकीर्षया ॥४९॥ शिखण्डिनि हते यक्षाः स्वरूपं प्रतिपत्स्यते। स्थूणो यक्षो निरुद्वेगो भवत्विति महामनाः ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा भगवान् देवो यक्षराजः सुपूजितः। प्रययौ सहितः सर्वैर्निमेषान्तरचारिभिः॥५१॥ स्थूणस्तु शापं संप्राप्य तत्रैव न्यवसत्तदा। समये चागमत्तूर्णं शिखंडी तं क्षपाचरम् ॥ ५२ ॥ सोऽभिगम्याब्रवीद्वाक्यं प्राप्तोऽस्मि भगवन्निति। तमब्रवीत्ततः स्थूणः प्रीतोऽस्मीति पुनः पुनः ॥ ५३ ॥ आर्जवेनागतं

कि-अरे गुह्यकों ! आजसे यह पापी स्त्रीके स्वरूपमें ही रहेगा ॥ ४५ ॥ इस प्रकार शाप देनेके पीछे यक्षोंके राजा महात्मा कुबेरने कहा, कि-अरे पाप कर्म करने वाले ! तूने यक्षोंका अपमान करके अपना पुरुषपना पापबुद्धि शिखण्डीको दे दिया है और उसका स्त्रीपना तूने ले लिया है ॥ ४६ ॥ अरे दुष्टबुद्धि यक्ष ! जो रीति कहीं भी नहीं चलती है वह रीति आज तूने करके दिखायी है, इस लिये आजसे तू स्त्री ही रहेगा और वह पुरुष रहेगा ॥ ४७ ॥ उस समय सब यक्ष स्थूणाकर्णके लिये भगवान् कुबेरको समझाने लगे और उनसे वारंवार कहने लगे, कि-हे महाराज ! आप इस शापकी कोई मर्यादा बाँध दीजिये ॥ ४८ ॥ हे तात दुर्योधन ! यक्षोंने इस प्रकार कहा, तब महात्मा यक्षराज कुबेर अपने सेवक सब यक्षोंसे शापका अन्त करनेकी इच्छासे बोला कि-४९ हे यक्षो ! शिखण्डीके युद्धमें मारे जाने पर स्थूणाकर्ण अपने पुरुषरूपको फिर पाजायगा, मेरे कहनेसे स्थूणाकर्ण यक्ष व्याकुलतारहित होजाय यह मैं उसको आशीर्वाद देता हूँ ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर तहाँके यक्षोंने यक्षराजका भले प्रकार सत्कार किया और भगवान कुबेर भी पलक मारने मात्र समयमें बहुत ही दूर पहुँच जाने वाले सब यक्षोंके साथ तहाँसे अलकापुरीकी ओरको चले गये ॥ ५१ ॥ स्थूणाकर्ण कुबेरका शाप होजानेके अनन्तर उस ही मन्दिरमें रहने लगा, इधर प्रतिज्ञा किया हुआ समय पूरा होते ही शिखंडी उसके पास आपहुँचा ॥५२॥ और उसने स्थूणाकर्णके पास आकर उससे कहा, कि-हे भगवन् ! मैं आपके पास आकर उपस्थित हूँ इस पर स्थूणाकर्णने कहा कि-मैं तेरी

दृष्ट्वा राजपुत्रं शिखण्डिनम् । सर्वमेव यथावृत्तमाचचक्षे शिखण्डिने ५४ यक्ष उवाच । शप्तो वैश्रवणेनाहं त्वत्कृते पार्थिवात्मज । गच्छेदानीं यथाकामं चर लोकान् यथासुखम् ॥ ५५ ॥ दिष्टमेतत् पुरा मन्ये न शक्यमतिवर्त्तितुम् । गमनं तव चेतो हि पौलस्त्यस्य च दर्शनम् ॥ ५६ ॥ भीष्म उवाच । एवमुक्तः शिखण्डी तु स्थूणयक्षेण भारत । प्रत्याजगाम नगरं हर्षेण महता नृप ॥५७॥ पूजयामास विविधैर्गन्धमाल्यैर्महाधनैः। द्विजातीन् देवतांश्चैव चैत्यानथ चतुष्पथान् ॥ ५८ ॥ द्रुपदः सह पुत्रेण सिद्धार्थेन शिखण्डिना । मुदञ्च परमां लेभे पाञ्चाल्यः सह बान्धवैः ५९ शिष्यार्थं प्रददौ चाथ द्रोणाय कुरुपुङ्गव । शिखण्डिनं महाराज पुत्रं स्त्रीपूर्विणं तथा ॥६०॥ प्रतिपेदे चतुष्पादं धनुर्वेदं नृपात्मज । शिखण्डी सह युष्माभिर्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ६१ ॥ मम त्वेतच्चरास्तात यथावत्

इस बातसे तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ ॥ ५३ ॥ राजकुमार शिखंडी सरलताके साथ प्रतिज्ञाके अनुसार मेरे पास आया है इस बातको देख कर वह यक्ष शिखंडीसे अपना सब वृत्तान्त जैसी कि-घटना हुई थी उसके अनुसार कहने लगा ॥ ५४ ॥ यक्ष बोला कि-हे राजकुमार ! भगवान् कुबेरने तेरे कारणसे मुझे शाप दे दिया है इस लिये अपनी इच्छाके अनुसार जिसमें तुझे सुख मिले तिसी प्रकार तू जगत्में फिरा कर५५ तू यहाँसे ज्यों ही गया कि-थोड़े दिनोंमें मुझे भगवान् कुबेरके दर्शन हुए उसीका यह फल निकला है मैं इसको पहिले जन्मकी करनीका फल मानता हूँ और इसको कोई भी नहीं टाल सकता ॥५६॥ भीष्मजी कहते हैं, कि-हे भरतवंशी राजन ! इस प्रकार स्थूणाकर्ण यक्षने शिखण्डीसे कहा इसको सुन कर शिखंडी बड़ा प्रसन्न होता हुआ अपने नगरको लौट गया ॥ ५७ ॥ और उसने अधिक मूल्य वाले अनेकों प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंसे तथा पुष्पोंसे ब्राह्मणोंकी, देवताओंकी, मठोंकी तथा चौराहोंकी पूजा करी ॥ ५८ ॥ तथा पञ्चाल देशका राजा द्रुपद जिसका काम सिद्ध होगया था ऐसे शिखंडीसे मिल कर परम हर्षको प्राप्त हुआ तथा उसके कुटुम्बी भी इस समाचारको सुन कर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५९ ॥ फिर हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ महाराज ! उस राजा द्रुपदने पहिले स्त्रीरूपमें रहने वाले अपने पुत्र शिखंडीको धनुर्विद्या सीखनेके लिये द्रोणाचार्यके पास छोड़ दिया ॥ ६० ॥ और द्रुपद राजाका पुत्र शिखंडी तथा धृष्टद्युम्न तुम्हारे साथ द्रोणाचार्यसे चार विभाग वाले अर्थात् ग्रहण करना, धारण करना, छोड़ना और सामने

प्रत्यवेदयन् । जडान्धबधिराकारा ये युक्ता द्रुपदे मया ॥ ६२ ॥ एवमेष महाराज स्त्रीपुमान् द्रुपदात्मजः । स सम्भूतः कुरुश्रेष्ठ शिखण्डी रथसत्तमः ॥६३॥ ज्येष्ठा काशिपतेः कन्या अम्बा नामेति विश्रुता । द्रुपदस्य कुले जाता शिखण्डी भरतर्षभ ॥ ६४ ॥ नाहमेनं धनुष्पाणिं युयुत्सुं समुपस्थितम् । मुहूर्तमपि पश्येयं प्रहरेयं न चाप्युत ६५ व्रतमेतद् मम सदा पृथिव्यामपि विश्रुतम् । स्त्रियां स्त्रीपूर्विके चैव स्त्रीनाम्नि स्त्रीस्वरूपिणि ॥ ६६ ॥ न मुञ्चेयमहं बाणमिति कौरवनन्दन । न हन्यामहमेतेन कारणेन शिखंडिनम् ॥ ६७ ॥ एतत् तत्त्वमहं वेद जन्म तात शिखंडिनः । ततो नैनं हनिष्यामि समरेष्वाततायिनम् ॥ ६८ ॥ यदि भीष्मः स्त्रियं हन्यात् सन्तः कुर्युर्विगर्हणम् । नैनं तस्माद् हनिष्यामि

को आते हुए बाण आदिको पीछेको हटा देना इस प्रकारके धनुर्वेदको सीख गया है ॥ ६१ ॥ हे तात ! मैंने मूर्ख, अंधे और बहरेसे दीखने वाले दूत राजा द्रुपदके यहाँका सब समाचार लेनेको भेजे थे, उन्होंने मुझे यह सब वृत्तान्त ठीक २ बताया है ॥६२॥ हे कुरुसत्तम महाराज ! इस प्रकार राजा द्रुपदका पुत्र महारथी शिखंडी पहिले स्त्री था और पीछे यक्षके प्रभावसे पुरुष होगया है ॥ ६३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ ! यह शिखंडी पहिले जन्ममें काशीराजकी बड़ी पुत्री था, जगत्में अम्बा नामसे कहा जाता था और अब राजा द्रुपदके कुलमें शिखंडी नामसे उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ यह शिखंडी लड़नेकी इच्छासे हाथमें धनुष लेकर मेरे सामने खड़ा होगा तो मैं क्षणभरको भी इसके मुखकी ओर दृष्टि करके नहीं देखूँगा तथा इसके ऊपर शस्त्र भी नहीं उठाऊँगा६५ हे कुरुकुलको आनन्द देने वाले पुत्र ! मैं स्त्रीके ऊपर पहिले स्त्री होकर पीछेसे पुरुष हुएके ऊपर, स्त्रीकी समान नाम वाले पुरुषके ऊपर तथा स्त्रीकी समान पुरुष (हीजड़े) के ऊपर बाण नहीं छोड़ता हूँ यह मेरा सनातनका नियम है और पृथ्वी पर भी यह बात प्रसिद्ध होगयी है, इसी कारणसे मैं शिखण्डीको नहीं मारूँगा ॥ ६६–६७ ॥ हे तात ! शिखण्डीका जन्म होनेकी ठीक २ बात इस प्रकार है और इस बातको मैं जानता हूँ, इस कारण रणमें आततायी होने पर भी शिखण्डीको मैं नहीं मारूँगा ॥ ६८ ॥ यदि भीष्म स्त्रीकी हत्या करे तो महापुरुष भीष्मकी निन्दा करने लगें इस कारण मैं उसको रणमें खड़ा हुआ देख कर भी नहीं मारूँगा ॥ ६९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–कुरुवंशी राजा दुर्योधन भीष्मजीकी इन बातोंको सुन कर उस समय क्षणभरको

द्रष्टापि सतरे स्थितम् ॥६९॥ वैशम्पायन उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु कौरव्यो राजा दुर्योधनस्तदा । मुहूर्तमिव स ध्यात्वा भीष्मे युक्तममन्यत ॥७०॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि शिखंडि पुंस्त्वप्राप्तौ द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

सञ्जय उवाच । प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव । मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पितामहमपृच्छत ॥ १ ॥ पांडवेयस्य गांगेय यदेतत् सैन्यमुद्यतम् । प्रभूतनरनागाश्वं महारथसमाकुलम् ॥ २ ॥ भीमार्जुनप्रभृतिभिर्महेष्वासैर्महाबलैः । लोकपालसमैर्गुप्तं धृष्टद्युम्नपुरोगमैः ॥३॥ अप्रधृष्यमनावार्यमुद्धूतमिव सागरम् । सेनासागरमक्षोभ्यमपि देवैर्महाहवे ॥४॥ केन कालेन गांगेय क्षपयेथा महाद्युते । आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वा सुमहाबलः ॥ ५ ॥ कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तम । दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम ॥ ६ ॥ एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे । हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि

विचारमें पड़ गया और फिर उसने स्त्रीके साथ भीष्मजी युद्ध नहीं करते हैं, इसको उचित माना ॥७०॥ एकसौ बयानवेवाँ अध्याय समाप्त

सञ्जय कहता है, कि-हे राजा धृतराष्ट्र ! रात्रि बीती और स्पष्ट प्रभात हुआ कि—फिर आपका पुत्र दुर्योधन सब सेनाके मध्यमें बैठे हुए भीष्म पितामहसे बूझने लगा कि-।१।हे पितामह ! बहुतसे मनुष्य, हाथी, घोड़े और महारथियोंसे भराहुआ जो यह पाण्डवोंका सेना दल हमसे लड़नेके लिए तयार होरहा है, इसकी रक्षा बड़े धनुषधारी महाबली और लोकपालोंकी समान परमपराक्रमी भीम, अर्जुन तथा सेनापति धृष्टद्युम्न आदि पुरुष कर रहे हैं और ऊँचे उछलते हुए समुद्रकी समान जिनका तिरस्कार कोई नहीं कर सकता तथा जिन को कोई डरा भी नहीं सकता ऐसे देवता भी महायुद्धमें पाण्डवोंके सेनारूप महासागरको क्षुभित नहीं कर सकते ॥ २-४ ॥ हे बड़ीभारी कान्ति वाले भीष्मजी ! पाण्डवोंकी सेनाका नाश तुम कितने दिनोंमें कर सकोगे ? महाधनुषधारी द्रोणाचार्य तथा महाबली कृपाचार्य कितने दिनोंमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकेंगे ? ॥ ५ ॥ और युद्धमें प्रशंसा करने योग्य कर्ण तथा द्विजवर अश्वत्थामा कितने दिनोंमें इसका नाश कर सकेगा मेरी सेनामें आप सब दिव्य अस्त्रोंको जानने वाले हैं ॥६॥ हे महाबाहु भीष्म जी ! मेरे मनमें सदा इस विषयमें आश्चर्य रहा करता है और मैं सदा इसबात

तन्मम ॥ ७ ॥ भीष्म उवाच । अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत् पृथिवीपते । बलाबलमभिज्ञाणां तेषां यदिह पृच्छसि ॥ ८ ॥ शृणु राजन् मम रणे या शक्तिः परमा भवेत् । शस्त्रवीर्यं रणे यच्च भुजयोश्च महाभुज ॥ ९ ॥ आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः । मायायुक्तेन मायावी इत्येतद्धर्मनिश्चयः ॥ १० ॥ हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम् । दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्रागाह्निकं मम ॥ ११ ॥ योद्धानां दशसाहस्रं कृत्वा भागं महाद्युते । सहस्रं रथिनामेकमेष भागो मतो मम ॥ १२ ॥ अनेनाहं विधानेन सन्नद्धः सततोत्थितः । क्षपयेयं महत् सैन्यं कालेनानेन भारत ॥ १३ ॥ सञ्चयं यदि चास्त्राणि महान्ति समरे स्थितः । शतसाहस्रघातीनि हन्यां मासेन भारत ।१४। सञ्जय उवाच । श्रुत्वा भीष्मस्य तद्वाक्यं राजो दुर्योधनस्ततः । पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम् ॥१५॥ आचार्य केन कालेन पाण्डु-

---

को जाननेकी इच्छा किया करता हूँ इस कारण आप मुझसे कहिए ७ भीष्मजीने कहा, कि–हे कुरुकुलमें श्रेष्ठ राजन्! तूने शत्रुओंके बल तथा निर्बलताके विषयमें जो मुझसे पूछा है यह प्रश्न तुझे करना ही चाहिए ॥ ८ ॥ हे महाबाहु राजन्! युद्धमें मेरी बड़ीसे बड़ी जो शक्ति है शस्त्रका जो पराक्रम है तथा भुजाका जो बल है उसको तू सुन ९ हे राजन्! धर्मयुद्धके लिए ऐसा निश्चय किया गया है, कि–साधारण रीतिसे सरल योधाके साथ सरलतासे युद्ध करना चाहिए और मायावीके साथ मायावी (कपटका) युद्ध करना चाहिए ॥ १० ॥ हे महाभाग्यशाली राजन्! मैं प्रतिदिन पाण्डवोंकी सेनाके विभाग करके प्रातःकालके समय उतनोंका ही संहार करने लगूँ तो ॥ ११ ॥ दश २ हजार योधाओंका और एक २ हजार रथियोंका प्रतिदिन नाश कर सकता हूँ ॥ १२ ॥ हे भरतवंशी राजन! मैं शरीर पर कवच पहरकर नित्य खड़ा २ इस प्रकार ही कालके और सेनाके विभागके अनुसार पाण्डवोंकी बड़ीभारी सेनाका संहार कर सकता हूँ ॥ १३ ॥ मैं रणमें खड़ा होकर सैंकड़ों और हजारोंको संहार करने वाले बड़े बड़े शस्त्र छोड़ने लगूँ तो हे भरतवंशी राजन्! एक महीनेमें पाण्डवोंकी सेना का संहार करडालूँ ॥ १४ ॥ सञ्जय कहता है, कि–हे राजेन्द्र धृतराष्ट्र! राजा दुर्योधन भीष्मजीकी बातको सुनकर अङ्गिरावंशियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे पूछने लगा कि–॥ १५ ॥ हे आचार्य! तुम कितने दिनों में पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर सकते हो? यह सुनकर द्रोणाचार्यने

पुत्रस्य सैनिकान् । निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव ॥१६॥ स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः । शस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १७ ॥ यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम । एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम् ॥ १८ ॥ द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् । द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम् ।१९। कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् । तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं सागरगासुतः ॥ २० ॥ जहास सस्वनं हासं वाक्यञ्चेदमुवाच ह । न हि यावद्रणे पार्थं बाणशंखधनुर्धरम् ॥ २१ ॥ वासुदेवसमायुक्तं रथेनायान्तमाहवे । समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे । शक्यमेवञ्च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः ॥ २२ ॥ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि भीष्मादिस्वशक्तिकथने त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

वैशम्पायन उवाच । एतच्छ्रुत्वा तु कौन्तेयः सर्वान् भ्रातृनुपह्वरे ।

हँसते २ दुर्योधनको उत्तर दिया, कि-॥ १६ ॥ हे महाबाहु राजन् ! मैं बूढ़ा हूँ, मुझमें प्राणबल कम है तथा काम करनेकी शक्ति भी घटगई है तो भी शान्तनुके पुत्र भीष्मकी समान मैं भी एक महीनेमें शस्त्रोंकी अग्निसे पाण्डवोंकी सेनाको जलाकर भस्म करडालूँ ऐसा मेरा अनुमान है और यह मेरी बड़ीसे बड़ी शक्ति तथा अधिकसे अधिक बल है ॥ १७—१८ ॥ इसके अनन्तर दुर्योधनने शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यसे इस विषयमें पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया, कि-मैं दो महीनेमें पांडवों की सेनाका नाश कर सकता हूँ, फिर दुर्योधनने अश्वत्थामासे पूछा तो उसने दश रातमें पाण्डवोंकी सेनाका संहार करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ १९ ॥ फिर दुर्योधनने कर्णसे यह बात पूछी, कर्ण अस्त्रविद्या का बड़ाभारी जानकार था, उसने पाँच रात्रिमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश करनेकी प्रतिज्ञा की, गङ्गानन्दन भीष्मजी सूतपुत्र कर्णकी इस बातको सुनकर खिलखिला कर हँसपड़े और चिल्ला कर बोले कि-अरे राधाके पुत्र कर्ण ! शंख,बाण और धनुषको धारण करनेवाले श्रीकृष्णके साथ रथमें बैठकर रणमें चढेहुए अर्जुनके साथ तू जबतक रण में भिड़ा नहीं है तबतक ही ऐसा समझ रहा है, परन्तु जब अर्जुनका और तेरा सामना होगा तो फिर क्या तू अपनी इच्छाके अनुसार इस प्रकार बोल सकेगा ? ॥ २०-२२ ॥ एकसौ तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय ! यह सब समाचार पाकर

आहूय भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच । धार्त्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम । ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम् ॥ २ ॥ दुर्योधनः किलापृच्छदापगेयं महाव्रतम् । केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो ॥ ३ ॥ मासेनेति च तेनोक्तो धार्त्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः । तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रतिजज्ञिवान् ॥४॥ गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम् । द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित् ॥ ५ ॥ तथा दिव्यास्त्रवित् कर्णः संपृष्टः कुरुसंसदि । पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं ससैन्यं प्रतिजज्ञिवान् ॥ ६ ॥ तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः । कालेन कियता शत्रून् क्षपयेरिति फाल्गुन ॥ ७ ॥ एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनञ्जयः । वासुदेवं समीक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ ८॥ सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः । असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः ॥ ९ ॥ अपैतु ते मन-

---

कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको एकान्तमें बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा; ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले, कि–हे भ्राताओं! मेरे गुप्तदूत धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनामें फिर रहे थे, उन्होंने आज प्रातः कालके समय यह समाचार भेजा है कि—॥ २ ॥ दुर्योधनने महाव्रतधारी भगवान् भीष्म पितामहसे पूछा, कि—हे प्रभो ! तुम कितने समयमें पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकते हो इसपर भीष्म और द्रोणाचार्यने दुष्टबुद्धि दुर्योधनसे कहा, कि—हम एक महीनेमें पांडवों की सेनाका नाश कर सकते हैं ॥ ४ ॥ तथा गौतम कृपाचार्यने इससे भी दूना समय बताया है यह बात मेरे सुननेमें आयी है बड़े २ अस्त्रों को चलाना जाननेवाले अश्वत्थामाने दश रातमें हमारी सेनाका नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ५ ॥ तथा कौरवोंकी सभामें देवताओंके अस्त्र चलाना जानने वाले कर्णसे प्रश्न किया गया तो उसने पाँच दिनमें हमारी सेनाका नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥६॥ इस लिए हे अर्जुन! मैं भी तुमसे सुनना चाहता हूँ, कि—तू कितने समयमें कौरवोंकी सेनाका संहार कर सकता है ॥ ७ ॥ इस प्रकार युधिष्ठिरने अर्जुनसे पूछा तो उसने श्रीकृष्णकी ओरको देखकर इस प्रकार कहा, कि–८ यह सब महात्मा शस्त्रविद्यामें चतुर हैं, तथा अनेकों प्रकारके युद्ध करना जानते हैं, इसलिए हे महाराज ! निःसन्देह वह ऐसा संहार कर सकते हैं ॥ ९ ॥ मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ, कि–उसको सुनकर आप अपने मनकी चिन्ता दूर करिये, मैं अकेला ही श्रीकृष्ण

स्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम्। हन्यामेकरथेनैव वासुदेवसहायवान्१०
सामरानपि लोकांस्त्रीन् सर्वान् स्थावरजंगमान्। भूतं भव्यं भविष्यं च निमेषादिति मे मतिः ॥११॥ यत्तद् घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम। कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्त्तते ॥ १२ ॥ यद्युगान्ते पशुपतिः सर्वभूतानि संहरन्। प्रयुंक्ते पुरुषव्याघ्र तदिदं मयि वर्त्तते १३
तन्न जानाति गांगेयो न द्रोणो न च गौतमः। न च द्रोणसुतो राजन् कुत एव तु सूतजः॥ १४ ॥ न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग्जनम्। आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान्१५तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तव पार्थिव। सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः १६
वेदान्तावभृथस्नाताः सर्वे एतेऽपराजिताः। निहन्युः समरे सेनां देवानामपि पाण्डव ॥ १७ ॥ शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः। भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १८ ॥ विराट-

की सहायतासे केवल एक ही रथके द्वारा देवताओं सहित त्रिलोकीके सब स्थावर जंगमोंको, भूत भविष्यत्, और वर्त्तमान समयके सब राजाओंको एक पलक मारने मात्रमें नष्ट कर सकता हूँ, ऐसा मेरा मत है ॥ १० ॥ मेरा पहिले मायासे भीलका रूप धारण करने वाले भगवान् शङ्करके साथ द्वन्द्वयुद्ध हुआ था उस युद्धमें भगवान् शङ्करने मुझे जो महाघोर अस्त्र दिया था वह अस्त्र मेरे पास है१२हे पुरुषव्याघ्र राजन्! पशुपति शङ्करजी प्रलयके समय सकल प्राणियोंका संहार करनेके लिये जिस अस्त्रसे काम लेते हैं वह अस्त्र मेरेपास है१३ उस अस्त्रका प्रयोग करना भीष्मजी नहीं जानते, द्रोणाचार्य नहीं जानते, द्रोणाचार्य नहीं जानते, कृपाचार्य नहीं जानते और अश्वत्थामा भी नहीं जानता, फिर हे राजन्! कर्ण तो जानेगा ही कहाँसे ? ॥ १४ ॥ तो भी रणभूमिमें देवताओंके अस्त्रोंसे मृत्युलोकके मनुष्योंको मारना उचित नहीं माना जाता है, हम तो रणमें सरलता भरे युद्धसे ही शत्रुओंको जीतेंगे ॥ १५ ॥ और हे राजन्! यह सब राजे तुम्हारे सहायक हैं,पुरुषोंमें व्याघ्रसमान, दिव्य अस्त्रोंको जानने वाले हैं और युद्धके उत्साही हैं॥ १६ ॥ हे पाण्डव! इन सब योधाओंने गुरुके घर रह कर वेदका अभ्यास करनेके अनन्तर विवाह किया है और फिर यज्ञ करके अवभृथ स्नान भी किया है, ये सब किसीके जीतनेमें नहीं आसकते और देवताओंकी सेनाका भी नाश कर सकते हैं॥१७॥ शिखंडी, युयुधान, द्रुपदका पुत्र धृष्टद्युम्न

द्रुपदो चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि । शंखश्चैव महाबाहुर्हैडिम्बश्च महाबलः ॥ १९ ॥ पुत्रोऽस्याञ्जनपर्वा तु महाबलपराक्रमः । शैनेयश्च महाबाहुः सहायो रणकोविदः ॥२०॥ अभिमन्युश्च बलवान् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः । स्वयं चापि समर्थोऽसि त्रैलोक्योत्सादनेऽपि च २१ क्रोधाद्यं पुरुषं पश्येस्तथा शक्रसमद्युते । स क्षिप्रं न भवेद् व्यक्तमिति त्वां वेद्मि कौरव ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वण्यर्जुनवाक्ये चतुर्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः प्रभाते विमले धार्त्तराष्ट्रेण चोदिताः । दुर्योधनेन राजानः प्रययुः पाण्डवान् प्रति ॥ १ ॥ आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्रग्विणः शुक्लवाससः । गृहीतशस्त्रा ध्वजिनः स्वस्ति वाच्य हुताग्नयः॥२॥सर्वे ब्रह्मविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः । सर्वे कामकृतश्चैव सर्वे चाहवलक्षणाः ॥३॥ आहवेषु परांल्लोकान् जिगीषन्तो महा-

---

भीमसेन, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा ॥ १८ ॥ युद्ध करनेमें भीष्म तथा द्रोणाचार्य की समान विराट और राजा द्रुपद, महाबाहु शंख, हिडिम्बाका पुत्र महाबली घटोत्कच ॥ १९ ॥ उसका पुत्र महाबली तथा पराक्रमी अञ्जनवर्मा तथा महाबाहु शिनिका पुत्र, जो कि हमारा सहायक और युद्ध करनेमें बड़ाही चतुर है ॥ २० ॥ बलवान् अभिमन्यु द्रौपदीके पाँचों पुत्र और आप स्वयं भी तीनों लोकोंका नाश कर सकते हो ॥ २१ ॥ हे इन्द्रकी समान कान्ति वाले कुरुवंशी राजन् ! मेरी समझमें आप ऐसे हैं,कि-क्रोध करके आप जिसको ओर को भी दृष्टि भी डालदें अवश्य ही वह नष्ट होजाय ॥ २१ ॥ एकसौ चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९४ ॥

वैशम्पायन कहते है कि-हे राजा जनमेजय ! तदनन्तर अतिनिर्मल प्रभात होते ही राजा धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने सहायता करनेके लिये आयेहुए राजाओंको पांडवोंके ऊपर चढ़ायी करनेकी आज्ञादी तब सब राजाओंने स्नान करके स्वेत वस्त्र पहर लिये पुष्पोंकी मालायें धारण करलीं अग्निमें होम किया और फिर वह अपने २ अस्त्र ध्वजा पताकाओंको लेकर स्वस्तिवाचनपूर्वक पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेको चल दिये ॥१-२॥ वह सब राजे वेदवेत्ता, वीर, पवित्र व्रतोंको धारण करने वाले, अपनी इच्छाके अनुसार काम करनेवाले और युद्ध करनेवाले तथा युद्ध करनेमें चतुर थे ॥ ३ ॥ वह महाबली क्षत्रिय परस्परका

बलाः । एकाग्रमनसः सर्वे श्रद्दधानाः परस्परम् ॥ ४ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केकया बाल्हिकैः सह । प्रययुः सर्व एवैते भारद्वाजपुरोगमाः ॥ ५ ॥ अश्वत्थामा शांतनवः सैंधवोऽथ जयद्रथः । दाक्षिणात्या प्रतीच्याश्च पार्वतीयाश्च ये नृपाः ॥ ६ ॥ गांधारराजः शकुनिः प्राच्योदीच्याश्च सर्वशः । शकाः किराताः यवनाः शिबयोऽथ वशातयः ॥ ७ ॥ स्वैः स्वैरनीकैः सहिता परिवार्य महारथम् । एते महारथाः सर्वे द्वितीये निर्ययुर्बले ॥ ८ ॥ कृतवर्मा सहानीकस्त्रिगर्त्तश्च महारथः । दुर्योधनश्च नृपतिर्भ्रातृभिः परिवारितः ॥९॥ शलो भूरिश्रवाः शल्यः कोशल्योऽथ बृहद्रथः । एते पश्चादनुगता धार्त्तराष्ट्रपुरोगमाः ॥ १० ॥ ते समेत्य यथान्यायं धार्त्तराष्ट्रा महाबलाः । कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः॥११॥ दुर्योधनस्तु शिबिरं कारयामास भारत । यथैव हास्तिनपुरं द्वितीयं समलंकृतम् ॥ १२ ॥ न विशेषं विजानन्ति पुरस्य शिबिरस्य वा । कुशला अपि राजेन्द्र नरा नगरवासिनः ॥ १३ ॥ ताद-

विश्वास करनेवाले और एकाग्र चित्त होकर युद्धमें वैरीकी ओरके शूरोंको जीतनेकी इच्छासे चल दिये४आरम्भमें अवन्ती देशके विन्द और अनुविंद तथा बाल्हीकके साथ चलतेहुए केकय देशके राजे द्रोणाचार्यजीको आगे करके युद्ध करनेके लिये चलदिये५उनके पीछे अश्वत्थामा,भीष्म,सिंध देशका राजा जयद्रथ,गांधारदेशका राजा शकुनि, दक्षिणके देशोंका राजा पश्चिमके देशोंका राजा, पूर्व दिशाका राजा, उत्तर दिशाका राजा पहाड़ी देशोंके राजे, शक, किरात, यवन और शिबि तथा वसाति नामके सब महारथी राजे अपनी २ सेनाको साथ लेकर दूसरा सेनामण्डल बना कर चलदिये ॥६–८॥ इनके पीछे सेनाके सहित कृतवर्मा, महारथी त्रिगर्त्त, भाइयोंकी मण्डलीसे घिराहुआ राजा दुर्योधन ॥९॥ शल, भूरिश्रवा, शल्य और कोसल देशका राजा बृहद्रथ धृतराष्ट्रके पुत्रोंको आगे करके युद्ध करनेके लिये पीछे २ चल दिये ॥ १० ॥ हे भरतवंशी राजन् ! महाबली धृतराष्ट्रके पुत्र शरीर पर कवच पहर कर उचित रीतिसे सब प्रकारकी तयारी करके इकट्ठे होकर कुरुक्षेत्रके पिछले आधे भागमें खड़े हुए थे ॥११॥ हे भरतवंशी राजन् ! दुर्योधनने अपनी छावनीको दूसरे हस्तिनापुरकी समान सजाकर तयार कराया था ॥१२॥ इसकारण हे राजेन्द्र ! नगरके लोग भी उस छावनीमें और नगरमें किसीप्रकारके भेदभावको नहीं जान सकते थे ॥ १३ ॥ कुरुवंशी दुर्योधनने दूसरे राजाओंके लिये भी और

शान्येव दुर्गाणि राज्ञामपि महीपतिः । कारयामास कौरव्यः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥ पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम् । सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशञ्छतसंघशः ॥ १५ ॥ तत्र ते पृथिवीपाला यथोत्साहं यथाबलम् । विविशुः शिबिराण्यत्र द्रव्यवन्ति सहस्रशः ॥१६॥ तेषां दुर्योधनो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् । व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥१७॥ सनागाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः । ये चान्येऽनुगतास्तत्र सूतमागधबन्दिनः ॥ १८ ॥ वणिजो गणिकाश्चारा ये चैव प्रेक्षका जनाः । सर्वांस्तान् कौरवो राजा विधिवत् प्रत्यवैक्षत ॥ १९ ॥ ❀ ❀ ❀ ❀

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यम्बोपाख्यानपर्वणि कौरवसैन्यनिर्याणे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

वैशम्पायन उवाच । तथैव राजा कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । धृष्टद्युम्नमुखान् वीरांश्चोदयामास भारत ॥ १ ॥ चेदिकाशिकरूषाणां नेतारं दृढविक्रमम् । सेनापतिममित्रघ्नं धृष्टकेतुमथादिशत् ॥२॥ विराटं द्रुपदञ्चैव युयुधानं शिखण्डिनम् । पाञ्चाल्यौ च महेष्वासौ युधामन्यू-

---

सैंकड़ों सहस्रों छावनियें बनवाई थीं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! उस रणभूमिमें पाँच योजनके गोलाकार मैदानमें सेनाके सैंकड़ों पड़ाव डाले गये थे ॥ १५ ॥ उन नाना प्रकारके पदार्थोंसे भरीहुई सहस्रों छावनियोंमें सब राजे उत्साह और बलके साथ अपनी २ सेनाओं सहित जापहुँचे ॥ १६ ॥ राजा दुर्योधन उन आयेहुए राजाओंके लिये तथा उनके हाथी सवार घुड़सवार पैदल तथा दूसरे वाहनोंके लिये उत्तमसे उत्तम भक्ष्य भोज्य रूप नानाप्रकारकी भोजनकी सामग्री देनेका प्रबंध करता था ॥ १७ ॥ इनके सिवाय शिल्पी, सूत, मागध, स्तुति पढ़ने वाले, वैश्य वेश्या, दूत और जो दर्शक पीछेसे आये थे, उन सबकी देखभाल भी दुर्योधन यथोचित रीतिसे अपने आप करता था अर्थात् उनके लिये भी ठहरने और भोजनका प्रबन्ध किया गया था ।१८।१९।

एक सौ पिचानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९५ ॥ ❀ ❀

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे भरतवंशी राजन् ! दूसरी ओर कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न आदि वीर योधाओं को रणभूमिमें जानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥ चेदि, काशी और करूष देशके राजाओंको और दृढ़ पराक्रमी शत्रुओंका नाश करनेवाले सेनापति धृष्टकेतुको आज्ञा दी ॥ २ ॥ विराट, द्रुपद युयु-

त्तमौजसौ ॥ ३ ॥ ते शूराश्चित्रवर्माणस्तप्तकुण्डलधारिणः । आज्यावसिक्ता ज्वलिता धिष्ण्येष्विव हुताशनाः ४ अशोभन्त महेष्वासा ग्रहाः प्रज्वलिता इव । अथ सैन्यं यथायोगं पूजयित्वा नरर्षभ ॥ ५ ॥ दिदेश तान्यनीकानि प्रयाणाय महीपतिः । तेषां युधिष्ठिरो राजा ससैन्यानां महात्मनाम् ॥६॥ व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् । सगजाश्वमनुष्याणां ये च शिल्पोपजीविनः ॥७॥ अभिमन्युं बृहन्तञ्च द्रौपदेयांश्च सर्वशः । धृष्टद्युम्नमुखानेतान् प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः ८ भीमञ्च युयुधानञ्च पांडवञ्च धनञ्जयम् । द्वितीयं प्रेषयमास बलस्कन्धं युधिष्ठिरः भांडं समारोपयतां चरतां सम्प्रधावताम् । हृष्टानां तत्र योधानां शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥ १० ॥ स्वयमेव ततः पश्चाद् विराटद्रुपदान्वितः । अथापरैर्महीपालैः सह प्रायान्महीपतिः ॥ ११ ॥ भीमधन्वायनी सेना धृष्टद्युम्नेन पालिता । गंगेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत॥१२॥

धान, शिखण्डी, बड़े धनुषधारी पञ्चालराजके दोनों पुत्र युयुधान और उत्तमौजाको जानेकी आज्ञा दी ॥ ३ ॥ विचित्र तथा कानोंमें कुण्डल पहर कर खड़े हुए बड़े धनुषधारी वीर राजे घी छोड़नेसे प्रज्वलित हुए कुण्डोंमें स्थित अग्नियोंकी समान तथा चमकते हुए ग्रहोंकी समान शोभा पारहे थे, राजा युधिष्ठिरने उस सब सेनाका उचित रीतिसे सत्कार करके उस सब सेनाको रणभूमिमें जानेकी आज्ञा दी और उससमय राजा युधिष्ठिरने स्वयं महात्मा राजाओंके हाथी घोडे पैदल तथा दूसरे वाहनोंके सेवकोंको तथा शिल्पियोंको उत्तमसे उत्तम भोजनकी सामग्री पहुँचवानेका प्रबन्ध किया ४–७ पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नको आगे करके अभिमन्यु, बृहत् और द्रौपदी के सब पुत्र इनको रणभूमिमें जानेकी आज्ञा दी ८ युधिष्ठिरने भीमसेन, युयुधान और पाण्डव अर्जुनके साथ दूसरा सेनादल बनाकर भेजा ९ उस समय तहाँ हर्षमें भरे हुए योधा अपने २ घोड़ोंको कवच आदि युद्धके साजसे सजा रहे थे कार्यके लिए इधर उधरको आते जाते थे तथा समय पर दौड़ते भी थे, उन योधाओंका कोलाहल मानो आकाश तक पहुँचता था ॥ १० ॥ इस प्रकार सब सेनाको आगे भेज देनेके अनन्तर स्वयं राजा युधिष्ठिर, विराट द्रुपद तथा दूसरे राजाओं के साथ रणभूमिकी ओरको चलदिये ॥ ११ ॥ उस समय सेनापति धृष्टद्युम्नकी रक्षामें यात्रा करती हुई, और जिसमें भयानक धनुषधारी क्रमसे चलरहे थे ऐसी युधिष्ठिरकी सेना, लबालब भरी हुई

ततः पुनरनीकानि व्ययोजयत बुद्धिमान् । मोहयन् धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां बुद्धिनिश्चयम् ॥१३॥ द्रौपदेयान्महेष्वासानभिमन्युश्च पांडवः । नकुलं सहदेवञ्च सर्वांश्चैव प्रभद्रकान् ॥ १४ ॥ दश चाश्वसहस्राणि द्विसहस्राणि दन्तिनाम् । अयुतञ्च पदातीनां रथाः पञ्चशतं तथा ॥ १५ ॥ भीमसेनस्य दुर्धर्षं प्रथमं प्राविशद् बलम् । मध्यमे च विराटं च जयत्सेनञ्च पांडव ॥ १६ ॥ महारथौ च पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ । वीर्यवन्तौ महात्मानौ गदाकार्मुकधारिणौ ॥१७॥ अन्वयातां तदा मध्ये वासुदेवधनञ्जयौ । बभूवुरतिसंरब्धाः कृतप्रहरणा नराः ॥ १८ ॥ तेषां विंशति साहस्रा हयाः शूरैरधिष्ठिताः । पञ्चनागसहस्राणि रथवंशाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥ पदातयश्च ये शूराः कार्मुकासिगदाधराः । सहस्रशोऽन्वयुः पश्चादग्रतश्च सहस्रशः ॥ २० ॥ युधिष्ठिरो यत्र सैन्ये स्वयमेव बलार्णवे । तत्र ते पृथिवीपाला भूयिष्ठं पर्य्यवस्थिताः ॥२१॥ तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च । तथा रथसहस्राणि पदातीनां च

और आगेके भागमें मन्द २ बहने वाली गङ्गा नदीकी समान दीखती थी ॥१२॥ बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने कुछ दूर जानेपर धृतराष्ट्रके पुत्रों के मनमें भ्रम उत्पन्न करनेके लिए सेनाकी क्रमरचनामें फिर उलट फेर कर दिया ॥१३॥ महाधनुषधारी द्रौपदीके पुत्र, अभिमन्यु, नकुल सहदेव, सकल प्रभद्रकोंका मण्डल, दश सहस्र घोड़ेसवार, दो सहस्र हाथीसवार, दश सहस्र पैदल और पाँच सौ रथियोंका बना हुआ महाप्रचण्ड सेनादल भीमसेनको सौंपा और उसको प्रथम सेनादलरूप से यात्रा करनेकी आज्ञा दी विराट, जयत्सेन, पञ्चाल-राजके दोनों महारथी पुत्र युधामन्यु और उत्तमौजा जो कि-महात्मा वीर्यवान् तथा गदा और धनुषको धारण करनेवाले थे इन सबको सेनादलके मध्यभागमें रहनेकी आज्ञा दी ॥१४-१७॥ उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन सेनाके मध्यभागमें महारथियोंके पीछे २ चलते थे, इस समय जो योधा पहिले रणोंमें लड चुके थे वह बड़े आवेशमें भर रहे थे१८उनके आगे पाण्डवोंकी सेनामेंके बीस सहस्र वीर घोड़े सवार, पाँच सहस्र हाथी सवार, रथी तथा धनुष-तलवार और गदाधारी लाखों वीर पैदल जारहे थे तथा सहस्रों पिछले भागमें चल रहे थे ॥ १९ ॥ २० ॥ जिस सेनारूपी सागरमें स्वयं युधिष्ठिर थे सेनाके उस भागमें बहुत से राजे राजा युधिष्ठिरके आसपास चल रहे थे ॥ २१ ॥ तथा हे भरतवंशी राजन् ! और भी सहस्रों हाथीसवार सहस्रों घोड़े सवार, सहस्रों

भारत ॥ २२ ॥ चेकितानः स्वसैन्येन महता पार्थिवर्षभ । धृष्टकेतुश्च चेदीनां प्रणेता पार्थिवो तथा ॥ २३ ॥ सात्यकिश्च महेष्वासो वृष्णीनां प्रवरो रथः । वृतः शतसहस्रेण रथानां प्रणुदन् बली ॥ २४ ॥ क्षत्रदेवब्रह्मदेवौ रथस्थौ पुरुषर्षभौ । जघनं पालयन्तौ च पृष्ठतोऽनुप्रजग्मतुः २५ शकटापणवेशाश्च यानं युग्यञ्च सर्वशः । तत्र नागसहस्राणि हयानामयुतानि च । फल्गु सर्वं कलत्रञ्च यत् किंचित् कृशदुर्बलम् ॥ २६ ॥ कोशसञ्चयवाहांश्च कोष्ठागारं तथैव च । गजानीकेन संगृह्य शनैः प्रायाद् युधिष्ठिरः ॥ २७॥ तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः । श्रेणिमान वसुदानश्च पुत्रो काश्यस्य चाविभुः ॥ २८ ॥ रथा विंशतिसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः । हयानां दश कोटयश्च महतां किङ्किणीकिनाम् ॥ २९ ॥ गजा विंशतिसाहस्रा ईषा दन्तप्रहारिणः । कुलीना भिन्नकरटा मेघा इव विसर्पिणः ॥३०॥ षष्टिर्नागसहस्राणि दशान्यानि च भारत । युधिष्ठिरस्य यान्यासन् युधि सेना महात्मनः ॥३१॥ क्षरन्त

रथी और सहस्रों पैदल भी साथ २ में चल रहे थे ॥ २२॥ और उनके साथ अपनी बड़ीभारी सेनाके सहित चेकितान था चेदि देशोंका स्वामी राजा भी जारहा था ॥ २३ ॥ वृष्णियोंमें महारथी, बड़ाभारी धनुषधारी बलवान् सात्यकी भी लाखों रथियोंसे घिरकर सेनाको आगेको बढाता हुआ कुरुक्षेत्रकी ओरको गया ॥ २४ ॥ महात्मा क्षत्र-देव और ब्रह्मदेव नामके योधा रथमें बैठकर सेनाके जङ्घास्थानकी रक्षा करते हुए सेनाके पिछले भागमें चलते थे ॥ २५ ॥ इसके सिवाय गाड़ियें, दुकानें, सवारियें अनेकों प्रकारके (घोड़े, बैल, ऊँट आदि) वाहन, सहस्रों हाथी, लाखों घोड़े, बालक; स्त्रियें, तथा जो कोई दुर्बल और कृश शरीरवाले मनुष्य थे वह धनभंडारको लेकर चलने वाले वाहन तथा अन्नके भण्डार इन सबको हाथियोंकी सेनासे रक्षा करते हुए राजा युधिष्ठिर कुरुक्षेत्रकी ओरको चले जारहे थे ।२६-२७। सत्य संकल्पवाला और युद्धमें दुर्मद सौचित्ति, श्रेणीमान्, वसुदान, काशीराजका पुत्र अविभु तथा इनके पीछे २ चलने वाले बीस सहस्र रथ, दमेलें पड़े हुए बड़े २ शरीरों वाले दश करोड़ घोडे तथा हलके अग्रभागकी समान लम्बे दाँतों वाले युद्धके अनुभवी उत्तम जातिके और कनपटियोंमेंसे मद टपकाते चलनेवाले मेघमंडलकी समान बीस हजार हाथी राजा युधिष्ठिरके पीछे २ चलते थे ॥ २८—३० ॥ इसके सिवाय राजा युधिष्ठिरकी युद्धमें खड़ी रहने वाली सात अक्षौहिणी

इव जीमूताः प्रभिन्न करटामुखाः । राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२ ॥ एवं तस्य बलं भीमं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः । यदाश्रित्याथ युयुधे धार्त्तराष्ट्रं सुयोधनम् ॥ ३३ ॥ ततोऽन्ये शतशः पश्चात् सहस्रायुतशो नराः । नर्दन्तः प्रययुस्तेषामनीकानि सहस्रशः ॥३४ ॥ तत्र भेरीसहस्राणि शंखानामयुतानि च । न्यवादयन्त संहृष्टाः सहस्रायुतशो नराः ॥ ३५ ॥ छ छ छ

इति श्रीमहाभारत उद्योगपर्वण्यश्वोपाख्यानपर्वणि षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

सेनामें गण्डस्थलोंमेंसे बरसते हुये मेघमंडलकी समान मद टपकाने वाले चलते हुये पर्वतोंकी समान साठ हज़ार और दश हजार अर्थात् सत्तर हजार जो मुख्य २ हाथी थे वह भी सब हे भरतवंशी ! राजा युधिष्ठिरके पीछे २ चलते थे ॥ ३१॥३२ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरकी सेना इस प्रकार बड़ी भयावनी थी उस सेनाका आश्रय लेकर राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनके साथ रणभूमिमें युद्ध किया था,इसहाथियोंकी सेनाके सिवाय सैंकड़ों सहस्रों और दश २ सहस्र योधा तथा उनको हजारों सेना ये सब गर्जना करते हुए राजा युधिष्ठिरके पीछे २ चलते थे ॥ ३३॥३४ ॥ हे महाराज ! उस समय रणभूमिमें हजारों और लाखों योधा बड़े हर्षमें भरकर हजारों भेरी (बिगुल) और हजारों शंखोंको बजारहे थे ।३५। एकसौ छियानवेंवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९६ ॥ छ छ

श्रीमहाभारतका उद्योगपर्व, मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्रगौडवंश्य पण्डित भोलानाथात्मज-ऋषिकुमार रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित हिन्दी भाषानुवाद सहित समाप्त ।

पुस्तक मिलने का पता—

सनातनधर्म प्रेस

मुरादाबाद ।